ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये

श्रीरामायणाङ्क

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

संयुक्त सम्पादक—
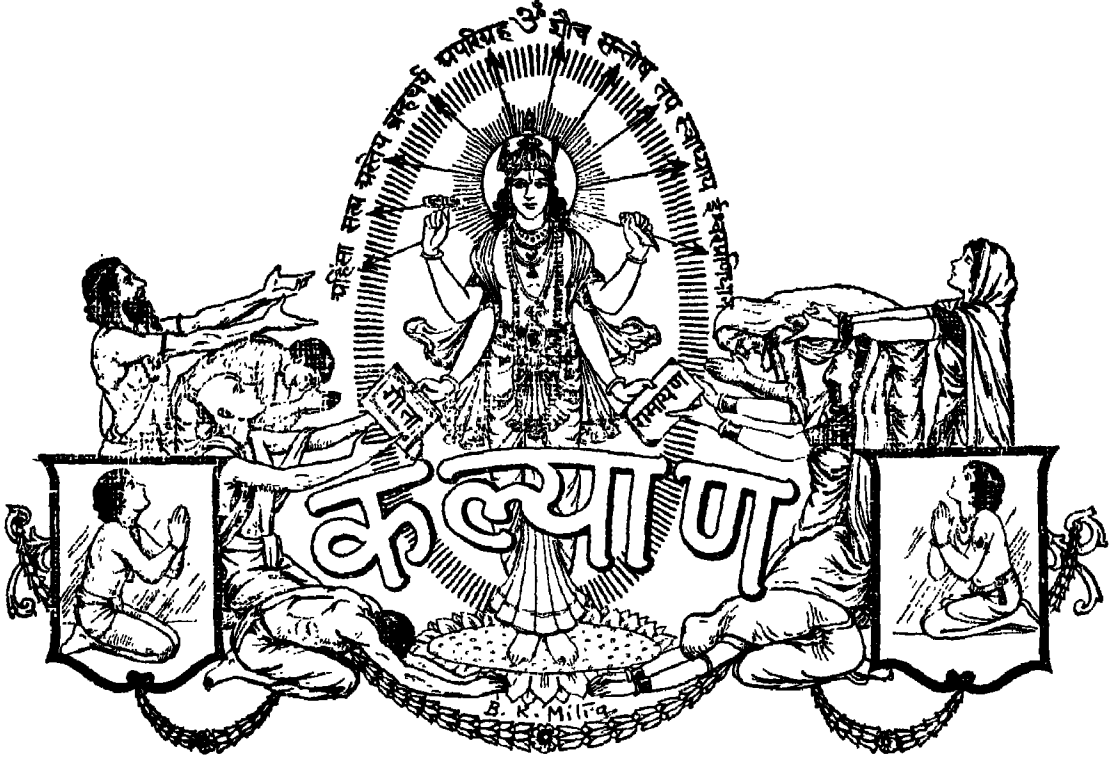
ज्वालाप्रसाद कानोड़िया

हनुमानप्रसाद पोद्दार

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

जयति शिवा-शिव जानकि-राम। जय रघुनन्दन राधेश्याम॥

रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥

[संस्करण - ११२५०]

वार्षिक मूल्य	जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत् चित् आनन्द भूमा जय जय॥	रामा०का मू० २॥=
भारतमें ४=)	जय जय विश्वरूप हरि जय। जय अखिलात्मन् जगमय जय॥	विदेशमें ३)
विदेशमें ५=)	जय विराट जग जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥	साधारण प्रति ।=
		विदेशमें ॥)

Printed and Published by Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur.

ॐ
कल्याण

श्रीहरिः

पाठक-पाठिकाओंसे प्रार्थना

कई कारणोंसे 'रामायणांक' के निकलनेमें कुछ दिनोंकी देर हो गयी है, इसके लिये प्रेमी पाठक-पाठिकागण कृपापूर्वक क्षमा करें।

पहले चारसौ पृष्ठ और १०० चित्रोंका ही विचार था, परन्तु अब यह ५१२ पृष्ठ और १५० से अधिक चित्रोंका निकल रहा है। कीमत पहलेकी सूचनाके अनुसार २॥=) ही है। धर्मार्थ बाँटने, इनाममें देने, उपहार देने, संग्रहमें रखने आदिके लिये यह एक सुन्दर निर्दोष और शिक्षाप्रद अमूल्य वस्तु है।

इस बार केवल १५२५० प्रतियाँ ही छापी गयी हैं, अतः रामायणांकका जल्दी बिक जाना सम्भव है।

चार रुपये दो आने देकर ग्राहक बननेवालोंको यह अंक पांचवें वर्षके पहले अङ्कके तौरपर यों ही मिल रहा है। ग्राहक बनने और बनानेवालोंको जल्दी करनी चाहिये।

इस अङ्ककी तैयारीमें कितना खर्च और परिश्रम हुआ है इसका कुछ अन्दाजा आपलोग कर सकते हैं। देश-विदेशोंसे अनेक लेख मँगाये गये हैं, चित्रादिका संग्रह किया गया है। लेखोंके अनुवाद करवाये गये हैं, इस अङ्कमें जितने चित्र हैं, उतने चित्र भी २॥=) में नहीं मिल सकते। इस स्थितिमें हर एक ग्राहक-अनुग्राहकसे यह प्रार्थना करना हमारी समझसे अनुचित नहीं होगा कि वे कृपापूर्वक कम-से-कम दो-दो ग्राहक और बना दें। पाठक-पाठिकागण यदि कृपापूर्वक थोड़ा-सा प्रयत्न करें, तो ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं है।

'कल्याण' के ग्राहक बढ़ानेके लिये जिन प्रेमी सज्जन और देवियोंने निष्काम और निःस्वार्थ भावसे प्रयत्न किया और जो कर रहे हैं, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। 'कल्याण'के ग्राहक बढ़ानेवाले सज्जनोंका न तो नाम छापा जाता है, न उन्हें पैसे ही मिलते हैं, न उन्हें मान-सम्मानकी आशा है, ऐसी स्थितिमें आजकलके ज़मानेसे विरुद्ध केवल परमात्माकी सेवाकी भावनासे 'कल्याण' के प्रचारकी चेष्टा करनेवाले सज्जनोंके हम बड़े ही आभारी हैं।

यह याद रखना चाहिये कि कल्याणमें विज्ञापन आदिकी कोई आमदनी नहीं है। यह केवल ग्राहक-संख्यापर ही निर्भर करता है अतएव प्रेमियोंको ग्राहक बढ़ानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

ग्राहकोंकी सेवामें सूचना

(१) जिन सज्जनोंने अभीतक आगामी वर्षका मूल्य नहीं भेजा है उनकी सेवामें शीघ्र ही वी० पी० द्वारा रामायणांक भेजा जायगा, परन्तु कामकी बहुत अधिकता होनेके कारण वी० पी० भेजनेमें सम्भवतः महीनेतककी देर हो सकती है। अतएव जिनको जल्दी हो वे इस सूचनाको पढ़ते ही ४=) मनिआर्डरसे तुरन्त भेज दें—

(२) जिन सज्जनोंके नाम वी० पी० भेजी जायगी, उनमेंसे सम्भव है कि कोई सज्जन मनिआर्डर भी भेज दें, ऐसी हालतमें उनसे प्रार्थना है कि वे वी० पी० लौटावें नहीं। भरसक वहींपर दूसरा ग्राहक बनाकर वी० पी० छुड़ा लें और उनका नाम लिखनेकी कृपा करें। रुपये मिलते ही उनके नाम अंक अलग भेज दिया जायगा।

व्यवस्थापक 'कल्याण'

आवश्यक सूचना

गतवर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्क 'भगवद्गीताङ्क' में गीता-सम्बन्धी ग्रन्थोंकी एक विस्तृत सूची * छपी थी। उस सूचीके प्रायः सभी ग्रन्थ गीता-पुस्तकालयमें संग्रहीत हो चुके हैं।

'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध किया जाता है कि उस सूचीमें संग्रहीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त किसी भी भाषाके हस्तलिखित या मुद्रित गीता-सम्बन्धी ग्रन्थ उनकी जानकारीमें हों, उनकी सूचना—गीता-पुस्तकालय, ३० बाँसतल्ला गली, कलकत्ताके पतेसे भेजनेकी कृपा करें।

इसीप्रकार सर्व प्रकारकी रामायण और रामचरित्रसम्बन्धी ग्रन्थोंका भी एक सुन्दर संग्रह होना आवश्यक है। यदि सब रामायणाचार्यों और रामप्रेमी सज्जनोंकी सहानुभूति हो तो यह कार्य होना सहज ही है। इसके लिये सब भाषाओंके हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंकी पूरे विवरणसहित सूचना और अपनी सम्मतियाँ भी उपर्युक्त पतेपर भेजनेकी कृपा करें।

आशा है सब धर्म-प्रेमी सज्जन आवश्यक सूचनाएँ भेजकर हमें ग्रन्थ-संग्रहमें सहायता देंगे।

भवदीय

सम्पादक—'कल्याण'

श्रीगीता-परीक्षा

गीता-परीक्षा आगामी कार्तिक बदी १० ता० १७ अक्टूबरमें आरम्भ होगी। केन्द्रोंमें अभीसे तैयारी होनी चाहिये। भाद्रपदके अन्ततक परीक्षार्थियोंके आवेदनपत्र कार्यालयमें आ जाने चाहिये।

इसबार विशेष उत्साहसे इस कार्यमें भाग लेनेके लिये देशवासियोंसे प्रार्थना की जाती है।

संयोजक,

श्रीगीता-परीक्षा-समिति,

बरहज (गोरखपुर)

---

* यह विस्तृत 'गीता-सूची' अलग पुस्तकाकारमें भी छप रही है।

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांक सहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४=) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ५=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।=) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता; नमूना ।=) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अंकसे १२ वें अंकतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरे सालके उस अङ्क तक नहीं बनाये जाते। 'कल्याण'का वर्ष श्रावणसे शुरू होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहले तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम पता साफ साफ लिखना चाहिये। महीने दो महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेप रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डर द्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी कभी तो डेढ़ दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलने तक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं; खर्चा दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधा है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या और अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर, रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर' के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर' के नामसे भेजने चाहिये।

श्रीहरिः

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

कविता

संग्रहीत

पृष्ठ संख्या

गो० तुलसीदासजीके उपदेश-रत्न

चित्र-सूची

बहुरंगे

सादे

माननीय काशीनरेशकी रामायणके

अयोध्यापुरीके

जनकपुरधामके

शृंगवेरपुरके

चित्रकूटके

प्रयागके

नाशिक पञ्चवटीके

सेतुबन्ध रामेश्वरके

तुलसीदासजीके जीवन सम्बन्धी काशीके

इनके अतिरिक्त दो हड्डिग-चित्र, छः मानचित्र, और दो लिपिचित्र हैं।

श्रीराम पञ्चायतन ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५ खण्ड १	श्रावण १९८७ जुलाई १९३०	संख्या १ पूर्ण संख्या ४९

जीवनका फल

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप विलोचन-मीननको जल है ।

श्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहिको थल है ॥

मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति रामसों, रामहिंको बल है ।

सबकी न कहैं, तुलसीके मते इतनो जग-जीवनको फल है ॥

—गोसाईंजी महाराज

श्रीरामायण-माहात्म्य

सनत्कुमारके प्रति देवर्षि नारदके वचन—

रामायणमहाकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् । रामचन्द्रगुणोपेतं सर्वकल्याणसिद्धिदम् ॥

आदिकवि-कृत रामायण महाकाव्य सर्ववेदार्थ-सम्मत और सब पापोंका नाश करनेवाला तथा दुष्ट ग्रहोंको निवारण करनेवाला है। यह दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला, श्रीरामके गुणोंसे युक्त सब प्रकारके कल्याण और सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला रामायण धन्य है।

आदिकाव्य रामायण स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है!

जिसके पूर्व-जन्मके पाप निश्चयपूर्वक नष्ट हो जाते हैं उस मनुष्यको अवश्य ही रामायणमें अटल महाप्रीति उत्पन्न होती है।

मानव-शरीरमें पाप तभीतक रह सकते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्रामायणकी कथा सम्यक् प्रकारसे नहीं सुनता।

रामायण सब दुःखोंका नाश करनेवाला, सब पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला और सब यज्ञोंके फल देनेवाला है।

जो द्विज रामनाम-रत होकर रामायणमें लवलीन रहते हैं इस घोर कलियुगमें वे ही कृतकृत्य हैं।

जो मनुष्य नित्य रामायणमें लवलीन रहते हैं, गंगा-स्नान करते हैं और धर्ममार्गका उपदेश करते हैं वे मुक्त ही हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

जो जितेन्द्रिय और शान्त-चित्त हो रामायणका नित्य पाठ करता है वह उस परम आनन्दधामको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर उसे कभी शोक नहीं सताता।

क्षमाके समान कोई सार पदार्थ नहीं, कीर्तिके समान कोई धन नहीं, ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं और श्रीरामायणसे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

जगत्का हित करनेवाले जो सज्जन रामायणमें लगे रहते हैं वे ही सर्व शास्त्रार्थमें पण्डित हैं और धन्य हैं।

जिस घरमें नित्य रामायणकी कथा होती है, वह घर तीर्थरूप है और दुष्टोंके पापका नाश करनेवाला है।

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
संसारविषयान्धानां नराणां पापकर्मणाम् ॥
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

रामनाम ही मेरा जीवन है, नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुगमें संसारके विषयोंमें अन्धे हुए पापकर्मा मनुष्योंके लिये दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। (स्कन्द पुराण)

भगवान् शिवजी कहते हैं—

मुनि-दुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं बिनुहिं प्रयास ।
जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि बिस्वास ॥
राम-चरन-रति जो चहै, अथवा पद-निर्बान ।
भावसहित सो यह कथा, करहिं स्रवन-पुट पान ॥

तेरी हँसी

मेरे प्राणाराम राम ! तू बड़ा ही लीलामय है, खूब खेल खेलता है। मन-माना नाच भी नचाता है और अलग बैठा टुक-टुक देखता हुआ हँसा भी करता है। यह सृष्टि तेरे हास्यका ही तो विलास है, परन्तु तेरा हँसना नित नये-नये रंग लाता है, तेरी एक हँसीमें सृष्टिका उदय होता है, दूसरीमें उसकी स्थिति होती है और तीसरीमें वह तेरे अन्दर पुनः विलीन हो जाती है। पर तू तीनों ही अवस्थामें हँसता है, इतनी उधेड़-बुन हो जाती है, परन्तु तेरी हँसीमें कहीं विषमता नहीं आती। लोग तेरी हँसीके नाना अर्थ करते हैं, उनका वैसा करना अनुचित भी नहीं है, क्योंकि लोगोंको भिन्न भिन्न रूप भासते भी हैं। यही तो तेरी हँसीकी विलक्षणता है, इसीमें तो तेरी मौज़का अजब नजारा है। किसीका जन्म होता है, तू हँसता है; वह खाता-खेलता और रंग-रागमें मस्त रहता है, तू हँसता है; फिर हाथ फैलाकर वह सदाके लिये सो जाता है—क्रन्दनकी करुण-ध्वनिसे दिशाएँ रो उठती हैं, तू वहाँ भी हँसता ही है। तेरी हास्यलीला अनादि और अनन्त है !

लोग तेरे इस हास्यकी थाह लेना चाहते हैं, अपने परिमित और विलास-विभ्रम-ग्रस्त बुद्धिबलसे तेरी हँसीका रहस्य जानना चाहते हैं, यह बुद्धिका सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते-होते सर्वथा विलुप्त हो जाना नहीं तो क्या है ? जलका ज़रा-सा नगण्य कण सब ओरसे परिपूर्ण पारावारहीन जलनिधिका अन्त जानना चाहता है, यह असम्भव भावना नहीं तो क्या है ? जबतक वह अलग खड़ा देखेगा तबतक तो पता लगेगा कैसे ? और कहीं पता लगानेकी लगनमें अन्दर चला गया तब तो उसकी अलग सत्ता ही नष्ट हो जायगी फिर पता लगायेगा ही कौन ? जो ढूँढ़ने गया था, वही खो गया ! अतः हे महामहिम मुनि-मन मोहन माणिक-मुकुट-मणि राम ! मेरी समझसे तो तेरे इस हास्यके मर्म जाननेकी सामर्थ्य जगत्‌के किसी भी प्राणीमें नहीं है। हाँ, कोई तेरा खास प्रेमी तेरी कृपासे रहस्य समझ पाता है, परन्तु उसका समझना न समझना हमारे लिये एक-सा है, क्योंकि वह फिर तुझसे अलग रहता ही नहीं—

सो जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ॥

जो तेरी मधुर मुसुकानपर मोहित होकर तेरी ओर दौड़ता है, और तेरे समीप पहुँच जाता है, उसे तो तू अपनी गोदसे कभी नीचे उतारता नहीं, और जो विषय-विमोहित हैं उनको तेरे रहस्यका पता नहीं !

आश्चर्य है कि इसपर भी हम तेरी लीलाओंके रहस्योद्‌घाटनका दम भरते हैं और जो बात हमारी स्थूल बुद्धिमें नहीं जँचती, उसे तेरे लिये भी असम्भव ही मान बैठते हैं ! हमारी इस बुद्धिपर—हमारे इस वाक्-चापल्यपर तुझे दया तो आती ही होगी दयामय !

महर्षि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास और गोसाईं तुलसीदासजी प्रभृति धन्य हैं, जिनकी वाणीसे तूने दयाकर अपनी कुछ लीलाएँ जगत्‌को सुनायीं। तेरी इन लीलाओंके दिव्यालोकसे असंख्य प्राणियोंका तमोमय मार्ग प्रकाशित हो उठा, जिसके सहारे वे अनायास ही अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर सदाके लिये सुखी हो गये ! परन्तु तेरी ये लीलाएँ हैं बड़ी ही विचित्र, अद्भुत और मोहिनी, बड़े-बड़े तार्किक विद्वानोंकी बुद्धि इनकी मोहकतामें पड़कर चकरा जाती हैं। अवश्य ही जो लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक बुद्धिका व्यर्थाभिमान छोड़कर तेरी शरण हो जाते हैं, उनके विवेक-चक्षुओंके सामनेसे तेरी दुस्तर मायाका आवरण हट जाता है !

प्रभो ! आज 'कल्याण'के पाँचवें वर्षके प्रारम्भपर तूने जो अपनी इन लीलाओंका कुछ गुणगान करवाया है, तेरी सबपर सदा रहनेवाली अपार कृपाके एक कणका अनुभव ही इसमें कारण है। नाथ ! ऐसा कर दे, जिससे प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक चेष्टामें तेरी नित्य अनन्त कृपाकी पूर्ण अखण्ड माधुरी मूरतिके दर्शन होते रहें और फिर वह पूर्ण कृपाविग्रह कभी आँखोंसे ओझल न हो। सुना है, तेरी हँसीका रहस्य तभी जाना जा सकता है !

'तेरा ही'

श्रीरामायण-तत्त्व-रहस्य

(गोवर्धनपीठाधीश्वर पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)

शंकाकुठारायितवीक्षणाभ्यां शंकारकत्वप्रदपूजनाभ्याम् ।
लंकाविपारातिरतिप्रदाभ्यां नमोनमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥
पवनजरविसुतपद्मप्रभवजमुखविनुतांघ्रिम् ।
त्रिभुवनजनततिपालं दिनमणिकुलमणिमीडे ॥

अखिल संसारके केवल समस्त मनुष्योंके ही नहीं, सभी जीवोंके मनमें स्वाभाविक यही एक इच्छा सर्वदा हुआ करती है कि हमें किसी भी समय, किसी भी स्थानमें, किसी भी अवस्थामें, किसी भी कारणसे, किसी प्रकारका भी तनिक-सा भी दुःख न हो। सब समय, सभी स्थानोंमें और सभी अवस्थाओंमें केवल सब प्रकारसे सुख ही हो। इसी स्वाभाविक इच्छासे प्रेरित होकर समस्त जीव अपनी अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, दैशिक, सामयिक आदि योग्यता तथा अनुकूलताके अनुसार अनेक प्रकारके प्रयत्नोंमें प्रवृत्त रहते हैं।

सुखकी इच्छाके साथ ही दुःख दूर करनेकी इच्छा अर्थात् केवल शुद्ध सुखकी चाह होना स्वाभाविक ही है। कारण, मनुष्यादि सभी जीवोंके मनका- तो यही स्वभाव है कि थोड़ेसे भी दुःखके प्राप्त होनेपर वह अपने अनुभवमें आये हुए और आते रहनेवाले अनेकानेक और बड़े-बड़े सुखोंका लेशमात्र भी अनुभव न कर, उसी एक छोटे दुःखका अनुभव करता है और दुखी होकर एकमात्र उसी दुःख-निवृत्तिकी चिन्तामें पड़ जाता है।

मनका यह अनुभव और वृत्ति युक्तियुक्त भी है। कारण, दुःख इतनी बुरी वस्तु है कि जैसे एक लोटेमें भरकर रक्खे हुए दूध या जलमें एक दो बूँद विष डाल देनेपर वह सबका सब दूध या जल विष ही बन जाता है, उसमें बहुत-से दूध या जलका ज़रा-सा भी प्रभाव नहीं रहता, वैसे ही अनेक तथा अनेक प्रकारके बड़े-बड़े सुखोंमें जब थोड़ा-सा भी दुःख मिल जाता है तो वे सारे सुख दुःखमय ही बन जाते हैं, फिर उन बड़े बड़े सुखोंका तनिक-सा भी प्रभाव नहीं रह जाता। इसीलिये यह अनुभवकी बात हुआ करती है कि जबतक वह दुःख दूर नहीं होता तबतक मनमें शान्ति नहीं रह सकती और भगवद्गीतामें आनन्दकन्द परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीमुखसे निकले हुए 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' इस वाक्यानुसार जहाँ अशान्ति है, वहाँ सुख कभी नहीं हो सकता।

इस विषयपर विचार करना चाहिये कि हमलोग मनुष्य-योनिमें आकर अपनी मनुष्यजातिको पशु, पक्षी आदि सबसे श्रेष्ठ क्यों मानते हैं? जब सभी जीव मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि और कीट–समानरूपसे ही दुःख दूर करना और सुख प्राप्त करना चाहते रहते हैं, अर्थात् जब सबका ध्येय तथा लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है, तब उन सब जातियोंकी अपेक्षा मनुष्य जाति किस अंशमें श्रेष्ठ है, जिसके आधारपर मनुष्य अपनेको सर्वश्रेष्ठ माना करता है। यह केवल अज्ञानी मनुष्योंका ही अभिमानजनित कथन नहीं है कि मनुष्ययोनि सर्वश्रेष्ठ है, जगद्गुरु श्रीआदि शंकराचार्य भगवान्‌ने भी अपने 'विवेकचूडामणि' ग्रन्थमें मङ्गल श्लोकके पश्चात् प्रथम श्लोकमें ही 'जन्तूनां नरजन्म दुर्लभं' इत्यादिसे सर्वप्रथम यही विषय बतलाया है और श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें तो मनुष्ययोनिको देवयोनिकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ बतलाया गया है। पर हमलोगोंको इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर कि हमारी मनुष्यजाति सर्वश्रेष्ठ है, यह विचार भी करना चाहिये कि वह क्यों श्रेष्ठ है और हमें उस श्रेष्ठताको किसप्रकारसे सफल करना होगा?

इस विचारमें उतरनेपर यह तो स्पष्ट है कि शारीरिक बल आदि बाह्य अंशोंमें मनुष्य अपनी श्रेष्ठताका दावा नहीं कर सकता, क्योंकि इन अंशोंमें तो उससे श्रेष्ठ बहुत-सी योनियाँ पशु पक्षी आदिमें भी पायी जाती हैं। कदाचित् मनुष्य यह समझे कि हम सुख-दुःखके सम्बन्धमें, अन्य जीवोंके सदृश विचार करते हुए भी बन्धनकी निवृत्ति या मोक्ष चाहनेमें विशेषता रखते हैं (जैसे आजकल बहुतसे लोग यह दावा करते हैं कि परराज्यकी निवृत्ति या स्वराज्यका खयाल करना पाश्चात्योंकी विशेषता है इत्यादि.) तो यह भी बड़ी भूल ही है, क्योंकि मुमुक्षा तो जन्तुमात्रकी
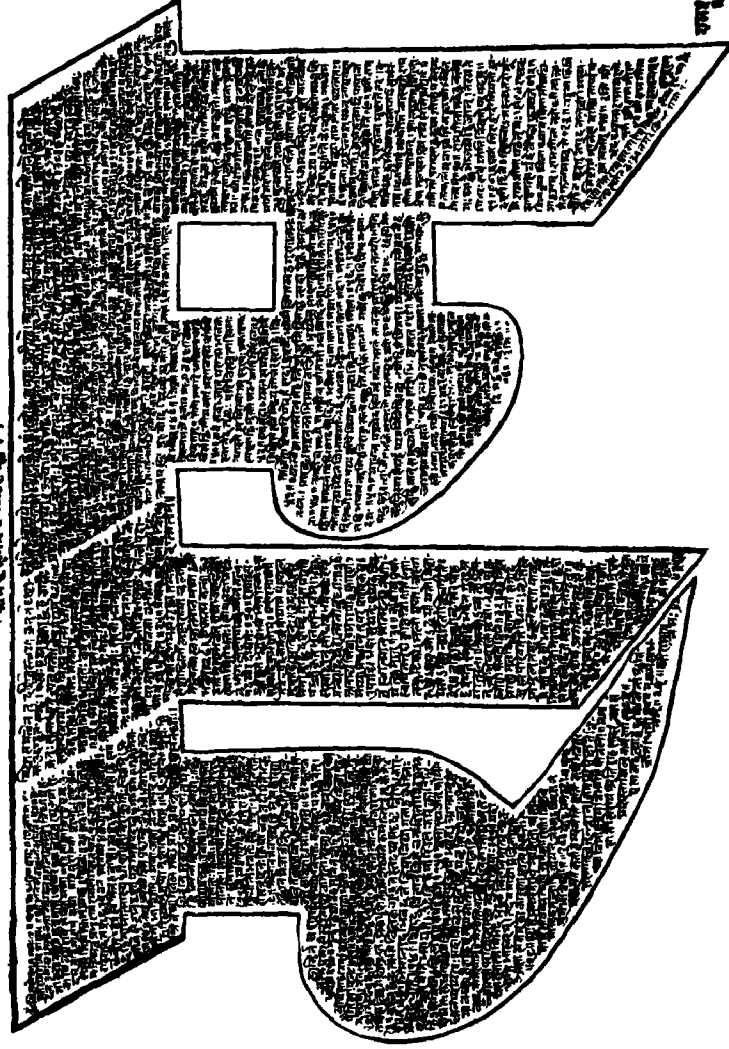
G. P. GORAKHPUR.

इसी परमावश्यक कार्यमें हम लोगोंको सहायता देनेके लिये, सर्वज्ञ महर्षियोंने अपनी विशाल तपस्याके बलसे अनुभव किये हुए बड़े-बड़े तत्त्वोंको हमारे सामने, अधिकार-भेदके अनुसार, अनेक तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके शास्त्र-ग्रन्थोंके रूपमें रखकर, महान् उपकार तथा अनुग्रह किया है। इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्रामायण आदि अनेक ग्रन्थरत्न जगद्विख्यात हैं जो अत्युत्तम ज्ञानीसे लेकर अति पामर और अधमाधम मनुष्य-तक सब प्रकारके अधिकारियोंके अपनी-अपनी योग्यता और अधिकारके अनुसार, कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों मार्गोंपर कुछ-न-कुछ प्रकाश डालकर, इहलोक तथा परलोकमें परम कल्याणकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायता देने-वाले हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने उपदेश दिया है। गीताके प्रथमाध्यायमें अर्जुनरूपी नरके विषादयुक्त रुदनसे तथा उस अध्यायके 'अर्जुन-विषाद-योग' नामसे यह स्पष्ट है कि सहस्रों प्रकारके झंझटोंमें पड़े हुए, आगे पीछेकी परस्पर विरुद्ध बातोंका समन्वय न कर सकनेके कारण दुखी होकर रोते रहना ही नरका लक्षण है। भगवान् श्रीकृष्णरूपी नारायणके समस्त उपदेशसे तथा 'भगवद्गीता' शब्दसे भी यह स्पष्ट है कि सुख-दुःख, लाभालाभ तथा जय-पराजयकी चिन्ता छोड़कर निष्काम-भावसे अपने कर्त्तव्यको केवल कर्त्तव्य-बुद्धिसे ही करते हुए, नाचते-खेलते-गाते रहना, अर्थात् सभी अवस्था और क्रियाओंमें सच्ची शान्ति और आनन्दमें निमग्न रहना ही नारायणका लक्षण है, अतएव यदि किसी मनुष्यको सब दुःखों तथा बन्धनोंसे मुक्त होकर, अपने लक्षणरूपी नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्दघनस्वरूपी परमात्मरूप परमार्थस्वरूपमें पहुँचना हो, अर्थात् यदि किसी नरको नारायण बनना हो, तो उसे भी, अर्जुनरूपी नरकी तरह श्रीकृष्णरूपी नारायणको ही अपने रथका सारथि बनाकर, उससे यह कहना चाहिये कि—

'यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥'

'मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण हूँ, मेरे लिये जो कुछ निश्चित श्रेय हो वही बतलाइये।' तदनन्तर नारायणसे न केवल अपने लिये बल्कि भगवच्छरणागत भक्तमात्रके लिये यह अद्वितीय अभय दान प्राप्त करना योग्य है, कि—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'
'कौन्तेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।'
'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'

'समस्त कर्मोंके आश्रयको त्याग केवल एक मुझ सच्चिदानन्द-घन वासुदेवकी शरण हो जा। 'मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक न कर।' 'हे कौन्तेय ! यह निश्चयकर कि मेरे भक्तका नाश नहीं होता।' 'जो अनन्य भक्त मुझे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन नित्य मुझमें लगे हुए पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।'

इसप्रकार उसीके उपदेशामृतका श्रवण करके अन्तमें उसके—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

—इस प्रश्नको सुनकर दृढ़ निश्चयके साथ उसको यह जवाब देते हुए कि—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

'हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी, मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ, अब आपकी ही आज्ञाका पालन करूँगा।' श्रद्धा-भक्ति-प्रेमके बलसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी लगाम छोड़कर, उसीकी आज्ञानुसार अपने वर्णाश्रमादि अधिकारसिद्ध कर्तव्यकर्मको पूरा करके, इस नियमके अनुसार कि—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

भक्तिसमेत कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा संशय, विकल्प, विपरीतभावनारूपी दोषत्रयरहित और अबाधित विज्ञानको पाकर मोक्षकी प्राप्ति करनेमें विजय प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

—जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्णरूपी नारायणको अपने सारथि-रूपसे आगे करके धनुर्धारी पार्थरूपी नर पीछे रहकर युद्ध

करता हो, वहाँ लक्ष्मी, जय, विभूति और नीति अवश्य ही रहेंगी। यही गीतोक्त उपदेशका सारांश है।

इसी प्रकारसे नर होकर नारायण बननेके लिये, अर्थात् रोना छोड़कर गाते रहनेके लिये, नारायणको ही अपने शरीरादि रूपी रथका सारथि बनाकर, श्रद्धा, भक्ति और प्रेमके बलसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी लगाम सौंपकर, उसीकी आज्ञानुसार अपने वर्णाश्रमादि अधिकारसिद्ध कर्तव्योंको निःस्पृहता और केवल कर्तव्य-बुद्धिसे पूरा करके, भक्तियुक्त कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञान और मोक्ष प्राप्त करनेमें विजयी होना होगा।

श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्‌ने श्रीकृष्णचन्द्रादि रूपसे इसी तत्त्वको अपने इतिहास तथा जीवनचरित्रसे दिखाया है कि नारायणका यही लक्षण है जो ऊपर बताया गया है।

श्रीमद्रामायणमें श्रीभगवान्‌ने श्रीरामचन्द्ररूपसे पधार कर प्रत्येक व्यवहारमें अपनी आदर्शभूत जीवन-प्रणालीसे मनुष्यजातिको यह दिखलाया है कि मनुष्यमात्रको किस-प्रकार संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करते हुए धर्मका पालन करना है। कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों काण्डोंकी दृष्टिसे भी भगवान् श्रीरामचन्द्रका इतिहास हमलोगोंके लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयुक्त शिक्षा देता है।

अनेक प्रकारके सम्बन्धियोंके साथ व्यवहारमें यथोचित सदाचरणकी दृष्टिसे देखें तो भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपने गुरुजन, माता, विमाता, पिता, भ्रातृगण, सहायक, सेवक, सर्वसाधारण प्रजा आदि सभी सम्बन्धियोंके साथ यहाँतक कि शत्रुओंके साथ भी ऐसा सुन्दर आदर्श व्यवहार किया है जो बात-बातमें हम लोगोंके लिये अत्युत्तम रीतिसे शिक्षाप्रद है और जिसके विशेष विस्तारपूर्वक वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र-सम्बन्धी ये सभी बातें जगत्प्रसिद्ध हैं।

परन्तु इस प्रसंगमें इस बातके लिये विशेष रूपसे ध्यान देना होगा कि भगवान्‌की कृपा तथा प्रेमके पात्र बननेके लिये प्रेम तथा भक्तिके अतिरिक्त और अन्य किसी भी प्रयोजक लक्षणकी आवश्यकता नहीं है। इस विषयमें श्रीरामचन्द्रजीके माता, पिता, गुरु आदि खास सम्बन्धियोंके अतिरिक्त, अनागरिक अरण्यवासी गुह, पशुरूपमें आये हुए महावीरादि वानरगण और राक्षस आत्मन्तर्गत विभीषण आदिका स्मरण कराना पर्याप्त है। विस्तृत वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं।

कर्मकाण्डके अन्तर्गत क्षत्रिय-धर्मकी खास दृष्टिसे देखा जाय तो उसमें अपने सुख-दुःखादिकी परवा न करते हुए, केवल धर्म-बुद्धिसे तथा बिना ही द्वेष शत्रुनिबर्हण करना और प्रजापालन करना ही मुख्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनों अंशोंमें भी अनुपम ही थे।

शत्रुनिबर्हणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी बाल्यावस्थामें किये हुए ताड़कासंहारसे लेकर अन्तमें रावणादिके संहारतक द्वेषरहित हो केवल धर्मबुद्धि और सत्यप्रतिज्ञाके साथ अद्वितीय शूरता और पराक्रमसे युद्ध करनेवाले ही थे। इस बातका पता इसीसे लगता है कि जब श्रीलक्ष्मणजी इन्द्रजित्‌को किसी प्रकार किसी भी अस्त्र-शस्त्रादिसे परास्त न कर सके तब उन्होंने ऐन्द्रास्त्र हाथमें लेकर कहा कि—

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम् ॥

'यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्मात्मा, सत्यसन्ध और रणमें प्रतिद्वन्द्वी न रखनेवाले हों तो यह बाण इन्द्रजित्‌का वध करे।' इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मात्मता, सत्यप्रतिज्ञता और अद्वितीय युद्धवीरतापर मन्त्ररूपी शपथ करके छोड़े हुए एक ही बाणसे उसी शपथके बलसे उन्होंने इन्द्रजित्‌को मार डाला था। भगवान् पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी श्रीभगवद्गीताके दशमाध्यायमें अपनी विभूतियोंके वर्णनके प्रसंगमें 'रामः शस्त्रभृतामहम्' कहकर स्पष्ट किया है कि शस्त्र-धारियों अर्थात् युद्धवीरोंमें श्रीरामचन्द्रजी सर्वोत्तम थे।

प्रजापालनके विषयमें तो ये जगत्प्रसिद्ध बात है कि श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाके मनमें शंकाकी सम्भावनासे भी उसे दुःख न होने देनेके ख्यालसे, उस भगवती श्रीसीतादेवीके वियोगकी परम असह्य दुःखवेदनाको सहा, जो अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी और जिसके लिये अरण्य तथा लङ्कामें भगवान्‌ने भयंकर कष्ट उठाये थे।

श्रीरामचन्द्रजीका शासन इतना धर्मपूर्ण था कि उनके राज्यमें प्रजाको दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु आदि आज-कलकी दृष्टिसे तो अतिसाधारण दुःख भी कभी नहीं हो सकते थे।

अब इस नियमके एकमात्र अपवादस्वरूप एक ब्राह्मण बालककी मृत्यु हुई और उसका पिता भगवान्‌के राजभवनके

द्वारपर पहुँचकर खरी-खोटी सुनाने लगा कि राजाके अधर्मसे ही हमारे बालककी अकालमृत्यु हुई है इत्यादि, तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको राजनिन्दा करनेवाला राजद्रोही समझकर न तो दण्ड दिया और न उसका कोई खण्डन या प्रतिवाद ही किया बल्कि अत्यन्त नम्रताके साथ यह स्वीकार किया कि 'यद्यपि हमने स्वयं ऐसा कोई पाप नहीं किया है, तो भी यदि हमने अपने राज्यमें ऐसा कुछ कुकर्म होने दिया हो जिससे इस ब्राह्मणके बालककी यह अकालमृत्यु हुई है, तो यह अनर्थ भी हमारे ही दोषसे हुआ है, क्योंकि राजाकी हैसियतसे हमारा ही यह कर्तव्य है कि हम स्वयं सदाचारी रहते हुए राज्यमें भी पापाचरण न होने दें। अतएव हम प्रत्येक दिशामें घूमकर पता लगायेंगे कि राज्यमें कहाँ क्या पाप हुआ है जिसके कारण हमारे राज्यमें एक बार भी अपवादरूपसे भी एक अकाल-मृत्युका प्रसंग आया।' तदनन्तर भगवान्‌ने उस पापका पता लगाकर उसे दूर भी कर दिया, इस विषयपर विशेष विस्तारकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके समयके बाद त्रेता और द्वापर इन दोनों युगोंकी समाप्ति होकर तीसरे युगमें पाँच हजार एकतीस वर्षके बीत जानेपर भी, अब भी, जब-जब तथा जहाँ-जहाँ आदर्श राज्यशासन तथा प्रजाके सुखका जिक्र करनेकी आवश्यकता होती है, तब-तब और तहाँ-तहाँ सारे भारतवर्षमें यही प्रथा है कि लम्बे-लम्बे वर्णन न करके, आदर्श आदि छोटे शब्दोंसे भी काम न लेकर, केवल 'रामराज्य' शब्दसे ही वक्ता अपने पूरे तात्पर्यको स्पष्ट कर देते हैं और श्रोता भी उसका अर्थ समझ लेते हैं।

आचार-व्यवहार, युद्धवीरता, धार्मिक शासन आदिके पश्चात् जब उपासना और ज्ञानकाण्डकी दृष्टिसे देखते हैं, तो श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा केवल पुराणोंसे ही सिद्ध नहीं है, (जिनपर आजकलके सुधारक अश्रद्धाके साथ कटाक्ष किया करते हैं) सीतोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद् रामतापिन्युपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् आदि वेदान्तकी खास-खास मूल श्रुतियोंसे भी प्रसिद्ध हैं।

उपासनाकाण्डकी दृष्टिसे भी श्रीरामचन्द्रजीका माहात्म्य पुराणोंसे तथा उपर्युक्त उपनिषदोंमे यहाँ तक स्पष्ट है कि भगवान् श्रीशंकर भी स्वयं सर्वदा राम-नाम रटते हुए श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—

> राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
> सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

—और मुक्तिपुरी श्रीकाशीक्षेत्रमें श्रीविश्वनाथरूपसे अधिष्ठाता होकर, वहाँ मरनेवालोंके दक्षिण कर्णमें अपने श्रीमुखसे ही रामतारक-मन्त्रोपदेश देकर उनको मुक्ति देते हैं इत्यादि। ये सभी बातें इतनी प्रख्यात हैं कि इनका केवल उल्लेख ही पर्याप्त है, वर्णनकी आवश्यकता नहीं।

अब कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डकी सम्मिलित दृष्टिसे अर्थात् अत्यन्त उपयोगी आध्यात्मिक दृष्टिसे भी विचार करना चाहिये कि श्रीरामायणका बताया हुआ आध्यात्मिक तत्त्व कौन-सा है? परम लक्ष्य क्या है? और उसके साधन क्या क्या हैं? इस विषयपर भगवान् जगद्गुरु श्रीआदिशंकराचार्य महाराजजीने अपने 'आत्मबोध' नामक छोटे परन्तु अति सुन्दर वेदान्त-ग्रन्थमें इस एक ही श्लोकसे दिग्दर्शनमात्र करा दिया है। यथा—

> तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान्।
> शान्तिसीता समायुक्त आत्मारामो विराजते॥

श्रीमद्भगवद्गीताके

> यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
> आत्मन्येव च सन्तुष्ट[illegible]॥

इन लक्षणोंके अनुसार जो आत्माराम बना हो, वही आत्मारामरूपी श्रीराम अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होकर काम-क्रोधादिरूपी राक्षसोंका वध कर, शान्तिरूपी सीताजीके साथ विराजता है। इसके तात्पर्यका निम्नलिखित विवरण है—

सीतोपनिषद्‌में बतलाया गया है कि श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीरूपी श्रीसीताजी सच्चिदानन्दकन्द परमात्मस्वरूपी भगवान्‌की चिद्रूपिणी महाशक्ति हैं। वह महाशक्ति आनन्दस्वरूपी भगवान्‌के साथ रहनेवाली शान्तिस्वरूपिणी महासम्पत्ति होती है। इस शान्तिस्वरूपिणी सीताजीको यदि काम-क्रोधादिरूपी राक्षसोंका अधिपतिरूपी अहंकार-स्वरूपी रावण अपनाना चाहे और उठाकर ले भी जाय, तो भी शान्तिस्वरूपिणी श्रीसीताजीका तो आत्मारामरूपी श्रीरामजीके ही साथ रहना सम्भव है, अन्य किसीके साथ कदापि नहीं। अतः काम-क्रोधादि राक्षसोंके राजा अहंकाररूपी रावणके साथ मिलकर उसकी होकर रहना शान्तिरूपिणी सीताजीके लिये सर्वथा अशक्य और असम्भव है। इसीलिये शान्तिरूपिणी सीताजी रावणका घोर तिरस्कार ही किया करती हैं क्योंकि वह तो—'रावणो लोकरावणः' है, अर्थात् सारी दुनियाको लगातार दुःख-

पर दुःख देता हुआ, उसे रुलाते ही रखनेवाला अहंकाररूपी रावणेश्वर है जिसके साथ शान्ति कदापि ठहर नहीं सकती ।

अतएव श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धके रासपञ्चाध्यायीमें ऐसा एक प्रसंग आता है कि अपनेको भूलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ नाचती, खेलती और गाती हुई आनन्दमें निमग्न हुई श्रीकृष्णके दिव्य दर्शन करनेवाली गोपियोंके मनमें जब अहंकार आ गया, तब भगवान् एकदम अन्तर्धान हो गये । क्योंकि अहंकार और परमात्म-दर्शन एक साथ कभी नहीं हो सकते, परन्तु जब भगवान्‌के गुम हो जानेपर गोपियाँ बड़े दुःखमें पड़कर उनकी खोजमें लगती हैं और—तन्मनस्कास्तदात्मिकाः उन्हींके सतत ध्यानसे पुनः अपनेको सर्वथा भूलकर तद्रूप बन जाती हैं, तब—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

—भगवान् हँसते-हँसते फिर प्रत्यक्ष हो जाते हैं, क्योंकि अहंकारके छूट जानेपर परमात्माका दर्शन निर्विघ्नतासे हो सकता है !

इसीलिये श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें यह बात भी हुई कि परमात्म-रूपी भगवान् अवतीर्ण होनेके बाद अहंकार-रूपी कंससे कभी मिलते ही नहीं और जब मिलते हैं तब उसे मार डालनेके लिये ही मिलते हैं । अतएव शान्ति-रूपिणी सीताजी अहंकाररूपी रावणसे मिल ही नहीं सकती !

अब यह देखना है कि शान्तिरूपिणी सीताजी आत्मारामरूपी श्रीरामके साथ किसप्रकारसे मिलती हैं ? पहले तो श्रीहनूमान्‌जीके द्वारा सीताजीका पता लगाया जाता है । आध्यात्मिक दृष्टिसे यह हनूमान् कौन-से तत्त्व हैं ?

हनूमान्‌जी जिज्ञासा या विचाररूपी आध्यात्मिक तत्त्व हैं, विचारके द्वारा आत्मारामको यह पता लग सकता है कि शान्ति कहाँ रहती है ? हनूमान्‌जी (विचार) से ही पता लगता है कि सीताजी (शान्ति) को लंकामें (अर्थात् लीयते यस्मिन्कर्मणि तथथा भवति तथा लं, कः=आनन्दः, आ= वृत्तिः, अर्थात् नश्वर आनन्दकी वृत्तिमें) रावणने (अहंकारने) रख छोड़ा है । वहाँ (लंकामें) रक्खे जानेपर भी सीताजी (शान्ति) किसी विपरीत स्थानमें नहीं रक्खी जाती, वह केवल 'अशोक' वनमें (अर्थात् दुःखलेशरहित और सन्तत-धाराप्रवाहरूपी स्वरूपभूत आनन्दमें ही) स्थित रहती है, इसका कारण यह है कि जन्य अर्थात् विकाररूपी ('यज्जन्यं तदनित्यम्', इस न्यायसे) नश्वर आनन्दमें यथार्थ शान्ति कभी नहीं रह सकती, क्योंकि उसका तो वास्तविक स्थान अशोक (आनन्द) का वन ही है ।

इसके सिवा श्रीमद्रामायणमें यह भी बतलाया जाता है कि जिस सीताजीको रावण ले गया था वह तो छाया-सीता ही थी । असली सीताजी तो श्रीरामजीकी अग्निमें छिप गयी थी । इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि जिस शान्तिको अहंकाररूपी रावण ले जाकर नश्वर आनन्दरूपी लंकामें रखकर देखता है, वह तो शान्तिकी छाया या आभासमात्र है । असली शान्ति तो आत्मारामरूपी श्रीरामकी ज्ञानरूपी अग्निमें ही छिपी रहती है । अहंकाररूपी रावणको वह जरासी भी नहीं मिल सकती । उठाकर ले गयी हुई उस छाया-सीताको भी जब लंका (अर्थात् नश्वर आनन्दवृत्ति) में विचाररूपी हनूमान्‌जी देखते हैं तो वह छाया-सीता (अर्थात् शांतिकी छाया या आभास) भी बाहरकी वस्तुओंमें न होकर लंकामें भी (अर्थात् नश्वर आनन्दमें भी) अशोकवनमें अर्थात् भीतरके मूलस्वरूप-रूपी सच्चिदानन्दके वन या भण्डारमें ही दिखायी पड़ती है भगवती श्रुति भी कहती है—

तस्यैव मात्रामुपजीवन्ति ।

इसप्रकार विचाररूपी हनूमान्‌जीने शान्त्याभासरूपी छाया-सीताके रहनेके स्थानका पता लगाकर आत्मा-रामरूपी श्रीरामको बतलाया । अतएव हनूमान्‌जीका यह प्रसिद्ध स्तोत्र आध्यात्मिक दृष्टिसे भी ठीक है कि-

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लंकाभयङ्करम् ॥

अञ्जना = बुद्धि (अनक्ति, अज्यते चेति कर्तरि कर्मणि च ल्युट्) । बुद्धिका पुत्र तथा बुद्धिको आनन्द देनेवाला तो विचार ही होता है । जो काम अविचारसे किये जाते हैं, उनसे बुद्धिको उस समय कितना भी आनन्द हो, परन्तु पीछे तो भयङ्कर पश्चात्तापका दुःख ही भोगना पड़ता है ।

वीरं अर्थात् (वि+ईर) प्रेरक । विचारसे ही यथार्थ हितके लिये प्रेरणा होती है । विचार ही वास्तवमें वीर होता है । अविचारसे यद्यपि तात्कालिक विकाररूपी वीरता होती है पर अन्ततक रहनेवाली यथार्थ वीरता नहीं होती।

जानकी अर्थात् (जायते इति जनः, जनश्चासौ कश्च अर्थात् आनन्दश्च जनकः) जन्य आनन्दसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि-

वृत्ति। अन्य आनन्दसे उत्पन्न हुई वृत्तिमें जो दुःख होता रहता है, उसका भी विचारसे ही नाश हो सकता है।

कपीश अर्थात्—(कं आनन्दं पिबन्तीति कपयः, अर्थात् दश इन्द्रियाणि मनश्च, तेषां ईशः) इन्द्रियोंको तथा मनको अपने वशमें रखनेवाला। यदि इनको वशमें न रक्खा जाय, तो विचार हो ही नहीं सकता, फिर तो विकारोंका ही राज्य हो जाता है। अथवा (कपिः आनन्दपायी तत्त्वतः परमेश्वरः स एव ईशो नियन्ता यस्य सः) केवल परमात्माका शासन माननेवाला विचार चाहिये, और किसी पदार्थके दबावमें आ जाय तो भी यथार्थ विचार नहीं हुआ।

अक्ष शब्दका एक अर्थ तो इन्द्रिय है। अतः 'अक्षहंता' शब्दका अर्थ कपीश शब्दके पहले बताये हुए अर्थमें ही आ गया है। 'अक्ष' शब्दका दूसरा अर्थ (द्यूत-क्रीडामें साधनरूपी अक्षोंसे लक्षणा करके) होता है संशयात्मक। अतः अक्षहन्ता याने संशय (और उसके साथ उपलक्षणविधया विकल्प और विपरीत भावना) का नाशक विचार तबतक पक्का नहीं हो सकता, जबतक संशयादिका मूलसे ही निर्मूल न हो जाय. बल्कि श्रीमद्भगवद्गीतामें तो श्रीभगवान्ने यहाँतक कहा है कि—

'संशयात्मा विनश्यति'

इसीलिये विचाररूपी हनूमान्जीको सबसे पहले अहंकाररूपी रावणके पुत्र संशय (विकल्प और विपरीत भावना) रूपी अक्षकुमारको मार डालना पड़ता है।

लङ्का यानी नश्वर आनन्दवाली चित्तवृत्ति। इसका तो विचारसे अवश्य ही नाश हो जाता है और शाश्वत (स्वरूपभूत) सच्चिदानन्दवाली बुद्धिवृत्तिमें पहुँचनेका यही साधन है। अतएव विचाररूपी हनूमान्जी नश्वर आनन्दवाली चित्तवृत्तिके भयङ्कर शत्रु होते हैं।

अब स्पष्ट हो गया कि उपर्युक्त लक्षणवाले विचारसे (जिसका नाम हनूमान्जी है) ही शान्तिका (जिसका नाम सीताजी है) पता लगाया जा सकता है। अन्य किसी साधन, उपाय या युक्तिसे नहीं। और उस विचारके लिये भी, जिससे शान्तिका पता लगाना हो, सर्वप्रथम रागद्वेषादि मनोमालिन्यसे रहित होना अर्थात् अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होना पड़ता है, क्योंकि रागद्वेषादिके साथ किये हुए विचारसे शान्तिका पता नहीं लग सकता। इसलिये हनूमान्जीको सबसे पहले समुद्र पार होना पड़ता है।

परन्तु यह अवस्था केवल विचार-दशाकी बात है, इसलिये हनूमान्जी अन्तरिक्षमें ही कूद पड़ते हैं, पक्के पुलसे नहीं जाते, परन्तु जब सीताजीका पता लगनेपर उसकी प्राप्तिके लिये जाना होता है, तब तो साधनरूपी पक्की सेतुसे ही जाना होता है। अर्थात् पहले मनोरूपी अन्तरिक्षसे ही विचाररूपी हनूमान्जी चलते हैं परन्तु जब शान्तिरूपी सीताजीका पता लग जाता है और उसकी प्राप्तिके लिये आत्मारामरूपी रामजीका जाना होता है तब साधनरूपी पक्की सेतु बाँधकर उससे ही जाते हैं, क्योंकि उक्त लक्षणवाले विचाररूपी हनूमान्जीसे शान्ति सीताजीका पता लगानेसे ही, आत्मारामरूपी रामजीका कार्य पूरा नहीं हो जाता, अर्थात् केवल इस सिद्धान्तके ज्ञान (Theorical knowledge) से ही,—कि, 'शान्तरूपी सीताजीका आभास भी अशोकवनमें रहा करता है' काम पूरा नहीं हो जाता। आत्मारामरूपी रामजीको स्वयं आकर, पक्की साधन-रूपी सेतुसे अज्ञानरूपी समुद्र पारकर काम-क्रोधादि परिवार समेत अहंकाररूपी रावणका वध करके, शान्तिरूपी सीताको प्राप्त करना पड़ता है।

श्रीरामायणकी कथामें इसी प्रकारसे अन्यान्य सब पदार्थोंके भी आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं (जैसे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमन्महाभारत आदिमें धृतराष्ट्र सञ्जय, द्रोण, भीष्म कृप, पाण्डु, कुन्ती. माद्री, कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल. सहदेव, द्रुपद द्रौपदी, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, श्रीकृष्ण, देवकी, वसुदेव, सुभद्रा, अभिमन्यु, अश्वत्थामा, जयद्रथ, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, द्वारका, विराट्, हरिद्वार, हृषिकेश, शङ्ख, चक्र आदि सब पदार्थोंके सुन्दर-सुन्दर आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं)। परन्तु विस्तार-भयसे उन सबका उल्लेख नहीं किया जाता। यहाँ जो बातें ऊपर बतायी हैं, ये तो केवल स्थालीपुलाकन्यायसे दिग्दर्शनमात्रके लिये हैं।

इसप्रकार सिद्ध हो गया कि आचार, व्यवहार, शूरता, प्रजापालन, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, आध्यात्मिक तत्त्वादि सभी दृष्टियोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हमलोगोंके लिये स्मरण-नामोच्चारणादिजन्य अनन्त पुण्य देनेके अतिरिक्त, अवश्य ही शिक्षणीय और बड़े-बड़े गहन-से-गहन लौकिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वोंसे भरी हुई है।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे श्रीरामायण और श्रीरामचन्द्रजीके साथ हमलोगोंका क्या सम्बन्ध होना चाहिये ।

श्रीमद्रामायणके साथ हमारा श्रद्धा भक्ति और नम्रतासे शिक्षा लेनेवालोंका ही सम्बन्ध होना चाहिये और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ तो यही सम्बन्ध होना चाहिये कि हम अपने हृदयको बिल्कुल खाली और शुद्ध करके, भगवान्‌को हृदय-सिंहासनपर बिठाकर श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और आत्मसमर्पणके भावसे उनकी सेवा करनेवाले बन जायँ।

इस सम्बन्धमें भगवती श्रीराधाजीका एक महान् उपाख्यान सर्वदा स्मरणीय है । यद्यपि श्रीराधाजी भगवान्‌की खूब प्रेमसे सेवा करती थीं तथापि अपने अहंकारमें एक दिन भगवान्‌की मुरलीसे पूछती हैं कि 'हे मुरली, तुमने जन्मान्तरोंमें ऐसा क्या बड़ा पुण्य किया था जिससे इस जन्ममें अचेतन वंशीरूपमें आकर श्रद्धा, भक्ति, प्रेम आदि न करती हुई भी, नित्य भगवान्‌के अधरामृत पीनेका सौभाग्य प्राप्त करती हो ।' मुरली जवाब देती है कि 'राधाजी ! मुझे तो पता ही नहीं कि जन्मान्तरमें मैं क्या थी, और क्या करती थी । हाँ इसी जन्मकी एक खास बात मेरे ध्यानमें है वह यह कि मेरे अन्दर तो कुछ है ही नहीं, भगवान् मुझको अपने मुखमें लगाकर अपनी मरजीके अनुसार जो स्वर या राग-रागिणी देते हैं वही मेरा स्वर, राग और मेरी रागिणी है, मेरी कोई भी स्वतन्त्र इच्छा या खयाल नहीं है । सम्भव है कि भगवान् इसी कारणसे मुझपर प्रसन्न हों ।' मुरलीके इन मार्मिक वचनोंसे श्रीराधाजी समझ जाती हैं और मुरलीकी भाँति अपने हृदयको बिल्कुल खाली तथा शुद्ध बनाकर, उसके भीतर सिंहासनपर भगवान्‌को विराजित कर देती हैं । उसीका यह परिणाम है कि आजतक भी दुनियाँमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके नामके साथ श्रीराधाजीका नाम इतने स्थायीरूपसे जुड़ा हुआ है जितना किसी भी अन्य (गोपी या रानी)का नहीं जुड़ा ।

यह तो हुआ भगवान्‌के लिये अपने हृदयको खाली और शुद्ध बनाकर सिंहासन बनानेका फल । अब और एक दृष्टान्तसे (जिसमें शब्दश्लेषसे चमत्कार है) पता लगाया जा सकता है कि भगवान्‌के लिये ऐसा (श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दासता और आत्मसमर्पणका) भाव न रखनेपर क्या फल मिलता है ? जब नलके हाथसे फेंके हुए पत्थर आदिसे समुद्र परसेतुके बन सकनेकी आशा होने लगती है और भगवान्‌को यह खबर मिलती है, तब भगवान् स्वयं आकर उस अद्भुत दृश्यको देख नलसे पूछते हैं कि 'हे नल ! तुमको यह महिमा कहाँसे मिली ?' वह कहता है कि 'भगवन्, आपहीके नामोच्चारणके प्रतापसे यह काम हो रहा है' तब भगवान्‌ने अपने ही हाथसे एक पत्थर समुद्रमें फेंका और जब वह डूबने लगा तो भगवान्‌ने फिर पूछा कि 'हे नल ! मेरे नामके प्रभावसे जो कार्य तुमसे हो सकता है और हो रहा है, वह मेरे हाथसे क्यों नहीं होता ?' तब नलने शब्द-श्लेषसे बड़ा ही चमत्कारी उत्तर दिया, कि 'हे भगवन् ! आप तो त्रिलोकीके नाथ हैं, पत्थरकी तो बात ही कौन-सी है साक्षात् देवेन्द्र भी अगर आपके हाथसे फेंक दिया जायगा तो वह तो अवश्य डूबेगा ही, जिसको आपने हाथसे फेंक दिया, वह कैसे बच सकता है ?'

> यस्तु रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति ।
> निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हति ।।

अर्थात् जो (भक्ति और प्रेमके भावसे) रामको नहीं देखता तथा जिसको (दयाके साथ) राम नहीं देखते वह तो दुनियामें और अपने हृदयमें भी घृणित ही होगा ।

इस उपाख्यानमें यद्यपि 'डूबने' शब्दपर किये हुए शब्द-श्लेषके चमत्कारसे लाभ उठाया गया है, तो भी तात्पर्य तो सिद्धान्तरूपसे ही निकलता है कि जो मनुष्य भगवान्‌को अपने हृदयसे फेंककर भगवान्‌के हाथमें (या वशमें अर्थात् सेवामें) नहीं रहता , वह तो भगवान्‌के हाथसे छूट जानेपर, भगवान्‌के हाथसे छोड़े हुए पत्थरकी भाँति (संसाररूपी या अज्ञानरूपी) महासमुद्रमें एकदम डूब ही जायगा, वह कभी बच नहीं सकता ।

अतएव हमलोगोंको चाहिये कि हम अपने हृदयरूपी सिंहासनको बिल्कुल खाली तथा शुद्ध करके, उसपर भगवान्‌को बिठा दें, फिर भगवान् जो केवल भक्तवत्सल ही नहीं हैं, बल्कि स्वयं अपनेको भक्त-भक्त और भक्तपराधीन बतलाते हैं, वह तो अपनी ही—

> 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।'
> 'न मे भक्तः प्रणश्यति'
> "तेषां योगक्षेमं वहाम्यहम्" इत्यादि

—प्रतिज्ञाओंको अवश्य पालेंगे और स्वयमेव ही हमारे पापों तथा तज्जन्य दुःखोंको दूर करके, हमारे योग-

क्षेमके भारको अपने कन्धोंपर वैसे ही उठा लेंगे जैसे उन्होंने प्रह्लाद, द्रौपदी, मीराबाई आदि अपने भक्तोंके भारको बारम्बार उठाया था।

हम सभी दुःखोंसे मुक्त होकर शान्ति और आनन्दमें रहना चाहते हैं परन्तु शान्तिरूपिणी सीताजी आत्माराम-रूपी रामको छोड़कर दूसरे किसीके साथ कभी नहीं रह सकती और—

'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'

—बिना शान्तिके आनन्द भी नहीं रह सकता, इसलिये हम संस्कृत और हिन्दीके एक अतिसरल शब्द-श्लेषसे लाभ उठाते हुए, इस लेखका उपसंहार करते हैं कि 'हे कल्याण-पाठको और कल्याण-कांक्षी सज्जनो, यदि तुम आराम चाहते हो, तो मनसे, वाणीसे और अपने कामसे खूब जोरसे कहो 'आ राम!' अभी तो 'आ राम' 'जा राम' कहते रहते हो, अर्थात् अपने हृदयके भीतर रामके लिये स्थान नहीं देते हो तो राम कैसे आ सकता है? अर्थात् 'आराम' कैसे हो सकता है?

अतएव अगर चाहते हो आराम, तो मनसे चाहो 'आ राम', वाणीसे कहो 'आ राम' कामसे भी कहो 'आ राम' और फिर पाते रहो 'आराम'—

जय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की।

तीर्त्वा मोहमहार्णवं स्थिरनिजानन्देच्छया रावणं
हत्वा काममुखासुरव्रजवृताहंकारलंकाधिपम्।
भूयः प्राप्य विचाररूपहनुमत्पूर्वेक्षितां प्रेयसीं
सीतां शान्तिनिजाकृतिं विजयते ह्यात्माभिरामो हरिः॥

रामोपदिष्ट-भक्ति

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यमे।
रामचन्द्रमहं वन्दे सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

यद्यपि अयोध्यावासी प्रभुके पार्षद नित्य मुक्त और सदा शुद्ध हैं, तो भी प्रकृति-मण्डलमें रहनेसे कदाचित् विषयोंका किञ्चित् वायु लग गया हो, तो उसको मिटानेके लिये अथवा अयोध्या-वासियोंके व्याजसे संसारके जीवोंका मुख्य करके कलियुगी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये एक बार श्रीरघुनाथजीने सब पुरवासियोंको बुलाया। भगवान्‌की आज्ञा सुनकर गुरु वशिष्ठजी, अन्यान्य मुनिजन और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लोग राज-सभामें आये एवं यथोचित मस्तक नवा, आशीष दे प्रभु-आज्ञा पा गुरु वशिष्ठजी तथा अनेक मुनि और ब्राह्मण तथा अन्य उत्तम वर्णोंके जितने सज्जन थे वे सब सभामें भगवान्‌के समीप बैठे और अन्य सब लोग बाहर बैठे, तब भक्तोंके जन्म-मरणादि भव-दुःखोंको मिटाने-वाले श्रीरघुनाथजी इसप्रकार कहने लगे—

'हे पुरवासियो! आप सब मेरी बात सुनिये, यह सबके हितकी वाणी है, इसलिये सुनकर अङ्गीकार कीजिये, क्योंकि मैं अपने किसी स्वार्थके लिये नहीं कहूँगा, सबके कल्याणके हेतु परमार्थके वचन ही कहूँगा, इन वचनोंमें किसी प्रकारकी अनीति भी नहीं होगी, सब लोकमर्यादा-सहित वेदप्रमाणित सन्तोंके मतानुसार कहूँगा, यह बात मैं ऐश्वर्य दिखलानेके लिये रजोगुण धारण करके नहीं कहूँगा, किन्तु सतोगुणसहित शान्तचित्त होकर कहूँगा, इसलिये चित्त लगाकर सुनिये। यदि मेरे वचन आपको भावें—अच्छे लगें तो उनका आचरण कीजिये, मेरे कथनानुसार चलिये।'

वचन तीन प्रकारके होते हैं, एक प्रभुसम्मित, जैसे—राजालोग प्रजापर शासन करते हैं, दूसरे सुहृद्-सम्मित, जैसे—मित्रसे मित्र मन मिलाकर कहता है और तीसरे कान्तासम्मित, जैसे—स्त्री नम्रतासहित पतिसे वार्तालाप करती है। यहाँपर भगवान्‌ने प्रथम मित्रके समान सबको समझा कर प्रिय वचन कहे। अब प्रभु-सम्मित कहते हैं—

'हे पुरवासियो! मेरा सेवक वही है और मेरा प्रियतम भी वही है, जो मेरा अनुशासन मानता है अर्थात् वेद, वेदान्त आदि शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण आदिमें जितनी श्रीमुखभाषित आज्ञाएँ हैं, उनको मानकर, उन दे

पार्वतीकी तपस्या ।

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरउँ संभु न तु रहौं कुआँरी ॥
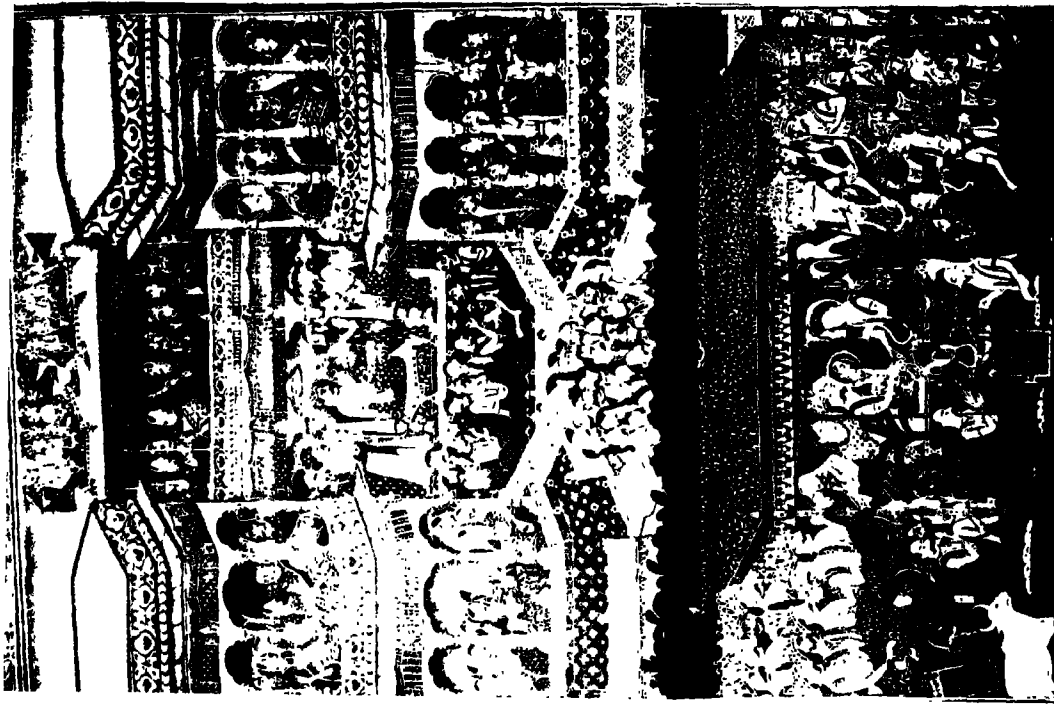
शिव-विवाह ।

गहि गिरीस कुस कन्या-पानी। सिवहि समरपी जानि भवानी ॥

कपट मुनि और राजा प्रतापभानु ।

जनक का रामदर्शन ।

अनुसार आचरण करता है, वही मेरा प्रियतम सेवक है, मैं उसीकी सर्वप्रकारसे रक्षा करता हूँ और जो मेरी आज्ञासे प्रतिकूल चलते हैं, वे अपनी करतूतका वैसा ही फल भी भोगते हैं, इसलिये यदि तुम मेरी आज्ञाके अनुसार चलोगे, तब तो मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगा, और यदि न मानोगे, तो अपने कियेके अनुसार सुख-दुःख भोगोगे, उसमें मेरा कुछ दोष नहीं।'

तदनन्तर भगवान् कान्तासम्मित वचन कहते हैं— 'भाइयो! यदि मैं कोई अन्याय वचन कहूँ, मेरे जिस वचनमें भावधर्मनीति, वेद-प्रमाण, साधुमत इत्यादि सबकी सम्मति न मिले, ऐसे वचनको सुन भय छोड़कर मुझे रोक देना, अर्थात् राजाज्ञा-भंगका डर मत मानना, क्योंकि सत्पुरुषोंकी सभामें सत्पुरुषके लिये असत् कहना उचित नहीं है यही नीतिशास्त्रका मत है।

'भाइयो! विचार करो! यह मनुष्य-शरीर बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है। जब जीवके अनेक जन्मोंका पुण्य उदय होता है, तब वह मनुष्य-शरीर पाता है। यह शरीर सुर-दुर्लभ है, अर्थात् देवताओंको भी मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति दुर्घट है। यह बात छिपी नहीं है। वेद, शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण, रहस्य, नाटकादि सभी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है कि मनुष्य-शरीर मुक्तिका द्वार है।

'देखो! यह मनुष्य-शरीर सब साधनोंका धाम है। इस शरीरमें सभी साधन हो सकते हैं-प्रथम कर्मके साधन-यज्ञ, होम, पूजा, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि; दूसरे ज्ञानके साधन-विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और तत्त्व-पदार्थ शोधन; तीसरे योगके साधन-यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि एवं चौथे भक्तिके साधन-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन हैं। इसप्रकार जितने साधन हैं वे सब मनुष्यदेहसे स्वाभाविक ही हो सकते हैं, इसलिये यह देह सब साधनोंका घर है, सब साधन इसी देहमें रहते हैं-अन्य देहोंमें नहीं रहते। पशु, पक्षी, कीट, पतंगोंमें तो साधन करनेका ज्ञान ही नहीं है, देवयोनिमें ज्ञान तो है परन्तु वे ऐश्वर्य-सुख-भोगमें भूले होनेके कारण साधन कर नहीं सकते, क्योंकि अमरलोकमें होनेसे वे जन्म-मरण और गर्भवासका भय नहीं मानते। मनुष्य मृत्युलोकमें होनेसे जन्म, मरण, गर्भवास, नरक, चौरासी आदिका भय मानते हैं। मनुष्योंमें ऐश्वर्य भी अचल नहीं है, इसलिये वे विषय-आशा, लौकिक-सुख त्यागकर मुक्ति-मार्गपर आरूढ हो जाते हैं। इसप्रकार मनुष्य-शरीर मोक्षका द्वार है, क्योंकि इस शरीरमें मुक्ति प्राप्त होना सुगम है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो परलोक नहीं सुधारते, मुक्तिमार्गमें आरूढ नहीं होते और विषय-भोगके वश हुए, इन्द्रिय-सुखोंके साधनमें लगे रहकर अनेक कुकर्म करते हैं, वे अनेक दुःख भोगते हैं। काम-वश-पर-स्त्री-हरण, क्रोध-वश दूसरोंकी हिंसा, लोभ-वश चोरी, ठगी, पर-धन-हरण, ईर्षा-वश पराया अपवाद करना, इत्यादि कुकर्म करनेमें तो नहीं डरते हैं परन्तु जब उन्हीं कर्मोंके फलरूप अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं, तब शिर पीट-पीटकर पछताते हैं। आग लगना, चोरी होना, राजाद्वारा लूटा जाना, क्षय, श्वास, पीनस, वाई, बवासीर, कुष्ठ आदि किसी कराल रोगका होना, बन्धु, स्त्री, पुत्र आदिका वियोग होना, बँधुआ होना, दरिद्र होना इत्यादि अनेक प्रकारके कष्ट जब पाते हैं, तब पछताते हैं और काल कर्म एवं ईश्वरको वृथा ही दोष देते हैं।'

'यहाँ शंका होती है कि जब जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईश्वरके अधीन है, तो वृथा दोष कैसे हुआ? इसका समाधान सुनिये—जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईश्वरके अधीन है-यह ठीक है। अवश्य ही ईश्वर सबपर प्रधान है, परन्तु जीव भी तो ईश्वरका ही अंश है, वह सब प्रकारसे चैतन्य है क्योंकि वह अपना गुण, स्वभाव सब जानता है और वेद-पुराणोंद्वारा काल-कर्मको भी जानता है क्योंकि वेद उसी ईश्वरकी आज्ञा है। वेदका सिद्धान्त स्मृतिद्वारा आचार्य सुनाते हैं। जैसे कि सरोजसुन्दर धर्म-शास्त्रमें कहा है-'आहार, मैथुन, निद्रा, अध्ययन, दान देना और लेना ये सब सन्ध्याकालमें वर्जित हैं। 'काँसेका पात्र, मसूर, चने, कोदों, शाक, शहद, पराया अन्न, दो बारका भोजन और मैथुन आदि एकादशी, विदग्धा तिथि और दशमीको वर्जित हैं।' इस प्रकार कालका प्रभाव बताया है। स्वाभाविक वर्जित कर्म इसप्रकार बताये हैं कि 'जो अपनी सम्बन्धिनी नारीको कष्ट देता है, वह दिन-प्रति-दिन ब्रह्म-वधादि पापोंको प्राप्त होता है।' और भी कहा है कि 'तेल मलनेके बाद, मृतकके साथ जानेके बाद, और बनवानेके बाद और मैथुनके बाद मनुष्य जबतक स्नानसे शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक वह चाण्डालके समान

है।' इत्यादि कर्म श्रुति-स्मृतिद्वारा प्रसिद्ध हैं। चोरी, हिंसा, परस्त्रीगमन, धनहरण, परनिन्दा अपवादादि महापापोंको तो सभी जानते हैं। इसप्रकार जान-बूझकर भी लोग न पुण्यकाल मानते हैं, न तीर्थादि पुण्यदेश मानते हैं और न ईश्वरके दण्डका भय करते हैं। सब कालमें, सर्वत्र हर्षसहित महापाप तो करते हैं परन्तु जब उनका फल भोगना पड़ता है, तब कालको मिथ्या दोष लगाते हैं कि हमारे लिये आजकल बड़े नष्ट दिन हैं या हमारे दिनोंका फल है इसीलिये हमें ये दुःखदायी भोग प्राप्त हुए हैं। कर्मोंको भी मिथ्या दोष लगाते हैं और कहते हैं कि हमको कर्म दुःख देते हैं। इसीप्रकार ईश्वरको मिथ्या दोष देते हैं कि ईश्वर हमको दुःख देता है। हमारे पड़ोसीको तो खूब धन दे रक्खा है, वह दिन-रात दूध-मलाई खाता है और हमको रूखी-रोटी भी समयपर नहीं मिलती। सारांश यह कि काल, कर्म और ईश्वरका डर तो मानते नहीं, दुष्ट-स्वभाव-वश देह-सुखके लिये, स्वार्थ-हेतु अनेक कुकर्म करते हैं, परन्तु फलभोगके समय अपना दोष काल-कर्म अथवा ईश्वरके शिर मँढ़ते हैं। इसलिये हे पुरवासियो! देखो, जैसा तुम्हारा शरीर है, वैसा ही हमारा भी है। जैसे हमने विषय-भोग त्याग रक्खे हैं, वैसे तुमको भी त्याग देने चाहिये। विषयोंमें आसक्त नहीं होना चाहिये।'

'हे भाइयो! यह मनुष्य-शरीर विषय-भोगके लिये नहीं प्राप्त हुआ है, इसलिये इन्द्रियोंके स्वाद आदि देह-सुखके साधनोंमें मनको आसक्त करना उचित नहीं है, क्योंकि मृत्युलोकमें सुख तो थोड़े हैं पर शोक, वियोग, रोग, कलह, भय विशेष हैं। जन्मभर यहाँ बने रहनेका निश्चय भी नहीं है। क्षणभङ्गुर शरीर है, दम आवेगा या नहीं, इसकी भी खबर नहीं है, फिर यहाँ सुख कैसा? जो लोग यज्ञ, तपस्या, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, व्रत, दानादि सकाम कर्म करते हैं वे उनका फल सुख भोगनेके लिये स्वर्गलोकको जाते हैं। परन्तु स्वर्गमें भी सुख थोड़ा ही है, जबतक सुकृतरूप पूँजी रहती है, तबतक तो सुख भोगते हैं, पर पुण्य क्षीण होते ही मृत्युलोकमें गिरा दिये जाते हैं, इसलिये स्वर्ग भी दुःखदायी है। यहाँ आकर फिर इन्द्रिय-सुख-साधनमें लगे, तो चौरासीको चले जाते हैं। जैसा कि गीतामें कहा है 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति' और सत्योपाख्यानमें कहा है—

'स्वर्गवासस्तु तैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतत्यधः।'

'हे भाइयो! मनुष्य-शरीर पानेका फल यह है कि इन्द्रियोंके विषय त्यागकर सत्संगमें मन लगावे, सन्तोंकी कृपा और सत्सङ्गके प्रभावसे जब मन शुद्ध हो जाय, तब परलोकसाधनमें मन लगावे अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि भक्ति करे, इसप्रकार भक्तिके द्वारा भव-बन्धनसे छूटकर हरिसमीपतारूप मुक्तिपद प्राप्त करे! जो मूढ़ नर-शरीर पाकर मुक्तिपदके साधन त्याग इन्द्रियोंके विषय—देह-सुखके साधन—में लग जाते हैं, वे शठ सुधा यानी अमृतसे विष बदल लेते हैं अर्थात् भक्तिरूप अमृतके बदलेमें विषयरूप विष ले लेते हैं। विषय-संगसे कामना बढ़ती है, कामना-हानिसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है, मोहसे वेद-धर्म भूल जाते हैं, वेदधर्म भूल जानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जानेसे जीवका सर्वनाश हो जाता है यानी वह अधोगतिको प्राप्त हो जाता है।'

अब भगवान् अतिशयोक्ति रूपकालंकारसे केवल उपमानसे उपमेयका बोध कराते हैं—

'हे भाइयो! पारसमणि तो सब धनोंकी मूल है परन्तु गुआ यानी घोंघची किसी कामकी नहीं। जो लोग सब धनोंकी मूल पारसमणिको खोकर बदलेमें निकम्मी घोंघचीको उठा लेते हैं, वे मूढ़ हैं। पारसमणिके छू जानेसे कुधातु लोहा भी सुवर्ण हो जाता है। उससे रुपये-अशरफी, मणि-मुक्ता, धरणी-धाम, भूषण-वसन और भोजन-वाहनादि सभी कुछ हो सकते हैं। ऐसी पारसमणि किसी मूर्खको मिल गयी, उसको चाहिये था कि वह उसके गुण विचारता परन्तु उसने उसके गुणोंका विचार न कर उसे बदसूरत देखकर फेंक दिया। फिर उसे घोंघची मिली, सुहावनी सूरत देखकर मूर्खने उसको उठा लिया। घोंघची देखनेमात्रको ही सुहावनी होती है, वह किसी कामकी नहीं होती। उसमें जो देखनेको ललामी होती है, वह भी आधी होती है, आधा अंग तो श्याम होता है, भीतरसे वह सर्वथा कड़वी ही होती है। यहाँ पारसके स्थानपर हरिभक्ति है, जो कुधातुरूप पतित जीवोंको भी उत्तम हरि-सम्बन्धी बना देती है। यदि कोई दुराचारी भी मुझे अनन्यभावसे भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह सन्मार्गपर चल रहा है, इससे वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता (गीता)। हे पुरवासियो! भक्ति समता, सन्तोष,

विवेक, विराग, ज्ञान, विज्ञानादि सब गुणोंको उत्पन्न करनेवाली है। वासुदेवकी भगवती भक्ति मनुष्योंमें ज्ञान, वैराग्य, वीर्य उत्पन्न करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसी परम उपयोगी भक्तिको त्यागकर मूढ मनुष्य गुञ्जारूप विषयोंको ग्रहण कर लेते हैं, जो देखनेमात्रको सुख देनेवाले और सुहावने लगते हैं। वह सुख भी निरा सुख ही नहीं होता। जितना सुख होता है, उतना ही उसमें दुःख भी होता है और विचारनेसे तो विषय सर्वथा दुःखरूप ही हैं। इसप्रकार भक्तिरूप पारसको त्यागकर विषयरूप गुञ्जा लेनेवालोंको कौन भला कहेगा? कोई भी नहीं! वेद, पुराण, सन्त, महात्मा सभी उसकी निन्दा करेंगे!

'हे भाइयो! मनुष्य-शरीर पाकर जो भक्तिका त्याग कर विषयोंमें आसक्त होते हैं, उनकी दुर्दशाका वर्णन सुनिये!

खानि–'आकर यानी खानि चार हैं, प्रथम जरायुज जो झिल्लीमें बँधे उत्पन्न होते हैं, दूसरे अण्डज जो अण्डेसे उत्पन्न होते हैं, तीसरे उद्भिज जो भूमिको फोड़कर उत्पन्न होते हैं और चौथे स्वेदज जो पसीनेसे उत्पन्न होते हैं। मनुष्यादि जरायुज हैं, पक्षी आदि अण्डज हैं, वृक्षलता आदि उद्भिज हैं और मच्छर, खटमलादि स्वेदज हैं, इनकी चौरासी लाख योनियाँ हैं। उनमें मीनादि जलचर योनि नौ लाख हैं, वृक्षादि स्थावर योनि बीस लाख हैं, कृमि कीटादि योनि ग्यारह लाख हैं, पक्षी-योनि दश लाख हैं, पशु योनि तीस लाख हैं और मनुष्य-योनि चार लाख हैं।

'भाइयो! यह जीव ईश्वरका अंश होनेके कारण अविनाशी है परन्तु हरिभक्ति त्यागकर विषयोंके वश होनेसे चार खानि और चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमता रहता है अर्थात् जीवरूप पक्षी शुभाशुभ कर्मरूप पखोंके बलसे अनेक योनियोंमें उड़ा-उड़ा फिरता है। आदिकल्पमें इन जीवोंमें जो सतोगुणी होते हैं, वे मुनि होते हैं, रजोगुणी होते हैं, वे देवता होते हैं, और जो तमोगुणी होते हैं, वे दैत्य होते हैं। यह सत्ययुगका प्रभव है। पश्चात् ज्यों-ज्यों काल बदलता जाता है, त्यों-त्यों गुण-स्वभाव बदलता रहता है। जीव ज्यों ज्यों असत् कर्म करते हैं, त्यों-ही-त्यों नीच योनियोंमें जन्मते जाते हैं।

भ्रमणका आधार–'पूर्वमें जब जीव विषयको ग्रहण करता है, तब उसे मायाकी प्रेरणासे काल कर्म, स्वभाव और गुण घेर लेते हैं। उनके बन्धनमें पड़कर जीव सब योनियोंमें भ्रमता फिरता है अर्थात् गुणके अनुसार जीवका स्वभाव होता है, फिर काल और कुसंग पाकर स्वभाव बदल जाता है इसलिये जीव असत् कर्म करके नीच योनिमें जाता है। जैसे कि सतोगुणके प्रभावसे प्रथम मुनि हुआ, फिर काल पाकर तमोगुणी स्वभाव हो गया, तो असत् कर्म करके नीच ब्राह्मण हुआ। फिर असत् कर्म करके क्षत्रिय हो गया, वैश्य हो गया, शूद्र हो गया, फिर म्लेच्छ हुआ, चाण्डाल हुआ, बड़ा पशु हुआ, छोटा पशु हुआ, पक्षी, कीट जलचर हो गया, फिर अन्तमें वृक्ष तृण पर्यन्त हो गया। फिर कभी काल पाकर नर हो गया। इसप्रकार सब योनियोंमें भ्रमता है और उनमें जन्मता मरता, दुःसह दुःख और जरा व्याधि वियोगादि अनेक कष्ट पाता है। यही जीवोंकी स्वाभाविक गति है।

ईश्वरका प्रभाव–'ईश्वर जीवका परम सुहृद-बिना हेतु स्नेही है यानी वह जीवोंपर स्वार्थरहित स्नेह करता है, वह ईश्वरका दयारूप गुण है, कहा है—

> रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः।
> इति दृष्टानुसन्धानं कृपा सा परमेश्वरी॥
> (भगवद्गुण-दर्पण)

अर्थात् भूतमात्रके पालन करनेको मैं ही समर्थ हूँ, इस प्रकारका दृढ अनुसन्धान रखता हूँ, इसप्रकारका अनुसन्धान रखनेसे ईश्वर बिना हेतु स्नेही है। भागवतमें दूसरा गुण करुणा कहा है—

> परदुःखानुसन्धानाद्विह्वली भवनं विभो।
> कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्तानां भीतितारकः॥

अर्थात् जीवोंका दुःख देखकर स्वयं भी दुखी होकर, उनके दुःख मिटानेके लिये उपाय करनेका नाम करुणा है। बिना हेतु स्नेही ईश्वर इस करुणाके वश किसी भी जीवका दुःख देखकर, उसे दुःखसे छुड़ानेके लिये करुणा करके कभी मनुष्य देह दे देता है अर्थात् चौरासीका भोग पूरा होनेसे पूर्व बीचमें ही साधनका धाम, मुक्तिका द्वार जानकर मनुष्य शरीर दे देता है। क्योंकि इस शरीरमें सब वस्तुओंका ज्ञान हो सकता है।

मनुष्य शरीरका माहात्म्य—यह शरीर जीवोंको भवसागरसे पार ले जानेके लिये बेड़ा है। जब साखून, सीसम आदिके लट्ठोंको नदीद्वारा देशान्तरमें ले जाना होता है, तो मल्लाह पचीस-तीस लट्ठोंको मिला उनपर पाँच बेंडी लकड़ी रख सबको रस्सोंसे एकमें ही बाँध देते हैं और उसके ऊपर बाँसका ठाठ भर देते हैं। इसको बेड़ा कहते हैं, यह बेड़ा किसी भी विक्षसे कभी नहीं डूबता, इसी प्रकार नर-शरीरमें

तीर्थ, व्रत, कथा, श्रवण, कीर्तन, पूजा, पाठ, जप और दानादि सत्कर्म कहे हैं। ये बुद्धि, विचार, धैर्य, दया और धर्मादि रस्सों-से बँधे हुए हैं। इनके ऊपर सुख-दुःखका ज्ञानरूप ठाठ बँधा हुआ है, इसप्रकार नर-शरीर संसाररूप सागरमें बेड़ा है, इसपर बैठकर मनोरथरूप जलके वेगमें पड़ा हुआ जीव बहा जाता है। यदि जीव किनारेपर आना चाहता है और श्रद्धारूप बरदवान चढ़ा लेता है तो बहते हुए बेड़ेको फेर देनेके लिये मेरा अनुग्रह यानी जीवोंपर सदा दयारूप जो सम्मुख पवन बहती है वह उसे किनारे लगा देती है। अर्थात् नर-तनुमें यदि जीव मेरी किञ्चित् भी श्रद्धा करे तो उसे मेरा अनुग्रह सहज ही भवसे पार कर देता है।

'भाइयो! यह मनुष्य-शरीररूप बेड़ा डूबने योग्य नहीं है, यह सुदृढ़ नाव है, इसमें जब मनुष्य श्रद्धारूप बरदवान लगाता है, तब उसको मेरा अनुग्रहरूप वायु ढकेलता है और सद्गुरुरूप कर्णधार—खेनेवाला उसको घाटपर लगा देता है। इन सब सामग्रियोंका प्राप्त होना जीवोंके लिये दुर्लभ है—ये बड़े परिश्रमसे प्राप्त होती हैं। इन सब सामग्रियोंके प्राप्त होनेपर तर आना कुछ कठिन नहीं है। पर ऐसी सामग्रियों-को पाकर भी जो निर्बुद्धि मनुष्य भवसागरसे नहीं तरते और विषयोंमें आसक्त होकर फिर भवसागरमें ही चले जाते हैं वे कृतनिन्दक हैं अर्थात् यदि कोई उनके साथ भलाई करता है, उसका आभार मानना तो अलग रहा, उलटी उसीकी निन्दा करते हैं। जिस निर्हेतु स्नेही ईश्वरने करुणा करके नर-शरीर दिया है और सदा दया रखता है, उसका स्नेहसहित नाम तो भूलकर भी नहीं लेते और जब अपने किये हुए पापोंका फल दुःख भोगते हैं तो उसको गालियाँ देते हैं। वे ऐसे कृतघ्न हैं। जैसे महावनमें एक चिंगारी लगा देनेसे दावाग्निकी सीमा नहीं रहती कि कहाँ तक बढ़ जायगी, वैसे ही कृतघ्नताके थोड़े ही कर्मसे असंख्य पाप बढ़ जाते हैं। एक दृष्टान्त सुनिये—

कृतघ्नीकी कथा

एक इतिहास है कि कोई कुटुम्बी दरिद्री विप्र क्षुधा-निवारणार्थ महावनको गया, वहाँ एक पक्षीने उसकी व्यवस्था पूछी तब उसने धनकी भूख बतायी। पक्षी उसे वास देकर और भोजन कराकर बोला कि उत्तर वनमें एक दैत्य मेरा मित्र है, मैं उसके पास प्रतिदिन जाता हूँ, तू वहाँ जा। मेरा नाम लेनेसे वह तुझे बहुत-सा धन देगा। ब्राह्मणने जाकर दैत्यसे सब हाल कहा, दैत्यने धन देकर ब्राह्मणको विदा कर दिया। जब ब्राह्मण लौटकर महावनमें आया तो मार्गके भोजनके लिये उसी पक्षीको मारकर बाँध ले चला। दैत्यने यह जानकर उसे पकड़वा मँगाया और दूसरे दैत्योंसे कहा कि इसको खा जाओ, दैत्योंने कहा कि इस कृतघ्नको हम नहीं खायँगे। तब दैत्यने उसे मरवाकर डलवा दिया और गीधोंसे कहा कि इसको खा जाओ। गीधोंने भी कहा कि इस कृतघ्नका मांस हम कभी नहीं खायँगे। तदनन्तर ब्रह्मादि देवताओंने वहाँ आकर पक्षीको परोपकारी जानकर उसे जिला दिया। तब पक्षी बोला कि 'महाराज! इस ब्राह्मणके लड़के-बाले भूखे मरते होंगे, इसको भी जिला दीजिये।' इसप्रकार आग्रह करके पक्षीने ब्राह्मणको भी जिलवा दिया और धन दिलाकर विदा किया। पश्चात् जब पक्षीने शरीर त्यागा तो वह हरि-लोकको गया और कृतघ्नी विप्र मरनेके बाद यमपुरमें जाकर रौरव नरकमें पड़ा। यह तो लौकिक कृतघ्नताकी गति है, जो ईश्वरसे कृतघ्नता करते हैं, उनकी तो न मालूम क्या दशा होगी? जिसमें सुख-दुःख, बन्ध-मोक्ष आदि सब वस्तुओंका ज्ञान होता है ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर मुक्तिमार्गका त्याग जो विषयोंके वश हो भवसागरके मार्गपर चलेंगे, वे अवश्य 'आत्महा' गतिको प्राप्त होंगे। जो जहर खाकर, पानीमें डूबकर अथवा गला काटकर मरते हैं, और जो अपने हाथ ही अपने आत्माका घात करते हैं, उनको आत्महा कहते हैं। ऐसे आत्महा जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसी गतिको वे कृतघ्नी प्राप्त होंगे। कहा है—

> 'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
> प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
> मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
> पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥'

ईश्वरकी विमुखता तो लोक-परलोक दोनोंमें दुःखरूप है, यह बात ऊपर दिखाकर अब भगवान् सुखका मार्ग दिखाते हैं—

'हे पुरवासियो! यदि तुम परलोकमें शुभ गति और इस लोकमें यश, कीर्ति, आनन्दसहित जीवन-सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उनका सिद्धान्त हृदयमें धारण करो। हे भाइयो! जिसका प्रभाव वेद-पुराण गाते हैं, मेरी वह भक्ति सुखद मार्ग है अर्थात् भक्ति-पन्थ परिश्रम बिना ही सब प्रकारका सुख देनेवाला है। कर्म, योग, ज्ञानादिके साधनोंकी तरह इसमें कायाके अनेक प्रकारके

क्लेश, परिश्रम आदि करने नहीं पड़ते। भक्तिके श्रवण, कीर्तनादि सभी साधन सुखप्रद हैं।

ज्ञानकी कठिनाई—यद्यपि ज्ञान भी जीवका कल्याण करता है परन्तु ज्ञानमार्ग अगम है। विषयी, विमुख, म्लेच्छ-चाण्डालादि पतित जीवोंकी तो उसमें गति ही नहीं है, केवल सुकृती मुमुक्षुओंकी ही गति है। उनके लिये भी अनेक प्रत्यूह यानी विघ्न हैं, साधन तो कठिन हैं ही पर साथ ही स्वभावसे सहज चञ्चल मनको स्थिर रखनेका कोई ऐसा आधार भी नहीं है, जिसमें मन टिका रहे। साधनमें कठिनता और विघ्न इसप्रकार हैं—

प्रथम साधन है वैराग्य, अर्थात् ब्रह्मलोकतकके भोग-सुखोंको तुच्छ जानकर त्याग देना,यही कठिन है,इसमें लोभ अनेक विघ्न करता है। दूसरा साधन है विवेक अर्थात् देह-सम्बन्ध—लोकव्यवहार असार जानकर त्याग करे, आत्मसार जानकर ग्रहण करे, यह महाकठिन है, इसमें मोह-ममता अनेक विघ्न करते हैं। तीसरा साधन षट्सम्पत्ति है, इसमें प्रथम शम अर्थात् वासना-त्याग, द्वितीय दम अर्थात् इन्द्रियोंको विषयसे रोकना,तीसरी उपरामता अर्थात् विषयों-से मुख मोड़ लेना, चौथी तितिक्षा अर्थात् दुःख-सुख समान जानना, पाँचवीं श्रद्धा अर्थात् गुरु, वेदान्त-वाक्यमें विश्वास होना और छठी समाधान, मनकी स्थिरता है। ये सब अत्यन्त कठिन हैं, इनमें काम-क्रोध आदि अनेक विघ्न करते हैं। चौथा साधन है मुमुक्षुता अर्थात् मुक्तिकी उत्कट इच्छा होना, यह सबसे कठिन है क्योंकि सब साधनोंकी कठिनता और विघ्न इसी-के अन्तर्गत हैं। इसप्रकार ज्ञानका पन्थ अगम है। यद्यपि माया किसीसे जीती जानेवाली नहीं है, परन्तु जीव भी तो ईश्वर-का ही अंश है, इसलिये जीवमें भी महान् शक्ति है। अपनी उस शक्तिको सँभालकर यदि कोई मनको बरबस स्वाधीन कर ले, लोक-जनोंके संगको विघ्नोंका कारण जानकर उससे अलग हो, पहाड़, गुफा आदिमें असंग रहकर बहुत कष्ट करके वैराग्य शमादि साधन प्राप्त कर ले और आत्म-अनुभवको प्राप्त हो जाय, तो वह भी भक्तिसे हीन रूखा ज्ञानी मुझे प्रिय नहीं है अर्थात् मैं उसकी रक्षा नहीं करता, इसलिये उसका स्वतन्त्रता निबाहना दुर्घट है क्योंकि जीवमें एकरस ज्ञान नहीं रह सकता, इसलिये जीव स्वतन्त्र नहीं है।

भक्तिकी सुलभता—'हे पुरवासियो! समता, शान्ति, सन्तोष, वैराग्य, विवेक, ज्ञान-विज्ञानादि सकल गुणोंकी खानि मेरी भक्ति स्वतन्त्र है अर्थात् भक्तिके होनेपर ज्ञानादि गुण आप ही आ जाते हैं। भक्त-सन्तोंका संग करनेसे वे सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं, सत्संग बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, अनेक जन्मोंका पुण्य उदय हुए बिना सन्तोंका संग नहीं मिलता और सन्तोंका संग तुरन्त ही भवसे पार करनेवाला है, सत्संगसे भक्ति होती है और भक्ति भवसे पार करनेवाली है।

'हे पुरवासियो! मन, कर्म और वचनसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करना सबसे बड़ा पुण्य है। मनसे ब्राह्मणको बड़ा माने, कर्मसे साष्टांग प्रणाम करे, ऊँचे आसनपर बैठावे, षोडशोपचारसे पूजन करे, भोजन-दान दे और वचनसे स्तुति करे। वेदके वचन हैं कि गाँवमें (पुरोहित), तीर्थोंमें (पण्डा गंगापुत्र), यज्ञमें, कथापारायणमें, श्राद्धमें और मृतकर्ममें विप्र पूज्य हैं। पुण्यमात्रमें दानका पात्र ब्राह्मण ही है।'

इसप्रकार भगवान्‌ने विप्र-पद-पूजाको उत्तम पुण्य बताया, फिर आगे कहने लगे—

'हे पुरवासियो! जो पुरुष कपट त्यागकर भीतर-बाहरकी समान प्रीतिसे ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, उसपर सब मुनि और देवता प्रसन्न होते हैं। विप्रोंकी पूजामें देवता, मुनि, पितृ इत्यादि सभीको पूजाका भाग मिलता है। इस-लिये ब्राह्मणोंकी पूजा महापुण्य है, इस पुण्यके प्रभावसे सत्संग प्राप्त होता है और सत्संगके प्रभावसे भक्ति प्राप्त होती है।'

'हे भाइयो! एक गुप्त मत और भी है अर्थात् विप्र-पद-पूजारूप पुण्यमें तीन ही वर्णोंका अधिकार है, ब्राह्मणोंका विशेष अधिकार नहीं है, क्योंकि स्वजातीय होनेके कारण वे बराबरी, छोटाई-बड़ाईके मानापमानका खयाल रक्खेंगे, इस-लिये सभी भेद रक्खेंगे, ब्राह्मणमात्रको कोई बड़ा करके नहीं मानेगा, इस कारण यह पुण्यमत ब्राह्मणोंको भक्ति-दायक नहीं है, केवल तीन वर्णोंके लिये ही है परन्तु समाजमें चारों वर्ण हैं अतः वह गुप्त मत सभीसे कहता हूँ। अब-तक तीनों वर्णोंसे पुण्य-मत कहा, अब विशेषकरके ब्राह्मणोंके लिये कहता हूँ। यहाँ ब्राह्मणोंमें वशिष्ठादि एकसे एक महान् हैं माधुर्यमें मैं क्षत्रिय हूँ और ऐश्वर्यमें भी ब्रह्मण्यदेव कहलाता हूँ, इसलिये हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरकी भक्ति किये बिना कोई मेरी भक्ति नहीं पाता। अर्थात् जप, तप, यज्ञ, हवन, शौच, आचार आदि करनेसे भक्ति नहीं मिलती, केवल

भक्तजनोंकी—महात्माजनोंकी सेवा करनेपर उनकी कृपासे ही मिलती है। कहा है—

> 'रहूगणैतत् तपसा न याति
> न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
> न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
> र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥'
> (श्रीमद्भागवत ५।१२।१२)

शंकर भक्तोंमें सर्वोत्तम महात्मा हैं इसलिये प्रथम उनकी भक्ति करनी चाहिये, फिर वे मेरी भक्ति देते हैं।

'हे पुरजनो! ज्ञान-पथका परिश्रम मैंने तुम लोगोंको बताया। भक्तिमें कुछ भी परिश्रम नहीं है। केवल दो चार घड़ी सन्तोंके पास बैठकर सत्संग करनेमें क्या परिश्रम है? विप्र-सेवामें भी परिश्रम नहीं है, वे तो केवल मधुर भोजनमें प्रसन्न हो जाते हैं और शिवकी सेवामें तो कुछ भी परिश्रम नहीं है, वह तो बेलपत्र और धतूरके फूलोंसे प्रसन्न हो जाते हैं, ये सब कर्म सुगम हैं। साधनोंमें भी न अष्टांग योग करना है, न मन्त्र-जाप या पुरश्चरण करना है, न पञ्चाग्नि आदि तप करना है, न राजसूय अश्वमेधादि यज्ञ करना है और न चान्द्रायणादि व्रत ही करना है।'

'हे पुरवासियो! केवल इतनाही करना है कि सरल स्वभाव रहे, किसीसे न प्रीति करे, न वैर। सहज ही सबसे प्रिय वचन बोले, क्रोध, ईर्षा, परुषवचन, मान, मद, छल, कपट आदि कुटिलता मनमें न रक्खे। शुद्ध मनको मेरे सम्मुख करदे, जीविकार्थ जो व्यापार करे, उसमें जो कुछ लाभ हो, उसीमें सन्तोष रक्खे, लोभ न बढ़ावे।'

'हे भाइयो! मेरा भक्त कहलाकर मनुष्यकी आशा करना बड़ी भारी भूल है। जो अँचला, आबबन्द लगा, काठ-कमण्डलु लेकर, त्यागी साधुका वेष बना सेठ साहूकारादि धनियोंके द्वार-द्वारपर द्रव्यार्थ याचना करता है वह मेरा भक्त कहाँ है? वह तो मायाका ही दास है! अथवा मनुष्य मेरा दास कहाकर यज्ञ, पूजा-पाठ, हवनादि सकाम कर्म करके देवताओंसे फल माँगे, तो उसे मेरा विश्वास कहाँ है? मैं चराचरकी पालना करता हूँ, फिर मेरा दास होकर दूसरेसे क्यों याचना करे? कहा है—

> भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
> योऽसौ विश्वम्भरो देवो स भक्तान् किमुपेक्षति॥

और भी कहा है—

> यावदन्याश्रयस्तावत् भगवानपि तं जनम्।
> विलोकयेन्न कृपया ह्यनन्यजनवत्सलः॥

शिवसंहितामें कहा है—

> मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया।
> तस्मादनन्यसेवी सन् सर्वकामपराङ्मुखः॥
> जितेन्द्रियमनःकार्यो रामं ध्यायेदनन्यधीः।

'हे भाइयो! अधिक क्या कहूँ, उपर्युक्त आचरणसे मैं प्रसन्न होता हूँ। जो ऐसा करता है, उस सन्तके मैं अधीन हो जाता हूँ। वह जो कहता है, वही करता हूँ, हे भाइयो! किसीके हितकी हानि करना ही वैरका मूल विग्रह है और धरणी, धन, धाम, वाहन, भूषण, वसन, भोजन, पान, गन्ध, स्त्री, पुत्र, पौत्र, राज्य एवं स्वर्गादिकी चाहमें मन लगाना आश है तथा शत्रु, चोर, सर्प व्याघ्रादिका भय रखना त्रास है। जो भक्त या सन्त वैर, विग्रह, आश, त्रास आदि एक भी नहीं रखता और सबसे समभाव रखता है, उस सज्जनके लिये दशों दिशाएँ सुखमय हैं, वह जहाँ जाय वहीं आनन्द है।'

'हे भाइयो! जो लोग कर्ता बनकर किसी शुभाशुभ कार्यका आरम्भ नहीं करते यानी जो ऐसा नहीं मानते कि 'आज हम यह कर्म करेंगे' किन्तु ऐसा मानते हैं 'जैसी हरि-इच्छा होगी, वही कार्य उस कालमें होगा।' ऐसा समझकर आप कर्ता नहीं बनते और घर भी नहीं बनाते अर्थात् घरको अपना नहीं मानते, सिर्फ निर्वाहसे प्रयोजन रखते हैं। जाति, विद्या, धन, रूप, बड़ाई, इन सबमें मन ऊँचा (अभिमान) नहीं करते, नीचे ही बने रहते हैं। जीव-हिंसादि यावत् पापकर्मोंसे दूर रहते हैं। कोई कैसा भी क्रोध करे आप क्रोध नहीं करते। वेद, वेदान्त, शास्त्र, संहिता, स्मृति, उपनिषद्, काव्य, पुराणादिका सिद्धान्त जाननेमें प्रवीण होते हैं और विज्ञानी होते हैं यानी अपना स्वरूप, मायाका स्वरूप और ईश्वरका स्वरूप भलीभाँति जानते हैं, ऐसे सन्तोंका सदा संग करे क्योंकि इनकी संगतिसे ये गुण आप ही आ जाते हैं। सज्जनोंके साथ प्रीति करनेसे त्यागी-स्वभाव उत्पन्न होता है, त्यागी स्वभाव होनेसे मनुष्य इन्द्रिय-विषय-सुख, स्वर्ग-सुख, अपवर्ग मोक्ष—तिनकेके समान त्याग देता है, फिर साधन करनेका प्रयोजन ही नहीं है।'

'हे भाइयो! भक्ति-पक्षका आग्रह रक्खे, जैसे चन्द्रपर चकोर, जलपर मीन, स्वाती-बिन्दुपर चातक हठ रखते हैं,

इसी प्रकार इष्ट-उपासनाकी दृढ़ताके लिये अनन्यताव्रत धारण करे। जैसे उत्तम पतिव्रता अपने ही पतिको, पुरुष मानती है, दूसरे पुरुषको जानती ही नहीं, इसी प्रकार अपने इष्टके सिवा न दूसरे इष्टपर दृष्टि करे और न दूसरेका नाम ले। उपासनाकी दृढ़ताके लिये भक्तिपक्षका हठ रक्खे परन्तु शठता भी न करे अर्थात् किसी भी रूपकी निन्दा न्यूनता भी न करे और दुष्ट तर्कोंको जैसे कि 'जानकी रावणके यहाँ रहीं फिर राम उसे घर ले आये' इत्यादि तर्कें दुष्टोंकी हैं, इनको दूर बहा दे, कभी मनमें आने न दे।'

उपर्युक्त गुण तो साधन करनेपर भी दुर्घट हैं, फिर स्वाभाविक कैसे आ जायँगे? इसपर भगवान् कहते हैं—

'हे पुरवासियो! शक्ति, वीर्य, तेज, बल, कृपा, दया, वात्सल्यता, करुणा, सौहार्द, सौलभ्य, शील, उदारता आदि मेरे गुणोंका मन लगाकर श्रवण-कीर्तन करे, मेरे नाममें रत हो यानी प्रेमसे मेरा नाम स्मरण करे। इसके प्रभावसे ममता, मद, मोह आदि भाग जाते हैं, और मेरे रूपमें अनुराग होता है। मेरे रूपमें अनुराग होना ही पराभक्ति है। इस पराभक्तिके अपूर्व सुखको वही जानता है, जिसको वह प्राप्त है। उसके आनन्दमें देह-व्यवहारमें मन नहीं लगता, इसलिये जीव निर्विघ्न रहता है।'

भगवान्‌के अमृत-सम वचन सुनकर सब पुरवासियोंने प्रणाम किया और भगवान्‌के वचन शिर-माथेपर धारण कर लिये!

प्रिय पाठक! इस आपके बावले अनुचरकी इतनी प्रार्थना है कि आप भी भगवान्‌के वचन अंगीकार करके सर्वदाके लिये सुखी हो जाइये—

कु०—जैसे कैसे भी बने, कीजै भगवद्भक्ति।
तनसे मनसे बचनसे, जैसी होवे शक्ति॥
जैसी होवे शक्ति, भक्ति कर भवसे तरिये।
जन्म-मृत्युसे छूट, राज्य निष्कंटक करिये॥
भोला हरिसे प्यार, करें भगवज्जन ऐसे।
प्यासा जलसे करे, अन्नसे भूखा जैसे॥

श्रीराम-झाँकी

(लेखक—श्रीमत्याचरणजी 'मन्य' बी० ए०, विशारद)

(१)

उज्ज्वल मयङ्क रथ मञ्जुल सु-रङ्गमय
बाजी कल कल्पनाका जोड़ चढ़ जायँगे।
चुन चुन चारु हार हीरक बनाने हेतु
जगमग ज्योतियुत तारे तोड़ लायँगे॥
हंसवाहिनीके सङ्ग मानस तरङ्गणीपै
वीणाके सहस्र रसधार ही बहायँगे।
एक बार क्षितिजपै रास भी मचा दें हम
मनहर रामजूकी झाँकी यदि पायँगे॥

(२)

भूधरके शृङ्गपर गन्धवाहके समान
चलदल-नृत्य नित्य नूतन दिखायँगे।
पकड़ चपल छवि चञ्चला मनोहरकी
अम्बरके छोरपर केतु फहरायँगे॥
एक ही हुमक्कमें समस्त विश्व-मण्डलमें
प्रलयकी क्रान्ति-चिनगारी-सी समायँगे।
दिग वो दिगन्त को कँपादें क्षण क्षण हम
मनहर रामजूकी झाँकी यदि पायँगे॥

तुलसी-स्तवन

(लेखक—पं० श्रीरामसेवकजी त्रिपाठी, सम्पादक 'माधुरी')

(१)

आन आड़े वक्तमें बचाई तुलसीने खूब,
ह्रास हो रहा था हिन्दू-धर्मके सुमर्मका।
हो रहे थे प्रबल प्रहार यवनोंके रोज़,
नाम मिटना ही चाहता था वर्ण-धर्मका।
चोटी और चन्दन बना था जुर्म हिन्दुओंका,
'बेटी और रोटी था बनाम बोटी-धर्मका।'
'मानस'की ढाल दे स्व-बन्धुओंको तूने तब—
अमर बनाया, बतलाया ज्ञान कर्मका।

(२)

ऐसा मंत्र फूँका रामनामका विमुग्ध होके,
लाखों मृतकोंमें फिरसे ये जान आगई।
तेरी भक्ति-भावनासे, भव्य-भारतीकी मूर्ति-
अंकित हुई जो, वह दिलमें समागई।
भटक रहे थे भ्रमसे जो भव-सागरमें,
'मानस'की नौका पार उनको लगा गई।
सुयस-पताका स्वर्गमें भी फहराती आज,
अचल सुकीर्ति विश्वमें है तेरी छा गई।

श्रीरामायण-रहस्य

(श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)

प्रत्यक्ष आदि लौकिक प्रमाणोंसे अवेद्य अर्थोंके जाननेका एकमात्र उपाय वेद है, इसीलिये उसका नाम वेद पड़ा है।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष वा अनुमितिसे जो उपाय नहीं जाना जाता, ऐसे उपायको वेदसे जाननेके कारण उसका वेदत्व है।

कर्म-ब्रह्म-काण्डात्मक वेदके अर्थोंको समझनेके लिये स्मृतीतिहासपुराणोंकी सहायता लेना आवश्यक होता है। उनकी सहायताके विना वेदार्थ-निर्णय करना असम्भव है। अतएव कहा गया है कि—

प्रायेण पूर्वभागार्थो धर्मशास्त्रेण कथ्यते ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदान्तार्थः प्रकाश्यते ॥

अर्थात् वेदके पूर्वभागके अर्थ प्रायः धर्मशास्त्रोंमें वर्णित हैं, वेदान्तका अर्थ इतिहास-पुराणोंसे प्रकाशित होता है। अस्पष्टार्थक वेदोंके अर्थोंका स्पष्टीकरण स्मृतीतिहासपुराणोंमें किये जानेके कारण उनकी सहायता लेकर ही वेदार्थनिर्णय करना योग्य माना गया है। वेदोत्तरभागरूप वेदान्तके अर्थ निर्णय करनेमें तो इतिहासपुराणोंकी सहायता लेना अत्यावश्यक माना गया है, अन्यथा धोखा खानेकी सम्भावना रहती है। इसी आशयको लेकर बार्हस्पत्य स्मृतिमें कहा गया है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥

अर्थात् इतिहास-पुराणोंसे वेदोंका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि वेद अल्पश्रुत पुरुषसे डरता है कि कहीं यह हमारी वञ्चना न कर दे, अतिविस्तृत नाना-शाखा-विभक्त वेदका एककण्ठयसे अर्थ निर्णय करना बहुश्रुत नाना-शाखाभिज्ञ पुरुषका ही काम है, अल्पश्रुत पुरुष यह काम करने लगे तो सम्भव है कि भूलसे अर्थका अनर्थ कर दे। ऐसे पुरुष इतिहास-पुराणोंकी सहायतासे तदानुकूल्येन अर्थ निर्णय करें तो अल्पश्रुतताकी कमी पूरी हो जानेसे विपरीतार्थ करनेका भय नहीं रहता।

इतिहास और पुराण ये दोनों स्मृतियोंसे श्रेष्ठ हैं, इनके लिये छान्दोग्य उपनिषद्में 'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' इसप्रकार पञ्चम वेदके नामसे उल्लेख पाया जाता है। यह महत्त्व वेदमें सारभूत ब्रह्मकाण्डके उपबृंहण होनेके कारण है। इतिहास और पुराण इन दोनोंमेंसे इतिहास प्रबल है, क्योंकि पुराणोंके समान देवतापक्षपात इतिहासोंमें नहीं है। सात्त्विक, राजस, तामस-भेदसे भिन्न षट्कत्रय-विभक्त पुराण भिन्नदेवता-महत्त्व-प्रतिपादक माने जाते हैं। यथा—

अग्नेश्शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते ।
राजसेषु तु कल्पेषु माहात्म्यं ब्रह्मणो विदुः ॥
सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥
यस्मिन्कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा ।
तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ॥
(मत्स्यपुराण)

पुराण मुख्यतया पाँच विषयोंके प्रतिपादक होते हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पुराणोंके मुख्य विषय हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम् ॥

यह पुराणोंके लक्षण हैं। इतिहासोंमें इसप्रकार प्रतिपाद्य विषय सीमाबद्ध नहीं है। नानार्थप्रतिपादक इतिहास होते हैं। पुराणापेक्षया इतिहासका महत्त्व 'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' 'इतिहासपुराणाभ्याम्' इसप्रकारके नामनिर्देशोंसे ही मालूम हो जाता है। इतिहासपुराण यह समस्त पद है, इतिहास-शब्दकी अपेक्षा पुराण शब्दमें कम 'अच्' अक्षर हैं। अतएव 'अल्पाच्तरंपूर्वम्' इस व्याकरण-विधिके अनुसार कम अच्वाला पुराण शब्द इतिहास शब्दसे पहले आना चाहिये, परन्तु आया है पीछे, इसका कारण इतिहासका श्रेष्ठत्व है, क्योंकि 'अभ्यर्हितं पूर्वम्' इस दूसरी व्याकरण-विधिके अनुसार अधिक अच्वाला होनेपर भी अभ्यर्हित (श्रेष्ठ) का नाम पहले आ सकता है। इसी विधिके अनुसार 'इतिहासपुराणम्'

'सोहे राम-सियाकी जोरी' ।

Lakshmibilas Press Ltd., Cal.

इसप्रकार निर्देश हुआ है, इससे सिद्ध है कि पुराणकी अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठ है।

आर्योंके इतिहास-ग्रन्थ मुख्यतया दो माने गये हैं, एक श्रीरामायण और दूसरा महाभारत। इन दोनोंमेंसे श्रीरामायणका स्थान ऊँचा है। महर्षि वाल्मीकिका तपःप्रभाव लोकप्रसिद्ध है। वे आदिकवि कहलाते हैं, ब्रह्माजी तक उनको बहुमानकी दृष्टिसे देखते थे।

वाल्मीकये महर्षये सन्दिदेशासनं ततः॥

श्रीरामायणका यह श्लोक इसका प्रमाण है। ब्रह्माजी जब वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे थे, तो उन्होंने वाल्मीकिजीको आसन-दानसे सम्मानित किया था। उनको ब्रह्माजीका यह वरदान मिला था कि श्रीरामायणमें वे जो लिखेंगे, उसमेंसे एक बात भी मिथ्या न होगी।

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामायण सत्यार्थप्रतिपादक है।

श्रीरामायणका जितना अधिक लोकपरिग्रह है उतना दूसरे किसीका नहीं, यह बात आज भी अनुभवसे सिद्ध होती है। नाना-फल-सिद्धिके लिये लोग श्रीरामायणका पाठ किया करते हैं। विद्वानोंको इसके अनेक प्रकारके प्रयोग मालूम हैं। वक्तृ-वैलक्षण्य, अधिक लोक-परिग्रह, अवतार-वैलक्षण्य इन सबसे श्रीरामायणका महत्त्व अधिक है। श्रीरामायणका अवतरणक्रम भी विचित्र है। यह श्रीरामायणके प्रारम्भमें वर्णित है। माध्याह्निक-स्नानके लिये जाते हुए श्रीवाल्मीकिजीके सामने व्याधका बाणसे क्रौञ्च-पक्षीको मारना, क्रौञ्ची (स्त्री-पक्षी) का विलाप, इस दृश्यके देखनेसे करुणार्द्र-हृदय श्रीवाल्मीकिजीके मुखसे श्लोकका निकलना, थोड़ी ही देरके पश्चात् ब्रह्माजीका वाल्मीकिके आश्रममें आकर यह कहना कि 'मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।' ब्रह्माजीका श्रीरामायण रचनेकी आज्ञा वाल्मीकिजीको देना, भूत, भविष्यत् समस्त रामचरित-ज्ञान-लाभका वरदान, रामायणमें वर्णित किसी भी विषयके मिथ्या न होनेका वर, यह सब रामायणावतरणके पूर्व कालकी घटनाएँ हैं। इनके विचारसे श्रीरामायणका महत्त्व हृदयङ्गत हो जाता है।

श्रीरामायणका महत्त्व इस बातसे स्पष्ट होता है कि इसको वेदका रूपान्तर कहकर प्राचीनोंने प्रशंसा की है। जैसे महाभारतको पञ्चम वेद कहकर महत्त्व दिया जाता है, वैसे ही इसको वेदका रूपान्तर कहकर दिया जाता है। यथा—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना॥

अर्थात् वेदप्रतिपाद्य परम पुरुष जब दशरथके पुत्र हुए, तब वेद भी प्राचेतस-वाल्मीकिके द्वारा रामायणके रूपमें प्रकट हुआ।

श्रीरामायण केवल इतिहास ही नहीं है, किन्तु काव्य भी है, आदिकाव्य होनेका गौरव इसीको प्राप्त है—

आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।

यह आदिकाव्य इसलिये है कि इसके पूर्व वेदको छोड़कर संस्कृतकी व्यावहारिक भाषामें छन्दोबद्ध कोई ग्रन्थ ही नहीं था। महर्षि वाल्मीकिके मुखसे ही चतुर्मुख ब्रह्माजीकी इच्छासे संस्कृतका छन्दोबद्ध श्लोक सर्वप्रथम निकला था।

इसप्रकार श्रीरामायण इतिहास सुहृत्सम्मित होनेके साथ ही कान्तासम्मित भी होकर पाठकोंका महान् उपकार करता है। श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण सुहृत्‌के समान पाठकोंको 'रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्'-उपदेश देकर जो उपकार करता है, रमणीयार्थप्रतिपादक ध्वन्यलङ्कार-प्रचुर सुन्दर काव्यरूप होनेके कारण कान्ताके समान रञ्जन करता हुआ अभिमानी मनुष्योंको भी सन्मार्गमें लाकर महान् लाभ पहुँचाता है।

श्रीरामायणमें नाना छन्दके श्लोक नाना प्रकारके शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार स्थान-स्थानपर सन्निविष्ट हैं। वर्णनशैली अत्यन्त सुन्दर है। सुन्दरकाण्डमें इस बातका अनुभव हम लोगोंको मिलता है।

श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण वेदान्त-भागका उपबृंहणरूप है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। अतएव वेदान्तप्रतिपाद्य अर्थोंका इसमें वर्णन होना आवश्यक है। यह बात—'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।' इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है। यहाँ हम रामायणप्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछ मुख्य अर्थोंका वर्णन करेंगे।

वेदान्त अर्थात् वेदका ब्रह्मकाण्ड परतत्त्वका प्रतिपादक है, यह सबको मालूम है। लक्षणपुरस्सर परब्रह्मका निरूपण वेदान्त-भागमें है। श्रीरामायणमें वह परब्रह्म कौन-से देवता हैं? इसका निर्णय किया गया है।

शास्त्र-तात्पर्य-निर्णयके लिये सात लिङ्ग माने गये हैं, जिस अर्थमें वे सातों लिङ्ग अनुकूल हों वही शास्त्र-तात्पर्य विषयभूत माना जायगा।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

शास्त्र-तात्पर्य-निर्णयके लिये उसका प्रारम्भ और अन्त देखा जाता है। वहाँ जिस अर्थका वर्णन हो वह तात्पर्यार्थ माना जाता है। जिस शास्त्रमें वारंवार जिस अर्थका वर्णन आया हो, वही उसका तात्पर्यार्थ है। जो अर्थ अपूर्व हो, जिसका फल कहा गया हो, जिसकी प्रशंसा की गयी हो, जिसमें सर्व प्रकारकी उपपत्तियाँ हों, वही तात्पर्यार्थ है।

श्रीरामायणके आदिमें बालकाण्डके पन्द्रहवें सर्गमें श्रीविष्णु भगवान्के परत्वका वर्णन आया है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥

इस श्लोकमें महाद्युतिः 'पीतवासाः' और 'जगत्पतिः' **ये तीन शब्द परत्वके सूचक पड़े हुए हैं। परज्योतीरूपत्व, पीतवासस्त्व और जगत्पतित्व ये परमात्माके असाधारण धर्म हैं।**

तमब्रुवन्सुरास्सर्वे समभिष्टूय सन्नताः ।

इस श्लोकमें समस्त देववन्द्यत्व समस्त देवस्तुत्यत्व ये परमात्मधर्म कहे गये हैं।

अवध्यं दैवतैस्सर्वैस्समरे जहि रावणम् ॥

इस श्लोकमें सर्व देवाऽवध्य रावणवध-सामर्थ्य विष्णु भगवान्का बताया गया है।

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ।
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

सर्वदेवशरण्यत्वरूप परमात्मधर्म बताया गया है। इस-प्रकार उपक्रममें विष्णु-परत्वका वर्णन आया है।

उपसंहारमें उत्तर-रामायणके अन्तमें—

अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः परिवृतो देवैः ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥
आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ॥

इन श्लोकोंमें सर्व देवाभिगम्यत्व बताया गया है।

आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ।
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्वां स्वकान्तनुम् ॥
यामिच्छसि महाबाहो तान्तनुं प्रविश स्वकाम् ।
वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनम् ॥

ब्रह्माकी इस उक्तिमें श्रीरामरूप विष्णुका आकाश-शब्दवाच्य परमब्रह्ममें प्रवेश बताया गया है।

त्वं हि लोकगतिर्वीर न त्वां केचित्प्रजानते ।
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम् ॥
त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ॥

पितामहकी इस उक्तिमें सर्वलोकगतित्व, अज्ञेयत्व, अचिन्त्यत्व, महाभूतत्व ये परमात्मासाधारण धर्म रामरूपी विष्णुके बताये गये हैं। अतएव विष्णुका परत्व सिद्ध होता है।

युद्धकाण्डके अन्तमें भी—

ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च वरुणश्च परंतपः ॥
षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥
एते सर्वे समागम्य विमानैस्सूर्यसन्निभैः ।
आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥'

इन श्लोकोंमें राघव-विष्णुका सर्वदेवाभिगम्यत्व बताया गया है।

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।

देवताओंकी इस उक्तिमें सर्वलोक-कर्तृत्वरूप जगत्कारणत्व ब्रह्मासाधारण धर्म राघवरूपी विष्णुमें बताया गया है।

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्प्रभुः ।

इस श्लोकमें भी सर्वलोककर्तृत्व बताया गया है।

अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परंतप ।

इस श्लोकमें भी रामका परब्रह्म-लक्षण जगत्कारणत्व बताया गया है।

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।

इस चतुर्मुखकी उक्तिमें स्पष्ट ही रामको अक्षरब्रह्म बतलाया है।

'प्रभवश्चाव्ययश्च त्वम्' 'शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः' 'त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता' 'स्वयम्प्रभुः' 'पूर्वजः' न विदुः को भवानिति' 'दृश्यसे सर्वभूतेषु' 'त्वं धारयसि भूतानि' 'संस्कारास्तेऽभवन्वेदाः' 'न तदस्ति त्वया विना' 'जगत्सर्वं शरीरं ते' **इन वाक्योंमें परब्रह्मासाधारण धर्म-सर्व-जगत्कारणत्व, सर्वशरण्यत्व, स्वयम्प्रभुत्व, अज्ञेयत्व,**

सर्वभूतान्तर्यामित्व, सर्वधारकत्व, वेदसंस्कारकत्व, अनन्तत्व, सर्वशरीरकत्व आदि श्रीरामरूपी विष्णुमें बताये गये हैं।

इस बातका भी रामायणमें वारंवार अभ्यास यानी कथन है। बालकाण्डमें 'अधिकम्मेनिरे विष्णुं देवास्सर्षिगणास्तथा' इसमें सर्वाधिकत्व कहा गया है। अयोध्याकाण्डके-"अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुस्सनातनः' इस श्लोकमें सनातनत्व बताया गया है। आरण्यकाण्डके 'अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा' इस श्लोकमें अप्रमेय तेजोरूपत्व बताया गया है। किष्किन्धा काण्डके—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च।
अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिं क्षमावान्क्षतजोपमाक्षः॥

—इस श्लोकमें अप्रमेयत्व क्षतजोपमाक्षत्व ये दो असाधारण ब्रह्मलक्षण बताये गये हैं। सुन्दरकाण्डके—

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रस्सुरनायको वा
त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम्॥

—इस श्लोकमें सर्वसंहर्तृत्व मुखेन परब्रह्मत्व बताया गया है।

विष्णुका परत्व प्रमाणान्तरावेद्य होनेसे अपूर्वता भी है।

श्रीराम-भक्तोंको भगवत्सालोक्य मिलता है, यह बात रामायणके अन्तमें कही गयी है, अतएव फल भी है।

बाल-काण्डमें-'इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे' इत्यादिसे अर्थवाद कहा गया है। 'जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः। अधिकं मेनिरे विष्णुं देवास्सर्षिगणास्तथा।' इत्यादि ग्रन्थमें विचारपूर्वक विष्णुके श्रेष्ठत्वका निर्णय देवताओंने किया है, अतएव उपपत्ति भी वर्तमान है।

इसप्रकार षड्विध तात्पर्य लिङ्गोंसे श्रीरामायणमें विष्णु-परत्व प्रतिपादन होनेसे वेदान्त-वेद्य परब्रह्मका स्वरूप निश्चय होता है।

इसप्रकारका परतत्त्व किस उपायसे प्राप्त होता है, यह बात भी श्रीरामायणमें वर्णित है। वह उपाय है शरणागति। परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिका उपाय वेदान्तोंमें शरणागति ही बताया गया है। यथा—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेताश्वतर उ० ६।१८)

इस श्वेताश्वतरोपनिषत्के मन्त्रमें मुमुक्षु-पुरुषोंको शरणागति कर्तव्य बताया गया है। इसी शरणागतिका वर्णन श्रीरामायणमें है। शरणागति सर्वफलसाधन है। इसके अधिकारी भी अनेक प्रकारके होते हैं। आरम्भसे लेकर अन्ततक श्रीरामायणमें शरणागति-उपायका वर्णन कई स्थलोंमें आया है।

बालकाण्डमें—

देवगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः।

इस श्लोकमें रावण-वधरूप फलार्थी देव-आदियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

त्रिशङ्कुके वृत्तान्त और शुनःशेपके वृत्तान्तसे शरणागत-रक्षण परमधर्म बताया गया है और गुणीके विषयमें शरणागति करनेसे फल अवश्य मिलता है, यह बात भी बतायी गयी है।

अयोध्या-काण्डमें—

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः।
सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम्॥

इस श्लोकमें लक्ष्मणकी शरणागति कही गयी है।

शिष्ये पुरस्ताच्छालायां यावन्मे न प्रसीदति॥

इस श्लोकमें भरतकी शरणागतिका वर्णन है।

आरण्य-काण्डमें—

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा वयं प्रजाः॥

इस श्लोकमें महर्षियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यश्शरणागतम्।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्॥
स पित्रा च परित्यक्तस्सुरैश्च परमर्षिभिः।
त्रीन्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः॥

इन श्लोकोंमें काककी शरणागतिका वर्णन है।

किष्किन्धाकाण्डमें—

कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं हितम्।
अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात्॥

इस श्लोकमें सुग्रीवकी शरणागतिका वर्णन है।

सुन्दर-काण्डमें—

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामस्स्थानं परीप्सता।
वधं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः॥

विदितस्स हि धर्मज्ञश्शरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥

इन श्लोकोंमें जानकीजीका उपदेश रावणको शरणागति करनेके विषयमें हुआ है ।

युद्धकाण्डमें—

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥

इस श्लोकमें विभीषणकी शरणागतिका वर्णन है ।

ततस्सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः ।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥

इस श्लोकमें श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिका वर्णन है । इसप्रकार नानाविध फलापेक्षी पुरुषोंकी शरणागतिका वर्णन करते हुए उन लोगोंकी फलसिद्धिका वर्णन करनेसे मोक्ष रूपी फलके लिये भी शरणागति ही मुख्य उपाय है-यह बात सूचित हुई ।

उपाय दो प्रकारके होते हैं-सिद्धोपाय और साध्योपाय । मोक्षके लिये सिद्धोपाय ईश्वर है और साध्योपाय भक्ति आदि हैं । ईश्वर सिद्ध उपाय होनेपर भी उनका उपायत्वेन दृढ़ अध्यवसायके साथ वरण करना आवश्यक है-यही शरणागति है । शरणागतिमें प्रधान शरण्य वस्तु है, शरणागतिकी सफलताके लिये पुरुषकारकी आवश्यकता है, अतएव वह अङ्गभूत है ।

मोक्षरूप परम पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये जो शरणागति की जाती है, वह यदि आवश्यक समस्त गुणपूर्ण व्यक्तिके विषयमें की जाय, तभी सफल होती है, अन्यथा श्रीरामचन्द्रजीकी समुद्रदेव-शरणागतिके समान निष्फल होती है । श्रीराम-कृत समुद्र-शरणागतिके निष्फल होनेका कोई कारण है तो यही है, और कोई नहीं ! श्रीरामचन्द्र भगवान्‌ने जो समुद्रकी शरणागति की थी, उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं दिखायी जा सकती उसमें करनेवालेकी ओरसे कोई अभाव नहीं बतलाया जा सकता । शरण्यमें जिन गुणोंका होना अत्यावश्यक है, समुद्रमें उन गुणोंके अभावके कारण ही, वह शरणागति निष्फल हुई । अतएव मोक्षार्थ-शरणागति जिन परमात्माके विषयमें करनी चाहिये, उनका समस्त गुणपूर्णत्व श्रीरामायणमें विस्तारके साथ वर्णित हुआ है । श्रीरामरूपसे अवतीर्ण परमात्मा श्रीमन्नारायणके गुणोंका वर्णन श्रीरामायणभरमें सर्वत्र ही मिलेगा ।

वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, ज्ञान, शक्ति आदि जिन मुख्य गुणोंकी आवश्यकता शरण्यमें होती है उनका श्रीरामचन्द्र भगवान्‌में होना श्रीरामायणमें अनेक स्थलोंमें स्पष्ट वर्णित है ।

वात्सल्यगुण-दोषभोग्यत्व या दोषादर्शित्वको कहते हैं, दूसरोंके दोषोंको गुणके रूपसे ग्रहण करना अथवा दोषों-को न देखना यही वात्सल्य है । युद्धकाण्डके १८ वें सर्गमें श्रीरामचन्द्र भगवान् कहते हैं—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥

अर्थात् जो मित्रभावसे आवे, उसको मैं किसी हालतमें नहीं छोड़ सकता, उसका चाहे कोई दोष ही क्यों न हो, सत्पुरुषोंके लिये वह निन्दनीय नहीं है । यह उक्ति श्रीरामचन्द्र भगवान्‌के वात्सल्य-गुणका प्रमाण है ।

महान् पुरुषका अपनेसे छोटे पुरुषोंके साथ अभिन्न भावसे मिलनसार स्वभावका नाम सौशील्य है । यह गुण श्रीरामचन्द्रजीमें वर्तमान था। इसके कई प्रमाण हैं । अयोध्याकाण्डमें श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए अयोध्या-वासी जन दशरथके सामने कहते हैं—

संग्रामात्पुनरागम्य कुञ्जरेण रथेन वा ।
पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ॥
व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

अर्थात् श्रीराम जब दण्डयात्रासे लौटकर आते हैं तब नगरवासियोंसे स्वजनके समान कुशल-प्रश्न करते हैं। नगरवासियोंके दुःख देखकर स्वयं दुःखित हो जाते हैं । उनके उत्सवमें जैसे पिता पुत्रके उत्सवमें सन्तुष्ट होता है वैसे सन्तुष्ट होते हैं ।

निषाद गुहके साथ श्रीराम किसप्रकार मिलते थे यह बात-'भुजाभ्यां साधुपीनाभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत्' इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है। अपनी भुजाओंसे गुहको आलिंगन करते थे । श्रीविभीषणको अङ्गीकार करनेके पश्चात् उनके साथ भगवान् रामचन्द्र इसी प्रकार मिले थे-'इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।' विभीषणका भी आलिङ्गन रामचन्द्रने किया था । यह सुशीलताका ही कार्य है ।

श्रीरामचन्द्रका सौलभ्यगुण सब विदित है । 'सर्वदा-भिगतस्सद्भिरदीनात्मा विचक्षणः ।' यह श्लोक सौलभ्यगुणका

प्रमाण है। इसमें कहा गया है कि सत्पुरुष सर्वदा उनके पास पहुँचते रहते थे।

भगवान् श्रीरामचन्द्रका ज्ञान 'बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी' 'यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः' 'वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः' 'सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्' इत्यादि स्थलोंमें उल्लिखित हुआ है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शक्ति—अघटितघटनासामर्थ्य उनके चरित्रमें यत्र-तत्र देखने योग्य है। काकासुरको प्राण-दान करना, सुग्रीवकी रक्षा करना, अहल्याका उद्धार, जटायुको मोक्ष देना अयोध्यावासी जन्तुमात्रको सान्तानिक लोक पहुँचाना, समुद्रको प्रक्षुभित करना इत्यादि कार्य उनकी शक्तिके निदर्शन हैं।

शरण्यगुणवर्णनके साथ पुरुषकार-स्वरूपका भी वर्णन श्रीरामायणमें हुआ है। मुमुक्षुओंकी भगवच्छरणागतिमें श्रीमहालक्ष्मीजी ही मुख्य पुरुषकार होती हैं। श्रीरामायणमें श्रीजानकीजीके पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंका वर्णन विशेषरूपसे हुआ है। पुरुषकारमें रक्ष्य और रक्षक दोनोंके साथ विशेष सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। जानकीजीके रूपमें अवतीर्ण श्रीमहालक्ष्मीजीमें भगवान्के साथ पत्नीत्व-सम्बन्ध और चेतनोंके साथ मातृत्व-सम्बन्ध वर्तमान है। अतएव महालक्ष्मी अन्वर्थ पुरुषकार मानी गयी हैं। उनके पुरुषकारत्वोचित गुणोंका वर्णन श्रीरामायणमें है।

जैसे श्रीरामायण श्रीरामचरित्र-वर्णनपर है वैसे ही श्रीसीता-चरित्र-वर्णनपर भी है। अतएव इस काव्यका नाम सीताचरित भी है। बाल-काण्डके चौथे सर्गमें—

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितम्महत्।

समग्र रामायणको सीताका चरित बताया है। पुरुषकार होनेमें कृपा, परतन्त्रता, अनन्यार्हत्व इन तीन गुणोंकी आवश्यकता होती है। श्रीजानकीजीमें ये तीनों गुण विशेषरूपसे वर्तमान थे। इस बातका वर्णन श्रीरामायणमें है।

श्रीजानकीजीका लङ्कामें अशोकवनिकामें बन्दिनीके-रूपसे दस महीने रहना ही उनकी कृपाका सूचक है। जैसे भगवान्का रामावतार देवताओंके कष्ट-निवारणार्थ हुआ और उनका वनवास दुःखी महर्षियोंके दुःख-निवारणार्थ हुआ, इसी प्रकार श्रीमहालक्ष्मीजीका अवतार भी चेतनोद्धारके लिये ही हुआ था, और अशोकवनिकावास बन्दीकृत देवादि स्त्रियोंके उद्धारके लिये ही हुआ। कृपा या दया दूसरोंके दुःखको देख स्वयं दुःखी होनेको कहते हैं। देवस्त्रियोंके दुःखसे दुःखिनी हो स्वयं तत्समान भावसे बन्दिनी बन उनके दुःखोंके निवारणके लिये अशोकवनिकामें वास करना आपकी कृपाका ही कार्य है। श्रीजानकीजी असमर्थताके कारण बन्दिनीके रूपमें अशोकवनिकामें वास करती थीं—ऐसा कहना उनके सामर्थ्यसे अनभिज्ञोंकी उक्ति है। श्रीजानकीजी चाहतीं तो रावणको भस्म कर सकती थीं। श्रीजानकीजीने रावणके प्रति इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कहा भी है—

असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वा कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥

अर्थात् 'श्रीरामकी आज्ञा न पाने और तपस्याके रक्षाकी इच्छासे ही मैं तुमको अपने तेजसे भस्म नहीं करती हूँ।' इससे ध्वनित है कि 'नहीं तो कर देती।' श्रीहनूमान्के पूँछमें जलते हुए अग्निको शीतल करनेके लिये जो जानकीजी अग्निको 'शीतो भव हनुमतः' कहकर आज्ञा देनेका सामर्थ्य रखती थीं, क्या उनमें 'भस्मी कुरु दशग्रीवम्' कहनेका सामर्थ्य नहीं था? जानकीजीका बन्दीवास ही उनके दया आदि गुणोंका सूचक है।

संसारी चेतनोंके दुःखोंको देख असहिष्णु हो, उनके दुःखोंके निवारण करनेके लिये स्वयं पुरुषकार बन ईश्वरसे प्रार्थना कर समस्त अपराधोंकी क्षमा करवाकर उनके उद्धारका प्रयत्न करनेके लिये कृपाकी आवश्यकता होती है।

स्वतन्त्र परमात्माको अपने वशमें कर उनसे चेतनोंका कार्य करा लेनेके लिये ईश्वरानुवर्तन करनेकी आवश्यकता होती है। अतएव भगवत्परतन्त्रतारूप गुणकी भी आवश्यकता पुरुषकारमें है। भगवान् इनके वचनसे चेतनोंका उद्धार कर दें, इसके लिये अर्थात् इनके वचनानुसार कार्य करनेके लिये अनन्यार्हताकी भी आवश्यकता होती है। भगवान् जिनको अपने परतन्त्र समझें और अनन्यार्ह समझें उनके वचनोंके अनुसार कार्य करना उनके लिये आवश्यक हो जाता है। अतएव परमात्माको वशमें करनेके लिये पारतन्त्र्य और अनन्यार्हत्व इन दो गुणोंका पुरुषकारमें होना आवश्यक है। श्रीजानकीजीके ये दोनों गुण श्रीरामायणमें दो घटनाओंके द्वारा प्रकटित हुए हैं।

द्वितीय बार जब जानकीजीको श्रीरामवियोग हुआ, अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीका परित्याग किया, तब लक्ष्मणजीके द्वारा वनमें छोड़ी जानेके बाद अत्यन्त शोकाकुल श्रीजानकीजी शरीर त्याग करनेकी इच्छा होनेपर

भी केवल भर्तृ-परतन्त्रताके कारण ही जीवित रहीं। लक्ष्मणके प्रति श्रीजानकीजी कहती हैं—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यति॥
पतिर्हि दैवतं नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

अर्थात् 'हे लक्ष्मण! अभी मैं गंगाजलमें डूबकर प्राण छोड़ देती, किन्तु मेरे पतिका राजवंश नष्ट हो जायगा, इसलिये मैं ऐसा नहीं करती। स्त्रीके लिये पति देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है, अतएव प्राण देकर भी पत्नीको भर्ताका प्रिय-साधन विशेषरूपसे करना चाहिये।' इससे यह बात स्पष्ट है कि जानकीजी इतनी पति-परतन्त्र थीं कि अपने दुःख दूर करनेके लिये प्राण भी नहीं छोड़ सकती थीं।

तीसरी बार जब सर्वथा भूलोकसे ही जानकीजी अन्तर्हित हो गयीं, उस समयकी जानकीजीकी उक्तिसे उनकी अनन्यार्हता स्पष्ट हो जाती है। भरी सभामें श्रीरामचन्द्रजीके सामने श्रीजानकीजी खड़ी हैं, श्रीवाल्मीकिजीने जानकीजीके शुद्धताके विषयमें शपथ की, तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'भगवान् श्रीवाल्मीकि जानकीको शुद्ध बता रहे हैं, उनके वचनसे मुझे इनकी शुद्धतामें पूरा विश्वास है, किन्तु सर्वसाधारण जनसमुदायके सामने जानकी अपनी शुद्धताका परिचय दें, जिससे कि लोगोंको विश्वास हो जाय।' इसके बाद श्रीजानकीजी हाथ जोड़े हुए नीचे देखती हुई शपथ करने लगीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

अर्थात् 'यदि मैं राघवसे अन्यका मनसा चिन्तन भी नहीं करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें। यदि मैं मन, वाणी, शरीरसे रामहीकी अर्चना करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें, रामसे अन्यको मैं जानती ही नहीं, मेरी यह बात यदि सत्य है तो माधवी देवी मुझे जगह दें!' श्रीजानकीजीकी इन शपथोक्तियोंमें कैसी अनन्यता भरी हुई है, यह स्पष्ट है।

इसप्रकार उपायभूत परमात्मा रामरूप श्रीमन्नारायण और पुरुषकारभूता जानकीरूप श्रीमहालक्ष्मीजीके उपायत्वोपयुक्त और पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंके वर्णनके द्वारा शरणागतिकी प्रधान दो वस्तुओंका प्रतिपादन श्रीरामायणमें होनेके कारण वेदान्तके उस भागकी व्याख्या भी हो गयी।

मुमुक्षुओंको वेदान्तोदित उपायके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, उसका भी वर्णन श्रीरामायणमें है। कर्मबन्धनसे छूटनेके बाद शुद्ध मुक्त जीवात्माओंको भगवदनुभवजन्यानन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दसे प्रेरित होकर वे यथोचित भगवत्परिचर्यामें लगते हैं, उससे उनको विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है, बड़ी तृप्ति होती है। भगवत्परिचर्या कायिक वाचिक और मानसिक भेदसे भिन्न-भिन्न होती है। 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसस्समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्' 'एतत्साम गायन्नास्ते' 'येन येन धाता गच्छति तेन तेन सहगच्छति' 'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' इत्यादि श्रुतियोंमें भगवान्‌के सदा दर्शन करनेवाले, स्तोत्र करनेवाले, सामगान करनेवाले, परमात्माके पीछे-पीछे फिरनेवाले, परमात्माका अनुभव करनेवाले मुक्त जीवोंका उल्लेख है, इससे मुक्त जीवोंके प्राप्य फलका बोध होजाता है। परमात्म-परिचर्याजन्यानन्द ही मुक्त पुरुषोंके लिये प्राप्य मुख्य फल है। भगवच्छरणागत पुरुष जबतक यहाँ जीते रहते हैं तबतक यहाँ भी उसी भगवत्परिचर्याको अपना कर्तव्य समझते हैं, उसीमें उनको आनन्द मिलता है। इसी भगवत्कैङ्कर्यके लिये श्रीलक्ष्मणजीने भगवान् रामचन्द्रजीसे प्रार्थना की थी कि—

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतस्स्वपतश्च ते।
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते॥

अर्थात् 'मुझे आप अपना अनुचर बनाइये। आपके जागते और सोते समयमें कोई काम बाकी न रहेगा। आप जानकीजीके साथ पर्वतसानुओंमें विहार करेंगे, मैं आपके सब काम करूँगा।' सुग्रीव, विभीषण आदिने भी भगवत्-शरणागतिकर भगवत्परिचर्यारूपी फलको पाया, राज्यलाभ तो उनके लिये गौणफल ही था।

जीवात्माका स्वरूप ईश्वरके प्रति सर्वप्रकार परतन्त्रता और दासत्व है। इसका निरूपण श्रीलक्ष्मणजी और भरतजीके चरित्रद्वारा श्रीरामायणमें हुआ है। भरत सर्वथा परमात्माके आज्ञाकारी थे, श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार चलना ही उनका मुख्य उद्देश्य था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको सबसे

वापस जानेके लिये जाकर भी उनकी आज्ञाके वशवर्ती होकर पादुकाको ले वापस अयोध्या पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार राज्यकार्य चलाते रहे। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके सिंहासनारोहणके बाद भी उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए युवराज बने। श्रीलक्ष्मणजी तो उनकी परिचर्याको ही प्रधान मानकर यौवराज्यको उस सेवाका विरोधी समझ कर श्रीरामचन्द्रजीके हजार समझानेपर भी यौवराज्य स्वीकार करनेमें सहमत नहीं हुए। परन्तु भरतजी केवल भगवत्-परतन्त्रताको प्रधानता देनेवाले होनेके कारण सेवामें विरोधको जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे युवराज बने।

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्व प्रकारसे समझानेपर भी आज्ञापित होनेपर भी लक्ष्मण जब यौवराज्य स्वीकार करनेको राजी नहीं हुए तब भरतको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीलक्ष्मणजी केवल सेवानिष्ठ थे और भरतजी आज्ञाकारी थे। दोनों ही दोनों स्वरूपके पालक थे, किन्तु एक एकको मुख्य स्थान देते थे तो दूसरे दूसरेको मुख्य स्थान देते थे। श्रीलक्ष्मणजी-की सेवानिष्ठा उस समयकी घटनासे भी स्पष्ट हो जाती है, जब कि भगवान् श्रीरामचन्द्र वनवासके लिये तैयार हो रहे थे। उस समय भी भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीलक्ष्मणजीको अयोध्यामें रहकर मातृ-पितृ-शुश्रूषा करनेकी आज्ञा दी थी, किन्तु श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ रहकर श्रीराम-जानकीकी सेवा करना ही अपना प्रधान स्वरूप समझते हुए, बारंबार प्रार्थना करके श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति प्राप्त कर यथेष्ट सेवामें लग गये।

वेदान्त-शास्त्रमें अनेक अर्थोंका निरूपण होनेपर भी प्रधान तीन अर्थ माने जाते हैं। पहला परतत्त्व, दूसरा साधन और तीसरा फल। वेदान्तदर्शन-ब्रह्मसूत्रके चार अध्याय हैं, उनमें दो अध्याय तो ब्रह्मस्वरूप निरूपणपर है, एक साधन निरूपणपर है, और एक फलनिरूपणपर है। प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय कहलाता है। उसमें किस प्रकार समस्त वेदान्त-भाग एक ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करता है यह बात बतलायी गयी है। दूसरा अध्याय अविरोधाध्याय कहलाता है, उसमें प्रथमाध्यायमें कही हुई बातोंपर जो विरोध उद्भावित हुए, उनका निराकरण करते हुए उसको दृढ़ किया गया है। जीवतत्त्वका निरूपण तो प्रसङ्गवश किया गया है। तीसरे साधनाध्यायमें मोक्ष-साधनोपायोंका निरूपण हुआ है। चौथे फलाध्यायमें मुक्तात्माओंके प्राप्य फलका निरूपण हुआ है।

वेदान्तशास्त्रके उपबृंहण श्रीरामायणमें भी उन्हीं अर्थों-को चरित्ररूपमें निबद्ध किया है, मुख्य पात्रोंके अनुष्ठानोंके द्वारा उनका स्फुटीकरण हुआ है। परतत्त्वका निरूपण विस्तारके साथ और साधनका निरूपण भी विस्तारके साथ हुआ। फलका निरूपण संक्षेपमें हुआ। जीवस्वरूप आदिका वर्णन भी यथोचित हुआ।

हमने श्रीरामायणके मुख्य प्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछका ही यहाँपर स्पष्टीकरण किया है। श्रीरामायणके प्रतिपाद्यार्थ अठारह माने जाते हैं। उन सबके वर्णन करनेसे निबन्ध बहुत बड़ा हो जाता, इसलिये छोड़ दिया है।

चौबीस हजार ग्रन्थोंवाला श्रीरामायण चौबीस अक्षरों-वाली सावित्री गायत्रीके आधारपर रचित हुआ है। गायत्रीके प्रथमाक्षरसे श्रीरामायणका प्रारम्भ और अन्तिम अक्षरसे समाप्ति हुई है। गायत्रीका प्रथम अक्षर 'त' है, श्रीरामायणके प्रारम्भके श्लोक 'तपःस्वाध्यायनिरतम्' में तकार आद्यक्षर है। गायत्रीका अन्तिम अक्षर 'त्' है, श्रीरामायणका अन्तिम श्लोक-का अन्तिम अक्षर भी 'त्' है। उत्तररामायणके ११० वें सर्गके अन्तमें, जहाँ कि श्रीरामायणकी कथा समाप्त हो जाती है यह श्लोक है—

ततस्समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि।
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवम्महत्॥

इसमें अन्तिम अक्षर 'त्' है। इसके आगे जो एक सर्ग है, वह केवल फलश्रुतिरूप है। प्रत्येक हजार ग्रन्थोंके अन्तमें गायत्रीके अक्षर क्रमसे पड़े हुए हैं। ग्रन्थ बत्तीस अक्षरोंका होता है। उसी हिसाबसे देखना होगा। अतएव गायत्री-प्रतिपाद्यार्थ और रामायण-प्रतिपाद्यार्थ एक ही होना चाहिये। गायत्रीमन्त्रमें जगत्कारणभूत सविता—परमात्माके तेजोमय स्वरूपकी उपासनाका वर्णन है, जो समस्त प्राणियोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करते हैं, अतएव वही परमात्मा रामरूपी श्रीमन्नारायण भगवान्‌ही श्रीरामायणके प्रधान प्रतिपाद्य हैं—यह स्पष्ट है।

रामायण

गीता और तुलसीदासकी रामायणके संगीतसे जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है वैसी और किसीसे नहीं मिलती। हिन्दूधर्ममें तो यही दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके विषयमें कहा जा सकता है कि मैंने देखे हैं।

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। उनकी श्रद्धाने हिन्दू-संसारको रामायणके समान ग्रन्थरत्न भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबिले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्त्व नहीं रहता। श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिये अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है। परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चरित्रभ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धाके साथ चरित्रशून्यताका होना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठातक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिसे, सत्संगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन्हें सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होंने—'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्' वचनामृतका अनुभव अवश्य किया होगा।

मैं तुलसीदासजीके रामायणको भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। (नवजीवनसे) —महात्मा गाँधीजी

रामायणका नित्य पाठ करो

(महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय)

रामायण और महाभारत हिन्दुओंकी अतुल सम्पत्ति है। मुझे इनके अध्ययनसे बहुत सुख मिलता है। रामायणमें हिन्दू-सभ्यताके जिस ऊँचे आदर्शका इतिहास है, वह सदा पढ़ने और मनन करने योग्य है। रामायणको काव्य कहना उसका अपमान करना है। उसमें तो भक्तिरसका प्रवाह बहता है जो जीवनको पवित्र कर देता है। रामायणमें हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आदर्श बतलाया गया है। मैं चाहता हूँ सब लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक रामायणका पाठ करें और उसमें बतलाये हुए मार्गपर चलकर हिन्दू-जातिको पुनः रामराज्यके सुख भोगनेवाली बना दें।

रामायणका सन्देश

(साधु टी० एल० वस्वानीजी)

यद्यपि महाभारतके समान रामायण विश्वकोष नहीं है, तथापि वह *महाभारतकी भाँति ही, एक महान् सांस्कृतिक धर्म-ग्रन्थ है। महाभारतके समान रामायण केवल विशिष्ट भारतीय साहित्य ही नहीं* प्रत्युत वह एक मानव-धर्म-शास्त्र है।

सुदूर अतीतकी एक निष्प्राण कथाकी भाँति नहीं, वरं एक नूतन सभ्यता, नवीन भारतके पुनर्निर्माणके लिये, एक सन्देश और एक सत्ता रखते हुए, जीवन-पथके रूपमें इसका नये सिरेसे अध्ययन करना चाहिये।

श्रीरामजी तभी अपनी प्यारी अयोध्या—अपने घर विजयी होकर लौटते हैं जब वर्षों तपोवनमें व्यतीत करते हैं। उन्होंने तप किया और विजयी हुए। अतः इस पुरातन धर्मशास्त्रका सन्देश है—तपसः विजयम् (तपस्यासे विजय प्राप्त करो।)

बड़ी बड़ी कलोंमें, मशीन गनोंमें, काञ्चनकामनामें तथा विलासितामयी सभ्यताके उपकरणोंमें नहीं, केवल तपस्याकी *क्रियात्मक शक्तिमें ही संसारके नवयुगकी आशाएँ निहित हैं।*

भारत पतितावस्थामें है किन्तु तब भी मेरा उसमें विश्वास है। उसका अधःपतन उसी दिन हुआ जब उसने अपनी तपस्याकी आन्तरिक भावना, अपने आदर्श तथा अपने आपको विस्मृत कर दिया।

किसी पाश्चात्य राष्ट्रके अनुकरणसे नहीं, किन्तु इस चेतनासे · भगवान् रामकी इस चेतनासे ही हम मुक्त होंगे।

श्रीरामकी चेतना नष्ट नहीं हुई है। अब भी हमारे हृदयमें उसकी आवाज़ सुनायी देती है—हिंसा नहीं, परोपकार नहीं, केवल तपस्या ही हमें मुक्त करेगी!
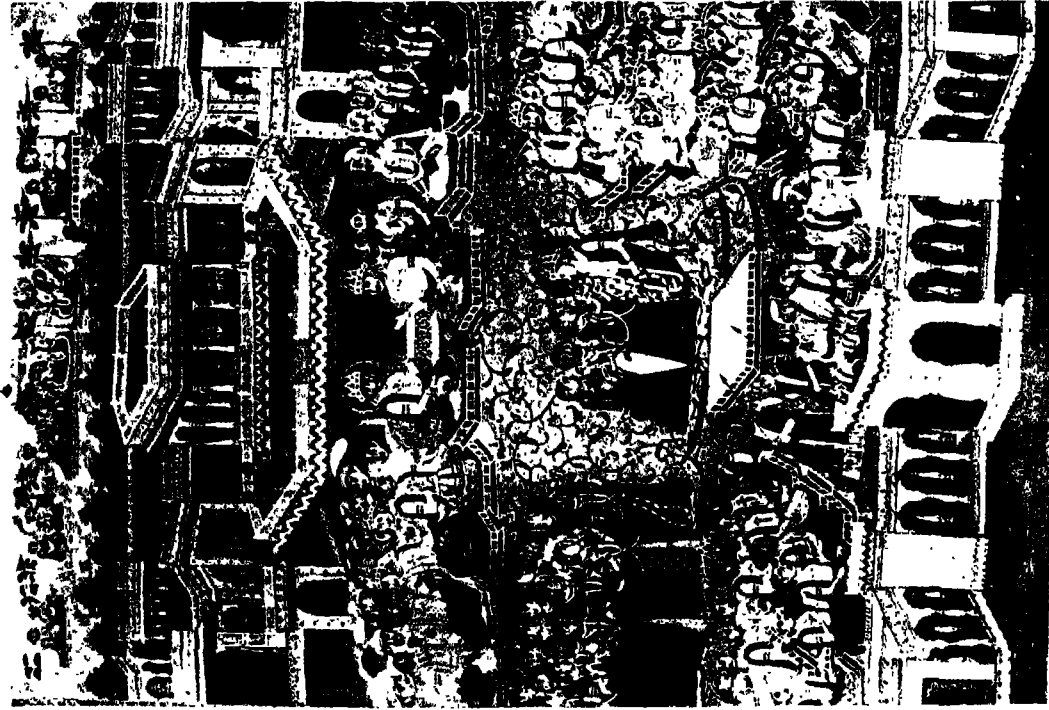
जयमाल ।

सुतन जुगलकर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥

जनकपुरमें दशरथजी ।

नृप समीप सोहहिं सुत चारी । जनु धन-धर्मादिक तनु धारी ॥
सुतन्ह समेत दशरथहि देखि । मुदित नगर-नरनारि बिसेखी ॥
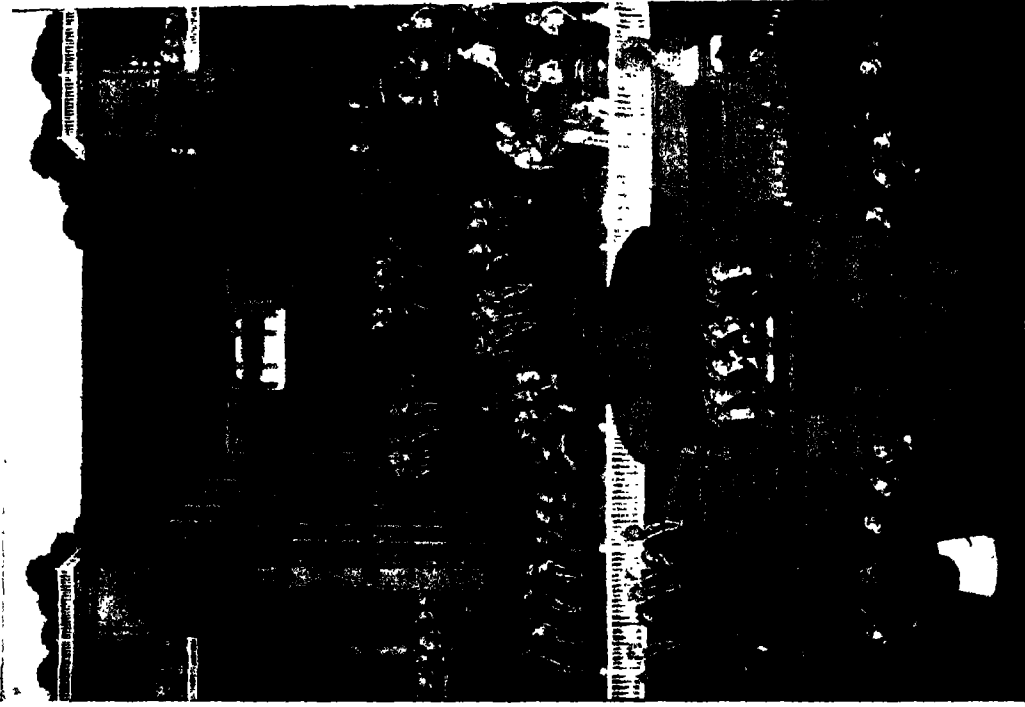
जनकपुरसे विदा।

पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥

धनुष-भङ्ग।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा॥

श्रीरामचरितमानसपर श्रीरूपकलाजीके वचनामृत

१-विरक्ति और अनुरक्ति प्राप्त किया चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
२-श्रीमद्भगवद्गीताके गूढ़ तत्त्वोंका व्यास समास समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
३-श्रीविष्णुपुराणका रहस्य समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
४-महर्षि मनु प्रभृतिकी स्मृतियोंका पण्डित हुआ चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
५-श्रीरामानन्द-मताब्ज-भास्करका तत्त्व समझना हो तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।

वाल्मीकीय रामायणकी विशेषता

(लेखक-विद्वद्वर पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र)

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कविता वनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥

१-वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्य है। इसकी रचना किसी अन्य काव्यकी छाया लेकर नहीं की गयी है। इससे पूर्व लौकिक छन्दका ही अस्तित्व नहीं था, फिर काव्यकी तो बात ही क्या है?

'आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतार.'

—उत्तरचरित

२-काव्यके निर्माण करने तथा समझनेके लिये तीन बातें आवश्यक हैं,—(१) शक्ति। (कवित्वबीजसंस्कारविशेष अर्थात् जन्मसे ही हृदयमें कविता करनेका एक विशेष संस्कार होता है; यह संस्कार अथवा शक्ति अर्जित नहीं अपितु ईश्वरप्रदत्त होती है) (२) स्थावर-जङ्गमात्मक संसारके समस्त विषयोंका बोध तथा काव्यशास्त्र इतिहासादि ग्रन्थोंके अध्ययनसे उत्पन्न हुई 'व्युत्पत्ति' (इसी व्युत्पत्ति अथवा आलोचनात्मक शक्तिसे काव्यके दोष-गुणका ज्ञान प्राप्त होता है) और (३) काव्यशास्त्रके मर्मज्ञोंसे शिक्षा ग्रहण कर तदनुसार काव्य-रचनाका अभ्यास। इन्हीं तीन विषयोंके सम्बन्धमें अलङ्कारशास्त्रके उद्भट पण्डित तथा काव्य-प्रकाशके रचयिता श्रीमम्मटाचार्य कहते हैं—

शक्तिर्निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

—काव्यप्रकाश

इस श्लोकमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें तीनों शक्तियोंके लिये 'हेतवः' शब्दका प्रयोग न करके 'हेतुः' शब्दका ही प्रयोग किया गया है। इस एकवचनान्त 'हेतुः' शब्दका प्रयोग ठीक है क्योंकि इसका तात्पर्य तीनों शक्तियोंके सामञ्जस्यसे है। काव्य-निर्माणके लिये इन तीनों शक्तियोंकी एक साथ ही आवश्यकता है। इसीलिये मम्मटाचार्यने लिखा है—

इति त्रयः समुदिता न तु व्यस्तास्तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुः न तु हेतवः।

—काव्यप्रकाश

किन्तु वाल्मीकीय रामायणकी रचना तो बिना ही किसी प्रसिद्ध सामग्रीसे हुई है। इसकी कथा इसप्रकार है, एक समय मध्याह्न कृत्यका सम्पादन करनेके लिये तपस्वी वाल्मीकि तमसा नदीके तटपर गये थे, वहाँ हठात् उनकी दृष्टि, व्याधद्वारा निहत एक काममोहित क्रौञ्च पक्षीके ऊपर पड़ी, उसे देख महर्षिको शोक हुआ और वही शोक अनुष्टुप्छन्दके श्लोकरूपमें परिणत होकर उनके मुखकमलसे प्रकट हो गया। ध्वन्यालोकमें लिखा है—

सहचरविरहकातर क्रौञ्च्याक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः।

अर्थात् अपने सहचरके वियोगसे कातर क्रौञ्च पक्षीके रुदनसे उत्पन्न हुआ शोक ही श्लोकके रूपमें परिणत हो गया। श्लोक इसप्रकार है—

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

—वाल्मीकीय

भगवती सरस्वतीने यह वरदान दिया कि जो इस श्लोकका सर्वप्रथम पाठ करेगा, उसे 'सारस्वत-कवित्व' प्राप्त होगा। यथा—

यः प्रथममेनमध्येष्यते स सारस्वतकविः सम्पत्स्यते।

—काव्यमीमांसा

उसी समय भगवान् चतुराननने आकर आज्ञा दी कि 'हे ऋषे! आदिकवे! आप शब्दात्मना प्रकाशमान् ब्रह्मतत्त्वके पूर्ण ज्ञाता हैं। अतः श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी रचना कीजिये। आपकी दृष्टि अप्रतिहत प्रकाशसम्पन्न हो जायगी -

'तत्सर्वं मत्प्रसादेन विदितं ते भविष्यति ।'

इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्हित हो गये। इसके अनन्तर महर्षि वाल्मीकिने रामायणकी रचना की। अतः यह समस्त अपेक्षणीय गुणोंसे सर्वोच्च पदपर आरूढ़ है। होना भी यही चाहिये।

३–रामायणमें जिन विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, उनमें एक भी विषय अतात्त्विक नहीं है। योगदृष्टिसे समस्त वस्तुओंका यथायोग्य निरीक्षण करके ही सबका वर्णन किया गया है। कहा भी है—

'वाल्मीकेर्वचनं सर्वं सत्यम्'

४–वाल्मीकीय रामायण परिमाणमें बहुत बड़ा ग्रन्थ है, तथापि उसमें प्रसादगुण प्रायः सर्वत्र व्याप्त है। भाषा तो अत्यन्त ही मधुर है। प्रसादगुणकी व्याख्या करते हुए साहित्यदर्पणकार कहते हैं—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ।
सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ॥
—साहित्यदर्पण

अर्थात् जैसे सूखे ईंधनमें अग्नि तत्काल व्याप्त हो जाता है वैसे ही जो गुण समस्त रसों और रचनाओंमें अतिशीघ्र व्याप्त हो जाय उसे प्रसाद कहते हैं।

विलायतसे लौटनेपर डाक्टर श्रीहरिश्चन्द्र शास्त्री आई० ई० एस० कहते थे कि वाल्मीकीय रामायणको पढ़ते समय अंग्रेजोंकी आँखोंसे अश्रुकी धारा बहने लगती है। फिर भक्त लोगोंकी तो बात ही क्या है?

५–वाल्मीकि-रामायण कालिदास प्रभृति महाकवियोंका उज्ज्वल आदर्श है

मधुमय भणतीनां मार्गदर्शी महर्षि ।

अर्थात् मधुर वचनोंके पथ-प्रदर्शक महर्षि वाल्मीकि हैं।

इसी महाकाव्यके 'हनुमत्सन्देश' नामक वर्णनाके आधारपर मेघदूतकी रचना हुई है। कवि किसीका अनुकरण अवश्य करता है। कहा भी है—

'कविरनुहरतिच्छायाम्'

वाल्मीकिमें है—

'छायेवानुगता पतिम्'

उपमेय बदलकर रघुवंशमें भी यही अर्थ लिया गया है, यथा—

'छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्'

वाल्मीकिमें है—

'अहिरेव अहेः पादान् विजानाति न संशयः'

ठीक इसीका प्रतिबिम्ब छेकोक्त्यलङ्कारके सम्बन्धमें कुवलयानन्दमें इसप्रकार दिया गया है—

भुजङ्ग एव जानीते भुजङ्गचरणं सखे ।

६–वाल्मीकीय रामायणमें 'गीतगोविन्द'के 'विगलित-वसनं परिहृतरसनं घटय जघनमपिधानम् ।' की भाँति प्रधान नायिकाका शृङ्गारवर्णन नहीं है। इसमें प्रधान नायिकाका वर्णन अति दिव्य है, उससे भावध्वनिमें किसी प्रकारका अवरोध नहीं होता प्रत्युत भावकी पुष्टि ही होती है।

७–प्रजा-रञ्जन-पद्धतिका प्रतिपादन तो इसमें सीमासे भी आगे बढ़ गया है। यहाँतक कि एक अति साधारण मनुष्यके वचन मात्रपर श्रीरामने परम पतिव्रता, साध्वी तथा अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई श्रुतिप्रसिद्ध जीवन्मुक्त जनक महाराजकी अयोनिजा पुत्री महारानी सीताका परित्याग कर दिया। यह क्या साधारण बात है? मुझे तो जब इस बातका स्मरण होता है तो हृदय जलने लगता है।

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगद्भूत् रामे राज्यं प्रशासति ॥

रामायणमें असंख्य गुणोंका समावेश है, निम्नलिखित गुणोंके चित्रणसे तो यह ग्रन्थ संसारके लिये परम उपकारी हो गया है।

पिताका आज्ञा-पालन, सत्यशीलता, एकपत्नीव्रत, आश्रितोंकी रक्षा, प्रतिज्ञाकी पूर्ति, वर्णाश्रमकी मर्यादाके अनुसार आचरण, स्वामी, देवता तथा गुरुजनोंकी सेवा, मधुरभाषण, अतुलनीय पातिव्रत, बड़े भाईके समान सुख एवं दुःखका अनुभव, न्यायानुकूल मार्गका अनुसरण, प्रत्युत्पन्नमतित्व, समीक्ष्यकारिता और प्रभु-भक्ति आदि।

८–इस रामायणकी वेदरूपता भी प्रामाणिक है—

वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।

९–इस महाकाव्यके पठनसे महापातककी निवृत्ति और परम कल्याणकी प्राप्ति होती है—

'एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ।'
'पठन् द्विजोवागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।' इत्यादि—
—वाल्मीकीय रामायण

स्कन्दपुराणमें पुरश्चरणकी सामान्य विधि दी गयी है, उक्त कार्य साधनके निमित्त विशेष विधि विद्वानोंसे जाननी चाहिये।

१०–अष्टादशपुराणोंके प्रणेता महर्षि-व्यासने भी रामायणकी बड़ी प्रशंसा की है। व्यासजी महर्षि वाल्मीकिके विषयमें कहते हैं—

यदुक्तिमुद्रासुहृदर्थवीथी,
कथारसो यश्चुलुकैश्चुलुम्प्यः ।
तथाऽमृतस्यन्दि च यद्वचांसि
रामायणं तत्कवितृन्पुनाति ।
—बालभारत

वाल्मीकीय रामायणमें सर्वप्रधान ध्वनि वीररस है। अन्यान्य रसोंका भी अङ्गरूपसे यथास्थान प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा इतनी प्राञ्जल है कि उसके प्रभावसे पढ़नेके साथ-ही-साथ उन रसोंकी प्रतीति होने लगती है। इस महाकाव्यके प्रधान नायक, धीरोदात्त, अनुकूल, मर्यादापुरुषोत्तम, पार्थिववंशावतंस, आदर्श तथा औपनिषद् पुरुष भगवान् रामचन्द्रजी हैं।

राम एव परं ब्रह्म राम एव परन्तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥
—रामरहस्योपनिषद्

यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दआत्मा।
—रामोत्तरतापिनी उपनिषद्

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः ।
स्थाने रामायणकविर्दैवीं वाचमवीवृधत् ॥
—उत्तरचरित

धीरोदात्तके लक्षण—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥
—दशरूपक

महान् वीर, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान, आत्मश्लाघासे हीन, धीर, आत्माभिमानी और दृढव्रती होना—ये धीरोदात्त के लक्षण हैं।

किसी भी स्थलपर श्रीरामचन्द्रमें आत्म-प्रशंसाका लेश भी नहीं दिखलायी पड़ता। श्रीरामकी उक्तिको देखिये—

'कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम् ।
अन्तरेणाञ्जलिं बध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥'
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥
—हनुमन्नाटक

दिव्यैरिन्द्रजिदत्रलक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं प्रापितः
केनाप्यत्र मृगाक्षि ! राक्षसपतेः कृत्तं च कण्ठाटवी ॥
—बालरामायण

हाँ, श्रीरामने जहाँ तहाँ निन्दाके प्रसङ्गोंमें तो अपना नाम अवश्य लिया है। यथा—

रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।
—उत्तरचरित्र

बल तथा क्षमाके तो प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। उनके सम्बन्धमें लिखना ही व्यर्थ है। अब रह गयी गम्भीरता, उसका भी दिग्दर्शन कराता हूँ।

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥
—वाल्मीकीय रामायण

प्रतिनायकके वर्णनसे प्रधान नायकके उत्कर्षकी वृद्धि होती है। इसका भी सुन्दर तथा युद्धकाण्डमें बड़ी खूबीके साथ वर्णन किया गया है। यथा—

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥
—वाल्मीकीय रामायण

महाकाव्यके लक्षणके अनुसार इसमें प्रतिसर्गके अन्तमें छन्दोंका परिवर्तन तथा निम्नलिखित विषयोंका बड़ी कुशलताके साथ चित्रण किया गया है—

प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, रात्रि, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, शैल, वन, नदी, समुद्र, ऋषि, आश्रम, यज्ञ, नीति, युद्ध आदि। उपर्युक्त रेखाङ्कित विषयोंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूक्तियाँ पढ़नेसे पाठकोंको अन्ततः वर्णन-शैलीका पता तो अवश्य लग जायगा।

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ।
अनुरागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः ।
कुटजार्जुनमालाभिरलङ्कर्तुं दिवाकरः ॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घनामत्तगजावनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः ॥

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥

सारांश कि श्रीवाल्मीकीय रामायण महाकाव्यके समस्त लक्षणोंमें आदर्श है।

श्रीमद्रामायण

(श्री १०८ स्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी)

अथर्वणवेदीय तापिनीयोपनिषत्‌के 'धर्ममार्गं चरित्रेण' इस वाक्यसे श्रीमद्रामायणमें सर्व-धर्म-समन्वय पूर्णतया अवगत है। मानव-जीवनको सार्थक बनानेके उपायोंको सुगमताके साथ जाननेके लिये रामायण ही सर्वोत्तम साधन है। इसी एक कारणसे केवल भारतीय विद्वन्मण्डली ही नहीं, किन्तु इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंके समाजतत्त्वविद् पण्डितों तथा दार्शनिकोंने भी मुक्तकण्ठ होकर इसकी महिमा गायी है। ईश्वरके सभी आविर्भाव सर्व-कल्याणगुणपूर्ण तथा सबके निःश्रेयसार्थ ही हुए हैं, परन्तु रामायण काव्यके नायक परब्रह्म श्रीरामजीमें सर्वगुणोपलब्धिको कुछ विशेषरूपेण सबने स्वीकार किया है। एक कविकी बड़ी ही हृदयङ्गमा सूक्ति है—

अकर्णमकरोच्छेषं विधिर्ब्रह्माण्डभङ्गधीः। गुणानाकर्ण्य रामस्य शिरः सञ्चालयेदिति ॥

अर्थात् सृष्टिरचयिता विधिने शेषजीको इसलिये विना कानके बनाया कि यदि कान रहेंगे तो श्रीराम-गुण सुनकर ये शिरःचालन करेंगे, अतः ब्रह्माण्ड भङ्ग हो जायगा।

राम-विरहके आँसू

बार-बार बूझत कहा ? अरे मीत ! कुसलात।
जग-जीवन जोये बिना, जीवन बीतो जात ॥

राम-विरह-रस द्रग बहैं, हे नर ! अँसुआ हैं न।
निरखि नेह करि नेह भरि, नेह त्रिवेनी नैन ॥

रहे अपावन क्यों मिलैं, जग-पावन सुख-ऐन।
राम-दरस भावत इन्हैं, नित न्हावत यों नैन ॥

सुकृत सुमन विकसित करन, राम-दरस फल लैन।
सींचत लता सनेहकी, निस-दिन माली नैन ॥

मुकता मनि अँसुआ अमल, कत ढरकत दिन रैन।
हरि उर पहरावन अहो ! हार बनावत नैन ॥

हरि-दरसन-हित सब तजे, अञ्जन, रञ्जन, चैन।
अँसुआ-कन-मुकतानको, दान करत नित नैन ॥

विरह अगन धूनी तपै, राम-नाम सुख दैन।
अँसुआ-कन माला लिये, जपैं जोगिया नैन ॥ —श्रीअमृतलाल माथुर

रामचन्द्र मंगल करे

(लेखक—स्व० पं० माधवप्रसादजी मिश्र सुदर्शन-सम्पादक)

कौशल्याके सुत दशरथके प्राणाधिकवर,
बन्धु भरतके वीर सुमित्रा-सुतके प्रियवर।
मुनि वशिष्ठके शिष्य जनकजाके मनभावन,
आञ्जनेयके देव विभीषणके प्रभु-पावन।
जो दश-कपालके काल हैं, सञ्चारक शुभकर्मके,
सो रामचन्द्र मंगल करे नाथ सनातन धर्मके ॥

शंकर और राम

(लेखक—श्रीअर्जुनदासजी केडिया)

संकर छबीले रामहीसे रमनीय-रूप,
संकरसे राम कमनीय छबि-धाम हैं।
राम अनुहार एक औढर-उदार ईस,
ईससे उदार राम पूरे सब काम हैं ॥
राम-नाम हेतु-उपराम सिव-नाम ही सो,
राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है।
पोषक प्रजाके प्रान सोषक सुरारिनके,
रामके समान संभु संभु सम राम है ॥

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

(लेखक—राव बहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल-एल० बी०)

प्रभु श्रीरामचन्द्रको मर्यादा-पुरुषोत्तम और श्रीकृष्णको लीला-पुरुषोत्तम कहते हैं। यह संज्ञा उत्तर हिन्दुस्तानमें ही प्रसिद्ध है, महाराष्ट्र या दक्षिणमें कम है। पुरुषोत्तमका अर्थ है—परमात्मा—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

× × × ×

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।

(गीता)

परमात्माके अनेक अवतारोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र अत्यन्त सरल, नीति-पोषक और प्रत्येक बातमें मर्यादाको लिये हुए है। श्रीकृष्णचरित्र बहुत कठिन और गूढार्थ-युक्त है। उससे बोध प्राप्त करना सामान्यबुद्धि मनुष्यके लिये कठिन है। प्रभु श्रीकृष्णको अप्रत्यक्ष राक्षसोंसे लड़ना पड़ा था, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यक्ष राक्षसोंसे लड़े थे। इसीसे श्रीकृष्ण-चरित्र लीलारूप है और श्रीरामका चरित्र मर्यादारूप है। श्रीराम-चरित्रकी मर्यादापोषकताको मैं इस छोटेसे लेखमें यथामति निवेदन करूँगा। चरित्र अगाध है, परन्तु अपनी शक्ति-अनुसार अगाध विषयमें भी प्रत्येक प्राणी थोड़ा-बहुत तैरना चाहता ही है।

संसारमें प्रत्येक मनुष्यको पुत्र, बन्धु, मित्र, शत्रु, पति आदि सम्बन्धोंका व्यवहार करना पड़ता है और कुछ धन्य-पुरुषोंको राज्य भी करना पड़ता है। उत्तम पुत्र, उत्तम बन्धु-उत्तम मित्र, उत्तम शत्रु, उत्तम पति और उत्तम राजा आदि सभी बातोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र मर्यादास्वरूप है और आज हजारों वर्षोंसे यह आर्य-जातिका आदर्श होकर हमलोगोंके आचरणोंपर थोड़ा-बहुत प्रभाव डाल रहा है। यही हिन्दू-समाजकी धन्यता है कि उसमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका आदर्शभूत चरित्र परिणामकारक हुआ है। इसीलिये हिन्दू समाज इस विषयमें अन्य समाजोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस विषयपर मैं यथामति कुछ वर्णन करना चाहता हूँ।

प्रभु श्रीरामचन्द्र उत्तम पुत्र थे। यह तो सभी जानते हैं कि पिताकी आज्ञा पालन करना पुत्रका परम धर्म है, परन्तु धर्मकी परीक्षा विपत्तिकालमें हुआ करती है, स्वर्णकी परीक्षा अग्निमें होती है तो हीरेकी हथौड़ेकी चोटमें। कल श्रीरामकी युवराजके पदपर प्रतिष्ठा होगी। इस घोषणासे सभी उत्सवमें आनन्दमग्न थे, परन्तु प्रातःकाल ही यह आज्ञा हुई कि श्रीरामको १४ वर्षतक वनवासी होकर रहना पड़ेगा। प्रभु श्रीरामचन्द्रने इस आज्ञाको भी पहलीकी भाँति ही आनन्दसे स्वीकार किया। 'पिताकी कठोर आज्ञाका भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये' यह हमारे समाजकी मर्यादा है। यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ है, अतः उस पिताकी आज्ञानुसार बर्तना पुत्रका कर्तव्य है; परन्तु साधारण लोग तो पिताका धन लेना चाहते हैं, पितासे धन-त्यागकी आज्ञा नहीं लेना चाहते। वे धन बाँटनेके लिये अदालतमें दावा दायर करनेको तैयार हो जाते हैं। रामायणमें लक्ष्मणको क्रोधी बतलाया है। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं, 'बूढ़े बाप कामान्ध होकर सौतेली माके फन्देमें फँस गये हैं, आप उनको कैद करके राजगद्दीपर बैठिये। भरतसे मैं निपट लूँगा।' उत्तम और मध्यम पुत्रका यहीं भेद दिखाया गया है। प्रभु श्रीरामचन्द्रने भाईकी यह सलाह नहीं मानी बल्कि जाकर माता कैकेयीसे बोले,'मैं आपकी आज्ञासे ही वनवासके लिये चला जाता, आपने मेरे पिताजीको बीचमें क्यों डाला?' तात्पर्य यह कि सौतेली माताके साथ भी प्रभु श्रीरामचन्द्रने अपना उत्तम पुत्रभाव निभाया।

भरत और श्रीरामचन्द्रके सम्भाषणसे उत्तम-बन्धुका आचरण सिद्ध ही है। भरतको राजा बनाते हुए या वनसे लौटाते समय प्रभु श्रीरामचन्द्रने उत्तम पुत्र और उत्तम बन्धु इन दोनों विषयोंमें आदर्श बर्ताव किया है।

सुग्रीव और विभीषणके सम्बन्धमें उत्तम मित्रका भी आदर्श आचरण दिखलाया है। स्वार्थ छोड़कर मित्रका कार्य करना पड़ता है और प्रतिज्ञापूर्वक उसको निबाहना पड़ता है। रावण अन्ततक प्रभु श्रीरामचन्द्रसे शत्रु बनकर लड़ता रहा परन्तु जब वह युद्धमें मारा गया तब प्रभु श्रीरामने विभीषणसे कहा—'मरणान्तानि वैराणि' 'बस, वैर मृत्युतक ही था। अब शत्रुता समाप्त हो गयी। अब तो वह जितना तुमको प्रिय है उतना ही मुझको है। अतएव यथावैभव उसकी ऊर्ध्वक्रिया करो।' अकलीजके द्वारा वसिटाये आनेकी भाँति हैक्टरकी लाशकी तरह श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी लाशको

रथके साथ रस्सीसे बाँधकर तमाम लंकाभरमें नहीं घसिटवाया। ऐसी यथार्थता और नीतिज्ञता कहाँ मिल सकती है ?

अब प्रभु श्रीरामचन्द्रके उत्तम पतिके बर्तावको देखिये। संसारमें लाखों मनुष्य पति होते हैं और सभी यथाशक्ति नीतिके अनुसार बर्तनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र तो परमोत्तम और अद्वितीय है। उन्होंने राजा होकर भी आजीवन एकपत्नीव्रतका पालन किया। साधारण लोग इस उत्तमता तक नहीं पहुँच सकते। वनवासकी आज्ञा होनेपर उन्होंने सीताजीको दुःख और कष्टोंकी भीतिसे अलग रखना चाहा, परन्तु श्रीसीता-चरित्र भी प्रभु श्रीरामचन्द्रके समान ही उत्तमोत्तम बल्कि उससे बढ़कर है। हिन्दू-संसारमें स्त्रियोंका आचरण अन्य समाजोंकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है और वह सीताजीके उदार चरित्रके आदर्शको लेकर ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सीताजीने कहा—

यस्त्वया सह स स्वर्गो, निरयो यस्त्वया विना।

(वा० रा० २।३०।१८)

'आपके साथ जिस स्थानपर रहना हो वही स्वर्ग है और आपके बिना जहाँ रहना हो वह नरक है। जब पतिके साथ राज्य-भोग भोगे हैं तब पतिके साथ वनवास क्यों नहीं भोगना चाहिये ? सती स्त्रीको पतिके साथ सुख और दुःख दोनों ही भोगने उचित है।' यह मर्यादा सीताजीने ही स्थापित की। श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको साथ लिया और परिणामस्वरूप सीताहरण हुआ। श्रीरामने पतिका कर्तव्य पालनकर रावणको मार सीताजीको छुड़ाया परन्तु किसी सन्देहसे उन्होंने ग्रहण करना अस्वीकार किया। सीताजीने परीक्षा देकर अपनी शुद्धता सिद्ध की। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र उनको साथ लेकर आनन्दसे अयोध्या लौटे और सीताके साथ राज्याभिषिक्त हुए। आधुनिक सुशिक्षित विद्वान् प्रायः ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि 'इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके साथ जो बर्ताव किया वह क्या उत्तम पतिके योग्य है ?'

'मा लोकवादश्रवणदहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।'

ऐसा प्रश्न कालिदासने भी सीताके मुखसे करवाया है। अतएव इस विषयमें कुछ अधिक लिखना पड़ेगा। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि यह बर्ताव प्रभु श्रीरामचन्द्रने राजधर्मके अनुसार किया था, पतिके सम्बन्धमे नहीं। सीताजी एक वर्षतक राक्षसके घरमें रही थीं। इसी बुनियादपर प्रवाद चला था और अयोध्याकी प्रजाके अन्तःकरणमें राजाके सम्बन्धमें कुछ अप्रीति फैलने लगी थी। उस समय श्रीरामचन्द्रने विचार करके यह निश्चित किया कि राजाका कर्तव्य पतिके कर्तव्यसे भी श्रेष्ठ है। राजाका कुल निष्कलंक होना चाहिये। Ceasar's wife must be above suspicion. भवभूतिने इस विषयमें बहुत ही उदात्त विचार प्रकट किये हैं। प्रजाराधन राजाका परम कर्तव्य है—

'स्नेहं दयां च प्राणं च अपि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥'

'मुझे सीता प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है परन्तु लोकाराधन उससे भी अधिक प्रिय और अधिक श्रेष्ठ कर्तव्य है। इसलिये प्राण और प्राणसे भी प्रिय जानकीका भी मैं त्याग करूँगा।' इस चरित्रसे यह राजाका मर्यादारूप कर्तव्य प्रतीत होता है अर्थात् यहाँ प्रभु श्रीरामचन्द्र किस प्रकार 'उत्तम राजा' थे, यह बतलाया गया है।

'उत्तम' राजाका कर्तव्य जैसे लोकाराधन है वैसे ही 'सत्यप्रतिज्ञ' होना भी है। यह अन्य चरित्रभागसे ज्ञात होता है। श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूटपर मुनिवृत्तिसे रहने लगे, भरतने वहाँ पहुँचकर वनवासकी प्रतिज्ञा त्याग करदेनेके लिये उनसे अत्यन्त आग्रह किया और कहा, 'पिताजीने आपको मेरे लिये ही यह आज्ञा दी थी परन्तु मैं राज्य नहीं चाहता, आप ही राज्य कीजिये।' प्रभु श्रीरामचन्द्रने इसको इन्कार कर दिया। उस समय वसिष्ठ आदि अनेक लोगोंने कहा कि 'जब भरत राजी है तो प्रतिज्ञा पालनेकी आवश्यकता नहीं।' तब भगवान् श्रीरामने भरतसे कहा, 'तुम मुझे राज्य करनेके लिये ले जाते हो परन्तु जो सत्यप्रतिज्ञ नहीं है वह राज्य करने योग्य भी नहीं है, क्योंकि राज्यकी प्रतिष्ठा ही सत्यपर है 'सत्ये राज्यं प्रतिष्ठितम्' असत्य बोलनेवाला अच्छा राजा नहीं हो सकता।' महारानी विक्टोरियाका घोषणापत्र अनहोनी सनद है। यों कहनेवाला कर्ज़न हमारे रामराज्यके आदर्श (Ideal) से कितना गिरा हुआ है। इस बातको पाठक सोच सकते हैं। प्रजाराधन और सत्यप्रतिज्ञत्व इन दो गुणोंपर ही रामराज्य प्रतिष्ठित था फिर वह सुखी क्यों नहीं होता। यदि कभी प्रजाको दुःख हो तो उसका भी भार राजापर आता है, यह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उच्च भावना थी। तात्पर्य, इस उदात्त राज-कर्तव्यकी कल्पना अन्य किसी भी राजा या राज्यमें दिखायी नहीं देती। इसीकारण प्रभु श्रीरामचन्द्रको हम 'उत्तम राजा' कहते हैं और सुराज्यका उच्चतम आदर्श (Highest ideal) रामराज्य बताते हैं।

इस थोड़ेसे विवरणसे यह मालूम होगा कि हम प्रभु श्रीरामचन्द्रको 'मर्यादापुरुषोत्तम' क्यों मानते हैं? इतिहासमें इससे सर्वथा विरुद्ध दिशाका उदाहरण औरंगजेब है। अधम पुत्र, अधम बन्धु, अधम मित्र और अधम राजा आदि सभी विरोधी गुण उसमें वर्तमान थे। पिताको कैदकर, ज्येष्ठ बन्धु दाराको मार और मुरादका पहले मित्र बनके पीछेसे उसका घात कर, उसने राज्य किया। अनेक शत्रुओंको उसने धोखेसे मारा। महाराज शिवाजीको शत्रु बनाया और उसके मरनेके बाद उसके राज्यपर आक्रमण किया। सत्यप्रतिज्ञताका विरोध तो यहाँतक किया कि शिवाजीके साथ पहले यह प्रतिज्ञा की कि तुम्हारे बालकोंके साथ भी कभी धोखा नहीं होगा। फिर दरबारमें बुलाकर उन्हें कैद कर लिया। प्रजारञ्जनका विरोध इतना बढ़ा कि हिन्दू मात्र ही पीड़ित हो गये। हिन्दुओंके परमपूज्य स्थान तोड़े गये। तात्पर्य यह है कि औरंगजेबका राज्य रामराज्यसे अत्यन्त विरुद्ध था। इस विरोधी दृष्टान्तसे पाठकोंको श्रीरामचन्द्रके 'मर्यादा पुरुषोत्तमत्व' की कुछ कल्पना होगी।

मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

(लेखक—रायबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

अवधेश-कुमार, कौशल्या-प्राणाधार, जानकी-जीवन, दैत्य-निपीडन, भक्त-जन-रञ्जन, दुष्ट-निकन्दन, जग-हितकारी, शरणागत-भय-हारी, भगवान् श्री-रामचन्द्र महाराजके परम मङ्गलमय, श्रीजनकदुलारी-हृदय-कञ्ज-भृङ्ग, श्री सौमित्रि-कर-सरोज-लालित, पतित-पावनीश्री सुरधुनी-प्रसूति-धाम पद-पद्मोंसे जो इस देव-दुर्लभ वसुन्धराको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा-स्थापनद्वारा कर्तव्याकर्तव्य-विमूढ़ संसारको पथ-प्रदर्शन कराना था और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महत्त्वपूर्ण और आदर्श अवतारका यह निमित्त प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्याणप्रद चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, स्थूल रूपमे गुप्त नहीं हैं। जैसे—साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, एक पत्नीव्रत, वर्णाश्रमधर्मपालन, राजनीति और प्रजा रक्षा, इत्यादि। परन्तु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है, और उसके भावोंकी सीमा कहाँतक है जो आदर्शरूपसे मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें, इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है, अतः मुख्य मुख्य चरित्रोंपर अनुक्रमसे किञ्चित् प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जायगा।

(१) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका श्रीगणेश उस लोकहितशीला लीलासे होता है जिसमें उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिका आरम्भ हुआ है जो आपके प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है। अर्थात्—

> 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥'

इसीके साथ इससे प्रजारक्षाका आदर्श भी प्रकट होगा:—

जब श्रीविश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये दोनों मधुर-मूर्त्ति भ्राताओंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें ताड़िका नामकी विकराल राक्षसी अपने घोर रौद्र-नादसे समस्त वनको सन्नादित करती हुई इनकी ओर झपटी। उस समय श्रीभगवान्‌के सम्मुख धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक ओर अपने उपास्य साधु महात्माओंका भक्षण और प्रजाका चर्वण करनेवाली आत-तायिनी पिशाचिनी—जिसके द्वारा देशके चौपट होनेकी कथा श्रीविश्वामित्रजीसे अभी सुन चुके हैं—के वधका प्रसंग और दूसरी ओर स्त्री-जातिपर हाथ उठानेके लिये दोष-प्राप्तिका प्रतिबन्ध, जिसका आज भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किन्तु साधु महात्माओंके परित्राण और प्रजाकी रक्षा-के भावका उस समय भगवान्‌के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टाके संहारका कर्तव्य अभ्रान्त-रूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामित्रजी महाराजके निम्न-लिखित उपदेशसे भगवान्‌के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

> नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम !
> चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥
> (वा० रा० १।२५।१७)

'हे नरोत्तम! तुमको स्त्रीवध करनेमें ग्लानि करना

उचित नहीं। राजपुत्रको चारों वर्णोंके कल्याणके लिये समय-पर (आततायिनी) स्त्रीका वध भी करना चाहिये।'

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा॥
(वा० रा० १।२५।१८)

'प्रजा-रक्षणके लिये क्रूर, सौम्य, पातकयुक्त और दोष-युक्त कर्म भी प्रजा-रक्षकको सदा करने चाहिये।'

जब साधु महात्मा सताये जायँ और प्रजा पीड़ित की जाय तब उस सतानेवाली और पीड़ा देनेवाली स्त्रीका वध भी आवश्यकीय है। पुरुष आततायी हो तो उसके लिये किसी विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है-श्री-भगवान्ने जो प्रथम ही स्त्रीका वध किया, इससे उन्होंने संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य जन्म धारण करके जगत्में धार्मिक जीवन निर्वाह करनेका संकल्प करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य यही है कि वह सद्बुद्धिके सत्प्रयोगद्वारा यथाशक्य मायाका दमन करे, क्योंकि मायाके जञ्जालमें फँसनेके बाद धर्मकी वेदीपर अपने जीवनकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव-सा है।

(२) क्षात्र-धर्मका क्या रहस्य है, इसका आदर्श इस विचित्र चरित्रसे प्रकट होगा। परम माङ्गलिक विवाहोत्सवके पश्चात् जब श्रीविदेहराजसे विदा लेकर श्रीकौशल-नरेश अपने दलबलसहित अपनी राजधानी जगत्-पावनी अयोध्या-पुरीको पधार रहे हैं तो रास्तेमें क्या देखते हैं कि प्रज्वलित नेत्र और फड़कते हुए होठोंवाले भयङ्कर वीरवेषधारी ब्रह्मकुल-विख्यात श्रीपरशुरामजी उग्ररूप धारण किये श्रीरामके शैव-धनुषभंग करनेपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हुए श्रीरामसे कहते हैं कि 'यदि तुम इस वैष्णव-धनुषमें शर चढ़ानेको समर्थ हो तो तुमसे मैं द्वन्द्वयुद्ध करूँगा।'

यहाँ भी विकट परिस्थिति उपस्थित है। एक ओर तो ऐसे पुरुषकी ओरसे—जिसने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था और इस समय भी वैसे ही उग्रकर्मके लिये जिसकी प्रवृत्ति हुई है—इस प्रकारका युद्धाह्वान कि जिसको तनिक भी क्षत्रिय-तेजवाला पुरुष एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता और दूसरी ओर ब्राह्मण-वंशके प्रति हृदयमें पूज्य-भाव। अब यहाँ यदि एक भाव दूसरेको दबाता है अर्थात् यदि युद्धाह्वानको स्वीकार कर उनसे द्वन्द्वयुद्ध कर अथवा उनपर प्रहार कर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पूज्यभाव नष्ट होता है और यदि पूज्यभावके विचारसे युद्धाह्वानके उत्तरमें उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा जाता है तो क्षत्रिय-तेजकी हीनता होती है। अतः यहाँ ऐसी विचित्र क्रिया होनी चाहिये जिससे दोनों भावोंका साम्य रहकर दोनों पक्षोंका महत्त्व स्थिर रहे और एक भावका इतना आवेश न हो जाय कि जो दूसरेको दबा दे। अतः सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्ने इस जटिल समस्याके समाधानरूपमें कहा—

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥
(वा०रा० १।७६।३)

'हे भृगुवंशी! आपने एक वीर्यहीन और क्षात्र-धर्ममें असमर्थ मनुष्यकी तरह जो मेरे तेजकी अवज्ञा की है इसके लिये आज मेरा पराक्रम देखिये।' इतना कहकर श्रीरामने उनसे धनुष ले उसी क्षण चढ़ा दिया। तदनन्तर क्रोधयुक्त होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान्।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः॥
(वा० रा० १।७६।६,७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं, विश्वामित्रजीकी बहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण करनेवाला बाण नहीं छोड़ सकता। किन्तु, मैं आपकी गतिका अथवा तपोबलसे प्राप्त होनेवाले अनुपम लोकोंका विनाश करूँगा।'

इस अमित प्रभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश्य यही है कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साथ संघर्ष हो तब दोनोंको इसप्रकारसे सम्हालनेमें ही बुद्धिमानी है जिसमें एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा हो, साथ ही धर्मका भी नाश न होने पावे। यहाँ सामान्यतया सब वर्णोंके लिये और विशेषतया क्षत्रियोंके लिये इस मर्यादा-की रक्षाका उपदेश है। वह यह है कि चित्तमें कितने भी उग्रभाव उत्पन्न हों, कितनी ही क्रोधाग्नि धधके, किन्तु इससे, जिनमें पूज्य या आदरबुद्धि है वह नष्ट नहीं होनी चाहिये, साथ ही अपना क्षात्रतेज भी बच रहना चाहिये। इस मर्यादाका अनुकरण किसी अंशमें महाभारत युद्धमें भी हुआ था। यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि रावण भी तो ब्राह्मण
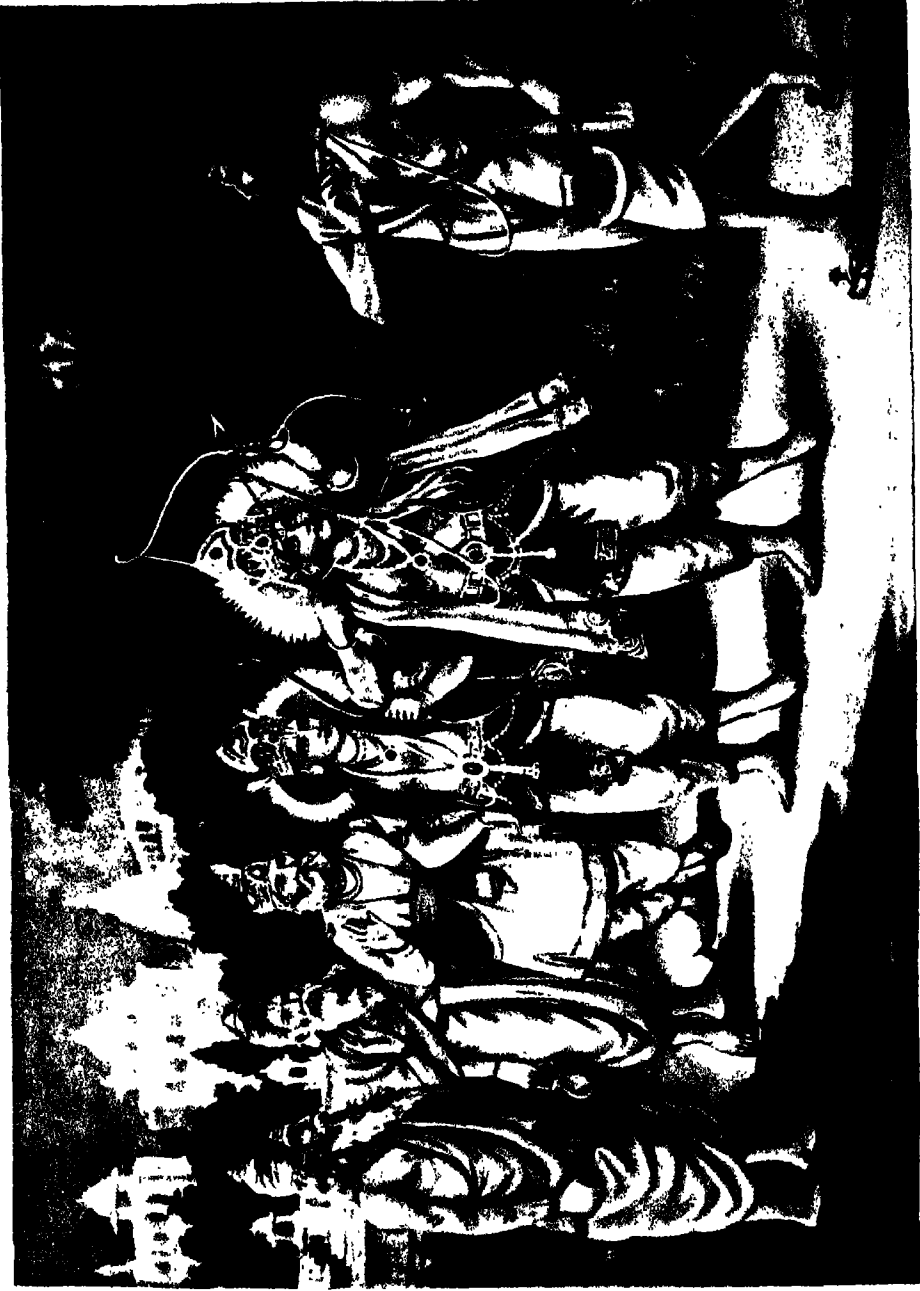
परशुराम-राम ।

जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे ।   निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥

ही था, फिर श्रीभगवान्‌ने उसको कुलसहित क्यों मार डाला ? उसने तो केवल धर्मपत्नीका ही हरण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो इक्कीस बार सजातियोंका विनाश किया और इस समय भी वह स्वयं भगवान्‌का संहार करनेकी बुद्धिसे ही वहाँ आये थे। द्वन्द्वयुद्धका यही तो प्रयोजन था।

इस शंकाका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके चरित्रका कुछ परिचय आवश्यक है। एक बार श्रीपरशुरामजी-के पिता अरण्यसेवी ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी श्रीजमदग्निजीकी सर्वस्वरूपा हविर्धानी गौको सहस्रबाहु अर्जुन जबरदस्ती छीनकर ले गया। परशुरामजीने युद्धमें उसका वधकर अपनी गौ छुड़ा ली। तदनन्तर सहस्रार्जुनके पुत्रोंने एकान्त पाकर जमदग्निका वध कर डाला। पूज्य पिताकी इसप्रकार हत्या होनेपर परशुरामजीकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेका संकल्प कर लिया।

परशुरामजी भी श्रीभगवान्‌के ही अवतार थे, अतएव इस कार्यको करके उन्होंने दुष्कृतियोंको ही दण्ड दिया था, अतः दुष्कृति रावणके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती। इन दोनोंके आचरण परस्पर सर्वथा विपरीत थे। हाँ, यह अवश्य है कि श्रीपरशुरामजीका संकल्प क्रोधावेशमें सीमासे बाहर चला गया था परन्तु इस प्रकारके आवेशके निरोधकी शक्ति केवल श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तममें ही थी, जिन्होंने किसी भी भाव या आवेशको मर्यादासे बाहर नहीं जाने दिया।

(३) धर्मयुक्त शुद्ध राजनीति क्या है, इसका चित्र भी श्रीभगवान्‌की इस धर्मशीला लीलाके द्वारा पूर्णरूपसे प्रकट होता है।

जब महारानी श्रीकैकेयीने कोपभवनमें प्रवेशकर श्री-दशरथ महाराजको दो वरदानरूपी बाणोंसे छेदकर मूर्छित कर दिया, तब भगवान्‌ने वहाँ उपस्थित होकर इसका कारण पूछा, तो कैकेयीने यह सन्देह करके कि, श्रीराम इतना स्वार्थत्याग सहजहीमें कैसे करेंगे, उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर न देकर पहले उनसे प्रतिज्ञा करवानेका प्रयत्न किया। उत्तर-में श्रीभगवान्‌ने ये सतत आदरणीय आदर्श वचन कहे—

तद्ब्रूहि वचनं देवि ! राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥
(वा० रा० २।१८।३०)

'माता ! महाराजसे तुमने जो कुछ माँगा है सो मुझे बतला दो। मैं उसे सम्पादन करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ। रामका यह सिद्धान्त स्मरण रक्खो, राम दो बात नहीं कहता अर्थात् उसने जो कुछ कह दिया सो कह दिया फिर वह उसके विरुद्ध नहीं करता।'

कैसी महत्त्वपूर्ण वचन-पालनकी प्रतिज्ञा है। विचारिये, एक ओर अनेक भोग-विलासोंसे पूर्ण विस्तृत विशाल राज्य-के सिंहासनकी अभिरुचि और दूसरी ओर शीत, आतप, अवघट मार्ग, राक्षस, हिंसक पशु आदि अनेक विघ्न-बाधाओं-से युक्त कल्पनातीत क्लेश सहन करते हुए एकाकी अरण्य-सेवन। इस जटिल समस्यामें जिस राजनीतिके बलपर अनेक रचनाएँ रची गयीं और आजकल भी कहीं उसको पालिसी (Policy) और कहीं डिप्लोमेसी (Diplomacy) कहते हैं जो केवल छलप्रधान होती है और जिसमें प्रकट कुछ और ही किया जाता है तथा भीतर कुछ और ही रहता है। यहाँ उसके द्वारा साम, दान, दण्ड और भेदरूप चतुर्विध नीतिका प्रयोगकर युक्ति और चतुराईसे काम लेनेका प्रयोजन कोई ऐसी उपाय सोच निकालना ही होता कि जिससे सिंहासनका स्वार्थ हाथसे नहीं जाता। किन्तु श्रीरामके परम पवित्र हृदयमें राजनीति और धर्म दो रूपमें नहीं थे ? वहाँ तो राजनीतिका अर्थ ही 'धर्मसे अविरुद्ध' निश्चित था, धर्मकी दृष्टिसे तो एक अयोध्याका तो क्या, चौदह भुवनका साम्राज्य भी मृग-मरीचिका ही है। इससे सिद्ध होता है कि स्वधर्मको नष्ट करके स्वार्थसाधन करना मनुष्यमात्रके लिये निषिद्ध है, जिसमें राजापर तो नराधि-पति होनेके नाते उसकी सर्वप्रकारकी रक्षा करनेका दायित्व है। धर्मात्मा राजा कभी स्वार्थमें लिप्त नहीं हो सकता। यथार्थ राजनीति वही है जिससे धार्मिक सिद्धान्तोंका खण्डन न होकर व्यवहारकी सुकरता हो जाय। अर्थात् साम, दान, दण्ड और भेदरूप नीतिके द्वारा ऐसी युक्ति और निपुणतासे काम लिया जाय, जिससे व्यवहार भी न बिगड़ने पावे और धर्मकी विरुद्धता भी न हो सके। छल-प्रतारणादि-प्रधान दुष्ट-बुद्धिसे किसी व्यवहारको सिद्ध भी कर लिया तो वह वस्तुतः कूटनीतिका कार्य, पापमें परिणत होकर मनुष्यको नरकमें ले जाता है। इसके लिये श्रीयुधिष्ठिर महाराजका उदाहरण प्रसिद्ध है जिनकी आजन्म दृढ़ सत्य-निष्ठा रही, उन्हें युद्धके अवसरपर दूसरोंके अनुरोधसे केवल एक बार, और वह भी दबे हुए शब्दोंमें, अन्यथा बोलनेके कारण दुःखप्रद नरकका द्वार देखना पड़ा !

(४) भ्रातृ-प्रेमकी पराकाष्ठा देखना चाहें तो इस कथा-मृतका पान कीजिये।

जब चित्रकूटमें यह सूचना पहुँची कि श्रीभरतजी चतुरंगिणी सेना लिये धूमधामसे चले आरहे हैं तब लक्ष्मणजीने क्रोधावेशमें भरतजीको युद्धमें पराजित करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली। भगवान् श्रीराम तो उसको सुनते ही सन्नाटेमें आगये। बड़ी विकट परिस्थिति है। एक ओर वह प्यारा सरल भाई है जो सर्वस्व त्याग करके अनन्यभावसे सेवामें तत्पर है और इसक्षण भी सान्निध्यमें ही उपस्थित है और दूसरी ओर वह प्रिय भ्राता है जो समीप नहीं हैं और जिसकी माताकी क्रूरताके कारण ही आज वनवासका दारुण दुःख सहना पड़ रहा है परन्तु जिससे परस्पर परम गूढ़ और अनिर्वचनीय प्रेम है। सामान्यरूपसे जगत्-व्यवहारानुकूल अपरोक्षपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु श्रीभगवान्‌का हृदय ऐसी मुँहदेखी बातोंको कब स्पर्श कर सकता था? वहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं। ऐसी दशामें अपने प्रेमीके विरुद्ध श्रीरामको एक शब्द भी कैसे सहन हो सकता था? विरुद्ध शब्दोंके कानमें पड़ते ही प्रेमावेशमें तत्काल उत्तेजित होकर श्रीरामने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मणके खिन्न होनेकी कुछ भी परवा न कर ये वचन कह ही डाले—

'भाई लक्ष्मण! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी जो कुछ भी मैं चाहता हूँ वह सब तुम्हीं लोगोंके लिये। यह तुमसे मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, भरतने तुम्हारा कब क्या अहित किया है जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरतपर सन्देह कर रहे हो? तुमको भरतके प्रति कोई अप्रिय या क्रूर वचन नहीं कहना चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा ही अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उससे कह दूँगा कि तुम लक्ष्मणको राज्य दे दो। भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।'

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्‌का श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था, उनको तो प्राणीमात्रमें प्रेम है, फिर अपने अनन्य सेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणके लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है सो वास्तवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है, उनके हृदयमें विकृति उत्पन्न हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्‌का यह कठोर यत्न है। भगवान्‌के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका मनोविकार नाश हो गया। इस प्रकार अन्य प्राणियोंके साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्‌को किसीसे तनिक भी द्वेष नहीं है। सबके आत्मा होनेके कारण वे तो सबके आत्मरूप हैं। *केवल अंकुरित विकृतियोंको ही यथोचित दण्डादि विधियोंके द्वारा नष्ट किया करते हैं।*

(४) अब नास्तिकवादको किसी प्रकार भी न सह सकनेका एक अभ्रान्त दृष्टान्त सुनिये—श्रीभरतजीने जब चित्रकूट पहुँचकर श्रीभगवान्‌को अवधपुरी लौटाकर राज्याभिषेक करनेके अनेक यत्न किये, अनेक प्रार्थनाएँ कीं और श्रीवशिष्ठजी आदि ऋषियोंने भी अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार परामर्श दिया। तब उन ऋषियोंमें जाबालि ऋषिका मत सनातनधर्मसे नितान्त विरुद्ध प्रकट हुआ। नमूनेके लिये एक श्लोक लीजिये—

तस्मान्मातापिता चेति राम सज्जेत यो नरः।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्॥
(वा० रा० २।१०८।४)

'हे राम! अतएव यह माता है यह पिता है यों समझकर जो इन सम्बन्धोंमें लिप्त होता है उसे उन्मत्त जानना चाहिये, क्योंकि कोई किसीका नहीं है।' ऐसे ही और भी धर्मविरुद्ध बातें थीं। श्रीभगवान्‌के लिये यह अतिशय जटिल प्रसङ्ग था। एक पक्षमें था घोर नास्तिकवाद और दूसरेमें उसको प्रकट करनेवाले अपने कुलपूज्य ऋषि। श्रीभगवान् बड़े ही ब्रह्मण्य थे, फिर जाबालि ऋषि तो कुलके आदरणीय एवं उपास्य हैं ऐसे महानुभावके प्रति श्रीरामके अगाध हृदयमें विकृतभाव कब उत्पन्न हो सकते थे? परन्तु धर्मके नितान्त विरुद्ध शब्दोंने—जिनका आशय, श्रीभगवान्‌को सत्यसे विचलित करनेका था—हृदयमें परिवर्त्तन कर दिया। श्रीभगवान्‌ने उस समय मर्यादारक्षार्थ नास्तिकवादका तीव्र विरोध करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक उन्हें जो कुछ कहा, उसका एक वचन यह है—

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्-
यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधयाचरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥
(वा० रा० २।१०९।३३)

इसप्रकारकी बुद्धिसे आचरण करनेवाले तथा परम नास्तिक और धर्म-मार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ। क्योंकि आप अवैदिक दुर्मार्गस्थित बुद्धिवाले हैं।' आखिर जाबालिके यह कहनेपर कि 'मैं नास्तिक नहीं हूँ, केवल आपको लौटानेके लिये ऐसा कह रहा था' और वशिष्ठजीके द्वारा इसका समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और *सत्यके उत्कट भावोंके आवेशमें नास्तिकवादकी अवज्ञाकी परा*काष्ठा यहाँतक पहुँची कि पितृभक्तिमें बँधे हुए श्रीरामने जो

पूज्य पिताके सत्यकी रक्षार्थ आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, उन्होंने पिताके कार्यमें भी अश्रद्धा प्रकट की। इससे जो मर्यादा स्थिर की गयी, उसका प्रत्यक्ष उद्देश यही है कि मनुष्यको अन्य सब विचार त्यागकर नास्तिक भावोंका उग्र विरोध करना चाहिये।

(६) अब गुरुभक्तिके गंग-तरंगवत् पावन प्रसंगपर विचार कीजिये।

यों तो कुल-उपास्य श्रीवशिष्ठ महाराजका महत्त्व तो स्थान स्थानपर प्रकट है। प्रत्येक धार्मिक और व्यावहारिक कार्यमें उनकी प्रधानता रही है, जो यह गुरुभक्तिका पूर्ण प्रमाण है। परन्तु देखना तो यह है कि विकट समस्या उपस्थित होनेपर अन्य उदाहरणीय चरित्रोंकी तरह गुरुभक्तिके प्रबल भावोंका ही हृदयमें साम्राज्य होकर उसकी अनन्यता किस विशेष चरित्रके द्वारा सिद्ध हो सकती है।—

खेदसे कहना पड़ता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण, मर्यादा-रक्षाके इस एक मुख्य अंगकी पूर्तिमें असमर्थ रही। उसमें कहीं भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं है, जिसके द्वारा इसको सिद्ध किया जा सके, प्रत्युत चित्रकूटमें तो उपर्युक्त प्रसङ्गमें जब श्रीगुरु महाराजने बड़े प्रबल हेतुवादके द्वारा श्रीभरतजीके पक्ष-समर्थनकी चेष्टा की तो दूसरोंकी भाँति उनका कथन भी भगवान्ने स्वीकार नहीं किया।

श्रीमानस-रामायणने अपनी सर्वाङ्गपूर्णता सिद्ध करते हुए चित्रकूटकी लीलामें ही इस मर्यादाकी भी यथेष्ट रक्षा की है—

श्रीवशिष्ठजी महाराज भरतजीका पक्ष लेकर भगवान्से कहते हैं—

> सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
> पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाउ॥

इसपर भगवान्ने जो उत्तर दिया वह गुरुभक्तिकी पराकाष्ठा है—

> सुनि मुनि वचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारे हि हाथ उपाऊ॥
> सब कर हित रुख राउर राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे॥
> प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माथे मानि करौं सिख सोई॥

विचारिये, कहाँ तो पितृभक्तिके पालनार्थ वनवासके लिये आप इतने दृढ़ हो रहे थे कि यदि कोई उसके विरुद्ध कहता था तो उसे तुरन्त उचित उत्तर दे दिया जाता था परन्तु आज गुरुदेवकी आज्ञाके सम्मुख श्रीभगवान्ने अपना वह संकल्प सर्वथा ढीला कर दिया। गुरुभक्तिकी इससे अधिक क्या मर्यादा हो सकती है?

(७) मातृभक्तिकी परम सीमाका यह उच्च उदाहरण सुननेयोग्य ही है—

पञ्चवटीमें श्रीजानकीजीसहित दोनों भ्राता सुखपूर्वक बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं। जब श्रीलक्ष्मणजीने श्रीभरतजीकी श्लाघा करते हुए कहा—

> भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
> कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥
> (वा०रा० ३।१६।३५)

जिसके पति श्रीदशरथजी महाराज और पुत्र साधु स्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी क्रूर स्वभाववाली कैसे हुई?'

यहाँ भी एक ओर वही प्राणपणसे सेवामें तत्पर 'अलीक-वचन बोलनेवाले' कनिष्ट भ्राता हैं और दूसरी ओर वही विमाता जिसके कारण यह सारा उत्पात और विघ्न हुआ। परन्तु कुछ भी हो, मातृभक्तिके भावोंने हृदयमें इतना उत्कट रूप धारण किया कि माताके विरुद्ध एक भी वचन उन्हें सहन नहीं हुआ। श्रीभगवान्ने कहा—

> न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
> तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥
> (वा०रा० ३।१६।३७)

'हे भाई! तुमको मँझली माताकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकु-कुल-श्रेष्ठ भरतजीकी ही बातें कहनी चाहिये। इससे अधिक मातृभक्तिकी मर्यादा और क्या हो सकती है?

(८) मित्र-धर्म और स्वामिधर्म दोनोंकी पराकाष्ठाके विचित्र चित्रका दर्शन इस एक ही मर्मस्पर्शी लीलामें हो जाता है?

भगवान्के निर्मल, विशिष्ट और मर्यादा-पूर्ण चरित्रोंमें तीन ऐसे हैं जिनमें उनके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण अबोध मनुष्य प्रायः आक्षेप किया करते हैं। इन तीनोंमें एक बालि-वधकी लीला है।

अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या, स्वयं बालिने भी श्रीभगवान्को अधिक्षिप्त किया है। उसके आक्षेपोंके उत्तरमें अनेक प्रकारसे समाधान हुआ है किन्तु इसमें सबसे मुख्य हेतु यह है—

जिस समय सुग्रीवसे मित्रता कर श्रीभगवान्ने प्रतिज्ञा की थी उसी समयके वचन हैं-

प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसन्निधौ ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥
(वा०रा०कि ४।१८।२८)

'मैंने सुग्रीवको जो वचन दिया था, उस प्रतिज्ञाको अब कैसे टाल सकता हूँ ?'

विचारिये, वालिने साक्षात् श्रीभगवान्का कोई अपराध नहीं किया था, किन्तु वालि अपने मित्र सुग्रीवका शत्रु था। अतः उसको अपना भी शत्रु समझकर उसके संहारकी तत्काल प्रतिज्ञा की गयी। यही तो मित्र-धर्मकी पराकाष्ठा है। मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने निजके हानि-लाभका सब विचार छोड़ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्भव हो, साधना चाहिये। इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शत्रुरूप भ्राताका वध किया गया। इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनता नहीं है किन्तु जिस बातपर मुख्य आक्षेप होता है वह यह है कि 'वालिको युद्धाह्वान द्वारा सम्मुख होकर धर्मपूर्वक क्यों नहीं मारा?' इस शंकाका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस दोनों रामायणोंके मूलसे नहीं होता। टीकाओंके निर्णय-अनुसार यथार्थ बात यह थी कि वालिको एक मुनिका वरदान था कि सम्मुख युद्ध करनेवालेका बल उसमें आ जायगा, जिससे उसके बलकी वृद्धि हो जायगी। इस दशामें भगवान्के लिये एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई। वालिको प्रतिज्ञा-पालनार्थ अवश्य मारना है। यदि अपनी ऐश्वर्य शक्तिसे काम लेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है जो आपकी ही भक्तिके बलपर मुनिने दिया था। और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मपूर्वक युद्ध न होनेसे पापकी प्राप्ति और जगत्में निन्दा होती है। इस समस्याके उपस्थित होते ही स्वामिधर्मके भावोंने हृदयमें इतनी प्रबलता की कि भगवान् अपने धर्माधर्म और निन्दास्तुतिके विचारको हृदयसे तत्काल निकाल, अपने जनका मुख ऊँचा करना ही मुख्य समझ उस सुग्रीवसे लड़ते हुए वालिको बाणसे मारकर गिरा ही तो दिया।

इससे यही मर्यादा निश्चित हुई कि स्वामीको कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये जिससे अपनी स्वार्थ-सिद्धिके द्वारा अपने दास या सेवकका महत्त्व घटे। इस विषयपर सत्यहृदय और निष्पक्षबुद्धिसे विचार करना चाहिये कि श्रीभगवान्का धर्मयुक्त कार्य वरदानकी महिमाको क्षीण करते हुए सम्मुख धर्मयुद्ध करना होता या अब हुआ है जिसमें अपने निजका विचार हृदयसे निकालकर केवल अपने जनके वरकी प्रतिष्ठा रक्खी गयी?

(९) अब शरणागत-वत्सलताके महत्त्व निरूपणका प्रसंग देखिये—

जिस समय विभीषणजी अपने भ्राता रावणसे तिरस्कृत होकर श्रीरामदलमें आये उस समय श्रीभगवान्ने अपने सभी समीपस्थोंसे सम्मति ली। उसमें किसीका मत विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ। बात भी ऐसी ही थी, अकस्मात् आये हुए साक्षात् शत्रुके भाईका सहसा कैसे विश्वास हो? किन्तु इन सब विचारोंको हृदयमें किञ्चित् भी स्थान न दे शरणागत-वत्सलताके भावसे श्रीरामने सहसा अपना निश्चय इस वचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो महावाक्य समझा जाता है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
(वा. रा. ६।१८।३३)

(१०) लोकमतका क्या मूल्य है और राजाको लोकहितकी कितनी आवश्यकता है, इस प्रमुख विषयपर यह दृढ़ हृदयकी लीला पूर्ण प्रकाश डालेगी—इसी चरित्रसे पातिव्रत धर्म और एकपत्नीव्रतका आदर्श भी सिद्ध होगा। वालि-वध-लीलामें कहा गया था कि भगवान्की तीन लीलाओंपर आक्षेप होता है। उनमें दूसरी यह है। किन्तु यह आक्षेप ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं जिनमें इस कराल कालके कारण पूर्ण विकृतियाँ आ गयी हैं। इस परम संकीर्णताके युगमें ऐसे राजाओंके दर्शन तो कहाँसे हों जो प्रजाके आन्तरिक भाव जाननेका यत्न करके उनके कष्ट-क्लेश या अपवादोंको यथाशक्य दूर करनेकी चेष्टा करें, किन्तु ऐसे भी तो नहीं हैं जो खुलेरूपसे धर्मपूर्वक आन्दोलनके द्वारा प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आदर करें। आजकल तो ऐसे प्रयासोंका उलटा दमन होता है। आजकलकी नीतिके अनुसार तो न्यायका पात्र वही समझा जाता है जो अपने प्रबल संगठनद्वारा राज्यको बाध्य करे। बस, ऐसी ही क्षुद्र नीतियोंका अनुभव कर लोग इन उदार चरित्रों पर तुरन्त कुतर्क करनेको सन्नद्ध हो जाते हैं, और यह नहीं सोचते कि उस रामराज्यमें लोकमतके आदरकी सीमा इतनी ऊँची थी कि वह आजकलके संकीर्ण विचारवालोंकी कल्पना तकमें भी नहीं आ सकती। प्रत्युत वे तो उसमें

उल्टे दूषण लगाते हैं। उस समय प्रजाके सच्चे हितके लिये कैसा भी कठिन साधन बचाकर नहीं रक्खा जाता था। इसीका एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है। एक दिवस कुछ हास्यकार पुरुष हास्यादिद्वारा श्रीभगवान्‌को रिझा रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌ने उनसे पूछा कि 'नगरमें हमारे सम्बन्धकी क्या बातें हुआ करती हैं? उत्तरमें निवेदन किया गया कि 'सेतुबन्धन, रावणवधादि अद्भुत कार्योंकी पूर्ण प्रशंसा है किन्तु इसप्रकारकी चर्चा भी नगरमें हो रही है कि रावणने जिन श्रीसीताजीको अङ्कमें लेकर उनका हरण किया और जिन्होंने उसके घरमें निवास किया उनको जब महाराजने स्वीकार कर लिया तो अब हम भी अपनी स्त्रियोंके ऐसे कार्योंको सहन करेंगे।'

श्रीभगवान्‌को यह सुनकर परम खेद हुआ। उन्हें अपनी आदर्श पतिव्रता सहधर्मिणीकी पूर्ण पवित्रताका अटल निश्चय था, बल्कि रावणके विजय करनेके अनन्तर उसको अपने समीप बुलाने पर कठिन अग्निपरीक्षा भी करा ली गयी थी और उसमें वह सबके समक्ष डोलके डंके उत्तीर्ण हुई थी। यह सब कुछ सूर्यवत् निष्कलङ्क सिद्ध होते हुए भी केवल लोकमतका महत्त्व बढ़ानेके लिये अपनी उस प्राणप्रियाके—जिसका वनवासमें किञ्चित्-कालीन वियोग ही सर्वथा असह्य हो गया था—परित्यागका ही निश्चय करके अपने तीनों भ्राताओंके सम्मुख श्रीरामने यह वचन कहे--

'पुरजन और देशवासियोंके द्वारा (मेरे विषयमें) यह बहुत बड़ा अपवाद है। संसारमें उत्पन्न होनेवाले जिस किसीकी निन्दा की जाती है वह निश्चय जबतक वे अकीर्तिके शब्द कहे जाते हैं तबतक नीचे लोकोंमें गिरता है। निन्दाकी बुराई देवता भी करते हैं और कीर्तिका संसारमें आदर होता है। सब बड़े महात्माओंकी संसार व्यवहारमें कीर्तिके लिये ही प्रवृत्ति है। हे पुरुषश्रेष्ठो! मैं अपने प्राण और तुम सबको भी (प्रजामें कीर्ति-रक्षाके लिये) त्याग सकता हूँ।'

कहिये, लोकमतका इससे अधिक आदर क्या हो सकता है? और इसी कारण ऐसा त्याग किया गया कि जिससे अधिक सम्भव ही नहीं। परन्तु इसमें मुख्य तथा विचारणीय बात यह है कि यहाँ कोरे पोले लोकमतका ही आदर नहीं किया गया है, इसमें परम लोकहित भी अभिमत था, क्योंकि संसारकी दृष्टि अन्तर्वर्ती हेतुओंके तल तक न पहुँच केवल परिणामपर रहती है। अतः जैसा श्रीजानकीजीका शुद्ध चरित्र था, उसकी सर्वथा उपेक्षा करके स्थूलदृष्टिके द्वारा यही प्रसिद्ध हो गया कि, जब राजाने राक्षसोंके वशमें प्राप्त हुई पत्नीको ग्रहण कर लिया तो प्रजा भी राजाका ही अनुकरण करेगी। विचारिये, यदि श्रीभगवान् अपने हृदयको पाषाण बनाकर श्रीजानकीजीका त्यागरूप उग्र कार्य न करते तो सदाचारको कितना भयानक धक्का पहुँचता? सभी स्त्रियाँ श्रीजानकीजीके तुल्य ऐसे कठिन पातिव्रतधर्ममें दृढ़ नहीं रह सकतीं विशेषकर कलियुग-सरीखे समयमें। सच पूछा जाय तो यह आदर्श आजकेसे समयके लिये नहीं था क्योंकि आज तो सदाचारका सर्वथा लोप होकर संसारमें धर्मविरुद्ध विचारों-की यहाँतक प्रबलता है कि लोग विवाह-संस्काररूप मुख्य संस्कारके बन्धनोंको भी छिन्न भिन्न करवानेके लिये राजासे कानून बनवा रहे हैं। इस कराल कालमें योनि-पवित्रता तो कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके कारण देश थोड़े ही समयमें वर्णसंकर-सृष्टिसे व्याप्त हो जायगा। श्रीभगवान्‌के इस दूर-दर्शितापूर्ण चरित्रसे पातिव्रतधर्म और एकपत्नीव्रतकी भी पूर्ण पराकाष्ठा प्रमाणित हुई, श्रीजानकीजीकी जबतक वे श्री-भगवान्‌के साथ रहीं, पूर्ण अनुरक्तता प्रकट ही है और अन्तमें भी उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पालन करते हुए ही घोर यातना सहकर शरीर त्याग किया। साथ ही श्रीभगवान्‌ने भी कभी अन्य स्त्रीका संकल्प भी हृदयमें नहीं किया और वियोगके पश्चात् ब्रह्मचर्यमें ही अपनी लीला समाप्त की।

(११) अन्तमें एक ऐसे पवित्र चरित्रका निरूपण होगा जिससे वर्णाश्रम-धर्म-रक्षा और न्यायपरायणताकी परा-काष्ठा सिद्ध होती है।

वस्तुतः यह विषय गहन है और इसकी गहनताको न समझकर ही लोगोंकी दृष्टिमें यह अधिक आक्षेपयोग्य समझा गया है। यह आक्षेपजनक तीसरी लीला है।

एक समय एक ब्राह्मणका इकलौता बालक मर गया। उसने मृत पुत्रको लाकर राजद्वारपर डाल दिया और विलाप करते हुए आक्रोश किया कि 'इस बालककी अकालमृत्युका कारण राजाका महान् दुष्कृत है।' ऋषिमुनि आदिकी परिषद्-के द्वारा विचार किया गया तो योगबलसे या दिव्यदृष्टिसे यह निर्णीत हुआ कि कोई शूद्र अनधिकार तप कर रहा है। उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई। जहाँ ऐसा अनाचार होता है वहाँ लक्ष्मीका अभाव हो जाता है और वहाँका राजा नरकगामी होता है।

यह सुनते ही श्रीभगवान् किसी अधिकारी या कर्मचारी-

को अनुसन्धानकी आज्ञा देकर अथवा कोई गुप्तचर (सी० आई०डी०) लगाकर दायित्वसे मुक्त नहीं हुए, तत्काल पुष्पक विमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण-दिशामें पहुँचे तो देखा कि एक पुरुष कठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रश्न करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्बूक नामक शूद्र देवलोककी प्राप्तिके लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान्‌ने खड्गसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका वध हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संक्षिप्तरूपसे कथा इतनी ही है, किन्तु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल दृष्टि-सृष्टिवादपर ही तुले हुए हैं अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्षके बाहर जाती ही नहीं उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणोंसे समझाया जाय, वे उस तत्त्व पर पहुँच ही नहीं सकते। इसी एक बातको लीजिये कि आज जो स्थान स्थानपर हृदय विदीर्ण करनेवाले दृश्य देखनेमें आ रहे हैं—पिता पितामह अपने बेटे पोते सबको स्मशानभूमिके अर्पणकर पूर्वजन्मके घोर अनिष्ट संस्कारोंको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें अकालमृत्यु ही नहीं होती थी अर्थात् प्राणी अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे और ऐसा अवसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे। तो यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सभ्यताकी चकाचौंधसे विकृत हुई दृष्टिवाले भले ही इसपर दिल्लगी उड़ावें किन्तु जिनको चारों युगोंके भिन्न भिन्न धर्मोंका ज्ञान है उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो प्रबल शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निर्णय होकर वह राजाके न्यायसे जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो तो आज तो राजद्वारोंपर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायँ और राजद्वारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करना तो पवित्र काम है, उसको सदोष क्यों समझा गया? और ऐसा हो भी तो उस शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं। यह बात कुछ समझमें नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शंकाका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उग्र दण्ड क्यों दिया गया जो अति घृणित या निर्दयतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें—जब कि धर्मपर श्रद्धाकी पूर्ण शिथिलता हो रही है— ये शंकाएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः दृष्टाऽदृष्टार्थ साधक है-अर्थात् उसके दो विभाग हैं। एक अदृष्ट अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट अर्थसाधक। यद्यपि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है एवं दोनोंकी रक्षाका दायित्व भी राजापर ही है किन्तु जो भाग अदृष्टार्थसाधक है उसमें प्रधानता योगबलविशिष्ट और दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि आदि परमोच्च आत्माओंकी है, पर दूसरे दृष्ट-अर्थ-साधक भागका—जिसका पृथक् नाम व्यवहार हो गया है—सम्पादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारीगणोंके द्वारा भी हो सकता है और वही राजतन्त्र कहलाता है। अदृष्टार्थ भागसे ऐसे विषयोंका सम्बन्ध है जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति नियमानुसार वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं जाते थे किन्तु दैवी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कष्टोंकी भी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय किया जाता था। यही रामराज्यका महत्त्व था। आज वह पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वैसे राजा ही हैं जो अदृष्ट विभागका पूर्ण नियन्त्रण कर सकें। इसी कारण वर्ण और आश्रम-धर्मका वेगसे लोप होता चला जा रहा है। अब तो केवल दृष्ट भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किन्तु उसकी दशा भी स्वार्थियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। जब व्यवहारसम्बन्धी न्यायोंकी ही दुर्दशा है तो अदृष्टविभागके

द्वारा न्याय कहाँ सम्भव है ? इसी कारण अब राजद्वारपर मृतक ले जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता।

(ख) तप करना पवित्र ही नहीं वह तो परमोच्च कक्षाका साधन है, जिसका सृष्टिके आदिमें श्रीभगवान्‌ने ब्रह्माजीको उपदेश किया था। किन्तु, इसके साधनके लिये चाहिये अधिकारी। यह शूद्र अधिकारी नहीं था, क्योंकि श्रीभगवान्‌के 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' वचनानुसार प्रत्येक वर्णकी उत्पत्ति कर्म और गुणके आधारपर हुई है। तदनुकूल इस वर्णमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च कर्मकी योग्यता हो सके और यदि अहङ्कारपूर्वक कोई उच्च कर्मका संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है। उदाहरणके लिये समझ लीजिये कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन झपटकर स्वयं आरूढ हो जाय तो कितनी अस्तव्यस्तता होकर दृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल मच जाय। बस, इसी-प्रकार यदि कनिष्ठ अधिकारी ऊँचे अधिकारका कर्म करने लगे तो अदृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें भी पूर्ण हलचल मचकर उसके परिणामभूत उत्पात और विघ्न आ उपस्थित हों। राजापर दोनोंका दायित्व है। इसलिये राजाका कर्तव्य है कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोचित दण्डविधान करे। आज यद्यपि दृष्टार्थसाधक धर्मविभागका तो ढर्रा जैसे तैसे चल रहा है परन्तु अदृष्टार्थ धर्मविभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्णसंकर-सृष्टिके कारण अनधिकार क्रियाओंसे व्याप्त हो रहा है। मुख्यतया इसी कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, हिम, आतप, शलभ, महामारी आदि उपद्रवोंका वेग पूर्णरूपसे बढ़ रहा है।

यहाँ यह आक्षेप अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशामें शूद्रके लिये आत्मोन्नति या आत्मोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है। यद्यपि देखनेमें यह आक्षेप प्रबल दीखता है किन्तु वास्तवमें बात यह है कि ऊपर जो वर्णव्यवस्था प्रदर्शित की गयी है वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके यथार्थ पालन करनेपर अवश्य क्रमशः उन्नति होती है। इसीके द्वारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है। परन्तु इन सबके ऊपर सद्यःफलप्रदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन अस्त हो जाते हैं। वहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी नीचे अन्त्यज भी उस गतिको प्राप्त होते हैं जिसको ऋषिमुनिगण तरसा करते हैं। यहीं देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका वध हुआ, उन्होंने ही शबरी और निषाद-जैसे अन्त्यजोंसे असीम प्रेम किया। उसीके प्रभावसे उनका यशगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है। भगवान्‌ने केवल इन्हींसे प्रेम किया हो सो नहीं, पशु वानरोंके दलोंके दल आत्मसात कर लिये, जिनमें कई तो प्रातः-स्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बढ़ी हुई है कि श्रीभगवान्‌के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है। यदि 'पवनसुत हनुमान्‌जीकी जय' न बोली जाय तो 'सियावर रामचन्द्रकी जय' फीकी-सी लगने लगती है। आज छूताछूतका प्रसंग उठाकर जो लोग वर्ण-व्यवस्थाको नष्ट भ्रष्ट करनेपर तुले हुए हैं, वे यदि अपनी सुबुद्धिको काममें लाकर श्रीभगवान्‌के इस सिद्धान्तको यथार्थ-रूपसे समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले।

अब यह शंका रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध है ? इसके समाधानमें उपर्युक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होना ही था। सो वह इस ब्राह्मण बालककी मृत्युरूपमें परिणत हुआ। अब एक तो यह रहा कि तप करनेवाला कहाँ और बालक कहाँ और दूसरे यह कि अस्त्रादिके प्रहारसे ही किसीका वध हुआ करता है परन्तु बालककी मृत्युका हेतु तप क्योंकर समझा जा सकता है ? वस्तुतः तप करना और उसका इष्टानिष्ट परिणाम होना, इन सबका अदृष्टार्थ धर्मविभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्‌का व्यवहार है। जो अवयवरहित अरूप या अदृष्ट है। यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है सो तो केवल स्थूल जगत्‌का दृश्य है। इसके सूक्ष्मरूपका दृष्टान्त बरगदके बीजसे समझना चाहिये। अर्थात् इतना विस्तृत वृक्ष एक राई-से बीजमें समाया हुआ रहता है। अतः सूक्ष्म जगत्‌में वैसा अन्तर नहीं रहता जैसा स्थूलमें दीखता है और वध होनेमें भी जैसे स्थूल जगत्‌में अस्त्रादिका प्रहार नेत्रका विषय होता है वहाँ वैसा नहीं होता। वहाँ इस प्रकारकी घटनाएँ अवयवरहित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती हैं, जो चर्मचक्षुका विषय नहीं है। आजकल विज्ञानकी इस परमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शंकाओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि जब हम भौतिक जगत्‌में भी बिना तारके सहस्रों कोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मभूतोंका चमत्कार देखते हैं,—जो चक्षु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अध्यात्म जगत्‌के चमत्कारोंपर हमें क्यों सन्देह होना चाहिये ? अब यह कि, उस बालककी ही मृत्यु क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके

लिये अधिक दूर न जाइये। यह बात प्रसिद्ध है कि अनेक रोगोंके कीटाणु सदैव आकाश-मण्डलमें फिरा करते हैं, किन्तु न सब रोगोंकी ही उत्पत्ति एक साथ होती है और न सब मनुष्य ही किसी रोगमें एक साथ ग्रस्त होते हैं। विशेष देश, काल और पात्र ही उनके आह्वानके हेतु होते हैं। बस, यही दशा सूक्ष्म जगत्‌की है। अतः ऐसी ही विशेषताओंसे उस क्षणमें वह बालक ही अनिष्ट परिणामका पात्र हुआ।

इस उपर्युक्त परिस्थितिपर दृष्टि डालनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी श्रीभगवान्‌के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उपस्थित थी! एक ओर जिस ब्राह्मण-बालकका मृतक शरीर उसके मा बापने द्वारपर डाल रक्खा है उसके लिये न्याय करनेकी उत्कट चिन्ता और दूसरी ओर एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका वध, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इसप्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका निरूपण ऊपर किया गया है किन्तु वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा और न्यायपरायणताके भावोंके सम्मुख श्रीरामने अन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया।*

(ग) अब रही ऐसे उग्र दण्डवाली तीसरी शङ्का, सो यह एक बात तो प्रत्यक्ष ही है, आजकी न्याय-पद्धतिमें भी देखा जाता है कि किसीका वध करनेपर अपराधीको वधका ही दण्ड दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जिस राजाके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका डंका बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, वहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें बाधक होना सिद्ध हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दण्ड दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े।

(१२) उपर्युक्त ग्यारह पवित्र चरित्रोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है उसका यथामति दिग्दर्शन कराया गया।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है कि सामूहिकरूपसे इस लेखमें प्रतिपादित समस्त चरित्रोंसे या अन्योंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, यह परमअनुकरणीय मर्यादा और निश्चित होती है कि प्रारब्ध-वशात् कितनी भी आपत्तियोंके आनेपर भी मनुष्यको पुरुषार्थहीन होकर लक्ष्यच्युत नहीं होना चाहिये। विचारिये, श्रीरामकी परम दारुण आपत्तियाँ राज्यसिंहासनके त्याग या वनवासमें ही समाप्त नहीं हुईं किन्तु यहाँतक पीछे पड़ीं कि प्राणसे प्यारी धर्मपत्नीका भी वियोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विकट और प्रबल राक्षसके हरणद्वारा, परन्तु जितनी जितनी अधिक भीषण आपत्तियाँ आयीं उतने ही उतने अधिकाधिक पुरुषार्थके लिये उत्साह होता गया। अतः प्राणीमात्रके जीवनकी सफलताके लिये श्रीभगवान्‌के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जितनी अधिक आपत्तियां आवें, उतना ही अधिक पुरुषार्थ किया जाना चाहिये।

* भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षाके लिये शम्बूकका वध किया परन्तु उसकी सत्कामनाका फल भी उसे दे दिया। वह स्वर्ग-के लिये तप कर रहा था अतएव भगवान्‌ने उसका वध करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया। अध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्।' शूद्रको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे मर्यादारक्षाके साथही भगवान्‌की दयालुता और उसके तपकी सफलता भी प्रकट होती है। —सम्पादक

इष्टदेव रामसे विनय!

मन मन्दिरके इष्टदेव!
इस जीवनके आधारे!
हे मधुकर! वर सुमन कलीके
स्नेह-लता रखवारे!!

बहुत दिनोंतक खोज-खोजकर
हाय! तुम्हें हम हारे।
किन्तु नहीं कुछ लगा पता
हा! बही नयन-जल-धारे॥

आज हुआ सौभाग्य प्राप्त
हम पहुँचे पास तुम्हारे।
हुए अहा! कृतकृत्य देखकर
दोनों नयन हमारे॥

आये हैं हम यहाँ तुम्हारे
दर्शन हेतु दुलारे!
हृदय आज यह अर्पण करने
प्रेम चोटके मारे॥

हम चातक हैं, स्वातिबुन्द तुम,
चलो हमारे द्वारे।
करो पुण्यमय हे प्रियवर!
चल गृहको आज हमारे॥

श्रीरामवचन द्विवेदी "अरविन्द"

सीता-वनवास ।

अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ।

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।

प्राणैरपि प्रियं तस्मात् भर्तुः कार्यं विशेषतः ।

Lakshmibilas Press Ltd., Cal.

श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि अखिल विश्वके स्त्री-चरित्रोंमें श्रीरामप्रिया जगज्जननी जानकीजीका चरित्र सबसे उत्कृष्ट है। रामायणके समस्त स्त्रीचरित्रोंमें तो सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद पद पर अनुकरण करने योग्य है ही। भारत-ललनाओंके लिये सीताजीका चरित्र सन्मार्गपर चलनेके लिये पूर्ण मार्गदर्शक है। सीताजीके असाधारण पातिव्रत, त्याग, शील, अभय, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्म-परायणता, नम्रता, सेवा, संयम, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ जगत्‌की विरली ही महिलामें मिल सकते हैं। श्रीसीताके पवित्र जीवन और अप्रतिम पातिव्रत-धर्मके सदृश उदाहरण रामायणमें तो क्या जगत्‌के किसी भी इतिहासमें मिलने कठिन हैं। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताके जीवनकी सभी बातें—केवल एक प्रसङ्गको छोड़कर—पवित्र और आदर्श हैं। ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे हमारी मा-बहिनोंको सत्‌शिक्षा न मिले। संसारमें अबतक जितनी स्त्रियाँ हो चुकी हैं, श्रीसीताको पातिव्रत-धर्ममें सर्व-शिरोमणि कहा जा सकता है। किसी भी ऊँचीसे ऊँची स्त्रीके चरित्रकी सूक्ष्म आलोचना करनेसे ऐसी एक-न-एक बात मिल ही सकती है जो अनुकरणके योग्य न हो, परन्तु सीताका ऐसा कोई भी आचरण नहीं मिलता।

जिस एक प्रसंगको सीताके जीवनमें दोषयुक्त समझा जाता है, वह है मायामृगको मारनेके लिये श्रीरामके चले जाने और मारीचके मरते समय 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार करने पर सीताजीका घबड़ाकर लक्ष्मणके प्रति यह कहना कि 'मैं समझती हूँ कि तू मुझे पानेके लिये अपने बड़े भाईकी मृत्यु देखना चाहता है। मेरे लोभसे ही तू अपने भाईकी रक्षा करनेको नहीं जाता।' इस बर्तावके लिये सीताने आगे चलकर बहुत पश्चात्ताप किया। साधारण स्त्री-चरित्रमें सीताजीका यह बर्ताव कोई विशेष दोषयुक्त नहीं है। स्वामीको संकटमें पड़े हुए समझकर आतुरता और प्रेमकी बाहुल्यतासे सीताजी यहाँपर नीतिका उल्लंघन कर गयी थीं। श्रीराम-सीताका अवतार मर्यादाकी रक्षाके लिये था, इसीसे सीताजीकी यह एक गलती समझी गयी और इसीलिये सीताजीने पश्चात्ताप किया था।

नैहरमें प्रेम-व्यवहार

जनकपुरमें पिताके घर सीताजीका सबके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव था छोटे बड़े सभी स्त्री-पुरुष सीताजीको हृदयसे चाहते थे। सीताजी आरम्भसे ही सलज्जा थी। लज्जा ही स्त्रियोंका भूषण है। वह प्रतिदिन माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया करती थी, घरके नौकर-चाकर तक उसके व्यवहारसे परम प्रसन्न थे। सीताजीके प्रेमके बर्तावका कुछ दिग्दर्शन उस समयके वर्णनसे मिलता है जिस समय सीताजी ससुरारके लिये विदा हो रही है—

पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी। बार-बार भेंटहि महतारी॥
पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

प्रेम-बिबस नर-नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना-बिरह-निवास॥

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही॥
भये बिकल खगमृग एहि भाँती। मनुजदसा कैसे कहि जाती॥
बंधु समेत जनक तब आए। प्रेम उमँगि लोचन जल छाए॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यानकी॥

जहाँ ज्ञानियोंके आचार्य जनकके ज्ञानकी मर्यादा मिट जाती है और पिंजरेके पखेरू तथा पशु-पक्षी भी 'सीता सीता' पुकारकर व्याकुल हो उठते हैं, वहाँ कितना प्रेम है, इस बातका अनुमान पाठक कर लें! सीताके इस चरित्रसे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि स्त्रीको नैहरमें छोटे बड़े सभीके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित है जो सभीको प्रिय हो।

माता-पिताका आज्ञा पालन

सीता अपने माता-पिताकी आज्ञा पालन करनेमें कभी नहीं चूकती थी। माता-पितासे उसे जो कुछ शिक्षा मिलती, श्रीसीता उसपर सदा अमल करती थी। मिथिलासे विदा होते समय और चित्रकूटमें सीताजीको माता-पितासे जो कुछ शिक्षा मिली है, वह स्त्रीमात्रके लिये पालनीय है—

होयेहु संतत पियहि पियारी। चिर अहिबात असीस हमारी॥
सासु-ससुर-गुरु-सेवा करेहू। पति-रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥

पतिसेवाके लिये प्रेमाग्रह

श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले एकाएक वनवास हो गया। सीताजीने यह समाचार सुनते ही तुरन्त अपना कर्त्तव्य निश्चय कर लिया। नैहर-ससुरार, गहने-कपड़े, राज्य-परिवार, महल-बाग, दास-दासी और भोग-राग आदिसे कुछ मतलब नहीं। छायाकी तरह पतिके साथ रहना ही पत्नीका एकमात्र कर्त्तव्य है। इस निश्चयपर आकर सीताने श्रीरामके साथ वनगमनके लिये जैसा कुछ व्यवहार किया है, वह परम उज्ज्वल और अनुकरणीय है। श्रीसीताजीने प्रेमपूर्ण विनय और हठसे वनगमनके लिये पूरी कोशिश की। साम, दाम, नीति सभी वैध उपायोंका अवलम्बन किया और अन्तमें वह अपने प्रयत्नमें सफल हुई। उसका ध्येय था किसी भी उपायसे वनमें पतिके साथ रहकर पतिकी सेवा करना। इसीको वह परम धर्म समझती थी। इसीमें उसे परम आनन्दकी प्राप्ति होती थी। वह कहती है—

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई॥
सास-ससुर-गुरु-सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥
जहँलगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते॥
तन-धन-धाम-धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सब सोक-समाजू॥
भोग रोग सम, भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥

वनके नाना क्लेशों और कुटुम्बके साथ रहनेके नाना प्रलोभनोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयपर अडिग रहती है। वह पति-सेवाके सामने सब कुछ तुच्छ समझती है।

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारें॥

यहाँपर यह सिद्ध होता है कि सीताजीने एकबार प्राप्त हुई पति आज्ञाको बदलाकर दूसरी बार अपने मनोऽनुकूल आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रेमाग्रह किया। यहाँतक कि, जब भगवान् श्रीराम किसी प्रकार भी नहीं माने तो हृदय विदीर्ण हो जानेतकका सङ्केत कर दिया—

ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौ न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान॥

अध्यात्मरामायणके अनुसार तो श्रीसीताने यहाँतक स्पष्ट कह दिया कि—

रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः।
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद॥
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी।
यदि गच्छति मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः॥
(अ० रा०)

'मैंने भी ब्राह्मणोंके द्वारा रामायणकी अनेक कथायें सुनी हैं। कहीं भी ऐसा कहा गया हो तो बतलाइये कि किसी भी रामावतारमें श्रीराम सीताको अयोध्यामें छोड़कर वन गये हैं। इस बार ही यह नयी बात क्यों होती है? मैं आपकी सेविका बनकर साथ चलूँगी। यदि किसी तरह भी आप मुझे नहीं ले चलेंगे तो मैं आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगी।' पतिसेवाकी कामनासे सीताने इसप्रकार स्पष्टरूपसे अवतारविषयक अपनी बड़ाईके शब्द भी कह डाले।

वाल्मीकि-रामायणके अनुसार सीताजीके अनेक रोने, गिड़गिड़ाने, विविध प्रार्थना करने और प्राणत्यागपूर्वक परलोकमें पुनः मिलन होनेका निश्चय बतलानेपर भी जब श्रीराम उसे साथ ले जानेको राजी नहीं हुए तब, सीताको बड़ा दुःख हुआ और वह प्रेमकोपमें आँखोंसे गर्म-गर्म आँसुओंकी धारा बहाती हुई नीतिके नाते इसप्रकार कुछ कठोर वचन भी कह गयी, कि—'हे देव! आप सरीखे आर्यपुरुष मुझ जैसी अनुरक्त, भक्त, दीन और सुख-दुःखको समान समझनेवाली सहधर्मिणीको अकेली छोड़कर जानेका विचार करें, यह आपको शोभा नहीं देता। मेरे पिताने आपको पराक्रमी और मेरी रक्षा करनेमें समर्थ समझकर ही अपना दामाद बनाया था।' इस कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीराम लड़कपनसे अत्यन्त श्रेष्ठ पराक्रमी समझे जाते थे। इस प्रसङ्गमें श्रीवाल्मीकिजी और गो० तुलसीदासजीने सीता-रामके संवादमें जो कुछ कहा है सो प्रत्येक स्त्री-पुरुषके ध्यानपूर्वक पढ़ने और मनन करने योग्य है।

सीताजीके प्रेमकी विजय हुई, श्रीरामने उसे साथ ले चलना स्वीकार किया। इस कथानकसे यह सिद्ध होता है कि पत्नीको पतिसेवाके लिये—अपने सुखके लिये नहीं—पतिकी आज्ञाको दुहरानेका अधिकार है। वह प्रेमसे पति-सुखके लिये ऐसा कर सकती है। सीताने तो यहाँतक कह दिया था 'यदि आप आज्ञा नहीं देंगे तब भी मैं तो साथ चलूँगी।' सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी आजतक कोई भी निन्दा नहीं करता, क्योंकि सीता केवल पतिप्रेम और पति-सेवाहीके लिये समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर

वन जानेको तैयार हुई थी, किसी इन्द्रिय-सुखरूप स्वार्थ-साधनके लिये नहीं! इससे यह नहीं समझना चाहिये कि सीताका व्यवहार अनुचित या पतिव्रत-धर्मसे विरुद्ध था। स्त्रीको धर्मके लिये ही ऐसा व्यवहार करनेका अधिकार है। इससे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सहधर्मिणी पतिव्रता पत्नीकी बिना इच्छा उसे त्यागकर अन्यत्र चले जाना अनुचित है। इसीप्रकार स्त्रीको भी पति-सेवा और पति-सुखके लिये उसके साथ ही रहना चाहिये। पतिके विरोध करनेपर भी कष्ट और आपत्तिके समय पति-सेवाके लिये स्त्रीको उसके साथ रहना उचित है। अवश्य ही अवस्था देखकर कार्य करना चाहिये। सभी स्थितियोंमें सबके लिये एकसी व्यवस्था नहीं हो सकती। सीताने भी अपनी साधुताके कारण सभी समय इस अधिकारका उपयोग नहीं किया था।

पतिसेवामें सुख

वनमें जाकर सीता पतिसेवामें सब कुछ भूलकर सब तरह सुखी रहती है। उसे राजपाट, महल-बगीचे, धन-दौलत और दास-दासियोंकी कुछ भी स्मृति नहीं होती। रामको वनमें छोड़कर लौटा हुआ सूत सीताके लिये विलाप करती हुई माता कौशल्यासे कहता है— 'सीता निर्जन वनमें घरकी भाँति निर्भय होकर रहती है, वह श्रीराममें मन लगाकर उनका प्रेम प्राप्त कर रही है। वनवाससे सीताको कुछ भी दुःख नहीं हुआ, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि (श्रीरामके साथ) सीता वनवासके सर्वथा योग्य है। चन्द्रानना सती सीता जैसे पहले यहाँ बगीचोंमें जाकर खेलती थी, वैसे ही वहाँ निर्जन वनमें भी वह श्रीरामके साथ बालिकाके समान खेलती है। सीताका मन राममें है, उसका जीवन श्रीरामके अधीन है, अतएव श्रीरामके साथ सीताके लिये वन ही अयोध्या है और श्रीरामके बिना अयोध्या ही वन है।' धन्य पातिव्रत! धन्य!

सास-सेवा

श्रीसीता पतिसेवाके लिये वन गयी, परन्तु उसको इस बातका बड़ा क्षोभ रहा कि सासुओंकी सेवासे उसे अलग होना पड़ रहा है। सीता सासके पैर छूकर सच्चे मनसे रोती हुई कहती है—

× × × । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभ जनि छाँड़िअ छोहू । करम कठिन कछु दोस न मोहू ॥

सास-पतोहूका यह व्यवहार आदर्श है। भारतीय ललनाएँ यदि आज कौशल्या और सीताका-सा व्यवहार करना सीख जायँ तो भारतीय गृहस्थ सब प्रकारसे सुखी हो जायँ। सास अपनी वधुओंको सुखी देखनेके लिये व्याकुल रहें और बहुएँ सासकी सेवाके लिये छटपटावें तो दोनों ओर ही सुखका साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

सहिष्णुता

सीताकी सहिष्णुताका एक उदाहरण देखिये। वन-गमनके समय जब कैकेयीजी सीताको वनवासके योग्य वस्त्र पहननेके लिये कहती है तब वशिष्ठ-सरीखे महर्षिका मन भी क्षुब्ध हो उठता है, परन्तु सीता इस कथनको केवल चुपचाप सुन ही नहीं लेती, आज्ञानुसार वह वस्त्रधारण भी कर लेती है। इस प्रसंगसे भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सास या उसके समान नातेमें अपनेसे बड़ी कोई भी स्त्री जो कुछ कहे या बर्त्ताव करे, उसको खुशीके साथ सहन करना चाहिये और कभी पतिके साथ विदेश जाना पड़े तो सच्चे हृदयसे सासुओंको प्रणामकर, उन्हें सन्तोष करवाकर, सेवासे वञ्चित होनेके लिये हार्दिक पश्चात्ताप करते हुए जाना चाहिये। इससे वधुओंको सासुओंका आशीर्वाद आप ही प्राप्त होगा।

निरभिमानता

सीता अपने समयमें लोकप्रसिद्ध पतिव्रता थी, उसे कोई पातिव्रतका क्या उपदेश करता? परन्तु सीताको अपने पातिव्रतका कोई अभिमान नहीं था। अनसूयाजीके द्वारा किया हुआ पातिव्रतधर्मका उपदेश सीता बड़े आदरके साथ सुनती है और उनके चरणोंमें प्रणाम करती है। उसके मनमें यह भाव नहीं आता कि मैं सब कुछ जानती हूँ। बल्कि अनुसूयाजी ही उससे कहती हैं-

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहिं प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥

इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि अपनेसे बड़े-बूढ़े जो कुछ उपदेश दें उसे अभिमान छोड़कर आदर और सम्मानके साथ सुनना चाहिये एवं यथासाध्य उसके अनुसार चलना चाहिये।

अतिथि-सेवा

सीताजीकी अतिथि-सेवाका भाव देखिये। वह अपने द्वारपर आये हुए अतिथि-अभ्यागतकी सेवा करनेसे कभी नहीं चूकती थी। कपटवेषमें द्वारपर खड़े हुए रावणको भी सीताने बड़े आदरसे भिक्षा देना चाहा था। इससे स्त्रियोंको यह सीखना चाहिये कि द्वारपर आये हुए अतिथिका प्रेमके साथ यथाशक्ति सत्कार करना उचित है।

गुरुजन-सेवा और मर्यादा

बड़ोंकी सेवा और मर्यादामें सीताका मन कितना लगा रहता था, इस बातको समझनेके लिये महाराज जनककी चित्रकूट-यात्राके प्रसङ्गको याद कीजिये। भरतके वन जानेपर राजाजनक भी रामसे मिलनेके लिये चित्रकूट पहुँचते हैं। सीताकी माता श्रीरामकी माताओंसे सीताकी सासुओंसे मिलती है और सीताको साथ लेकर अपने डेरेपर आती है। सीताको तपस्विनीके वेषमें देखकर सबको विषाद होता है, पर महाराज जनक अपनी पुत्रीके इस आचरणपर बड़े ही सन्तुष्ट होते हैं और कहते हैं—

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

माता-पिता बड़े प्रेमसे हृदयसे लगाकर अनेक प्रकारकी सीख और असीस देते हैं। बात करते-करते रात अधिक हो जाती है। सीता मनमें सोचती है कि सासुओंकी सेवा छोड़कर इस अवस्थामें रातको यहाँ रहना अनुचित है, किन्तु स्वभावसे ही लजाशीला सीता सङ्कोचवश मनकी बात मा-बापसे कह नहीं सकती—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥

चतुर माता सीताके मनका भाव जान लेती है और सीताके शील-स्वभावकी मन-ही-मन सराहना करते हुए माता-पिता सीताको कौशल्याके डेरेमें भेज देते हैं। इस प्रसङ्गसे भी स्त्रियोंको सेवा और मर्यादाकी शिक्षा लेनी चाहिये।

निर्भयता

सीताका तेज और उसकी निर्भयता देखिये। जिस दुर्दान्त रावणका नाम सुनकर देवता भी काँपते थे, उसीको सीता निर्भयताके साथ कैसे कैसे वचन कहती थी। रावणके हाथोंमें पड़ी हुई सीता अति क्रोधसे उसका तिरस्कार करती हुई कहती है 'अरे दुष्ट निशाचर, तेरी आयु पूरी हो गयी है, अरे मूर्ख! तू श्रीरामचन्द्रकी सहधर्मिणीको हरणकर प्रज्वलित अग्निके साथ कपड़ा बाँधकर चलना चाहता है। तुझमें और रामचन्द्रमें उतना ही अन्तर है जितना सिंह और सियारमें, समुद्र और नालेमें, अमृत और काँजीमें, सोने और लोहेमें, चन्दन और कीचड़में, हाथी और बिलावमें, गरुड़ और कौएमें तथा हंस और गीधमें होता है। मेरे अमित प्रभाववाले स्वामीके रहते तू मुझे हरण करेगा तो जैसे मक्खी घीके पीते ही मृत्युके वश हो जाती है, वैसे ही तू भी कालके गालमें चला जायगा।' इससे यह सीखना चाहिये कि परमात्माके बलपर किसी भी अवस्थामें मनुष्यको डरना उचित नहीं। अन्यायका प्रतिवाद निर्भयताके साथ करना चाहिये। परमात्माके बलका सच्चा भरोसा होगा तो रावणका वध करके सीताको उसके चंगुलसे छुड़ानेकी भाँति भगवान् हमें भी विपत्तिसे छुड़ा लेंगे।

धर्मके लिये प्राण-त्यागकी तैयारी

विपत्तिमें पड़कर भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। इस विषयमें सीताका उदाहरण सर्वोत्तम है। लङ्काकी अशोक-वाटिकामें सीताका धर्मनाश करनेके लिये दुष्ट रावणकी ओरसे कम चेष्टाएँ नहीं हुईं, राक्षसियोंने सीताको भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत ही तंग किया, परन्तु सीता तो सीता ही थी। धर्मत्यागका प्रश्न तो वहाँ उठ ही नहीं सकता, सीताने तो छलसे भी अपने बाहरी बर्तावमें भी विपत्तिसे बचनेके हेतु कभी दोष नहीं आने दिया। उसके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी बुरी स्फुरणा ही नहीं आ सकी। अपने धर्मपर अटल रहती हुई सीता दुष्ट रावणका सदा तीव्र और नीतियुक्त शब्दोंमें तिरस्कार ही करती रही। एक बार रावणके वाग्बाणोंको न सह सकनेके समय और रावणके द्वारा मायासे श्रीराम-लक्ष्मणको मरे हुए दिखला देनेके कारण वह मरनेको तैयार हो गयी परन्तु धर्मसे डिगनेकी भावना स्वप्नमें भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। वह दिनरात भगवान् श्रीरामके चरणोंके ध्यानमें लगी रहती थी। सीताजीने श्रीरामको हनुमान्‌के द्वारा जो संदेशा कहलाया, उससे पता लग सकता है कि उनकी कैसी पवित्र स्थिति थी—

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद-जन्त्रिका, प्रान जाहिं केहि बाट॥

इससे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके वियोगमें भीषण आपत्तियाँ आनेपर भी पतिके चरणोंका ध्यान रहे। मनमें भगवान्‌के बलपर पूरी वीरता, धीरता और तेज रहे। स्वधर्मके पालनमें प्राणोंकी भी आहुति देनेको सदा तैयार रहे। धर्म जाकर प्राण रहनेमें कोई लाभ नहीं, परन्तु प्राण जाकर धर्म रहनेमें ही कल्याण है 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'

सावधानी

सीताजीकी सावधानी देखिये। जब हनुमान्‌जी अशोकवाटिकामें सीताके पास जाते हैं तब सीता अपने बुद्धिकौशलसे सब प्रकार उनकी परीक्षा करती है। जबतक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि हनुमान् वास्तवमें श्रीरामचन्द्रके दूत हैं, अविश्वस्य हैं और मेरी

खोजमें ही यहाँ आये हैं तबतक खुलकर बात नहीं करती है।

दाम्पत्य-प्रेम

जब पूरा विश्वास हो जाता है तब पहले स्वामी और देवरकी कुशल पूछती है, फिर आँसू बहाती हुई करुणापूर्ण शब्दोंमें कहती है—'हनुमान्! रघुनाथजीका चित्त तो बड़ा ही कोमल है। कृपा करना तो उनका स्वभाव ही है। फिर मुझसे वह इतनी निठुरता क्यों कर रहे हैं? वह तो स्वभावसे ही सेवकको सुख देनेवाले हैं, फिर मुझे उन्होंने क्यों बिसार दिया है? क्या श्रीरघुनाथजी कभी मुझे याद भी करते हैं? हे भाई! कभी उस श्याम-सुन्दरके कोमल मुखकमलको देखकर मेरी ये आँखें शीतल होंगी? अहो! नाथने मुझको बिल्कुल भुला दिया! इतना कहकर सीता रोने लगी, उसकी वाणी रुक गयी!

बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ! मोहिं निपट बिसारी॥

इसके बाद हनुमान्‌जीने जब श्रीरामका प्रेम-सन्देश सुनाते हुए यह कहा कि माता! श्रीरामका प्रेम तुमसे दुगुना है। उन्होंने कहलवाया है—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहिं पाहीं। जानु प्रीतिरस एतनेहि माहीं॥

यह सुनकर सीता गद्गद् हो जाती है। श्रीसीता-रामका परस्पर कैसा आदर्श प्रेम है। जगत्‌के स्त्री-पुरुष यदि इस प्रेमको आदर्श बनाकर परस्पर ऐसा ही प्रेम करने लगें तो गृहस्थ सुखमय बन जाय!

पर-पुरुषसे परहेज

सीताजीने जयन्तकी घटना याद दिलाते हुए कहा कि, 'हे कपिवर! तू ही बता, मैं इस अवस्थामें कैसे जी सकती हूँ? शत्रुको तपानेवाले श्रीरामलक्ष्मण समर्थ होनेपर भी मेरी सुधि नहीं लेते, इससे मालूम होता है अभी मेरा दुःखभोग शेष नहीं हुआ है।' यों कहते-कहते जब सीताके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी तब हनुमान्‌ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि 'माता! कुछ दिन धीरज रक्खो। शत्रुओंके संहार करनेवाले कृतात्मा श्रीराम और लक्ष्मण थोड़े ही समयमें यहाँ आकर रावणका वधकर तुम्हें अवधपुरीमें ले जायँगे। तुम चिन्ता न करो। यदि तुम्हारी विशेष इच्छा हो और मुझे आज्ञा दो तो मैं भगवान् श्रीरामकी और तुम्हारी दयासे रावणका वधकर और लंकाको नष्टकर तुमको प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जा सकता हूँ। अथवा हे देवि! तुम मेरी पीठपर बैठ जाओ, मैं आकाशमार्गसे होकर महासागरको लाँघ जाऊँगा। यहाँके राक्षस मुझे नहीं पकड़ सकेंगे। मैं शीघ्र ही तुम्हें प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जाऊँगा।' हनुमान्‌के वचन सुनकर उनके बल-पराक्रमकी परीक्षा लेनेके बाद सीता कहने लगी—'हे वानरश्रेष्ठ! पतिभक्तिका सम्यक् पालन करनेवाली मैं अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रको छोड़कर स्वेच्छासे किसी भी अन्य पुरुषके अंगका स्पर्श करना नहीं चाहती—

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥
(वा० रा० ५। ३७। ६२)

दुष्ट रावणने बलात्कारसे हरण करनेके समय मुझको स्पर्श किया था, उस समय तो मैं पराधीन थी, मेरा कुछ भी वश नहीं चलता था। अब तो श्रीराम स्वयं यहाँ आवें और राक्षसों सहित रावणका वध करके मुझे अपने साथ ले जावें, तभी उनकी ज्वलन्त कीर्तिकी शोभा है।'

भला विचारिये! हनुमान्-सरीखा सेवक, जो सीताजीको सच्चे हृदयसे मातासे बढ़कर समझता है और सीता-रामकी भक्ति करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मानता है, सीता पतिव्रतधर्मकी रक्षाके लिये, इतने घोर विपत्तिकालमें अपने स्वामीके पास जानेके लिये भी उसका स्पर्श नहीं करना चाहती! कैसा अद्भुत धर्मका आग्रह है! इससे यह सीखना चाहिये कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य परपुरुषके अंगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये!

वियोगमें व्याकुलता

भगवान् श्रीराममें सीताका कितना प्रेम था और उनसे मिलनेके लिये उनके हृदयमें कितनी अधिक व्याकुलता थी, इस बातका कुछ पता हरणके समयसे लेकर लङ्का-विजयतकके सीताके विविध वचनोंसे लगता है, उस प्रसंगको पढ़ते-पढ़ते ऐसा कौन है जिसका हृदय करुणासे न भर जाय? परन्तु सीताजीकी सच्ची व्याकुलताका सबसे बढ़कर प्रमाण तो यह है कि श्रीरघुनाथजी महाराज उसके लिये विरहव्याकुल कामी मनुष्यकी भाँति विह्वल होकर उन्मत्तवत् रोते और विलाप करते हुए, ऋषि-कुमारों, सूर्य, पवन, पशु-पक्षी और जड़ वृक्षलताओंसे सीताका पता पूछते फिरते हैं—

आदित्य! भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।
मम प्रिया सा क गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥
लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किञ्चिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत्।
शंसस्व वायो! कुलशालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा॥

लोकोंके कृत्याकृत्यको जाननेवाले हे सूर्यदेव! तू सत्य

और असत्य कर्मोंका साक्षी है। मेरी प्रियाको कोई हर ले गया है या वह कहीं चली गयी है इस बातको तू भलीभाँति जानता है। अतएव मुझ शोकपीड़ितको सारा हाल बतला! हे वायुदेव! तीनों लोकोंमें तुझसे कुछ भी छिपा नहीं है, तेरी सर्वत्र गति है। हमारे कुलकी वृद्धि करनेवाली सीता मर गयी, हरी गयी या कहीं मार्गमें भटक रही है। जो कुछ हो सो यथार्थ कह।

हा गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-ब्रत-प्रेम पुनीता॥
लछिमन समुझायं बहु भाँती। पूँछत चले लता अरु पाती॥
हे खग-मृग! हे मधुकर स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
× × ×
एहि बिधि बिलपत खोजत स्वामी। मनहुँ महाबिरही अतिकामी॥

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् श्रीराम 'महाविरही और अतिकामी' थे। सीताजीका श्रीरामके प्रति इतना प्रेम था और वह श्रीरामके लिये इतनी व्याकुल थी कि श्रीरामको भी वैसा ही बर्ताव करना पड़ा। भगवान्‌का यह प्रण है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

श्रीरामने 'महाविरही और अतिकामी' के सदृश लीला कर इस सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि हम भगवान्‌को पानेके लिये व्याकुल होंगे तो भगवान् भी हमारे लिये वैसे ही व्याकुल होंगे। अतएव हम सबको परमात्माके लिये इसी प्रकार व्याकुल होना चाहिये।

अग्नि-परीक्षा रावणका वध हो गया, प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे सीताको स्नान करवाकर और वस्त्राभूषण पहनाकर विभीषण श्रीरामके पास लाते हैं। बहुत दिनोंके बाद प्रियपति श्रीरघुवीरके पूर्णिमाके चन्द्रसदृश मुखको देखकर सीताका सारा दुःख नाश हो गया और उसका मुख निर्मल चन्द्रमाकी भाँति चमक उठा। परन्तु श्रीरामने यह स्पष्ट कह दिया। 'मैंने अपने कर्तव्यका पालन किया। रावणका वधकर तुझको दुष्टके चंगुलसे छुड़ाया परन्तु तू रावणके घरमें रह चुकी है, रावणने तुझको बुरी नज़रसे देखा है, अतएव अब मुझे तेरी आवश्यकता नहीं। तू अपनी इच्छानुसार चाहे जहाँ चली जा। मैं तुझे ग्रहण नहीं कर सकता।'

नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः।
(वा० रा० ६।११५।२१)

श्रीरामके इन अश्रुतपूर्व कठोर और भयङ्कर वचनोंको सुनकर दिव्यसती सीताकी जो कुछ दशा हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता! स्वामीके वचन-बाणोंसे सीताके समस्त अङ्गोंमें भीषण घाव हो गये। वह फूट फूटकर रोने लगी। फिर करुणाको भी करुणासागरमें डुबो देनेवाले शब्दोंमें उसने धीरे धीरे गद्‌गद् वाणीसे कहा—

'हे स्वामी! आप साधारण मनुष्योंकी भाँति मुझे क्यों ऐसे कठोर और अनुचित शब्द कहते हैं? मैं अपने शीलकी शपथ करके कहती हूँ कि आप मुझपर विश्वास रक्खें। हे प्राणनाथ! रावणने हरण करनेके समय जब मेरे शरीरका स्पर्श किया था, तब मैं परवश थी। इसमें तो दैवका ही दोष है। यदि आपको यही करना था, तो हनुमान्‌को जब मेरे पास भेजा था तभी मेरा त्याग कर दिया होता तो अबतक मैं अपने प्राण ही छोड़ देती!' सीताने बहुतसी बातें कहीं परन्तु श्रीरामने कोई जवाब नहीं दिया, तब श्रीसीताजी दीनता और चिन्तासे भरे हुए लक्ष्मणसे बोली—'हे सौमित्रि। ऐसे मिथ्यापवादसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे दुःखकी निवृत्तिके लिये तुम यहीं अग्नि-चिता तैयार कर दो। मेरे प्रिय पतिने मेरे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जनसमुदायके मध्य मेरा त्याग किया है, अब मैं अग्निप्रवेश करके इस जीवनका अन्त करना चाहती हूँ।' वैदेही सीताके वचन सुनकर लक्ष्मणने कोपभरी लाल-लाल आँखोंसे एक बार श्रीरामचन्द्रकी ओर देखा, परन्तु रामकी रुचिके अधीन रहनेवाले लक्ष्मणने आकार और संकेतसे श्रीरामकी रुख समझकर उनकी इच्छानुसार चिता तैयार कर दी। सीताने प्रज्वलित अग्निके पास जाकर देवता और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥
(वा० रा० ६।११६।२५-२६)

'हे सर्वलोक-साक्षी अग्निदेव! यदि मेरा मन कभी भी श्रीरामचन्द्रसे चलायमान न हुआ हो तो तुम मेरी रक्षा करो। मेरा चरित्र शुद्ध होनेपर भी श्रीराघव मुझे दुष्टा मानते हैं। यदि मैं वास्तवमें शुद्ध हूँ तो हे देव! तुम मेरी रक्षा करो।'

इतना कहकर अग्निको प्रदक्षिणा कर सीता निःशंक

हृदयसे अग्निमें प्रवेश कर गयी। सब ओर हाहाकार मच गया। ब्रह्मा, शिव, कुबेर, इन्द्र, यमराज और वरुण आदि देवता आकर श्रीरामको समझाने लगे। ब्रह्माजीने बहुत कुछ रहस्यकी बातें कहीं।

इतनेमें सर्वलोकोंके साक्षी भगवान् अग्निदेव सीताको गोदमें लेकर अकस्मात् प्रकट हो गये और वैदेहीको श्रीरामके प्रति अर्पण करते हुए बोले—

एषा ते राम ! वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥
रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥
रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा।
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः ॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीस्व मैथिलीम्।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥
(वा०रा०६।११८।६–११)

'राम ! इस अपनी वैदेही सीताको ग्रहण करो। इसमें कोई भी पाप नहीं है। हे चरित्राभिमानी राम ! इस शुभलक्षणा सीताने वाणी, मन, बुद्धि या नेत्रोंसे कभी तुम्हारा उल्लंघन नहीं किया। निर्जन वनमें जब तुम इसके पास नहीं थे तब यह बेचारी निरुपाय और विवश थी। इसीसे बलगर्वित रावण इसे बलात्कारसे हर ले गया था। यद्यपि इसको अन्तःपुरमें रक्खा गया था और क्रूरसे क्रूर स्वभाववाली राक्षसियाँ पहरा देती थीं। अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये जाते थे और तिरस्कार भी किया जाता था, परन्तु तुम्हारेमें मन लगानेवाली, तुम्हारे परायण हुई सीताने तुम्हारे सिवा दूसरेका कभी मनसे विचार ही नहीं किया। इसका अन्तःकरण शुद्ध है, यह निष्पाप है, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम किसी प्रकारकी भी शंका न करके इसको ग्रहण करो।'

अग्निदेवके वचन सुनकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्र हर्षसे भर आये और उन्होंने कहा—

'हे अग्निदेव ! इसप्रकार सीताकी शुद्धि आवश्यक थी, मैं यों ही ग्रहण कर लेता तो लोग कहते कि दशरथपुत्र राम मूर्ख और कामी हैं। (कुछ लोग सीताके शीलपर भी सन्देह करते जिससे उसका गौरव घटता, आज इस अग्निपरीक्षासे सीताका और मेरा दोनोंका मुख उज्ज्वल हो गया है) मैं जानता हूँ कि जनकनन्दिनी सीता अनन्यहृदया और सर्वदा मेरी इच्छानुसार चलनेवाली है। जैसे समुद्र अपनी मर्यादाका त्याग नहीं कर सकता, उसीप्रकार यह भी अपने तेजसे मर्यादामें रहनेवाली है। दुष्टात्मा रावण प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाके समान अप्राप्त इस सीताका स्पर्श नहीं कर सकता था। सूर्यकान्ति-सदृश-सीता मुझसे अभिन्न है। जैसे आत्मवान् पुरुष कीर्तिका त्याग नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं भी तीनों लोकोंमें विशुद्ध इस सीताका वास्तवमें कभी त्याग नहीं कर सकता।'

इतना कहकर भगवान् श्रीराम प्रिया सती सीताको ग्रहणकर आनन्दमें निमग्न हो गये। इस प्रसंगसे यह सीखना चाहिये कि स्त्री किसी भी हालतमें पतिपर नाराज न हो और उसे सन्तोष करानेके लिये न्याययुक्त उचित चेष्टा करे।

गृहस्थधर्म सीता अपने स्वामी और देवरके साथ अयोध्या लौट आती है। बड़ी बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करती है। सब ओर सुख छा जाता है। अब सीता अपनी सासुओंकी सेवामें लगती है और उनकी ऐसी सेवा करती है कि सबको मुग्ध हो जाना पड़ता है। सीताजी गृहस्थका सारा काम सुचारुरूपसे करती हैं जिससे सभी सन्तुष्ट हैं। इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि विदेशसे लौटते ही सास और सभी बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंको प्रणाम करना और सास आदिकी सच्चे मनसे सेवा करनी चाहिये, एवं गृहस्थका सारा कार्य सुचारुरूपसे करना चाहिये।

समान व्यवहार श्रीसीताजी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन देवरोंके साथ पुत्रवत् बर्ताव करती थीं, और खानपान आदिमें किसी प्रकारका भी भेद नहीं रखती थीं। स्वामी श्रीरामके लिये जैसा भोजन बनता था ठीक वैसा ही सीताजी अपने देवरोंके लिये बनाती थी। देखनेमें यह बात छोटीसी मालूम होती है किन्तु इसी बर्तावमें दोष आजानेके कारण केवल खानेकी वस्तुओंमें भेद रखनेसे आज भारतमें हजारों सम्मिलित कुटुम्बोंकी बुरी दशा हो रही है। सीताजीके इस बर्तावसे स्त्रियोंको खानपानमें समान व्यवहार रखनेकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

सीता-परित्याग एक समय भगवान् राम गुप्तचरोंके द्वारा सीताके सम्बन्धमें लोकापवाद सुनकर बहुत

ही शोक करते हुए लक्ष्मणसे कहने लगे कि 'भाई ! मैं जानता हूँ कि सीता पवित्र और यशस्विनी है, लङ्कामें उसने तेरे सामने जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपनी परीक्षा दी थी और सर्वलोकसाक्षी अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर समस्त देवता और ऋषियोंके सामने सीताके पाप-रहित होनेकी घोषणा की थी तथापि इस लोकापवादके कारण मैंने सीताके त्यागका निश्चय कर लिया है। इसलिये तू कल प्रातःकाल ही सुमन्त सारथीके रथमें बैठाकर सीताको गंगाके उस पार तमसा-नदीके तीरपर महात्मा वाल्मीकिके आश्रमके पास निर्जन वनमें छोड़कर चला आ। तुझे मेरे चरणोंकी और जीवनकी शपथ है, इस सम्बन्धमें तू, मुझसे कुछ भी न कहना। सीतासे भी अभी कुछ न कहना।' लक्ष्मणने दुःखभरे हृदयसे मौन होकर आज्ञा स्वीकार की और प्रातःकाल ही सुमन्तसे कहकर रथ जुड़वा लिया।

सीताजीने एक बार मुनियोंके आश्रमोंमें जानेके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की थी अतएव लक्ष्मणके द्वारा वन जानेकी बात सुनकर सीताजीने यही समझा कि स्वामीने ऋषियोंके आश्रमोंमें जानेकी आज्ञा दी है और वह ऋषि-पत्नियोंको बाँटनेके लिये बहुमूल्य गहने कपड़े और विविध प्रकारकी वस्तुएँ लेकर वनके लिये विदा हो गयी। मार्गमें अशकुन होते देखकर सीताने लक्ष्मणसे पूछा—'भाई ! अपने नगर और घरमें सब प्रसन्न तो हैं न ?' लक्ष्मणने कहा—'सब कुशल है।' यहाँतक तो लक्ष्मणने सहन किया, परन्तु गंगाके तीरपर पहुँचते ही मर्मवेदनासे लक्ष्मणका हृदय भर आया और वह दीनकी भाँति फूट फूटकर रोने लगा। संयमशील धर्मज्ञ लक्ष्मणको रोते देखकर सीता कहने लगी—'भाई ! तुम रोते क्यों हो ? हमलोग गंगातीर ऋषियोंके आश्रमोंके समीप आ गये हैं, यहाँ तो हर्ष होना चाहिये तुम उल्टा खेद कर रहे हो। तुम तो रात-दिन श्रीराम-चन्द्रजीके पास ही रहते हो, क्या दो रात्रिके वियोगमें ही शोक करने लगे ? हे पुरुषश्रेष्ठ ! मुझको भी राम प्राणाधिक प्रिय हैं, पर मैं तो शोक नहीं करती, इस लड़क-पनको छोड़ो और गंगाके उसपार चलकर मुझे तपस्वियोंके दर्शन कराओ। महात्माओंको भिन्न भिन्न वस्तुएँ बाँटकर और यथायोग्य उनकी पूजाकर एक ही रात रह हम लोग वापस लौट आवेंगे। मेरा मन भी कमलनेत्र, सिंहसदृश वक्षःस्थलवाले, आनन्ददाताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामको देखनेके लिये उतावला हो रहा है।'

लक्ष्मणने इन वचनोंका कोई उत्तर नहीं दिया और सीताके साथ नौकापर सवार हो गंगाके उस पार पहुँच-कर फिर उच्च स्वरसे रोना शुरू कर दिया। सीताजीके बारम्बार पूछने और आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने सिर नीचा करके गद्गद् वाणीसे लोकापवादका प्रसंग वर्णन करते हुए कहा—'सीते ! तुम निर्दोष हो, किन्तु श्रीरामने तुमको त्याग दिया है। अब तुम श्रीरामको हृदयमें धारण करके पतिव्रतधर्मका पालन करती हुई वाल्मीकि मुनिके आश्रम-में रहो।'

लक्ष्मणके इन दारुण वचनोंको सुनते ही सीता मूर्छित-सी होकर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद होश आनेपर रोकर विलाप करने लगी और बोली—'हे लक्ष्मण ! विधाताने मेरे शरीरको दुःख भोगनेके लिये रचा है। मालूम नहीं, मैंने कितनी जोड़ियोंको बिछुड़ाया था जिससे आज मैं शुद्ध आचरणवाली सती होनेपर भी धर्मात्मा प्रियपति रामके द्वारा त्यागी जाती हूँ। हे लक्ष्मण ! पूर्वकालमें जब मैं वनमें थी तब तो स्वामीकी सेवाका सौभाग्य मिलनेके कारण वनके दुःखोंमें भी सुख मानती थी, परन्तु हे सौम्य ! अब प्रियतमके वियोगमें मैं आश्रममें कैसे रह सकूँगी ? जन्म-दुःखिनी मैं अपना दुखड़ा किसको सुनाऊँगी ? हे प्रभो ! महात्मा, ऋषि, मुनि जब मुझे यह पूछेंगे कि तुझको श्रीरघु-नाथजीने क्यों त्याग दिया, क्या तुमने कोई बुरा कर्म किया था ? तो मैं क्या जवाब दूँगी। हे सौमित्रे ! मैं आज ही इस भागीरथीमें डूबकर अपना प्राण दे देती, परन्तु मेरे अन्दर श्रीरामका वंश-बीज है, यदि मैं डूब मरूँ तो मेरे स्वामी का वंश नाश हो जायगा। इसीलिये मैं मर भी नहीं सकती हे लक्ष्मण ! तुमको राजाज्ञा है तो तुम मुझ अभागिनी को यहीं छोड़कर चले जाओ परन्तु मेरी कुछ बातें सुनते जाओ।

'मेरी ओरसे मेरी सारी सासुओंका हाथ जोड़कर चरण-वन्दन करना और फिर महाराजको मेरा प्रणाम कहकर कुशल पूछना। हे लक्ष्मण ! सबके सामने सिर नवाकर मेरा प्रणाम कहना और धर्ममें सदा सावधान रहनेवाले महाराजसे मेरी ओरसे यह निवेदन करना—

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव !
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ।।
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशो भीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ।।

मया च परिहर्त्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥
यत्तु पौरजनं राजन् धर्मेण समवाप्नुयात् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥
यथाऽपवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्य्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ।

(वा० रा० ७।४८।१२-१८)

'हे राघव ! आप जिस प्रकार मुझको तत्त्वसे शुद्ध समझते हैं उसी प्रकार नित्य अपनेमें भक्तिवाली और अनुरक्तचित्त-वाली भी समझियेगा । हे वीर ! मैं जानती हूँ कि आपने लोकापवादको दूर करने और अपने कुलकी कीर्ति कायम रखनेके लिये ही मुझको त्याग दिया है परन्तु मेरे तो आप ही परमगति हैं । हे महाराज, आप जिस प्रकार अपने भाइयोंके साथ बर्त्ताव करते हैं, प्रजाके साथ भी वही बर्त्ताव कीजियेगा । हे राघव, यही आपका परम धर्म है, और इसीसे उत्तम कीर्ति मिलती है । हे स्वामिन् ! प्रजापर धर्मयुक्त शासन करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है । अतएव ऐसा कोई बर्त्ताव न कीजियेगा जिससे प्रजामें अपवाद हो, हे रघुनन्दन ! मुझे अपने शरीरके लिये तनिक भी शोक नहीं है, क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम देवता है, पति ही परम बन्धु है और पति ही परम गुरु है । नित्य प्राणाधिक-प्रिय पतिका प्रिय कार्य करना और उसीमें प्रसन्न रहना, स्त्रीका यह स्वाभाविक धर्म ही है ।' क्या ही मार्मिक शब्द हैं ! धन्य सती सीता, धन्य धर्मप्रेम और प्रजावत्सलता ! धन्य भारतका सतीधर्म, धन्य भारतीय देवियोंका अपूर्व त्याग ।'

सीताजी कहने लगी—'हे लक्ष्मण, मेरा यह सन्देश महाराजसे कह देना । भाई ! एक बात और है, मैं इस समय गर्भवती हूँ, तुम मेरी ओर देखकर इस बातका निश्चय करते जाओ, कहीं संसारमें लोग यह अपवाद न करें कि सीता वनमें जाकर सन्तान प्रसव करती है ।'

सीताके इन वचनोंको सुनकर दीनचित्त लक्ष्मण व्याकुल हो उठे और सिर झुकाकर सीताके पैरोंमें गिर फुफकार मार-कर ज़ोर ज़ोरसे रोने लगे । फिर उठकर सीताजीकी प्रदक्षिणा की और दो घड़ीतक ध्यान करनेके बाद बोले—'माता, हे पापरहिता सीते, तुम क्या कह रही हो ? मैंने आजतक तुम्हारे चरणोंका ही दर्शन किया है, कभी स्वरूप नहीं देखा । आज भगवान् रामके परोक्षमें तुम्हारी ओर कैसे ताक सकता हूँ ।' तदनन्तर प्रणाम करके वह रोते हुए नावपर सवार होकर लौट गये और इधर सीता,—दुःखभारसे पीड़िता आदर्श पतिव्रता सती सीता—अरण्यमें गला फाड़कर रोने लगी । सीताजीके रुदनको सुनकर वाल्मीकिजी उन्हें अपने आश्रममें ले गये ।

इस प्रसंगसे जो कुछ सीखा जा सकता है वही भार-तीय देवियोंका परम धर्म है । सीताजीके उपर्युक्त शब्दोंका नित्य पाठ करना चाहिये और उनके रहस्यको अपने जीवनमें उतारना चाहिये । लक्ष्मणके बर्त्तावसे भी हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पदमें माताके समान होनेपर भी पुरुष किसी भी स्त्रीके अङ्ग न देखे । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने अङ्ग किसीको न दिखावें । वाल्मीकिजीके आश्रम-में सीता ऋषिकी आज्ञासे अन्तःपुरमें ऋषिपत्नीके पास रही, इससे यह सीखना चाहिये कि यदि कभी दूसरोंके घर रहने का अवसर आवे तो स्त्रियोंको अन्तःपुरमें रहना चाहिये और इसी प्रकार किसी दूसरी स्त्रीको अपने यहाँ रखना हो तो स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें ही रखना चाहिये ।

पाताल-प्रवेश जो स्त्री अपने धर्मका प्राणपनसे पालन करती है, अन्तमें उसका परिणाम अच्छा ही होता है । जब भगवान् श्रीरामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ करते हैं और लव-कुशके द्वारा रामायणका गान सुनकर मुग्ध हो जाते हैं तब लव-कुशकी पहचान होती है और श्रीरामकी आज्ञासे सीता वहाँ बुलायी जाती है । सीता श्रीरामका ध्यान करती हुई सिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि ऋषिके पीछे-पीछे रोती हुई आ रही है । वाल्मीकि मुनि सभामें आकर जो कुछ कहते हैं उससे सारा लोकापवाद मिट जाता है और सारा देश सीतारामके जयजयकारसे ध्वनित हो उठता है । वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए यहाँतक कह डाला कि 'मैंने हजारों वर्षोंतक तप किया है, मैं उस तपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो मेरे तपके सारे फल नष्ट हो जायँ । मैं अपनी दिव्यदृष्टि और ज्ञानदृष्टिद्वारा विश्वास दिलाता हूँ कि सीता परम शुद्धा है ।' वाल्मीकिकी प्रतिज्ञाको सुनकर और सीताको सभामें आयी हुई देखकर भगवान् श्रीराम गद्गद् हो गये और कहने लगे कि 'हे महाभाग, मैं जानता हूँ कि जानकी शुद्धा है, लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं, मैं राजधर्म-पालनके लिये

ही प्रिया सीताका त्याग करनेको बाध्य हुआ था । अतएव आप मुझे क्षमा करें !

उस सभामें ब्रह्मा, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, वायु, साध्य, महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध आदि बैठे हुए हैं, उन सबके सामने राम फिर यह कहते हैं कि 'इस जगत्में वैदेही शुद्ध है और इसपर मेरा पूर्ण प्रेम है— 'शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे ।' इतनेमें काषायवस्त्र धारण किये हुए सती सीता नीची गर्दनकर श्रीरामका ध्यान करती हुई भूमिकी ओर देखने लगी और बोली—

> यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
> मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
> यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च ।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
> (वा० रा० ७।९७।१५-१७)

'यदि मैंने रामको छोड़कर किसी दूसरेका कभी मनसे भी चिन्तन न किया हो तो हे माधवी देवी, तू मुझे अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे । यदि मैंने मन, कर्म और वाणीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे । यदि मैं रामके सिवा और किसीको भी न जानती होऊँ यानी केवल रामको ही भजनेवाली हूँ यह सत्य हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें स्थान दे और हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे ।'

इन तीन शपथोंके करते ही अकस्मात् धरती फट गयी, उसमेंसे एक उत्तम और दिव्य सिंहासन निकला, दिव्य सिंहासनको दिव्य देह और दिव्य वस्त्राभूषणधारी नागोंने अपने मस्तकपर उठा रक्खा था और उसपर पृथ्वी देवी बैठी हुई थीं । पृथ्वीदेवीने सीताका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन किया और 'हे पुत्री तेरा कल्याण हो' कहकर उसे गोदमें बैठा लिया । इतनेमें सबके देखते-देखते सिंहासन रसातलमें प्रवेश कर गया । सती सीताके जयजयकारसे त्रिभुवन भर गया !

सीता-परित्यागके हेतु

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् श्रीराम बड़े दयालु और न्यायकारी थे, उन्होंने निर्दोष जानकर भी सीताका त्याग क्यों किया ?' इसमें प्रधानतः निम्नलिखित पाँच कारण हैं, इन कारणोंपर ध्यान देनेसे सिद्ध हो जायगा कि रामका यह कार्य सर्वथा उचित था—

१-रामके समीप इसप्रकारकी बात आयी थी—

> अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
> यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते ॥

-कि 'रामने रावणके घरमें रहकर आयी हुई सीताको घरमें रख लिया इसलिये अब यदि हमारी स्त्रियाँ भी दूसरोंके यहाँ रह आवेंगी तो हम भी इस बातको सह लेंगे, क्योंकि राजा जो कुछ करता है प्रजा उसीका अनुसरण करती है ।' प्रजाकी इस भावनासे भगवान्‌ने यह सोचा कि सीताका निर्दोष होना मेरी बुद्धिमें है । साधारण लोग इस बातको नहीं जानते । वे तो इससे यही शिक्षा लेंगे कि परपुरुषके घर बिना बाधा स्त्री रह सकती है, ऐसा होनेसे स्त्री-धर्म बिल्कुल बिगड़ जायगा, प्रजामें वर्णसङ्करताकी वृद्धि होगी, अतएव प्रजाके धर्मकी रक्षाके लिये प्राणाधिका सीताका त्याग कर देना चाहिये । सीताके त्यागमें रामको बड़ा दुःख था, उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था । उनके हृदयकी दशाका पूरा अनुभव तो कोई कर ही नहीं सकता, किन्तु वाल्मीकि-रामायण और उत्तररामचरितको पढ़नेसे किञ्चित् दिग्दर्शन हो सकता है । श्रीरामने यहाँ प्रजाधर्मकी रक्षाके लिये व्यक्ति धर्मका बलिदान कर दिया । प्रजारंजनके यज्ञानलमें आत्म-स्वरूपा सीताकी आहुति दे डाली ! इससे उनके प्रजाप्रेमका पता लगता है । सीता राम हैं और राम सीता हैं, शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही जगत्‌का नियन्त्रण करते हैं, अतएव सीताके त्यागमें कोई आपत्ति नहीं । इस लोकसंग्रहके हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है ।

२-चाहे थोड़ी ही संख्यामें हो सीताका झूठा अपवाद करनेवाले लोग थे । यह अपवाद त्यागके बिना मिट नहीं सकता था और यदि सीता वाल्मीकिके आश्रममें रहकर वाल्मीकिके द्वारा प्रतिज्ञाके साथ शुद्ध न कही जाती और पृथ्वीमें न समाती तो शायद यह अपवाद मिटता भी नहीं, सम्भव है और बढ़ जाता, और सीताका नाम आज जिस भावसे लिया जाता है शायद वैसे न लिया जाता इस हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है ।

३-सीता श्रीरामकी परमभक्ता थी, उनकी आश्रिता थी, उनकी परम प्यारी अर्द्धाङ्गिनी थी, ऐसी परमपुनीता सतीको निष्ठुरताके साथ त्यागनेका दोष भगवान् श्रीरामने अपने ऊपर इसीलिये ले लिया कि इससे सीताके गौरवकी वृद्धि हुई, सीताका झूठा कलङ्क भी मिट गया और सीता

आत्मपूज्या बन गयी। भगवान् अपने भक्तोंका गौरव बढ़ानेके लिये अपने ऊपर दोष ले लिया करते हैं और यही यहाँपर भी हुआ।

४ अवतारका लीलाकार्य प्रायः समाप्त हो चुका था, देवतागण सीताको इस बातका सङ्केत कर गये थे। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि 'दशहजार वर्षतक माया-मनुष्यरूपधारी भगवान् विधिपूर्वक राज्य करते रहे और सब लोग उनके चरणकमलोंको पूजते रहे। भगवान् श्रीराम राजर्षि परमपवित्र एकपत्नीव्रती थे और लोकसंग्रहके लिये गृहस्थके सब धर्मोंका यथाविधि पालन करते थे। पतिप्राणा सीताजी प्रेम, अनुकूल आचरण, नम्रता, इन्द्रियोंका दमन, लज्जा और प्रतिकूल आचरणमें भय आदि गुणोंके द्वारा भगवान्‌का भाव समझकर उनके मनको प्रसन्न करती थी। एक समय श्रीराम पुष्प-वाटिकामें बैठे हुए थे और सीताजी उनके कोमल चरणोंको दबा रही थीं। सीताने एकान्त देखकर भगवान्‌से कहा कि हे देवदेव! आप जगत्‌के स्वामी, परमात्मा, सनातन, सच्चिदानन्दघन और आदिमध्यान्तरहित तथा सबके कारण हैं। हे देव, उस दिन इन्द्रादि देवताओंने मेरे पास आकर स्तुति करते हुए यह कहा कि 'हे जगन्माता, तुम भगवान्‌की चित्-शक्ति हो, तुम पहले वैकुण्ठ पधारनेकी कृपा करो तो भगवान् राम भी वैकुण्ठ पधारकर हम लोगोंको सनाथ करेंगे।' देवताओंने जो कुछ कहा था सो मैंने निवेदन कर दिया है। मैं कोई आज्ञा नहीं करती आप जैसा उचित समझें वैसा करें।' क्षणभर सोचकर भगवान्‌ने कहा कि—

> देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते।
> कल्पयित्वा मिसं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम्॥
> त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः।
> भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके॥
> इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम्।
> लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात्॥
> भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम्।
> पश्चादहं गमिष्यामि एव एव सुनिश्चयः॥
>
> (अध्यात्मरामायण)

'हे देवि, मैं सब कुछ जानता हूँ और तुमको एक उपाय बतलाता हूँ। हे सीते, मैं तुम्हारे लोकापवादका बहाना रचकर साधारण मनुष्यकी तरह लोकापवादके भयसे तुमको वनमें त्याग दूँगा। वहाँ वाल्मीकिके आश्रममें तुम्हारे दो पुत्र होंगे, क्योंकि इस समय तुम्हारे गर्भ है। तदनन्तर तुम मेरे पास आ लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये बड़े आदरसे—शपथ खा पृथ्वीके विवरमें प्रवेशकर तुरन्त वैकुण्ठको चली आओगी और पीछेसे मैं भी आ जाऊँगा। यही निश्चय है।' यह भी सीताके त्यागका एक कारण है।

५—पूर्वकालमें एक समय युद्धमें देवताओंसे हारकर भागे हुए दैत्य भृगुजीकी स्त्रीके आश्रयमें चले गये और ऋषिपत्नीसे अभय प्राप्तकर निर्भय हो वहाँ रहने लगे थे। दैत्योंको भृगुपत्नीने आश्रय दिया।' इस बातसे कुपित होकर भगवान् विष्णुने उसका चक्रसे सिर काट डाला था। पत्नीको इसप्रकार मारे जाते देखकर भृगुऋषिने क्रोधमें हतज्ञान होकर भगवान्‌को शाप दिया था कि 'हे जनार्दन! आपने कुपित होकर मेरी अवध्य पत्नीको मार डाला इसलिये आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना होगा और दीर्घकालतक पत्नी-वियोग सहना पड़ेगा।' भगवान्‌ने लोकहितके लिये इस शापको स्वीकार किया और उसी शापको सत्य करनेके लिये अपनी अभिन्न शक्ति सीताको लीलासे ही वनमें भेज दिया।

इत्यादि अनेक कारणोंसे सीताका निर्वासन रामके लिये उचित ही था। असली बात तो यह है कि भगवान् राम और सीता साक्षात् नारायण और शक्ति हैं। एक ही महान् तत्त्वके दो रूप हैं। उनकी लीला वे ही जानें, हम लोगोंको आलोचना करनेका कोई अधिकार नहीं। हमें तो चाहिये कि उनकी दिव्य लीलाओंसे लाभ उठावें और अपने मनुष्य-जीवनको पवित्र करें।

मानवलीलामें श्रीसीताजी इस बातको प्रमाणित कर गयी कि बिना दोष भी यदि स्वामी स्त्रीको त्याग दे तो स्त्रीका कर्त्तव्य है कि इस विपत्तिमें दुःखमय जीवन बिताकर भी अपने पातिव्रतधर्मकी रक्षा करे, परिणाम उसका कल्याण ही होगा।

उपसंहार

सत्य और न्याय अन्तमें अवश्य ही शुभ फल देंगे, सीताने अपने जीवनमें कठोर परीक्षायें देकर स्त्रीमात्रके लिये यह मर्यादा स्थापित कर दी कि जो स्त्री आपत्तिकालमें सीताकी भाँति धर्मका पालन करेगी उसकी कीर्ति संसारमें सदाके लिये प्रकाशित हो जायगी। सीतामें पतिभक्ति, सीताका भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्नके साथ निर्दोष वात्सल्य-प्रेम, सासुओंके प्रति सेवाभाव, सेवकोंके साथ प्रेमका बर्ताव, नैहर और ससुरालमें सबके साथ आदर्श प्रीति और सबके सम्मान करनेकी चेष्टा, ऋषियोंकी सेवा, लव-कुश जैसे वीर पुत्रोंका मातृत्व, उनको शिक्षा देनेकी

पटुता, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व और आदर्श धर्मपरायणता आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और सर्वथा अनुकरणीय हैं । हमारी जो माताएँ और बहनें प्रमाद, मोह और आसक्तिको त्यागकर सीताके चरित्रका अनुकरण करेंगी उनके अपने कल्याणमें तो शङ्का ही क्या है, वे अपने पति और पुत्रोंको भी तार सकती हैं। अधिक क्या, जिसपर उनकी कृपा हो जायगी उसका भी कल्याण होना सम्भव है। ऐसी सती-शिरोमणि पतिव्रता स्त्री दर्शन और पूजनके योग्य है। मनुष्यों-के द्वारा ही नहीं बल्कि देवताओंके द्वारा भी वह पूजनीय है और अपने चरित्रसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली है।

यद्यपि श्रीसीताजी साक्षात् भगवती और परमात्माकी शक्ति थी तथापि उसने अपने मनुष्य जीवनमें लोकशिक्षा-के लिये जो चरित्र किये हैं वे सब ऐसे हैं कि जिनका अनुकरण सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं। संसारकी मर्यादाके लिये ही सीता-रामका अवतार था। अतएव उनके चरित्र और उपदेश अलौकिक न होकर ऐसे व्यावहारिक थे कि जिनको काममें लाकर हमलोग लाभ उठा सकते हैं। जो स्त्री या पुरुष यह कहकर कर्त्तव्यसे छूटना चाहते हैं कि 'श्रीसीता-राम साक्षात् शक्ति और ईश्वर थे हम उनके चरित्रोंका अनुकरण नहीं कर सकते।' वे कायर और अभक्त हैं। वे श्रीरामको ईश्वरका अवतार केवल कथनभरके लिये ही मानते हैं। सच्चे भक्तोंको तो श्रीरामसीताके चरित्रका यथार्थ अनुकरण ही करना चाहिये।

रामचरित-मानस

(१)

सुर और असुरोंको सङ्गरमें लीन देखि,
कोकिला कलानिधि औ परियाँ सुरेशकी ;
द्राक्षा रसाल मधु, मिष्ट स्वादु सर्पिषादि,
सुर-नर-नारियाँ औ बाँसुरी ब्रजेशकी।
भारती सुकवियोंकी मनुहार दम्पतिकी,
सम्पति उदारचेता निपुण नरेशकी ;
करके परस्पर विमर्श उक्त मण्डलीने,
लूट ली पियूष-सी सुसम्पदा जलेशकी।

(२)

वारि-निधि-मन्थनके बाद यहि भाँति अहो,
अवलोकि दयनीय दुर्दशा रसेशकी ;
भरि आयीं आँखें करुणाकी मञ्जु मोतियोंसे,
दयासिन्धु विद्यानिधि तुलसी द्विजेशकी।
सुधाको एकत्र करनेकी भव्य-भावनामें
प्रेरित हो पाकर सु-आशिस महेशकी ;
'मानस-सरोवर' में रस बरसाने लगे,
लेकर करोंमें वर वर्णिका गणेशकी।

(३)

कोयलकी काकली सुरीले स्वर परियोंके,
केकीके मधुर नृत्य चन्द्रिका निशेशकी ;
बंशीके मोहन गुण सुधा नारि अधरकी,
शारदाके सदनकी सम्पति धनेशकी।
जननीके स्निग्ध-स्नेह दाताकी उदारतादि,
सकल सकेलि अमी-मूरत विशेषकी ;
भव-निधि-पोत सोई रचना है मानसकी,
तुलसीकी कृतिपै है स्वीकृति उमेशकी।

सर्वानन्दसिंह 'सर्वेश'

रामायणमें भरत

(लेखक--साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्री)

रा मायणमें भरतका एक विशेष स्थान है। यदि यह कहा जाय कि रामायणके पात्रोंमें भरतका चरित्र सबसे अधिक उज्ज्वल है तो कोई अत्युक्ति नहीं। भरतने जितनी प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना किया—और जिस धैर्य तथा साहसके साथ किया—उतना कोई दूसरा कर सकता, इसमें सन्देह ही है। जितनी परीक्षाएं भरतने दी उतनी यदि किसी दूसरेके सामने आयी होतीं तो होश मारे जाते। भरतके चरित्रका मनन करनेसे प्रतीत होता है कि वह विपत्तियोंके महासागरमें अविकम्पितरूपसे स्थिर रहनेवाले महाशैल हैं। भरतके मनको डिगानेके लिये संसारकी बड़ीसे बड़ी शक्ति बेकार सिद्ध होती है और भरतको लुभानेके लिये मायाके ऊँचेसे ऊँचे सम्मोहन अस्त्र निकम्मे ठहरते हैं। दुनियाँ एक ओर है और भरत एक ओर हैं। एक ओर प्रलोभनोंके विशाल शैलकी चकाचौंध है और दूसरी ओर विपत्तियोंका अपार सागर है। घरके सब सगेसम्बन्धी उन्हें उनका हित सुझा रहे हैं। उनके जन्मसे ही पहले, उनकी माता कैकेयीके विवाहसे भी पूर्व, उनके नानाने महाराज दशरथसे प्रतिज्ञा कराली थी कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा। इसी शर्तपर कैकेयीका विवाह हुआ था। दशरथने अपने कामीपनके कारण यह शर्त मंजूर कर ली थी। आज उनका वह मनोरथ सफल हुआ था। मन्थराके उपदेशसे कैकेयीने इस चिरपोषित मनोरथके लिये घरमें 'महाभारत' मचा दिया था। एक प्रकारसे भरतके मार्गके काँटे—राम—को जड़से उखाड़ फेंका था। नाना, मामा आदि सबके सब राज-कार्यके तजुर्बेकार और भरतके हरतरहसे मददगार थे। १४वर्षका समय भी कम नहीं होता। इतने समयमें भरत प्रजाको अच्छी तरह काबूमें कर सकते थे। यदि कोई अड़चन होती तो उनके सहायक भी कम नहीं थे। यदि कोई दोष देता तो दशरथको देता जिन्होंने अनुचित शर्तपर शादी की थी। आखिर भरतका इसमें क्या दोष था? वह अपने 'जन्म-सिद्ध अधिकार' को कैसे छोड़दें? फिर कैकेयीको मिले वरदान भी तो कम न थे!

माना कि राम, लक्ष्मणको महर्षि विश्वामित्रने जो दिव्यास्त्र दिये थे वे भरतके पास नहीं थे। हम थोड़ी देरके लिये यह भी मान लेते हैं कि यदि राम-लक्ष्मणके साथ भरतका संग्राम छिड़ जाता तो शायद भरत हार जाते, परन्तु इस संग्रामका अवसर ही कैसे आ सकता था? राम लड़ते भी कैसे? भरतको राज्य देकर पिता दशरथने अपनी प्रतिज्ञा—चाहे अनिच्छापूर्वक ही सही—पूरी की थी इसीके कारण, सबके समझानेपर भी रामने राज्य छोड़कर वनका रास्ता लिया था। धर्मात्मा रामने पिताको अधर्म और असत्यसे बचानेके लिये राज्य छोड़ा था। फिर राम किस बहाने इस राज्यके लिये युद्ध छेड़ सकते थे?

शायद कोई कहे कि १४ वर्ष वनवासके अनन्तर राम अपने राज्यके लिये लड़ सकते थे, परन्तु यह ठीक नहीं है। १४ वर्षके समयकी शर्त 'राम-वनवास' के साथ लगायी गयी थी, भरत-राज्यके साथ नहीं। कैकेयीने जो दो वरदान माँगे थे, उनमें यह नहीं था कि भरत १४ वर्ष राज्य करें और बादमें आकर राम राज्य ले लें। उसने साफ कहा था कि 'भरतका राज्य हो—बिना किसी शर्तके—और राम १४ वर्ष वनमें रहें' यदि १४ वर्षके बाद राम चाहते तो नगरमें आ सकते थे, लेकिन राज्य वह कभी नहीं ले सकते थे। कैकेयीकी राजनीतिक गुरु मन्थरा इतनी भोली नहीं थी जो ऐसी कच्ची बात सिखाती, और न कैकेयीके पिताने ही ऐसी कमजोर शर्त की थी। वाल्मीकिने मन्थराकी उक्ति इसप्रकार लिखी है—

> तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
> प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥
> चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
> प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति॥
>
> (वा० रा० २। ९। २०-२१)

'भरतका राज्य और रामका १४ वर्षका वनवास वरदानमें माँगो। १४ वर्षतक जब राम वनवासी रहेंगे तो इतने दिनोंमें 'पुत्र'—भरत—प्रजाका स्नेह-भाजन हो जायगा और प्रजाके हृदयमें स्थान पा लेनेपर वह—भरत—स्थिर हो जायगा। फिर उसका राज्य किसीके हिलाये न हिलेगा।' इससे स्पष्ट है कि १४ वर्ष वनवासकी शर्त सिर्फ इसलिये की गयी थी कि इतने समयमें भरतका राज्य

स्थिर हो जाय, वह प्रजाका हृदय अपने वशमें कर सके और उनके विरोधी राम इतने समयतक प्रजाकी आँखोंके आगे-से एकदम हटा दिये जायँ—जिससे लोगोंका स्नेह उनके ऊपरसे एकदम हट जाय। १४ वर्षके बाद रामको राज्य लौटा देनेकी न कोई बात थी, न हो ही सकती थी। इस दशामें भरतको रामसे या उनके हिमायतियोंसे कोई डर नहीं था। रामको यदि क्रोध करना या लड़ना था तो अपने पितासे निबटते, जिन्होंने उनका अधिकार नष्ट किया। भरतका इसमें क्या दोष था? उनसे राम किस बुनियादपर अटक सकते थे?

फलतः यह सिद्ध है कि भरतका राज्य निष्कण्टक था। उनके नानाने ही इसका बीज बो रक्खा था। मन्थराने उसे अङ्कुरित और पल्लवित किया था, कैकेयीने उसे पुष्प-फल-सम्पन्न बनाया था और भरत—केवल भरत—उसके उपभोग-के अधिकारी थे। माता उन्हें राज्य दे रही थी, पिताने उन्हें राज्य देनेकी बात कहकर ही प्राण छोड़े थे, वशिष्ठ आदि समस्त ऋषिगण और मन्त्रिगण उनके राज्याभिषेककी तैयारी किये बैठे थे, तमाम सूत, मागध, बन्दी तैयार थे। सम्पूर्ण सामन्तलोग चुपचाप यह दृश्य देखनेको प्रस्तुत थे और सारीकी सारी आबालवृद्ध प्रजा इसीकी आशामें थी।

यह ठीक है कि प्रजा रामको राजा देखना चाहती थी, परन्तु यह भी ठीक है कि प्रजा भरतका बहिष्कार शायद ही कर सकती जब उसे पुराने इतिहासका पता चलता—जिसके कारण भरत-को राज्य मिला था—तब वह भरतको उतना दोषी कदापि न समझती। हाँ, दशरथको भले ही दोष देती। फिर यही तो भरतका कर्त्तव्य था। प्रजाका रञ्जन ही तो राजाका धर्म है। उन्हें यहींपर अपनी प्रजारञ्जनात्मक समग्र शक्तियोंका परिचय देना था। यदि वह इतना भी न करते तो राज्य क्या चला सकते थे? इसके अतिरिक्त बहुत कुछ मार्ग तो उनकी माताने ही रामको वनवास देकर साफ कर दिया था और बाकीके लिये उनके नाना-मामा कमर कसे तैयार थे। वे सब सम्हाल लेते, यदि भरत राजगद्दीपर बैठभर गये होते।

इससे स्पष्ट है कि भरतने किसी राजनीतिक कारणसे राज्यका परित्याग नहीं किया। राजनीतिक कारण तो उनके राज्य लेनेके ही अनुकूल थे। अपनी दुर्बलता या अयोग्यता-के कारण भी उन्होंने राज्य-त्याग नहीं किया था। किसीके डरसे, लोकापवादके भयसे, साथियोंके विरोधसे या और किसी ऐसे ही कारणसे उन्होंने राज्य नहीं छोड़ा था। वस्तुतः भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंकी खोज करना एकप्रकार-से उनका अपमान करना है। भरत विशुद्ध भक्ति और प्रेम-के अवतार हैं। पवित्रताकी सीमा और निःस्पृहताकी जागती ज्योति हैं। उनका हृदय सत्यका केन्द्र और धैर्यका आकर है, उनकी बुद्धि दृढ़ता और संयमकी खान है। भरत समुद्र-की भाँति अगाध और हिमालयकी भाँति अटल हैं। अपने पवित्र और निःस्पृह अन्तःकरणसे जो निश्चय भरत एक बार कर चुके हैं, उसे उलट देना ईश्वरके भी सामर्थ्यसे बाहर है। स्वयं रामने भी बीसों प्रकारसे भरतको राज्य लेनेके लिये बाध्य किया। पिताकी आज्ञाकी बात बताकर, धर्मकी कथा सुनाकर, प्रजाके हितकी दुहाई देकर, कैकेयीके विवाहके समय की हुई पिताकी प्रतिज्ञा और देवासुर-संग्रामके वरदानोंकी याद दिलाकर, मतलब यह कि हर तरह हिलाडुलाकर स्वयं राम भी उद्योग करके थक गये, पर भरत जो एक बार राज्य छोड़नेका संकल्प कर चुके तो फिर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञासे किसीके भी हटाये न हटे, न हटे।

भरतके रोम-रोमसे प्रेम-पीयूषकी धारा बहती है। उनके अक्षर अक्षरसे भक्ति-रसका प्रवाह उमड़ने लगता है। भरत-के प्रत्येक निश्वासमें 'राम-राम'की रट है। 'मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई' बस, यही भरतका मन्त्र हो रहा है। माता छोड़ी, मातृपक्ष छोड़ा, प्रजा छोड़ी, राज्य छोड़ा, धन दौलत छोड़ी, सुख सम्पत्ति छोड़ी, एक रामनामके पीछे भरतने सब संसार छोड़ा, अपना पराया छोड़ा, यदि न छोड़ा तो एक रामनाम। इसीसे हम कहते हैं कि भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंको ढूँढ़ना उनके चरित्रका अपमान करना है। पवित्र गंगाकी धारामें शेरकी माँद ढूँढ़ना है और गन्नेके भीतर गोखरू तलाश करना है। दशरथने कैकेयीको समझाते वक्त बहुत ठीक कहा था कि 'रामादपि हितं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्' अर्थात् 'धर्ममें भरतको मैं रामसे भी बढ़कर समझता हूँ।' रामके बिना भरत कभी राज्य स्वीकार न करेंगे इत्यादि रामके चरित्रमें राजनीति और धर्मनीतिकी गङ्गा-यमुना मिल-कर बहती है, परन्तु भरतका चरित्र तो पवित्र प्रेमकी गङ्गोत्तरी है। भरतके चरित्रको लक्ष्य करके यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं कि—

सुधातः स्वादीयश्चरितमिदमातृप्तिपिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्

हम कह चुके हैं कि जिनकी प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना—जिस धैर्यके साथ—भरतने किया, उस तरह—

उतनी सफलताके साथ—रामायणका कोई दूसरा पात्र कर सकता था नहीं, इसमें सन्देह ही है। कैकेयीने संसार भरका अपयश अपने सिर क्यों लादा? केवल भरतके राज्यके लिये। उसने वैधव्यतककी परवा नहीं की। समस्त प्रजा, सम्पूर्ण ऋषिमण्डल, तमाम रनवास, सब सामन्त कैकेयीको थूथू करते रहे, परन्तु उसने सबकी उपेक्षा की, क्यों? केवल भरतके लिये। सब संसारको अपना वैरी बनाया और अपने माथेपर अमिट कलंकका टीका लगाया, किसलिये? सिर्फ इसीलिये। यदि राजनीतिक दृष्टिसे देखा जाय तो कैकेयीके सिवा भरतका कोई हितैषी नहीं था। उनके सगे पितातक उनके शत्रु थे। छिपकर रामका राज्याभिषेक करनेके लिये ही उन्होंने उस समय भरतको कपटसे उनके नानाके यहाँ भेजा था। दशरथने रामसे साफ ही कहा था कि—

> 'विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।
> तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥'
> (वा०रा० २।४।२५)

अर्थात् 'जबतक भरत इस नगरसे बाहर हैं तभीतक तुम्हारा (रामका) राज्याभिषेक हो जाना मैं उचित समझता हूँ।' इससे स्पष्ट है कि दशरथने भरतके साथ घात की थी और उसी का जवाब मन्थरा और कैकेयीका वह आचरण था। कौशल्याने रामके अभिषेककी बात सुनकर 'हतास्ते परिपन्थिनः' कहकर भरतपक्षको रामका शत्रु बताया था। इस दशामें भरतका हितचिन्तक यदि कोई था तो कैकेयी आदि ही। परन्तु इन सबको भरतकी ओरसे क्या पुरस्कार मिला, यह आगे देखिये और फिर सोचिये कि भरतके चरित्रमें कहीं राजनीतिक गन्ध भी है, या वह विशुद्ध धार्मिक ही है? भरत जब नानाके यहाँसे बुलवाये गये तो सीधे कैकेयीके पास पहुँचे। नगर और राजमहलके शोकमिश्रित सन्नाटेको देखकर वह कुछ खटक तो गये ही थे, जाते ही उन्होंने दशरथ, राम आदिके सम्बन्धमें पूछताछ शुरू की।

> अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यति ।
> इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम् ॥
> तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम ।
> पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥
> यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।
> तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
> पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
> तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥
> (वा० रा० २।७२।२७–२८,३२–३३)

अर्थात् मैं तो यह सोचकर चला था कि या तो राजा (दशरथ) श्रीरामका अभिषेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे। परन्तु यहाँ तो मैंने कुछ और ही देखा, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। आज मैं अपने प्रिय और हितचिन्तक पिताजीको नहीं देख रहा हूँ। जो मेरे भाई, पिता, बन्धु आदि सब कुछ हैं, जिनका मैं दास हूँ, उन श्रीरामका पता मुझे शीघ्र बताओ। बड़ा भाई पिताके सदृश होता है, मैं रामके पैरों पड़ूँगा, आज वही मेरे लिये सब कुछ हैं।'

जब कैकेयीने कहा कि रामको वनवास दे दिया गया, तो भरत डर गये। उन्हें सन्देह हुआ कि रामसे कोई अनुचित कार्य तो नहीं हो गया जिसका यह दण्ड मिला। लेकिन कैकेयीने बताया कि 'यह सब कुछ मैंने तुम्हारे लिये किया है। तुम अब राजगद्दीपर बैठो' इत्यादि। इसके उत्तरमें भरतने जो कुछ कहा है, उसमें आप भरतके हृदयका सच्चा चित्र देख सकेंगे और भरतके पवित्र चरित्रका अविकलरूप पा सकेंगे। सुनिये—

दुखी होकर भरत बोले कि 'शोक-सन्तप्त मेरे जैसा अभागा राज्य लेकर क्या करेगा, जो आज पितासे भी हीन है और पितृतुल्य बड़े भाईसे भी हीन है। कैकेयी, तूने मुझे दुःखपर दुःख दिया, तूने मेरे कटेपर नमक छिड़का, जो राजाको मारा और रामको वनवास दिया।

मैं समझता हूँ कि तुझे यह मालूम नहीं है कि मेरा रामके प्रति कैसा भाव है, इसी कारण तूने राज्यके लोभसे यह अनर्थ किया। मैं राम लक्ष्मणके बिना किसके बलपर राज्य करूँगा? अच्छा, यदि बुद्धि और नीतिके बलपर मैं राजकाज चला सकता हूँ तो भी मैं तेरा मनोरथ पूरा न होने दूँगा। तू अपने पुत्रको राजा देखना चाहती है, लेकिन मैं तुझे यह न देखने दूँगा। यदि राम तुझे सदा माताके तुल्य न समझते होते तो आज तुझ जैसी पापिनीका त्याग करनेमें भी मुझे कोई संकोच न होता। कैकेयी, तू राज्यसे भ्रष्ट हो, अरी दुष्टा, क्रूरे! तू धर्मसे पतित है, ईश्वर करे, मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे। तू माताके रूपमें मेरी शत्रु है। तूने राज्यके लोभसे पतिकी हत्या की है। तू मुझसे बात न कर। तू याद रख, पिता और भाईके प्रति जो तूने पाप किया है, मैं उसका पूरा प्रायश्चित्त करूँगा और अपना यश भी बढ़ाऊँगा। रामको राज्य देकर मैं अपना पाप धोऊँगा और तब अपनेको कृतकृत्य समझूँगा।'

इस वर्णनमें आप देखेंगे कि कैकेयीके कृत्यसे भरतको

मर्मान्तिक वेदना हो रही है। वह अपने राजनीतिक हितैषी-को सीधे शत्रु कहकर पुकार रहे हैं। उनका हृदय धार्मिक भावनासे परिपूर्ण है। उनको राज्य दिलानेके लिये उनकी माताने जो कार्य किया है उसे वह घोर पाप समझ रहे हैं एवं इसके प्रायश्चित्तके लिये अपनी मृत्यु तथा अपनी माताके कल्याकन्दन तककी आकाङ्क्षा कर रहे हैं। धर्ममूर्ति भरतके निष्कलमष हृदयका यह सच्चा चित्र है। इसमें धर्म, प्रेम और भक्ति जैसे पवित्र भावोंके सिवा और किसी दुर्भावको स्थान ही नहीं है। भरतका निष्कपट प्रेम, निःस्वार्थ भक्ति और दम्भहीन धर्म उनके प्रत्येक वाक्यसे प्रकट होता है। वह रामके ऊपर अपनेको न्योछावर कर चुके हैं। रामकी विरोधी अपनी माँ भी आज उनकी दृष्टिमें शत्रु है। उन्हें रामकी गद्दीपर बैठनेमें घोर दुःख और रामके चरणोंपर लोटनेमें परम आनन्द प्राप्त हो रहा है। आज वह प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि मैं माताके पापोंका प्रायश्चित्त करके यशस्वी बनूँगा। कहना नहीं होगा कि भरतने इस प्रतिज्ञाको अपनी जानपर खेलकर पूरा किया और खूब पूरा किया।

भरतने इस अवसरपर सबका सब दोष माताके ऊपर ही रक्खा है। पिता दशरथके विरुद्ध उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। यह भी भरतके चरित्रकी एक विशेषता है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नने तो बड़े स्पष्ट शब्दोंमें—चाहे परोक्षमें ही सही—दशरथको खरी-खोटी सुनायी हैं, परन्तु भरतके मुँहसे उनके लिये एक भी कटु शब्द नहीं निकला। यों तो रामकी भी पितृभक्ति आदर्श है। उचित अनुचित-का विचार छोड़कर, पिताकी आज्ञाका पालन जैसा रामने किया वैसा कोई क्या करेगा! परन्तु रामके पीछे दशरथने भी तो अपने प्राणतक गँवा दिये थे। अपनी प्राणाधिक प्रियतमा कैकेयीको भी उन्होंने रामके पीछे ही तिलाञ्जलि दी थी। यह बात कही जा सकती है कि दशरथ रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे, परन्तु भरतके सम्बन्धमें यही बात नहीं कही जा सकती। भरतके विरुद्ध दशरथने षड्-यन्त्र रचा था। भरतको राज्यसे भ्रष्ट करनेके लिये उन्हें कपटसे बाहर भेजा था और उनकी अनुपस्थितिमें—उनके नाना, मामा-को सूचना तक न देते हुए-घरमें चुपके चुपके रामके राज्याभिषेक की कपट-पूर्ण आयोजना की थी। इससे भरतका मन मलीन हो सकता था। रामकी और उनकी दशामें बहुत भेद था। पिताका व्यवहार दोनोंके प्रति समान नहीं था। राम और भरतके प्रति दशरथके व्यवहारमें आकाश-पातालका अन्तर था। इस दशामें भरतका भाव भी यदि बदल जाता तो कुछ आश्चर्य न होता। आश्चर्य तो यही है कि इन सब बातोंके होते हुए भी भरत रामके समान ही पितृभक्त बने रहे। इसे देखते हुए यदि यह कहा जाय कि भरत रामसे भी बढ़कर पितृभक्त थे तो कोई अत्युक्ति नहीं।

भरत रामके प्रेममें सराबोर थे। उनके सर्वस्व राम ही थे। रामके पसीनेकी जगह भरतका खून गिरनेको तैयार हो जाता था। रामका प्रेमी ही उनका प्रेमपात्र था और रामका विपक्षी उनका घोर शत्रु था। यही कारण है कि रामके प्रेममें प्राण देनेवाले पिताका कोई दोष भरतकी दृष्टिमें आया ही नहीं। उन्होंने उन सब दोषोंकी उपेक्षा कर दी, परन्तु रामका विरोध करनेवाली माँ कैकेयी उनकी आँखोंमें शूलकी तरह खटकने लगी। भरतको राज्यकी आकाङ्क्षा कभी थी ही नहीं। वह तो रामके प्रेमके भूखे थे। नानाके यहाँसे आते हुए उन्होंने यही समझा था कि शायद रामका राज्याभिषेक होगा, उसीके लिये मुझे बुलाया है। वह अपने-को राज्यका अधिकारी समझते ही नहीं थे। कैकेयीके विवाहके समय की हुई दशरथकी प्रतिज्ञाका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य ही नहीं था। वह उसे काम-ज्वरका प्रलाप-मात्र समझते थे और वरदानके नामपर कैकेयीका राज्य माँगना उनकी नजरमें कपट-पूर्ण अधर्म था। वह ज्येष्ठकी राज्य-प्राप्तिको ही धर्म समझते थे। यही उन्होंने अनेक जगह कहा है। उन्हें कभी यह ध्यान ही नहीं था कि लोग—और खासकर उनके पिता ही—उन्हें रामका विरोधी समझेंगे और वह भी अधर्मपूर्वक राज्य लेनेके लिये। छिः छिः! धर्मशास्त्रकी दृष्टिमें इसप्रकार कामावेशकी प्रतिज्ञाओं-का कोई मूल्य नहीं और धर्मात्मा भरतकी दृष्टिमें भी यह प्रतिज्ञा दो कौड़ी—बल्कि उससे भी कम—की थी। पिता इसके लिये ऐसा 'अकाण्ड ताण्डव' करेंगे इसकी उन्हें कोई सम्भावना ही नहीं थी। इन्हीं कारणोंसे धर्मात्मा भरतकी दृष्टिमें दशरथका कोई दोष नहीं आया और वह रामके समान ही पितृभक्त बने रहे। हाँ, रामकी विरोधिनी माता-को वह शत्रु समझने लगे। मन्थराको जमीनमें घसीटते हुए शत्रुघ्नका क्रोध शान्त करते समय उन्होंने यहाँतक कह डाला था कि—यदि मुझे यह डर न होता कि धर्मात्मा राम मातृघातक समझकर मेरा त्याग कर देंगे तो मैं आज इस दुष्ट कैकेयीका वध कर डालता।

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥
(वा० रा० २।७८।२२)

इन बातोंसे स्पष्ट है कि भरतका पवित्र हृदय रामकी भक्तिमें तल्लीन और रामके प्रेममें मतवाला था। उनका यही मन्त्र था कि 'मेरे तो एक रामनाम दूसरा न कोई'।

अच्छा, अब प्रकृत बातपर ध्यान दीजिये। कैकेयीसे मिलनेपर जब भरतको सब बातें मालूम हुईं और भरतके आनेकी खबर कौसल्याके कानतक पहुँची तो वह भी सुमित्राके साथ रोती, कलपती और काँपती हुई वहीं पहुँचीं। अब यहींसे भरतकी कठोर परीक्षाएँ आरम्भ होती हैं। भरत इन्हें किस धैर्य और कितनी दृढ़तासे पार करते हैं, यह आप आगे देखेंगे—

भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ॥
अथवा स्वयमेवाऽहम् ... ...
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि।
इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम्।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥
इत्यादिबहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः संभर्त्सितोऽनघः।
विव्यथे भरतस्तीव्रं व्रणे तुद्येव सूचिना ॥
पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्भ्रान्तचेतनः।
विलप्य बहुधाऽसंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत् ॥
(वा० रा० २।७५)

राम-वनवाससे व्याकुल कौसल्याकी दयनीय दशा देख कर भरतका कोमल-हृदय दुःखसे कातर हो उठा। उनका काँपना, कलपना और बिलखना देखकर भरत घबरा गये और जब उन्होंने देखा कि कौसल्या राम-वनवासका कारण उन्हीं (भरत) को समझ रही हैं तब तो उनके दुःखका पारावार न रहा। कौसल्याके कठोर आक्षेपोंमे भरतका निष्कलमष चित्त विचलित हो गया और वह मूर्छित होकर कौसल्याके चरणोंपर गिर पड़े। जब होशमें आये तो आँसूभरे नेत्र और गद्गद् कण्ठसे 'हा राम' 'हा राम' कहकर इधर उधर पागलोंकी भाँति ताकने लगे। उन्होंने कौसल्याको विश्वास दिलानेके लिये सैकड़ों शपथें—ऐसी ऐसी कड़ी शपथें कीं जिनसे पत्थरका भी कलेजा दहल जाय—खायीं। जिसकी अनुमति या जानकारीमें रामको वनवास हुआ हो, वह रणमें भागता हुआ मारा जाय, घोरसे घोर पापका फल उसे भोगना पड़े इत्यादि।

भरतकी इस दशाको देखकर कौसल्याके हृदयपर गहरी चोट लगी। उन्होंने स्पष्ट देखा कि भरतको रामके वियोगका दुःख उनसे (कौसल्यासे) कम नहीं है और उनके अनुचित आक्षेपोंने भरतके निरपराध हृदयको व्याकुल कर दिया है। इससे कौसल्या भी घबरा गयीं और भरतको गोदमें बिठाकर स्वयं रोने लगीं। उन्होंने कहा—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥
दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि।
इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥
(वा० रा० २।७५।६०-६२)

यह भरतकी सबसे प्रथम और सबसे कठिन परीक्षा थी। यदि उनके हृदयमें रामके प्रति अनन्त प्रेम न होता, यदि उनके व्यवहारमें विशुद्ध धार्मिकताको छोड़कर कहीं ज़रा भी राजनीतिक चालोंकी गन्ध होती तो रामकी माताके हृदयको इतनी जल्दी दयार्द्र कर लेना उनके लिये सम्भव ही नहीं था। भरतके चरित्रकी यह सर्वोत्तम विजय हुई।

कुछ तो दशरथकी प्रतिज्ञाके कारण और कुछ राम-वनवासके कारण भरतकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बच्चा बच्चा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगा था। पद-पदपर लोग उन्हें रामका विपक्षी समझने लगे थे। रामके एक अनन्य भक्तको इससे बढ़कर दुःख क्या हो सकता था कि एक निषादसे लेकर बड़ेसे बड़े महर्षितक, बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक सभी स्त्री-पुरुष उसे शङ्काकी दृष्टिसे—रामविरोधीकी दृष्टिसे— देखने लगें।

सबसे पहले कौसल्याने उनकी परीक्षा की, उसके बाद सूत, मागध आदिका नम्बर आया, फिर सामन्त राजाओंकी और अनन्तर वसिष्ठ आदि ऋषियोंकी बारी आयी। सभी प्रकृतियों और प्रजाने भी भरतको परखा। इन लोगोंसे जब निबटे और रामको लौटानेके अभिप्रायसे गङ्गाकिनारे पहुँचे तो निषादराज गुहने इनका सम्हाला। उन्होंने ध्वजा देखते ही समझ लिया कि यह भरतकी सेना है और गङ्गाके उस पार अपने सब अनुचरोंको फौजी हुक्म सुना दिया। देखिये—

गुह कहते हैं, 'देखो, यह समुद्रके समान उमड़ती हुई

सेना गङ्गाके उस पार दीख रही है। रथमें कोविदारकी ध्वजा है। इससे स्पष्ट है कि दुर्बुद्धि भरत स्वयं आया है। अपना राज्य निष्कण्टक करनेके लिये आज वह दुष्ट रामके वधकी इच्छासे सेनासहित इधर आ रहा है। रामके बाद यह दुष्ट हमलोगोंको या तो रस्सियोंसे बाँधेगा या मरवा ही डालेगा। राम तो मेरे स्वामी भी हैं और सखा भी हैं। आज उनका काम आ पड़ा है। इस पुण्य-यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये हम सबलोगोंको तैयार हो जाना चाहिये। रामके काममें प्राण देनेसे बढ़कर और कौनसा पुण्य होगा ? सब कैवर्त (निषाद) लोग गङ्गाके मुहानोंको रोककर डट जाओ। पाँच सौ नावोंसे सब मार्ग रोक लो। एक-एक नावपर सौ-सौ जवान सब शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर तैयार रहो। मैं जाकर भरतका मन टटोलता हूँ। यदि उसके मनमें कोई पाप न हुआ तब तो उसकी सेना पार उतार दी जायगी, अन्यथा पहले हम सब लोग यहाँ मर मिटेंगे तब फिर रामपर आँच आयेगी। हमारे जीतेजी कोई रामका बाल बाँका न कर सकेगा।'

देखा आपने ? यह माना कि निषादराज रामके अनन्य प्रेमी और भक्त थे, परन्तु देखना तो यह है कि भरतके भावको उन्होंने कितना उल्टा समझा है ? यह ठीक है कि निषादराज रामके ऊपर अपने प्राण देनेको तैयार हैं, परन्तु सोचना तो यह है कि क्या भरत भी उनके प्राण लेनेको तैयार हैं ? हमें देखना यही है कि आज परिस्थिति भरतके कितनी प्रतिकूल हो उठी है। आज उनके अमृतमय हृदयको एक जंगली भी विषमय समझने लगा है। भरतने इसी प्रतिकूल परिस्थितिको सर्वथा अनुकूल बनानेका बीड़ा उठाया है।

निषादराज गुह भी बड़े अच्छे राजनीतिज्ञ थे। भरतकी जितनी खोद-खोदकर परीक्षा इन्होंने की उतनी किसीने नहीं की। इनकी हर एक बातसे राजनीतिज्ञता टपकती है। अभी आप देख चुके हैं कि यह अपने अनुचरोंसे क्या कह रहे थे। अब आगे देखिये कि भरतके सामने भेंट पेश करते हुए हज़रत कैसे 'भीगी बिल्ली' बने बैठे हैं—

आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् ॥
निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ॥
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस।
अस्ति मूलफलं चैतत् निषादैः स्वयमर्जितम् ॥

× × ×

आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम

(वा० रा० २।८४)

'भरतके पास आकर बड़ी नम्रतासे 'गुह'ने कहा कि इस जङ्गलको आप अपने घर-आँगनका बगीचा समझिये। आपने हमलोगोंको सेवा करनेसे वञ्चित कर दिया। भला आपको यहाँ ठहरनेकी क्या आवश्यकता थी ? 'दासगृह'—निषाद-स्थान—सब आपहीका तो है। वहीं ठहरना चाहिये था। आपके दासोंका लाया हुआ कन्द, मूल, फल सब मौजूद है और भी जङ्गलकी छोटी बड़ी चीजें उपस्थित हैं। मैं समझता हूँ, उससे आपकी सेनाका खाना-पीना आजकी रातमें आरामसे चल सकता है' इत्यादि।

देखा आपने ? यह एक राजनीतिज्ञकी बात-चीत है। क्या इससे पता चलता है कि अभी गुह अपने घरमें क्या इन्तजाम करके आ रहे हैं ? इसी बात-चीतमें जब भरतने कहा कि 'यह जङ्गल तो बड़ा दुर्गम मालूम होता है। गङ्गाका मुहाना भी बड़ा भयानक है। तुम यह बताओ कि हम भरद्वाज मुनिके आश्रमको किस ओरसे जायँ ?' इसपर गुहने कहा कि 'इस देशसे जानकारी रखनेवाले सैकड़ों निषाद तुम्हारे साथ जायँगे। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारा हृदय तो शुद्ध है न ? कहीं तुम दुष्ट-भावसे धर्मात्मा रामके पास तो नहीं जा रहे हो ? तुम्हारी यह इतनी बड़ी सेना देखकर मुझे सन्देह होता है। यदि तुम्हारा हृदय दोषरहित है तो थोड़ेसे आदमी लेकर ही रामके पास जा सकते थे। इस इतनी बड़ी फौजका वहाँ क्या काम ?'

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ॥

(वा० रा० २।८५।७)

इसपर —

तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत् ॥
मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ॥
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥

(वा० रा० २।८५।८-१०)

स्वच्छ आकाशकी तरह निर्मल—रागद्वेषके बादलोंसे रहित भरतने बड़ी शान्तिपूर्वक मधुर भाषामें-उत्तर दिया कि 'निषादराज, वह समय न आये-मैं उस समय-के लिये जीता न रहूँ-जिस अनिष्टकी तुम आशंका कर रहे हो। राम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके तुल्य समझता हूँ। उन्हें वनवाससे वापिस लानेके लिये जा रहा हूँ। मैं सत्य कहता हूँ, तुम मेरी बातको अन्यथा न समझो।'

रामके वियोगसे अति दुखी, दीन, मलीन भरतकी बातचीतसे और उनके इङ्गित-चेष्टितसे जब गुहको निश्चय हो गया कि भरतके मनमें कोई पाप नहीं है तब वह बोले—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि॥
शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि॥

(वा० रा० २।८५।१२-१३)

'भरत, तुम धन्य हो, तुम्हारे समान धर्मात्मा पृथ्वीपर दूसरा नहीं है जो बिना यत्नके ही मिले हुए राज्यका त्याग-कर रहे हो। तुम्हारी यह कीर्ति संसारमें अमर रहेगी जो आज तुम वनवासी रामको कष्टसे छुड़ानेके लिये जा रहे हो।'

यहाँ आप देखेंगे कि निषादकी कठोर बात सुनकर भी भरत अधीर नहीं हुए। उन्हें ज़रा भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने इस जंगलीकी धृष्टतासे अपना अपमान नहीं समझा। भला एक मामूली मल्लाहकी यह मजाल कि वह चक्रवर्तीके पुत्र भ्रातृवत्सल भरतपर सन्देह करे और तपाकसे पूछ बैठे कि 'क्योंजी, तुम्हारे मनमें कोई पाप तो नहीं है?' फिर राजकुमार इस बेहूदगीपर ज़रा भी न बिगड़े। उन्होंने इस जंगलीको 'डैमफूल' (Damfool) 'नामाक़ूल' आदि कुछ भी न कहा। प्रत्युत एक साधारण आदमीकी तरह गिड़गिड़ाकर अपनी सफ़ाई देने लगे।

भरतको सुमन्त्रने बता दिया था कि निषादराज राम-का मित्र है। उन्होंने उसे (गुहको) 'मम गुरोः सखे'—मेरे गुरु—राम—के मित्र कहकर सम्बोधन किया था। फिर वह उसका आदर क्यों न करते? इसके अतिरिक्त भरत अपनी परिस्थिति समझते थे। वह जानते थे कि एक गुह ही नहीं, बल्कि प्रजाका बच्चा-बच्चा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देख रहा है। इसी प्रतिकूल भावनाको बदलनेके लिये तो उनका यह प्रयास था। क्या वह काम किसीको 'डैमफूल नामाक़ूल' कहनेसे बन सकता था?

निषादने इतनी परीक्षासे ही भरतका पीछा नहीं छोड़ा। उसने उनकी और भी कड़ी जाँच की। लक्ष्मणके साथ इसी जगह जो गुहकी बातचीत हुई थी और रामको पार उतारते समय जो-जो घटनाएँ घटी थीं, उनका गुहने ऐसे मार्मिक शब्दोंमें वर्णन किया कि उसे सुनकर भरत मूर्छित हो गये। यदि भरतका प्रेम दिखावटी होता और उनके हृदयमें रामके प्रति ज़रा भी दुर्भाव होता तो वह निषादकी इस परीक्षामें अवश्य फेल हो जाते और चतुर राजनीतिज्ञ गुह इनकी असलियतको तुरन्त ताड़ जाता!

इसके साथ ही गुहने इसी अवसरपर बड़ी कुशलतासे भरतको अपनी शक्तिका भी परिचय करा दिया था, उसने साफ़ सूचित कर दिया था कि इस घोर जङ्गलकी चप्पा-चप्पा भर जमीन मेरी झँकाई हुई है। मैं चाहूँ तो यहींसे बड़ी सेनाको इसमें भटका-भटकाके मार सकता हूँ। इत्यादि

यह सब बताने और सब तरह भरतकी परीक्षा कर लेनेके बाद भी गुहने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसे इस बातसे सन्तोष नहीं हुआ कि भरतको रास्ता बतानेके लिये कुछ आदमी उनके साथ कर दे या थोड़े-से आदमी लेकर स्वयं ही चला जाय। वह अपनी समस्त फौज लेकर भरतके साथ अन्तिम स्थान तक गया।

माना कि उस समय भरतका भाव ठीक था, परन्तु ये तो वह कैकेयीके ही पुत्र। रामसे बातचीत होते होते ही कहीं मनमुटाव हो गया और किसी बातपर वहाँ खटक गयी तब? तब क्या वह अपने 'स्वामी और सखा'—राम—को अकेले ही सेनासहित भरतसे भिड़ने देगा? यह कैसे हो सकता है? यह जंगलका जीव अपनेको जंगलका मालिक और आचार्य समझता है। उसके घरमें उसके मित्रकी ओर भला कोई आँख उठाकर देख सकता है? पहले वह अपनी बोटी-बोटी कटवायेगा, बड़ी-से-बड़ी सेनाके छक्के छुड़ायेगा, तब कहीं रामपर आँच आयेगी। इसीलिये तो दल-बल-सहित निषादराज बड़ी सतर्कतासे भरतका पीछा कर रहे हैं। वस्तुतः निषादके चरित्रमें राजनीति-कुशलताके साथ साथ मित्र-प्रेम और स्वामि-भक्तिका सच्चा चित्र देखने को मिलता है। इसीसे तो हम कहते हैं कि भरतकी परीक्षा निषादने जितनी खोद-खोदके की उतनी किसीने नहीं की,

परन्तु भरतका चरित्र जितना-जितना अग्नि-परीक्षामें तपता गया, उतना ही उतना कुन्दनके समान चमकता गया।

और तो और, दूर ही बैठे बैठे सबके हृदयको परखनेकी शक्ति रखनेवाले, ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न, त्रिकालदर्शी महर्षि भरद्वाज भी बेचारे भरतपर चोट करनेसे न चूके। वह भरतसे पूछते हैं—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे नहि मे शुध्यते मनः॥
सुषुवे यममित्रघ्नं कौसल्यानन्दवर्धनम्।
भ्रात्रा सह सभार्योऽयं चिरं प्रव्राजितो वनम्॥
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः।
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश॥
कच्चिन्न तस्याऽपापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च॥

(वा० रा० २।९०।१०।१३)

'तुम तो राज्यका शासन कर रहे थे, भला तुम्हारे यहाँ आनेका क्या मतलब? मुझसे साफ साफ कहो। मेरा मन विश्वास नहीं करता। जिन बेचारे रामको स्त्रीके कहनेसे तुम्हारे पिताने भाई और स्त्रीके साथ १४ वर्ष-का वनवास दे दिया है उन्हीं पापरहित रामके प्रति तुम अपने मनमें कुछ पाप तो नहीं रखते हो? कहीं निष्कण्टक राज्य भोगनेकी इच्छासे उनका वध करनेके लिये ही तो तुम इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर रहे हो?'

वज्रसे भी कठोर और बाणकी नोकसे भी पैने इन शब्दोंको सुनकर भ्रातृवत्सल भरतके कोमल मनकी क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। कैसी भयानक अवस्था है? एक सर्वज्ञ महर्षिका पवित्रात्मा भरत-पर ऐसा अनुचित सन्देह!! पृथ्वी फट जाय, आकाश गिर पड़े, पर्वत चूर चूर हो जायँ, समस्त दिशायें जल उठें और भरत उसमें समा जायँ। इससमय जो दशा भरतके हृदयकी हुई होगी उसका अन्दाजा कौन लगा सकता है? परन्तु धन्य, महात्मा भरत!! वह इस अति विक्षोभकारी विपत्ति-के समय भी उसीप्रकार दृढ़ रहे जैसे बड़ी-से-बड़ी आँधीको नगाधिराज हिमालय धीरेसे सह लेते हैं। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि—

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रुनयनो दुःखाद्वाचा संसज्जमानया॥
हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।

(वा० रा० २।९०।१४-१५)

भरद्वाज मुनिकी बातें सुनकर भरत दुःखसे कातर हो उठे। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये और गला रुँध गया। वह सिर्फ इतना कह सके कि 'यदि 'भगवान्'—त्रिकाल-दर्शी आप—भी मुझे ऐसा ही समझते हैं, तब तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं। मैं हतभाग्य बेमौत मारा गया।'

माना कि भरद्वाजने उक्त बातें सच्चे हृदयसे नहीं कही थीं। उन्होंने रामके प्रेममें आकर यह पूछा था। वाल्मीकि-ने इसका साफ निर्देश किया है, परन्तु भरतको इसकी क्या खबर थी? जिस आसानीसे महर्षि भरतके मनको देख सकते थे उसी आसानीसे भरतके लिये महर्षिका मन परख लेना सम्भव नहीं था। हम तो समझते हैं कि भरतकी यह अति कठिन परीक्षा थी। जब वे उसमें पूरे उतरे तो महर्षि भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा कि—

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः।
त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता॥
जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन्॥

(वा०रा० २।९०।२०-२१)

हे भरत! तुम रघुवंशी हो। तुममें ऐसे सद्भाव होने ही चाहिये। बड़ोंकी भक्ति, इन्द्रियोंका दमन और सज्जनों-का अनुगमन यह सब तुममें होने ही चाहिये। मैं तुम्हारे मनकी ये सब बातें पहलेसे ही जानता था, परन्तु तुम्हारे भावोंको दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था।

बात ठीक है, हमारी सम्मतिमें यह परीक्षा भरतके ही योग्य थी और भरत ही इस परीक्षाके योग्य थे एवं भरद्वाज-जैसे महर्षि ही इस कठिन परीक्षाके परीक्षक होने योग्य थे। हम तो भरतके इस पवित्र चरित्रका स्मरण करनेमें ही अपना धन्यभाग्य समझते हैं।

भरद्वाजके पूँछनेपर जब भरतने अपनी सब माताओं-का परिचय उनको दिया और उस समय दुःखावेशमें आकर कैकेयीको कुछ सख्त-सुस्त कहा तब महर्षिने रामवनवास-के दैवी कारणोंकी ओर भी इशारा कर दिया था। उन्होंने साफ कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति॥

(वा०रा०२।९२।२९)

हे भरत, तुम रामवनवासमें कैकेयीका दोष न समझो। रामके वन जानेसे संसारका कल्याण होगा।

भरतकी परीक्षाओंका यहीं अन्त हो गया हो सो बात नहीं है। भरद्वाजके आश्रमसे जब वह सेनासहित चित्रकूट-के पास पहुँचे तो इतनी बड़ी सेनाकी कल-कल और आकाश-में उठी धूलको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि ज़रा देखो तो यह किसकी सेना है। लक्ष्मणने एक ऊँचे-से सालवृक्षपर चढ़कर भरतकी सेना देखनेके बाद जो कुछ कहा उसे सुनिये—

शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत्॥
अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्।
सज्यं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा।

(वा० रा० २। ९६। १३-१४)

'आप (राम) जल्दीसे आग बुझा दीजिये। सीता-को किसी गुफामें भेज दीजिये, कवच पहन लीजिये और धनुष-बाण लेकर तैयार हो जाइये।' जंगलमें धुँआ उठता देखकर वहाँ रहनेवाले मनुष्योंका पता शीघ्र लग जाता है, इसीसे लक्ष्मणने आग बुझानेको कहा है।

जब रामने कहा कि ज़रा यह तो देखो कि यह सेना है किसकी, तब धधकती हुई अग्निकी तरह क्रोधमें भरे लक्ष्मण बोले—'मालूम होता है कि राज्याभिषेक हो जानेके बाद अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके निमित्त कैकेयीका पुत्र भरत हम दोनोंको मारनेके लिये आ रहा है। रथमें कोविदारकी ध्वजा है। आज यह हमारे काबूमें आयेगा। जिस भरतके कारण इतना दुःख मिला है, उसे मैं आज समझूँगा। जिसके कारण आप अपने पैतृकराज्यसे च्युत हुए हैं वह शत्रु (भरत) तो अवश्य ही वधके योग्य है। भरतके वधमें कोई दोष नहीं है। अपने पुराने अपकारीको मारनेमें पाप नहीं लगता। राज्यकी लोभिन कैकेयी आज देखेगी कि उसका पुत्र मेरे द्वारा उसी प्रकार मरोड़ा जा रहा है जैसे कोई मस्त हाथी किसी वृक्षको तोड़-मरोड़कर फेंक दे। आज पृथ्वी बड़े भारी पापसे मुक्त होगी। आज सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुषबाणसे उऋण होऊँगा।'

लक्ष्मणको क्रोधान्ध देखकर रामने उनका मिज़ाज ठण्डा किया और भरतकी एक और अग्नि-परीक्षा होते होते रह गयी। राम बोले कि 'देखो लक्ष्मण, जब भरत स्वयं आये हैं तो फिर धनुष-बाण और ढाल-तलवारकी क्या आवश्य-कता है? जब मैं पिताके सामने राज्य छोड़नेकी प्रतिज्ञा कर चुका तब फिर भरतके वधसे कलङ्कित राज्य लेकर मैं क्या करूँगा? मैं चाहूँ तो यह समस्त पृथ्वी मुझे दुर्लभ नहीं है, परन्तु मैं अधर्मके द्वारा इन्द्रासन भी नहीं चाहता। जो सुख मुझे तुम्हारे, (लक्ष्मणके) भरतके और शत्रुघ्नके बिना मिलता हो वह भस्म हो जाय। मुझे उसकी अपेक्षा नहीं।'

'लक्ष्मण, भरत किसी दुर्भावसे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने जब मेरे तुम्हारे और सीताके वनवासकी बात सुनी होगी तब स्नेह और शोकसे व्याकुल हो उठे होंगे। वह हमलोगों-से मिलने आ रहे हैं, किसी बुरी नीयतसे नहीं। माता कैकेयीसे अप्रसन्न होकर पिताको प्रसन्न करके भरत मुझे राज्य देनेके विचारसे आ रहे हैं। भरतके मनमें कभी हम-लोगोंकी बुराई नहीं आ सकती। क्या उन्होंने कभी तुम्हारे साथ कोई घात की है? फिर आज तुम्हारे मनमें ऐसी शङ्का और भय क्यों उठ रहे हैं? खबरदार, भरतके लिये कोई कटु-वाक्य न कहना। उनके प्रति कहा हुआ तुम्हारा अप-शब्द मुझे लगेगा। यदि राज्यके लिये तुम ये बातें कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उनसे कहकर राज्य तुम्हें दिला दूँगा। यदि मैं भरतसे कहूँ कि लक्ष्मणको राजगद्दी दे दो तो यह निश्चय है कि वह 'बहुत अच्छा' के सिवा और कुछ न कहेंगे।'

रामकी इन बातोंने लक्ष्मणको पानी-पानी कर दिया। वह लज्जाके मारे ज़मीनमें गड़ गये। फिर उन्होंने भरतके विरुद्ध कभी आँख न उठायी।

उधर लक्ष्मणका तो ऐसा भाव था और इधर भरतको देखिये कि उनकी क्या दशा थी—

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति॥

(वा० रा० २। ९८। ६)

भरतको बराबर यही रट थी कि जबतक मैं राम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन न कर लूँगा तबतक मेरे व्याकुल हृदय-को शान्ति नहीं मिल सकती। जिन भरतके सम्बन्धमें लक्ष्मण समझते थे कि वह हमें मारनेको आ रहे हैं, छत्र, चामर धारण करके राजा भरत हमारा वध करनेके लिये सेना लेकर यहाँ पहुँचे हैं, वही भरत जब रामके सामने पहुँचे तो उनकी क्या दशा थी—

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा ॥

(वा० रा० २।१००।१)

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।
उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किंचन ॥

(वा० रा० २।९९।३८)

जटावल्कलधारी, पर्यश्रुनयन, गद्गदकण्ठ, क्षीणदेह, दीन, हीन, मलीन, दुःखसे व्याकुल भरत एक अपराधीकी भाँति हाथ जोड़े घबराते तथा काँपते हुए रामके पास पहुँचे और पहुँचते पहुँचते ही मूर्छित होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। उस समय भरतके मुँहसे 'हा आर्य' के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं निकल सका।

रामने झपटके भरतको उठाया, प्रेमपूर्वक गोदमें बिठाया और इसके बाद जो जो बातचीत हुई वह सभी जानते हैं। जब भरत किसी प्रकार राज्य लेनेको राजी न हुए तो रामने इतना मंजूर किया कि—

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥

(वा० रा० २।१११।३१)

'वनसे लौटकर मैं धर्मात्मा भाई भरतके साथ राज्य स्वीकार करूँगा।' इधर ऋषियोंने देखा कि रामके ऊपर धीरे धीरे भरतका रंग चढ़ रहा है। उन्हें भय हुआ कि कहीं हमारा उद्देश्य ही नष्ट न हो जाय। इस कारण इसी समय ऋषिलोग बीचमें कूद पड़े और उन्होंने भरतसे कहा कि 'बस हो चुका, अब और ज्यादा जिद न करो। यदि तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाये रखना चाहते हो तो रामकी बात मान लो। इन्हें १४ वर्षतक वनमें रहने दो। बादमें तुम और यह मिलकर राज्य कर लेना।'

ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः ।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः ॥
प्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ॥

(वा० रा० २।११२।५)

यदि भरतके कहनेमें आकर राम उसी समय राज्य स्वीकार कर लेते तब तो फिर रामके द्वारा रावणका वध करानेकी जो स्कीम ऋषियों और देवताओंने मिलकर तैयार की थी, वह सब धूलमें मिल जाती। जिसके लिये विश्वामित्रने दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगकर सुबाहु, मारीच, ताड़का आदिका शिकार कराया था, दिव्य अस्त्र और बला अतिबला आदि विद्याएँ सिखायी थीं, जिसके लिये जनकपुरीमें ही सीताको वनवासकी शिक्षा दी गयी थी, आगेके लिये भी अगस्त्य आदि ऋषियों और इन्द्र आदि देवताओंने बड़ी बड़ी पेशबन्दियाँ कर रक्खी थीं वे सब मंसूबे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते, इसीलिये राम-भरतके इस संवादमें ऋषिलोग अचानक फट पड़े और भरतको उन्होंने रोक दिया।

यह सब कुछ होनेपर भी भरत अपनी हठसे नहीं हटे। उन्होंने कहा कि मैं अकेला इतने बड़े राज्यकी रोक-थाम नहीं कर सकता। सब प्रजा आपहीको राजा बनाना चाहती है। आप इस राज्यको स्वीकार करके इसकी स्थापना कर दीजिये। मैं आपके सेवककी हैसियतसे आपके वनवाससे लौटनेतक काम चलाता रहूँगा। दूरदर्शी भरत शायद इसी आशयसे सुवर्ण-पादुकायें तैयार कराके अपने साथ लेते गये थे, वही उन्होंने पेश की और कहा—

अधिरोहार्यपादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥
सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च ।
प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥

(वा० रा० २।११२।२१-२२)

हे आर्य! आप इन खड़ाउओंको पहनिये। यही आपकी प्रतिनिधि होकर आपका राज्य सम्हालेंगी। रामने खड़ाऊँ पहनीं और फिर उतारकर भरतको दे दीं।

स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् ।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद्बहिः ॥
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।
चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।

(वा० रा० २।११२।२३-२५)

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और रामसे बोले कि 'चौदह वर्षतक मैं एक वनवासी तापसके समान जटा-चीर-धारी होकर नगरसे बाहर रहूँगा और आपके आनेकी प्रतीक्षामें फल-मूलसे ही जीवन निर्वाह करूँगा। आपकी

श्रीरामके चरणोंमें भरत ।

"जटिलं चीरवसनं प्रांजलिं पतितं भुवि ।"   "आर्येत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्त्तुं नाशकत्तदा ।"

पादुकाओंको राजसिंहासनपर स्थापित करके समस्त राज-शासनका कार्य, इन्हींके लिये, १४ वर्षतक करूँगा। चौदह वर्ष बीतनेके बाद पहले ही दिन यदि मुझे आपके दर्शन न मिले तो यह निश्चय जानिये कि उसी दिन मैं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगा। फिर आपको मेरे इस पापी शरीरके दर्शन न हो सकेंगे।'

धन्य भरत, और धन्य उनकी प्रतिज्ञा। भरतका चरित संसारमें अद्वितीय है। इतिहासमें ऐसा दूसरा उदाहरण ही नहीं। धन्य हैं राम जिन्हें भरत-जैसे भाई मिले। भरतका पवित्र चरित्र भारतके लिये, नहीं नहीं,—संसारके लिये—ज्योतिःस्तम्भका काम दे सकता है।

'स पादुके ते भरतः स्वलंकृते
महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित्।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं
चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥
(वा० रा० २।११२।२९)

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा।
छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ ॥
(वा० रा० २।११५)

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।
राज्यं चेदमयोध्यायां धूतपापो भवाम्यहम् ॥
(वा० रा० २।११५।२०)

भरतने पादुकायें लीं, उन्हें अपने सिरपर रक्खा, रामकी प्रदक्षिणा की और उन पादुकाओंको हाथीपर रखवाया। लोगोंको आज्ञा दी कि इन पादुकाओंपर छत्र धारण कराओ। इन्हें भगवान् रामका प्रतिनिधि समझो। यह रामकी धरोहर है। जिस दिन ये पादुकायें और अयोध्याका राज्य—जो मेरे पास धरोहरके समान सुरक्षित रहेंगे—मैं भगवान् श्रीरामको वापिस दूँगा उसी दिन अपनेको पापसे मुक्त समझूँगा।

भरतकी इन बातोंपर टीका टिप्पणी करना हम अनावश्यक समझते हैं। हम तो पहले ही कह चुके हैं कि भरतका चरित पवित्र प्रेम और निर्मल भक्तिका प्रशान्त महासागर है। विशुद्ध धार्मिकताका आकर है। यहाँ किसी नीतिको स्थान नहीं। यहाँ तो सरलता, पवित्रता और निर्मलताके साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्तिकी धारा बहती है। हम इस लेखको यहीं समाप्त करते हैं।

लक्ष्मण और भरतकी भक्ति

(लेखक—श्री 'व्रजवल्लभ')

अवश्य ही अति शुभ मुहूर्त्तमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरित-मानसकी रचना आरम्भ की थी। जान पड़ता है हंसवाहिनी, वीणापाणि माँ सरस्वतीको उस समय पूर्ण सावकाश था। माँ निश्चिन्त थी, प्रफुल्लित थी, आनन्दोन्मत्त थी। कविता-कलापकी तरङ्गें उनके हृदय-सरोवरमें खूब ही लहरा रही थीं। नवरसकी बाढ़ हृदयमें उमड़ आयी थी। तान-तरङ्गसे वीणा झंकरित हो रही थी। माँ आप ही गा रही थी, बजा रही थी, अलाप रही थी। अपने परम भक्तका काव्य-रचनाकी ओर झुकाव देख लीला-प्रिय, भक्त-वत्सल भगवान्‌की आज्ञा हुई। गोस्वामीजीके 'उर-अजिर' में आकर माँ स्वतन्त्र स्वच्छन्द नाचने लगी। या यों कहिये कि लीलामय 'उनके उर-अजिर' में वाणीको नचाने लगे।' अब क्या था—

बानी जू के बरन युग, सुबरन-कन परिमान।
श्रीकवि-मुख कुरुखेत परि, होत सुमेरु समान ॥

अब चला सिलसिला। सचमुच सुमेरुकी सृष्टि हो गयी। असंख्य रत्नखानि उनकी रचनाके भीतर भर गयी। जिन्हें 'मरमी सज्जन सुमति कुदारी लिये' आजतक खोज रहे हैं, और परिश्रमसे खोद खोदकर निकाल रहे हैं।

इनकी रचनाको देखकर साहित्य-रसिक, मर्मज्ञ, कवि, विज्ञ, कोविद चकित हो गये और हो रहे हैं। भूमण्डलके साहित्य-जगत्में इनके मानसको एक अद्वितीय स्थान प्राप्त है। विद्वानोंका मत है कि संसारमें जितने ग्रन्थोंकी रचना हुई है उनमें जर्मन-नाटककार 'गेटी' का 'फोस्ट' और गोस्वामीजीकी रामायण, ये दो ही ग्रन्थ ऐसे हैं कि इन एक एकके पाठसे मनुष्य इतना ज्ञान लाभ कर सकता है जितना सैकड़ों पुस्तकोंके अध्ययनसे भी कदाचित् ही प्राप्त हो सके। यथार्थ ही रामचरित्र अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थोंका देनेवाला है।

कवि, ज्ञानी, विज्ञानी, भक्त, रसिक, जिज्ञासु सभी इसके समीप आकर अपना अभीष्ट पाते हैं और कृतार्थ हो जाते हैं।

श्रीगोस्वामीजीने तो इस अमूल्य गाथाकी रचना 'स्वान्तः-सुखाय' की थी। किन्तु इसमें आप ऐसे सफल हुए कि आज यह ग्रन्थरत्न, करोड़ों सन्तप्त हृदयोंको सुख-शान्ति दे रहा है। कितने भूले-भटकोंको सन्मार्गपर ला रहा है। साधकोंको सिद्धि देता है। फकीरोंको उनके 'मंजिले-मकसूद' तक पहुँचाता है, व्यथित हृदयको शीतल करता है। विमुखोंको सम्मुख करता है। पर शर्त यह है—

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम-चरन अनुरागी। कलि-मल-रहित सुमंगल भागी ॥

स्नेहके साथ पढ़ना-सुनना और सचेत होकर समझना—फिर क्या? बस, बेड़ा पार है। दोनों लोक बन जायँगे। हिन्दी भाषा-भाषियोंमें चाहे वे साधु हों या गृहस्थ, आज जो धर्म-कर्म, मजहबका ज्ञान, भक्तिका प्रचार, पूजा-पाठ देखा जाता है उन सबका उद्रेक इस रामायणसे ही है। यदि रामायण नहीं होती तो सनातन-धर्मकी क्या परिस्थिति होती, यह कहना कठिन है।

कल्याणकारिणी, मोहहारिणी, भ्रमनाशिनी, शान्ति-प्रदायिनी, आनन्द-वर्द्धिनी, भक्ति-मुक्ति-दायिनी रामायणके पठन-पाठनसे जो तृप्त हो जाय, 'रस विशेष जाना सो नाहीं।'

इस ग्रन्थकी एक खूबी और है। साक्षरसे लेकर पण्डित तक इसके पढ़नेसे समान आनन्द पाते हैं। यह ऐसा सुधा-तड़ाग है कि अपठित क्षुद्र पक्षीवत् कोई एक घूँट भी पी लेनेपर उतना ही आनन्दित होता है जितना अगाध पण्डित इसके 'दरस परस मज्जन अरु पान' से होता है। देश-विदेशमें कितने विद्वान् पण्डित ज्ञानी ऐसे हुए हैं और हैं, जो आजन्म इसका परिश्रम और श्रद्धापूर्वक अध्ययन कर अतृप्त ही रह गये हैं।

यदि रामायणके विषयमें विस्तारके साथ लिखा जाय तो एक अलग पोथी तैयार हो सकती है। गोस्वामीजीने इसे समास-रूपमें लिखा है। एक एक चौपाईको लेकर विचार करने और उसका भाष्य लिखनेपर सैकड़ों पन्ने रँगे जा सकते हैं, किन्तु इसकी व्याख्याका अन्त नहीं हो सकता।

'कल्याण' के पाठकोंके चित्तविनोदार्थ मानसके आधारपर श्रीलखनलालजी तथा श्रीभरतजीके भक्तिभावके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालनेका यत्न किया जाता है। श्रीगोस्वामीजीने रामायणमें एक एक भावका उत्कृष्ट उज्ज्वल उदाहरण दिया है, एवम् उनका सविस्तार परम सुन्दर चित्रण किया है।

परब्रह्म परमात्माके साकार तथा निराकार रूपके अनु-रूप जीवात्माविशेषका उनके साथ तीन प्रकारका सम्बन्ध है। एक है दैहिक-बुद्धिके अनुसार अपने इष्टदेवके साथ जीव स्वामी, पिता, सखा, मित्र आदि कोई एक भाव जोड़ कर उसके अनुकूल अपने विचार तथा आचारको दृढ एवं अभ्यासद्वारा परिमार्जित तथा संस्कृत कर परमपदको प्राप्त करना। इसके उदाहरण रामायणमें हनुमान्‌जी, अङ्गदजी, विभीषण, केवट, लक्ष्मणजी, भरतजी प्रभृति हैं। दूसरा है, जीवबुद्धिके अनुसार आचरण। जिसके अनुकूल जीवविशेष अपनेको उनका अंश मानता है। इसीको अंशांशीभाव भी कहते हैं। इसीकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजीने कहा है—

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

तीसरा है आत्मबुद्धिका सम्बन्ध। जिसमें जीव अपनेको भगवान्‌से पृथक् नहीं मानता और जानता है कि मेरे समेत 'सचराचर रूपराशि भगवान्' हैं। जीव एवं ब्रह्मका सम्बन्ध अच्छिन्न अनादि है। मायाके चक्करमें पड़ा रहनेके कारण यह भगवान्‌से कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। उनसे कोई नाता नहीं जोड़ता, वरं उनके अस्तित्वहीको भूले बैठा रहता है। यदि उनका होना मानता भी है तो अपनेको उनसे अलग, दूर, स्वतन्त्र जानता है। गोस्वामीजी कहते हैं—

'सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकटकी नाईं ॥
जड़ चेतन हि ग्रन्थि परि गई ॥ जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥'

किन्तु परम पदको प्राप्त करनेके लिये, अपने मानव-जीवनको सार्थक बनानेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जीव प्रभुके साथ कोई एक सम्बन्ध जोड़कर उसीको प्रौढ़ बनानेमें दत्तचित्त हो जाय। मनन, चिन्तन, अनु-शीलनद्वारा उसकी पुष्टि करे। अनेक भावोंमें सख्य एवं दास्यभाव भी हैं। भावोंमें ये दोनों प्रधान माने जाते हैं।

श्रीलखनलालका प्रभुके साथ सख्यभाव और श्रीभरत-जीका दासभाव था। 'सख्य' में 'ममवासौ' वे मेरे हैं और दास्यमें 'तस्यैवाऽहं' मैं उनका हूँ, यही भावनाएँ बलवान रहती हैं। दूसरे भावोंके अनुसार सख्यभावमें भी सेवा-धर्म बना रहता है। क्योंकि भक्तिका प्रधान अङ्ग सेवा ही है। वह इनमें भी था 'सेवहिं लखन करम-मन-बानी।' किन्तु इसमें माधुर्य तथा प्रेमकी प्रगाढ़ता अधिक होती है। इस भावमें ऐश्वर्यकी ओर भक्तका ध्यान नहीं जाता। अतएव एकताकी

मात्रा बहुत बढ़ी रहती है। यह सख्यभाव अधिक शुद्ध एवं निष्काम है। माधुर्य तथा प्रेमकी मात्रा जितनी बढ़ती है त्यागकी मात्रा भी उसीके अनुरूप अधिकाधिक बढ़ती जाती है। त्याग एवं कष्ट इस भावके भाविकको विचलित नहीं करते वरं उसके आनन्दको उत्तरोत्तर बढ़ाया करते हैं। अपने उपास्यदेवके आदेशानुसार सेवामें लीन रहना, जो मिल जाय उसीमें सन्तोष करना— इस भावका उपासक इसीको अपना एकमात्र कर्तव्य – परम धर्म मानता है।

परमात्मा एवं जीवात्माके शुद्ध स्वरूपके विचारसे यह सख्यभाव अनादि है। श्वेताश्वतरोपनिषत्में कहा है 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' (११।४।६०) इस देहरूपी वृक्षपर सुन्दर पंखवाले दो विहङ्गम एक साथ सखाकी भाँति वास करते हैं यहाँ दो विहङ्गमोंसे परमात्मा तथा जीवात्माका तात्पर्य है। इससे सिद्ध होता है कि जीव तथा ब्रह्ममें अटूट सम्बन्ध है। किन्तु प्रभुकी कृपा बिना जीवको इसका ज्ञान नहीं होता, न इस ओर इसका ध्यान ही जाता और न प्रवृत्ति ही होती है।

जीव दो प्रकारके होते हैं, एक नित्यमुक्त और दूसरा साधारण। नित्यमुक्तको अपने निज स्वरूपका ज्ञान सदा-सर्वदा बना रहता है। वह कभी अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं होता। साधारणको हठ,अभ्यास तथा अनुशीलनद्वारा सहजका ज्ञान होता है। तत्पश्चात् वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, जिससे उसका दैहिक ज्ञान जाता रहता है।

श्रीलक्ष्मण तथा भरतजी प्रथम श्रेणीके जीवोंमें हैं। अतएव—

'जो आनन्दसिन्धु सुखरासी। सीकरतें त्रयलोक सुपासी।।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा।।'

—जो भगवान् हैं, उनके साथ श्रीलखनलाल अपना सख्य भावका अटूट सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इनका यह सम्बन्ध अनादिकालका है। इसीसे इसके विकास होनेमें कुछ विलम्ब नहीं लगा। और—

'बारहिं ते निज हित पति जानी। लछमन राम चरन रति मानी।।'

—इनका यह सम्बन्ध अन्ततक बना रहा। एक क्षणके लिये भी आप अपने इष्टदेवसे अलग नहीं हुए। उनकी सेवासे विचलित नहीं हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि उस अवतारमें शरीर धारण करनेके कारण आपको कोई चिन्ता न हुई। किसी प्रकारका मानसिक दुःख नहीं हुआ। सरकारके समीप रहकर उनकी रुचिका पालन करना ही इनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्यसे यह कभी भ्रष्ट नहीं हुए।

शरीर धारण करनेके कारण ही प्रत्येक मनुष्यमें कोई-न-कोई दुर्बलता अवश्य ही रहती है। क्योंकि काल, कर्म, स्वभाव, गुण तथा संसर्ग-वश जीव विवश ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके झकोरोंमें पड़ा रहता है। जिसमें जिसकी मात्रा अधिक रहती है, वह उसीके अनुसार लोभी, क्रोधी, आदि विशेषणोंसे विभूषित किया जाता है। भक्तमें भी ये दुर्बलताएँ रह जाती हैं। क्योंकि यह जीवका सहज स्वभाव है। किन्तु भक्त अपनी इस दुर्बलताको भी प्रभुके ही काममें लगाता है। भक्तका भी यह सहज स्वभाव है।

श्रीलक्ष्मणजी सशेष शेषके अंश होनेके कारण खीससे भरे रहते थे। क्रोधकी मात्रा इनमें प्रबल थी। किन्तु सारी रामायण देखनेसे ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने लिये कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। आदर्श भक्त होनेके कारण इन्हें प्रभुको छोड़कर निजकी कोई रुचि, लालसा, वासना थी ही नहीं और जब आप आशा-निराशाकी परिधिके बाहर ही थे तब इन्हें क्रोध ही क्यों होता, किसीपर अपने लिये खीझते ही क्यों? आप तो प्रभुकी केवल छायामात्र थे, उनके प्रतिबिम्ब-स्वरूप थे। यही भक्तका स्वरूप है।

अपने लिये तो नहीं, पर जब कहीं या कभी इन्हें ज्ञात होता था अथवा भ्रम हो जाता था कि कोई प्रभुके प्रति अपमानसूचक कुछ कह रहा है अथवा कर रहा है तब आप उबल पड़ते थे। पात्रापात्रका विचार इनके मनसे जाता रहता था। फिर किसकी सामर्थ्य थी कि इनके सामने अपना सिर उठा सके, इनके सम्मुख खड़ा रह सके? श्री-जनकराजके 'बीर-बिहीन मही मैं जानी।' कहते ही आप कैसा प्रचण्ड रूप धारण करते हैं! पर अपने लिये नहीं! इन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तमका अपमान हुआ है। कहने लगे—

'रघुबंसिन्हमहँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई।।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी।।
सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू।।
जो तुम्हार अनुसासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावौं।।
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी।।
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु-पद-सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

परिणाम यह हुआ कि—

'लषन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डेराने।'

रामायणभरमें कहीं भी इनकी अपनी बात नहीं है। प्रभु क्या कहते हैं? क्या चाहते हैं? क्या करते हैं? इन्हीं बातोंकी ओर इनका सतत ध्यान रहता था। इनकी बुद्धि, तेज, बल, प्रताप, पौरुष, पुरुषार्थका परिचय पाठकोंको भलीभाँति धनुर्यज्ञमें ही मिल जाता है! वहाँ इन्होंने परशुरामजीके साथ साथ उपस्थित नरेशोंपर भी अपनी पूरी धाक जमा दी तथा उन्हें हर प्रकार परास्त कर दिया।

वनवासके समय अपनी अलौकिक भक्ति प्रगाढ़ प्रेम और शुद्ध अनुरागपूर्ण त्यागका अद्भुत अभूतपूर्व परिचय दिया है। श्रीरामचन्द्रजीके वनवासका संवाद पा आप व्याकुल हो गये। मारे क्रोधके आपेसे बाहर हो गये। रह रहकर इनके मनमें उदय होने लगा कि बलपूर्वक अवधके राज्यपर अपना अधिकार कर अपने बड़े भाईको सिंहासनारूढ़ किया जाय, और जो उनके विरुद्ध खड़ा हो उसे उचित दण्ड दिया जाय। किन्तु जब देखा कि यह बात भाईकी इच्छाके प्रतिकूल पड़ेगी तब आप विरत हो गये, चुप हो गये। पर अपना कर्त्तव्य निश्चित करनेमें इन्हें देर न लगी। ठान लिया कि जब प्रभु नहीं चाहते तब इस झञ्झट-बखेड़ेमें कौन पड़े। चलें सुखसे प्रभुके साथ वनमें स्वच्छन्द विचरण करें। सांसारिक वासनाओंसे मन हटा, माता, पिता, पत्नी, राज्य, सुख, परिवार, देश, कोष सबका खयाल छोड़, जगत्से मुँह मोड़, आपने अपने मनको प्रभुकी ओर लगाया। आपमें जागृति आयी। ये जाग उठे। इन्हींके शब्दोंमें लीजिये—

'जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोह-भ्रम भागा। तब रघुबीर-चरन अनुरागा॥'

और 'सबकर ममता ताग बटोरी' आपने अपनेको प्रभुके चरणोंमें सुदृढ़ बाँध दिया।

देखिये आगे क्या गुल खिलता है? जब श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि 'देह गेह सब सन तृन तोरे' कर जोरे आवेशकी प्रतीक्षा किये आप सम्मुख खड़े हैं तब आप इन्हें गार्हस्थ्यनीति, राजनीति और क्षात्र-धर्म सिखाने लगे। स्वर्ग-नरकका लोभ तथा भय दिखाने लगे। कहने लगे—

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥'

पर यहाँ तो सच्ची लगन थी। प्रेमके आवेशमें आप सब धर्मोंको परित्याग कर प्रभुकी शरणमें आ चुके थे। इन-पर इन बातोंका क्या असर होता? बोले—

'नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जँह लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर-अन्तरजामी॥

हाँ! यही प्रेमाभक्ति है। सभी कुछ प्रभु ही है और कोई कुछ नहीं। हानि-लाभ, मान-अपमानका ध्यान नहीं।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिन्धु परिहरिअ कि सोई॥

इनके 'प्रेम-पगे' अटपटे बचन सुनकर प्रभु चक्करमें पड़े, इनके प्रेमके सामने मर्यादापुरुषोत्तमकी नीति तथा धर्मको हार माननी पड़ी। लाचार आप श्रीलक्ष्मणको वनमें साथ ले गये। लखनलाल संकोच-वश साथ नहीं जाते हैं, वरं प्रफुल्ल-चित्त आह्लादपूर्ण हृदयसे जाते हैं। जैसे—

'बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबस॥'

वनमें रहकर परोक्षभावसे आपने जो सरकारकी सेवा की, उसका उल्लेख भला कभी हो सकता है? बारह वर्षोंतक वीरासनसे धनुष-बाण लिये सारी रात बैठे बैठे जागकर बिताना क्या सहज तपस्या थी? ये आत्मविस्मृत, प्रेम-पूर्ण, तेजस्वी, उत्साही, संयमी, सच्चे संन्यासी थे। इनका स्नेह मौन रहनेके कारण अतल था। प्रभुके साथ साथ डोलना, उनको देखना और देख-देखकर अखण्डानन्द अनुभव करना यही इनका काम था।

इनमें आपा नहीं था। उसे यह एकदम खो बैठे थे। प्रभुकी नींद सोना, उन्हींकी नींद जगना। भक्तिकी यही पराकाष्ठा भी तो है। 'चाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, प्रभुसन सहज सनेह' ऐसे भक्तको तो अवश्य ही भगवान् आप भी भजते हैं। क्योंकि यह तो विनिमय है 'मुमकिन नहीं कि दर्द

इधर हो उधर न हो' और इधर आप ठहरे 'स्वारथ-रहित सखा सबहीके।' अतएव वनवास-कालमें राघवेन्द्र—

'सीय-लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥'

और—

'जुगवाहे प्रभु सिय-अनुजहि कैसे। पलक बिलोचन-गोलक जैसे॥'

वनवासके कारण श्रीसरकारको जो कष्ट हुआ, उसका दुःख क्षोभ कभी इनके मनसे नहीं हटा। अपने लिये नहीं, अपने अग्रजके लिये रह-रहकर यह उबल पड़ते थे। सुमन्तके द्वारा कटु सन्देश भेजना, चित्रकूटमें यह सन्देह होनेपर कि श्रीभरतजी अपने भाईसे वैर साधने आ रहे हैं और 'प्रभु हृदय खँभारू' लखकर आप कैसे बेताब हो जाते हैं? मनमें यह निश्चय होते ही कि भरतजी "निदरे राम जानि असहाई" सोता हुआ वीर-रस जाग उठा। अब क्या था?

'बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा॥'

आप सिंहवत् नादसे कहने लगे—

'आजु राम-सेवक जस लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर-सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥'

पहले राज-भङ्गके अवसरका खीस बना हुआ था। इनकी प्रबल प्रतिज्ञाका असर क्या हुआ?

'सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान।'

सृष्टिमें उलट-फेरकी नौबत आगयी। प्रलयका सामान जुट गया। किन्तु प्रभुकी सान्त्वना-सूचक वाणी सुनकर आपने तुरन्त अपनेको सम्हाल लिया।

कहीं भी देखिये आप प्रभुकी ही रुचिकी ओर ध्यान रखते हुए उसीके अनुकूल सदा करते दृष्टि आवेंगे। इसके द्वारा आप प्रभुके तद्रूप हो गये। किन्तु कब? पञ्चवटीकी तपस्याके बाद। इसके पहले इनके और प्रभुके बीच एक अन्तर था, श्रीमतीजीका। कैसी पूर्ण उपमा गोस्वामीजीने दी है—

'आगे राम लखन पुनि पाछे।
उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥'

जीवकी यथार्थ अवस्था यही है। वह प्रभुसे दूर नहीं है। एक दूसरेके सन्निकट ही हैं। बस, यही मायाका आवरण देखने नहीं देता। जीवसे प्रभुको आवरण करनेवाली यही प्रचण्ड वैष्णवी मुग्धकरी, मोहिनी, माया है। सच है—

'मायाछन्न न देखियत जैसे निर्मल ब्रह्म।'

देखिये, पम्पा-सरोवरपर मायाके दूर हो जाते ही इस जीवविशेष तथा 'पूरण काम राम सुखरासी' में कितनी अधिक घनिष्ठता बढ़ गयी। दोनोंके आचार-विचारमें अन्तर ही नहीं रह गया। 'एक जान दो कालिब' की बात हो गयी।

प्रभुने अपने लीला-विस्तारमें इनसे पूरी सहायता ली। परिणाम यह हुआ कि आप इस अवतारमें कभी प्रभुसे जुदा नहीं हुए। इस अवतारका ध्यान इनके बिना पूरा हो ही नहीं सकता। अतएव भक्तोंने जहाँ-जहाँ सरकारसे वर माँगा है, वहाँ यही कहा है कि—

'मेरे हृदय सदन सुख दायक। बसहु लषन-सिय सह रघुनायक।'

'मेरे मन मन्दिर बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।'

अब अर्चा-विग्रहमें भी हर स्थानपर प्रभुके साथ सख्य-भावके प्रधान भक्त श्रीलखनलालजीकी बराबर सेवा हो रही है। इसीसे कहा जाता है कि समय पाकर भक्त भगवान् बन जाता है।

सरकारके सदा साथ रहने एवं 'सहज सनेह सुधा प्रतिपालित' होनेके कारण आपमें लड़कपन सदा बना रहा। बाल-सुलभ सहज सरल स्वभाव रहने और साहसी, पुरुषार्थी होनेके कारण आप निर्भीक किन्तु चञ्चल-चपल थे। निश्छल हृदय होनेसे आपके जीमें जब जो आता था, कह बैठते थे। किसीका भय संकोच नहीं करते थे। सरकारकी राय भी जब इन्हें पसन्द नहीं आती थी तब बेबाक अपने मन्तव्यों, मनोगत भावोंको कह बैठते थे। स्वावलम्बन आपमें पूरा था। सागरसे पथ माँगनेका परामर्श सुनकर आपने साफ शब्दोंमें कह दिया—

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिन्धु करिअ मन रोसा॥
कादर कर मन एक सहारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

श्रीलक्ष्मणजीके मनसे ममता एकदम हट गयी थी। इन्द्रजीतपर विजय प्राप्तकर श्रीरामचन्द्रके सम्मुख आप उसी प्रकार उपस्थित हुए, जैसे प्रतिदिन हुआ करते थे।

श्रीलखनलालजीके सख्यभावका दिग्दर्शन आप सज्जनोंको यथासाध्य कराया गया। अब श्रीभरतजीके अतल विस्तृत गम्भीर दास्यभावको देखिये।

इनके विषयमें थोड़ा लिखना भी कठिन है। इन्हींका भाव तथा चरित्र लेकर श्रीगोस्वामीजीने सम्पूर्ण अयोध्या काण्डका निर्माण किया है।

दासभाव स्वाभाविक होनेपर भी इसका पालन अत्यन्त कठिन है। श्रीभरतजीने स्वयं ही कहा है—

'सबते सेवक धर्म कठोरा।'

भरतजीकी भाव-गम्भीरता, नम्रता, सरलता, निश्छलता, धीरता, बुद्धि-विचक्षणता, सभाचातुरी, वाक्य-पटुता, त्याग, सेवा, धर्मधुरीणता देखकर बुद्धि चकित हो जाती है। इनका वर्णन क्योंकर हो सकता है?

भरत-सील-गुन-बिनय-बड़ाई। भायप-भगति-भरोस-भलाई॥
कहत सारदहुँकी मति हीचै। सागर सीपकी जाहिं उलीचै॥

साधारण मनुष्यकी क्या बात है जब राजर्षि जनकजीने इनके विषयमें कहा है—

धर्म राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ यथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोर भरत महिमाहीं। कहौं काह छल छुअति न छाहीं॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

इनका चरित्र अपार है। गोस्वामीजीने सत्यही कहा है—

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गम नाहीं॥

इनके भावकी अगमताके विषयमें भी श्रीजनकराजने आप ही कहा है कि—

देवि परन्तु भरत रघुबरकी। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरत अवधि सनेह ममताकी। जद्यपि राम सीम समताकी॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम-पग-नेहू।

ठीक है सच्चा भक्त भी तो वही है जिसे भगवान् स्वयं भजें। इनका ध्यान श्रीरामचन्द्रके हृदयसे कभी नहीं हटा—

जग जपु राम राम जपु जेही।

परिणाम हुआ—

जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव-रोगू॥
यह बड़ि बात भरतकी नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं॥

और मनहीमें क्यों? खुलकर भी तो सरकारने श्रीमुखसे कहा है—

सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपञ्च महँ सुना न दीखा॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना॥

जिन्होंने—

निज जस जगत कीन्ह उजियारी।

सुमिरन ही क्यों आप इनकी सेवा भी तो करते थे। देखिये राज्याभिषेकके पूर्व—

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर जटा राम निरवारे॥
नहवाये प्रभु तीनिहुँ भाई। भक्तबछल कृपाल रघुराई॥

जिसे देख गोस्वामीजी कहते हैं—

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेस कोटि-सत सकहिं न गाई॥

इधर भरतजीको भी किसी बातकी चिन्ता नहीं थी। उन्हें दीन-दुनियाका खयाल भी नहीं था। अपने-परायेकी सुधि रखते हुए भी आपने अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य प्रभुकी प्रसन्नता ही रक्खा था। अवधमें जब इन्हें गद्दी देनेकी बात चली तब आपने कहा था—

डर न मोहि जग कहहिं कि पोचू। परलोकउकर नाहिंन सोचू॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियराम दुखारी॥
आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिरनाइ।
देखे बिनु रघुनाथ-पद, जियकी जरनि न जाय॥

भरतजीके गुणोंका वर्णन किसीसे कदापि नहीं हो सकता 'कबिकुल अगम भरत गुनगाथा।' जब प्रभुके प्रादुर्भावके प्रधान कारण ही यही माने जाते हैं तब और कहाँतक कहा जा सकता है?

होत न भूतल भाव भरतको। अचर सचर चर अचर करत को॥
प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटे सुर-साधु-हित, कृपासिन्धु रघुबीर॥

इनके त्यागका क्या पूछना है? देखिये, प्रयागमें इनकी पहुनईके लिये मुनिकी आज्ञा पा ऋद्धि-सिद्धिने जब 'बिधि-बिसमयदायक' बिभव प्रस्तुत किया तब इन्होंने उनकी ओर भ्रूपात भी नहीं किया। भोगकी सामग्री पास रहते हुए भी उसे भोग न करना ही तो सच्चा त्याग है।

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखा भा भिनुसार॥

सेवा-धर्मकी ओर इनका पूर्ण ध्यान बना रहा। आपका कथन था कि—

सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

प्रभुकी चरण-पादुका पानेपर आप पूर्णरूपसे सन्तुष्ट हो जाते हैं और कहते हैं—

नाथ भयउ सुख साथ गयेको। लहेउ लाभ जग जन्म भयेको ॥

'शम, दम, नियमके आचरण' से आप 'पञ्च-जनित विकारों' से रहित हो गये थे। माताकी कुटिल करनीको सुन आपने अपनेको कितना सम्हालकर क्रोधको ग्लानिसे दबा दिया। हार मानकर आपने कहा कि—

जोहसि सोहसि मुँह मसि लाई। आँख ओट उठि बैठसि जाई ॥

राम-बिरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहहुँ कछु तोहि ॥

इतना मनमें आते ही आप तटस्थ हो गये। अतएव मन्थराको जब शत्रुघ्नजी 'लगे घसीटन धरि धरि झोंटी' तब दयानिधि भरतने छुड़ा दिया। मद तो इनके बाँटे पड़ा ही नहीं था। सरकारने आप ही कहा है—

भरतहिं होय न राजमद, बिधि-हरि-हर पद पाय।

भरतजीके वैराग्यका पता तो अयोध्याकाण्डके अन्तमें चलता है, जहाँ गोस्वामीजीने इनके आचरणके विषयमें कहा है—

अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धन लखि धनद लजाहीं ॥
तेहु पुर बसत भरत बिन रागा। चञ्चरीक जिमि चम्पक बागा ॥

कहा है कि—

चम्पामें गुन तीन हैं, रूप रंग अरु बास।
पर इतनोही खोट है, भ्रमर न आवत पास ॥

और—

लखन-राम-सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मृदु मंगलकरनू ॥

भरतजीका भाव अपार अगम अपूर्व है। उसका उल्लेख होना कठिन ही नहीं असम्भव है। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है—

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन
होत जनम न भरतको।
मुनि मन अगम जम नियम
सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन
सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठहि
हठि राम सनमुख करत को ॥

और गोस्वामीजी ऐसा कहें क्यों नहीं? क्योंकि आपका तो सिद्धान्त था 'सेवक सेव्यभाव बिनु, भव न तरे उरगारि' और इस भावके श्रीभरतजी आदर्श भक्त थे।

अब देखिये, दोनों भाइयोंका प्रभुके साथ एक सम्बन्ध और आपसमें भायपका दृढ़ बन्धन रहनेपर भी अपने अपने भिन्न भिन्न भावोंके कारण दोनों महानुभावोंका बर्ताव श्रीरामचन्द्रजीके साथ भिन्न रहा और उसकी वृद्धि एवं पुष्टि अपने अपने स्वभावके अनुकूल भिन्न भिन्न रीतिकी हुई। प्रभुकी रुचि-पालनमें दोनों समान थे। किन्तु श्रीलखनलाल सरकारके निजकी सेवासे सन्तुष्ट रह अपनपा-अहंबुद्धि एकदम गँवा बैठे थे। अपने लिये प्रभुसे उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा—कभी कुछ नहीं जाँचा, प्रभुको छोड़ संसारमें किसीको नहीं जाना। प्रभुकी रुचि-पालन तथा सेवाके अतिरिक्त अपना निजका कोई धर्म नहीं माना। निजका सुख-दुःख, मान-अपमान इन्हें कभी विचलित नहीं कर सका। और भरतजी सरकारके नाते प्रजा, परिजन, माता, गुरु, पुरोहित, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, और कोषकी सेवामें सद्भावसे प्रवृत्त रहे। किन्तु प्रेम-सरोवरमें सदा निमग्न रहते हुए भी ये सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोगकी आँचसे सन्तप्त एवं शीतल होते रहे। पर दोनोंकी तपस्याका फल हुआ एक ही परमपदकी प्राप्ति, प्रभुके पादपद्ममें पूर्ण विशुद्ध प्रेम, हृदयमें अनपायिनी भक्तिका सर्वोपरि विकास, और अखण्डानन्दका सतत उल्लास! इन दोनोंके हृदय-सरोवरमें राम सदा कमलवत् विकसित रहे, उसीके चारों ओर इनका मन-भ्रमर सदा मँडराता रहा।

सोअत जागत स्वप्नमों, रस रिसचैन कुचैन।
सुरत स्यामघनकी सुरति बिसराये बिसरै न ॥

संसारमें ऐसा प्रेम, ऐसी भक्ति अलभ्य है। ये दोनों महानुभाव स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-त्यागके आदर्श चित्र हैं। प्रेमकी वेदीपर इन दोनोंने अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण किया किन्तु बदलेमें कुछ नहीं चाहा। इसीका नाम निष्काम धर्म है। इसीको निष्काम प्रेम कहते हैं। ऐसे ही भक्त अनन्त दिव्य आनन्दसागरमें आनन्दरूप होकर सदा निमग्न रहते हैं।

महारानी कौसल्या

रामायणमें महारानी कौसल्याजीका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। यह महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जननी थी। प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्र-रूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था, वही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाण्डसे होता है। भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है। नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है, वह रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके यज्ञ, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न है, श्रीसीता-रामको राज्यसिंहासनपर देखनेकी निश्चित आशासे उसका रोम-रोम खिल रहा है परन्तु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं। सौन्दर्यो-पासक महाराज दशरथ कैकेयीके साथ वचनबद्ध होकर श्रीरामको वनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

धर्मके लिये त्याग

प्रातःकाल श्रीराम माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर वनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उसके महलमें पधारते हैं। कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही है और मन-ही-मन सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ लग्न किस समय है?' इतनेहीमें नित्य प्रसन्नमुख और उत्साह-पूर्ण हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप जा पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता यकायक उठकर वैसे ही सामने आती है जैसे घोड़ी बछेरेके पास आती है। राम माताको पास आयी देख उनके गले लग जाते हैं और माता भी भुजाओंसे पुत्रको आलिङ्गन कर उनका सिर सूँघने लगती है।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं बडवा यथा॥
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि॥
(वा० रा० २। २०। २०-२१)

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य-रसकी बाढ़ आ गयी, उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो यही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निछावर करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण बाँटने लगी। श्रीराम चुपचाप खड़े थे। अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया। उसने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हेसे शिशुकी भाँति गोदमें बैठा लिया और लगी प्यार करने—

बार बार मुख चूमति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता॥

जैसे रंक कुबेरके पदको प्राप्त कर फूला नहीं समाता, आज वही दशा कौसल्याकी है। इतनेमें स्मरण आया कि दिन बहुत चढ़ गया है, मेरे प्यारे रामने अभी कुछ खाया भी नहीं होगा। अतएव माँ कहने लगी—

तात जाउँ बलि बेगि अन्हाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥

माता सोच रही है कि 'लगनमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूखा कैसे रह सकेगा, कुछ मिठाई ही खा ले, दो-चार फल ही ले ले तो ठीक है।' उसे यह पता नहीं था कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आये हैं। भगवान् रामने कहा—'माता-पिताने मुझको वनका राज्य दिया है। जहाँ सभी प्रकारसे मेरा बड़ा कल्याण होगा, तुम प्रसन्न-चित्तसे मुझको वन जानेके लिये आज्ञा दे दो, चौदह साल वनमें निवासकर पिताजीके वचनोंको सत्य कर पुनः इन चरणोंके दर्शन करूँगा। माता तुम किसी तरह दुःख न करो।'

रामके ये वचन कौसल्याके हृदयमें शूलकी भाँति बिंध गये। हा! कहाँ तो चक्रवर्ती साम्राज्यके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी बात और कहाँ अब प्राणाराम रामको वन जाना पड़ेगा। कौसल्याजीके हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, वह मूर्छित हो पड़ी और थोड़ी देर बाद जगकर भाँति भाँति-से विलाप करने लगी।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताकी अपेक्षा माताका स्थान ऊँचा है, यदि महाराजने रामको वनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं नहीं जाने दूँगी। परन्तु फिर सोचा कि 'यदि बहिन कैकेयीने आज्ञा दे दी होगी तो मेरा रोकनेका क्या अधिकार है, क्योंकि मातासे भी सौतेली माताका दर्जा ऊँचा माना गया है। इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मार्मिक शब्दोंमें कहती है—

दशरथजीका दरबार ।

'जौ पंचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥'
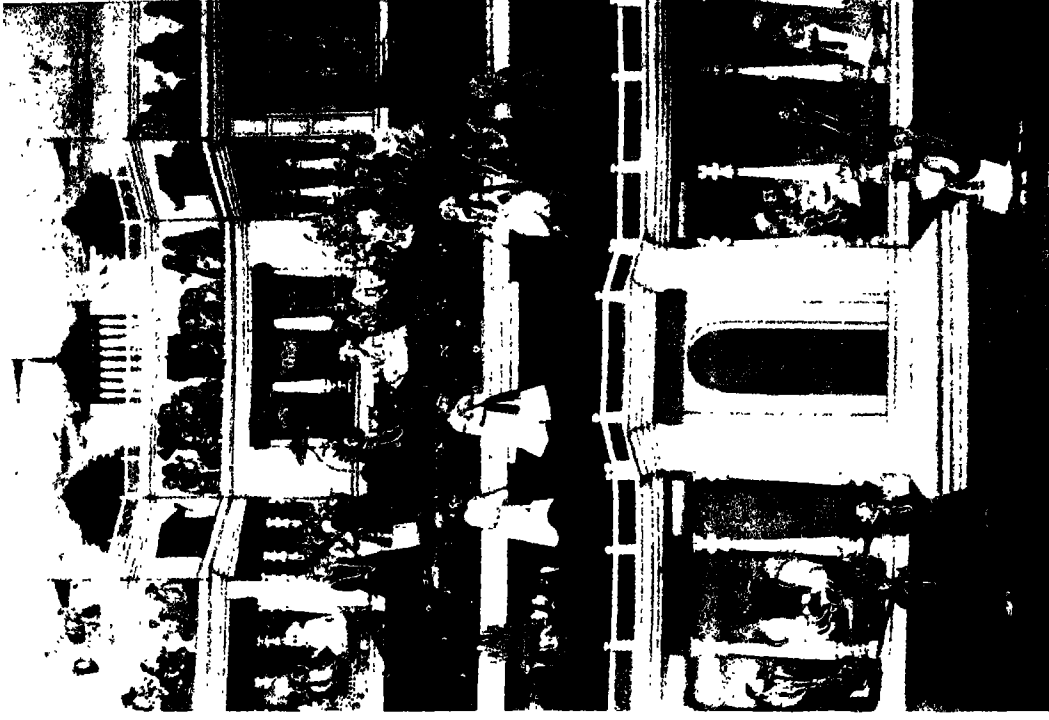
गुरु वसिष्ठजी ।

तब नरनाह वसिष्ठ बोलाये । रामधाम सिख देन पठाये ॥

राम और केवट।

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
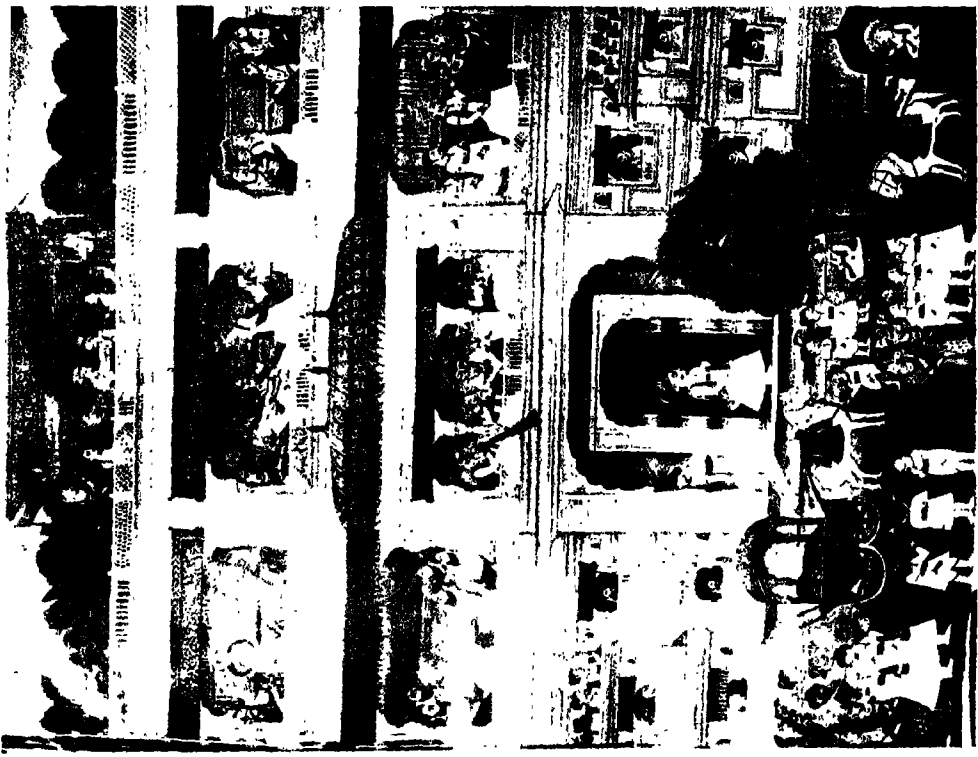
दशरथ-मरण।

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु-मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना॥

माताসे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कैकेयी-की भी यही सम्मति है।' यहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धि-मानीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं 'श्रीरामको हठपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म तो जायगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है।

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धर्म जाइ अरु बन्धु बिरोधू॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साध्वी कौसल्या-ने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'बेटा! जब पिता-माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसको धर्म-सम्मत समझते हो तो मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती, जाओ और धर्मका पालन करते रहो। एक अनुरोध अवश्य है—

मानि मातुके नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाय।

पातिव्रतधर्म

कह तो दिया, परन्तु फिर हृदयमें तूफान आया। अब कौसल्या साथ ले चलनेके लिये आग्रह करने लगी और बोली—

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥
(वा० रा० अ० २।२४।९)

'बेटा! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे वह जहाँ जाता है वहीं जाती है वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको अवसर जानकर पातिव्रत-धर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो स्त्रीमात्रके लिये मनन करने योग्य है। भगवान् बोले—

भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः॥
यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः।
शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः॥
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः॥
न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता।
भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः॥
भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा।
यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः॥
श्रमं नावाप्नुयात्किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु।
दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत्॥
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता।
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत्।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात्।
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः।
(वा० रा० २।२४)

'हे माता! पतिको परित्याग कर देना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है, तुमको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं चाहिये, करना तो दूर रहा। जबतक काकुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीते हैं तबतक तुमको उनकी सेवा ही करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। जीवित स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो तुम्हारे और मेरे स्वामी राजा हैं और मालिक हैं। भाई भरत भी धर्मात्मा और प्राणीमात्रके साथ प्रिय आचरण करनेवाले हैं, वह भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। हे माता! मेरे जानेके बाद तुमको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज दुखी होकर दारुण शोकसे अपने प्राण न त्याग दें। सावधान होकर सर्वदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दो। व्रत, उपवासादि नियमोंमें तत्पर रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती है तो वह अधम गतिको प्राप्त होती है, परन्तु जो देवताओंका पूजन नमस्कार आदि बिल्कुल न करके भी पतिकी सेवा करती है उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।'

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रता-शिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी, अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको वन गमन करनेके लिये उसने आज्ञा दे दी। कौसल्याके पातिव्रतके सम्बन्धमें निम्नलिखित

उदाहरण और भी ध्यान देने योग्य है—जिस समय श्रीसीताजी स्वामी श्रीरामके साथ वन जानेको तैयार होती है उस समय कौसल्याजी उत्तम आचरणवाली सीताको हृदयसे लगाकर और उसका सिर सूँघकर निम्नलिखित उपदेश करती है—

'पुत्री ! जो स्त्रियाँ पतिके द्वारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करती, वह असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं वे ही शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं, बड़ोंके उपदेशके अनुसार उनका वर्ताव होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परमपूज्य देवता मानती है। बेटी ! आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्धन तेरे लिये तो वही देवता है अतः कभी उसका तिरस्कार न करना।'

यद्यपि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके वचनोंसे कुछ भी बुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उसकी बातें धर्मार्थयुक्त समझ हाथ जोड़कर कहा—'माता ! मैं आपके उपदेशानुसार ही करूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका बर्ताव करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप असाध्वी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें—

धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥
(वा० रा० २।३९।२८-३०)

'मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिसप्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती। जिसप्रकार बिना तारके वीणा नहीं बजती, जिसप्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो जाय, परन्तु पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र वगैरह जो कुछ सुख देते हैं वह परिमित होता है और केवल इसी लोकके लिये होता है परन्तु पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है, अतएव ऐसी कौन दुष्टा स्त्री है जो अपने पतिकी सेवा न करे ?'

जब राम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुखी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती है, इसके उत्तरमें जब दुखी महाराज आर्त्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब तो कौसल्या भयभीत होकर अपने कृत्यपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती है, उसकी आँखोंसे निर्झर तरह आँसू बहने लगते हैं, और वह महाराजके हाथ पकड़ उन्हें अपने मस्तकपर रख घबराहटके साथ कहती है—'हे नाथ! मुझसे बड़ी भूल हुई, मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं पुत्र-वियोगसे पीड़िता हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव, आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी तो मैं आज पातिव्रत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी हूँ। आज मेरे शीलपर कलंक लग गया है। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करने योग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन्! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है।' कौसल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौसल्या पतिव्रत-धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी। स्त्रियोंको इस प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कर्त्तव्यनिष्ठा

दशरथजी रामके वियोगमें व्याकुल हैं, खान-पान छूट गया है, मृत्युके चिह्न प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है, ऐसी अवस्थामें धीरज धारण कर अपने दुःखको भुला श्रीरामकी माता कौसल्या जिसका प्राणाधार पुत्र वधूसहित वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुझि मन करिय बिचारू। रामबियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरज धरिय तो पाइय पारू। नाहित बूड़िहि सब परिवारू ॥
जो जिय धरिय बिनय प्रिय मोरी। रामलषनसिय मिलहिं बहोरी ॥

धन्य ! रामजननी देवी कौसल्या ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विश्वास और तुम्हारी आदर्श कर्तव्यनिष्ठाको !

बधू-प्रेम कौसल्याको अपनी पुत्र-बधू सीताके प्रति कितना वात्सल्य-प्रेम था, इसका दिग्दर्शन नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है, जब सीताजी रामके साथ वन जाना चाहती है तब रोती हुई कौसल्या कहती है—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुण सील सुहाई॥
नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई। राखहुँ प्राण जानकिहि लाई॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन पगु अवनि कठोरा॥
जिवनमूरि जिमि जुगवति रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ॥

जब सुमन्त श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको वनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तो कौसल्या अनेक प्रकार चिन्ता करती हुई पुत्रबधूका कुशल-समाचार पूछती है। फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है 'बेटी! धूपसे सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है वह मुझे जला रही है।'

यदि आज सभी सासोंका बर्ताव पुत्रवधुओंके साथ ऐसा हो जाय, तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे।

राम-भरतमें समानभाव और प्रजाहित कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती थी। उसका हृदय विशाल था। जब भरतजी ननिहालसे आते हैं और अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए एवं अपनेको धिक्कारते हुए, सारे अनर्थोंका कारण अपनेको मानते हुए जब माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर आँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती है और ऐसा मानती है मानो राम ही लौट आये। उस समय शोक और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वह बेटे भरतको धीरज बँधाती हुई कोमलवाणीसे कहती है—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि सोक परिहरहू।
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करमगति अघटित जानी।
× × ×
राम प्रानतें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रानतें प्यारे॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिम आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भये ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार इहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिं नयन जल छाये॥

कैसे आदर्श वाक्य हैं रामकी माता ऐसी न हो तो और कौन हो?

महाराजकी दाहक्रियाके उपरान्त जब वसिष्ठजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती है—

× × × । पूत पथ्य गुरु आयेसु अहई॥
सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय बिषाद काल-गति जानी॥
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम्ह यहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा। तुम्हही सुत सबकहँ अवलम्बा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुख हरहू॥

प्रजाहितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये। माताने रामके वन जाते समय भी कहा था 'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले आज वन मिल रहा है, मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके बिना महाराज दशरथ, पुत्र भरत, और प्रजाको महान् क्लेश होगा—

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहिं प्रचण्ड कलेसु।

पुत्र-प्रेम कौसल्याकी पुत्रवत्सलता आदर्श है। रामके वनवाससे कौसल्याको प्राणान्त क्लेश है परन्तु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, वरं कहती है—

न शक्यसे वारयितुं गन्तुमिदानि रघूत्तम।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे॥
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥
(वा० रा० २। २५। २-३)

बेटा! मैं तुझे इस समय वन जानेसे रोक नहीं सकती। तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ। सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करता रह। तू प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है वह धर्म ही तेरी रक्षा करे। इसप्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्माओंके सन्मार्गका अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मंगलरक्षा करती है और कहती है—

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग-मृग चरन-सरोरुह सेवी ।
अन्तहु उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होत हरासू ॥

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौसल्या इसप्रकार पुत्रको सहर्ष वनमें भेज देती है। वियोगके दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है परन्तु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोकरहित सुख-दुःख-शून्य आनन्दमयी मन्जुल मूर्त्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती है। यह है सच्चा प्रेम! यहाँ मोहको तनिक भी गुंजाइश नहीं। भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है,– 'बेटा, महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बदले वनवास दे दिया परन्तु इससे रामके मुखपर कुछ भी म्लानता नहीं आयी–

पितु आयसु भूषन-बसन तात ! तजे रघुबीर ।
बिसमय हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू । सबकर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम-चरन अनुरागी ॥
सुनतहिं लखन चले उठि साथा । रहहिं न जतन किये रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिर नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मधुर मुखड़ा देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है। चौदह साल बड़ी ही कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य वचनोंकी आशापर बीतते हैं। लङ्का विजयकर श्रीराम जब अयोध्या लौटते हैं और जब माताको यह समाचार मिलता है तो वह सुनते ही इसप्रकार दौड़ती है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बत्स जनु धेनु लवाई ॥

जनु धेनु बालक बत्स तजि
गृह, चरन बन परबस गई ।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन
हुंकार करि धावति भई ॥

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है, वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार सिर सूँघती है और कोमल मस्तक और मुखमण्डल पर हाथ फेरती एवं टकटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस बच्चेके कोमल कमनीय करोंसे बच्चेने रावण-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा। मेरे राम-लक्ष्मण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महाबली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे?

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि । चितवहि कृपासिन्धु रनधीरहि ॥
हृदय बिचारति बारहिं बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगुल मम बारे । निसिचर सुभट महाबल भारे ॥

माता! क्या तुम इस बातको भूल गयीं कि ये तुम्हारे 'सुकुमार बारे बालक' लीलासंकेतसे ही त्रिभुवनको बनाने बिगाड़नेवाले हैं। इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है। ये तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं। माता तुम धन्य हो!

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है, उसका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम् ।
अतिक्रम्य गतिस्तिस्त्रोऽप्यवाप परमां गतिम् ॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धनको छिन्न कर सात्त्विक, राजस, तामस तीनों गतियोंको लाँघकर परमपदको प्राप्त हो जाती है!

रामके हृदयमें कौन बसते हैं?

तजि मदमोह कपट छल नाना ।
करौं सद्य तेहि साधु-समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धन भवन सुहृद परिवारा ॥
सबकै ममता-ताग बटोरी ।
मम पद मनहिं बाँध बटि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी-हृदय बसै धन जैसे ॥

रानी सुमित्रा

(लेखक—पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०)

स्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामायण-में कई आदर्श चरित्रोंका चित्रण कर अपनी अनुपम काव्य शक्तिका परिचय दिया है। महापुरुषोंके लिये चित्रपट भी विशाल होना चाहिये, इसीलिये महाकाव्यके बिना उनका गुणगान नहीं हो सकता। परन्तु कुछ पात्र रामायणमें ऐसे भी हैं जिनका प्रदर्शन बड़ी सूक्ष्मरीतिसे किया गया है। छोटीसी तस्वीरोंमें चित्रकारकी चतुराई बारीकीमें होती है। कला-प्रवीण कौशल दिखानेके लिये अपना काम जान-बूझकर कठिन बना लेता है, और फिर अपने प्रयासमें सफलता प्राप्तकर कृतकार्य होता है। गोस्वामीजीने रानी सुमित्राका वर्णन बहुत ही संक्षेपमें किया है परन्तु उसमें कोई बात छूटने नहीं पायी। चित्रपट बहुत ही छोटा है, इसीलिये बड़ी बारीकीसे काम लिया गया है। अत्यन्त अल्प सामग्रीका आश्रय लेकर कौशल दिखाना साधारण कवियोंका काम नहीं है।

सुमित्रा कौसल्याकी नाईं पटरानी नहीं है और न कैकेयी-की तरह राजा दशरथकी प्रियतमा है। तिसपर भी यह माननेका कोई कारण नहीं कि राजा उसके प्रति उदासीन है। रानी ही स्वभावसे मित-भाषिणी है और सांसारिक प्रपंच और झंझटोंसे अलग रहना पसन्द करती है। सारे नगरमें राम-वनवासकी बात फैल गयी, हाहाकार मच गया परन्तु उसको कैकेयीके कौतुकका हाल ही नहीं मालूम! उसको सब बातें लक्ष्मणजीसे मालूम होती हैं जब वे स्वयं श्रीरामके साथ वन जानेकी आज्ञा माँगने आते हैं। लक्ष्मणजीसे हाल सुनकर—

गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँओरा॥

बात बहुत बढ़ चुकी थी और सुमित्राको अब पता चला। उसकी दशा उस हरिणीकी-सी हो गयी जो चारों ओर जंगलकी आगमें घिर गयी हो और आगका पता भी खूब फँस जानेपर लगा हो। स्वभावतः सुमित्रा कोई उपाय सोचने लगी कि कैकेयीकी लगायी हुई आगसे परिवार और पुरजनोंकी किसी प्रकार रक्षा हो सके। अवाक् होकर सोचने लगी और तुरन्त ही परिस्थितिको समझ गयी और भावीका चित्र उसकी आँखोंके सामने आ गया। गोस्वामीजीने सुमित्राके मनोभावों-के उमड़ते समुद्रको एक ही दोहेमें कह दिया है। गागरमें सागर भर दिया है—

समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूप सुसील सुभाव।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाव॥

राम-जानकीकी युगल मूर्ति वन जाने योग्य नहीं। उनकी सुकुमारता, माधुर्य और रूपराशि साधारण नहीं है। उनका सौन्दर्य ऐसा है—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करहीं।

इनको वन भेजना मानो कमलको भाड़में भूजना है, यह भी नहीं कि केवल शरीरकी सुकुमारता ही हो, मनकी भी कोमलता अतुलनीय है। उनसे कोई अपराध गुरुजनोंके प्रति बन ही नहीं सकता। क्योंकि भाइयोंमें—

चारिउ सील रूप गुनधामा। तदपि अधिक सुख-सागर रामा॥

और श्रीरामजीको सभी जानते हैं कि वे हैं—

बिद्या बिनय निपुन गुन सीला।

तो सुमित्राके लिये यह आशा करना तो व्यर्थ ही है कि श्रीराम स्वयं वन जानेको मना करदें। और फिर उनका स्वभाव भी कैसा है—

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥

और—

करुनामय मृदु राम सुभाऊ।

कैकेयीका ज़रासा इशारा पावेंगे तो फौरन वन को प्रसन्न होकर चल देंगे। इस प्रकार सुमित्राने विचारकर देख लिया कि श्रीराम-जानकीका सौजन्य ही कैकेयीको सहायक हो गया है। श्रीरामजी कैकेयीसे कह चुके हैं-

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥

फिर कौन उपाय काम दे सकता है? इसका परिणाम यह होगा कि राजा दशरथ जो बिना राम-दर्शनके जी नहीं सकते, प्राण छोड़ देंगे। रानियोंको वैधव्य दुःख प्राप्त होगा। यह समझकर सुमित्रा और भी व्याकुल हो उठी।

एक तदबीर सूझ गयी, यदि सुमित्रा और कौसल्या दोनों मिलकर श्रीरामको आज्ञा दें कि वनको नहीं जाना तो क्या होगा? श्रीरामको दोनों मिलकर रोक सकेंगी, कैकेयी विमाता है वैसे ही सुमित्रा विमाता है? दोनों समान हैं। यदि दशरथ वन जानेको कहते हैं और कौसल्या रोकती

है तो नीतिके अनुसार श्रीरामको माताकी आज्ञा विशेषरूपसे पालनीय होगी। वचन है—

पितुर्दशगुणामाता　गौरवेणातिरिच्यते।
मातुर्दशगुणामान्या विमाता धर्मभीरुणा॥

यही विचारकर कौसल्याने भी श्रीरामसे कहा था—

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

यदि दशरथकी आज्ञा वन जानेकी है तो कौसल्या उसका विरोध कर सकती है और दशरथ तथा कैकेयी दोनों-की राय है तो श्रीरामका वन-गमन सर्वथा उचित है।

इसी प्रकारका भाव सुमित्राके मनमें आया कि कौसल्या और वह स्वयं श्रीरामको जानेसे रोक दे और यह तरकीब सफल भी हो सकती थी। सुमित्राको सूझी तो सही परन्तु इसमें भी अड़चन आ पड़ी। राजपरिवार कैकेयीकी कृपासे फला फूला है। जब कैकेयीने अपनी उँगलीसे रथचक्रको सँभाला था और राजा दशरथके प्राण लड़ाईमें बचाये थे तो सब रानियोंके सौभाग्यकी भी उसीने रक्षा की थी। कैकेयीके कारण ही उनको पुत्रवती होनेका समय आया था। तो फिर कैकेयीको पूर्ण अधिकार है कि उसकी कृपा-से जो वस्तु दूसरोंको प्राप्त है उसपर अपना पुनः अधिकार कर ले। सुमित्रा यह सोचकर विवश हो जाती है और समझ लेती है कि श्रीरामको वन-गमनसे रोकनेका कोई उपाय नहीं, वैधव्य-दुःख अवश्यम्भावी है, राजा दशरथ प्राण छोड़ ही देंगे और उसकी अपनी दशा वास्तवमें—

मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा—

—की सी है। क्योंकि कैकेयी पापिनने बचनेका कोई अवसर ही नहीं छोड़ रक्खा। ऐसा वार किया है कि उसका जवाब ही नहीं, उसीका नाम कुदाव है जिसमें चालाकी हो और जिसका उतार न बन सके। कैकेयी अपने एहसानका ऐसा बदला लेगी यह बात किसीकी कल्पनामें नहीं आ सकती थी।

सुमित्राके मनमें ये सब बातें बिजलीकी तरह दौड़ गयीं। अपनी बेबसीको वह भलीभाँति समझ गयी। लक्ष्मणजीकी ओर उसका ध्यान भी अभी न जाने पाया था। परन्तु लक्ष्मणजी जल्दीमें थे। उनको तो विदा माँगकर श्रीरामके पास दौड़ जानेकी धुन लगी हुई थी। माताकी अवाक्-अवस्था और मनके भावोंको वे समझ न सके। अन्याय-पूर्ण अर्थ लगाकर उसकी चिन्ताग्रस्त-अवस्था-का कारण लक्ष्मणजी समझे—

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। यहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहहि कि नाहीं॥

धन्य है लक्ष्मणजी, तुम भी अपनी माताके गम्भीर स्वभावको नहीं पहचान सके और उसपर झूठा दोष मन-ही-मन लगाने लगे! 'सनेहबस' तो वह अवश्य है परन्तु इस समय राम-जानकीका ध्यान है, तुम्हारा नहीं।

सुमित्रा धीर गम्भीर वत्राणी है। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो—

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥

यही धैर्य आर्यमहिलाओंकी शोभा है। लक्ष्मणजीने माँपर व्यर्थ सन्देह किया। जब श्रीरामने साथ ले चलनेकी अनुमति दे दी थी तो कहा था—

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

अर्थात् लक्ष्मणजीके लिये वन जाना निश्चय हो ही गया था। मातासे आज्ञा लेना एक आज्ञाकी कारखाई रह गयी थी। माता रोकती भी तो वे कब माननेवाले थे? परन्तु सुमित्रा लक्ष्मणजीसे भी अपने आदर्श चरित्रमें बढ़ गयी। लक्ष्मणजी तो संकोच ही करते रहे और उसने बिना माँगे उनको वन जानेकी आज्ञा दे दी और लक्ष्मणजीको उपदेश भी दिया।

सुमित्राका उपदेश अलौकिक है। नीति, धर्म, भक्ति और वात्सल्यभाव उसमें सभी झलक रहे हैं। एक एक शब्द-में उच्च भावना, सहृदयता टपक रही है। कैकेयीके लिये एक भी अपशब्द वह नहीं कहती। 'पापिन कीन्ह कुदाव' केवल मनका भाव है। लक्ष्मणजीके सामने यदि कैकेयीके लिये कटु वाक्य बोलती तो उसको उपदेश करनेका अधिकार ही क्या रहता? विमाता तो मातासे अधिक मान्य है।

सुमित्रा नीतिमें खूब निपुण है। समयपर उचित वाक्य बोलना और उचित कार्य करना उसका स्वभाव है। वह जानती है कि यदि लक्ष्मणजी अयोध्यामें रह गये और श्रीरामके साथ वनको न गये तो भरतजीके आनेपर बन्धु विरोध होनेकी पूर्ण सम्भावना है। लक्ष्मणजी तीखे हैं, उनको जल्दी क्रोध आ जाता है और सिवा श्रीरामके उनको कोई सहजमें दबा नहीं सकता। ऐसी अवस्थामें लक्ष्मणजी-

का वन जाना नीतिकी दृष्टिसे आवश्यक है। यह भी एक कारण है कि सुमित्रा स्वयं उनको आज्ञा दे रही है।

सुमित्राने उपदेश बड़े संक्षेपमें किया है। उसमें राम-महिमा वर्णित है और सेवक-धर्म भी बताया है। परन्तु उसमें सुमित्राके चरित्रका जो दिग्दर्शन होता है वही विशेष रीतिसे देखने योग्य है। एक एक शब्दसे सुमित्राके हृदयके भीतरी-भाव कविने व्यक्त किये हैं। जो श्रीराम वन जा रहे हैं तो अयोध्यासे भी बढ़कर रहने योग्य स्थान वन ही है।

जो पै राम सीय बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥

और वन जाना है सो केवल राम-जानकीके लिये ही नहीं, बल्कि—

—लेहु तात जग जीवन लाहू

यह अवसर तो लक्ष्मणजीको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है जो सहजमें सेवा-कार्य बन सकेगा। सुमित्राजी तो यहाँतक कहती हैं—

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

राग, रोष, ईर्षा, मद, मोहके त्यागनेकी शिक्षा माता देती है। अपने कल्याणके लिये नहीं, बल्कि इसलिये कि इनके रहते सेवा-धर्म ठीक नहीं निभ सकता।

सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

लक्ष्मणके हितके लिये इससे बढ़कर और कोई उपदेश माताकी समझमें नहीं आता।

जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू॥

यही आदिसे अन्ततक आदेश दिया। यह नहीं समझना चाहिये कि राम-भक्तिके कारण लक्ष्मणजीके प्रति सुमित्राका वात्सल्य-भाव जाता रहा है। सुमित्राको लक्ष्मणजी-की चिन्ता क्यों होने लगी जब राम-जानकी उनके साथ हैं। वे धर्मधुरीण हैं सुमित्राको सब प्रकारसे शान्ति है। वनके कष्टोंकी वह चर्चातक नहीं करती, क्योंकि—

तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। संग पितु-मातु राम-सिय जासू॥

कैकेयी और सुमित्राके स्वभाव और आदर्शकी तुलना गोस्वामीजीने बड़ी खूबसूरतीसे लक्षित की है, दोनोंहीमें वात्सल्य-भाव बड़ा प्रबल है। एक श्रीरामका निर्वासन कर और पतिघातिनी बन कर भी अपने पुत्रको राज्य दिलानेकी चेष्टा करती है, दूसरी अपने पुत्रको जीवन सफल करनेका अवसर पाकर स्वयं निर्वासित करती है और श्रीरामकी सेवाके लिये उसे न्यौछावर कर डालती है, दोनों रानियाँ नीतिमें बड़ी निपुण हैं। कैकेयीने अपना कार्य साधनेमें बड़ी कुटिलनीति और बुद्धिमानीसे काम लिया और सुमित्रा गम्भीरभावसे सोच-समझकर जो नीतिपूर्ण बात है उसके करनेमें तनिक भी नहीं झिझकती। एक अत्यन्त निठुर है परन्तु भरत-जैसे साधुकी जननी है। दूसरी स्वयं शान्त स्वभाव है पर जन्म देती है तीखे स्वभाववाले लक्ष्मणजीको। दोनों अपनी अपनी धुनकी पक्की हैं। कैकेयीको कोई समझा-बुझाकर अपनी बातसे टला नहीं सकता और सुमित्राको भी अपने कर्तव्य-पालनमें किसीकी अपेक्षा नहीं। उसका विश्वास दृढ़ है और कर्तव्य-पथ निर्दिष्ट है। कैकेयी अपने स्वार्थ और वात्सल्य-भावके वेगको रोक नहीं सकती। परिणाम कुछ भी हो, उसकी बात होकर रहे, यही उसका लक्ष्य है। सुमित्रा धर्म, नीति और भक्तिके सामने वात्सल्य-भावको ऊँचा दर्जा नहीं देती। पुत्र-प्रेमकी मर्यादा धर्म और नीति है। जिस स्नेहके कारण धर्म डूबे, वह स्नेह नहीं। इसीलिये लक्ष्मणजीको वन भेजकर सुमित्राने मानो कैकेयीके पापका प्रायश्चित्त कर लिया।

सुमित्राके उपदेशमें एक बात स्त्री-समाजके लिये बड़ा जोर देकर कही गयी है। और वही बात सारभूत भी है। सुमित्राका हृदय कहता है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुबर भगत जासु सुत होई॥

जैसी माताएँ होंगी वैसी सन्तान और उसीके अनुसार जाति। यदि माताएँ अपनी सन्तानको बाल्यकालसे ही धर्म-की शिक्षा देती रहें तो वह आगे चलकर सहजमें धर्माचरणमें प्रवृत्त हो जाया करे। भगवान्‌की भक्तिमें मन लगाना कठिन न मालूम हो। पापोंसे बचना भी सुगम हो जाय। माताएँ यदि अपना यह कर्तव्य याद रक्खें और उसका आचरण करें तो संसारमें सुख-शान्तिकी विशेष वृद्धि हो।

सद्गुणवती कैकेयी

रा मायणमें महारानी कैकेयीका चरित्र सबसे अधिक बदनाम है। जिसने सारे विश्वके परमप्रिय प्राणाराम रामको बिना अपराध वनमें भिजवानेका अपराध किया, उसका पापिनि, कलङ्किनि, राक्षसी, कुलविनाशिनी कहलाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। समस्त सद्गुणोंके आधार, जगदाधार राम जिसकी आँखोंके काँटे हो गये, उसपर गालियोंकी बौछार न हो तो किसपर हो? इसीसे लाखों वर्ष बीत जानेपर भी आज जगत्के नरनारी कैकेयीका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं और मौका पानेपर उसे दो चार ऊँचे-नीचे शब्द सुनानेसे बाज नहीं आते। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कैकेयी सर्वथा दुर्गुणोंकी ही खानि थी, उसमें कोई सद्गुण था ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि यदि श्रीराम-वनवासमें कैकेयीके कारण होनेका प्रसंग निकाल लिया जाय तो कैकेयीका चरित्र रामायणके प्रायः सभी स्त्री-चरित्रोंमें शायद बढ़कर समझा जाय। कैकेयीके राम-वनवासके कारण होनेमें भी एक बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्घाटन होनेपर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामके अनन्य और अनुकूल भक्तोंमें कैकेयीजीका स्थान सर्वोच्च है। इस विषयपर आगे चलकर यथामति विचार प्रकट किये जायँगे। पहले कैकेयीके अन्य गुणोंकी ओर दृष्टि डालिये।

कैकेयी महाराज कैकयकी पुत्री और दशरथजीकी छोटी रानी थी। यह केवल अप्रतिम सुन्दरी ही नहीं थी, प्रथम श्रेणीकी पतिव्रता और वीराङ्गना भी थी। बुद्धिमत्ता, सरलता निर्भयता, दयालुता आदि सद्गुणोंका कैकेयीके जीवनमें पूर्ण विकास था। इसने अपने प्रेम और सेवाभावसे महाराजके हृदयपर इतना अधिकार कर लिया था कि महाराज तीनों पटरानियोंमें कैकेयीको ही सबसे अधिक मानते थे। कैकेयी पति-सेवाके लिये सभी कुछ कर सकती थी। एक समय महाराज दशरथ देवताओंकी सहायताके लिये शम्बरासुर नामक राक्षससे युद्ध करने गये। उस समय कैकेयीजी भी पतिके साथ रणाङ्गणमें गयी थी, आराम या भोग भोगनेके लिये नहीं, सेवा और शूरतासे पतिदेवको सुख पहुँचानेके लिये। कैकेयीका पातिव्रत और वीरत्व इसीसे प्रकट है कि उसने एक समय महाराज दशरथके सारथिके मर जानेपर स्वयं बड़ी ही कुशलतासे सारथिका कार्य करके महाराजको संकटसे बचाया था। उसी युद्धमें दूसरी बार एक घटना यह हुई कि महाराज घोर युद्ध कर रहे थे इतनेमें उनके रथके पहियेकी धुरी निकलकर गिर पड़ी। राजाको इस बातका पता नहीं लगा। कैकेयीने इस घटनाको देख लिया और पतिकी विजयकामनासे महाराजसे बिना कुछ कहे सुने तुरन्त धुरीकी जगह अपना हाथ डाल दिया और बड़ी धीरतासे बैठी रही। उस समय वेदनाके मारे कैकेयीके आँखोंके कोये काले पड़ गये, परन्तु उसने अपना हाथ नहीं हटाया। इस विकट समयमें यदि कैकेयीने बुद्धिमत्ता और सहनशीलतासे काम न लिया होता तो महाराजके प्राण बचने कठिन थे।

शत्रुओंका संहार करनेके बाद जब महाराजको इस घटनाका पता लगा तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उनका हृदय कृतज्ञता तथा आनन्दसे भर गया। ऐसी वीरता और त्यागपूर्ण क्रिया करनेपर भी उसके मनमें कोई अभिमान नहीं, वह पतिपर कोई एहसान नहीं करती। महाराज वरदान देना चाहते हैं तो वह कह देती है कि मुझे तो आपके प्रेमके सिवा अन्य कुछ भी नहीं चाहिये। जब महाराज किसी तरह नहीं मानते और दो वर देनेके लिये हठ करने लगते हैं तब दैवी-प्रेरणावश 'आवश्यक होनेपर माँग-लूँगी' कहकर अपना पिण्ड छुड़ा लेती है। उसका यह अपूर्व त्याग सर्वथा सराहनीय है।

भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। पीछेसे महाराजने चैत्रमासमें श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी की, किसी भी कारणसे हो, उस समय महाराज दशरथने इस महान् उत्सवमें भरत और शत्रुघ्नको बुलानेकी भी आवश्यकता नहीं समझी, न कैकयराजको ही निमन्त्रण दिया गया। कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय महाराज दशरथने इसीके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका अधिकारी मान लिया था। परन्तु रघुवंशकी प्रथा और श्रीरामके प्रति अधिक अनुराग होनेके कारण चुपचाप युवराजपद प्रदान करनेकी तैयारी कर ली गयी। यही कारण था कि रानी कैकेयीके महलोंमें भी इस उत्सवके समाचार पहलेसे नहीं पहुँचे थे। रानी कैकेयी अपना स्वत्व जानती थी, उसे पता था कि भरतको मेरे पुत्रके नाते राज्याधिकार मिलना चाहिये

परन्तु कैकेयी इस बातकी कुछ भी परवा न कर राम-राज्याभिषेककी बात सुनते ही प्रसन्न होगयी। देव-प्रेरित कुबड़ी मन्थराने आकर जब उसे यह समाचार सुनाया तब वह आनन्दमें डूब गयी। वह मन्थराको पुरस्कारमें एक दिव्य उत्तम गहना देकर 'दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्' कहती है—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
न मे परं किञ्चिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥
(वा०रा०२।७।३४ से ३६)

'मन्थरे! तूने मुझको यह बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदलेमें मैं तेरा और क्या उपकार करूँ? (यद्यपि भरतको राज्य देनेकी बात हुई थी) परन्तु राम और भरतमें मैं कोई भेद नहीं देखती, मैं इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि महाराज कल रामका राज्याभिषेक करेंगे। हे प्रियवादिनी! रामके राज्याभिषेकका संवाद सुननेसे बढ़कर मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है। ऐसा अमृतके समान सुखप्रद वचन सब नहीं सुना सकते। तूने यह वचन सुनाया है, इसके लिये तू जो चाहे सो पुरस्कार माँग ले, मैं तुझे देती हूँ।'

इसपर मन्थरा गहनेको फेंककर कैकेयीको बहुत कुछ उल्टा सीधा समझाती है, परन्तु फिर भी कैकेयी तो श्रीरामके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई यही कहती है कि 'श्रीरामचन्द्र धर्मज्ञ, गुणवान्, संयतेन्द्रिय, सत्यव्रती और पवित्र हैं, वह राजाके ज्येष्ठ पुत्र हैं, अतएव (हमारी कुलप्रथाके अनुसार) उन्हें युवराज-पदका अधिकार है। दीर्घायु राम अपने भाइयों और सेवकोंको पिताकी तरह पालन करेंगे। मन्थरा! तू ऐसे रामचन्द्रके अभिषेककी बात सुनकर क्यों दुखी हो रही है। यह तो अभ्युदयका समय है ऐसे समयमें तू जल क्यों रही है? इस भावी कल्याणमें तू क्यों दुःख कर रही है?

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं स तु शुश्रूषते हि माम्॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथात्मानं यथा भ्रातृंस्तु राघवः॥

मुझे भरत जितना प्यारा है, राम उससे कहीं अधिक प्यारे हैं, क्योंकि राम मेरी सेवा कौसल्यासे भी अधिक करते हैं। रामको यदि राज्य मिलता है तो वह भरतको ही मिलता है, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि राम सब भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं (वा० रा० २।८।१४-१९)

इसपर जब मन्थरा महाराज दशरथकी निन्दाकर कैकेयीको फिर उभाड़ने लगी, तब तो कैकेयीने उसको बड़ी बुरी तरह फटकार दिया—

ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता।
जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनि॥
पुनि अस कबहु कहसि घरफोरी। तौ धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

इस प्रसंगसे पता लगता है कि कैकेयी श्रीरामको कितना अधिक प्यार करती थी और उसे रामके राज्याभिषेकमें कितना बड़ा सुख था। इसके बाद मन्थराके पुनः कहासुनी करनेपर कैकेयीके द्वारा जो कुछ कार्य हुआ, उसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उसी कुकार्यके लिये तो कैकेयी आजतक पापिनी और अनर्थकी मूलकारणरूपा कहलाती है। परन्तु विचार करनेकी बात है कि रामको इतना चाहनेवाली, कुलप्रथा और कुलकी रक्षाका हमेशा फिक्र रखनेवाली, परम सुशीला कैकेयीने राज्यलोभसे ऐसा अनर्थ क्यों किया? जो थोड़ी देर पहले रामको भरतसे अधिक प्रिय बतलाकर उनके राज्याभिषेकके सुसंवादपर दिव्याभरण पुरस्कार देती थी और राम तथा दशरथकी निन्दा करनेपर, भरतको राज्य देनेकी प्रतिज्ञा जाननेपर भी, मन्थराको 'घरफोरी' कहकर उसकी जीभ निकलवाना चाहती थी, वही जरासी देरमें इतनी कैसे बदल जाती है कि वह रामको चौदह सालके लिये वनके दुःख सहन करनेके लिये भेज देती है और भरतके शील-स्वभावको जानती हुई भी उसके लिये राज्यका वरदान चाहती है?

इसमें रहस्य है, वह रहस्य यह है कि कैकेयीका जन्म भगवान् श्रीरामकी लीलामें प्रधान कार्य करनेके लिये ही हुआ था, कैकेयी भगवान् श्रीरामको परब्रह्म परमात्मा समझती थी और श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक बननेके लिये उसने श्रीरामकी रुचिके अनुसार यह जहरकी घूँट पीयी थी। यदि कैकेयी श्रीरामको वन भिजवानेमें कारण न होती तो श्रीरामका लीला-कार्य ही सम्पन्न न होता।

न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने अवतार धारण किया था 'दुष्कृतों-का विनाश करके साधुओंका परित्राण करनेके लिये।' दुष्टोंके विनाशके लिये हेतुकी आवश्यकता थी। बिना अपराध मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते? आजकलके राज्यलोभी लोगोंकी भाँति वे जबरदस्ती परस्वापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्यादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर ही उसका उद्धार करना था। दुष्टकार्य करनेवालोंका वध करके ही साधु और दुष्टोंका दोनोंका परित्राण करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बचाकर सदुपदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही वारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था सीताहरण। इसके सिवा अनेक शाप-वरदानोंको भी सच्चा करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्यादा रखनी थी, परन्तु वन गये बिना सीताहरण होता कैसे? राज्याभिषेक हो जाता तो वन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका चुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु, एवं रावणका वध, इन दोनों कार्योंके लिये कैकेयीके द्वारा राम-वनवासकी व्यवस्था करायी गयी।

> ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
> भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

'भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको माया-से यन्त्रारूढकी तरह घुमाते हैं' इसी गीतावाक्यके अनुसार सबके नियन्ता भगवान् श्रीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके-द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी* और जब उसका पूरा असर हो गया, (भावीवश प्रतीति उर आई) तब भगवदिच्छानुसार बरतनेवाली कैकेयी भगवान्‌की मायावश ऐसा कार्य कर बैठी,† जो अत्यन्त क्रूर होनेपर भी भगवान्‌की लीलाकी सम्पूर्णताके लिये अत्यन्त आवश्यक था।

अब प्रश्न यह है कि 'जब कैकेयी भगवान्‌की परम भक्त थी, प्रभुकी इस आभ्यन्तरिक गुह्यलीलाके अतिरिक्त प्रकाश्यमें भी श्रीरामसे अत्यन्त प्यार करती थी, राज्यमें और परिवारमें उसकी बड़ी सुख्याति थी, सारा कुटुम्ब कैकेयीसे खुश था, फिर भगवान्‌ने उसीके द्वारा यह भीषण कार्य कराकर उसे कुटुम्बियों और अवधवासियोंके द्वारा तिरस्कृत, पुत्रद्वारा अपमानित और इतिहासमें सदाके लिये लोक-निन्दित क्यों बनाया? जब भगवान् ही सबके प्रेरक हैं, तो साध्वी सरला कैकेयीके मनमें सरस्वतीकेद्वारा ऐसी प्रेरणा ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन सदाके लिये दुखी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया? इसीमें तो रहस्य है। भगवान् श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्द-परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविका थी। जो सबसे गुह्य और कठिन कार्य होता है उसको सबके सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है, और न हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो किसी अत्यन्त कठोरकर्मी, घनिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा ही करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कर्त्ताकी बद-नामी हो, ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, जो अत्यन्त ही अन्तरंग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिये श्रीसीताजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देशा कहलाती हैं कि, मैं जानती हूँ, कि मेरी शुद्धतामें आपको सन्देह नहीं है, केवल आप लोकापवादके भयसे मुझे त्याग रहे हैं। तथापि मेरे तो आप ही परमगति हैं। आपका लोकापवाद दूर हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है।' यहाँ सीताजी 'रामकाज' के लिये कष्ट सहती हैं परन्तु

* देवताओंने सरस्वतीको यह कहकर भेजा था कि—

> 'मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्।
> ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे॥'

पहले मन्थरामें प्रवेशकरके फिर कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करना और रामके अभिषेकमें विघ्नकरके वापस लौट आना। (अध्यात्मरामायण)

† कैकेयीके ऐसा करनेका एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि 'कैकेयी जब लड़कपनमें अपने पिताके घर थी, तब वहाँ एक दिन एक कुरूप ब्राह्मणको आया देखकर कैकेयीने उसकी दिल्लगी उड़ायी थी और निन्दा की थी। इससे क्रुद्ध होकर उस तपस्वी ब्राह्मणने कैकेयीको यह शाप दिया था कि 'तू अपने रूपके अभिमानमें अन्धी होकर मेरे कुरूप बदनकी निन्दा करती है, इसलिये तू भी कुरूपा स्त्रीकी बातोंमें आकर ऐसा कर्म कर बैठेगी जिससे जगत्‌में तेरी बड़ी भारी नीच निन्दा होगी!
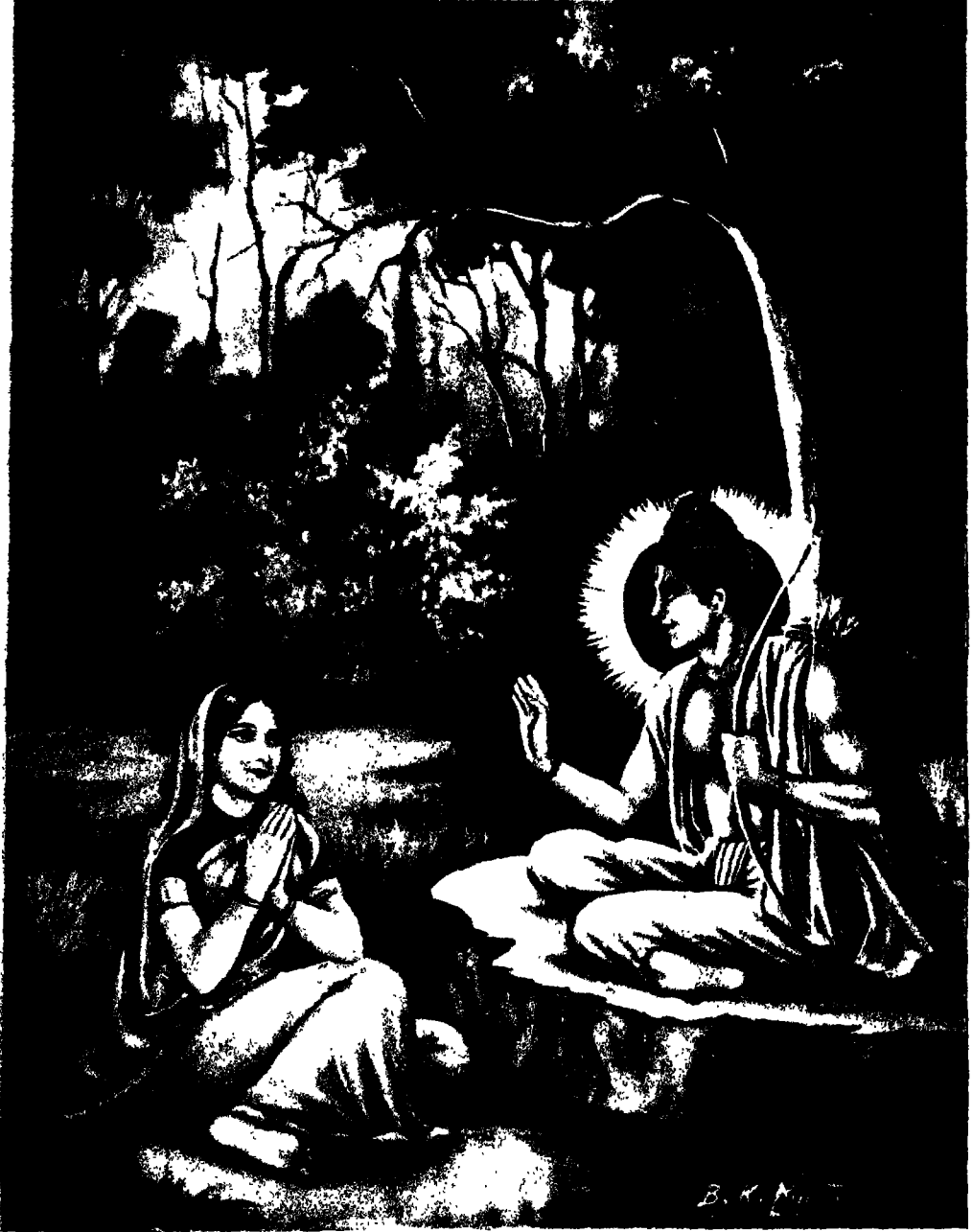
कैकेयीकी क्षमा-याचना ।

क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ।
त्वं साक्षात् विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ॥

उनकी बदनामी नहीं होती, प्रशंसा होती है। उनके पातिव्रतकी आजतक पूजा होती है परन्तु कैकेयीका कार्य इससे अत्यन्त महान् है। उसे तो 'रामकाज' के लिये राम-विरोधी मशहूर होना पड़ेगा। 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' गालियाँ सहनी पड़ेंगी। पापिनी, कलङ्किनी, कुलघातिनीकी उपाधियाँ ग्रहण करनी पड़ेंगी, वैधव्यका दुःख स्वीकारकर पुत्र और नगरनिवासियोंद्वारा तिरस्कृत होना पड़ेगा। तथापि 'रामकाज' जरूर करना पड़ेगा! यही रामकी इच्छा है और इस 'रामकाज' के लिये रामने कैकेयीको ही प्रधान पात्र चुना है। इसीसे यह कलङ्कका चिर टीका उसीके सिर पोता गया है। यह इसीलिये कि वह परब्रह्म श्रीरामकी परम अन्तरंग प्रेमपात्री है, वह श्रीरामकी लीलामें सहायिका है, उसे बदनामी-खुशनामीसे कोई काम नहीं, उसे तो सब कुछ सहकर भी 'रामकाज' करना है। रामरूपी सूत्रधार जो कुछ भी पार्ट दें, उनके नाटककी सांगताके लिये उनकी आज्ञानुसार इसे तो वही खेल खेलना है, चाहे वह कितना ही क्रूर क्यों न हो। कैकेयी अपना पार्ट बड़ा अच्छा खेलती है। राम अपने 'काज' के लिये सीता और लक्ष्मणको लेकर खुशी-खुशी वनके लिये बिदा होते हैं। कैकेयी इस समय पार्ट खेल रही थी, इसलिये उसको उस सूत्रधारसे—नाटकके स्वामीसे—जिसके इंगितसे जगन्नाटकका प्रत्येक परदा पड़ रहा है और उसमें प्रत्येक क्रिया सुचारु रूपसे हो रही है—एकान्तमें मिलनेका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये वह भरतके साथ वन जाती है और वहाँ श्रीरामसे—नाटकके स्वामीसे—एकान्तमें मिलकर अपने पार्टके लिये पूछती है और साधारण स्त्रीकी भाँति लीलासे ही लीलामयसे उनको दुःख पहुँचानेके लिये क्षमा चाहती है परन्तु लीलामय भेद खोलकर साफ कह देते हैं कि 'यह तो मेरा ही कार्य था, मेरी ही इच्छासे, मेरी मायासे हुआ था, तुम तो निमित्तमात्र थी, सुखसे भजन करो और मुक्त हो जाओ।' वहाँका प्रसंग इस प्रकार है—जब भरत श्रीरामको लौटा ले जानेका बहुत आग्रह करते हैं, किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् श्रीरामका रहस्य जाननेवाले मुनि वशिष्ठ श्रीरामके सङ्केतसे भरतको अलग ले जाकर एकान्तमें समझाते हैं—'पुत्र! आज मैं तुझे एक गुप्त रहस्य सुना रहा हूँ। श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-वधके लिये प्रार्थना की थी, इसीसे इन्होंने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लिया है। श्रीसीताजी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीलक्ष्मण शेषके अवतार हैं, जो सदा श्रीरामके साथ उनकी सेवामें लगे रहते हैं। श्रीरामको रावणका वध करना है, इससे वे जरूर वनमें रहेंगे। तेरी माताका कोई दोष नहीं है—

> कैकेय्यावरदानादि यद्यन्निष्ठुर भाषणम् ।।
> सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम्
> तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तते ।।
> (अध्यात्म रा०)

'कैकेयीने जो वरदान माँगे और निष्ठुर वचन कहे थे, सो सब देवका कार्य था (रामकाज था) नहीं तो भला, कैकेयी कभी ऐसा कह सकती? अतएव तुम रामको अयोध्या लौटा ले चलनेका आग्रह छोड़ दो।'

रास्तेमें भरद्वाजमुनिने भी संकेतसे कहा था—

> न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।
> राम प्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति ।।
> देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
> हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ।।
> (वा० रा० २।९२।२९-३०)

'हे भरत, तू माता कैकेयी पर दोषारोपण मत कर। रामका वनवास समस्त देव दानव और ऋषियोंके परम हित और परम सुखका कारण होगा।' अब श्रीवसिष्ठजीसे स्पष्ट परिचय प्राप्त कर भरत समझ जाते हैं और श्रीरामकी चरण-पादुका सादर लेकर अयोध्या लौटनेकी तैयारी करते हैं। इधर कैकेयीजी एकान्तमें श्रीरामके समीप आकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई व्याकुल हृदयसे—

> प्राञ्जलिः प्राह हे राम ! तव राजविघातनम् ।
> कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा ।।
> क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ।
> त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ।।
> मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत् ।
> त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा ।।
> त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम् ।
> यथा कृत्रिम नर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ।।
> त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ।
> त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ।।
> पाहि विश्वेश्वरानन्त ! जगन्नाथ नमोस्तु ते ।
> छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ।।
> त्वज्ज्ञानामलखड्गेन त्वामहं शरणं गता ।।
> (अध्यात्म रा०)

—हाथ जोड़कर बोली 'हे श्रीराम ! तुम्हारे राज्याभिषेकमें मैंने विघ्न किया था। उस समय मेरी बुद्धि देवताओंने बिगाड़ दी थी और मेरा चित्त तुम्हारी मायासे मोहित हो गया था। अतएव मेरी इस दुष्टताको तुम क्षमा करो, क्योंकि साधु क्षमाशील हुआ करते हैं। फिर तुम तो साक्षात् विष्णु हो। इन्द्रियोंसे अव्यक्त सनातन परमात्मा हो, मायासे मनुष्यरूपधारी होकर समस्त विश्वको मोहित कर रहे हो। तुम्हींसे प्रेरित होकर लोग साधु-असाधु कर्म करते हैं। यह सारा विश्व तुम्हारे अधीन है, अस्वतन्त्र है; अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे कठपुतलियाँ नचानेवालेकी इच्छानुसार ही नाचती हैं, वैसे ही यह बहुरूपधारिणी नर्तकी माया तुम्हारे ही अधीन है। तुम्हें देवताओंका कार्य करना था अतएव तुमने ही ऐसा करनेके लिये मुझे प्रेरणा की। हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! हे जगन्नाथ ! मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम अपनी तत्त्वज्ञानरूपी निर्मल तीक्ष्णधार तलवारसे मेरी पुत्र-वित्तादि विषयोंमें स्नेहरूपी फाँसीको काट दो। मैं तुम्हारे शरण हूँ'

कैकेयीके स्पष्ट और सरल वचन सुनकर भगवान्‌ने हँसते हुए कहा—

> यदाह मां महाभाग नानृतं सत्यमेव तत्।
> मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता ॥
> देवकार्यार्थ सिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव।
> गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम् ॥
> सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात्।
> अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा ॥
> नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्।
> मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम् ॥
> सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः।
> दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥
> स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः।
>
> (अध्यात्म रा०)

हे महाभागे ! तुम जो कुछ कहती हो सो सत्य है इसमें किञ्चित् भी मिथ्या नहीं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी ही प्रेरणासे उस समय तुम्हारे मुखसे वैसे वचन निकले थे। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं। (तुमने तो मेरा ही काम किया है।) अब तुम जाओ और हृदयमें सदा मेरा ध्यान करती रहो। तुम्हारा स्नेहपाश सब ओरसे टूट जायगा और मेरी इस भक्तिके कारण तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। मैं सर्वत्र समदृष्टि हूँ। मेरे न तो कोई द्वेष्य है और न प्रिय। मुझे जो भजता है, मैं भी उसको भजता हूँ। परन्तु हे माता ! जिनकी बुद्धि मेरी मायासे मोहित है वे मुझको तत्त्वसे न जानकर सुख-दुःखोंका भोक्ता साधारण मनुष्य मानते हैं। यह बड़े सौभाग्यका विषय है कि तुम्हारे हृदयमें मेरा यह भव-नाशक तत्त्वज्ञान हो गया है। अपने घरमें रहकर मेरा स्मरण करती रहो। तुम कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होओगी।'

भगवान्‌के इन वचनोंसे कैकेयीके स्थितिका पता लगता है। भगवान्‌के कथनका सार यही है कि 'तुम महाभाग्यवती' हो, लोग चाहे तुम्हें अभागिनी मानते रहें। तुम निर्दोष हो, लोग चाहे तुम्हें दोषी समझें। तुम्हारे द्वारा तो यह कार्य मैंने ही करवाया था। जिन लोगोंकी बुद्धि माया-मोहित है, वही मुझको मामूली आदमी समझते हैं, तुम्हारे हृदयमें तो मेरा तत्त्वज्ञान है, तुम धन्य हो !

भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी आनन्द और आश्चर्यपूर्ण हृदयसे सैकड़ोंबार साष्टाङ्ग प्रणाम और प्रदक्षिणा करके सानन्द भरतके साथ अयोध्या लौट गयी।

उपर्युक्त स्पष्ट वर्णनसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि कैकेयीने जान-बूझकर स्वार्थबुद्धिसे कोई अनर्थ नहीं किया था। उसने जो कुछ किया सो श्रीरामकी प्रेरणासे 'रामकाज' के लिये ! इस विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी बहुत ही उच्चकोटिकी महिला थी। वह सरल, स्वार्थहीन, प्रेममय, स्नेह-वात्सल्य-युक्त, धर्मपरायणा, बुद्धिमती, आदर्श पतिव्रता, निर्भय वीरांगना होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामकी अनन्य भक्त थी। उसकी जो कुछ बदनामी हुई और हो रही है, सो सब श्रीरामकी अन्तरंग प्रीतिके निदर्शनरूप ही है। जिस देवीने जगत्के आधार, प्रेमके समुद्र अनन्य रामभक्त भरतको जन्म दिया, वह देवी कदापि तिरस्कारके योग्य नहीं हो सकती, ऐसी प्रातःस्मरणीया देवीके चरणोंमें बारम्बार अनन्त प्रणाम है।

—कैकेयी-नन्दन-पद-वन्दन

श्रीशत्रुघ्नजी

हामना श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण तीनोंसे छोटे थे। श्रीसुमित्राजीके पुण्यवान् पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें रामायणमें जो कुछ वर्णन आया है, उससे यही पता लगता है कि श्रीशत्रुघ्नजी बहुत थोड़ा बोलनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी, धीर, सेवापरायण, रामदासानुदास, चुपचाप काम करनेवाले, सच्चे सत्पुरुष थे। श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न दोनों ही भाइयोंने अपना जीवन परम पवित्र सेवामें बिताया परन्तु लक्ष्मणकी सेवासे भी शत्रुघ्नकी सेवाका महत्त्व एक प्रकारसे अधिक है। श्रीलक्ष्मण श्रीरामके सेवक हैं, परन्तु शत्रुघ्न तो श्रीराम-सेवक भरतजीके चरण-सेवक और साथी हैं। छायाकी भाँति उनके साथ रहते और चुपचाप आज्ञानुसार सेवा किया करते हैं। ये बड़े संकोची हैं, अपनी ओरसे कभी किसी कामके बीचमें नहीं बोलते। किसीपर क्रोध नहीं करते, अपनी ओरसे आगे होकर कुछ भी नहीं करते। सेवकोंके सेवकका यही तो धर्म है।

श्रीशत्रुघ्नजीके अपनी ओरसे बोलनेके विशेष अवसर दो मिलते हैं। प्रथम, जब श्रीभरतजी ननिहालसे आकर माता कैकेयीसे मिलते हैं और कैकेयी पाषाण-हृदया बनकर महाराज दशरथकी मृत्यु और श्रीराम-लक्ष्मणके वन जानेका विवरण सुनाती है और कहती है कि 'बेटा! यह सब मैंने तेरे ही लिये किया है—

तात! बात मैं सकल सँवारी। भइ मन्थरा सहाय बिचारी॥

तब भरत शोकाकुल होकर विलाप करते और आवेशमें आकर माताको भलाबुरा कहने लगते हैं। शत्रुघ्न भी माताकी कुटिलतापर अत्यन्त क्षुब्ध हैं, शरीरमें आग लग रही है, परन्तु उनका तो बोलनेका कुछ अधिकार है ही नहीं।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिसि कछु न बसाई॥

इसी समय कुबरी मन्थरा सजधजकर वहाँ आती है वह भरतको अपनी ही प्रकृतिके अनुसार स्वार्थी और राज्यलोभी समझती है। वह समझती है कि भरतके लिये राज्यका सारा सामान मैंने ही बनाया है, वह मुझे इनाम देगा, इसीलिये बनठन कर आती है।

हँसती-उछलती सजीधजी कुबरीको देखकर शत्रुघ्नजी क्रोधको नहीं सम्हाल सकते—

लखि रिसि भरेउ लषण लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमुकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
पुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥

उपयुक्त इनाम मिल गया। दयामय भरतजीने मन्थराको छुड़ा दिया।

दूसरे, श्रीराम अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हैं, तीनों भाई सेवा और धर्मयुक्त शासनमें सहायता करते हैं। एक समय तपस्वियोंने आकर श्रीरामचन्द्रसे लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन करते अपना दुखड़ा सुनाया और उसे मारनेके लिये प्रार्थना की। दुष्टदर्पहारी शिष्टरक्षक भगवान् श्रीरामने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और दरबारमें पूछा कि 'लवणासुरको वध करनेका श्रेय तुम लोगोंमें कौन लेना चाहते हैं? वहाँकी समृद्धिका अधिकारी कौन होना चाहते हैं। भरत या शत्रुघ्न?'

श्रीभरतने कहा कि 'मैं लवणासुरका वध कर सकता हूँ, इसपर शत्रुघ्नजीने प्रार्थना की कि 'प्रभो! श्रीभरतजी बहुत काम कर चुके हैं। आपके वनवासके समय इन्होंने अयोध्याका पालन किया, अनेक प्रकार दुःख सहे, नन्दीग्राममें कुशकी शय्यापर सोये, फल-मूलका आहार किया, जटा रक्खी, वल्कल पहने, सब कुछ किया। अब मेरी प्रार्थना है कि मेरे रहते इन्हें युद्धके लिये न भेजकर मुझे ही आज्ञा दीजिये।'

शत्रुघ्नजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा 'भाई, तुम्हीं जाकर दैत्य-वध करो, मैं तुम्हें मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राजा बनाता हूँ।' श्रीराम जानते थे कि शत्रुघ्न दुष्ट राक्षसका वध करना चाहते हैं, उन्हें राज्यका लोभ नहीं है। इसलिये पहलेसे ही कह दिया कि 'श्रीवशिष्ठ आदि ऋषि मन्त्र और विधिपूर्वक तुम्हारा अभिषेक करेंगे। मैं जो कुछ कहूँ सो तुम्हें स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि बालकोंको गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करना ही उचित है।'

इसपर वीर्य-सम्पन्न श्रीशत्रुघ्नजी बड़े ही संकोचमें पड़कर धीरेसे कहने लगे। 'महाराज! बड़े भाइयोंके रहते राज्यगद्दीपर बैठना मैं अधर्म समझता हूँ, जब भरतजी महाराज लवणासुरको मारनेके लिये कह रहे थे तब मुझे बीचमें नहीं बोलना चाहिये था। मेरा बीचमें बोलना ही मेरे लिये

इस दुर्गतिका कारण हुआ। अब आपकी आज्ञाका उल्लंघन करना भी मेरे लिये कठिन है। क्योंकि आपसे मैं यह धर्म कई बार सुन चुका हूँ।'

इसके बाद शत्रुघ्नजी लवणासुरपर चढ़ाई करते हैं, रास्तेमें श्रीवाल्मीकिजीके आश्रममें ठहरते हैं, उसी रातको सीताके दोनों कुमारोंका जन्म होता है, जिससे शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष होता है। फिर जाकर लवणासुरका वध करके वहाँ बारह वर्ष रहकर श्रीराम-दर्शनार्थ लौटते हैं। आते समय पुनः श्रीवाल्मीकिके आश्रममें ठहरते हैं और लवकुशके द्वारा मुनि-रचित रामायणका गान सुनकर आनन्दमें लोटपोट हो जाते हैं, अयोध्या आकर सबसे मिलते हैं, पुनः श्रीराम-की आज्ञासे मधुपुरी लौटकर धर्मपूर्वक शासन करते हैं।।

इनके जीवनसे भी मर्यादाकी बड़ी शिक्षा मिलती है।

—रिपुदन-दासानुदास

श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज

जिनके यहाँ भक्तिप्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्द-घन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए। उन परम-भाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतकका संन्यास करके श्रीराम-प्रेमका आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि, त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय*, अतिरथी†, धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा० रा० १।६।१ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वशिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, दृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे। (वा० रा० १।७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृ-मातृ-भक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित करनेके लिये अश्वमेध तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृङ्गको ऋत्विज बनाकर राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना अपना भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनिऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार

* यद्यपि रामवनवासकी घटनाके कारण कहीं कहीं दशरथजीको कामुक बतलाया गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, यदि वे कामपरायण होकर कैकेयीके वशमें होते तो यज्ञपुरुषकी खीरका आधाभाग कौसल्याको और केवल अष्टमांश ही कैकेयीको नहीं देते। यद्यपि उन्होंने बहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है परन्तु यह उस समयकी एक प्रथा-सी थी। भगवान् श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया।

† जो दसहजार धनुर्धारियोंके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे महारथी कहते हैं और जो ऐसे दसहजार महारथियोंके साथ अकेला लोहा लेता है, वह अतिरथी कहलाता है।

होना स्वीकार किया और यज्ञपुरुषने स्वयं प्रकट होकर पायससे भरा हुआ सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा कि 'हे राजन्! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली है, इसको अपनी कौसल्या आदि तीनों रानियोंको खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मँझली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया। जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इसप्रकार भगवान्ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परन्तु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये, क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म-धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी! वे रामका अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र पन्द्रह वर्षसे अधिक थी, परन्तु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वशिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तब तक प्राणोंको रक्खा और आपके वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली!

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकयके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ-पुत्रके अभिषेककी रघुकुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परन्तु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमनद्वारा राक्षस-वधादिरूप कार्योंके द्वारा दुष्ट-दलन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृ-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्म-प्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'राम-काज' करना।

(९) श्रीहनूमान्‌जीकी निष्काम-प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय प्राप्ति।

(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामको वनवास न होता, तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन-मरन-फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। राम-बिरह मरि मरनु सँवारा॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया?

श्रीरामायणमें लङ्का-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिंगन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि 'हे सुमित्रा-सुखवर्धन लक्ष्मण! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्र-

सहित तीनों लोक, सिद्धपुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिनन्दन कर उनकी पूजा करते हैं—वेदोंमें जिन अव्यक्त अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है वे परम तपस्वी राम वही हैं।' (वा० रा० ६। ११९। २७-३०)

यहाँपर शङ्का होती है कि जब शुद्ध सच्चिदानन्दघन श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए दशरथने प्राणोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे नहीं हुई? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकालमें श्रीरामनाम लेनेसे समस्त बन्धन कट जाते हैं और नाम लेनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है? और यदि राममें मन लगाकर मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवद्-वचनकी व्यर्थता होती है जिसमें भगवान्ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(८।५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निःसन्देह ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।'

इन प्रश्नोंका उत्तर तो गीताके इससे अगले श्लोकमें ही मिल जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य प्राण छोड़ता है, उसीप्रकारकी गतिको प्राप्त होता है। ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत अक्षर परब्रह्ममें चित्तकी वृत्तियोंको विलीन कर देह त्याग करता है तो उसकी अवश्य ही 'सायुज्य' मुक्ति होती है परन्तु ऐसा हुए बिना केवल श्रीरामनामके जपसे 'सायुज्य' मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है, सच तो यह है कि बिना मन लगाये भी श्रीरामनामका अन्तकालमें उच्चारण हो जानेसे ही जीव मुक्तिका अधिकारी हो जाता है, इसीसे सन्तोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ बताया है—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

परन्तु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है। 'तो क्या मुक्ति भी कई प्रकारकी हैं? यदि कई प्रकारकी मुक्ति हैं तो फिर मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह गया?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि 'तत्त्वबोधरूप' मुक्ति तो एक ही है। परन्तु केवल तत्त्वबोध होकर 'सायुज्य' मुक्ति भी हो सकती है, जिसमें जीवकी भिन्न सत्ता यथार्थ स्व-स्वरूप परमात्म-सत्तामें अभिन्नरूपसे विलीन हो जाती है। और तत्त्वका पूरा बोध होनेके साथ ही साथ सगुण साकार, सौन्दर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठा अनूप-रूप भगवत्-स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण वह मुक्तपुरुष (सायुज्य मुक्तिरूपी धनका स्वामी होनेपर भी) भगवान्की सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टि और सारूप्य-मुक्तिका रसमय सुख भोगता है। केवल तत्त्वबोधद्वारा प्राणोंका उत्क्रमण न होकर परमात्मामें मिल जाना, यह अभेद मुक्ति, और अभेद ज्ञानपूर्वक साकार ईश्वरकी सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यह चतुर्विध भेदमुक्ति, ये दोनों वास्तवमें एक ही मुक्तिके दो स्वरूप हैं। परन्तु शुद्ध प्रेमीभक्त इन दोनों प्रकारकी मुक्तियोंसे भी अलग रहकर केवल भगवत्सेवामें लगा रहता है और जैसे भगवान् नित्य, मुक्त, अज, अविनाशी होते हुए भी लीलासे अवतार-शरीर धारण करके विविध कर्म करते हैं, ऐसे ही वह भक्त भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाँति भगवान्की पवित्र लीलामें लीलासे ही लगा रहता है। वह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब उसे भगवदिच्छासे, भगवदर्थ, भगवदाज्ञानुसार निर्लेपभावसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आना पड़ता है तब वह भगवत्स्मरण और भगवन्नाम-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। दूसरा काम तो उसको कोई रहता ही नहीं, क्योंकि उसकी स्थिति दृढ़ अनन्य विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रहती है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणसे ऐसे भक्तकी अभेद मुक्ति नहीं होती। इसीलिये भगवान् शिवजी जगज्जननी उमासे दशरथके सम्बन्धमें कहते हैं—

ता तें उमा मोच्छ नहिं पावा। दसरथ भेद-भगति मन लावा॥
सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्हकहँ रामु भगति निज देहीं॥

अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्रीरामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन लगानेसे मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी मुक्ति नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको उस मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रसिक थे। इसीलिये उस रसके सामने उन्होंने मोक्षका भी जान-बूझकर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी भक्तों-

की चरण-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे पीछे घूमा करती है। भगवान्‌ने तो अपने श्रीमुखसे यहाँतक कह डाला है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रज्याम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
(श्रीमद्भागवत ११।१४।१४—१६)

जिस मेरे भक्तने अपना आत्मा मुझको अर्पण कर दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धियाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता। हे उद्धव! मुझे आत्मस्वरूप शिवजी, सङ्कर्षण, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं। ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी भक्तोंकी चरण-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे पीछे फिरता हूँ।' कैसी महिमा है?

यद्यपि भक्त अपने भगवान्‌को पीछे पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उसे नहीं भजते, उनका तो भगवान्‌के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान्‌के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते। बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्तिका निरादर कर भक्ति करते हैं।

अस बिचारि हरिभगतसयाने। मुकति निरादरि भगति लुभाने॥

क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं—जिनको देखकर आत्माराम मुनियोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी पड़ती है।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिं इत्थंभूत गुणो हरिः॥

दशरथकुमार-पद-रज

विदेह-भक्त राजा जनक

(लेखक—श्रीकृपानारायणजी चौधरी)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिं इत्थंभूत गुणो हरिः॥
(श्रीमद्भागवत)

जिनकी माया-ग्रन्थियाँ टूट गयी हैं, ऐसे आत्माराम, आप्तकाम, जीवन्मुक्त मुनिगण भी भगवान् श्रीहरिकी अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि हरिमें ऐसे ही गुण हैं।

विदेहराज तिरहुति-नरेश जनकजीको कौन नहीं जानता? आप सर्वगुणसम्पन्न और सर्व सद्भावाधार, परम तत्त्वज्ञ, मर्मज्ञ, असाधारण ज्ञानी, धर्म-धुरन्धर और नीति-कुशल महान् पण्डित थे। आपकी विमल कीर्त्ति विविध भाँतिसे गायी गयी है, परन्तु आपके प्रकृत महत्त्वका पता बहुत थोड़े ही लोगोंको लग सका है। श्रीगुसाईंजी महाराज आपको प्रणाम करते हुए कहते हैं—

प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम-बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन, श्रीरघुनाथस्वामी महाराजके साथ श्रीजनकरायजीका जो अत्यन्त 'गूढ़ सनेह' और नित्य 'योग' (प्रेमका अभेद सम्बन्ध) है, सो सर्वथा अनिर्वचनीय है। कहना तो दूर रहा, कोई उसे सम्यक् प्रकारसे जान भी नहीं सकता। उस प्रेमतत्त्वको तो बस आप ही दोनों जानते हैं। दूसरे बेचारे जानें भी कैसे? आपने तो उस अकथनीय अनुपम अनन्त प्रेम-धनको पूरे लोभीकी भाँति इन्द्रिय-व्यवसायरूप प्रपञ्चोंमें छिपा रक्खा है और एक धन-प्राण विषयी मनुष्यके सदृश उसी परमधनके चिन्तनमें निरन्तर निमग्न रहते हैं। लोग आपको एक महान् ऐश्वर्यपरायण राजा, नीतिकुशल प्रजारञ्जक नरपति समझते हैं, कुछ लोग ज्ञानियोंका आचार्य भी मानते हैं, परन्तु आपके अन्तस्तलके निगूढ़ प्रेमका परिचय किसीको नहीं है।

प्यारी-दुलारी श्रीसीताजीके स्वयम्बरकी तैयारी हुई है, देश-विदेशके राजा-महाराजाओंको निमन्त्रण दिया गया है। पराक्रमकी परीक्षा देकर सीताको प्राप्त करनेकी लालसासे बड़े-बड़े रूप-गुण और बलवीर्य-सम्पन्न राजा-महाराजा मिथिलामें पधार रहे हैं।

इसी अवसरमें गाधि-तनय मुनि विश्वामित्रजी अपने तथा अन्यान्य ऋषियोंके यज्ञकी रक्षाके लिये अवधराज महाराज दशरथजीके प्राणाधिक प्रिय पुत्रद्वय श्रीराम-लक्ष्मण-को माँगकर आश्रममें लाये थे। यह कथा प्रसिद्ध है, यहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीविश्वामित्र मुनि भी महाराजा जनकका निमन्त्रण पाते हैं और दोनों राज-कुमारोंको साथ लेकर मिथिलाकी ओर प्रस्थान करते हैं। रास्तेमें शापग्रस्ता मुनि-पत्नी अहल्याका उद्धार करते हुए परम-कृपालु श्रीकौसलकिशोरजी कनिष्ठ-भ्रातासहित गंगा-स्नान कर वनोपवनके प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए जनक-पुरीमें पहुँचते हैं और मुनिसहित नगरसे बाहर मनोरम बगीचेमें उतरते हैं।

मिथिलेश महाराज यह शुभ संवाद पाकर श्रेष्ठ-समाज सहित विश्वामित्रजीके दर्शन और स्वागतार्थ आते हैं और मुनिको साष्टांग प्रणाम कर आज्ञा पाकर बैठ जाते हैं, इतनेमें ही फुलवारी देखकर—

स्याम-गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन-सुखद बिस्व चित-चोरा॥

—श्याम-गौर वदन, किशोर वयवाली, नेत्रोंको सुख देने-वाली अखिल विश्वके चित्तको चुरानेवाली 'युगल जोड़ी' वहाँ आ पहुँची, ये थे तो बालक, परन्तु इनके आते ही ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब लोग उठ खड़े हुए, 'उठे सकल जब रघुपति आये।' विश्वामित्र सबको बैठाते हैं। दोनों प्रभु शील संकोचके साथ गुरुके चरणोंमें बैठ जाते हैं। यहाँ जनकरायजीकी बड़ी ही विचित्र दशा होती है। उनकी प्रेमरूपी सूर्य-कान्तमणि, रामरूपी प्रत्यक्ष प्रचण्ड सूर्यकी रश्मियोंको प्राप्तकर द्रवित होकर बह उठती है। गुप्त प्रेम-धन श्रीरामकी छवि देखते ही सहसा प्रकट हो गया। युगोंके सञ्चित-धनका खजाना यकायक खुल पड़ा।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ बिदेह बिदेह बिसेखी॥
प्रेममगन मन जानि नृप, करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनिपद नाइ सिर, गदगद गिरा गँभीर॥

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।
तातें प्रभु पूछौं सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

जनकजी कहते हैं 'मुनिनाथ! छिपाइये नहीं, सच बतलाइये, ये दोनों कौन हैं? मैं जिस ब्रह्ममें लीन रहता हूँ क्या वह वेदवर्णित ब्रह्म ही दो रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। मेरा स्वाभाविक ही वैरागी मन आज चन्द्रमाको देखकर चकोरकी भाँति थका जाता है। जनकजीकी इस दशापर विचार कीजिये।'

जनकका मन बलात्कारसे रामरूपके गम्भीर मधुर-सुधा-समुद्रमें निमग्न हो गया।

इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा॥

जो मन-बुद्धि अपनेसे अगोचर ब्रह्मका सुख भोगनेमें लगे हुए थे, उन्होंने आज उस अगोचरको प्रत्यक्ष नयनगोचर देखकर तुरन्त त्याग दिया। 'गोद'का छोड़कर पेटवालेकी उम्मीद कौन करे? ऐसा कौन समझदार होगा जो 'नयन-गोचरके मिलजाने पर 'अगोचर'के पीछे लगा रहे? धीर-बुद्धि महाराजा जनकके लिये यही उचित था। अभेद भक्ति-निष्ठ विदेहराजकी पराभक्ति संशयरहित है।

इसीप्रकार वे बारातकी बिदाईके समय जब अपने जामातासे मिलते हैं, तब भी उनका प्रेमसागर मर्यादा तोड़ बैठता है, उस समयके उनके वचनोंमें असीम प्रेमकी मनोहर झलक है—जरा उस समयकी झाँकी भी देखिये। बारात बिदा हो गयी। जनकजी पहुँचानेके लिये साथ-साथ जा रहे हैं। दशरथ लौटाना चाहते हैं, परन्तु प्रेमवश राजा लौटते नहीं। दशरथजीने फिर आग्रह किया तो आप रथसे उतर पड़े और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहाते हुए उनसे विनय करने लगे। इसके बाद मुनियोंसे स्तुति-प्रार्थनाएँ कीं, तदनन्तर रामके—अपने प्यारे जामाता रामके—समीप आये और कहने लगे—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस-हंसा॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह-मोह-ममता-मद त्यागी॥
ब्यापक ब्रह्म अलख अबिनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥
नयनबिषय मो कहँ भयेउ, सो समस्त-सुख-मूल।
सबइ लाभ जग जीव कहँ, भए ईस अनुकूल॥
सबहिं भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलपकोटिक भरि लेखा॥

मोर भाग्य राउर गुनगाथा। कहि न सिराहिं सुनिहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे॥
बार बार मागौं कर जोरे। मन परिहरै चरन जनि भोरे॥

धन्य जनकजी! धन्य आपकी गुप्त प्रेमाभक्ति!

यही दशा चित्रकूटमें होती है।

इससे जनकजीकी अवस्थाका पता लगता है। जनकजी परम ज्ञानी थे, परन्तु परमज्ञानकी अवधि तो यही है कि ज्ञानमें स्थित रहते हुए ही परम ज्ञानस्वरूप भगवान्‌की मूर्तिमान् माधुरीको देखकर उसपर रीझ जाय। ज्ञानका प्रेमके पवित्र द्रवरूपमें परिणत होकर अपनी अजस्र सुधा-धारासे जगत्‌को प्लावित कर देना ही उसकी महानता है! जनकजीने यही प्रत्यक्ष दिखला दिया!

श्रीवशिष्ठजीकी महत्ता

(लेखक–पण्डितवर श्रीनत्थूरामजी शर्मा, गुजरात)

सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माके पुत्र और प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशके गुरु श्रीवशिष्ठजी महाराज अपकारी मनुष्यके घोर अपकारको प्रसन्नता-पूर्वक सहनेवाले, अपनेको शत्रु समझनेवाले मनुष्यके भी शुभगुणोंकी प्रशंसा करनेवाले, व्यवहार-कुशल, दैवीसम्पत्तिसे युक्त, अन्तरात्मासे अभिन्न ब्रह्मस्वरूपको भलीभाँति जाननेवाले और साधन-सम्पन्न अधिकारी पुरुषोंको ब्रह्मका स्वरूप और उसकी प्राप्तिके साधन बतलानेवाले थे।

क्षमा और गुण-ग्राहकता

सौ पुत्रोंको राक्षसद्वारा बिना ही कारण मरवा डालनेवाले विश्वामित्रपर न तो आपके मनमें तनिक-सा क्रोध उपजा और न सर्वथा समर्थ होनेपर भी शापादिद्वारा आपने उनका कुछ भी अनिष्ट किया। 'पुत्रोंकी मृत्यु उनके प्रारब्ध-कर्मोंकी समाप्ति या कर्म-फल-प्रदाता परमेश्वरकी इच्छासे हुई है, इसमें विश्वामित्र और राक्षस तो निमित्तमात्र हैं।' यों समझकर उन्होंने मनको शान्त रक्खा। इतनी भयानक बुराईको कुछ भी–प्रतिकार किये बिना–आपने प्रसन्नतापूर्वक सह लिया। इससे उनकी आदर्श सहिष्णुता और समाधानकी अनुपम शक्तिका पता लगता है।

जब विश्वामित्रने उग्र तपस्याकेद्वारा दिव्यास्त्रोंको प्राप्त कर उनसे आश्रम और शिष्योंसहित वशिष्ठके विनाशके लिये तीव्र प्रयत्न किया, तब आप शाप या अन्य किसी भी दिव्यादिव्य उपायसे उनका प्रतिकार करनेकी चेष्टा न कर शान्त-चित्तसे ब्रह्मदण्ड धारण किये अपने आश्रमके सामने खड़े हो गये और विश्वामित्र-प्रेरित समस्त दिव्यादिव्य अस्त्रोंको अपने ब्रह्मदण्डमें लीन कर डाला। विश्वामित्रके कुल अस्त्र वशिष्ठका कुछ अनिष्ट न कर ब्रह्मदण्डमें प्रवेश कर गये। इस महान् कार्यमें उन्होंने क्षत्रिय और राजर्षिके बलसे ब्राह्मण या ब्रह्मर्षिके बलकी अति श्रेष्ठता सिद्ध कर विश्वामित्रको यह बतला दिया कि उनका क्षात्रबल ब्रह्मबलसे सदा ही निम्न श्रेणीका है। ऐसे विकट प्रसङ्गमें भी श्रीवशिष्ठजीने अपने हृदयको धैर्य, सतर्कता और क्षमासे च्युत नहीं होने दिया। इससे उनके हृदयकी अत्यन्त उन्नत अवस्थाका पता लगता है।

व्यवहारमें विश्वामित्र श्रीवशिष्ठजीके शत्रु हैं, तो भी श्रीवशिष्ठजीने अपनी प्रिया साध्वी पत्नी अरुन्धतीके सामने बातों-ही-बातोंमें विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा की। इससे उनके हृदयकी निर्मलता, निर्वैरता, शुभ गुणग्राहकता सिद्ध होती है। ऐसी शुभ गुणग्राहकता साधारण मनुष्योंमें कदापि सम्भव नहीं। यह तो केवल असाधारण मतिमान् पुरुषमें ही सम्भव है। अपने शुभगुणोंको गुप्त रखना और दूसरोंके शुभ गुणोंको प्रकट करना बड़ी ही टेढ़ी खीर है। इस विषयमें एक प्राकृत कविने ठीक कहा है—

जो गुण गोवइ अप्पना, पयडइ करइ परस्सु।
तासु कलिजुगि दुल्लह हु, बलि किज्जउ सुयणस्सु॥

'जो अपने सद्‌गुणोंको छिपाकर दूसरेके सद्‌गुणोंको प्रकट करता है, कलियुगमें ऐसे दुर्लभ पुरुषपर मैं बलिहारी जाता हूँ।'

एक दूसरे कविने भी शुभ-गुणानुरागकी खूब महिमा गायी है—

किं बहुणा भणियेणं, किं तव ययेणं किं वा दाणेणं।
इक्कं गुणाणुरायं, सीख्खहु सुखाण कुलभवणं॥

'बहुत पढ़ने, तप करने और दान देनेसे कौन-सा महान् फल मिलता है ? सुखसमूहके स्थानरूप केवल शुभ गुणोंके प्रति अनुराग करना सीखो, इसीसे महान् फल होगा।'

व्यवहार-कुशलता

वशिष्ठजी बड़े ही व्यवहार-कुशल पुरुष थे, इनकी व्यवहारकुशलताके कुछ उदाहरण देखिये ! जिस समय विश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज दशरथके समीप श्रीरामको माँगने आते हैं उस समय पहले तो दशरथ यह प्रण कर लेते हैं कि आप जो माँगेंगे, वही दूँगा। परन्तु अपने साथ श्रीरामको भेजनेकी बात कहनेपर दुःखके साथ दशरथ अस्वीकार कर देते हैं। विश्वामित्रको क्रोध होता है। उस समय श्रीवशिष्ठजी दशरथजीको बड़ी ही बुद्धिमानीके साथ उचित कारण दिखाकर श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्र मुनिके साथ भिजवादेते हैं।

श्रीरामचन्द्रके वनवासकी भावी जानते हुए भी आप व्यवहारानुसार श्रीरामचन्द्रके युवराजपदके लिये अनुमति देते हैं। निश्चित मूहूर्तकी पहली रातको श्रीराम-सीतासे अनेक प्रकार पूजा-पाठादि योग्य विधि करवाते हैं, और आगे चलकर कैकेयीको भूल-भरा रामवनवासका वरदान वापस लेनेके लिये समझाते हैं। इन प्रसङ्गोंमें आपकी व्यवहार-पटुताका खूब पता लगता है। इसके अतिरिक्त श्रीराम-वियोगमें शोकाभिभूत महाराज दशरथको सान्त्वना देने और श्रीभरतजीको उसीके अनुसार समझानेमें भी आप बड़ी कुशलतासे काम लेते हैं।

ब्रह्मज्ञान

श्रीवशिष्ठजीके तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ? गुजरातके भक्त-कवि अखाजीने 'अखेगीता'में उसकी महिमा इसप्रकार गायी है—

विधि वशिष्ठ कही कथा, रघुनन्दनंन जेह।
अर्णव ब्रह्मविद्यातणा, देखाड्यो छे तेह॥

विश्वामित्रजीकी प्रेरणासे श्रीवशिष्ठजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रति ब्रह्मज्ञानका बड़ा ही सुन्दर उपदेश किया है, जिसका वर्णन श्रीवाल्मीकिजीने योगवाशिष्ठ-महारामायणमें किया है। उसके 'वैराग्य' नामके पहले प्रकरणमें यह दिखलाया है कि श्रीरामचन्द्रजीके अन्तःकरणमें जिस विमल वैराग्यकी उत्पत्ति हुई थी वैसा ही विमल वैराग्य मुमुक्षुको प्राप्त करना चाहिये। तदनन्तर 'मुमुक्षु' या 'मुमुक्षु व्यवहार' नामक दूसरे प्रकरणमें मुमुक्षुके कर्त्तव्य बतलाये गये हैं। 'उत्पत्ति' नामक तीसरे प्रकरणमें ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्तिका रहस्य और 'स्थिति' नामक चौथे प्रकरणमें ब्रह्ममें जगत्की स्थितिका तत्त्व समझाया गया है। उपशम नामक पाँचवें प्रकरणमें प्रतीतमान जगत्को ब्रह्ममें शान्त करनेके उपायोंका और 'निर्वाण' नामक छठें प्रकरणमें ब्रह्ममें जगत्के शान्त हो जानेके अनन्तर जीवसमूह और जगत्की स्थितिका निरूपण किया गया है।

अज्ञानीके अज्ञानको दूरकर उसे आत्मस्वरूपमें स्थित करदेना ही आत्मज्ञानीका कर्त्तव्य है। इसके सिवा उसका अन्य कोई भी कर्त्तव्य नहीं; यही विद्वानोंका मत है। इसीके अनुसार श्रीवशिष्ठजीने अधिकारीवर्गको अपने स्वरूपके उपदेशद्वारा स्वरूपमें भलीभाँति स्थिर करनेका प्रयत्न किया है। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति दृश्य जगतमें दृढ़ वैराग्य रखने और प्राप्त व्यवहारको आसक्तिरहित होकर करनेके सम्बन्धमें जो सदुपदेश दिया है, वह मनन करने योग्य है।

'जैसे गीध मांसके टुकड़ेपर टूट पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्यका मन मिथ्या आसक्तिके वश व्यर्थकी रमणीयता मानकर भोगोंपर टूट पड़ता है। (वास्तवमें ये विषय हैं ही नहीं) बाह्यदृष्टिसे प्रतीत होनेवाला दृश्य यथार्थमें नहीं है। इस ज्ञानके द्वारा जिस मनुष्यके मनसे दृश्य-संसर्ग-जनित मल दूर हो गया है उसको मोक्षरूप उत्कृष्ट परमानन्दकी प्राप्ति होती है। दृश्यकी इच्छाओंके भलीभाँति शान्त हो जानेपर आत्मप्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। परन्तु जिसका मन सांसारिक सिद्धियोंकी प्राप्तिमें आसक्त है उसको उस आत्माकी प्राप्ति कैसे हो ? इसीलिये—

नाभिवांछाम्यसम्प्राप्तं सम्प्राप्तं न त्यजाम्यहम्।
स्वस्थ आतमनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे॥
इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्त क्रियामसौ।
असक्तः कर्तुमुत्तस्थौ दिनं दिनपतिर्यथा॥

राजर्षि जनक विचार करते हैं—कि मैं विधिवत् अप्राप्त पदार्थको पानेकी इच्छा नहीं करता और विधिवत् प्राप्त पदार्थका द्वेषपूर्वक त्याग नहीं करता। मैं अपने स्वभावसे स्थित आत्मामें स्थिर रहता हूँ। जो मेरा माना जाता है वह भले ही मेरा होकर रहे। श्रीवशिष्ठजी कहते हैं कि, यों विचारकर जैसे सूर्य, दिन उगानेकी प्राप्त-क्रियामें आसक्तिरहित होकर प्रवृत्त होता है वैसे ही राजर्षि जनक प्राप्त क्रियाको यथायोग्य आसक्तिरहित होकर करनेमें प्रवृत्त हुए। हे रामचन्द्रजी, तुम भी वैसे ही प्रवृत्त होओ।

भरद्वाज आश्रम ।

सुफल सकल सुभ साधन-साजू । राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ॥

लक्ष्मणका क्रोध ।

उठि करजोरि रजायसु मांगा । मनहुँ बीररस सोवत-जागा ॥

चित्रकूटमें भरत।

भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु।
अंब ईस आधीन जग, काहु न देइअ दोषु॥

चित्रकूटमें जनकजी।

गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

भविष्यं नानुसन्धत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।
वर्त्तमान निमेषन्तु हसन्नेवानुवर्तते॥

राजर्षि जनक भूत और भविष्यकी घटनाओंका बारम्बार स्मरण न कर केवल वर्तमान समयका हँसते हुए अनुसरण करते थे। हे रामचन्द्र! तुम भी इसी स्थितिको प्राप्त करो।

अन्तःकरणको अखण्डैकरस और निरतिशय आनन्द-रूप ब्रह्ममें स्थित कर, बाहरसे नाटकके पात्रकी भाँति प्राप्त-व्यवहारको सुचारुरूपसे करनेवाले श्रीवशिष्ठजीके अन्तःकरणकी वास्तविक महत्ता तो उनके जैसे आरूढ ब्रह्मवेत्ता ही भलीभाँति समझ सकते हैं। दूसरे लोगोंको तो उनकी महत्ताका साधारण-सा ज्ञान होता है। पुरोहितका कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंको श्रीवशिष्ठजीके विचारों और बर्तावों-का अनुसरण कर अपने जीवनको कृतार्थ करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

श्रीहनूमान्‌जीके चरित्रसे शिक्षा

(लेखक—पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमत्-चरितका आरम्भ किष्किन्धाकाण्डके आदिमें 'मारुति-मिलन' प्रसङ्गसे हुआ है, वहाँ आप ऋष्यमूक-पर्वतपर सुग्रीवके सचिवरूपमें दर्शन देते हैं। वस्तुतः श्रीरामावतारकी भाँति आपका भी वानर-वपु भगवान् शिवका रुद्रावतार था। गोस्वामीजीने दोहावलीके निम्नलिखित दोहोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है—

जेहि सरीर रति रामसों, सो आदरहिं सुजान।
रुद्र-देह तजि नेहबस, बानर भे हनुमान॥
जानि राम-सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरखा ते सेवक भये, हरते भे हनुमान॥
(दोहा १४२।१४३)

रामायणमें इस गूढ़ तत्त्वको मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें बड़ी विचित्रताके साथ झलकाया है। बालकाण्डसे अरण्य-काण्डतक भगवान् शङ्करकी वन्दना पहले करके पीछे रघुनाथ-जीकी वन्दनाके श्लोक रक्खे गये हैं। परन्तु जब किष्किन्धा-काण्डमें स्वयं शङ्करजी हनूमान्‌रूपसे श्रीरामकी सेवामें अवतरित हो जाते हैं, तब वहाँसे उत्तरकाण्डपर्यन्त श्रीराम-वन्दनाके श्लोकोंको प्रथम स्थान दिया गया है और दास-भावानुसार शिव-वन्दना पश्चात् की गयी है। लङ्का और उत्तर काण्डमें तो यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है, किन्तु सुन्दरकाण्डमें तो शङ्करके स्थानमें श्रीहनुमान्‌जीकी ही वन्दना की गयी है। इस वन्दना-क्रमके द्वारा और किष्किन्धाकाण्डमें श्रीराम-नामकी वन्दनान्तर्गत—

पुनि तुम राम-राम दिन राती, सादर जपहु अनंग अराती।

—के प्रमाणसे श्रीहनूमान्‌जीका शङ्करावतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। इसके सिवा आपका बल, पराक्रम और आश्चर्यमयी घटनाओंसे पूर्ण चरित्र ही आपको एक प्राकृत कपिसे सर्वथा भिन्न बता रहा है। अतः रामायणमें आपका चरित्र भी सर्वाङ्गसे ध्येय, शिक्षणीय तथा अनुकरणीय है। उपर्युक्त वर्णनके अनुसार श्रीहनूमान्‌जीका चरित्र—'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा'-सुग्रीव-सचिवत्वसे आरम्भ होता है।

सचिव कैसा होना चाहिये और उसे सचिव-धर्मका पालन किस भाँति करना चाहिये, इसका उत्तम उदाहरण श्रीहनूमान्‌जीने दिखाया है। महाबली बालिके दुरत्यय आघातके कारण सुग्रीवको त्रैलोक्यमें कहीं ठिकाना नहीं रहा। ऐसे दीन, निराश्रय-जनका साथ देकर महाबली बालिसे वैर मोल लेना मामूली बात नहीं थी। ऐसी दुरवस्थामें भी आप उनके मन्त्रित्व-पदपर दृढ़ रहकर सदा सहायता करनेमें लगे रहे। यह परम साहसिकता और सच्ची प्रीतिकी पहली शिक्षा है। इतना ही नहीं, अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवकी मित्रता करवा आपने उसको निर्भय कर दिया और इसप्रकार नीतिके एक उच्च सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करके दिखा दिया कि राजाके सात अङ्गोंमेंसे यदि एक सर्वप्रधान अङ्ग मन्त्री बचा रहे तो शेष सब नष्ट हो जानेपर भी राज्यको पुनः प्राप्त कर सकना असम्भव नहीं है। रामायणमें सुग्रीव और विभीषण दोनों ही दीन पात्रोंके केवल मन्त्री ही बच रहे थे,

'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा ।'—'सचिव संग लै नभपथ गयऊ ।' इससे अन्तमें दोनोंके मनोरथ सफल ही हुए ।

श्रीहनूमान्‌जी जब सुग्रीवके सङ्केतसे वटुरूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलते हैं और उनसे बातचीत करते हैं, तब आपकी ज्ञान गरिमा तथा अनन्य भक्तिका बड़ा सुन्दर शिक्षणीय परिचय प्राप्त होता है। आप तपस्वीरूप भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणसे पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्रीरूप फिरहु 'बन' बीरा ॥
कठिन भूमि कोमलपदगामी। कवन हेतु बिचरहु 'बन'स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह 'बन' आतपबाता ॥

इन तीनों चौपाइयोंमें 'वन' शब्द एकमें भी नहीं छूटने पाया है। बारबार 'वन' शब्दका मुँहसे निकलना इस बातका प्रमाण है कि आपके हृदयमें उन कोमल-चरणोंसे स्वाभाविक प्रेम है और उन कोमल चरणोंका या कोमल-चरणवालेका 'वन' में फिरना आपके हृदयमें शूल-सा खटक रहा है। कहाँ वह 'मृदुल मनोहर सुन्दर गात' और कहाँ वनके 'दुसह आतप वात' को सहनेका कष्ट! कैसा असामञ्जस्य है ? कुछ इसीप्रकार श्रीभरतलालजीके मनमें भी उन कोमल-चरणोंका 'बिनु पनहीं' वनमें भटकना खटका था। उन्होंने भी कहा था—

राम-लखन-सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनिबेष फिरहिं बन बनहीं॥
यह दुःख दाह दहै नित छाती। भूख न बासर नींद न राती ॥

यहाँ भी 'वन-वन' शब्द असह्य दुःखका सूचक है। चरण-सेवक श्रीहनूमान्‌जीने इस मिलनके पश्चात् भगवान्‌को कभी 'वन-वन' नहीं फिरने दिया। उन्होंने सेवक-भावका उच्च आदर्श दिखाया। लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई। दोनों भाइयोंको अपने कन्धेपर उठाकर सुग्रीवके पास ले गये। यही तो उनके अगाद गूढ़ प्रेमका ज्वलन्त प्रमाण है। प्रभुकी लङ्काकी यात्रा भी श्रीमारुतिके कन्धोंपर विराजित होकर ही हुई थी।

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥

उधर इसी कार्यके द्वारा संकेतसे सुग्रीवको भी भगवान्‌के अपने मित्र होनेका प्रमाण दे दिया, क्योंकि, शत्रु होते तो कन्धेपर कैसे चढाते ? दोनों प्रभुओंको पीठपर चढ़ाकर श्रीराम-चरण-निष्ठाका निर्वाह तो किया ही गया, अब आपका भक्तिपूर्ण दूसरा चमत्कार देखिये ! अब आप श्रीराम-लक्ष्मणकी 'युगल-जोड़ी' से पहले मिलते हैं तो उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये कैसे समानार्थक विकल्पोंका प्रयोग करते हैं, 'आप दोनों क्षत्रिय ही नहीं हैं, किन्तु क्षत्रियरूपमें आप या तो त्रिदेवोंमेंसे कोई हैं, या नरनारायण हैं, या अखिल-भुवन पति (साक्षात् परब्रह्म) हैं।' यदि विचार किया जाय तो हनूमान्‌जीके तीनों अनुमान अवतार-अवतारी-भेदसे ईश्वरके सम्बन्धमें थे। तात्पर्य, श्रीरघुनाथजी जिस परब्रह्मके अवतार हैं, उसी पर-स्वरूपके अवतार नरनारायण भी हैं। उन्हीं परवासुदेवके अंश गुणावतार त्रिदेव हैं। इस प्रकार तीनों स्वरूप परब्रह्मके ही हैं और तीनों ही पूज्य और नमस्कारके योग्य हैं। इसीलिये—माथ नाय पूछत अस भयऊ का व्यवहार किया गया था। क्योंकि वेष बदले हुए वैभव-वान्, पुरुषको जाननेवाले तो उसके वैभवके अनुसार ही उसका सम्मान किया करते हैं। बजरङ्गबलीकी यथार्थ पहुँचसे हमें उनके परम योगी होनेको परिचय मिलता है और साथ ही यह पता लगता है कि योगियोंके अन्तःकरण सत्यकी किस तहतक पहुँच जाते हैं ! रामायणमें इस विषयके और भी उदाहरण मिलते हैं। सच्चे जौहरी श्रीजनकजीने भी इसी प्रकार इस राम-रत्नको परखा था—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥

—भक्तराज विभीषणजीने भी श्रीमारुतिजीसे ऐसा ही कहा था—

की तुम्ह हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह राम दीन अनुरागी। आयेहु मोहिं करन बड़भागी ॥

विभीषणजीने विप्र-वेश-धारी हनूमान्‌के सम्बन्धमें दो ही अनुमान किये, कि या तो आप राम हैं या रामके दास ! अस्तु ।

श्रीहनूमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको उन्हींके दिये हुए बुद्धिबलसे ही पहचाना था। सतत प्रेमपूर्वक भजन करनेवालेको भगवान् बुद्धियोग देते हैं (गीता १०।१०) गीताके इस सिद्धान्तको श्रीहनूमान्‌जीने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया !

सच्चे अधिकारी भक्तके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए श्रीरघुनाथजी महाराज अपने नाम, रूप और धामका निर्देश करते हुए कहते हैं—

कोसलेस दसरथके जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम-लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमार सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥

इसमें 'नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई' से नाम; 'कोसलेश

दशरथके जाए' इसमें धाम तथा रूप एवं 'हम पितु बचन मानि बन आए' और 'इहाँ हरी निसिचर बैदेही' से सीताका वर्णन किया है। तदनन्तर भगवान् भक्तवर श्रीहनूमान्‌जीसे पूछते है—

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥

'हमने तो अपना हाल सुना दिया, अब हे विप्रवर! आप कौन हैं सो तो बताइये?' इस मर्म-वचनके उत्तरमें श्रीहनूमान्‌जीने जो कुछ किया और कहा, उससे उनकी सच्ची दीनता, यथार्थ शरणागति, अलौकिक अनुरक्ति, असाधारण निर्भरता और गम्भीर ज्ञानका पता लगता है। स्वामी श्रीरामको पहचानकर मारुतिजी चरणोंमें गिरकर परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। शिवजी कहते हैं—सो सुख उमा जाइ नहिं बरना। इसके बाद उनके व्यवहार और वचनोंका आदर्श देखिये—

पुलकित तनु मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेषकै रचना ॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहिं चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूँछा साईं। तुम कस पूँछहु नरकी नाईं ॥
तव मायाबस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥

एक मन्द मैं मोहबस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहिं परै जनि भोरे ॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा ॥
तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहँ असोच बनै प्रभु पोसे ॥
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस स्तुतिमें श्रीहनूमान्‌जीने पाँचों स्वरूपोंका रहस्य बड़ी विलक्षणतासे खोल दिया है। जीवस्वरूप, परस्वरूप, विरोधस्वरूप, उपायस्वरूप और फलस्वरूप—इन पाँचोंका ही निचोड़ इसमें आगया, जो सर्व शास्त्रोंका सार-रूप है और जिसको जानना अत्यन्त आवश्यक है। कहा है—

'प्राणस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलप्राप्ति तथा प्राप्ति विरोध च ॥
वदन्ति सकला वेदा सेतिहास पुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्त वेदितः ॥'

समस्त वेद, इतिहास, पुराणादि और वेद-वेदान्तके ज्ञाता मुनि महात्माओंका सिद्धान्त है कि जबतक इन पाँचोंका बोध नहीं होता तबतक जीव संसारसे पार नहीं हो सकता। 'मोर न्याउ मैं पूछा साईं' से 'जीवस्वरूप' का बोध होता है, जिसका लक्षण गोस्वामीजीने 'हर्ष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥' बतलाया है। 'तुम पूँछहु कस नरकी नाईं' 'तव मायावस फिरौं भुलाना' 'सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा' 'पुनि प्रभु मोहिं बिसारेउ दीनबन्धु भगवान' इत्यादिसे यहाँ 'ईश्वर स्वरूप' प्रकट होता है, जैसा कहा है—'ग्यान अखण्ड एक सीताबर।' 'बन्ध मोच्छप्रद सर्वपर माया प्रेरक जीव।'

'नाथ जीव तव माया मोहा!' से 'विरोधस्वरूप' यानी, मायाको दिखलाया, जो भक्तिमें बाधक हो रही है। 'सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहै असोच बनै प्रभु पोसे ॥' से 'उपाय-स्वरूप' अर्थात् दास और छोटे बच्चेकी भाँति सब साधनों-से रहित होकर केवल प्रपत्तिसे ही उद्धार होना बतलाया। 'अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।' से 'फलस्वरूप'—भगवत्-चरणकी प्राप्ति तथा प्रेमाभक्ति ही परम फल है, यह दिखलाया है। इसीप्रकार 'तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥' कहकर सच्चे भक्तों-की दीनतारूप मुख्य धारणाका मर्म भी समझा दिया। सच्चे भक्तोंके हृदयमें यह भाव कदापि स्वप्नमें भी नहीं आता कि 'मैं भी कुछ हूँ या मुझमें भी कुछ गुण हैं।' श्री-भरतजी कहते हैं—

× × × मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं मोहिं रघुबीर भरोस ॥

प्रेमीवर सुतीक्ष्णजी महाराजने कहा है—

'भगति न बिरति ग्यान मन माहीं ॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन-कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

गोस्वामीजी तो शपथ ही खा रहे हैं कि—

कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥

सारांश यह, कि भगवान्‌के सच्चे शरणागतजन 'अहं-मम' आदि समस्त सम्बन्धोंको निश्चितरूपसे प्रभुकी वस्तु समझ लेते हैं। वह अपनेको भी अपना नहीं समझते। भक्तवर श्रीयामुनाचार्यजीने कहा है—

'मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं
सकलं तद्धि तवैव माधव।

. नियत स्वमति प्रबुद्धधीरथवा
किन्तु समर्पयामि ते ॥'
(आलवन्दार)

'हे माधव ! हे मेरे नाथ ! मेरा जो कुछ है वह, और जो कुछ मैं हूँ सो, सब तेरा ही है। मेरी मति और प्रबुद्ध बुद्धि अथवा अन्य जो कुछ है सो सब तुझको समर्पण करता हूँ।'

जब स्वामीके प्रति मन-वचन-कर्म तीनोंसे शुद्ध प्रपन्नता हो जाती है, तभी प्रभु उसे स्वीकार करते हैं—

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस चौपाईमें श्रीहनूमान्‌जीने शुद्ध प्रपत्ति सिद्ध कर दी। 'अस कहि' से वचनकी प्रपन्नता, 'प्रीति उर छाई' से मनकी प्रपन्नता, तथा 'परेउ चरन अकुलाई' से तनकी प्रपन्नता सिद्ध हुई। इतना ही नहीं बटु-वेषरूपी कपटको दूरकर 'निज तनु' भी प्रकट कर दिया। अब तो भगवान्‌से नहीं रहा गया, उठाकर हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रु-धाराओंसे लगे अभिषेक करने !

'तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज-लोचन-जल सींचि जुड़ावा ॥'

श्रीहनूमान्‌जी कृतार्थरूप हो गये! स्वयं ही कृतार्थ नहीं हुए, इसके बाद सुग्रीव-विभीषण आदि जिन जिन लोगोंने आपसे सम्बन्ध रक्खा या किया, उन सबको भी प्रभुकी प्राप्तिद्वारा कृतार्थ करा दिया। यही तो सन्तोंकी महिमा है !

श्रीहनूमान्‌जीके संगसे उपलब्ध श्रीरामकृपासे सुग्रीवजी राज्यासनपर विराजते हैं, परन्तु जब राजमदके कारण 'रमाविलास'में रम जाते हैं तब श्रीहनूमान्‌जी बड़ी ही दूरदर्शितासे आदर्श विनयपूर्वक सुग्रीवको सब प्रकारसे सचेत कर देते हैं।

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिर नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा

इस काममें आपकी बुद्धिमत्ता, सुग्रीवके प्रति हितैषिता और 'रामकाज' की चिन्ता तथा मन्त्रित्वके नाते कर्तव्य-परायणता और नम्रता सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं। आप इतना ही करके शान्त नहीं हो जाते। सुग्रीवकी अनुमति लेकर स्वयं दूतोंको सम्मानपूर्वक बुलाते हैं और भय तथा प्रीति दिखाकर वानरोंको बुलानेके लिये उन्हें तुरन्त भेज देते हैं। यदि आपने ऐसा न किया होता तो सुग्रीवपर कितना बड़ा कोपाक्रमण होता !

जब वानरयूथ इकट्ठे हो गये और श्रीसीताजीकी खोजमें भेजे जाने लगे तब आपका दल भी दक्षिण दिशाकी ओर चला। उस समय सबसे पीछे आपने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें शिरसा प्रणाम किया। श्रीरामजीने इनको निकट बुलाकर अपने भक्तभयहारी कोमल कर-कमल इनके मस्तकपर रख दिये और अपना ही जन जानकर सहिदानके निमित्त मुद्रिका दे दी। फिर श्रीरघुनाथजी बोले—

बहु प्रकार सीतहिं समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयहु॥

आज श्रीहनुमान्‌जीका जीवन सफल हो गया। उन्होंने सोचा कि मेरे समान बड़भागी कौन होगा जिसके मस्तकपर मेरे नाथने आज पाप ताप और माया तीनोंको एक साथ मिटा देनेवाले कर-कमल रख दिये। कहा है—

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया।
निसि-बासर तेहि कर-सरोजकी चाहत तुलसीदास छाया॥

वस्तुतः लङ्कायात्रामें श्रीहनूमान्‌जीको तीनों ही फल प्राप्त भी हो गये। तीनोंका पृथक् पृथक् विवेचन सुनिये। श्रीहनूमान्‌जी लङ्का दहन करते हैं। वहाँ चारों तरफ हाहाकार मच जाता है। अगणित जीव जलकर भस्म हो जाते हैं। इनकी गर्जनाको सुनकर अनेक राक्षस-नारियोंके गर्भपात हो जाते हैं। यह सब हुआ परन्तु आजतक किसीने स्वप्नमें भी ऐसी शङ्का नहीं की कि हनूमान्‌जीको ऐसा करनेमें कोई पाप लगा। करते भी कैसे ? जिसके मस्तकपर परम कारुणिकका अभय हस्त फिर गया, उसमें पाप कहाँ ? यह तो हुई पापकी बात, अब तापकी बात सुनिये। यों तो आप स्वाभाविक ही त्रिविध तापसे मुक्त हैं, परन्तु यहाँ उस तापके सम्बन्धमें कहना है जिससे आपने सारी लङ्काको तप्त कर दिया था। आपकी पूँछमें लगायी हुई अग्नि जिस समय करोड़ों लाल-लाल लपटोंसे लङ्काको दग्ध कर रही थी उस समय प्रलयाग्नि या बड़वानल भी उसके सामने तुच्छ थे। अग्निशिखायें मानो काल-रसनाके सदृश सबको चाट रही थीं। मूसलधार वृष्टि भी उस समय घृताहुतियोंके सदृश अग्निको अधिकाधिक प्रचण्ड कर रही थी। समुद्रका जल उबल रहा था, ऐसी विकट स्थितिमें आप सहज ही एक मन्दिरसे दूसरे मन्दिरपर उछल रहे हैं, सारा शरीर रोमसे आवृत है, परन्तु अग्निकी आँचसे आपका बाल भी बाँका नहीं होता। कैसा आश्चर्य

है! बात यह है 'गोपद सिन्धु अनल सितलाई'—की प्रभुतावाले प्रभुका अभय हस्त जिनके सिरपर रक्खा गया, उनके लिये तापकी सम्भावना ही नहीं रहती!

अब रही मायाकी बात; श्रीहनूमान्‌जीको तीनों प्रकारकी गुणमयी मायाका सामना करना पड़ा, परन्तु आप सबका पराभव करते हुए आगे बढ़े हैं। सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों ही मायासे सामना करना पड़ा। देवलोकसे आयी हुई सुरसा सतोगुणी, अधोनिवासिनी सिंहिका जो उड़ते हुए पक्षियोंको छायाको पकड़कर उन्हें खींच लेती थी, तमोगुणी, और मध्यलोक लंका-निवासिनी लङ्किनी रजोगुणी थी। उच्च, मध्य और नीचस्थानोंमें रहनेवाली होनेके कारण उपनिषद्मयी गीताके सिद्धान्तानुसार इनका क्रमशः सात्त्विकी, राजसी और तामसी होना सिद्ध है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः अधो गच्छन्ति तामसाः॥

इनमें सुरसा तो देवलोकसे श्रीहनूमान्‌जीके बुद्धिबलकी परीक्षाके लिये आयी थी।

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जाना चह बल-बुद्धि-बिसेखा॥
सुरसा नाम अहिन्हकी माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता॥
आज सुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा। सुनि हँसि बोला पवनकुमारा॥
रामकाज करि फिरि मैं आवौं। सीताकै सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं मोहिं जान दे माई॥
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

सुरसाने कहा- आज तो देवोंने खूब भोजन भेजा। इसपर श्रीहनूमान्‌जी हँसे। इस हँसमुख मुद्रासे यह सूचित होता है कि आपको सुलह स्वीकार है। इसके बाद मारुतिजीने 'राम' शब्द का उच्चारण किया। क्योंकि श्रीराम-नाम सर्व विघ्न-विनाशक और शत्रु को भी अनुकूल करनेमें समर्थ है। यथा—

धाई धारि फिरिकै गोहारि हितकारी होति
आई मीचु मिटति रटत रामनामके।

पर इस राम-नामसे भी सुरसाने मार्ग नहीं छोड़ा। यहाँ यह शङ्का होगी कि हनूमान् सरीखे नामनिष्ठका यह प्रयोग निष्फल क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है कि सुरसा तो प्रतिकूल थी ही नहीं जो अनुकूल होती। वह तो प्रारम्भसे ही अनुकूल थी, जो योग्यताकी जाँचके लिये आयी थी। इसीलिये वह नहीं हटी। इसके बाद आपने यह सूचित किया कि मैं 'राम-काज' से जा रहा हूँ। बड़ेका काम सुनकर मामूली लोग भय खा जाते हैं (राम रजाइ सीस सबहीके)। इसका भी कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि अभी परीक्षाके बहुतसे विषय बाकी थे। अब हनूमान्‌जीने सोचा कि स्त्रीजातिकी स्त्रीजातिके प्रति स्वाभाविक सहानुभूति होगी, इससे, 'सीताकै सुधि' प्रभुको सुनानेकी बात कही। इसपर भी सुरसा नहीं हटी। तब प्रतिज्ञा करके समय लेना उचित समझा और 'तब तव बदन पैठिहौं आई' कहा, इसपर भी जब वह नहीं मानी, तब उसे 'माता' (माई) कहकर सम्बोधन किया। स्त्रियोंमें अपत्य-स्नेह स्वाभाविक होता है। कहीं मातृभावसे बालक समझकर ही छोड़ दे। हनूमान्‌जी किसी प्रकार भी 'रामकाज' करनेकी चिन्तामें मग्न थे, उन्हें दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं थी। इसपर भी जब वह न मानी तब आपने कहा कि फिर खा क्यों नहीं डालती (ग्रससि न मोहि) इतना सुनते ही सुरसाने एक योजनका मुँह फैलाया, श्रीहनूमानजी 'रा' 'म' रूपी दो अक्षरोंके बलसे उससे दूने बढ़ गये। तब सुरसाने नारी प्रकृतिके अनुसार उनसे अठगुना सोलह योजनमें मुखका विस्तार किया। मारुतिजीको तो ('प्रीति प्रतीत है आखर 'दू' को' 'तुलसी हुलसै बल आखर दू को') दो अक्षरोंका ही भरोसा था इसीलिये वे फिर दूने बत्तीस योजन बढ़े। तब तो सुरसाने किसी नियमको न मानकर सौ योजनमें मुँह फैलाया। श्रीहनूमान्‌जीने सोचा कि सौ ही योजन समुद्र पार करनेकी बात थी, अवधि आ पहुँची अतएव अब इसे भी पार करना ही चाहिये। तब—अति लघुरूप पवनसुत कीन्हा—छोटासा रूप बनाकर उसके मुँहमें घुस गये और चटपट बाहर निकलकर आज्ञा माँगी—

बदन पैठि पुनि बाहेर आवा। मांगी बिदा ताहि सिर नावा॥

श्रीहनूमान्‌जीके बुद्धिबलका मर्म समझकर सन्तुष्ट हो सुरसाने आशीर्वाद दिया—

'रामकाज' सब करिहहु तुम बलबुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चले हनुमान॥

श्रीहनूमान्‌जीने अपने बुद्धिकौशलसे बाधकको साधक बनाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। कर्तव्यपथमें विघ्न करनेवालेके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी हमें इससे खूब शिक्षा मिलती है। इसके बाद क्रमशः सिंहिका और लङ्किनीको स्वभावानुसार पुरस्कृत कर आप लङ्का पहुँचे।

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस लङ्का-यात्राका अभिप्राय यह है कि जब जीव भक्तिकी खोजमें परमार्थ-पथपर चलता है तो उसे तीन प्रकारकी गुणमयी माया बाधक होती हैं। इन तीनोंसे श्रीहनूमान्‌जीके सदृश व्यवहार करना चाहिये। सतोगुणीसे विशेष विरोध न करे क्योंकि शुभकर्मोंकी प्रवृत्तिसे विरोध करना उचित नहीं और निवृत्ति होनेके लिये भजनके हेतुसे उसका सङ्ग निबाहना भी असम्भव है। अतः उसके अनुकूल होते हुए भी अपनेको छोटा बनाकर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करे, प्रवृत्त न हो, क्योंकि शुभाशुभ दोनों ही प्रकारकी प्रवृत्तिका त्याग करना ही भगवत्-प्रेमियोंके लिये श्रेयस्कर है।

त्यागहिं कर्म सुभासुभदायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥

श्रुति कहती है —

'न कर्मणा न प्रजया न धनेन
त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः'

इस प्रकार सतोगुणी मायासे बचे।

तमोगुणी मायाको सिंहिकाकी भाँति जानसे मार डाले। तात्पर्य यह कि उसे निःशेष त्याग दे क्योंकि पापकर्मोंका लेश भी परमार्थके लिये दिन और रातकी तरह विरोधी है। अतः 'भूल न देहि कुमारग पाऊँ।' तमोगुणी माया बड़ी ही घातक और तीव्र होती है, इससे उसको छाया भी नहीं छूने देनी चाहिये, नहीं तो वह छायामात्रको पकड़कर ही हमारा जीवन नष्ट कर देगी। इससे सदा सचेत रहना चाहिये और जहाँ किञ्चित भी सन्देह हो, वहीं—'तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा' के अनुसार तुरन्त पहिचान कर झटपट उसका काम तमाम कर ही डालना चाहिये। 'रिपु रिन रंच न राखब काउ।'

रजोगुणी मायाको अधमरी करके छोड़ दे, क्योंकि इसका सर्वथा निराकरण करनेसे शरीररक्षार्थ अवलम्बन-हीन हो जाना पड़ेगा। शरीरयात्रा भरके लिये अन्न-धन ग्रहण करना धर्म है, परन्तु उतना ही जितना प्रारब्धानुसार प्राप्त हो 'यदृच्छा लाभ सन्तुष्टः'। अतः रजोगुणी मायाको लङ्किनीकी भाँति न प्रबल रहने दे और न नष्ट ही करे, बल्कि कमज़ोर बना, अपने काबूमें कर उससे काम निकाले, 'नात्यश्नतस्तुयोगोस्ति न चैकान्तमनश्नतः' (गीता ६।१६) जिससे वह बाधक न होकर साधक ही रहेगी। इसप्रकार त्रिगुणमयी मायासे छूटकर सीतारूपी भक्ति-माताकी खोजमें आगे बढ़ना चाहिये।

इसके बाद श्रीहनूमान्‌जी जब लङ्कामें जाकर विभीषण जीसे मिलते हैं और उनको अन्तर-बाहरसे भक्त समझ उनके बतलाये हुए मार्गसे अशोकवाटिकामें पहुँच माता सीताका साक्षात्कार करते हैं।

भक्ति-माताकी खोजमें निरत साधकको सद्गुरु चाहिये। यहाँ हनूमानरूपी जीवको विभीषणरूप सद्गुरुकी प्राप्ति हुई तदनन्तर भक्तिरूपी सीताके दर्शन हुए। इस प्रसङ्गमें यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि मायासे छुटकारा पानेपर भी सन्त-समागमके बिना यथार्थ भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। इसके सिवा साधकको खोटा-खरा भलीभाँति पहचानकर ही किसीको गुरु बनाना चाहिये। इसकी विधि भी यहीं बतला दी है। घरके बाहर श्रीराम-नाम अङ्कित और तुलसीका वृक्ष देखकर ही हनूमान्‌जीने तुरन्त विश्वास नहीं कर लिया। जब विभीषण जगकर 'राम राम' कहने लगे, तब विश्वास किया, क्योंकि रामायणान्तर्गत प्रतापभानुकी कथासे ही यह प्रकट है कि जगत्‌में साधुवेषमें घोर असाधु भी स्वार्थ-साधनके निमित्त निवास करते हैं। कहा है—

तुलसी देखि सुबेष, भूलहिं मूढ़, न चतुर नर।
सुन्दर केकी पेखि, बचन सुधा-सम असन अहि॥

अतः जिस प्रकार श्रीहनूमान्‌जीने विभीषणके बाहरी और भीतरी सब लक्षणोंको देखकर ही उन्हें सन्त समझा तथा उनपर विश्वास किया, सन्त-समागमके अभिलाषी भक्तोंको वैसे ही परीक्षा करके विश्वास करना चाहिये। शास्त्र-सम्मत सन्तोंके लक्षण यथातथ्य मिल जानेपर उस पुरुषसे कार्यहानिकी शङ्का नहीं रह जाती।

तब हनुमन्त कही सब राम-कथा निज नाम।
सुनत जुगल-तनु पुलक मन मगन सुमिरि गुन-ग्राम॥

दो सन्तोंका सतसङ्ग हुआ। दोनों रामानुरागियोंका तन, मन, वचन एकाकार हो भगवान्‌के गुणानुवादमें तल्लीन हो गया। परन्तु इस अवस्थामें भी साक्षात्कार किये बिना पूर्ण शान्ति नहीं। तभी तो वे बोले—देखा चहउँ जानकी माता। फिर विभीषणोपदिष्ट मार्गसे अशोकवाटिकामें पहुँचे। भक्तराज विभीषणकी शिक्षासे सीताजीकी सन्निधि प्राप्त कर आपने स्वामीकी मुद्रिका माताको प्रदान की।

मुद्रिका-प्रदानमें भी एक रहस्य है। भक्तिके लिये जो कुछ साधक भेंट करता है वह वस्तु होती क्या है? केवल प्रभुकी दी हुई ही! अन्यथा बेचारा जीव प्रभु-प्रसादके अतिरिक्त किसी वस्तुको कहाँसे पाता? इसीलिये तो

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्' का विधान है। इस प्रकार जब भक्तिके निमित्त प्रभु-प्रदत्त वस्तु समर्पित की जाती है और राम-यशकी पुष्पाञ्जलि चढ़ने लगती है—'रामचन्द्र यश बर्णन लागा।' तब तुरन्त ही स्वयमेव आह्वान होता है।

श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कहि सो प्रगट होत किन भाई॥

यहाँ बड़ा रहस्यपूर्ण प्रसङ्ग है। श्रीहनूमान्‌जीके निकट आनेपर माताजी पूरी परीक्षा लेनेका विचार कर मुँह फेर बैठ गयीं। फिर बैठीं मन बिसमउ भयउ।

तदन्तर जब हनूमान्‌जीने रामभक्त होनेके परिचयमें सहिदानी मुद्रिकाका लक्ष्य कराते और 'करुणानिधान' * नामकी सत्य शपथ करते हुए उनका दास होनेकी शपथ उठाकर पूर्णरूपसे विश्वास दिलाया—

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधानकी॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

तब उन्हें मन, कर्म, वचनसे 'कृपासिन्धु, का दास जान परम प्रसन्न हुई और पुलकित होकर सन्तुष्ट मनसे आशीर्वाद प्रदान किया।

जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।
हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। सदा करहिं रघुनायक छोहू॥

भक्तने विमल वरदान पाया। हनूमान् प्रेममें तन-मनकी सुधि भूल गये।

करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

—यही निष्काम भक्तोंका परम धन है।

यहाँ श्रीहनूमान्‌जीने यह प्रमाणित कर दिया कि भगवत्-प्रेमियोंको प्रभुकी कृपाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये।

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

इसके बाद लङ्कासे विदा होते समय हनूमान्‌जी कोई सहिदानी माँगते हैं और माता चूड़ामणि उतारकर देती है।

मुद्रिकाके बदले चूड़ामणि प्रदान करनेमें भी गूढ़ रहस्य है। भगवान्‌ने जो अपने हाथका भूषण 'मुद्रिका' दी, इसका अभिप्राय यह है कि 'हे सीते! तुम कहीं भी हो, मेरे कर-कमलकी छाया सदा तुम्हारे सिर पर मौजूद है, तुम अभय हस्तके आश्रयमें अभय हो।' और उसके बदलेमें सिरका गहना चूड़ामणि देनेका अभिप्राय यह है कि 'हे नाथ! यह शीश आपके कर-कमलकी छाया छोड़कर दूसरा अवलम्बन नहीं रखता।' इस अभीष्ट सिद्धान्तकी शिक्षा प्राप्त कर श्रीरामकी जल्दी लौटनेकी आज्ञानुसार श्रीहनूमान्‌जी माताको धैर्य दिलाकर लौट चले।

सारा काम श्रीहनूमान्‌जीके कौशलसे ही हुआ था तथापि आप सङ्कोचवश स्वामी श्रीरामजी और सुग्रीवके पास धमधड़से सामने सीना करके नहीं गये, वरं सिर झुकाये ही गये और जाकर भी पीछे ही छिपे रहे। सम्भवतः यह भी खयाल रहा होगा कि स्वामीकी आज्ञा बिना ही प्रसङ्गवश लङ्का-दहन और राक्षस-वध करना पड़ा, इसके लिये कहीं प्रभु अप्रसन्न तो नहीं होंगे? तदनन्तर आपकी सारी कहानी भगवान्‌को जाम्बवन्तने सुनायी। इतना महान् कार्य करके भी हनूमान्‌जीके हृदयमें अभिमानका अङ्कुर न जमा। अभिमानका अत्यन्त अभाव होनेके कारण ही आप अपना बल भूले रहते थे। इससे शिक्षा मिलती है कि बड़ेसे बड़ा कार्य करके भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्रीहनूमान्‌जीने यह सत्य सिद्धान्त बतला दिया—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई॥

'सारी सिद्धियाँ केवल प्रभु-कृपासे ही प्राप्त होती हैं।' साधकके लिये यह अत्यन्त शिक्षाप्रद विषय है। श्रीहनूमान्‌जी की नम्रताका वर्णन प्रसंगवश गोस्वामीजीने रावण-अङ्गद-संवादके प्रकरणमें किया है। जब रावण श्रीरघुनाथजीकी सेनामें सबके बलकी निन्दा तथा श्रीहनूमान्‌जीकी प्रशंसा करता है, तब अङ्गदजी वस्तुस्थितिको प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

अब जानेउ पुर दहेउ कपि, बिनु प्रभु-आयसु पाइ।
पुनि न गयेउ निज नाथ पहँ, तेहि भय रहेउ लुकाय॥

तथा—

रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥

'हे रावण! अब मुझे यह रहस्य मालूम हुआ, बिना प्रभुकी आज्ञा लिये उस वानरने लङ्का-दहन किया तभी तो

---

*श्रीमाताजी सरकारको सदा 'करुणानिधान' शब्दसे सम्बोधन करती थीं, हनूमान्‌को इस मर्मका ज्ञाता जानकर ही विश्वास किया।

वह भगवान्‌के सामने नहीं गया, भयके मारे छिप रहा। अथवा तुम्हारी बात ही सच्ची नहीं है। भला, वह नन्हा-सा सीधा सादा वानर क्या इतने विशाल नगरको जला सकता है ?' अङ्गदजीके इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनूमान्‌जीकी अत्यन्त नम्रता, निरभिमानताके कारण अङ्गदने भी उनको इतना काम करनेवाला नहीं समझा था। कोई समझता भी कैसे ? श्रीहनूमान्‌जी तो अपने मुँहसे अपनी बड़ाईकी कोई बात कभी कहते ही नहीं थे, वे तो चुपचाप सेवामें लगे रहते थे। वे कपि-समाजके गर्जन-तर्जनमें कभी भाग नहीं लेते थे।

गोस्वामीजीने इनकी वन्दना 'महाबीर बिनवौं हनुमाना' 'बन्दौं पवनकुमार' इत्यादि बड़े ही अच्छे शब्दोंमें की है, और इनका ऐसा स्वभाव देखकर इनके विनयानुसन्धानकी स्पष्टताके लिये एक जगह तो इनके नामके 'मान्' शब्दको हटा ही देना अच्छा समझा है। जिसने जीवन भर 'मान' की उपेक्षा की, उसके नामके अन्तर्गत 'मान'का रहना गोस्वामीजीको कैसे नहीं खटकता ?

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपालु कहि कपि चले अंगद 'हनू' समेत ॥

कैसा अच्छा प्रसङ्ग है। विभीषणजी रावणसे विमुख हो भगवान्‌की शरणमें आ रहे हैं, उन्हें लिवा लानेके लिये कपिसमाज आता है। सन्त मिलनका शुभ अवसर है। ऐसे अवसरपर श्रीमारुतिजी 'मान्' लेकर क्या करते ? यही कारण है कि श्रीतुलसीदासजीने 'हनु' मात्रका प्रयोग कर स्वाभाविक वर्णनकी पराकाष्ठा दिखला दी।

इसी नम्रताके कारण हनूमान्‌जी भक्ति और शक्तिके समान अधिकारी हुए, जिसके कारण अन्तमें श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे भी ये उद्गार निकल पड़े--

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

इतना ही नहीं, श्रीहनूमान्‌जीने, शक्ति प्रकरणसे श्रीलक्ष्मणजीको, विजय-सन्देशसे श्रीजानकीजीको, और अवध आगमन-सन्देशसे श्रीभरतजीको तथा समस्त अयोध्याको ऋणी बना लिया। यही कारण है कि श्रीरामपञ्चायतनमें आपको भी स्थान प्राप्त है।

भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुत-सुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निजमुख गाई॥

भगवान् स्वयं ऐसे भक्तका गुणानुवाद अपने श्रीमुखसे करते हैं*। आपका जीवन सेवा और पुरुषार्थका नमूना है और इससे हमें यह अन्यतम शिक्षा प्राप्त होती है कि भगवान्‌की सेवाके साथ साथ पुरुषार्थ करनेसे भगवान्‌की कृपादृष्टि होती है और जीवन सफल हो जाता है।

बन्दौं पवनकुमार, खल-बन पावक ग्यान-घन।
जासु हृदय-आगार बसहिं राम सर-चापधर॥

धन्य हनूमान् तुमको और तुम्हारे लोकपावन चरित्रको !

---

* वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामने हनूमान्‌जीसे कहा है—

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति यावत्स्थास्यति मे कथा॥
एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे !
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥
(वा०रा० ७। ४१। २१ से २४)

'हे हनूमान् ! इस लोकमें जबतक मेरी कथा रहेगी तबतक तेरी कीर्ति और तेरा जीवन रहेगा। और जबतक जगत् रहेगा तबतक मेरी कथा रहेगी। हे वानर, तूने मुझपर बड़े बड़े उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी तेरा बदला नहीं चुका सकता, फिर शेष उपकारोंके लिये तो तेरा ऋण कैसे चुका सकता हूँ ? तेरे उपकार मेरे ही शरीरमें जीर्ण हो जायँ, ऐसा अवसर ही न आवे जब तुझे उपकारोंका बदला पाने योग्य पात्र बनना पड़े। क्योंकि जब मनुष्यपर विपत्ति आती है तभी वह प्रत्युपकारका पात्र होता है, अतएव तुझपर कभी आपत्ति ही न आवे।' इन वचनोंसे पता लगता है कि श्रीहनूमान्‌जी भगवान्‌को कितने प्यारे थे !—सम्पादक।

बिराध-वध ।

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥

जयन्तकी दुष्टता ।

सीता चरन चोंच हति भागा । मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥

कपट-मृग ।

'प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि राम समेत सनेहा ।

सीता-हरण ।

क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ ।
चला गगनपथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ ॥

विभीषण

(लेखक—श्रीरघुनाथप्रसादसिंहजी)

सांसारिक, राजनीतिक,पारिवारिक दृष्टिसे विभीषणका चरित्र निन्दनीय कहा जानेपर भी आध्यात्मिक विचारकी दृष्टिसे विभीषण एक उच्च कोटिके जीव हैं, क्योंकि संसारमें जन्म धारण करनेका फल उन्हें पूरा मिल गया। अपने जीवनको उन्होंने पूर्णतया सार्थक किया। श्रीमुखके वचन हैं कि साधन-धाम, मोक्षका द्वार नरदेह बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। इसे पाकर जो परलोक नहीं सँवार सकता, वह—

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय॥

विभीषणने विषयोंमें मन न लगाकर भवसागरसे पार होनेका यत्न किया। 'सकल सुख खानि' स्वतन्त्र भगवद्भक्तिका अवलम्बन कर इसलोक एवं परलोकमें यथेष्ट सुख प्राप्त किया।

विभीषणजीका झुकाव तो भगवान्‌की ओर पहलेसे ही था, वह भगवत्-प्राप्तिके लिये उत्सुक जरूर थे किन्तु बिना सन्त-कृपाके सच्ची भक्ति प्राप्त हो नहीं सकती, भक्तिके रहस्यका भेद मिल नहीं सकता। पर सन्त-समागम भी तो बिना पुण्य-पुंज नहीं होता।

'पुन्य-पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता। सत-संगति संसृति कर अन्ता॥

विभीषणका पुण्य पूरा था। खलमण्डलीमें रहनेपर भी वह अपना धर्म निबाहते थे। तभी तो निशिचरनाथ रावणकी राजधानीमें भी हरि मन्दिरमें राम-रामका सुमिरन करते हुए यह सज्जनवत् निवास करते थे। इन्हींके भाग्यसे श्रीहनूमान्‌जी लंकामें गये।

प्रभुके लिये इनकी उत्कण्ठा उत्सुकतातो इसीसे जाहिर होती है कि यह विप्ररूपमें हनूमान्‌जीका वचन सुनते ही उठे और पूछने लगे कि 'आप हरि हैं कि हरिदास? क्योंकि आपको देखते ही मुझे प्रतीति होती है कि मैं जिसकी आशामें बैठा हूँ वह आप ही हैं।'

भक्त-सुलभ नम्रता, दीनता और सन्तोंमें स्नेह आदि तो इनमें थे ही। जिस बातकी कमी थी उसकी पूर्ति भी श्रीहनूमान्‌जीके दर्शन और उपदेशसे हो गयी। मारुतनन्दन एक आदर्श भक्त थे। इनकी दीक्षाके बाद आत्मविकास होनेमें आश्चर्य ही क्या है?

पहले तो वह रावणके मंत्री, उसके दरबारी, उसकी प्रजा और उसके बन्धु होने और सांसारिक वासनाओंके हृदयमें रहनेके कारण दबते थे, संकोच करते थे, पर जब हृदय-सरोवरमें वैराग्य-सलिल भर गया, मनपर अनुरागका अनोखा रंग चढ़ गया तब फिर धर्म छोड़कर अधर्मकी ओर जाना आपके लिये सर्वथा कठिन हो गया। जिस रावणके भयसे उसके सम्मुख होते भी संकोच करते थे, अवसर पाकर उसीको सदुपदेश देनेके कारण आपने उसका पाद-प्रहार सहन किया। अब क्या था, इस विस्तृत संसारमें इन्हें अपने ठहरनेका कोई ठौर नहीं दीख पड़ा!

यह तो नियम ही है कि जब मनुष्यका सब बल टूट जाता है, सारे सहारे छूट जाते हैं, दुनियासे प्रताड़ित और पीड़ित होने लगता है तब उसे भगवान् सूझते हैं। श्रीसूरदासजीने इसीलिये 'निरबलके बल राम' गाया है।

लंकासे विभीषण अर्थी होकर चले। पुण्य-पुंजने जोर दिया। मन निश्चल हो गया। भगवान् श्रीरामचन्द्रके शिविरमें पहुँचे। युद्ध-नीतिके अनुसार दूतोंने राक्षस जान इन्हें पकड़ लिया, सेनापतिके पास वह लाये गये। प्रभुको संवाद दिया गया। दुःखी होकर संसारमें कहीं ठहरनेका ठौर न पाकर विभीषण आया है, प्रभुने सहजमें ही इस बातको जान लिया। वास्तवमें, उस समय बलशाली रावणके वैरीको अपने पास रखने और रावणके क्रोधानलसे उसको बचानेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। इसीलिये विभीषणने श्रीरामका आश्रय ग्रहण करना चाहा क्योंकि इस समय तक संसारमें यह राष्ट्र हो गया था कि दशरथ-तनय श्रीराम भगवान्‌के अवतार हैं। अतएव राहमें विभीषण मन-ही-मन सोचता आता था—

देखिहौं जाइ चरण-जल-जाता। अरुन-मृदुल सेवक सुख-दाता॥
जे पद परसि तरी रिषि-नारी। दंडक-कानन-पावन कारी॥
जे पद जनक-सुता उर लाये। कपट-कुरंग-संग धरि-धाये॥
हर-उर-सर सरोज पद जेई। अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

प्रभुने जान लिया कि विभीषण शरण आया है। शरणागतकी रक्षाका प्रण सरकार कभी भूलते नहीं। विभीषण बुलाया जाता है और प्रभुके दर्शन मात्रसे वह पवित्र हो जाता है। वह किसी भी बातको नहीं छिपाता। निष्कपट भावसे कहता है कि, 'मैं तो आपके समीप आने योग्य पात्र नहीं हूँ क्योंकि आप सुर-त्राता हैं और मेरा जन्म 'निशिचर वंश' में है, तिस पर आपके प्रबल शत्रु रावणका मैं भाई हूँ। किन्तु बात यह है कि—

श्रवन सुजसु सुनि आयेउँ, प्रभु भंजन भव-भीर,
त्राहि! त्राहि! आरति-हरन,सरन-सुखद रघुबीर॥,

यही प्रभुका मन्तव्य है कि—

सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि॥

कोटि बिप्र-बध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवन्त कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई॥
निरमल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा

प्रभुकी प्रतिज्ञा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

श्रीभगवान्‌के इस रहस्यको विभीषण श्रीहनूमान्‌जीसे सुन चुका था और उसीके बलपर वह आया था। प्रभुने अपने प्रणको रक्खा, उसकी शरणागति स्वीकृत हुई।

वहाँ लंकाका राज्य मिला, वहाँ परमपदकी प्राप्ति हुई। विभीषणके दोनों लोक बन गये। इसीसे कहा जाता है कि शरणमें आजानेसे पर प्रभु पात्रापात्रका विचार नहीं करते। शरणागत जीवको वह अवश्यही अपनाते हैं। आत्म-समर्पण कर अपनेको अपने इष्टकामय प्रेमदेवकी इच्छा पर छोड़कर 'मैंपन' की सर्वथा आहुति दे देनेका नामही शरणागति है। प्रभुके अतिरिक्त और किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं, प्रभुको जो भावे, वही किया जाय, और उन्हींकी इच्छाको अपनी इच्छा समझा जाय यही शरणागति है। यही भक्तिका रहस्य है।

रावणके जीवनसे शिक्षा

(लेखक—पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक)

जड़ चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार॥

इस उक्तिके अनुसार ब्रह्माकी सृष्टिमें मायाकी भाँति गुण और दोष, पूर्ण रूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः किसी वस्तुको सर्वथा सदोष अथवा निर्दोष कहना बहुत कठिन है किन्तु फिर भी करुणाकर प्रभुने सांसारिक मनुष्यों-के हृदयमें, इस विडम्बनामय संसारके अवगुणोंसे बचकर अमर सुख प्राप्त करनेके निमित्त, विवेकरूपी मणिको प्रदीप्त कर महान् कल्याण किया है। इसी विवेकके द्वारा मानव समाज ऐहिक और पारलौकिक सुखोंका भोग कर परमधाम प्राप्त करनेके योग्य बन जाता है। जिस मनुष्यकी विवेकरूपी मणि विषय-वासनाओंके मोहमय अन्धकारसे प्रभाहीन हो जाती है, वह नाना प्रकारके कष्टोंका लक्ष्य बन जाता है। उसके हृदयसे भले-बुरेकी पहिचान करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और वह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य-भक्षी बन जाता है। यह बात उतनी ही सत्य है जितना कि दो और दो चार अथवा दिनके बाद रातका होना है। हिन्दू-संस्कृति और सभ्यताके इतिहासमें इस विषयके समर्थनमें प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते हैं। महाभारत तथा रामायणादि इतिहास-ग्रन्थोंमें विवेक-भ्रष्ट राजाओंकी दुर्दशा तथा पतनका ऐसा विशद वर्णन मिलता है कि जिसे पढ़कर आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती। उन्हीं अविवेकी राजाओंमें पुलस्त्य-कुल-सम्भूत राक्षस-राज रावण भी था, जिसने उग्र तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न कर देव एवं दानव दोनों ही से तुच्छ भाड़ देनेतककी सेवा करवायी थी, जिसने अपने प्रचंड भुजदंडोंके प्रबल प्रतापसे कालाग्नि, इन्द्र और वरुणको भी अपना क्रीत-दास बना रक्खा था, जिसने अपने जीवनमें पराजयका कभी दर्शन तक नहीं किया था, जिसकी स्वर्णमयी लंकाको देखकर अमरेन्द्र भी लज्जित हो जाता था, जिसके अन्तःपुरमें असंख्य चन्द्रमुखियाँ अपनी मुखचन्द्रिकाकी उज्ज्वल ज्योत्स्ना सदा सर्वदा छिटकाया करती थीं, जिसकी सेना अक्षय, मेघनाद और कुम्भकर्णके समान अद्वितीय बलवान् योद्धाओंसे पूर्ण थी, तथा जो स्वयं भी प्रकाण्ड विद्वान्, प्रबल पराक्रमी, अद्वितीय राजनीतिज्ञ तथा महान् ऐश्वर्य-

शाली था, ऐसे राक्षस-राज रावणका भी हृदयकी विवेकमणि पर अहंकार और अविवेकका पर्दा पड़ जानेसे पतन होते कुछ भी देर न लगी। विषयोपभोग और मद्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थोंके निरन्तर सेवनसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अतएव उसने प्रभुको विस्मृत कर कामिनी और कांचनको ही संसारका सर्वोत्कृष्ट पदार्थ समझा, सुन्दरी नारियोंके अपहरणका घृणित कार्य उसके राज्यमें एक साधारण-सी बात समझी जाने लगी। अनेक कुल-कामिनियोंको उसकी अप्रतिहत काम-वासनाकी तृप्तिके लिये विवश हो अपना सतीत्व नष्ट कर देना पड़ा। इस जघन्य व्यापारका व्यय प्रजापर बड़े बड़े कर लगाकर निकाला जाने लगा। करका बोझ इतना बढ़ गया कि जिनके पास खाने तकके लिये भी पैसे न थे, उन्हें अपना रक्त करके रूपमें देनेके लिये विवश होना पड़ा। ऐसा घोर अनाचार अधिक दिनोंतक भक्त-वत्सल भगवान्से सहा नहीं जाता। जब रावणके पापका घड़ा लबालब भर गया, तब उस कररूप रुधिरकसे जनक-नन्दिनी महारानी सीताने जन्म ग्रहण किया। समय पाकर जगज्जननीकी सौन्दर्यकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। रावण तो कामिनी कांचनका दास था ही, उसने भी जनकनन्दिनीको प्राप्त करनेकी चेष्टा की, पर सफल न हो सका। क्योंकि उस समयतक उसके पापका घड़ा एकदम भरा न था, जब उसका समय सन्निकट आगया तब उसने जानकीको चुरा कर, परिणामस्वरूप स्वर्णमयी लंकाके साथ अपनेको भी नष्ट कर डाला। अतएव रावणके चरित्रसे हमें जो शिक्षा मिलती है, वह बड़ी गम्भीर तथा मननीय है। रावण सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् नृपति था किन्तु कुसंग और अभिमानसे उसका सदाचार तथा विवेक नष्ट हो गया था। विवेकभ्रष्ट मनुष्योंका शतधा पतन होता है, अतएव उसका भी सर्वनाश हो गया।

इससे यह सीखना चाहिये कि सदाचार, विनय, धर्मपरायणता, ईश्वरमें श्रद्धा आदि गुणोंसे ही मनुष्यका अभ्युदय और परम कल्याण होता है, इसके विपरीत ऊँचेसे ऊँचे पद, ऐश्वर्य और बलको प्राप्त करनेपर भी सदाचारविहीन मनुष्यका अन्तमें सर्वनाश हो जाता है। इसलिये यमयद और दुश्चरित्रताको छोड़कर सदैव ही धर्मपालनमें ही तत्पर रहना चाहिये।*

---

* सुमाली राक्षसकी कन्या कैकसीके गर्भ और पुलस्त्य-पुत्र मुनिवर विश्रवाके औरससे रावणका जन्म हुआ था। पिताकी आज्ञानुसार कैकसी विवाहार्थ मुनि विश्रवाके पास गयी थी। मुनिने उसके मनकी बात जानकर उससे कहा कि 'तू पुत्रेच्छासे मेरे पास आयी है, तेरे पुत्र होंगे परन्तु तू प्रदोषके समय आयी इससे तेरे दारुण स्वभाव, दारुण स्वरूप और दारुण संगवाले क्रूर-कर्मा राक्षस पुत्र होंगे। कैकसीने डरकर कहा कि 'भगवन् ! मैं आपके सदृश ब्रह्मवादीके औरससे ऐसे निष्ठुर पुत्र नहीं चाहती, कृपा कीजिये।' इसपर मुनिने प्रसन्न होकर कहा कि 'हे शोभने ! तेरे सबसे छोटा पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा।' इसी कैकसीके रावण, कुम्भकरण और विभीषण नामक तीन पुत्र, और विभीषणसे बड़ी शूर्पणखा नामक एक कन्या हुई। रावण और कुम्भकरणने महातप करके ब्रह्माजीसे मनुष्यादि प्राणियोंके सिवा पक्षी, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देव आदि किसीके हाथसे न मरने, तथा इच्छानुसार मनमाना स्वरूप धारण कर सकनेका वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर बलगर्वित रावणने देव-दानव सबको जीत लिया। इसके उपद्रवों और अत्याचारोंसे पीड़िता होकर अनेक सती देवियोंने इसको भीषण शाप दिये थे। रावणने अपने सौतेले भाई कुबेरको लङ्कासे निकालकर उसपर अधिकार कर लिया था।

कहा जाता है कि रावण परम विद्वान्, बुद्धिमान, बली और चतुर था। वैदिक अनुष्ठान करता था और वेदोंपर उसने भाष्य भी रचे थे। भगवान्के प्रति भी मन-ही-मन बड़ी भक्ति करता था। इसीलिये श्रीगुसाँईजीने, खरदूषणके मरनेपर सीताहरणका निश्चय करनेके पूर्व रावणके मनमें कैसे विचार आये थे और उसने किस उद्देश्यसे सीता-हरणका निश्चय किया था, इस बातको निम्नलिखित चौपाइयोंमें बड़ी खूबीसे व्यक्त किया है—

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं ॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारै बिनु भगवंता ॥
सुर-रंजन भंजन महि मारा। जौं जगदीस लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ बैर हठि करउँ। प्रभु-सर प्रान तजे भव तरउँ ॥
होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा ॥

—सम्पादक

गीधराज जटायुकी अलौकिक भक्ति

(लेखक—ब्यौहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)

यद्यपि गुसाईंजीने श्रीभरत, हनूमान् आदि अनेक भक्तोंके प्रेमका वर्णन किया है किन्तु गीधकी प्रीति रामायणमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है गीध रावणसे लड़कर घायल होता है—

फिरत न बारहिं बार पचारयो ।
चपरि चोंच चंगुल हय हति रथ,
खंड-खंड करि डारयो ॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय,
घन घायनि अकुलान्यौ ।
तब असि काढ़ि काटि पर पाँवर
लै प्रभु-प्रिया परान्यौ ॥
राम-काज खगराज आजु लरयो
जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत
धन्य बिहँग बड़भागी ॥

वह सीताको न छुड़ा सकनेके कारण पश्चात्ताप कर रहा है, इतनेमें ही श्रीराम-लक्ष्मण वहाँ पहुँच जाते हैं—

मेरे पकौ हाथ न लागी ।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों
कलप-लता दव दागी ॥
दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यौ
हुतो जो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निसाचरपति सों
हठि न जानकी राखी ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके
तापस बेष बनाए ।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु
सिय-सुधि प्रभुहिं सुनाए ॥
बारबार कर मींजि, सीस धुनि
गीधराज पछिताई ।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर
आइ गए दोउ भाई ॥

श्रीरामजी भी गीधराजकी यह दशा देखकर उसे गोदमें लेकर विलाप करने लगते हैं:—

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नैन-सरोज सनेह-सलिल सुचि
मनहुँ अरघ-जल दीन्हों ।

श्रीराम कहते हैं कि मैं गीधराजके मिलनेसे पिताकी मृत्युके दुःखको भूल-सा गया था किन्तु विधाताको मेरा यह सुख भी नहीं सुहाया ।

सुनहु लखन ! खग-पतिहिं मिले बन
मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता
बड़ो पछु आजहुँ भान्यौ ।

श्रीराम गीधके प्रेमको देखकर 'सीता-वियोग'को भी भूल जाते हैं और कुछ दिन जीवन-धारण करनेके लिये उससे बड़ा आग्रह करते हैं—

मेरे जान तात कछू दिन जीजै ।
देखिय आपु सुवन-सेवा-सुख
मोहिं पितुको सुख दीजै ।
दिव्य-देह, इच्छा-जीवन जग
बिधि मनाइ मँगि लीजै ॥

यहाँ श्रीरामजीने गीधराजको अपने पिताका पद प्रदान किया जो दूसरे किसीको नहीं दिया जा सकता । उसे दिव्य देह, इच्छा-मरण आदि सभीकुछ देनेका वचन दिया, यहाँतक कह दिया कि 'अपने लिये नहीं तो संसारको कृतार्थ करनेके लिये जीवन धारण कीजिये' किन्तु गीधने इनमेंसे कोईसा प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया । उसने सोचा कि रामकी गोदमें मरनेके समान सुख और परमपदका साधन और क्या हो सकता है ? इस मृत्युके सामने उसने चारों फलोंको तुच्छ समझा ।

बोल्यो बिहँग बिहँसि 'रघुबर बलि
कहौं सुभाव पतीजै ।
मेरे मरिबे सम न चारि फल
होहिं तौ क्यों न कहीजै ?'

उसने कहा 'राम'

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमहुँ मुकुति होइ श्रुति गावा ॥
सो मन लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि लागे ॥

मृत्यु-समय जिसका नाम भी दुर्लभ हो जाता है स्वयं उसकी उपस्थितिमें, उसीके वचन सुनते हुए, उसीका नाम लेते हुए तथा उसीका रूप सतत आँखोंसे देखते हुए, और उसीकी गोदमें सिर रखकर शरीर छोड़नेके समान अन्य क्या सौभाग्य हो सकता है ?

नीके कै जानत राम हियो हौ।
प्रनतपाल, सेवक-कृपाल-चित
पितु पटतरहिं दियौ हौं।
त्रिजग जोनि-गत गीध जनमभरि
खाइ कुजंतु जियो हौं॥
महाराज सुकृती-समाज सब-
ऊपर आज कियो हौं।
स्रवन वचन,मुख नाम,रूप-चख
राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी
को कहि सकै बियो हौं॥

गीधराजने कहा 'इस नश्वर शरीरके दीर्घजीवन या इच्छा-मरणकी आशामें पड़कर मैं इस दुर्लभ अवसरको नहीं छोड़ सकता। मौत तो बहुत मिलेगी पर उस समय तुम कहाँ मिलोगे ?

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि
समय न धोखो खैहौं।
जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ
तुम्हहिं कहाँ पुनि पैहौं ?॥
(प० १३)

कितनी ऊँची भावना है ! गुसाँईजीने अपनी प्रतिभासे इस प्रसंगको बहुत ही ऊँचा बना दिया है।

दोहावलीमें भी गुसाईंजीने बड़े अच्छे शब्दोंमें गीधके स्वर्गीय प्रेम और दुर्लभ मृत्युकी प्रशंसा की है—

बिरत, करमगत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अरु नीच।
तुलसी सकल सिहात सुनि, गीधराजकी मीच॥

उन्होंने यहाँतक कह दिया है कि गीधराजके समान मृत्यु संसारमें किसीको भी नहीं प्राप्त हो सकी।

मुए, मरत, मरिहैं सकल, घरी-पहरके बीच।
लही न काहू आज लौं गीधराजकी मीच॥
मुए मुकुत, जीवन मुकत, मुकुत मुकुत हू बीच।
तुलसी सबही ते अधिक गीधराजकी मीच॥
(दोहा० २२४-२२५)

सचमुच यदि ध्यानपूर्वक विचारा जाय तो मालूम होगा कि आजतक किसी भी भक्तको ऐसी मौत नसीब नहीं हुई। आजीवन परम भक्तिमय जीवन बिताकर मरनेवाले हुए हैं, रामकाजमें ही शरीरका बलिदान देनेवाले हुए हैं, जन्मभर पाप करके अन्तमें 'राम-नाम' से मुक्त होनेवाले हुए हैं, किन्तु इसप्रकार रामके काजमें, रामका दर्शन करते हुए, रामके वचन सुनते हुए और रामकी ही गोदमें लेटे हुए प्राण त्यागनेवाला तो बड़भागी गीधके अतिरिक्त और कोई नहीं हुआ।

फिर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी तो 'निजकर कीन्हीं राम'। **ऐसा सौभाग्य तो दशरथको भी नहीं बदा था।**

गुसाईंजीने जिस मृत्युकी कामना की थी, वह है:—

समर मरन, पुनि सुरसरि तीरा। रामकाज छनभंगु सरीरा॥
परहित लागि तजै जे देही। संतत संत प्रसंसत तेही॥'

इनमेंसे एक 'सुरसरि-तीर' को छोड़कर गीधको शेष सभी बातें मिलीं। परन्तु सुरसरिके बदलेमें वे पावन चरण मिल गये, जिनसे सुरसरीजी प्रकट हुई थी।

गुसाईंजीने विनय-पत्रिका, मानस आदि ग्रन्थोंमें स्थान स्थानपर रामजीकी इस बातके लिये बड़ी प्रशंसा की है कि उन्होंने गीध, शबरी आदि नीच पतित और अधमोंको तार दिया।

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जेहि जाँचत जोगी॥

पर विचारनेकी बात यह है कि क्या सचमुच गीध अधम था ? अवश्य ही भक्तोंके लिये तो यही उचित है कि वे अपनी मुक्तिमें राम-कृपाको ही कारण मानें और अपनी करनीको सर्वदा तुच्छ समझें। हनूमान्‌जीको तो यही कहना शोभा देता है कि—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई॥

किन्तु भगवान् उनकी करनीको अच्छी तरह समझते हैं और यहाँतक कहते हैं कि—

'प्रतिउपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥'

यहाँ भी श्रीरामजी स्वयं गीधराजसे कहते हैं कि 'तुम्हारी मुक्तिका कारण मेरी कृपा नहीं है, इसमें कारण है निःस्वार्थ परोपकारमें तुम्हारा सुखसे प्राणत्याग कर देना।

जल भरि नयन कहत रघुराई। तात करम निज तें गति पाई॥
परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ जग दुरलभ कछु नाहीं॥

महाराज रघुराजसिंहजीने तो रामकृपा और अपनी करनी दोनों ही को मिला दिया है:—

कछुक दूर आगे चलि रघुपति बिकल बिहंग निहारयो।
कृपानिधान जटायु अंग-रज निज जटानसों झारयो॥
प्रभु-पद परसि गीध तनु त्याग्यो, निज हाथनि करि करनी।
गीधराज कहँ दई राम गति वेद-पुराननि बरनी॥

भक्तोंको अपनी करनीको भी तो प्रभु-कृपाका ही फल मानना चाहिये!

भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया)

प्रजावत्सल श्रीराम

कौसल-पुर-बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागही सब कहँ राम कृपाल॥
उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनायक जहँ भूप॥

जगत्में अनेक राजा हो चुके हैं और होंगे पर रघुकुलभूषण अवधेश श्रीरामके समान न कोई हुआ, न होगा। आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है तो सर्वोच्च प्रशंसामें वह यही कहता है कि यहाँ तो 'रामराज्य' है। इससे सिद्ध है श्रीरामका राज्यशासन ही आदर्श था। वास्तवमें यदि कोई सब इतिहासोंका तुलनात्मक अध्ययन करे तो उसे यही कहना होगा कि श्रीरामराज्यके सदृश सुशासन और किसीके भी राज्यकालमें नहीं हुआ। रामराज्यकी इतनी प्रशंसा क्यों है? इस बातको यदि कोई जानना चाहते हों तो देखिये—एक समय दशरथ महाराजके हृदयमें यह इच्छा हुई कि मैं वृद्ध हो गया हूँ, श्रीराम राज्यके सर्वथा योग्य हैं इनको युवराज पदपर अभिषिक्त किया जाय। अपने इस मनोरथको महाराजने सभामें सबको सुनाया और सभीने सुनकर अति हर्ष प्रकट किया एवं सभी महाराज दशरथसे अनुरोध करने लगे कि श्रीरामको शीघ्र ही युवराज-पद दिया जाना चाहिये। इस समय राजा दशरथ प्रजाका भाव जाननेके उद्देश्यसे अवधवासी प्रजा तथा अन्यान्य राजाओंसे प्रश्न करते हैं—

'आप लोग मेरे कहनेसे ही श्रीरामको क्यों राजा बनाना चाहते हैं? जब मैं धर्मानुसार राज्यशासन कर रहा हूँ तब आपलोग श्रीरामको क्यों राजा देखना चाहते हैं? मुझे सन्देह हो रहा है, इसे आप दूर कीजिये।' उत्तरमें लोगोंने कहा 'हे राजन्! आपके पुत्र श्रीराममें अनन्त गुण हैं, उन गुणोंके कारण ही हम सबलोग उनपर मुग्ध हैं और इसीलिये हम श्रीरामको अपना राजा देखना चाहते हैं—

'श्रीराम सत्य व्यवहारके कारण सत्-पुरुष कहलाते हैं। शोभा-धर्म श्रीरामसे ही है, श्रीरामके बिना सभी अशोभन है। जिस प्रकार चन्द्रमा सब प्राणियोंको आनन्द देनेवाला है उसी प्रकार श्रीराम सब प्रजाको आनन्द देनेवाले हैं। क्षमामें श्रीराम पृथ्वीके समान हैं। बुद्धिमें श्रीराम बृहस्पतिके समान हैं। वीर्यमें श्रीराम साक्षात् इन्द्रके समान हैं। श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और शीलवान् हैं। श्रीराम किसीकी निन्दा नहीं करते। श्रीराम सब प्राणियोंसे सत्य और प्रिय बोलनेवाले हैं। श्रीराम समझानेवाले, चतुर, कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। श्रीराम बहुश्रुत, वृद्ध-ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले हैं। श्रीराम, देवता मनुष्य और असुरोंके सब अस्त्रोंमें निपुण हैं। श्रीरामने समस्त विद्याओंको नियमित ब्रह्मचर्यके साथ अध्ययन करके व्रत-स्नान किया है। श्रीराम वेदोंको अंग और उपांगों सहित अच्छी प्रकार जाननेवाले हैं। श्रीराम गन्धर्व-शास्त्रोंके जाननेवाले हैं श्रीराम कल्याणके आश्रय हैं। श्रीराम परम विनयी हैं।

श्रीराम संग्राममें जाकर बिना विजय पाये नहीं लौटते। श्रीराम संग्रामसे लौटकर सब पुरवासियोंसे अपने परिवार-के लोगोंके समान, पुत्र, स्त्री, शिष्य, भृत्य और अग्निहोत्री आदिका कुशल समाचार पूछते हैं। श्रीराम ब्राह्मणोंसे पूछते रहते हैं कि आपके छात्र-शिष्य आपकी सेवा तो करते हैं? श्रीराम जब किसीपर आपत्ति देखते हैं तो दुखी होते हैं और उसको दूर करते हैं। श्रीराम वृद्धोंकी सेवा करनेवाले हैं। श्रीराम सत्यवादी वीरोंकी उन्नति देखकर पिताके समान प्रसन्न होते हैं। श्रीराम धर्मका पालन करनेवाले हैं। श्रीराम मुसकराकर बोलनेवाले हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं। श्रीरामकी किसीके साथ लड़ाई-झगड़ा करने-की रुचि नहीं होती। श्रीराम किसी भी विषयमें आसक्त नहीं हैं। श्रीराम व्यर्थ क्रोध या हर्ष नहीं दिखाते। श्रीराम थोड़े भी उपकारसे प्रसन्न हो जाते हैं और अनेक अपकार करनेपर भी किसीसे द्वेष नहीं करते और श्रीराम प्रमाद-विहीन आलस्यशून्य हैं।'

ऐसे सत्यपराक्रमी लोकपालके सदृश महान् गुणी श्रीरामको समग्र पृथ्वी अपना स्वामी बनाना चाहती है।

वास्तवमें रामराज्यमें प्रजाको जितना सुख था, उतना सुख और किसीके राज्यमें नहीं हुआ। निःसन्देह यह अति सौभाग्यकी बात हो यदि श्रीरघुनाथजी-जैसे राजाकी प्राप्ति हो। श्रीरामके बाल्यावस्थाके ही स्वाभाविक गुणोंसे प्रजा अत्यन्त मुग्ध थी, राज्याभिषेकके पूर्वसे ही बालक श्रीरामने अवधवासियोंके मनको चुरा लिया था। गोस्वामी-जी महाराज दिखाते हैं—

> अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता आग्या अनुसरहीं॥
> जेहि बिधि सुखी होहिं पुर-लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥

महाराज दशरथके मुखसे राम-राज्याभिषेककी बात सुनकर प्रजाके हर्षका पार नहीं रहा।

> राम-राज अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर-नारि।
> लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि॥

इधर श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं उधर प्रभुकी इच्छा कुछ और ही थी और हुआ भी वही। अवधके राज्य-शासनके स्थानमें वनका शासन और रक्षण श्रीरामको मिला। श्रीरामकी वनयात्राके समय प्रजाकी व्याकुलता देखिये—

> सजि बन-साज-समाज सब, बनिता बन्धु समेत।
> बन्दि बिप्र-गुरु-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत॥
> चढ़ि रथ सीय-सहित दोउ भाई। चले हरषि अवधहिं सिर नाई॥
> चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
> कृपासिन्धु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥
> सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
> सबहिं बिचार कीन्ह मनमाहीं। राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं॥
> जहाँ राम तहँ सब सुख-साजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
> बालक बृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ॥
> तमसा-तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरघुवंशभूषणके साथ वन गमनके लिये तैयार हो गयी। पर अपनी प्रजाको सुख देनेवाले प्रजावत्सल राम सोचते हैं कि वनमें प्रजाको अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे, वहाँ अवधके समान आराम नहीं है, अतः आप प्रजाको अनेक प्रकारसे समझाते हैं—

> रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुख भयेउ बिसेखी॥
> कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥
> किये धरम-उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥

अब इसप्रकार बहुत समझानेपर भी अवधवासी प्रजा श्रीरामका संग नहीं छोड़ती, तब श्रीरामको बाध्य होकर रात्रिके समय प्रजाको सोई हुई छोड़कर वन-गमन करना पड़ता है।

तदनन्तर जब श्रीभरतजी श्रीरामसे मिलनेको जानेकी इच्छा प्रकट करते हैं। उस समय पुरवासियोंके आनन्द और उत्साहको देखिये—

> भरत बचन सबकहँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे॥
> अवसि चलिअ बन रामपहँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
> सोक-सिन्धु बूड़त सबहिं तुम अवलम्बन दीन्ह॥
> कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
> जेहि राखहिं घर रहु रखवारी। सो जानै जनु गरदनि मारी॥
> कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू। को न चहै जग जीवन-लाहू॥
> नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरामसे मिलनेको व्याकुल होकर चित्रकूट जाती है और वहाँ प्रभुके दर्शन करती है।

जब रघुनाथजीके वनवासकी अवधि समाप्त हो गयी है और वे अवध लौटकर आते हैं, उस कालमें प्रजाकी उत्सुकता देखिये—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि-नर कृस-तनु रामबियोग ॥

समाचार पुरबासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि उठि धाये ॥
जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कोउ संग न लावहिं ॥
एक एकसन बूझहिं धाई। तुम देखे दयालु रघुराई ॥

श्रीराम इसप्रकार लोगोंके हृदयके आकर्षणके हेतु अवधनगरीमें पधारते हैं। श्रीरामका वनसे लौटकर अयोध्यामें आना राज्यके लिये नहीं था, वह था—प्यारे भाई भरतके लिये और अवधवासी प्रजाके प्रेमके लिये। और फिर उनकी तीव्र प्रीतिके कारण ही आप राजसिंहासनपर बैठे थे।

दयालु श्रीरामका स्वभाव था कि वे दूसरेके दुःखको सहन नहीं कर सकते थे और इसी स्वभाव-वश भाई भरत और प्रजाके दुःखको मिटानेके लिये आपने राज्यशासन स्वीकार किया था।

अब श्रीरामके प्रजापालन-कालकी अवस्थाका कुछ वर्णन करते हैं। महामुनि वाल्मीकिजी कहते हैं—

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें स्त्रियोंको वैधव्य-दुःख नहीं था। सर्प-भय और व्याधियोंका भय नहीं था। संसार डाकुओंसे शून्य हो गया था। कोई अनर्थ नहीं करता था। बड़ोंको अपनेसे छोटोंका प्रेतकार्य नहीं करना पड़ता था अर्थात् बाल या युवा-मृत्यु कभी नहीं होती थी, सब प्राणी प्रसन्न और धर्मपरायण रहते थे। रामकी वृत्तिको देखकर कोई किसीकी हिंसा नहीं करता था, प्रजा रोग तथा शोकरहित थी, दीर्घायु भोगती और अनेक सन्ततियुक्त होती थी। सब वृक्ष पुष्प तथा फल-फूल प्रदान करते। प्रजाको आवश्यकतानुसार वर्षाद्वारा जलकी प्राप्ति होती। सुखदायक वायु बहती, मनुष्य अपने अपने कर्मोंमें सन्तुष्ट रह उसीमें प्रवृत्त रहते। और प्रजा सत्यपरायण रहती। सारांश यह कि प्रजा सर्व सुलक्षण-सम्पन्न थी। गोस्वामीजी महाराज रामराज्यका वर्णन करते हैं—

राम राज बैठे त्रयलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बैर न कर काहू सन कोई। रामप्रताप बिषमता खोई ॥

बरनास्रम निज निज धरम निरत बेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥

चारिहु चरन धरम जगमाहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम-भगति-रत नर अरु नारी। सकल परम गतिके अधिकारी ॥
अल्प-मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत धुनी। नर अरु नारि चतुर सुभ-गुनी ॥
सब गुणग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

प्रजावत्सल श्रीरामकी अवध और अवधवासियोंपर कितनी कृपा थी, इसका भगवान्‌की अपनी उक्तिसे ही पता लग जायगा। श्रीराम अयोध्या पहुँचनेपर पुष्पक-विमानमें बैठे हुए अपने मित्र विभीषण और सुग्रीवादिसे कहते हैं—

सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद-पुरान-बिदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ। यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ ॥
जनमभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥
अति प्रिय मोहिं इहाँके बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥

दीनवत्सल श्रीराम

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जाहि दीनता कहौं, हौं देखौं दीन सोऊ ॥

जगत्‌में दीन-दुखी और अनाथोंके सच्चे हितैषी और मित्र अधिक नहीं मिलते। साधारणतः लोग धनवान्, सम्पन्न, सबल और सुखी लोगोंकी ओर ही दौड़ते हैं। ऐसे सत्-पुरुष कोई कोई ही मिलते हैं जो दीन और आर्तके दुःखोंसे दुखी होते हों। हमारे चरित्र-नायक श्रीरामका सम्पूर्ण हृदय केवल दीन-दुखी अनाथोंके लिये ही था। इसीलिये दयालु राम आदर्श दीनवत्सल माने जाते हैं और उनका चरित्र सत्-पुरुषोंके लिये मार्ग-प्रदर्शक समझा जाता है। बाल्यावस्थासे ही श्रीरामका हृदय स्वभावतः दयालु और पर-दुःख-कातर रहा। शास्त्रोंमें श्रीरामके हृदयको कठोरसे कठोर और कोमलसे भी कोमल बतलाया है—

कुलिसहुँ चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहिं चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि ॥

जो धन-जन-बलके मदसे गर्वित हैं, उनके लिये उनका हृदय 'वज्रादपि कठोर' है; पर दीन अनाथ आर्तोंके लिये तो वह नवनीतसे भी अधिक कोमल है। बाल्यावस्थामें भी श्रीरामका यही स्वभाव था, वे किसी भी बालकको न तो कभी अप्रसन्न देख सकते थे और न किसीको रोने देते थे। जिस

किसी प्रकारसे सबको प्रसन्न रखते और हँसाया करते। खेलमें स्वयं स्वेच्छासे हारकर दूसरे बालकोंको जिता देते और उन्हें वस्त्र भूषण तथा अपना स्वादिष्ट भोजन-पदार्थ देकर प्रसन्न रखते। अवधके भाग्यवान बालकोंकी भी ऐसी ही दशा थी, उनका चित्त भी जन-मन-मोहन श्रीरामके बिना क्षण भर नहीं लगता। पूज्यपाद गोस्वामीजी गाते हैं—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपनतें पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सुपनेहुँ लख्यो न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥

जानकीवल्लभ श्रीरामका शील-स्वभाव सुनकर जिस पुरुषका मन प्रसन्न नहीं होता, शरीर पुलकित नहीं होता और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु नहीं आते, उसका इधर-उधर धूल फाँकते भटकना ही अच्छा है। बचपनसे ही पिता, माता, भाई, गुरु, दास, मन्त्री और सखा कभी किसीने श्रीरामके मुख-चन्द्रको स्वप्नमें भी कुपित नहीं देखा। वे सदा ही प्रसन्न-मुख रहते थे। भाई और दूसरे बालक जो उनके साथ खेलते, उनकी हार और अन्याय श्रीराम सदा देखते रहते थे। परन्तु अपनी जीतपर भी (उनको प्रसन्न करनेके लिये) हार जाते थे। उन लोगोंको पुचकार-पुचकारकर प्रेमसे दाँव देते और दूसरोंसे भी दिलाते थे।

दशरथनन्दन श्रीरामकी दीनवत्सलता सार्वभौम है। वह न तो देश और कालसे परिच्छिन्न है और न व्यवहार और व्यक्तिसे ही। उनका सब काल, सब देश, और सभीके साथ समान वात्सल्य-भाव है। उनके शत्रु-मित्र, उच्च-नीच या धनी-दरिद्र भावसे कुछ भी व्यवहार-भेद नहीं है। आवश्यकता है केवल दीन और आर्त-भावकी।

कोसलकुमार रघुनाथजीकी दीनवत्सलताके कुछ उदाहरण पाठकोंके सम्मुख संक्षेपमें उपस्थित किये जाते हैं। देखिये—

दीनभावापन्न राजा जनकको श्रीरामने कैसा सम्हाला। जनकने अपनी अयोनिजा कन्या श्रीसीताजीका स्वयम्वर रचा और निश्चय किया कि सीताको वही ग्रहण कर सकेगा जो बल-वीर्य और पराक्रमसे सम्पन्न होगा, उसपर निर्बल और अशक्तका अधिकार नहीं होगा। इस बल-वीर्य और पराक्रमकी परीक्षा होगी विशाल शम्भु-चापकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेसे। महाराज जनकके इस प्रकारके प्रणकी घोषणा सुनकर जनकपुरमें अनेक राजा आये, परन्तु कोई भी इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सके, यहाँतक कि—

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेपि वा।

उस धनुषको कोई न तो उठा सका, और न हिला ही सका।

तमकि तमकि तकि सिव-धनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बल करहीं॥
जिन्हके कछु बिचार मनमाहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥
तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल अधिक अधिक गरुआइ॥
डिगे न संभु-सरासन कैसे। कामी-बचन सती मन जैसे॥
सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥

इस अवस्थामें मिथिलापतिकी कैसी दीन और भ्रान्त दशा होगयी थी, तनिक उसका चित्र अवलोकन कीजिये—

नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिआहू॥
सुकृत जाइ जो पन परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहै का करऊँ॥
जो जनतेउँ बिनु भट महि भाई। तौ पन करि करतेउ न हँसाई॥

जनक महाराजकी ऐसी दीनताको भला दीनवत्सल कब सहन करनेवाले थे?

'सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिलाको।'
तौ सिव-धनु मृनालकी नाईं। तोरहिं राम गनेश गोसाईं॥

इसप्रकार श्रीरामने दीन हुए जनक महाराजके शोकको दूरकर शम्भु-चाप तोड़ सीताको वरण कर लिया।

दूसरी झाँकी देखिये! निषाद दरिद्र है, नीच जाति है, परन्तु भगवान् उसे अभिमानरहित और दीनभावयुक्त देखकर अपना सखा बना लेते हैं एवं उसका बड़ा ही मान तथा आदर करते हैं।

हिंसारत निषाद तामस बपु पसु-समान बन-चारी।
भेंटे हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी॥
श्रीरघुबीरकी यह बानि
नीचहूसों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि॥
परम अधम निषाद पाँवर कौन ताकी कानि।
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेमको पहिचानि॥

निषादको अपना सखा बनाकर श्रीरामने इतना अधिक आदर दिया कि परम ज्ञानी श्रीवशिष्ठ-सदृश मुनि भी उसको गले लगाकर मिलने लगे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरिते दंड प्रनामू॥
राम-सखा रिषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे॥

मनुष्योंको अपनानेकी तो बात ही कौन-सी है? श्रीरामने पामर पशु-पक्षियोंको भी अपना लिया और ऐसा अपना लिया कि जिसकी कहीं तुलना नहीं है। रामके लिये प्राणों-की बलि चढ़ानेवाले भक्तराज गीधके दर्शन कीजिये! जगत् जननी सीताको रावण हरकर ले जा रहा है। गीधराज जटायु जब यह सुनते हैं तो चटपट दौड़कर सीताको रावणके हाथसे छुड़ानेके लिये मार्गमें ही उसके रथको रोक लेते हैं। रावणके साथ जटायुका युद्ध होता है। 'राम काज' लड़ते हुए जटायुके दोनों पंख रावण काट डालता है और इससे घायल होकर लाचार जटायु जमीनपर गिर पड़ते हैं। जटायुकी असमर्थताके अवसरमें रावण सीताजीको लेकर चला जाता है। इधर रघुकुलभूषण श्रीराम लक्ष्मण-सहित सीताकी खोज करते करते जटायुके पास पहुँचते हैं। वहाँ जटायुके साथ श्रीरामके व्यवहारको देखिये—

दीन मलीन दयालु बिहंग
परयो महि सोचत खिन्न दुखारी।
राघव दीन-दयालु कृपालुको
देख दुखी करुना भइ भारी॥
गीधको गोदमें राखि कृपानिधि
नैन-सरोजनमें भरि बारी।
बारहिं बार सुधारहिं पंख
जटायुकी धूरि जटानसों झारी॥

दयालु राम गीधकी दीन-दशा देख दुःखित हो गये और उसको अपने गोदमें लेकर कुछ दिन जीवन धारण करनेके लिये प्रार्थना करने लगे।

परन्तु उसने जीना स्वीकार नहीं किया और करता भी कैसे? वह कहने लगा—

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचनगोचर आगे। राखउँ देह नाथ! केहि लागे॥

मरनेका इससे अधिक अच्छा अवसर फिर कब मिलनेको था? अन्तमें जटायु श्रीरामकी मुनिदुर्लभ सुकोमल गोदमें ही सदाके लिये शान्त हो जाते हैं। श्रीराम कहते हैं—

परहित बस जिनके मनमाहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काहा तुम पूरनकामा॥

इसके बाद जटायुकी क्रिया भगवान् स्वयं अपने हाथसे करते हैं—

अबिरल भगति माँगि बर गीध गयेउ हरिधाम।
तेहि कै क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति
अपने धाम पठायो।
ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ
तू चाहत सुख पायो॥

इससे भी आगे बढ़िये, हमारे दीनवत्सल श्रीरामके दरबारमें चेतन मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं, जड़ पाषाण-को भी वही स्थान मिलता है। देखिये—

गौतम-पत्नी अहल्या पतिके शापसे पाषाण होकर गौतम-आश्रममें स्थित है। उसमें न सेवाकी योग्यता है और न श्रीरामको बुलानेका सामर्थ्य ही है। है केवल दीनता और जड़ता। दयालु रामने इस जड़की उपेक्षा नहीं की। मिथिलापुरी जाते समय मार्गमें जनशून्य गौतम-आश्रममें उस पाषाणको देखकर प्रभु श्रीरामजी विश्वामित्र मुनिसे पूछने लगे—

बेद पढ़ै न कहूँ द्विजवृन्द
बनी यह कैसी बढ़ावत भै सी।
सूखे रसाल तमालनके तरु,
जान परै कछु बाति अनैसी॥
कूजें नहीं खग गूँजें न भौंर
लखी लखिते नहिं आजु लौं ऐसी।
कीजै कृपा कहिये मुनि-नाथजू
मारग माँझ शिला यह कैसी?

विश्वामित्र मुनि उत्तर देते हैं—

गौतमनारी श्रापबस, उपल-देह धरि धीर।
चरन-कमल-रज चाहती, कृपा करहु रघुबीर॥

अनाथ-नाथ दयामय दीनबन्धु दयाके धाम हो शिलाको चरणसे छूते हैं और उनके चरणका स्पर्श पाते ही अहल्या

B. K. Mitra

श्रीराम-प्रतिज्ञा

निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

उसी क्षण अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाती है—

> परसत पद पावन सोक-नसावन
> 　　प्रगट भई तप-पुंज सही ।
> देखत रघुनायक जन-सुख-दायक
> 　　सनमुख होइ कर जोरि रही ॥

श्रीरामकी दयालुताका कहाँतक वर्णन किया जाय ? दण्डक वनमें विचरते हुए श्रीराम एक जगह हड्डियोंका ढेर देखकर मुनियोंसे पूछते हैं कि 'यह क्या' है ?—

> अस्थि-समूह देखि रघुराया ॥ पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥

मुनियोंने उत्तर दिया—

> निसिचर-निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुनाथ नयन जल छाए ॥

मुनियोंके दुःखको देखकर स्वामी रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल आ गया, भगवान्‌ने उनके दुःख दूर करनेकी उसी क्षण प्रतिज्ञा की—

> निसिचर-हीन करउँ मही, भुज उठाय पन कीन्ह ।
> सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

इसप्रकार श्रीरामके प्रतिज्ञा करनेके बाद एक समय श्रीमती सीता प्रभुको राक्षसोंके वधरूप हिंसात्मक कर्मसे विरत करनेके उद्देश्यसे प्रभुसे कहने लगी—'स्वामिन् ! इस संसारमें कामजन्य व्यसन तीन प्रकारके होते हैं—एक मिथ्याभाषण, दूसरा पर-स्त्री-सेवन और तीसरा शत्रुताके बिना हिंसा करना । हे राघव ! आपने न तो कभी आजतक मिथ्या शब्द उच्चारण किया है और न कभी भविष्यमें आप कर ही सकते हैं । अधर्मदायक परस्त्री-गमन-रूप व्यसन भी आपमें नहीं है । आपको स्वप्नमें भी पर-स्त्रीकी अभिलाषा नहीं होती । आप पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, धार्मिक और सत्यपरायण हैं । आपमें धर्म और सत्य पूर्ण-रूपसे विराजमान हैं । आप इन्द्रिय-विजयी हैं, यह बात सभी जानते हैं— परन्तु आप शत्रुता न होनेपर भी राक्षसों-के वधरूप हिंसा-कर्मको क्यों करना चाहते हैं ?' इसप्रकार भगवान्‌के प्रति श्रीसीताजीने प्रेम और नम्रतासे अनेक बातें कहीं । तब रघुकुलमणि श्रीरामने उत्तर दिया । 'हे धर्मज्ञे जनकात्मजे ! तुमने सभी हितकर और प्रिय बातें कही हैं । तुमने स्वयं यह बात भी स्वीकार की है कि क्षत्रियको धनुष इसीलिये धारण करना चाहिये जिससे किसी भी आर्तका शब्द कभी सुनायी न दे । हे सीते ! इस दण्डकारण्यवासी तीक्ष्ण व्रतोंके पालन करनेवाले मुनिगण मुझे अपना रक्षक मानकर मेरी शरण हो गये हैं । वे क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंसे उत्पीड़ित हो रहे हैं, अत्यन्त दुखी हैं । यह सब बातें मुनियोंने मुझसे कही हैं । मैंने उनसे पूछा 'क्या करना चाहिये'—तब मुनियोंने कहा कि 'ये राक्षस सदा ही हम लोगोंके यज्ञ, व्रत, तपादि अनुष्ठानमें विघ्न करते हैं और बिना ही कारण हमलोगोंको सताते हैं । यद्यपि हमलोग तपके बलसे इन राक्षसोंको नष्ट कर सकते हैं किन्तु ऐसा करनेसे हम अपने तप और साधनसे गिरते हैं अतएव हे राम ! आप हमारी रक्षा कीजिये ।' हे सीते ! इसप्रकार उनके दीन वचनोंको सुनकर मैंने प्रतिज्ञा कर ली है और अब मैं प्राण रहते कभी प्रतिज्ञाके प्रतिकूल नहीं चल सकता । मैं चिरकालसे सत्यको अपना इष्ट समझता हूँ ।" इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

> अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारन-रहित कृपाल ॥
> तुलसिदास सठ ताहि भजु छाँडु कपट-जंजाल ॥

प्रभुकी दयालुताका दूसरा उदाहरण देखिये ! सुग्रीव अपने ज्येष्ठ भ्राता बालिके द्वारा निगृहीत हो, घरसे निकल पड़ता है और बालिके भयसे कहीं भी आश्रय न पाकर ऋष्यमूक पर्वतपर आश्रय लेता है । इस पहाड़पर बालि शापके भयसे नहीं जा सकता था । बालिने सुग्रीवकी सम्पत्ति तथा उसकी स्त्रीको हर लिया था । ऐसी दीन दशामें पड़ा हुआ सुग्रीव जब भगवान् श्रीरामका आश्रय ग्रहण करता है, तब वे उसके दुःखोंको सुनकर प्रतिज्ञा करते हैं—

> सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहिं एकहि बान ।
> ब्रह्म-रुद्र-सरनागत गए न उबरिहिं प्रान ॥

सुग्रीवके दुःखसे श्रीराम यहाँतक व्यथित होते हैं कि उस दुर्दशाग्रस्त दीनको अपना मित्र मानकर उसके सारे दुःखोंको अपने ऊपर ले लेते हैं । मित्रधर्मका निरूपण करते हुए आप कहते हैं—

> जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥
> निज-दुख-गिरि-सम रज करि जाना । मित्रक दुख-रज मेरु समाना ॥
> देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
> बिपतिकाल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
> सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब बिधि करब काज मैं तोरे ॥

कितनी दयालुता है ? श्रीराम बलगर्वित बालिका वध करते हैं, उसके अपराधका यथोचित दण्ड देते हैं

परन्तु जब बालि के बल और गर्वका नाश हो जाता है, तब तुरन्त ही उसी दीन कातर बालिके प्रति ऐसी दयालुता दिखाते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं–

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि-सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना।

मित्रके प्रति जैसी दयालुता है, वैसी ही शत्रुके प्रति भी है। श्रीरामकी दृष्टिमें कोई भी शत्रु नहीं, वे सभीके निज जन हैं। हाँ, अभिमानी, गर्वी, दुराचारीके लिये वे साक्षात् काल-सदृश हैं, परन्तु दीनके लिये तो वे परम मधुर, रमणीय, मनमोहन और अति घनिष्ठ आत्मीय हैं।

जगत्‌में सच्चा दीनवत्सल एक पतितपावन श्रीरामके सिवा और कौन हो सकता है? प्राकृत मनुष्य कैसा भी क्यों न हो–राजा हो या अति बलवान, साधु हो या विद्वान्, क्षमाशील हो या दयावान्, कोई कितना भी ऊँचा क्यों न हो, फिर भी उसकी शक्ति और सामर्थ्य परिमित ही है। कहा है–

एकै दानि सिरोमनि साँचो
जेइ जाँच्यो सोइ जाँचकता-बस फिरि बहु नाच न नाच्यो॥

इसके सिवा यह बात भी है कि प्राकृत जीवकी दया भी तभी प्राप्त होती है, जब उसपर जगत्-पतिकी दया होती है। कहा है–

मुनि सुर नर नाग असुर साहेब तौ घनेरे।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥

इसके अतिरिक्त जगत्‌में प्राकृत जनकी उदारता किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही होती है। गोस्वामीजी कहते हैं–

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥
ऐसे राम दीन हितकारी।
अति कोमल करुनानिधान, बिनु कारन पर-उपकारी॥

एक बात और है, यदि दूसरे किसीसे भीख मिल भी गयी तो उससे सदाके लिये भिखमंगापन नहीं मिटता। उससे एक काल या कुछ कालके लिये क्षणिक सुख होता है, दुःखका आत्यन्तिक नाश नहीं होता। पर श्रीरामका दान तो कुछ विलक्षण ही है।

और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै?
अभिमत-दातार कौन दुख दरिद्र दारै?

इन सबके अतिरिक्त एक बात और भी है, स्वामीको छोड़कर अन्य किसीके भी सामने हाथ फैलाना बड़े कलङ्ककी बात है। परन्तु अपने स्वामीसे माँगनेमें आपत्ति नहीं। यहाँ तो अपना वैसा ही अधिकार है जैसा पिताकी सम्पत्तिपर पुत्रका और स्वामीकी सम्पत्तिपर स्त्रीका अधिकार होता है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

'तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।'
'जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए।'

यह बात अवश्य है, कि प्रभुकी कृपासे प्रभुकी ही शक्तिको प्राप्तकर प्रभुके दास चाहे जैसे दयालु बन जाते हैं। उन दासोंमें उनका अपना कोई प्रभाव और बल नहीं रहता। जो कुछ है, सब प्रभुका है। प्रभु जो चाहें, वही कार्य उनसे करा सकते हैं और उनका चाहे जितना गौरव भी बढ़ा सकते हैं, यह सब प्रभुकी इच्छा है। अतएव छल-कपट त्यागकर अद्वितीय दीनवत्सल जानकीवल्लभ श्रीरामके चरणोंमें दीन होकर उपस्थित होनेसे सदाके लिये दीनताका नाश हो सकता है–

कोमलचित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥

भक्तवत्सल श्रीराम

नान्या स्पृहा रघुपते हृदये मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे,
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥

अखिल भुवनपति भगवान् जब अपने भक्तोंके हृदयमें मिलनेकी उत्कट उत्कण्ठा देखते हैं, अथवा जब अपने भक्तोंको विपत्ति-ग्रस्त समझते हैं, तब भक्तोंकी प्रीति और सुखके लिये वे स्वयं इस धराधाममें पधारते हैं–

फिरत धाम बैकुंठ तजि, भक्त-जननके काज।
जोइ जोइ जन मन भावई, धारत सोइ तन साज॥

यद्यपि भगवान्‌ने श्रीगीतामें अपने अवतरणका कारण यह बतलाया है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

'हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूपको प्रकट करता हूँ। साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।' तथापि अधिक विचारनेसे भगवान्के अवतरणका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि वे अपने प्रिय भक्तोंसे साक्षात् मिलनेके लिये और अपनी रमणीय लीलामें उन्हें सम्मिलित करके उनकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये ही प्रकट होते हैं। यदि कहें कि फिर अन्यान्य कारण क्यों बतलाये गये हैं ?–तो इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि अन्यान्य कारण भी होते हैं पर वे सब गौण होते हैं। मुख्य कारण उसे समझना चाहिये जिसके लिये स्वयं अवतार धारण करनेके अतिरिक्त दूसरे उपायोंसे काम ही नहीं चल सकता और गौण कारण वह है जिसमें इच्छा हो तो स्वयं भले ही पधारें अन्यथा अन्यान्य उपायोंसे भी काम चल सकता है। यदि हम 'अधर्मको दूर करके धर्मकी स्थापना' को ही मुख्य कारण मानें तो यह असङ्गत है, क्योंकि धर्म-स्थापनके अन्य उपाय भी हैं। भगवान् अपने भक्त और साधुओंके द्वारा भी यह कार्य करवा सकते हैं। दुष्टोंके विनाशको मुख्य कारण मानें तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि अपने भक्तोंको शक्ति देकर सहज ही भगवान् यह कार्य भी करा सकते हैं। इस स्थलमें इस शंकाको स्थान नहीं है कि भगवद्भक्त भगवान्की शक्ति पाकर उपर्युक्त कार्य नहीं कर सकेंगे, भगवत्-शक्तिसे तुच्छसे तुच्छ जीव भी महान्से महान् बनकर सब कुछ कर सकता है और अत्यन्त समर्थ भी तुच्छ बन जा सकता है—

> जो चेतनकहँ जड़ करै जड़हि करै चैतन्य।
> अस समरथ रघुनाथहिं भजहिं जीव ते धन्य॥
> ताकहँ जग कछु अगम नहिं, जापर हरि अनुकूल।
> तिहि प्रताप बड़वानलहि, जारि सकै खल तूल॥
> मसकहिं करहिं बिरंचि सम, अजहिं मसक ते हीन।

भगवत्-कृपासे सब कुछ सम्भव है, इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं। यह सब होते हुए जब भक्तके हृदयमें अपने प्रभुसे मिलनेकी चाह जागृत होती है और जब उस चाहका स्वरूप ऐसा उत्कट बन जाता है—

> देह गेहकी सुधि नहीं टूट गयी जग-प्रीत।
> 'नारायण' गावत फिरे प्रेम-भरे रसगीत॥
> प्रेमसहित गद्गद् गिरा, कढ़त न मुखसे बात।
> 'नारायण' महबूब बिन और न कछू सुहात॥
> मनमें लागी चटपटी कब निरखूँ श्रीराम।
> 'नारायण' भूल्यो सभी खान पान विश्राम॥

इसप्रकारकी अवस्थामें जब वह मिलनाकांक्षी भक्त परम व्याकुल होकर हृदयेशको पुकारता है, तब उसके पास किसी प्रतिनिधिको भेजनेसे काम नहीं चल सकता। इस अवस्थामें भगवान्को स्वयं भक्तोंके इच्छानुरूप स्वरूपमें आना पड़ता है क्योंकि अनन्य भक्तोंकी यह भी एक विचित्रता है कि वे भगवान्के जिस एक रूपके उपासक होते हैं, उसके सिवा उसी भगवान्के अन्य रूपके दर्शनसे उन्हें तृप्ति नहीं होती, यद्यपि वे उनमें कोई भेद नहीं मानते। अब श्रीराम दण्डकारण्यमें पधारते हैं और सुतीक्ष्ण मुनिको पता लगता है कि श्रीराम यहाँ आये हैं, तब वह उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठते हैं। सुतीक्ष्णजी अवधेश-कुमारके उपासक थे और उनसे मिलनेके लिये श्रीरामको उनके आश्रममें आना भी था परन्तु श्रीरामके आगमनकी खबर पाते ही मुनिकी क्या दशा होती है—जरा ध्यानसे देखिये !

> प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
> हे बिधि दीनबन्धु रघुराया। मो-से सठपर करिहहिं दाया॥
> सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवककी नाईं॥
> एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाके गति न आनकी॥

सुतीक्ष्ण मुनि भगवान्के प्रेममें इतने विह्वल हो गये कि उनको अपने तन मनकी और मार्गकी भी सुध-बुध नहीं रही—

> निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
> दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा॥
> कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करै गुन गाई॥

सुतीक्ष्ण मुनिकी यह दशा थी। इतनेमें ही रघुकुलभूषण श्रीरामजी वहाँ पहुँच गये और अपने प्यारे भक्तकी प्रेम-दशा पेड़की ओटसे देखने लगे।

> अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥

भक्तवत्सल श्रीराम अब अपने भक्तसे दूर नहीं रह सके—

> अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा॥

प्रभुको अपने भक्तके हृदयमें प्रकट होकर भी सन्तोष

नहीं हुआ, अतः भगवान् अपने भक्तको ध्यानसे जगानेके लिये आगे बढ़े—

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक शरीर पनस-फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥

कमललोचन श्रीराम सुतीक्ष्णके पास आकर मुनिको ध्यानसे जगाने लगे।

मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा। जाग न,ध्यानजनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥

मुनिके हृदयसे अवधेशकुमार श्रीराम-रूपको हटाकर आप चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें प्रकट हो गये, तब—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल दीन फनि मनि बिनु जैसे॥

यहाँ श्रीरामोपासक सुतीक्ष्णजी विष्णुरूपसे सन्तुष्ट नहीं हैं,यद्यपि श्रीराम और विष्णुमें भेद नहीं है तथापि भक्तको तो अपने इप्सित रूपकी ही चाह रहती है—

सुतीक्ष्ण मुनिका ध्यान टूट जाता है और वह सामने प्रत्यक्ष श्रीसीतारामको देखकर प्रणाम करने लगते हैं—

आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता-अनुज सहित सुखधामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥

यहाँ सुतीक्ष्णके लिये भगवान्को श्रीरामरूपसे स्वयं आना ही पड़ता है, प्रतिनिधिकी बात तो दूर रही,अपने ही अन्यरूपसे भी काम नहीं चलता।

यदि यह कहा जाय कि भगवान् भक्तोंको ज्ञान प्रदान-कर ऐसी चाहसे मुक्त क्यों नहीं कर देते अथवा मुक्ति प्रदान करके उन्हें सन्तोष क्यों नहीं करा देते?

इसका उत्तर यह है कि ऐसे रूप धाम और लीलाके उपासक भक्त आरम्भसे मोक्षकी चाह न रखकर ही साधन करते हैं। उन्हें मुक्तिकी परवा ही नहीं होती वह तो केवल अपने उपास्यको ही चाहते हैं। ऐसे भक्तोंके भावको स्वयं भगवान् इस प्रकार बतलाते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत्॥

मुझमें आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त एक मेरे सिवा ब्रह्माके पदको, इन्द्रके पदको, सार्वभौम राज्यको, पातालके राज्यको, योगसिद्धिको, अथवा मोक्षको भी नहीं चाहता। अनन्य भक्त वे ही होते हैं जो मुक्तिमें भी स्पृहारहित हैं—

'ये मुक्तावपि निस्पृहः' और जिनको भगवान्के सिवा अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं 'अन्याभिलषिता शून्यं।' भक्त तो चाहते हैं—केवल एक अपने प्यारे प्रभुको, जो सबका आधार और सब कुछ देनेवाला है। पर वे भक्त उससे कोई अन्य दानको न चाहकर स्वयं दाताको ही चाहते हैं। अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है—

'त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृति-
रजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दात्,
लवनिमिषार्द्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

(श्रीभागवत ११।२।५३)

आधे निमेषके लिये भगवत्-चिन्तन छोड़नेसे यदि त्रिलोकीका समस्त ऐश्वर्य भी प्राप्त होता हो तो भी भगवत्-चरण-कमलोंका प्रेमी भगवत्-चिन्तनका त्याग नहीं करता।

यामस्थाय समस्त मस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्ववशे।

इसी भक्तिका आश्रय लेकर भक्त सारे ब्रह्माण्डके शिरोमणि भगवान्को अपने वशमें कर लेते हैं।

बतलाइये,इस भावके भक्तोंको भगवान् मुक्ति या ज्ञान देकर उनसे कैसे छूट सकते हैं? ऐसे भावुकोंकी इच्छा-पूर्त्तिके लिये ही तो उन्हें स्वयं इस मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। यहाँ प्रतिनिधिद्वारा काम नहीं चलता। यदि कोई कहे कि ऐसे भक्तोंको तो कुछ भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये? इतनी इच्छा भी उनमें क्यों होती है? हाँ, ठीक है, उन्हें और कुछ भी इच्छा नहीं होती परन्तु वे अपनी प्रभु-सेवाकी चाह नहीं छोड़ सकते। इसीसे वे—

'मुकति निरादरि भगति लुभाने'

अतएव भगवान्के अपना नित्य शाश्वत अमृतधामसे आकर यहाँ अवतीर्ण होनेका मुख्य कारण भक्तोंका आनन्द-वर्द्धन,उनसे प्रत्यक्ष मिलन तथा उनकी सेवाग्रहण ही होता है। यह अवश्य है कि अवतार ग्रहण करनेपर भगवान् लोकहितकर अनेक कार्य करते हैं। बहुतसे जीवोंका उद्धार कर देते हैं और शेषके लिये तथा भविष्यत्में होनेवालोंके लिये अपने धामका मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं।

यदि कोई यह कहे कि भगवान् अवतार न लेकर जब जब भक्तोंकी इच्छा हो तब तब उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जानेसे भी तो काम चल सकता है। इसका उत्तर यह

है कि कहीं कहीं ऐसा भी होता है, भक्त ध्रुवजीके लिये यही हुआ था। परन्तु बात यह है कि भगवान्‌के भक्तगण अनोखे और विचित्र भाववाले होते हैं। मनु-शतरूपाने उनको पुत्ररूपसे ही प्राप्त करना चाहा। भगवान्‌के साथ मनुजीका वार्तालाप सुनिये! मनुजी कहते हैं—

दानि-सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहौं सतभाउ।
चाहौं तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥
देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

जब भगवान् कौशल्याजीके यहाँ चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए, तब भी माता कौशल्या भगवान्‌से प्रार्थना करती है कि—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा॥
कीजै सिसु-लीला अति-प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना है बालक सुरभूपा॥

भक्त काकभुशुण्डिजीकी चाह देखिये—

जब जब राम मनुज-तनु धरहीं, भक्त-हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ, बाल-चरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जनम-महोत्सव देखौं जाई, बरष पाँच तहँ रहौं लुभाई॥
इष्टदेव मम बालक रामा, सोभा बपुष कोटि-सत-कामा॥
निज-प्रभु-बदन निहारि निहारी, लोचन सफल करौं उरगारी॥
लघु बायस बपु धरि हरिसंगा, देखौं बालचरित बहुरंगा॥
लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ॥
जूठन परै अजिर महँ, सोइ उठाइ पुनि खाउँ॥

भक्तिमयी शबरीजीकी आशाका आनन्द लूटिये—

जब भगवान् श्रीशबरीके आश्रममें आये हैं, तब शबरी कहती है मेरे गुरु मतंग ऋषि कह गये थे कि—

रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः।
आगमिष्यति चैकाग्रध्याननिष्ठास्थिरा भव॥

सनातन परमात्मा दशरथके पुत्र राम यहाँ आवेंगे, तू एकाग्र चित्तसे ध्यानपरायण होकर यहाँ स्थिर रह।

शबरीजीको अनेक कालसे श्रीरामदर्शनकी लालसा लगी थी, वह प्रभु श्रीरामको खिलानेके लिये नित्य स्वादिष्ट फलोंका संग्रह किया करती थी—आज वही स्वादभरे सरस संग्रहीत फल श्रीरामके भेंट करती है—

कन्द मूल फल सरस अति दिए रामकहँ आनि।
प्रेमसहित प्रभु खाए बारहिं बार बखानि॥

भगवान्‌ने श्रीशबरीके दिये हुए फलोंको निःसंकोच प्रेमसे खाया और फलोंकी बड़ाई करते करते नहीं थके, अन्तमें शबरीने श्रीरामके सम्मुख अपने प्राण त्याग दिये, तब श्रीरामने अपने हाथसे माताकी भाँति शबरीका अन्त्येष्टि संस्कार और उसकी ऊर्ध्व-क्रिया की। श्रीरामकी भक्त-वत्सलताका कहाँतक वर्णन किया जाय?

इसप्रकार उनके भक्त अनेक प्रकारकी आशा लगाये रहते हैं, कोई सख्य-रसके आस्वादनकी इच्छा करते हैं, तो कोई दास्य-रसकी। कोई माधुर्य-रसकी, तो कोई वात्सल्य-रसकी और कोई शान्त-रसकी। ऐसे सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनाथजीका अवतार है। प्रभुके साथ सम्बन्ध केवल भक्तिद्वारा ही होता है, चाहे वह किसी भी भाववाली हो। भगवान् श्रीशबरीके प्रति कहते हैं—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगतिकर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगतिहीन नर सोहहिं कैसे। बिनु जल बारिद देखिय जैसे॥

भक्तिद्वारा मनुष्य भगवान् श्रीरामका आत्मीय बन जाता है। देखिये, वनवासी पशुजाति वानरोंने अपने भक्तिबलसे श्रीरामके हृदयपर कैसा अधिकार कर लिया। गुरु वशिष्ठके प्रति स्वयं श्रीराम अपने वानर भक्तोंके लिये कहते हैं—

ये सब सखा सुनिय मुनि मेरे। भए समर-सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे॥

पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

प्रभु तरुतर कपि डारपर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न रामसों साहेब सील-निधान॥
जे ग्यान-मान-बिमत्त तव भव-हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर-दुर्लभ-पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव, नाथ सोइ स्मराम हे॥

शरणागत-वत्सल श्रीराम

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि,
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि,
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये॥

शरणागति समस्त साधनोंकी पराकाष्ठा है, सबका फल है और इस शरणागतिका फल है परम ध्येयकी प्राप्ति। वास्तवमें शरणागतिका फल अवर्णनीय है। फल कहनेसे तो शरणागतिभावकी लघुता होती है। अवधेशकुमार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागत-वत्सलता भुवनविख्यात है, जिस समय रावणसे निगृहीत होकर विभीषण श्रीरामके शरण आता है, उस समयका श्रीरामका भाव देखिये—

विभीषण अपने चार अनुचरों सहित श्रीरामके शिविरमें आकाश-मार्गसे आता है और सुग्रीवादि वानरोंको अपना परिचय देकर सर्वलोक-शरण्य श्रीरामके आश्रयमें ले चलनेके लिये अनुरोध करता है। वह कहता है—

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥

'सर्व लोकोंको शरण देनेवाले महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मेरे आनेकी सूचना आप दे दें।'

विभीषणके वचनोंको सुन और उसको वहीं छोड़कर सुग्रीवादि वानर श्रीरघुनाथजीको उसके आगमनकी सूचना देते हैं। श्रीराम सब वानरोंकी सम्मति चाहते हैं इसपर सुग्रीव कहता है 'भगवन्! शत्रुसेनासे अकस्मात् यह शत्रु विभीषण अपनी सेनामें आया है, मौका पाकर अपनी सेनाका नाश वैसे ही कर देगा जैसे उल्लू कौवोंका नाश कर देता है। यह राक्षस शूरवीर और कपटी है, अन्तर्धान हो सकता है और इच्छानुरूप स्वरूप धारण भी कर सकता है। इसका विश्वास नहीं करना चाहिये। यह रावणके गुप्तचररूपसे हमारा भेद लेने आया है।—

जानि न जाइ निसाचरि माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद लेन हमार सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा॥

इसको रावणका भेजा हुआ समझिये। इसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। यह पहले विश्वस्त भाव दिखा कर पीछेसे मौका पाकर धोखा देगा। अतः इसे मन्त्रियों समेत मार ही डालना चाहिये।'

अङ्गद कहता है—'विभीषण शत्रुके यहाँसे आता है, इसपर सन्देह अवश्य करना चाहिये। अवसर पाकर वह प्रहार कर सकता है। हित-अहितका विवेचन करके वह संग्रह करना चाहिये। जिसमें अधिक दोष हो, उसको त्यागना चाहिये और जिसमें अधिक गुण हो उसीका संग्रह करना चाहिये। यदि आपको विभीषणमें अधिक दोष प्रतीत हों तो त्याग दें और अधिक गुण प्रतीत हों तो ग्रहण करें।'

जाम्बवन्त कहता है—'अब यह युद्धके समय आया है, तब अवश्य ही रावणका भेजा हुआ है।'

मैन्द वानर कहता है—'यह रावणका छोटा भाई है। मधुर वचनोंसे इससे सब समाचार पूछने चाहिये। फिर यह सद्-बुद्धि है या असद्-बुद्धि, इसका भी यथोचित विचार करना चाहिये।

पवनकुमार श्रीहनूमान्‌जी कहते हैं—'हे प्रभो! आप सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, शक्तिशाली, सर्वसमर्थ हैं। आपको मैं क्या मन्त्रणा दूँ? आपके विचारके सामने साक्षात् बृहस्पतिकी भी मन्त्रणा तुच्छ है; मैं स्वेच्छासे, आसक्तिसे या तर्कसे कुछ भी नहीं कहता। केवल आज्ञानुरोधसे अपना विचार आपके चरणोंमें निवेदन करता हूँ। विभीषणको यहाँ बुलाकर उससे सब वृत्तान्त जानना चाहिये। सहसा यहाँ बुलाना भी अनुचित है, पर दूत भेजकर सब बातें जानना भी ठीक नहीं जँचता। विभीषण यदि आपको रावणसे अधिक पराक्रमी और गुणवान समझकर आया है तो उसने बड़ी बुद्धिमानीका काम किया है। यदि दूत भेजकर परीक्षा की जायगी तो वह शंका करेगा और दुखी भी होगा। उसकी बोलचालमें कोई दुष्ट भाव नहीं दीखता। उसका मुख प्रसन्न है इसलिये विभीषणपर सन्देह नहीं होता। यदि वह धूर्त होता, तो शंकाशून्य स्वस्थ-चित्तसे आपके पास नहीं आ सकता। रावणको बलगर्वित, पाप-परायण देखकर उसका नाश करानेके लिये तथा राज्यकी कामनासे वह यहाँ आया है। अतः आपको विभीषणका संग्रह करना चाहिये।'

हनूमान्‌के इन नीति, धर्म, भक्ति और रहस्ययुक्त अपने मनकेसे वचन सुनकर जानकीवल्लभ श्रीरामने कहा—'मित्रो! आप सबने मेरे हितके लिये ही परामर्श दिया। अब मेरी इच्छा सुनिये—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(वा० रा० ६।१८।३)

मित्र-भावसे आये हुए विभीषणको मैं कभी नहीं त्याग सकता। यदि कुछ दोष भी हो तो भी ऐसे आगत जनको नहीं त्यागना चाहिये। यही सत्पुरुषोंकी सुन्दर सम्मति है।'

तदनन्तर सुग्रीवने फिर कहा—'श्रीराम! विभीषण दुष्ट हो या शिष्ट, पर वह राक्षस तो है ही। आपत्तिके समय जब उसने अपने भाईको त्याग दिया है तो फिर वह किसका त्याग नहीं कर सकेगा? जातिवाले और समीपवर्ती लोग कभी कभी शत्रुओंकी सहायता किया करते हैं, परन्तु जब आपत्ति आती है तब उनपर ही प्रहार करने लगते हैं, यह भी इन्हीं सब कारणोंसे आया होगा। इसके सिवा शास्त्रोंमें भी शत्रुके बलका ग्रहण करना दोषयुक्त बतलाया है, क्योंकि इसमें धोखा ही होता है।' इसप्रकार सुग्रीवने भगवान् श्रीरामके सामने अनेक युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किये, श्रीरामने इन विचारयुक्त तर्कोंको सुन, प्रसन्न हो सुग्रीवकी बड़ी प्रशंसा की, और कहा 'मित्र! यह राक्षस दुष्ट हो या शिष्ट, मेरा कुछ भी अपकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने राक्षस, पिशाच, दानव और यक्ष हैं, सबका अङ्गुलीके अग्रभागसे ही विनाश कर दूँ। जब कपोत-सरीखे पक्षीने भी शरण आये शत्रुका अपना मांस देकर सत्कार किया था, तब भला, मैं इसका कैसे त्याग कर सकता हूँ?

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥
स चेत् भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति।
स्वया शक्त्या यथा न्यायं तत् पापं लोकगर्हितम्॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्॥
(वा० रा० ६। १८। २७-३१)

'हे परन्तप! जब शत्रु दीनतासे हाथ जोड़कर शरणकी याचना करता हुआ प्रणाम करने लगे तो वह नृशंस बुद्धिवाला होनेपर भी उसको न मारे। शत्रु दुःखमें पड़ा हो, गर्वसे भरा हो तथा दूसरोंके भयसे शरणमें आया हो, तब भी कृतात्मा पुरुष प्राणोंकी कुछ भी परवा न कर उसकी रक्षा करे। जो पुरुष भय, मोह या कामसे शरण आये हुए शत्रुकी अपनी शक्तिके अनुसार रक्षा नहीं करता, वह पापका भागी होता है और संसारमें उसकी निन्दा होती है। रक्षा चाहनेवाला पुरुष यदि रक्षा न पाकर रक्षककी आँखोंके सामने मारा जाता है तो रक्षकके सब पुण्य मरनेवालेको मिलते हैं और वह स्वर्गको चला जाता है। इसप्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें बड़ा भारी दोष है और उनकी रक्षा न करना स्वर्गसे भ्रष्ट करनेवाला, अपयश देनेवाला और बलवीर्यको नष्ट करनेवाला है।'

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि॥

सत्-पुरुषोंके व्यवहारको दिखाकर शरणागतवत्सल भगवान् श्रीराम अपने व्रतकी अर्थात् नियमकी घोषणा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

'यह मेरा व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह मुझसे शरणकी याचना करता है, मैं उसको सर्व प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।'

मम पन सरनागत-भय-हारी॥
कोटि बिप्र-बध लागहि जाहू। आए सरन तजौं नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

तदनन्तर भगवान् आज्ञा देते हैं कि-'हे सुग्रीव!

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥
(वा० रा० ६। १८। ३४)

यह व्यक्ति विभीषण हो चाहे स्वयं रावण हो, तुम उसको लिवा लाओ, मैंने उसे अभय दान दे दिया।

जो सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रानकी नाईं॥

प्रभुकी इसप्रकारकी घोषणाको जो पुरुष जानता है और जो उसपर विश्वास करता है वह अन्य समस्त आश्रयोंको त्यागकर एकमात्र शरणागत-भय-हारी भगवान्के ही शरण चला जाता है, वह कभी इधर उधर नहीं भटकता। भगवान्की शरणागतिसे वह सदाके लिये निर्भय हो जाता है। भक्त भर्तृहरिजी महाराज अपने चित्तको उपदेश देते हुए कहते हैं—

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि,
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।

चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिक निर्दयोक्त्यपरुषं निःसीम शर्मप्रदम् ॥

रे चित्त ! देख, यदि तू किसी साधारण राजा या धनीके दरबारमें जाता है तो उनके दरवाजेपर पहुँचते ही द्वारपाल तुझसे कहता है-'अभी मिलनेका समय नहीं है, स्वामी एकान्तमें हैं।' फिर दूसरे समय जाता है तो कहता है कि 'स्वामी सोते हैं। मुलाकात न होगी।' यदि भिक्षुक वहीं द्वारपर बैठ रहता है तो वह कहता है 'यहाँ मत बैठो, स्वामी देखेंगे तो नाराज होंगे।' अतएव रे चित्त ! अब भी सावधान हो और सांसारिक लोगोंके आश्रयकी आशा त्यागकर उस जगत्-पति प्रभुके दरबारकी शरण ले, जहाँ न तो द्वार-पर रोकनेवाला द्वारपाल है और न कोई कठोर वचन ही सुनानेवाला है, प्रत्युत जो उसी क्षण अनन्त आनन्दको देनेवाला है।

भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर सुग्रीव और हनुमदादि अनुचर विभीषणको प्रभुके सम्मुख ले आते हैं और विभीषण जब भगवान्के सम्मुख आता है तो भगवान्की रूप-माधुरी देखकर वह चित्रवत् हो जाता है—

बहुरि राम छबि-धाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि इकटक पल रोकी॥

और वह कहता हुआ प्रभुके चरणोंमें छिन्न मूल वृक्षकी भाँति गिर पड़ता है—

श्रवन सुजस सुनि आयेउँ, प्रभु भंजन भव-भीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरन,सरन-सुखद रघुबीर॥

भगवान् श्रीरामकी शरणागत-वत्सलता अनुपमेय है। प्रभुपाद श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

नाहिंन और कोऊ सरन लायक दूजो
श्रीरघुपति सम बिपति निवारन।
काको सहज स्वभाव सेवकबस
काहि प्रनतपर प्रीति अकारन॥
जन-गुन अल्प गनत सुमेरु करि
अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु भगत-चिन्तामनि
बिरद पुनीत पतित-जन-तारन॥

श्रीरामका प्रणत-रक्षा प्रण

भगवान् श्रीरामकी शरणागतवत्सलता सुप्रसिद्ध है। जब राक्षसराज विभीषण भगवान्के शरण आता है और जब सम्मति पूछे जानेपर सेना-पति सुग्रीव विभीषणको बाँध रखनेकी राय देता है तब भगवान् श्रीराम, नीतिके हिसाबसे सुग्रीवकी सम्मतिका सम्मान करते हुए अपना प्रण सुनाते हैं—

सखा ! नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरणागत-भय-हारी॥

इसके बाद विभीषण सादर श्रीरामके सामने लाया जाता है और श्रीराम उसकी सच्ची शरणागतिपर मुग्ध हो-अब इच्छा न रहनेपर भी-उसे लङ्काधिपति बना देते हैं। केवल मुँहसे ही 'लङ्केश' नहीं कहते परन्तु 'मम दरसन अमोघ जगमाहीं' कहकर अपने हाथसे उनके राजतिलक भी कर देते हैं। सुग्रीवको यहाँ बड़ा आश्चर्य होता है। वह सेनापतिकी हैसियतसे सोचता है कि अभी लङ्कापर विजय तो मिली ही नहीं, पहले ही विभीषणको 'लङ्केश' बनाकर श्रीरामने बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली है। इससे सुग्रीव राजनीतिकुशलतासे बड़े ही विनम्रभाव-से श्रीरामसे एकान्तमें पूछता है 'नाथ ! विभीषणको तो शरणागतिका फल मिल गया, परन्तु हे स्वामी ! यदि कल इसीप्रकार रावण शरण आ जाय तो फिर क्या होगा ? क्या लङ्काका राज्य उसे नहीं दिया जायगा ? दिया जायगा तो स्वामीके वचन कैसे रहेंगे और यदि नहीं दिया जायगा तो रावणको सन्तोष कैसे होगा ?' भगवान् श्रीराम सुग्रीवका आशय समझकर हँसते हुए कहते हैं, 'मित्र ! रामका व्रत यही है कि वह जो कुछ एकबार कह देता है उसे पलटता नहीं। लङ्का तो विभीषणकी ही होगी, यदि रावण आवेगा तो उसके लिये अवध तैयार है—

बात कही जो कही सो कही,
जो कही सो कही फिरि फेरि न आनन।
जो दसकन्धर आन मिलै,
गढ़ लंक विभीषण, अवध दसानन॥
भरतहि बन्धु समेत कलाप करूँ,
निज बास मैं हौं गिरि-कानन।

वे नहिं आवहिं लंक-अवास,
कहौं सतिभाव नरेस दसानन ॥

रावण शरण नहीं आया, उसने तो श्रीरामके हाथसे मरनेमें ही अपना सौभाग्य समझा और यही उसके लिये उचित था। विभीषणको जो एक बार भगवान्ने अपना लिया तो फिर कभी उसको नहीं भुलाया, आप उसकी सदा सुधि लेते रहे और उसे विपत्तियोंसे बचाते रहे।

श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध हो रहा है, रावण बहुत क्रुद्ध होकर इतने बाण छोड़ता है कि श्रीरामका रथ एक घड़ीके लिये वैसे ही ढक जाता है जैसे कुहरेसे सूर्य। इसके बाद रावण एक सेल विभीषणपर छोड़ता है, इस सेलके लगते ही विभीषणका मरण निश्चित है, क्योंकि यह अमोघ है। भगवान् श्रीराम इस रहस्यको जानते थे। शक्ति छूटते ही श्रीरामने अपना विरद सम्हाला—

आवत देखि सक्ति अति भारी। प्रनतारत हरि बिरद सँभारी ॥
तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला ॥

शरणागतकी आर्तिका नाश करनेवाले श्रीराम शरणागत भक्तका अनिष्ट कैसे देख सकते थे? जो सब ओरसे ममता हटाकर श्रीरामके चरणोंको ही ममताका एकमात्र केन्द्र बना लेता है और अपने आपको सर्वतोभावेन उनके प्रति अर्पण कर देता है, उसके रक्षणावेक्षणका सारा भार, योगक्षेमकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। इसलिये भगवान्ने तुरन्त विभीषणको पीछे कर लिया और भीषण सेलका प्रहार सहनेके लिये छाती सामने करके स्वयं खड़े हो गये। धन्य नाथ! ऐसे शरणागतवत्सल श्रीरामको भूलकर जो आपात-रमणीय भोगोंमें रमते हैं, उनके समान दयनीय और कौन होगा?

एक घटना और सुनिये। एक समय श्रीरामको मुनियोंके द्वारा यह समाचार मिलता है कि लङ्काधिपति विभीषण द्रविड़ देशमें कैद हैं। भगवान् श्रीराम अब नहीं ठहर सके, वे विभीषणका पता लगाने और उसे छुड़ानेके लिये निकल पड़े। खोजते-खोजते विप्रघोष नामक गाँवमें पहुँचे, विभीषण वहीं कैद थे। वहाँके लोगोंने श्रीरामको दिखलाया कि विभीषण जमीनके अन्दर एक कोठरीमें जंजीरोंसे बँधा हुआ पड़ा है। श्रीरामके पूछनेपर ब्राह्मणोंने कहा—'राजन्! विभीषणने ब्रह्महत्या की थी, एक अति धार्मिक वृद्ध ब्राह्मण निर्जन उपवनमें तप कर रहा था, विभीषणने वहाँ आकर उसे पदाहत करके मार डाला। ब्राह्मणकी मृत्यु होते ही विभीषणके पैर वहीं रुक गये, वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका, ब्रह्महत्याके पापसे उसकी चाल बन्द हो गयी। हम लोगोंने इस दुष्ट राक्षसको बहुत मारा-पीटा परन्तु इस पापीके प्राण किसी प्रकार नहीं निकले। अब हे श्रीराम! आप पधार गये हैं, आप चक्रवर्ती राजराजेश्वर हैं। इस पापात्माका वध करके धर्मकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर श्रीराम असमञ्जसमें पड़ गये। एक ओर विभीषणका भारी अपराध है और दूसरी ओर विभीषण श्रीरामका ही एक गुलाम है। यहाँपर श्रीरामने ब्राह्मणोंसे जो कुछ कहा सो बहुत ही ध्यान देने योग्य है। शरणागत भक्तके लिये भगवान् कहाँतक करनेको तैयार रहते हैं, इस बातका पता भगवान्के शब्दोंसे लग जायगा। भगवान् श्रीराम स्वयं अपराधीकी तरह नम्रतासे कहने लगे—

वरं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम्।
राज्यमायुर्मया दत्तं तथैव स भविष्यति ॥
भृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्ड इष्यते।
रामवाक्यं द्विजः श्रुत्वा विस्मयादिदमब्रुवन् ॥
(पद्मपुराण पातालखण्ड)

'हे द्विजवरो! विभीषणको तो मैं अखण्ड राज्य और आयु दे चुका, वह तो मर नहीं सकता। फिर उसके मरनेकी ही क्या जरूरत है? वह तो मेरा भक्त है, भक्तके लिये मैं स्वयं मर सकता हूँ। सेवकके अपराधकी जिम्मेवारी तो वास्तवमें मालिकपर ही होती है। नौकरके दोषसे स्वामी ही दण्डका पात्र होता है, अतएव विभीषणके बदले आप लोग मुझे दण्ड दीजिये।' श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणमण्डली आश्चर्यमें डूब गयी। जिसको श्रीरामसे दण्ड दिलवाना चाहते थे वह तो श्रीरामका सेवक है और सेवकके लिये उसके स्वामी श्रीराम ही दण्ड ग्रहण करना चाहते हैं। अहाहा! स्वामी हो तो ऐसा हो। भ्रान्त मनुष्यो! ऐसे स्वामीको बिसारकर अन्य किस साधनसे सुखी होना चाहते हो? अस्तु!

ब्राह्मण उसे दण्ड देना भूल गये। श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणोंको यह चिन्ता हो गयी कि विभीषण जल्दी छूट जाय और अपने घर जा सके तो अच्छी बात है। वे विभीषणको छोड़ तो सकते

थे परन्तु छोड़नेसे क्या होता, ब्रह्महत्याके पापसे उसकी तो गति रुकी हुई थी। अतएव ब्राह्मणोंने कहा—'राम! इस-प्रकार बन्धनमें पड़े रखना उचित नहीं है। आप वशिष्ठ प्रभृति मुनियोंकी रायसे इसे छुड़ानेका प्रयत्न कीजिये।' अनन्तर श्रीरामने प्रधान प्रधान मुनियोंसे पूछकर विभीषणके लिये तीन सौ साठ गोदानका प्रायश्चित्त बतलाकर उसे छुड़ा लिया। प्रायश्चित्तद्वारा विशुद्ध होकर जब विभीषण भगवान् श्रीरामके सामने आकर सादर प्रणाम करने लगा तब श्रीरामने उसे सभामें ले जाकर हँसते हुए यह शिक्षा दी—'ऐसा कार्य कभी नहीं करना चाहिये। जिसमें अपना हित हो, वही कार्य करना चाहिये। हे राक्षसराज! तुम मेरे सेवक हो, अतएव तुम्हें साधुशील होना चाहिये, सर्वत्र दयालु रहना चाहिये।' सारांश, ऐसा कोई कार्य भक्तको नहीं करना चाहिये जिससे उसके स्वामी भगवान्पर लाञ्छन आवे!

भगवान् श्रीराम एक बार विभीषणको समझाने और उसे उचित शिक्षा देनेके लिये फिरसे लङ्का भी गये थे!

प्रणत-जन-शरण

श्रीरामावतारके विविध भाव और रहस्य

(लेखक–विद्वद्वर पं० श्रीभवानीशंकरजी)

उद्देश्य

रामके अवतारमें प्रधानतः दो उद्देश्य थे। प्रथम, संसार-दुःखके यथार्थ मूल कारण अधर्मका नाश करना और दूसरा, धर्मकी वृद्धि और रक्षाके लिये एक परम पावन चरित्र-वान् आदर्श महापुरुषका नमूना संसारके सामने पेश करना। जब समस्त देवताओंने एकत्र होकर प्रेमपूर्वक अवतार धारणके लिये परमात्मासे सम्मिलित प्रार्थना की थी, तभी उसको परमात्माने स्वीकार किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि सार्वजनिक लोक-हित-कर कार्यकी सिद्धिके लिये अनेक पवित्रात्मा पुरुषोंका मिलकर प्रेमके साथ एकी-भावसे सम्मिलित हो उपासना और प्रार्थना करना आवश्यक है। श्रीशिवजीने कहा है—

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमतें प्रगट होहिं मैं जाना॥
अग-जग-मय सबरहित बिरागी। प्रेमतें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

पर-दुःखसे कातर हो पर-हितार्थ श्रीभगवान्‌की सेवाके भावसे, निःस्वार्थ होकर सच्चे हृदयसे जो त्यागरूप कर्म किया जाता है, वही यथार्थ भगवत्-प्रेम है। इसी प्रेमके कारण भगवान्‌ने अवतार ग्रहण किया। दूसरे उद्देश्यमें यह विशेषता थी कि मनुष्यके चरित्रसंगठनके लिये, उसके जीवनमें ईश्वरीय दिव्य गुण, कर्म और ऐश्वर्यका अधि-काधिक विकास करनेके लिये,—जो मनुष्य-जीवनका मुख्य लक्ष्य है—एक ऐसे आदर्श परम पवित्र जीवनका संसारमें साक्षात् प्रकट होना था, जिसको इष्ट और आदर्श मानकर समस्त मनुष्यसमाज अपना चरित्र संगठन करे और अपनेमें ईश्वरीय दिव्य गुणोंका विकास करे। इसीलिये इस पावन अवतारकी लीलाएँ मनुष्योंके द्वारा हो सकनेवाले कर्मोंके सदृश ही हुईं, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य उनको आदर्श मानकर ग्रहण कर सके।

जन्म

महाराज दशरथने जो श्रीराम-जन्मके लिये पूर्वजन्ममें तपस्या और इस जन्ममें पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था, उससे यही तात्पर्य समझना चाहिये कि यदि कोई पुरुष किसी विशेष आत्माको अपने यहाँ जन्म-धारण करनेके लिये आह्वान करना चाहे तो उसको उस कार्यके लिये उपयुक्त तपस्या और यज्ञ करना चाहिये।

बाल-भाव

बाल्यकालमें प्रायः बालक स्वभावसे ही परम सुन्दर, शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समदर्शी और प्रेमी होते हैं। इसीसे बालकका पवित्र स्वरूप स्वाभाविक चित्ताकर्षक हुआ करता है। पवित्र और सुन्दर-सरल बालकोंमें भगवान्‌का विशेष प्रकाश विद्यमान समझकर पूज्य ईश्वरभावसे उनका ध्यान करनेपर किसी अंशमें साधकको उपासनाके समान ही फल लाभ हुआ करता है। जब साधारण बालकोंमें ऐसा होता है तब श्रीभगवान्‌के बाल-भावकी उपासनाका महत्व तो कौन वर्णन कर सकता है?

श्रीरघुनाथजीके एक मनोहर बालस्वरूपकी उपासना श्रीरामतत्त्व राजमें बतलायी है जिसमें भगवान् अपने पिताकी गोदमें बैठे हैं। भक्तराज काकभुशुण्डिजी भी बालरूपके ही उपासक थे। श्रीभगवान्के बाल-वेषमें ही उनको विश्वरूपके दर्शन हुए थे। इस रूपके उपासकको विशेषकर परम शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समदर्शी, निर्विकार और प्रेमी होना चाहिये। इस भावका धाम श्रीअयोध्याजी हैं और इसमें वात्सल्यरसकी प्रधानता है।

कुमार-भाव

इस भावमें भगवान् श्रीरामके ब्रह्मचारी-वेषकी उपासना की जाती है। इसके दो भाग हैं। एक गुरु श्रीवशिष्ठके द्वारा श्रीअयोध्यामें विद्या ज्ञान आदि की शिक्षा-दीक्षा और दूसरा, गुरु श्रीविश्वामित्रके द्वारा प्रवास और भ्रमणमें विद्या, ज्ञान और शस्त्रादिकी शिक्षा-दीक्षा।

माता-पिता और गुरुकी कठिनसे कठिन आज्ञाका विशेषकर धर्मरक्षाके लिये, सहर्ष पालन करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है। श्रीभगवान्ने पिताकी आज्ञासे विश्वामित्रके साथ जाकर तथा फिर विश्वामित्र गुरुकी आज्ञासे उनके यज्ञकी रक्षा और सीता-स्वयंवरमें धनुष भंगकर इस धर्मका भली-भाँति पालन किया। धनुषभंग करनेके पश्चात् भी श्री-भगवान्ने अपने पिताकी आज्ञा बिना श्रीजानकीजीका पाणि-ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया (बा० २। ११६। २१)

मधुर मिथिला-भाव

यह परम मधुर और मनोहर भाव श्रीविदेह-नगरमें पदार्पण करनेके समयसे आरम्भ होता है। इस भावमें ब्रह्मचर्य-की पराकाष्ठा है, जिसके कारण श्रीभगवान्का सौम्यरूप अधिकाधिक तेजोमय, दिव्य, सुन्दर और रम्य हो जाता है। श्रीरामकी रूपमाधुरीको देखकर ज्ञानिश्रेष्ठ जनकजी कहते हैं—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि सोइ कि आवा॥
सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा॥

जनकपुरकी भाग्यशालिनी नारियाँ कहती हैं—

बय किसोर सुखमा-सदन, स्याम-गौर सुखधाम।
अंग अंगपर वारियहि, कोटि-कोटि-सत काम॥

नगरके बालकोंकी दशा देखिये—

सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हरष हिय,देखि देखि दोउ भ्रात॥

इस भावमें मुख्य घटना पुष्पवाटिकामें श्रीगिरिजाजीके स्थान पर श्रीभगवान् और श्रीजानकीजीका परस्पर साक्षात्-कार है, जहाँ श्रीजानकीजीके अलौकिक सौन्दर्यका वर्णन है—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगट देखाई॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई॥

श्रीमतीजीको देखकर श्रीभगवान्, लक्ष्मणजीसे कहतेहैं—

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥

प्रत्येक जीवात्मा अपने इष्टका अंश होनेके कारण उनकी शक्ति है। निर्मम और निरहंकार होकर प्रेमपूर्वक सेवा-भक्ति करनेसे ही उस इष्टका दर्शन और उसके साथ सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध सांसारिक सम्बन्धकी दृष्टिसे एक प्रकार विवाहके समान है, परन्तु यह तो जीवात्मा और परमात्माका आध्यात्मिक सम्बन्ध है, शारीरिक कदापि नहीं। आर्योंका विवाह भी यथार्थमें दो जीवात्माओंका सम्बन्ध है। जिसमें वरको विष्णु समझ कर कन्याका अर्पण किया जाता है।

प्रत्येक उपासकको अपने इष्टदेवकी प्राप्तिके लिये गायत्री शक्तिके प्रकाशके आश्रय और जीवन्मुक्त सद्गुरुकी आवश्यकता है। इस रामचरित्ररूप आध्यात्मिक नाटकमें श्रीजानकीजीको परम कृपापात्री साधिका समझिये और विदेह जनकको इस आध्यात्मिक विवाहमें सम्बन्ध जोड़ने-वाले सद्गुरु! परन्तु इष्टरूप वरकी प्राप्तिके लिये विद्या-शक्तिको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। इसी मर्यादा-के अनुसार श्रीजानकीजीने श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये श्रीगिरिजाजीका आराधन कर उनसे वरकी प्राप्ति की, तभी उनका श्रीरामके साथ विवाह हुआ।

इस मधुर मिथिला भावमें श्रीभगवान्का दूल्हारूपमें और उनकी दिव्य परा आनन्दमयी शक्ति श्रीजानकीजीकी दुलहिनके रूपमें युगल उपासनाकी जाती है। इस भावके उपासक भक्तकी दृष्टिमें श्रीभगवान्का यह विवाह आध्यात्मिक और रहस्यमय होनेके कारण नित्य है, अतएव यह परम मधुर 'युगल जोड़ी' सदा सर्वदा श्रीमिथिला नगरीमें रहती है। इस विवाहोत्सवके भावकी उपासना अत्यन्त मधुर और रहस्यमयी है। इसीसे विवाहके समय देवलोकमें भी परम उत्सव हुआ था। (बा०१। ६३। २१—३७)

जगत्के व्यवहारमें भी विवाहोत्सवसे बढ़कर आनन्दप्रद घटना दूसरी नहीं है क्योंकि विवाहमें दो आत्माओंका एकी-करण किया जाता है। इस भावमें श्रीभगवान् अपने प्रिय

बन्धु और सखाओंसे परिवेष्टित हैं एवं श्रीजानकीजी अपनी प्रिय सरल ग्रामीण सखियोंसे सेवित हैं। महलके अन्दर और बाहर दोनोंकी सेवा हो रही है। विविध गीत वाद्य, नाना प्रकार स्तुति-प्रार्थना आदिकेद्वारा ध्वनिरूप रसका नित्य प्रवाह बहता है। इस प्रकार इस भावमें पवित्र मधुर रसकी यथेष्ट सामग्रियाँ वर्तमान हैं। जैसे वृन्दावनका रासोत्सव नित्य है, वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा विराजमान हैं 'वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति।' वैसेही वह मधुर मिथिला विवाहोत्सव भी नित्य है, जहाँ वह अपूर्व, युगल जोड़ी, सदा वर्तमान रहती है। इस भावका धाम श्रीजनक नगरी है, जनक नगरी अब भी धर्मिष्ठ हिन्दू राज्य नेपालमें है, जहाँ वर्तमान पार्थिव सभ्यताकी बुराइयाँ पूर्ण प्रवेश नहीं कर पायी हैं। श्रीमतीजीकी कृपासे उस धामके और उस प्रांतके निवासी अब भी प्रायः सुखी और स्वस्थ हैं। श्रीरामोपासकको जनकपुर और उसमें श्रीगिरिजाजीके स्थानका दर्शन भक्ति-भावसे अवश्य करना चाहिये।

इस मधुर भावके एक परम भावुक महात्माको किसीने श्रीभगवान्की वनयात्राका संवाद सुना दिया, जिसे सुनकर वह परम व्याकुल होकर चित्रकूट गये। वहाँ जब श्रीमती और श्रीभगवान्ने दर्शन और आश्वासन दिया, तभी वह वहाँसे लौटे। छपरा जिलाके सिवानके पास रहनेवाले स्वनाम-धन्य श्रीरामाजी इसी भावके उपासक थे। वे जहाँ कोई पीतवस्त्रधारी दूल्हा देखते, वहीं भगवत्-भावसे उसका आदर और सेवा करने लगते। विवाहोत्सव तकही रामायणकी कथा कहते और मधुर विवाहोत्सव प्रायः किया करते। उनका भगवान्में अर्पित जीवन बहुतही विशुद्ध और गाढ़ प्रेमसे प्लावित था। वह यथार्थ ही भगवान्के सच्चे कृपापात्र थे। उनकी सत्संगतिसे अनेक लोग सुधरे और ईश्वरानुरागी बने!

तापस-भाव

इस भावका प्रारम्भ वनयात्रासे होता है। इसमें दया और वैराग्यकी प्रधानता है। श्रीभगवान्को न तो राज्याभिषेकके समाचारसे हर्ष हुआ और न वन-वासके संवादसे शोक। वह दोनोंमें ही सम रहे। समता वैराग्यसे होती है। (वा० २। १९। ३२-३३)

श्रीभगवान्के वनगमनमें कैकेयीही कारण थी, परन्तु भगवान् कभी कैकेयीसे नाराज नहीं हुए, बल्कि उन्होंने यही कहा कि 'माता! मैं केवल आपकी आज्ञासे ही वन जा सकता था। सुमन्त्र सारथिने वनसे लौटकर माता कौसल्याको श्रीरामका सन्देश सुनाया कि 'माता! मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप राजा दशरथजीको कैकेयी देवीकी ओर अनुरागी बनावें' (वा० २। ५८। १६) श्रीभगवान्ने भरतसे कहा कि 'भाई! माता कैकेयी मेरे वनवासमें कारण है, इस बातकी उपेक्षा करके तुम उनकी सेवा करो।' इसी तरह पहले श्रीलक्ष्मणजीसे कहा था कि 'मैं माता कैकेयीकी निन्दा सहन नहीं कर सकता।' वनसे लौटने पर सबसे पहले भगवान् कैकेयीके गृहमें ही पधारे थे। इससे यह सिद्ध होता है कि अपने साथ बुराई करनेवाले पर भी भगवान्ने बड़ी दया की!

श्रीभगवान्का बाल्यकालमें राजभवनके सुखोंको छोड़ गुरु विश्वामित्रजीकी अधीनतामें ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वीरताके साथ उनके यज्ञकी रक्षा करना और इस वनवासमें मुनिव्रतधारण-पूर्वक वधरूप परमौषधसे असुरोंको भवरोग-से मुक्तकर ऋषियोंकी एवं धर्मकी रक्षा करना, इस दिव्य अवतारकी त्यागद्वारा सम्पन्न होनेवाली परम पावनी कीर्ति है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी इसी नीतिके अनुसार अपने माता-पितासे पृथक् हो साधारण गोपवेषसे वनमें गाय चराते हुए वधरूप दयापूर्ण क्रियासे असुरोंका भव विनाश कर धर्मकी रक्षा की थी। इस दृष्टिसे राज्याभिषेकमें रुकावट डालकर माता कैकेयीने जगत्का बड़ा ही कल्याण किया। इस रुकावटमें वह तो केवल निमित्त थीं, यथार्थमें तो यह कार्य देवताओंका किया हुआ था। (वा० २।९२। ३०-३१) श्रीभगवान् यदि वनवासको स्वीकार न करते और श्रीसीताजी वनके विविध कष्टोंका एवं रावणके द्वारा हरण होनेका भीषण संकट स्वीकार न करती तो खर, दूषण, रावण, कुम्भकरण आदि महाबली राक्षसोंका वध नहीं होता।

यह तो ऊपर कहा ही जा चुका है कि इस वध-लीलासे असुर और संसार दोनोंका ही मंगल हुआ। असुर मरकर मुक्त हो गये और संसारमें असुरोंके अभावसे धर्मकी रक्षा और वृद्धि हो गयी। श्रीभगवान्, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी इन तीनोंका वनवासरूपी त्याग संसारके हितके लिये ही हुआ था। त्यागका परिणाम अन्तमें आनन्द और कल्याण, एवं भोगका परिणाम दुःख और बन्धन होता है। श्रीभगवान्को वनयात्रामें विविध मनोहर प्राकृतिक दृश्य, ऋषि-समागम, सरल ग्रामीणोंके विशुद्ध प्रेम और वनके फल-मूलादि भोजनसे जो आनन्द मिला,

भक्तवर रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं

वह राजप्रासादमें कदापि सम्भव नहीं था। (वा० २।९९।१२ से १९) इसीसे भगवान्ने श्रीकैकेयीसे कहा था—

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

माता कौसल्यासे भी यही कहा—

पिता दीन्ह मोहि काननराजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

श्रीभगवान्के वनगमनके समय उनके स्वरूपको देखकर नगर और ग्रामनिवासी नरनारियोंका चित्रवत् मुग्ध होना, चित्रकूटमें कोल-किरातोंका उनकी सेवा करना, नीचवर्णके गुह-निषाद, वानरजातिके सुग्रीव और राक्षस विभीषणका हार्दिक मैत्री करना आदि उदार और सुखमयी घटनाओंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् सर्वात्मा होनेके कारण समस्त प्राणियोंके परम प्रिय हैं और उनको भी अपना अंश होनेके कारण चराचर जीवमात्र प्रिय हैं। श्रीवशिष्ठजीने वनगमनके समय कैकेयीसे कहा कि 'तू अभी यह देखेगी कि श्रीरामचन्द्रके वन जाते समय पशु, पक्षी, मृग, सर्प और स्थावर वृक्ष आदि भी उनके साथ जाना चाहेंगे। (वा० २।३७।३३) भगवान्के वनगमन करनेपर इस शोकका प्रभाव केवल वृक्ष, नदी, पशु, पक्षी आदि पर ही नहीं,—वायु, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि, चन्द्र और सूर्य आदि पर भी पड़ा। (वा० २।५९।४–९ एवं २।४१।९–१७) इससे पता लगता है कि वे सबको कितने प्रिय थे।

श्रीभरतजीका चित्रकूट आकर श्रीभगवान्को राज्यार्पण करना और उनके बदले स्वयं वनवासी बननेकी प्रार्थना करना वैराग्यका परमोच्च उदाहरण है। श्रीभगवान्का इन दोनों प्रस्तावोंको ही अस्वीकार कर देना उससे भी उच्च वैराग्य है। भगवान्के अस्वीकार करनेपर भी दूसरी तरहसे श्री-भरतजीका उपर्युक्त दोनों ही प्रश्नोंका पालन करना अर्थात् राज्यके स्वामी श्रीभगवान्को मानकर स्वयं उनके दास बनकर सारा कार्य करना तथा नगरसे बाहर मुनिवेषमें विविध व्रत-नियमोंका पालन करते हुए कठिन तपस्यामें प्रवृत्त रहना, वैराग्य और त्यागकी उच्चतम सीमा है—न भूतो न भविष्यति। इस प्रकार श्रीभरतजीने निष्काम कर्मयोगका परमोच्च उदाहरण दिखला दिया। इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि प्रत्येक भावुकको अपना सर्वस्व श्रीभगवान्-के अर्पणकर, ममता और अहङ्कारके त्यागपूर्वक केवल परमात्मा श्रीभगवान्को अपनी वस्तु मान, अपनेको उनका निष्काम दास समझ, प्रत्येक सांसारिक व्यवहारिक कर्म, उनके निमित्त उनकी इच्छानुसार ही करना उचित है। श्रीभरतजी श्रीभगवान्की चरण-पादुकाओंको सिंहासनपर आरूढ करवा कर राज्यशासनका सारा वृत्तान्त उनको निवेदन कर उनकी आज्ञानुसार सब काम करते थे (वा० २।११५।२२) इसी-प्रकार कर्मयोगीको उचित है कि वह अन्तरात्मा श्रीभगवान्-को प्रभु मान उनको निवेदन करके उनकी आज्ञानुसार समस्त कर्म करे। योग्य भावुकको भगवान्की अनुमति मिलेगी। *गीता कहती है कि श्रीभगवान् ऐसे भावुकके अनुमन्ता है।* 'जो कर्म या साधन भगवान्के मनोनुकूल हो और जिस कर्मके फलमें आसक्ति न हो तथा परिणाममें एकरस—समान भाव रहे, वही कर्म भगवदाज्ञानुसार होता है।' ऐसा समझना चाहिये। यही निष्काम कर्मकी कसौटी है।

स्त्रियोंका परम आभूषण और विशेष गुण लज्जा है, जो इस गुणका परित्याग कर देती है वह (सती) स्त्री नहीं है। सूर्पणखाने लज्जाको सर्वथा त्यागकर श्रीभगवान्के सामने अनुचित प्रस्ताव किया और सीताको भक्षण कर डालना चाहा था, इसीलिये श्रीभगवान्ने उसको विरूप करके उचित दण्ड दिया।

प्रेमकी परीक्षा और उसका विशेष विकास प्रियतमके वियोगकालमें होता है, वह संयोगमें कदापि संभव नहीं। श्रीभरतजीके प्रेमका विकसित स्वरूप श्रीरामके वियोगसे ही विश्वमें प्रकाशित हुआ था। श्रीसीताजीका वियोग भी इसी कारण हुआ। इसीकारण गोपियोंका भी भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रसे वियोग हुआ। श्रीराम-वियोगसे श्रीजानकीजीकी जो अवस्था हुई थी, वही भक्तिकी पराकाष्ठा है—

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित, प्रान जाहिं केहि बाट ॥

हृदय-मन्दिरके अन्दर श्रीभगवान्के चरण-कमलमें दिव्य आन्तरिक चक्षुओंको लगाकर उनका ध्यान करना और सतत नाम स्मरण करते रहना ही उपासनाकी परमोच्च अवस्था है।

श्रीभगवान्का अधम पक्षी जटायुका प्रेतकार्य अपने हाथों करना उदारता और अनुकम्पाका परमोत्तम उदाहरण है। इससे सिद्ध है कि श्रीभगवान्की दृष्टिमें ऊँच-नीच सब समान थे।

श्रीशबरीजी तापस-भावकी प्रधान और आदर्श उपासिका थीं। जिस प्रकार शबरीजीने समस्त बाह्य सुखोंको त्याग, परम तपस्विनी बन, अहोरात्र केवल एक श्रीभगवान्‌में ही अपना प्रेम-प्लावित-चित्त पूर्ण रूपसे लगा दिया था और वह उन्हें अर्पण करनेके लिये प्रेमोपहार संग्रह करनेमें ही प्रवृत्त रहती थी। इसीप्रकार भावुकका चित्त भी सदा सर्वदा केवल श्रीभगवान्‌में ही संलग्न रहना चाहिये और उसके समस्त कर्मोंका लक्ष्य श्रीभगवान्‌की सेवा होना चाहिये तथा श्रीभगवान्‌की परम तुष्टिके लिये ही उन सबका अर्पण होना चाहिये।

वानरराज बालिने अपने छोटे भाई सुग्रीवकी स्त्रीका, जो उसके कन्या-सदृश थी, बलात्कारसे सतीत्व नाश कर दिया, इसीसे वह आततायी था। आततायीका वध धर्म है। श्री भगवान्‌ने स्पष्ट ही कहा था कि, सनातन धर्मकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले दुष्ट प्राणियोंके संहारक श्रीमान् भरत धर्मपूर्वक शासन करते और तुम जैसे कामासक्त अधर्मियोंको दण्ड देते हैं, मैंने भी उन्हींकी आज्ञासे तुम मर्यादा-रहितको दण्ड दिया है। (वा० ४। १८। २४-२५) श्रीभगवान्‌ने बालिसे यह भी ठीक ही कहा था कि धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। जो एकके लिये कर्तव्य है वही दूसरोंके लिये अकर्तव्य है। हृदयस्थ अन्तरात्मा ही धर्मकी सूक्ष्मताको जानते हैं (वा० ४। १८। १५)। यह आततायी-दमनका आदर्श है। इतना होनेपर भी उसके प्रार्थना करनेपर दया दिखाते हुए श्रीभगवान्—अपनी स्वाभाविक उदारतावश—उसे प्राण रखनेको कहते हैं। इससे बढ़कर क्या दया होगी?

शत्रुके सहोदर भाई विभीषणको सबके मना करनेपर भी भगवान् आश्रय देते हैं, इतना ही नहीं, उसे मित्र बनाकर लङ्काका राज्य भी दे डालते हैं, यह श्रीभगवान्‌की उच्चतम उदारता है। इसका परिणाम भी परमोत्तम होता है। यहाँपर श्रीभगवान्‌ने शरणागतको अभय करनेकी जो घोषणा की है वह भक्ति-भावके महावाक्य हैं। (वा० ६। १८। ३३)

श्रीभगवान्‌ने समुद्रपर सेतु निर्माण करवा वहाँ श्रीशिवजीकी स्थापना की, इसका रहस्य यह है कि श्रीरामोपासक या अन्य देवोपासकको अपने इष्टकी प्राप्ति श्रीशिवजीकी कृपा बिना नहीं हो सकती, क्योंकि श्रीशिवजी जगद्गुरु हैं। श्रीमुखके वचन हैं—

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥

अउरउ एक गुपुत मत सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

इस तापस-भावमें श्रीभगवान्‌ने जगत्‌को यह उपदेश दिया कि 'जो पुरुष धर्मकी रक्षा और संसारका हित करना चाहता है उसे त्याग और कष्टोंको सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि इनके बिना महत् कार्य कभी सम्पन्न नहीं हो सकते।' इसमें आभ्यन्तरिक त्याग ही मुख्य है, बाह्य नहीं। श्रीभगवान्‌ने मुनिव्रतमें रहनेपर भी धर्म-रक्षाके लिये असुरोंका विनाश किया। इसी नीतिके अनुसार गीता-ज्ञानका भी यही परिणाम हुआ कि श्रीअर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त होकर अधर्ममें रत कौरव पक्षका विनाश करना पड़ा। निष्कामभावसे कर्तव्यका पालन अवश्य करना चाहिये। श्रीजानकीजीके मना करनेपर भी श्रीभगवान्‌ने असुरोंका ध्वंस करनेके संकल्पको नहीं छोड़ा और खरदूषणसे लेकर रावणतक असुरोंका ध्वंस किया। परन्तु मुनिव्रती भगवान्‌ने राक्षसोंके साथ आत्मरक्षाके लिये ही युद्ध किया था, उनको लूटने-खसोटनेके लिये नहीं! अपराधीपर ही अस्त्र-प्रहार किया गया था। इसीसे रावणको यह संदेशा भेजा गया था कि सीताको लौटा देनेपर दोष क्षमा कर दिया जायगा, परन्तु जब उसने नहीं माना, तभी चढ़ाई की गयी।

इस तापस-भावमें सत्य और ब्रह्मचर्यका पालन भी प्रधान है। श्रीभगवान्‌का सत्य-पालन तो अनिर्वचनीय है ही, उनका एकपत्नी-व्रत और ब्रह्मचर्य भी प्रसिद्ध है (वा० ५। ३५। १२)। शास्त्र कहता है कि 'जो गृहस्थ केवल सन्तानार्थ ऋतुकालमें यज्ञकी भाँति (कामासक्त होकर नहीं) स्त्री-समागम करता है वह ब्रह्मचारी ही है। श्रीभगवान्‌की किसीके साथ आसक्ति नहीं थी, यह भी ब्रह्मचर्यका मुख्य कारण है।

श्रीलक्ष्मणजीके ब्रह्मचर्यके तो क्या कहने हैं। प्रणाम करनेके लिये प्रतिदिन श्रीसीताजीके सामने आनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंके सिवा अन्य किसी भी अङ्गपर दृष्टिपात नहीं किया (वा० ४। ६। २२)। वनमें सीता-त्यागके समय भी सीताके अङ्ग देखना अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मणजीके इस बर्तावसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये

कि पुरुषको माता आदि पदमें बड़ी स्त्रियोंके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी भी पर-स्त्रीका कोई भी अङ्ग कदापि नहीं देखना चाहिये।

श्रीहनुमानजी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। लंकामें रावणके महलमें रावणकी स्त्रियोंको विवस्त्रा सोती हुई देखने पर भी उनका स्वाधीन मन रत्ती भर भी विचलित नहीं हुआ (वा० ५।११।४२-४३)। स्त्रीके दर्शनसे मनमें विकार हो जाना भी मैथुन है। अतएव ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके लिये मनका ऐसा निग्रह होना चाहिये कि कारणवश पर-स्त्रीके दर्शन, स्मरण, स्पर्श या भाषण आदि हो जानेपर भी उसमें कदापि विकार उत्पन्न न हो। श्रीहनुमानजी इसके आदर्श थे।

श्रीसीताजी तो परम आदर्श पतिव्रता थीं। उन्होंने श्रीरामके पास जानेके लिये सेवक-श्रेष्ठ श्रीहनूमान्‌का भी अंग स्पर्श करना नहीं चाहा।

वनमें प्रवासित होनेपर भी श्रीसीताजी क्षुभित नहीं हुईं, प्रत्युत स्वामीको यह संदेशा कहलाया कि आप अपने भाइयोंके सदृशही पुरवासियोंकी रक्षा करें (वा० ७।४८। १४-१५) श्रीसीताजीने सोचा कि मेरी मिथ्या निन्दा करनेके कारण श्रीराम कहीं प्रजा पर रुष्ट न हो जायँ। इस कथनसे श्रीसीताजीने अपने कष्टोंकी कुछ भी परवा न करके मिथ्यापवादी और दुःख देनेवाले लोगोंके प्रति कृपा और पतिकी प्रतिष्ठाके लिये परम उत्सुकताके दोनों ही उज्ज्वल भाव दिखलाये, जो सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय हैं।

इस भावका मुख्य धाम चित्रकूट है और उसका ध्यान यह है—

ध्यायेदाजानु बाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं,
पीतं वासोवसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम्।
वामाङ्कारूढ सीता मुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं,
नानालङ्कारदीप्तं दधतमरुजटामण्डलं रामचन्द्रम्॥

राज-भाव

यह श्रीराम-चतुष्टय अथवा पञ्चायतनका भाव है। इसमें राज्याभिषेकके बाद राज्यसिंहासन पर श्रीभगवान्, वाममें श्रीसीताजी, दहने भागमें श्रीलक्ष्मण और सामने श्रीहनूमान्‌जीका ध्यान है। अथवा राजसिंहासनपर श्रीभगवान् और वामाङ्कमें श्रीजानकीजी हैं, श्रीहनूमान्‌जी चरण सेवा कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी दाहिनी ओर तथा श्री-भरतजी बाईं ओर हैं, यही पञ्चायतनका ध्यान है। श्रीभरतजीके साथ बायीं ओर शत्रुघ्नजीके रहनेसे यह षडायतन हो जाता है। इस भावका स्थान श्रीअयोध्या है। इसमें सभी भावोंका समावेश है। राज्यारूढ होनेपर भी श्रीभगवान्‌का स्वभाव बालकोंसे भी अत्यन्त कोमल और सरल था। उन्होंने सदा ही आदर्श गृहस्थ ब्रह्मचारी-व्रतका पालन किया। इस भावमें श्रीभगवान्‌का सुन्दर वस्त्र और अलङ्कारोंसे आच्छादित मनोहर रूप है, आदर्श धर्मपत्नी श्रीजानकीजी अर्द्धाङ्गिनी हैं। श्रीराम ऋषियोंसे वेष्टित, परम नम्र एवं दीनोंपर अत्यन्त अनुकम्पा करनेवाले हैं, परम आज्ञा-कारी तीनों भाई सेवामें रत हैं। परम सुरक्षित और पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट प्रजाका एकाधिपत्य है। राज्यमें आपद्-विपद्का एकान्त अभाव है। अयोध्याजी परम रमणीय हैं, जहाँ परम पुनीत और सौम्य सरयूजी बह रही हैं। श्रीहनूमान् आदि निष्काम दास सेवामें संलग्न हैं। ये सभी पवित्र और आदर्श सामग्रियाँ यहाँ वर्त्तमान हैं।

लोकहितके लिये श्रीभगवान् दुराचारीको दण्ड देनेमें अवश्य ही कठोर थे, जिससे दुराचारीका भी हित होता था। राजाके लिये यह गुण उसकी परम शोभा है।

स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षामें कभी कोई बाधा न आवे, इसके लिये मिथ्यापवादपर भी आदर्श सती श्रीसीताजीका त्याग और सत्यकी रक्षाके लिये सेवा-परायण श्रीलक्ष्मणजीके त्यागका परमोज्ज्वल उदाहरण है। ब्रह्मचर्य, त्याग और सत्यका पालन महत्त्वपूर्ण है। अन्तमें श्रीभगवान्‌का लोकहितार्थ यज्ञ करना और तपस्वी व्रतका अवलम्बन करना दया और वैराग्यसे परिपूर्ण है।

भगवान् श्रीरामके आदर्श जीवनसे हम सबको लाभ उठाना चाहये।

रामायणका रहस्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)

मायणका रहस्य है—मनको वशमें करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करना। ब्रह्माके दशानन रावणके वधका तात्पर्य है—दस कुवृत्तियोंका नाश करना। ये कुवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मात्सर्य, ७ दम्भ, ८ अहंकार, ९ राग और १० द्वेष।

पात्रोंमें श्रीसीताजीको 'मन', श्रीरामको 'ब्रह्म', श्रीहनूमान्‌जीको 'सत्सङ्ग' और श्रीभरतजीको 'त्याग' समझना चाहिये।

सीताजीके अपने पति श्रीरामजीसे मिलनेका आध्यात्मिक अर्थ 'मनका ब्रह्ममें लय कर देना' है। यह उसी समय सम्भव है जब कि हम राममें एकाग्र चित्त होकर उनका अनवरत ध्यान करें। यही रामायणकी गूढ़ शिक्षा है।

चित्तकी पूर्ण एकाग्रता एवं शुद्ध सात्त्विक भावनासे दो अक्षरवाले राम (रा + म) मन्त्रका सर्वदा जाप करनेसे मन वशमें होता है। तदनन्तर समाधिनिष्ठा अर्थात् सर्वव्यापक रामके साथ तन्मयता हो जाती है। फिर विचारक तथा विचार्य, ध्याता तथा ध्येय, पूजक तथा पूज्य, उपासक तथा उपास्य सभी मिलकर एक हो जाते हैं। मन श्रीरामसे पूर्ण हो जाता है। वह 'भ्रमर-कीट-न्याय' के अनुसार तदाकार, तद्रूप, तन्मय, तदीय एवं तल्लीन हो जाता है।

यह प्रसिद्ध है कि तुम जैसा विचार करोगे वैसे ही बन जाओगे। मन जिस वस्तुपर अधिक ध्यान रखता है वह वैसा ही बन जाता है। रामके ध्यानसे मन रामके साथ एकीभावको प्राप्त हो जाता है। उसकी इच्छा जगदुत्पत्ति-कर्ता रामकी विश्वेच्छामें विलीन हो जाती है। उस समय जीवत्वका लोप हो जाता है। जैसे कीट भ्रमरके साथ रहने एवं उसका सतत ध्यान करनेसे भ्रमरके रूपमें परिणत हो जाता है, ठीक वैसे ही, मन भी सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे रामरूप बन जाता है।

यह दो अक्षरोंका राम-मन्त्र सब मन्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है। इसके दो कारण हैं। राममन्त्रकी रचना पञ्चाक्षर एवं अष्टाक्षर-मन्त्रोंके संघटनसे हुई है। 'रा' शब्द 'ॐ नमो नारायणाय' से तथा 'म' शब्द 'ॐ नमः शिवाय' से लिया गया है। अतः यह महान् शक्ति-सम्पन्न है। मन्त्र जितना छोटा होता है उससे उतनी ही अधिक चित्तकी एकाग्रता होती है। राम-मन्त्र बहुत छोटा है अतः इससे सरलतापूर्वक चित्तकी महान् एकाग्रता हो सकती है। पूजा, ध्यान अथवा श्रीराम-मन्त्रके जापसे मन वास्तवमें पूज्य वस्तु श्रीरामके ही आकारका बन जाता है और उनकी शुद्धताके कारण वह शुद्ध भी हो जाता है। सतत अभ्यासके द्वारा मन अन्य सब वस्तुओंको छोड़कर केवल अपने लक्ष्य एक श्रीरामसे ही परिपूर्ण हो जाता है। वह शुद्धतामें स्थिर हो जाता है फिर कभी अशुद्धताकी ओर नहीं भटकता। जबतक मनका अस्तित्व है, तबतक उसको कोई वस्तु अवश्य चाहिये। अतः साधनाका उद्देश्य मनके समक्ष पवित्र वस्तुओंका उपस्थित करना है।

मन्त्र-जापके समय समरूपसे शब्दोंकी पुनरावृत्ति होनेके कारण ध्यानमें जपके अधिष्ठातृ देवताका आगमन होता है।

संस्कारके बलसे मन्त्रोंकी पुनरावृत्तिके कारण क्रियात्मक गतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मन्त्रमें चमत्कारपूर्ण तेज अथवा शक्ति होती है। वह एक विशिष्ट विचार-धाराको प्रवाहित कर मानसिक तत्त्वमें परिवर्तन कर देता है। मन्त्र-जापसे तालबद्ध स्फुरण अथवा कम्पनका (Rhythmical Vibrations) प्रादुर्भाव होता है और इसीके द्वारा पञ्चकोशोंसे उत्पन्न हुआ स्फुरण नियमित होता है। यही अन्यान्य वस्तुओंकी ओर आकृष्ट होनेवाले मनकी गतिका भी अवरोध करता है। जिस समय साधनाशक्ति अपूर्ण अथवा कठिनाइयोंसे अवरुद्ध हो जाती है उस समय यह मन्त्र-शक्ति ही उसको बल प्रदान करती है। जिस समय मन्त्र-चैतन्य (प्रसुप्त चैतन्यता) जाग्रत होता है उस समय उसके द्वारा अलौकिक सिद्धियोंका उदय होता है।

राम-मन्त्रका जप तीन प्रकारका है, (१) मानसिक (२) उपांशु और (३) ओरसे उच्चारणपूर्वक। उच्चारणकी अपेक्षा उपांशु जप हजारगुणा तथा मानसिक जप करोड़गुणा अधिक शक्तिशाली है।

इस कलियुगमें हठ एवं राजयोगका अभ्यास अत्यन्त कठिन है। केवल एक भक्तिका मार्ग ही सबके लिये सर्वथा उपयुक्त है और यही सरल भी है। इसमें इष्टदेवतासे सहायता मिलती है। भगवन्नाम-जपका अधिकारी प्रत्येक मनुष्य है। मन्त्र-शक्तिके द्वारा साधना-शक्ति पुष्ट होती है। परमात्माकी प्रार्थना एवं उसका गुणगान प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। यह बहुत सुरक्षित मार्ग भी है। जिस समय भक्ति पूर्णतया परिपक्वावस्थाको प्राप्त हो जाती है, उस समय ज्ञान अपने आप ही आ जाता है। भक्तिके द्वारा ही अधिकांश मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हृदयके अन्तस्तलसे प्रार्थना कीजिये। शुद्ध भावसे राम-मन्त्रका सर्वदा जप कीजिये। राम-भक्तोंका सत्संग, रामायणका स्वाध्याय एवं नित्य कुछ घण्टे श्रीराम-संकीर्तन कीजिये। ऐसा करनेसे आपको भी श्रीरामके दर्शन होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राम-नाम संकीर्तन*

राम राम राम राम राम राम रामने।
राम राम राम राम राम राम रामने॥
माधव गोविन्द हरि केशव हरि नारने।
नाद-गीत वेद-मन्त्र राम राम रामने॥

यहाँपर राम-भक्तोंके संगके विषयमें कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। सत्संग मनुष्यके कार्यक्रमको उलट देता है। इसीके द्वारा विषय-संस्कार सात्त्विक संस्कारोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं तथा मनुष्यके हृदयमें सात्त्विक भावनाओं-की वृद्धिके कारण उसमें दृढ़ भक्तिका साम्राज्य हो जाता है। इसमें मनुष्यकी सांसारिक प्रवृत्तिको बदल देनेकी अद्भुत शक्ति है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

* कीर्तनकी यह धुन मद्रास-प्रान्तकी है। लेखक महोदय मद्रासी हैं। इसीसे यह लिखी गयी है। सम्पादक

श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञ और उसका महत्त्व।

(लेखक—डा० आर० शाम शास्त्रीजी एम० ए०, पी एच० डी०, मैसोर)

आ...ह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके लिये जिन जिन कर्तव्योंके पालन करनेका आदेश दिया गया है उन सबमें विद्याके पश्चात् वैदिक यज्ञका महत्त्व सबसे अधिक है। क्षत्रियोंके लिये राजसूय, अश्वमेध तथा विश्वजित्—इन तीनों यज्ञोंका करना सबसे अधिक महत्त्व रखता है। अतः ऐसा सुना जाता है कि वेदोंकी शिक्षामें विश्वास तथा प्राचीन राजाओंके कार्योंका अनुसरण करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीने भी उपर्युक्त तीन यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञ किया था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'श्रीरामचन्द्रजीने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान क्यों किया? उनका उद्देश्य स्वर्गको प्राप्त कर वहाँके विशाल सुखोंका प्राप्त करना था या अपनी प्रजाका हित-चिन्तन अथवा साधारण मनुष्योंके लिये एक आदर्श उपस्थितकर उन्हें कर्मपथपर आरूढ़ कराना था?

इनमें स्वर्ग-प्राप्तिका उद्देश्य तो सम्भव नहीं, क्योंकि उस समय ऋषिगण कर्मकी अपेक्षा उपनिषदोक्त ज्ञानकाण्ड-को अधिक महत्त्व देते थे। महर्षि भरद्वाज, गौतम तथा अन्य विशिष्ट साधु लोगोंके जीवनसे यह ज्ञात होता है कि वे वैदिक यज्ञोंके अनुष्ठानकी अपेक्षा तपस्यामें अधिक रत रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीने किष्किन्धा और लंका जाते समय मार्गमें ऐसे अनेक साधुओंका संग किया था और स्वयं भी वे उपनिषदोंकी शिक्षासे पूर्ण परिचित थे। उपनिषदोंकी शिक्षा ग्रहण करनेमें असमर्थ लोगोंके सामने एक आदर्श उपस्थित कर उन्हें कर्ममें प्रवृत्त करना भी उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। ऐसा होता तो बहुद्रव्य-साध्य अश्वमेध न करके उन्होंने अन्यान्य साधारण कर्मोंका अनुष्ठान किया होता। अतः यही सिद्ध होता है कि श्रीरामने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान अपनी स्थितिके उपयुक्त एवं विशेषतः प्रजाके हित-साधनार्थ किया। इस अनुष्ठानके द्वारा आर्थिक अभ्युदयरूप प्रजाहित करना ही प्रतीत होता है। प्रजाकी उन्नति एवं सुख स्पष्टतः दो

बातोंपर निर्भर हैं—(१) अनुकूल ऋतु तथा (२) उपार्जन करनेके लिये आवश्यक साधन। यज्ञ करनेका विचार इन दोनों विषयोंको प्राप्त करना है। उस समय यह विश्वास किया जाता था कि साधारण स्वर्गीय देवताओंको सन्तुष्ट करनेसे अनुकूल ऋतुकी प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त यज्ञके द्वारा मजदूरी, पुरस्कार एवं दानके रूपमें मजदूरों, सैनिकों, ऋत्विजों तथा भिक्षुकोंको प्रचुर धन मिल जाता था, जिससे वे धनकी वृद्धि कर सकते थे।

उपर्युक्त विषयकी पूर्णतया पुष्टि उन नियमोंसे हो जाती है जो कि काम्य यज्ञोंके सम्पादनके लिये बनाये गये हैं। वेदमें तीन प्रकारके कर्मोंका उल्लेख है। (१) नित्यकर्म—इसमें अर्थ-व्ययकी कोई बात नहीं है। (२) नैमित्तिक कर्म—इसमें थोड़ेसे धनकी आवश्यकता पड़ती है। (३) काम्य-कर्म—इसमें सोने एवं चाँदीका व्यय बहुत होता है। मनुके अनुसार तीनों उच्च वर्णोंको अपने एवं अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके निमित्त अत्यल्प धन रखकर अपनी स्थितिके अनुसार शेष द्रव्यसे बहुव्ययसाध्य यज्ञोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है। यदि वे लोग अपने भरण-पोषणसे बचे हुए अधिक द्रव्यको यज्ञानुष्ठान अथवा अन्य पुण्य-कार्योंमें नहीं व्यय करते तो राजाका यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उनके अवशिष्ट द्रव्यको ज़ब्त कर उन लोगोंको दे दे जो यज्ञ अथवा अन्य पुण्यकार्य करनेके योग्य हैं। निम्नवर्णके लोगोंका सञ्चित धन भी, जिसका किसी पुण्य-कार्यके निमित्त उपयोग नहीं होता था, जब्त कर लिया जाता था और वह परोपकारके पुण्यकार्यमें लगा दिया जाता था। यह नियम प्रजाके लिये ही नहीं था, बल्कि राजा भी इस नियमके बन्धनसे मुक्त नहीं समझा जाता था। राजाका यह धर्म होता था कि वह किसी अर्जनशील कर्म अथवा शत्रुओंपर विजयप्राप्तिद्वारा धन संग्रह करके यज्ञानुष्ठान या अन्य पुण्य-कार्योंमें उसे लगा दे। कालिदासने रघुवंशके तृतीय सर्गमें इस विषयका बड़ा ही विशद वर्णन करते हुए कहा है कि दिलीप-पुत्र महाराजा रघुने विश्वजित्-यज्ञमें राजभवन-में अपने उपयोगके लिये कुछ मिट्टीके बर्तनोंको छोड़कर शेष सोना चाँदी आदि सर्वस्व दान दे दिया था। इस दानसे जब रघु सर्वथा धनहीन हो गये तब उनके पास एक कौत्स नामक विद्वान् ब्रह्मचारी अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये धन माँगने आये थे। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थामें रघुने ऋषिकुमार कौत्सको सन्तुष्ट करनेके लिये धनपति कुबेरसे धन प्राप्त किया था। भारतीय इतिहासके विद्यार्थियोंसे यह बात छिपी नहीं है कि महाभाष्यके रचयिता महर्षि पतञ्जलिके समयमें राजा पुष्यमित्रने अश्वमेध-यज्ञ किया था जिसमें उन्होंने मनु आदि स्मृतियोंके नियमानुसार समस्त अवशेष महान् धनराशिका वितरण कर दिया था।

यद्यपि देखनेमें तो यह एक धार्मिक नियम जान पड़ता है किन्तु वास्तवमें है यह आर्थिक। इस नियमका निर्माण बड़ी बुद्धिमत्तासे किया गया है। इसके उपयोगसे सभी लोगोंके पास बराबर बराबर धन बँट जाता है। प्रत्येक मनुष्यमें किसी विषयको सीखने एवं उपार्जन करनेके लिये आन्तरिक शक्ति भिन्न भिन्न होती है। चाहे इसका कारण पैतृक हो या पूर्व जन्मके प्रारब्ध-कर्म हों। कुछ लोगोंमें अतुल धनराशि-उपार्जन करनेकी अद्भुत शक्ति होती है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि दस व्यक्तियोंमेंसे नौ ऐसे होते हैं जिनको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति न कर सकनेके कारण दारुण दुःखोंका शिकार बनना पड़ता है। यही लोगोंका भाग्य है।

प्राचीन भारतमें हमें सदाचारपूर्ण मितव्ययिताके तीन विभिन्न आदर्श मिलते हैं। मीमांसकगण कहते हैं कि सदाचारसे उपार्जन किये हुए धनद्वारा यज्ञ करनेकी आवश्यकताके सम्बन्धमें वैदिक आज्ञाका पालन करना मनुष्य-का धर्म है। उनके मतानुसार आज्ञा ही धर्म कहलाता है। वैदिक कार्योंमें वैदिक आज्ञा और सामाजिक कार्योंमें सामाजिक आज्ञा या नियम ही उपयुक्त हैं। वैदिक ग्रन्थोंमें अथवा लौकिक उपदेशों एवं लेखोंमें जिस कार्यके लिये आज्ञा दी गयी हो, उसीको धर्म समझना चाहिये। इसके अनुसार जो मनुष्य वेदोक्त उपदेश अथवा अपनी जातिकी रीति-नीतिके अनुसार कार्य करता है वह नैतिक मर्यादाके भीतर ही है। इस नियमके अनुसार एक बुद्धिमान् पुरुष मनमाना धन कमाकर अपनी इच्छानुसार धार्मिक एवं पुण्यके कार्योंमें व्यय कर सकता है। इसीलिये स्मृतिकारोंने यह नियम बनानेकी आवश्यकता समझी कि प्रत्येक मनुष्यको अपने पास उतना ही धन रखना चाहिये जो तीन वर्षके उसके अपने एवं कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये पर्याप्त हो। इससे अधिक रखना न्याय-विरुद्ध था। कुछ स्मृतियोंमें तो तीन वर्षकी जगह तीन महीनेकी ही अवधि बतलायी है। इस नियमको अव्यवहारिक समझकर श्रीमद्भगवद्गीता एवं

अन्य ग्रन्थोंमें निष्काम भावसे धार्मिक तथा लौकिक कार्य करनेके लिये आज्ञा दी गयी है। मनुष्यको कर्म अवश्य करना चाहिये किन्तु करना चाहिये फलकी कामनाको त्याग कर। सदाचारपूर्ण मितव्ययिताकी स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भागवतके ७ वें स्कन्धके चौदहवें अध्यायमें की गयी है। वहाँ महाराज युधिष्ठिर एवं श्रीनारदजीका संवाद है।

श्रीनारदजीने कहा है कि मैं जिस सिद्धान्त (सदाचार-पूर्ण मितव्ययिता) के सम्बन्धमें तुमसे कहता हूँ वह अजागर ऋषिने प्राचीन कालमें भक्त प्रह्लादको बतलाया था। संवाद इसप्रकार है—

युधिष्ठिर-हे देवर्षि! मुझे उस पथका निर्देश कीजिये जिसको ऋषि अजागरने मेरे सदृश गृहस्थके कर्तव्योंसे अनभिज्ञ मनुष्यको उच्चपदकी प्राप्तिके निमित्त बतलाया है।

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा।
याति देवऋषे! ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः॥
(भागवत ७।१४।१)

नारद-हे राजन्! प्रत्येक गृहस्थको प्रभु नारायणकी प्रसन्नताके लिये अन्य किसी भी फलकी इच्छा न रखकर महर्षियोंकी सेवा करनी चाहिये। धनोपार्जनके निमित्त कार्य करते हुए प्रत्येक मनुष्यको समझ रखना चाहिये कि उसे उतना ही धन अपने पास रखना उचित है जितना उसकी उदर-पूर्त्तिके लिये पर्याप्त हो। जो इससे अधिक धन रखनेकी इच्छा करता है वह चोर है।

'अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।'

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू समस्त लौकिक कर्म अपने स्वार्थके लिये न करके केवल समाज-हितके उद्देश्यसे ही किया करते थे।

सदाचारपूर्ण मितव्ययिताके जाननेवाले अद्वैतवादियोंकी दृष्टिसे संसार तथा सांसारिक कार्योंका संन्यास ही सबसे उत्कृष्ट धर्म है। जैनों तथा बौद्धोंने भी संन्यासको ही मनुष्यका सर्वप्रधान कर्तव्य बतलाया है।

यदि किसी मनुष्यको इसप्रकारकी शिक्षा न मिली हो जिसके कारण वह कुमार्गकी ओर आकर्षित हुए बिना ही अपने मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखकर संसारका त्याग न कर सके, तो वह चाहे राजा हो या रङ्क, उसे अपने कर्मोंका फल समाजके हितार्थ उत्सर्ग कर देना चाहिये। प्राचीन भारतके राजा तथा समृद्ध पुरुष अपना सञ्चित धन, कर्मके इसी सिद्धान्तके अनुसार, यज्ञानुष्ठान एवं अन्यान्य पुण्य-कार्योंमें लगाया करते थे।

भगवान् रामचन्द्रजीने लङ्कासे लौटकर देखा कि साधु भ्राता भरतके मितव्ययितायुक्त राजप्रबन्धसे राजकीय कोष धनसे पूर्ण है, तब उन्होंने उस सञ्चित धनको अपने सुखके निमित्त खर्च करने अथवा अन्धाधुन्ध लुटा देनेकी अपेक्षा एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान कर उसीमें उत्सर्ग कर देना उचित समझा। उनके यज्ञानुष्ठानका उद्देश्य केवल लोगोंके सामने आत्म-त्यागका एक जीता-जागता आदर्श रखना तथा निष्काम कर्मके सिद्धान्तमें अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करना था।

लोगोंकी विभिन्न क्रियाओंको नियमितरूपसे चलाने तथा प्रत्येक व्यक्तिकी नैतिकताकी रक्षा करनेके लिये भारतवर्षके प्राचीन ऋषियोंने तीन नियमोंकी रचना की थी (१) वैदिक अथवा सामाजिक आज्ञाके अनुसार कर्म (२) निष्काम भावसे किये जानेवाले कर्म, और (३) कर्म एवं संसार दोनोंका त्याग।

इस प्रकारके सदाचारके नियम लोगोंके आर्थिक एवं राजनैतिक जीवनको ऐसे साँचेमें ढाल देते थे जिससे मनुष्य-जातिका कल्याण होता था। अनहङ्कारता ही इन नियमोंका तत्त्व था और किसी भी मनुष्यको अपने मानसिक एवं शारीरिक सुखोंके लिये द्रव्य-व्यय करनेकी स्वतन्त्रता नहीं थी।

अतः श्रीरामचन्द्रजीने जिस अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया, वह एक बहुव्यय-साध्य धार्मिक कार्य था, जिसका अनुष्ठान किसी स्वार्थके लिये नहीं अपितु सर्व-साधारणके कल्याणार्थ किया गया था। इसीप्रकारके इन्हीं निष्काम कर्मोंके प्रभावसे उन्होंने राजर्षिका पद प्राप्त किया। श्रीरामचन्द्रजीके सामने रघु, जनक तथा अन्य राजर्षियोंके उदाहरण उपस्थित थे। उनका जीवन देवताओं तथा मनुष्योंकी भलाईके लिये था, अपने लिये नहीं।

रामायणमें आदर्श गृहस्थ

(लेखक—महामहोपाध्याय पं॰ श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण)

त्म-स्वरूपकी सम्यक् उपलब्धि किये बिना इस संसारमें कोई भी सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवनमें स्थिति और उन्नति नहीं कर सकता। यह सिद्धान्त जैसे व्यक्तिके लिये अखण्डनीय सत्य है, जातिके लिये भी वैसे ही अनुपेक्षणीय ज्वलन्तमान सत्य है। व्यक्ति और जातिके इस आत्म-स्वरूपकी अनुभूति आजकल भारतमें क्रमशः क्षीणादपि क्षीणतर होती चली जा रही है और इसीके परिणामस्वरूप आज हम अपनेको भुलाकर, 'हमारे आत्माका स्वरूप क्या है? हमारी जीवनी-शक्ति कहाँ है? और हमारे जीवन-संग्राममें विजय एवं श्री प्राप्त करनेका असाधारण साधन क्या है?' इन बातोंकी खोजके लिये हम पाश्चात्य सभ्यताका अनुकरण करनेके निमित्त व्याकुल होकर भटक रहे हैं, पद-पदपर व्यर्थसंकल्प होकर देश विदेशमें अपमानित और लाञ्छित हो रहे हैं। जीवन भाररूप हो रहा है, और मोहमयी आशाका क्षीण प्रकाश भी क्रमशः अन्धकारके रूपमें परिणत होता जा रहा है। इस सर्वतोमुखी विपत्तिके कराल कवलसे छूटनेका जो सर्वप्रधान साधन है उसीका नाम है 'रामायण'। सनातनधर्मी हिन्दूके आत्मस्वरूपको पहचाननेके लिये प्रत्येक हिन्दूको रामायणका पाठ करना ही होगा। वेद, श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र, महाभारत, पुराण, तन्त्र, ज्योतिष, काव्य और नाटक आदिमें जिसका विस्तार है, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा और वेदान्तमें जिसकी अत्यन्त कठिनतासे समझमें आनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके द्वारा आलोचना की गयी है, हिन्दू-धर्मके उसी भूमात्म तत्त्वको सरल भाषामें विविध रसोंकी सहायतासे सबके मनःप्राणको प्लावितकर, जीवनके अनुभवोंके साथ मिश्रित कर और आनन्दमय आस्वादनके योग्य बनाकर रामायण हिन्दुओंके जातीय जीवनके संगठनका सर्वप्रधान साधन बन गयी है। यह रामायण ही हमारे विशृङ्खल और उद्देश्यहीन जातीयजीवनको फिरसे संगठित करेगी। यही विश्वास और यही आशा आज भी देशके सनातनधर्मी नेताओंको उनके गन्तव्य-पथमें पूर्ण सहायता दे रही है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भविष्यत्में यह विश्वास ही हमारी समस्त संगठन-शक्तियोंका केन्द्र-स्थान बनेगा।

गृहस्थ-जीवन ही जातिके इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदयका अनिवार्य साधन है। इस गृहस्थ-जीवनकी धर्मके ऊपर स्थापना करना और व्यक्तिगत भोग-कामना-रूपी पिशाचिनीके कराल गालसे मुक्तकर इसको ऐसा बना देना कि जिससे घर घरमें विवेक, आत्म-त्याग, प्रसाद, शान्ति और कर्त्तव्यपरायणताके अक्षय सुधासागरकी आनन्दमयी बाढ़ आ जाय। महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायणका मूल उद्देश्य यही है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये निष्कलंक महान् आदर्शकी बड़ी भारी आवश्यकता थी। मर्यादा महापुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र भारतीय आदर्शोंमें सर्व-शिरोमणि हैं, अतएव आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने उन्हींको नायक बनाकर कवि-कल्पनाके सर्वोच्च और सर्वोत्तम कीर्ति-स्तम्भरूप जिस महाकाव्य रामायणकी रचना की है, उसकी तुलना जगत्में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। सारे हिन्दू-भारतमें अनेक युगोंसे विद्वान् साधुओंका यही स्थिर सिद्धान्त है और यह अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता कि इस सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा अखण्ड सत्यके आधारपर हुई है।

हिन्दूका गृहस्थाश्रम आनन्द, सरलता, त्याग, परार्थपरता और विश्व-प्रेमका लीला-निकेतन है। इस आश्रमकी सफलतापर ही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासकी पूर्णता अवलम्बित है। इसके विपरीत इस आश्रमकी असफलता ही शेष तीनों आश्रमोंकी असफलताका कारण है। जिस दिनसे हिन्दूजातिने इस सत्यको भुलाना आरम्भ किया उसी दिनसे उसका अधःपतन होने लगा। इस गृहस्थाश्रमके सर्वाङ्गसुन्दर सरस चित्रको प्रत्येक हिन्दूके घरमें सुप्रतिष्ठित करनेके लिये ही महर्षि वाल्मीकिने युग-युगान्त-व्यापिनी कठोर तपस्या की थी। उसी तपस्याके अमृत फलका नाम है 'रामायण।' जिन मर्यादापुरुषोत्तमका आश्रय पाकर इस गृहस्थ-धर्मके समस्त अंग असाधारण पूर्णताको प्राप्त होकर सजीव हो उठते हैं, उसी मर्यादा-पुरुषोत्तमकी खोजमें सारा जीवन तपस्यामें बिताकर भग्न-हृदयसे जीवन-सन्ध्यापर उपनीत महाकवि वाल्मीकि आत्मशक्तिमें श्रद्धाहीन होकर

ऋष्यमूक पर रामजी

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
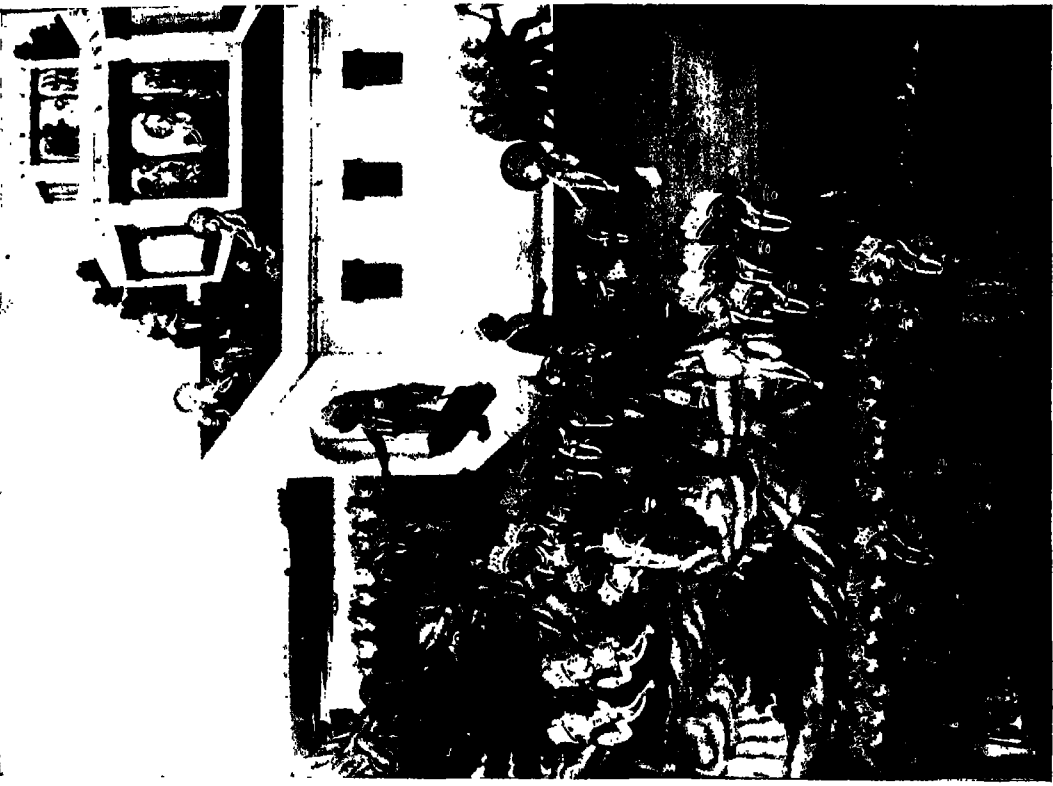
किष्किन्धामें लक्ष्मणजी।

तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना॥

अशोक-वाटिकामें रावण ।

तेहि अवसर रावनु तहं आवा । संग नारि बहु किए बनावा ।

सेतु-बन्धन ।

सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील ते लेहीं ॥
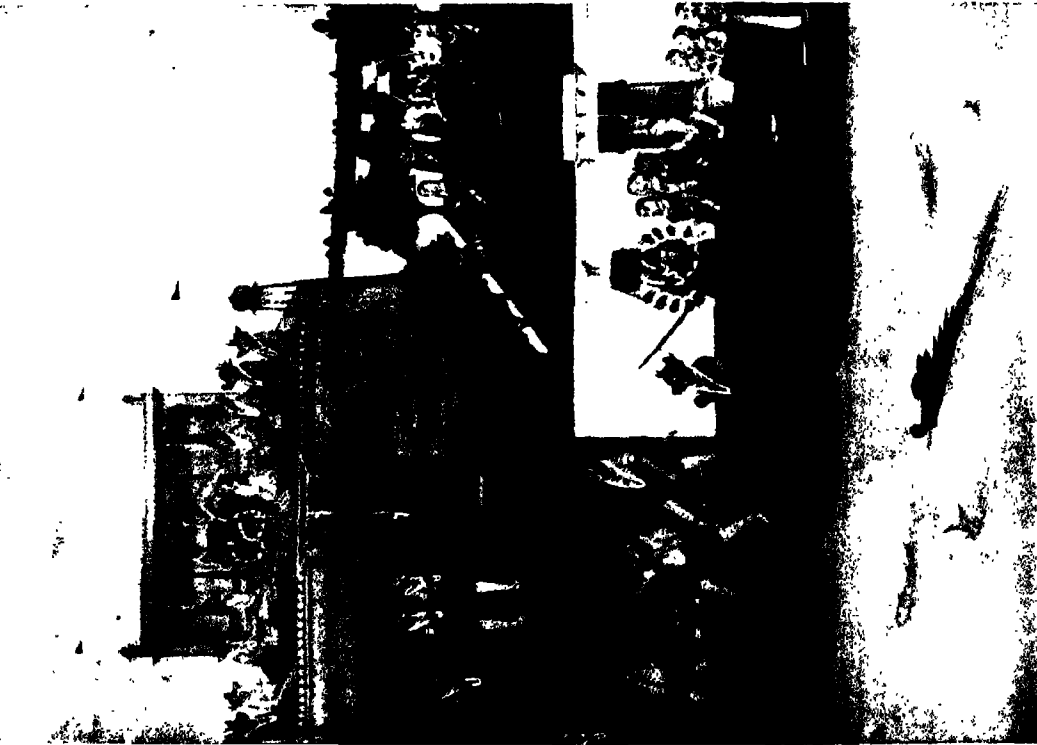
होते हुए पूर्ण मानवताके एकनिष्ठ सेवक महर्षि नारदकी शरण होकर उनसे पूछने लगे—

> कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
> चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ॥
> आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः ।
> कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥
> एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
> महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥
>
> (वा० रा० १ । १)

'हे महर्षे ! इस समय इस भूमण्डलपर ऐसा कौन पुरुष है जो पुरुषोचित समस्त गुणोंका आधार हो, बल और चरित्रसे सम्पन्न हो, प्राणीमात्रका हितकारी हो, इन्द्रिय-विजयी, जितक्रोधी और तेजस्वी हो एवं जो किसी-के प्रति असूया न करता हो तथा युद्धक्षेत्रमें जिसके रोषको देखकर देवता भी डरते हों। यदि ऐसे कोई महापुरुष हों तो आप उन्हें जानते होंगे। मैं अत्यन्त कौतूहलसे उनकी बातें सुनना चाहता हूँ।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमके अनुसन्धानमें व्याकुल तपःक्लिष्ट महर्षि वाल्मीकिके द्वारा इस प्रकारके नवीन विश्व-हितकर प्रश्नको सुन देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था, सो इसप्रकार है—

> बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
> मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥
> इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
> नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान् वशी ॥
> बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
> आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥
> समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
> पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥
> धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
> यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥
> प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः ।
> रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥
> रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
> वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥
> सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।
> सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥
> सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
> आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥
> स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः ।
> समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥
> विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
> कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
> धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
>
> (वा० रा० १ । १ । ७ से १९)

'हे मुने ! आपने जिन अति दुर्लभ गुणोंका नाम लिया है उन सब गुणोंसे युक्त एक पुरुष हैं, मैं विशेष-रूपसे समझकर उनके सम्बन्धमें आपको बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनिये। उनकी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पत्ति हुई है और वे रामनामसे सबमें प्रसिद्ध हैं। वे महावीर होनेपर भी जितेन्द्रिय हैं, द्युतिमान् हैं, धीर हैं और मनको वशमें किये हुए हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिपरायण, वक्ता, बड़े ही सुन्दर और अपने शत्रुओंको परास्त करनेवाले हैं। उनकी भुजाएँ जानुतक लम्बी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त ललाट है और उनका पदविन्यास अत्यन्त मनोहर है। उनके सभी अंग सुसंगठित और सुविभक्त हैं। शरीरकी कान्ति नेत्रोंको स्निग्ध करनेवाली है। वे प्रतापी हैं। उनका वक्षःस्थल विशाल है, आँखें बड़ी बड़ी हैं, वे अत्यन्त सौन्दर्यशाली और शुभ लक्षण-सम्पन्न हैं, वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले और सत्यपरायण हैं। प्रजाका हित करना ही उनके जीवनका प्रधान कार्य है। वे यशस्वी, पूर्ण ज्ञानी, शुद्ध और साधुओंके वशीभूत हैं, वे समाधि-सम्पन्न, प्रजापतिकी भाँति सदैव शुभ कार्योंके विधाता और शत्रुओंका दमन करने वाले हैं। वे प्राणियोंके और समस्त धर्मोंके रक्षक हैं, अपने धर्मकी और स्वजन बान्धवोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वे समस्त वेदवेदाङ्गोंके रहस्यको जाननेवाले हैं और धनुर्वेदमें भी पूर्ण प्रवीण हैं। वे सब शास्त्रोंके गूढ़ तत्त्वको पूर्णरूपसे जानते हैं। उन्हें किसी विषयकी विस्मृति नहीं होती। वे असाधारण प्रतिभावाले हैं। सबके प्रिय और साधु प्रकृति हैं। दीन नहीं हैं, साधु लोग उनसे प्यार करते हैं। वे बुद्धिमान् हैं और सभीके सम्मान्य हैं। जिस तरह समुद्र नदियोंमें प्रधान है उसी प्रकार वे भी सबमें प्रधान हैं। वे सबके

साथ समान भावसे व्यवहार करते हैं। सर्वदा प्रियदर्शन हैं। समुद्रके समान गम्भीर और हिमालयके समान धीर हैं। साक्षात् विष्णुके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं। क्रोधमें वे प्रलयकालकी अग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं तथा त्यागमें कुबेरके समान और सत्यमें तो साक्षात् धर्म ही हैं।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है वही समस्त रामायणका बीज है। सातों काण्डोंमें इन्हीं सब दुर्लभ गुणोंसे सम्पन्न मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके त्रिलोकपावन-चरित्रोंकी विचित्र घटनाओंका वर्णन है। इस वर्णनके वैचित्र्य और माधुर्यसे आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने रामायण-में जिस उत्ताल भाव-तरङ्ग-माला-संकुल अगाध-रस समुद्रकी सृष्टि की है, उसीके तरंग-विक्षिप्त कणोंके कमनीय स्पर्शसे आज भी भारतके असंख्य नर-नारियोंके संसार-ताप-दग्ध हृदय शीतल होते हैं, नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंकी बाढ़ आ जाती है, शोक, ताप और दारिद्र्यसे विक्षुब्ध आत्मामें नवीन निःस्वार्थ कर्तव्यनिष्ठाका विमल प्रवाह बहने लगता है।

वाल्मीकिके बाद भी भारतमें बड़े बड़े महाकवि हो गये हैं, और श्रीरामके चरित्रका अवलम्बन कर अपनी असाधारण कवित्व-शक्ति और अलौकिक सृष्टि-निपुणताके द्वारा सहृदय समाजको आश्चर्यसे पुलकित कर रहे हैं। यह बात जितनी उज्ज्वल सत्य है, इसकी अपेक्षा अधिकतर आज्वल्य-मान सत्य यह है कि इन समस्त पूर्ववर्ती महाकवियोंमेंसे किसीने श्रीरामायण-वर्णित चरित्रोंकी छायाका अनुकरण करनेके सिवा कुछ भी नवीन रचना नहीं की। महाकविके रामायणरूप नन्दन-काननमें जो अनन्त सुरभित पुष्प-समुदाय खिले हुए हैं, उसीमेंसे चुन चुनकर कुछ कुसुमोंका संग्रह करके राजशेखर, कालिदास, भवभूति, जयदेव और मुरारि आदि अगणित मालाकाररूप महाकवियोंने एक एक सुन्दर नवीन हार गूँथ दिया है, इन हारोंमें नाना वर्ण और नाना प्रकारके सुगन्धिवाले पुष्पोंके समावेशकी शैलीमें उत्कृष्ट तारतम्य होनेके कारण उनके काव्योंकी सुन्दरतामें तारतम्य दीखता है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि मूल चरित्रके अङ्कित करनेमें इनकी कोई विशेष कृति नहीं है।

गृहस्थके सामाजिक सुखोंके लिये जो कुछ स्वाभाविक साधन हैं, महर्षि वाल्मीकिने उन सभीको एक रामचरित्रका प्रधानरूपसे अवलम्बन करके, अपनी रामायणमें सुन्दर और निष्कपट भावसे विकसित कर दिया है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र, आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मन्त्री, आदर्श पुरोहित, आदर्श सेवक और आदर्श पड़ोसी आदि हिन्दू-गृहस्थ-जीवनके सभी सार-साधनोंसे महाकवि वाल्मीकिका साधना-सृष्ट आदर्श-गृहस्थ अपरिमितरूपसे नित्य परिपूर्ण है। इस आदर्श हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आनन्द न लेकर आज जो हिन्दू पाश्चात्य गृहस्थ-जीवनके अनुकरणमें प्रवृत्त हैं, इस पुण्य भारतमें उसके लिये गृहस्थाश्रमके पालनकी चेष्टा विडम्बनाके सिवा और क्या हो सकती है? हिन्दू जातीय-जीवनके सार-सर्वस्व रामायणका यथार्थ रस त्रिताप-तप्त वर्तमान हिन्दूसमाजपर विशेषरूपसे बरसानेके लिये 'कल्याण' के सञ्चालकोंने 'रामायणाङ्क' निकालनेका जो यत्न किया है, इसके लिये वे प्रत्येक हिन्दू-हृदयसे कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद प्राप्त करनेके पात्र हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

खड्ग राम नाम है

रावण निशङ्कपर धीर रघुबीर जिमि
कौरव-कठोरन पै पार्थ बलधाम है ॥ १ ॥
काली महिषेश हेतु भीम जरासन्धपर
घोर बलशाली नाग कालीपर श्याम है ॥ २ ॥
कुम्भज जलेशपर चक्र शिशुपाल शीश
दानव विदारनको अञ्जनी ललाम है ॥ ३ ॥
पाप तम पुञ्ज सबै नासत दिनेश जिमि
त्रास यमदूतनको खड्ग रामनाम है ॥ ४ ॥

गोविन्दराम अग्रवाल

हिन्दूसमाजपर रामपूजाका प्रभाव

(लेखक—स्वामीजी श्रीदयानन्दजी)

शरीर, मन, और प्राणसे पूज्यपुरुषमें तल्लीन होकर क्रमशः तद्गुण-प्राप्ति, तदाकारभाव और तद्रूपताकी सिद्धि ही पूजाका क्रमोन्नत लक्ष्य है। अतः मानवको पूर्ण मानव तथा गृहस्थको आदर्श गृहस्थ बनानेके लिये इस युगमें श्रीराम-पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है। ऐसा पूर्ण मनुष्य कौन है, जिसके आदर्शको देखकर प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवनको पूर्ण जीवन बना सकता है तथा प्रत्येक क्षत्रिय नरपति अपने राजधर्मके पूर्णानुष्ठानद्वारा लोक-परलोकमें कृतकृत्य हो सकता है। महामुनि वाल्मीकिके इसप्रकार प्रश्न करनेपर देवर्षि नारदने श्रीभगवान् रामचन्द्रको ही ऐसे पूर्णमानवके आदर्शरूपसे वर्णन किया था।

श्रीरामचन्द्र संयतात्मा, महावीर्यवान्, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, समुद्रतुल्य गम्भीर, हिमालयतुल्य धीर, विष्णुतुल्य वीर्ययुक्त, चन्द्रतुल्य प्रियदर्शन, कालाग्नितुल्य रणतेजयुक्त, पृथिवीतुल्य क्षमायुक्त, कुबेरतुल्य धनदाता, धर्मराजतुल्य सत्यव्रत, कर्त्तव्यपालनमें वज्रतुल्य कठोर, स्वभावतः कुसुमसे भी कोमल—इत्यादि सभी आदर्श-गुण एक ही साथ श्रीभगवान् रामचन्द्रमें प्रकट होनेके कारण ही वे पूर्ण आदर्श पुरुष माने जाते हैं और उनकी हार्दिक पूजाद्वारा उपासक क्रमशः उनमें तन्मय होकर उनकी अलौकिक गुणावलीका लाभ कर सकते हैं। यही हिन्दू-समाजपर श्रीरामपूजाका परम प्रभाव है।

अब इन अलौकिक गुणोंपर कुछ विवेचन किया जाता है। श्रीरामचन्द्र एकाकी ही पूर्णावतार नहीं थे। चारों भाई मिलकर पूर्ण थे। यही वाल्मीकि रामायणमें प्रमाण है।

> कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।
> विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्॥
> भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
> साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः॥
> अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ।
> वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ॥
>
> (वा० १।१८)

अवतार-विवेचनमें श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णुके अर्धांश, भरत चतुर्थांश तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रत्येक अष्टमांश थे। चारों मिलकर पूर्ण थे। गृहस्थाश्रममें सम्मिलित रहना, एकप्राण एक-हृदय रहना ही पूर्णता तथा गार्हस्थ्य-सुख-शान्तिका लक्षण है, यही सत्य आदर्श इस अवतार-रहस्यके द्वारा प्रकट हुआ है। क्या उपासक इस रहस्यको रामपूजा द्वारा हृदयङ्गम करके गृहस्थाश्रममें भ्रातृप्रेमका उच्च आदर्श स्थापन न करेंगे? 'विदारयन्ति कुलमिति दाराः' स्त्री भाई भाईमें कलह कराकर कुलको फोड़फाड़ देती है, इसी लिये संस्कृत-भाषामें स्त्रीको 'दारा' कहा जाता है। किन्तु चारोंके मिलकर पूर्ण होनेके कारण 'दारा' शब्दकी यह चरितार्थता रामगृहमें कदापि नहीं हुई थी। यह सभी लोग जानते हैं कि श्रीरामचन्द्र सीताकी अपेक्षा भाई लक्ष्मणपर अधिक प्रेम करते थे। इसी कारण शक्ति-शैल-मूर्च्छित लक्ष्मणके लिये सकरुण विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रने कहा था—

> शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
> न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः॥
> परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
> यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः॥

'संसारमें सीता-सदृश स्त्री मिल सकती है। किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मणके प्राण न रहे तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा।' इस बातको श्रीरामचन्द्रजीने सार्थक करके भी दिखा दिया। प्रजावत्सल श्रीरामचन्द्र प्रजारञ्जनके लिये निर्दोषा सहधर्मिणी सीताको वनवास देकर भी जीवित थे, किन्तु दैवकारणसे जब भाई लक्ष्मणको उन्हें परित्याग करना पड़ा तो फिर श्रीरामचन्द्र जीवन धारण न कर सके और लक्ष्मण-वर्जनके कुछ ही दिनों बाद आपने अपनी लीला संवरण कर ली। उनके जीवनमें पत्नी-प्रेम, भ्रातृप्रेम आदि सब प्रेमोंसे धर्मप्रेम विशेष रूपसे था, इसका भी ज्वलन्त प्रमाण उन्हींके इन शब्दोंसे प्राप्त होता है—

> विसर्जये त्वां सौमित्रे माभूद्धर्मविपर्ययः।

'तुम मेरे प्रति प्रिय होनेपर भी धर्मके लिये मैं तुम्हें परित्याग करता हूँ।' क्या रामोपासक रामपूजाके द्वारा इस अलौकिक शिक्षाका लाभ नहीं कर सकेंगे?

भगवान् श्रीरामचन्द्र किसके मित्र नहीं थे ? वे नरके मित्र थे, वानरके मित्र थे, देवताके मित्र थे, राक्षसके मित्र थे, प्रेतके मित्र थे, भीलके मित्र थे, चाण्डालके मित्र थे, निषादके मित्र थे, मल्लाहके मित्र थे, कोलके मित्र थे और किरातके मित्र थे। सभीके मित्र होने पर भी वे अपनी पूर्ण मर्यादापर पूर्ण प्रतिष्ठित थे। वर्णाश्रम मर्यादाका उल्लङ्घन जरा भी नहीं करते थे। भगवद्गीताके सिद्धान्तानुसार 'ब्राह्मणे गवि हस्तिनी शुनि चैव श्वपाके च' अभिन्न आत्माके विचारसे 'समदर्शी' थे किन्तु 'समवर्ती' नहीं थे। कठोर परशुरामके प्रति उनकी उक्ति द्वारा यह स्पष्ट प्रमाणित है।

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥

(वा० रा० १।७६।६)

'आप ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय हूँ, इस कारण मैं आपके ऊपर अस्त्रप्रहार नहीं कर सकता।'

अबोध पक्षपाती मनुष्य श्रीरामपर शबरीके जूठे बेर खानेका वृथा ही दोष लगाते हैं। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि किसीके भी प्रामाणिक ग्रन्थमें इसका प्रमाण नहीं मिलता है। अतः यह बात सर्वथा निर्मूल है। हो सकता है कि शबरीने एक बेर चखकर देख लिया हो कि इस पेड़के बेर मीठे हैं या नहीं, किन्तु सभी बेर चखकर उसने श्रीभगवान्को खिलाये थे, यह सम्पूर्ण मिथ्या कल्पनामात्र है।

भगवान् श्रीकृष्ण 'मदनमोहन' और श्रीभगवान् रामचन्द्र 'मदन-दहन' थे। मदन-मोहन होनेके कारण ही श्रीभगवान् कृष्णने गोपियोंकी रमणेच्छाको दग्ध नहीं किया था, किन्तु उसी भावसे उन्हें अपनेमें तन्मय करके उनकी कामादि वृत्तियोंका नाश कर दिया था। उन्होंने स्वयं ही कहा है—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते॥

'कामभावसे भी भगवान्के प्रति अनुराग करनेपर वह काम काम नहीं रहता है, जिस प्रकार भूंजा हुआ धान फल उत्पन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवान्में अर्पित काम भी निर्बीज हो जाता है।' किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम होनेके कारण 'मदनमोहन' नहीं हो सकते थे। उनके लिये मदनभस्मकारी-महादेवकी तरह 'मदनदहन' होना ही मर्यादानुकूल था। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामने काम-भिखारिणी सूर्पणखाको काम न देकर उसके नाक-कान कटवा दिये थे और संसारकी स्त्रियोंको यह शिक्षा प्रदान की थी कि पर-पुरुष रमणेच्छा-लोलुप व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी ऐसी ही दुर्दशा होनी चाहिये। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामचन्द्र राजाओंके लिये प्रायः अति कठोर एकपत्नी-व्रतका पूर्ण पालन कर सके थे और रावणके हाथसे सीताको छुड़ाकर अग्निमें उनका प्रवेश कराया था तथा केवल प्रजारञ्जनार्थ ही सीताको वनवास देकर उनसे कठोर तपस्या और ब्रह्मचर्यका पालन करवाया था। यह अलौकिक आदर्श प्रत्येक गृहस्थके लिये अवश्य पालनीय है।

एक-पत्नीव्रत तथा एक-पतिव्रतको पणपर चढ़ा देना गृहस्थ नर-नारीके लिये सर्वोत्तम आदर्श है और इसी आदर्शका ज्वलन्त उदाहरण श्रीराम-सीताके जीवनमें मिलता है। बालि-वधके लिये जब सुग्रीवसे श्रीरामचन्द्रको यह मालूम हुआ कि एक बाणसे सप्ततात बेध करनेवाले वीर ही बालिको मार सकते हैं, तब श्रीभगवान्ने धनुषमें बाण चढ़ा कर उसी समय यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि सीताके सिवा अन्य किसी स्त्रीमें मेरी कभी स्त्री-बुद्धि नहीं है तो मेरा बाण सप्ततात बेधकर लौट आवेगा।' इस प्रकार प्रणपर चढ़ा हुआ एक-पत्नी-व्रत पूरा ही उतरा था। ऐसेही लंकापुरीमें जब महावीरको दग्ध करनेके लिये उनकी पूँछपर वस्त्र लपेटकर रावणने आग लगवादी थी तब पूँछ जलनेका संवाद सुन सीतादेवीने भी एक-पतिव्रतको प्रणपर चढ़ाया था और उसीकी महिमासे उसके लिये अग्नि चन्दनवत् शीतल हो गयी थी। जिस समाजके नर-नारियोंमें यथार्थतः राम-सीताकी पूजा प्रचलित होगी, वहाँ इस अनुपम आदर्शका अवश्य अनुकरण होगा, जिससे गृहस्थाश्रम साक्षात् नन्दनकाननके रूपमें परिणत हो जायगा, वहाँ प्रेमकी मधुर मन्दाकिनी सदाके लिये प्रवाहित होती रहेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनको मधुमय बनानेवाली-आस्तिकता, तितिक्षा, द्वन्द्व-सहिष्णुता, वैराग्य, पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृ-भक्तवत्सलता, शरणागत-परायणता, ज्ञानस्पृहा, सच्चरित्रता आदि सभी गुणावली श्रीराम-जीवनमें पूर्ण परिस्फुट हुई थी, जिनका सत्य अनुकरण भक्त-जीवनको भी अवश्य ही मधुमय बना सकेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

'अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः ।'

इन्द्र, कुबेर, वरुण, चन्द्र, सूर्य, यम, अग्नि, पवन,–इन अष्ट लोकपालोंके अंशसे राजाका निर्माण होता है, यही आर्यशास्त्रका सिद्धान्त है। इन्द्रका अंश रहनेके कारण राजामें प्रभुत्व करनेकी शक्ति आती है। कुबेरका अंश रहनेसे धन एकत्रित करनेकी शक्ति और वरुणका अंश रहनेसे आवश्यकतानुसार प्रजाको धन-दानकी शक्ति आती है। चन्द्रके अंशसे प्रजाको सुखी रखनेकी शक्ति और सूर्यके अंशसे प्रजामें ज्ञानविद्या-प्रसारकी शक्ति आती है। यमके अंशसे न्यायानुकूल विचार-शक्ति, अग्निके अंशसे पवित्रता और पवनके अंशसे गुप्तचरद्वारा प्रजाकी कुशल जाननेकी नीति राजाको प्राप्त होती है। इसप्रकारसे अष्टगुणविभूषित राजा ही वास्तवमें प्रजारञ्जक राजा हो सकते हैं। शुक्रनीतिमें लिखा है—

यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम् ।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ॥

धर्मपरायण राजामें ही उपर्युक्त आठ देवताओंके अंश होते हैं, अधार्मिक राजामें असुर तथा राक्षसोंके अंश होते हैं, ऐसा राजा प्रजारञ्जक न होकर प्रजापीडक होता है और प्रजाका सर्वनाश करके ही अपना स्वार्थसाधन करता है। इसप्रकार प्रजापीडनका अन्तिम परिणाम क्या होता है, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें सुनिये—

प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्यं कुलं श्रियं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्तते ॥

प्रजापीडनरूपी सन्तापसे उत्पन्न दावानल (विद्रोहाग्नि) राजाके राज्यको, वंशको, लक्ष्मीको और प्राणको जलाये बिना निवृत्त नहीं होती। आज समस्त भारतवर्ष इसी घोर सन्तापसे सन्तप्त है। किन्तु रामराज्यमें ठीक इससे विपरीत था। श्रीभगवान् रामचन्द्र अत्यन्त प्रजावत्सल थे, प्रजारञ्जन ही उनका एकमात्र व्रत था, प्रजाके सुखके लिये ही उनका जीवन धारण था। संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं था, जो केवल प्रजारञ्जनार्थ वे नहीं कर सकते थे। उनके समस्त प्राण, समस्त सुख, समस्त पुरुषार्थ प्रजारञ्जनरूपी होमाग्निमें पवित्र घृतकी तरह होमे जा चुके थे। संसारमें ऐसा कोई नरपति नहीं मिलेगा जो केवल प्रजारञ्जनके लिये पूर्ण निर्दोषा, परमप्रिया, पतिव्रता सीता-सी अपनी सहधर्मिणीका भी परित्याग कर दे। किन्तु श्रीरामचन्द्रके जीवनमें ऐसा हुआ था। उन्होंने सब ओरके कर्तव्यको तिलाञ्जलि देकर, यहाँतक कि अपने हृदयके शुद्ध ज्ञानका भी गला घोंटकर, पूर्ण पवित्र जाननेपर भी केवल प्रजारञ्जनके लिये ही परम सती, परम प्रेमवती निर्दोषा सीताको वनवास दे दिया था। ये सब उनके अपूर्व जीवनमें अलौकिक मर्यादा-स्थापनके दृष्टान्त हैं, उन्होंने एक समय अन्य राजाओंसे भी कहा था—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालाः,
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।
मद्बद्धोऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्,
काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

श्रीरामचन्द्रने अत्यन्त विनयके साथ राजाओंसे प्रार्थना की कि वे उनके द्वारा निर्मित धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें। इस धर्मसेतुकी सुरक्षाका ही प्रत्यक्ष फल एकादश-सहस्रवर्षव्यापी रामराज्यमें आर्यप्रजाको प्राप्त हुआ था, जिसकी मधुर स्मृतिको आजतक भी आर्यप्रजा नहीं भूल सकी है। रामायणके युद्धकाण्डमें कहा है—

श्रीरामचन्द्र महाराजके राज्यकालमें स्त्रियोंको वैधव्य-दुःख नहीं देखना पड़ता था और किसीको भी सर्पभय तथा रोगका भय नहीं था। चोर, दस्यु आदिका अत्याचार नहीं था, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं था। वृद्ध माता-पिताको कभी अपने जीवनमें मृतपुत्रका श्राद्धकर्म नहीं करना पड़ता था। सभी लोग आनन्दपूर्ण तथा धर्मपरायण थे। श्रीरामचन्द्रके धार्मिक भावका आदर्श पाकर कोई भी परस्पर हिंसामें लिप्त नहीं होता था। सहस्रों पुत्रोंके साथ सहस्रों वर्षों तक रोग और शोकशून्य होकर मनुष्य जीवित रहते थे। वृक्ष सदा ही फल-फूलोंसे सुशोभित रहा करते थे, इच्छामात्रसे ही मेघ जल बरसाते और शीतल, मन्द, सुगन्ध, सुखस्पर्शी वायु बहा करती थी। अपने कर्मसे तृप्त होकर प्रजा अपने कर्ममें ही तत्पर रहती थी। सभी लोग धर्मपरायण थे, कहीं भी मिथ्या व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी सुलक्षणसम्पन्न थे। यदि राजा-प्रजामें सच्ची रामपूजा प्रचलित होगी तो पुनः भारतमें आदर्श क्षत्रिय नरपति और आदर्श राजभक्त प्रजा उत्पन्न हो जायगी जिससे सबको रामराज्यका विमल सुख पुनः प्राप्त हो सकेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। यही हिन्दू-समाजपर रामपूजाके प्रभावका कथञ्चित् दिग्दर्शन है।

कौन बड़ा है ?

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)

जब हम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन-घटनाओंपर दृष्टि डालते हैं तो आनन्दकन्द श्रीकृष्णजी हमारे सम्मुख एक महान् योगिराज, अद्भुत राजनीतिज्ञ तथा षोडश कलासे पूर्ण अजेय योद्धाके रूपमें आते हैं। और पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी विकटसे विकट परिस्थितिमें कर्त्तव्य-मार्गसे अविचलित, महान् तपस्वीके रूपमें दर्शन देते हैं। भगवान् रामके जीवन रथको बड़ी बड़ी दुर्जेय और प्रतिकूल स्थितियोंमेंसे पार होना पड़ता है। उनके जीवनसे मनुष्यमात्रको कठिनाइयोंका सामना करनेकी अमोघ शिक्षा मिलती है। उदाहरणस्वरूप—प्रतिकूल परिस्थितियोंमें शान्तभावसे सामना करनेकी उस शक्तिकी झलक हम इस समय भी राम-नाम-प्रेमी, जगद्वन्द्य महात्मा गान्धीके जीवनमें पद-पदपर देख सकते हैं। अब लोग कभी कभी यह प्रश्न करते हैं कि इन दोनोंमें बड़ा कौन है? वैसे तो जिसका चित्त जिसमें रम जाय वही उसके लिये सब कुछ होता है। हम चाहे जिस रूपमें उसे भजें, रूपभेद होनेसे फलाफल बड़ा-छोटा नहीं हुआ करता। ऐसे भी भगवान् श्रीकृष्णको १६ कलाका अवतार मानते हैं और श्रीरामको १२ का। इसको हम चाहे यह कहें कि रुपया १६ आनेके बराबर होता है अथवा रुपया १२ माशेका होता है, बात एक ही है। ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि श्रीकृष्ण चन्द्रवंशी थे और श्रीराम सूर्यवंशी। चन्द्र १६ कलाओंमें पूर्ण होता है और सूर्य १२ राशियोंमें। अतः इन दोनों अवतारोंमें किसी भी प्रकार कोई छोटा बड़ा नहीं है।

—•●•—

ज्ञानी-पंडित आदि कौन हैं ?

सोइ पण्डित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥
सोइ ज्ञानी सोइ गुनीजन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेषकी हानि॥

श्रीरामायणमें मांसाहार

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीबालचन्दजी शास्त्री)

यह तो सर्वसम्मत है कि भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और उनका चरित्र परम विशुद्ध एवं आदर्श है। जिस प्रकार संसारी पामर जीव मद्यपान तथा मांस-भक्षणादि-जैसे दूषित कर्मोंमें लगे हुए हैं, उस प्रकार ऐसे निन्द्य-कर्मोंमें जब भगवान्‌के भक्तजनोंका भी निरत होना सर्वथा असम्भव है, तब साक्षात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें उक्त निन्द्याचरणकी कल्पना करना महा अनर्थके सिवा क्या कहा जा सकता है। कुछ लोग भ्रमवश श्रीरामके चरित्रमें मांस-भक्षणका आरोप करते हैं और इसके प्रमाणमें वे श्रीवाल्मीकीय रामायणके उन श्लोकोंका आश्रय लेते हैं जिनमें अर्थाभाससे इन कर्मोंकी प्रतीति होती है, पर खेद है कि वे भगवान् रामचन्द्रकी उन अटल और अलङ्घनीय प्रतिज्ञाओंपर ध्यान नहीं देते।

अच्छा, अब सर्वप्रथम यह देखना चाहिये कि भगवान्‌की वे प्रतिज्ञाएँ कौन-सी हैं, जिनमें मांसादिसे विरत होनेके विषयमें कुछ कहा गया है। देखिये, वन-गमनके समय महाराजा दशरथ और महारानी कैकेयीके प्रति भगवान् क्या कहते हैं—

> चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
> कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्॥
>
> (वा० रा० २। २०।२९)

अर्थात् विजन वनमें मैं चतुर्दश वर्षतक कन्दमूल फलोंसे जीवन व्यतीत करता हुआ मुनिजनोंकी तरह मांसको त्यागकर निवास करूँगा। और भी कहा है—

> फलानि मूलानि च भक्षयन् वने
> गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च।
> वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
> सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः॥
>
> (वा० २। ३४।५९)

फिर मुनिराज भरद्वाजजीके प्रति भी भगवान्‌ने इसी वाक्यको कहा है—

> धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः।

ये भगवान्‌की प्रतिज्ञाएँ हैं। इसके साथ यह भी ध्यान देने योग्य है कि मर्यादा-पुरुषोत्तमकी सामान्य प्रतिज्ञा अपने कथनके विषयमें क्या है—रामो द्विर्नाभिभाषते— रामचन्द्र दो बार नहीं कहते अर्थात् एक बार जो कुछ कह दिया सो कह दिया, उसके विपरीत वे कदापि कुछ मनसा, वाचा, कर्मणा नहीं करते।

अच्छा, अब इन प्रतिज्ञाओंके विरुद्ध वाल्मीकीय रामायणके कुछ श्लोकोंकी, जिनमें अर्थाभास प्रतीत होता है, यथार्थ व्याख्यापर ध्यान दीजिये। चित्रकूटकी पर्णशालाके वास्तुकर्म-सम्पादनके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र-ने लक्ष्मणजीको इसप्रकार आज्ञा दी है——

ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्।

(वा० २। ५६। २२)

इसमें स्पष्टतया मांसकी प्रवृत्ति-सी प्रतीत अवश्य होती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इसकी यथार्थ व्याख्या इस-प्रकार करना उचित है कि 'ऐणे' मृगछालापर बैठकर, 'यं' (यो वायौ इति मेदिनी) प्राणायाम करके, 'मां' (लोकमाता मा इत्यमरः) लक्ष्मीरूप सीताको, 'समाहृत्य' सम्यक् बैठाकर, 'वयं' हम, 'शालां यजामहे' शालाका यजन करेंगे। अथवा (दूसरा अर्थ) 'ऐ' हे लक्ष्मण, 'णे' (णः पानीयकलश इति मेदिनी) जल-कलशके समीप, 'यं' मरुत्वान् अर्थात् वास्तुदेवको, 'मां' दुर्गाको, 'सं' सर्पधारी गणेशजीको, 'आहृत्य' उनके मन्त्रोंसे आवाहन करके, 'वयं' हम शालाका यजन करेंगे। फिर श्रीरघुनाथजीका वाक्य है—

मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण।

(वा० २। ५६। २३)

'मृग' नाम यहाँ गजकन्दका है। मदनपाल-निघण्टुमें कहा है—('मृगः पशौ कुरंगे गजे च' इति शब्दस्तोमः।) इस स्थानपर 'कन्द'का लोप हो जाता है (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः—महाभाष्य) तात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्दको उखाड़कर शीघ्र ले आओ। यहाँ 'क्षिप्र' पदपर ध्यान दीजिये। क्या वहाँ मृग बध होनेके लिये खड़े थे जो मारकर शीघ्र ला दिये जाते। 'शुभेक्षण' सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्रीलक्ष्मणजीके गजकन्द पहचाननेके चातुर्यको लक्ष्यमें रखकर किया गया है। भगवान् बार बार कहते हैं कि 'कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मर' उस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ-धर्मका पालन कर रहे हैं। शास्त्रोंमें वानप्रस्थाश्रमीके लिये केवल कन्द-मूल-फलोंके ही खानेकी आज्ञा दी गयी है। इसीलिये भगवती सीताका रावणको फल-भिक्षा ही देनेका वर्णन आता है। आगे लिखा है—

स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।

(वा० २। ५६। २४)

यहाँ भी काली त्वचावाले गजकन्दके लिये ही 'कृष्णमृग' पदका प्रयोग है। फिर इसके आगे कहा गया है—

अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि॥
तत्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्।

(वा० २। ५६। २६-२७)

लक्ष्मणजीने गजकन्दको अग्निमें डाल दिया। यहाँ 'निष्टप्त' पदपर ध्यान दीजिये। 'निस् तप्त' पदमें एक बार पकनेसे ही 'स' के स्थानपर 'ष' होकर 'निष्टप्त' पद बन जाता है। बारम्बार अग्नि देनेसे 'ष' नहीं हो सकता। भगवान् पाणिनिका सूत्र है— 'निसस्तपतावनासेवने' कन्द ही शीघ्र एक बारकी अग्निसे पक जाता है। मृग-मांस शीघ्र नहीं पक सकता। 'छिन्नशोणित'का अर्थ है—नष्ट होता है रुधिर-विकार जिससे। गजकन्दके विषयमें वैद्यकशास्त्रमें लिखा है—'त्वग्दोषादिः कुष्ठहन्ता' इति मदनपालः। इसके आगे यह श्लोक आता है—

'अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया।
देवता देवसंकाशं यजस्व कुशलो ह्यसि॥'

'सम्यग् भवन्ति अस्तानि अंगानि येन स समस्ताङ्गः' अर्थात् लक्ष्मणजी कहते हैं कि सब सम्यक् अच्छे हो जाते हैं अङ्ग जिससे, ऐसा यह कृष्णमृग—काली त्वचावाला गजकन्द प्रस्तुत है, आप यजन कीजिये। यहाँ 'मृग' पदके अर्थमें यह भी विरोध है कि 'समस्ताङ्ग मृग' को अग्निमें नहीं डाला जाता है। पुनः भगवान् विष्णुको मांस-बलि देनेका कहीं विधान नहीं है और यहाँ विष्णुको भी बलि देनेका वर्णन है। अच्छा, यह तो चित्रकूटस्थ पर्णशालाके विषयका उल्लेख है, किन्तु आगे चलकर पञ्चवटीके प्रसंगमें फूलोंकी बलि चढ़ानेका स्पष्ट विधान प्राप्त होता है। अतः यदि चित्रकूटमें मांस-बलिका विधान होता तो इससे भिन्न पञ्चवटीमें पुष्प-बलिका वर्णन क्यों किया जाता? फिर देखिये, भगवान्‌ने दशरथजीको बदरपिण्याकका पिण्ड ही अर्पण किया है। पिण्डदानके समय भगवान्‌ने निम्नरूपसे कहा है—

इदं भुंक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो तदन्नास्तस्य देवताः॥

इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीराम फलमूलका ही भक्षण करते थे।

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले॥
(वा० रा० ३।६८।३३)

यदि उपर्युक्त श्लोकके विषयमें यह शङ्का की जाय कि जटायुके लिये मांसपिण्ड क्यों दिया गया तो इसका उत्तर यह है कि यहाँपर इसका अर्थ मांसपिण्ड नहीं है। 'रोहि' नाम बीजका है उनका 'मांस' अर्थात् गूदा निकालकर 'पेशी' यानी गोली बनाकर दी गयी है। मृगका नाम 'रोहिष' अकारान्त है 'रोहि' नाम मृगका कहीं नहीं पाया जाता। यदि 'मृग' का अर्थ लिया जाय तो बहुवचनमें इसका अर्थ बहुतसे मृगोंका मांस होगा, पर वहाँ तो पिण्ड ही दिया गया है। यद्यपि रामाभिरामीय टीकामें रोहि शब्दका अर्थ मृगवाची ही लिखा है, पर वहाँ कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। शब्दस्तोममें—'रोहिशब्दो वृक्षे बीजे चेति' लिखा है। और 'मांस'का अर्थ गूदा भी है। मदनपाल निघण्टुमें 'बेर' के आगे लिखा है 'स मांसं मधुरं प्रोक्तं' मांस-सहित बेर मीठा होता है। अब 'पम्पा'का प्रकरण भी देखिये—

घृतपिण्डोपमान्स्थूलांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथ॥
रोहितांश्चक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव।
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान्॥
निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान्।
तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति॥
भृशं तान्खादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसञ्चये।
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम्॥
अंसो पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति॥
(वा० रा० ३।७३।१३-१७)

यह उक्ति श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कबन्धकी है। आप दोनों भ्राता घृतपिण्डके समान कोमल स्थूल कटहल आदि फलोंके गूदेको 'तान् द्विजान्'—उन पम्पा सरोवरके आसपास वास करनेवाले पक्षियोंको भक्षण करावेंगे। हे राम, पम्पामें इषुभिः—(इषेर्गतिकर्मणः इति निरुक्तम्) अपनी चालोंसे, 'वर'—सुन्दर, 'हतान्'—अर्थात् संहतान्, यहाँ 'सं'का लोप हो गया है, उसी महाभाष्यके वार्तिकसे 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वक्तव्यः ?' इकट्ठे हुए, त्वचापक्षरहित, 'अयस्तप्त' (अय इव तप्त) अर्थात् लालरंगकी मछलियाँ और रोहित, चक्रतुण्ड, नलमीनोंको भी आपकी भक्तिसे लक्ष्मणजी फलोंके गूदे डालेंगे। 'भृशं' अत्यन्त फल डालनेपर 'मत्स्यान् खादत' 'खादनं खादयस्तव' अर्थात् मछलियोंको भोजन डालनेवाले श्रीलक्ष्मणजी आपको कमलपत्रोंके दोनोंमें जलपान करावेंगे। यहाँ 'स्थूल' पदके अर्थपर ध्यान न देनेके कारण ही टीकाकारोंने इस रहस्यको नहीं समझा है। यदि यह कहा जाय कि महर्षि वाल्मीकिजीने ऐसा संदिग्ध वर्णन क्यों किया तो श्रुति प्रमाण है—'परोक्षप्रिया देवाः प्रत्यक्षद्विषः।' देवताओंको परोक्ष ही प्रिय है, इसीके अनुसार आर्ष-ग्रन्थोंको भी समझना चाहिये। सबसे बढ़कर हमारे इस लेखके प्रमाणमें 'रामो द्विर्नाभिभाषते' यह भगवद्-वाक्य है। इस बातको लक्ष्यमें रखकर ही विचार करना चाहिये कि जब श्रीरामकी प्रतिज्ञा फल-मूल भक्षण करनेकी है तब उनके विषयमें मांसका व्यवहार करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। हमने ऊपर जिस बातकी स्पष्ट विवेचना की है यदि उसके अतिरिक्त किसी विद्वान्को और भी वाल्मीकीय रामायणके किसी प्रकरणमें इस विषयमें कुछ पूछना हो तो वे 'कल्याण' पत्रद्वारा ही अपनी शङ्का प्रकट करें। उसका यथावत् समाधान किया जायगा।

रामके चार निवास-स्थान

(१)

जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनै राम बसहु हिय तासु॥

(२)

सब कर माँगहिं एक फल राम-चरित-रति होउ।
तिन्हके मन-मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

(३)

स्वामि-सखा-पितु-मातु-गुरु जिन्हके सब तुम तात।
मनमन्दिर तिन्हके बसहु सीय-सहित दोउ भ्रात॥

(४)

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्हसन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेह॥
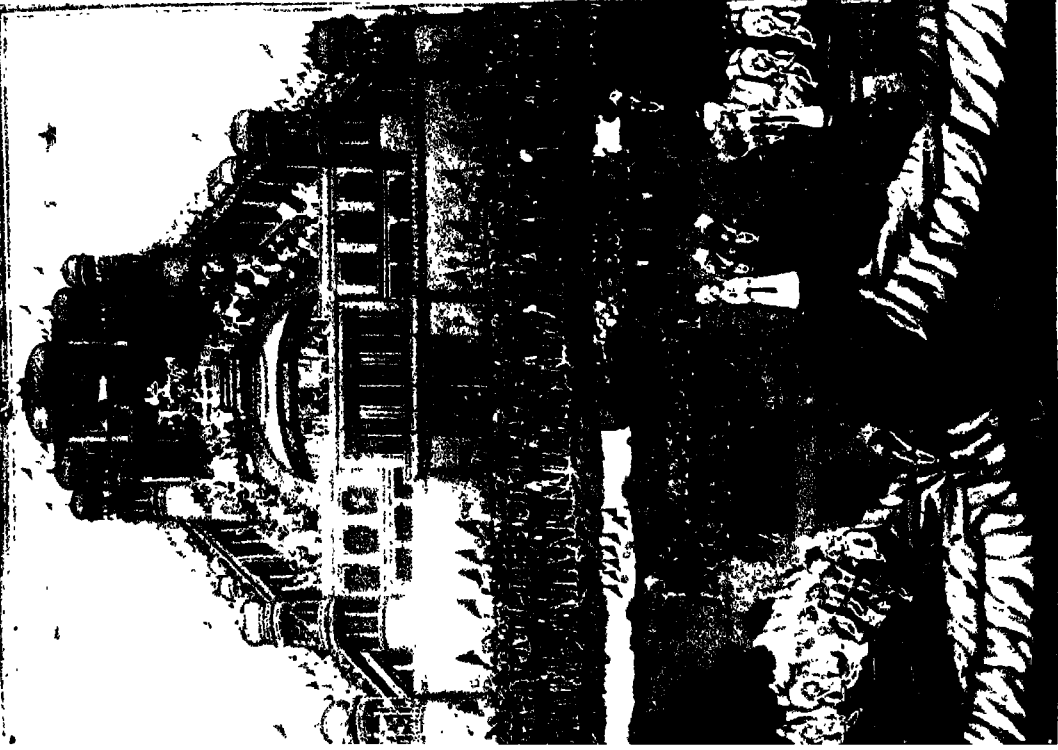
लङ्का पर चढ़ायी ।

जानत परमदुर्ग अति लंका । प्रभुप्रताप कपि चले असंका ॥
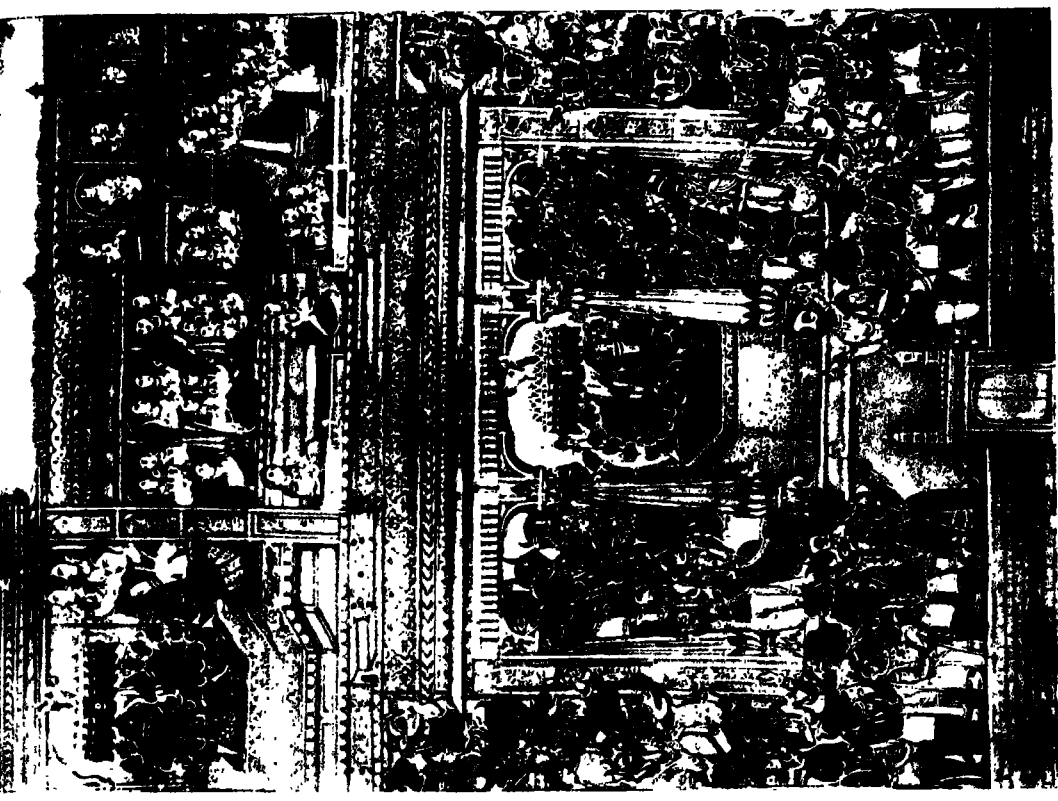
रावण-मन्दोदरी ।

नारि-वचन सुनि बिसिख-समाना । सभा गयेउ उठि होत बिहाना ॥

लक्ष्मण-मूर्छा ।

तब लगि लेइ आयउ हनुमाना   अनुज देखि प्रभु अतिदुख माना

कुम्भकर्ण-युद्ध ।

'नाथ भूधराकार-सरीरा   कुंभकरन आवत रनधीरा ॥'

श्रीसीताजीका वनवास

(लेखक-महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए० डि०लिट्, वाइस चैन्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय)

रामचन्द्रजीके चरित्रपरीक्षकोंने श्रीसीता-वनवासके प्रसंगको लेकर दोषारोपण किया है। पर ये परीक्षक इस बातको भूल जाते हैं कि रामायणमें जितने चरित्र-चित्रण हैं प्रायः सभी आदर्शरूपेण हैं। अयोध्या आदर्श नगरी, दशरथ आदर्श पति, आदर्श पिता, श्रीराम आदि चारोंभाई-आदर्शपुत्र, श्रीसीता आदर्श पत्नी—यहाँतक कि रावण भी आदर्श शत्रु है। श्रीरामजीको वाल्मीकिने आदर्श राजा भी बतलाया है। इसी आदर्श राजाके चित्रणमें उनको साधारण मनुष्यसे अकरणीय श्रीसीताजीका परित्यागतक भी करवाना पड़ा। इसका कारण यह था कि राजाको जनश्रुतिद्वारा सीताजीके प्रति जब शङ्का-का पता लगा तब उनको यह सन्देह हुआ कि इस शङ्काके उठनेपर भी यदि मैं मोहवश सीताको घरमें रहने देता हूँ तो इस बातका डर है कि साधारण जनतापर इसका बुरा असर पड़े। बस, प्रजामें इस प्रकारकी उच्छृङ्खलताकी शंका होते ही आदर्श राजाका जो कर्तव्य हो सकता है वही श्रीरामने किया। अपने आदर्शको उन्होंने स्वयं बतलाया है—

> स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदिवा जानकीमपि।
> आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

यहाँ 'आराधनाय' पदसे 'प्रसन्न करनेके लिये' विवक्षित नहीं है—विवक्षित है 'रक्षणाय' रक्षाके लिये—'प्रतिपालनाय'—प्रतिपालनके लिये।

महापुरुषोंके चरित्र-परीक्षणमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वे 'महापुरुष' थे। साधारण पुरुषोंमें जो नियम लागू होते हैं, वे उनमें नहीं हो सकते, न साधारण पुरुषोंमें ऐसे उच्चकोटिके चरित्रको समझनेकी शक्ति ही हो सकती है।

दुःखकी आगमें कौन नहीं जलता ?

दास रता एक नामसों उभय लोक सुख त्यागि।
तुलसी न्यारे ह्वै रहै दहै न दुखकी आगि॥

दास और परम-पद

(लेखक—पं० श्रीरमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति')

विश्व-व्यापिनी, भुवन-मोहिनी, मनोहर-मायाके रूप और लावण्यपर मुग्ध हो जानेकी मधुर लालसा किसके हृदयमें नहीं होती? सांसारिक ऐश्वर्यके सुख-भोगकी प्रबल पिपासा किसे व्याकुल नहीं बना देती? प्रिय पदार्थको प्राप्त करनेकी कामना और जीवनको सदैव आनन्दमें व्यतीत करनेकी आकांक्षा किसे आकुल नहीं किया करती? मनुष्यमात्र जब स्वार्थ-रक्षाके लिये उत्सुक रहते हैं, सभी जन्म, मृत्यु, जरा और रोगके भयसे बचना चाहते हैं तब दास ही अकेला क्यों अपने अस्तित्वको मिटाकर आत्म-त्यागका अद्भुत आख्यान सुना करे? दासका ही अन्तःकरण क्यों अनेक सात्त्विक भावनाओंका समारोह-स्थल बनता रहे? कुछ महानुभाव तो यहाँ तक कह डालनेके लिये तैयार हैं कि इस दास-भावने ही, स्वाभिमानपर कुठार चलाकर, स्वावलम्बन एवं स्वाधीनताके विचारोंको समूल नष्ट कर डाला है और देशको अधःपतनके मार्गपर पहुँचा दिया है।

सत्य ही दासता बुरी है, इसलिये कि उसमें और विषय-वासनामें पारस्परिक विरोध है। दासको अपना शीश देकर पराये शीशकी रक्षा करनी पड़ती है। मन, वचन और कर्मसे सदा स्वामीके अनुकूल ही अपने आचरण बनाने पड़ते हैं। यश-अपयश, मान-अपमानके भेदभावको भुलाकर घरबार, परिवारसे विरक्त होकर, अन्यकी दासतामें ही अपनी जीवन-ज्योत्स्नाको नष्ट कर देना पड़ता है। हँसते-हँसते प्राणोंकी आहुति चढ़ानी होती है।

दासकी निधियाँ

पूर्ण सन्तोष, त्याग, क्षमा और उदासीनता दासकी निधियाँ हैं। रागद्वेषके स्थानपर उसके हृदयमें श्रद्धाकी निधि भरी होती है। चिन्ताको दूर करनेके लिये अनुरागका चारु-चिन्तामणि दासके पास ही होता है। मद, मान, मत्सरकी मरुभूमिमें उसे अपार आनन्दका कल्पद्रुम लहलहाता दिखलायी पड़ता है। त्रितापहारी कल्याणका कौस्तुभ तो उसकी निजी सम्पत्ति है और आत्मसमर्पणका अक्षय-भण्डार कुबेरके कोषसे कहीं बढ़ा-चढ़ा अपना कमाया हुआ मूलधन है।

दास और प्रभु

बल, बुद्धि, विद्या और विवेक अहंकारकी घाटियाँ हैं।, जिनमें पड़कर जड़-जीव, जड़-पदार्थोंमें ही वास्तविक सुखका अनुभव करने लगता है। एक ही जन्म क्यों, वरन् अनेक जन्मोंतक यदि अपने स्वरूपको भूला हुआ वह माया-मरीचिकामें भटकता रहे तो कोई विचित्र बात नहीं। इसीलिये दृढ़ निश्चयवाले निष्काम सेवाको ही सर्वश्रेष्ठ समझकर स्वामीकी सेवामें ही मन लगानेमें अपना परम कल्याण समझते हैं।

उमासे शंकरजी कहते हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ॥

भूतभावन भगवान् शंकर भी किसी औरको अपना स्वामी मानकर दास होनेमें गौरव समझते हैं। सत्य है, गौरवका प्रश्न वहाँ कोई मूल्य नहीं रखता, क्योंकि दास जहाँपर प्रभुकी सेवामें ही सुख मानता है वहाँ प्रभु स्वयं दासकी पूजा करनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। यथा—

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥

सच्चे दास, भय और शोकसे मुक्त होकर सच्चे प्रभुकी सेवा करनेके लिये अपना सर्वस्व छोड़ बैठते हैं। पवनसुतसे लंकेश्वरका भाई प्रश्न करता है—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु-कुल-नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मनमाहीं॥

प्रभु ऐसे दासका स्वागत किस प्रकार करते हैं—

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा॥
जो सम्पति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

दास और शक्ति

दासको उत्कर्षकी उत्कृष्ट दीक्षा कौन देता है? उसमें अपरिमित शक्तिका प्रादुर्भाव कहाँसे होता है? दृढ़ता, आत्मनिग्रह और परोपकार-परायणता कहाँसे आ जाती है? जड़त्वसे जीवत्वका विनिमय और जीवत्वसे स्वामीके कार्य-साधनका अटूट साहस कहाँसे उत्पन्न हो जाता है? क्या यह सब दास-भावकी महत्त्वाकांक्षाका मीठा फल नहीं है? जटायु तो शठ, अधम, आमिषभोजी पक्षी था, फिर भी दशकण्ठ जैसे प्रबल पराक्रमी सुभटको विरथ कर डालनेकी शक्ति उसमें आ चुकी थी। शस्त्रधारी न था तो भी रावणको अस्तव्यस्त करनेका पर्याप्त बल उसकी चोंचमें ही भर चुका था। अनेक पीड़ाओंसे पीड़ित होनेपर दासका मन जब अधीर हो उठता है, शरीर व्यथाओंसे व्यथित हो जाता है, और कष्ट-सहिष्णुता पयान कर जाती है तब दीनहितकारी, दासको वह अपूर्व शक्ति देते हैं जिसके प्रभावसे वह भव-बन्धन तोड़कर परम शान्तिको प्राप्त होता है—

करसरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम-छबि-धाम-मुख बिगत भई सब पीर॥

दास और तप

पुराण साक्षी हैं, अनेक तपस्वी अपने तपसे विचलित हुए, अनेक ज्ञानी मोहमें पड़कर अधोगतिको प्राप्त हुए और परिणाम-स्वरूप उन्हें कठिनसे कठिन कष्ट और कठोरसे कठोर दण्ड भोगने पड़े, परन्तु दासके तपमें उसके रक्षक स्वयं भगवान् हुआ करते हैं। कैसे ही प्रलोभन क्यों न आवें, दासको विचलित होनेसे प्रभु ही बचाया करते हैं।

पद न सही, पादुकाओंकी भी सेवा दास उसी दृष्टिसे करते हैं, उन्हींमें मन लगाये हुए अपनी तपस्या पूर्ण करते हैं और मनको भोग-विलाससे कहीं दूर रखते हुए उस पदको प्राप्त होते हैं जिसके लिये सुर, नाग, किन्नर और गन्धर्व सभी लालायित रहते हैं।

अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चम्पक बागा॥
रमाबिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस-गनेस गिरा गमु नाहीं॥

यह है दासकी, तपस्या जिसका वर्णन कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। फिर उस तपस्याका वर्णन प्रभु किन शब्दोंमें करते—

तात भरत तुम धरम-धुरीना। लोक बेदबिद प्रेम प्रबीना॥
करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात॥

उक्त प्रशंसाकी पूर्ति विदेहजी कर देते हैं—

भरत-राम-गुन-ग्राम-सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु प्रेमु अति पावन पावन ॥

दास और दीनबन्धु

दीनबन्धु सदा दासकी रुचि रखते हैं। प्राणोंसे प्यारा जानकर हृदयसे लगाते हैं और सखा एवं बन्धुके समान मानते हैं। श्रीरामजीने नीच निषादको अपना सखा बनाया था, जिसे गुह किस गर्वभरी वाणीसे कह रहा है—

कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीं ते। भयउँ भुवन भूषन तबहीं ते ॥

ऐसे कपटी और कुजातिवाले दासको कैसा आदर मिलता है, यह इन पंक्तियोंसे प्रमाणित होता है—

राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम-लघु-भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ॥

दासका ऋण

पितृ-ऋण, गुरु-ऋण और देव-ऋणसे उऋण होना सरल है किन्तु दासके ऋणसे उऋण होना अत्यन्त कठिन है। दास प्रत्युपकार या फल नहीं चाहता। वह तो प्रभुपर और अधिक ऋण लादनेके लिये जन्म-जन्म पद-सरोज-सेवाका ही वरदान माँगा करता है। उसे सेवामें ही परमानन्दकी उपलब्धि एवं सेवा करनेमें ही सच्चे सुखका लाभ मिलता है। ऐसी दशामें प्रभुको बड़ा सङ्कोच होता है। उस समय दासको अपनालेने और अपना सर्वस्व उसे सौंप देनेके अतिरिक्त प्रभुको और कोई उपाय नहीं सूझता। पवनकुमारसे प्रभु कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रतिउपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मनमाहीं ॥

ऐसी दशामें स्वामीको ऋणसे उऋण करनेके लिये दास फिर उन्हीं चरणोंकी शरण जाता है। ब्याज समेत मूलधनसे मुक्त कर देनेके लिये प्रभुको उन चरणोंकी याद दिलाता है जो सहज ही पाषाणकी भी प्रतिमाको तार दिया करते हैं।

बार बार प्रभु चहहिं उठावा। प्रेममगन तेहि उठब न भावा ॥
प्रभु-कर-पंकज कपिकें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥

दास और कर्त्तव्य

सेवा-धर्म ही दासका परम कर्त्तव्य बन जाता है। यज्ञ, तप, व्रत, विधानादि सभी सेवाके स्वरूपमें परिणत हो जाते हैं। स्वामीकी जब कभी जो इच्छा हुई उसे वहीं पूर्ण करना पड़ता है। इच्छा न भी हो तो भी सेवासे मुख मोड़नेकी वहाँ गुंजाइश नहीं रहती। लक्ष्मणजी श्रीरामकी सेवा किस प्रकार करते हैं—

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि ॥
सेवहिं लखन करम मन बानी। जाय न सीलु सनेहु बखानी ॥

कभी कभी प्रभुकी आज्ञा कड़ुई हो जाती है, उसमें वज्रकी-सी कठोरता, विषकी-सी जलन और बाणकी-सी मार्मिक व्यथा भरी होती है। दासका मन तिलमिला उठता है, मस्तक घूम जाता है और कर्त्तव्यपरायणता काँप जाया करती है। जिन जनक-नन्दिनीके लिये असंख्य वानरोंको प्राण विसर्जित करने पड़े थे, लक्ष्मणको हृदयपर सेल सहनी पड़ी थी और रावणके वंशका विनाश किया गया था, उन्हींका अपमान स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम करते हैं और अग्निमें जीवित जलाये जानेके लिये चिता चुननेका आदेश लक्ष्मण-सरीखे सुकुमार-हृदयको देते हैं। क्या लक्ष्मणके हृदयमें जगत्-जननीजानकीके प्रति काफी मातृ-भक्ति न थी? थी अवश्य! किन्तु प्रभुकी आज्ञाके सम्मुख, इच्छाके विरुद्ध, दासको सिवा इच्छापूर्ण करनेके और कोई चारा नहीं रह जाता।

सुनि लछिमन सीताकै बानी। बिरह-बिबेक-धरम-नय-सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥
देखि रामरुख लछिमनु धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए ॥

यह है दासकी सेवा और इतना है कठिन कर्त्तव्य!

दास और आत्मसमर्पण

अहङ्कारपूर्ण व्यक्तित्वको छोड़कर जिस समय जीवात्मा प्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देता है और आभ्यन्तरिक हृदयस्थ उपास्यदेवमें जब उसका मन पूर्णतया स्थिर होकर लग जाया करता है, उसी समय त्रिगुण-तरङ्गमयी-मोहात्मक प्रकृतिका आवरण बीचसे हट जाया करता है और दास उस अखण्ड अविनाशी शक्तिके श्रीचरणोंमें लीन हो जाता है। योगी, यती इसी सुयोगके लिये यत्न किया करते हैं, किन्तु उनका उत्तरदायित्व दाससे कहीं अधिक हुआ करता

है। कारण, दासका उत्तरदायित्व अधिकांशमें प्रभुपर ही हुआ करता है और वे अपने सेवकपर प्रीति भी करते हैं—

सुनहु बिभीषण प्रभु कइ रीती। करहिं सदा सेवकपर प्रीती॥

जहाँ आत्मसमर्पण हुआ, प्रभु शत्रुको भी अपनाते हैं और अपने धामका अधिकारी बनाते हैं। बालि दुष्ट, दुराचारी और पतित था, किन्तु—

राम बालि निज धाम पठावा।

विराध असुर था। श्रीरामसे युद्ध ठानकर सम्मुख आया था। उसे भी उन्होंने अपनाया—

तुरतहिं रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥

कहाँतक कहा जाय। अन्त समयमें भी जो प्रभुके समीप आकर अपनेको सौंप देते हैं, वे दास परमपदके अधिकारी बन जाते हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुक्त निसाचर झारी॥
खल-मलधाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पाव न॥

अन्तमें इतना ही कहना होगा कि जिन चरणोंकी—

जे चरन सिव-अज-पूज्य रज सुम परसि मुनि-पत्नी तरी।
नखनिर्गता मुनि बन्दिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी॥
ध्वज-कुलिस-अंकुस-कञ्ज-युत बन फिरत कण्टक किन लहे।
पद-कञ्ज-द्वंद्व मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे॥

—शरण आनेपर समस्त प्राणी आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखोंसे मुक्त होकर परम शान्ति एवं परम-पदको प्राप्त होते हैं, उन्हींकी सेवासे, उन्हींका दास बनकर मनुष्य सच्चा कर्त्तव्यपरायण और सफल सैनिक बन सकता है। वासनाका दास बनकर नहीं, वरन् प्रभुका दास बनकर ही परम-पदका अधिकारी हो सकता है।

निषादका प्रेम

(लेखक—आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद् गुहेन सह॥
(वा० रा० २।५०।३५)

माधुर्यमय सख्य-प्रेममें शान्त और दास्य—दोनों प्रकारकी—उपासनाओंकी अपेक्षा अधिक आस्वादन है। ईखके रससे अधिक मिठास गुड़ या राबमें होता है। सख्य-रसमें शान्त-रसका आस्वादन एकनिष्ठा और दास्यका सेवा-सुख, यह दोनों तो होते ही हैं, किन्तु इसमें निःसङ्कोच 'प्रेम' विशेष होता है।

निषादराज बिना छल-कपटके सीधे-सादे शब्दोंमें निःसङ्कोच-भावसे कहते हैं—

नहि रामात्प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।
(वा० रा० २।५१।४)

यह मधुर 'प्रियतम' शब्द प्रेमी निषादके मुँहसे ही नहीं, हृदयसे, कण्ठसे और प्रत्येक लोम-कूपसे, वीणाके तारोंकी तरह झनकार रहा है।

वनवासी शिकारी निषादके भावोंमें कोमलता, व्यवहार-में सरलता और श्रीराममें ममताका कारण प्रेम ही है।

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

जिस भावसे हृदय कोमल होता है, जिससे अत्यन्त ममता उत्पन्न होती है उसीको बुधजन 'प्रेम' कहते हैं।

निषादराज और श्रीराम, अर्जुन और श्रीकृष्ण, गदाधर और श्रीचैतन्य, भक्त और भगवान्की जोड़ी प्रशंसनीय है।

इससे उत्कृष्ट प्रेमावस्था और कौन-सी हो सकती है? प्रेमी निषाद राजीवलोचन श्रीरामके मुखसे जब यह सुनता है। जिसकी आशा उसे स्वप्नमें भी न थी—कि,

आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं राममाषितम्।
(अ० रा० २।६।२६)

श्रीराम, प्यारे निषादसे मिलनेकी सप्रमाण प्रतिज्ञा कर उसे हृदयसे लगा बारबार समझाते हैं। निषादराज चुप हैं, बोलें भी तो क्या? कण्ठ गद्गद् हो गया है; आँखोंसे झरझर प्रेमाश्रु ढलक रहे हैं, हृदयमें हाहाकार हो रहा है।

'हा हा कदानु भवितासि पदं दृशोर्मे।'
(कृष्णकर्णामृत)

प्रेमीके हृदयका भाव कौन जाने । हृदयवल्लभको उसने सब प्रकारसे हृदयमें रक्खा, पर प्यास न मिटी । श्रुति इसीको सख्य-सम्बन्ध कहती है, यही परम रस है । 'रसो वै सः ।'

निषादके निष्कपट, निस्वार्थ प्रेमपर जितना भी लिखा जा सके, थोड़ा है । जो इस श्रेणीमें पहुँच जाते हैं उनके बाह्य धर्म-कर्म कुछ नहीं रहते । यदि मनुष्य इस उज्ज्वल प्रेममें मग्न हो जाय तो संसारसे दुष्ट विकारोंका समूल नाश हो जाय । पवित्र प्रेमाग्नि सबके हृदयमें जल उठे । *

दशरथके समयकी अयोध्या

यह महानगरी बारह योजन लम्बी थी । इसमें सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं । नगरीकी प्रधान सड़कें तो बहुत ही लम्बी चौड़ी थीं, जिनपर रोज जलका छिड़काव होता था, सुगन्धित फूल बिखेरे जाते थे, दोनों ओर सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे । नगरीके अन्दर अनेक बाजार थे, सब प्रकारके यन्त्र (मशीनें) और युद्धके सामान तैयार मिलते थे । बड़े बड़े कारीगर वहाँ रहते थे । अटारियोंपर ध्वजाएँ फहराया करतीं थीं । नगरकी चारदीवारीपर सैकड़ों शतघ्नी (तोपें) लगी हुई थीं, बड़े मजबूत किवाड़ लगे हुए थे । नगरके चारोंओर शालवृक्षकी दूसरी चारदीवारी थी । राजाके किलेके चारों ओर गहरी खाई थी । अनेक सामन्त, राजा और शूरवीर वहाँ रहा करते थे । व्यापारी भी अनेक रहते थे । नगर इन्द्रकी पुरीके समान बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी । उसके आठ कोने थे । वहाँ सब प्रकारके रत्न थे और सात-मंजिले बड़े बड़े मकान थे । राजाके महलोंमें रत्न जड़े हुए थे । बड़ी सघन बस्ती थी । नगरी समतल-भूमिपर बसी हुई थी । खूब धान होता था और अनेक प्रकारके और पदार्थ होते थे । हजारों महारथी नगरीमें रहते थे । वेदवेदाङ्गके ज्ञाता, अग्निहोत्री और गुणी पुरुषोंसे नगरी भरी हुई थी। महर्षियोंके समान अनेक महात्मा भी वहाँ रहते थे ।

उस समय उस रम्य नगरी अयोध्यामें निरन्तर आनन्द-में रहनेवाले, अनेक शास्त्रोंको श्रवण करनेवाले धर्मात्मा, सत्यवादी, लोभरहित और अपने ही धनमें सन्तुष्ट रहनेवाले मनुष्य रहते थे । ऐसा एक भी गृहस्थ नहीं था जिसका धन आवश्यकतासे कम हो, जिसके पास इहलोक और परलोक-के सुखोंके साधन न हों। सभी गृहस्थोंके घर गौ, घोड़े और धनधान्यसे पूर्ण थे । कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक तो ढूँढ़े भी नहीं मिलते थे। वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा इन्द्रिय-निग्रही, हर्षयुक्त, सुशील और महर्षियोंके समान पवित्र थे । सभी स्नान करते, कुण्डल-मुकुट-माला धारण करते, सुगन्धित वस्तुओंका लेपन करते, उत्तम भोजन करते और दान देते थे । परन्तु वह सभी आत्मवान् थे, सभी अग्नि-होत्र और सोमयाग करनेवाले थे । क्षुद्र विचारका, चरित्रहीन, चोर और वर्णसङ्कर कोई नहीं था । वहाँके जितेन्द्रिय ब्राह्मण निरन्तर अपने नित्यकर्मोंमें लगे रहते थे । दान देते थे, विद्याध्ययन करते थे, परन्तु निषिद्ध दान कोई नहीं लेता था । अयोध्यामें कोई भी नास्तिक, झूठा, ईर्ष्या करनेवाला, अशक्त और मूढ़ नहीं था । सभी बहुश्रुत थे । ऐसा कोई न था जो वेदके छः अङ्गोंको न जानता हो, व्रत-उपवासादि न करता हो, दीन हो, पागल हो या दुखी हो । अयोध्यामें सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा राजाके भक्त थे । चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष देवता और अतिथिकी पूजा करनेवाले, दुखियोंको आवश्यकतानुसार देनेवाले, कृतज्ञ और शूरवीर थे । वे धर्म और सत्यका पालन करते थे । दीर्घजीवी थे और स्त्री-पुत्र-पौत्रादिसे युक्त थे । वहाँके क्षत्री ब्राह्मणोंके अनुयायी, वैश्य क्षत्रियोंके अनुयायी और शूद्र तीनों वर्णोंके सेवारूप सुकर्ममें लगे रहते थे । नगरी राजाके द्वारा पूर्णरूपसे सुरक्षित थी । विद्या-बुद्धि-निपुण अग्निके समान तेजस्वी और शत्रुके अपमानको न सहनेवाले योद्धाओंसे अयोध्या उसी प्रकार भरी हुई थी जैसे गुफाएँ सिंहोंसे भरी रहती हैं । अनेक प्रकारके घोड़े और बड़े बड़े मतवाले हाथियोंसे नगरी पूर्ण थी । उसका अयोध्या नाम इसीलिये पड़ गया था कि वहाँ कोई भी शत्रु युद्धके लिये नहीं आ सकता था ।

अब आजके भारतसे इसका मिलान कीजिये !

* निषादराजके प्रेमके सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो इसी अङ्क पृष्ठ ५७ में प्रकाशित 'रामायणमें भरत' शीर्षक साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्रीका लेख देखिये । —सम्पादक

श्रीरामायणका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीश्यामसुन्दरजी याज्ञिक)

यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्।
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतस्स्वान्तस्तमः शान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥१॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम्।
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्याऽवगाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥२॥

श्रीरामायणजीके महत्त्वपर मैं कुछ लिखने-योग्य नहीं, परन्तु नभचरनाथ गरुड़के समान ही एक तुच्छतर मच्छर भी अपनी शक्तिभर आकाशमें उड़ता है। उसकी कोई निन्दा नहीं करता, इसीके अनुसार यह तुच्छ लेखक भी श्रीरामायणजीके महत्त्वपर कुछ निवेदन करनेका साहस करता है।

श्रीगोस्वामीजीके वचनोंसे*, श्रीरामायणजी, 'श्रीरामतनु' हैं—

बालकाण्ड प्रभु पाँय, अयोध्या कटि मन मोहै।
उदर बन्यो आरण्य, हृदय किष्किन्धा सोहै॥
सुन्दर ग्रीव मुखारविन्द लंका कहि गाये।
जेहि महँ रावन आदि निशाचर सर्व समाये॥
उत्तर मस्तक मान हरि-यहि बिधि तुलसीदास मनु।
आदि अन्त लौं देखिये-(श्री) 'रामायण'-'श्रीरामतनु'॥

जिस प्रकार परमात्मा श्रीरामजीका अवतार चतुर्व्यूह होता है—

तिनके गृह अवतरिहों आई। रघुकुल-तिलक सुचारिहु भाई॥

ठीक उसी तरह चतुर्व्यूहा श्रीभक्ति-महारानीका उद्भव भी नाम, धाम, लीला तथा रूपके स्वरूपमें होता है। श्रीरामायण-जी—नाम धामादिमयी होनेसे श्रीभक्तिका भी स्वरूप हैं। 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक'—**प्रथम उनको श्रीराम-तनु सूचित किया, अब भक्ति-स्वरूपा कहा। दोनोंका वपु एक है। श्रीरामतनु कहिये अथवा श्रीभक्ति-स्वरूपा बोलिये, बोलीमें भेद है, बात—एककी एक ही है।**

श्रीरामायणजीके भक्तिरूपका अर्थात् नाम, धाम, लीला, रूपमय रूपका भी दर्शन कर लीजिये—

'नाम'—एहिमहँ रघुपति नाम उदारा।' **अर्थात् श्री-रामायणजीमें श्रीनाम-महाराज, सूत्रमें मणिकी नाईं ओतप्रोत हैं।**

'धाम'—**श्रीरामजीका अयन (धाम) तो है ही।**

'लीला'—**श्रीरामायणजी, श्रीसरकारी-चरित्र (लीला) से तो परिपूर्ण ही हैं अतः वे लीला-मयी स्वयंसिद्ध हैं।**

'रूप'—**'रामायण 'श्रीरामतनु' से रूप भी प्रकट है।**

'रघुबरभगति प्रेम परिमित-सी'

भक्ति-भगवन्त उभय कारण-कार्य भी हैं और तादात्म्य भी। यही दोनों लक्ष्य हैं। गुरु और भक्त इनको प्राप्त कराने, करनेवाले हैं। वास्तवमें परिणामतः चारों एक हो जाते हैं। अतः श्रीरामायणजी गुरुरूप भी हैं—'सद्गुरु ग्यान बिराग योगके।' **भक्त-रूपा भी हैं**—'जग हित निरुपधि साधुलोग'॥' **इत्यादि। तात्पर्य यह कि श्रीरामायणजी वास्तविक 'श्रीराम-तनु' हैं।** 'राम अनंत अनंत गुणार्नी'—**अतः उनके महत्त्वकी थाह तीनों कालमें कोई कैसे प्राप्त कर सकेगा?**

कर्म दो प्रकारके हैं। सकाम और निष्काम। सकाम—लौकिक सुखदायक, निष्काम—पारलौकिक (निर्वाण) दाता हैं। 'रवि-रजनी' सम्मेलनकी भाँति सकाम और निर्वाणका संयोग असम्भव ही कहा जायगा। किन्तु

---

* श्रीरामायणजीके प्रेमीजनोंको इस विश्वासकी दृढ़तामें अविचल रहना चाहिये कि पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजीके वचन निगमागम-सम्मत ही हैं। उनकी वाणी प्राकृतिक नहीं, किन्तु वह अलौकिक, दिव्य वाणी है (To err is human) 'मनुष्यमे भूल हो जाती है'—इस नीतिमय वाक्यका उन्हें निज हृदय-देशमें इस जगह सम्यक् बहिष्कार कर देना होगा।

जब श्रीगोस्वामीजीके समयमें विद्यमान पण्डित-मण्डलीके सम्राट् यतिराज श्रीमधुसूदन-सरस्वतीजीका यह सिद्धान्त था कि श्रीगोस्वामीजीकी समस्त रामायण तो निगमागम-सम्मत है ही, किन्तु उनके दूसरे वचनोंको भी तथैव मानना उचित है। तब हमलोग उनके वचनोंमें अश्रद्धा करनेवाले कौन?

श्रीरामायणजीका श्रवणमात्र इस 'असम्भव' पर भी हड़ताल पोत देता है।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं, सुख सम्पति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुरलभ सुखकरि जगमाहीं, अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥
जग-मंगल गुनग्राम रामके। दानि मुकुति धन धर्म धामके ॥
समन पाप सन्ताप सोकके। प्रिय पालक परलोक लोकके ॥
मंत्र महामणि बिषय ब्यालके। मेटत कठिन कुअंक भालके ॥

हमारे कर्मठ भाई, कदाचित् इन शब्दोंको कविकी अतिशयोक्ति मानें और नयी सम्यताकी तेज रोशनीमें तो श्रीरामायणजीके महत्त्वका दर्शन शायद निपट ही असम्भव हो। हमें उनसे कहने-सुननेका अवकाश नहीं। हमारा तो नम्र-निवेदन केवल श्रीरामजीके जनोंसे ही है।

श्रीरामायणजी एक कविकी केवल कविता ही नहीं हैं, वह अलौकिक दिव्य शक्तिसे परिपूरित हैं। श्रीगोस्वामीजी स्वयं कह रहे हैं—

'भणित मोरि सिव-कृपा बिभाती।' 'सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ।'
'तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे।'

उनकी प्रत्यक्ष फल दिखानेवाली बात भी सुन लीजिये—

सपनेहुँ साँचेहु मोहिपर जो हर-गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेहुँ सब भाषाभनित प्रभाउ ॥

अतः श्रीरामायणजीको कविता न समझिये। यह वह मानस है जो मन्त्रमय सुन्दर वारिसे लबालब भरा है। इसपर एक आख्यायिका सुनिये—

एक बार श्रीसूरदासजी बादशाहके दरबारमें विराज रहे थे। उनसे पूछा गया कि 'कविता' सर्वोत्तम किसकी है? निरपेक्षभावसे बताइये। उत्तरमें श्रीसूरदासजीने कहा—'कविता मेरी सर्वोत्तम है।' इसपर बादशाहको सन्तोष न हुआ, उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर कहा कि—'मैं समझा नहीं। आपने अपने मुँहसे अपनी कविताको सर्वोत्तम कैसे कहा? क्या इसमें कोई रहस्य है? गोस्वामीजीकी कविताके लिये आप क्या कहते हैं?'

श्रीसूरदासजीने मुसकुराकर कहा—'श्रीगोस्वामीजीकी कविताको आप कवितामात्र जानते हैं! मेरी भावनामें तो वह कविता नहीं, महामन्त्र है। मैंने जो अपने काव्यकी श्लाघा की, सो तो इसीलिये कि, उसमें 'भगवत्-यश' अंकित है।'

सब गुनरहित कुकवि कृत बानी। राम नाम-जश अंकित जानी ॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। × × ×

इतना कहकर सूरदासजीने बादशाहको श्रीगोस्वामिपादका वास्तविक स्वरूप बतला दिया।

लेखका कलेवर बढ़ रहा है, इस भयसे यह मतिहीन भीत है। अब केवल श्रीवेणीमाधवजी *कथित श्रीरामायणजीके परत्वपर दिग्दर्शन करा देना शेष है, सो भी संक्षेपसे ही। क्षमा कीजिये!

'श्रीरामचरितमानस' कैसे, कब, और कहाँ बना और वह किस महत्त्वका है? इसका उत्तर हम श्रीवेणीमाधवजीके मूल काव्यसे ही श्रीरामकिशोरशरणजीद्वारा अनुवादित शब्दोंमें प्रकट किये देते हैं—

'शुभावसरमें श्रीमारुतिनन्दनने एक दिवस प्रसन्न होकर श्रीगोस्वामीजीसे कहा—"अब तुम यहाँसे श्रीअवधको जाओ और वहीं कुछ दिन निवास करो।"

इष्टकी आज्ञा पाकर वे चले और तीर्थराज-प्रयागमें ठहरे। उस समय मकर-स्नानके लिये योगी-तपस्वी, संन्यासी-सत्पुरुष एवं चतुर और मूर्ख सभी श्रेणीके लोग आये हुए थे। पर्व बीत जानेपर छः दिनके बाद उन्होंने देखा कि सुन्दर अक्षयवटकी सुखद-छायामें दो मुनि बैठे हुए हैं। दोनों तपके पुञ्ज हैं और दोनोंकी मुख-कान्ति ऐसी प्रदीप्त है कि उसके सामने चन्द्रमाकी छवि भी छिप जाती है। दूरहीसे दण्डवत्-प्रणाम करके वहीं हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनमेंसे एक मुनिने इशारेसे उन्हें बुला लिया और अपने निकट आसन दिया। उस श्रेष्ठ आसनको हटाकर गुसाईंजी पृथ्वीपर ही बैठ गये। उन्होंने अपना परिचय दिया और उनका परिचय प्राप्त किया। उन महात्माओंके एकान्त सत्संगमें उसी श्रीराम-

* ये महात्मा श्रीगोस्वामीजीके समकालीन थे। श्रीअवधवासी सन्त-शिरोमणि श्रीमान् पं० रामवल्लभाशरणजीके परम कृपापात्र भक्तप्रवर श्रीरामकिशोरजी वकीलने हालमें अपनी ओरसे प्रकाशित श्रीरामचरितमानसमें उक्त पं० श्रीवेणीमाधवजी-कृत श्रीतुलसीदासजीकी जीवनी शामिल कर दी है। अच्छा होता, यदि यह 'जीवनी' पृथक् प्रकाशित हो जाती! निस्सन्देह श्रीगोस्वामीजीकी जीवनी इससे अधिक प्रामाणिक क्या होगी, जिसमें उन्हींके समयमें स्थित एक महात्माने अपनी आँखों देखी बातें लिखी हैं। संवत् १६८७ कार्तिक शुक्ला नवमीको उक्त महात्माजीने इसको लिखा था। सौभाग्यवश उसकी 'मूललिपि' श्रीवकीलसाहबको मिल गयी। उसीको उन्होंने निज-प्रकाशित श्रीरामायणजीमें प्रकट कर जगत्का परम उपकार किया है।

कथाकी चर्चा हो रही थी जिसे इनके गुरु (श्रीनरहर्यानन्द-जी) ने बालपनमें शूकर-खेतमें वर्णन किया था। आश्चर्य-चकित होकर श्रीगोस्वामीजीने उसका गुप्त रहस्य उनसे पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यजीने उत्तरमें कहा—'देवदेव महादेव-जीने इसकी रचना की, पीछे समय पाकर इसे भवानीको सुनाया। फिर श्रीभुशुण्डिजीको इसका उपदेश किया। मैंने जाकर श्रीभुशुण्डिजीसे इसे प्राप्त किया और ऋषि-भरद्वाजजीको सुनाया।'

इसप्रकार मुनिराजसे गुह्य रामचरितमानस-तत्त्वकी परम्परा सुनकर वे चरणोंमें पड़ गये, युगल मुनीश्वर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल-मुनिवरोंका विमल संवाद उन्होंने श्रवण किया।

दूसरे दिन जब वे उस स्थानपर गये, तब उसे सूना पाया। न युगल मुनि थे, न वह वट छाँह और न पर्णकुटी ही।थी। वे विस्मयकी बाढ़में बह चले। अस्तु।

युगल मुनिवरोंके शील-स्वभावको स्मरण करते हुए वे वहाँसे चले। परन्तु भगवदिच्छासे काशीकी ओर निकल पड़े। कुछ दूर चले जानेपर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब यह विचारने लगे कि अब क्या करें? लौट चलें या इसी मार्गका अवलम्बन करें? अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, अब इसी मार्गसे चलें, काशीमें भगवान् शंकरका दर्शन करके श्रीअवध चले आयेंगे। यह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते-चलते गंगा-तटपर पहुँचे। फिर किनारे-किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या हो जाती वहाँ टिक जाते। तदनन्तर वे वारिपुर और दिगपुरके बीच अवस्थित श्रीसीतामढ़ी पहुँचे। वहाँ आसन लगाते ही उनकी चित्त-वृत्ति केन्द्र-च्युत हो गयी। न भूख, न प्यास और न निद्रा। विक्षिप्त-की-सी दशा होगयी। साथ ही उनके पूर्वजन्मके संस्कार जागृत हो उठे। वहाँ श्रीसीतावटके नीचे तीन दिन रह गये और कुछ सुन्दर कवित्त (जो श्रीकवितावलीमें वर्णित हैं) बनाकर, मानसिक-उद्‌गार निकाल आगे बढ़े।

मार्गमें विन्ध्याचल (चुनारगढ़) के राजाको बन्दीगृहसे छुड़ाते हुए मुनिराज (श्रीगोस्वामीजी) काशी पहुँचे। वहाँ प्रह्लाद-घाटपर एक ब्राह्मणके घर टिके। अनन्तर उनके हृदयमें उमङ्गकी तरंगें उमड़ीं और वे श्रीराम-चरितका वर्णन करने लगे, परन्तु दिनमें रची हुई कविता सावधानता पूर्वक सुरक्षित रखनेपर भी रातको लोप हो जाती थी। प्रतिदिन यह लोप-क्रिया होती रही। इस कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समझमें नहीं आता था। आठवें दिन श्रीमहादेवजीने स्वप्नमें आज्ञा दी कि—'तुम अपनी मातृ-भाषामें काव्य रचना करो।' निद्रा भंग हुई और वे उठकर बैठ गये। मनमें वही स्वप्नकी ध्वनि गूँज रही थी। तत्क्षण भगवान् भूतनाथ भवानीजीसहित प्रकट होगये। गोसाईंजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजीने कहा-'तुम अपनी मातृ-भाषाहीमें काव्यकी रचना करो। देववाणी संस्कृतके पीछे क्यों पड़े हो? जिसमें सबका कल्याण हो, वही करना चाहिये। केवल पूर्व प्रथा अथवा रूढ़िका आदर करनेके नाते सबके कल्याणकी उपेक्षा करना कोई बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। अब तुम श्रीअयोध्याजीमें जाकर वास करो और वहीं अपने काव्यकी रचना करो। मेरे प्रसादसे यह काव्य-रचना सामवेदकी ऋचाके समान सफल होगी।'

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीउमा-महेश्वर अन्तर्हित हो-गये। अपने भाग्यकी सराहना करते हुए गुसाईंजी श्रीअयोध्यापुरीको चले। जिस दिन बादशाही-दरबारमें उदयसिंहको सम्मान प्राप्त हुआ, उसी दिन श्रीगोस्वामिपाद श्रीअवध पहुँचे।

अपराह्णमें विमल श्रीसरयू-धारामें स्नान करके सरयू-पुलिन, वन-वाटिका और वीथियोंमें विचरने लगे। एक सन्तसे भेंट हुई। वे कहने लगे—'चलिये श्रीहनुमान्‌गढ़ीके निकट मैं आपको एक सुरम्य स्थान दिखलाऊँ।' वे सन्त श्रीगोस्वामीजीको वहाँ ले गये और उन्होंने वह रमणीय-स्थल दिखलाया। उस स्थानपर सुन्दर वट-वृक्षोंकी विटपावली थी। उन वृक्षोंमें एक सुविशाल वट-वृक्ष था। उसकी जड़में एक सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। उस वेदीपर अग्निके समान तेजस्वी एक सुप्रसिद्ध सिद्ध-सन्त सिद्धासनसे बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थलको देखकर गुसाईंजीका मन लुभा गया। उनके मनमें वहीं कुटीर बनाकर बसनेकी इच्छा जागृत हुई। जब वे टहलते टहलते उस सिद्ध-सन्तके निकट पहुँचे तब उसने आसन छोड़कर जय-जयकार किया और कहा—'मेरे गुरुने मुझे आज्ञा दी थी और उसीके अनुसार मैंने यहाँ निवास किया था। श्रीगुरुदेवजीने इसका मर्म भी मुझे बतलाया था और उसे मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान्‌ने कहा था कि—'कुछ दिन बीतनेपर गोस्वामी तुलसीदासजी यहाँ आकर श्रीरामचरित

वर्णन करेंगे। वे आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीके अवतार होंगे और श्रीपवनकुमारजीकी सहायतासे वे यह महान् कार्य करेंगे। यही जानकर राजराज कुबेरने इस स्थानपर वट-वृक्ष लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बाँध दी है। अब तू मेरी आज्ञा मानकर इस स्थानको परिष्कृत करके यहीं भजन कर। जब इस स्थानपर गोस्वामीजी उस महान् कार्यके लिये आवें, तब कुटी और आसन उन्हें सौंपकर तन त्याग करके मेरे पास चले आना।' गुरुजीका उपदेश मुझे अच्छा लगा और मेरे अनेक जन्मार्जित पुण्यका उदय हो गया। यहाँ निवास करके, यहाँके सुखका अनुभव करते हुए तपस्यापूर्वक मैं आपके आगमनकी बाट देख रहा था। अतएव हे स्वामी ! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। अब मैं अपने गुरुके पास जाता हूँ।'

ऐसा कहकर वे सिद्ध सन्त वेदिकासे उतर पड़े और नमन करते हुए कुछ दूर आगे चले गये। वे वहाँ आसन लगाकर ध्यानावस्थित हो गये और योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको भस्म करके परम धामको चले गये। इस लीलाको देखकर गुसाईंजीने कहा—'हे धनुर्धर ! तेरी बलिहारी है।'

गुसाईंजी सुख-सुपास पाकर वहीं बस गये। दृढ़ संयमपूर्वक समय बिताने लगे। एक समय थोड़ा-सा दूध पी लिया करते थे। उन्हें केवल श्रीरघुनाथजीका भरोसा था और किसीका भी डर नहीं था। इस तरह दो वर्ष बीत गये, परन्तु उनकी वृत्ति नहीं डिगी और संवत् १६३१ का आरम्भ हो गया !

त्रेता-युगमें श्रीराम-जन्मकी तिथिपर जो ग्रह, राशि, लग्न, योग आदि पड़े थे, ठीक वही संवत् १६३१ की रामनवमीको भी पड़े। उस दिन प्रातःकाल भौमवारको श्रीहनूमान्‌जी प्रकट हुए और संसारके कल्याणके निमित्त सबसे पहले उन्होंने गोस्वामीजीको अभिषिक्त किया। अनन्तर उमा-महेश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शेषजी, सूर्यभगवान्, शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीने मंगलमय आशीर्वाद दिये। इस विधिसे विमल रामचरितमानसका आरम्भ हुआ। जिसके श्रवण करनेसे मद, दम्भ, कामादि समस्त विकार और सब प्रकारके संशय मिट जाते हैं।

दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिनोंमें अर्थात् सं० १६३३ के मार्गशीर्ष मासमें श्रीराम-विवाहके दिन भवसागरसे पार उतरनेके लिये सात जहाज बनकर तैयार हो गये। पाखण्ड-प्रपञ्चको दूर बहाने, पवित्र सात्त्विक धर्मके चलाने, कलिकालके पाप-कलापका नाश करने, हरिभक्तिकी छटा दिखलाने, मतमतान्तरके वादविवादको मिटाने, प्रेम-पाठ पढ़ाने, सन्तोंके चित्तमें भजनकी लगन उत्पन्न करने, सज्जनोंके हृदयमें प्रमोद बढ़ाने, 'हरि-भक्ति शिवजीके हाथमें है'—इस रहस्यको समझाने और वैदिक भक्ति-मार्गको सुझानेके लिये सप्त सोपान-युक्त दिव्य सद्ग्रन्थ बनकर तैयार हो गया। भौमवारको मध्याह्नके समय 'शुभमिति'–'हरिः ॐ तत्सत्' लिखा गया अर्थात् ग्रन्थ समाप्त हुआ। देवताओंने जयजयकारकी ध्वनि की और फूल बरसाये।

वास्तवमें यह ग्रन्थ तो उसी दिन बनकर तैयार हो गया था जिस दिन इसका आरम्भ हुआ था, परन्तु मनुष्यकी निर्बल लेखनीने उसे लिखनेमें इतने दिन लगा दिये।

श्रीगणेशजीने उसी समय इस ग्रन्थकी पाँच प्रतियाँ दिव्य लेखनीसे लिखकर तैयार कीं और वे तत्काल सत्यलोक, कैलाश, नागलोक, द्युलोक एवं दिग्पाललोकमें पहुँच*

* इस सम्बन्धमें स्वयं वकील साहबने मुझसे श्रीअवधमें यह कहा था कि—'यद्यपि श्रीगोस्वामीजीके परम कृपापात्र सखा श्रीवेणीमाधवजीका लेख सर्वथा प्रामाणिक माननीय है, किन्तु फिर भी इस विषयमें जब तब मेरे हृदयमें सन्देहाभास हो जाता था। परमात्माको धन्यवाद है कि अब वह निपट दूर हो गया। बात यह हुई कि श्रीमान् नीलकण्ठजी (जो मेरे परम मित्र हैं और श्रीरामायणजीके अनन्य प्रेमी हैं)ने स्वयं निज मुखसे मुझसे कहा, कि— 'प्रायः मेरी साध्वी स्त्रीको मरे एक वर्ष हो चुका था। एक रात्रि मैंने स्वप्नमें उसे दिव्यलोकमें देखा। वह मेरा हाथ पकड़कर अपने स्थानमें ले गयी। वहाँकी अलौकिक रचना देख मैं विस्मित और चकित हो गया। मैंने कहा तुम्हें परम दिव्यलोक प्राप्त हुआ ! यह बड़े सुखकी बात हुई। किन्तु यह तो कहो यहाँ भी कुछ भजन होता है ? उसने दिव्याक्षरोंमें लिखी हुई श्रीगोस्वामीकृत श्रीरामायणजी दिखलायी और कहा—'यही हमारा इष्ट है। हम सब इसकी उपासना करते हैं। श्रीगणेशजीने इसे यहाँ भेजा है।' मैं बड़े ही आश्चर्य व सुखमें मग्न था। मेरी स्त्रीने कहा कि 'तुम भी यहाँ अमुक समयमें आओगे।' इस स्वप्नको सुनकर और नीलकण्ठजीकी निर्धारित परमधाम-यात्राको देखकर ही वकीलसाहबका वह सन्देह दूर हो गया था।

गयीं। यह रचना सबको पसन्द आयी। सबके मनमें श्रीरामचरितमानसने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। देवताओंतकने उसे प्रेमसे अपनाया। अमर, नर, नाग सभी सम्प्रदायके उदारचेता महात्माओंने इसे शिरोधार्य किया। सबने शुद्ध मन, वचन और कर्मसे श्रीगुसाईंजीके चरण-कमलोंकी वन्दना की।

परम मधुर पावनि करनि चार पदारथ दानि।
तुलसीकृत रघुबर-कथा कै सुरसरि सुखखानि॥

अनन्तर श्रीहनुमान्‌जी प्रकट हुए। उन्होंने अथसे इतितक सब कथा सुनी और सुन्दर वर दिया कि—'यह कीर्ति त्रिभुवनको वश करनेवाली हो।'

तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे आप काशीपुरीमें गये और उमा-महेश्वरको अपनी कृति सुनायी। पाठ समाप्त करके आपने रातको शिवलिङ्गके पास पोथी रख दी। सवेरे जब मन्दिरका पट खुला, तब वहाँ पण्डित, मूर्ख, तपस्वी, सिद्ध और भगवत्-दास सभी पोथीके दर्शनके लिये जमा हुए। सबने सतृष्ण दृष्टिसे देखा कि श्रीभगवान् शंकरने पुस्तकपर 'सही' कर दी है और दिव्याक्षरोंमें उसपर 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' लिखा हुआ है। साथ ही मन्दिर खुलते ही उन्हें इसी प्रकारकी दिव्य आकाश-वाणी भी सुनायी पड़ी।

इस अद्भुत घटनाका वृत्तान्त घर-घर फैल गया। सब नर-नारी प्रसन्न मन दौड़े हुए गुसाईंजीके पास आये, चरण-वन्दना करके उनकी जयजयकार करने और बलैयाँ लेने लगे। परन्तु पण्डितमण्डली चिन्ताग्रस्त हो गयी। उन्होंने समझा कि अब तो हमारा मान और माहात्म्य उठ जायगा और जीविकामें भी बाधा पड़ेगी, क्योंकि जब इस प्रसादमयी पोथीको लोग पढ़ेंगे तब कोई भी हमें नहीं पूछेगा। अस्तु, वे दल बाँधकर उसकी निन्दा करने लगे और देव-वाणीकी महिमा गाने लगे एवं प्राचीन रूढ़िकी दुहाई देने लगे। उन्होंने उस ग्रन्थको चुरानेके लिये षड्यन्त्र रचा। अन्ततोगत्वा निधुआ और सिधुआ नामक दो चोर रातके समय पोथीको चुरानेके लिये भेजे गये। वे श्रीगुसाईंजीके स्थानपर गये और वहाँके रक्षक त्रिभुवनधनीका दर्शन करके निहाल हो गये। दूसरे दिन उन्होंने पूछा—'गुसाईंजी! आपके स्थानमें धनुष-बाण धारण किये हुए दो श्याम-गौर किशोर अवस्थावाले कौन थे, जो रात्रिभर पहरा दे रहे थे?' यह सुनकर सजल-नयन-पुलकित होकर श्रीगोस्वामीजीने कहा—'तुम धन्य हो, जो तुम्हें उनके दर्शन हुए।' यह कहकर आपने श्रीरामचरितमानसकी मौलिक प्रति (जिसपर श्रीशंकर भगवान्‌के हस्ताक्षर थे) अपने प्रेमी टोडरमलके घर यत्नपूर्वक सुरक्षित रख दी।

श्रीगोस्वामीजीने उसकी एक दूसरी प्रति तैयार की और उसीसे अनेक प्रतियाँ लोगोंने लिखीं लिखायीं। उसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता गया। मूर्ख पण्डितोंने मारणादि अनेक प्रयोग और प्रपञ्च रचे किन्तु वे सर्वदा असफल हुए।

जब सभी प्रयत्न विफल हुए तब वे अपना दल बाँधकर श्रीमधुसूदन सरस्वतीके मठपर गये, उन्होंने उक्त स्वामीजीसे कहा 'महादेवजीने श्रीरामचरितमानसको प्रामाणिक ग्रन्थ माना है सही, परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि वह किस कोटिका है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहासमेंसे वह किसके समकक्ष है, इस बातका निश्चय हो जाना चाहिये।' इसके उत्तरमें यतिराजने कहा—'मैं उस पुस्तकको मँगाकर पहले देख लूँ, तब बताऊँ।' उन्होंने उस ग्रन्थको गुसाईंजीसे माँगकर पढ़ा और परमानन्दको प्राप्त हुए। उसको लौटाते हुए स्वामीजीने निम्नलिखित रूपसे उसपर लिख दिया—

'जयति सच्चिदानन्दः'
आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमर भूषिता॥

अब पण्डित लोग फिर आये और उन्होंने निर्णयार्थ प्रार्थना की तब स्वामीजीने उनसे कहा कि—'इस बातको सदाशिवजीसेही क्यों न पूछ लीजिये।' तब, सबके ऊपर वेद, उसके नीचे शास्त्र, फिर पुराण और सबके नीचे 'मानस' रखकर मन्दिरमें शिवजीके सामने रख दिया गया।

प्रातःकाल मन्दिरका पट खुला। सब लोग देखनेके लिये टूट पड़े। परम पुनीत वेदके ऊपर 'मानस' (श्रीरामायणजी) को देखकर पण्डितगण बहुत लज्जित हुए। वे गोस्वामीजीके चरणोंमें गिर पड़े, अपराध क्षमा कराया और उनका चरणोदक लेकर अपने अपने घर गये।

कहाँतक कहा जाय, कोई भी लौकिक वा पारमार्थिक कार्य ऐसा नहीं, जो इस ग्रन्थसे सिद्ध न हो सके। अच्छे आप्त तथा तत्त्वज्ञ निर्मत्सर सज्जनोंका तो यह निश्चय है कि जैसे सत्ययुगमें श्रीब्रह्माजी आचार्य थे और वेदसे सब धर्मोंका निश्चय होता था, तथा त्रेतामें वाल्मीकिजी आचार्य थे और श्रीअद्भुतरामायणसे धार्मिक व्यवहारका प्रचार

होता था 'रामायण सत कोटि अपारा' 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरं' द्वापरमें भगवान कृष्णद्वैपायन आचार्य थे और पुराणोंसे धर्मकी प्रवृत्ति होती थी। इसी तरह कलियुगमें श्रीगोस्वामीजी आचार्य हैं और श्रीरामचरितमानस एवं गोस्वामीजी कथित अपर सब ग्रन्थ ही धार्मिक प्रवृत्तिके कारण हैं।

एक ज़रा-सी बात और सुन लीजिये। श्रीरामचरितमानसके इस अपूर्व आश्चर्यमय महत्त्वको तो विचारिये कि जो ग्रन्थ प्रकाश्यमें साढ़े तीनसौ वर्षकी आयुवाला ही समझा जा रहा है, उसके माहात्म्य और नवाह्निक पाठके 'अथ' और 'इति' में श्रीमानसान्तर्गत गुसाईं जीके ही शब्दोंका उल्लेख अति प्राचीन श्रीब्रह्मरामायण तथा महाकालसंहितामें, श्रीपार्वतीजीके प्रश्न करनेपर स्वयं भगवान् शंकरने इसप्रकार किया है—

वाल्मीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कलौयुगे।
शिवेनात्र कृतो ग्रन्थः पार्वती प्रतिबोधितुम्॥ १॥
रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति।
रामायणं मानसाख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥ २॥
भाषारामायणस्यैव पठनाच्छ्रवणात्प्रिये।
सद्यः पुनन्ति वै सर्वे चिरकालात्तथान्यतः॥ ३॥
(श्रीब्रह्मरामायण)

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च तथोत्तमम्।
श्रोतव्यं च तथा भक्त्या रामायणरसामृतम्॥ १॥
ऊर्जे मासे सिते पक्षे चैत्रे च द्विजसत्तम।
नवाह्ना खलु श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्॥ २॥
अथवा माधवे विप्रं मार्गशीर्षे च श्रावणे।
आश्विने फाल्गुणे चैव शुक्लपक्षे विशेषतः॥ ३॥
श्रुत्वा रामायणं पुण्यं परमं पदमाप्नुयात्।
वर्णानामिति चारभ्य उवाच करुणानिधिः॥ ४॥
प्रथमे दिवसे पाठं कुर्याच्चैव विचक्षणः।
द्वितीये दिवसे विप्र शतानन्दस्य वन्दनम्॥ ५॥
तृतीये कृतशौचान्तं चतुर्थे वारिजेक्षणः।
पञ्चमे रामशैलान्तं शोकास्थिति च षष्ठके॥ ६॥
सप्तमे मारुतेर्वाक्यं चन्द्रे रामस्य संस्थितिः।
अष्टमे गुरुवाक्येन राज्यसंभारसंस्मृतिः॥ ७॥
नवमे पतङ्गकिरणैर्नैव दह्यन्ति मानवाः।
एवं क्रमेण श्रोतव्यं नवाह नवमिः दिनैः॥ ८॥

देखा आपने श्रीरामचरित-मानसका दिव्यत्व—अलौकिकत्व! भाई! अब भूलकर भी भाषा भाषा कहकर कभी इसका अपमान न करना। जाने दो उनको जो—'बातुल भूत बिबस मतवारे' हैं हमारा निवेदन तो आपसे है, कि—

तिनकर कहा करिअ नहिं काना। जिन कृत महा मोह मद पाना॥

श्रीगोस्वामीजीके शब्दोंको अथसे इतितक नवाह्निक पाठ-क्रमसे मिलान कीजिये। उनके शब्द प्राकृतिक नहीं—दिव्य हैं, निश्चय दिव्य हैं!! उनकी दिव्यताकी साक्षी श्रीब्रह्मरामायण और महाकालसंहिता पुकार पुकारकर दे रही हैं।

रावनारि जस पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग॥
रामचरन रति जो चहै, अथवा पद निरवान।
भावसहित सो यहि कथा, करै श्रवन पुटपान॥

अभियोग

(लेखक—श्रीसियारामशरणजी गुप्त)

बालक चन्द्रकेतुने श्रीरामचन्द्रके पास आकर खीझके स्वरमें कहा—'ताऊजी, आप काकाजीसे न बोला करें!'

बालकको गोदमें उठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—'क्यों बेटा, हुआ क्या?'

थोड़ी दूरपर लक्ष्मण खड़े थे। दूसरी ओर मुँह करके वे मुसकुराये। बालकने उनकी ओर उँगली उठाकर कहा—'वे और तो सबसे बोलते हैं, मुझसे ही नहीं बोलते। छोटे काकाजीके धोखे मैं उनकी पीठपर चढ़ गया तो उन्होंने ढकेलकर मुझे पीछे हटा दिया। वे मुझे प्यार नहीं करते। आप उनसे न बोला करें!'

श्रीरामचन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़े। बालकका मुँह चूमकर उन्होंने कहा—'बेटा, इस तरह नहीं कहा जाता। वे तेरे पिता हैं। उनके प्यार करनेका ढंग यही है।'

चन्द्रकेतुने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, ऐसे पिताकी जरूरत नहीं है। इनसे तो छोटे काकाजी अच्छे पिता हैं। आप इनसे न बोला करें!' *

* इस गद्यमें सम्मिलित कुटुम्बमें रहनेवाले ऐसे पिताका उल्लेख है जो बड़ोंके सामने अपने पुत्रसे बोलना सभ्यताविरुद्ध समझता है। हो सकता है, बहुतसे लोग इस प्रथाको ही सभ्यताके विरुद्ध समझें। लेखकको इस झगड़ेसे प्रयोजन नहीं है। उसने तो अपने आस-पास रहनेवाले पिताओंमें श्रीराम और लक्ष्मणको देखनेका ही प्रयास किया है।—लेखक

रामायणमें हिन्दू-संस्कृति

(लेखक—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

मदरास-प्रान्तके लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् और वक्ता श्रीयुत शिवस्वामी ऐयरने एक बार अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यानमें कहा था, 'हमारा राज्य छिन जावे, ऐश्वर्य धूलमें मिले, विभव पददलित हो, समस्त सम्पत्ति हर ली जावे, हम सर्व प्रकार निःसम्बल हो जावें, सर्वस्व गँवा दें, तो भी हम निःस्व न होंगे, यदि रामायण और महाभारत-जैसे हमारे अलौकिक रत्न सुरक्षित रह सकें।' इस कथनका रहस्य क्या है? वास्तवमें बात यह है कि जातिकी संस्कृति ही उसका जीवनसर्वस्व होती है। कोई जाति अपनी संस्कृति खोकर जीवित नहीं रह सकती, संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति-जीवनका विशाल प्रासाद निर्मित होता है। जिस दिन यह आधारशिला स्थानच्युत होगी, उसी दिन पुष्टसे पुष्ट प्रासाद भी भहरा पड़ेगा। संसारमें कुछ निर्जीव जातियाँ अब भी जीवित हैं, किन्तु अपनी संस्कृतिको खोकर वे कण्ठगत-प्राण हैं, उनको मरी ही समझिये, चाहे आज मरें, चाहे कल। कारण यह है कि संस्कृति ही किसी जातिके अस्तित्वका पता देती है, यही वह चिन्ह है, जो उसके पूर्वगौरव, महान् आदर्श, और लोकोत्तर कार्यकलापद्वारा संसारकी अन्य जातियोंसे उसको पृथक् करता है। जिस समय चारों ओर अन्धकार होनेके कारण वह अवनति-गर्त्तकी ओर अग्रसर होती रहती है, उस समय उसीके आलोकसे आलोकित होकर वह उचित पथ ग्रहण करती है, और उस समुन्नति सोपानपर चढ़ने लगती है, जो उसको उत्थानके समुच्च शिखरपर आरूढ़ कर देता है। भारतमें यवन, शक, हूण आदि बड़ी बड़ी बलवान् जातियाँ आयीं। परम पराक्रान्त वह मुसल्मान जाति आयी, जिसने जहाँ शासन किया, वहीं अपने धर्मकी वह विजय-दुन्दुभी बजायी, जिसके द्वारा देशका देश उसके धर्ममें दीक्षित हो गया। किन्तु रामायण और महाभारत-की पवित्र संस्कृतिके बलसे हिन्दूधर्म आज भी जीवित है, जीवित ही नहीं, उसने अपनी वह अलौकिक महत्ता दिखलायी है कि जिसके बलसे संसार-विजयिनी करवाल भी टुकड़े टुकड़े हो गयी। जिस समय भारतव्यापी मुसल्मान साम्राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा था, और उसकी गुरु गर्जनासे भारत-वसुन्धरा कम्पित हो रही थी। जब यह अवगत हो रहा था, कि अब भारतीयताकी समाप्ति हो जायगी, हिन्दू-धर्म विलुप्त हो जायगा, हिन्दू-जाति नाम-शेष रह जायगी, और भारतभूमिका अपार विभव मुसल्मान जातिके विशाल उदरमें समा जायगा। उस समय कतिपय महान् आत्माओंमें कुछ ऐसी संस्कृति जागृत हुई, जिन्होंने भारतवर्षकी काया ही नहीं पलट दी, हिन्दू-जातिका पुनरुज्जीवन भी कर दिया, यह बात इतिहास जाननेवालोंको अविदित नहीं। यह कौन संस्कृति थी? वही रामायण और महाभारतकी। उस रामायण और महाभारतकी जो हिन्दू-संस्कृतियोंके भाण्डार हैं। मैं समझता हूँ, अब मदरास-प्रान्तके विद्वान्के कथनका रहस्य आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा।

भारतमें समय समयपर विभिन्न विचारके बड़े बड़े प्रवाह आये, कुछ कालतक उनके प्रबल वेगके सामने वह आत्मविसर्जन करता दिखलायी पड़ा, परन्तु उसके धैर्यका पाँव स्थानच्युत कभी नहीं हुआ। वह सदा सँभला, और अपनी भारतीयता-धारामें उसने सबको विलीन कर लिया। उसकी महान् संस्कृति ही उसकी इस सफलताका कारण है। कविकुल-पुंगव वाल्मीकिकी महिमामयी लेखनी जिस प्रकार इन आर्य संस्कृतियोंका उल्लेखकर धन्य हुई है, उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासकी कलामयी कवितामें भी उनका अलौकिक चमत्कार दृष्टिगत होता है। गोस्वामीजीकी वर्णना सामयिकता लिये है, इसलिये उन्हींके रामायणसे कुछ ऐसी संस्कृतियोंका वर्णन यहाँ किया जाता है जो हमारे सामाजिक जीवनकी सञ्जीवनी शक्तियाँ कही जा सकती हैं। गोस्वामीजी-की रामायण आर्यसभ्यता और संस्कृतिका अलौकिक कोष है, जहाँ देखिये, वहीं उनकी लेखनी, इस विषयमें बड़ी ही मार्मिकतासे चलती दिखलायी पड़ती है। उनकी रामायण-का गेहे गेहे, जने जने प्रचार क्यों है? इसीलिये, कि हिन्दू-हृदय जिन आदर्शोंको देखकर पुलकित होता है, जिन भावोंद्वारा उल्लसित और रससिक्त बनता है, उसमें उन्हीं आदर्शों और भावोंका बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण है। गोस्वामीजीकी

श्रीसीता राम

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः । नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ।

GITA PRESS, GORAKHPUR

लेखनीका चमत्कार यही है, कि वह मूर्तिमन्त आर्यसंस्कृति है, वह मूर्तिमत्ता कहीं कहीं इतनी मनोहर और सुन्दर है, इतनी प्राञ्जल और सरस है, कि उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। उनकी अद्भुत रचनाओंके पढ़ते समय कभी कभी इतनी तन्मयता हो जाती है, कि ब्रह्मानन्द-सुखका अनुभव होने लगता है। वही कविता मर्मस्पर्शिनी होती है, जिसमें वे ही दृश्य सुन्दरतासे सामने आते हैं, जिनको हम प्रायः देखते रहते, अथवा जिनका अनुभव प्रतिदिन करते रहते हैं, गोस्वामीजी इसी प्रकारकी कविताओंके आचार्य हैं। वे न तो 'ख' पुष्प तोड़ते हैं, न अगम अगोचरका व्यापार करते हैं, न अधरमें प्रासाद-निर्माण ही। वे मानवचरित्रमें ही आत्माकी महत्ताका प्रदर्शन करते हैं, और नित्यके कार्य-कलापमें ही 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'की कल्पना। इसीलिये वे जो कुछ कहते हैं, उनको हृदय स्वीकार कर लेता है, कुछ इसी प्रकारकी कृतियाँ आपके सामने उपस्थित की जाती हैं।

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान् श्रीरामचन्द्र वन-यात्राके लिये प्रस्तुत हैं, श्रीमती कौशल्यादेवीकी सेवामें उपस्थित होकर उनसे अनुनय-विनय कर रहे हैं, इसी समय व्यथितहृदया विदेह-नन्दिनी वहाँ आयीं। गोस्वामीजी लिखते हैं-–

> समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
> जाइ सासु-पद-कमल-युग बंदि बैठि सिरु नाइ॥

दोहेके द्वितीय भागमें कुललजनाकी कितनी मर्यादा-शीलता अंकित हुई है, यह अविदित नहीं। भगवती जानकी सीधे आकर भगवान् रामचन्द्रके सामने नहीं खड़ी हो गयीं, उन्हींसे कथोपकथन नहीं प्रारम्भ किया, क्यों? इसलिये कि इससे श्रीमती कौशल्यादेवीका तिरस्कार होता। आर्य-जातिकी यह संस्कृति है, कि बड़ोंकी उपस्थितिमें बहुएँ लज्जा त्यागकर पतिसे सम्भाषण नहीं करतीं, उनसे बोलती तक नहीं। आज भी कुलीनोंमें यह परम्परा प्रचलित है। फिर आदर्श गृहिणी सीतादेवी ऐसा क्यों करती? वे आयीं और सासकी चरण-वन्दना करके, सिर नीचा करके बैठ गयीं, कितना सलज्ज भाव है। 'बैठि सिरु नाइ' लिखकर गोस्वामीजीने जो मार्मिकता दिखलायी है, यही उनकी विशेषता है। यह 'बैठि सिरु नाइ' जानकीजीके हृदयका प्रतिबिम्ब है। इस कार्यद्वारा उन्होंने अपनी मर्यादाशीलता, अपनी आकुलता, और अपनी असफलताका ही प्रदर्शन नहीं किया, दैन्य दिखलाकर सहायता-की भिक्षा भी माँगी। सम्भव है कि आजकलकी शिक्षिता ललनाएँ, इसको पराधीनताकी कुत्सित बेड़ी समझें, किन्तु यह मर्यादाशीलताकी वह मौक्तिक माला है, जिसको धारणकर प्रत्येक कुल-बालाकी अपूर्व शोभा हो सकती है। आर्यसंस्कृतियाँ अत्यन्त उदात्त हैं, उनमें स्वार्थपरताका उतना स्थान नहीं, जितना सदाशयताका। वह अपने सुख-विलासमें ही जीवनकी सार्थकता नहीं समझतीं, वह तभी कृतकृत्य होती हैं, जब गुरुजन, आत्मीयजन, अथवा अन्य उपकार-कामुक जनों-की सेवाकर आत्म-उत्सर्ग कर पाती हैं। वे उच्छृङ्खलता एवं निर्लज्जतासे मर्यादाशीलताको, और संकीर्ण हृदयता एवं मदान्धतासे सहृदयताको उत्तम समझती हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें ऐसे आदेश हैं, कि जिनसे इसप्रकारके संस्कारोंका उदय हो।—कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

> अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
> चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

भगवान् मनु कहते हैं—

जो अभिवादनशील और नित्य वृद्धसेवा-तत्पर हैं, उनकी आयु बढ़ती है, और उन्हें विद्या, यश और बल प्राप्त होता है।

विवाहकालके समय सप्तपदीमें स्त्री यह प्रतिज्ञा करती है-

> कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा तं मञ्जुभाषिणी।
> दुःखे धीरा सुखे हृष्टा: द्वितीये सा ब्रवीद्वचः॥

कुटुम्बकी रक्षा करूँगी, सदा मधुरभाषिणी रहूँगी, दुःखमें धीर और सुखमें आनन्दित रहूँगी।

(१) गुरुषु सखिषु भृत्ये बन्धुवर्गे च भर्तुर्व्यय गतमद-माया वर्त्तयेत् हं यथार्हम्—

(२) मार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भादेववत्पतिमानुकूल्येन वर्तेत, तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि सन्निवेशयेत्।

(३) श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत् पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता-परिमिता प्रचण्डालापकरणमनुच्चैरहासः तत् प्रियाप्रियेषु स्वाप्रिया-प्रियेष्विव वृत्तिः। (वात्स्यायन।)

(१) पतिसे, गुरुसे, सखियोंसे और बन्धुवर्ग एवं सेवकोंसे निरभिमान रहकर यथायोग्य बर्ताव करे।

(२) भार्याको चाहिये, पतिको देवता-समान जाने, उसकी इच्छाके अनुकूल जीवन व्यतीत करे और उसकी सम्मतिके अनुसार कुटुम्बीजनकी चिन्तामें लीन रहे।

(३) कुलवधू सास-ससुरकी सेवा करे, उनकी आज्ञा-में रहे, उनकी परतन्त्र बने, उनकी बातोंका जवाब न दे,

मिष्ट भाषण करे, ज़ोरसे न हँसे। उनके प्रिय अप्रियको अपने प्रिय-अप्रियके समान समझे।

जिस समय श्रीमती जनकनन्दिनी सिर नीचा करके चरणोंके समीप बैठ गयीं—उस समय—

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥

इस पद्यमें यथावसर 'मृदुबानी' शब्दका कितना सुन्दर प्रयोग है। यदि दोहेका 'पद-कमल बंदि बैठि सिरु नाइ' श्रीमती जानकीके विनय-नम्र हृदयका सूचक है, तो यह 'मृदुबानी' शब्द कौशल्यादेवीके कोमल वात्सल्यपूर्ण हृदयका परिचायक। इसके उपरान्त श्रीमती कौशल्यादेवीके हृदयकी क्या अवस्था हुई, इसकी सूचना यह अर्द्धाली देती है 'अति सुकुमारि देखि अकुलानी' कितनी स्वाभाविकता है! वे कितना शीघ्र अपनी पुत्रवधूके हृदयमें प्रवेश कर गयीं। श्रीजानकीजी सासके समीप सिर नीचा करके बैठ तो गयीं, परन्तु मुहँ न खुला, वे कुछ कह न सकीं, कैसे कहतीं, संकोचने उसे बन्द कर रक्खा था। यही नहीं, हृदयमें दुःखकी एक विचित्र घनघोर घटा उठ रही थी, वे सोच रही थीं—

बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता॥
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृतीसन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना॥
चारु चरन-नख लेखति धरनी।

देखा आपने, सामयिक अवस्थाकी कितनी सुन्दर वर्णना है?—'बैठि नमित मुख' से 'चारु चरन नख लेखति धरनी' तक कैसे भावमय शब्द-विन्यास हैं, उनसे श्रीमती जानकीदेवीकी संकोचमय दशा, उनके चिन्ता-नाट्य, उनके दृढ़ विचार, पवित्र प्रेम आदिपर कितना सुन्दर प्रकाश पड़ता है। हृदयमें जो घटा धूमसे उठ रही थी, नेत्रोंके सहारे वह बरस भी पड़ी—गोस्वामीजीने लिखा—

मंजु बिलोचन मोचति बारी—

कौशल्यादेवी पहले ही सब समझ गयी थीं, नेत्रोंके जलने उनको और आर्द्र कर दिया, इसलिये दूसरी अर्द्धाली यों लिखी गयी—

बोली देखि राममहतारी॥

'राममहतारी' का कितना सार्थक प्रयोग है—पुत्रपर माताका अधिकार तो सूचित हुआ ही, साथ ही उनके हृदयकी महत्ता और मृदुलशीलता भी उससे विदित हुई। राम-महतारी क्या बोलीं, अब उसे भी सुनिये—

तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिं पिआरी॥
पिता जनक भूपाल-मनि, ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रबिकुल-कैरव बिपिन बिधु-गुन-रूप-निधानु॥
मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप-रासि गुन सील सुहाई॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहेउँ। दीपबाति नहिं टारन कहेउँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद-किरन रस-रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकै किमि जोरी॥
करि, केहरि, निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिषबाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवन-मूरि॥
बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापसतिय काननजोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥
सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी। डाबर-जोग कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥

श्रीमती कौशल्यादेवी आदर्श माता ही नहीं, आदर्श सास भी हैं। सासका पतोहूके प्रति वह सच्चा और पवित्र स्नेह जो गृहको स्वर्ग बनाता है, गार्हस्थ्य धर्मको उन्नत कर कुटुम्बको सुख-शान्तिमय कर देता है, वे उसकी मूर्ति थीं। भावमय शब्दोंमें उनके हृदयका प्रेम जिस प्रकार व्यञ्जित हुआ है, वह बड़ा ही गम्भीर, उदात्त एवं द्रावक है।

'नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥'
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहेउँ। दीपबाति नहिं टारन कहेउँ॥'

इन पंक्तियोंमें कितनी ममता भरी है, इनमें कितना आदरभाव और प्यार है, कितना प्रेम और वात्सल्य है, कितनी करुणा और मृदुलशीलता है, क्या यह बतलाना होगा? कौन सहृदय है, जो इन भावोंको इनमें ढूँढ़ता न पावेगा। अब कौशल्यादेवी कहती हैं, 'पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥ बनहित कोल

किरात किसोरी । रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी ॥ कै तापस-तिय कानन जोगू। जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू ॥ सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती ।' तब जानकी देवीकी सरलता, कोमलता, उनके स्वभावका भोलापन, और उनकी भीरु प्रकृति आँखोंके सामने फिर जाती है, साथ ही हृदयमें एक ऐसी वेदना होने लगती है, जो चित्तको विह्वल कर देती है। यदि कौशल्यादेवी सीताजीका मुँह न जोहती रहतीं, उनके सुखसे रहनेका ध्यान न रखती होतीं, तो उनके मुखसे इस तरहकी बातें न निकलतीं । इन पंक्तियोंमें उनकी व्यथा ही मूर्तिमन्त होकर विराजमान नहीं है, उनकी वह वाञ्छा भी झलक रही है, जो पुत्रवधूके साधारण क्लेशोंको देखकर भी विचलित होती है । 'चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकै किमि जोरी ॥ सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी । डाबर-जोग कि हंसकुमारी ॥ बिषबाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवन-मूरि ॥' किसी पुत्र-वधूके पक्षमें अपने पुत्रसे कोई सास इससे अधिक और इससे उत्तमतासे क्या कह सकती है ? इन पंक्तियोंमें एक कुल-बालाका हृदय खोलकर उसके प्रियतमको दिखलाया गया है, और साथ ही यह भी सूचित किया गया है, कि एक पति-प्राणाके वियोग-विधुरा बननेपर उसका जीवन कैसा संकटापन्न हो सकता है । इनमें कौशल्यादेवी-की गम्भीरता जितनी सुन्दरतासे स्फुटित हुई है उतनी ही उनकी भावुकता, सहृदयता, और मार्मिकता भी । एक ओर वे पुत्र-वधूकी गम्भीर मनोवेदना, उसकी वन-गमनकी असमर्थता आदिका आवरण हटाती हैं, और दूसरी ओर पुत्रकी आँखें खोलती हैं, और उसे उचित कर्तव्यके लिये सावधान करती हैं । ऐसे अवसरपर वे अपने उत्तरदायित्वको भी नहीं भूलतीं, वे पुत्रके महान् कर्तव्यों, उनके असीम संकटों और दैवदुर्विपाकको समझती हैं ।

अतएव वह आज्ञा नहीं देती, कि अपनी स्त्रीको अवश्य साथ लेते जाओ, केवल इतना ही कहती है—

सोइ सिय चलन चहति बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
जौ सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥

(order as printed:)

अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

फिर व्यथित और विरहकातरा होकर यह कह पड़ती हैं—

यह अन्तिम पद्य उनके व्यथामय आन्तरिक भावका सूचक है, पुत्र जाय तो जाय, किन्तु विनयशीला पुत्रवधूको वह नहीं त्यागना चाहतीं। फिर भी कलेजेपर पत्थर रख-कर उन्होंने आत्मसुखको तिलाञ्जलि दी, और जानकी-देवीकी मर्म-व्यथाओंकी ही मरहम-पट्टी करनेकी पूरी चेष्टा की; यही है उनकी महत्ता और महानुभावता, यहीं 'राम-महतारी' पदकी पूरी सार्थकता हुई । आर्यसंस्कृतिकी ही यह उदात्त कल्पना है, और आर्यसंस्कृतिका ही है यह अपूर्व आदर्श ।

आजकल सासकी बड़ी कुत्सा हो रही है, उसे मानवी नहीं दानवी कहा जाता है । पुत्र-वधुओंका चले तो वे उनका गला घोंट दें, पर क्या करें, कई कारणोंसे विवश हैं। फिर भी उनके विरुद्ध लेखनी धूमसे चल रही है, अधिकांश पत्र-पत्रिकाओंमें वे बड़े अच्छे शब्दोंमें स्मरण की जाती हैं। यह वर्तमानकालिक कुछ आन्दोलनोंका फल है, गुरुजनों-से सब प्रकारकी स्वतन्त्रता लाभ करना ही कतिपय नव्य-वादियोंका मत है, उन्हींके हाथों जहाँ माता-पिताकी छीछा-लेदर हो रही है, वहाँ श्वश्रूदेवीकी भी । मेरा निवेदन है कि जितनी नवज्योतिर्मयी पुत्रवधुएँ हैं, क्या वे बिल्कुल दूधकी धुली, और साफ सुथरी हैं, और जितनी संसारकी कालिमाएँ हैं, वे सासोंके मुँहपर ही पुती हुई हैं ? कदापि नहीं, अभी भी आर्यसंस्कृति जीवित है, भारतवर्षकी अधिकांश कुल-ललनाएँ आज भी उसीके शासनमें हैं। नगरोंमें विशेषकर ग्रामोंमें अभी अनेक सास-पतोहुएँ ऐसी हैं, जिनको हम मूर्तिमती कौशल्या और जानकी न कह सकें तो मानवी तो अवश्य कह सकते हैं । उन्हींके पुण्यप्रतापसे आज भी भारतमाताका मुख उज्ज्वल है, मेरा विश्वास है, सदाही उज्ज्वल रहेगा, क्योंकि 'सत्यमेव जयते नानृतम्'। मैं यह नहीं कहता कि दुष्ट सासें नहीं हैं, हैं, अवश्य हैं, किन्तु जहाँ दो चार दुष्ट हैं, वहाँ दस पाँच भली भी हैं । कुत्सा करते समय भली सासोंको क्यों भुला दिया जाता है ? स्मरण रक्खा जाय जो आज वधुएँ हैं, कल वे भी सास होंगी। मेरा विचार है कि सास भली होनेके लिये पुत्रवधूका भी भली होना आवश्यक है । बिना कारण कोई किसीको नहीं सताता, सतानेके कारण होने चाहिये। फल बीजका परिणाम होता है । बिना कुबीज बोये कुफल नहीं फल सकता । ताली दोनों हाथोंसे बजती है । पतोहू सास-का आदर करेगी, तो कोई कारण नहीं है कि सास टेढ़ी होकर सीधी हो। गृहकलह कहाँ नहीं होता, किन्तु सँभाल-नेसे ही सब सँभल जाता है, बनानेसे बिगड़ी बात भी बन जाती है । सहिष्णुता और क्षमा बड़ी चीज़ है,

सेवा और आत्मोत्सर्गसे पत्थर भी पिघल जाता है। भगवान् करे, घर घर श्रीमती कौशल्या-जैसी सास और श्रीमती जानकी जैसी पुत्रवधुएँ दिखलायी पड़ें, जिससे हमारे पवित्र गृहोंमें पाश्चात्य कलुषित प्रभावोंका पदार्पण न हो सके ।

माताकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र चिन्तित हुए, पहले तो विवेकमय वचन कहकर उन्होंने उनको समझाया, इसके उपरान्त जानकीजीसे कुछ कहना चाहा, परन्तु मर्यादा बाधक हुई, माताका संकोच हुआ, किन्तु समय देखकर उन्हें उनसे कुछ कहना ही पड़ा, गोस्वामीजी लिखते हैं—

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं।

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम हैं, परन्तु प्रबल कालसे उनकी भी न चली। श्रीमती जानकीदेवीसे उन्होंने जो कहा, उसे सुनिये—

राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू।।
आपन मोर नीक जो चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू।।
आयसु मोरि सास-सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।।
एहि तें अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।।
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम-बिकल मति भोरी।।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी।।
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातुहित राखौं तोही।।

कैसी उचित और मार्मिक बातें हैं, भगवान् रामचन्द्र जैसे विनय-नम्र और मर्यादाशील पुत्रके मुखसे दूसरी कौन बात निकलती? उन्होंने यह भी कहा, जो कुछ मैं कह रहा हूँ, वह गुरु एवं श्रुति-सम्मत है, अतएव इस धर्म-फलको, बिना कष्टका अनुभव किये लाभ करना चाहिये—

गुरु श्रुति संमत धरमफल पाइअ बिनहिं कलेस।

श्रुति कहती है—'मातृदेवोभव, पितृदेवोभव, आचार्य्यदेवोभव।'

शास्त्र कहता है—'प्रत्यक्षदेवतामाता' 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी।'

स्मृति कहती है—

संयतोपस्करा: दक्षा: हृष्टा व्ययपराङ्मुखी।
कुर्यात् श्वशुरयो: पादवन्दनं भर्तृतत्परा।।
(याज्ञवल्क्य)

उपाध्यायान् दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।
(मनु)

माता, पिता और आचार्य देवता हैं। माता प्रत्यक्ष देवता है। जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है। स्त्रीको संयतोपस्कर, दक्ष, हृष्ट और व्यर्थ-व्यय-पराङ्मुखी होना चाहिये। पतिमें रत रहकर सदा सास-ससुरकी सेवा करना उसका धर्म है। उपाध्यायसे दशगुण आचार्यका, आचार्यसे शतगुण पिताका, और पितासे सहस्रगुण गौरव माताका है।

इस प्रधान धर्मकी शिक्षा देनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्रने वनकी भयङ्करताओं और वहाँकी असुविधाओंका बड़ा ही विशद वर्णन किया है, पाठक रामायणमें उसको देख सकते हैं। अधिकांश वर्णन बड़ा ही भावमय और सुन्दर है, कवित्व तो उसमें कूट-कूटकर भरा है—कुछ पंक्तियाँ देखिये—

डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाए।।
हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू।।
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली।।
नव-रसाल-बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।।

इन पंक्तियोंमें कितनी स्वाभाविकता और भावुकता है, सहृदयजन स्वयं उसका अनुभव करें। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि श्रीमती जनकनन्दिनीका चरित्र जिस रूपमें भारतीय कवियोंने अंकित किया है, वह कल्पित है, उसमें वास्तविकताका लेश नहीं। 'उनपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ता है, परन्तु उस अवस्थामें भी उनको कुछ कहते नहीं देखा जाता, ज्ञात होता है उनके मुखमें जीभ ही नहीं, या किसीने उनके मुखपर मुहर लगा दी है। वह बड़ेसे बड़ा दुःख सह लेती हैं, परन्तु उफ़् भी नहीं करतीं। वज्र टूट पड़ता है, किन्तु हिलतीं तक नहीं। ऐसी प्रस्तर-प्रतिमा हो सकती है, कोई जीवधारिणी नहीं।' ऐसी ही ऐसी तर्कनाएँ करके, वे दिलके फफोले फोड़ते हैं, और इसप्रकारकी और कितनी ही ऊटपटांग बातें कहते रहते हैं। वास्तव बात यह है कि जिस वातावरणमें उनके हृदयका विकास हुआ है, जो दृश्य उनके नेत्रोंके सामने उपस्थित होते रहते हैं, पति-पत्नीके जिन पारस्परिक व्यवहारोंका उनको अनुभव है, वैसी ही उनकी विचारपरम्परा और भजनशैली है। योरपकी

स्त्रियोंमें आत्मपरायणता अधिक होती है. वे उतनी पति-प्रेमिका, और स्नेहमयी नहीं होतीं, जितनी एशिया विशेषतः भारतकी कुल-ललनाएँ होती हैं। वे पतिपरायणा तभीतक रहती हैं, जबतक उनके स्वार्थोंकी पूर्ति होती रहती है, स्वार्थमें व्याघात उपस्थित होनेपर वे तत्काल उनको त्याग देती हैं, आजकल यह प्रवृत्ति बहुत ही प्रबल हो गयी है। पतिकी आज्ञामें रहना, उनकी सेवाके लिये आत्मोत्सर्ग करना, उनकी दृष्टिमें आत्मविक्रय है। विवाह-बन्धन उनकी दृष्टिमें उतना पवित्र नहीं, वे बातकी बातमें उसे तोड़ सकती हैं। उनका स्वभाव उग्र, असंयत, और प्रायः उच्छृंखल होता है, इसप्रकारकी प्रवृत्तिको वे तेजस्विता कहती हैं। उनकी स्वतन्त्रताकी कामना इतनी तीव्र होती है, कि पतिके सामने यदि थोड़ा भी झुकना पड़े, तो वे उसे परतन्त्रता मान बैठती हैं। जिस देश, जिस समाजके ऐसे आदर्श हों, उस देश और समाजमें पला, यदि सीता-देवीको अधिक धीर, गम्भीर, संयत, आत्मत्यागकी मूर्ति, और पति-प्राणा देखकर उनके विषयमें तथाकथित विचार प्रकट करे तो क्या आश्चर्य ! मेरे कथनका यह मतलब नहीं, कि योरपमें पतिपरायणा स्त्रियाँ होती ही नहीं, ऐसा कहना, और सोचना, अन्याय होगा। मिल्टनने एक स्थानपर 'ईव'के मुखसे इन शब्दोंको कहलाया है- ये शब्द उन्होंने आदमसे कहे हैं-

"What thou bidd'st Unargued I beg, so God ordains, God is thy law, thou mine."

'जो आपकी आज्ञा होती है, उसे मैं बिना कुछ कहे सुने स्वीकार करती हूँ। ईश्वरीय इच्छा यही है। आपके नियन्ता ईश्वर हैं और मेरे आप।'

संसारमें जितनी सती साध्वी स्त्रियाँ होंगी, प्रायः सबके हृदयका भाव ऐसा ही होगा। यदि योरपकी स्त्रियोंमें ऐसा भाव न पाया जाता, तो मिल्टनकी लेखनीसे ऐसे शब्द निकलते ही नहीं, अभावमें भाव नहीं होता। योरपकी स्त्रियोंमें रजोगुण और तमोगुण ही होता है, सतोगुण नहीं, ऐसा कहना अस्वाभाविक होगा। वहाँ स्वाभाविकताका लोप हो गया है, कृत्रिमता ही शेष है, यह भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह परम सत्य है कि आजकल धार्मिकताका स्थान स्वेच्छाचारिता ग्रहण कर रही है, इसी-लिये वहाँका वायुमण्डल विशेष कलुषित हो गया है। योरपमें सती-साध्वी स्त्रियोंका अभाव नहीं, किन्तु वे उँगलियोंपर गिनी जा सकती हैं। क्षेत्र प्रायः वैसी ही स्त्रियोंके हाथमें है, जिनका चित्रण ऊपर हुआ है। अतएव उन्हींके प्रभावोंसे लोग प्रभावित हैं, और वैसे ही असंगत विचार भारतकी पुनीत सभ्यतामें पली स्त्रियोंके विषयमें प्रकट करनेके लिये बाध्य हैं, किन्तु इसप्रकारकी निर्मूल बातोंका मूल्य ही क्या ?

सीतादेवी भारतकी सती-साध्वी स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, उनको आर्यसंस्कृतिकी दिव्य मूर्ति कह सकते हैं। उनके मुखमें जिह्वा है, किन्तु बड़ी ही संयत। उनके मुँहपर मुहर कभी नहीं लगी, वे समयपर बोलती हैं, किन्तु उनके शब्द तुले हुए और गम्भीर होते हैं, उन शब्दोंमें महानुभावता भरी होती है पर साथ ही हृदयकी विशालता भी। कटु वचन कहना, उद्धत बन जाना, उनके स्वभावके विरुद्ध है। जैसी मर्यादाशीलता और सदाशयता उनमें दृष्टिगत होती है, अन्यत्र नहीं। और बातोंकी तरह सभ्यता-के भी स्तर होते हैं, पहले वह उतनी उदात्त, संयत और गम्भीर नहीं होती, जितनी उन्नतावस्थामें। सांसारिक अन्य पदार्थोंकी तरह उसका भी क्रमशः विकास होता है। जो जातियाँ पहले पशुओंके समान जीवन व्यतीत करती थीं, आज वे ऊँचे ऊँचे महलोंमें रहती हैं और वैज्ञानिक आविष्कारों-द्वारा जगत्‌को चकित करती हैं, यह उनकी सभ्यताके क्रमशः विकासका ही फल है। आर्य-सभ्यता संसारकी सब सभ्यताओं-से प्राचीन है, और लगभग पूर्णताको पहुँच गयी है, इसलिये वह अधिकांश उदात्त गुणोंका आधार है। भगवती जानकी सतीत्वके विषयमें इसका प्रमाण है। स्त्री-जातिके हृदयका चरमोत्कर्ष उनमें देखा जाता है, उनकी महानुभावता, संसारकी सती साध्वी स्त्रियोंका आदर्श है। विभिन्न हाथोंमें पड़कर विचार-वैचित्र्यके कारण कहीं कहीं उनका चरित्र विकृत हो गया है, किन्तु उनकी महत्ता कहीं खर्व नहीं हुई। दिङ्नाग बौद्ध विद्वान् था, उसने कुन्दमाला-नामक एक नाटक लिखा है। प्रकरण उसका 'वैदेही-वनवास' है। विपिनमें पहुँचाकर लौटते समय लक्ष्मणजी जनकनन्दिनीसे सन्देशकी प्रार्थना करते हैं—उस समय नाटककार उनके मुखसे ये वाक्य कहलाते हैं—

'तया निष्ठुरो नाम सन्दिश्यत इति प्रतिहत वचनतैषा लक्ष्मणस्य, न सीताया अन्यत्वम्।'

'अहो अविश्वसनीयता प्रकृत निष्ठुरभावानां पुरुष-हृदयानाम्।'

'ऐसे निष्ठुरके लिये मैं जो सन्देश देना चाहती हूँ, इसमें लक्ष्मणके वचनकी दृढ़ता है, सीताका सौभाग्य नहीं।' 'स्वभावहीसे निष्ठुरभावपूर्ण' पुरुष-हृदयकी अविश्वसनीयता विचित्र है।' ऐसे ही एक अवसरपर भवभूति कौन-सा पथ ग्रहण करते हैं, उसे भी देखिये—उत्तररामचरितमें एक स्थलपर वे श्रीमती सीता देवीकी सखी वासन्तीके मुखसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके विषयमें यह वाक्य कहलाते हैं—

'अयि देव ! किं परं दारुणः खिल्वसि'

'देव ! आप सचमुच बड़े निष्ठुर हैं।'

यह सुन सीतादेवी अपनी पतिप्राणताका परिचय देते हुए क्या कहती हैं, उसे भी सुनिये—

'सखि वासन्ति ! किं त्वमेवंवादिनी भवसि, पूजार्हः सर्वस्यार्यपुत्रो, विशेषतो मम प्रियसख्याः'

'सखी वासन्ती ! तुम ऐसा क्यों कहती हो, आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।

दिङ्नागकी जनकनन्दिनी, देवी नहीं मानवी हैं, उनमें धैर्यच्युति है, वे धैर्यच्युत होकर पतिदेवको निष्ठुर कहती हैं, साथ ही पुरुषजाति मात्रको स्वभावहीसे निष्ठुरहृदय कह डालती हैं। इस कथनमें स्वाभाविकता है, किन्तु चित्तकी वह विशालता नहीं, जो मनुष्यको देवता बना देती है। विपत्ति ही मनुष्यकी कसौटी है, इसपर दिङ्नागकी सीतादेवी कसनेपर ठीक नहीं उतरीं। भवभूतिकी सीता देवी वास्तवमें देवी हैं, वे आत्मचिन्ताशून्य हैं, सच्ची पतिप्राणा हैं, वे 'विपदि धैर्य' का आदर्श हैं, उन्होंने स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर ली है, उनमें प्रतिहिंसा-वृत्ति है ही नहीं, वे स्वयं तो भगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर कुछ कहती ही नहीं, किन्तु सखीके कटु वचनको भी नहीं सह सकतीं, उनका यह वाक्य बड़ा ही मार्मिक है, 'आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।' यह सीतादेवीका वास्तविक रूप है, यह रूप बुधजन ही नहीं, विबुध-जन-वन्दनीय है। उनका यही रूप आर्यसंस्कृतिका सर्वस्व है। गोस्वामीजी उनके इसी रूपके उपासक हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बातोंको सुनकर सीतादेवीने क्या कहा, अब उसको उन्हींके शब्दोंमें सुनिये।

कौशल्यादेवीके सामने जनकनन्दिनीको सीधे पतिसे बातचीत करनेमें मर्यादा बाधक थी, अतएव उन्होंने उन्हींका सहारा ढूँढ़ा, किन्तु इसमें उनको सफलता न हुई। भगवान् रामचन्द्रने ऐसी बातें कहीं, कि उन्हें बोलनेकी नौबत आयी। इसलिये पहले उन्होंने—

लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥

इस पद्यमें कितनी मर्यादा-शीलता है, 'छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी' में उनके सरल और विनम्र हृदयकी कितनी सुन्दर प्रतिच्छाया है। साससे अविनयकी क्षमा माँगकर उन्होंने पतिदेवसे जो कुछ कहा, उसमें पति-प्रेमका प्रवाह उमड़ा पड़ता है— उसका एक एक शब्द बड़ा ही भावमय है— उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये —

मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय-बियोग-सम दुखु जग नाहीं॥
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरकसमान॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सब सोकसमाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मोकहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे॥

विवाहकालमें सप्तपदीके समय पत्नी प्रतिज्ञा करती है—

आर्त्ते आर्त्ता भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी।
तवाज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सप्तपदे वदेत्॥

'आर्त होनेपर आर्त हूँगी, सुख-दुःख-भागिनी हूँगी, और तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी।' कहा जा सकता है इस प्रतिज्ञाके अनुसार उनको वही करना चाहिये था, जो पतिने आज्ञा दी थी, किन्तु उन्होंने दुःख निवेदन करना प्रारम्भ किया, क्या यह अमर्यादा नहीं? पहली बात यह कि 'आपत्काले नियमो नास्ति' दूसरी बात यह कि उन्होंने अवज्ञा क्या की? कोई आज्ञा होनेपर उसके पालन करनेमें जो बाधाएँ उपस्थित होंगी, क्या उनका निवेदन करना आज्ञा न मानना है। आज्ञा माननेकी अपेक्षा पतिकी दुःख-सुखसंगिनी होना, उनके लिये जीवन उत्सर्ग करना क्या अधिक संगत नहीं? सीतादेवीकी चेष्टा यही तो है। स्त्रीका सर्वस्व पति ही तो है, फिर यहाँ तो प्राणकी बाधा उपस्थित है—

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान।

ऐसी अवस्थामें उन्होंने जो कुछ निवेदन किया, उसमें विप्रतिपत्ति क्या ? जो स्त्री-धर्म है, जो शास्त्रसंगत बात है, वही तो वे कह रही हैं—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्यवा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरत्किञ्चिदप्रियम् ॥
(मनु)

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥
(व्यास)

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्त्तारं पूजयेत्सदा ॥
(शिवपुराण)

'पतिरेको गुरुस्त्रीणाम् । (चाणक्य)

'स्त्रीको न तो कोई यज्ञ करनेकी आवश्यकता है, न व्रत-उपवासकी, पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वर्गमें आदृत होती है । पतिलोककी कामना करनेवाली साध्वी स्त्री चाहे जीवित पति हो चाहे मृत किन्तु उसका अप्रिय कभी न करे । भार्या वही है जो गृह-कार्यमें दक्ष हो, सन्तानवाली हो, पतिप्राणा और पतिव्रता हो । पिता, भ्राता, पुत्र थोड़ा देनेवाले हैं, सब कुछ देनेवाला पति ही है, इसलिये वह सदा सत्कार-योग्य है । स्त्रियोंका गुरु एक पति ही है।'

श्रीमती जानकीदेवीके निवेदनमें इन्हीं आर्य सिद्धान्तों-की ध्वनि छोड़ और क्या है ? हाँ, उनके हृदयके समान उनकी उक्तियाँ उदात्त अवश्य हैं । इस कथनमें कितनी सत्यता है, 'पिय-बियोग-सम दुख जग नाहीं' इसीलिये 'तनु धनु धामु धरनि पुरराजू । पतिबिहीन सब सोकसमाजू ' है, और ' भोग रोगसम, भूषन भारू' है । अब 'रघुकुल-कुमुद-बिधु बिना ' सुरपुर नरक-समान ' है, तो 'जम-जातना-सरिस संसारू' का होना क्या आश्चर्य ? फिर वे क्यों न कहतीं 'प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥' जब वे ' मातु पिता भगिनी , इत्यादि बड़े बड़े सम्बन्धियोंका नाम सुन्दर विशेषणोंके साथ गिनाकर, यह कहती हैं 'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते ॥' तब वे किस ज्वालाकी ओर संकेत करती हैं, क्या यह बतलाना होगा ? विरहज्वालाकी बातें कौन नहीं जानता–विरहिणीको कौन नहीं जलाता । चाहे यह उसकी मानसिक आधिका ही फल हो, किन्तु उसको अनुभव ऐसा ही होता है । उसको सुधाकर-किरणें भी अग्निमयी ज्ञात होती हैं, और मलयसमीर शेष-श्वास, और अधिक क्या कहें, उन्होंने यह बात कितनी दूरकी कही, जिअ बिनु देह 'नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥ सत्य है, पुरुष, स्त्री-देहका प्राण है, और कामिनी कल्लोलिनीका सलिल, किन्तु इस बातको सीतादेवी-सदृश पतिप्राणा देवी ही समझ और कह सकती हैं ।

इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—

खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल ॥
बनदेवी बनदेव उदारा। करिअहिं सासु-ससुर-सम सारा ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई । प्रभु-सँग मंजु मनोजतुराई ॥
कंद मूल फल अमिअ अहारू । अवध-सौध-सत-सरिस पहारू ॥

आजकल 'खाओ, पीओ, आराम करो' का वज्र-निर्घोष ही सुनायी पड़ रहा है, ऐसी अवस्थामें सीतादेवीकी बातोंको कौन सत्य स्वीकार करेगा ? खग-मृगको परिजन, वनको नगर, वल्कलको विमल दुकूल, पर्णशालाको सुरसदन-समान सुखमूल कौन मानेगा ? क्या ऐसा माना जा सकता है यह तो चिकनी-चुपड़ी बातें हैं । वनदेव, वनदेवी, सास-ससुर नहीं बन सकते, कुस-किसलय साथरी, मनोजतुराई नहीं कही जा सकती, न तो कंदमूलफल, अमृतमय आहार हो सकते हैं और न अवधके सैकड़ों सौधोंके समान पहाड़, एवं न कोई बुद्धिमती स्त्री ऐसा कह ही सकती है । हाँ, यह कविकल्पना हो सकती है ।

हृदय सबके पास है, जीभ सबके मुहँमें है, जो जिसके मनमें आवे वह कह सकता है, जो चाहे सोच सकता है, परन्तु यह अक्षरशः सत्य है कि जो कुछ श्रीजानकी देवीने कहा वह आर्यललनाके हृदयका सच्चा उद्गार है । यदि हम विवेककी आँखें खोल दें, तो भारतीय कुलबालाके मानस-दर्पणमें यह भाव बहुत ही स्पष्टरूपमें प्रतिबिम्बित दिखायी पड़ेगा । श्रीमती सीतादेवी स्वयं इसके लिये प्रमाण हैं, जिन्होंने एक दो दिन नहीं, लगभग चौदह वर्ष भगवान् श्रीरामचन्द्रके साथ इसी भावसे व्यतीत किये । उनके उद्गारोंका प्रतिपादन निम्नलिखित पद्य बड़ी ही दृढ़तासे करते हैं--

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-बिमल-बिधु-बदनु निहारे ॥
छिनु छिनु प्रभु-पद कमल बिलोकी । रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन-सरोज निहारी ॥

वास्तविक सुखका सम्बन्ध हृदयके भावोंसे है, किसी पदार्थ अथवा वस्तुविशेषसे नहीं, इन पद्योंको पढ़कर इस बातको सत्यप्रेमका पथिक भलीभाँति समझ सकता है। प्रेम प्रेमके लिये होता है, सुख-उपभोगके लिये नहीं। जो प्रेम सुख-कामनापर उत्सर्गीकृत है, वह प्रेम नहीं, प्रेमका आडम्बरमात्र है। सच्चे प्रेममें कष्टकी अनुभूति होती ही नहीं। सीतादेवी कहती हैं—

बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-बियोग-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥

सत्यप्रेममें अहं-भाव नहीं होता, उसमें सेवा-भाव ही प्रबल होता है। सत्यप्रेम सूर्य है, उसके सामने अहं-भाव अन्धकार ठहर ही नहीं सकता, उसको अवलोकनकर सेवा-भाव-सरसिज अवश्य विकसित होता रहता है। भगवती जानकीमें यह भाव कितना जागृत है, देखिये—

सबहि भाँति पिय-सेवा करिहौं । मारगजनित सकल स्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं । करिहौं बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रम-कन सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥

इन पंक्तियोंमें कितना आत्मनिवेदन है, कितनी स्वाभाविकता और सरलता है, कितनी हितकामना और सहानुभूति है, यह निर्बल-हृदयकी अवतारणा नहीं, सबल चित्तकी उदात्त भावमयी सुन्दर प्रस्तावना है। प्रवञ्चनामय मानसकी प्ररोचना नहीं, 'मनस्यैकं, वचस्यैकं, क्रियास्यैकं' की सत्यतामयी विभावना है। स्वार्थसाधनकी कपटभरी आयोजना नहीं, कर्तव्यज्ञानकी भक्तिभरी साधना है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने विपिनकी भयंकरताका बड़ा विशद वर्णन किया था, और यह भी कहा था—

'नर अहार रजनीचर करहीं । कपटबेष बिधि कोटिक करहीं ॥

सीतादेवी इसका कितना सुन्दर और गम्भीर उत्तर देती हैं, सुनिये—

बार बार मृदुमूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा । सिंह-बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥

इस उत्तरमें कितना आत्मविश्वास और कितनी पति-निर्भरता है, कितनी प्रीतिपरायणता और तेजस्विता है, इसका अनुभव प्रत्येक सहृदय कर सकता है—

श्रीरामचन्द्रजीने यह भी कहा था, 'हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू'। इसका उत्तर बड़ा ही हृदयग्राही, और मर्मस्पर्शी है। कहीं भी जानकीदेवीने व्यंगसे काम नहीं लिया था। बहुत धीर-भावसे संयत उत्तर ही देती चली गयी हैं, किन्तु इस पंक्तिका उत्तर बड़ा ही व्यञ्जनामय है, साथ ही उसमें इतनी स्वाभाविकता है, कि पढ़कर चित्त लोटपोट हो जाता है। उत्तर यह है—

'मैं सुकुमारि, नाथ बनजोगू । तुम्हहि उचित तप, मो कहँ भोगू ॥

इस वचन-रचनाकी बलिहारी! इसीको कहते हैं, 'कागज-पर रख दिया है कलेजा निकालकर' कितनी मीठी चुटकी है, साथ ही कितनी प्रेमभरी।

लेख इच्छासे अधिक लम्बा हो गया। मैंने पाँच प्रसंग लेख लिखनेके लिये चुने थे, किन्तु एक ही प्रसंग अधिक विस्तृत हो गया, इसलिये एक प्रसंग और लिखकर अब इस लेखको समाप्त करूँगा। शास्त्रोंमें स्त्रीको सहधर्मिणी कहा गया है, सहधर्मिणीका अर्थ है समान धर्मवाली। सच्ची गृहिणी वही है, जो पतिके भावोंको समझती है और बिना कहे उसकी पूर्ति करती है। पतिने जब मुँह खोलकर कुछ कहा, और तब स्त्रीने कोई कार्य किया, तो वह सहधर्मिणी कहाँ रही। जिस स्त्रीने पतिके हृदयको नहीं पहचाना, उसके कर्तव्यको नहीं समझा, जो उसकी जीवनयात्राके अनुकूल अपनेको नहीं बना सकी, किसी स्थल-विशेषपर पतिका क्या धर्म है, जो इसकी मर्मज्ञ नहीं, वह सहधर्मिणी होनेका दावा नहीं कर सकती। विवाहके समय वर कन्यासे कहता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व, प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

मेरे व्रतकी ओर तुम्हारा हृदय लिये, मेरे चित्तके अनुकूल तुम्हारा चित्त हो, एकमना होकर मेरी बात मानो, प्रजापति तुमको मुझसे सम्बन्धित करे।

विवाहके अन्तमें कन्याको ध्रुवका दर्शन कराया जाता है, वह ध्रुवको देखकर कहती है,—'ध्रुवमसि ध्रुवं त्वां पश्यामि' 'अयि ध्रुव, तुम अचल अटल हो, मैं तुम्हें देखती हूँ।' इसका भाव यह है कि विवाहकार्यमें पतिके द्वारा मुझसे जो

प्रतिज्ञाएँ करायी गई हैं अथवा मैंने स्वयं जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनपर मैं ध्रुव-समान अचल अटल रहूँगी। सप्तपदी के समय वह यह भी कहती है—

यज्ञे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह।
धर्मार्थकामकार्येषु वधूः षष्ठ पदे वदेत्॥

यज्ञ, होम और दानादिमें—धर्म, अर्थ, और काममें मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। इसीलिये 'अर्धं भार्या मनुष्यस्य' है। इसीलिये स्त्री अर्धाङ्गिनी है, और इसीलिये सहधर्मिणी। रामायणमें इस संस्कृतिका एक बड़ा ही उत्तम निदर्शन है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि-रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय-हियकी सिय जाननहारी। मनि-मुंदरी मन-मुदित उतारी॥

गोस्वामीजी की इस उक्तिमें कि 'प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा' बड़ा स्वारस्य है। 'प्रभु' शब्दका प्रयोग कितना सार्थक है, साधारण जन होते तो इस विषयमें वे कुछ लापरवाही कर भी सकते, किन्तु 'प्रभु'का ऐसा करना बड़ा ही अनुचित था। बड़ी ही मर्यादाविरुद्ध बात थी। फिर उसके साथ, जो जीभ भी नहीं हिला सकता। बड़े लोगोंके लिये दीनों अकिञ्चनोंकी सहायता करनेके लिये, इसप्रकार-के अवसर बड़े ही सुन्दर होते हैं। सेवा करनेवाला बड़ोंसे बड़ी आशा रखता भी है। कमसे कम भगवान्को निषादकी मूठी अवश्य भर देनी चाहिये थी, किन्तु कहाँ, वे तो कुछ न दे सके। तापस-वेषमें उनके पास था ही क्या? फिर उनके जीको चोट क्यों न लगती, और वे क्यों न संकुचित होते। सीतादेवी सतीशिरोमणि हैं, सच्ची सहधर्मिणी और अर्धाङ्गिनी हैं, उन्होंने पतिदेवके हृदयकी बात जान ली, और तत्काल मुदित मनसे मणिजटित मुँदरी उतार दी। गोस्वामीजीके शब्दोंकी मार्मिकता देखिये-'पिय-हियकी-सिय जाननहारी। मनि-मुँदरी मन मुदित उतारी।' कैसी मुँदरी उतारी? मणिजटित। कैसे उतारी? मुदित-मनसे। स्त्रियोंको गहना बड़ा प्यारा होता है, उनको उसे अलग करते बड़ी कठिनता होती है, पीड़ा भी होती है, वे आसानीसे उसे किसीको देना नहीं चाहतीं, जब्र करके कोई भले ही ले ले। यह साधारण गहनोंकी बात है, और मणिजटित गहना! वह तो कलेजेमें छिपाकर रखनेकी चीज़ है, उसका तो नाम ही न लीजिये! किन्तु सीता-देवीने वैसी ही अँगूठी उतारी, और वह भी मुदित मनसे, ज़रा-सा तेवर भी नहीं बदला, पेशानीपर शिकन तक नहीं आया। क्योंकि उनका सर्वस्व तो उनका जीवनधन है, उनका सौन्दर्य तो उनके हृदयका सौन्दर्य है। जो पति-प्रेमके आभूषणसे आभूषित है, उसको भूषणोंकी क्या आवश्यकता? जिसे पतिकी अनुकूलता वाञ्छनीय है, जो पतिमर्यादाकी भूखी है, गहनोंपर उसकी लार नहीं टपकती। यह चिरसञ्चित आर्यसंस्कृति है, भगवती जनकनन्दिनी इसकी उच्चतम आदर्श हैं।

आधुनिक कालमें भी इसप्रकारके आदर्शोंका अभाव नहीं, एक प्रसंग आपलोगोंको सुनाता हूँ। देशपूज्य, दयासागर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका पवित्र नाम आप-लोगोंने सुना होगा। उनकी स्त्री बड़ी साध्वी थीं। विद्यासागर महोदयकी उदारता लोकविश्रुत है। एक बार एक ब्राह्मण उनकी सेवामें उपस्थित हुआ, और उसने विनय की कि 'मैं कन्यादायसे आकुल हूँ, यदि आपने कृपा नहीं की तो मेरा निर्वाह होना कठिन है।' उसने दो सौ रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। उस समय उनके पास कुछ नहीं था, वे चिन्तित हुए। ब्राह्मणको बाहर बैठाया, और आप अन्दर गये। सामने उनकी सहधर्मिणी आ गयीं, उन्होंने उनके मुखकी ओर देखा, और पूछा आप चिन्तित क्यों हैं? उन्होंने कहा 'एक ब्राह्मण कन्यादायग्रस्त है, और दो सौ रुपयेकी उसको आवश्यकता है, परन्तु इस समय तो मैं बिल्कुल रिक्तहस्त हूँ।' साध्वीके नेत्रोंमें जल आया, उन्होंने कहा, 'मेरे हाथके सोनेके कड़े किस काम आयेंगे।' यह कहकर उन्होंने अपने कड़े उतारे, और पतिदेवके हाथपर उनको रख दिया। अपनी पत्नीकी यह उदारता देखकर उनके अश्रुपात होने लगा, वे अश्रु-विसर्जन करते ही बाहर आये, और उत्फुल्ल हृदयसे उन्होंने कड़े ब्राह्मणदेवको सादर देकर कहा, इन्हें मेरी स्त्रीने आपको अर्पण किया है।

रामायणकी संस्कृतिकी बातें सुनाते सुनाते एक अन्य प्रसंग भी मैंने आपलोगोंके सामने उपस्थित कर दिया। केवल इस विचारसे कि जिसमें आपलोग आर्यसंस्कृतिकी व्यापकताका अनुभव कर सकें। आर्यसंस्कृति बहुत उदात्त है, और आज भी वह बहुत व्यापक है। हिन्दू-जातिपर तो उसका प्रभाव है ही, यहाँकी मुसलमान-जाति, और ईसाइयों पर भी उसका असर देखा जाता है, कारण इसका यह है कि उनमें अधिकांश हिन्दू-सन्तान ही हैं। चिरकालिक संस्कार नाश होते होते होता है, तत्काल अथवा थोड़े समयमें

उसका नाश नहीं होता। यह सच है कि समयकी प्रतिकूलताका सामना उसे करना पड़ रहा है, पाश्चात्य विचार भी उसे दबा रहे हैं, किन्तु सूर्य कबतक बादलोंमें छिपा रहेगा। काल पाकर बादल टलेंगे, और वह फिर वैसा ही जगमगाता दिखलायी पड़ेगा। दूसरी बात यह कि आर्यसंस्कृतिके भाव उदात्त और सर्वदेशी हैं, एकदेशिता उनमें कम है। इसलिये पञ्चभूतके समान ही वे उपयोगी हैं, आवश्यकतानुसार उनका कुछ रूप बदल सकता है, वे सर्वथा परित्यक्त नहीं हो सकते। रामायण और महाभारतके अनेक अंश और अनेक उपदेश जैसे हिन्दू-जातिके उपकारक और शिक्षक हैं, वैसे ही संसारकी अन्य जातियोंके लिये भी हैं। योरपमें भी उनके अनुवाद आदरसे पढ़े गये हैं, और विजातीय सहृदयोंने भी उसकी दिल खोलकर प्रशंसा की है, ऐसी अवस्थामें उनकी उपयोगिता अप्रकट नहीं। रामायणकी संस्कृतियोंका संकलन कर यदि उनपर प्रकाश डाला जावे, और उनपर मननपूर्वक लेख लिखे जावें तो मेरा विचार है कि वर्तमानकालमें उससे बड़ा लाभ हो सकता है। अन्तमें अपनी निम्नलिखित सवैयाद्वारा गोस्वामीजीका गुणगान करते हुए मैं इस लेखको समाप्त करता हूँ।

बन राम-रसायनकी रसिका रसना रसिकोंकी हुई सफला।
अवगाहन मानसमें करके जन-मानसका मल सारा टला॥
बनी पावन भावकी भूमि भली हुआ भावुक भावुकताका भला।
कविता करके तुलसी तरसे कविता लसी पा तुलसीकी कला॥

सन्त कौन है?

आकिंचन, इन्द्रिय दमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे सन्तजन बिरले या संसार॥
अहंवाद 'मैं' 'तैं' नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहिं ऊपजै, सुख ते सुख नहिं होइ॥
सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसारमें, कहत सन्त जन सोइ॥
बिरले बिरले पाइये, माया-त्यागी सन्त।
तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत॥
'मैं' 'तें' मेट्यो मोह-तम, उगो आतमा-भानु।
संतराज सो जानिये, तुलसी या सहिदानु॥
कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥

रामचरितमानस मधु है

(लेखक—पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)

आजसे तीन सौ वर्ष पहले तुलसीदास-रूपी मधुपने संस्कृतके अनेक रामायण, पुराण, काव्य, इतिहास, नाटक, स्मृति, उपनिषद् और संहितारूपी अत्यन्त सुन्दर फूलोंका मधुर रस एकत्र करके रामचरितमानसरूपी जो मधु तैयार किया था, वह आजतक हिन्दुओंके घर-घरमें मौजूद है, और जितना ही वह पुराना होता जाता है, उतना ही उसका स्वाद अधिक मधुर होता जाता है। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियोंको नाश करनेमें औषधियोंको सहायता पहुँचाता है, वैसे ही रामचरितमानसरूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियोंको नाश करनेमें सहायक होता है।

केवल अयोध्याकाण्डहीकी रचनामें तुलसीदासने डेढ़ सौ से अधिक संस्कृत-ग्रन्थोंका रस ग्रहण किया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

आनन्द रामायण—

पर्वतश्रेणयो राजन् भुवनानि चतुर्दश॥
तेषु चोत्तमकर्माणि मेघा भूत्वा स्थले स्थले।
पूर्णानन्दपयोवृष्टिं कुर्वन्ति वसुधातले॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तसुखसम्पदः।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्यायाम्बुधि मिलन्त्यवधवासिनः॥
नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः सदा सुकृतकारिणः।
बहुमूल्यानि रत्नानि पवित्राणि पराणि च॥

रामचरितमानस—

भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई॥
मनिगन पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥

अगस्त्य रामायण—

सर्वेषां हृदये ह्यासीदेव एव मनोरथः।
स्वजीवने सुदयया तव शङ्कर बुद्धिमान्।
युवराजपदं राजा रामचन्द्राय यच्छतु॥

भरत-हनुमान मिलाप ।

दीनबंधु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटेउ अति सादर ॥

राम पुनः अयोधामें ।

धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह । अनुजसहित अति-पुलक-तनोरुह ॥
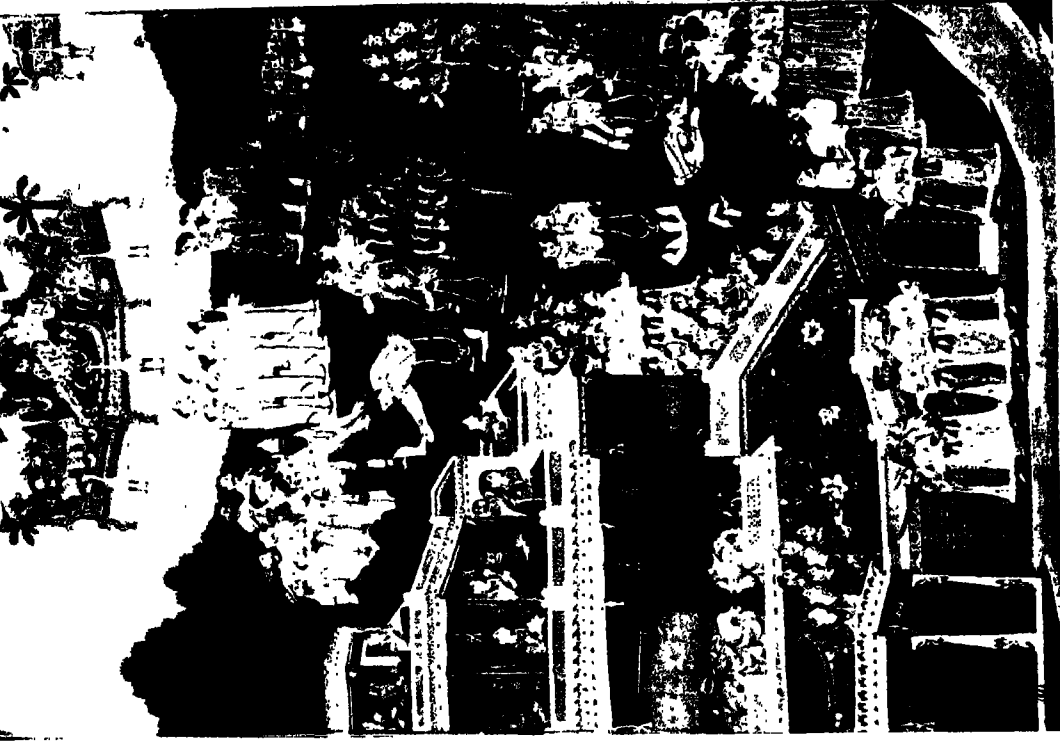
रामचरितमानस—

सबके उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेस।
आपु अछत जुबराज-पद रामहिं देहिं नरेस॥

वशिष्ठ रामायण—

ये धारयन्ति गुरुपादरजः स्वशीर्षे
ते वै विभूतिमखिलां वशयन्ति नूनम्॥

रामचरितमानस—

जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥

उत्तर रामचरित—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

रामचरितमानस—

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत-दातार।
फल अनुगामी महिपमनि मन-अभिलाषु तुम्हार॥

श्वेतकेतु रामायण—

रामाभिषेकवृत्तान्तं श्रुत्वायोध्यापुरे शुभे।
वाद्यानां धनघोरस्तु शब्दो जातः सुखप्रदः॥

रामचरितमानस—

सुनत रामअभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥

मंगल रामायण—

ग्रामदेव्याः सुराणां च शेषनागस्य पूजनम्।
चकारानन्दयुक्ता सा कौशल्या प्राह निर्जरान्॥
पुनर्बलिं प्रदास्यामि वरश्चायं प्रदीयताम्।
श्रीरामचन्द्रकल्याणं भवत्वेवं निवेदनम्॥

रामचरितमानस—

पूजी ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि बिधि होइ राम-कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥

बृहस्पति संहिता—

दासस्य भवने विद्वन् गुरोरागमनं मुने।
मंगलानां महन्मूलं कल्मषध्वंसकं तथा॥

रामचरितमानस—

सेवकसदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू॥

रघुवंश—

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयीशंकयेवाह पलितच्छद्मना जरा॥

रामचरितमानस—

स्रवनसमीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु रामकहुँ देहू। जीवन-जनम लाहु किन लेहू॥

याज्ञवल्क्य रामायण—

कोमलं वचनं श्रुत्वा कुमतिर्ज्वलिता सती॥
अब्रवीत् केकयी तेऽत्र माया नैव चलिष्यति।
दीयतामथवा कृत्वा नकारमयशो नृप॥
गृह्यतां शीघ्रमेवाऽत्र प्रपञ्चा नैव मे प्रियाः।
स्वभावसरलो रामो राममाता भवानपि॥
मया परिचिताः सर्वे स्वभावसरला जनाः।
विचारितं राममात्रा यथा मम हितं तथा॥
प्रदास्यामि फलं तस्यै सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।

रामचरितमानस—

सुनि मृदु बचन कुमति असि जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहहु करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहिं राउरि-माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका॥

पुलस्त्य रामायण—

विनिर्मिताः कोलकिरातकन्याः
पितामहेनैव रसैर्विहीनाः।
कठोरशीला इव वज्रकीटा
अदुःखिताः काननवासहेतोः॥

रामचरितमानस—

बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥

भरद्वाज रामायण—

तपस्विनार्यो ह्यथवा वनयोग्या भवन्ति हि।
याभिस्त्यक्तास्तपः कर्तुं सर्वे भोगाः सुखात्मकाः॥

रामचरितमानस—

कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ।।

महारामायण—

वसिष्यति वने सीता कथं कथय पुत्र माम् ।
या चित्रलिखितं दृष्ट्वा भीता भवति वानरम् ।।

रामचरितमानस—

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ।।

मार्तण्ड संहिता—

मातुः समीपे गदितुं न च क्षमः
विचार्य चित्ते भगवानुवाच ह ।
शिक्षां मदीयां शृणु राजकन्यके
न चान्यथा त्वं हृदये स्म मन्यथाः ।।

रामचरितमानस—

मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माहीं ।।
राजकुमारि सिखावन सुनहू । आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ।।

कपिल संहिता—

मनोहारि वचो मिष्टं श्रुत्वा भर्तुः प्रियस्य च ।।
जानक्या ललिते नेत्रे ह्यश्रुपूर्णे बभूवतुः ।
जानक्या दाहिका जाता सुशिक्षात्यन्तशीतला ।।
चक्रवाकी यथा रात्रौ शारदी चन्द्रिका तथा ।
दहत्येव वियोगेन चक्रवाकस्य सुन्दरि ।।

रामचरितमानस—

सुनि मृदु बचन मनोहर पियके । लोचन ललित भरे जल सियके ।।
सीतल सिख दाहक भै कैसे । चकइहि सरद चंद निसि जैसे ।।

पुरुषोत्तम संहिता—

समाश्वास्य प्रियां वाग्भिः प्रियाभी रघुनन्दनः ।
स्वमातुश्चरणौ नत्वा आशिषं प्राप्य हर्षितः ।।
आगन्तव्यं त्वया शीघ्रं प्रजादुःखक्षयाय च ।
निष्ठुरा जननी तात विस्मर्तव्य न च त्वया ।।

रामचरितमानस—

कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिष पाई ।।
बेगि प्रजादुख मेटब आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ।।

हनुमन्नाटक—

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छमाना ।
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ।।

रामचरितमानस—

सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।

अध्यात्म रामायण—

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धरः ।।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ।।

रामचरितमानस—

आगे राम लखन पुनि पाछे । तापस बेष बिराजत आछे ।।
उभय बीच सिय सोहति कैसे । ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ।।

जैमिनि संहिता—

श्रीरामचन्द्र विमलं यशस्ते मानसं सरः ।
जिह्वा यस्य च हंसीव मुक्तापंक्तीर्गुणावलीः ।।
ज्ञात्वा भक्षति राम त्वं तस्यैव हृदये वस ।

रामचरितमानस—

जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुनगन चुनै राम बसहु मन तासु ।।

आनन्द रामायण—

सीतारामप्रेमपीयूषपूर्णं
जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य ।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां
योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् पवित्रे ।।
दारिद्र्यदम्भदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा ।
कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात् ।।
शठानां कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसम्मुखे ।

रामचरितमानस—

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम न भरतको,
मुनि-मन-अगम यम नियम सम दम बिषमब्रत आचरत को।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को,
कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

खोजनेसे रामचरितमानसके सब दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयोंके मूल संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिल जायँगे। यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदासजीने संस्कृत ग्रन्थोंका कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। कहीं कहीं तो एक दोहेमें दो-दो ग्रन्थोंके श्लोकोंका अनुवाद मिलता है। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृतके सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदासको कण्ठस्थ थे। हम जितने ही गहरे जाते हैं, उतना ही इस अद्वितीय रामायणकी अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। संस्कृत-नन्दन-काननमें विचरणकर तुलसीदासरूपी मधुपने समस्त फूलोंका रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जातिको दान किया है, उसकी तुलना संसारके किसी दानसे नहीं की जा सकती।*

रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय

(लेखक–पं० श्रीरामदयालुजी मजूमदार एम०ए०, सम्पादक 'उत्सव')

तस्मात् यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः।
कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदनः॥
तथापि क्रोध एवालं मोक्षविघ्नाय सर्वदा।
(अध्यात्म रा०)

संसारमें जो लोग अशेष दुःखोंको नहीं देखते और जो देखकर भी उनसे मुक्त होना नहीं चाहते, उनको क्या मनुष्य कहना चाहिये? नहीं। यदि मुक्त होना चाहते हैं तो सदा-सर्वदा विद्याभ्यासका यत्न करना चाहिये। स्मरण रहे, इधर उधरसे जो कुछ भी पढ़ लेनेका नाम विद्या नहीं है—

नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते।

'मैं देह नहीं हूँ, चैतन्य-स्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। इस विद्याभ्यासके लिये निरन्तर यत्न करना चाहिये। काम-क्रोध और लोभादि इस विद्याके प्रबल शत्रु हैं। इनमें भी क्रोध तो मोक्ष-मार्गमें सर्वदा ही विघ्नकारी है।

श्रीलक्ष्मणजी रामवनवासकी बात सुनकर क्रोधके मारे तन-मनकी सुधि भूल रहे हैं। भगवान् व्यास लिखते हैं—

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम्।
बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून् मातुलानपि॥
(अध्यात्म रा०)

लक्ष्मणने कहा, 'कैकेयीके वशमें हुए उन्मत्त, भ्रान्त-चित्त राजा दशरथको कैदकर मैं भरतको उसके मित्रों और मामाओं-समेत मार डालूँगा।'

भगवान् वाल्मीकिजीने लिखा है कि लक्ष्मणका क्रोध दूर करनेके लिये भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। पर यहाँ भगवान् व्यास कहते हैं—

इति ब्रुवन्तं सौमित्रीमालिङ्ग्य रघुनन्दनः।

श्रीभगवान्‌ने लक्ष्मणको पकड़कर हृदयसे लगा लिया। परम शान्त पुरुषके प्रेमालिंगनसे क्रोधाविष्ट शरीरके विकृत अणु-परमाणुओंका स्पन्दन भी थोड़ी देरके लिये छन्द-सा बन जाता है। आलिङ्गनद्वारा लक्ष्मणको कुछ शान्त करके भगवान् कहने लगे—'रघुशार्दूल! मैं जानता हूँ, तुम वीर हो। भरत मेरा प्राणप्यारा है। जब तुम भरतको भी (मेरे लिये) वध करनेको तैयार हो तो अवश्य ही तुम मेरे अत्यन्त हित-साधनमें रत हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। भाई! मैं तुम्हारा प्रताप खूब जानता हूँ, पर प्रताप दिखलानेका यह अवसर नहीं।' इस कथनसे क्या भगवान्‌ने श्लेष किया? हरि! हरि! प्रेमसे परिपूर्ण हृदयमें क्या कभी श्लेष रह सकता है? श्लेष तो असम्यक्‌दर्शी हृदयके अभिमानपूर्ण दुर्गन्धयुक्त उद्गार हैं। श्रीभगवान्‌में श्लेष रह ही नहीं सकता। श्रीवाल्मीकिमें भगवान् कहते हैं कि अभिषेकमें विघ्न होना नियति है और नियतिको—ईश्वरके

* श्रीरामचरितमानसमें किस-किस ग्रन्थसे भाव लिये गये हैं, इसका बहुत अच्छा संग्रह बाबू श्रीरणबहादुरसिंहजीने, गदाधर प्रेस, रायबरेलीमें छपवाकर प्रकाशित किया है। आप शाहमऊके ताल्लुकेदार बाबू गंगाबक्ससिंहजीके भ्राता हैं और २७ सालके प्रेमपूर्ण परिश्रमसे विभिन्न ग्रन्थोंको देखकर आपने यह बड़ा काम किया है। ऊपर चौपाई तथा दोहे और उनके नीचे प्राचीन ग्रन्थोंके उसी भावके श्लोक छापे गये हैं। हमारे पास चार काण्ड तो आ चुके थे शेष जल्दी ही छपनेकी सूचना थी। यद्यपि कुछ प्रमाण छूट गये हैं तथापि आपका यह परिश्रम बहुत ही सराहनीय, स्तुत्य और संग्रह योग्य है। हमारे पास जितने काण्ड आ चुके हैं उनमें लगभग २२५ ग्रन्थोंके श्लोक उद्धृत हैं। रामायणपर यह बहुत सुन्दर संग्रह करनेयोग्य टीका है। —सम्पादक

नियमको—बदलनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। भगवान् व्यास इस बातको दिखलाते हैं कि—क्रोध कहाँसे उत्पन्न होता है और किस उपायसे उसको समूल निर्मूल किया जा सकता है। केवल क्रोध ही नहीं, सारी अशान्ति और सारे दुःखोंका जो कारण है, उसका विनाश कैसे किया जा सकता है! हम भूमण्डलमें समस्त देशोंके सभी नर-नारियोंके यथार्थ कल्याणके लिये श्रीव्यास-वर्णित भगवान् श्रीरामका अमूल्य उपदेश यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीभगवान् कहने लगे, 'भाई लक्ष्मण! यह जगत्, यह राज्य, यह देह जो तुम देख रहे हो, यदि सत्य होता तो इस देहको सिंहासनपर बैठानेके लिये तुम जो मेरे राज्य भोगोंमें विघ्न करनेवाले लोगोंका नाश करना चाहते हो, सो तुम्हारा परिश्रम सफल होता। किन्तु लक्ष्मण! क्या यह सब सत्य है? देखो भाई! इन्द्रिय-सुख हो या राज्य-सुख, सभी सुख-भोग बादलोंमें बिजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं। अभी हैं और दूसरे क्षणमें नहीं। जीवकी यह आयु भी, जैसे आगमें तपे हुए लोहेपर पड़ी हुई जलकी बूँद उसी क्षण सूख जाती है वैसे ही, क्षण-स्थायी है। जिस भोगके लिये मनुष्य इतना छटपटाता है, उसको वह कब भोगेगा? सर्पने मेंढकको मुँहमें निगल लिया है, मेंढक सर्प-कण्ठके कोमल मांसको मच्छर मानकर उसे भोगनेकी इच्छा करता है, ऐसे ही कालरूप कराल सर्पके गालमें पड़ा हुआ यह मनुष्य भी अनित्य भोगोंको छोड़ना नहीं चाहता। यह मनुष्य भोगोंकी प्राप्तिके लिये दिन-रात अत्यन्त क्लेश सहता हुआ धन उपार्जन आदि लौकिक और वैदिक अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। परन्तु सोचो! यहाँ भोग कौन करता है? मनुष्य क्या एक बार भी इस बातपर विचार करता है कि इन भोगोंको शरीर भोगता है या आत्मा? देह, देहीसे भिन्न पदार्थ है, देह जड़ है और देही पूर्ण आनन्दस्वरूप है। जो देहसे देहीको अलग देखते हैं वे तो चैतन्यमें—पुरुषमें कोई भी भोग देख नहीं पाते।

फिर इस संसारके सम्मेलनपर भी तो विचार करो। पिता, माता, स्त्री, पुत्र, भाई, ये सब मिलकर संसारमें रहते हैं। यह सम्मेलन भी बहुत-से लोगोंके रस्तेकी धर्मशालामें टिके रहनेकी भाँति क्षणस्थायी है। थकावट और प्यास मिटाकर कौन कहाँ चला जायगा, इस बातका किसको पता है? अथवा इस पारिवारिक सम्मेलनको नदीके प्रवाहमें बहकर आये हुए काठोंके समान अति अल्प कालका समझो। जलके प्रवाहमें कहाँ-कहाँसे आये हुए अनेक प्रकारके काठ एकत्र मिल जाते हैं और फिर देखते-ही-देखते तरङ्गोंकी चोटें खा-खाकर कहीं अदृश्य हो जाते हैं। एक ही प्रकारके कर्मको लेकर स्त्री-पुत्र, माता-पिताका मिलना होता है और कर्मका भोग पूरा होते ही कौन कहाँ चला जाता है इस बातको कोई नहीं देख सकता।

लक्ष्मी—धन छायाकी भाँति चञ्चल है। यौवन जल-तरङ्गकी नाईं क्षण-भङ्गुर है। स्त्री-सुख स्वप्न-सुख-भोगके तुल्य है और मनुष्यकी आयु भी अत्यन्त अल्प है, तथापि मनुष्य अभिमानसे नहीं बचता। कहता है कि 'मैं इस धनको, इन भोगोंको सदा भोगूँगा।'

लक्ष्मण! इस संसारमें कितने दिनोंकी स्थिति है। यह तो स्वप्नके समान है। फिर इस स्वप्नवत् अस्थायी संसारमें भी मनुष्य निरन्तर रोग, शोक और अनेक प्रकारकी ज्वालाओंसे जर्जरित रहता है। यह संसार आकाशमें गन्धर्व-नगरकी भाँति देखते-ही-देखते विलीन हो जाता है। हाय! यह मूढ़ मनुष्य इस अत्यन्त अस्थायी संसारको स्थायी बनानेके लिये दीवालपर दीवाल चुनाता है और तालोंपर ताले लगवाता है, न मालूम क्या-क्या करता है? सूर्यदेवके उदय और अस्तके साथ-साथ प्रतिदिन मनुष्यकी आयु क्षय हो रही है। कितने लोग निरन्तर वृद्धावस्थासे पीड़ित हो रहे हैं और कितने मर रहे हैं तथापि मनुष्य एक बार भी यह नहीं सोचता कि इस देहका भी नाश होगा। बताओ, मनुष्य क्यों नहीं समझता? पिछले दिनों-की अपेक्षा अगले दिनोंमें नये-नये भोग मुझको मिलते रहेंगे, मूर्ख मनुष्य केवल यही सोचता रहता है। पूर्वकी अवस्थाको हर लेनेवाले कालके वेगको वह एक बार भी नहीं देखता। कच्चे घड़ेके जलकी भाँति जीवका जीवन प्रति-क्षण क्षीण हो रहा है। बीमारियाँ वैरियोंकी भाँति देहपर सतत प्रहार कर रही हैं। वृद्धावस्था बाघिनके समान मुँह बाये सामने गरज रही है और मृत्यु तो समयकी बाट देखती हुई साथ साथ घूमकर मानों यही कह रही है कि कब समय आवे और कब मैं इसका संहार करूँ।

जो शरीर मरनेके बाद दो दिन भी पड़ा रहनेपर कृमि—कीटमय हो जाता है। सिंह-व्याघ्रादिके खानेसे जो विष्ठाके रूपमें परिणत हो जाता है और जला देनेपर जो

खाक बन जाता है, ऐसे कृमि-विष्ठा-भस्मकी संज्ञावाले इस शरीरमें 'मैं' पन का अभिमान करके लोग कहते हैं कि 'हम जगत्-प्रसिद्ध राजा हैं।' त्वक्, अस्थि, मांस, विष्ठा, मूत्र, शुक्र और रक्त इत्यादि शरीरमें निरन्तर विकारको प्राप्त हो रहे हैं, सतत परिणामको प्राप्त हो रहे हैं। बताओ, ऐसा विकारी और परिणामी शरीर आत्मा कैसे हो सकता है?

भाई लक्ष्मण! जिन क्रोधादि दोषोंसे युक्त शरीरपर आस्था करके तुम त्रिलोकको वध करनेके लिये तैयार हुए हो, वे सब दोष देहाभिमानसे ही तो प्रकट होते है। 'शरीर ही मैं हूँ' इसी बुद्धिका नाम अविद्या है; 'मैं शरीर नहीं, मैं चित् स्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। अविद्या ही माया है। आत्माको अनात्मा मानना ही माया है। इसमें विक्षेप-माया जगत्की कल्पना करती है और आवरण-माया ज्ञानको ढक रखती है। अविद्या जन्म-मरण-रूप संसारमें हेतु है और विद्या संसार दुःखका हरण करनेवाली है। अतएव जो इस दुःखसागरसे तरना चाहते हैं उन मुमुक्षुओंको सर्वदा विद्याका अभ्यास करना चाहिये। हे शत्रुसूदन! 'मैं शरीर नहीं चैतन्य हूँ, मैं आत्मा हूँ।' जो आलस्य छोड़कर सर्वदा ऐसा अभ्यास करते हैं, उनका प्रधान कर्तव्य काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओंका नाश करना होता है। इनमें क्रोध तो मोक्षविद्याका बड़ा ही विषम वैरी है, यह सदा-सर्वदा मोक्षके मार्गमें विघ्न डाला करता है। क्रोधके वशमें होकर ही मनुष्य पिता, भाई, सुहृद् और सखाका वध करता है। क्रोध ही मनस्तापका मूल कारण है। जिस समय मनुष्यके अन्तःकरणमें क्रोधका वेग बढ़ जाता है उस समय उसको 'क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये' इस बातका कोई विचार नहीं रहता। इसीलिये वह बड़ोंके प्रति दुर्वाक्य बोलने लगता है और इसपर भी यदि क्रोध शान्त नहीं होता तो उन्हें मारने लगता है, एवं पीछे महान् दुःखको प्राप्त होता है। इसप्रकारसे क्रोध मनुष्यको संसारमें बाँध रखता है और धर्मका क्षय करता है, अतः भाई लक्ष्मण! तुम क्रोधका त्याग कर दो! क्रोध मनुष्यका महाशत्रु है। कारण, वह क्रोध ही मनुष्यकी मृत्युको बुला लाता है। लोग क्रोध-वश विष खाकर आत्महत्या भी कर लेते हैं।

धन इत्यादि पदार्थों की जो इच्छा है, वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है इसीलिये इस तृष्णाको वैतरणी नदीकी उपमा दी गयी है। जैसे यमराजके मार्गमें वैतरणी एक अति भयंकर दुस्तर नदी है और पापियोंको उसे पार करना पड़ता है इसी प्रकार संसारमें यह तृष्णारूपी नदी भी दुर्बुद्धि संसारी मनुष्योंके लिये दुस्तर है। भाई! सन्तोष ही—बाह्य विषयोंकी इच्छाका त्याग ही—नन्दनवनकी नाईं आनन्ददायक है और मनकी निवृत्ति-रूप शान्ति ही कामधेनु है। कामधेनुसे हम जो वस्तु चाहते हैं, वही वस्तु वह देती है। इसीप्रकार शान्ति भी दो चार ब्रह्माण्डोंकी प्राप्तिकी अपेक्षा भी अधिक सुख प्रदान करती है। लक्ष्मण! इन सब कारणोंसे तुम इस समय यदि शान्तिकी सेवामें लग जाओ तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं रहेगा। कारण, शान्तिकी सेवा तुम्हारी दृष्टि आत्माकी ओर कर देगी तब तुम देखोगे कि आत्मामें कोई विकार नहीं। फिर शत्रु उत्पन्न ही कहाँसे होगा? आत्मा न इन्द्रिय है, न मन है, न बुद्धि है और न प्राण है। वह इन सबसे पृथक् वस्तु है। आत्मा शुद्ध है, स्वयंप्रकाश है, निर्विकार है और निराकार है। देह, इन्द्रिय, प्राण इत्यादि तो आत्माके विपरीत हैं, अर्थात् ये अशुद्ध हैं, परप्रकाश हैं, विकारी हैं और आकारवाले हैं। मनुष्य जबतक शरीर, इन्द्रिय, प्राणादिसे पृथक् इस आत्माको नहीं जान लेता तबतक उसे जन्म-मरणकी प्राप्ति होती है और वह संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोगता है। अतएव तुम आत्माको सर्वदा शरीर, मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियोंसे पृथक् मानो। इस तरह मानते हुए बुद्धि प्रभृतिका अवलम्बन करके बाहरसे लोकव्यवहार करो। खेद न करो। सुख-दुःख तो प्रारब्ध है, जो आये उसीको भोगते जाओ। फिर तुम कर्म करके भी कर्ममें लिप्त नहीं होओगे। हे राघव! बाहरसे सर्वत्र कर्तृत्वपन दिखानेपर भी तुम भीतरसे शुद्ध-स्वभाव हो अतएव तुम कर्मफलसे निर्लिप्त रहोगे।

लक्ष्मण! यह जो तुम्हारे प्रति मैंने ज्ञानका उपदेश किया, इन सब बातोंको सदा-सर्वदा हृदयमें सोचते रहो तो फिर सारे संसारके दुःख भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे।'

'संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन'

श्रीभगवान्से यही प्रार्थना है कि हमलोग इस ज्ञानको कभी न भूलें।

रामायणकी विशेषता

(लेखक—कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर)

रामायणमें एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घरकी बातोंहीको बहुत बड़ा करके दिखाया है। पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, पति-पत्नीमें जो धर्मका बन्धन और प्रीति एवं भक्तिका सम्बन्ध है, रामायणने उसे इतना महत्त्व दिया है कि वह बहुत सहजहीमें महाकाव्यके उपयुक्त हो गया है। प्रायः देश-जय, शत्रु-विनाश और दो प्रबल विरोधी पक्षोंके प्रचण्ड आघात-प्रतिघात साधारणतः महाकाव्यके बीचमें आन्दोलन और उद्दीपनाका सञ्चार करते हैं। किन्तु रामायणकी महिमाने राम-रावणके युद्धका आश्रय नहीं लिया है, इसमें वर्णित युद्धघटना श्रीरामचन्द्र और सीताके दाम्पत्य-प्रेमको ही उज्ज्वल करके दिखानेका उपलक्षमात्र है। पुत्रके लिये पिताका आज्ञापालन, भाईके लिये भाईका आत्मत्याग, पत्नीका पतिव्रत, पतिका पत्नीव्रत और प्रजाके प्रति राजाका कर्तव्य कहाँतक हो सकता है, रामायणने यही दिखाया है। इसप्रकार व्यक्तिविशेषके घरकी बातोंका इतना विशद वर्णन करना किसी देशके महाकाव्यमें उचित नहीं समझा गया। इससे केवल कविका ही नहीं किन्तु सारे भारतवर्षका परिचय मिल जाता है। गृह और गृहधर्म भारतवर्षमें कितने और कैसे उच्च थे वे इससे जाने जायँगे। हमारे देशमें गृहस्थाश्रमको भी अत्यन्त उच्च स्थान था, यह काव्य इस बातको प्रमाणित करता है। गृहस्थाश्रम हमारे निजके सुख और आरामके लिये नहीं था किन्तु गृहस्थाश्रम सारे समाजको धारण करता था और मनुष्यको यथार्थरूपसे मनुष्य बनाता था। गृहस्थाश्रमको भारतवर्षीय आर्यजातिकी नींव समझना चाहिये और रामायण उसी गृहस्थाश्रमका काव्य है। इसी गृहस्थाश्रम-धर्मको रामायणने सङ्कटके समयमें—वनवासके दुःखमें डालकर उसे विशेष गौरव प्रदान किया है। कैकेयी और मन्थराके कुचक्रोंके कठिन आघातोंसे अयोध्याके राजगृहके नष्ट हो जानेपर भी इस गृहस्थ-धर्मकी दुर्भेद्य दृढ़ताको रामायण घोषित कर रही है। रामायणने बाहुबल, विजयकी अभिलाषा और राष्ट्र-गौरव इन सबका परित्याग कर केवल शान्तरसास्पद गृहधर्मको ही करुणाके अश्रुजलोंसे अभिषिक्त कर उसे सर्वोच्च सिंहासनपर विराजित किया है।

श्रद्धाहीन पाठक कहेंगे कि इस प्रकारका चरित्र-वर्णन अतिशयोक्तिमें परिणत हो जाता है। इस कथनसे इस बातकी मीमांसा नहीं हो सकती कि किस जगह यथार्थ सीमाका और किस जगह कल्पनाकी सीमाका लंघन करनेसे काव्यकला अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाती है। जिन विदेशी समालोचकोंने कहा है कि रामायणमें चरित्र-वर्णन अति-प्राकृत हो गया है, उनसे हम यही कहेंगे कि प्रकृतिके भेदसे एकके लिये जो अति-प्राकृत है, दूसरेके लिये वही प्राकृत है।

जिस जगह जो आदर्श प्रचलित है उसे यदि अति-मात्रामें अङ्कित किया जाय तो उसे वहाँके लोग ग्रहण ही नहीं करेंगे। हम अपने कानोंमें कितने शब्दोंको ठीक ठीक सुन सकते हैं इसकी सीमा है, यह नहीं कि बराबर कोई कहता चला जाय और हम सुनते ही जायँ। हमारे सुननेकी सीमाके बाहर कोई चिल्लाकर हमारे कान ही क्यों न फाड़ डाले किन्तु निर्दिष्ट सीमाके बाहर हमारे कान उसके शब्दोंको कभी ग्रहण ही न करेंगे। काव्यमें चरित्र और भावके उद्भावनके सम्बन्धमें भी यही बात घटती है।

यदि यह बात सत्य है तो यह बात सहस्रों वर्षोंसे मानी जा रही है कि रामायणकी कथा भारतवर्षके निकट किसी अंशमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हुई है। इस रामायणसे भारतवर्षके आबाल-वृद्ध-वनिता और ऊँच नीच सब लोगोंने केवल शिक्षा ही नहीं पायी है किन्तु आनन्द भी प्राप्त किया है, इसे केवल उन्होंने शिरोधार्य ही किया हो सो नहीं, इसे उन्होंने हृदयमें भी स्थान दिया है। यह उनका धर्मशास्त्र ही नहीं, काव्य भी है।

श्रीरामचन्द्रजी जो एक ही कालमें हमारे निकट देवता और मनुष्य हैं, रामायण जो एक ही कालमें हमारी भक्ति और प्रीतिभाजन हुई है, यह कभी सम्भव नहीं होता, यदि इस महाग्रन्थकी कविता भारतवर्षकी दृष्टिमें केवल कवियोंकी कपोल कल्पना ही होती और वह हमारे लोक-व्यवहारके कार्यमें न आ सकती।

इसप्रकारके ग्रन्थको यदि विदेशी समालोचक अपने काव्योंके विचारके आदर्शके अनुसार अप्राकृत कहेंगे तो उनके देशके सहित तुलना करनेमें भारतवर्षकी एक और भी विशेषता प्रकट होती है। रामायणमें भारतवर्षने जो चाहा वही पाया है। (रामायणी-कथा)

रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण

(लेखक–रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी०ए०)

संसारके जितने काम हैं सब किसी-न-किसी प्रयोजनसे किये जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचनाका कारण यह लिखा है–

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा–
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

काव्य-रचना यशके लिये की जाती है, धन कमानेके लिये की जाती है, अमंगल नाशके लिये की जाती है और उपदेशके लिये की जाती है, पर यहाँ तो प्रयोजन केवल अपने अन्तःकरणका सुख है, जिसे संस्कृतमें पर-निर्वृत्ति कहते हैं, परन्तु गोस्वामीजी आगे चलकर एक बात और कहते हैं–

बरनौं रघुबर बिसद जस सुनि कलिकलुष नसाय।

कहनेवाले कह सकते हैं कि गोस्वामीजीने अपने श्रोताओंको यह लालच दिया है। पर ऐसा नहीं है, उनका मुख्य प्रयोजन तो यह है–

मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

क्योंकि राम-कथा 'निज सन्देह मोह-भ्रम-हरणी' और 'भवसरिता तरणी' है। आश्चर्य यह है कि गोस्वामीजीके स्वार्थसे संसारका परमार्थ कैसे सिद्ध हो गया? हमारी समझमें यह आता है, कि उन्होंने अपने समयके सारे प्रचलित धर्म ध्यानसे देखे थे। सम्भव है कि पहले उनका मन भी डावाँडोल था, परन्तु उन्होंने अपने सन्तोषके लिये जो राह निकाली, वही संसारके लिये धर्म-मार्ग बन गया। 'नानापुराणनिगमागम' मथकर जो रस निकाला वह भारतवर्षके लिये रसायन बन गया। सो भी कड़ुवी दवा नहीं, भिन्न भिन्न रुचिवाले सब यह सुधारस पान करके छक गये। शैव और वैष्णव जो एक दूसरेका सिर फोड़ रहे थे, सबको यह रस अच्छा लगा। विचारनेकी बात है कि इसमें ऐसी कौन-सी बात थी।

किसी कविकी रचनाको समझनेके लिये कविके समयकी देश-दशा जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। वह कितनी बातें समयानुकूल कह डालता है जो तत्कालीन इतिहास जाने बिना समझमें नहीं आ सकती। गोस्वामीजीने कवितावलीमें लिखा है–

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें
कोढ़मेंकी खाज-सी सनीचरी है मीनकी।

इसको समझनेके लिये इतिहास और ज्योतिषशास्त्र दोनोंकी शरण लेनी पड़ती है। इस पंक्तिकी व्याख्या बड़ी रोचक है। इसके लिये हम भाषाके सुप्रसिद्ध विद्वान् और मानसके अनुरागी सर जार्ज ग्रियर्सनके नोट्स (Notes) से एक अंशका अनुवाद उद्धृत करते हैं। 'तुलसीदासजीके जीवनकालमें शनैश्चरने मीनराशिमें दो बार प्रवेश किया, पहले चैत सुदी १ संवत् १६४०में, जो ज्येष्ठ संवत् १६४२ तक रहा और दूसरी बार चैत सुदी २ सं० १६६९ में। इस बार 'मीनकी सनीचरी' जेष्ठ सं० १६७१ तक रही, और इसी सनीचरीमें मुसलमानोंका अत्याचार बनारसमें बहुत बढ़ गया था।

भारतवर्षमें जितने नये नये मत निकलते हैं, सब अपनेको सच्चा कहते और दूसरेको पाखण्ड बताते हैं। स्वामी रामानुजका जन्म सं० १०७४ वि० (१०१७ ई०) में हुआ। स्वामी रामानुज अपने गुरुसे लड़ते रहे। शैवों और वैष्णवोंकी लड़ाई और शैवोंकी हारका एक उदाहरण यह है—

तिरुपतिके एक मन्दिरमें मूर्तिके विषयमें बड़ा विवाद था। शैव कहते थे कि शिवकी मूर्ति है और वैष्णव उसे विष्णुकी मूर्ति बताते थे। निर्णय करनेके लिये विष्णुके चिह्न (शंख चक्र) और शिवके चिह्न (त्रिशूल) दोनों मूर्तिके आगे रक्खे गये और पट बन्द कर दिया गया। सबेरे पट खुला तो मूर्तिके हाथोंमें शंख और चक्र देखे गये और त्रिशूल टूटा पड़ा था, यह सब कुछ हुआ परन्तु शैवों और वैष्णवोंका विरोध बढ़ता गया। स्वामी रामानुजके शिष्य कूरेश और उनके गुरु महापूर्ण दोनोंको शैवोंकी प्रेरणासे तत्कालीन चोलराज्यने बुलवाया और उनकी आँखें निकलवा डालीं। ये विरोध अबतक हैं। काञ्ची (Conjeeveram) में अब भी दो भाग हैं–(१) शिवकाञ्ची (२) विष्णुकाञ्ची। कहा जाता है, शैव विष्णुकाञ्चीमें जाते या वैष्णव शिवकाञ्चीमें आते हैं तो अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध लेते हैं।

इतना लिखकर अब हम उन भिन्न भिन्न मतोंका उल्लेख करेंगे जो गोस्वामीके समयमें प्रचलित थे। और जिनको गोस्वामीजीने अपने मानसमें ग्रहण किया है।

(१) शंकरस्वामीका वेदान्त—स्वामी शंकराचार्यका प्रादुर्भाव आजकलकी गवेषणाके अनुसार विक्रम संवत्‌की नवीं शताब्दीमें हुआ था। इन्होंने वेदान्त (बादरायण) सूत्रकी एक टीका लिखी है जो 'शंकर-भाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके दूसरे अध्यायमें इन्होंने अपने समयके प्रचलित धर्मोंका खण्डन किया है। इस सम्प्रदायमें शिवकी उपासना की जाती है और ये ही शैव स्वामी रामानुजके विरोधी थे। स्वामी रामानुजने भी वेदान्त-सूत्रपर अपने मतानुसार एक टीका की है जो 'श्रीभाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है।

स्वामी शंकराचार्यने बौद्धोंको परास्त करके भारतवर्षके बाहर निकाल दिया और गया आदि प्रधान बौद्ध-तीर्थोंको हिन्दू-तीर्थ बना दिया था। उनकी शिक्षाका प्रभाव आजकल भी हिन्दू-धर्मपर बहुत है। गोस्वामीजीके समयमें इस मतके अनुयायी बहुत थे। इसलिये पहला धर्म, जिसकी छटा देखनेका प्रयत्न करना उचित समझा गया, शंकरका वेदान्त था, और रामचरित-वर्णनमें वेदान्त लानेके लिये शंकर-गिरजाका संवाद उसमें मिला दिया गया, या यों कहना चाहिये कि रामचरितके बखाननेवाले श्रीरामके परमभक्त एक शंकर ही हैं। स्वामी शंकराचार्य भी शंकरके अवतार माने जाते हैं। इसी कारण शंकरके मुँहसे शंकरका वेदान्त मानसमें डाल दिया गया। मानसके पढ़नेवाले जो वेदान्तसे परिचित हैं, गिरिजा-शंकरके संवादमें पद-पदपर वेदान्तके सिद्धान्त देखेंगे।

(२) रामानुज (लक्ष्मण)का श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय—दूसरा मत जो गोस्वामीजीके समयमें धूमधामसे प्रचलित था, स्वामी रामानुजका था। स्वामी रामानुजके सम्प्रदायको श्रीसम्प्रदाय कहते हैं और उनके अनुयायी इस देशमें साधारण रीतिसे आचारी कहलाते हैं। रामचरितमानसमें इस सम्प्रदायके समर्थक श्रीलक्ष्मणजी हैं। हम अपनी इस कल्पनाकी पुष्टिमें मुंशी सुखदेवलालजीकी टीकासे* एक अंश उद्धृत करते हैं—

"बन्दौं लछिमन पद-जल-जाता। सीतल सुखद भक्त-सुख-दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयो जस जाका॥

"ता पाछे श्रीउर्मिला-पति लक्ष्मणजीके चरण-कमल अति सीतल और सुन्दर भक्तजनोंके आनन्ददाता तिनको मैं प्रणाम करता हूँ।

"कर्पूरगौरवपुषं शरदिन्दुवक्त्रं-
पीताम्बरं सरसिजक्षमनन्तमादिम्।
यश्चोर्मिलाललितभूषणमावितांग-
रामानुजं भज मनोमयदं निजानाम्॥

"श्रीरामचन्द्रकी कीर्तिरूपी उज्ज्वल पताकाको जिनका यश दण्ड-रूप है अर्थात् लक्ष्मणजीका सम्पूर्ण साहस केवल रामके प्रतापके उदय हेतु है, देखो यज्ञ-रक्षा और रंगभूमि और परशुराम-आगमन। ऐसे ही सब काण्डोंमें जानो और चारों युगोंमें ऐसा ही है। देखो, सतयुगमें अनन्तावतार होकर अपने सहस्रमुखोंसे केवल भगवद्‌गुणानुवाद ही गायो और द्वापर रामावतारमें मुष्टिकादि दैत्योंका वध और जमुना और हस्तिनापुरका कर्षण इत्यादि केवल भगवद्-प्रीति-के निमित्त है। और कलियुगमें जब पाखण्ड, बौद्ध, चार्वाक और कुदृष्टियों करके भगवत्कीर्तिरूपी पताका निरालम्ब हो गयी तब श्रीलक्ष्मणजी यती होकर अपने सूक्तिदण्ड करके उसको उठाकर खड़ा कर दिया। जैसे पद्मपुराणमें भविष्य लिखा है।

"पाखण्डे बहुले लोके कुदृष्टीजनसंकुले।
कलौ वैष्णवसिद्धान्तं पुनरुद्धार्यते यती॥

"अर्थात् जब जैन, बौद्ध, चार्वाक, पाखण्ड कलियुगमें फैल जायगा और कुदृष्टिन करके संसार भर जायगा तब वैष्णव-सिद्धान्तको फेरि यती उद्धार करेंगे।

"अनन्तं प्रथमे युगे द्वितीये लक्ष्मणं तथा।
तृतीये बलरामश्च कलौ रामानुजो यती॥

"अर्थात्- जो सतयुगमें अनन्त भये औरत्रेतामें लक्ष्मण और द्वापरमें बलदेव सोई कलियुगमें श्रीलक्ष्मणजी यती होईंगे।"

हम अपनी ओरसे इतना और बढ़ाना चाहते हैं कि स्वामी रामानुजके अनुयायियोंने कम-से-कम दक्षिण-देशमें श्रीराम-जानकीकी उपासना फैलायी और आज दिन भी भारतवर्षमें अनेक राम-जानकीके मन्दिर इसी सम्प्रदाय-वालोंके अधिकारमें हैं।

* यह टीका कलि-संवत् ४९७० में लिखी गयी थी और प्राचीन टीकाओंमें अत्यन्त प्रामाणिक है, इसमें बहुत नयी बातें जानने योग्य हैं। आजकल कलि-संवत् ५०३० है।

(३) स्वामी रामानन्दका सम्प्रदाय—तीसरा मत स्वामी रामानन्दका है। स्वामी रामानन्दका जन्म प्रयागराजमें संवत् १४०० विक्रमीमें हुआ था। आचार्यों और रामानन्दियोंका झगड़ा उठनेसे पहले हमलोग मानते थे कि स्वामी रामानन्द भी पहले आचार्य ही थे। परन्तु अब स्वामी रामानुजसे रामानन्दीय सम्प्रदाय-का कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। स्वामी रामानुजकी शिक्षाको देशकी दशासे कोई सम्बन्ध न था, न उनके समयमें परदेशियोंके आनेसे इस दशामें बड़े बड़े ऐसे परिवर्त्तन ही हो गये थे जैसे कि उनके पीछे तीन सौ वर्षमें हुए। लखनौतीके बाजारमें हजारों मनुष्योंका फाँसी लटकाया जाना, दिल्लीमें तैमूरकी आज्ञासे नर-मुण्डोंका स्तम्भ बनाना, ऐसी घटनाएँ उस समय न थीं, जिनका असर सहृदय देश-सुधार करनेवालेपर न पड़ता। रामानन्दने यह भी देखा कि हमारे देशके पददलित चमार जो बड़ी रुचिके साथ गायका मांस खाते हैं, मुसलमान होकर शेख बन गये और जिन हिन्दुओंने उनसे घृणा की और उनका तिरस्कार किया था, विजेत्री जातिका बल पाकर, उन्हींको चिढ़ानेके लिये वे गो-वध करने लगे। स्वामी रामानन्दने सोचा कि बिना दलितोद्धार किये काम नहीं चलता। इस भारतवर्षका मुख्य भोजन मांस नहीं है, यहाँ आर्योंने इतने प्रकारके अन्नों, स्वादिष्ट फलोंका आविष्कार किया है कि मांस खाये बिना भी मनुष्य अच्छे-से-अच्छा भोजन करता और हृष्ट-पुष्ट रह सकता है। स्वामी रामानन्दने चमारसे कहा कि 'तुम मांस खाना छोड़ दो और कण्ठी बाँध लो तो हम तुम्हें अपनी पंगतमें भोजन कराते हैं।' उनका एक प्रधान शिष्य रैदास चमार था। इतना ही नहीं उन्होंने कबीर जुलाहेको भी अपना शिष्य बनाया। भविष्यपुराणमें लिखा है कि स्वामी रामानन्दका एक शिष्य अयोध्या पहुँचा और वहाँ उसने अनेक मुसलमानोंको वैष्णव बना लिया। यही आज-कलकी शुद्धि और दलितोद्धार है। उन्होंने यह सिखाया कि राम-जानकीके चरणोंमें भक्ति होनेसे आचारका काम नहीं। इस भक्तिका सबको अधिकार है, और—

जिनके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये तिन्हैं कोटि बैरी सम यद्यपि परमसनेही॥

मानसमें स्वामी रामानन्दके स्थानापन्न भरत हैं। गोस्वामीजी आप रामानन्दी सम्प्रदायके हैं और अयोध्या-काण्डके अन्तमें स्पष्टरूपसे कहते हैं कि—

कलिकाल तुलसीसे सठनि हठि राम सन्मुख करत को।

जिसका अर्थ यह है कि स्वामी रामानन्दकी शिक्षाने मुझे श्रीरघुनाथजीका भक्त बना दिया।*

आह्वान

काम क्रोध लोभ खरदूषण त्रिशिर तुल्य
वासना विकल सूर्पणखा-सी सताती है।
दश इन्द्रियोंका मोह दशमुख रावण है
जिससे विवश बुद्धि-सीता दुःख पाती है।
असुर-समूहोंसे व्यथित हो हृदय-भूमि
अति अकुलाती, घबराती, बिलखाती है।
सोये किस ओर करुणाके धाम रामचन्द्र!
याद इस ओरकी तुम्हें क्यों न आती है?

—बलदेवप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल एल० बी०, एम० आर० ए० एस०,

---

* हमने इस विषयपर विद्वानों और रामायणके प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये मोटी मोटी बातें लिख दी हैं। अवकाश मिलनेपर पूरी व्याख्या की जायगी।

श्रीरामकी पुनः लङ्का-यात्रा और सेतु-भंग

क समय भगवान् श्रीरामको राक्षसराज विभीषणका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा कि 'विभीषण धर्मपूर्वक शासन कर रहा है कि नहीं? देव-विरोधी व्यवहार ही राजाके विनाशका सूत्र है। मैं विभीषणको लङ्काका राज्य दे आया हूँ, अब जाकर उसे सम्हालना भी चाहिये। कहीं राज्यमदमें उससे अधर्माचरण तो नहीं हो रहा है। अतएव मैं स्वयं लङ्का जाकर उसे देखूँगा और हितकर उपदेश दूँगा, जिससे उसका राज्य अनन्त कालतक स्थायी रहेगा।' श्रीराम यों विचार कर ही रहे थे कि भरतजी आ पहुँचे। भरतजीके नम्रतासे पूछनेपर श्रीरामने कहा—'भाई! तुमसे मेरा कुछ भी गोपनीय नहीं है, तुम और यशस्वी लक्ष्मण मेरे प्राण हो। मैंने निश्चय किया है कि मैं लङ्का जाकर विभीषणसे मिलूँ, उसकी राज्य-पद्धतिको देखूँ और उसे कर्त्तव्यका उपदेश दूँ।' भरतने कभी लङ्का नहीं देखी थी, इससे उसने भी साथ चलनेकी इच्छा प्रगट की, श्रीरामने स्वीकार कर लिया और लक्ष्मणको सारा राज्यभार सौंपकर दोनों भाई पुष्पक विमानपर चढ़ लङ्काके लिये विदा हुए। पहले भरतके दोनों पुत्रोंकी राजधानीमें जाकर उनसे मिले और उनके कार्यका निरीक्षण किया, तदनन्तर लक्ष्मणके पुत्रोंकी राजधानीमें गये और वहाँ छः दिन ठहरकर सब कुछ देखाभाला। इसके बाद भरद्वाज और अत्रिके आश्रमोंको गये। फिर आगे चलकर श्रीरामने चलते हुए विमानपरसे वह सब स्थान दिखलाये जहाँ श्रीसीताजीका हरण हुआ था, जटायुकी मृत्यु हुई थी, कबन्धको मारा था, और बालिका वध किया था। तत्पश्चात् किष्किन्धापुरीमें जाकर राजा सुग्रीवसे मिले। सुग्रीवने राजघरानेके सब स्त्री-पुरुषों, नगरीके समस्त नर-नारियोंसमेत श्रीराम और भरतका बड़ा भारी स्वागत किया। फिर सुग्रीवको साथ लेकर विमानपरसे भरतको विभिन्न स्थान दिखलाते और उनकी कथा सुनाते हुए लङ्कामें जा पहुँचे, विभीषणको दूतोंने यह शुभ समाचार सुनाया। श्रीरामके लङ्का पधारनेका संवाद सुनकर विभीषणको बड़ी प्रसन्नता हुई। सारा नगर बात-की-बातमें सजाया गया और अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर विभीषण अगवानीके लिये चला। सुमेरुस्थित सूर्यकी भाँति विमानस्थ श्रीरामको देखकर साष्टाङ्ग प्रणामपूर्वक विभीषणने कहा—'प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये। क्योंकि आज मैं जगद्वन्द्य अनिन्द्य आप दोनों स्वामियोंके चरण-दर्शन कर रहा हूँ। आज स्वर्गवासी देवगण भी मेरे भाग्यकी श्लाघा कर रहे हैं। मैं आज अपनेको त्रिदशपति इन्द्रकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझ रहा हूँ।' सर्वरत्नसुशोभित उज्ज्वल भवनमें महोत्तम सिंहासनपर श्रीराम विराजे, विभीषण अर्घ्य देकर हाथ जोड़ भरत और सुग्रीवकी स्तुति करने लगा। लङ्कानिवासी प्रजाकी रामदर्शनार्थ भीड़ लग गयी। प्रजाने विभीषणको कहलाया, 'प्रभो! हमको उस अनोखी रूप-माधुरीको देखे बहुत दिन हो गये। युद्धके समय हम सब देख भी नहीं पाये थे। आज हम दीनोंपर दयाकर हमारा हित करनेके लिये कल्याणमय हमारे घर पधारे हैं, अतएव शीघ्र ही हम लोगोंको उनके दर्शन कराइये।' विभीषणने श्रीरामसे पूछा और दयामयकी आज्ञा पाकर प्रजाके लिये द्वार खोल दिये। लङ्काके नर-नारी श्रीराम-भरतकी झाँकी देखकर पवित्र और मुग्ध हो गये। यों तीन दिन बीते। चौथे दिन रावण-माता कैकसीने विभीषणको बुलाकर कहा, 'बेटा! मैं भी श्रीरामके दर्शन करूँगी। उनके दर्शनसे महामुनिगण भी महापुण्यके भागी होते हैं। श्रीराम साक्षात् सनातन विष्णु हैं, वही यहाँ चार रूपोंमें अवतीर्ण हैं। सीताजी स्वयं लक्ष्मी हैं। तेरे भाई रावणने यह रहस्य नहीं जाना। तेरे पिताने कहा था कि रावणको मारनेके लिये भगवान् विष्णु रघुवंशमें दशरथके यहाँ प्रादुर्भूत होंगे।' विभीषणने कहा—'माता! आप नये वस्त्र पहनकर कञ्चन थालमें चन्दन, मधु, अक्षत, दधि, दूर्वाका अर्घ्य सजाकर भगवान् श्रीरामके दर्शन करें। सरमा (विभीषण-पत्नी) को आगे कर और अन्यान्य देवकन्याओंको साथ लेकर आप श्रीरामके समीप जायँ। मैं पहले ही वहाँ चला जाता हूँ।'

विभीषणने श्रीरामके पास जाकर वहाँसे सब लोगोंको बिल्कुल हटा दिया और श्रीरामसे कहा, 'देव! रावणकी, कुम्भकर्णकी और मेरी माता कैकसी आपके चरण-कमलोंके दर्शनार्थ आ रही हैं, आप कृपापूर्वक उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करें।' श्रीरामने कहा, 'भाई! तुम्हारी मा तो मेरी 'मा' ही है। मैं ही उनके पास चलता हूँ, तुम जाकर उनसे कह दो।' इतना कहकर विभु श्रीराम उठकर चले और कैकसीको

देखकर मस्तकसे उसे प्रणाम किया तथा बोले—'आप मेरी धर्म-माता हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अनेक पुण्य और महान् तपके प्रभावसे ही मनुष्यको आपके (विभीषण-सदृश भक्तोंकी जननीके) चरण-दर्शनका सौभाग्य मिलता है। आज मुझे आपके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे श्रीकौशल्याजी हैं, वैसे ही मेरे लिये आप हैं।' बदलेमें कैकसीने मातृभावसे आशीर्वाद दिया और भगवान् श्रीराम-को विश्वपति जानकर उनकी स्तुति की। इसके बाद 'सरमा'ने भगवान्‌की स्तुति की। भरतको सरमाका परिचय जाननेकी इच्छा हुई, उनके इशारेको समझकर 'इङ्गितविद्' श्रीरामने भरतसे कहा, 'यह विभीषणकी साध्वी भार्या हैं, इनका नाम सरमा है। यह महाभागा सीताकी प्रिय सखी हैं, और इनकी सखिता बहुत दृढ़ है।' इसके बाद सरमाको समयोचित उपदेश दिया। फिर विभीषणको विविध उपदेश देकर कहा कि 'हे निष्पाप! देवताओंका प्रिय कार्य करना, उनका अपराध कभी न करना। लङ्कामें कभी मनुष्य आवें तो उनका कोई राक्षस वध न करने पावे।' विभीषणने आज्ञानुसार चलना स्वीकार किया।

तदनन्तर वापस लौटनेके लिये सुग्रीव और भरतसहित श्रीराम विमानपर चढ़े। तब विभीषणने कहा 'प्रभो! यदि लङ्काका पुल ज्यों-का-त्यों बना रहेगा तो पृथ्वीके सभी लोग यहाँ आकर हम लोगोंको तंग करेंगे, इसलिये क्या करना चाहिये?' भगवान्‌ने विभीषणकी बात सुनकर पुलको बीचमेंसे तोड़ डाला और दश योजनके बीचके टुकड़ेके फिर तीन टुकड़े कर दिये। तदनन्तर उस एक एक टुकड़ेके फिर छोटे छोटे टुकड़े कर डाले, जिससे पुल टूट गया और यों लङ्काके साथ भारतका मार्ग पुनः विच्छिन्न हो गया! यह कथा पद्मपुराणसे ली गयी है।

—रामकिंकर.

गोस्वामीजीकी निष्काम-भक्ति

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र बी० ए०, बी० एल०)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
(गी० ७। १६)

इस श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने भक्तोंकी चार श्रेणियाँ बतलायी हैं। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी, ये तीन भेद सकाम भक्तोंके हैं। चौथी श्रेणी ज्ञानी अर्थात् निष्कामी भक्तोंकी है। इनमें प्रथम तीन श्रेणीके भक्त निम्नश्रेणीके हैं। भक्तिकी चरम सीमा निष्काम भक्ति है और इस भक्ति-को प्राप्त कर लेनेपर भक्तोंके लिये और कुछ वाञ्छनीय नहीं रह जाता। इसप्रकारकी भक्ति सर्वथा अहैतुकी होती है अर्थात् इसका कोई हेतु नहीं होता। इसमें स्वार्थका लवलेश नहीं रहता। अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति ही भक्तिकी पराकाष्ठा है और इस भक्तिरसामृतका एक बिन्दु भी जिसने पान कर लिया, उससे बढ़कर बड़भागी इस संसारमें और कौन दूसरा हो सकता है?

किन्तु, संसारमें ऐसे विरले ही भक्त हुए हैं जिनके हृदयमें निष्काम भक्ति जन्मसे ही उत्पन्न हुई हो। अन्य प्रकारके भक्त प्रारम्भमें निम्नश्रेणीके ही भक्त थे, किन्तु भक्तिका निरन्तर निश्छल हृदयसे अभ्यास करते करते अन्तमें उन्होंने भी निष्काम भक्तिको प्राप्त कर लिया, जैसे कि ध्रुव आदि। प्राचीन कालमें हम इसप्रकारकी अहैतुकी उत्कृष्ट भक्ति बालक प्रह्लादमें पाते हैं। किसी स्वार्थ अथवा हेतुको लेकर प्रह्लादके हृदयमें भगवद्भक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी। बालक प्रह्लाद दिन-रात एकनिष्ठभावसे भगवन्नाम-का स्मरण एवं कीर्त्तन किया करते थे। उन्हें स्वयं इस बात-का कुछ भी ज्ञान नहीं था कि वे क्यों और किस लिये नाम-स्मरण किया करते हैं। उनके हृदयमानसमें भक्तिका निर्मल स्रोत अनवरतरूपमें प्रवाहित हो रहा था और उस भक्ति-भागीरथीमें अपने सम्पूर्ण मन, प्राण, इन्द्रियको निमज्जित करनेमें उन्हें एक प्रकारका अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता था। बस, इसके सिवा उनकी भक्तिका, उनके अहर्निश भगवन्नाम-स्मरणका और कोई दूसरा कारण या हेतु ही नहीं था। प्रह्लादकी भक्तिसे प्रसन्न होकर जब भगवान् उन्हें वर देना चाहते थे तो प्रह्लादने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया है—

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः॥
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः॥
(भागवत ७।१०।४-५)

अर्थात् हे भगवन् ! जो आपसे वरदान पानेकी आशासे अर्थात् किसी उद्देश्य या मनोरथको लेकर आपकी भक्ति करता है वह सच्चा भक्त, सच्चा सेवक नहीं, वह तो प्रेमका बनिया है, वह तो भक्तिका सौदा करता है, और उसके बदलेमें प्रभुसे कुछ चाहता है। ऐसे ही जो स्वामी अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये वरदान देना चाहता है वह भी सच्चा स्वामी नहीं। फिर भी यदि मेरे मालिक मेरी सेवापर प्रसन्न होकर वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर दें कि "कामाना हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्" मेरे हृदयमें कामनाओं-की कभी उत्पत्ति ही नहीं हो। अहा ! निष्काम भक्तिका कितना सुन्दर परिपाक है। धन्य है इस भक्तप्रवर बालक-की यह निष्काम भक्ति और धन्य है वह देश जिसने ऐसे भक्तशिरोमणिको पैदा किया। अपने ऐसे भक्तोंको लक्ष्य करके ही तो भगवान्ने उद्धवसे कहा है--

न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥
(भागवत ११।२०।३४)

अर्थात् मेरे जो अनन्यभक्त भक्ति करनेपर भी कैवल्य या मोक्षकी इच्छातक नहीं रखते, वे पवित्र और धीर भक्त ही मुझे प्यारे हैं।

अच्छा, यह तो हुई प्राचीनकालके निष्काम भक्तोंकी बात। अब हमारे हिन्दी-कवि-कुल-कमल-दिवाकर भक्तिभास्कर गुसाईं तुलसीदासजीकी निष्काम भक्तिका नमूना लीजिये और उनकी भक्ति-सुधा-रसकी चाशनी चखिये। आह ! तुलसीकी अनन्य निष्काम भक्तिका क्या कहना है ? वह तो पुण्य-सलिला भागीरथीकी विमल-धवल-धारासे भी निर्मल, स्फटिकसे भी बढ़कर स्वच्छ एवं द्राक्षासिता और इक्षुसे भी बढ़कर मधुर है। उसकी मधुरतामें जो मादकता है वह संसारमें अन्यत्र दुर्लभ है। उस मादकतामें जो एक बार मग्न हो गया, तुलसीकी अनन्य-भक्तिका रसामृत जिसने पानकर लिया, उस निश्छल प्रेमका छलकता हुआ प्याला जिसने अपने मुँहमें आँख मूँदकर उँडेल लिया, उससे बढ़कर भाग्यवान् इस संसारमें और कौन है ? तुलसीदासजीकी निष्काम भक्ति कितनी उच्च, गम्भीर एवं सरस है, इसका अन्दाज़ा उन्हीं लोगोंको मिल सकता है जिन्होंने तुलसी-साहित्य-सरोवरमें गहरे गोते लगाये हैं। 'विनयपत्रिका' में अपने इष्टदेव भगवान् रामचन्द्रके प्रति आत्म-निवेदन करते हुए इस महामहिम महात्माने निष्काम-भक्ति-परिपूरित जो हृदयोद्गार प्रकट किये हैं वह तो वास्तवमें अनुपम, अतुलनीय तथा अद्वितीय हैं। सारे विश्व-साहित्यको ढूँढ़ जाइये, धार्मिक ग्रन्थोंका मन्थन कर डालिये, फिर भी आपको 'विनय' के पद निराले ही प्रतीत होंगे और आपके मुखसे बरबस निकल पड़ेगा 'धन्य हैं तुलसीदास और धन्य है उनकी निष्काम भक्ति !' 'विनयपत्रिका'के मंगलाचरणमें ही तुलसीदासजीने अपने इस भक्तिभावका यों परिचय दिया है--

माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे।

तुलसीदास कर जोड़ कर माँगते तो हैं, लेकिन क्या माँगते हैं ? हम संसारी जीवोंके समान धन-दौलत, मान-मर्यादा, स्वर्ग, यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं माँगते। बस, माँग इतनी ही है कि 'बसहिं राम-सिय मानस मोरे।' एक ही वरदान चाहिये, हृदयमें एक ही आकांक्षा है, दिलमें एक ही चाह है और वह यही है कि—

अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निर्बान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥

उन्हें इसके सिवा और कुछ नहीं चाहिये। फिर चाहनेको और रह ही क्या जाता है ? एक दूसरे पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—

'तुम तो बड़े दीनदयालु हो। तुम्हारे समान दानी भी दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारा नाम ही ग़रीबनिवाज है। फिर एक बार क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसीदास मेरो'। बस, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो जाऊँगा।' तुलसीके हृदयमें एक ही लालसा है, एक ही अभिलाषा है; वह यह है कि— 'ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै।' चाहे जिस तरह हो तुलसीदासको कृपासागर प्रभुकी चरण-शरण मिले। और सुनिये, महात्मा तुलसीदास अपना मनोभिलाष अपने मालिकसे इसप्रकार व्यक्त करते हैं:--

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥

सुगति नहीं चाहिये, सुमति नहीं चाहिये, सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि, बड़ाई कुछ भी नहीं चाहिये। बस, यदि चाह

है तो केवल यही कि रामपदमें दिन दिन अनुराग बढ़ता जाय। और वह अनुराग भी कैसा? हेतुरहित अर्थात् किसी हेतु या मतलबको लेकर नहीं, बिल्कुल अहैतुक, निःस्वार्थ। यह हेतुरहित अनुराग ही क्यों चाहिये? और कोई अभिलाषा या लालसा क्यों नहीं? इसीलिये कि—

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ बिषय-भोग बहु घी ते॥

—कामनाओंका तो कोई अन्त ही नहीं। इसपर भी यदि विषय-भोगकी याचना की जाय तब तो वह कामाग्नि और भी धधक उठेगी। अतएव नाथमें 'अनुराग जगे' ऐसा उपाय अब करना चाहिये, क्योंकि नाथमें 'जब अनुराग जग जायगा तो फिर कामका नाम ही नहीं रहेगा।'

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।

गुसाईंजी अपने प्रभुसे कहते हैं कि यदि दान ही देना है तो

तुलसिदासपर किरपा करिय भगति दान देहु आज।

—भक्तिका दान दीजिये, और किसी वस्तुका नहीं। महात्मा तुलसीदासजीके इस निष्काम भक्तिभावका परिचय हम उनके अमूल्य ग्रन्थ रामायणमें अनेक स्थलोंपर पाते हैं

परमानन्द कृपायतन मन-परिपूरन काम।
प्रेम-भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम॥
नाथ एक बर माँगौं, राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभु-पद-कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु॥

रामदास तुलसी अपने नाथसे, मालिकसे एक वर माँगते हैं, वह वर यदि तुलसीके मालिक देनेकी कृपा करें तो इस रूपमें दें कि अपने चरण-कमलमें जन्म-जन्म स्नेह नहीं घटने दें अर्थात् इस संसारमें भले ही बार-बार आना-जाना पड़े, लेकिन इस मालिकके चरण-कमलमें तुलसीका नेह घटे नहीं, बढ़ता ही रहे। सेवक-सेव्यभावका कितना सुन्दर चित्र खींचा है। बलिहारी है इस सेव्य-सेवक-भावकी! तुलसी-जैसे सेवकको पाकर कौन मालिक अपनेको धन्य नहीं मानेगा? एक दूसरे प्रसंगपर गुसाईंजी बतलाते हैं कि इस शरीरसे उन्हें इतनी ममता प्रेम क्यों है? केवल इसीलिये कि—

सबकर फल रघुपतिपद प्रेमा। तेहि बिन कोउ न पावै छेमा॥
एहि तन रामभगति मैं पाई। तातें मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहिपर ममता कर सब कोई॥

इस शरीरसे ही तो राम-भक्ति करनी है? तो फिर इस शरीरपर ममता क्यों न हो? लोग स्वार्थके लिये ही तो ममता करते हैं और तुलसीका भी एकमात्र स्वार्थ अपने प्रभुकी भक्ति करना है। अच्छा, अब तुलसीदासजीके हृदयकी एकमात्र लालसा क्या है सो भी उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिये—

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
रामचरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सुफल करि लेखौं॥

इसमें भक्तिका चरम उत्कर्ष ही निष्काम भक्ति है। इस प्रकारका एक भी निष्काम भक्त जिस देशमें हो, वह देश धन्य हो जायगा, उस देशके निवासी अपने कृतार्थ हो जायँगे। माता वसुन्धरा भी ऐसे ही भक्तको पाकर अपनेको सनाथा समझती है, जैसा कि नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है 'मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति।' 'पितृ-गण आनन्दित हो उठते हैं। देवतागण नाचने लगते हैं और पृथ्वी सनाथा हो जाती है।' ऐसे ही भक्तोंके वशमें भगवान् हो जाते हैं—

'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

'मैं स्वयं स्वतन्त्र नहीं हूँ, मैं भक्तोंके अधीन हूँ। भक्तोंने मेरे हृदयको ग्रस लिया है।' महात्मा तुलसी इसी कोटिके निष्काम भक्त थे। भगवान् रामचन्द्रमें उनकी अनन्य भक्ति, निष्काम प्रेम एवं एकनिष्ठ अनुराग था। अपने इष्टदेव जानकी-जीवनपर बलि जानेके लिये उनका हृदय आकुल हो रहा था। 'जानकी-जीवनकी बलि जैहौं।' सच्चे रामदास ठहरे न? हृदयका कोई भाव छिपाया नहीं। हृदयका कपाट बिल्कुल उन्मोचन कर दिया, कलेजा काढ़कर रख दिया, दिल खोलकर दिखा दिया और दिखा दीं अपने हृदयमें निरन्तर जलनेवाली वह अनुराग-आगकी ज्वालामयी लपटें, जिनमें पड़कर सारे विषय-भोग भस्मीभूत हो रहे थे। गुसाईंजीकी रामायणके पढ़नेवाले इस देशमें लाखों नहीं करोड़ों होंगे! किन्तु हममेंसे कितनेको उनकी-जैसी निष्काम भक्तिका शतांश भी प्राप्त हो सका है? हममेंसे कितने लोग विषयभोगसे विरत होकर उनके समान रामदास बननेमें समर्थ हुए हैं? अभी तो हम कामदास ही बने हुए हैं। आज हममेंसे कितने ऐसे हैं जो तुलसीदासकी भक्ति-भागीरथीकी सुशीतल-धारासे अपने नीरस हृदय-सरोवरको सरसित करके उसमें शतदलपद्म प्रस्फुटित करनेकी

चेष्टा करते हैं। महात्मा तुलसीदास अपनी रुचिर रचनाओंके रूपमें हमारे लिये जो अमूल्य निधि छोड़ गये हैं उनका उपयोग करना भी तो हम नहीं जानते। आज जो हमारे हृदयमें अशान्ति एवं हाहाकारकी ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, भक्ति-गंगाकी पावन पुण्यमयी धारासे वञ्चित होकर हमारा हृदय जो निराशा एवं निरानन्दके कारण नीरस हो रहा है उसे एक बार फिर भक्ति-सुधामृतसे सरसित करने और मुरझाये हुए प्राणोंको भक्ति-सञ्जीवनीसे सञ्जीवित करनेका काम यदि कोई कर सकता है तो वह हैं तुलसीदास और उनका अमर साहित्य। इसलिये हे भारतवासियो! आइये आज हम सब मिलकर भक्तिपूर्वक गुसाईंजीके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान्‌से यह वरयाचना करें कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

राम-चरित-शिक्षा-सार

पुरुषोत्तम श्रीरामने, लेकर मानव-रूप।
कहकर नहिं, करके हमें, शिक्षा दी बहुरूप॥
हमको रखना चाहिये, सदा उसीका ध्यान।
यदि तत्सेवक-भावका, है हमको अभिमान॥
पिता-वचनसे राज्य तज, करके विपिन-पयान।
दिखलाया पितृ-भक्तिका, शुभ आदर्श महान॥
शबरीके आतिथ्यको, कर स्वीकार सहर्ष।
क्या न पतित-उद्धारका, दिखलाया आदर्श?
वनचर-सेना साथ ले, सबल शत्रु निज जान।
दिया सङ्गठन शक्तिका, परिचय हमें महान॥
रिपु-सोदर सहृदय निरख, दिया उसे सम्मान।
राज-नीति-सौजन्यका, यह आदर्श महान॥
ब्राह्मण-कुल-सम्भूत भी, रावणका कर घात।
'जन-पीड़क सब वध्य हैं,' बतलायी यह बात॥
बतलाया संसारको, कर सीताका त्याग।
'राजाका सर्वस्व है, एक प्रजा-अनुराग'॥
गुरु-आज्ञासे भी नहीं, करके पुनः विवाह।
एक-पत्नी-व्रतकी हमें, दिखलायी है राह॥
हाय! भूलता जा रहा, यह आदर्श समाज।
हम पद-पदपर पा रहे, अतः पराभव आज॥

—नन्दकिशोर झा 'किशोर' काव्यतीर्थ।

गुसाईंजी और सीता-वनवास

(लेखक—श्रीव्यौहार राजेन्द्रसिंहजी)

सीता सरीखी सतीत्वकी जीती-जागती मूर्तिको केवल लोकापवादके कारण वनवास दिया जाना, और विशेषकर श्रीराम-सदृश मर्यादा-पुरुषोत्तमके द्वारा यह कठोर कार्य होना—हृदयको दहला देता है। कुछ लोगोंका तो मत है कि यह प्रसंग ही कल्पित है। रामजी कभी ऐसा अन्याय-कार्य कर ही नहीं सकते। कुछ लोग इसे श्रीरामके यश-चन्द्रमें कलंकरूप मानते हैं।

यहाँ हम कार्यके न्यायान्यायपर बहस करनेसे तो लेखके बहुत बढ़ जाने और विषयान्तर हो जानेका डर है। इसलिये हम यहाँ केवल इसी बातपर विचार करेंगे कि गुसाईंजीने इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देखा है, तथा इसका कैसा वर्णन किया है।

सबसे पहले यह बात अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है और तुलसीदासजीके ग्रन्थोंका अध्ययन करनेवाले इसे अच्छी तरह जानते भी हैं, कि गुसाईंजी किसी भी कविके पीछे आँख बन्द करके नहीं चले हैं। कविता, शैली, और चरित्र-चित्रण आदि सभी विषयोंमें उन्होंने दूसरोंका आधार लेते हुए भी अपनेपनको कायम रक्खा है। कथानकको भी उन्होंने वाल्मीकि या किसी पूर्ववर्ती कविके अनुसार ज्यों-का-त्यों नहीं रखकर अपनी विशेष रुचि तथा समाजकी आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिवर्धित या परिमार्जितरूपमें सबके सामने रक्खा है। राम तो वही हैं जो वाल्मीकि, कालिदास या अध्यात्मरामायणके हैं, किन्तु तुलसीके राम वही होते हुए भी उन सबसे भिन्न हैं—वे केवल तुलसीहीके राम हैं। उनके चरित्रमें उन्होंने समाजकी आदर्शभूत आवश्यकताओंका समावेश किया है। जिसे अनुपयोगी समझा उसे छोड़ दिया, जिसे उपयोगी समझा उसपर विशेष जोर दिया, और जिसे आवश्यक समझा उसे जोड़ भी दिया है। उदाहरण देनेसे कलेवर बढ़ जायगा। अतः हम विषयको यहीं छोड़ते हैं। कथानकोंके विषयमें भी उन्होंने इसी परिपाटीका अवलम्बन किया है।

सीता-वनवासकी कथा भी इन्हींमेंसे एक है। गुसाईंजीकी सीता, वाल्मीकि या कालिदासकी सीतासे
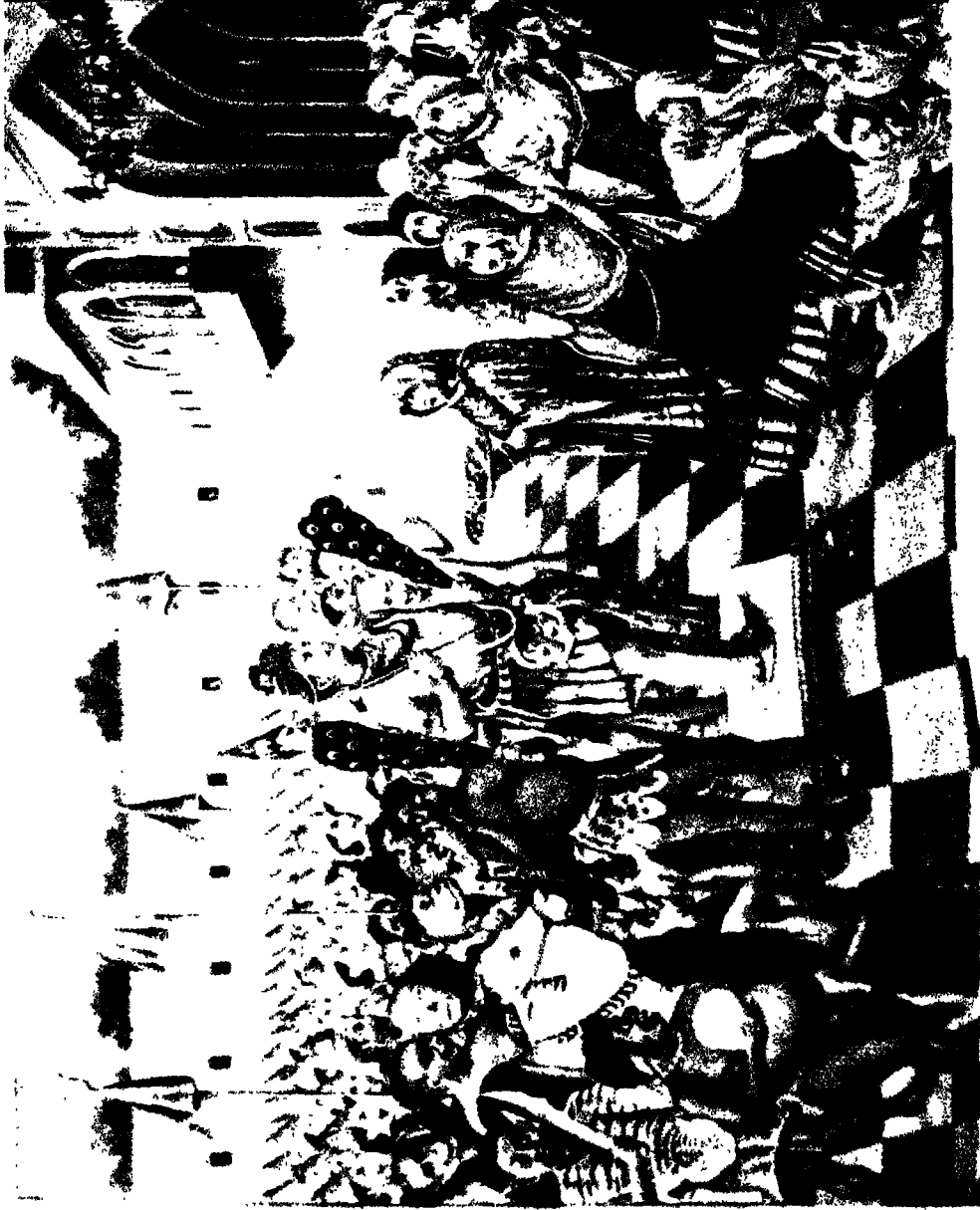
बिल्कुल भिन्न है—उसी प्रकार उनका 'सीता-वनवास' भी दोनों कवियोंसे भिन्न है। आगेके वर्णनसे यह बात सिद्ध हो जायगी।

वाल्मीकि तथा उनके आधारपर कालिदासका वर्णन इसप्रकार है, कि श्रीराम सीताके विषयमें लोकापवाद सुनते हैं, जिससे उन्हें दुःख होता है और वे लोकापवादके भयसे सीताके त्यागका निश्चय करते हैं। लक्ष्मणको बुलाकर सीताको गंगापार छोड़ आनेके लिये आज्ञा देते हैं। सीताने एक बार तपोवन देखनेकी रुचि भी प्रगट की थी, अतः उसीके बहाने लक्ष्मण रथपर बैठाकर सीताको वाल्मीकि-आश्रमके समीप छोड़ आते हैं; वाल्मीकि उन्हें आश्रय देते हैं और वहीं लव-कुशका जन्म होता है। बहुत दिनों बाद अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर लव-कुश रामायण गाते हुए अयोध्यामें आते हैं। वाल्मीकिजीसे सीताका भी पता लगता है, श्रीराम उन्हें ग्रहण करना चाहते हैं, पर सीताजी अपनी पवित्रताकी साक्षी देनेके लिये भूमिकी गोदमें स्थान चाहती हैं। उनके सतीत्वको सिद्ध करनेके लिये माता पृथ्वी प्रकट होकर अपने गोदमें स्थान देती हैं।

निरपराधिनी सती सीताको इसप्रकार दुःख सहने तथा अन्यायसे पीड़ित होते देखकर मनुष्यके हृदयपर गहरी चोट पहुँचना तथा किसी किसीको क्रोध आना भी स्वाभाविक है, किन्तु गुसाईंजीने गीतावलीके बारह पदोंमें इस कथानकका जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे ये भाव बहुत कम हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र बहुत काल राज्य करनेके पश्चात् दूतके मुँहसे लोकापवाद सुनते हैं और एक ओर राज्यधर्म तथा दूसरी ओर पत्नीव्रतधर्म, इन दोनोंके असमञ्जसमें पड़कर विचार करते हैं। गुसाईंजीका वर्णन इसप्रकार है

> पालिबे असिधार व्रत प्रियप्रेम पाल सुभाइ।
> होइ हित किहि भाँति नित सुबिचारहिं चित चाइ॥

प्रेमके लिये श्रीरामके मनमें कितना स्थान था और वह किस प्रकार अन्योन्य था, इसे गुसाईंजीने आगे चलकर भलीभाँति दिखलाया है

> राम जुगवत सीय मनु प्रिय मनहिं प्रान प्रियाइ।
> परम पावन प्रेम परिमिति, समुझि तुलसी गाइ॥

बिना अनन्यता और अन्योन्यताके प्रेम कोई वस्तु नहीं। यदि स्त्रीका धर्म पतिव्रत है तो पतिका धर्म भी पत्नीव्रत है। यह सम्बन्ध प्रेमका है, अधिकारका नहीं। श्रीरामको सीताके पातिव्रत तथा गुण-शीलकी ओर देखकर उन्हें त्यागनेमें बहुत ही असमञ्जस होता है—

> मेरे ही सुख सुखी सुख अपनो सपनहू नाहिं।
> मोहिनी गुन गोहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं॥

सचमुच 'राम-सीय-रहस्य'को तुलसीदासहीने अच्छी तरह समझा था। रामजीने हृदयहीनकी तरह बिना कुछ कहे सुने ही सहसा अपने मनसे ही उनका त्याग नहीं कर दिया, सीताकी सलाह लेकर ही उन्होंने ऐसा किया—

> दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि पूछी आय।

इस पदसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस प्रगाढ प्रेम तथा धर्मका सम्बन्ध इस प्रकार नहीं तोड़ा जा सकता जैसा कि अन्य कवियोंने वर्णन किया है। श्रीराम यदि सीताजीसे सलाह नहीं लेते तो सचमुच वे बड़े भारी दोषके पात्र समझे जाते।

फिर श्रीरामने लक्ष्मणको केवल सीता-त्यागकी ही आज्ञा नहीं दी, किन्तु उन्हें वाल्मीकिजीको सौंप आनेका काम भी सौंपा—

> बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ।

लक्ष्मणजी भी उन्हें केवल गंगा-तटपर छोड़ नहीं आये, वह उन्हें वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंपकर आते हैं—

> आये लखन लै सौंपी सिय मुनीसहिं आनि।

यद्यपि वाल्मीकिके पास छोड़ना रूप त्याग उतना निष्ठुर नहीं तथापि त्याग तो है ही। सीताजीको अवश्य ही बड़ा भारी आघात लगा और उन्होंने लक्ष्मणसे दीन होकर कहा—

> कृपानिधान कृपाल! निपटहिं डारबी न बिसारि।
> पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि॥

कितनी गहरी मार्मिक चोट है! पत्नीरूपसे न सही, राजधर्मके अनुसार एक तापसीके रूपमें तो सीता अवश्य ही पालनीय हैं, वह भी तो एक प्रजा है!

कालिदासने भी सीताके मुखसे यही कहलाया है—

> नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्
> स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
> निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं—
> तपस्वि सामान्यमवेक्षणीया॥

लक्ष्मणजी बड़े ही दुखी होते हैं, वे सोचते हैं, मैं ही सीताको सदा दुःख देनेका कारण हूँ, हरण भी मैंने ही कराया और अब वनवास भी मैं ही दे रहा हूँ।

गौने मौन ही बारहिं बार परि परि पाय ।
जात जनु रथ चोरकर लछिमन मगन पछिताय ॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यो कठिन कुघाय ।
दुसह साँसति सहनको हनुमान ज्यायो जाय ॥
हेतु हौं सियहरनको तब, अबहुँ भयो सहाय ।
होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय ॥
तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय ।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यौं अवध सुभाय ॥
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बाय ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ॥

वाल्मीकि उन्हें सादर आश्रममें रखते हैं, जानकीके आगमनसे वनमें आनन्द छा जाता है। अब लव-कुश-जन्मका समय होता है, उसी रात शत्रुघ्न भी आश्रममें पहुँचते हैं। वाल्मीकिजी लव-कुशके नामकरण आदि संस्कार करते हैं। बालक मुनि-बालकोंके साथ खेलते हैं। गुसाईंजीने सीताजीको यहीं राम-विरहमें छोड़ दिया है—

दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी सुखी सुत सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥

इससे पाठकोंको स्पष्ट हो गया होगा कि तुलसीदासजी-ने इस कथानकको किस प्रकार परिवर्तित कर दिया है।

उत्तरकाण्डके अन्तिम पद्योंमेंसे एकमें कैकेयीका पछतावा तथा दूसरेमें संक्षेपसे पूरे रामचरित्रका दिग्दर्शन करा गीतावली समाप्त की गयी है।

रामायणी कथा

(लेखक—पं० श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य एम० ए०, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन)

भारतकी वस्तु होनेपर भी अन्यान्य अनेक पदार्थोंकी भाँति संस्कृत-साहित्य भी अब केवल भारतमें ही सीमाबद्ध नहीं है; अति प्राचीनकालसे इसने कितने ही नद-नदी और पर्वत-समुद्रोंको लाँघ दूर दूरके द्वीपों और देश-समूहोंमें जाकर अपना कितना प्रभाव फैलाया है और आज भी फैला रहा है! कुछ समयसे इसने पाश्चात्त्य देशोंमें प्रवेश किया है। इसीसे आजकल केवल भारतवासी ही संस्कृत-साहित्यकी आलोचना करते हैं, केवल वही इसको समझ सकते हैं या इसपर केवल उन्हींका एकमात्र अधिकार है, ऐसी बात नहीं रही है। अब तो सारे जगत्‌में संस्कृत साहित्यपर आलोचना होने लगी है। इस आलोचनाका स्रोत अनेकमुखी बहने लगा है। अब इसको न तो रोका जा सकता है और न रोकना उचित ही है। नदीके प्रवाहमें कोई रुकावट न होनेसे जैसे वह कभी किसी जगहको बहा ले जाती और कहीं नयी जमीन निकाल देती है, इसीप्रकार संस्कृत-साहित्यकी वर्तमान आलोचनामें भी नये नये ध्वंस-निर्माणकी लीला चल रही है। ऐसा होना भी खूब स्वाभाविक है, परन्तु समय-समयपर कोई-कोई ध्वंस-निर्माण तो ऐसा विस्मय-कर आकार धारण कर लेता है जो कभी कल्पनामें भी नहीं लाया जा सकता। जैसे अक्षरका कोई सम्बन्ध न होनेपर भी घुणके छिद्रोंमें किसी किसीकी दृष्टिमें अक्षरोंकी सृष्टि हो जाती है, वैसे ही साहित्यालोचनामें भी कोई कोई समालोचक एक अद्भुत सृष्टि रच डालते हैं। इधर-उधरकी अनोखी-अनोखी बातें लेकर उनमें जोड़-तोड़ लगा कर वे ऐसी-ऐसी नयी बातें गढ़ डालते हैं और समय-समयपर ऐसी युक्तियोंका प्रयोग करते हैं, जिससे वह बात वैसे ही माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है। सम्भव है कि किसी-किसी स्थलपर सचमुच वह बात वैसी ही हो, परन्तु सभी जगह वैसी ही है, यह बात कभी स्वीकार नहीं की जा सकती।

एक प्रसिद्ध लेखकने बुद्धदेवकी जीवनीको सौर-जगत्‌का रूपक बताया है। किसीको महाभारतभरमें ज्योतिष-तत्त्वके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीखता। इस श्रेणीके भावुकोंसे रामायण भी नहीं बची है। कोई कहते हैं कि इसमें रूपकके द्वारा उत्तर-पथसे दक्षिण-पथमें आर्य-सभ्यताके प्रचारकी बात कही गयी है। कोई कहते हैं कि इसमें गूढ़ शब्दोंमें कृषिका वर्णन किया गया है। और भी अनेक बातें हैं—'आदिकाण्ड पीछेसे जोड़ा गया है, रामायणका प्रकृत आरम्भ अयोध्याकाण्डसे है, लङ्काकाण्डमें इसकी समाप्ति हो गयी है, उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं! सीतानिर्वासन और लक्ष्मण-वर्जन आदि कथाओंकी कल्पना पीछेसे हुई है।'

इन सब बातोंके सिवा यह भी सुना जाता है कि 'रामायणकी मूल कथा वाल्मीकिरामायणमें नहीं है, बौद्धोंका भी रामायण है। कौन कह सकता है मूलमें उसीको लेकर कुछ न्यूनाधिक करके वाल्मीकिरामायणकी यह कथा नहीं रची गयी है? जैनियोंको भी रामायण है इसके अतिरिक्त रामायण क्या एक थोड़ी ही है? अध्यात्मरामायण, अद्भुत-रामायण इत्यादि कितनी रामायणें हैं। भारतकी विभिन्न भाषाओंमें रामायणकी कहानियोंमें कितना भेद है! फिर जावाद्वीपमें भी रामायण है। कौन-सी ठीक है? सबकी आलोचना करनेपर शायद रामायणी कथाके मूलका कहीं पता लगे।'

वर्तमान आलोचना-प्रणालीमें इसप्रकार कितनी ही बातें पैदा हुई हैं सम्भवतः अभी और भी होंगी।

परन्तु यह सब थोड़े से पण्डितोंकी बातें हैं। पण्डितोंकी आलोचना परस्पर पण्डितोंके लिये ही है। भारतके आपामर जनसाधारणका इससे बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। वे इन आलोचनाओंकी कोई खोज-खबर नहीं रखते। उनकी दृष्टिमें रामायणका आकार कुछ दूसरा ही है। उनके सामने रामायणका स्थान सर्वथा स्वतन्त्र है। रामायण उनके जीवनका, समाजका और धर्मका आदर्श है। सुख-दुःख और सम्पद्-विपद्‌में रामायण उनको उज्ज्वल मधुर प्रकाशसे पथ दिखलाकर ले चलती है। रामायण उन्हें सान्त्वना देती है। रामायण उनके हृदयमें अविरल आनन्द और परम शान्तिकी धारा सींचती है। जीवनके प्रतिदिनके कर्त्तव्यको सामने रखकर रामायण उनकी परिचालना करती है। सच तो यह है कि भारतमें एक ओर रामायण तथा दूसरी ओर महाभारत है, इसीसे भारतके जनसाधारण मनुष्य हैं, नहीं तो ये पशु बन चुके होते। वेद-वेदान्त-दर्शनोंने भारतका इतना उपकार नहीं किया है, जितना रामायण और महाभारतने किया है। रामायण-महाभारत हैं, इसीलिये भारत भारत है!

मान लिया कि रामायणमें आदिकाण्ड पीछेसे जोड़ा गया है, अथवा रामायणके या रामायण-वर्णित दशरथ, राम-लक्ष्मण, भरत-सीता आदिकी कोई ऐतिहासिकता नहीं है। यह भी स्वीकार कर लें कि रामायण वाल्मीकिजीकी रचना नहीं है। कुछ भी हो या न हो, इतना तो सत्य ही है कि 'रामायणका आदिकाण्ड नामक किसी पुस्तकका एक अंश है। रामायण नामक एक ग्रन्थ है, और वह किसी एक भारतीयद्वारा ही लिखित है, तथा उसमें राम-लक्ष्मण आदिका एक चित्र है, एक भाव है।' बस, इतनेसे ही वह भारतके जनसाधारणकी वस्तु हो जाती है और वे उससे जो चाहते हैं सो पा जाते हैं।

भाव और रूप दो वस्तुएँ हैं। भाव प्राण है, रूप देह है। जिस चित्रमें सिर्फ कुछ उज्ज्वल रेखाएँ खिंची हैं, पर भावका विकास नहीं हुआ है, वह चित्र चित्र ही नहीं है। जिस काव्यमें कतिपय सुन्दर-सुन्दर शब्दोंका समावेश है, परन्तु भावकी व्यञ्जना नहीं है, वह कु-काव्य है, ठीक प्राणहीन देहकी भाँति वह सर्वथा निरर्थक है। काव्यका पाठक चाहता है भाव-रस। शब्द भाव और रसके वाहन है, इसीलिये वह शब्दको भी चाहता है। काव्यका विषय सभी समय ऐतिहासिक हो, इसके कोई माने नहीं हैं। ऐतिहासिक हो भी सकता है और नहीं भी। विषय कल्पित भी हो सकता है। इससे भावके स्फुरणमें कोई बाधा नहीं होती। भावके कार्यमें कोई क्षति नहीं होती। भाव आनन्दमय और शान्तिमय है, जिसके चित्तमें भावका उद्रेक होता है, उसीको वह आनन्द और शान्ति प्रदान करता है।

बड़े बड़े समालोचक और लेखक कहते हैं कि खीष्ट नामक पुरुष कभी कोई नहीं हुए। उनकी ऐतिहासिकताका कोई प्रमाण नहीं है। मान लिया, ऐसा ही है। खीष्टकी कोई रूप-मूर्ति कभी थी ही नहीं, परन्तु उनकी इस भाव-मूर्तिने तो कितने हृदयोंको पवित्र और उज्ज्वल बनाकर उन्हें शान्तिमय बना दिया है। हम तो भावमूर्ति ही चाहते हैं, वही हमें मुक्तिकी ओर ले जाती है।

राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि हमारे लिये एक-एक भाव हैं। राम, सीता इत्यादि नाम सुनते ही हमारे

मनमें किसी रूपकी आकृति नहीं होती। एक भावका उदय होता है। वह भाव परम उच्च, परम महान् और परम पवित्र है। उसके साथ यदि इतिहासका कोई सम्बन्ध न भी रहा तो इससे कोई हानि-लाभ नहीं होता।

मान लिया, इस भाव-व्यक्तिके चित्रको वाल्मीकिने नहीं खींचा, पर इससे क्या हानि है? हमारा सम्बन्ध है चित्रसे, कर्त्ता कोई भी हों, यह कोई ऐसी बात नहीं है। हम जब रामायण पढ़कर उसके भावोंमें तन्मय हो जाते हैं, तब वाल्मीकिके नामकी बात किसको याद रहती है। इसीसे भारतीय जनसाधारण इसको कोई विशेष बात नहीं समझते।

आदिकाण्डके 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं' इत्यादि कविता प्रथम श्लोक है अर्थात् इसीसे सर्वप्रथम ऐसे श्लोकोंकी रचना आरम्भ हुई, यह एक प्रसिद्धि है; यह भी प्रसिद्ध है कि यही श्लोक रामायण-रचनाका सूत्र हुआ था। भारतीय संस्कृतिकी एक प्रधान बात है 'अहिंसा', 'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि' 'किसी भी भूतको पीड़ा मत पहुँचाओ।' हम यदि विचार करके देखें तो हमें यह दिखायी देगा कि भारतवर्षकी साधनाका मूलमन्त्र है शरीर-मन-वाणी और जाति, देश, कालके निर्विशेषसे 'अहिंसा', 'किसीको भी पीड़ा न पहुँचाना।' साधनाके मार्गमें निषेध और विधान दोनों ही रहते हैं, कुछ करनेका निषेध होता है तो कुछ करनेके लिये विधि होती है, परन्तु इन दोनोंमें जो निषेधका पालन नहीं कर सकता, उससे विधिका पालन भी नहीं हो सकता। एक स्थूल दृष्टान्त लीजिये—जो परपीड़नका त्याग नहीं करता वह पर-उपकार नहीं कर सकता। इसीसे पहले आवश्यकता होती है निषेधकी तदनन्तर विधिकी। अहिंसा एक निषेध है। यह कहा जा चुका है कि समस्त साधनाओंका मूल अहिंसा है। मालूम होता है, इस अहिंसाको ही समग्र कल्याण-साधनाके पथमें प्रथम स्थान देकर आलोच्य कविताकी रचना की गयी है। इसीसे वह 'प्रथम' या 'नवीन' श्लोकके नामसे प्रसिद्ध है, अन्यथा इससे पूर्व ऐसा छन्दोबद्ध श्लोक था या नहीं, सो कुछ कहा नहीं जा सकता। अहिंसाके विपरीत हिंसाका क्या परिणाम होता है सो रामायणमें दिखलाया गया है। इसीलिये टीकाकारगण कहते हैं कि आलोच्य श्लोकमें काव्यार्थकी सूचना की गयी है। जिस न्यायसे इस श्लोकको प्रथम श्लोक कहा जाता है, ठीक उसी न्यायसे हम रामायणको भी 'आदि-काव्य' कह सकते हैं।

तुलसीकृत रामायण और उससे संसारका उपकार

(लेखक-श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुम' बी० ए०, एल-एल० बी०)

हिन्दी-साहित्यमें रामायण एक अपूर्व ग्रन्थ है। उससे अच्छे या उसके समान ही ग्रन्थ और भाषाओंमें भी कम निकलेंगे। हिन्दी-भाषा-भाषी स्त्री-पुरुषोंमें उसको यथोचित सम्मान प्राप्त है। अन्य भाषाके विद्वानोंकी दृष्टिमें भी, जिन्होंने रामायणका केवल अनुवादमात्र पढ़ा है, उसका स्थान बहुत ऊँचा है। भारतवर्षके अधिकांश भागमें तो यह ग्रन्थ प्रायः प्रत्येक घरमें विद्यमान है।

रामायणमें एक अपूर्व माधुर्य, भाव और जादू है। जो उसको एक बार पढ़ लेता है उसका चित्त उसको बार-बार पढ़नेके लिये ललचाता है। वह जितनी ही बार पाठ करता है उतना ही उसका आनन्द बढ़ता जाता है। यद्यपि कहीं कहीं ऐसे गूढ़ भाव हैं कि जिनका यथावत् ज्ञान अतिसूक्ष्म दृष्टिसे हो सकता है, तिसपर भी भाषा मधुर और सरल होनेसे पाठक उसको अपनी बुद्धिके अनुसार समझ ही लेते हैं। जैसी बुद्धिवाला उसको पढ़ता है उसको वैसा ही आनन्द आता है। इसमें कविकी साहित्यपारदर्शिता, रचना-चातुरी और विद्वत्ताका पूर्ण परिचय मिलता है।

सूक्ष्म विषयोंका इसप्रकार मधुर, सरल, सारगर्भित एवं अपूर्व कवितामें वर्णन करना किसी साधारण कविका काम नहीं था। यदि ऐसा होता तो हमको आज दिन रामायणकी टक्करके अन्य कितने ही ग्रन्थ देखनेको मिलते। तुलसीदासके समान कोई अब हिन्दी-साहित्यमें फिर जन्म लेगा या नहीं इस बातमें सन्देह है। धन्य है! उस महाकविको, जिसकी अमृतमयी वाणी करोड़ों नर-नारियोंके हृदयमें धर्म, भक्ति और ज्ञानकी प्रबल लहरें उठाती हुई प्रचार पा रही है। भविष्यमें भी जबतक हिन्दी भाषा

वर्तमान रहेगी तबतक उसके साहित्य-भवनपर तुलसीदासकी यशःपताका फहराती रहेगी।

रामायण हमारे प्यारे आर्यावर्तका प्राचीन इतिहास है। उससे हमें राजनीतिकी शिक्षा प्राप्त होती है। उसमें उपदेश भरे हुए हैं। वह एक उत्तम काव्य है। वह पग-पगपर हमको सीधे और सच्चे मार्गका दिग्दर्शन कराती है।

यदि सूक्ष्मदृष्टिसे रामायणके अन्यान्य विषयोंपर विचारकर प्रत्येकके विषयमें विस्तारपूर्वक लिखा जाय तो एक अलग ही ग्रन्थ तैयार हो सकता है। किन्तु अधिक न लिखकर प्रत्येक विषयके सम्बन्धमें हम दो-दो चार-चार बातें ही यहाँपर पाठकोंको सुनाते हैं।

इतिहास

इस ग्रन्थसे समस्त भारतवर्षका परिचय मिलता है। इससे पता लगता है कि उस समय हमारे देशमें वर्णाश्रमों-का शासन कितना ऊँचा था, गृह और गार्हस्थ्य-धर्मको स्त्री-पुरुष किस प्रकार पहचानते थे? तथा राजा और प्रजामें क्या सम्बन्ध था? सभी एक दूसरेके किस प्रकार शुभेच्छु रहते थे?

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

पाठको! ऐसे राजा आजकल आपको कितने दिखायी देते हैं जो निष्कपट-भावसे ऐसा कह सकते हों? श्रीरामचन्द्रजी इन शब्दोंको अपने संकटके समयमें कह रहे हैं। उनको अपने सुख-दुःखका इतना ध्यान नहीं है जितना कि अपनी प्यारी प्रजाका है। वे फिर भरतजीसे कहते हैं—

सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥

प्रजाकी भक्ति भी राम-वनवासके समय देखने योग्य है—

रामु चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरतनादू॥

प्रजा कह रही है—

जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई। सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई॥

बहुत समझानेपर भी प्रेमके कारण वे नहीं लौटते—

किए धरम-उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥

दूसरी जगह वे कहते हैं—

अछत राम राजा अवध मरिय माँगु सब कोय।

रामराज्यमें मनुष्योंकी स्थिति भी कैसी थी—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं ब्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिरीती॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥

× × ×

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य सब पंडित ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपटसयानी॥

× × ×

एक-नारि-ब्रत-रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति-हित-कारी॥

रामायणसे हमको उस समय जो प्रथाएँ आर्योंमें प्रचलित थीं वे भी मालूम होती हैं। जैसे जन्मोत्सव, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत, स्वयंवर, विवाहकी अनेक प्रथाएँ, राज्याभिषेक, वरदान, दाहक्रिया, अतिथिसत्कार, युद्धकी अनेक प्रथाएँ, सती होना आदि। 'रामायणमें आर्योंकी प्रथाएँ' इसी शीर्षकसे बहुत कुछ लिखा जा सकता है। किन्तु पाठक स्वयं रामायणमेंसे इन प्रथाओंको आसानीसे जान सकते हैं।

इस ग्रन्थमें रणभूमिकी घटनाओंका भी वर्णन है—

दाहे महीधर-सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलयके बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

× ×

संधानि धनु सरनिकर छाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥

लंकाकाण्डमें अधिकांश मार-काटका ही वर्णन है। रामायणसे श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वके भी कई राजा-महाराजाओं और ऋषियों मुनियोंका हाल मालूम होता है। जैसे चित्रकेतु, शिवि, हरिश्चन्द्र, कश्यप, दधीचि, जमदग्नि आदि।

उस समय ऋषि और मुनि अपने तपोबलसे क्या नहीं कर सकते थे? श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीसे कहते हैं—

तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥

भरतजी वशिष्ठजीके विषयमें कहते हैं—

गुरु बिबेकसागर जग जाना। जिनहिं बिस्व कर बदर समाना॥

उस समय शकुन आदिपर भी लोगोंका पूर्ण विश्वास था। इसका उल्लेख रामायणमें जगह-जगह किया गया है। यथा—

'राम सीय तनु सगुन जनाये। फरकहिं मंगल अंग सुहाये॥'

'सूर्पनखहिं आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥'

'जब अति भयो बिरह उर दाहू, फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥'

'असकुन होन लगे बिधि नाना। रोवहिं बहु सृगाल खर-स्वाना॥'

अभी खोजनेसे रामायणमें और भी कई ऐतिहासिक बातें मिल सकती हैं।

राजनीति

यद्यपि तुलसीदासजीको राज काजकी बातोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था, वह धर्मोपदेशकमात्र थे। तिसपर भी रामायणमें उनके राजनीति सम्बन्धी उच्च कोटिके विचार हमको कई स्थानोंमें मिलते हैं। इसीसे मालूम होता है कि उनकी दृष्टि राज-व्यवस्थापर भी थी। नीचे इस विषयमें उनके कुछ विचार दिखाये जाते हैं। वे मन्थरासे कहलवाते हैं—

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥

किसी किसीका कहना है कि तुलसीदासजीकी इस उक्तिका प्रभाव हमलोगोंपर बहुत बुरा पड़ा है और उनको ऐसा नहीं कहलवाना चाहिये था, किन्तु ऐसा कहनेवाले यह भूल जाते हैं कि ये शब्द एक कुटिल, दुष्ट और नीच दासीसे तुलसीदासजीने कहलवाये हैं न कि किसी बुद्धिमान् और आदर्श पुरुषसे।

आगे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

'रहहु करहु सबकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥

जासु राज प्रिय-प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक-अधिकारी॥

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखन भे ब्याकुल भारी॥'

वाल्मीकिजीसे रामचन्द्रजी रहनेके लिये स्थान पूछते हुए कहते हैं—

मुनि तापस जिन तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

रामचन्द्रजी सुमन्तको विदा करते हुए कहते हैं—

कहब सँदेस भरत के आए। नीति न तजिअ राज-पद पाए॥

पालेहु प्रजहिं कर्म मन बानी। सेवहु मातु सकल सम जानी॥

आगे वशिष्ठजी कहते हैं—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

गुह निषादको देखिये! वह भरतजीका आगमन सुन शंका करता हुआ कहता है—

भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवन हानी॥

तुलसीदासजीने राज-मदका उल्लेख भी कई स्थलोंपर किया है। वे जानते थे कि इस रोगसे कई राजा ग्रस्त होकर राजनीतिको भूल जाते हैं, जिसका परिणाम उनके नाशका कारण होता है। यथा—

'कही तात तुम नीति सुहाई। सबते कठिन राज-मद भाई॥'

'भरतहिं होइ न राज-मद, बिधि हरि हर पद पाय।

कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि, छीर-सिन्धु बिनसाय॥'

'सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राज-मद दीन्ह कलंकू॥'

राजनीतिके अनुसार सुराज्यकी महिमाका गान भी तुलसीदासजी जगह जगह करते हैं। यथा—

'जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥'

'अगम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥'

कोल-किरातोंनकके मुँहसे गुसाईंजी कहलवाते हैं—

रामकृपा निपट निबाजा। परिजन प्रजा चहिय जस राजा॥

चाहे कोई भी कार्य हो राजाको उसे प्रत्येक जाति और सम्प्रदायके अगुओंके मतके अनुसार करना चाहिये।

'गुरु-पद-कमल प्रनाम करि बैठे आयसु पाइ।

बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥'

'भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि।

करब साधुमत लोकमत नृप नय निगम निचोरि॥'

ये उदाहरण सिर्फ अयोध्याकाण्डसे लिये गये हैं। अभी इसीसे अथवा अन्य काण्डोंसे सैकड़ों उदाहरण लिये जा सकते हैं।

उपदेश

रामायणमें पग-पगपर हमको उपदेश मिलते हैं। यहाँ-पर उनका थोड़ा-सा दिग्दर्शनमात्र किया जाता है। यथा—

(१) विद्वानों और गुरुओंका आदर—

'मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयेउ लै बिप्रसमाजा॥'

'गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ नायउ पद माथा॥'

(२) प्रतिज्ञा—

'रघु-कुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई॥'

(३) पिताका पुत्रपर प्यार—

सब दुख दुसह सहावहु मोहीं । लोचन-ओट राम जनि होहीं ॥

(४) माता-पितामें भक्ति—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥

(५) स्त्रीकी पतिपर प्रीति—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुरराजू । पति-बिहीन सब सोक-समाजू ॥
प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक समान ॥

(६) सासकी पतोहूपर प्रीति—

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहेऊँ ॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली । सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥

(७) सौतेली माका प्रेम—

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

× × ×

जौं न रामु बन रहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू ॥

(८) संगतिका परिणाम-

रामतिलक जौं साँचेहुँ काली । माँगु देउँ मनभावत आली ॥

× × ×

जो बिधि जनम देइ करि छोहू । होहिं राम-सिय पूत-पतोहू ॥

ऐसा कहनेवाली कैकेयी कुटिल मन्थरासे बहकायी जानेपर कहती है—

होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर-अजसु नृप समुझिअ मन माहिं ॥

गुसाईंजी कहते हैं—

को न कुसंगति पाय नसाई । रहै न नीच मते चतुराई ॥
अतिहि सुसील कैकई रानी । दुष्ट संग ते मति बौरानी ॥

और —

सठ सुधरहिं सतसंगति पाए । पारस परस कुधात सुहाए ॥

(९) बड़े भाईपर प्रेम—

गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥
कानन करहु जनमभर बासू । इहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥

(१०) मित्रता—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥

(११) अधर्म—

जे अघ मातु पिता गुरु मारे । गाइ गोठ महि सुर-पुर जारे ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥

× × ×

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं । पिसुन पराय-पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । बेद-बिदूषक बिस्वबिरोधी ॥
लोभी लम्पट लोलु लबारा । जे ताकहिं पर-धन पर-दारा ॥

× × ×

जे नहिं साधुसंग अनुरागे । परमारथ-पथ-बिमुख अभागे ॥
तजि श्रुति-पंथ बामपथ चलहीं । बंचक बिरचि बेष जग छलहीं ॥

(१२) नारी-धर्म—

करेहु सदा संकर-पद पूजा । नारि-धर्म पतिदेव न दूजा ॥
अमित दानि भर्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अतिदीना ॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक ब्रत नेमा । काय बचन मन पतिपद प्रेमा ॥
पतिबंचक पर-पति-रति करई । रौरव नरक कलपसत परई ॥

(१३) सेवकका धर्म—

श्रीरामचन्द्रजीको अपनी सेवासे सन्तुष्ट करके हनुमानजी माँगते हैं—

नाथ भगति तव अति अनपायनि । देहु दयाकरि सिव-मन-भावनि ॥

(१४) छोटे भाईपर प्रीति—

अस बिचारि जिय जागहु ताता । मिलहिं न जगत सहोदर-भ्राता ॥

(१५) पतिका स्त्रीको उपदेश—

आयसु मोरि सासु-सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥

(१६) घरकी फूटका परिणाम विभीषण अच्छीतरह दिखाता है।

ऐसे उपदेशोंके अतिरिक्त और फुटकर उपदेश भी बहुतायतसे मिलते हैं। उदाहरण—

'धर्म न दूसर सत्य समाना । आगम-निगम-पुरान बखाना ।'
'दामिनि दमकि रही घन माहीं । खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं ।'
'बरषहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बुध बिद्या पाये ।'
'बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे । खलके बचन सन्त सह जैसे ।'

'छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई।'
'महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी।'
'चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी।'
'कादर मन कहँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।'
'सठसन बिनय कुटिलसन प्रीती। सहज कृपनसन आरत नीती।'
'क्रोधिहिं सम कामिहिं हरिकथा। ऊसर बीज बये फल जथा।'

'फूलै फलै न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम।'

'कौल कामबस कृपण बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति बूढा।'
'सदा रोगबस सन्तत क्रोधी। राम बिमुख श्रुति संत बिरोधी।'
'तनुपोषक निन्दक अघखानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी।'

उत्तम काव्य

कविता—मर्मज्ञ पुरुषोंके लिये रामायण एक बड़ा आनन्ददायक ग्रन्थ है। जिस काव्यमें अलङ्कार, व्यङ्गकी प्रधानता, रस और माधुर्य होता है, वह काव्य उत्तम कहा जाता है। रामायणमें आदिसे अन्त तक ये सब भरे पड़े हैं।

अलङ्कार तीन प्रकारके होते हैं। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार।

शब्दालङ्कारमें किसी शब्दके बदले उसी अर्थका दूसरा शब्द रख देनेसे काव्यके नियमके अनुसार शुद्ध होनेपर भी वह चमत्कार नहीं रहता। यथा—

'तेहि कारन आवत हियहारे। कामी काक बलाक बिचारे।'
'झलका झलकत पाँयन कैसे। पङ्कज कोस ओसकन जैसे।'

इनमें यदि काक या बलाक अथवा कोस या ओसके बदले यदि कोई दूसरा शब्द रख दिया जावे तो वह चमत्कार नहीं रहता। शब्दालङ्कार आठ प्रकारका माना जाता है।

अर्थालङ्कारमें शब्द पलटनेसे चमत्कारमें कोई त्रुटि नहीं आती। यथा—

'सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिं सभीत देत जयमाला।'

इसमें यदि 'जलज'के बदले 'कमल' और 'ससिहिं'के बदले 'विधुहिं' रख दें तो चमत्कार नहीं जाता। अर्थालङ्कार-को १०० अथवा इससे भी अधिक प्रकारका मानते हैं। किन्तु कवियोंका मत है कि इन सबमें मुख्य उपमालङ्कार है और अन्य अलङ्कार उसीके भिन्न भिन्न रूप मात्र हैं।

कालिदास उपमा देनेमें श्रेष्ठ माने जाते हैं, परन्तु तुलसीदासजीकी उपमाएँ भी बड़ी ही अनूठी हैं। यथा—

'अरुन-चरन-पङ्कज-नख-जोती। कमल-दलन्हि बैठे जनु मोती।'
'डगइ न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।'
'मन मलीन तन सुंदर कैसे। बिष-रस भरा कनक घट जैसे।'
'जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई।'

उभयालङ्कार—एकसे अधिक अलङ्कारोंके सम्मेलनको उभयालङ्कार कहते हैं। यथा—

कर्म बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात॥

इसमें अनन्वय (अर्थालङ्कार) और अनुप्रास दोनों सम्मिलित हैं। कविलोग उभयालङ्कारके भी भेद और उपभेद मानते हैं।

व्यङ्गकी प्रधानता—

'चरन-पीठ करुनानिधानके। जनु जुग जामिक प्रजाप्रानके।'
'गुरु बिबेकसागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व कर-बदर समाना।'

रामायणसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रस—कविलोग इसके ९ भेद मानते हैं। कोई-कोई भक्ति और वात्सल्यको भी सम्मिलित करके ११ भेद मानते हैं। यथा—

(१) वीर—

'सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला।'
'देखि न जाय कपिनके ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा।'
'धावहिं गनहिं न औघट घाटा। परबत फोरि करहिं गहि बाटा।'

(२) करुण—

'मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी।'
'हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।'

(३) शृङ्गार—

'एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनाये।'

(४) हास्य—

'देखि सिवहिं सुर तिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।'

(५) भयानक—

'लागत अवध भयानक भारी। मानहुँ काल रात अँधियारी।'

(६) अद्भुत—

'रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू।'

(७) बीभत्स—

जोगिनि भरि भरि खप्पर साँचहिं। भूत पिसाच बिबिध बिधि नाचहिं॥

(८) रौद्र—

'पुनि सकोप बोले जुवराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥'

'जो सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दुहाई॥'

(९) शान्त—

दीप-सिखा-सम जुवति जन मन जनि होसि पतङ्ग।
भजहिं राम तजि काममद करहिं सदा सतसङ्ग॥

(१०) भक्ति—

कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं जिमि प्रिय दाम।
ऐसे हे कब लागिहौ तुलसीके मन राम॥

(११) वात्सल्य—

मोरे भरत राम दोउ आँखी। सत्य कहौं करि संकर साखी॥

रहा माधुर्य, सो इसके लिये उदाहरणकी आवश्यकता नहीं। इसका तो रामायणभरमें स्रोत बह रहा है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि रामायणमें ऐतिहासिक और राजनीतिक बातें हैं। उसमें अच्छे अच्छे सारगर्भित उपदेश हैं और वह एक उत्तम काव्य है। इसके अतिरिक्त उसमें और भी समाज, शास्त्र, धर्म-नीति, पतितोद्धार, दण्ड-नीति आदि सभी विषयोंकी अनेक बातें हैं। जो उदाहरण इस लेखमें दिये गये हैं उनमें कहीं कहीं इनकी भी झलक दिखायी पड़ेगी। सारांश यह कि इस ग्रन्थमें एक ही जगह तुलसीदासजीने हमारे लिये कई अच्छी अच्छी सामग्रियाँ एकत्र करके रख दी हैं। रामायण लिखकर उन्होंने जो संसारका उपकार किया है वह अकथनीय है।

वन्दौं सबहिं रामके नाते

(लेखक—श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' बी० ए०)

विश्वकी विविध विषमताओंमें एक परम रहस्यकी अद्भुत लीला चरितार्थ हो रही है। जीवनके चढ़ाव और उतारमें एक प्रच्छन्न प्रवाह अबाध गतिसे बहता चला जा रहा है। सुख और दुःखके मूलमें बसनेवाली अन्तर्धाराको वाह्य विषमता स्पर्शतक नहीं कर सकती। जीवन और मृत्युको प्रेरित करनेवाली मानव-हृदयकी अन्तर्ज्योतिको जगत्‌का निखिल अन्धकार प्रभावित नहीं कर सकता। इस विविध-रस विश्वकी तहमें 'एक-रस' ही निरन्तर प्रवाहित हो रहा है जहाँ जीवनकी जटिलता, विषमता तथा विरोध पहुँच नहीं पाते। हमारे क्रान्तदर्शी महर्षि कवियोंने इसी ज्ञानकी मूल-आभ्यन्तरिक ज्योति, हृदयकी अन्तर्धारा, तथा परदेके भीतरकी एक अनुपम छविके आलोकपर बे-सुध होकर प्राणोंका उपहार लुटाया था। वाल्मीकि और व्यासने, तुलसी तथा सूरने, गेटे तथा होमरने, शेक्सपीयर तथा शैलीने, नहीं-नहीं, विश्वके सभी अमर कवियोंने 'भीतर' पैठकर 'रस' का पान किया था और इसी आत्मोन्मादके व्यतिरेकमें बे-सुध हो, जीवन और मृत्युसे ऊपर उठकर आनन्दकी वंशी फूँकी थी! इस आनन्द-प्रवाहके एक घूँटसे विश्वकी आतुर पिपासा शान्त हो गयी; इस अतुल छविकी एक झाँकीसे जगत्‌की तृषित आँखें जुड़ा गयीं!

विश्वके इस विराट् अभिनयका एक ही नायक है। जगत्‌के इन नाना नाम और रूपोंमें एक ही नाम और एक ही रूप है! दुनियाँके इन असीम स्वप्नोंकी तहमें एक ही सत्य है, एक ही चिरन्तन प्रवाह है! विश्वके यावत् पदार्थ 'उसी' के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं, लालायित हैं, और सभी वस्तु 'उसी' एक परम वस्तुके साथ सम्बन्ध चरितार्थ कर रही हैं। विश्वको असत्य, प्रवञ्चना, अविवेकादिपूर्ण मानकर इसके प्रति विरक्ति उत्पन्न करना संशयवाद (Scepticism) ही के नामसे पुकारा जायगा। परमात्माको विश्वकी विविध लीलाओंसे परे मानकर तथा इस जगत्‌को परमात्मासे रहित मानकर ज्ञान और विवेककी शुष्क खोजमें जीवन भले ही खपा दिया जाय परन्तु उस शुष्कतामें मानव-हृदयको रुचिर शान्ति और अतुल आनन्द तथा उत्फुल्लताका आभास भी नहीं मिल सकता! घृणा, विरक्ति तथा उदासीनता किससे करें? इस 'मिथ्या' जगत्‌से? अपना 'घर' छोड़ देनेपर परमात्माका घर कहाँ मिल सकता है? क्या अपने ही घरको 'उस' का घर बनाकर उसीके दिव्य आलोकसे अपने अन्धकारपूर्ण अन्तस्तलको आलोकित न कर लें? विश्व-नाटकके

अधिनायककी निखिल लीलासे आँखें मूँदकर 'उसे' हम कहाँ देख सकते हैं ?

चराचरकी सारी वस्तुएँ केन्द्रोन्मुख हो उसी 'एक' में लय होना चाहती हैं, अपने अन्तरमें उसी 'एक' के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं। हमारे मनीषी, परिभूः स्वयम्भू कवियोंने सृष्टिकी इस 'व्याकुलता', इस 'पिपासा,' इस आन्तरिक 'क्षुधा' को अपने भीतर अनुभव किया और सभी वस्तुओंमें उसी एक लीलामयकी अद्भुत अपार लीला देखी। उनका जीवन साधना एवं चिन्तनकी लीलाभूमि था। वे अपने भीतर विश्वको तथा विश्वके भीतर अपनेको देखना जानते थे। इस रहस्यके मूलमें बसनेवाले सनातन-सम्बन्ध (Eternal Contact) को उन्होंने भलीभाँति देखा एवं सुना और इस लीला-माधुरीपर अपनेको न्योछावर कर दिया, आत्म-विस्मृत हो निराकारमें अपने साकार स्वरूपको लय कर दिया !

जिसप्रकार इस विराट् विश्वके रंगमञ्चका नायक एक सर्वव्यापी परमात्मा है, उसी प्रकार रामायणरूपी नाटकके नायक भगवान् रामचन्द्र हैं और जिस भाँति विश्वके यावत् पदार्थ उसी 'एक'से अपना सम्बन्ध चरितार्थ कर रहे हैं उसी भाँति रामायणमें आये हुए सभी पात्रोंका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार रामचन्द्रसे है ! 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—कहकर कवि या भक्तको शान्ति नहीं मिलती; वह तो मन और वचनसे अगम्य उस परमरूपको भी अपनी कल्पनासे चित्रित कर ही डालता है और विश्वको इस रूपकी सुषमामें अपार शान्ति तथा अतुल आनन्द मिलता है। विश्व अपनी सुन्दरताके कारण आकर्षक नहीं प्रत्युत इसलिये है कि इसकी सुन्दरतामें एक अव्यक्त परम-रूपकी सुन्दरता प्रतिभाषित हो रही है। इसकी क्षण-भङ्गुरताके परदेमें अमरत्वकी मधुर क्रीड़ा हो रही है। एक बार परदा उठाइये—आँखें अघा जायँगी उस छविको देखकर ! 'घूँघटका पट' खोल देने पर आकर्षणकी वारुणी किसे नहीं मोह लेती ! परदे-तरकी सुन्दरीको देख लेनेपर विश्वकी सारी शोभा फीकी मालूम होने लगती है ; जिन नयनोंमें 'वह छवि' बसती है वहाँसे और छवि लज्जित तथा कुण्ठित हो सिहर-सिहर अपने प्राणोंको समेटने लगती है। उस मस्तीमें, उस उन्मादमें जो आनन्द है, जो उल्लास है उसे दुनियाँ क्या समझ सकती है ? एक बार उस 'रस' की एक घूँट पी लेनेपर जन्म-जन्मान्तर खुमारी नहीं मिटती ! इसके बाद नीरस-जैसी कोई चीज ही नहीं रह जाती——एकरस, एक राग, एक तान, एक रूप—!

यह जगत् मिथ्या कैसे ? यह तो 'सिया-राम-मय' है, यह एक आर्ष-कविता है, एक अनन्त संगीत है, जिसकी माधुरी पीनेके लिये अपनेको गँवा देना होता है। इसकी कीमत देनेके लिये कितने तैयार हैं ? अपनी दुनियाँ मिटा-कर, अपनी सीमामय परिधिकी रेखाको मिटाकर इस विराट् मिलनमें जहाँ केवल 'सीताराम' ही हैं, सम्मिलित होनेके लिये कितने तैयार हैं ? दर्द-दीवानी मीराने इस रसको पीया था, कबीरने, सूरने और तुलसीने पीया था ! परन्तु तुलसी-का रस बहुत ही मधुर है; सूरकी बेहोशी और मीराकी आत्मविस्मृति जनसाधारणकी पहुँचसे बाहरकी है, कबीरका ब्रह्मवाद बहुत ही कठिन है, पर तुलसीकी साधना, तन्मयता तथा अनुभूतिको हम सभी थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं और अपने जीवनको संयमके वेष्ठनमें इस भाँति परिचालित कर सकते हैं, इस 'राजमार्ग' पर इतनी सुगमता और सुख-से चल सकते हैं कि 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति' में सन्देह होने लगता है। मीरा और सूर हमें इस पार्थिव आधारसे बहुत शीघ्र ऊपर उठाकर उस परमात्म-भावमें लय कर देते हैं, जहाँ अनन्त शीतलता और अमर शान्ति है परन्तु उस उन्मादको जीवनमें उतारना जरा कठिन है पर तुलसीदास हमारे हृदयको धीरे-धीरे उदार और उन्नत बनाते हुए 'रस'के उस महासागरमें हमारे क्षुद्र बिन्दुको सदाके लिये लय कर देते हैं—जहाँसे लौटनेकी कोई कल्पनातक नहीं कर सकता—जहाँ हमारा 'स्वार्थ' विश्वके कण-कणमें बिखर जाता है और सर्वत्र उसी एक रूपकी अपार शोभा देख हम आनन्द-जनित उन्मादमें गा उठते हैं—

'बन्दौं सबहिं रामके नाते'

रामायणसे स्वार्थपरताका नाश

रामायणके द्वारा भारतवर्षसे स्वार्थपरताका दोष जितना दूर हुआ है, उतना किसी भी नीतिवान्, धर्मविद्, समाजसुधारक, राजपुरुष और राजाके द्वारा नहीं हो सका।

—बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

(श्रीअयोध्यापुरी)

अयोध्या नगर दृश्य (१)
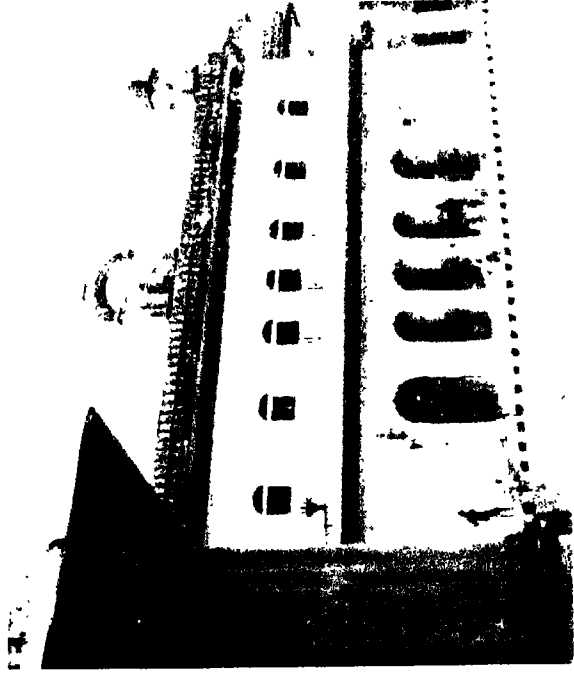
अयोध्या दृश्य (२)

मन्दिर कनक भवन (बाहरी दृश्य)
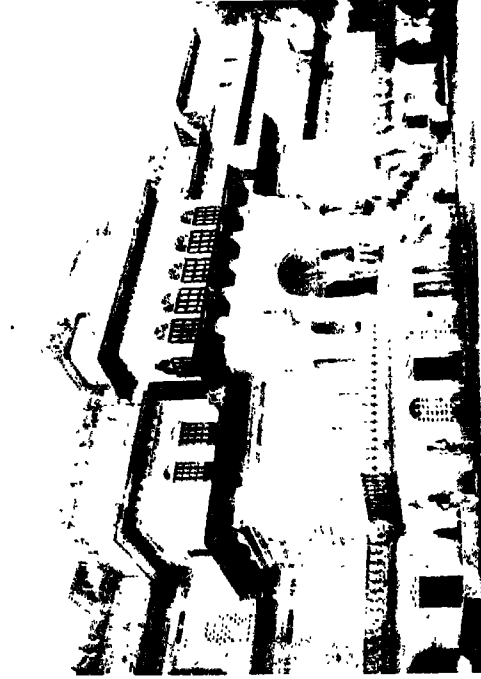
मन्दिर कनकभवन भीतरी दृश्य

(श्रीअयोध्यापुरी)

मन्दिर श्रीनागेश्वरनाथ

हनुमान गढ़ी (१)

मन्दिर शीशमहल

मन्दिर हनुमान गढ़ी (२)

श्रीवाल्मीकीय सुन्दरकाण्डम्

(लेखक—श्रीहरिस्वरूपजी जौहरी एम० ए०,)

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा ।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥

सुन्दरकाण्डकी सुन्दरता नामसे ही प्रकट है, जैसा नाम वैसा ही गुण । कथाकी सुन्दरता कविकी कवित्वशक्तिकी पराकाष्ठा प्रकट करती है । वैसे तो वाल्मीकिजीका वर्णन तथा उपमाएँ सभी जगह अत्यन्त रोचक हैं, पर सुन्दरकाण्डमें जो जादू भरा है, वह अकथनीय है । इस लेखका अभिप्राय सुन्दरका सुन्दरत्व दर्शाना है ।

बहुत मनन करनेके पश्चात् सुन्दर-काण्डका अलौकिक सुन्दरत्व विशेषतः इन कारणोंसे प्रकट होता है—

(१) सुन्दरकाण्डकी कथा एक भक्त-गाथा है । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमसेवक श्रीहनूमान्जीके पराक्रमका आद्योपान्त वर्णन है,जिससे सर्वत्र वीररसका समुद्र उमड़ रहा है ।

(२) भगवान् रामकी प्रियतमा जगज्जननी महारानी सीताकी अति शोचनीय दशाका वर्णन कविने ऐसा मर्मस्पर्शी किया है कि पाषाण-हृदय भी बिना आँसू बहाये नहीं रह सकता । करुणारसका समुद्र उमड़ चला है !

(३) श्रीसीता महारानीके पातिव्रत तथा सौन्दर्यादि गुणोंका अनुपम चित्र बड़ी ही विचित्रताके साथ चित्रित किया गया है ।

(४) महारानीजीका रावणके प्रलोभन-प्रपञ्चका खण्डन करना तथा उसको पवित्र हितकर उपदेश देना,रावण-सरीखे दुष्ट-व्यक्तिके लिये महान् शिक्षाप्रद है !

(५) श्रीवाल्मीकि महाराजकी कवित्व-शक्तिका अनुपम परिचय लङ्का, चन्द्रोदय, पुष्पकविमान, अशोक-वाटिका, सीता,अशोक-वाटिका-विध्वंस तथा लङ्का-दहन आदिके वर्णन-प्रसंगोंमें विशेषरूपसे मिलता है ।

वाल्मीकीय-सुन्दरकाण्डकी कथा श्रीतुलसी-सुन्दरसे निराली है, अतएव वाल्मीकि-रामायणसे अनभिज्ञ पाठकोंके लिये संक्षेपमें सुन्दरकाण्डकी कथाका रसास्वादन करा देना आवश्यक है ।

महारानी सीताकी खोज एवं लङ्का-दहनमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् स्वयं श्रीहनूमान्जीने अङ्गदादि वानरोंको (वा० ५।५८) जो आत्म-कथा सुनायी है । वही कथा यहाँपर संक्षिप्तरूपसे उद्धृत की जाती है—

जाम्बवान्के पूछनेपर श्रीहनूमान्जी महाराज कहने लगे—

'आप लोगोंके सामने मैं इस महेन्द्राचलके शिखरसे उड़ा । जाते ही मार्गमें एक बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ । मैंने अपने रास्तेको रोककर खड़े हुए अत्यन्त सुन्दर और काञ्चनमय शिखरयुक्त एक पर्वतको देखा । यह देखकर मैंने अपनी पूँछसे उसके ऊपर इतने जोरसे आघात किया, जिससे उसके शिखरके हजारों टुकड़े हो गये । इसपर वह महागिरि मुझसे बोला,'हे पुत्र ! मैं तुम्हारा चचा मैनाक, श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करनेके लिये उद्यत हूँ ।' मैं उससे अपना अभिप्राय प्रकट कर,जानेकी अनुमति ले आगे बढ़ा ।

तदनन्तर मैंने नागमाता सुरसाको देखा, वह तो मुझे खानेको ही उद्यत थी । मैंने कहा,'मैं सीताजीका पता लगाकर तुम्हारे मुखमें चला आऊँगा,' पर वह न मानी । उसने मुख बढ़ाना शुरू किया, मैंने भी अपना शरीर बढ़ाना आरम्भ किया, अन्तमें मैं अपने विशाल शरीरको अँगूठेके बराबर छोटा बना उसके मुखमें प्रवेशकर उसी क्षण बाहर निकल आया । तब वह मुझपर बहुत प्रसन्न हुई ।

मैं आगे बढ़ा, इतनेमें ही मेरी छायाको किसीने पकड़ लिया । सिंहिका-नाम्नी राक्षसी मुँह फैलाकर मुझे खानेको दौड़ी । पहले तो मैंने अपना शरीर खूब बढ़ाया, फिर झट छोटा बन झपटकर उसका कलेजा निकाल आकाशमें चला आया । राक्षसीका हृदय फट गया और वह मर गयी ।

तब बहुत दूर चल कर सन्ध्या-समय मैं लङ्कापुरी पहुँचा । वहाँ लङ्का-नाम्नी एक राक्षसी मुझे मार डालनेके लिये मेरे सामने आयी । उस राक्षसीको मैं बायें हाथके घूँसेसे परास्तकर आगे बढ़ा ।

मैं सारी रात जानकीजीकी खोजमें भटकता रहा । रावणके रनवासमें कुछ भी पता न लगा । तब मैं शोक-

सागरमें डूबने लगा, इतनेमें मुझे एक अशोक-वृक्षोंका बगीचा दिखायी दिया। मैं कूदकर वहाँ पहुँचा और श्रीसीतामहारानीजीको बैठे देखा। वह घोर राक्षसियोंसे घिरी हुई उनसे बार-बार डाँटी-डपटी जा रही थीं। उनका शरीर श्रीरामचन्द्रजीकी वियोग-चिन्तासे कृश एवं मलिन हो गया था। मैं शिंशुपाके वृक्षपर बैठ गया। इतनेमें मैंने वहाँ महाबली रावण और उसकी स्त्रियोंको आते देखा। रावणने आकर सीताको बहुत कुछ समझाया। सीता-महारानीने अत्यन्त क्रुद्ध हो रावणको निरुत्तर कर दिया। इसपर वह दुष्ट उनको मारनेके लिये हाथ उठाने लगा तो मन्दोदरी-नाम्नी स्त्री बड़े ही कौशलसे रावणको समझा-बुझाकर ले गयी।

इसके उपरान्त सब राक्षसियाँ सीताजीको क्रूर वचन कह धमकाने लगीं, किन्तु, जानकीजीने उन वचनोंकी तिनके-जितनी भी परवा नहीं की। उनका डराना-धमकाना सब व्यर्थ हुआ। इसके बाद वे सब लेट गयीं। सीताजी अत्यन्त चिन्तित थीं। त्रिजटा-नाम्नी राक्षसी अपना विचित्र स्वप्न सुनाकर सबसे कहने लगी कि, 'खबरदार! अबसे सीताको डराना धमकाना और उसका चित्त दुखाना बिल्कुल छोड़ दो। अन्यथा हमारा कुशल नहीं है।'

अब सीताजीसे वार्तालाप करनेकी मेरी इच्छा बढ़ने लगी। तब मैंने इक्ष्वाकु-वंशियोंकी प्रशंसा करना शुरू किया। जिसे सुनकर सीताजी मुझसे नाम-धाम पूछने लगीं। मैंने अपना सब परिचय देकर उन्हें श्रीरामकी अँगूठी सहिदानीरूप दे दी। फिर पूछा कि, 'देवी! मुझे क्या आज्ञा है? कहिये तो मैं आपको श्रीरामचन्द्रजीके पास ले चलूँ।' इसपर जनक-नन्दिनी सीताजी कहने लगीं, 'नहीं, मैं इस प्रकार जाना नहीं चाहती। यदि श्रीरामचन्द्रजी रावणका वधकर मुझे ले जावें तो अच्छा हो।' पश्चात् उन्होंने मुझे अपनी चूड़ामणि सहिदानी-स्वरूप देकर कहा, 'हे हनुमान! तुम मेरा सब हाल रामजीसे कहना और ऐसा करना, जिससे श्रीराम-लक्ष्मण यहाँ शीघ्र आवें। मेरे जीवनकी अवधि केवल दो मास है।'

ऐसे करुण-वचन सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने क्रोधमें भर और महारानी सीतासे बिना माँग अशोक-वाटिकाको विध्वंस करना शुरू कर दिया। इसकी सूचना रावणको मिली। अस्सी हजार किङ्करनामधारी राक्षस मुझे पकड़ने आये, मैंने सबको मार डाला। जो बचकर भाग गये, उन्होंने सब वृत्तान्त रावणसे कह सुनाया। तब जम्बुमाली आया, मैंने उसको भी सेनासमेत मार गिराया। मन्त्री-पुत्र भी मेरे सामने आया, उसे भी मैंने मार डाला। इसके पश्चात् रावणका पुत्र अक्षयकुमार आया, मैंने उसको भी यमलोक भेज दिया। तब इन्द्रजित् आया, वह मुझे पकड़नेमें अपनी असमर्थता देखकर मुझे ब्रह्मास्त्रमें बाँधकर रावणके सामने ले गया। मैंने उससे श्रीरामचन्द्रजी तथा उनकी सुग्रीवके साथ मित्रता आदि सभी बातोंको कह सुनाया और सीताजीको लौटा देनेके लिये उसे बहुत कुछ समझाया, इसपर क्रुद्ध होकर उसने मुझे मार डालनेकी आज्ञा दी, उसके भाई विभीषणने मुझे बचानेके लिये प्रार्थना की। अन्तमें दूत-वध अनुचित समझकर मेरी पूँछ जलानेकी व्यवस्था की गयी, पूँछमें आग लगा दी गयी और समस्त नगरके राजमार्गोंमें मुझे घुमा-घुमाकर मेरे अपराधकी घोषणा की गयी। सब देख-भालकर मैंने अपने शरीरको छोटा बना लिया और सहजहीमें सब बन्धन तोड़ डाले। फिर मैंने नगरमें आग लगाना शुरू किया। नगर तो जला दिया पर मेरे मनमें बड़ा भय पैदा हो गया, मैंने सोचा कि कहीं मेरी इस मूर्खतासे माता सीता तो नहीं जल गयीं? इतनेमें मैंने चारणोंको कहते सुना कि जानकीजी नहीं जलीं। यह सुनकर मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हुआ, मैंने पुनः जाकर जानकीजीके दर्शन किये और उनसे विदा हुआ।

तदनन्तर अरिष्ट नामके पर्वतसे उड़कर अब आप लोगोंके पास आ पहुँचा हूँ। यह सब हाल मैंने ज्यों-का-त्यों आपसे कह सुनाया। अब जो उचित जान पड़े सो कीजिये।'

इसके पश्चात् सब वानरोंने मधुवन-नामक उपवनमें पहुँच विजयोन्मादमें खूब मधु पिया। जिसने इन्हें रोका, उसको इन्होंने खूब ठोंका। इसके अनन्तर सुग्रीवको सूचितकर सबलोग उनके पास पहुँच गये और श्रीहनूमान्जीने सब वृत्तान्त श्रीरामचन्द्रजीको सुनाकर चूड़ामणि दे दी।

इस कथाका जो आनन्द सुन्दरकाण्ड पढ़नेसे प्राप्त होता है वह अकथनीय है। हनूमान्जीके पराक्रमका वर्णन स्वयं शेषजी भी अपने सहस्रमुखोंसे नहीं कर सकते। भक्त हनूमान्की बुद्धिमत्ता, अनुपम बल, वाक्चातुर्य तथा कार्यसिद्धिके वर्णन करनेकी शक्ति वाल्मीकिजीमें ही थी। जिसका अनुभव यह है कि जितनी बार इस काण्डका पाठ

किया जावे उतनी ही बार उन घटनाओंका चित्र आँखोंके सामने नाचने लगता है। कहीं वीररस, कहीं करुणारस, कहीं शृङ्गाररस, कहीं हास्यरस और कहीं उपमाओंके सुन्दर प्रयोगोंको देखकर पाठकका हृदय आनन्दसे गद्गद् हो उठता है। इस प्रबन्धमें यहाँ कुछ विशेष परिचय दिया जाता है—

सिंहिका नाम्नी राक्षसीको श्रीहनूमान्‌जीने कैसी चतुराईसे परास्त किया। पहले उसने अपना मुख जितना बढ़ाया, उससे अधिक आपने शरीर बढ़ाया। अन्तमें अवसर पाकर बहुत छोटा रूप बना, उसके मुखमें प्रवेशकर अपने तेज नखोंसे उसके मर्मस्थलको चीर-फाड़ डाला। इसपर देवताओंने आपकी इन शब्दोंमें प्रशंसा की—

> यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
> धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥
> (वा० ५। १। २०२)

हे वानरोंके स्वामी श्रीहनूमान्‌जी! धीरता, सूक्ष्मदृष्टि, बुद्धि और चतुराई, आपके समान ये चार गुण जिसमें होते हैं, वह कभी किसी भी कामको करनेमें नहीं घबराता।

आपकी धर्मपरायणताको देखिये-

जब लङ्कादेवीने आपको जोरसे थप्पड़ मारा तो आपने 'स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयंकृतः' उसे स्त्री समझकर बहुत क्रोध नहीं किया। केवल एक घूँसा मारकर ही उसे परास्त कर दिया और फिर 'कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं तु ताम्' उसपर दया प्रकट की।

जब आपने रावणके अन्तःपुरमें रातके समय सीताकी खोज करते करते अनेक स्त्रियोंको देखा तो आप बहुत चिन्तित हुए—

> जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशंकितः ॥
> परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
> (वा० ५। ११। ३८-३९)

पर-स्त्रियोंको सोते देखनेसे आपके हृदयमें धर्म-नाशकी शङ्का उत्पन्न हुई। आप सोचने लगे- 'इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।' यह मेरा कर्म अवश्य मेरे धर्मको नष्ट कर देगा। परन्तु देखिये, आप किस बुद्धिमत्तासे इस कष्टसे पार होते हैं। आप सोचने लगे-

> नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ॥
> कामं दृष्ट्वा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
> न तु मे मनसः किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥
> मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
> शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥
> स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे ॥
> तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया।
> (वा० ५। ११। ४०-४६)

'आजतक मैंने कभी स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे नहीं देखा। यद्यपि आज मैंने इन स्त्रियोंको देखा, पर मेरे मनमें तिल-भर भी कुविचार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही तो पाप-पुण्य करनेवाली सब इन्द्रियोंका प्रेरक है, वह मन मेरे वशमें है। न देखता तो करता भी क्या? स्त्रियाँ तो स्त्रियोंहीमें ढूँढ़ी जाती हैं, मैंने शुद्ध मनसे ही जानकीजीको ढूँढ़ा।' इस विवेचनमें श्रीहनूमान्‌जीने अपने चरित्रका जितनी सावधानीके साथ अवलोकन किया है वह सर्वथा अद्भुत है। यहाँपर आपने अपनेको पूर्णतया बालब्रह्मचारी चरितार्थ कर दिया।

जब बहुत खोज करनेपर भी श्रीसीताजीका पता न लगा तो आप अगाध चिन्ता-सागरमें डूबने लगे, परन्तु बड़े धैर्य और साहससे उसे भी पार किया। इसका चित्र वाल्मीकिजीने बड़ी हृदयस्पर्शी भाषामें खींचा है। हनूमान्‌जीकी प्रतिज्ञा ध्यान देने योग्य है।

> सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
> वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥
> चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥
> उपविष्टस्य वा सम्यग्लिङ्गिनं साधयिष्यतः।
> सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥
> नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वाऽसितेक्षणाम् ॥
> (वा० ५। १३। ३८-४५)

'अब मैं किष्किन्धा नहीं जाऊँगा। वानप्रस्थी हो चितामें प्रवेश करूँगा। प्रायोपवेशनव्रत धारणकर प्राण छोड़ दूँगा। जलमें प्रवेश कर जाऊँगा, पर बिना सीताके देखे यहाँसे नहीं हटूँगा। इतना दृढ़ संकल्प हनुमान्‌जीके ही योग्य था। इसके बाद आप सोचने लगे कि प्राण दे दूँ या रक्खूँ? अन्तमें आप निश्चय करते हैं—

> विनाशे बहवो दोषा जीवन्भद्राणि पश्यति।
> तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति सङ्गमः ॥
> (वा० ५। १३। ४७)

'नाशमें बहुत दोष है। जीवित रहनेसे अनेक शुभोंकी प्राप्ति होती है अतएव प्राण धारण करना ही योग्य है, क्योंकि जीवित रहनेसे निश्चय ही इष्ट-सिद्धि होती है।' प्राण देनेकी तैयारीसे आपके सङ्कल्पकी दृढ़ताका परिचय मिलता है। इसप्रकार प्राण धारण करनेका निश्चय आपके धैर्य तथा बुद्धिमत्ताको प्रकट करता है।

आपकी बुद्धिमत्ताका एक दूसरा चित्र आगे आता है। इस बातपर वह गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं कि महारानी-सीताजीसे किस प्रकार बातचीत की जाय, जिससे उनको मेरे विषयमें सन्देह न हो। इसपर आप इक्ष्वाकु वंशावली का निरूपण करना प्रारम्भ करते हैं और शेषमें महाराज दशरथसे लेकर सीताजीको देखनेतककी सारी घटनाओंका बड़ी सुन्दरतापूर्वक वर्णन कर जाते हैं। ऐसी विकट परिस्थिति-में विश्वास उत्पन्न करनेका कैसा अमोघ अस्त्र आपने प्रयोग किया! परन्तु सीताके सदृश पवित्रात्माके हृदयमें घोर मायावी राक्षसोंकी नगरीमें एक अपरिचित पुरुषके प्रति विश्वास उत्पन्न करनेके लिये यह साधन पर्याप्त नहीं था। अतः सीताजीने आपकी परीक्षा ली, उसमें भी आप अपनी बुद्धिमत्तासे सफल हुए। सीताजीने ऐसे कठिन प्रश्न पूछे जिनका श्रीरामचन्द्रजीसे अति परिचित व्यक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई उत्तर दे ही नहीं सकता था। यथा—'आपकी श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट कहाँ हुई? आप लक्ष्मणजीको कैसे जानते हैं? मनुष्योंका और वानरोंका मेल कैसे हुआ? श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीका हुलिया कैसा है? उनके शरीरोंकी गठन कैसी है? श्रीरामचन्द्रजीका रूप कैसा है? लक्ष्मणजीकी भुजाएँ कैसी हैं?' इन सब प्रश्नोंके उत्तर आपने ठीक-ठीक दिये, जिससे सीताजीको पूर्ण विश्वास हो गया कि वे श्रीरामजीके दूत हैं।

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छती॥
(वा० ५। ३५। ८४)

शोकसन्तप्ता सीताजीने अनेक कारणोंका तथा श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीके शारीरिक चिह्नोंका यथार्थ पता पाकर हनुमान्‌जीकी बातोंपर विश्वास किया और उनको श्रीरामचन्द्रजीका दूत जाना।

कोई साधारण दूत होता तो इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण होना उसके लिये असम्भव ही था। अपनी वाक्-चातुरी तथा बुद्धिमत्तासे पूरा विश्वास दिलाकर ही आपने रामचन्द्रजीका दिया हुआ चिह्न महारानीजीको अर्पण किया—जिससे विश्वास होनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं आयी। इसमें भी आपकी कितनी बुद्धिमत्ता थी। यदि चिह्न पहले दिया गया होता तो जानकीजी शायद इनको शत्रु समझतीं, और यह भाव होता कि कहीं यह अँगूठी श्रीरामजीको मार उनसे छीन लाया होगा या मुझे मायासे झूठा विश्वास दिलाकर रावणकी तरह प्रलोभन दे रहा होगा।

पुनः चलते समय सीताजीने एक बड़ा कठिन प्रश्न पूछा—'हे वीर! इस दुस्तर-सागरके पार करनेकी तो शक्ति तीनहीमें है—तुममें, गरुड़में और पवनदेवमें। फिर श्रीरामचन्द्रजी यहाँ किसप्रकार आ सकेंगे? इस दुस्साध्य कार्यकी सफलताके लिये तुमने जो उपाय सोचा है सो बताओ।

श्रीहनूमान्‌जी महाराजने इसका जो उत्तर दिया वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है!—

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसन्निधौ॥
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः॥
(वा० ५। ३९। ३८-३९)

'माता! सुग्रीवकी अधीनतामें सभी वानर मेरे ही जैसे और कई तो मुझसे भी बढ़कर हैं। मुझसे निकृष्ट वानर तो वहाँ कोई है ही नहीं। जब मैं ही यहाँ आ गया तब उन महाबलवान् वानरोंके लिये तो कहना ही क्या है? दूत बनाकर साधारण ही व्यक्ति भेजा जाता है, प्रधान नहीं। हे देवी! वे वानरोंके स्वामी एक ही छलांगमें लङ्कामें आ जावेंगे। श्रीराम-लक्ष्मणजी तो मेरी पीठपर सवार हो तुम्हारे पास आवेंगे और इस लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालेंगे।'

अब श्रीहनूमान्‌जीकी घोषणापर जरा ध्यान दीजिये। अपने स्वामीके नामका डङ्का बजाते हुए आप घोषित करते हैं—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥
(वा० ५। ४२। ३३-३६)

'बल जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो! महाबली लक्ष्मणकी जय हो! श्रीरामजीद्वारा-पालित राजा सुग्रीवकी जय हो! मैं अक्लिष्टकर्मा (घोर कर्म न करनेवाले) श्रीरामका दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मैं शत्रुसेनाका नाश करनेवाला पवनदेवका पुत्र हूँ। हमारे शिलाओं और वृक्षोंके प्रहारके सामने एक रावण क्या सहस्र रावण भी नहीं ठहर सकते। मैं समस्त राक्षसोंके सामने लङ्काका ध्वंस-कर जनक-नन्दिनीको प्रणामकर अपना काम पूरा कर जाऊँगा ···।' यह पवनसुत हनूमान्‌जीकी घोषणा है! अब उनकी वाक्पटुता तथा बुद्धिमत्ताका एक बार और अवलोकन कीजिये—

रावण श्रीहनूमान्‌जीसे यह पूछता है, कि 'तू कहाँसे आया है? क्यों आया है? अशोक वन उजाड़ने और राक्षसोंको भयभीत करनेमें तुझको क्या लाभ हुआ? मेरी इस दुर्गम पुरीमें तू कैसे आया?' आप उत्तर देते हैं—'मैं वानर हूँ, मेरे हृदयमें रावणसे भेंट करनेकी अभिलाषा थी किन्तु इसका सफल होना साधारणतः कठिन था, इसीलिये मैंने अशोकवाटिकाको उजाड़ दिया। राक्षसोंको मैंने अपनी शरीर-रक्षाके लिये मारा। मैं आपको अपने स्वामीका सन्देश सुनानेके लिये स्वेच्छासे ब्रह्मास्त्रमें बँध गया। मुझे अतिपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीका दूत जानिये। अब मैं आपसे हितके वचन कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। आप भुवनविख्यात बालिके पराक्रमको भलीभाँति जानते ही हैं, उसको श्रीरामने केवल एक ही बाणसे मार डाला और उसके स्थानपर सुग्रीवको राजा बनाया। करोड़ों वानर सीताकी खोजमें घूम रहे हैं। मैं सौ योजन समुद्र लाँघकर आपको देखनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप तो धर्म और अर्थको भलीभाँति जानते हैं। आपने तपके प्रभावसे ऐश्वर्य सम्पादन किया है। अतएव आपको तो यह ज्ञात ही होगा कि परायी-स्त्रीको घरमें बन्द कर रखना अनुचित है। आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषको ऐसे धर्मविरुद्ध एवं अनर्थकारी तथा समूल नष्ट करनेवाले कार्योंमें आसक्त होना अनुचित है। देखिये, लक्ष्मणके क्रोध और रामके बाणोंके आगे सुर या असुर कोई भी नहीं टिक सकता। अतएव मेरा कहना मान श्रीजानकीजीको लौटा दीजिये। सीताको संसारमें दैत्य अथवा देवता कोई भी नहीं पचा सकता। आप अपने तप-फलका अधर्मके द्वारा नाश न करें। आप यह न समझिये कि देवताओं और दैत्योंसे अवध्य होनेके कारण आप अवश्य ही रहेंगे। सोचिये, सुग्रीव न तो देवता है और न असुर है, उससे प्राणोंकी रक्षा कैसे कीजियेगा? चाहूँ तो मैं अकेला सारी लङ्काको नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु श्रीरामजीने स्वयं ही इसके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है। सीताको आप काल-रात्रि समझिये। सीताजीके तेजसे आपकी लङ्का दग्ध हो चुकी, अब *श्रीरामचन्द्रजीके कोपसे वह भस्म हो जायगी। श्रीरामचन्द्रजी* लोकसंहार कर सृष्टि-रचनाकी शक्ति रखते हैं। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र कोई भी श्रीरामजीका युद्धमें सामना नहीं कर सकते, आपकी तो कुछ गिनती ही नहीं।'

इस उत्तरकी गम्भीरतापर विचार कीजिये—पहला भाग आपकी वानर-प्रकृतिका द्योतक है। आगे चलकर बालिका स्मरण कराना, 'सुग्रीव न सुर है न असुर' तथा '*अधर्म तप-तेजका नाश करता है*'—आदि बातें कितने मार्केकी हैं? फिर श्रीरामके पराक्रम, श्रीसीताके तेज और अपने बलका जितना ओजपूर्ण वर्णन किया गया है, वह मूलपाठके पढ़नेहीसे प्रकट हो सकता है। सच तो यह है कि सुन्दरकाण्ड आदिसे लेकर अन्ततक श्रीहनूमान्‌जीके पराक्रम तथा चातुर्य-वर्णनसे ओतप्रोत है। सुन्दरकाण्डका नाम यदि हनूमान्‌काण्ड होता तो अनुचित न होता। बोलिये, पवनसुत हनूमान्‌की जय!

अब महारानी श्रीसीताजीके अति पवित्र अनुपम चरित्रपर किञ्चित् दृष्टिपात कीजिये--संसारके इतिहासमें ऐसा अद्वितीय चरित्र प्राप्त होना असम्भव है। पति-वियोगमें आपकी क्या दशा थी? जलमें अधिक बोझसे लदी हुई नौकाके सदृश शोकाधिक्यके कारण आपकी दशा सर्वथा दयनीय हो गयी थी। पृथिवीपर गिरे हुए किसी क्षीण-पुण्य तारेके सदृश आप मैले-केशोंसे युक्त, शोकसे सन्तप्त तथा कान्तिसे विहीन हो गयी थीं। केवल पतिप्रेमरूपी भूषण ही आपको विभूषित कर रहा था। आपकी ऐसी असहायावस्था जान पड़ती थी मानो अपने झुण्डसे छूटकर बँधी हुई हथिनी सिंहके चङ्गुलमें फँस गयी हो। आपकी प्रभा वर्षाऋतुके अवसानमें शारदीय मेघोंसे आवृत चन्द्रकी *ज्योत्स्नाके समान छिप रही थी। उबटनादि न लगनेसे,* चिर अवाद्य-वीणाकी भाँति आप मलिन हो रही थीं।

शोकसागरमें निमग्ना, मङ्गलग्रहसे ग्रसित रोहिणीकी तरह आप राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं। पुष्पहीन लताकी तरह शरीरमें मैल लपेटे आप शृङ्गारसे शून्य हो रही थीं। सुन्दर होनेपर भी आप कीचड़में सनी हुई नलिनीकी तरह शोभाहीन हो रही थीं। श्रीसीताजीका शरीर एक जीर्ण और मैले-कुचैले वस्त्रसे ढका हुआ था। वे मृगछौनीकी तरह भयभीत हो चारों ओर देख रही थीं और उनके निःश्वासोंसे मानो आसपासके पल्लवयुक्त वृक्ष भस्म हुए जाते थे। क्षमाकी साक्षात् मूर्ति महारानी सीताको देखकर ऐसा ज्ञात होता था कि मानो शोकसागरसे दुःखरूपी लहरें उठ रही हों। यह दशा देखकर श्रीहनूमान्‌जीकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

रावणके सामने सीताजीकी दयनीय-दशाका वर्णन और भी हृदयको पिघला देनेवाला है। श्रीसीताजी रावणको देखकर मारे डरके केलेके पत्तेकी तरह काँपने लगीं। रावणने देखा कि सीताजी अत्यन्त दुखी एवं समुद्रकी लहरोंसे झोंका खाती हुई नावकी तरह डगमगा रही हैं। सीताजी उस समय हठव्रत-धारण किये—विना किसी बिछौनेके भूमिपर बैठी, वृक्षकी कटी डालके सदृश जान पड़ती थीं। सीताके अङ्गोंपर मैल चढ़ा हुआ था। उनके अवलोकनसे यह ज्ञात होता था कि वह मनोरथोंके संकल्प-रूपी घोड़ोंपर सवार हो प्रसिद्ध राजसिंह श्रीरामचन्द्रके पास जा रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीके स्मरणमें विकल होनेके कारण उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। उनकी आँखोंसे अनवरत अश्रुकी धारा प्रवाहित हो रही थी। उनको दुःखरूपी सागरका ओर-छोर नहीं देख पड़ता था। केवल रामका ध्यान लगाये हुए थीं। उनका शरीर इस प्रकार मन्त्रमुग्धा-सर्पिणीकी तरह छटपटा रहा था मानो रोहिणी धूमकेतुके तापसे सन्तप्त हो रही हो। पति-वियोग-से व्याकुल महारानी सीता, निन्दित कीर्ति, अनादृत विश्वास, क्षीणबुद्धि, टूटी हुई आशा, घटी हुई आमदनी, उल्लंघन की हुई आज्ञा, उल्कापातकी तरह जलती हुई दिशाएँ, नष्ट हुई पूजाकी सामग्री, मसली हुई कुमुदनी, नष्ट शूरोंकी सेना, अन्धकारसे ढकी हुई प्रभा, सूखी हुई नदी, अस्पृश्योंके स्पर्शद्वारा भ्रष्ट हुई यज्ञवेदिका, बुझी हुई आग, राहुग्रसित चन्द्रमण्डलसे युक्त पूर्णमासीकी रात, टूटी हुई पंखड़ियोंका कमल, भयभीत पक्षी, हाथीकी सूँड़से आलोड़ित कमलयुक्त पुष्करिणी तथा टूटे हुए बाँधकी नदीके तुल्य हो रही थीं। उपवास, शोक, चिन्ता और भयके कारण सीताजीका शरीर बिल्कुल दुर्बल और क्षीण हो रहा था। वह केवल जलमात्र पीकर शरीरको तपा रही थीं।

यह पाषाण-हृदयको भी द्रवित करनेवाला चित्र कितना दिव्य है—उपमाओंका तो समुद्र उमड़ रहा है। धन्य हैं माता सीता और धन्य हैं कवि वाल्मीकि जिनकी लेखनी इस पुण्य-चरित्रका चित्रण कर पुण्यमयी हो गयी।

अब पातिव्रतका एक अनुपम चित्र देखिये—रावण प्रलोभनोंका एक विशाल पर्वत महारानीके सामने खड़ा कर देता है। उन्नीसवाँ सर्ग मानो रावणके प्रलोभनोंका सागर है। एक-एक प्रलोभन साधारण स्त्रीको लुभानेके लिये यथेष्ट हैं, यहाँ तो प्रलोभनोंका समुद्र बह रहा है। हनूमान्‌जीने तो केवल छलांग मारकर सौ योजन सागरको पार कर दिया किन्तु श्रीसीता-महारानी तो अनन्त योजनों-के प्रलोभन-सागरको भी अपनी दैवी-शक्तिसे उल्लङ्घन करनेमें सफल हुईं, यह सबसे विचित्र बात है। आप रावणके प्रलोभनोंका कैसा हितकर उत्तर देती हैं—

तिनकेकी ओट करके धर्मके बलपर मुस्कराती हुई सीता रावणकी उपेक्षा करके निर्भयता और सरलताके साथ अपने पातिव्रतका बल दिखला रही हैं—'अरे दुष्ट, कहीं पापिष्ट भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है? मैं पतिव्रता हूँ, उच्चकुलकी स्त्री हूँ, सती हूँ, तेरी स्त्री नहीं हो सकती, तुझे सद्धर्म और सद्‌व्रतके अनुकूल आचरण करना चाहिये। जिसप्रकार तुझे अपनी प्रजाकी रक्षा करना उचित है उसी प्रकार परायी-स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। अपनी ही स्त्रियोंमें रमण कर! देख यदि अपनी स्त्रियोंसे सन्तुष्ट नहीं हुआ तो परायी स्त्रियाँ तुझे नष्ट कर देंगी। अरे रावण! क्या लङ्कामें सज्जन नहीं रहते या तू सज्जनोंका सङ्ग ही नहीं करता। यदि तू मेरा उपदेश न सुनेगा और अनीतिपूर्ण आचरण करेगा तो तेरी स्त्रियोंसे पूर्ण लङ्का नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। हे रावण! मैं तेरे ऐश्वर्य या धनके लोभमें नहीं फँस सकती। मैं सूर्यकी प्रभाकी भाँति अपने स्वामीसे अलग नहीं हो सकती। क्या लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाका आश्रय लेनेवाली मैं किसी अन्य पुरुषकी भुजा-का आश्रय ले सकती हूँ? जिसप्रकार ब्रह्मविद्या ब्रह्ममें स्थित ब्राह्मणहीके योग्य हो सकती है, उसीप्रकार मैं श्रीरामकी ही पत्नी हो सकती हूँ। रावण! यदि तू अपनी भलाई चाहता है तो मुझे श्रीरामचन्द्रजीको विनयपूर्वक

सौंप दे। यदि तू लङ्काकी रक्षा करना तथा मृत्युसे बचना चाहता है तो श्रीरामचन्द्रजीसे मैत्री कर ले। देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा और शरणागतवत्सलके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनसे क्षमायाचना कर, मुझे दे देनेसे तेरा कल्याण हो सकता है, अन्यथा तू निश्चय मारा जायगा, क्योंकि तुझ-जैसे पापीको श्रीरामचन्द्रजी जीवित नहीं छोड़ सकते।'

इस उत्तरका एक-एक शब्द पातिव्रतके बल, साहस, सौन्दर्य तथा माता सीताके क्षमा-गुणका ज्वलन्त उदाहरण है। उपर्युक्त चरित्रके पठनसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो महारानी सीता अपने अगाध क्षमा-सागरमें रावणके पाप-पर्वतको डुबो देना चाहती हैं। अपने समस्त प्रयासमें विफल होनेके कारण रावण निरुत्तर होकर वापस चला गया।

अब मैं इस काण्डके एक रहस्यमय तथ्यको उपस्थित करता हूँ, जिसका श्रीजानकीजीसे विशेष सम्बन्ध है। श्रीसीताजी जगज्जननी लक्ष्मीजीका अवतार मानी गयी हैं। माताकी कृपा अपने दुष्ट बालकपर भी होती है। रावणने माताको कष्ट देनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। सीताजीके तेजसे डरकर और शापवश उसमें बलात्कार करनेका सामर्थ्य नहीं था। इसीलिये वह समझा-बुझाकर सीताको अपने प्रलोभनोंमें फँसाना चाहता था। इतने महान् दुष्टको भी दयामयी-माता श्रीसीताजी उसी शरणागत-मन्त्रका उपदेश करती हैं जो श्रीवाल्मीकीय रामायणका रहस्य है। वैष्णवाचार्योंका कथन है कि शरणागत-मन्त्रकी व्याख्या ही श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण है। श्रीजानकीजीका यही उपदेश आगे चलकर लङ्काकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजीके उपदेशसे सर्वथा मिलता है। माता कहती हैं—

> विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ॥
> तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ।
> प्रसादस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥
>
> (वा० ५। २१। १९-२०)

देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा और शरणागत-वत्सल हैं। *यदि तुझे अपने प्राणोंका मोह है तो उनसे मिलकर* उन्हें मना ले। इसी शरणागतिपर भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-भगवान्‌ने जोर दिया है--

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
> अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'हे पार्थ! धर्म-अधर्मको छोड़ मेरी शरणमें आओ। मैं सब पापोंसे छुड़ा दूँगा। इस विषयमें शोक मत करो।'

यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी विभीषणके शरणमें आनेके समय कही थी—

> सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
> अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

एक बार भी प्रपन्न होकर जो यह कहता है–'मैं आपका हूँ', उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।'

माता जानकीने इसी मन्त्रका उपदेश रावणको दिया था, किन्तु उसने इससे लाभ नहीं उठाया। विभीषणजीने इस उपदेशका महत्त्व जाना और परम-लाभ प्राप्त किया। रावणके बहाने माताका यह उपदेश सबके लिये है।

रावणकी बातों, जानकीके उपदेश एवं क्षमापर ध्यान दीजिये। महारानी सीता कहती हैं कि, 'रामसे मित्रता कर ले, वह *शरणागत-वत्सल* हैं, तेरे अपराधोंको क्षमा कर देंगे, इसमें तेरा कल्याण होगा।' धन्य है जगज्जननी माता सीते! यह वचन आपहीके योग्य हैं। यही श्रीसुन्दरकाण्डका बीजमन्त्र है। दुखी संसारी-जीवोंके लिये यह अमोघ उपदेश है। अतएव प्रत्येक कल्याणकामीको इसका मर्म समझकर अनन्यभावसे भगवान्‌की शरणमें अत्यन्त शीघ्र प्राप्त होना चाहिये। 'शुभस्य शीघ्रम्।'

रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य

रामायण और महाभारतके श्लोकोंमें हम विजयी पुरुषोंके द्वारा भारत महादेशके प्राचीन उपनिवेशोंसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतसे ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त करते हैं। × × × × इनमें रचनाशैलीकी यथार्थता, भावप्रकाशन-की मनोहरता तथा वर्णनके प्रसारसे प्रत्येक मनुष्य यदि कल्पनाके पर्देमें छिपे हुए संस्कृतके श्लोकोंको पढ़नेका कष्ट उठावेगा तो तत्कालीन भारतीय इतिहासके तात्त्विक स्वरूपका और तद्गत राजनीतिक क्रान्तिकी यथा-सम्भव गम्य और गम्भीर अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

डा० एन० डब्ल्यू० वेहौ, सी० एस० आई०,

श्रीसीताहरण-रहस्य

(लेखक—श्रीजनकसुताशरण शीतलासहायजी सावंत, बी०ए०, एल-एल० बी०, सम्पादक 'मानस-पीयूष')

भगवान्‌के चरित्रोंके रहस्य कौन जान सकता है ? वही कुछ जान सकता है जिसे वे कृपा करके जना दें—'सो जानै जेहि देहु जनाई' नहीं तो किसीका भी सामर्थ्य नहीं जो उसे जान ले। जान ले तो फिर वह रहस्य ही क्या हुआ ? श्रीसीताजी आदिशक्ति हैं, श्रीरामजीसे उनका वियोग कभी किसी कालमें नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, एक ही होते हुए भक्तोंके लिये युगलरूपसे विराजमान हैं —'गिरा अरथ जल बीचि सम देखियत (कहियत) भिन्न न भिन्न।' माधुर्यमें पति-पत्नीभावसे श्रीरामजीको वे अतिशय प्रिय हैं। ऐसी परम-सती-शिरोमणिके हरणमें क्या रहस्य है, यह तो यथार्थ उस नरनाट्यके करनेवाले ही जानें। देखिये, जिनके एक सींकके बाणसे पीछा किया जानेपर इन्द्रपुत्र जयन्त त्रैलोक्यमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसीकी भी शरण न पा सका, क्या वे रावणको घर बैठे नहीं मार सकते थे ? अवश्य मार सकते थे। पर ऐसा होता तो आज हमको उनके चरित्र गान करके भवपार होनेका अवसर कहाँसे मिलता ? उनके दिव्य गुणों—करुणा, भक्तवत्सलता इत्यादिको हम कैसे विश्वासपूर्वक स्मरण करके अपनेको कृतार्थ समझ सकते ?

स्मरण रहे कि यहाँ जो कुछ लिखा जा रहा है सो प्रधानतया धार्मिक वा भक्तिभावसे ही लिखा जा रहा है।

यह चरित जानबूझकर किया गया है। गोस्वामीजीने तो इसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है और वाल्मीकिरामायणसे भी स्पष्ट है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने जान लिया था कि यह कपट-मृग मारीच ही है—

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज सँवारन॥

यदि जान-बूझकर ऐसा न हुआ होता तो क्या रावण परम-सती-शिरोमणियोंकी भी सिरताज श्रीवैदेहीजीके कभी हाथ लगा सकता था ? अनुसूयाजीसे त्रिदेवकी न चली, तब इनके आगे रावणकी क्या चलती ? वा०रा० ५। २२ में श्रीजानकीजीने रावणसे यह स्पष्ट कहा है कि तुझे भस्म कर देनेकी शक्ति मुझमें है तो भी मैं तुझे भस्म नहीं करती, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और ऐसा करनेसे मेरी तपस्या भङ्ग होगी। यथा—

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥ २०॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः॥ २१॥

यह सीताहरण-चरित्र ही हमारी समझमें वाल्मीकिरामायणमें दिये हुए परधाम-यात्राचरितका बीज है। इसीके बलपर ११ हजार वर्ष राज्यकरके अन्तमें श्रीसीताजीके त्यागकी लीलाकरके अवधपुरवासियोंपर अपना परम प्रियत्व दिखाया है—*'अति प्रिय मोहि इहाँके बासी' 'ममता जिन्हपर प्रभुहि न थोरी' यह लीला नहीं तो और क्या है कि ११००० वर्ष तक कोई चर्चा नहीं और जब परधाम-यात्राकी इच्छा हुई तब एक धोबीद्वारा उनके विषयमें अपवाद सुना जाता है और उसीपर उनका त्याग किया जाता है।

हमारे परमपूज्य महाराज श्री १०८ पं० रामवल्लभाशरणजी (जानकीघाट, श्रीअयोध्याजी) ने इस विषयमें दो रहस्य बताये थे जो यहाँ लिखे जाते हैं—

१—रावणने देव, यक्ष, गन्धर्वादिकी कन्याओंको जबरदस्ती ला-लाकर उनसे विवाह किया। कितनी ही देवियाँ उसके यहाँ कैद थीं—अपने-अपने घरोंकी यह शोचनीय दशा देवताओंने आकर प्रभुसे बार बार कही। इन देवियोंकी दारुण विपत्ति सुनकर करुणावश महारानीजीने उनके सन्तोष एवं सान्त्वनाके लिये स्वयं रावणके यहाँ कैद होना स्वीकार किया।

२—सुतीक्ष्णजीके आश्रमसे चलते समय महारानीजीने प्रभुसे कहा था कि आपने दण्डकारण्यके ऋषियोंसे उनकी रक्षाके लिये निशिचर-वधकी प्रतिज्ञा की है और अब दण्डक वनको चल रहे हैं, मुझे वहाँका जाना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि बिना अपराधके दण्डकारण्याश्रित राक्षसोंका मारना योग्य नहीं, यह पाप है। बिना अपराधके मारनेवाले वीरकी लोकमें प्रशंसा नहीं होती। यथा—

---

* मा० पि० तिलक बा० ६ १५ (१-३) में देखिये।

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् ।
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न कामये ॥
(वा० ३।९।१०, २५)

यद्यपि प्रभुने उस समय यही उत्तर दिया कि मुझे सत्य सदा प्रिय है, पर मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका उसे अब मैं नहीं छोड़ सकता। मैं अवश्य राक्षसोंका वध करके मुनियोंको अभय करूँगा। तथापि सीताहरणमें यह रहस्य कहा जा सकता है कि रावणको सापराध ठहरानेके लिये यह चरित हुआ।

इस तरह लोक-वेद दोनोंसे उनका यह कार्य (रावण-वध) अनिन्द्य वा निर्दोष हो गया और इससे प्रियाका भी मान्य रहा।

ये भाव तो ऐश्वर्य और भक्तिभावमें हुए। अब एक और भाव जो एक पतिव्रताशिरोमणि (पं० श्रीराजारामकी धर्मपत्नी) ने सीताहरणके बारेमें कहा है उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

पतिपर आयसु जनि करहु अस परिणाम बिचार ।
पतिदासी मृगछालहित सिय दुख सही अपार ॥

अर्थात् यह बात पतिव्रताके धर्मके प्रतिकूल है कि वह पतिको आज्ञा दे। श्रीपतिदासीजी पतिव्रताओंको सीता-हरणका उदाहरण देकर उपदेश देती हैं कि पतिको कभी भूलकर आज्ञा न देना (स्वामीको आज्ञा देना बड़ा पाप है) देखो, सीताजीने अपने पतिको आज्ञा दी, हठ किया कि मृगको जैसे बने लाओ, उसीका यह फल उनको भोगना पड़ा कि जो उनका हरण हुआ और उनको कितना कष्ट उठाना पड़ा। इस चरित्रसे स्त्रियोंको यह उपदेश हुआ।

यही भाव स्वयं श्रीसीताजीके इन शब्दोंसे ध्वनित हो रहा है—

कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥
(वा० ३।४३।२१)

अर्थात् अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये जो मैं आपसे यह कह रही हूँ, वह कठोर है और स्त्रियोंके लिये अनुचित है, यह मैं जानती हूँ तथापि इस मृगको देखकर मुझे बड़ा विस्मय उत्पन्न हो गया है, अतः आप इसे ले आवें—

आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥

और भी अनेक भाव लोगोंने कहे हैं जिनमेंसे दो एक मानसपीयूषमें उद्धृत किये गये हैं। यहाँ इस लेखमें उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

भुशुण्डिजी, शिवजी आदिने मायाका हरण—माया-सीताका हरण—होना स्पष्ट कहा है। यही बात गोस्वामीजी-ने भी स्पष्ट शब्दोंमें कही है—

'पुनि मायासीता कर हरना ॥'
'निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता ॥'

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि ऋषिकन्या वेदवतीने प्रभुकी प्राप्तिके लिये अखण्ड तप किया। उसको देख रावणने जबरदस्ती उसे पकड़कर लङ्का ले जाना चाहा। उस समय उसने शाप दिया कि तेरा नाश मेरे द्वारा होगा। यह कहकर उसने अपना वह शरीर छोड़ दिया। वही यहाँ सीताजीका प्रतिबिम्ब है। उसीमें सीताजीका आवेश हुआ। वेदवतीकी कथा वाल्मीकीय उत्तरकाण्डमें है।

वास्तवमें हमारे मित्र प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ने जैसा कहा है वैसा ही है कि 'मायामानुषरूपिणौ' दोनों भाई, मायाकी सीता, मायामृग, मायाका संन्यासी, मायाका रथ, मायाका विलाप और विरह-कथा सभी कुछ दोनों ओरसे मायाका खेल था।

इसमें महामाया और ईश्वरी-मायाके साथ राक्षसी-माया-की लीला हो रही है, ईश्वरी अथवा दैवीमाया तामसी किंवा राक्षसी-मायासे खेल रही है। मूर्ख राक्षस खुश है कि मेरी माया चल गयी और इन मनुष्योंको मैंने मोहित करके स्त्री-हरण कर लिया; परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं ईश्वरी-माया जालमें बेतरह फँस गया हूँ और मेरी बुद्धिका हरण कबका हो चुका है। जब लक्ष्मणजीको ही परतमकी मायाका पता नहीं है तब देव-दनुजादिकी तो बात ही क्या है—

'सिव बिरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन ।'

अधिक लिखनेका समय नहीं है, दूसरे जो लिखा गया वह प्रायः सभी मानसपीयूषमें निकलेगा ही, इससे उसीको यहाँ भी भेजना उचित न जानकर नहीं लिखा गया। हाँ, तीन-चार दोहे श्रीपतिदासीजीके (कैकेयीजी, शूर्पणखा आदिके चरित्रोंसे जो उपदेश उन्होंने निकाले हैं उनको) उद्धृत करता हूँ—

कैकेयीजी—

दासी पति ते हठ किये कैकेइहिं दुखभार ।
बिधवापन सुतबिमुखता अपयश जगत अपार ॥

सतीजी—

सती न मानी पतिबचन राम परीक्षा लीन्ह ।
दासी सो अपराधबस, शम्भु ताहि तजि दीन्ह ॥

दासी पति-आदर बिना कहूँ न तियको मान ।
नैहरहूँ निदरी गई दक्षसुता जग जान ॥

अहल्या—

दासी सब निदरहिं सदा पतिबंचक अनुमानि ।
रामहुँ परसेउ पाँव ते गौतम-तिय जिय जानि ॥

शूर्पणखा—

सूपनखा गइ रामपहँ तजि वैधव्य बिचार ।
दासी याते नासिका काटि राजकुमार ॥

रामायण-कालीन शपथविधि

(लेखक—पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ)

भारतवर्षकी अन्य रीति-नीतिकी भाँति इसकी शपथविधि भी विस्खलित होगयी है। आजकल जिस प्रकार शपथ ली जाती है अथवा आक्रोश किया जाता है वह सर्वथा हेय है। वैदिक-कालीन शपथविधिकी बात जाने दीजिये, उस समय शपथ लेनेका प्रकार बहुत ही सुन्दर था किन्तु रामायण अथवा महाभारतके कालतक वह सुन्दर शपथविधि अविकलरूपेण चली आती रही। जिस-जिस प्रकार भारतवर्षके साथ परचक्रका संसर्ग होता गया, उस-उस प्रकार वैदिक-शपथविधिमें, आर्य-शपथविधिमें परिवर्तन होता गया और आजकलकी शपथ लेनेकी पद्धति तो सर्वथा हमारे अधःपतनकी द्योतक है। जब समाजके ऊपर मर्यादाप्रवर्त्तक और निग्रहानुग्रहप्रवर्त्तक दण्डनीतिका यथाविधि सञ्चालक राजा नहीं रहता, तब समाजके बन्धन ढीले होकर उसकी रीति-नीति, आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चालकी पद्धतिमें अवश्य ही परिवर्त्तन होजाता है, यह अपरिहार्य है।

शपथ क्यों ली जाती है? इसलिये कि हमारे ऊपर शंका करनेवाले, हमको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले व्यक्ति अथवा समुदायको यह विश्वास हो जाय कि हमने अनुचित, असभ्य, पापमय, सदाचारविरुद्ध, कुलमर्यादाके प्रतिकूल वह विशेष कार्य, अथवा कोई कार्य नहीं किया है जिससे स्वकुल, समाज और अपने वृद्धमण्डलकी दृष्टिमें पतित होना पड़े, अथवा प्रायश्चित्ती होना पड़े।

शपथ भी पवित्र-से-पवित्र, प्रिय-से-प्रिय वस्तु, सम्बन्धी, इष्टमित्र अथवा धर्म-कर्म या पवित्र माननीय ग्रन्थका नाम लेकर की जानेकी प्रथा है। यह प्रथा सब जातियोंमें, सब समाजोंमें, सब सम्प्रदायोंमें, सब राष्ट्रोंमें और सब देशोंमें अनन्तकालसे चली आ रही है।

भरत जब कौसल्याके पास गया और उसको समझाना ही चाहता था—अभी प्रणाम करके कहनेहीवाला था कि रामका वनवास उसकी सम्मतिसे नहीं हुआ, इतनेमेंही कौसल्या माता स्वयं बोल उठीं और करुणापूर्ण-दृष्टिसे देखकर भरतको कहा—

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥
अथवा स्वयमेवाहं ।

(वा० २।७५।१०-१३)

'लो भरत, तुम राज-पाट चाहते थे, सो तुम्हारे लिये कैकेयीने निष्कण्टक राज्य ले लिया, और मेरे रामको जटा-वल्कलधारी बनाकर जंगल भेज दिया। न जाने उसने इसमें क्या भला देखा? उसे कहो कि अब मुझे भी शीघ्र वहीं भिजवा दे, जहाँ मेरा यशस्वी राम चला गया है या जाकर ठहरा हुआ है। रहने दो, मैं स्वयं ही सुमित्राको साथ लेकर चली जाऊँगी—

लो भाई, संभालो राज-पाट, उड़ाओ मौज, संभालो हाथी-घोड़े-रथ, धन-धान्यके कोठे, अब तो राजी हो?'

इसप्रकारके मर्मभेदी वाक्योंको सुनकर निर्दोष भरतका हृदय व्याकुल हो उठा और शपथ लेकर विश्वास दिलानेके अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय नहीं रह गया।

उसने माता कौसल्याके चरण पकड़कर, गिड़गिड़ाकर कहा, माता मुझ निर्दोषको क्यों कोस रही हो? मुझे तो

खबर भी नहीं कि यह सब काण्ड कैसे हुआ। तुम जानती ही हो कि मैं रामसे कितना प्यार करता हूँ। जिसकी सम्मतिसे राम वनको गये, उसका शास्त्राध्ययन निष्फल हो जाय, वह पापियोंका नौकर बन जाय, उसको वह पाप लगे जो कि किसीको सूर्यकी ओर मुखकर मूत्रोत्सर्जन या मलोत्सर्जन करनेसे लगता है, अथवा गौको लात मारकर उठानेमें लगता है। नौकरसे बड़ा भारीका काम कराके जो उसको यथारीति पारितोषिक नहीं देता, उसको दान-मानसे सन्तुष्ट नहीं करता, उसके स्वामीको जो पाप लगता है, जिसकी रायसे राम वनको गये, उसको वह पाप लगे। यज्ञमें तपस्वी-ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर जो मुकर जाता है, नहीं देता, उसको जो पाप लगता है वह पाप जिसकी सलाहसे राम वनको गये, उसको लगे। रणक्षेत्रमें उतरकर—ऐन युद्ध-प्रसङ्गपर, जो अपना कर्तव्य पालन न करे उसको जो पाप लगता है, वह पाप जिसकी रायसे राम वनको गये उसको लगे। जिस दुरात्माने ऐसी सलाह दी हो, उसका पढ़ा-पढ़ाया वेद-शास्त्रका ज्ञान नष्ट हो जाय। आश्रितोंको छोड़कर, अकेले ही स्वादु-पदार्थ खानेवाले निर्घृण पुरुषको जो पाप लगता है, गुरुजनोंके तिरस्कारसे जो पाप होता है, वह पाप जिस चाण्डालने यह कार्य करवाया हो उसको लगे। गौको लात मारने या पैरसे छूनेमें, गुरु-निन्दामें, मित्र-द्रोहमें, विश्वास-घातमें, कृतघ्नतामें जो पाप होता है, वह सब उस दुरात्माको लगे जिसकी रायसे यह काम हुआ। उस दुरात्माको अनुकूल सहधर्मिणी न मिले, उसके अपत्य मर जायँ, उसकी धर्म-क्रिया नष्ट हो जाय, वह अनपत्य ही रह जाय, स्वल्पायु होकर मर जाय, जिस दुष्टने ऐसा करवाया हो। वह पापी पागल होकर, चिथड़े पहनकर, दर-दर माँगता फिरे, जिसने यह करवाया हो। शराबके पीनेमें, जूएके खेलनेमें जो पाप है, वह सब उसको लगे, जिसने यह करवाया हो। उस दुष्टका मन धर्ममें न लगे, उसका दान अपात्रमें जाय, उसका इकट्ठा किया-कराया धन लुटेरोंके हाथ लग जाय जिस दुरात्माने यह सब कुछ करवाया हो। दोनों सन्ध्याओंके समयमें जो सोता रहता है उसका जो पाप है वह उसको लगे जिसने यह करवाया। सत्पुरुषोंको जो लोक-लोकान्तर मिलते हैं, जो सद्गति होती है, उनको जो कीर्त्ति मिलती है—वह सब कुछ उसको न मिले जिसके कहनेसे, इशारेसे, मशविरेसे यह सब कुछ हुआ है। वह मातृ-शुश्रूषासे वञ्चित होकर वृथा अन्योंकी सेवामें तत्पर रहे, वह स्वल्प-धन और बहुत भृत्योंवाला, ज्वरादि-रोगयुक्त, सदा क्लेशसन्तप्त होवे जिस दुरात्माने यह सब कुछ किया है। जिस पापीने यह करवाया है, वह कपटी-छली, चुगलखोर, दुर्भावयुक्त पुरुष राजदण्डके भयसे इधर-उधर मारा-मारा फिरे। ऋतुस्नाता भार्याके पास न जानेसे जो पाप होता है वह पाप उस पापीके पल्ले पड़े जिसने यह किया-कराया। स्त्री-द्वेषसे सन्तानहीन हुए उस पुरुषकी सन्तान-परम्परा नष्ट होकर कुल नष्ट हो जाय अथवा उसके सिरपर वह पाप पड़े जो कि अनुकूला भार्याको छोड़नेसे लगता है। ब्राह्मणकी पूजामें बाधा डालनेसे जो पाप होता है वह उसको लगे जिसकी रायसे राम वन भेजे गये हों। बाल-वत्स (बछड़े) के हिस्सेका दूध निकालकर स्वयं पीनेमें जो पाप लगता है वह उसको लगे जिस पापीने यह सब कुछ किया कराया। अपनी सहधर्मिणीको छोड़कर जो पर-दारापर कुदृष्टि रखता है, उससे संसर्ग रखता है, जिस व्यक्तिके कारण राम वन गये हैं, उसको वह पाप लगे। पीनेके पानीको गदला करनेवालेको, विष देनेवालेको, प्यासेको पानी न देकर उसको दिक करनेवालेको जो पाप लगता है वह उसको लगे जिसने यह किया-करवाया। एक ही परात्पर-देवताको पृथक्-पृथक् मानकर उनपर वृथा वाद-विवाद करनेवालोंकी बातोंको जो चुपचाप सुनता है, उसको जो पाप लगता है, वह सब, यदि राम मेरी करनीसे वन गये हों तो मुझको लगे।'

इस प्रकार शपथ लेता हुआ, आक्रोश करता हुआ, शोक-विह्वल भरत भूमिपर गिर पड़ा। तब कौसल्या-माताने 'पति-पुत्र-विहीना कौसल्याने पुचकारकर कहा—'प्रिय भरत! एक तो वह दुःख था हीं, अब तेरी इन शपथोंसे और भी बढ़ गया। यह सब सुनकर मेरे प्राण घुट रहे हैं। तुम बड़भागी हो कि तुमने धर्म नहीं छोड़ा। तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर अच्छे लोकोंको, अच्छी गतिको प्राप्त होओगे' ऐसा कह भरतको गोदमें बिठा, उसको पुचकारकर माता कौसल्या फूट-फूटकर रोने लगीं।

रामायण-कालीन समाज-स्थिति, लोकस्थिति कितनी उच्च थी! हमारी पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृभक्ति, पतिभक्ति, पतिव्रत-धर्ममें आस्था आदि संगठित सभ्यताकी तुलनामें भला कोई देश, कोई राष्ट्र पहुँच सकता है? आकाशवाणी हो रही है—'नहीं! नहीं!!'

रामायण-कालमें परदा-प्रथा

(लेखक--पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी)

ऐतिहासिक दृष्टिसे संस्कृत-साहित्यके दो ग्रन्थोंकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, क्योंकि इन दोनों ग्रन्थोंकी रचना प्राचीन मानी जाती है। भारतवासी ही नहीं, विदेशी विद्वानोंने भी श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण और कृष्णद्वैपायन वेदव्यासरचित महाभारतको प्राचीन रचनाएँ माना है। ये दोनों ही ग्रन्थ सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व रखते हैं। प्राचीन-कालीन आर्य-जातिकी सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितिपर ये दोनों ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालते हैं। रामायणकाल और महाभारतकालमें आर्य-जाति परदेको कितना महत्त्व देती थी, और इस प्रथाको राज्यकी कहाँतक अनुमति प्राप्त थी, इसका दिग्दर्शन कौटिल्य-अर्थशास्त्र देखनेसे अवगत हो जाता है। इस लेखमें हमें महाभारत और कौटिल्य-अर्थशास्त्रका उल्लेखमात्र कर देना है, किन्तु हमें विशदरूपसे तो आज रामायणकी ही चर्चा करनी है। क्योंकि देखा जाता है, कि परदाके विरोधी लोग विशेषकर रामायण और महाभारतकी ही दुहाई दिया करते हैं, और इन्हींके नामपर आर्य-जातिकी प्राचीन परदा-प्रथाको उठाकर वर्त्तमान नारी-समाजको बेपर्द कर देना चाहते हैं। यद्यपि ऐसे लोगोंका आन्तरिक अभिप्राय तो आर्य-जातिको पाश्चात्त्य सभ्यताके साँचेमें ढालना है, तथापि वे मुँहसे ऐसा नहीं कहते, किन्तु एतत्सम्बन्धी उनका अतिवाद और साहस इस बातका ही द्योतक है। किन्तु ऐसे लोगोंका प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर परदेके विरुद्ध जहादका झण्डा खड़ा करना उनका दुस्साहस मात्र है। यदि ऐसे लोग प्राचीन ग्रन्थोंका अध्ययन, इस बातकी जिज्ञासाके वशवर्ती हो करें तो उन्हें पता लग जायगा कि परदेकी जड़ सुदीर्घ-कालके गर्भमें पैठी हुई है कहें तो यहाँ तक कह सकते हैं कि परदा-प्रथा सनातन है, वैसे ही सनातन है—जैसे हिन्दू-समाज। रामायणकालमें तो आर्यजातिमें परदेकी प्रथा पूर्णरीत्या प्रचलित थी, तथा अन्यान्य धार्मिक एवं सामाजिक नियमोंकी तरह इसका पालन भी अनिवार्य नियमोंके अन्तर्गत था।

जिन भगवती सीताकी बे-पर्दगीकी बात लोग प्रायः कहा करते हैं, उन सीताके परदेके बारेमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी उक्तियोंपर यदि पक्षपात छोड़कर विचार किया जाय, तो उस कालमें परदेकी प्रथा पूर्णरूपसे प्रचलित होनेमें तिलभर भी सन्देह नहीं रह जाता। जिस समय श्रीराम, लक्ष्मण और सती सीता खुले रथपर सवार हो वनके लिये राजभवनसे निकले, उस समय अयोध्याकी प्रजाने कातरकण्ठसे कहा था--

> या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
> तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥
>
> (वा० रा० २ । ३३ । ८)

जिस सीताको आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उसको आज सर्वसाधारणजन राजमार्ग (आम सड़क) पर जाते हुए देख रहे हैं। फिर जब रावणके मारे जानेके बाद श्रीरामचन्द्रने विभीषणको आज्ञा दी कि यदि सीता मुझे देखनेको लालायित हो तो उसे अभी मेरे पास लाओ। इसपर उस समय जो घटना घटी, उसका वर्णन आदिकविने इसप्रकार किया है--

> तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास सर्वतः ॥
> कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
> उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात्परिचक्रमुः ॥
> ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः ।
> वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुरन्ततः ॥
> तेषामुत्सार्यमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः ।
> वायुनोद्धूतमानस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥
>
> (वा० रा० ६ । ११४ । २०-२३)

जब विभीषणको भगवान्ने सीताको लानेकी आज्ञा दी, तब वह सीताजीको 'आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम्।' (वा०रा०६।११४।१५) एक चमचमाती पालकीमें, जिसपर बड़ा बढ़िया उघार (परदा) पड़ा हुआ था, सवार कराया। उस पालकीके आगे जामा-पगड़ी पहने, हाथोंमें बेत लिये हुए खोजे थे। वे चारों ओर घूम-घूमकर सबको हटाने लगे। तब रीछों, वानरों और राक्षसोंके समस्त दल वहाँसे हटाये गये और वे सब दूर जाकर खड़े हुए। उन सबको हटाते समय वैसा ही हो-हल्ला हुआ जैसा कि वायुके वेगसे उत्थित समुद्रके शब्दसे होता है।

उन समस्त रीछों, वानरों और राक्षसोंका बलपूर्वक हटाया जाना देख, और उन सबको क्षुब्ध देख, श्रीरामचन्द्र-

राम-शबरी ।

कन्द-मूल फल सरस अति दिये राम कहँ आनि ।
प्रेमसहित प्रभु खायहु बारहिबार बखानि ॥

के मनमें उनके प्रति घृणाका सञ्चार हुआ। विभीषणने यह काम श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लिये बिना ही किया था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको यह पसंद न आया और इसीलिये उन्होंने क्रोधमें भरकर, उलहना देते हुए विभीषणको बर्जा और कहा—

> किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
> निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥
> व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
> न क्रतौ नो विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियाः ॥
> सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।
> दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः ॥
> तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषणः ।
> रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥
> (वा० रा० ६ । ११४)

अर्थात् तुम मेरा अनादरकर मेरे जनोंको क्यों सता रहे हो? अपने लोगोंको मना कर दो, कि वे मेरे जनोंको न सतावें, क्योंकि ये सब मेरे स्वजन हैं अर्थात् घरके लोगों जैसे हैं। इष्टजनोंका वियोग होनेपर, राजविप्लवके समय, समर-भूमिमें, स्वयंवरमें, यज्ञशालामें, विवाहमण्डपमें स्त्रियोंका जनसमाजके सामने बिना परदा या बिना घूँघट काढ़े आना दोषावह नहीं है। अर्थात् इन खास अवसरोंको छोड़ अन्य दशाओंमें स्त्रियोंका जनसमाजके सामने आना दोषावह है। इस समय सीता बड़ी विपत्तिमें पड़ी हैं और यह युद्धकाल है। अतः ऐसे समय और विशेषकर मेरे सामने उसका बिना परदे आना-दोषावह नहीं है। अतएव हे विभीषण! तुम शीघ्र सीताको (खुले मुँह) मेरे पास ले आओ। श्रीरामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुन विभीषण प्राचीन प्रथा भङ्ग होते देख, सोच-विचारमें पड़ गये, किन्तु श्रीरामजीकी आज्ञा टाल भी नहीं सकते थे। अतः उसी तरह सीताको श्रीरामजीके पास ले गये।

इस प्रसङ्गमें एक बात और है, वह यह कि श्रीरामचन्द्रजी यह जानते थे कि केवल परदेसे ही स्त्रियोंका चरित्र ठीक रहेगा, ऐसी बात नहीं है, अतः उनकी ओर फिर भी ध्यान रखा जाता था। इसीसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा था—

> न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः ।
> नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥
> (वा० रा० ६ । ११४।२७)

अर्थात् स्त्रियोंके लिये न घर, न चादरका घूँघट, न कनात आदिकी चहारदीवारी, न चिक आदिका परदा और न इस प्रकारका राजसत्कार ही आड़ करनेवाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो)।

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीने उस समय शास्त्रीय कारण दिखला सीताको सबके सामने खुल्लमखुल्ला आनेकी आज्ञा दी तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह आचरण लक्ष्मण, सुग्रीव, हनूमान्‌को अत्यन्त दुःखदायी हुआ। आदिकविने लिखा है—

> ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च प्लवङ्गमः ।
> निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥
> (वा० रा० ६ । ११४ । ३२)

किन्तु वे कर ही क्या सकते थे! इस श्लोकसे एक बातका पता और भी चलता है—वह यह कि आदिकविने 'प्लवङ्गमः' विशेषण लगाकर यह जतलाया है कि सीताजीका परदा त्यागकर आना वानर-जातिको भी अच्छा नहीं लगा और सुग्रीव तथा हनूमान्‌को भी दुःख हुआ। किन्तु परदा त्यागकर सबके सामने निकलने-बैठनेमें अनभ्यस्ता जानकीकी उस समय क्या दशा थी, यह भी सुनने योग्य है। आदिकवि कहते हैं—

> लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
> विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥
> सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि ।
> रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥
> (वा० रा० ६ । ११४ । ३४-३५)

अर्थात् जानकी लोगोंके सामने आनेमें मारे लज्जाके अपने शरीरमें दबी जाती थी। विभीषण उसके पीछे आ रहे थे। इसप्रकार सीता अपने पतिके निकट पहुँचीं। उस जनसमाजमें लज्जावश उसने घूँघट काढ़ लिया था और इस अपमानसे घबड़ा वह 'हे आर्यपुत्र!' कहकर रो पड़ी। सीताने वहाँ जो 'हे आर्यपुत्र!' कहा उसका भी एक गूढ़ रहस्य है अर्थात् वह श्रीरामचन्द्रजीको इशारेसे कहती है कि आर्यपुत्र होकर मर्यादाविरुद्ध कार्य क्यों कर रहे हैं?

सारांश यह कि जिन अवसरोंपर परदेकी शिथिलताकी बात श्रीरामचन्द्रजीने कही थी वह भी उस समय जनसमाजको मान्य न थी, किन्तु बड़े लोगोंमें आदर्शके रूपमें उसकी चर्चामात्र की जाती थी, क्योंकि यदि यह अवसर समाज-मान्य होते तो प्रथम तो विभीषण ही क्यों ढकी

हुई पालकीमें सीताको बिठा और हटो-बचो करते जाते। द्वितीयतः यदि भूलवश विभीषणने ऐसा कर भी दिया होता तो वे रामचन्द्रजीकी आज्ञा सुन आगा-पीछा न करते। इसपर भी यदि कोई कह बैठे कि अपने कामकी तीव्र आलोचना होनेपर अभिमानवश विभीषणने आगा-पीछा किया, तो लक्ष्मण, सुग्रीव और हनूमानादिको तो बुरा न लगना चाहिये था, किन्तु यह बात उनको भी बुरी लगी। अतः यह मानना पड़ेगा कि आर्यजाति रामायण-कालमें स्त्रियोंके लिये परदा-प्रथाको उपयोगी मानती थी। यह तो हुई आर्यजातिमें परदा-प्रथाके प्रचलित होनेकी बात। अब लीजिये हम आपको रामायणकालमें अनार्य जातियोंमें भी उसके प्रचलित होनेका प्रमाण रामायणहीसे निकालकर देते हैं। देखिये, जिस समय क्रोधमें भरे लक्ष्मण किष्किन्धामें गये और सुग्रीवके अन्तःपुरमें घुसे, और खास जनानी-ड्योढ़ीमें चले गये, तब इन्हें ज्यों ही अन्तःपुरवासिनी ललनाओंके नूपुरों और करधनीकी झंकार सुन पड़ी त्योंही वे लज्जित हो जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। आदिकवि कहते हैं—

कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा।
सन्निशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्॥
(वा० रा० ४.३३।२५)

अर्थात् नूपुरोंकी झमाझम और करधनीकी घण्टियोंकी झंकार सुन सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण लज्जित हो गये। आजकलके कुछ मनचले लोगोंके जैसे तो लक्ष्मण थे ही नहीं कि चाहे जिसके घरमें बेधड़क घुसकर बीबीसे 'शेक-हैंड' करने लगते। वे तो बड़े उत्कृष्ट चरित्रवान् थे। इसीसे आदिकविने लिखा है—

चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः।
तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः॥
(वा० रा० ४।३३।२७)

अर्थात् चरित्रमें श्रीलक्ष्मण बहुत चढ़े बढ़े थे। अतः वे आगे न बढ़े और श्रीरामचन्द्रजीके शोकसे विकल एकान्त स्थल देख खड़े हो गये। इतनेमें नशेमें चूर तारा लक्ष्मणजीके सामने आती है। मारे नशेके उसे अपने शरीरके वस्त्र और आभूषणोंकी भी सुध-बुध नहीं है। उसके पैर कहीं-के-कहीं पड़ते हैं।

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी
प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा।
सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं
जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः॥
(वा० रा० ४। ३३। ३८)

ताराको इस दशामें देख लक्ष्मणजी 'अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः' अर्थात् राजकुमारने गरदन नीची कर ली।

इस प्रसङ्गसे यह स्पष्ट है कि यदि कोई स्त्री बेहयाई-कर उस जमानेके किसी पुरुषके सामने चली आती थी तो उस जमानेके पुरुष, आजकलके कुछ लोगोंकी तरह उनकी ओर ताकते तक नहीं थे और न आवाजें कसते थे, किन्तु मारे लज्जाके गर्दन नीची कर लिया करते थे।

अब आइये, लङ्कामें भी हम आपको दिखलावेंगे कि वहाँ उच्च घरानेकी स्त्रियोंमें कैसी परदा-प्रथा प्रचलित थी और यदि कोई स्त्री परदेकी अवहेलना करती थी तो उसके प्रति उसके पति किस प्रकार बिगड़ते थे। जिस समय रावणके मारे जानेका दुस्संवाद रावणके रनवासमें पहुँचा उस समय रावणकी अन्तःपुरवासिनी ललनाएँ अपारशोक-सागरमें निमग्न हो, पाँव-प्यादे रणाङ्गणमें पहुँचीं। पतिके शवसे लिपट विलाप करती हुई मन्दोदरी कहने लगी—

दृष्ट्वा न खल्वभिक्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम्।
निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो॥
पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान्।
बहिर्निष्पतितान्सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि॥
(वा० रा० ६। १११। ६१-६२)

हे स्वामी! मैं घूँघट काढ़े बिना नगरके फाटकसे निकलकर पाँव-प्यादे यहाँ चली आयी हूँ, तुम इसके लिये मुझसे क्रुद्ध क्यों नहीं होते? देखो, मैं ही अकेली नहीं प्रत्युत—तुम्हारी प्यारी समस्त पत्नियाँ लज्जा त्याग और घूँघट खोल अन्तःपुरके बाहर निकल आयी हैं—इनको इस दशामें देख तुम्हें क्रोध क्यों नहीं आता?

आदिकविने इतना स्पष्ट घूँघट और परदेका विवरण दिया है। इसपर भी केवल रामायण-महाभारतका नाममात्र सुननेवाले इन्हीं दोनोंका नाम लेकर बे-पर्दगीका समर्थन किया करते हैं। किन्तु इन भोले भाइयोंको यह नहीं सूझता कि अयोध्यामें तो यहाँ तक परदेका आग्रह था कि

रनवासकी खास ड्योढ़ीपर स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको ही पहरेपर रक्खा जाता था। देखिये—

प्रणम्य रामस्तान् वृद्धांस्तृतीयायां ददर्शसः।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः॥
(वा०रा० २।२०।१२)

उन वृद्धोंको प्रणामकर श्रीरामजीने तीसरी ड्योढ़ी पर स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको पहरा देते हुए देखा।

आदिकविके लेखसे यह भी पता चलता है कि अयोध्यापुरीमें अविवाहिता कन्याओंको छोड़, विवाहिता स्त्रियाँ वाटिका आदिमें भी नहीं जाती थीं। देखिये—

नाराजके जनपदे उद्यानानि समागताः।
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः॥

अर्थात् अराजराज्यमें सोनेके गहनोंसे भूषित कुमारियाँ सायंकालके समय बागोंमें क्रीड़ा करने नहीं जाती थीं।

इन सब प्रमाणोंके रहते कोई भी विवेकी एवं विचारवान् पुरुष रामायणके आधारपर यह नहीं कह सकता कि उस कालमें परदा था ही नहीं। जो ऐसा कहता है, कवि अकबरके कथनानुसार उस मर्दकी 'अक्लपर परदा' पड़ गया है।

वैदेही-विलाप

१

जिसे प्राणोंसे भी, अधिक प्रिय माना सुखद था।
तुम्हें होना स्वामी, विलग क्षणको भी दुखद था॥
जिसे प्रासादोंमें, व्यथित करते चित्र पट थे।
जिसे हा! दैत्योंके, सचमुच खिलौने विकट थे॥

२

तुम्हारी वामाङ्गी, अवनि पग जो थी न धरती।
सदा आमोदोंमें, नित नव रही मोद भरती॥
सरोजाक्षी भार्या, रघुपति! वही कष्ट सहती।
दिखाती तेजस्वी, अरुण सुषुमा बाल रवि-सी॥

३

जिसे खोया स्वामी, गिरि बन गुफा खोजत रहे।
लताओंसे पूँछा, बहु विपिनके संकट सहे॥
उठाया तोड़ा था, धनु सहज ही जीवन दिया।
लजाया भूपोंको, मम हृदय था हर्षित किया॥

४

बताओ लाये हो, कनक-मृग मेरा वह कहाँ।
बिछानेको कोई, प्रियवर नहीं आसन यहाँ॥
रमाये धूनी-सी, जनक-तनया योगिन बनी।
पड़ी है लङ्कामें, चहुँ घिर रही निशिचर अनी॥

५

दृगोंसे धारा-सी, अविरल महा उष्ण बहती।
चितामें चिन्ताकी, विधुड़ सहसा आज दहती॥
तुम्हारी ही माला, विरह-व्यथिता मौन जपती।
तुम्हारी वैदेही, अहह विधि! यों है कलपती॥

६

सुमित्राके प्यारे, लखन तुमको था कटु कहा।
उसीसे तो देखो, ललन इतना सङ्कट सहा॥
कहाँ हो आओ तो, रघुपति! भुलाया किमि कहो।
अहिल्या-सी नारी, सहज तुम नारी प्रभु अहो!

७

दारद्राका-स्वामी, तपन तनमें और मनमें।
बढ़ाता ही जाता, जलन अब ऐसे विजनमें॥
निदाघ ज्वाला-सी, उर उठ रही हाय! अब तो।
प्रभो! होने जाते, विमुख अपने आज सब तो॥

८

पतिप्राणा सीता, प्रभु-अनुचरी लोग कहते।
विरागी ध्यानी भी, नित युगल-जोड़ी निरखते॥
बिसारेंगे वे भी, अहह! मुझको मान अबला।
कहायेगी स्वामी, रघुकुल-वधू क्या न सबला॥

९

तुम्हारी शोभा श्री, निरख सुख होता अतुल था।
मुझे सेवामें ही, विभव मिल जाता विपुल था॥
अहो अन्तर्यामी! सब प्रकट है बात मनकी।
गिनायें व्याधाएँ, अब अधिक क्या हाय! तनकी॥

रमाशङ्कर मिश्र, 'श्रीपति'

सतीके मरणान्त प्रायश्चित्तका गुप्त कारण

(लेखक–श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)

आत्यन्तिक क्षेम यानी 'परम कल्याण' के अधिकारी 'कल्याण' के रसिक पाठक इस लेखका शीर्षक देखकर सम्भवतः आश्चर्य करेंगे और इस रामायणांकके विद्वान् लेखक भी कहेंगे कि इस विशिष्ट सुन्दर अंकके लिये सम्पादकने जिन शताधिक विषयोंकी सूची तैयार की थी, उसमें उपर्युक्त नाम नहीं है। तथापि निम्नलिखित विषय पढ़नेपर मुझे आशा है कि वे इसको सूचित विषयोंके अन्तर्गत ही मानकर इसे श्रीरामचरित्रके पूर्णत्वका निदर्शक ही समझेंगे!

कुछ समय पूर्व एक प्रसिद्ध कानून-व्यवसायी सज्जनने अपने व्याख्यानमें यह प्रतिपादन किया था कि 'श्रीराम ईश्वर-के अवतार नहीं थे, वे एक महान् सद्गुणसम्पन्न नरपति थे।' जो लोग पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके कारण अपनी सनातन-धर्म-संस्कृति तथा औपनिषद-विद्यासे कुछ दूर चले गये हैं, जिन्होंने 'प्राप्य वरान्निबोधत' इस श्रुति-वचनानुसार शास्त्रोंका उचित रीतिसे अभ्यास नहीं किया है और जो मनमाने तौरपर अर्थ लगाकर अपनेको पण्डितम्मन्य मानते हैं, उनके विचारोंका ऐसा बन जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, दुःख तो इतनाही है कि इन उपाधिधारी आधुनिक विद्वानोंको सर्वसाधारण सर्वज्ञ और नेता मानते हैं और इनके वचनोंका अनुसरण करना चाहते हैं।

जैसे कानूनका बड़ेसे बड़ा डिग्रीप्राप्त विद्वान् रोगीका निदान नहीं कर सकता, जैसे शिक्षा और अनुभवसम्पन्न नामी डाक्टर मशीनके पुर्जे नहीं सुधार सकता और जैसे मिल चलानेवाला फर्स्ट क्लास मेकेनिकल इञ्जिनियर सेतु निर्माणमें सलाह देनेका अधिकार नहीं रखता, वैसे ही शास्त्र-ज्ञान-शून्य मनुष्य शास्त्रीय गुह्य विषयोंपर भी कुछ नहीं कह सकते। किसी भी एक विद्याविशेषमें कोई चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो वह सभी विषयोंपर मत देनेका अधिकारी नहीं है। जो लोग किसीको सब विषयोंमें अधिकारी समझते हैं वे भूल करते हैं और अपने आपको ऐसा समझनेवाले तो वृथाभिमान और दम्भका आचरण करते हैं। अतएव जिसने जिस विषयका शास्त्रोंके द्वारा अध्ययन किया है, उसीको उक्त विषयका प्रतिपादन करनेके लिये आगे बढ़ना चाहिये और सुशिक्षित सज्जनोंको भी उसी विषयमें उसका मत मानना चाहिये, अन्यथा अनर्थकी बड़ी सम्भावना है।

'श्रीराम मनुष्य हैं या ईश्वर' इस सम्बन्धमें कुछ समय पूर्व मैं बेलगाँवके एक मराठी पत्रमें यथामति बहुत कुछ लिख चुका हूँ, इसके अतिरिक्त 'श्रीरामचरित्ररहस्य' नामक मराठी पुस्तकमें भी इस विषयमें बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है। उक्त पुस्तकका हिन्दी-रूपान्तर 'कल्याण' के तृतीय वर्षके ११ वें अंकमें प्रकाशित हो चुका है, अतएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। अवश्य ही साररूपमें इतना निवेदन कर देता हूँ कि भगवान्‌के अवतार-का रहस्य बड़े-बड़े ज्ञानियोंके समझमें भी नहीं आता। स्वयं ब्रह्माजीने मुखसे अस्मदादयः 'हमारे सदृश पुरुष भी मोहित हो जाते हैं' कहा है तब अन्यान्य ज्ञानियोंकी तो बात ही कौन-सी है?

ब्रह्मज्ञानियोंके लिये भी अवतार रहस्य जानना कठिन है।

श्रीएकनाथ महाराजने भागवतके एकादश स्कन्धकी टीकामें ब्रह्मस्तुतिके प्रसंगान्तर्गत कहा–हे प्रभो! तू गुणातीत देहातीत होकर भी लीलासे (स्वेच्छासे) कैसे देह धारण करता है? अवतार धारणकर क्योंकर चरित्र करता है? और फिर उन अवतार-शरीरोंका कैसे त्याग करता है? इन प्रश्नोंका रहस्य ब्रह्मा आदि देवतागण भी नहीं जानते। ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति सुखपूर्वक हो सकती है परन्तु तेरे लीला-देह धारणका तत्त्व उन बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानियोंके भी पूर्णरूपसे जाननेमें नहीं आता।' तात्पर्य यह कि इन्द्र, ब्रह्मादि देवता जो अपरोक्ष ज्ञानी हैं, वे ही जब भगवान्‌के अवतार-रूपको पहचाननेमें मोहित हो गये, उनको भी जब अवतार-रूपका अन्त नहीं मिला तब अन्य ब्रह्मनिष्ठोंकी तो गति ही क्या है? श्रीकृष्णावतार-के समय इन्द्र और ब्रह्माजीकी जो दुर्दशा हुई थी, उसको सभी जानते हैं। इसी प्रकार श्रीरामावतारमें भवानी सती देवीकी भी बड़ी दुर्दशा हुई थी, इस कथाको महाराष्ट्र-

सन्तोंने जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है।

श्रीरामका सीता-विरह, शंकरकी अचल निष्ठा और सती-मोह।

रावणद्वारा सीताके हरे जानेपर श्रीराम सीता-वियोगसे व्याकुल हो गये। पूर्णिमाका शीतल सुधांशु उन्हें ग्रीष्म-मध्याह्नके प्रखर सूर्य-सा प्रतीत होने लगा। सुन्दर शीतल पवनके झकोरे उन्हें वज्रपातका अनुभव कराने लगे। लक्ष्मणने पुष्पशय्या रचकर उन्हें उसपर सुलाया, पर वह फूलोंकी कोमल पंखड़ियाँ श्रीरामके बदनमें सूईकी तरह चुभने लगीं। वे न तो फूलोंकी सेजपर सो ही सके और न उसपरसे उठकर कहीं एक स्थानमें शान्तिसे बैठ सके। एक साधारण मनुष्यकी भाँति 'हा सीते' 'हा सीते' की पुकार मचाते हुए शोकाकुल हो वनमें इधर-उधर भटकने लगे। गुसाईंजी लिखते हैं—

पूरनकाम राम सुखरासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥
पर-दुख-हरन सो कस दुख ताही। भा बिषाद तिन्हहूँ मनमाहीं॥
हा! गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-ब्रत-नेम-पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाती॥
हे खग मृग हे मधुकरस्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

सीताके वियोगसे उनकी विचित्र दशा हो गयी, वियोगके कारण उनका संयोग-चिन्तन जाग उठा और अन्तःकरण सीतामय बन गया, यहाँतक कि वे 'सीता सीता' कहकर वृक्ष और पाषाणोंको आलिंगन करने लगे।

श्रीरामकी यह दशा देखकर लक्ष्मणको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रभुको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ हुए। आकाश-स्थित देवता प्रभुकी प्रत्येक लीलाको कौतूहल-पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। विश्वकण्टक रावणका भगवान् श्रीराम कब सकुल संहार करेंगे, वे इसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान् शंकर तो अपने आराध्य श्रीरामके गुण-लीला-चिन्तनमें सर्वदा ही डूबे रहते हैं। वे प्रेमपूर्ण दृष्टिसे श्रीरामकी विचित्र लीलाएँ देख रहे थे। अर्धाङ्गिनी भवानी दाक्षायिणी सती भी उसी दृष्टिसे देख रही थी परन्तु उसकी अन्तर्दृष्टिमें कुछ अन्तर उत्पन्न हो गया। श्रीरामके 'माया-मनुष्य-रूप' को वह भूल गयी। उसने भगवान् शंकरसे पूछा कि 'आप जिन रामको पूर्णब्रह्म मानते हैं क्या वे यही हैं?' शंकरने कहा, 'हाँ, यही मेरे पूर्णब्रह्म राम हैं।' सती बोली—'यह तो 'सीता सीता' की पुकार मचाते हुए व्याकुलतासे पेड़-पत्थरोंको भी छातीसे लगा रहे हैं?' 'शिवजीने कहा' 'तथापि यह पूर्णब्रह्म हैं।' सतीने पूछा—'क्या आप इन्हींका ध्यान करते हैं?' शिवजी बोले,—मेरे ध्यान, ज्ञान, विज्ञान सभी कुछ यह पूर्णब्रह्म राम ही हैं।' भवानीने कहा—'तब तो आप दोनों ही—भगवान् और भक्त एकसे ही विषयी और कामी दीख पड़ते हैं।' इतना कहकर वह हँस पड़ी। इसपर शिवजीने कहा, 'मेरा राम इस समय विषयी और कामीकी तरह रोता है, गिर पड़ता है, तड़पता है, परन्तु तू निश्चय समझ कि यही परब्रह्म है।'

धन्य शंकरकी निष्ठा! किसी भी अवस्थामें जिसके मनमें प्रभुके प्रति किञ्चित् भी विकल्प नहीं पैदा होता, वही तो सच्चा निष्ठावान् है!

सतीका कपट

सतीको मोह हो गया था, उसने शंकरके निश्चित वचन सुनकर उनसे कहा—'यदि मैं रामको छका दूँ तो?' शिवजी बोले, 'तब हम समझ लेंगे कि यह ब्रह्म नहीं हैं।' भवानी बोली—'आप कहें तो मैं इसी क्षण रामको चक्करमें डाल दूँ।' शंकरने कहा, 'वे पूर्ण सावधान हैं, तेरी इच्छा हो तो परीक्षा कर देख!' इतना सुनते ही सतीने सीताका रूप धारण कर लिया और वह उसी ओर गयी, जहाँ श्रीरामजी विचर रहे थे। सतीजी सीताके वेषमें (हँसती हुई) श्रीरामकी आँखोंके सामने आकर खड़ी हो गयी। श्रीरामने उसकी ओर बिना ही ताके मुँह फेर लिया और 'हा सीते' 'हा सीते' पुकारने लगे। 'इधर देखिये, मैं आ गयी' कहकर सती फिर सामने गयी, भगवान् उसे वहीं छोड़ दूसरी ओर फिरकर पहलेकी भाँति पेड़-पत्थरोंको आलिङ्गन करने लगे। वह बार बार श्रीरामके सामने गयी परन्तु राम उससे विमुख होकर वैसे ही 'सीते सीते' पुकारने लगे। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'रघुराज, श्रीसीतादेवीके सामने आ जानेपर भी आप शोक क्यों कर रहे हैं?' यह सुनकर भगवान् लक्ष्मणपर बिगड़े। जब लक्ष्मणने फिर विनती की तो राम उन्हें डाँटते हुए बोले—'सौमित्र, तू भाई होकर भी मुझसे वैर क्यों कर रहा है? यहाँ कहाँ सीता आयी है? मेरा तो अन्तःकरण उसके लिये दग्ध हो रहा है।' यह सुनकर लक्ष्मणने सोचा कि 'सीताके विरहमें रामको उन्माद हो गया है, इसीलिये सीताका नाम सुनते ही मारने दौड़ते हैं, अतएव मेरा मौन रहना ही उचित है। माता सीता आप ही समझा देंगी।'

इधर स्वर्गमें देवगण भी बड़ी दुविधामें पड़ गये और परस्पर कहने लगे कि 'रावणके यहाँसे छूटकर सीता कैसे यहाँ आ गयी?' ऋषियोंको भी आश्चर्य हुआ। यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी विस्मित होकर यह कहने लगे कि 'क्या रावणको भस्म करके सीताजी यहाँ आ गयी हैं?' सारांश, ब्रह्मादि देवता भी इस रहस्यको नहीं जान सके। परन्तु पूर्णब्रह्म सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ श्रीरामने यह भेद जान लिया। लक्ष्मणके मौन होनेपर 'सीते'! सीते!' पुकारते हुए श्रीरामका हाथ कृत्रिम सीताने पकड़ लिया और कहा—'सावधान होइये, मैं तो आपके सामने खड़ी हूँ फिर व्यर्थ ही आप इधर उधर 'सीता, सीता' चिल्लाते हुए क्यों दौड़ रहे हैं? क्या ऐसा करते आपको लज्जा नहीं आती? आप तो सदा कहा करते थे कि मैं नित्य सावधान रहता हूँ। क्या आपका वह ज्ञान स्त्री-वियोगमें सर्वथा जाता रहा। सगे भाई भक्त लक्ष्मणके विनय करनेपर आप उसे डाँटते हैं। थोड़ी-सी देरके लिये मेरे आँखोंसे ओझल होते ही आप इतने जड़ कैसे हो गये? मैं तो वनमें छिपकर आपकी यह दशा देख रही थी, जब मैंने देखा कि आप तो पागल ही हो रहे हैं तब मैं दौड़ी आयी।'

> स पण्डितो नरश्रेष्ठः प्राज्ञः कर्मविदां वरः।
> अप्राज्ञ इव किं राम! भार्या हेतोर्विमुह्यते॥

'अब आप इस मोहको छोड़कर पञ्चवटीमें चलिये--' वनवासकी अवधिमें थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं, उन्हें बिताकर हमलोग अयोध्या लौट चलेंगे।' सतीके इन वचनसे भगवान् श्रीरामने हँसते हुए कहा—'' 'माता, मैं आपके चरण छूता हूँ, आप मुझे मत सताइये, मैं तो भगवान् शङ्करका एक दीन बालक, उनका एक अनन्य किङ्कर हूँ, फिर आप मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही हैं? भगवान् शङ्करको अकेले छोड़कर मुझे तंग करनेके लिये सीताका रूप धारणकर आप यहाँ क्यों आयी हैं?'

श्रीरामके इन वचनोंको सुनते ही सती सीताके स्वरूप-को त्यागकर तुरन्त श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली कि 'भगवान् शंकरने मुझसे कह दिया था कि श्रीराम नित्य सावधान और सर्वज्ञ हैं, उनके समीप तुम्हारा कपट नहीं चलेगा।' अब मुझे उन वचनोंका निश्चय हो गया। मैं शिवजीकी शक्ति हूँ, मैंने अपनी अतर्क्य मायासे सीताका स्वरूप बना लिया था। मुझे ब्रह्मादि देवता भी नहीं पहचान सके। आपका ज्ञान अगाध है, आप अगम्य गति हैं, आपके सामने किसीका भी छल-कपट नहीं चल सकता। आप ऐसे सर्वज्ञ होकर भी पागलकी भाँति पेड़-पहाड़ोंको आलिंगन करते हुए क्यों भटक रहे हैं? आपमें सीता-विरहका दुःख और कामकी वासना रत्तीभर भी नहीं है। हे राम! आप पूर्णब्रह्म हैं। मुझे इस बातका निश्चय हो गया। फिर आप विरह-वेदना न रहनेपर भी 'सीते सीते' पुकारते क्यों जंगल-जंगल घूम रहे हैं, कृपया मुझे इसका रहस्य समझाइये।' यों प्रार्थना करके सतीने श्रीरामके चरण पकड़ लिये।

श्रोता कैसा होना चाहिये।

इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा, 'देवि! मेरी लीला श्रीशिवजी जानते हैं, वे आप-को इसका रहस्य बतलावेंगे। अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करनी चाहिये। कहीं कुछ कहना भी पड़े तो पहले श्रोताके अधिकारकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। शुद्ध पात्र बिना रहस्यकी बात नहीं बतलायी जा सकती। ऐसे श्रोता छली, विवादी, धूर्त, वञ्चक, नास्तिक, कपट-भाषी, कुतर्की, आलसी और दम्भी नहीं होने चाहिये। शुद्ध सतो-गुणी, कामिनी-काञ्चनका त्यागी, पूर्ण परमार्थी और विवेक-सम्पन्न मनुष्य ही इस ज्ञानरहस्यका अधिकारी है। आपके मनमें ज्ञानका अभिमान है, इसीसे आप शिवजीके वचनोंका तिरस्कारकर मुझे छलने आयीं, फिर भला, मैं आपके सामने कोई बात कैसे कहूँ? जिसको पतिवचन, गुरुवचनपर विश्वास नहीं, उसे गोपन रहस्य नहीं बतलाना चाहिये।'

ज्ञानाभिमानके लक्षण।

भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर सती बहुत ही लज्जित हुई, वह मन-ही-मन कहने लगी कि 'मैं गुरुरूप पतिके वचनोंका उल्लंघनकर, शंकरकी बात नहीं सुन श्रीरघुनाथजीको छलने आयी, आग लगे मेरे इस ज्ञानाभिमानको।' यों कहकर वह पश्चात्तापसे रोने लगी। साधु सन्तोंके मिलनेपर उनके गुण-दोष ढूँढना, उनसे छल करना, उनके गुणोंमें भी दोषोंका आरोपकर उनकी निन्दा करना, मुखपर कुछ और और पीछेसे कुछ और ही कहना, उनपर श्रद्धा रखनेवालोंकी निन्दा करना, अथवा उनको मूर्ख ठहराना, ये सब ज्ञानाभिमानके लक्षण हैं। सतीने फिर कहा कि 'हे राम, मैं आपको छलने आयी, मेरा कपट आपके सामने नहीं चल सका, तब भी आपने मुझपर क्रोध नहीं किया। इससे मेरा मन पलट गया है। आपके दर्शनसे मेरा सारा

ज्ञानाभिमान जल चुका है। छल-कपट नष्ट हो गया है। हे राम, मैं आपकी शपथ करके ऐसा कह रही हूँ।'

सतीके इन अनुतापयुक्त वचनोंसे श्रीरामका हृदय पिघल गया और वह अपना गुह्य रहस्य कहने लगे--

वृक्ष-पाषाण-आलिंगनका रहस्य। हे देवि भवानी! आपको दीखनेवाले यह वृक्ष-पाषाण पूर्वजन्ममें ऋषि थे। इन्होंने मेरी प्राप्तिके लिये निष्काम अनुष्ठान किया था। मेरी चरण-प्राप्तिमें इनका पूरा सद्भाव था, इससे ये सारा अभिमान त्यागकर वृक्ष-पहाड़ बन गये हैं, कोई वृक्ष बनकर, कोई पहाड़ बनकर और कोई तृण बनकर मेरे चरणोंके नीचे पड़े हैं। इनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही मैं परम प्रेमसे इनका आलिङ्गन कर रहा हूँ। ये सब मेरे निरभिमान भक्त हैं और मैं भक्तोंके भावका अर्थी हूँ। सीताके बहाने इन सबको ढूँढ़ता हुआ वन-वन भटक रहा हूँ। भक्तोंका उद्धार करने और उन्हें आनन्द प्रदान करनेके लिये ही मैं रोता हूँ, कहीं गिर पड़ता हूँ, कहीं लड़खड़ाता हूँ, पहाड़ोंपर दौड़ता हूँ और वृक्षोंको हृदय लगाता हूँ। हे सती! आप यह निश्चय समझिये कि मैं एक कदम भी व्यर्थ नहीं रखता। भगवान् सदाशिव इस तत्त्वको जानते हैं।'

परमार्थका रहस्य। शुद्ध भावका अभिप्राय है, 'सब भूतोंमें भगवान् देखना।' यही एक स्वार्थका भी स्वार्थ और प्रधान परमार्थ है। गुड़के करेले जैसे न तो कड़ुए होते हैं और न उनमें काँटे रहते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मवृत्तिसे किया हुआ कर्म बन्धनकारक नहीं होता। चीनीके चने नूँ बेको कड़ुआ बतानेवाला ठगा जाता है। इसी प्रकार साधुओंके कर्मकी निन्दा करनेवालेका भी अधःपतन होता है *। कर्म प्राकृतिक गुणोंसे होते हैं, परन्तु ज्ञानी प्रकृतिके गुणोंसे अतीत होनेके कारण कर्मसे सर्वथा निर्लेप रहते हैं। 'समस्त दृश्यमात्र ही ब्रह्म है,' इस वृत्तिसे कर्म करनेके कारण उनके कर्म ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं। वह कभी मोहमें नहीं पड़ते। सन्तोंकी महिमा अगाध है। इन साधुओंको वृक्ष-पर्वत न समझकर आप पूर्णब्रह्म समझिये।' इतना कहकर श्रीरामने कृपा-दृष्टिसे सतीकी ओर देखा!

सतीकी ब्रह्म-समाधि। श्रीरामके द्वारा यह उपदेश सुनते ही सती मूर्छित होकर गिर पड़ी। मैं ही एक शक्ति हूँ, और वही एक शिव हैं, इस बातको वह भूल गयी। 'अहं' 'कोहं' 'सोहं'की भावना मिट गयी। उसका चित्त चैतन्यके साथ एकरस हो गया, जिससे सारे भाव लुप्त हो गये। नामरूपका परदा फट गया। दृश्य-द्रष्टाका भेद नष्ट हो गया, सर्वत्र ब्रह्म ही व्याप्त हो गया, निजानन्दकी लहरें उठीं और निजानन्दमें ही स्थिर हो गयीं। इसप्रकार शिव-प्रिया सतीकी समाधि लग गयी! छलनेके लिये आयी हुई सतीकी ऐसी अनुपम अवस्था हो गयी! यही सत्संगकी महिमा है, संत अपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं। इसप्रकार पूर्णरूपसे समाधानको प्राप्त करनेपर कुछ समयके बाद भवानीको बाह्य ज्ञान हुआ, उसे अखिल विश्व सच्चिदानन्दघनरूप दीखने लगा!

यह देखकर श्रीराम बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि 'देवि! मेरी एक बात सुनोगी?' उमाने दौड़कर श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रख दिया और गद्गद् वाणीसे कहा। 'देव! आपके कारण मेरा मोह नष्ट हुआ, मैं सुखरूप हो गयी। भला, मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकती हूँ?' श्रीराम बोले, 'माता! मैं आपसे एक ही भीख माँगता हूँ कृपा करके मुझे दो, वह यह कि श्रीशंकरके वचनोंको कभी झूठ न समझना, और आइन्दे किसीके भी साथ छल न करना।' इसपर भवानी बोली- 'हे राम, आपके चरण-दर्शनसे ही मेरी सारी दुष्ट वृत्तियाँ दग्ध हो गयीं, अबसे मैं कभी श्रीशंकर-आज्ञाकी अवहेलना नहीं करूँगी। आपके वचनोंसे मेरी अविद्या भस्म हो गयी है। मैं आपकी शपथ खाकर कहती हूँ कि मेरा सारा छल-कपट नष्ट हो गया है। आपके शब्दोंसे मुझे सायुज्य-सुखकी प्राप्ति हो गयी।' इतना कहकर भवानी श्रीरामके चरण-वन्दन कर आनन्दपूर्वक कैलासकी ओर चली गयी!

* जो ज्ञानीकी निन्दा करते हैं, उनसे छल करते हैं वे उनके पापके हिस्सेदार होते हैं और जो एकान्त-भावसे उनकी स्तुति पूजा और सेवा करते हैं उनको ज्ञानीका पुण्य मिलता है, श्रुतिने इसप्रकार ज्ञानीके पाप-पुण्योंके अधिकारी बताये हैं— (हंसराज-कृत वाक्यवृत्ति।)

ज्ञानीमें वास्तवमें पाप-पुण्य होते ही नहीं, जो उनमें पापका आरोप करता है वह पापका और जो पुण्यका आरोप करता है, वह पुण्यका भागी होता है। -सम्पादक

श्रीलक्ष्मण इस घटनाको देख रहे थे, सतीके चले जानेके बाद उन्होंने भगवान्‌के चरण पकड़कर कहा कि 'नाथ ! मैंने तो इन्हें माता सीता समझा था,परन्तु वह तो शिवकान्ता भवानी निकलीं । आपने इन्हें खूब पहचाना । सचमुच ही आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं ।' ब्रह्मा आदि देवता भी इसीप्रकार उद्गार प्रकट करते हुए श्रीरामके चरणोंमें सिर नवाकर अपने अपने लोकोंको चले गये । सबका संशय दूर हो गया, श्रीलक्ष्मणको शान्ति मिली ।

श्रीएकनाथ महाराज अपने भावार्थरामायण (अरण्यकाण्ड अ० २०)में लिखते हैं-कि यह उमा-राम-संवाद शिवरामायणमें है और ज्ञानी श्रोता इसको जानते हैं ।

वाल्मीकिने शतकोटि रामायणोंकी रचना की, जिनके तीन विभागकर शंकरने स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल इन तीनों लोकोंमें बाँट दिया । तीन विभाग कर देनेके बाद शेष दो अक्षर 'रा' 'म' बच रहे । दो होनेसे इनके तीन हिस्से नहीं हो सके, अतएव इनको श्रीशिवजीने अपने कण्ठमें धारण कर लिया । श्रीएकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें रामायणोंकी एक सूची दी है, उसे कल्याणके पाठकोंके लिये मूल मराठीमें ही हम यहाँ उपस्थित करते हैं, पाठक सहज ही रामायणोंके नाम समझ लेंगे ।

शिव-रामायण शैव-रामायण । आगम-पंचरात्र-रामायण ।
महा गुह्यक-रामायण । हनुमन्त-रामायण नाटक ॥
मत्स्य-कूर्म वराह-रामायण । कार्तिकस्वंडींचें निरूपण ।
महाकाली-रामायण । स्कंद-रामायण प्रसिद्ध ॥
अगस्ति-पौलस्ती रामायण । पद्मपुराणींचें रामायण ।
रवि-अग्नि-वरुण रामायण । ऐकोनि आपण उद्धरु वर्ण ॥
नंदिग्रामीं भरत आपण । वदे तें भरत-रामायण ।
महाभारतींचें रामायण । वक्ता आपण श्रीव्यास ॥
क्रौंचद्वीपीं अद्यापि जाण । क्रौंच ऋषि सांगे पुराण ।
कथा पवित्र रामायण । अति पावन अनुपम्य ॥
विभीषणापाशीं जाण । नित्य कथा निरूपण ।
धर्मऋषि सांगे आपण । धर्म रामायण धार्मिक ॥
श्वेतद्वीपींचें निरूपण । श्वेतकेतु रामायण ।
कथा विचित्र विंदान । अति पावन तीहीं लोकीं ॥
शंकर वक्ता स्वयें आपण । श्रोता भवानी सावधान ।
ते शिवभवानी रामायण । कथा विंदान विचित्र ॥
सदाशिव स्वयं वक्ता । स्वयें श्रीराम निज श्रोता ।
ते शिवरामायणी कथा । श्रवणीं ऐकतां स्वानंद ॥
स्वयें श्रीराम स्वानंदें पूर्ण । आपणा प्रति वदे आपण ।
ते कथा आत्म-रामायण । गोड निरूपण सर्वार्थी ॥
जैमिनीकृत रामायण । अपूर्व कथेचें विंदान ।
अलौकिक निरूपण । आश्चर्ययुक्त जाण चरित्र ॥

भवानीका प्रायश्चित्त

दाक्षायणी सती देवीने कैलास पहुँचकर अनुतापसहित श्रीशंकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया । भगवान् शंकर सर्वज्ञ और केवल धर्मकी ही मूर्ति हैं । उन्होंने उस समय भवानीसे कुछ भी नहीं कहा । परन्तु मनमें यह सोचा कि इसने मेरे परम पूज्य उपास्यदेव श्रीरामके साथ छल और उनका अत्यन्त अपमान करके घोर पाप किया । जब इसने श्रीसीताका—मेरे प्रभु श्रीरामकी पत्नीका स्वरूप धारण कर लिया तब यह मेरे लिये सीताजीके समान पूजनीया हो गयी । इसके साथ मैं पत्नीका सम्बन्ध कैसे रख सकता हूँ ? यह सोचकर शिवजी बहुत ही दुखी और उद्विग्न हुए एवं सतीके पत्नी-भावको छोड़ दिया तथा अलग रहने लगे ।

सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करौं सतीसन प्रीती । मिटइ भगति-पथ होइ अनीती ॥
एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं । सिव संकल्प कीन्ह मनमाहीं ॥
सन्मुख संकर आसन दीन्हा ।

सतीको इससे मृत्यु-सदृश दुःख हुआ । उसने दक्षयज्ञ-को निमित्त बनाकर अपना शरीर भस्म कर दिया और फिर हिमाचलके यहाँ जन्म ग्रहणकर पार्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुई । नवीन जन्ममें पुनः महान् तप करके शंकरजी-को पतिरूपमें प्राप्त किया ।*

इति विद्या तपो योनिर्विष्णुरीडितः ।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥

*गुसाईंजीने भी मानसमें इस प्रसंगका बड़ा ही सुन्दर उपदेश-प्रद और रोचक वर्णन विस्तारपूर्वक किया है । सतीके सन्देहसे लेकर हिमाचल-कन्या पार्वतीके विवाहतकका प्रसंग मानसके बालकाण्डमें अवश्य पढ़ना चाहिये ।—सम्पादक

श्रीरामचरित-मानसका दार्शनिक सिद्धान्त

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी सिंहल एम० ए०)

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम-पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

इस एक दोहेमें गुसाईंजीने अपना दार्शनिक सिद्धान्त साररूपमें उपस्थित कर दिया है। गुसाईंजी उस उच्च सिद्धान्तपर पहुँचे हुए थे, जहाँ पुरुष, प्रकृति, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि सिद्धान्तोंके भेद परस्पर विरोधी न रहकर एक दूसरेके पोषक हो जाते हैं। आपने रामायणके प्रारम्भमें ही वन्दना करते समय कहा है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा,
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां,
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

'अर्थात् उत्पत्ति, रक्षा और संहार करनेवाली, क्लेश हरनेवाली, सर्व श्रेय (सम्पूर्ण कल्याण) करनेवाली श्रीरामकी प्रिया सीताको मैं नमस्कार करता हूँ।'

'जिसकी मायाके वशमें अखिल विश्व, ब्रह्मादि देवता तथा असुर हैं, जिसकी सत्तासे रस्सीमें साँपके भ्रमकी भाँति सब कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है, जिसका चरण भवसागरसे तरनेकी इच्छा करनेवालोंके लिये एकमात्र नौका है उस अशेष-कारण-पर, रामनामसे प्रसिद्ध श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इसमें विविध वादोंका कैसा सुन्दर और स्पष्ट समन्वय किया गया है। पहले तो प्रकृतिरूप सीताजीको संसारके उद्भव, स्थिति तथा संहार करनेवाली कह दिया परन्तु फिर भगवान् (पुरुष) रूप श्रीरामजीको 'अशेष-कारणपरं'—सम्पूर्ण कारणोंका भी कारण बतलाया। इसके साथ ही श्रीरामजीके लिये यह भी कह दिया कि इन्हींकी सत्ताके आधारसे यह असत् संसार भी रस्सीमें सर्पके भ्रमकी भाँति सत्य प्रतीत होता है।

इस विवेचनामें निर्गुण और सगुणका कैसा सुन्दर मेल है? गुसाईंजीके लिये श्रीरामजी केवल मनुष्यरूप पुरुषोत्तम राम ही नहीं हैं, वे 'निर्गुण-स्वरूप राम' भी हैं। यथार्थमें आपके विचारानुसार तो सगुणके यथार्थ स्वरूपको पहचानना निर्गुणसे भी कठिन है। उत्तर-काण्डमें आप स्पष्ट कहते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोइ।
सुगम अगम नाना-चरित सुनि मुनि-मन भ्रम होइ॥

यह समस्या जैसे बड़ी ही जटिल है वैसे ही सहज भी है। भगवान्‌के नाम और रूपके विषयमें आप कहते हैं—

नामरूप दोउ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

रामायण कैसा अद्भुत ग्रन्थ है। दर्शन, योग एवं भक्तिके अनुपम रहस्य इसमें भरे हैं। परन्तु यहाँ सगुणके रहस्यपर कुछ नहीं कहना है अतएव यह विषय यहीं छोड़कर केवल दार्शनिक सिद्धान्तपर ही कुछ कहा जाता है—

उपर्युक्त श्लोकमें श्रीरामजीको पुरुष तथा श्रीसीताजी-को प्रकृतिका स्वरूप मानकर, प्रकृतिको संसारका कारण कहा है और पुनः पुरुषको भी परम कारण बतलाते हुए, संसारको झूठा—सत्य-सा प्रतीत होनेवाला बतलाया है। यह एक पहेली है, जिसको सुलझाना आवश्यक है।

प्रकृति और पुरुषमें क्या भेद है? ये दोनों केवल कहनेमें भिन्न भिन्न जान पड़ते हैं, वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। वाणी एवं उसके अर्थ तथा जल और उसकी लहर, इसके ये दो उदाहरण हैं। वाणी और अर्थ कोई ऐसी दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं जो किसी प्रकार जोड़ दी गयी हों। जब मन अपने भावको किसीपर प्रकट करना चाहता है, तब वह जो संकेत करता है उसमें उस भावका समावेश रहता ही है। या यों कहिये कि संकेत उस भावका बाह्यस्वरूप है। सभ्य मनुष्य जब किसी भाषामें बातचीत करते हैं तो वह विशेष संकेतोंका प्रयोग करते हैं—यह ठीक है, परन्तु वे संकेत जिन अर्थोंके लिये होते हैं, वे कुछ पीछेसे जोड़े

नहीं आते। सहस्रों वर्षोंसे कुछ निर्दिष्ट भावोंके लिये कुछ निर्दिष्ट संकेत अनेक बार प्रयुक्त होते-होते शब्दका रूप धारण कर लेते हैं। जिसप्रकार वाणीके अन्तर्गत अर्थ निहित है उसी प्रकार प्रकृति या 'स्वभाव' पुरुषके अन्दर होता है, उससे पृथक् नहीं होता। पुरुषके स्वभावको ही प्रकृति कहते हैं। जैसे जल और उसकी शीतलतामें कथनमात्रका भेद है, वास्तविक नहीं है। गुण और गुणी पृथक्-पृथक् नहीं रह सकते। जैसे बिना गुणके गुणीका कोई अस्तित्व नहीं, वैसे ही गुणीके आधारके बिना गुणका रहना भी असम्भव है—दोनोंकी स्थिति एक ही साथ होगी। विचारके सुभीतेके लिये इनका द्वैत भले ही मान लिया जाय, यथार्थमें सत्ता अद्वैत ही है।

फिर इस संसारका स्वरूप क्या है? गुसाईंजी जल और उसकी लहरका उदाहरण देते हैं। लहर ही संसार है। पुरुषके स्वभावानुसार उसमें स्पन्दन हुआ और उससे जो स्वरूपभेदकी परिणति हुई, वही संसारका प्रकट स्वरूप है। यह स्पन्दन कैसा हुआ और स्वरूप-भेद कैसे और क्यों प्राप्त हुए? इन प्रश्नोंका उत्तर ऋग्वेदके नासदीय सूक्त (मण्डल १० सूक्त १२६) में बहुत ही स्पष्ट और सुन्दरता-के साथ दिया गया है। यहाँ उस विषयकी चर्चा करनेसे लेख बहुत बढ़ जायगा। अस्तु, यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'प्रकृति' रूप स्वभावसे उत्पन्न हुई क्रिया-का परिणाम ही यह संसार है।' परिणामवादका भी तो यही सिद्धान्त है।

यह स्वभाव भगवत्-स्वभाव होनेके कारण दोषी नहीं कहा जा सकता इसीलिये प्रकृतिको 'क्लेशहारिणी' (क्लेशों-को हरण करनेवाली) तथा 'सर्वश्रेयस्करी' (सर्व कल्याण करनेवाली) कहा गया है। अरण्यकाण्डमें भी श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणजीको उपदेश देते समय मायाको विद्या तथा अविद्या-भेदसे दो प्रकारका कहा है। पुरुषकी प्रकृति—विद्यारूप माया उन क्रियाओंके ज्ञानका भण्डार है जिनके द्वारा पुरुषका रूपान्तर होता है। यही ब्रह्माके मुखसे निःसृत, सरस्वतीद्वारा प्रकाशित वेदोंका ज्ञान है। यह शुद्ध माया है, इसके सहारेसे मनुष्य शनैः शनैः पुरुष तक पहुँच जाता है। जीव अपने जिस 'अज्ञान'वश विद्याके यथार्थ स्वरूपका दर्शन नहीं कर पाता, वह अज्ञान ही मोह या अविद्यारूप दुष्ट माया है, यह अविद्या उस परब्रह्मके 'स्वभाव' रूप विद्या (प्रकृति) से भिन्न है यह तो स्वरूप-जनित भेदसे प्राप्त जीवकी अज्ञानता है।

यद्यपि विद्यारूप प्रकृतिकी क्रियासे आधाररूप पुरुष (परम कारण ब्रह्म) में ही रूपान्तर होता है, परन्तु जीव जब इस रूपान्तरको भी यथावत् नहीं जानता, तब इस रूपान्तरके अन्तर्गत जो पुरुष यथार्थ नित्य शान्त एकरस-स्वरूपसे विद्यमान है उसे कैसे जान सकता है? इसी कारण वह इस रूपान्तरको कुछका कुछ समझता है, यही उसका 'रस्सीमें सर्पका भ्रम' है। रस्सीरूप आधार तो है ही, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको न जानकर अज्ञानताके अन्धकारमें उसे सर्प समझता है। यदि रस्सी सीधी रक्खी हुई है तो उसे सीधा सर्प, और यदि वह टेढ़ी रक्खी है तो उसे टेढ़ा सर्प प्रतीत होता है। और कदाचित् रस्सीके पास ही रस्सीका एक छोटा-सा पिण्ड रक्खा हो तो उसे सर्पके पास एक ऐसा मेंढक दीखने लगेगा, मानो सर्प उसे अभी निगलना ही चाहता है। यद्यपि दोनोंका आधार-स्वरूप रस्सी एक ही है परन्तु उसके दो स्वरूप होनेसे वे पृथक् दिखलायी देंगे और उनका यथार्थ भेद नहीं दीखेगा वरं अज्ञान जिस जिस प्रकारके भेदोंका उनमें आरोप करेगा वे ही दिखलायी देंगे। यदि हम रस्सीके पिण्ड और रस्सीको मेंढक और सर्प न समझें, उनके स्वरूप-भेदको यथार्थतः समझें अर्थात् विद्यारूप प्रकृतिको जानें तो हम सहजमें ही रस्सीके यथार्थ स्वरूपतक पहुँच जायँगे। यही विवर्तवाद—अध्यासवाद आदि सिद्धान्तोंका सार है।

फिर, 'जगत् मिथ्या है', 'त्रिकालमें हुआ ही नहीं' ऐसे वाक्योंका क्या अर्थ है? इसका उत्तर यह है कि जगत्-को हम जिस रूपमें देख रहे हैं वह मिथ्या है, वैसा त्रिकाल-में भी नहीं हुआ। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि कोई रूपान्तर ही नहीं हुआ; रूपान्तर तो हुआ ही। भगवान् श्रीकृष्णजी भी स्पष्ट कहते हैं कि 'इस जगत्की क्रिया आदिमें अव्यक्त, मध्यमें व्यक्त तथा अन्तमें अव्यक्त स्वरूपवाली है। मायावादी भी इतना तो मानते हैं कि मायाग्रस्त जीव ही संसारको अपने अज्ञानसे देखता है। यहाँ मायाग्रस्त जीव और शुद्ध आत्मस्वरूपका स्वरूपभेद तो उपस्थित होता ही है अर्थात् रूपान्तर-भेद तो होता है परन्तु उस भेदको हम यथावत् नहीं समझते, यह हमारा अज्ञान है।

जल और उसकी लहरको लीजिये। हमलोग जलको लहराते देखते हैं, उन दोनोंको हम भिन्न वस्तु नहीं समझते, वरं जानते हैं कि लहर जलका ही स्वरूप है। यदि उसमें बर्फके टुकड़े हों तो उनको भी हम जलका ही स्वरूप मानते हैं, किन्तु जो जलमें बहता हुआ कीटाणु लहर और बर्फके टुकड़ेको दूसरी तरह समझता है, उसे वे सब व्यापार आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, और विविध स्वरूपकी लहरें तथा बर्फके टुकड़े उसे भिन्न भिन्न वस्तुके रूपमें दिखायी देते हैं। उसको उनका स्वरूप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंकी अवस्थाके अनुसार ही व्यक्त होगा और वह उसी दृश्यको यथार्थ समझेगा। यही अवस्था मनुष्यकी है। हमें दृश्य जिस प्रकार दीख पड़ते हैं हम उन्हें वैसा ही यथार्थ समझ लेते हैं—यह तो हमारी भूल है। परन्तु हमें जो भिन्नता दिखायी पड़ती है उसका आधार—रूपान्तर—ब्रह्मके स्वरूपमें, जलमें लहरके समान हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यही बात वाणी और अर्थके विषयमें भी घटती है। वाणीमें अनेक शब्दोंके अनेक अर्थ हैं, परन्तु कहनेवालेके अर्थों और समझनेवालेके अर्थोंमें भेद रह सकता है और कुछ-न-कुछ भेद तो अर्थस्वरूपोंमें रहता ही है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि सुननेवाला जो पृथक्-पृथक् शब्दोंके पृथक् पृथक् अर्थ समझता है, वह भिन्नता निराधार है, वह भिन्नता कहनेवालेके अर्थोंकी भिन्नताके आधारपर है। इसी प्रकार जगत्की भिन्नता ब्रह्मके रूपान्तरके आधारपर है।

यहाँ यह शंका होती है कि 'ब्रह्ममें रूपान्तर कहनेसे तो उसमें विकार हो जाता है फिर उसे निर्विकार कैसे कह सकते हैं?'' इस सम्बन्धमें गुसाईंजीने 'खिन्न' शब्दका प्रयोग बड़े महत्त्वका किया है। वह कहते हैं कि सीताराम-जीको 'खिन्न' परम प्रिय है। भक्तिभावमें तो भगवान् दुःखी-पर दया करनेवाले हैं, अशरण-शरण हैं इसलिये आपको 'खिन्न' प्यारे हैं परन्तु दार्शनिक तत्त्वमें आप खिन्न अथवा विकारको धारण करनेवाले हैं। गुसाईंजी इस कठिनतासे नहीं घबड़ाते वरं वह इसे स्वीकार करते हैं कि ऐसे विकार तो ब्रह्मके स्वभावजनित होनेसे उनको परम प्रिय हैं। सच पूछिये तो गुसाईंजी ही क्या, जो लोग ब्रह्मको सर्वथा निर्विकार कहते हैं वे भी उसमें विकार उपस्थित कर ही देते हैं। माया चाहे ब्रह्म-पर आवरण डाले चाहे जीवपर, है तो विकार ही। और जहाँ ब्रह्म-ही-ब्रह्म है वहाँ माया कहाँ रहेगी? वह ब्रह्ममें ही विकाररूपसे रहेगी। उसे अनादि एवं अनिर्वचनीय कह देनेसे तो पीछा नहीं छूट सकता। ब्रह्ममें जीव-स्वरूपका प्राप्त होना ही विकार है। यदि रूपान्तर होनेको ही विकार कहा जाय तो इसमें गुसाईंजीको कोई संकोच नहीं। नहीं तो भला अद्वैत-सत्तारूप ब्रह्ममें जगत्का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?

तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि इस रूपान्तरसे ब्रह्मके शुद्ध स्वरूपमें कोई अन्तर पड़ जाता हो। जल चाहे बर्फके स्वरूपमें हो, चाहे लहरके, और चाहे भाफके—वह रहता 'H_2O' ही है। उसके परमाणुओंका स्वरूप वही है, वास्तवमें वह रहता जल ही है, इसलिये हम उन तीनों ही रूपोंको अवश्य एकरूप कहेंगे। इस दृष्टिसे उसे निर्विकार कह सकते हैं, क्योंकि उसके मूल स्वरूपमें कभी कोई भेद नहीं होता। मनुष्य जब समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्र और अलङ्कार धारण करता है तो उससे उसके स्वभाव अथवा व्यक्तित्वमें कुछ अन्तर नहीं आता। स्वर्णके अनेक अलङ्कार बनते हैं पर उनके स्वरूप-भेदसे स्वर्णमें कोई भेद नहीं होता। मिट्टीके अनेक पात्र होते हैं जो स्वरूपानुसार भिन्न-भिन्न गुणवाले होते हैं परन्तु उस भेदमें मिट्टीमें कोई भेद नहीं होता। स्वर्ण और मिट्टी जैसेके तैसे रहते हैं। इसी भावसे ब्रह्म भी निर्विकार, अपरिवर्तनशील, एकरस आदि है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह भी मालूम हो गया कि इस रूपान्तरका कारण परब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियाशक्ति है। अतएव हम कह सकते हैं कि परब्रह्मके अन्दरकी क्रियाशक्ति प्रकृति या उसकी माया ही संसारका कारण है, और यह भी कह सकते हैं कि परब्रह्म, जो उस शक्तिका धारण करनेवाला मायाधीश है, सम्पूर्ण कारणोंका कारण है। दोनों ही बातें ठीक हैं।

इस रूपान्तरमें इस शक्तिका सूक्ष्म स्वरूप क्या है? उसका विकास किस प्रकार होता है? संसार कैसे बनता है? और उसमें अज्ञान-युक्त जीव किस प्रकार प्रकट होता है? यह सब आवश्यक प्रश्न हैं और ऋग्वेदके ऋषियोंने इनका उत्तर भी दिया है। इस विषयमें यहाँ विस्तार-भयसे अधिक नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि इस रूपान्तरके सिद्धान्तानुसार जीव-सम्बन्धी माया वा अज्ञान यथार्थतः अनादि नहीं है और इसी कारण इसका अन्त भी हो जाता है। रूपान्तरसे जो स्वरूपभेदको प्राप्त हुआ जीव

है वह उस रूपान्तरकी विरोधिनी क्रियाद्वारा अपने मूल—आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। अवश्य ही विद्यारूप माया अनादि और अनन्त है। परब्रह्मके साथ ही उसका स्वभाव, और उस स्वभावकी क्रिया सदासे है और सदा रहेगी।

तब फिर यह प्रश्न होता है कि यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो महापुरुषोंने पुरुषको अकर्त्ता क्यों कहा है? अथवा संसारको व्यावहारिक सत्ताके रूपमें सत्य, परन्तु पारमार्थिक सत्ताके रूपमें मिथ्या क्यों माना है? श्रुतिके अनुसार भगवान्‌का स्वरूप ऐसा है कि जिसमें परस्पर विरोधी-गुणोंका समावेश है जो दूर और पास, सूक्ष्म और स्थूल, कर्त्ता और अकर्त्ता, निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार, तथा निर्विकार और सविकार है। वह विरोधी गुण केवल भाव-भेदसे ही कहे जाते हैं। हमने ऊपर देख लिया है कि ब्रह्मके स्वरूपको परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील दोनों ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार यहाँ भी भाव-भेद उपस्थित है। पुरुषको अकर्त्ता, तथा संसारको पारमार्थिक रूपसे मिथ्या कहनेका प्रयोजन, मुक्तिके लिये साधनका संकेत है। मुक्ति तभी प्राप्त होगी, जब रूपान्तरसे स्वरूप भेदको प्राप्त हुआ जीव विरोधी क्रियाद्वारा उस स्वरूप-भेदको नष्ट करके ब्रह्मरूपमें लय हो जायगा। वह विरोधी क्रिया रूपान्तरकी ओर न जाकर एकरसता तथा सरलताकी ओर अग्रसर होगी—वह चित्तको चञ्चल करनेवाले पथमें न जाकर चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेवाली होगी। परन्तु हमें कौन-से स्वरूपका ध्यान करना होगा? परिवर्तनशीलका अथवा अपरिवर्तनशीलका? उस निर्विकार अपरिवर्तनशील एकरसस्वरूपके ध्यानमें भिन्नतायुक्त जगत्‌का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है? एक बार आँखें बन्दकर भगवत्स्मरण करके देखिये, यह जगत् किसप्रकार लुप्त होता जाता है और ज्यों ज्यों आप परमार्थ लाभ करते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों वह जगत् विस्मृत होता चला जाता है। परन्तु परमार्थसे उतरकर आप ज्यों ही व्यवहारमें आते हैं, त्यों ही जगत् ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि पुरुषको अकर्त्ता कहा है, क्योंकि चञ्चल चित्त जीवको यदि शान्तिकी ओर ले जाना है तो उसका लक्ष्य भी शान्ति ही होना चाहिये। और यथार्थतः बात भी यही है। परब्रह्ममें जब प्रकृति अथवा स्वाभाविक क्रियाशक्तिकी क्रिया होती है तो इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह परब्रह्म परिमित जीवकी भाँति इच्छा और विचार करके क्रिया करता है, उस पारावारहीन तत्त्वमें तो वह क्रिया स्वाभाविक ही होती है और वह ऐसा होनेपर भी शान्त-रूपसे अटल स्थित रहता है। इस अविचल शान्ति और एकरसताकी ओर लक्ष्य करानेके लिये पुरुषको शान्त और अकर्त्ता कहा है। इसीका ध्यान करनेसे मनुष्य संसारमें रहता और कार्य करता हुआ भी शान्ति-लाभ कर सकता है। इसीलिये गुसाईंजी कहते हैं कि 'संसार-सागरसे पार होनेके लिये जिनके चरण ही नौकारूप हैं, ऐसे हरिको मैं प्रणाम करता हूँ।' अहा! कैसी सुन्दर शान्ति-प्रदान करनेवाली रचना है—'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं' आदिसे प्रथम भगवान्‌का स्मरण कर तुरन्त चञ्चल मनके लगाम लगा दी, फिर उनके निज स्वरूपकी ओर 'पदप्लवः' से संकेत कर दिया। संसार-सागरसे पार होनेके लिये इसी शान्ति-आधार-स्वरूपका ध्यान आवश्यक है। ऐसे शान्त-प्रकाशरूप हरिको प्रणाम करता हूँ। केवल उन्हींको नहीं, 'क्लेशहारिणीं' 'सर्वश्रेयस्करीं' उनकी मायाको भी प्रणाम करता हूँ। इस विद्यारूप मायाकी कृपासे ही भगवत्प्राप्ति द्वारा समस्त क्लेश दूर होकर परम कल्याण होता है!

सीयराम-मय सब जग जानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी॥

रामायण सर्वोच्च महाकाव्य है

दूसरे देशोंके महाकाव्योंकी अपेक्षा भारतका रामायण महाकाव्य सर्वोच्च है।...वाल्मीकिने इस ग्रन्थमें जिन अद्भुत सद्गुणोंका वर्णन किया है, उनकी ओर दृष्टि डालनेसे यह प्रतीत होता है कि अपने कालमें तो क्या, परन्तु उसके बादकी अनेक शताब्दियाँ बीतनेपर भी श्रीराम जैसे सत्यपरायण नरपति किसी भी राजवंशमें उत्पन्न नहीं हुए। श्रीराम सर्वगुण-सम्पन्न और प्रजाका प्रेम सम्पादन करनेमें अद्भुत राजा थे।...वाल्मीकिका काव्य आदिकाव्यका स्थान पाने योग्य है और सब रसोंसे परिपूर्ण है। —गोरीसियो।

अनुसूयाके पद गहि सीता मिली बहोरि सुशील विनीता।

रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म।

(लेखक–श्रीयुत सैयद कासिम अली, विशारद साहित्यालङ्कार)

हमारे महान् आचार्योंने प्राचीनकालमें जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचे थे उनमें रामायण एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। इसकी रचना हुए सहस्रों वर्ष हो गये तथापि आज भी भारतवर्षमें महलोंसे लेकर झोपड़ियों-तक इसकी पूजा, पाठ और आरती होती है। यह सब इसी कारणसे है कि इस ग्रन्थमें भाँति भाँतिके उपदेश-रत्नोंका बाहुल्य है। इसके प्रत्येक शब्द मनोहरताके साथ गूढार्थके साँचेमें ढाले गये हैं और अपना अनोखा जौहर संसारमें दिखा रहे हैं।

स्त्री-समाजकी पवित्रता, शक्ति और महानताके विषयमें जैसा प्रकाश इस ग्रन्थमें डाला गया है वैसा दूसरे धर्म-ग्रन्थोंमें देखनेको भी नहीं मिलता। श्रीसीताजी और श्रीअनसूयाजीके संवादमें जो पतिव्रत-धर्मका वर्णन मिलता है वह जगत्‌के लिये अत्यन्त लाभदायक ही नहीं, मोक्ष-प्रदायक भी है। पातिव्रतके लक्षण, भेद, कर्त्तव्य और फल-पर रामायणमें बड़ी बारीकीसे विचार प्रकट किये गये हैं। स्त्री-जातिके लिये तपस्या, योग तथा सिद्धिका आधार केवल पातिव्रत-धर्म ही बतलाया गया है। जो स्त्री पति-सेवासे विमुख रहती है उसे 'अधम नारि' कहकर सम्बोधन किया और यह कहा है कि—

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

'जो स्त्री अपने पतिके अनुकूल नहीं चलती वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वहाँ जवानीमें ही विधवा हो जाती है, और इसप्रकार उसे आजीवन भयानक कष्टप्रद परिस्थितिका सामना करना पड़ता है।' स्त्रीके लिये काय, वचन और मनसे पति-पदमें प्रेम ही एकमात्र धर्म बतलाया गया है।

एकै धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥

इतनी उच्च आदर्शसे युक्त शिक्षा बाइबिल, तौरेत, कुरान प्रभृति किसी भी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती और न उन ग्रन्थोंमें स्त्री-जातिके लिये इतना सुन्दर सुदृढ धर्म-मार्ग ही स्थिर किया गया है। आजकल सभी धर्मावलम्बी विज्ञानसे अपने धर्मकी महत्ताको सिद्धकर अपने-अपने धर्म-ग्रन्थको इल्हामी, ईश्वरीय घोषित कर सार्वभौम धर्मकी 'पेटेण्ट सील' लगा रहे हैं। परन्तु रामायण-जैसी पातिव्रत-धर्मकी शिक्षा किसीमें नहीं है। रामायणने तो केवल शिक्षा ही नहीं दी, बल्कि अपने पात्रोंके द्वारा इस उच्च पातिव्रत-धर्मका आदर्श भी उपस्थित कर दिखाया है। जिससे सोनेमें सुगन्ध आ गयी है। रामायणके द्वारा सती सीता, सती सुलोचना, सती अनसूया आदिने अपना उज्ज्वल चरित्र संसारमें चिरस्थायी कर दिया है। वह धर्म और वह ग्रन्थ धन्य है जिसने मातृ-जातिके कल्याणार्थ महान् पवित्रतासे युक्त इस अमर अलौकिक व्रतका आदर्श दिखला दिया।

मैं रामायणसे इसी नाते प्रेम करता हूँ, मैंने कई स्वजातीय विवाहोंमें कन्याओंको रामायण दहेजमें देकर उनके प्रति उस महानताका सङ्केत किया है जिससे वे पातिव्रत-धर्मकी अनुगामिनी बनकर स्त्री-जातिकी महानतामें गर्व करें। इससे मुझे अपने समाजने कलङ्कित करनेका बीड़ा भी उठाया था, पर मैंने स्पष्ट कह दिया कि रामायण हिन्दू-समाजका ही ग्रन्थ नहीं है, वह तो सारे मानव-समाजकी सम्पत्ति है। जब रामायण हमें इसप्रकार पतिव्रत-सरीखी गौरवान्वित शिक्षा देती है तब हम उसकी क्यों न पूजा करें? ज़रा विचारकर देखिये कि रामायणका पातिव्रत-धर्म स्त्रीजातिका कल्याण कर सकता है या नहीं? भलीभाँति विचार करनेसे आप अवश्य ही इसमें शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे। पुनर्विवाहसे व्यसनमय जीवनको उत्तेजना मिलती है, परन्तु पातिव्रतसे स्त्री-जातिमें सच्चे गहरे प्रेम और पवित्रताका सौन्दर्य उन्नत होता है जो उन्हें इस लोकमें सुख और परलोकमें मोक्षकी प्राप्ति करवाता है। उनके पतिव्रतरूप तपोबलसे महान् पर्वत भस्म हो सकते हैं, मृतक भी जीवित हो सकते हैं।

रामायणके भावोंकी व्यापकतामें तल्लीन होना और उनको कार्यान्वित करना ही उसकी सच्ची पूजा है। वर्तमान समयमें पश्चिमीय सभ्यताने भारतीय आदर्शकी भव्यताको मिटानेमें कुछ कसर नहीं रक्खी, इससे हमारी नैतिक शक्ति, प्रायः सभी धार्मिक कार्योंके लिये क्षीण होती जा रही है। तलाक, पुनर्विवाह तथा स्त्री-स्वातन्त्र्यके आन्दोलनने 'पातिव्रत-धर्म'की भावनापर कुठाराघात किया है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुरुष-समाजने इस ओर बड़ी उदासीनता

दिखलायी है जिससे स्त्री-समाजकी क्रान्तिमें पाश्चात्य सभ्यता अपना पूरा प्रभाव डाल रही है।

अन्तमें मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मावलम्बी इस 'पातिव्रत-धर्म' को मननकर इसके प्रचारमें सहायक बननेके लिये अपनी बिखरी हुई शक्तियोंको सञ्चित करेंगे, जिससे मातृ-शक्तिकी अखण्ड ज्योति पुनः एक बार जगत्‌को अपनी दीप्तिसे चमत्कृत करेगी और मानव-जीवन कृतकृत्य हो जायगा !

आराध्य राम

जीवन-सागरसे चुनकर मैं थोड़े-से ये मोती।
लाया तेरे चरणोंमें, हँसकर क्या स्वीकृति होती ॥

प्रार्थना

विश्वके अगणित रागोंमें मिले जो मेरा भी यह राग।
क्षीण, कृशकाय किन्तु परिपूर्ण तुम्हारे पद-पद्मोंका राग ॥

× × ×

आग्रह

हे रे मालिक ! पागलपनकी घड़ियाँ तनिक बढ़ा दे।
जीवनकी घड़ियाँ चाहे तो अपनी सभी घटा दे ॥

× × ×

छवि

जबसे प्रिय ! आँखोंमें मेरी बसा तुम्हारा वह शृंगार।
हृदय बन गया करुण कुसुम-से कोमल भावोंका भंडार ॥

× × ×

जीवन-मरण

एक-एक मुस्कान तुम्हारी सौ-सौ जीवन देती।
एक-एक बाँकिम भी उनको तत्क्षण ही हर लेती ॥

× × ×

स्मृति

तेरी स्मृतिमें भरी हुई जो मादकता, मधु, प्यार।
कैसे उन्हें भुलाऊँ, वे तो बने हुए हिय-हार ॥

× × ×

अनन्य

उसी रूपकी उसी लालसामें मुझको तुम बहने दो।
क्यों? किसलिये? कहाँसे? कबसे? के सवाल मत उठने दो ॥

× × ×

प्रेम-प्याला

उसी एक प्यालेमें तेरे जगतीकी मादकता।
भरी हुई है, छिपी हुई है जीवनकी सार्थकता ॥

× × ×

प्रेम-राज्य

तेरे प्रेम-राज्यमें मालिक ! यह कैसा विचित्र आवर्तन।
प्रथम तप्त-अंगार-वृष्टि, फिर मधुर अमिय रसका यह वर्षण ॥

× × ×

ललक

मैं हूँ तेरा, तू है मेरा जिस दिन अनुभव होगा।
नाच उठूँगा, हृदयाँगन स्वर्ण-सबेरा होगा ॥

× × ×

प्रलोभन

लुभा रहे सुन्दर चित्रोंमें मेरे अन्तर मनको।
ऐसा कठिन प्रलोभन मालिक ! मुझ-से निर्बल जनको ॥

× × ×

रूप राशिकी रंगिन भूमिपर मेरा मन न डिगाओ।
मालिक ! मदिर-वासना-प्यासी रह-रह नहीं दिखाओ ॥

× × ×

उलहना

हम हैं पतित, किन्तु तुमको निर्दय, अकरुण बन जाना।
ठीक कहाँतक राम ! तुम्हीं कह दो, तुमको यह बाना ॥

× × ×

कामना

जीवनमें साधना, मरणमें तेरे पदकी आहट।
और चतुर्दिक आलोकित करती तेरी मुस्काहट ॥

—बालकृष्ण बलदुवा।

तुलसी-रामायणमें भक्त-श्रेणी

(लेखक—पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०)

क्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी स्मार्त वैष्णव थे और उनकी अलौकिक कृति राम-चरित-मानस भी एक भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। जिस समय हिन्दू-जाति बिल्कुल निर्जीव होकर मरणासन्न हो चुकी थी तब गोस्वामीजीने अपनी अमृतमयी वाणीसे भक्ति-मन्त्रद्वारा ही उसको नया जीवन प्रदान किया था। ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मोक्ष आदि सभी बातोंकी चर्चा गोस्वामीजीने रामायणमें की है परन्तु सर्वोपरि साधन उनके मतानुसार भक्ति ही है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्ति केवल सबसे उत्कृष्ट साधन ही नहीं है वरं सब साधनों-का परम फल भी यही है—

तव पद-पंकज प्रीति निरंतर। सब साधनकर यह फल सुन्दर॥

इस बातको गोस्वामीजीने अनेक बार कहा है और यही उनका अटल विश्वास था और यही उनकी अमूल्य शिक्षा है। यहाँतक कि भगवान रामचन्द्रजीके श्रीमुखसे यही उपदेश दिलाया गया है—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छ-प्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत-सुखदाई॥

यह स्पष्ट है कि किसी मार्गपर आक्षेप किये बिना गोस्वामीजी भक्तिको ही प्रधान पद देते हैं।

गोस्वामीजीने अनेक देवी-देवताओंकी स्तुति-वन्दना की है, परन्तु उनके इष्टदेव रघुकुल-कमल-दिवाकर भगवान् रामचन्द्र ही थे, जिनको वे परब्रह्मका साक्षात् अवतार मानते थे। इस विश्वासकी दृढ़ता इसी बातसे प्रमाणित है कि जब कभी भी उनको अपने इष्टदेवके गुणगानका अवसर मिलता है, इस बातको कहे बिना गोस्वामीजीसे रहा ही नहीं जाता—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस कौसल्याके गोद॥

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर भगवान् रामचन्द्रका अवतार हुआ है। दोनों एक ही हैं—

ब्यापक ब्याप अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥
सोइ सच्चिदानन्दघन रामा। अज बिग्यान रूप बलधामा॥

गोस्वामीजीका यही सिद्धान्त था। उन्होंने अवश्य ही सांख्य, वेदान्त आदि सिद्धान्तोंकी बातें भी बड़ी रोचक रीतिसे कहीं हैं। और अनेक सूक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जिनका आश्रय लेकर भिन्न मतावलम्बी अपने-अपने मतों-की पुष्टि कर सकते हैं। पर गोस्वामीजी निश्चयही सगुण-उपासनाके पक्षपाती थे और भक्तिके सामने मोक्षपदको भी तुच्छ समझते थे।

गोस्वामीजीने ग्रन्थारम्भमें ही इस बातपर इशारा कर दिया है कि उनकी रामायण "नानापुराणनिगमागम-सम्मत" है। अपना न तो कोई उनको मत स्थापित करना था न कोई नया सम्प्रदाय चलाना था। वास्तवमें बात भी यही है कि उन्होंने नाना पन्थोंका सगुण-उपासनामें समन्वय कर दिया है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्तिका सुन्दर समन्वय कर परस्परके विरोधको शान्त किया गया है, उसी प्रकार गोस्वामीजीने भी नाना सिद्धान्तोंका एकीकरण कर एक राजमार्ग ऐसा बता दिया है कि सब श्रेणीके लोग उसपर चलकर परमपदकी प्राप्तिके अधिकारी बन सकते हैं। और वह राजमार्ग है भगवद्भक्ति, साकार भगवानकी उपासना।

श्रीमद्भगवद्गीताका अनुकरणकर गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीका वर्णन किया है:

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके लोग भगवानको भजते हैं। गोस्वामीजीने क्रम बदलकर इन्हीं चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन किया है। गीतामें जो सूत्ररूपसे कहा गया है, उसीको विस्तारसे रामायणमें वर्णन किया गया है।

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंच प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

यह ज्ञानीभक्तका लक्षण कहा है। उसके लिये गोस्वामीजी अष्टाङ्ग योगका साधन नहीं बताते, जिससे कि

केवल ज्ञानकी ही प्राप्ति होती है। साधन बताते हैं उच्चस्वरसे भगवान्‌का नाम जपना।

जो नहिं करइ राम-गुन-गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

ज्ञानी-भक्तको ब्रह्म-सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु गोस्वामीजी 'केवल ज्ञान' के पक्षपाती नहीं हैं। भक्त्यात्मक ज्ञानका ही महत्त्व विशेष है।

जे अस भगत-ग्यान परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
सो जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहि पय लागी॥

इस भक्तिमय ज्ञानके सामने वे कैवल्य-पदको भी हेय समझते हैं। ज्ञान भक्तिके लिये साधन है उसका फल नहीं है। यही गोस्वामीजीका सिद्धान्त है। और जैसे गीतामें भगवान्‌ने कहा है:—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

और आगे ऐसे ही ज्ञानी भक्तको भगवान्‌ने अपना ही आत्मा बताया है। यही गोस्वामीजीका भी सिद्धान्त है। यथा—

ग्यानी प्रभुहि बिसेष पियारा।

दूसरा भक्त है जिज्ञासु या मुमुक्षु—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥

इसके लिये भी वही उपाय और वही साधन है। नाम-जपकी शक्ति अचिन्त्य है। ब्रह्मसुखकी प्राप्ति इससे होती है तो आत्मा, जीव, प्रकृति माया इत्यादि सम्बन्धी जितनी बातें हैं उनका रहस्य भी उच्चारणसहित जपसे ज्ञात हो जाता है। अन्यत्र जिज्ञासुके लिये जो कठिन साधन बताये गये हैं उनसे गोस्वामीजीका कुछ वास्ता नहीं। जब ब्रह्मसुखकी प्राप्ति नाम-जपसे हो सकती है तो जिज्ञासुकी तृप्ति कौन बड़ी बात है?

यह तो हुई अध्यात्मविषयकी बात। अर्थार्थी क्या करे? उसको तो सिद्धियाँ चाहिये। संसारमें विजयी होनेके लिये वा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अष्ट सिद्धियाँ ही वह चाहता है। योगकी क्रियासे ये प्राप्त होती हैं और वह भी अत्यन्त कठिन और अविरल परिश्रमके बाद। अर्थार्थीके लिये गोस्वामीजीका साधन सुनिये—

साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए॥

वही उपाय यहाँ भी बताया गया है। सांसारिक सुख-समृद्धि तो क्या सिद्धियाँ तक नाम-जपके अधीन हैं।

अन्तिम भक्त है आर्त। आरत-हरणके नाममें वह शक्ति है कि—

जपहिं नाम जनु आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

इसप्रकार चारों भक्तोंके लिये केवल नामका ही आधार है और फिर—

कलि बिसेस नहिं आन उपाऊ।

गीताकी भक्त-श्रेणीका अनुकरण करते हुए गोस्वामीजीने भी वे ही चार प्रकारके भक्त कहे, परन्तु साधन सबके लिये एक ही बताया है। गोस्वामीजीने नाम-माहात्म्य-वर्णनमें कोई कसर नहीं की। यहाँतक कि—

कहउँ नामु बड़ रामतें, निज बिचार अनुसार।

और अन्तिम उपदेश है—

रामनाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेहु जो चाहसि उजियार॥

रामनामको मणि कहा है, तेल, बत्ती आदिका दीपक नहीं। क्योंकि जपका साधन सबसे सरल है। कुछ बखेड़ा नहीं। साधन-भ्रष्ट होनेका भी भय नहीं। 'जीह' से संकेत उच्चारणका है। और 'भीतर' 'बाहिरे' से निर्गुण और सगुण दोनोंका अनुभव इस यत्नसे होना सम्भव बताया है।

गीता और रामायणकी भक्त-श्रेणीकी समानता और उनका भेद इसप्रकार संक्षेपसे कहा गया है। रामायणमें इसका विस्तार अधिक है और उसको साहित्यिक शैलीसे भी निरूपण किया गया है। परन्तु रामायणमें जो विलक्षणता है वह एक और भक्तका वर्णन है जो उपर्युक्त चारोंसे बढ़कर है।

सकल कामना-हीन जे राम-भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम-पियूष-ह्रद तिनहुँ किये मन मीन॥

वे हैं—सकल कामना-हीन। ज्ञानी भी ब्रह्मसुखका लालची होता है, अतएव सकामी है। ये पूर्णरीतिसे निष्काम-भावमें दृढ़ रहते हैं। किसी फल-विशेषकी इनकी इच्छा नहीं। भक्ति ही जिनके लिये साध्य है और भक्ति ही साधनका परमफल है। राम-भक्तिके रसमें लीन हैं और उससे भी बढ़कर जो रामनाम है उसके अमृत-सरोवरमें सदा मछलीकी नाईं रहते हैं। रससे अमृतका महत्त्व विशेष है, सो राम-भक्तिसे भी राम-नामका अधिक माहात्म्य दिखाते

हैं। ऐसे सन्त पुरुष एक क्षण भी नाम बिना जीवित नहीं रह सकते, अतएव मछलीके समान हैं। ये भक्त सबसे ऊँची श्रेणीके हैं और उनकी संज्ञा प्रेमीकी है। गीतामें इस दर्जेके भक्तका वर्णन नहीं, और न नामका ही ऐसा महत्व कहीं वर्णित है।

गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीके वर्णनको उपमा, उदाहरण और रुचिर कवितासे जो साहित्यिक रूप दिया है वह बड़ा मनोहर और विलक्षण है, अब प्रत्येक श्रेणीके भक्तका उदाहरण और उपमा सुनिये और गोस्वामीजीकी उक्तियों-पर विचार कीजिये।

लक्ष्मणजी श्रीरामजीसे कहते हैं-

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥

'कमल, कोक, मधुकर और खग'से चारों प्रकारके भक्तकी ओर इशारा है। ज्ञानी भक्तको कमलके सदृश कहा है। जनक और सन्त-समाज रामायणमें ज्ञानी भक्त बताये गये हैं। जनकजीका वर्णन है—

जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम-पत्र जिमि जग जल जाए॥

जैसे जलमें कमल बिना भीगे रहता है वैसे ही जनकजी संसारमें रहते हुए भी उसके प्रपञ्चसे अलग रहते हैं। सूर्योदय पर कमल खिलते हैं। श्रीरामके दर्शनसे साधु समाज भी वैसे ही आनन्दसे खिल उठता है—

उदित उदयगिरि-मंचपर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत-सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

बड़ी सुन्दर उक्ति है।

आर्त भक्तकी तुलना कोकसे की है। रावणके अत्याचारसे देवता दुखी होकर घबरा गये थे। गौ-रूपी धरा भी विह्वल हो गयी थी। तब भगवान्ने कहा था-

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहिं लागि धरिहौं नरबेसा॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव-समुदाई॥

वे ही आर्त-भक्त—

भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥

क्योंकि अब श्रीराम धनुष-भंगके लिये उद्यत हो गये हैं। सीता परिणयके बिना राक्षसोंका नाश कैसे होता? इसीलिये देवता प्रसन्न हुए।

मधुकर स्वार्थी है। अपने स्वार्थ-साधनकी धुनमें गुनगुनाया करता है। रस लेनेमें ही वह लीन रहता है। अर्थार्थी भक्त उसीके समान होते हैं। सुग्रीव, विभीषण और जनकपुरवासी इसी श्रेणीके भक्त हैं। पुरवासियोंकी लालसा क्या है कि सीता और रामका विवाह अपनी आँखोंसे देखें—

यहि लालसा मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥

विभीषणने तो स्पष्ट कहा है—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥

अर्थात् लंकाका राज्य प्राप्त करनेकी इच्छा थी। मनका भाव समझकर श्रीरामजीने बिना मांगे ही विभीषणको राजपद दे दिया। सुग्रीव तो विभीषणसे भी अधिक स्वार्थ-परायण था। राम-सुग्रीव कथा बड़ी रोचक है, विस्तार-भयसे उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता।

चौथे भक्त—जिज्ञासु या मुमुक्षु खगके समान हैं। खगका अर्थ यहाँ चातकका है। चातक-सम्बन्धी प्रवाद प्रसिद्ध ही है। वह स्वातिकी बूंदके लिये तृषित दृष्टिसे मेघको देखता रहता है। धनुषके टूटनेपर सीताजीकी दशाका वर्णन गोस्वामीजीने इसप्रकार किया है—

सीय सुखहि बरनिय किहि भाँती। जनु चातकी पाय जल स्वाती॥

इससे पहले यह दशा थी—

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा।

लक्ष्मणजीने श्रीरामको धनुष तोड़नेपर किसप्रकार देखा सो सुनिये-

रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरक जैसे॥

खगका अर्थ समष्टिसे चातकके अतिरिक्त पक्षी भी हो सकता है। लक्ष्मणजीके लिये चकोरकी उपमा उपयुक्त है।

चारों प्रकारके भक्तोंको इस रीतिसे गोस्वामीजीने साहित्यिक रूप देकर उनकी कथाको रोचक बना दिया है। अन्तिम भक्त प्रेमी है। उसको गोस्वामीजीने किस प्रकार निभाया है, यही और देखना रह गया है।

प्रेमीकी तुलना मीनसे की गयी है। 'निबहु किये नरमीन' पद ऊपर आ चुका है। दोहावलीमें भी गोस्वामीजीने कहा है—

मगर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकहि मीनको है साँचिलो सनेह॥

जलमें कितने ही जीव रहते हैं और जलसे बाहर भी कुछ कालके लिये वे जीवित रह सकते हैं, परन्तु जलसे बिछुड़ते ही प्राण देनेवाली तो केवल मछली ही है। उसीका स्नेह सच्चा है। एक क्षणका वियोग उसे असह्य होता है। सीताजीको यही शिकायत रही कि श्रीरामसे बिछुड़ते ही उनके प्राण-पखेरू क्यों न उड़ गये। हनुमानजीने श्रीरामजीसे सीताजीकी वकालत की और कारण बताया—

नाथ सो नयनन्ह कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठ बाधा।।

जो हो, सीताजीने विरहमें भी अपना शरीर रक्खा। भरतजी चरणपादुका लेकर ही उसकी सेवामें तन्मय हो गये—

राम-चरन-पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू।।

तो क्या स्नेहीका पद खाली ही रहा, जब सीताजी और भरतजी जैसे भक्त भी उस दर्जेतक न पहुँच सके? रामायण-में केवल एक ही प्रेमीका चरित्र है और वह है महाराज दशरथका। इस अत्यन्त कठिन प्रेम-परीक्षामें वे ही उत्तीर्ण हो सके। तुलसीदासजीने उनका चरित्र भी बड़ी निपुणतासे अङ्कित किया है। जब कश्यप और अदितिने घोर तपस्यासे भगवान्‌को प्रसन्नकर उनका-सा ही पुत्र माँगा तो कश्यपने यह भी वर माँगा था—

सुतबिषयक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।।

यही बात सत्य होकर रही और श्रीराम दशरथके पुत्र ही नहीं हुए बल्कि प्राणाधार भी रहे। दशरथजीने उनको 'प्राण-प्रिय' कई बार कहा है। विश्वामित्रजीसे कहते हैं—

सब सुत प्रिय मोहि प्रानकी नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।।

जब विश्वामित्रजी श्रीराम-लक्ष्मणको ले ही गये तो दशरथजीने प्राण क्यों नहीं त्याग दिये? कारण इसका यह है कि उस समय उनकी दशा 'मनि बिनु फनि' की-सी थी। सर्पकी मणि खो जानेपर वह मरता नहीं है, मृतवत् हो जाता है और उसको पुनः पाकर सचेष्ट हो जाता है। धनुष-यज्ञके बाद विवाहके समय दशरथजी जनकपुरमें श्रीरामसे मिले हैं तो गोस्वामीजी कहते हैं—

सुत हिय लाय दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे।।

राम-विरहमें इतने दिनोंतक दशरथजीकी दशा 'मनि बिनु फनि' की रही थी।

जब राम-वनवासका प्रसङ्ग आया तो दशरथजीके लिये याचित वरका दूसरा पद 'जल बिनु मीना' के सत्य होनेका अवसर आया। रामायणमें दशरथजीकी शोकातुर दशा बड़ी मर्म-स्पर्शी है। वह प्रसङ्ग करुण-रसका समुद्र है। जब कैकेयी अपनी बातसे नहीं टलती तो राजा दशरथ कहते हैं—

जिअइ मीन बरु बारि-बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना।।
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं।।

'सुभाउ' शब्दपर विचार कीजिये। फिर आगे कहते हैं—

जीवन राम-दरस आधीना।

वन जानेकी तैयारी हो गयी। तीनों मूर्तियाँ दशरथसे विदा माँगने आयी हैं। राजा शोक-विह्वल हैं। मुखसे शब्द नहीं निकलता। विलम्ब होता देख कैकेयी श्रीरामसे कहती है—

नृपहि प्रानप्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा।।

'इसलिये उनके मुखसे जानेकी आज्ञा मिलेगी ऐसी आशा मत करना। अपने आप ही अब चले जाओ' राजा दुखी होते हैं।

करहिं न प्रान पयान अभागे।

श्रीरामके चले जानेपर राजा शोक करते हैं

राम चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं।।
एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजहिं तनु प्राना।।

अभी कुछ आशा थी कि श्रीराम जल्दी ही वनसे लौट आवेंगे। इसी आशासे सारथीकी राह राजा देखते रहे। जब वह भी आगया और श्रीराम-जानकी न लौटे तो राजा

तरफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीनकहुँ ब्यापा।।

मरणासन्न राजाको कौसल्या रानी आश्वासन देती हैं

राम लखन सिय मिलहिं बहोरी।

इन आशाजनक वचनोंको सुनकर—

प्रिया बचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि।।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि।।

राजाके लिये तो अब 'राम-रहित मिस जीवन आसा।' उनको अवणकी कथा और अपने पूर्व जन्मके वरदानकी स्मृति हो आयी।

सो तन राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेमपन मोर निबाहा।।

धन्य है दशरथका प्रेम कि वे अपने शरीरको धिक्कारते हैं, क्योंकि उसको राम-विरहके प्रथम क्षणमें ही धराशायी हो जाना था। राजा दशरथका प्रण प्राणधारी शरीरने असत्य कर दिया! प्रतिज्ञा-पालन और कुल-मर्यादाकी रक्षाके लिये जब श्रीरामको बनवास दे दिया तो फिर दूसरी प्रतिज्ञा 'जिमि जल बिनु मीना' का भी तो पालन करना चाहिये। दशरथकी बड़ी ऊँची भावना है।

रामजीको बन गये अभी बहुत दिन नहीं हुए परन्तु राजाको एक-एक घड़ी युगके समान हो रही है:

हा रघुनन्दन प्रानपिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते॥

और अन्तमें—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह राउ गयउ सुरधाम॥

मछलीकी तरह तड़प-तड़पकर प्राण देना इसीको कहते हैं। और प्रेमीकी सर्वोच्च दशा भी यही है। गोस्वामीजी कहते हैं—

जिअन-मरन-फलु दसरथ पावा। अण्ड अनेक अमल जसु छावा॥
जियत राम-बिधु-बदनु निहारा। रामबिरह करि मरनु सवाँरा॥

जीना उसीका सफल है जिसको मरना आता है। विरह-वेदनामें भी एक प्रकारका आनन्द होता है। व्रज-गोपिकाओं-की विरह-व्यथा उसके अनेक भाव-अनुभाव राजा दशरथके भाग्यमें नहीं लिखे थे। वे 'सुरधाम' को सिधारे। मरते समय 'राम राम' मुखसे एक बार भी निकल जाय तो मुक्ति हो जाय और दशरथ 'राम राम' रटते मर गये और फिर भी केवल सुरधामके अधिकारी हुए! इस बातमें भी भक्तिका एक रहस्य है। राजा दशरथको राम-दर्शन-लालसा अभी बनी हुई है और वह पूरी होगी। रावण-वध हो जानेपर उनको दर्शनसे तृप्ति होगी।

गोस्वामीजीने इसप्रकार राजा दशरथका चरित्र एक आदर्श प्रेमीका दिखाया है और इसी भावनासे उनकी वन्दना की है—

बंदौं अवध-भुआल सत्य प्रेम जेहि राम-पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

इससे तुलना करने योग्य और कोई चरित्र रामायणमें नहीं है।

संसार तो दुःखमय सदा रहेगा। मनुष्यमें कहाँ सामर्थ्य है कि घटना-चक्रकी गतिको जान ले या उसको रोक सके। एक ही उपाय है जिससे मनुष्य सुखपूर्वक संसारमें रह सकता है और त्रिविध तापसे अपनी रक्षा कर सकता है। वह अमोघ उपाय भगवत्-शरणागति है—

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि-सरन न एको बाधा॥

शरणागतिके भावके साथ निरन्तर नाम-जप मुख्य साधन है। साधारण सांसारिक मनुष्योंके ही लिये नहीं, वरं—

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि-गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥

धन्य है वह पुनीत देश, जहाँके निवासियोंको पतित-पावन भगवान्‌की भक्तिका उपदेश प्राप्त हो। इसके द्वारा निर्गुण ब्रह्मको भी सगुण बनकर प्रकट होनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। जिनको धर्मका यह अमूल्य उपदेश प्राप्त हो उनसे बड़भागी संसारमें और कौन हो सकता है?

हिन्दूजातिको गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसा मार्ग दिखाया है जिसपर चलकर देव-दुर्लभ पद भी अनायास ही प्राप्त हो सकता है।

राम-नाम

लेनेसे जिस रामनामके पाप-पुञ्ज होते हैं छार।
जन्म-मृत्युसे रहित जीव हो जाता है भवसागर पार।
जिसका उलटा नाम सदा जप व्याधा हुआ महामुनि भक्त।
जिसके मधुर रूपका चिन्तन करते सदा शैलजासक्त॥
सर्व-शिरोमणि उसी नामका अमृतरूपी प्याला।
रे मन! व्यर्थ भटकता है क्यों, पीकर बन मतवाला॥

—मोतीलाल ओमरे

श्रीशुकदेवजी और रामायण

(लेखक—श्री पी० एन० शङ्करनारायण अय्यर बी० ए०, बी०एल०)

१—आपकी आज्ञानुसार, श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव-कथित रामायणके कुछ ऐसे प्रसङ्गोंका वर्णन करूँगा जो मुझे बहुत प्रिय हैं तथा जिनसे मेरे आचरण सुधर गये हैं। 'कर्माण्यकर्तुं ग्रहणाय पुंसाम्' प्रभुकी लीलाएँ मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये होती हैं। भगवान्‌के चरित्रने हमें कैसा सुसंस्कृत तथा जागृत किया है, इस बातको जब हम व्यक्त करने लगते हैं तो हमें अनुभव होने लगता है कि श्रीराम अभी विद्यमान हैं और हमें निश्य कल्याणका मार्ग दिखला रहे हैं। वर्तमान दशामें भारतको श्रीरामके नेतृत्वकी महान् आवश्यकता है।

२—श्रीशुकदेवजीने श्रीरामके मुख्य संदेशका निचोड़ इसप्रकार बतलाया है—

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः॥
(भागवत ९।११।१९)

श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यके कण्टकोंसे विद्ध अपने चरण-कमलोंको भक्तोंके हृदयमें स्थापितकर परमधामको पधार गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके वे रक्ताक्त चरण प्रायः मेरी आँखोंके सामने उपस्थित हो जाते हैं और मुझे पीड़ित प्राणियोंमें घूम-घूमकर उनकी सेवा करनेके लिये प्रेरित करते हैं। जब कभी मैं नंगे पैर जलती धूपमें घूमता हूँ तो प्रायः यह सोचकर कि श्रीरामचन्द्र और श्रीसीताजी भी मनुष्योंके प्रेमवश काँटोंमें विचरण करते थे, मेरा हृदय अमित उत्साह और उल्लाससे भर जाता है और मैं सारे श्रमको भूल जाता हूँ।

एक बार तीर्थयात्रामें मुझे आधीरातके समय वनके बीच होकर जाना पड़ा। पहले तो मेरे मनमें कुछ भय-सा हुआ परन्तु तुरन्त ही मुझे यह श्लोक याद आ गया—

अग्रतः पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्च महाबलौ।
आकर्णपूर्णधन्वानौ रक्षेतां रामलक्ष्मणौ॥

'आगे, पीछे तथा दोनों ओर महाबली भगवान् राम और लक्ष्मण शर-सन्धान किये मेरी रक्षा करें।' मेरे मनमें यह निश्चय हो गया कि अब भी एकाकी यात्रियोंकी रक्षाके लिये दोनों राजकुमार उद्यत हैं, मेरे नेत्रोंमें आँसू भर आये और मेरा हृदय हर्षसे पूर्ण हो गया। मैंने सारे रास्ते उनको अपने साथ समझा तथा मैं आनन्दमें मग्न हो गया और मुझे मार्गमें किसी भी श्रमका अनुभव नहीं हुआ। श्रीरामके पावन चरण और उनका पुण्य सहवास इसी प्रकार देशके सब मनुष्योंको प्रेरित करे, जिससे वे भी श्रीरामके समान ही दुःखाक्रान्त मनुष्योंमें घूमें और उत्साहसे उनकी सेवा करें।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राक्षस-निवास दण्डकारण्य पृथ्वीपरसे नष्ट होकर जनसमुदायके हृदयोंमें बस गया है, जिससे सारा राष्ट्र भागवत-धर्मसे विमुख हो चला है। कुछ लोगोंके हृदय तो व्यर्थ शिक्षा, अत्यन्त स्वार्थपरता तथा आर्तजनोंके प्रति उपेक्षा और क्षणिक सहानुभूतिसे भर गये हैं, और कुछ लोगोंके हृदयोंमें अज्ञान, अन्धविश्वास, दरिद्रता तथा पुरुषार्थको नष्ट कर देनेवाले दुःखसमूह भरे हुए हैं। धर्मका स्थान अन्धविश्वासने ले रक्खा है और कर्मके स्थानमें केवल लम्बी-चौड़ी बातें कर ली जाती हैं। इसी कारण भारतभूमिके रक्षक मनु और महर्षियोंने प्रजाको सन्त्रस्त करनेके लिये मानो दुःख और दारिद्र्यको खुली आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान दुःख और बन्धन राष्ट्रको उस भागवत-धर्मकी ओर लौट आनेके लिये चेतावनीस्वरूप हैं जो यज्ञकी-स्वार्थ-त्यागकी-भावना तथा सबकी प्रेमपूर्ण सेवासे परिपूर्ण है। इसी यज्ञस्वरूप भागवत-धर्मको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें राष्ट्रके अभ्युदय और सुखका प्रधान साधन बतलाया है।

श्रीमद्भागवतमें भी इसी यज्ञभावनाका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके तीरपर स्थित ऊँचे वृक्षोंको दिखलाकर अपने मित्रोंसे कहा है—

पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वारयन्ति नः॥
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा॥
(भागवत १०।२२।३२-३५)

'हे मित्रो! इन सब महाभाग वृक्षोंको देखो! इनका जीवन केवल परोपकारके ही लिये है। स्वयं वायु, वर्षा,

घाम और हिमके प्रकोपको सहकर, वे उनसे हमारी रक्षा करते हैं। उन्हींका जीवन सफल है जो अपने प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे सदा परोपकारमें रत हैं।' अगले अध्यायमें भगवान्‌ने यह दिखलाया है कि जिन्होंने यज्ञको संस्कार-विशेष बतलाया है वे भगवान् और सत्यसे दूर चले गये हैं और वे उनको पा नहीं सकते। इसके बाद ब्राह्मण-स्त्रियोंको वापस लौटाकर उन्होंने यह दर्शाया है कि जीवनकी उच्चाति उच्च सफलता भगवान्‌के प्रत्यक्ष शरीरके समीप रहनेमें ही नहीं है, वरं दुखी प्राणियोंके अन्दर भगवान्‌के प्रेम और प्रकाशको फैलानेमें है। प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा ही राष्ट्रीय समृद्धिकी कुञ्जी है और इसीको भागवत-धर्म भी कहते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने बड़ी ही उत्तमतासे अपने सम्पूर्ण जीवनमें इसीका दिग्दर्शन कराया है। यदि भारतीय नेता आज केवल इसी भावको जागृतकर जनतामें काम करें और राष्ट्रके हृदयमें आत्मनिर्भरता, समन्वय तथा दूसरोंकी प्रेमपूर्वक सेवाके भाव भर दें तो केवल इसीसे देशमें सुख-समृद्धि हो जाय। प्रत्येक मनुष्य जबतक यथार्थ संयम नहीं करता, यज्ञकी भावनासे स्वधर्ममें स्थित नहीं होता और श्रीरामके कण्टकविद्ध चरणोंको अपने हृदयमें पथ-प्रदीपकी भाँति प्रतिष्ठित नहीं करता, तबतक वास्तविक स्वराज्यकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?

३-श्रीशुकदेवजीके रामायणका एक दूसरा अंश अत्यन्त ही आकर्षक और चरित्र-निर्माणमें सहायक है। उसमें रावणकी मृत्युके अनन्तर लङ्काकी यातुधानियोंद्वारा किये हुए प्रलापका वर्णन आता है। वे इसप्रकारके महत्त्व-पूर्ण शब्दोंद्वारा उसके पतनपर प्रलाप करती हैं—

हा हताः स्म वयं नाथ! लोकरावण रावण।
कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता॥
नैवं वेद महाभाग! भवान् कामवशं गतः।
तेजोऽनुभावः सीताया येन नीतो दशामिमाम्॥
कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे॥
(भागवत ९।१०।२६-२८)

'हे नाथ! हे संसारको रुलानेवाले रावण! हमारा सर्वनाश हो गया! आह! तुमसे विहीन हो दूसरोंके द्वारा पददलित यह लङ्का किसकी शरण लेगी? हे महाभाग! तुम कामान्ध हो सीताके पतिव्रतके तेज और प्रबल प्रभावको नहीं जान सके। इसीसे आज तुम्हारी यह दशा हुई। हे कुलको आनन्दित करनेवाले, इसी कारण तुम्हारी लङ्का नगरी और हम तुम्हारी रानियाँ विधवा हो गयीं, और तुम्हारा शरीर गृध्रोंका भोजन बना तथा तुम्हारी आत्मा नारकी हो गयी।' काम-वासनाके विरुद्ध इनसे बढ़कर ओजस्वी, यथार्थ करुणापूर्ण, सुन्दर गम्भीर भाव मुझे अन्यत्र कहीं नहीं मिले।

४-श्रीशुकदेवजीके रामचरित-चित्रणका तीसरा और अत्यन्त आकर्षक भाग वह है जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञोंका वर्णन किया गया है। वहाँ उन्होंने सच्चे ब्राह्मण, राजा और राज्यसम्बन्धी आदर्शोंकी विशद व्याख्या की है।

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः।
सर्वदेवमयं देवमीजे आचार्यवान्मखैः॥
होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः॥
आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः॥
इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता॥
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम्।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे॥
अप्रत्तं नस्त्वया किन्नु भगवन् भुवनेश्वर।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये॥
(भागवत ९।११।१-७)

तदनन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रजीने आचार्यद्वारा बतलायी हुई विधिसे परमात्माकी पूजाके निमित्त बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान किया। होताको पूर्व-दिशाका राज्य, ब्रह्माको दक्षिणका राज्य, अध्वर्युको पश्चिमका राज्य और उद्गाताको उत्तरका राज्य दक्षिणामें दे दिया। बीचमें बची हुई पृथ्वी भी आचार्यको दे डाली। श्रीरामने सोचा कि केवल इच्छारहित ब्राह्मण ही वास्तवमें समस्त राज्यके अधिकारी होने योग्य हैं, क्योंकि स्वार्थहीन ब्राह्मण जरा-सा अंश भी अपने उपयोगमें न लाकर सच्चे ट्रस्टीकी भाँति सबकी भलाईमें ही उसका प्रयोग करेंगे। अतः भगवान् रामचन्द्रजीने अपने शरीरके

वस्त्रालङ्कारोंके अतिरिक्त सभी वस्तुओंका दान कर दिया। इसी प्रकार महारानी सीताने भी सब कुछ दे डाला। उनके शरीरपर केवल मंगल-सूत्र बच गया। श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा वात्सल्य और उदारभाव देखकर ब्राह्मणगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनका हृदय द्रवित हो गया। अश्रुपूर्ण नेत्रोंद्वारा वे समस्त पृथ्वी श्रीरामजीको लौटाते हुए कहने लगे, 'हे पृथ्वीपति भगवन्! जब आपने हमारे हृदयमें प्रवेश करके अपने प्रकाशसे हमारा अज्ञानान्धकार हर लिया है तब ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे आपने हम लोगोंको नहीं दिया है? हमें सब कुछ मिल गया है। हमलोग ऐसे महापुरुषके सामने सिर झुकाते हैं जो इच्छारहित निःस्पृह ब्राह्मणको देवता समझता है। हे स्थितप्रज्ञ! आप शुभकीर्तियुक्त पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। आप वह महापुरुष हैं जिनके चरण-कमल उन्हींके हृदयोंमें रहते हैं जो दूसरोंको दुःख देना छोड़ चुके हैं।'

इससे पता लगता है कि राजाओं और सच्चे ब्राह्मणोंमें कितनी उच्चकोटिकी निःस्वार्थता, निष्कामता तथा प्रेमकी भावना होनी चाहिये, तथा किस प्रकार दोनोंको सबके कल्याणके लिये ट्रस्टियोंकी भाँति परस्पर सहयोग करना चाहिये। ऐसे राजा और ब्राह्मणोंकी अपनी सम्पत्ति तो केवल ज्ञान, प्रकाश और भगवच्चिन्तन ही है। यदि भारत इसी दशाको पुनः प्राप्त हो जाय तो यह कैसा सुखी देश हो जायगा? मैं समझता हूँ कि भूमिदेव होनेके कारण ब्राह्मणोंका यह प्रथम कर्तव्य है कि वे इस पथमें अग्रसर हों। यदि वे अपने हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरण तथा उनके यथार्थ ब्राह्मण-प्रेमको धारण कर मार्गमें अग्रसर होंगे तो अब भी धर्मराज्य—रामराज्यको पुनः स्थापित कर सकेंगे। महाराज पृथुने श्रीमद्भागवतपुराणके चौथे स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें स्पष्ट समझा दिया है कि राज्यशक्तिका उद्भव और विनाश प्रजाकी धर्मनिष्ठापर अवलम्बित है। हम स्वयं अपने भाग्यके विधाता हैं।

४—अहा! देशकी उस समय कैसी स्थिति होगी जब श्रीरामचन्द्रजी धर्म या सत्याचरणद्वारा इस देशपर राज्य करते होंगे? इस विषयका एक सुन्दर चित्र श्रीशुकदेवजीने खींचा है—

> रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥
> वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः।
> सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥
> नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः।
> मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥
> (भागवत ९।१०।५२—५४)

जब प्राणीमात्रको सुख प्रदान करनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, उस समय वन, नदी, पहाड़, देश, द्वीप और समुद्र सभी प्रेमपूर्वक प्रजाको मनचाही वस्तु देते थे। आधि, व्याधि, जरा, भय, ग्लानि, क्लेश, दुःख और शोक बिल्कुल नहीं थे, यहाँतक कि मृत्यु भी प्रजाके पास उनकी इच्छाके विरुद्ध नहीं आती थी।' जब भगवान् रामचन्द्रजी शासन करते थे तब देशकी ऐसी अवस्था थी, यह बात मूढमतिके समझमें नहीं आ सकती।

जब प्रत्येक मनुष्य आत्म-सन्तुष्ट हो दूसरोंके कल्याणमें रत रहता है, तब देशभरमें यज्ञकी भावनाका आधिपत्य हो जाता है, तथा सभी जगह समन्वय और स्वेच्छापूर्वक सहर्ष सहकारिता तथा प्रेमका प्रसार हो उठता है। वस्तुतः यज्ञभावना ही देशको आदर्श बनानेका भारतीय मार्ग है। श्रीशुकदेवजी, शङ्कर, रामानुज, गौराङ्ग, कबीर और अन्यान्य महापुरुष देशभक्तिहीन नहीं थे, यद्यपि उनकी शिक्षामें 'राजनीतिक दृष्टि' कहलानेवाली कोई वस्तु नहीं है। वे सत्यदर्शी और सच्चे देशभक्त थे और उन्होंने यज्ञकी भावना—प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक सेवा—का अनेक प्रकारसे प्रचार किया, और यही एक मार्ग है जिसके द्वारा भारत और संसारकी सच्ची उन्नति हो सकती है।

यह हमारे हाथकी बात है कि हम चाहे यज्ञकी भावनासे उन्नति करें या विपरीत पथ अवलम्बनकर अशान्तिमय जीवन बितावें। किसी प्रकारके अहम्मन्यताके मार्गसे हम स्वार्थपरता, कपट और पारस्परिक द्रोहमें फँस जायँगे, और वह मार्ग भारतीय नहीं होगा। इससे हमपर भगवान्‌की कृपा नहीं होगी। किन्तु यदि हम यज्ञकी सच्ची भावनामें स्थित होकर निःस्वार्थ सेवाके द्वारा सबका कल्याण करनेकी चेष्टा करेंगे तो यज्ञ और धर्मके आत्मा भगवान्‌का इस देशमें राज्य हो जायगा और कलि अपने सारे उपकरणोंके साथ खतम हो जायगा। विप्लव और अशान्तिके अवतार 'कलि'को महाराज परीक्षितने जो कहा था, उसे सुनिये—

> न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये।
> ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैः यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥
> यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमानः इज्यामूर्तिर्यजतां शन्तनोति।
> कामानमोघान् स्थिरजङ्गमानां अन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥
> (भा० १।१७।३३-३४)

हे अधर्मके बन्धु ! तू इस ब्रह्मावर्तमें नहीं रह सकता, क्योंकि यहाँकी प्रजा धर्म और सत्य (श्रीकृष्ण भगवान्‌ने ११ वें स्कन्धमें जिसे समदर्शन कहा है) पर अचलरूपसे आरूढ़ है। भूतमात्रकी निःस्वार्थ सेवामें अपनेको भुला देनेवाले सेवापटु लोग इसप्रकारकी सेवाओंसे समस्त सेवाके स्वामीकी पूजा करते हैं। इस ब्रह्मावर्तमें स्वयं भगवान्, जिनका एकमात्र कार्य जीवोंके कष्टोंको हरण करना है और जो सम्मयतायुक्त सेवाके प्राण हैं, अपने उन यज्ञक्रिया-द्वारा आत्मविस्मृत होकर अर्चा करनेवाले सेवकोंका कल्याण करते हैं और समस्त चराचरकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, क्योंकि वे वायुके सदृश सबके प्राण हैं और सबके बाहर-भीतर समानरूपसे व्याप्त हैं।

अतः भगवान् रामचन्द्रजीकी जीवनी सबके प्रति यज्ञरूपी भूतसेवाकी सच्ची भावनाको हमारे हृदयमें जाग्रत करे जिससे इस पवित्र भूमिपर पुनः प्रभुका साम्राज्य हो। तभी भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समृद्धिकी कुञ्जी संसारको प्रदान कर अपने मिशनको पूरा करेगा।

श्रीरामजीका शूर्पणखाके साथ व्यवहार

(लेखक:—पं० कृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, बी०ए०)

रामचरित्रके रहस्यसे अनभिज्ञ कतिपय पुरुष रामचन्द्रजीकी लीलाओंमें दोष दिखाया करते हैं। शास्त्रीय सिद्धान्तोंके अविदित होनेसे ही ऐसे भ्रान्त पुरुषोंको शूर्पणखाके साथ भगवान्‌के व्यवहारमें अनौचित्य दिखायी देता है। वे कहते हैं कि श्रीरामको शूर्पणखाकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिये थी क्योंकि रावण विश्वविजयी था, उसके साथ सम्बन्ध हो जानेसे उनको बहुत कुछ लाभ सम्भव था। सीताजीकी विद्यमानतामें भी शूर्पणखाके साथ वैवाहिक-बन्धनमें बद्ध होनेमें कोई हानि नहीं थी, क्योंकि बहुविवाह शास्त्रानुमोदित है। स्त्रियोंको जो 'भवतीनां काम विहन्ता पातकी स्यात्' वरदान इन्द्रसे मिला है उसके अनुसार भी श्रीरामजीको शूर्पणखाके साथ प्रेम करनेमें कोई बाधा न थी और यदि उन्हें ऐसा न भी करना था तो भी उस बेचारीकी वैसी दुर्दशा करना ठीक नहीं था, स्त्रीके नाक-कान काटना निन्दित तथा सभ्यताके विरुद्ध है।

ऐसी-ऐसी अनेक शंकाएँ हैं जो तमोगुणप्रधान पाश्चात्य सभ्यताके समर्थकोंकी जिह्वापर विराजमान रहती हैं। भारतीय आदर्श क्या है? इस बातको नहीं जाननेके कारण ही वे ऐसी शंकाएँ उठाते हैं। अस्तु,

रामजीने शूर्पणखाके साथ जो व्यवहार किया वह युक्त था, इस बातको सिद्ध करनेके लिये नीचे कुछ पंक्तियाँ लिखी जाती हैं।

रामजीके लिये शूर्पणखा परस्त्री थी। परपत्नियोंके साथ बर्ताव करनेके विषयमें शास्त्रसम्मति है 'मातृवत्परदारेषु' अर्थात् अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त जितनी भी स्त्रियाँ हैं सबको माताके समान समझो। इसी प्रकारकी एक दूसरी उक्ति है—

> मातृवत् स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये।
> परदारेषु वर्त्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

अर्थात् 'सज्जन पुरुष अपनेसे बड़ी वयवाली परस्त्रियोंको माताके समान, समान वयवाली स्त्रियोंको बहिनके समान और कम वयकी स्त्रियोंको पुत्रीके समान समझते हैं।' अतएव भगवान् पर-पत्नीके साथ विवाह कैसे कर सकते थे?

शूर्पणखा ब्राह्मण-वंशकी थी और उसपर भी विवाहिता थी। ब्राह्मणीके साथ क्षत्रियका विवाह करना सर्वथा अनुचित है। अतएव रामजीने उसकी अवैध प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। यदि वह अविवाहिता तथा सवर्णा भी होती तथापि श्रीरामचन्द्रजी उससे विवाह न करते, क्योंकि वे तो संसारमें एक-पत्नीव्रतकी मर्यादाको स्थापित करना चाहते थे।

श्रीरामको रावणके द्वारा देश-प्राप्तिके समान किसी लाभकी कल्पना उपहासास्पद है क्योंकि रामजीके लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उन्हें प्राप्त न हो तथा जिसके प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो। वे तो पूर्णकाम हैं। श्रीरामचन्द्रजी संसारमें धार्मिक आदर्श स्थापित करनेके लिये मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए थे। उनको रावणके साथ सम्बन्ध हो जानेके

अनन्तर दो, चार, दस, बीस देशोंकी प्राप्ति अभीष्ट कैसे हो सकती है ? जिनकी आज्ञासे अनन्त आकाशमें नक्षत्रावली अप्रमत्तरूपसे यथास्थान अहर्निश घूम रही हो, उनको किसी कामनाके वशीभूत होकर रावण-जैसे दुष्ट पुरुषोंके साथ सम्बन्धके भाव दिखाना कैसे स्वीकार्य हो सकता था ?

इन्द्रने स्त्रियोंको वरदान दिया था कि 'भवतीनां काम विहन्ता पातकी स्यात्' परन्तु यह स्वपत्नीको लक्ष्यकरके ही कहा गया था अतएव श्रीरामचन्द्रजीपर ऐसा कोई दोष आरोपित करनेका अवसर भी नहीं है।

शूर्पणखाने सीताजीको मारकर, रामजीसे बलात्कार अपनी बात मनवानेका जब विचार किया तभी रामजीने आदर्श नृपत्वका परिचय दिया था। शूर्पणखा ब्राह्मण-कुल-दूषण थी और श्रीरामजी थे क्षत्रियकुलभूषण। वह शास्त्र-विरुद्ध प्रातिलोम्य विवाहकी अभिलाषिणी थी, और प्रातिलोम्य स्त्री-संग्रहणमें न्यायानुसार पुरुषको मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिये और यदि स्त्री पर-पुरुष-संग्रहणके लिये उद्यत हो तो राजा उसके नाक कान काट ले। ऐसी महर्षि याज्ञवल्क्यजीकी स्पष्ट आज्ञा है:—

> सजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।
> प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्तनम्॥

अतएव श्रीरामजीने लक्ष्मणजीद्वारा जो उस उन्मार्ग-गामिनीको दण्ड दिलवाया, सो शास्त्रसम्मत ही था।

माता, पिता, स्नातक आदिको छोड़कर सभी पापाचारी राजाके लिये दण्डनीय हैं।[1] जो राजा दण्ड देने योग्य पुरुषको दण्ड देता है, उसको अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। कहा है—

> यो दण्ड्यान्दण्डयेद्राजा सम्यग् वध्यांश्च घातयेत्।
> इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥

इसी प्रकार दूसरा वचन है—

> कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणाञ्जानपदानपि।
> स्वधर्माच्चलितान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि॥

अर्थात् ब्राह्मणादि कुलोंको, मूर्धावसिक्त आदि जातियोंको, ताम्बूलिक आदि श्रेणियोंको, हेलावुक (अश्वव्यवहारी) आदि गणोंको कारूक आदि जानपदोंको, धर्मसे भ्रष्ट हुए लोगोंको राजा विधिपूर्वक दण्ड देकर सन्मार्गमें चलावे।

नारदजीके मतानुसार दण्ड दो प्रकारका होता है। शारीरिक दण्ड और आर्थिक दण्ड। जहाँ जैसा दण्ड शास्त्र-वेत्ताओंने निर्धारित किया हो, वहाँ वैसा ही दण्ड देना चाहिये। शूर्पणखाने जो साहस (घोर-कृत्य) किया था उसके लिये उसे शारीरिक दण्ड ही मिलना धर्मशास्त्रसे विहित था, ऐसी दुश्चरित्राको यदि इसप्रकारका दण्ड दिया जाता है तो भविष्यमें उससे किसी ऐसे पाप बन पड़नेकी सम्भावना नहीं रह जाती है और वह सद्गृहस्थ बनकर जीवन व्यतीत करती है।

पुनः देवताओंको भयभीत करनेवाले, लोकको संत्रस्त करनेवाले रावणके उद्धारके निमित्त भगवान्‌को कुछ बहाना भी चाहिये था। विकृतमुखी बहिनकी दशा देखकर ही रावणने श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्धका विचार किया था।

अतः इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि शूर्पणखाके साथ ऐसा व्यवहार करनेमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने आदर्श सभ्यता तथा आदर्श नृपत्वको ही प्रदर्शित किया है।

रघुबीरजीके सच्चे सेवक कौन हैं ?

> भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि बान तें बाँचे।
> कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
> लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाँचे।
> नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥

1—'नाऽदण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितः स्वकात्' (याज्ञवल्क्य)

एतच्च मातापित्रादिव्यतिरेकेण। तथा च स्मृत्यन्तरम्— अदण्ड्यौ मातापितरौ स्नातकपुरोहितपरिव्राजकवानप्रस्थाः श्रुतशीलशौचाचारवन्तः (मिताक्षरा)

रामायणमें सत्याग्रह।

(लेखक—श्रीयुत यादवशङ्करजी जामदार, रिटायर्ड सबजज*)

आज सारे भारतवर्षमें सत्याग्रहकी उमङ्ग बड़े जोरसे उठी हुई है। आबालवृद्ध इससे परिचित हैं। देशके कोने कोनेमें आज इसकी ध्वनि गूँज रही है। अतः ऐसे सार्वजनिक विषयका नैतिक तथा ऐतिहासिक विवाद—अर्थात् उसके तत्त्व, समय, आचार इत्यादिका विचार करना अधिकाधिक आवश्यक होता जा रहा है। सत्याग्रहके विषयमें सामान्यतः लोगोंकी धारणा है कि 'इसका प्रारम्भ सर्वप्रथम, इसी शताब्दिमें दक्षिण अफ्रिकामें हुआ है और इसके जन्मदाता महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी ही हैं। आपने ही सत्याग्रहका बीज दक्षिण अफ्रिकासे लाकर भारतवर्षमें वपन किया है। अभी यह सत्याग्रहका पौधा नवीन होनेके कारण सुकुमार-दशामें है, परन्तु भारतके सौभाग्यसे वह अपने जन्मदाताके तत्त्वावधानमें है।' इस कथनमें हम केवल अन्तिम अंशको स्वीकार करते हैं, अर्थात् भारतके सौभाग्यसे ही सत्याग्रहका नेतृत्व महात्मा गान्धीको प्राप्त हुआ है। अवशिष्ट अंशमें हम सहमत नहीं। क्योंकि हमारे विचारसे तो सत्याग्रहकी आदि कल्पना भारतमें बहुत पुरानी है और वह सनातनसे चली आ रही है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसका समय-समयपर आविर्भाव, तिरोभाव और कुछ-कुछ रूपान्तर होता रहा है। आज जो हमें सत्याग्रहकी कल्पना अनूठी दीख पड़ती है इसका एकमात्र कारण यही है कि हमने अतिकालसे उसे व्यवहारमें लाना छोड़ दिया, अतएव हम उससे अपरिचित हो गये हैं। कभी-कभी यह शंका हुआ करती है कि भारतभूमि सत्याग्रहबीजके लिये उपयुक्त है या नहीं, इसका समाधान इतनेहीमें हो जाता है कि जब सदासे यह भूमि उस बीजके अनुकूल रही है तो आज विपरीत क्यों होगी? इसके लिये तो सत्याग्रह कोई नयी चीज नहीं है। अब मैं रामायणमें सत्याग्रहोंका कुछ दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ।

'रामायण' शब्दका अर्थ सब जगह रामचरित ही माना जाता है और व्युत्पत्तिके अनुसार वही ठीक है। अतः इसमें विस्तारकी कुछ आवश्यकता नहीं रह जाती। 'सत्याग्रह' सामासिक शब्द है; इसका विग्रह दो प्रकारसे होता है—(१) सत्यका आग्रह; (२) सत्यका आग्रह जिस क्रियामें हो वह क्रिया। यदि 'सत्य' और 'आग्रह' दोनों शब्दोंके अर्थ स्पष्ट हो जायँ तो और भी अच्छा हो। सत्यका अर्थ प्रायः सभी मनुष्य जानते हैं किन्तु शब्दार्थका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण वह जानना न जाननेके बराबर ही है। क्योंकि जो ज्ञान आनुमानिक और अभिनिविष्ट (साहङ्कार) होता है, वह शुद्ध नहीं होता। अनभिनिवेश (निरहंकार) तथा अनुभवसे ही विशुद्ध अर्थ-ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो तत्त्वदृष्टि और अनुभवसे प्रमाणित हो वही यथार्थ सत्य है, मुझे सत्यका यही अर्थ अभिप्रेत है।

रहा 'आग्रह' शब्दका अर्थ। आग्रहकी व्युत्पत्ति होती है—(आ = अच्छी तरह; ग्रह = पकड़ना) अच्छी तरह पकड़ना। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि पकड़ना किस वस्तुको—अपनेको या अन्यको? उत्तर यह है कि 'आग्रह' शब्दमें इन दोनोंका ही समावेश हो जाता है। अतः इस प्रकारकी विचारप्रणालीसे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं तात्त्विक सत्यको पकड़कर उसमें दूसरेको भी गाँठना सत्याग्रह है। शास्त्रीय परिभाषामें इसका यह रूप बतलाया जा सकता है—'स्वयं तात्त्विक सत्यपर स्थित होकर दूसरोंको (असत्यपर आरूढ पुरुषोंको) उसी सत्यपर स्थिर करनेकी चेष्टाका नाम सत्याग्रह है।'

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि तात्त्विक दृष्टिसे यदि किसीको सत्यका अनुभव नहीं हुआ तो उसका सत्याग्रहमें प्रवृत्त होना कहाँतक न्यायसङ्गत हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि सबको उस सत्यका सहज ही अनुभव हो जाना साधारण बात नहीं है, इसके लिये बड़ी तपस्या चाहिये। अतः जिन लोगोंने उस सत्यको यथार्थरूपेण प्राप्त कर लिया है, उन महात्माओंके शब्दोंको कार्यमें परिणत करनेकी सम्यक्

---

* आप अन्य भाषाभाषी होते हुए भी रामायणके बड़े प्रेमी हैं। आपने 'मानस'का मराठीमें अनुवाद किया है और 'मानसहंस' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। —सम्पादक

चेष्टा करनी चाहिये, उनकी आज्ञानुसार सत्याग्रहमें प्रवृत्त होना उचित ही है। सत्याग्रहकी सामान्य समीक्षा करनेके पश्चात् अब हम अपने मुख्य विषयपर आते हैं। रामायणमें सत्याग्रह कहे जाने योग्य प्रसंग निम्नलिखित हैं।

सत्याग्रह				रामायणोंमें परिणाम		
क्रमाङ्क	किसने किया	किसके विरुद्ध किया	किस उद्देश्यसे किया	वाल्मीकि० रा०	अध्यात्म० रा०	तुलसी० रा०
१	विश्वामित्रजी ...	राजा दशरथ ...	मख-रक्षा ...	सफल	सफल	सफल
२	सीताजी ...	श्रीरामजी ...	वन-सहगमन ...	आपसमें निपटारा	आपसमें निपटारा	आपसमें निपटारा
३	लक्ष्मणजी ...	श्रीरामजी ...	वन सहगमन ...	,,	,,	,,
४	केवट ...	श्रीरामजी ...	पाँव पखारन ...	सफल	सफल	सफल
५	भरतजी ...	श्रीरामजी ...	श्रीरामजीको वनसे लौटाना ...	विफल	विफल	आपसमें निपटारा
६	रामचन्द्रजी ...	दक्षिण समुद्र ...	सागरोल्लंघन ...	सफल	सफल	सफल
७	शम्बूक ...	वैदिक धर्म ...	देवत्व प्राप्ति ...	विफल	विफल	×

अब इनका कुछ खुलासा सुनिये—इसमें संक्षिप्त इतिहासके साथ सत्याग्रहोंकी विशेषताएँ और उनके अधिष्ठान दिखाये जायँगे।

१—श्रीविश्वामित्रका सत्याग्रह—

राजा होनेके कारण श्रीदशरथजीका यह कर्तव्य था कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे मुनियोंको अपनी तपस्यामें किसी प्रकारका विघ्न न उपस्थित हो। परन्तु वृद्ध होनेके कारण श्रीदशरथजीमें इतनी शक्ति न थी कि वे ताड़का, सुबाहु आदि बलशाली राक्षसोंको मारकर विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा कर सकें। इस बातको योगबलसे विश्वामित्रजी जानते थे, इसीलिये उन्होंने राजा दशरथकी उपेक्षा करके राम-लक्ष्मणको उस कार्यके लिये ले आनेका संकल्प किया। राजा इस मर्मको नहीं जानते थे, इसलिये आनाकानी करने लगे। इसपर वशिष्ठजीने बीचमें पड़कर दशरथजीके हृदयमें कर्तव्य-भावनाको जागृत किया, तब कहीं दशरथजी राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके लिये देनेको तैयार हुए। इस सत्याग्रहका उद्देश्य राजनीतिक कर्तव्यका जागृत करना था, अतः इसका अधिष्ठान राजनीति था।

२—श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीका सत्याग्रह—

इनके सत्याग्रहकी कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं; इनके सत्याग्रहका अवसर रामचन्द्रजीका वनवासके लिये उद्यत होनेका समय है। ये सत्याग्रह प्रेमपर अधिष्ठित हुए जान पड़ते हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसी ही बात नहीं है। विचारनेसे मालूम होता है कि इस प्रेमका मूल सेव्य-सेवक-भावमें है। अतः सेव्य-सेवक-भाव ही इसका अधिष्ठान है।

३—केवटका सत्याग्रह—

प्रायः सभी रामायणके ग्रन्थोंमें इस सत्याग्रहका प्रसङ्ग समान ही ललितभावोंसे सुसज्जित किया गया है। गुसाईंजीने उसमें—'मोहि राम राउरि आनि दसरथ सपथ' इत्यादि पूरक अंश देकर इस वर्णनको दिव्यस्वरूप प्रदान किया है। इससे तुलसीदासजीकी पात्र-निरीक्षणता तथा प्रसंगावधान-की प्रवीणता स्पष्ट दीख पड़ती है। इस प्रसङ्गमें चमत्कार खूब ही भरा गया है तथा उससे सत्याग्रहका स्वरूप बड़ा ही विलक्षण हो गया है। केवटके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है? क्या गुसाईंजीका उपर्युक्त पूरक न होनेपर इसे प्रेमका अधिष्ठान न मिलता?

इस दुविधामें महाकवि भवभूतिजीके निम्न श्लोकोंसे पूरी सहायता मिल सकती है—

> व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः
>
> न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ॥

अर्थात् 'प्रेम बाह्य उपाधियोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता। एक आन्तरिक शक्ति वस्तुओंको संघटनके वश करती आ रही है।' अतः आन्तर दृष्टिसे विचार करनेपर केवटके इस सत्याग्रहका अधिष्ठान हम अन्यतम प्रेम ही समझेंगे।

४—भरतजीका सत्याग्रह—

भरतजीके सत्याग्रहका अध्यात्म, वाल्मीकीय तथा अन्य रामायणोंमें वैसा महत्त्व नहीं है जैसा गुसाईंजीके रामचरितमानसमें है। इसी कारण उनका तद्विषयक भाषा-प्रबन्ध ऐसा स्निग्ध, ललित और मनोहर हुआ है

विश्वामित्रकी राम-भिक्षा ।

यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥

कि जिसकी समता अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती । इस कथनकी सत्यता इसीसे हो जाती है कि अन्य सभी रामायणोंके रामजी 'द्विर्नाभिभाषते' के समान हैं, पर रामचरितमानसके रामजी भरतके प्रेम-वश 'द्विश्चाभिभाषते' बन गये हैं और ऐसा होनेपर भी ज्यों-के-त्यों, बल्कि बढ़कर लोक-प्रिय और आदरणीय हुए हैं ।

भरतजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है ? इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि गुसाईंजीके भरत-भावमें स्वामि-सेवक, पिता-पुत्र, पूज्य-पूजक इत्यादि अनेक भावोंका बहुत ही सुन्दर संगम पाया जाता है। इसप्रकारके भावोंके मिश्रणका उदाहरण हमें श्रीशुकदेवजीकी श्रीमद्भागवतमें मिलता है । वहाँ भावके परस्परानुप्रवेशका नाम श्रीशुकदेवजीने 'भृत्य-भाव' रक्खा है, और वह है भी अत्यन्त मार्मिक । तदनुसार हम भी इस सत्याग्रहका अधिष्ठान 'भृत्य-भाव' (न कि भक्ति-भाव) निश्चित करते हैं।

४-श्रीरामचन्द्रजीका सत्याग्रह—

श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण समुद्रके विरोधमें वह सत्याग्रह किया था और वहाँ इस सत्याग्रहके दो पार्श्व परस्पर विरोधावस्थामें बन गये थे, रामचन्द्रजीके सत्याग्रहके विरोधमें समुद्रने भी सत्याग्रह किया था, अतः उस सत्याग्रहका दक्षिण भाग भगवान् रामचन्द्रका था और वाम भाग समुद्रका । अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने उसे चौदहवाँ रत्न दिखलाकर अपना सत्याग्रह सफल किया । इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ व्यष्टिहित और समष्टिहितका अविरोध है वहाँ साम—प्रेमसे काम न चलनेपर दण्डका उपयोग करना अनुचित नहीं है । यह प्रसङ्ग पूर्वापेक्षा अधिक जटिल है अतः इसके अधिष्ठानके निर्धारणमें हमें यहाँ विस्तारकी आवश्यकता है, पाठक क्षमा करें ।

रामायण या रामायणीय कथा-प्रबन्ध श्रीरामजी और रावणमें जिस प्रकार भेद निर्देश करते हैं उसका सार समीकरणके रूपमें इसप्रकार दिखलाया जा सकता है—

∵ स्वदेश + स्वातन्त्र्य + स्वराज = रावण ।

∵ स्वदेश + स्वातन्त्र्य + स्वराज + लोकहित = श्रीरामजी

इसलिये निष्कर्ष—

(१) रावण + लोकहित = श्रीरामजी (यही सभी ग्रन्थोंके रामजी हैं)

(२) श्रीरामजी—लोकहित = रावण (यही सब ग्रन्थोंका रावण है)

(३) श्रीरामजी—रावण = लोकहित (यही रामजीका साध्य है)

समीकरण (१) और (२) से स्पष्ट है कि दो विभिन्न ध्रुवोंके समान रामजी और रावणकी मनोरचना परस्पर विरोधिनी थीं । इससे यह निश्चित होता है कि यदि दोनों एक ही समय पृथ्वीपर रहें तो लोकहितका नाश हो जायगा—

रामजी + रावण = (रावण + लोकहित) + (रामजी — लोकहित)

इस समीकरणके अनुसार लोक-हितका सर्वथा अभाव हो जाता है । अतएव समीकरण ३ में निश्चित किया गया कि रावणका नाश केवल लोकहितके लिये अनिवार्य था । इसप्रकार सिद्ध हो गया कि श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान केवल 'लोकसेवा' थी ।

यदि थोड़ा-सा विचार विश्वामित्रजी और श्रीरामजीके सत्याग्रहका भेद समझनेके लिये किया जाय तो अप्रासङ्गिक न होगा । विश्वामित्रजीके माँगनेपर यदि राजा दशरथ श्रीराम और लक्ष्मणको न देते, जैसा कि समुद्रने रामचन्द्रजी-के साथ किया, तो विश्वामित्रजी भी 'शरादपि' नहीं तो 'शापादपि' का प्रयोग अवश्य करते । इसप्रकार दोनों सत्याग्रहोंका रूप एक-सा हो जाता, परन्तु अधिष्ठानमें श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका महत्त्व विश्वामित्रजीके सत्याग्रहसे बहुत आगे बढ़ जाता है ।

इस सत्याग्रहको लेकर एक महत्त्वका प्रश्न और उठाया जा सकता है, कि श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रके कलेजेपर (बड़वानल-पर) हाथ डालनेको तैयार हो जाना अत्याचार क्यों नहीं कहला सकता ? सामान्य बुद्धिसे तो इसे सत्याग्रहका रूप न देकर अत्याचार ही कहना उपयुक्त समझा जायगा, परन्तु विशेष विचारकर देखनेसे इस समझकी भ्रामकता स्पष्ट हो जाती है—'प्रवृत्तिमें आचार उसे ही कहते हैं जो लोक-संग्राहक हो' इसी विचारको सम्मुख रखकर 'योऽस्मान् द्वेष्टि तं च वयं द्विष्मः' 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' 'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' इत्यादि आचार बतलाये गये हैं । इन आचारोंका उल्लङ्घन अत्याचार हो जाता है । प्रकृतस्थलमें रामचन्द्रजीने समुद्रसे सामनीतिका बर्ताव किया, उसे भी उनके साथ वैसा ही

करना उचित था किन्तु उसने उलटे उनकी उपेक्षा की, जिससे उसका कार्य आचारको अतिक्रमण किया हुआ अत्याचार ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्थामें यह शङ्का ही नहीं रह जाती कि रामचन्द्रजीका कार्य आचारका था या अत्याचारका। शास्त्र भी स्पष्ट कहते हैं—

> क्षमा शत्रुषु मित्रेषु यतीनां सैव भूषणम्।
> क्षमा शत्रुषु मित्रेषु राज्ञां सैव दूषणम्॥

७-शम्बूकका सत्याग्रह.

इस सत्याग्रहका वर्णन केवल वाल्मीकिजीने किया है। महाकवि भवभूतिने उसे इसप्रकार कहा है—

> रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य।
> जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्॥

तात्पर्य यह कि ब्राह्मण-पुत्रके जीवनके निमित्त, शूद्र होकर मुनियोंका आचार करनेवाले अत्याचारीकी हत्या करना उचित है। इस प्रसङ्गमें रामचन्द्रजीका अभीष्ट केवल कर्मकाण्डीय संस्थाओंकी रक्षा करना था। अतः 'शम्बूकके सत्याग्रहका अधिष्ठान अधर्म था', ऐसा स्पष्ट हो जाता है। *

सारांश तथा निष्कर्ष

उपर्युक्त सत्याग्रहोंके अधिष्ठान और इनका निष्कर्ष इसप्रकार समझना चाहिये—

सत्याग्रही	अधिष्ठान
१-विश्वामित्र	राजनीति।
२-माता मीना	सेव्य-सेवक-भाव।
३-लक्ष्मणजी	सेव्य-सेवक-भाव।
४-केवट	अनन्य प्रेम।
५-भरतजी	भृत्यभाव।
६-श्रीरामजी	लोक-सेवा।
७-शम्बूक	अधर्म।

इस विवरणका निष्कर्ष इसप्रकार निकाला जा सकता है—

१-केवल राजनीतिमें ही नहीं प्रत्युत अन्य परिस्थितियोंमें भी सत्याग्रह किये जा सकते हैं।

२-सत्याग्रह वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों रूपमें हो सकता है।

३-सत्याग्रह न्याय तथा सदाचारमूलक होना चाहिये।

४-सत्याग्रह असूया (Revenge) आदि दोषोंसे किञ्चित् भी लिप्त न होना चाहिये।

५-सत्याग्रहका लक्ष्य अत्याचारीका सुधार होना चाहिये।

६-प्रेमसे प्रेम और वैरसे विरोध, यही सत्याग्रहके सम्बन्धमें प्रधान निबन्ध है।

७-सत्याग्रहकी परमावधि 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' है। इतना आग्रह तो सत्याग्रहीमें होना ही चाहिये।

शङ्काएँ:—

(१) सत्याग्रहके पूर्व, अत्याचारीके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम मर्यादा कौन-सी है?

(२) सत्याग्रह आरम्भ करनेके बाद, अत्याचारीके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम सीमा कौन-सी है?

(३) 'शठं प्रति शाठ्यम्', 'कण्टकेनैव कण्टकम्' इत्यादि वाक्योंके अवलम्बन तथा प्रचार करनेका अधिकार सत्याग्रहीको है या नहीं? है तो कब? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

साग्रह अनुरोध है कि विशेषज्ञ सज्जन उपर्युक्त शङ्काओं-के समाधानद्वारा लेखकको उपकृत करें!

जाँचना हो तो रामको ही जाँचो।

> जग जाँचिय कोउ न, जाँचिये जौं जिय जाँचिय जानकी-जानहि रे।
> जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥
> गति देखु बिचारि बिभीषनकी, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
> तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि कृपानहि रे॥

---

* शम्बूक देवत्वकी प्राप्तिके लिये तप करता था, यही उसका सत्याग्रह था, परन्तु था मर्यादारहित—धर्मविरुद्ध, इससे उसको भगवान् श्रीरामने मार डाला। परन्तु इससे उसका देवत्व-प्राप्तिरूप उद्देश्य तो सिद्ध हो ही गया। भगवान्ने मारकर 'शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्' शूद्रको उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि शम्बूक अपने प्राण देकर भी सत्याग्रहमें सफल हुआ। इसका 'अध्यात्मरामायण' (७।४।२६) में स्पष्ट वर्णन है। अवश्य ही अधर्मयुक्त होनेसे यह आदर्श नहीं माना जा सकता। उत्तर रामचरितमें भी श्रीरामने शम्बूकको उग्रतपस्याके फलरूप 'वैराज' नामक तेजोमय अविनश्वर पुण्य लोकमें जानेको कहा है! —सम्पादक

श्रीमद्रामायणका महत्त्व

(लेखक—श्रीबालकराम विनायकजी, कनकभवन, अयोध्या)

धन्य धन्य वह भूमि जहाँ जन्मे रघुराई।
वाङ्मयी मूरति सुधारि अतुलित छबि छाई॥
हुलसी-सुत-सुचि-मति हुलास प्रकट सुखरासी।
विश्ववास भगवान् सदा निजतंत्र विलासी॥
शिव मन मानस हंस मारुती प्रानहुँ प्रियतम।
याज्ञवल्कि मुनि ज्ञेय ध्येय वायस परमोत्तम॥
धन्य सो तुलसी-वट विसाल धनि आश्रम सुन्दर।
'नन्दलाल' सो धन्य घड़ी तिथि नखत सुबासर॥

—स्वामी नन्दलालजी

काव्यके ग्रन्थ प्रत्येक भाषाकी शोभा बढ़ाते हैं और महाकाव्य भी सभी समुन्नत भाषाओंमें मौजूद हैं, परन्तु आध्यात्मिक काव्य दुर्लभ वस्तु है, क्योंकि काव्य-कला और अध्यात्म-शास्त्रका स्वाभाविक सम्मिश्रण ही प्रकृत आध्यात्मिक काव्यकी विलक्षणता है। जो काव्य वास्तवमें आध्यात्मिक ढंगके नहीं हैं, उनके अन्दर काव्य और अध्यात्मवादका जो सम्मिश्रण होता है, वह निरा दिखाऊ और कृत्रिम होता है। स्वाभाविक सम्मिश्रण वहीं होता है जहाँ अध्यात्म-सम्बन्धी विचारोंका भीतरी उमङ्गसे प्रादुर्भाव होता है। चित्तके अन्तस्तलसे सत्यको खोज निकालनेके लिये कवित्वका जोश ज़रूरी है।

भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरितासी। राम बिमल जस जल भरितासी॥

किसी आध्यात्मिक सिद्धान्तके लिये बाह्य अलङ्कारके रूपमें कविताके वेषकी अपेक्षा नहीं है। भीतरी प्रेरणासे ही उसे काव्यके रूपमें प्रस्फुटित होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब आध्यात्मिक विचार उलटी चालसे चलकर उस सीमातक पहुँच जाते हैं, जहाँ विश्लेषणात्मक बुद्धिके द्वारा प्रत्येक कार्यके कारण ढूँढ़नेका काम बन्द हो जाता है और जहाँ सत्य, शुद्ध आत्मसंवेदनके उच्चतम शिखरसे सहज ज्ञानके रूपमें स्वयं प्रकाशित हो जाता है। इस आदर्श-के आध्यात्मिक काव्य विश्व-साहित्यमें केवल दो हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस। एक संस्कृत वाङ्मयका समुज्ज्वल रत्न है और दूसरा हिन्दी साहित्यका मुकुटमणि। एक स्वयं भगवान्‌का श्रीमुख-वचनामृत है और दूसरा भगवान् शंकरके हृदयमें अवतरित श्रीराम-चरितामृत है। एक भगवत्स्वरूप वेदव्यासजीद्वारा सङ्कलित और सम्पादित होकर जगत्‌में प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महर्षि वाल्मीकिके साक्षात् अवतार श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी-द्वारा निर्मित होकर लोकमें प्रख्यात हुआ। एककी जन्मस्थली धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रकी रणभूमि है और दूसरेकी अपराजिता अयोध्यापुरीमें अवस्थित श्रीतुलसी-चौरा। एककी जन्म-तिथि मार्गशीर्षकी शुक्लिदा एकादशी है और दूसरेकी श्रीराम-नवमी। दोनों साक्षात् भगवत्-स्वरूप हैं। दोनों तत्त्वतः भी एक ही हैं। क्योंकि वैदिक भक्ति-मार्गके जिस गहन सिद्धान्त-(अर्थात् ज्ञान-कर्म तथा अव्यक्त-व्यक्तके समुच्चय एवं ईश्वरमय विश्वको समझते हुए, विरागपूर्ण कर्म करते हुए निर्लेपत्वकी प्राप्ति) की व्याख्या गीताने की है, वही मानसमें भी श्रीरामचन्द्रजी, श्रीभरतजी एवं श्रीविदेहराज जनक आदिके चरित्रोंद्वारा प्रकट किया गया है। व्यक्त और अव्यक्तके एकीकरणको 'नाम-माहात्म्य' में भलीभाँति दिखलाया गया है और साधु-समाजद्वारा ज्ञान-कर्म-भक्तिका समुच्चय भी प्रकट किया गया है। महर्षि वशिष्ठादिके कर्मों-द्वारा ज्ञान-कर्मका एकत्व भी दर्शाया गया है तथा यथास्थान कर्म-समर्पणका भाव भी दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त मानसमें त्रिविध चक्षुका वर्णन भी किया गया है जैसा कि गीताने किया है और जो त्रिविध मानव श्रेणियाँ गीतामें रक्खी गयी हैं वे ही (त्रिविध मानव-श्रेणियाँ) विषयी, साधक और सिद्ध श्रीरामचरितमानसमें भी रक्खी गयी है। इन त्रिविध देव श्रेणियोंके अतिरिक्त आसुर-श्रेणीका वर्णन भी जिसप्रकार उपनिषद् और गीतामें है उसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी है। जिस प्रकार द्विविध माया और उससे परे आत्माका वर्णन गीताने किया है उसी प्रकार मानसने भी किया है। मनुष्य-रूपमें ईश्वर-पूजाका प्रचार प्रत्यक्षरूपसे गीताने ही किया है। यद्यपि वेदोंमें भी इसकी झलक पायी जाती है, परन्तु मानसमें एक विशेषता यह प्रकट की गयी है कि पुत्र, सखा,

भाई, शत्रु, पिता आदि किसी भी भावमें मनुष्यरूपधारी भगवान्‌की पूजा की जा सकती है और उससे आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति भी हो सकती है। मानसमें एक विशेषता और है। गीताने जितने आदर्श रक्खे हैं वे सभी वैयक्तिक हैं परन्तु मानसमें श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श पारिवारिक है जिसके कारण यह ग्रन्थ लोगोंको और भी प्रिय हो गया है।

भगवान् वेदव्यासजीके बनाये हुए सर्वोत्तम मेवे श्रीमद्भागवतके साथ मानसकी तुलना करते हुए राय बहादुर कुमार श्रीकोशलेन्द्र प्रताप साहि कहते हैं—'भक्तोंके लिये विशेष लाभदायक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत और तुलसीकृत रामायण हैं। जिज्ञासुके लिये इन्हीं दो पुस्तकोंमें सब कुछ भरा है। सृष्टिका पूरा भेद, ज्ञान, विज्ञान और भक्तिके सभी अङ्ग, परब्रह्म परमात्माकी अपूर्व स्तुतियाँ इत्यादि सभी कुछ सारमय वाक्य और रहस्ययुक्त ईश्वरीय लीलाएँ, जो मनुष्य वाणीद्वारा प्रकट कर सकता है, इन पुस्तकोंमें हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत उच्च श्रेणीके मननशील पुरुषोंके लिये ही लाभदायक है। श्रीरामचरितमानस शिक्षित, अशिक्षित, अपढ़, सुपढ़ दोनोंका हाथ थाम्हे हुए है, वह दोनोंको सन्मार्गपर ले चलकर मनुष्यजीवनके लक्ष्यतक पहुँचानेका दावा रखता है। विशुद्ध प्रेमरस, सच्ची दीनता और काव्यके चमत्कारसे यह 'सुरुचि सुकोमल मंजु' हो रहा है। भक्त-हिन्दुओंके जीवनमें रामचरितमानस दूधमें चीनीकी तरह घुलकर व्याप्त हो गया है। रामचरितमानसके रूपमें हिन्दू जातिकी सरस्वतीका जागरण हुआ है। अपने-अपने बुद्धि-बलके अनुसार सब श्रेणीके भक्त उसके मनोहर पदोंका मर्म समझते और उससे आनन्द-विह्वल होते हैं। जनसाधारणको आदर्श जीवनकी परम उदार शिक्षा सरलतासे देनेमें मानस अद्वितीय है। यह हिन्दी-भाषाका गौरव और हिन्दूके कण्ठकी शोभा है। यह कर्ण-कुहरमें अमृतकी वर्षा करता है और मानस-जगत्‌में सौन्दर्यका विकास करता है। यह बुद्धिके लिये सुगम और हृदयके लिये परम रोचक है। स्त्री-पुरुष कैसी भी दशामें इस सिद्ध तथा भक्तिपरायण महाकाव्यसे लाभ उठा रहे हैं। सद्गुरु श्रीहनुमान्‌जीकी कृपासे मानस महान् महिमाका मन्दिर हो गया है।'

सुप्रसिद्ध साधु श्री टी० एल० वास्वानीजी कहते हैं—'काव्य-कलामें श्रीतुलसीदासजी शेक्सपियरसे कम नहीं हैं और इस अक्षय मालाके बनानेमें जो राम-कृष्णादि नामोंसे विख्यात हैं, आपने उनसे बाजी मार ली है, इस विवेचनामें वे उनसे बढ़े-चढ़े हैं। वे जनताके जीवनके एक अंश हो गये हैं। कविकी सजीवताके प्रमाणमें यह एक उच्च कोटिकी पूजा-भेंट कही जायगी, शेक्सपियर पण्डित-वर्गके कवि हैं, परिश्रमी, दुःखपीड़ित, अभिलाषपूर्ण उत्साही जनताके नहीं। अपने निजी जीवन-व्यवहारमें या काव्य-विचारमें वह प्रजा-पक्षपाती नहीं हैं। तुलसीदासजीने अपने जीवन और भजनमें दीन-दुखियों और गये-गुजरोंकी आध्यात्मिक उन्नतिमें सहानुभूति दिखलायी है।'

जिस समय मानसका आविर्भाव हुआ था, उस समयके तत्त्ववेत्ताओं और भगवद्भक्तोंने मानस एवं मानसकारके प्रति जो विचार प्रकट किये थे उसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन भी करा देना उचित समझता हूँ, क्योंकि रामायणके इतने प्रचारका कारण यही है। सर्वप्रथम महाभागवत भगवान् भूतनाथकी सम्मति लीजिये। जिस समय काशीपुरीमें, श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें, रात्रिके समय ग्रन्थकारद्वारा मानसकी प्रति रक्खी गयी थी, प्रातःकाल मन्दिर-पट खुलने परपुस्तकपर दिव्याक्षरोंमें लिखा हुआ यह वाक्य लोगोंने देखा था- 'सत्यं शिवं सुन्दरम्।' मन्दिरमें उस समय यही ध्वनि भी सुनायी पड़ी थी। मूल गुसाईं चरितमें लिखा है—

पोथी पाठ समाप्त कैके धरे, शिवलिङ्ग ढिग रातमें।
मूरख पण्डित सिद्ध तापस जुरे जब पट खुलेउ प्रातमें॥
देखिन तिरपित दृष्टिसे सब जने, कीन्हीं सही शंकरम्।
दिव्याक्षर सों लिखा पढे पुनि सुने सत्यं शिवं सुन्दरम्॥

इस अलौकिक घटनाका प्रभाव जनताके हृदयपर कितना पड़ा होगा, इसका अनुमान भी हम आज नहीं कर सकते। इसमें सन्देह नहीं कि उसी समयसे लोग मानसको वेदके समान स्वतःप्रमाणभूत समझने लगे, सैकड़ों प्रतिलिपियाँ धड़ाधड़ उतारी गयीं और देशभरमें श्रद्धा-भक्तिकी बाढ़-सी आ गयी।

गोस्वामीजीके विद्या-गुरु-बन्धु श्रीनन्ददासजीकी वाणी है:—

श्रीमत्‌नर्मादास स्वगुरु-भ्राता पद बन्दे।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय-कलिमलहारी।
करि पोथीपर सही आदरेउ आपु पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदन-मोहन धनुधारी।
बाल्मीकि अवतार कहत जेहि सन्त प्रचारी॥

नन्ददासके हृदय-नयनको खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई॥

आचार्य श्रीस्वामी हितहरिवंशजीका छप्पय है—

चातक भाव अनन्य एक रति गति पहिचानी।
हटकि देवधुनि बारि टेक स्वाती पै ठानी॥
गज तज घनश्याम सहै सब पंख फुलाये।
अनुपम साहस बिसद प्रेमपन सिद्धि दिखाये।
कवि कोकिल पूरब हते त्रेता जे हरिवंसहित।
हरिनाम स्वाति कलिमाँहि तेइ तुलसिदास चातक उदित॥

गोस्वामीजीके प्रेमी श्रीअब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम कवि) कहते हैं—

रामचरितमानस बिमल सन्तन जीवन प्रान।
हिन्दुआनको बेद सम जमनहिं प्रगट कुरान।

महाकवि महात्मा सूरदासजी लिखते हैं—

धन्य भाग मम सन्त-सिरोमनि चरनकमल तकि आयउँ।
बदन प्रसाद सदन दृग-भरि लखि सुख-सन्दोह समायउँ॥
दयादृष्टि मम दिसि हेरेउ तत्त्व-स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम संशय मूल नसायो॥
हरिलीला गायो तेहि सुनि तनु पुलकित मानसधीर।
सुधासमान बचन कहि पोषेउ सुमिरत सिय-रघुबीर॥
श्रीतुलसी सुचि संत-समागम अद्भुत अमल अनूप।
सूरदास जीवन-फल पायो दरसन जुगल स्वरूप॥

वात्सल्यभाव-भूषित श्रीरूपारुण स्वामी कहते हैं—

कृतयुग सिंधु निकंप तहाँ विधि वाक्य एक नवि।
त्रेता उपज्यो फेन तहाँ कवि आदि पोतरवि॥
द्वापर विषम कराल लहरि रोगादि भ्रमर सत।
व्यास आदि मुनिपुंग तहाँ तेहि काल उबारत।
कलि पाप मूल करवत कलुष विषम लहरि निसिदिन भरत।
श्रीतुलसिदास बानी विमल चढ़ि जहाज नर भव तरत॥

परम रसिक रसखानजी (जिनको स्वामी नन्ददासजी संडीलेवालेने यमुनातटपर तीन वर्षतक श्रीरामचरितमानसकी कथा सुनायी थी) कहते हैं—

सुर तरु लतान बारि फल है फलित किधौं
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी।
किधौं चिन्तामनिनकी माल उर सोभित
बिसाल कंठमें धरें हैं ज्योति झलकावनी॥
प्रभुकी कहानी ते गोसाईंकी मधुर बानी
मुक्त-सुखदानी 'रसखानि' मनभावनी।
खाँड़की खिजावनी-सी कंदकी कुढ़ावनी-सी
सिताको सतावनी-सी सुधा सकुचावनी॥

अब गोस्वामीजीके पीछेके महानुभावोंकी सम्मतियाँ नीचे बाँचिये। स्वामी श्रीमधुसूदन सरस्वती और भक्तमालकार गोस्वामी नाभाजीकी उक्तियाँ अति प्रसिद्ध हैं, इसलिये उनका उल्लेख नहीं किया गया।

अयोध्याजी बड़े स्थानके आचार्य श्रीस्वामी रामप्रसादजी दीनबन्धु कहते हैं—

चातक-वृत्ति सो सात्त्विक रूप
मनो नभ निर्मल कातिकहीको।
पातक-पुञ्ज सिराहिं विलोकत
दीनदयालु बिषै-रस फीको॥
पूजामें अंग प्रसंग मों कान सों
ध्यान धरे रघुनन्दन-सीको।
साधु मों रूप धरे हरि पक्ष
प्रतक्ष सरूप गोसाइहिंजीको॥
वेदको विधान लिये पुरन पुरान मत
मानत प्रमान साधु-संत सब ठाईंके।
प्रेम-रस भीने पद परम नवीने कहि
दीने हैं अखेद कवि भेद जहँ ताईंके॥
दया दरसावै सरसावै प्रेम पुर जल
हियो हुलसावै जौन पाहनके नाईंके।
स्वामीको चरित और बापुरो बखाने कौन
वृत्ति यह बाँटे परी तुलसी गोसाईंके॥

काशीजीके सुप्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान् श्रीदेवतीर्थ (काष्ठ-जिह्व) स्वामीजी लिखते हैं—

वाल्मीकि, नारद, कपिल औ अगस्तदेव
कह्यौ बहु भेव पै समुझमें न आई है।
भक्तिरस चाखो चाहै बूझे बिन सूझे काहा
निपट अबूझेको निकट दरसाई है॥

दास आस पूरे करै संसय सब दूरे करै
प्रभु पद पूरे करै सुजन सोहाई है ।
चारि षट दस वसु उदधि अगाध मथि
सुधासे निकासे मूल तुलसी गोसाईं है ॥

असरन-सरन एक तुलसीके चरन हैं ।
राम-भक्ति दायक औ ज्ञान-मान-हरन हैं ॥
भाषामें रामचरित कियो ललित बरन हैं ।
अगम अर्थ सुगम कियो पढ़त बरन-बरन है ॥
बाल्मीकि व्यास वाक्य यदपि फलित करन हैं ।
इतनो रस तहाँ कहाँ चुवत परन-परन है ॥
देव ऋषि कि आदिकवि कि वेदरूप धरन हैं ।
जाके बस सीय-राम-लखन तरन-तरन हैं ॥

धर्माचार्योंकी सम्मतियाँ ऊपर संक्षेपतः दे दी गयीं । अब कुछ हिन्दीके पुराने कवियोंकी उक्तियाँ सुनिये । सुकवि 'प्रधान' जी कहते हैं—

जेती कृपा करी महावीरजू गोसाईं जू पै
तेती न दुलारो रामजूहू सग भाईका ।
सैांपे निज तत्त्व राम-जानकीका तत्त्व सार
एकै बार सौंपि दीन्हों सबै सो कमाईका ।
केते कवि भये केते अहैं केते होनेवारे
काेऊ न 'प्रधान' ऐसी पाई प्रभुताईका ।
वेद औ पुरानका मान राखे तौलैा लोग
जौलैां न प्रमान भाखैं तुलसी चौपाईका ॥

तुलसी गोसाईंजीकी कीरति न गाई जात
नवो खण्ड जम्बूद्वीप तम्बूसी तनाई है ।
भाषत 'प्रधान' सत पुरुष औ मूरखका
सबै सुखदाई जाकी ऐसी कविताई है ।
मधुर त्रिकासी काल फाँसी नरकासी हरै
कामना प्रदा-सी भासी साधु तन पाई है ।
अमृत-सी, मयूख-सी पीयूष-सी पुष्पन-सी
देवनकी ललन-सी भूषन-सी भाई है ॥

सोक भक्षिता है इहलोक दक्षिता है
परलोक रक्षिता है सिद्धिता है सब ठाईंकी ।
प्रीतिकी पिता है अनरीतिकी चिता है
परतीति संचिता है चर्चिता है काल खाईंकी ।
भाषत 'प्रधान' दिल-दोष दरिता है
रसरूप भरिता है सरिता है शम्भु साईंकी ।
मुक्ति गर्विता है रामभक्ति भविता है
विश्वहेतु सविता है कविता है या गोसाईंकी ॥

कविवर 'किंकर-गोविन्द' जूकी उक्ति देखिये :—

सरि जात सञ्चित असञ्चित बिसरि जात
करि जात भोग भव-बन्धन कतरि जात ।
तरि जात काम सरि बरि जात क्रोध कीर
कर्म कलिकाल तीनि कण्टक भभरि जात ।
भरि जात भाग्य भाल 'किंकर-गोविन्द' त्योंहीं
ज्योंही तुलसीकी कविताई पै नजरि जात ।
जरि जात दम्भ, दोष-दूषण दररि जात
दुरि जात दारिद दुकालहूँ निसरि जात ॥

भक्तिकी प्रसूतिका है मुक्तिहूकी दूतिका है
भवकी विभूतिका है सुद्ध उक्तिका है जू ।
सची रम्भा मेनका है हिमवन्त-कन्यका है
कामधेनुका है कधौं मातु रेणुका है जू ।
धर्म-मूरिका है मोह-तम-दूरिका है
हरिपद-धूरिका है कधौं काम पूरिका है जू ।
सुर-सरिता है कै विशुद्ध चरिता है कधौं
'किंकर-गोविन्द' तुलसीकी कविता है जू ॥

इसी तरह कविवर 'तोष' भव्य भावनासे भावित होकर लिखते हैं—

यह खानि चतुष्फलकी सुखदानि
अनूपम आनि हिये हुलसी ।
पुनि सन्तनके मन-भृंगनको
अति मंजुल मालू लसी तुलसी ।
अरु मानुषके तारबे कहँ 'तोष'
भई भवसागरके पुल-सी ।
सब कामना-दायक काम-दुहा
सम रामकथा बरनी तुलसी ॥

देखिये, कविवर 'महाराज'के कथनमें कितनी वास्तविकता है—

अबलों सब नेम,धर्म,संयम सिराय जाते
माता-पिता बालकको वेद न पढ़ावते ।
आमिष-अहारी व्यभिचारी होते भारी लोग
कोऊ रघुनाथजूकी चर्चा न चलावते ।
छूटि जाते नेम-धर्म आश्रमके चारों वर्ण
ऐसे कलिकालमें कराल दुःख पावते ।
होते सब कुचाली सो सुचाली मनै 'महाराज'
जौपै कवि तुलसीदास भाषा न बनावते ।।

'बेनी' कविकी उक्ति भी इसी प्रकारकी है—

वेदमत सोधि सोधि सोधिकै पुरान सबै
सन्त औ असन्तनको भेद को बतावतो ।
कपटी कुराही कूर कलिके कुचाली जीव
कौन रामनामहूकी चर्चा चलावतो ।
'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह
पाहन-हियेमें कौन प्रेम उपजावतो ।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार
जोपै यह रामायण तुलसी न गावतो ।।

भक्त कवि 'ठाकुर' की उक्ति अनेक दृष्टियोंसे विचारणीय है—

वेद-मत-सम्मत पुरान अरु शास्त्रनको
प्रेमको विलास इतिहास परसति है ।
सोभा सीलमयी प्रीतिमयी रीतिमयी भीति
बड़ोई प्रमान सो प्रतच्छ दरसति है ।।
'ठाकुर' कहत धनि तुलसी तिहारी बानी
अकह कहानी रससानी सरसति है ।
चन्द-सी, चमेली-सी गिरा-सी गंगधारहू-सी
मधा मेघमयी रामयश बरसति है ।।

श्रीपरमानन्दजी कुछ और बढ़-बढ़कर कहते हैं—

कैधों सिद्धि सार बगराने देस-देसानिमें
कैधों गणरायजूकी बुद्धि सरसाई है ।
कैधों सुरसरिता निहारि निज चौथोपन
दीन हेतु पाय नव रूप दरसाई है ।।
कैधों मुक्तिरानी बिथरानी मौन-मौननिमें
कैधों परमानन्द तुलसी-कविताई है ।
कैधों रघुनाथकी दयालुता प्रतच्छ हैकै
पतित उधारिबेको रूप धरि आई है ।।

राजर्षि श्रीरघुराजसिंहजू देव (रीवाँ नरेश) कह गये हैं—

कविनकी नीकी अति जीकी भारतीकी उक्ति
फीकी परी धार जो अमीकी-सी लगत की ।
भारतीके दन्तनकी मीसी-सी रचि है रुचि
ब्रह्मगीकी ही की जम भी की जोड़ सतकी ।।
रघुराज श्रुति बिमलीकी लीक टीकी लोक
बिरतिकी लाकी भगतिमें भगतकी ।
प्रेमकी नदीकी दरी छेमकी हदीकी भरी
बानी श्रीगोसाईंजीकी जीवन जगतकी ।।

वैदिक प्रमान जाको वेदको बदत त्यों
पुरानिक प्रमानमें प्रमान जासु गावै है ।
देश-देश-बासी निज निज अक्षरन माहिं
लियो है उतारि वृद्ध-बालक पढ़ावै है ।।
कहाँलों कहौं मैं जांत जमलों जुड़ाय जात
ऐसो को न जाको चौपाई चारि आवै है ।
तुलसी-रचित राम-चरितको रघुराज
सोचत बदत राम उर बसि जावै है ।।

राम-पद-रति बिरजाते निकसिकै बेगि
ब्रह्म, रुद्र, मह ऋषि सीसपै सोहाई है ।
बाल्मीकि मुख मैनाथ कै महीको मंडि
चहूँ दिसि रसिक महोदधिको धाई है ।।
सगर-सुवन जग-जीवन तरन-हेतु
संकर-प्रसाद हिमगिरि प्रगटाई है ।
रघुराज राम-कथा भरतखंड भूमि भलि
भागीरथी तुलसी भगीरथ बहाई है ।।

बोयो बिधि बीज रघुनाथ जस कामतरु
कुम्भज बसिष्ठ साखा पल्लव लगायो है ।
व्यास सुकदेव आदि किसलै कुसुम कीन्हे
बाल्मीकि सुफल अमल दरसायो है ।।
माधव धुरीणाचार्य रामानुजाचार्य आदि
बीनि-बीनि फल ग्रन्थ पथमें धरायो है ।
रघुराज तुलसी सनेहसों परोसे पानि
सीतापति सेवक निवत ऋषि आयो है ।।

प्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजी लिख गये हैं—

जय जय श्रीतुलसीकी बानी ।
विसद विचित्र चित्र पद मंडित भुक्ति मुक्ति बरदानी ॥
लीन्हो वेद-पुरान-शास्त्र-मत मुनिजन ललित कहानी ।
ज्ञान,विराग, ब्रह्म-सुख-जननी करम धरम नय सानी ॥
उदित भई जा दिनतें जगमें तबते बुधन बखानी ।
अखिल अवनिमंडल परिपूरित को अस जो नहिं जानी ।
प्रगटी राम-चरन-रति जहँ तहँ भूरि विमुखता मानी ।
राम-गुलाम सुनत गावत हिय आवत सारंगपानी ॥

राम-भक्ति रमाको प्रगट पय पारावार
सदगुन आगारको नगनाधिराज है ।
महामुनि हंसनिकौ मानस महेश मन
बेध बिधु विप्रवृत मोह खग बाज है ॥
वेद अवतार औ सिंगार भारतीको भव्य
भाग्यको भंडार जग-जलधि जहाज है ।
बदत गुलाम राम धर्मको धवल धाम
रामायन नाम सब ग्रन्थ सिरताज है ॥

साहित्याचार्य पं० श्रीअम्बिकादत्त व्यासजीने क्या ही अच्छा कहा है—

अंग्रेजी, फारसी, फरासी, जरमनीहूमें
राम-लछिमनकी कहानी दरसात है ।
सब पाठसालनमें सालनके बालनमें
पोथीके अटालनमें रामहीं दिखात है ॥
राज-दरबारन दुकान अस्थानमें
बालकी बहालनमें होत सोई बात है ।
मूरख चपाटहूते रामको लिवायो नाम
तुलसी गुसाईं यह तेरी करामात है ॥

रहे ते कलंकी कलि कपटी कुचाली मूढ़
भागु-भागु नातो गहि पटकि पछारेंगो ।
तुलसी गोसाईंजूके काव्यके किला सों काढ़ि
दोहरा दुनाली-सी बन्दूकनसों मारेंगो ॥
कवि अम्बादत्त सोरठाके सैफ साफ करि
छंदनके छरासों गरब गहि गारेंगो ।
चारु चउपाइनके चोखे-चोखे चाकू लेइ
आज तोहि टूक-टूक काटि-काटि डारेंगो ॥

डूबि गये पानीमें मरन्द अरबिन्द संग
फूटिगे अनार दाख देह सिकुराई है ।
सूख गये ऊख गरि गये नवनीत मीत
चीनी हू हठीली गाँव-गाँव लात खाई है ॥
तून गह्यो मिसरी बतासे भये हलकेसे
अम्बादत्त कवि मुरझाई त्यों मलाई है ।
लखिकै गुसाईंजूके काव्यकी मधुरताई
सुधाहू लजाई सुरलोकको सिधाई है ॥

लै लै रसरासिनको सत्त तिन्हें घोरि-घोरि
जुगुति मथनियाँ सो मथि-मथि डारिये ।
काढ़िकै मधुरताकी माखनकी गोली तामें
मञ्जुलता मिसरी लै सुभग सँवारिये ॥
कहै कवि अम्बादत्त गुन अलंकारनके
मेवा डारि ताको पुनि अधिक सुधारिये ।
तुलसी गुसाईंजूके मानस रामायनके
एक-एक आखरपै सोऊ वारि डारिये ।

मोह-ममताको मद-मत्सरको मन्दताको
मूढ़ताकी मीचहूको मारनो-सो दरसो ।
पूतना पिसाचो प्रेत पंनगको पापिनको
भूत भय दुष्ट राच्छसकी जुरम जहर-सो ॥
कवि अम्बादत्त कहै तुलसी गुसाईंजूकी
कविता अपूरब अमीकी धार बरसो ।
परम उचाटनो पखंडिनके मंडलको
मुक्ति जुवतीको अहै मन्त्र बसीकर-सो ॥

डगर-डगर अरु नगर-नगर माँहि
कहनि पसारी रामचरित अवनिकी ।
कहै कवि अम्बादत्त रामहीकी लीकन सों
भरि दीनी भीर सबै बहलि-पहलिकी ॥
मूढ़नते ब्राह्मण लों मूरखते पण्डित लों
रसना डुलाई सबै जै-जै बलि बनिकी ।
जमको भगाय पाप-पुञ्जको नसाय आज
तुलसी गोसाईं नाक काट लीनी कलिकी ॥

अयोध्याजीके प्रसिद्ध सिद्ध सन्त बाबा बनादासजी लिखते हैं—

बन्दों पद तुलसी गोसाईं महाराजजूको
कलिराज उदधि जहाज अवतार हैं।
जीवनपै दाया रघुनाथ निर्मान किये
जाकी मति चढ़ि भवसागरतें पार हैं॥
राखि लीनो सकल पुरान श्रुति शास्त्रबीज
ना तो बूड़ि जात मरजाद मँझधार है।
ऐसी रीति रहस महान तीन काल नाहीं
बनादास बदत प्रचारि बार-बार हैं॥

मराठी भाषाके प्रख्यात कवि, 'केकावलि' के कर्त्ता श्रीमोरोपन्त 'मयूर कवि' ने एक 'श्रीतुलसीदासस्तव' लिखा है, उसकी नीचे उद्धृत की गयी कुछ आर्याओंसे ज्ञात होगा कि मयूरजीके अन्तःकरणमें गोस्वामीजीके विषयमें कितना आदर था—

श्रीराम-पदाब्ज-अलि तुलसीदास हा सदा गावा ॥ १ ॥
श्रीवाल्मीकि च झाला श्रीतुलसीदास, रामयश गाया।
नरिच प्रेम रसाच खाणी वाणी तशीच वशगा या ॥ २ ॥
याचें सुप्रेम-भवन कवन निववितें सदा बुधा सरसें।
हें जों जों सेवावें तों तों सेव्यचि गमें, सुधा-सरसें ॥ ६ ॥

अर्थात् तुलसीदासजी मानो श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलका रस चूसनेवाले भ्रमर हैं। हमें उनकी निरन्तर स्तुति करनी चाहिये। राम-यश-गान करनेमें श्रीतुलसीदास-जी मानो मूर्तिमान् श्रीवाल्मीकि ही हो गये हैं। इसीलिये उनकी वाणी, जो प्रेमरसकी खानि थी, महाकवि वाल्मीकि-की वाणीके ही सदृश उनके वशमें थी। उनका काव्य मानो उत्तम प्रेम-मन्दिर है, जो ज्ञानियों और पण्डितोंको निरन्तर अपनी सरसतासे शोभा और सुन्दरतासे तृप्त करता है। क्योंकि ज्यों-ज्यों इस मन्दिरका भोग किया जाय—ज्यों-ज्यों इसके प्रेम-भक्ति-पूर्ण काव्य-रसका भोग किया जाय—त्यों-त्यों वह अमृतकी तरह सेव्य ज्ञात होता है अर्थात् पीयूष-पानका-सा आनन्द मिलता है।

इसी कारण श्रीनाभाजीके शब्दोंमें कहना पड़ता है—

'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।'

'गीताके बाद यदि किसी ग्रन्थने देशोद्धारका समुचित मार्ग दिखलाया है तो इस गोस्वामीजीकी रामायणहीने। इसमें भगवद्भक्ति और सांसारिक सदाचारकी इतनी उत्तम शिक्षा दी गयी है कि वह और किसी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती।'

अन्तमें विदेशी विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सनकी सम्मति सुन लीजिये—

'भारतवर्षके इतिहासमें तुलसीदासजीका गुरुत्व अमूल्य है। उनके ग्रन्थके पाण्डित्यको अलग रहने दीजिये, उनकी सर्वसाधारण ग्राहकतापर ही दृष्टि कीजिये, जिसका पंजाबसे भागलपुर और हिमालयसे नर्मदा पर्यन्त चारों वर्णवाले आदर करते हैं, सो वास्तविक ध्यान देने योग्य है। सारे हिन्दू-समाजमें राजा, रङ्क, उच्च, नीच, बाल, युवा, वृद्ध सबके मुँहसे यह रामायण सुनायी देती है और सबमें समभावसे पढ़ी, सुनी और आदरणीय समझी जाती है। तीन सौ वर्षसे अधिक हुए यह रामायण आर्य भारतवासियोंके जीवन, व्यवहार और बोलचालमें सर्वथा मिलजुल गयी है। ऐसा न सोचना चाहिये कि लोग इसे केवल काव्य-रसके प्रेमसे अथवा आश्चर्यताके कारण ही देखते अथवा पढ़ते हैं। इसे तो धर्मशास्त्रके सदृश पवित्र और प्रामाणिक मानते हैं। जैसे यूरपके पादरी 'बाइबिल' को आदरणीय समझते हैं वैसे ही आर्य लोग इसकी मर्यादा मानते हैं। यह करोड़ों मनुष्योंका शास्त्र हो रहा है। पण्डित चाहे वेद और उपनिषदोंका अभ्यास करें और थोड़े बहुत अन्य व्यक्ति पुराणोंपर अपना विश्वास जमावें, परन्तु मध्यदेशके पठित तथा अपठित दोनों श्रेणियोंके मनुष्योंका असंख्य समुदाय इसी तुलसीकृत रामायणको अपना मुख्य जीवनसर्वस्व समझता है। निस्सन्देह मध्यदेशके लिये इसे सौभाग्यका बड़ा कारण समझना चाहिये कि जिसने शैव-सम्प्रदायके तान्त्रिक व्यवहारसे इस देशका रक्षण किया। इस देशके मूल रक्षक स्वामी रामानन्दजी हुए। जिस पतित व्यवहारसे बङ्ग देश भ्रष्ट गिना गया उससे उन्होंने इस देशको बचा लिया। किन्तु तुलसीदासजी ऐसे उस धर्मके रक्षक हुए कि पूर्वसे पश्चिम (और उत्तरसे दक्षिण) तक स्वामी रामानन्दजीके उस सद्धर्मको फैलाकर उसपर लोगोंका पूर्णरूपसे विश्वास करा दिया।

'वाल्मीकिजीने भरतजीकी धर्मपरायणता, लक्ष्मणजीका भ्रातृ-स्नेह और सीताजीके पातिव्रत धर्मकी प्रशंसा की है, परन्तु गुसाईं तुलसीदासजीने उन्हें उदाहरण बनाकर दिखाया है। कालिदासजीने अपनी मनोहारिणी कविताके केवल आधारके लिये श्रीरामचन्द्रजीका निरूपण किया है

परन्तु बाबा तुलसीदासजीने अपने माननीय ईश्वरके चरणों-पर अति नम्रतापूर्वक चिरस्थायी सुगन्धित पुष्पोंकी माला पिरोकर अर्पण की है। यहाँ एक बात और वर्णन करने योग्य है जिसपर कदाचित् किसी आर्य पाठकने ध्यान भी न दिया होगा। वह यह है कि वे ही सर्वप्रथम भारतीय महाकवि हैं जिन्होंने अपने पूर्वभूत कवियोंकी उपमा न लेकर प्रकृतिरूपी पुस्तकसे अपनी सब उपमाओंको लिया है। वे इतने भारी तत्त्ववेत्ता थे कि उनके यथार्थ और सरल-सरल पद भी बड़े-बड़े टीकाकारोंकी समझमें न आये।'

हालके द्विवेदी, चतुर्वेदी, शुक्ल, मिश्र-बन्धु,
गुप्त, दीन, रामहित, स्नेही, रत्नाकरजू।
रंग औ अनंग, रसरंगमणि, पाठकजू,
नवलबिहारी, शर्म्माजू, नवनागरजू॥
इन्दु, श्री बिन्दु, अरविन्द, नेहलता, गांधी,
गद्य-पद्य-लेखक मलिन्द, शक्ति, चामरजू।
निज-निज भावसों गोसाईं गुन-गान कीन्हे,
छिपे नहीं छपे पत्रिकान बीच सादरजू॥

रामायणसे राजनीतिक उत्थानमें सहायता।

(लेखक—राव बहादुर सरदार माधवराव विनायक किबे एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, डि० प्राइम मिनिस्टर, होल्कर स्टेट)
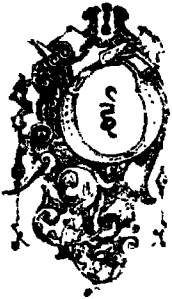
सासकी १६ वीं शताब्दीके अन्तसे १७ वीं शताब्दीतक महाराष्ट्रमें जितने भी सन्त-कवि हुए, उनमें जिन्होंने धर्म-रक्षा-द्वारा परतन्त्रताका मूलोच्छेद करनेमें जो कुछ प्रयत्न किया था उसकी उत्थापनामें रामायणकी कथाओंका बहुत कुछ उपयोग किया गया है। इन्होंने मुसल्मान और पोर्चुगीज आदि यूरोपियन लोगोंको राक्षसोंकी और महाराष्ट्र वीरोंको भगवान् रामचन्द्रजीके सैनिकोंकी उपमा दी थी। उस समय प्रायः सभी सन्त-कवियोंने रामायणकी कथाओंका मराठीमें वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया था। इस उपक्रमका प्रारम्भ सबसे पहले श्रीएकनाथ महाराजने किया। यद्यपि उनका प्रधान उद्देश्य अध्यात्मरामायण-वर्णित तत्त्वज्ञानका ही जनतामें प्रचार करना था तथापि श्रीरामचन्द्रजीके पुण्य चरित्रकी मुख्य-मुख्य बातें उन्होंने बड़े अच्छे ढंगसे वर्णन की हैं।

राजनीतिक उत्थानमें रामायणका सबसे अधिक उपयोग छत्रपति शिवाजी महाराजके गुरु समर्थ श्रीरामदास स्वामीने पूर्ण रूपसे किया, उन्होंने बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें बड़ी ही सुन्दर शैलीसे इस कथाका प्रभावोत्पादक वर्णन किया है कि यद्यपि रावण अत्यन्त शक्तिशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न और विद्वान् था परन्तु दुराचारी होनेके कारण उसका विनाश श्रीरामचन्द्रजीने वानरोंकी सहायतासे कर दिया। इसीके साथ-साथ स्वामी रामदासजीने अपने विभिन्न मठोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके परम अनन्य भक्त बल-वीर्य-निधान श्रीहनुमान्‌जीकी भक्तिका भी जनतामें खूब प्रचार करवाया। यहाँतक कि उन्होंने अपने उपदेशोंसे जनताको इस बातके लिये बाध्य किया कि वह भी श्रीहनुमानजी-सी शक्ति प्राप्त करे। हनुमान्‌जीके ब्रह्मचर्यका गौरव सिद्ध करते हुए उसका भी सर्वसाधारणमें प्रचार किया। आपने अपने अनेक लेखोंमें उपर्युक्त दोनों बातोंपर बड़ा ज़ोर दिया है। इसीके साथ श्रीरामचन्द्रजीके सत्यवादिता, एकपत्नी-व्रत आदि आदर्श और पवित्र गुणोंका गौरव-गान करते हुए आपने लोगोंको यह शिक्षा दी कि मनुष्यपर कितना भी सङ्कट क्यों न आ जाय परन्तु वह अपने शीलका परित्याग कदापि न करे।

स्वामीजी श्रीरामदासजीने अपने 'दासबोध' नामक ग्रन्थ-में छत्रपति शिवाजीके सम्बन्धमें स्थान-स्थानपर जो कुछ उल्लेख किया है उसका मननपूर्वक विचार करनेसे यह ज्ञान होता है कि आपका अभिप्राय यह बतलाना था कि छत्रपति शिवाजी भगवान् श्रीरामचन्द्रका ही अनुकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, जैसे श्रीरामचन्द्रजीने विजयलाभके लिये जिसप्रकार देवीकी उपासना की थी, उसी प्रकार छत्रपतिने भी तुलजा भवानीको प्रसन्न करनेके लिये प्रार्थना की। सुप्रसिद्ध चित्तौड़गढ़में श्रीतुलजा भवानीका मन्दिर है, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस कुलमें छत्रपति उत्पन्न हुए थे, उस सूर्यवंश—सीसौदिया-कुलकी कुलदेवी

भवानी माता ही थी। श्रीरामदास स्वामीने अपने स्फुट प्रकरणोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

श्रीरामदासजीने स्वरचित कविताओंमें यह दिखलाया है कि जिसप्रकार रावणका ऐश्वर्य अत्याचार पूर्ण था उसी प्रकार 'औरंगवा पापी' का है, और जैसे श्रीरामजीने क्षुद्र वानरोंकी संघशक्तिसे सहायता प्राप्तकर उनका समूल संहारकर धर्मरक्षा की थी, वैसे ही छत्रपतिने भी अपने शत्रुओंको परास्तकर धर्मकी रक्षा की और समस्त तीर्थक्षेत्रों-को निर्भय कर दिया। इस बातका वर्णन उन्होंने अपने उस पत्रमें बड़ी ही उत्तमतासे किया है जो छत्रपति शिवाजी-के पश्चात् छत्रपति शम्भाजीके नाम भेजा गया था। उनका 'आनन्द-वन-भुवन' नामक काव्य 'देश-प्रेम'के वर्णनमें सुप्रसिद्ध 'वन्दे मातरम्' से किसी प्रकार भी कम नहीं है, प्रत्युत देशकी स्थिति बतलानेमें उससे कहीं बढ़कर है।

राजनीतिक उत्थानमें रामायणसे जो शिक्षा प्राप्त हो सकती है, महात्मा गाँधीजीके कथनानुसार वह यही है कि किसी भी हालतमें सत्यको हृदयसे नहीं हटाना चाहिये। श्रीरामचन्द्र इस सिद्धान्तके सर्वोच्च आदर्श हैं। पिताके वचनका पालन करनेके लिये उन्होंने प्रसन्नतासे राज्यका त्यागकर वनके कष्ट सहना पसन्द किया। उनकी सत्य-प्रियताके प्रभावसे ही उन्हें जंगली वानर-जातिकी अभूत-पूर्व सहायता प्राप्त हुई। सङ्कटमें धर्मपालन उनका आदर्श गुण था। उन्होंने एक-पत्नी-व्रत ग्रहण किया था और सीता देवीकी अनुपस्थितिमें भी उस व्रतको बड़ी ही उत्तमतासे निभाया तथा किसी भी परिस्थितिमें उसका त्याग नहीं किया। संघशक्तिको बढ़ाया, वानरोंके जो भेद थे अर्थात् जम्बूक, सुग्रीव और बालि आदिमें जो परस्पर झगड़े थे, उन्हें बड़ी ही बुद्धिमानीसे निपटाकर उन सबको एक सूत्रमें बाँध दिया और फलतः उनकी सहायतासे महान् बल-सम्पन्न दुर्धर्ष रावणका विनाश कर दिया। सहकारसे कितना बड़ा काम हो सकता है यह बात समुद्रपर सेतुकी रचनाकर आपने जनताको प्रत्यक्ष दिखला दी। चरित्रका प्रभाव कैसा पड़ता है यह तो श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे भलीभाँति दृष्टिगोचर होता ही है। प्रजाके सन्तोषके लिये श्रीरामचन्द्रजीने सीतादेवीरूप सर्वस्वका परित्याग कर दिया। सारांश, कि लोकाग्रगण्यमें जो गुण होने चाहिये, श्रीरामचन्द्रजीने अपने बर्तावसे उन सबको मूर्त्तिमान करके दिखला दिया।

रामायणमें वर्णित चरित्रोंका मनन करनेसे सत्य, संघशक्ति, चरित्रबल, भावना-जागृति, ध्येय पालन आदि गुणोंका देशके राजनीतिक उत्थानमें कितना महत्त्व है और इनको कौन-सा स्थान प्राप्त है—यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है। जिसप्रकार १६ वीं या १७वीं शताब्दीमें उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर साहित्यकी रचना की गयी थी, आज भी देशोद्धारके लिये वैसे ही साहित्यके निर्माण करनेकी अत्यावश्यकता है। साथ ही उपर्युक्त दृष्टिसे रामायणके अध्ययन करनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है, इससे भी खूब लाभ हो सकता है।

रामायणसे उच्च भावोंका प्रादुर्भाव

जगत्‌में अनेक काव्य-ग्रन्थ हैं परन्तु आचार और काव्यको कोई भी कवि इसप्रकारकी दृढ़ता, मनोहरता और रसिकतासे नहीं बाँध सका। ऐसे प्रभावशाली ढंगसे धर्मका सजीव उपदेश देना एक रामायणका ही काम है। यही एक काव्य है जो हमारे हृदयोंमें सत्यके प्रेमको ऐसी उत्तमतासे उत्पन्न कर देता है, कि हम रामायणको पढ़कर कुछ-से-कुछ बन जाते हैं। हममें ऊँचे ऊँचे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और वे सब गुण जो मनुष्यकी उत्कृष्टताके आभूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। सत्याचरण, पितृभक्ति, पातिव्रत-धर्म, पति-धर्म, पिता-माताका स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता आदि मानवगुणोंका ऐसा कौन सा चित्र है जिसके यथार्थ स्वरूपको कविने इस ग्रन्थमें अपनी जादू-भरी लेखनीसे चित्रित नहीं किया हो। रामायणके देखनेसे प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति भारतके प्राचीनतम एवं आन्तरिक भावोंसे हुई है। अतः इससे अधःपतित अवस्थामें पड़े हुए सभी लोगोंको पुनर्जीवन प्राप्त होता है। —ग्रीफिथ (रामायणके अनुवादक)

मानसमें ज्ञान और भक्ति

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मीधरजी पाठक)

भक्ति और ज्ञानमें कौन श्रेष्ठ है यह बताना सरल नहीं है। मायामें लिप्त, परमार्थ-चिन्तनसे विमुख, हम अल्पज्ञ मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है ? कृत-माया-दासी, संसार-त्यागी, परम मेधावी ऋषि-मुनि-आचार्यगण भी इस विषयके सिद्धान्तोंमें एकमत नहीं हैं। कोई कहते हैं ज्ञान श्रेष्ठ है तो कोई कहते हैं भक्ति श्रेष्ठ है। शास्त्र, पुराण एवं बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें इस विषयके प्रचुर विवेचन मिलते हैं पर उनसे एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है। हाँ, इतना तो अवश्य ही सभीको स्वीकार करना पड़ेगा कि भक्ति और ज्ञान दोनों ही वस्तुओंसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है—श्रेय-स्वरूप परमात्मा-की प्राप्ति हो सकती है।

यद्यपि उपर्युक्त 'भक्ति और ज्ञान'का विवेचन कठिन है तथापि इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीके मतको लेखकने जैसा समझा है, उसे कुछ युक्तियों सहित उपस्थित करनेका प्रयास किया जाता है। आशा है सहृदय पाठकगण धृष्टता क्षमा करेंगे।

भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने प्रधान ग्रन्थ श्रीराम-चरित-मानसमें इसका एक अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। इस विवेचनमें उन्होंने रूपक और उपमाके आश्रयसे इन दोनों—'भक्ति और ज्ञान'—में अन्तर दिखलाया है। यह प्रकरण उक्त ग्रन्थके उत्तरकाण्डमें 'ज्ञान-दीपक'के नामसे प्रसिद्ध है। पूरा प्रकरण पाठकोंको उक्त स्थलपर देखना चाहिये। यहाँपर उसके कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं—

ग्यानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥

× × ×

पुरुष त्यागि सक नारि कहँ जे बिरक्त मति धीर।
न तु कामी जे बिषय बस बिमुख जे पद रघुबीर॥
सो मुनि ग्यान-निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिकल होहिं हरिजान, नारि बिष्णु माया प्रगट॥

× × ×

मोह न नारि नारिके रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु प्रभु दोऊ। नारि बर्ग जानै सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥

ज्ञान और भक्तिमें (इनके फलमें) अन्तर नहीं है; क्योंकि दोनों ही संसारसे मुक्त करते हैं; किन्तु उनके स्वरूपमें कुछ अन्तर है। ज्ञान-विराग आदि पुरुष हैं, तथा माया और भक्ति स्त्री हैं। पुरुष प्रबल होते और स्त्री अबला—बलहीना होती हैं, इतना होनेपर भी स्त्रियोंमें एक ऐसी शक्ति है जिससे वे बड़े-बड़े बली एवं ज्ञानी पुरुषोंको भी विवश कर सकती हैं। परन्तु स्त्रियोंपर उनका कोई जोर नहीं चलता, ज्ञान-विराग आदि रूपी पुरुष-जातिको तो मायारूपी स्त्रीसे भय है किन्तु (स्त्री होनेके कारण) भक्तिको उससे कोई भय नहीं। भक्ति भगवान्‌की प्यारी है, पर माया तो बेचारी नर्तकीमात्र है, वह तो भगवान्‌की इच्छानुसार नाचनेवाली है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि भक्तिपर भगवान् सदा अनुकूल रहते हैं, इसलिये भी माया भक्तिसे डरती है।

तदनन्तर ज्ञानको 'दीप' की उपमा दी गयी है, यह उपमा है भी यथार्थ। क्योंकि दीपकी उपयोगिता केवल सब वस्तुओंको देखनेमें ही है; अर्थात् जैसे अन्धकारमें विलीन यथास्थानस्थित सब पदार्थोंको हम दीपके प्रकाशसे ही देख सकते हैं, उसी प्रकार मायाके अन्धकारमें विलीन पदार्थों (तत्, त्वं आदि) को हम ज्ञानके द्वारा ही अनुभव कर सकते हैं, उनका बोध कर सकते हैं। किन्तु जैसे दीपके प्रस्तुत करनेमें घृत, कपास, अग्नि इत्यादि अनेक सामग्रियोंकी आवश्यकता है उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें भी गीतोक्त दैवी सम्पत्तिके गुणोंकी और अन्य अनेक सात्त्विक साधनोंकी आवश्यकता है, जिनको यहाँ रूपकके द्वारा दिखलाया गया है। तदनन्तर जैसे दीपके प्रस्तुत होनेपर भी अनेक आपत्तियाँ हैं, उसी प्रकार (शास्त्रीय) ज्ञान प्राप्त होनेपर भी ज्ञानीके लिये कई प्रकारके भय हैं। गोस्वामीजी इस रूपकमें इन सबका दृश्य दिखलाकर अन्तमें अपने सिद्धान्तस्वरूप वाक्य इसप्रकार कहते हैं—

ग्यानके पन्थ कृपानके धारा। परत खगेश न लागहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पन्थ निरबहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

ज्ञानके सम्बन्धमें ऐसा लिखकर फिर भक्तिके विषयमें आप कहते हैं—

कहेउं ग्यान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति मणिकी प्रभुताई॥

श्रीराम जन्म (प्राचीन चित्र)

जन्म स्थान, कसौटीका खम्भा
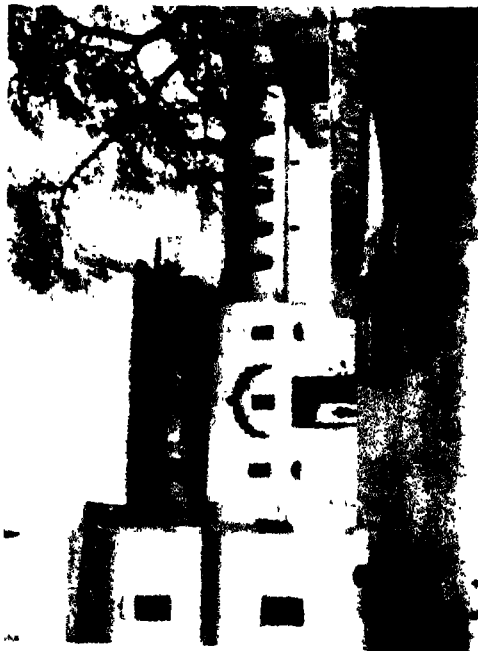
मन्दिर जन्मभूमि

जन्म स्थान

लक्ष्मणजीका मन्दिर — लक्ष्मण घाट (बाहरसे)

लक्ष्मणजीके मन्दिरकी झाँकी (भीतरसे)
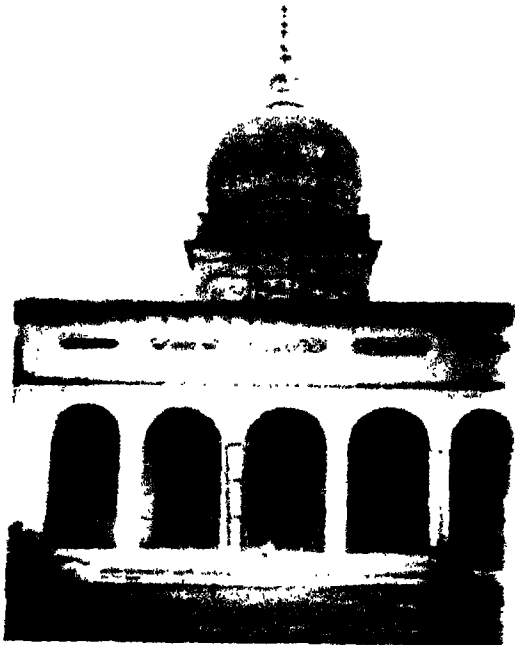
लक्ष्मण किला सामनेका दृश्य

लक्ष्मण किला (पिछला दृश्य)

भक्तिकी उपमा 'मणि' से दी गयी है। मणिको प्रकाश करनेके लिये दीपकी भाँति घृत इत्यादि उपकरणोंकी आवश्यकता नहीं होती और न इसमें दीपकी भाँति आपत्तियोंका ही कोई भय है।

परन्तु वह मणि प्राप्त कैसे होगी? बड़ा सुलभ उपाय है—मणि होनेपर भी इसकी प्राप्ति दीपकी अपेक्षा सुलभ है—

सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देत भट भेरे॥

'देत भट भेरे' अर्थात् व्यर्थ ही सर फोड़ते हैं। क्या उपाय है? सुनिये—

पावन पर्बत बेद पुराना। राम-कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भावसहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुखखानी॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंकी आवश्यकता है, अर्थात् ज्ञानकी आवश्यकता तो है परन्तु नेत्ररूपसे—दीपरूपसे नहीं। बस, चलिये, दीपके उपर्युक्त सब साधनों-झंझटोंसे छूट जाते हैं। ऐसा कहनेका यह भाव नहीं है कि भक्तिमें दैवी सम्पत्तिके गुणों और अन्यान्य सात्त्विक साधनोंको नितान्त अनावश्यक समझकर उनकी अवहेलना की जाय।

इस प्रसंगसे यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञानकी उपयोगिता भक्तिके लिये ही है, अन्यथा केवल ज्ञान-लाभसे इतिकर्तव्यता नहीं हो जाती। इसको यों भी समझ सकते हैं कि बागमें जाकर फल-फूलोंके वृक्षोंकी श्रेणी, जाति, आवान्तरभेद, संख्या इत्यादिका केवल पूर्ण ज्ञान करना और दूसरी ओर इन सबोंपर बिना ध्यान दिये ही उन फल-फूलोंका गन्धास्वादन भोग करना। इनमें अकेला तो दूसरा प्रकार ही अभीष्ट हो सकता है, और पहले प्रकारकी उपयोगितामें दूसरे प्रकारका होना भी अपेक्षित है। गोस्वामीजी इसीको स्पष्ट करते हैं—

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
सुनु खगेस हरिभगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी। पैरि पार चाहत जड़ करनी॥

क्या ही सुन्दर सिद्धान्त-वाक्य हैं? केवल गोस्वामीजी ही नहीं, अपितु वेदके व्याख्याता, अष्टादश-पुराण-प्रणेता, ईश्वर-विभूति, स्वयं महर्षि व्यासजीने भी यही कहा है—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥
(भागवत १०।१४।४)

यहाँपर 'केवलबोधलब्धये' बहुत ही महत्त्वके शब्द हैं—अर्थात् केवल ज्ञान लाभ करनेके लिये ही जो कष्ट उठाते हैं अथवा यों कह सकते हैं कि जो केवल ज्ञान-लाभ कर लेनेमें ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं उनके पल्ले भूसी कूटनेवालोंकी भाँति केवल क्लेश ही शेष रह जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी इसी सिद्धान्त-वाक्यपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा देते हैं—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भगति-हीन प्रिय मोहि न सोऊ॥
भगति स्वतन्त्र सकल गुनखानी।

सारांश यह कि 'ज्ञान-प्राप्ति' करनेका फल 'भक्ति' है 'ज्ञान' यदि साधन है तो 'भक्ति' फल है।

ऊपर कहा है—

जो निर्विघ्न पन्थ निरबहई। सो कैवल्य परम-पद लहई॥

यहाँ विघ्न कौन-से हैं?

सुनिये?

यह सब मायाकृत परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन देखि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

'अपर जीव'में (शास्त्र)ज्ञानी भी आ जाते हैं। इसीलिये कहा है—

ग्यानिहु कहँ काम क्रोध रिपु आहीं।

और इनसे बचनेका उपाय भक्तिद्वारा 'भगवच्छरणागति' ही है।

ज्ञानकी अवस्थातक शत्रुओंका परम भय है, भक्तिकी अवस्थामें कोई भय नहीं, क्योंकि ज्ञानियोंको तो अपने बलका भरोसा रहता है परन्तु भक्त अपने सर्वशक्तिमान् प्रभुके भरोसेपर निर्भय और निश्चिन्त रहते हैं, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनोंकी स्वरूप-परिस्थितिका उत्तम चित्र दिखलाते हैं—

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी*। बालक सुत सम दास अमानी॥

इसीलिये भगवान्ने कहा है—

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९।२२)

* १ ज्ञानी (केवल), २ भक्त

मुसल्मान रामभक्त

[सिद्ध फ़कीर शाह जलाल-उद्दीन वसाली]

(लेखक — श्रीजमुनाप्रसादजी श्रीवास्तव)

(१)

जो व्यक्ति जीते-जी परमात्मामें मिल जाता है उसे 'वसाली' कहते हैं । यह शब्द फ़ारसी भाषाका है । इसकी व्याख्या कवि वलीरामजीने अत्यन्त सरल और सरस भाषामें इसप्रकार की है—

डेरा डाल दीजे उठि राह लीजे
जिस राहमें पीवको पाइये जू ।
'हम-तुम' से न्यारे हो रहिये
नित हँसिये, खेलिये, गाइये जू ॥
मुए मुक्त मीतकी चाह कैसी
जो पै जीवते पीव न पाइये जू ।
वली अन्त समय जहँ जावना है
तहं जीवते क्यों नहीं जाइये जू ॥

खुरासानके शाह जलाल-उद्दीन वसाली 'सूफ़ी हुस्न-परस्त' अर्थात् 'शृंगार-निष्ठा'के भक्त थे । श्रीरामचन्द्रजीके उपासक होनेके अतिरिक्त वे उनकी अलौकिक मधुर छविपर मोहित भी थे । उनका विश्वास था कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर, स्वरूपवान और सुकुमार हैं । उनकी भक्ति करने तथा उनका नाम जपनेसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है । जैसा कि कवि 'खुश्तर' ने उर्दू-रामायणमें कहा है—

करे वरदे ज़बाँ जो कोई यह 'नाम',
गुलस्ताने जहाँमें पाय आराम ॥
नजात हर बशर इस 'नाम'से है,
कि आख़िर काम 'सीताराम'से है ॥
इबादतका नहीं है आजकल काम,
फ़कत काफ़ी है 'सीताराम'का नाम ॥

महात्मा 'वसाली' भ्रमण करते हुए पंजाबप्रान्तके मुलतान-नगरमें जा निकले थे । उसी नगरमें पण्डित टेकचन्दजी कथा-वाचक रहते थे । वे बड़े विद्वान् और सुयोग्य वक्ता थे । प्रतिदिन सन्ध्या समय समई माईके चबूतरेपर रामायणकी कथा बाँचते थे । उनका स्वर अत्यन्त कोमल और मधुर था । श्रोताओंको वह खूब रिझाते थे । पद-पदार्थोंकी व्याख्या सुन्दर सरल और सरस शब्दोंमें करते थे, जिससे स्त्रियाँ और छोटे छोटे-बच्चे भी आसानीसे समझ लेते थे । जिस रसका वे वर्णन करते उसका तो चित्र ही खींच देते थे । इन सब सामग्रियोंसे उनकी कथा खूब जमती थी । दूर-दूरसे लोग आते और कई सहस्र श्रोता इकट्ठे होकर कथा सुना करते थे ।

(२)

राजा जनककी फुलवारीका प्रसंग था । मिथिलावासी श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत छविपर मुग्ध थे । पण्डितजीने उनकी अलौकिक छविका वर्णन इतनी सुन्दर और सरस भाषामें किया कि श्रोतागण सुनकर गद्गद हो गये और बेइख़्तियार उनकी ज़बानसे निकल गया—

किसीकी आँखमें जादू तेरा ज़बाँमें है ।

कुछ रात्रि बीते कथा समाप्त हुई । श्रोतागण आरती लेकर अपने-अपने घर जाने लगे । पण्डितजीने अपनी पुस्तक बाँधना आरम्भ किया । इसी बीचमें शाह-साहेबने आकर कहा—

"पण्डितजी ! आपकी पद-पदार्थकी व्याख्या सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । कृपा करके यह बतलाइये कि यह कौन-सी बहुअर्थ-गौरवान्वित पुस्तक है और इसमें किस यूसफ़के समान सुन्दर व्यक्तिके सौन्दर्य और लावण्य-का वर्णन है ।"

"शाहसाहेब ! हिमालयसे कुछ दूरीपर एक विशाल नगर बसा है । उसका नाम अयोध्या है । वह सूबे अवधकी राजधानी है । वहाँ महाराजा दशरथ राज्य करते थे । वे बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे । महाप्रभु रामचन्द्रजी उन्हींके सुपुत्र थे । वे अत्यन्त सुन्दर, शूरवीर और बुद्धिमान् थे—

गुणसागर नागर वरबीरा । सुन्दर स्यामल गौर सरीरा ॥

यह रामायण है । इसमें उन्हींकी मंगलमय लीलाका वर्णन है । कहिये ! आपको उनकी कथा अच्छी तो लगती है ?"

"पण्डितजी ! मैं कई दिनोंसे यहाँ रोज़ आकर कथा सुनता हूँ, बड़ा आनन्द आता है। मैं तो शाहज़ादे अवधका आशिक़ हो गया हूँ। दीन व दुनियासे मुँह मोड़ उन्हींके कूचेमें मुक़ीम हूँ।"

"शाहसाहेब ! आप कथाके बड़े प्रेमी हैं। कृपा करके प्रतिदिन आया कीजिये। मैं अपने पास ही बैठा लिया करूँगा।"

"हाँ ! हाँ ! मैं तो रोज़ सबसे पहले आता हूँ और सबसे पीछे जाता हूँ। लेकिन मुझे यहाँ कोई बैठने नहीं देता। खड़े-खड़े सुन लेता हूँ। अच्छा, अब जाता हूँ। कल फिर आऊँगा।"

(३)

शाहसाहेबकी इस प्रेमवार्ताकी चर्चा मुसल्मानोंके कानोंमें पहुँची। वे अत्यन्त क्रोधित हुए। सबने सलाह करके मौलवी अब्दुल्लाके मकानपर मजलिस जोड़ी। सम्पूर्ण मुसलमानोंको बुलाया और शाहसाहेबको भी पकड़वा मँगाया। मौलवी साहबने वाज़ दी, इस्लाम धर्मकी व्याख्या तथा तरीकत और शरीयतकी तलकीन की। सब लोग ध्यान देकर सुनते रहे। शाहसाहेब एक किनारे बैठे थे। उन्होंने ध्यानतक नहीं दिया। प्रेमके उमङ्गमें वे यह गाते रहे—

काफ़िरे इश्कम मुसल्मानी
मरा दरकार नेस्त।

अर्थात् मैं प्रेम-पथका पथिक हूँ। मुझे मुसल्मानीकी ज़रूरत नहीं है।

और अन्तमें यह कहकर—

हसरत मेरी यह है, मेरा अरमान है यही,
आजाय तू नज़र तो तुझे देखता रहूँ।

चुपकेसे कथामें चले आये।

वाज़ हो जानेपर शाहसाहेबकी खोज हुई, परन्तु वे थे ही नहीं, मिलें तो कैसे मिलें। लोग उन्हें ढूँढ़ते हुए कथामें आये। वहाँ वे पण्डितजीके पास बैठे बड़े प्रेमसे कथा सुन रहे थे। नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। तन-मनकी सुधि नहीं थी। उनकी यह दशा देखकर मुसल्मानोंको सन्देह हुआ कि हो न हो, पण्डितजीने ही शाहसाहेबको गुमराह करके मुसल्मानसे काफ़िर बना लिया है। सब लोग उनके ऊपर बिगड़ पड़े। मौलवी साहेबने धमका-कर कहा—

"पण्डितजी ! जो कुछ हुआ सो हुआ। कलसे कथा मत बाँचो। अपना पोथी-पत्रा यहाँसे उठा ले जाओ, वरना.................."

पण्डितजी बेचारे सीधे-सादे थे और मौलवी साहेब-को अच्छी तरह जानते थे, बोले—

"अच्छा ! कलसे मैं कथा नहीं बाँचूँगा। आप इतमीनान रक्खें।"

(४)

दूसरे दिन कथा बन्द हो गयी। बालकाण्ड समाप्त हो चुका था। पण्डितजीने प्रातःकाल हवन करके दूसरे शहरका मार्ग पकड़ा। रास्तेमें शाह साहेब मिले, उन्होंने पहचानकर कहा—

"कहाँ चले जा रहे हो ? पण्डितजी ! ज़रा उस दिलदारका पता तो देते जाओ।"

पण्डितजीने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा—

"शाहसाहेब ! इस समय तो जान लेकर भागा जा रहा हूँ। ठहरनेसे पकड़े जानेका डर है वरना मैं आपको प्यारे प्रभुका चरित्र अवश्य सुनाता।"

शाह साहेब सिद्ध फकीर थे, उन्होंने कहा—

"पण्डितजी ! डरो मत ! मैं तुम्हें यह असा (छड़ी) देता हूँ। पृथ्वीपर पटक देनेसे वह अजदहा हो जायगा और सब लोग डरकर भाग जायँगे। धूलमें डाल दोगे तो वह अपनी असली सूरतमें आ जायगा, उसे हाथमें लिये फिरना, तुम तो मेरे दिलदारकी हिकायत सुनाते हो तुम्हें डर किस बातका है ?"—

अहले दुनिया काफ़िराने मुतलकन्द,
रोज शबवादर ज़क ज़की दरवक़ व कन्द।

अर्थात्—

महाजाल जंजाल भयङ्कर भव मैं जौन फँसे।
महामूढ़ बेमतलब झक झक करत साँझ सबेरे॥

"अच्छा ! ज़रा फिर तो समझा दो कि शाहज़ादे अवध कैसे हसीन हैं।"

बेचारे पण्डितजी क्या करते। पोथी खोलकर बैठ गये। रघुनाथजीकी अपार शोभाका वर्णन करने लगे। जनकपुर-

की स्त्रियाँ किसप्रकार मोहित होकर निछावर हुई थीं और धनुषयज्ञके समय देश देशके राजा और महाराजा किस-प्रकार उनकी अतुलित छविपर बेदाम बिक गये थे। इन्हीं सब बातोंका सविस्तर वर्णन करते रहे और आनन्दमें मग्न होकर यह गाने लगे—

धरणीका भार हरने, यही राम अब बने हैं।
पापोंका घन उड़ाने घनश्याम अब बने हैं॥
विष्णु! यही विश्वम्भर! यही नीलकण्ठधारी।
यही पारब्रह्म ईश्वर! यही राम हैं मुरारी॥

शाह साहेब मस्त हो गये, उन्होंने अपनी सिद्धियोंसे प्यारेकी कथा सुनानेवालेकी कुछ सेवा करना चाहा। और बोले—'वाह! पण्डितजी! वाह वाह, खूब सुनाया।

'अच्छा! माँगो क्या माँगते हो?'

पण्डितजीने खूब सोच विचारकर तीन चीजें माँगीं—

(१) मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे एक पुत्र हो जाय।

(२) मेरी मृत्यु अनायास हो। और

(३) श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति हो।

"अच्छा लो, दो वरदान अभी देता हूँ। तीसरा अब फिर मिलोगे और दिलदारकी बातें सुनाओगे तब दूँगा।"

यही तो असली चीज़ थी। पण्डितजी अपनी भूलपर पछताते हुए कि मैंने पहले यही क्यों न माँगा, उनसे कहा, "फिर मैं आपको कहाँ पाऊँगा?"

"यारके कूचेमें। मेरा यार तुम्हें खींचकर मेरे पास पहुँचा देगा। अच्छा, अब जाओ।"

पण्डित टेकचन्द्र विदा हुए। शाह साहेब झूमते-झामते निम्नलिखित मस्ताना गीत गाते हुए यारके कूचेकी तरफ चले—

दिलदार यार प्यारे गलियोंमें मेरी आ जा।
आँखें तरस रही हैं सूरत मुझे दिखा जा॥

(५)

पाँचवें महीने शाह साहेब अवध-धाममें पहुँचे और बाबरकी मसजिदमें उतरे। इतने दिनकी प्रबल उत्कण्ठाके बाद इष्टधाममें पहुँचनेपर उन्हें जो असीम आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन कौन कर सकता है? वे उसी अपार आनन्दमें मग्न होकर इष्टदेव प्यारे श्रीरामकी आराधनामें लग गये। इतनेमें एक सज्जन वहाँसे निकले। उन्होंने शाह साहेबको अकेला देखकर कहा—

"शाह साहेब! अकेले कैसे बैठे हो?"

महात्मा वसालीका ध्यान भंग हो गया। उन्होंने किसी प्रकार अपनी विरह-वेदनाको रोक और क्रोधको शान्त कर कहा—

"अभीतक तो अकेला नहीं था, अपने दिलदारके साथ मज़े उड़ा रहा था। हाँ, तुम्हारे आ जानेसे अलबत्ता ध्यान टूट गया और मैं अकेला हो गया।"

यह उपदेश-भरे वचन सुनकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ। हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा और प्रणामकर चला गया।

(६)

अनन्तर महात्मा वसालीने इष्टधामकी परिक्रमा करनेका विचार किया। भगवत्-भक्तोंको यह कार्य कितना सुखकर होता है, सो तो कोई भक्त ही जानता है। आजकलके शौकीनोंको इसका क्या पता? मौलाना रूम साहेबने फरमाया है—

न मन बेहूदा गिर्दे कूचः वा बाज़ार मी गरदम।
मज़ाक़े आशकी दारम' पये दीदार मी गरदम॥

अर्थात् मैं यों ही असभ्यकी भाँति गलियों और बाजारोंमें नहीं घूमता, मुझे प्रेमका चसका लग गया है, मैं प्रियतम प्रभुको खोजता फिरता हूँ।

एक दूसरे सन्तका कथन है—

आँ ज़मीनें कि निशानें कफ़ पाये तू बुअद।
सालहा सिज़दए साहेब नज़रा ख़ुआहिद बूद॥

अर्थात्—

परम सुहावन तव पद अंकित भूमि।
सदा रहेंगे सज्जन प्रेमी चूमि॥
(शरणजी)

अर्थात् प्रभुपद-अंकित भूमिकी महिमाका क्या कहना है! वह तो भगवत्-भक्तोंकी सदा वन्दनीया है।

यही सब सोचते और यह कहते हुए—

नेह-सरोवरमें धँसिके कढ़िबो हँसि खेल नहीं है।

—आनन्दपूर्वक अयोध्याजीकी गलियोंमें विचरने लगे। उन दिनों अयोध्याजीमें मन्दिर थोड़े ही थे परन्तु उनके भीतर

इनका प्रवेश होना एक असम्भव बात थी। इधर प्रियतमके दीदारकी लालसा, उधर पुजारियोंकी दुत्कार। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी स्थितियोंके संघर्षमें विरही महात्माजीके हृदयमें दर्शन-लाभकी ज्वाला और भी ज़ोरसे धधक उठी। उन्हें बड़ा दुःख हुआ, परन्तु नियम है जो जिसकी याद करता है वह भी उसकी याद करता है। कहा भी है—

तुलसी कमलन जल बसे, रवि शशि बसें अकाश।
जो जाके मनमें बसे, सो ताहीके पास॥

और भी—

जिसको हम चाहें न चाहे क्या मजाल।
दिलसे लेकिन उसको चाहा चाहिये॥

और भी—

असर है ज़ज्ब-उल्फतमें तो खिंचकर आही जावेंगे।
हमें परवाह नहीं, इसकी, अगर वह तनके बैठे हैं॥

अन्तमें जब उनकी बेचैनी बहुत बढ़ गयी तब यह आकाशवाणी हुई—

'ऐ बसाली, जल्द आ! मैं तुझसे मिलनेके लिये तड़प रहा हूँ।'

इस आकाशवाणीके सुनते ही महात्मा बसालीका शरीर पुलकित हो गया। आनन्दके मारे उनके नेत्रोंसे आँसू छलक पड़े। उनकी ज़बानसे बरबस निकल पड़ा—

ऐ कि दर हेच जानदारी जा जुज़ अजब मांदअम कि हरजाई॥
सर्व रहित सब उर पुर बासी।

(७)

अनन्तर महात्मा बसाली श्रीसरयूजीके किनारे गये। विमल वर वारिको देखकर प्रेमसे परिपूर्ण हो गये। जल और थलकी उन्हें सुधि नहीं रही। गुदड़ी पहने हुए ही बीच धारामें कूद पड़े। घाटपर लोग स्नान-ध्यान कर रहे थे, यह देख उन्हें आश्चर्य हुआ। सबोंने जाना कि शाह साहेब डूब गये। कई मनुष्य झटपट कूद पड़े। स्वर्गद्वारघाट लक्ष्मनघाट आदि सब छान डाले परन्तु उनका पता न लगा। आषाढ़का महीना था। सरयूजी बड़े वेगसे बह रही थीं। सब लोग निराश होकर बैठ रहे। अन्तमें एक पहरके पश्चात् वे गुप्तारघाटपर निकले। उनका सम्पूर्ण शरीर भीगा था, परन्तु गुदड़ी सूखी थी—

गर वदरिया रवदव वज़दए इश्क़।
रिश्तए दलक़शां न गरदद् नम॥

अर्थात्

प्रेम पगा जो बूड़ई सरिता माँहि।
एकहु ताग गुदड़िको भीजे नाँहिं॥
—बिनायक

शाह साहेब किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने उस समयके दृश्यका वर्णन इसप्रकार किया है:—

दोश रफ़्तम बसूय हम्मामे।
दीदम आँजा इके दिलारामे॥
चाबुके दिलवरे व बेबाके।
नाज़ुके महरुखे गुल अन्दामे॥
सरो क़द या समन बूए।
सरकेशे मूँ ख़ुरे वख़ुद कामे॥
तुन्द ख़ोये व मरदुम आज़ारे।
मस्त चश्मे व साग़िरे आशामे॥
गाह दर वहस हीला परदाज़े।
गाह दर इल्म इश्वा अल्लामे॥
आशिक़ाँरा हमी नमूद अयाँ।
ऊ रुख़ो ज़ुल्फ़ कुफ़्रो इस्लामे॥
चूँ मरा दीद रूप ख़ुद तलबीद।
तानवर्ज़द ज़रुय अन्यामे॥
मुत्तहैयर चुना शुदम किन माँद।
वमन अज़ होश दरगहे नामे॥
मी नदानम कि अन्दराँ हैरत।
व 'बसाली' क दाद पैग़ामे॥
कि वचश्मान दिल मुबीं जुज़ दोस्त।
हर चे बीनी वदाँ कि मज़हर ओस्त॥

अर्थात्

गयउँ काल्ह मैं सरिता तीर। देखेउँ सुखद एक मति धीर॥
चतुर मनोहर वीर निशंक। शशि-मुख कोमल सारंग अंक॥
सुघर उठानि सुबासित गाता। वय किशोर गति गज सुखदाता॥
चितवत चोख भृकुटि बर बाँके। नयन भरित मद मधुरस छाके॥
कबहूँ छबियुत भाव जनावै। कबहुँ कटाक्ष कला दरसावै॥
प्रेमिन कँह अस परै लखाई। मुख छबि वैदिक धर्म सुहाई॥
मेचक कच कुंचित घुघुरारे। जनु इसलाम धर्म द्युति धारे॥

मम दिशि लखि भू बंक सँमोरेउ। छबि प्रसाद जनु देन हँकारेउ॥
चकित थकित चित भयउँ अचेता। सुध बुध बिसरी धर्मक-खेता॥
नहिं जानो तिहि छिन मोहि जोही। को संदेश जतायउ मोही॥
प्रियतम प्रभु तजि आन, जनि देखिय हिमकी चखनि।
जो देखिय मतिमान, तासु प्रकाशहिं जानिये॥

महात्मा बसाली कुछ दिन स्वर्गद्वार और मणि-पर्वत पर रहे। फिर वे प्रमोद-वनको चले आये और वहीं रहने लगे।

(८)

पण्डित टेकचन्दजी शाह साहेबको खोजते हुए अयोध्याजीमें आये, परन्तु वे नहीं मिले। तब उन्होंने इस अभिप्रायसे कि ख्याति होते ही जहाँ होंगे, आ जायँगे, रामायणकी कथा बाँचना आरम्भ कर दिया। कथा खूब जमती थी। सहस्रों मनुष्य इकट्ठे होते थे। एक दिन जब कथा समाप्ति हो चुकी और हवन होनेके उपरान्त पूजा चढ़ चुकी, तब पण्डितजीने उदास होकर कहा—

'रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।
वे शाहजी आये न दम भर के लिये॥'

इसी बीचमें शाहसाहेब भी आ पहुँचे। व्यासासन छू जानेके भयसे उन्होंने दूरसेही पाँच दाने यवके पुस्तक-पर फेंक दिये। दाने चमकदार थे। पार्श्ववर्तियोंने बीनकर पण्डितजीको दिये। यथार्थमें वे सोनेके थे। यह देखकर लोग दंग रह गये। पण्डितजीने व्यासासनसे उतरकर अभिवादन किया और अपने आनेका कारण कह सुनाया। शाहसाहेबने कहा—

"अच्छा! यहाँसे निपटकर प्रमोद-वनमें बेरके वृक्षके नीचे आओ!"

यह कहकर शाह साहेब चले गये। पण्डितजीने पोथी-पत्रा बाँध, श्रोताओंसे विदा हो प्रमोद-वनकी राह ली। कुछ श्रोताओंने पीछा किया परन्तु उन्होंने यह कहकर कि, उनके साथ रहनेसे शाहसाहेबके दर्शन नहीं मिलेंगे, उन्हें लौटा दिया, इसपर भी एक व्यक्ति चुपके-चुपके पीछे चला ही गया। पण्डितजीने प्रमोदवनमें पहुँच, बेरके वृक्षके नीचे खोज की, परन्तु शाहसाहेब नहीं मिले तब वे वहीं ठहर गये परन्तु दूसरा व्यक्ति जो पीछे-पीछे आया था, निराश होकर लौट गया। उसके जाते ही शाहसाहेब बेरके वृक्षके नीचे प्रकट हुए। पण्डितजीने हाथ जोड़कर विनती की और कहा—

"शाहसाहेब! आपकी कृपासे पुत्र-रत्न तो मिल गया, अब मेरा इच्छित तीसरा वरदान दीजिये।"

"अच्छा! जो कुछ कल कथामें पाया है, उसे दान करके रातको इसी स्थानपर आ जाओ परन्तु आजकी तरह किसी औरको अपने साथमें मत लाना।"

(९)

पण्डितजीने उसी दिन सब कुछ दान कर दिया। साँझ होते ही भिखारी बनकर शाहसाहेबके आश्रममें पहुँचे और विनती की—

"मैं आपका सेवक हाजिर हूँ।"

महात्मा बसाली उस समय नेत्र मूँदे हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अनूप रूपराशिका असीम आनन्द लूट रहे थे। उनकी उस समयकी अवस्थाका वर्णन करते हुए किसी कविने कहा है—

तुझमें फ़ना हूँ और तुझीमें फ़ना रहूँ।
आजाय तूं नज़र तो तुझे देखता रहूँ॥

महात्माजीने आँखे मूँदे ही मूँदे कहा—

"हाँ! आ गये? अच्छा, कहो?"

मामुकीमाने कुय दिल दारेम।
रूख व दुनिया वदीं नमी आरेम॥
बुल बुलानेम कज़ कज़ा व क़दर।
ओफ़्तादा जुदा ज़ गुलज़ारेम॥
मुर्ग़ शाख़े दरख़्त लाहूतेम।
गोहरे दुर्रे गंज इसरारेम॥

शाहसाहेब कहते जाते थे और पण्डितजी दुहराते जाते थे। अन्तमें शाह साहेबने कहा—

"अच्छा! अब वली अल्लाह हो जा।"

पण्डितजीने कहा—

"मैं आपका सेवक टेकचन्द हूँ।"

"हाँ! हाँ! अच्छा, वलीराम हो जा।"

अब पण्डित टेकचन्दजी भी उन्हींकी तरह मस्त हो गये। उनका नाम 'वलीराम' पड़ा। मामुकीमां 'की तीन शेरें पढ़कर वे फारसी और अरबीके बड़े विद्वान् हो गये। उनका बनाया हुआ 'दीवाने-वलीराम' अब भी आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है।

महात्मा बसाली प्रमोदवनमें रहते थे और पण्डित वलीरामजी मणिकूटपर विचरते थे। रात्रिको जब कभी

दोनों मिल जाते थे तब 'खूब बन आती जो मिल बैठते दीवाने दो' वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

कुछ दिन पश्चात् महात्मा वसाखीने जीवनयात्रा समाप्त कर साकेतवास किया, उनकी समाधि उसी बेरके नीचे अबतक मौजूद है।

(१०)

'मामुकीमा' नामकी प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा वसाखीहीकी निर्माण की हुई है। आधीरात्रिके समय यह कविता अनायास ही उनके मुँहसे निकल गयी थी। दूसरे ही दिन लखनऊके कीलकालकी मजलिसमें पीरजादा नकीशाहने इसे गाकर सुनाया। लोगोंने बहुत पसन्द किया। सब जगह प्रचार हो गया, यहाँतक कि वह मकतबोंमें जारी हो गयी और पाठशालाओंमें अब भी पढ़ायी जाती है।

एक दिन मौलाना नज़ीर, शाह साहेबसे मिलने आये। उन्होंने बड़े प्रेमसे वह कविता सुनायी। शाहसाहेबने कहा, मैंने तो किसीको इसे लिखाया तक नहीं! आपको कैसे प्राप्त हुई? मौलाना साहेबने लखनऊ कीलकालकी मजलिसमें सुनकर याद कर लेनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, शाह साहेबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने प्रियतमका रहस्य समझकर वे चुप हो रहे।

एक दिन जनकपुरमें स्वामी जानकीवरशरणजीके मुखसे अनायास ही यह पद निकल गये थे—

चित ले गयो चुराय जुल्फ़ोंमें लला ॥
हम जानी वे कृपासिन्धु हैं,
तब उनसे भई प्रीति भला ॥
विरही जनको दुख उपजावत
करत नये नये अजब कला ॥
प्रीतिरुता ! प्रीतम बेदरदी
छाँड़ि हमें कित गयो चला ॥

उन्होंने यह पद किसीको लिखाया भी नहीं था। परन्तु जब वे अयोध्याजीमें आये तो वहाँ भी यही पद लोगोंको गाते सुना। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी जगन्नाथजीसे लौटते समय मार्गमें गोपीनाथजीके मन्दिरमें ठहर गये। प्रसादमें खीर भी मिली थी। उसे पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। जी चाहा कि कुछ और मिलती तो पाते परन्तु संकोचके कारण माँग नहीं सके। रात्रिको श्रीगोपीनाथजी स्वयं भण्डारेसे खीर लेकर उनके पास लाये। वे अत्यन्त लज्जित हुए। अपनी जिह्वाको धिक्कार देने लगे। अनन्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

"जीवनधन! इतना कष्ट क्यों उठाया?"

भगवान्ने कहा, "क्या तुमने नहीं सुना है भगवान् श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे क्या कहा था—

हम भक्तनके ! भक्त हमारे !
सुन अर्जुन ! परतिज्ञा मोरी
यह व्रत टरत न टोर।
हम भक्तनके ! भक्त हमारे !

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये।

माधवेन्द्रपुरीजी प्रतिष्ठाके भयसे रात्रिहीको वहाँसे भाग खड़े हुए। भोर होते ही वे दस कोसपर निकल आये। वहाँ गाँववालोंको यह कहते सुना कि गोपीनाथजीने रातको खीर चुराकर माधवेन्द्रपुरीजीको पवाई। इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बंगालियोंमें कहावत है—

प्रतिष्ठार भयं पुरी जाय पालाइया।
पुरी प्रतिष्ठा आगे जाय गोंड़ाइया ॥

अर्थात् जिस प्रतिष्ठाके भयसे माधवेन्द्रपुरीजी भागे वह प्रतिष्ठा उनके आगे आगे दौड़ी।

प्रातःकाल मन्दिर खुला। भगवान्के वस्त्रोंपर खीर देखकर सबको आश्चर्य हुआ। भगवान्ने खीरकी चोरी और उस चोरीका कारण प्रकट कर दिया। उसी समयसे उनका 'खीरचोर' नाम पड़ा।

महात्माओंके चरित्रमें ऐसी ही विचित्रिताएँ होती हैं। प्रियतम प्रभुके इन रहस्योंको वही समझ सकता है जो इन रहस्योंकी बातें जानता है।

धन्य है महात्मा वसाखी, आपको और आपके अलौकिक प्रेमको! उस यवनकालमें भी आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी विमल भक्तिका आस्वादन करके हिन्दुओंकी आँखें खोल दीं। बाबू हरिश्चन्द्रजीने ठीक ही कहा है—

इन मुसलमान हरिजनन पर
कोटिन हिन्दुन वारिए ॥

बोलो भक्त और उनके प्यारे भगवान् सियावर रामचन्द्रजीकी जय।

श्रीरामचरितमानस-महिमा

(लेखक—श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय)

१

जय 'रामचरितमानस' पवित्र,
जय शान्ति-सखा, जय धर्म-मित्र।
जय कलिमें अनुपम मुक्ति-पन्थ,
नव कोटि जनोंका एक ग्रन्थ॥

२

जय नीति-निलय, जय पुण्यपद्म,
जय सत्य-सिन्धु जय शील सद्म।
जय भव्य भक्ति-साधन-विवेक,
नव कोटि जनोंका ग्रन्थ एक॥

३

जय जय अति उच्च समाज-नीति,
जय जय जग-वन्दित राज-नीति।
जय विश्वप्रेम-रत धर्म-नीति,
जय दुष्ट-दलन-व्रत कर्म-नीति॥

४

जय स्वाभिमान स्वाधीन नीति,
जय पूर्व ख्याति प्राचीन-नीति।
जय जयति स्वतन्त्र स्वराज नीति,
जय प्रजा-तन्त्र-विधि राज-नीति॥

५

जय जय स्वदेश अनुराग-नीति,
जय सत्य हेतु तन-त्याग-नीति।
जय विषय-विकार-विराग नीति,
जय चारों वर्ण विभाग नीति॥

६

जय पितृ-भक्ति आदर्श नीति,
जय त्याग-शक्ति-उत्कर्ष नीति।
जय भ्रातृ-प्रेम वर हर्ष नीति,
जय पावन भारतवर्ष नीति॥

७

जय प्रजा प्रेम सुख शान्ति नीति,
जय राज-भक्ति शुचि दान्ति नीति।
जय ब्रह्मचर्य बल-कान्ति नीति,
जय हरण मूर्खता-भ्रान्ति नीति॥

८

जय पत्नीव्रत सत्कार्य-नीति,
जय जय पातिव्रत आर्य-नीति।
जय शुभ शिक्षा आचार्य नीति,
गो-द्विज-सेवा अनिवार्य नीति॥

९

जय दुराचार संहार-शक्ति,
जय सदाचार उद्धार शक्ति।
जय पर-पीड़न-उच्छेद शक्ति,
जय हिंसक-रिपु-रण-भेद-शक्ति॥

१०

जय जय स्वदेश-लक्ष्मी-ममत्व,
आत्माभिमान रक्षा समत्व।
जय खल प्रचण्ड-बल-नाश तत्व,
जय स्वाधीनता 'सुराज' सत्व॥

११

कवि-कुल-गुरु तुलसीदास धन्य,
नव-रसमय वाक्य विलास धन्य।
घर घर वर पुण्य प्रकाश धन्य,
भय रोग शोक अघ-नाश धन्य॥

१२

हिन्दी कवि-कविता-कीर्ति-केतु,
जय सत्य-शील-सद्धर्म-सेतु।
जय भारत प्रतिभा मूर्तिमान,
जय आर्य धर्म-प्रतिमा प्रधान॥

१३

जय रामराज्य महिमा महान,
जातीय उच्चताका विधान।
जय आर्य भूमिका दिव्य गान,
जय आर्य-विजय-हर्षाभिमान॥

१४

जय जय रामायण गुण ललाम,
जय भ्रान्त हृदय विश्राम धाम।
जय भाषा-भूषण सुधा-भाण्ड,
जय राम कथामृत सप्त काण्ड॥

१५

जय पूज्य गुसाईं यशोदेह,
जय रामचरण-रत दिव्य नेह।
जय महावीर पूजा प्रमान,
जय जाति देश गौरव महान॥

१६

रचते जिसका पूजा-विधान,
नर नारि वृद्ध बालक सुजान।
पाते नैतिक शिक्षा पवित्र,
उन्नत करते हैं निज चरित्र॥

१७

अति शुभकर है जिसका प्रभाव,
मिटते जिससे सब भेद-भाव।
गाते जिसमें एकतादर्श,
बाईस कोटि हिन्दू सहर्ष॥

१८

पावन होता जिससे स्वभाव,
रहता न सौख्यका फिर अभाव।
कहते जय जय श्रीरामराज,
बाईस कोटि हिन्दू समाज॥

१९

जय सरल सुबोध सुपाठ्य काव्य,
जय हिन्दू धर्म अकाट्य काव्य।
जय प्रेम-पुण्य शुचि-ऐक्य यत्न,
नव कोटि जनोंका ग्रन्थ-रत्न॥

२०

जय देश देश विख्यात काव्य,
जय द्वीपान्तर प्रख्यात काव्य।
जय विश्वप्रेम-प्रियता-प्रयत्न,
नव कोटि जनोंका ग्रन्थ-रत्न॥

तुलसीदाससे

(लेखक—श्रीमोहनलालजी महतो 'वियोगी')

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा

तूने छुआ बना अनन्तका मानस-रूप-किनारा ।

अव्यापक-सा व्यापक मन है जिसके निकट बेचारा ।

जिसकी नेक मुस्कराहटपर थिरकें रवि, शशि, तारा ॥

जिसने कई तुच्छ डेगोंसे नाप दिया जग सारा ।

'स्वयंप्रकाशः स्वयंब्रह्म' कह श्रुतिने जिसे पुकारा ॥

जिसे खोजने जाकर इस मनने अपनापन हारा ।

उस निर्गुनपर तूने जाकर अपना तन-मन वारा ॥

हे तुलसी, तेरे मानसका शासक तेरा प्यारा ।

सबरी, गीध खोजता चलता बन-बन राम हमारा ॥

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा ॥

रामावतारका महत्त्व

(लेखक—स्वामीजी श्रीविवेकानन्दजी)

अघटन-घटना-पटीयसी अतर्क्य-नाटक-नटी ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमेंसे एक ब्रह्माण्डके मर्त्यलोकमें कर्म करनेकी स्वाधीनता-प्राप्त मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात् धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी ग्लानि हो जाती है और अधर्मका अभ्युत्थान हो उठता है। ऐसी अवस्थामें सत्पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंके विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवदवतारकी अथवा अन्य शब्दोंमें जगज्जननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है। भगवान् और भगवतीमें अभेद है। मायोपहित चैतन्य-भगवान् और ब्रह्ममयी जगदम्बा भगवती हैं। अपने बनाये हुए जगत्में कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके कार्योंसे जब असामञ्जस्य उत्पन्न होता है, तब उसको दूर करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगदम्बाका प्रादुर्भाव ही भगवदवतार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराकार है, जगदम्बाके आश्रय विना साकार-मूर्त्तिमें भगवदाविर्भाव असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगदम्बाका ही है। चेतनके आश्रय विना माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। इसीकारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमें करके शास्त्रोंमें भगवान्का माहात्म्य वर्णन किया गया है, सो युक्तियुक्त ही है। जगदम्बाके ब्रह्ममयी नाममें इन दोनों भावोंका समावेश हो जाता है। शक्ति-उपासक जो भगवदवतारोंके साथ काली-तारा आदि शक्तियोंका सम्बन्ध बतलाते हैं उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता है। हमारे शास्त्रोंमें कहीं मतभेद नहीं है, जो मतभेद प्रतीत होता है, वह दार्शनिक-ज्ञानके अभावका ही कुफल है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य

सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस लेखमें श्रीरामके गुणानुवाद रूपसे हम उन महत्त्वोंका किञ्चित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सदादर्शोंका खज़ाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सत् शिक्षाके लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला और विद्याभ्यास अतुलनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरुभक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याओंमें निपुण हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुश्रूषासे ही वे बला और अतिबला विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र शस्त्रकी विद्यामें पारङ्गत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारणही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक-कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-सङ्कटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा स्त्री-वधरूप ताड़का-वधके रूपसे प्राप्त कर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। क्षत्रिय बालकोंके लिये बालकपनसे ही निर्भीकता, वीरता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृति होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर, वीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देकर कार्यतः बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक-अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसीप्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आश्रमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-चक्रसे छूटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब कर्मोंको करते हुए कर्म-त्यागकी प्रवृत्तिकी आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेह जनक हैं।

जनकपुरकी फुलवारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके दर्शन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि 'जिसने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, उसकी सीतापर दृष्टि पड़ते ही उसका मन क्यों आकर्षित हुआ।' इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने 'मातृवत् परदारेषु' का अभ्यास बालकपनसे ही कर रक्खा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया, अपितु वनवासका कठिन व्रत पालन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यासे कहा था, कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आज्ञाओंके पालन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।' ऐसे धर्म-सङ्कटके समय अपने कर्तव्यका निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने क्षेत्रकी अपेक्षा बीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है। क्योंकि पुत्र-सन्तानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श भ्रातृ-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ बतलाया है, एक अद्भुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श भ्रातृ-प्रेम अक्षुण्ण रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्तव्य है सो सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। वनवास जाते समय सब प्रकारकी वनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखलाया था और वनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया, शूर्पणखाके नाक-कान लक्ष्मणसे कटवाये, स-सैन्य खरदूषण त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विध्वंस किया। आदर्श गृहस्थधर्मको कार्यतः निरूपण करनेके लिये लंकामें सीताकी अग्निपरीक्षा की और आदर्श प्रजा-वत्सलता, जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही

श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय, श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

चित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभामेंके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक अपूर्व दृश्य था। ऐसे धर्मसङ्कटके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदर्श नरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने अद्भुत रीतिसे निभाया।

पञ्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए मृत दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वको अधिक उज्ज्वल बनानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्‌से महान् होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका महत्त्व ही बढ़ता है।

ऋष्यमूक-पर्वत पर सुग्रीवसे सख्य करके श्रीरामने अपने सख्यत्वको अन्तिम समयतक कैसा निभाया सो तो एक दिव्य दृश्य है। श्रीराम सुग्रीवके प्रेममें उन्मत्त नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पालन करते थे और सुग्रीवसे भी मैत्री-धर्म पालन करानेमें त्रुटि नहीं करते थे। सीताकी खबर लानेके आयोजन करनेमें जब सुग्रीवने कुछ विलम्ब किया, तब लक्ष्मणको उसके पास भेजकर अपने कहलवाया था—

> समये तिष्ठ राजेन्द्र ! मा बालिपथमन्वगाः ।
> न स सङ्कुचितः पन्था येन बाली हतो गतः ॥

हे राजेन्द्र सुग्रीव ! अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहो, बालिके मार्गका अवलम्बन न करो, वह मार्ग तुम्हारे लिये सङ्कुचित नहीं है जिस मार्गसे बालि मारा जाकर गया है।

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्ध-धर्मके वशवर्ती होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परन्तु श्रीरामने शत्रुका भ्राता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध व्रत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणागत-वत्सलताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि 'अचानक आकर जो मेरे शरण होता है और 'मैं आपकाही हूँ' ऐसा कहता है उसको मैं सकल प्राणीमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

अनेक धर्मोंका सङ्कट उपस्थित होनेपर ठीक ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी च्युति नहीं हुई है। रामायणके पढ़नेसे पद-पदपर यह दृश्य प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई जगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परन्तु वास्तवमें वह अधीरता नहीं है क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अधैर्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि कैसे भी कष्टका समय आवे, अन्तर्वृत्तिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्वृत्ति ही धर्मका निर्णय कर लेगी।

वाल्मीकीय-रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आवे नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पहरेदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई न आवे, यदि आया तो दण्ड दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि, 'अन्दर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दण्डकी परवा न करके दुर्वासाके शापसे राज्यको बचानेके लिये श्रीरामको इत्तिला कर दी। उसने सोचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशेष भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लङ्घन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको अयोध्यासे चले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दण्डनीय होता है। राजधर्मके सामने प्राणप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकसे श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपालन करना सिद्ध होता है।

इस लेखमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अवतारविषयक महत्ताओंको नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा, विचारवान् व्यक्ति समझ सकेंगे कि श्रीरामावतारकी महत्ता अतुलनीय है और उनसे मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुल प्रमाणमें मिल सकती है।

बोलो मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामकी जय !

रामचरितमानसके निर्दोष शृङ्गारकी विशेषता

(लेखक—सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार)

गोसाईंजीकी काव्य-प्रतिभाका चमत्कार भक्ति, ज्ञान और वैराग्यविषयक वर्णनमें महत्त्वपूर्ण होनेपर भी तादृश महत्त्वका कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह उनका सर्वाङ्गीण अनुभूत और वर्णनीय प्रधान विषय था। किन्तु उनकी सर्वतोवाही सरस्वतीका वर्णनातीत महत्त्व तो यह है कि उनका शृङ्गार-रस-प्रधान वर्णन भी बड़ा ही मर्यादापूर्ण और चित्ताकर्षक है। गोसाईंजीका जैसा सेव्य-सेवक-भाव अपने उपास्य भगवान् रघुनाथजीमें था उसीके अनुरूप उनके द्वारा अपने उपास्य देवका शृङ्गारात्मक वर्णन मर्यादोचित किया जानेपर भी वह अत्यन्त मनोमोहक और हृदयग्राही है। इनके शृङ्गारात्मक वर्णनकी तुलनाके लिये यदि संस्कृत-साहित्यके किसी उत्कृष्ट कविकी गवेषणा की जाय तो उनकी श्रेणीके महाकवि कालिदास ही उपलब्ध हो सकते हैं। जिसप्रकार कालिदास संस्कृतके प्रसिद्ध कवियोंमें अग्रगण्य हैं, उसी प्रकार हिन्दीके प्रसिद्ध कवियोंमें हमारे पूज्यपाद गोसाईंजी महाराज सर्वप्रधान हैं। गोसाईंजी श्रीरामोपासक और अनन्य राम-भक्त और रामचरित-निष्णात हैं। महाकवि कालिदास-तादृश रामोपासक और अनन्य भक्त न होनेपर भी रामचरित-निष्णात अवश्य हैं। कालिदासके काव्योंको मनन करनेवाले विद्वानोंसे यह बात अज्ञात नहीं है कि महर्षि वाल्मीकिजीकी सूक्ति-सुधाका निरन्तर आस्वादन करनेवाले कवि-शेखर कालिदासके ग्रन्थोंमें कहीं शब्दका और कहीं अर्थका सादृश्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है, पर यह स्वतन्त्र विषय है, इसकी स्पष्टता यहाँ अप्रासङ्गिक है। अस्तु।

कालिदासके शृङ्गार-वर्णनकी शैली बड़ी ही हृदयहारिणी और लोकोत्तरा है। उन्होंने शृङ्गार-रसके अलौकिक विभावादिका साक्षात् प्रदर्शन करानेमें कुछ भी त्रुटि नहीं रक्खी है। पर वे शृङ्गारी कवि थे, शृङ्गार-रस ही उनके वर्णनका प्रधान विषय था। उनके काव्योंमें ऐसे वर्णनोंमें चमत्कारकी पराकाष्ठा न होना ही आश्चर्यका कारण था। बड़े बड़े काव्य-मार्मिकोंका कथन है कि कालिदास केवल शृङ्गारात्मक वर्णनमें ही सिद्धहस्त थे, वे शृङ्गारातिरिक्त रसोंके वर्णनमें तादृश सफलता उपलब्ध नहीं कर सके। कालिदास ही क्यों-संस्कृत-साहित्यके अन्य प्रसिद्ध कवियोंके विषयमें भी यही बात चरितार्थ है। महाकवि भवभूति भी करुणारसके वर्णनहीमें प्रधानता प्राप्त कर सके हैं। इसी प्रकार वीररसके वर्णनमें महाकवि भास अग्रगण्य समझे जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि जिस कविको जो रस विशेष अभीष्ट था उसीके वर्णनमें उसको यथेष्ट सफलता प्राप्त हो सकी है। किन्तु महात्मा तुलसीदास-विरक्त तुलसीदास-अनन्य रामभक्त-तुलसीदास-भव प्रपञ्चसे अतीत तुलसीदास जिनके वर्णनका एकमात्र प्रधान विषय भक्तिरस ही था, उनके द्वारा शृङ्गार-रसका अपूर्व वर्णन किया जाना, वह भी अपने इष्ट श्रीरघुनाथजीका और उसमें आशातीत सफलता प्राप्त करना निस्सन्देह आश्चर्य ही नहीं, बड़े महत्त्वका विषय है। महाकवि कालिदासने भी अपने इष्ट उमा-महेश्वरका 'कुमारसम्भव' में चरित्र-चित्रण किया है। जहाँ उसे धुरन्धर विद्वानोंने साहित्याकाशको अपनी अलौकिक प्रभासे चमत्कृत करनेवाला सुधांशु-पीयूषस्यन्दिनी-कलाविशिष्ट चन्द्रमा माना है, वहाँ उन विद्वानोंसे भी कहीं बढ़कर समालोचकोंने उस 'सुधांशु' में आकाशस्थित सुधांशुके समान स्पष्टही कलङ्क आरोपण भी किया है। बात यह है कि कालिदासने अपने उपास्य श्रीउमामहेश्वरका शृङ्गारात्मक वर्णन मर्यादातीत कर डाला है, इसीसे 'काव्य-प्रकाश' प्रणेता काव्यके प्रधानाचार्य मम्मटने उसे दूषित शृङ्गारके वर्णनकी कक्षामें रख दिया है। हमारे गोसाईंजीने अपने परमेष्ट भगवान् श्रीरामचन्द्र और जगज्जननीका शृङ्गारात्मक वर्णन किया है, वह भी साधारण नहीं, फुलवारीके शृङ्गारावह प्रकरणके पूर्वानुरागमें लोकोत्तर विभावादिकी अलौकिकताका प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया है। उस प्रसंगकी एक एक चौपाईके अर्थानुभव में जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह अवर्णनीय है। जिस प्रकार ब्रह्मज्ञानी जनोंको ब्रह्मानन्द केवल समाधिगम्य है, इन्द्रिय, मन, वाणीसे अगोचर है, उसी प्रकार यह आनन्द भी केवल तद्विध भक्त-जनोंके ही अनुभव-गम्य है। इतना होनेपर भी रामचरितमानसमें वर्णित शृङ्गारमें यही विशेषता है कि वह सर्वथा निर्दोष है उसमें कहीं सीमोल्लङ्घनकी गन्धतक नहीं मिल सकती। उस प्रकरणके कुछ उदाहरण देकर दिग्दर्शन करानेसे ही हमारे इस कथनकी यथार्थताका अनुभव हो सकता है।

चरण-पादुका-पूजन ।

Lakshmibilas Press, Ltd., Calcutta.

प्रारम्भमें ही देखिये, गोसाईंजी श्रीरघुनाथजीको लक्ष्मणजीके साथ और श्रीजनकनन्दिनीको सखियोंके साथ महाराजा जनककी पुष्पवाटिकामें भेजते हैं। पर स्वतन्त्रतासे—स्वेच्छाचारितासे सैर करनेके लिये नहीं, किन्तु—'समय जानि गुरु आयसु पाई'—रघुनाथजीको अपने गुरुवर्य महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञा द्वारा उनके उपासना कर्मके लिये पुष्प लानेको, और जानकीजीको—'गिरिजा पूजन जननि पठाई'—अपनी मातुश्रीकी आज्ञानुसार श्रीगिरिजाकी पूजाके लिये। देखिये तो कैसा मर्यादापूर्वक दोनोंके एकत्र गमनका सुअवसर उपस्थित किया गया है। यहाँपर कविको शृङ्गार-रसका उद्दीपन विभाव-वर्णन करना अभीष्ट है क्योंकि जनकपुर समृद्धिशाली नगर है, वहाँ अनेक पुष्पवाटिकाएँ हैं, पर रघुनाथजी महाराज-कुमार हैं, फिर महाराज जनकके सम्मान्य अतिथि हैं, वे अन्यत्र क्यों जाने लगे, उनके योग्य तो राजकीय पुष्पोद्यान ही है। अतः गोस्वामीजी उस पुष्पोद्यानका उद्दीपनात्मक वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥

श्रीरघुनाथजी जाकर पुष्पोद्यानको देखते हैं, कैसे पुष्पोद्यान-को? जहाँ अखिल विश्वको प्रलुब्ध करनेवाली वसन्त ऋतु स्वयं प्रलोभित हो रही है। कालिदासजी 'कुमारसम्भव' में पुष्पधन्वा कामदेवको श्रीशङ्करको लुभानेके लिये भेजते हैं। और—

तस्मिन् वने संयमिनां मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्ती।
सङ्कल्पयोनेरभिमानभूतमात्मानमाधाय मधुर्विजृम्भे ।

इस पद्यसे वे वसन्तके उद्दीपनका बड़ा ही उत्कर्षक वर्णन प्रारम्भ करते हैं, परन्तु शृङ्गारी कवि कालिदास-द्वारा वहाँ वसन्तके प्रभावसे ही प्रभावित प्राकृतिक वन-शोभा विश्वमोहिनी बनायी गयी है। पर यहाँ महात्मा तुलसीदासजीने 'जहँ बसंत रितु रही लोभाई' कहकर उस वर्णनको सचमुच शिथिल बना दिया है। जहाँ वसन्त ऋतु स्वयं प्रलोभित हो रही है उसकी उत्कर्षता अधिक हो सकती है, या जहाँ वसन्त ऋतु द्वारा उत्कर्ष किया जाता है उसकी? इसका अनुभव विज्ञ पाठक स्वयं कर सकते हैं। कालिदासजीके वर्णनमें उपर्युक्त पद्यके आगे वसन्तसे प्रभावित पशु-पक्षी आदि तककी शृङ्गार-चेष्टाओंका वर्णन किया जानेसे रसाभास माना गया है पर रामचरितमानसमें उपर्युक्त चौपाईके आगे यह वर्णन है—

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना ॥
नव पल्लव फल-सुमन सुहाए। निज संपति सुर-रूख लजाए ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहँग नटत कल मोरा ॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनिसोपान बिचित्र बनावा ॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जल-खग कूजत गूँजत भृंगा ॥

जिस पुष्पोद्यानमें नवीन पल्लव, फल और फूलोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके मनोहर वृक्ष लगे हैं, उनपर वितानरूपसे लतिकाएँ छायी हुई हैं। चातक-चकोर, कीर-कोकिल आदि पक्षीगण अपने अपने चेतोहारी शब्दोंसे उसे मुखरित कर रहे हैं। मयूरगण मनहरण नृत्यमें निमग्न हैं। बागके मध्यभागमें मणियोंके सोपानवाला निर्मल सलिलसे परिपूर्ण सरोवर है, उसपर नाना रंगके प्रफुल्ल कमल, जल-पक्षियोंकी मधुर-ध्वनि और भृङ्ग-पुञ्जोंका मत्त गुञ्जार हो रहा है। अहा! परम प्रेयसीकी परम रमणीयताका कैसा पवित्र वर्णन है। पर गोसाईंजीको अपने किये हुए इस वर्णनसे भी सन्तोष नहीं हुआ। वे अपनी असमर्थता दिखाते हुए संक्षिप्तमें—

बाग-तड़ाग* बिलोकि प्रभु हरषे बन्धुसमेत ।
परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत ॥

—यही कहते हैं। पर इसमें सभी कुछ कह दिया है। जिस बागको देखनेसे लोकाभिराम श्रीरामको—अखिल विश्वके स्वयं सुखनिधान श्रीरामको सुख प्राप्त हो, उसकी परम रम्यताका यही पर्याप्त वर्णन है।

अच्छा, अब देखिये, आलम्बन-विभाव-वर्णनमें किस चातुर्यसे श्रीराम-सीताका काकतालीय एकत्र होना और परस्पर पूर्वानुराग प्रदर्शित कराया गया है। श्रीरघुनाथजी

* 'बाग-तड़ाग' के सम्बन्धमें रामायणके प्रसिद्ध अन्वेषणकारी रायबहादुर लाला सीतारामजी अपने एक लेखमें लिखते हैं—

'साधारण पाठकगण इसका अर्थ यह करते हैं कि उस स्थानपर एक बाग और एक तड़ाग (तलाव) था। परन्तु उस स्थानका नाम ही यह है और तुलसीदासजीने उसके दर्शन किये थे। इसीसे उसी नामसे उसका उल्लेख करते हैं। यह स्थान जनकपुरसे दस मील है और दरभंगा जिलेके बेनी पट्टी थानेमें फुलहरके नामसे प्रसिद्ध है। यहीं वह बाग था जिसमें जनकके पुजारी पूजा करनेके लिये फूल तोड़ा करते थे। यहाँ तालके किनारे गिरिजाका एक मन्दिर बना हुआ है और कहा जाता है कि विवाहसे पहले श्रीसीताजीने गिरिजाकी यहीं पूजा की थी, मन्दिर पुराना है और इसके भीतर तीन फुट ऊँची गिरिजाकी पाषाण-मूर्ति है।'—सम्पादक

पुष्पोद्यानमें—जहाँ एक जलाशय है—फूल बीन रहे हैं। ऐसे समयमें श्रीसीताजी उसी पुष्पोद्यानमें एक दूसरे*जलाशयपर—जिसके निकट ही श्रीगिरिजाका मन्दिर है—पधारती हैं। और—

संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥

उनके साथ सुन्दर और चतुर सखी हैं, वे मधुर गीत गा रही हैं—कैसे गीत? 'मनोहर वाणी'—वाणी सरस्वतीजीका भी मन हरण करनेवाले। उनमेंसे स्त्री-स्वभाव-सुलभ फुलवारी देखनेके लिये गयी हुई एक सखी वहाँ श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर, उनकी रूप-माधुरीपर मनोमुग्ध होकर प्रेम-विवश सीताजीके निकट आती है। उसकी तादृश प्रेम-विह्वल-दशा देखकर सखियों द्वारा कारण पूछा जानेपर वह कहती है—

देखन बागु कुअँर दोउ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

अहा! सखीने कुछ अधिक न कहकर भी जो कुछ कहने योग्य था, इतनेहीमें सभी कुछ कह दिया। अधिक कहनेके लिये समय कहाँ, शङ्का तो यह थी कि राजकुमार वहाँसे चले न जायँ, ऐसा न हो कि जनकनन्दिनी उनके दर्शन-सुखसे वञ्चित रह जायँ। सखीने यह वाक्य कहकर जब सीताके हृदयमें अत्युत्कण्ठा उद्भावित देखी तो उनके मुखसे कुछ कहे जानेके पूर्व ही एक अतरंग सखी स्वयं ही वहाँ चलनेके लिये प्रार्थना करती है—

अवसि देखिये देखन जोगू।

यह सुनकर उसी सखीको आगे करके उत्कण्ठित सीताजी अपूर्व सुन्दरताको देखनेके लिये चलीं. और—

चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु-मृगी सभीत।

सब दिशाओंकी ओर चकित होकर-सभीत मुग्धा मृगाङ्गनाकी तरह देखने लगीं। और उधर सम्मुख आती हुई सीताजीके कंकण, किंकिनी और नूपुरोंकी मधुर-ध्वनि सुनकर उनकी ओर, षोडश-कलापूर्ण चन्द्रमाको जिस प्रकार चकोर देखता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र अनिमेष दृष्टिसे देखने लगे। कैसे रामचन्द्र?

जिन्ह निज रूप-मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर-नर-नारी॥

जिन्होंने अपने विश्व-विमोहनरूपसे सारे जनकपुरके सभी नर-नारियोंको मुग्ध कर दिया था, वह रामचन्द्र भी सीताजीके अलौकिक महा लावण्यपर मोहित होकर उन्हें स्थिर-दृष्टिसे देखने लगे। इस अचञ्चल दृष्टिके कारण गोसाईंजीने—

मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।

इस उत्प्रेक्षामें बड़ी ही समयोचित कल्पना की है। इसमें श्रीजनकनन्दिनीका अनुपम लावण्य, उनपर श्रीरामचन्द्रजीका अभूतपूर्व प्रेम और मर्यादा इत्यादि अनेक भाव गर्भित हैं। फिर सीताजीके उस सौन्दर्यका श्रीरामचन्द्र अपने हृदयस्थलपर कैसा विचित्र चित्र अङ्कित करते हैं, देखिये—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥

इस चौपाईमें और कालिदासजीके—

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव॥

(कुमारसम्भव सर्ग १। ४९)

इस पद्यके भावमें वर्णित श्रीपार्वतीजीके सौन्दर्यमें बहुत कुछ समानता है। पद्यमें कवि स्वयं पार्वतीजीके सौन्दर्यका वर्णन करता है, किन्तु चौपाईमें भगवान् रामचन्द्र जो स्वयं सौन्दर्य-निधान थे, वे—

देखि सीय-सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा॥

सीताजीके अकथनीय सौन्दर्यका वर्णन करनेमें असमर्थ

* जिसके निकट श्रीरघुनाथजी फूल बीन रहे थे, उस सरोवरसे यह सरोवर भिन्न है, क्योंकि पुरुषोंके आवागमनके स्थानपर जानकीजीका सखियोंके साथ गान और स्नान आदि विहार सम्भव नहीं। इसका प्रमाण अगस्त्यसंहितामें मिलता है—

वैदेह्युपवनस्यान्तर्दिश्यैशान्ये मनोहरम्। विशालं सरस्तीरे गौरीमन्दिरमुत्तमम्॥
वैदेही वाटिका तत्र नाना पुष्प-सुगुम्फिता। रक्षिता मालिकन्याभिस्सर्वर्तु सुखदा शुभा॥
प्रभाते प्रत्यहं तत्र गत्वा स्नात्वाऽऽलिभिस्सह। गौरीं समपूजयत्सीता मात्राज्ञप्ता सुभक्तितः॥

आगे रामचरितमानसके—

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥

इस कथनसे भी इसका समन्वय हो सकता है।

होकर हृदयमें केवल उसका अनुभवमात्र ही कर सके हैं। पद्यमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीद्वारा संसारकी सारी उपमायोग्य सुन्दर सामग्रियोंको एकत्र देखनेके लिये—यह जाँच करनेके लिये कि मेरेद्वारा रचित संसारकी सारी सुन्दरता एकत्र होनेपर कैसी होगी, पार्वतीजीके प्रकट करनेकी उत्प्रेक्षा की गयी है। किन्तु चौपाईमें सीताजीको प्रकट करनेकी उत्प्रेक्षामें ब्रह्माजी-द्वारा अपनी सारी रचनाका चातुर्य विश्वको एकत्र दिखाना है। निष्कर्ष यह कि कालिदासकी उत्प्रेक्षामें एकत्र सौन्दर्यकी जाँच करनेके लिये प्रथम प्रयास है, और गोसाईंजीकी उत्प्रेक्षामें उसी एकत्र सौन्दर्यकी परिपाक-अवस्थाका ब्रह्माजी-द्वारा विश्वमें दिखाना है। शिल्पकारके प्रथम प्रयासकी रचनामें और अभ्यस्त होजानेपर सिद्ध-हस्तकी रचनामें जो भेद रहता है, वही यहाँ इन दोनों उत्प्रेक्षाओंमें है। अच्छा, आगे देखिये—

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई॥

इसमें सीताजीको सुन्दरतारूपी घरकी दीप-शिखा—दीपककी ज्योतिकी उपमा दी गयी है कालिदासजीने भी रघुवंशमें इन्दुमतिके स्वयंवर-प्रसङ्गमें दीप-शिखाकी उपमा वर्णन की है—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

इसका भाव यह है कि स्वयंवरा इन्दुमति जिस जिस राजाके सम्मुख होकर फिर उसे छोड़कर आगे बढ़ती थी, उस उस राजाकी ठीक वह अवस्था होती जाती थी, जिस प्रकार चलती हुई दीप-शिखा- हाथमें ली हुई लालटेनकी रोशनी, आगे बढ़नेसे राजमार्ग—बाजारकी पीछे छोड़ी हुई दूकानें प्रकाश-रहित—गतप्रभा होती जाती हैं। इस दीप-शिखाकी उपमाके वर्णनद्वारा संस्कृत-साहित्यमें कालिदासका इतना गौरव है कि कालिदास-नामके अन्य कवियोंसे विभक्त करनेके लिये रघुवंशादि प्रणेताको 'दीपशिखा कालिदास'के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः उपमाकी कल्पना बड़ी ही विचित्र और मनोहारी है, तथापि जब हम इसके साथ गोसाईंजीद्वारा दी गयी 'दीप-शिखा' की उपमाकी तुलना करते हैं तो विवशतया कहनेको बाध्य होना पड़ता है कि कालिदासकी 'दीप-शिखा' सुवर्ण है तो गोसाईंजीकी 'दीप-शिखा' अवश्य ही कुन्दन है। कालिदासजीने इन्दुमतिको दीप-शिखाकी समता केवल उसकेद्वारा त्यक्त-राजाओंके गत-प्रभ होनेमात्रके लिये दी है। किन्तु गोसाईंजीने सीताजीको विश्वकी सुन्दरतारूप वस्तुका स्पष्ट प्रदर्शन करानेवाली दीप-शिखाकी उपमा दी है। अर्थात् संसारमें जहाँ कहीं भी सुन्दरता कही जाती है वह अन्धकारावृत होनेके कारण केवल कथनमात्र है—वस्तुतः नहीं, यदि अन्धकारमें कोई वस्तु उपलब्ध हो सकती हो तो सुन्दरता भी अन्यत्र उपलब्ध हो सकती है। देदीप्यमान अखिल सुन्दरताका साक्षात् दर्शन तो श्रीसीताजीमें ही उपलब्ध हो सकता है। श्रीरघुनाथजी भगवती सीताके अकथनीय विचित्र लावण्यपर मनोमुग्ध होकर उनकी उपमाके लिये खोज करने लगे, पर जब बहुत खोज करनेपर भी उनके सादृश्य योग्य उपमा कहीं नहीं मिल सकी तो उन्हें विवशतया यही कहना पड़ा कि—

केहि पटतरौं बिदेहकुमारी। सब उपमा कबि रहे जुठारी॥

उपमा देने-योग्य जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनको कवियोंने साधारण स्त्री-जनोंको देकर, जूँठी कर दिया है। फिर वे निर्माल्य उपमाएँ विदेह-कुमारीके योग्य किस प्रकार हो सकती हैं? इससे अधिक कहनेके लिये वहाँ समय ही कहाँ था, पर आगे अवसर मिलनेपर जब रंगभूमिमें सीताजी पदार्पण करती हैं, तो गोसाईंजीने अपनी उक्तिमें इसकी—

गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

—इस वर्णनसे और भी स्पष्टता कर दी है। सुन्दरतामें सर्वोपरि विश्वविख्यात सरस्वती, पार्वती, रति और श्रीलक्ष्मी हैं, फिर भी सीताजीके साथ इनकी तुलना नहीं दी जा सकती। सरस्वतीजी मुखरा हैं—अधिक बोलती हैं, सीताजी परिमितभाषिणी हैं, जो कुलाङ्गनाओंके लिये केवल शोभा-प्रद ही नहीं, परमावश्यक भी है। पार्वतीजीमें अर्द्धाङ्गी सुन्दरता है, आधा अङ्ग भगवान् शङ्करका और आधा गिरिजाका है। कामाङ्गना रति तो बेचारी अपने पतिके अनङ्ग—अङ्गरहित होनेके सन्तापसे दुःखिनी है और लक्ष्मीजी भी अपने प्रिय बन्धु विष और वारुणीकी सहोदरा हैं, अवश्य ही उनके निवासस्थानमें प्रमत्तता होनेका यही कारण है। यही नहीं—

जौं छबि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथइ पानि-पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता-सुख-मूल।
तदपि सकोचसमेत कबि कहहिं सीय सम तूल॥

यदि ऐसी सामग्रीसे उत्पन्न लक्ष्मीजी हों, तो भी सीताजीके साथ उनकी उपमा देनेमें कविको संकोच है, क्योंकि उपमा तो उत्कृष्ट वस्तुकी दी जाती है, किन्तु यहाँ तो भाव यह है कि उन्हें सीताजीकी भी निःशङ्क समता नहीं दी जा सकती, फिर भी शङ्का रह जाती है कि वे सीताजीकी समताके योग्य हैं या नहीं। देखिये तो कैसी नवीन और अद्भुत कल्पना है। गोसाईंजी यदि इस नवीन उपमाकी कल्पना न करते तो सचमुच उनकी—'किहि पटतरौ बिदेह-कुमारी। सब उपमा कवि रहे जुठारी ॥' यह उक्ति कवि-स्वभाव-सिद्ध अत्युक्तिमें ही गणय हो जाती।

कालिदासने भी दुष्यन्तद्वारा शकुन्तलाके सौन्दर्यका वर्णन कराया है—

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥
(अभिज्ञान शाकुन्तल द्वितीयाङ्क)

और राजा पुरूरवाके द्वारा उर्वशीका सौन्दर्य वर्णन इसप्रकार है—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूत् चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥
(विक्रमोर्वशीय)

दोनों ही वर्णन अपूर्व हैं। पिछले वर्णनकी और गोसाईंजीके वर्णनकी तो एक ही शैली है तथापि गोसाईंजीद्वारा वर्णित सौन्दर्य-सामग्रीकी समता विक्रमोर्वशीयमें वर्णित सामग्री नहीं कर सकती, यही नहीं जब कि कालिदासने अपनी वर्णित सामग्रियोंद्वारा उर्वशीकी रचनाकी उत्कृष्टता सूचित की है, तब गोसाईंजीने इनसे कहीं बढ़कर सामग्रियोंद्वारा की हुई रचनाको भी निःशङ्क श्रीसीताजीकी तुलना देने योग्य नहीं माना है।

अच्छा, आगे देखिये—

सियसोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि-मन अनुजसन बचन समय-अनुहारि ॥

इसप्रकार सीताजीकी शोभाका हृदयमें अनुभव करनेके पश्चात् प्रभु रघुनाथजीने अपनी ऐसी प्रेम-विह्वल दशाका विचार किया—क्या विचार किया? यही कि मेरे साथ लक्ष्मण हैं, वे मेरे अनुज हैं, यद्यपि वे शुचिमन हैं—शुद्ध-चित्त हैं, ('शुचिमन' यह विशेषण यहाँ रघुनाथजीके सम्बन्धमें वैसा उपयुक्त नहीं हो सकता, जैसा लक्ष्मणजीके सम्बन्धमें। रघुनाथजीके लिये तो यहाँ गोसाईंजीने 'प्रभु' सर्वनामके प्रयोगही में सभी कुछ सूचित कर दिया है) तथापि समयके अनुकूल—लोकशिक्षाके आदर्शके लिये स्पष्टता करना प्रयोजनीय समझकर श्रीरघुनाथजी कहते हैं-

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकास फिरइ फुलवाईं ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्हकर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरै न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीत मनकेरी। जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी ॥

अहा! कैसे पवित्र, स्पष्ट और मर्यादासूचक वाक्य हैं! कालिदासजी दुष्यन्तद्वारा शकुन्तलाके विषयमें कहलाते हैं-

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥

यहाँतक तो समानता है, पर इसके आगे—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं,
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥
(अ० शाकुन्तल प्र० अङ्क)

इसमें और इसके आगे कालिदासने इस शृङ्गारात्मक वर्णनको अधिक विस्तृत और स्पष्ट किया है। उसमें मर्यादाकी परवा नहीं की गयी है। परन्तु गोसाईंजीके—

करत बतकही अनुजसन मन सियरूप लुभान।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि करै मधुप इव पान ॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मन-चींता ॥
जहँ बिलोक मृग-सावक-नैनी। जनु तहँ बरिस कमलसित-श्रेनी ॥
लता ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति-छबि देखे। पलकन्हिहू परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचनमग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥

लताभवनतें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद-पटल बिलगाइ॥

इस मधुर वर्णनमें देखिये, कैसा मर्यादोचित शृङ्गार वर्णन किया गया है। इसके प्रत्येक शब्दमें बड़े ही माधुर्य-पूर्ण भाव गर्भित हैं। यही क्यों, इसके आगे श्रीरघुनाथजीकी रूप-माधुरीपर सीताजीकी प्रेम-विह्वल अवस्थाका भी बड़ा अद्भुत और चमत्कारिक वर्णन है। खेद है कि विस्तार-भयसे हम उसकी स्पष्टता करनेमें असमर्थ हैं। सीताजीकी तादृश दशा देखकर—

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भए गहरु सब कहहिं सभीता॥

सखियाँ परस्पर कहने लगीं, बड़ी देर हो गयी। सभीत इसलिये कि माताजी विलम्बका कारण पूछेंगी तो हम क्या कहेंगी। पर इसपर भी जब सीताजीकी प्रेम-समाधि नहीं छूट सकी तो—

पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलंब मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपौ पितुबस जाने॥

एक सखी जब यह कहकर कि 'कल इसी समय फिर आवेंगी' मन-ही-मन हँसी, तब सीताजी सखीकी इस गूढ़ वाणीको व्यङ्ग्योक्तिको सुनकर लज्जित हो गयीं। सखीकी इस व्यङ्ग्योक्तिके वाच्यार्थमें तो एक साधारण परिहास है, किन्तु व्यङ्ग्यार्थमें 'तुम्हारी इस प्रेम-विवश दशाको मैं भलीप्रकार समझ रही हूँ, पर अब विलम्ब करना उचित नहीं और मैंने अपने यह वाक्य 'पुनि आउब एहि बिरियाँ काली' राजकुमारको सुनाते हुए इसीलिये कहे हैं कि वे भी कल इसी समय आवें।' यह बोधव्य-वैशिष्ट्य व्यङ्ग्य है क्योंकि यहाँ बोधव्य (जिसके प्रति कहा जाय) सीताजी हैं। और श्रीरघुनाथजी—जो यह वाक्य सुन रहे हैं, उनके प्रति सखीके इस वाक्यमें यह व्यङ्ग्य सूचन है कि 'हम अपनी सखी श्रीसीताके साथ कल फिर इसी समय यहाँ आवेंगी, आप भी आनेकी कृपा करें।' इसलिये यह अन्य-सन्निधि-वैशिष्ट्य व्यङ्ग भी यहाँ है। और सीताजीके लज्जित होनेका यही कारण है। लज्जित सीताजी सखीकी इस गूढ़ोक्तिको सुनकर अगत्या लौटीं अवश्य, पर केवल देहमात्रसे, मनसे नहीं। इसी भावको कवि वर्णन करते हैं—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीरछबि बाढ़ प्रीति न थोरि॥

अहा! कैसी मधुर कोमल और कान्त-पदावलीद्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है। कालिदास भी शकुन्तलाकी ठीक इसी अवस्थाका वर्णन करते हैं—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्॥
(अ० शाकुन्तल द्वि०)

यह वर्णन भी बड़ा रसावह है। पर शृङ्गारी कवि कालिदास शकुन्तलाकी इस चेष्टाका वर्णन उसपर अनुरक्त राजा दुष्यन्तद्वारा कराते हैं। किन्तु गोसाईंजी सीताजीके विषयमें स्वयंवरके प्रथम श्रीरघुनाथजीद्वारा ऐसा वर्णन कराना उचित नहीं समझकर कविकी हैसियतसे स्वयं ही करते हैं, यही उनके शृङ्गार-वर्णनकी विशेषता है।

प्रिय पाठक! रामचरितमानसके शृङ्गार-वर्णनकी विशेषताका यह दिग्दर्शनमात्र है। इसप्रकारके विशेषताद्योतक और भी बहुतसे उदाहरण हैं और उनकी स्पष्टताके लिये इस क्षुद्र लेखककी लेखनी बड़ी लालायित है—वह इस सुधा-स्रोतसे विरत होना नहीं चाहती, और न आप ही श्रीरामचरितामृतसे तृप्त हो सकते हैं और न यह प्रसङ्ग ही समाप्त हो सका है, जो कुछ लिखा गया है, उसका विवेचन भी अत्यन्त संक्षिप्त किया गया है—अपर्याप्त है, किन्तु 'कल्याण' के विशेषाङ्ककी लम्बी विषय-सूची और उनपर लेखोंका बाहुल्य ध्यानमें रखकर इस लेखको अगत्या यहीं समाप्त किया जाता है।

रामायणमें रस

होमरके काव्यमें जो रस है, रामायणमें उससे कहीं विशेष है। —वेबर

रामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी 'भ्रान्त' और श्रीमुरलीधरजी दीक्षित 'भ्रान्त')

आनन्द-कानने ह्यस्मिन् तुलसीजङ्गमस्तरुः ।
कविता-मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ॥

स्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस अपने दिव्य और अलौकिक गुणोंके कारण मानव-समाजके मानस-मन्दिरोंमें मन-मोहनी मञ्जु-मूर्त्तिकी भाँति पूजा जा रहा है और अनन्त कालतक इसी प्रकार भक्ति-पुष्पाञ्जलि पाता रहेगा। इस अलौकिक ग्रन्थ महासागरमें अनेक प्रकाशमान गुण-रत्न भरे पड़े हैं जिन्हें प्रेमी पाठक अपनी अपनी शक्तिके अनुसार डुबकी लगाकर निकाल लेते हैं। ईश्वरकी कृपा और विद्वानोंके सत्सङ्गसे हमें भी कतिपय गुण-रत्न प्राप्त हुए हैं। उनमें कुछ हम 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके मनोविनोदार्थ भेंट करते हैं।

(१)

सोपान आरम्भ—

गोस्वामीजीने सब सोपानोंका आरम्भ दोहे या सोरठेसे किया है; पर सुन्दर-काण्डका प्रारम्भ चौपाईसे ही कर दिया है। यथा—

बाल-काण्डः—

जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करि-बर-बदन ।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ-गुन-सदन ॥(सो०)

अयोध्या-काण्डः—

श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज निज-मन-मुकुर सुधारि ।
बरनौं रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि ॥(दो०)

अरण्य-काण्डः—

उमा रामगुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि-बिमुख न धरमरति ॥(सो०)

किष्किन्धा-काण्डः—

मुक्ति-जन्म महि जानि ग्यानखानि अघहानिकर ।
जहँ बस संभु-भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥(सो०)

सुन्दर-काण्डः—

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥(चौ०)

लङ्का-काण्डः—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड ॥(दो०)

उत्तर काण्डः—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृसतनु रामबियोग ॥(दो०)

पाठक, सुन्दर-काण्डका चौपाईसे ही प्रारम्भ क्यों किया गया? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि मानस-गत सोपानोंके आरम्भ और अन्य सभी स्थलोंमें लिखे हुए दोहे-सोरठे विश्रामके लिये हैं। सुन्दर-काण्ड आरम्भ करनेके पहले विश्राम लेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि गोस्वामी जैसे परम भक्त अपने इष्ट-देव श्रीरामचन्द्रजीको धर्म-शीला, पति-प्राणा सीतादेवीके विरहमें व्याकुल छोड़कर विश्राम नहीं ले सकते। इस बातकी पुष्टिमें वे स्वयं कहते हैं। 'रामकाजु कीन्हें बिना मोहि कहाँ बिश्राम?' (हनुमान्‌जीका कथन)

कोई कोई विनोदी पाठक चौपाईसे आरम्भ करनेका यह कारण बतलाते हैं कि सुन्दर-काण्डमें श्रीरामचन्द्रजीका सारा कार्य चौपायों (रीछ वानरों)ने ही किया है; अतएव चौपायोंके कारण यह काण्ड चौपाईसे ही आरम्भ करना उचित है।

(२)

वन्दनामें—

'बंदौं गुरु-पद-कंज कृपासिंधु नररूप हरि ।'
'बंदौं मुनि-पद-कंज रामायन जेहिं निरमयउ ।'
'पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन-कमल बंदौं सब लायक॥'
'जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी॥
ताके जुग-पद-कमल मनावौं। जासु कृपा निरमल मति पावौं॥'
'बंदौं लछिमन-पद-जलजाता। सीतल सुभग भगत-सुख-दाता॥'
'रिपु-सूदन-पद-कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥'

'रघुपति-चरन-उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदौं पदसरोज सब केरे। जे बिनु काम रामके चेरे॥'
'प्रनवौं प्रथम भरतके चरना। जासु नेम व्रत जाइ न बरना॥'
'बंदौं बिधि-पद-रेनु। भवसागर जेहि कीन्ह जहँ॥'

उपर्युक्त पंक्तियोंमें वन्दना करते समय गोस्वामीजी सबके चरणोंको कमलकी उपमा देते हैं; परन्तु भरतकी वन्दनामें 'प्रनवौं प्रथम भरतके चरना' और विधाताकी वन्दनामें 'बंदौं बिधि-पद-रेनु' लिखकर ही रह जाते हैं। भ्रातृ-भक्त बेचारे भरत और वयोवृद्ध ब्रह्माने गोस्वामीजीका क्या अपराध किया था जो उन्होंने उनके चरणोंको कमलकी उपमासे वञ्चित रक्खा? पाठको! इसमें एक रहस्य है। बात यह है कि 'प्रनवौं प्रथम भरतके चरना। जासु नेम-व्रत जाइ न बरना॥' इसके आगे गोस्वामीजीने लिखा है 'राम-चरन-पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥' अर्थात् जिसका मन लोभी मधुपके समान रामके चरण-कमलोंका पास नहीं छोड़ता। लोभी मधुपके सदृश रामके चरणारविन्दोंमें भरतकी यह अनुरक्ति ही उन्हें कमलकी उपमासे वञ्चित रखनेका कारण है। यदि भरतके चरणोंको कमलकी उपमा दे दी जाती तो उनका मनरूपी भौंरा कदाचित् उनके ही चरण-कमलोंमें लुब्ध हो जाता, क्योंकि भ्रमरको तो कमल चाहिये। जब उसे अपने पास ही कमल मिल जाता तब वह दूरस्थ रामके चरण-कमलोंमें भटकने क्यों जाता? इस तरह कवितामें दूषण उत्पन्न हो जाता।

विधाताके चरणोंको कमलकी उपमासे वञ्चित रखनेका कारण यह है कि ब्रह्माजी कमलसे उत्पन्न हैं अर्थात् कमल उनका जनक है। अतएव उनके चरणोंको कमल (उनके पिता) से उपमा देना कितना असंगत ज्ञात होता? धन्य है, गोस्वामीजी आपकी इस सूक्ष्म-दर्शिताको!

(३)

महात्माजीकी उपमाएँ भी बड़ी मजेदार हैं। आपने श्रीरामचन्द्रजीको चकोर बनाया है!

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय-मुख-ससि भए नयन चकोरा॥

जब रामजी चकोर हुए तब उनका विवाह भी चकोरीसे होना उचित है, अतएव गोस्वामीजी सीताजीके विषयमें लिखते हैं—

अधिक सनेह देह भइ भोरी, सरद-ससिहिं जनु चितय चकोरी।

चकोर-चकोरीके विवाहमें समधी भी चकोर होना चाहिये। लीजिये वे भी चकोर बने बैठे हैं—

दशरथजीः—

जानिसि मोर स्वभाव बरोरू। मन तव आनन-चन्द्र चकोरू॥

जनकजी—

सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र-चकोरा॥

दुलहा-दुलहिन चकोर-चकोरी, समधी भी चकोर, तब क्या दुलहाजीके चिर-अनुगामी लक्ष्मणजी चकोर नहीं होंगे? क्यों नहीं, वे भी चकोर हैं—

रामहिं लखण बिलोकहिं कैसे? ससिहिं चकोर-किसोरक जैसे॥

सब तो चकोर हो गये फिर बराती ही क्यों रहें? लीजिये—

राम-चन्द्र-मुख-चन्द्र-छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेम-प्रमोद न थोर॥

विवाहका योग मिलानेवाले राजर्षि विश्वामित्रजी भी चकोर-पदसे वञ्चित नहीं रहे। देखिये—

नख-सिख निरख रामकै सोभा। जनु चकोर पूरनससि लोभा॥

बलिहारी है, इस चकोर-विवाहकी! निःसन्देह इस चकोर-विवाहमें आनन्द-सिन्धु उमड़ पड़ा होगा! सच्चे भक्त प्रेमी पाठक तो इस प्रसंगमें अब भी चकोर बन जाते हैं।

वनमें जाते हुए चकोर-चकोरी—राम-सीता—तथा चकोर बन्धु लक्ष्मणजीको देखकर दर्शक भी तत्काल चकोर बन गये। अगस्त्याश्रममें मुनि-मण्डली भी चकोर बन गयी!

मुनि-समूह महँ बैठे, सनमुख सबकी ओर।
सरद-इन्दु तनु चितवत, मानहु निकर चकोर॥

मार्गमें नर-नारि गण भी चकोर हो गये—

मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख-चंद-चकोरा॥

(४)

गोस्वामीजीने सभी उपमाओंका प्रयोग बड़े विचारसे किया है। कहीं एक उपमा, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार-चार उपमाओंका जमघट है। इसप्रकार न्यूनाधिक उपमाएँ देनेका क्या कारण है? अहा! उपमाओंकी

न्यूनाधिकतापर विचार करते ही हृदय मुग्ध हो जाता है—कविकी लेखनी चूम लेनेको चित्त चञ्चल हो उठता है। उदाहरण-स्वरूप, उपमाओंके दो-चार नमूने देखिये।

[क]

सुनि मृदु बचन भूपहिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयेउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयेउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

उपर्युक्त पंक्तियोंमें दशरथजीकी दशाका चित्रण तीन उपमाओंद्वारा किया गया है। क्या एक उपमासे काम नहीं चल सकता था? यहाँ तीन उपमाएँ देनेका क्या कारण है? -गोस्वामीजी तीन प्रकारका शोक दिखलाना चाहते हैं, इसीलिये तीन उपमाएँ दी गयी हैं। पहली—

सुनि मृदु बचन भूपहिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

इसमें मानसिक शोक दर्शाया है। दूसरी—

गयेउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥

इससे वाचनिक शोक प्रकट होता है। तीसरी—

बिबरन भयेउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥

इससे शारीरिक वेदना व्यक्त होती है।

शोककी संख्याके अनुसार उपमाओंकी संख्या तो है ही, विशेषता यह है कि महाराज दशरथजीको शोक उत्पन्न हुआ है कैकेयीकी वाणीद्वारा (सुनि मृदु बचन) और वाणीका तत्त्व है आकाश, इसलिये उपमाएँ भी आकाशस्थ ही हैं। यथा—प्रथम पंक्तिमें शशिकर, द्वितीय पंक्तिमें सचान (बाज) और तृतीय पंक्तिमें दामिनि।

शोककी व्यापकता जल, थल और आकाशमें बतलानेके लिये गोस्वामीजीने दशरथजीके उपमान जल-चर, थल-चर और नभ-चर ही दिये हैं। यथा—(१) कोकू—जलचर (२) लावा—नभचर (३) तरु-तालू—थलचर—अर्थात् कैकेयीकी वाणीसे जल, स्थल और आकाश सभी शोक-पूर्ण हो गया था। कमाल है!

[ख]

चित्रकूटाश्रममें भरतको ससैन्य आते हुए देख लक्ष्मणजीका हृदय वीर-रससे उछलने लगता है और वह रामचन्द्रजीसे कहते हैं—

जिमि करिनिकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥

उपर्युक्त वर्णनमें दो उपमाएँ दी हैं। (१) करिनिकर दलै मृगराजू (२) लवा जिमि बाजू।

दोनों उपमाओंमें पहली उपमा भरत तथा दूसरी शत्रुघ्नके लिये है। करि (हाथी) से मृग-राज (सिंह) छोटा होता है, इसी प्रकार भरतसे लक्ष्मण भी छोटे थे। इससे प्रथम उपमाकी सार्थकता सिद्ध होती है। दूसरी उपमामें यह दिखलाया गया है कि जिसप्रकार लवासे बाज़ बड़ा होता है उसी प्रकार शत्रुघ्नसे लक्ष्मण भी बड़े थे। अतः दूसरी उपमाका भी उचित प्रयोग किया गया है। खूबी यह कि पहली उपमामें करि-निकर (हाथियोंके समूह) के समान भरत भी 'सेन-समेता' थे। दूसरी उपमामें अकेला लवा है, क्योंकि शत्रुघ्नके साथ भी किसी सहायक शब्दका उल्लेख नहीं है।

भरतको करि (हाथी) की उपमा देना सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि इस प्रसंगमें लक्ष्मणजी भरतको राज-मद-मत्त समझ रहे हैं और हाथी मतवाला होता ही है। शत्रुघ्नको उनकी लघुताके कारण लवाकी उपमा देना भी सर्वथा उचित है।

[ग]

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीतारामपद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

इस दोहेमें श्रीसीता-रामजीकी अभिन्नता दो उपमाओंके द्वारा प्रदर्शित की गयी है। अभिन्नता तो एक उपमासे भी प्रकट हो सकती थी। फिर दो उपमाएँ देनेका क्या कारण है? विचार करने पर हमें तो निम्न-लिखित कारण जान पड़ा है।

पहली उपमा 'गिरा-अरथ' में गोस्वामीजीने पहले सीतादेवीका और उनके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीका नाम उपमानके रूपमें लिखा है। अतएव उपमानोंके इस क्रमके अनुसार उपमेयोंका क्रम सीता-राम हुआ। रामचन्द्रजीका नाम पीछे होनेसे कहीं वह रुष्ट न हो जायँ इसलिये दूसरी उपमामें गोस्वामीजीने उपमानोंका क्रम बदल दिया अर्थात् पहले श्रीरामजीका पश्चात् सीतादेवीके नामका उपमानके रूपमें उल्लेख किया। यथा—'जल-बीचि'। इस प्रकार दूसरी उपमा देकर गोस्वामीजी केवल इस दोषसे ही
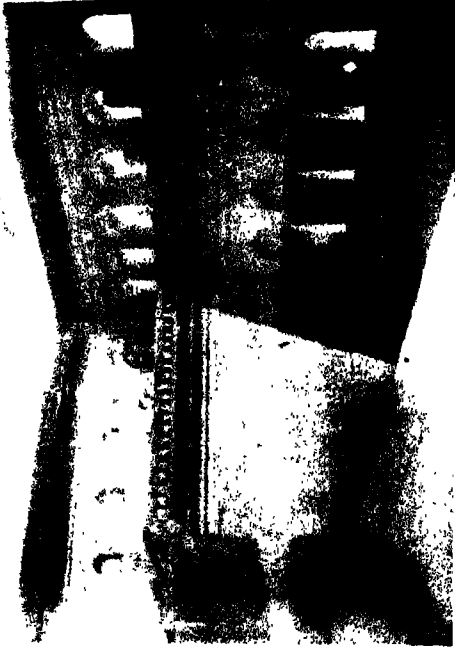
सूरज कुण्ड – जनाना घाट

दतून कुण्ड

सूरज कुण्ड

वशिष्ठ कुण्ड

तुलसी चौरा

गोस्वामी तुलसीदासजीकी कुटी

मणि पर्वत

मत्तगजेन्द्र

नहीं बच गये प्रत्युत उन्होंने अपने युगल आराध्योंकी एकरूपता और भी प्रदर्शित कर दी। धन्य भक्तप्रवर!

इसके अतिरिक्त इन उपमाओंमें एक विशेषता और भी है। वह यह कि दोनों उपमाओंमें सीतादेवीके उपमान स्त्रीलिंग तथा श्रीरामजीके पुल्लिंग हैं। उपमानोंमें परस्पर जैसा अभिन्न प्रेम है उससे वे श्रीसीता-रामजीके उपमान बननेके सर्वथा योग्य हैं।

(५)

मानसके कतिपय प्रेमी पाठकोंने कदाचित् इस बातपर ध्यान न दिया होगा कि वन-वासके आरम्भ, मध्य और अन्तमें मिलनेवाले महर्षियोंसे श्रीरामचन्द्रजीने कौन-कौनसे प्रश्न किये और उनमे उन्हीं विशेष प्रश्नोंके करनेका क्या कारण है? यथा—

वन-वासके आरम्भमें महर्षि भरद्वाजसे मिलनेपर भगवान् कहते हैं—

राम सप्रेम कहेउ मुनि-पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥

पाठक! उक्त ऋषि-वरसे मार्ग ही पूछनेका क्या कारण है? इनसे अन्य प्रश्न क्यों नहीं किया?

इसके दो कारण हैं:—

(१) भरद्वाज-ऋषिके आश्रमसे ही श्रीरामजी वनमें प्रवेश करते हैं; अतएव प्रवेश करनेके पहले ही मार्ग जान लेना आवश्यक है।

(२) जो जिस विषयका ज्ञाता होता है, उससे वही बात पूछी जाती है। भरद्वाजजीके विषयमें गोस्वामीजी बालकाण्डमें लिख आये हैं—

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। जिनहिं राम-पद अति अनुरागा॥
तापस सम-दम-दया-निधाना। परमारथ-पथ-परम-सुजाना॥

यहाँ चौथे चरणपर ध्यान दीजिये। इससे स्पष्ट है कि भरद्वाजजी परमार्थ-पथके अच्छे ज्ञाता थे और परमार्थके लिये ही भगवान्‌ने अवतार धारण किया था। यथा—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

सारांश यह कि श्रीरामजी राक्षसोंका बध करने अर्थात् परमार्थके पथपर चलनेहीके लिये अवतीर्ण हुए थे। 'अतएव परमारथ-पथ-परम सुजाना' होनेके कारण ही उन्होंने भरद्वाजजीसे उपर्युक्त प्रश्न किया।

वनवासके मध्यमें आदिकवि वाल्मीकिजीसे भेट हुई है और उनसे श्रीरामजीने निम्नलिखित प्रश्न किया है—

अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र-सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला। बास करौं कछु काल कृपाला॥

पाठक इन महर्षिजीसे निवास-स्थान पूछनेका कारण भी बड़ा गूढ़ और मनोमुग्धकारी है। बात यह है कि महर्षि वाल्मीकि श्रीरामचन्द्रजीके निवास-स्थानके निर्माण करनेमें सबसे अधिक कुशल शिल्पी समझे गये हैं। गोस्वामीजीने वन्दनामें कहा है—

बंदौं मुनि-पद-कंज 'रामायण' जिन निरमयेउ।'

रामायणका अर्थ (राम+अयण) रामजीका निवास-स्थान है। वाल्मीकिजीसे श्रीरामजीका निवास-सम्बन्धी इस प्रश्नके करनेका अभिप्राय कितना गूढ़ रहस्यमय और युक्ति-युक्त है।

वनवासके अन्तमें अगस्त्य ऋषिसे भेंट हुई। उनसे श्रीरामजी कहते हैं—

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं 'मुनि द्रोही'॥

अगस्त्यजीसे राक्षसोंके मारनेकी युक्ति क्यों पूछी?

एक बार दण्डकारण्यमें दो राक्षस-बन्धुओंने बड़ा उपद्रव मचाया था, उनमेंसे एक ब्राह्मण-वेष धारण कर ऋषियोंको निमन्त्रण दे आता और अपने छोटे भाईका मांस पकाकर निमन्त्रित ऋषियोंको खिला देता था। भोजनोपरान्त ज्यों ही वह अपने भाईको पुकारता त्यों ही वह ऋषियोंका पेट फाड़कर निकल आता। इसप्रकार एक ही दिनमें अनेक ऋषि मारे जाते। निदान एक दिन अगस्त्यऋषिको भी निमन्त्रण दिया गया। भोजनोपरान्त सदाकी भाँति उस राक्षसने अपने भाईको पुकारा। महर्षि अगस्त्य उसका छल समझ गये और डकार लेकर पेटपर हाथ फेरते हुए बोले—'तुम्हारा भाई हमारे पेटसे सदेह नहीं निकल सकता, हजम होकर ही निकलेगा।' इसप्रकार उस 'मुनि-द्रोही' मायावी राक्षसका नाश कर अगस्त्यजीने अनेक ऋषियोंको मृत्युसे बचा लिया। (वाल्मीकीय रामायण आरण्यकाण्ड)

उपर्युक्त कथाके समान ही श्रीरामजीके सामने भी स्थिति उपस्थित है। उन्हें भी 'मुनि-द्रोहियों' का वध करना

है और 'मुनि-द्रोही' वधका अगस्त्यजीको पूर्व अनुभव है अतएव उनसे 'अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जिहि प्रकार मारौं मुनि-द्रोही ॥' यह प्रश्न करना सर्वथा उचित है।

(६)

गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंकी, कहीं नील कमलसे, कहीं लाल कमलसे और कहीं केवल कमलसे उपमाएँ दी हैं। एक ही उपमेयसे पृथक्-पृथक् रंगके उपमानोंका मिलान क्यों किया गया ?

थोड़ा ध्यान देनेसे इसमें एक बहुत बड़ी विशेषता दिखायी देती है, और हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता है।

पाठक ! पहले नील कमलकी उपमापर विचार कीजिये। गोस्वामीजीने नील कमलकी उपमा केवल दो स्थानोंपर दी है। इन्हीं दो स्थानोंमें श्रीरामचन्द्रजीके बाल-रूपका वर्णन है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाल-नेत्रों और नील कमलोंमें कुछ सादृश्य है और यह ठीक भी है। कज्जल-युक्त आँखें नील कमलके समान ही तो होती हैं।

बालकाण्डान्तर्गत बाल-रूप-वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

नील कमल दोउ नयन बिसाला। बिकट भ्रकुटि लटकन वर भाला ॥

उत्तरकाण्डमें श्रीकागभुशुण्डिजी, भगवान्के बालरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

नील कंज-लोचन भव-मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥

इन दो स्थानोंके अतिरिक्त मानसमें और कहीं भी नील कमल, नेत्रोंके उपमान नहीं बने। बन कैसे सकते थे? इन दो स्थानोंके अतिरिक्त बालरूपका वर्णन भी तो और कहीं नहीं है।

लाल कमलसे गोस्वामीजीने उन्हीं-उन्हीं स्थानोंमें उपमाएँ दी हैं, जहाँ भगवान् शत्रु-वध करनेके हेतु प्रस्तुत हुए हैं। शत्रुके सम्मुख लाल नेत्र होना ही चाहिये। पाठक, देखिये—ताड़का-सुबाहु आदिके वध करनेके लिये भगवान्, ऋषिवर कौशिकके साथ प्रस्थान करते हैं। लिखा है—

अरुण नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला ॥

यद्यपि यहाँ लाल कमल उपमान नहीं है, तथापि लाल नेत्रोंका वर्णन किया गया है।

'मुनि-द्रोहि-वध'की प्रतिज्ञाकर कार्यारम्भके लिये प्रस्तुत, अगस्त्याश्रममें श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

अरुण नयन राजीव सुबेसं। सीता नैन-चकोर निसेसं ॥

बालि-वधके समय—

स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुण नयन, सर-चाप चढ़ाए ॥

लाल नेत्रोंका वर्णन है।

रावण-वधके लिये आये हुए भगवान् रामचन्द्रजीको विभीषणने देखा—

भुज प्रलंब कञ्जारुण लोचन। स्यामल गात प्रणत भय-मोचन ॥

रावण-वधके समय—

अरुण नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचन अभिरामा ॥

रावण-वधोपरान्त तुरन्त ही देवता स्तुति करते हैं—

सर चाप मनोहर तूण धरं। जलजारुण-लोचन भूप वरं ॥

इन स्थानोंके अतिरिक्त लाल नेत्रोंका वर्णन अथवा नेत्रोंका लाल कमलोंसे मिलान और कहीं नहीं किया गया। शत्रु-वधके स्थान भी तो यही हैं। सभी जगह शत्रु-वध नहीं हुआ, अतएव सभी जगह लाल कमलोंसे उपमाएँ भी नहीं दी गयीं। हाँ, एक स्थानपर पाठक आक्षेप करेंगे। वह कौन-सा? वन्दनामें गोस्वामीजीने लिखा है—

नील सरोरुह-स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन ॥

यहाँ किस शत्रुका वध किया गया ? पाठक, थोड़ा विचार कीजिये और 'नील सरोरुह-स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन' के उपरान्त लिखी हुई पंक्ति पढ़िये। क्या लिखा है ?

'करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥

भक्त भगवान्को अपने हृदयमें स्थापित करना चाहता है। किसलिये ? काम, क्रोध, लोभ, मोहादि छः प्रबल शत्रुओंको समूल निरस्त करनेके लिये। देह-धारी राक्षस शत्रुओंसे ये छः शत्रु प्रबल हैं; अतएव 'अरुण-बारिज नयन' ही नहीं किन्तु 'तरुण अरुण बारिज नयन'की आवश्यकता है। धन्य है !

आनन्दके अवसरोंपर गोस्वामीजीने नेत्रोंके उपमानभूत कमलोंको रंग-रहित लिखा है और उसकी आवश्यकता भी है। क्योंकि आनन्दके समय नेत्र अपनी स्वाभाविक दशाको प्राप्त हो जाते हैं—आनन्दरूप बने रहते हैं अतएव उन्हें लाल रंगसे रँगकर रंगमें भंग क्यों डाला जाय ?

जनकपुरमें दोनों भाई भ्रमण कर रहे हैं। चारों ओर आनन्द छा रहा है। यहाँ लिखा है—

सुभग श्रवण सरसीरुह लोचन।

केवल कमल है, रंग नहीं।

जनकपुरकी स्त्रियाँ परस्पर भगवान्‌के रूपका वर्णन कर रही हैं—'श्याम गात, कल कंज-बिलोचन॥'

रंग-भूमिमें दोनों भाई आ गये, आनन्द-ही-आनन्द है! गोस्वामीजी लिखते हैं—

सरद चंद निन्दक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥

विवाह हो रहा है—

सरद बिमल बिधु-बदन सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥

अवस्था नयी है, अतएव राजीव भी नये ही लज्जित हो रहे हैं।

ससुरालमें जहाँ आनन्दका समुद्र ही हिलोरें मार रहा है, गोस्वामीजी लिखते हैं—

नयन कमल, कल कुंडल नाना। बदन सकल सौन्दर्य-निधाना॥

पथिक-वेश-धारी सीता, राम, लक्ष्मण मार्गमें जा रहे हैं। मार्गमें स्थित पुर-नर-नारी उन्हें देखकर आनन्दमें मग्न हो रहे हैं—

स्यामल गौर किसोर वर, सुंदर सुखमा ऐन।
सरद सर्बरी-नाथ मुख, सरद सरोरुह-नैन॥

चौदह वर्षकी अवधि समाप्तकर भगवान् अयोध्या-पुरीको लौट आये। अहा! इस आनन्दकी तो कोई सीमा ही नहीं है। विशाल समुद्रसे भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती। अयोध्या आनन्दसे परिप्लावित है। साधु भरतजी भगवान्‌से मिल रहे हैं! अहा!

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बल कर कृपा-सिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

(७)

गोस्वामीजीने कहीं कोई शब्द लिख दिया है तो उसका पूरा पूरा निर्वाह भी किया है। उनके शब्द साधारण कवियोंकी भाँति वाक्य, तुकान्त या मात्रा-पूर्तिके लिये नहीं हैं। वे सर्वथा सार्थक हैं। यथा—

(क) भरतजी कहते हैं—

आपनि दारुण दीनता, सबहिं कहौं समुझाय।
बिन देखे रघुबीर-पद, जियकी जरनि न जाय॥

पाठक, 'जियकी जरनि' पर ध्यान दीजिये। भरतजी कहते हैं—'श्रीरघुवीर-पद' बिना देखे 'जियकी जरनि' न जायगी।

चित्रकूटाश्रममें श्रीरामजीको दूरसे भरतने देखा। देखकर तो 'जियकी जरनि' जानी ही चाहिये। लीजिये गोस्वामीजी वहाँ लिखते हैं—

कर कमलनि धनु-सायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत॥

'जियकी जरनि न जाय' यह पद पहले लिखकर गोस्वामीजीने इसका कितना ध्यान रक्खा है। मानसकी समस्त रचना इसी प्रकार है। ध्यान-पूर्वक देखनेसे खूबियाँ नज़र आती हैं और मन मुग्ध हो जाता है!

(ख) राजर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको दशरथजीसे माँगकर अपने साथ लेकर चलने लगे। यहाँ गोस्वामीजीने निम्नलिखित सोरठा कहा है—

पुरुष-सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरण।
कृपा-सिंधु मति-धीर अखिल बिस्व-कारण-करण॥

पाठक, साधारण दृष्टिसे इस सोरठेमें बहुत-से शब्द केवल वाक्य-पूर्तिके अर्थ लिखे हुए-से जान पड़ते हैं। पर नहीं, एक-एक शब्दपर ध्यान देनेसे सभी शब्द सार्थक ज्ञात होंगे। विस्तार-भयसे हम केवल 'पुरुष-सिंह', 'हरषि चले' 'मुनि-भय-हरण', 'कृपासिंधु', और 'मति-धीर', इन्हीं शब्दोंकी सार्थकता सिद्ध करते हैं।

(१) पुरुष-सिंह—आगे चलकर श्रीरामचन्द्रजी ताड़का, सुबाहु आदिका वध करेंगे, इसी आशयसे यहाँ इस शब्दका प्रयोग किया गया है। इस 'पुरुष-सिंह' का निर्वाह भी गोस्वामीजीने कितनी सुन्दरताके साथ किया है! ध्यान दीजिये, सोरठेसे विदित होता है कि श्रीराम-लक्ष्मण पुरुष-सिंह बनकर घरसे निकले हैं। इसके अनन्तर अब जनकके भेजे हुए दूतोंके मुखसे इन 'पुरुष-सिंह' के रूपमें निकलनेवाले वीरोंका समाचार सुनिये।

दशरथजीके यह पूछनेपर कि—

भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे॥

दूत उत्तर देते हैं—

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष-सिंह तिहुँ पुर उजियारे॥

'पुरुष-सिंह' बनकर घरसे निकले, अतएव समाचार भी 'पुरुष-सिंह' बने रहनेका मिलना चाहिये। गोस्वामीजीको अपने पहले लिखे हुए 'पुरुष-सिंह' का कितना ध्यान रहा और आगे चलकर उन्होंने उसको किस खूबीसे दुहराया, विचार करते ही मन मुग्ध हो जाता है ! क्या यह ठीक होता कि चलते तो सिंह बनकर और समाचार मिलता शृगालका ? कदापि नहीं।

(२) मुनि-भय-हरण—स्पष्ट ही है कि आगे ताड़का, सुबाहु, मारीचादिसे मुनियोंको निर्भय किया है। क्या मुनियोंको उनसे भय लगता था ? हाँ, गोस्वामीजी पहले लिख चुके हैं–

तहँ जप-जग्य-जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि भय पावहिं॥

(३) कृपा-सिन्धु—इस शब्दका प्रयोग इसलिये किया गया है कि उन्होंने आगे अहल्याका उद्धार किया है। एक पतितपर इसप्रकारकी कृपा, कृपा-सिन्धुके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? अहल्या स्वयं कहती है–

जेहि पद सुर-सरिता परम पुनीता
प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद-पंकज जेहि पूजित अज,
मम सिर धरेउ कृपालु हरी॥

(४) मति-धीर—धनुष-यज्ञमें धनुष तोड़ना है और बिना 'धीर-मति'के उसका टूटना असम्भव है। इस बातका गोस्वामीजीने स्वयं समर्थन किया है। राजाओंसे धनुष क्यों न टूटा ? क्योंकि वे 'परिकरि बाँधि उठे अकुलाई।' अकुलाकर उठे, 'धीर-मति'से नहीं। श्रीरामजीसे धनुष क्यों टूट गया ? क्योंकि वे 'ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये।' अकुलाकर नहीं उठे और 'सहजहिं चले सकल जग-स्वामी॥' चले भी सहज ही, 'मति-धीर' होकर। राजा लोग कैसे चले थे ? वे 'चले इष्ट देवन्ह सिर-नाई॥' अपने-अपने इष्टदेवोंके सिर उन्होंने पहले ही नीचे कर दिये। सफलता मिले तो कैसे मिले ? ❀

इसप्रकार भगवान्‌ने जो जो कार्य विश्वामित्रजीके साथ रहकर किये, उन सब कार्योंके करनेकी शक्ति तो गोस्वामीजीने प्रस्थानके समय ही प्रदर्शित कर दी है।

(५) हरषि चले—यहाँपर केवल 'चले' ही लिख देना पर्याप्त था। 'हरषि चले' लिखनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या हरषि मात्रा-पूरक है ? नहीं, वह बहुत ही ठीक लिखा गया है। पाठक, विचार कीजिये। प्रस्थान-कालका हर्ष, कार्य-सफलताका द्योतक है। इस बातका समर्थन गोस्वामीजीने स्वयं किया है। सुन्दरकाण्डमें महावीरजी वानरोंसे कहते हैं–

तब लगि मोहि परिखेहु भाई। सहि दुख कंद-मूल-फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइ काज मन हरष बिसेखी॥

कार्य होगा; क्योंकि मनमें विशेष हर्ष है। प्रस्थान भी महावीर किस तरह करते हैं—

अस कहि नाय सबन्ह कहँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा॥

एक तो हर्ष दूसरे हृदयमें रघुनाथजी, कार्य-सिद्धि न हो तो क्या हो ?

अतएव, जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने सफलता प्राप्त करनेके हेतु प्रस्थान किया है, वहाँ वहाँ गोस्वामीजीने 'चले'के पहले 'हरषि' का प्रयोग अवश्य कर दिया है। देखिये–

उपर्युक्त सोरठेमें ही 'हरषि चले'। अतएव 'मुनि-मख रखा' में उन्हें सफलता मिली।

इसके उपरान्त धनुष-यज्ञकी खबर पाकर वहाँ सफलता-प्राप्ति की आशासे भगवान् प्रस्थान करते हैं और सफल भी होते हैं। अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं—

धनुष-जग्य मुनि रघुकुल-नाथा। हरषि चले मुनिवरके साथा॥

आरण्यकाण्डमें अगस्त्यजीसे 'मुनि-द्रोही' राक्षसोंके वधकी युक्ति पूछकर श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंको वध करना आरम्भ कर दिया और सफल भी हुए। अतएव अगस्त्याश्रममें श्रीराम-आगमनके पूर्व ही गोस्वामीजीने लिख दिया है–

एवमस्तु कहि रमा-निवासा। हरषि चले कुंभज ऋषि पासा॥

क्योंकि आगे वह खर-दूषण आदिसे युद्धकर सफल हुए हैं।

सुन्दरकाण्डमें सीतादेवीकी सुधि पाकर भगवान् रामचन्द्र, रावणको मारनेके लिये प्रस्थान करते हैं। युद्धमें सफलता भी मिलती है अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं–

❀ यहाँपर प्रतीत होता है कि यह अर्थ मनोविनोदार्थ किया गया है, राजाओंकी असफलताका कारण व्यङ्गसे प्रदर्शित किया गया है। –सम्पादक

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। भये सकुन सुंदर सुभ नाना॥

युद्धमें रावणको सफलता नहीं मिली; अतएव उसके प्रस्थानमें गोस्वामीजीने केवल 'चले' ही शब्दका प्रयोग किया है:—

'चले बीर सब अतुलित बली।'
'चली निसाचर-सैन अपारा॥'
'चले मत्त गज-जूथ घनेरे॥' आदि।

(८)

गोस्वामीजीने अपनी रचनामें जहाँ तहाँ 'रुचिर' शब्दका विशेषणके रूपमें प्रयोग किया है। इसका क्या कारण है? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि इस शब्दका प्रयोग गोस्वामीजीने श्रीरामचन्द्रजीके अंगों, आभरणों और उनसे ही सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंकी विशेषता बढ़ानेके लिये किया है, चाहे जहाँ नहीं, इससे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीके विचारमें श्रीरामजीको 'रुचिर' विशेष रुचिकर था। जो वस्तु इष्टदेवको रुचिकर हो, उसे उसका परम भक्त क्यों न समर्पण करे?

पाठक, 'रुचिर' का प्रयोग देखिये। कितना सुन्दर और हृदयहारी है।

नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि द्युति हरना॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुखमाकी सींवा॥

रेखा त्रय सुंदर उदर नाभि रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषण चीर॥

केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग-मनि माला॥
सुंदर भ्रकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक रुचिरता निवासा॥
मामभिरक्षय रघुकुल-नायक। धृत वर चाप रुचिर कर सायक॥

रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस॥

उर-श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनि-जाला॥

रुचिर-प्रेमी भगवान्‌की शय्या भी रुचिर ही होनी चाहिये। लीजिये—

सेज रुचिर रचि राम उठाये। प्रेम-समेत पलँग पौढ़ाये॥

वास-स्थान भी रुचिर ही है—

तहँ रचि रुचिर परन-तृन साला। बास करौं कछु काल कृपाला॥

'रुचिर'से ऐसा प्रेम रखनेवाले भगवान् रामचन्द्रजीकी जन्मभूमि अयोध्यापुरी क्या रुचिर न होगी? अवश्य होगी। देखिये—

अवधपुरी अति रुचिर बनाई। देवन सुमन-वृष्टि झर लाई॥

धन्य है!

बाल्यकालहीसे 'रुचिर' प्रेमी शिशु-रूप रामका 'प्ले-ग्राउण्ड' भी कैसा रुचिर है?

बरनि न जाय रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारों भाई॥

धनुष तोड़नेवाले रुचिर-प्रेमी हैं, अतएव धनुष-वेदिका भी पहलेसे ही 'रुचिर' रच दी गयी

अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥

क्या कहते हैं?

रुचिरानुरक्तजी कहीं नाराज न हो जायँ, अतएव—

रचे रुचिर बर बंदनवारे। मनहु मनोभव-फंद सँवारे॥

इसके अतिरिक्त बारातमें जानेके लिये सवारी भी रुचिर ही हो तो ठीक है। लीजिये बारातकी तैयारीमें—

दोउ रथ रुचिर भूपपहँ आने।

और—

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ हरषि चढ़ाय नरेस॥

महर्षि वशिष्ठको 'रुचिर' रथमें बैठाना उचित ही है क्योंकि वह पुरोहित ठहरे।

'रुचिर'से दूलहका इतना प्रेम देख जेवँनारके समय जनकजीने भी कैसी चतुराई की—

छ रस रुचिर ब्यंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती—

परसवा दिये।

क्यों न हो?

जिसका 'रुचिर' में इतना गहरा अनुराग है, जिसके अंग और आभरणादि भी साक्षात् रुचिररूप हैं, जो रुचिर पदार्थोंका ही उपयोग करता और करना चाहता है, उस रुचिररूप प्रभुका जब चरित भी रुचिर हो तब गोस्वामीजीका काव्य-कौशल सफल समझा जावे। हाँ, चरित भी रुचिर है। देखिये—

यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥

अपने आराध्य-देवकी 'रुचिर'से इतनी प्रीति देखकर

ही कदाचित् परमभक्त कागभुशुण्डिजी 'रुचिर' पर्वतपर निवास करते हैं।

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कल्पान्त न होई॥

धन्य हैं!

शायद, शूर्पणखाको श्रीरामका 'रुचिर-प्रेम' मालूम हो गया था, इसीलिये वह इन्हें रिझानेके लिये—

रुचिर रूप धर प्रभुपहँ आई। बोली मधुर बचन मुसकाई॥

खेद है! उसका मनोरथ सफल न हो सका।

ऊपर जिन कतिपय विशेषताओंका दिग्दर्शन कराया गया है, उनसे यह भलीभाँति ज्ञात हो जावेगा कि गोस्वामीजीने रामचरित-मानसमें कैसी-कैसी अनेक अलौकिकताएँ भरकर अपनी अपूर्व प्रतिभा, दिव्य काव्य-चातुर्य और प्रकाण्ड पाण्डित्यका पूरा परिचय दिया है। इस क्षुद्र लेखनीसे आपकी प्रशंसा कैसे की जाय? हम तो मुग्ध होकर ही रह जाते हैं!

लखि मानस, मानस-मुकुर क्यों न हुलसि हरषाहिं?

तुलसी-बुधि-प्रति-बिम्ब बर प्रतिबिम्बित जेहिं माँहिं॥

हरत हृदय-अज्ञान-तम रचना-रुचिर प्रकास।

काव्य-कौमुदी इंदुवर धनि धनि तुलसीदास॥

श्रीरामायणोपदेश

(लेखक—श्रीयुक्त चौधरी रघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

[समाज और देशहित]

रामावतारसे यह उपदेश मिलता है कि देशका यथार्थ हित धर्मके प्रसारमें ही है। सब लोगोंको एकमत होकर इसी महान् कार्यमें लग जाना चाहिये। असुरोंके असदाचारसे देशकी परम हानि होते देखकर उनका दमन करना ही देशहितका प्रधान कार्य समझा गया था और इसीलिये भगवान्‌का श्रीरामावतार हुआ था। भगवान् श्रीरामचन्द्रने विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षाके लिये उनके साथ जाते समय स्पष्ट ही कहा था—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।

तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥

(वा० रा० १।२६।५)

गो, ब्राह्मण और देशके हितके लिये आप-जैसे अभ्रान्तकी आज्ञानुसार मैं सावधानीसे देश-शत्रुओंका वध करूँगा। इसप्रकार भगवान् श्रीरामका शस्त्र धारण केवल धर्मकी रक्षा और अधर्मके विनाशके लिये ही था। इस देशहितकर आयोजनकी सिद्धिके लिये देव, मनुष्य और वनवासी रीछ-वानरादि तकने एकमत होकर प्रयत्न किया। शास्त्रके अनुसार, केवल मनुष्य ही समाजके अन्तर्भुक्त नहीं हैं, पशु-पक्षी और वृक्षादि स्थावरोंका भी उसमें स्थान है। मनुष्यसमाजमें सभी वर्णोंके लोग शूद्र पर्यन्त उस समय आदरणीय थे। कोई भी नीच नहीं समझा जाता था। श्रीरामराज्याभिषेकके समय लोगोंको निमन्त्रण देनेके सम्बन्धमें आदेश देते हुए महर्षि वशिष्ठने सुमन्त्रसे कहा था।

ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्यान् शूद्रांश्चैव सहस्रशः।

समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान्॥

(वा० रा० ११।१३।२१)

'सभी देशोंके हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको सम्मानके साथ बुलाओ।' प्राचीनकालमें लोगोंमें इतना अधिक प्रेमभाव था कि परस्पर मिलनेके समय जब वृक्षादिके सम्बन्धमें भी कुशल-प्रश्न पूछे जाते थे। इससे सिद्ध होता है कि इन स्थावर जीवोंको भी समाजमें स्थान प्राप्त था। महाराज विश्वामित्र महान् तेजस्वी वशिष्ठसे वृक्षोंकी कुशल पूछते हैं—

विश्वामित्रो महातेजा वनस्पतिगणे तदा।

सर्वत्र कुशलं प्राह वशिष्ठो राजसत्तमः॥

इसी प्रकार श्रीवशिष्ठ और भरतने महर्षि अगस्त्यसे शरीर और शिष्योंके साथ ही अग्नि एवं पशु-पक्षी तथा वृक्षोंकी भी कुशल पूछी थी·

वशिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम्।

शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु॥

रामावतारमें रघुवंशके गुणोंका पूर्ण विकाश।

रघुवंशमें कहा गया है—

> त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
> यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
> शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
> वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

अर्थात् 'रघुवंशी त्याग या परोपकारके लिये ही ऐश्वर्य रखते थे। सत्यकी रक्षाके लिये कम बोलते थे। कमनीय कीर्तिके लिये ही विजयकी कांक्षा करते थे। सन्ततिके लिये ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे। बाल्यकालमें विद्याध्ययन करते थे। केवल यौवनावस्थामें ही धर्मसे अविरुद्ध विषयोंका सेवन करते थे। वृद्ध होनेपर मुनिव्रत धारण करते और अन्तमें योगके द्वारा शरीरका परित्याग कर देते थे।' भगवान् श्रीराममें इन दिव्य गुणोंका पूरा विकास था। इसीका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

त्याग

महाराज दशरथके द्वारा श्रीरामराज्याभिषेकका निश्चय किये जानेपर सम्पूर्ण अयोध्यामें परमोत्सव हो रहा है। आनन्दसागरकी उत्ताल तरङ्गोंकी तुमुल ध्वनि पूर्णिमाके सागर-तरङ्ग-गर्जनके तुल्य है। घर-घर मङ्गल-बधाइयाँ बँट रही हैं। सभी लोग अभिषेकका उत्सव देखनेके लिये उत्साहित हैं। ऐसी स्थितिमें वहाँ एक ही भवन ऐसा है जहाँ शान्तिका साम्राज्य छाया है, किसी प्रकारका व्यर्थ कोलाहल नहीं है, उपवासव्रत-सहित स्तुतिपाठ और जप जारी है। यह वह आलय है जहाँ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी राजकुमारीजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ दैन्य-भावसे कठिन राज्य-शासनके गुरुतर भारको ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रार्थनामें प्रवृत्त हैं। इसी अवसरमें माता कैकेयीके प्रासादसे बुलाहट आती है और श्रीराम तत्काल वहाँ उपस्थित होकर अपने पूजनीय धर्मात्मा पिताको शोक-विकल स्थितिमें भूमिपर पड़े देखते हैं और विनम्रताके साथ माता कैकेयीसे पिताके शोकका कारण पूछते हैं। कैकेयी स्पष्ट कह देती है कि 'महाराजने पूर्वकालमें मुझे दो वरदान देनेके लिये प्रतिज्ञा की थी, आज मैंने उसकी पूर्तिके लिये एक वरसे तुम्हारे राज्याभिषेकके लिये संगृहीत सामग्रियोंके द्वारा भरतका रत्नालङ्कार-विभूषित होकर राज्यसिंहासनारूढ होना और दूसरेसे तुम्हारा चीर-वल्कल-जटा-धारणपूर्वक मुनिव्रतसे चौदह वर्षके लिये वनमें वास करना माँगा है। मैंने महाराजसे ये दोनों वरदान स्वीकृत करवा लिये हैं और उनकी यही आज्ञा है।'

एक राज्यसुखाभिलाषी विविध आशाओंसे युक्त अधिकारप्राप्त युवकके लिये यह आज्ञा महान् भयानक वज्र-सदृश है परन्तु श्रीभगवान् रामचन्द्रका परम शान्त स्थिर और सुसमाहित वदन-कमलपर जिसको राज्याभिषेकके भावी सुखकी आशा हर्षोत्फुल्ल नहीं कर सकी थी, इस आज्ञाको सुनकर भी किञ्चित् भी क्षोभ, शोक और उद्वेगकी दिखावटी रेखा भी नहीं खिंची। श्रीभगवान्ने परम प्रसन्नभावसे समता और धीरताके साथ अनायास ही कहा कि 'माता, सहर्ष आज्ञाका पालन किया जायगा।'

बाल्यकालमें ब्रह्मचर्यव्रत पालनके समय श्रीभगवान्ने गुरु वशिष्ठके द्वारा नामरूपात्मक प्राकृतिक संसारकी असारता और क्षणभंगुरता एवं आत्माकी ही सच्चिदानन्द-रूपता रूप दिव्यज्ञानको प्राप्त कर लिया था। वे वैराग्य और त्यागकी उस उच्चतम सीमापर पहुँचे हुए थे कि आज राज्यसिंहासनके बदले वनवासकी आकस्मिक आज्ञा, राज्यभोगके स्थानमें भिक्षाटनकी विपत्ति उनके नित्य प्रशान्त और प्रसन्न चित्तको तनिक भी विचलित और दुःखित नहीं कर सकी। भगवान्ने 'समत्वं योग उच्यते' को चरितार्थ कर दिखाया था। इस सम्बन्धका मानसमें क्या ही यथार्थ वर्णन है!

> प्रफुल्लतां यो न गताऽभिषेकतः
> तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
> मुखाम्बुजं श्रीरघुनन्दनस्य
> सदास्तु मे मञ्जुलमङ्गलप्रदम्॥

सत्य

श्रीभगवान् आदर्श मातृ-पितृ-भक्त तो थे ही, साथ ही आप आदर्श सत्यवादी थे, आपने हँसी-मज़ाकमें भी कभी असत्य भाषण नहीं किया। 'रामोद्विर्नाभिभाषते' की उक्ति लोकप्रसिद्ध है। असत्य तो दूर रहा, भगवान्ने कभी कटुभाषण भी नहीं किया—

> न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुम्।

सत्यके सम्बन्धमें भगवान्ने स्वयं कहा है कि 'हे सीता! मैं मुनियोंके समीप जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे जीते-जी कभी भंग नहीं कर सकता, क्योंकि सदासे सत्य ही मेरा इष्ट है। मैं तुम्हारा, लक्ष्मणका और प्राणोंका भी परित्याग

कर सकता हूँ किन्तु अपनी सत्य प्रतिज्ञाका परित्याग नहीं कर सकता। (वा०रा०२।१११।१७-१८)

क्षमा और तेज

जब राजा विश्वामित्रने अन्यायपूर्वक महर्षि वशिष्ठसे युद्ध करना चाहा तब वशिष्ठजीने युद्धको ब्राह्मण-धर्मके विरुद्ध समझ अपने सामने एक ब्रह्मदण्ड गाड़ दिया, जिससे टकरा-टकराकर विश्वामित्रजीके ब्रह्मास्त्र पर्यन्त सभी शस्त्र व्यर्थ हो गये। इसपर उन्होंने क्षात्रबलको धिक्कारते हुए और ब्रह्मतेजके बलको सराहते हुए कहा था--

> धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
> एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥

यह ब्रह्मदण्ड यथार्थमें क्षमाका ही नाम है, जो इस क्षमाके दण्डको धारण करता है उसपर परिणाममें शत्रुके समस्त आघात व्यर्थ होते हैं। जिस समय ब्राह्मणकुलोत्पन्न श्रीपरशुरामजीने अन्यायके वशवर्ती हो धनुष-भंगके लिये भगवान्‌के प्रति व्यर्थ क्रोध प्रकट किया था और जब भगवान्‌ने उसके उत्तरमें बड़ी नम्रताके साथ क्षमाका बर्ताव किया था उस समय वह उग्र ब्रह्मतेज विनम्र क्षात्रतेजसे निरस्त हो गया और उसने अन्याय और क्रोधके कारण परशुरामजीका परित्याग कर दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि सत्य, न्याय और क्षमा ही यथार्थ बल हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कोई भी क्यों न हो जिसके अन्दर ये गुण हैं वही यथार्थ बलवान् है। दण्डकारण्यके ऋषियोंने भगवान्‌से कहा था कि हमलोगोंमें शापके द्वारा हत्यारे राक्षसोंके विनाश करनेकी शक्ति है पर हमलोग उनके द्वारा भक्षण किये जानेपर भी उनका नाश इसीलिये नहीं करते कि क्रोध करनेसे हमारे तपकी हानि होगी जो हम किसी प्रकार नहीं चाहते---

> बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव।
> तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः॥

ब्रह्मचर्य

स्त्रियोंमें सर्वप्रथम अहल्याने ही गौतम-वेषधारी इन्द्रके साथ जान-बूझकर व्यभिचार किया, जिससे इसप्रकारके दुष्कर्मके प्रचार-भयसे ही महर्षि गौतमने शाप देते हुए कहा---

> अयन्तु मार्गो दुर्बुद्धे! यस्त्वयेह प्रवर्तितः।
> मानुषेष्वपि लोकेषु गमिष्यति न संशयः॥

'हे दुर्बुद्धे! तुमने इस लोकमें जो यह गर्हितभाव प्रवर्तित किया, तुम्हारे इस दोषके कारण मनुष्यलोकमें इस दुर्भावका विस्तार हो जायगा इसमें कुछ संशय नहीं।' इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक व्यक्तिके गुण-दोषका प्रभाव समाजपर पड़ता है। एकके दुष्कर्मको देखकर अनेक लोग दुष्कर्म करने लगते हैं और सुकर्मको देखकर सुकर्ममें प्रवृत्त होते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आदर्श गृहस्थ ब्रह्मचारी और एकपत्नीव्रतमें रहते थे, इन्हींकी भाँति सीताजी भी आदर्श पतिव्रता थीं, इन दोनोंके समान कोई न हुआ न होगा। इसी कारण श्रीभगवान्‌के द्वारा अहल्याका शाप-मोचन हुआ।

अनुकम्पा

श्रीभगवान्‌का सम्पूर्ण जीवन दयामय और परहित-सम्पादनसे पूर्ण है। आपने अपने ऊपर अनेक कष्ट सहकर दूसरोंका हित किया। ऋषियोंकी यज्ञ-रक्षा, श्रीसीताजीके लिये गुरुकी आज्ञासे धनुष-भंग, सत्यकी रक्षाके लिये वन-गमन और लक्ष्मण-त्याग, धर्मकी रक्षाके निमित्त राक्षस-वध, पातिव्रत-धर्मकी रक्षाके लिये सीता-त्याग, वार्द्धक्यमें मुनि-व्रत ग्रहण और अन्तमें समस्त नगरवासियोंको साथ लेकर परमधाममें प्रयाण आदि सभी कार्य त्यागमूलक परोपकार हैं। श्रीभरतजीने यथार्थ ही कहा था---

> वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पकः।
> मत्तः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥
> (वा० रा० २।१।३७)

मेरे राम सब लोगोंकी हित-कामना करनेवाले हैं। मेघकी भाँति चारों ओर दयाकी वृष्टि करके वे मेरी अपेक्षा भी लोगोंके अधिक प्रियतम बन गये हैं।

इष्टदेवोंकी एकता

श्रीभगवान्‌ने स्वयं साक्षात् विष्णु होकर भी समुद्रके सेतुपर श्रीशिवजीकी स्थापना कर यह सिद्ध कर दिया कि सभी इष्टदेव यथार्थमें एक ही हैं, भिन्न नहीं। अतएव किसी भी इष्टदेवकी निन्दा, अनादर एवं अवज्ञा करना पाप है। श्रीभरतजीने अपनेको श्रीरामके वनवास भेजनेमें कारण होनेके दोषसे मुक्त सिद्ध करनेके लिये श्रीकौसल्याजीके सामने शपथ की थी---

> भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः।
> तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः॥
> (वा० रा० २।७५।५७)

अपने इष्टदेवकी भक्तिके कारण जो अन्य इष्टदेवके अनुयायीके साथ विवाद करते हैं और उनको निकृष्ट बतलाते हैं ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है वही पाप मुझको हो, यदि मैं आर्य श्रीरामके वनवासका कारण होऊँ।

राम-राज्य

वाल्मीकि रामायणके बालकाण्ड और रामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें राम-राज्यके सुयशका विस्तृत वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि सब लोग परम सुखी थे। रोग, शोक, आतङ्क, अकालमृत्यु, विपत्ति आदि बाधाएँ किसीको नहीं होती थीं। सब अपने अपने धर्ममें रत थे, 'यथा राजा तथा प्रजा।'

यही इस राम-राज्यकी उत्कृष्टताका कारण था। सिद्धान्त यह है कि अधिपति अथवा नायकके आचरण और भावोंका उत्तम अथवा दुष्ट प्रभाव आश्रितोंपर अवश्य पड़ता है। अतएव देशके स्वामी, ग्रामके अधिपति, घरके मालिक, भृत्योंके प्रभु, समाजके नेता, धर्मके आचार्य, बालकोंके शिक्षक, ग्रामके पुरोहित और न्यायालयके शासक आदिके उत्तम आचरण और व्यवहारसे उनके आश्रित और सम्बन्धी उत्तम तथा निकृष्ट आचरण और व्यवहारसे निकृष्ट होंगे। समाजके हानि-लाभके लिये इनपर बहुत बड़ा दायित्व है। भगवान् श्रीरामचन्द्र इस दायित्व सम्पादनके परम आदर्श हैं। अतएव हम सबको श्रीराम-राज्यका आदर्श अपने सामने रखना चाहिये।*

सबसे बड़ा राम-नाम

(लेखक—श्रीयुत के० वीर अत्रा)

दृश्य पदार्थोंमें भूमण्डल सबसे बड़ी वस्तु है, परन्तु हिन्दूधर्मशास्त्रके अनुसार शेषनाग इससे भी बड़े हैं क्योंकि उन्होंने इसको अपने फनोंपर उठा रक्खा है।

शेषनागजीसे बड़े शंकर हैं क्योंकि वह शेषजीको अपने हाथ या गलेमें कङ्कण या हाररूपसे धारण किये रहते हैं।

शंकरजीसे भी बड़ा कैलास पहाड़ है क्योंकि शिवजी उसपर निवास करते हैं।

कैलाससे बड़ा रावण है, क्योंकि उसने दिग्विजयके समय महान् कैलासको अपने बाहुबलसे लुढ़का दिया था।

रावणसे बड़े बालि हैं क्योंकि उसके पुत्र अंगदने शिशु अवस्थामें ही रावणको खिलौनेकी भाँति पलनेमें बाँध रक्खा था, और स्वयं बाली उसे पूँछमें लटकाये घूमा करते थे। दूसरी कथामें यह भी कहा है कि रावणको बालिने महीनों अपनी काँखमें रक्खा था।

बालिसे अधिक प्रतापी रामका वह बाण है, जिसने बालिका संहार किया।

बाणसे बड़े महाराजा राम हैं, जो उस बाणको धारण करते हैं।

रामसे भी अधिक शक्तिमान् प्रतापी और महान् श्रीराम-नाम है क्योंकि उसके वशमें राम हैं जो भक्त नियम और निष्ठापूर्वक श्रीराम-नामका जप करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम सदा सेवककी भाँति निवास करते हैं।

इसीसे श्रीराम-नामका महत्त्व समझ लीजिये।

रामायण

चार घाट भव-ताप-हरण , निर्मल-जल सर है ?
लिये अमृत-भण्डार , कहो क्या अजर अमर है ?
भरा बिन्दुमें सिन्धु , भक्ति क्या हरिको प्यारी ?
विविध ज्ञानका स्रोत , कृष्णकी गीता प्यारी ?
जग-जीव-मात्र-कल्याण-रत , पत्र सुरुचि 'कल्याण' कृत ?
नहिं भक्ति-अमर-गीता प्रभृति , रामायण तुलसी-रचित ॥

रामपलटसिंह 'मधुर' एम० ए०, एम०आर० ए० एस०

* पण्डित श्रीभवानीशंकरजीकी आज्ञा और उपदेशानुसार लिखित।

राजनीतिज्ञ वाल्मीकि

(लेखक—'महाराष्ट्रीय' *)

हर्षि वाल्मीकि आदिकविके नामसे प्रसिद्ध हैं, राजनीतिज्ञके नामसे नहीं। इसलिये 'राजनीतिज्ञ वाल्मीकि' शीर्षक देखकर पाठक चकित हो जायँगे और समझेंगे कि वाल्मीकिके नामपर हम कोई कल्पित बात लिख रहे हैं। वस्तुतः उनके नामपर बिकनेवाली व्याधसे ऋषि होनेकी कथा निराधार होनेपर भी लोगोंकी उसपर श्रद्धा है और उनकी क्रियात्मिका राजनीति साधार होनेपर भी लोगोंमें उसकी कोई कल्पना भी नहीं है—यह बड़े आश्चर्यकी बात है! पर इसका दोष लोगोंपर ही क्यों लगाया जाय? उनकी राजनीतिक क्रियाधारा इतनी गुप्त रीतिसे चली है कि यह कार्य उन्होंने किया था इसके वे सूत्रधार थे, इसकी कल्पना उनके समयमें भी किसीको नहीं हुई थी, तब पीछेसे कोई इस भेदको कैसे जानता? रामायणमें इस राजनीतिका उल्लेख स्पष्ट शब्दोंमें कहीं नहीं मिलता, अतः सरसरी तौरपर पढ़नेवाले पाठकोंके ध्यानमें यह बात नहीं आती। किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करनेपर इसका अनुभव हो जाता है। महर्षिने यह कार्य कितनी सतर्कतासे किया, इस बातकी यथार्थ कल्पना होनेपर उनके काव्य-रचना-कौशलकी अपेक्षा उनकी राजनीति-कुशलतापर विशेष आदर उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

महर्षि वाल्मीकि रामायणकी रचना करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए, इसका संक्षिप्त वृत्तान्त रामायणके प्रारम्भमें दिया गया है। वस्तुतः राजनीतिक दृष्टिसे ही उन्होंने इस काव्यकी रचना की—यह बात, उन्होंने जिस समय इस काव्यकी रचना की थी उस समयपर दृष्टिपात करनेसे, समझमें आ जाती है। यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि श्रीरामने जब लोकापवादके कारण अपनी पत्नी सती सीताका त्याग कर दिया, तब वह महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें रहने लगी, तथा वहीं उसने दो पुत्र प्रसव किये, रामायणकी रचना करनेपर महर्षिने उसे उन दोनों पुत्रोंको पढ़ाया। लवणासुरके वधके लिये मधुपुरकी ओर जाते समय शत्रुघ्न मार्गमें महर्षिके आश्रममें जिस दिन ठहरे, उसी दिन रातको सीताके दो पुत्र हुए (७।६६।१)। इसके ठीक बारह वर्ष बाद जब वहाँसे लौटते समय शत्रुघ्न पुनः आश्रममें ठहरे तब उन्होंने लव-कुशके द्वारा रामायणका गान श्रवण किया (७।७१।१-१६)। इससे पता लगता है कि रामायणकी रचना महर्षिने इसीके बीचके समयमें की थी। सीताको रामने त्याग दिया, वह वाल्मीकिके आश्रममें आकर रहने लगी और वाल्मीकिने उसे अपने आश्रममें आश्रय दिया, तभीसे वाल्मीकिके राजनीतिक कार्यका प्रारम्भ हुआ। क्योंकि सीताके सर्वथा निर्दोष होनेका लोगोंको विश्वास दिलाकर उसके दिव्यत्व सिद्धिका संयोग लगानेके लिये उन्होंने जो सफल कार्यवाही की, उससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने मनमें इस कार्यका भार अपने ऊपर समझ लिया था। सीता एक राजपत्नी थी है इस बातके जाननेपर भी महर्षिका उसे आश्रय देना निःसन्देह बड़े ही धैर्य और साहसका कार्य है, परन्तु उनका अगला कार्य इससे कहीं अधिक महत्त्वका है। महर्षिको यदि इस महान् कार्यकी जिम्मेवारीका भान न होता तो रामायण-रचनाका योग आता या नहीं, इसमें सन्देह है। सीताके आचरणके सम्बन्धमें लोगोंमें जो भ्रम फैल चुका है उसे किसी भी तरह दूर करना होगा—इस समय महर्षिके सामने यही एक विकट समस्या उपस्थित थी। यह भ्रम कितना प्रबल था इसकी कल्पना महर्षिके उन उद्गारोंसे की जा सकती है जो उनके मुखसे, सीताको आश्रमवासिनी ऋषिपत्नियोंके हाथ सौंपते समय निकले थे। महर्षि कहते हैं—

> स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती।
> अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा॥
> इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण हि।
> गौरवान्मम वाक्याच्च पूज्या वोऽस्तु विशेषतः॥
>
> (वा० रा० ७।४९।१८-१९)

* आपने मराठीमें 'रामायण समालोचना' नामक बहुत ही उपयोगी और तथ्यपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। आचार्य पं० महावीर-प्रसादजी द्विवेदीने इस ग्रन्थकी बहुत प्रशंसा की है।—सम्पादक

रामायण-शिक्षा ।

पावन आश्रम बीच विराजे वाल्मीकि मुनि ज्ञान निधान ।
सिखलाते हैं लव-कुशको सुर-ताल सहित रामायण-गान ॥

Lakshmibilas Press Ltd., Cal

यहाँपर महर्षिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहकर 'मेरे शब्दोंको मानकर' अर्थात् मैं कहता हूँ इसलिये इससे स्नेहभाव रक्खो—ऐसा कहा है। सीताके विषयमें वहाँ यदि किसीको कुछ शंका थी तो महर्षिने उसको अपनी जिम्मेवारी-पर विश्वास दिलाया। आश्रमवासी स्त्री-पुरुषोंका महर्षिके वचनोंपर विश्वास होना स्वाभाविक ही है, इसीलिये उन्होंने मान लिया। परन्तु अयोध्या या राम-राज्यकी समस्त प्रजाके विश्वास सम्पादन करनेका क्या उपाय था? सीताके सम्बन्धमें शंका उपस्थित करना अन्याय था, अपराध था और ऐसा करनेवालेको श्रीराम दण्ड दे सकते थे परन्तु उन्होंने दूरदर्शितासे अपने अधिकारका उपयोग नहीं किया। महर्षिके हाथमें तो यह अधिकार होना सम्भव नहीं था। सुतरां सीताकी सच्चरित्रताका लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये उनके चरित्र-प्रसार करनेका विचार ही महर्षिके मनमें आया। महर्षिका उद्देश्य सीताकी सच्चरित्रता बतलाना था परन्तु सीताका चरित्र रामपर अवलम्बित था और रामने सीताका त्याग कर दिया था। महर्षिके मनमें रामके प्रति अत्यन्त आदर था। अतः उन्हें कुछ कालतक रामचरित्रका ही ध्यान लगा रहा। वेदोंकी छन्दोरचना उनकी दृष्टिमें थी अतएव उन्होंने वैसी ही रचना करके श्रीरामचरित्र-वर्णनका विचार किया। महर्षिकी ये बातें रामायणमें या अन्य किसी ग्रन्थमें स्पष्ट-रूपसे नहीं लिखी हैं परन्तु ये इतनी सहज हैं कि कोई भी अनुमानसे इनकी सत्यताको मान लेगा। इसप्रकार जब महर्षि रामचरित्र-वर्णनके विचारमें रत थे, तब एक दिन नारदमुनि उनके आश्रममें आ पहुँचे। महर्षिने उनसे पूछा—

> कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्?
>
> (वा० रा० १।१।२)

महर्षि-वर्णित गुणोंका संग्रह तो बहुत बड़ा है. इस समय हमें उससे कोई प्रयोजन नहीं है। महर्षिके पूछनेका तात्पर्य यह है कि अमुक-अमुक गुणोंसे युक्त पुरुष इस समय पृथ्वी-पर कौन है? प्रश्न अस्पष्ट है। उन्होंने इस प्रश्नमें न तो कहीं रामका नाम लिया है और न उनका कुछ अस्पष्टरूपसे ही उल्लेख किया है। इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने संक्षेपमें रामचरित्र सुनाया। नारदके चले जानेपर महर्षि स्नान करनेके लिये तमसा-तीरपर गये। उसी समय क्रौञ्च-वधकी घटना हुई और महर्षिके मुखसे शापके निमित्त श्लोकमयी वाणी निकली। कहना नहीं होगा कि रामचरित्रमें मन लगा रहनेके कारण ही महर्षिने नारदजीसे उपर्युक्त प्रश्न किया था। महर्षिके मनमें रामचरित्रके छन्दोबद्ध करनेकी कल्पना थी, हमने यह अनुमान क्रौञ्च-वधके लिये व्याधको दिये गये छन्दोबद्ध शापसे किया है। सीताकी दयनीय दशा देखकर महर्षिका अन्तःकरण जैसे द्रवित हो रहा था, उनकी वैसी ही दशा क्रौञ्च-वधपर शोक करती हुई क्रौञ्चीको देखकर हुई। हमने उपर्युक्त श्लोकसे ही उनके मनमें छन्दरचनाके लिये संकल्प होना अनुमान किया है। यद्यपि रामायणमें यही कहा गया है कि यह श्लोक उनके मुखसे सहज ही निकल गया था और ऐसा होना वस्तु-स्थितिके अनुसार सम्भव ही है। परन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि छन्द-रचनाकी ओर उनकी जो प्रवृत्ति बढ़ रही थी, यह उसीका परिणाम था, यह बात भी उतनी ही सम्भव है।

इसके बाद महर्षिने बालकाण्डके पाँचवें सर्गसे युद्ध-काण्डतक रामायणकी रचनाकर वह काव्य लव-कुशको पढ़ाया। बालकाण्डके प्रस्तावनारूपमें प्रारम्भके जो चार सर्ग हैं वे महर्षिने ग्रन्थ-पूर्तिके समय लिखे थे, यह स्पष्ट है। बीचमें बहुत-से स्थानोंपर पीछेसे मिलाया हुआ प्रक्षिप्त भाग है, उसका विवेचन हम 'रामायण-समालोचना' नामक मराठी ग्रन्थके एक स्वतन्त्र प्रकरणमें कर चुके हैं। कहनेका मतलब यह कि जो मूल काव्य था वही महर्षिने लव-कुशको पढ़ाया। इसके बाद यह प्रश्न सामने आया कि इस काव्यका प्रचार कैसे हो? लवणासुरको मारनेके बाद जब बारह वर्षके उपरान्त, शत्रुघ्नजी लौटकर अयोध्या आते समय पुनः महर्षिके आश्रममें ठहरे, तब उन्होंने लव-कुशके द्वारा अपने सैनिकों सहित रामायणका गान सुना, जिससे उन सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। दूसरे शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि इसप्रकार यहाँ महर्षिके काव्यकी प्रथमावृत्ति एक ही साथ बिक गयी और उन्हें दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिये अधिक उत्साह मिला।

सीताके निष्पाप आचरणकी कथा लोगोंमें उसके चरित्र-प्रचार द्वारा विस्तृत करनेके उद्देश्यसे ही महर्षिने रामायणकी रचना की थी, हमारे इस अनुमानकी सत्यता रामायणकी रचनापर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेवालोंके ध्यानमें तुरन्त आ जायगी। रामचरित्रपर विशेष प्रकाश डालनेवाला भाग है अयोध्याकाण्ड। रामके पराक्रमका वर्णन युद्धकाण्डमें है। सीताके यथार्थ चरित्रका सीता-हरणसे ही प्रारम्भ होता है और यह कथा अरण्यकाण्डमें है। यह कथा महर्षिने पूरे

विस्तारके साथ कथन की है। इस कथाका विस्तार सुन्दर-काण्डमें सीता-हनुमान्-भेंट और सीता रावणके सम्भाषण दोनों ही अवसरोंपर अत्यन्त स्पष्ट दीख पड़ता है। सीताके उच्च चरित्रको व्यक्त करनेवाली प्रत्येक बातका महर्षिने उल्लेख किया है, यहाँतक कि सीताने रावणसे बातचीत करते समय तिनकेकी ओट कर ली थी 'तृणमन्तरतः कृत्वा' (३।५६।१ तथा ५।२१।२), सामान्य समझ करके महर्षि इसप्रकारकी घटना तकका वर्णन करना भी नहीं भूले। यह सत्य है कि रामायणमें श्रीराम और सीता ही प्रधान पात्र थे अतः उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन करना उनके लिये आवश्यक था, तथापि श्रीराम-चरित्रका चित्रण करनेमें महर्षिने अपनी कृतिमें उनके समस्त गुणोंपर जैसा प्रकाश डाला है वैसा सीताके चरित्र-चित्रणमें नहीं किया। सीताके चरित्र-कथनमें तो केवल उन्हीं बातोंपर अधिक प्रकाश डाला है जिनसे सीताके लोकापवादके मिथ्या होनेमें लोगोंका विश्वास हो जाय। नायक-नायिकाके चरित्र-निरूपणमें इस विवेककी ओर दृष्टि डालनेपर पाठक इस बातको समझे बिना नहीं रहेंगे कि रामायणकी रचनाके सम्बन्धमें हमने महर्षिके जिस हार्दिक उद्देश्यका अनुमान किया था, वह युक्तियुक्त और ठीक है।

सीताके मिथ्या कलङ्कको मिटानेके लिये महर्षिको प्रधानतः उसके दोनों पुत्रोंसे सहायता लेनी थी और वह ली भी गयी। सहायता पानेकी योजना महर्षिने अपने मनमें किस प्रकार की, इसबातके जाननेका कोई उपाय नहीं है। किन्तु लव-कुशके कुछ समझने लगने ही यह योजना की गयी थी, इसमें सन्देह नहीं। कदाचित् यह कल्पना महर्षिके मनमें पीछेसे आयी हो तथापि उस समय लव-कुशको अपने अधिकारोंका, और रामसे उनका पिता-पुत्रका सम्बन्ध है इस बातका पता न लगने देनेके लिये महर्षिने बड़ी सतर्कतासे काम लिया, वही आगे चलकर उनके लिये बड़ी उपयोगी हुई, यह स्पष्ट है। दोनों राजकुमारोंके साथ वनवासी शिष्योंके सदृश व्यवहार करके महर्षिने जो चतुरता दिखलायी, उसीमें उनकी राजनीतिज्ञता भरी है।

यह तो स्पष्ट ही है कि देवी सीताकी धीरता असीम है। महर्षिको अपनी नवीन योजनाके सफल करनेमें सीताकी सहायता पूर्णरूपसे प्राप्त है। इस बातको सिद्ध करनेके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। रामायण-रचनाके अनन्तर महर्षि उसके प्रचारका मौका ढूँढ़ रहे थे। श्रीरामके अश्वमेधकी योजनासे महर्षिकी बहुत दिनोंकी मनोकामना सफल होनेका अवसर अनायास ही आ गया। यज्ञ-समारम्भके लिये विविध देशोंके नर-पतियों और ऋषियोंको निमन्त्रण भेजा गया। तदनुसार महर्षिको भी निमन्त्रण मिला और वे अपने शिष्योंको साथ ले अयोध्या पहुँचे। अयोध्याके बाहर ही कहीं डेरा डालकर महर्षिने लव-कुशको कार्यसिद्धिके लिये अयोध्यामें जाकर घर-घर रामायण गान सुनाते हुए फिरनेकी आज्ञा दी। आज्ञा देते हुए महर्षि कहते हैं--

> ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च।
> रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च॥
> रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते।
> ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः॥
>
> (वा० रा० ७।९३।६-७)

'हे पुत्रो! ऋषियोंके पवित्र स्थानोंमें, ब्राह्मणोंकी बस्तीमें गलियोंमें, सड़कोंपर, राजमहलोंमें, यज्ञवेदिकाओंके द्वारपर और ऋत्विजोंके समीप विशेषरूपसे इस रामायणका गान करो!'

रामायण-रचनामें महर्षिका उद्देश्य केवल राजाको प्रसन्न करना होता तो वे लव-कुशको सीधे यज्ञ-मण्डपमें जाकर श्रीरामके सामने रामायण-गान करनेकी आज्ञा देते। यज्ञमें आह्निक-हवनके उपरान्त, भोजनोत्तर तथा हवनसे पूर्व पुराण-गाथा सुननेकी विधि है। इसीके अनुसार उस समय यदि लव-कुशको भेजनेकी योजना महर्षिने की होती तो सहजहीमें कार्य हो जाता। रामको सन्तुष्ट करके पर्याप्त धन लाभ करनेका यह निष्कपट और सरल मार्ग था परन्तु महर्षि धनके भूखे नहीं थे, उन्हें तो इस बातकी चिन्ता लग रही थी कि कैसे सीताका मिथ्यापवाद नष्ट हो तथा सर्वसाधारणके हृदयमें उसके प्रति आदरके भाव उत्पन्न हो जायँ और उसके पुत्रोंको राज्यकी प्राप्ति हो। इसीलिये उन्होंने लव-कुशको रामायण गानेके लिये नगरमें भेजते समय जिन स्थानोंका दिग्दर्शन कराया, उनमें गली, सड़क, ऋषियोंके आश्रम, ब्राह्मण और राजाओंके निवासस्थान आदिका ही निर्देश है। सारांश यह कि महर्षिने यह योजना रामायणके प्रचारकी ही दृष्टिसे की थी। कल्पना-प्रसारके लिये ऐसी व्यवस्था विशेष सुविधाजनक हुआ भी करती है, इससे इच्छित फलकी प्राप्ति शीघ्र होती है। इसप्रकारके अनुभवोंका इतिहासोंमें प्रचुर उल्लेख है और आजकल भी

यही अनुभव है। शिवाजी महाराजके समय समर्थ रामदास-स्वामीने महाराष्ट्रमें जो जागृति उत्पन्न की थी, उसका अधिक श्रेय स्वामीजीके उस शिष्य-सम्प्रदायको है जो 'मनका श्लोक' गाते हुए भावोंका प्रचार करते थे। इतिहासज्ञ इस बातको जानते हैं। इन्होंने अथवा इनके पहले और पीछेके महाराष्ट्रीय वारकरी-सम्प्रदायने इसप्रकार घूम-घूमकर भजन गाते हुए लोगोंमें धर्मजागृतिका कार्य बड़ी उत्तमतासे किया। इस समय भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गोरक्षा-प्रचारक गण बाजारोंमें घूम घूमकर भजन गाते हुए जागृतिका कार्य करते हैं। महर्षिकी योजना भी इसी प्रकारकी थी। उस समय ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने श्रीरामका चरित्र आँखों देखा था और रामके प्रति उन लोगोंके मनोंमें प्रेम तथा आदरका भाव भी पूर्णरूपसे था। अयोध्याकाण्डका गान सुनते ही इस प्रेम और आदरका दूना बढ़ जाना कौन बड़ी बात है?

अयोध्याकाण्डका वह कथाभाग क्रमके हिसाबसे प्रारम्भमें आया है और लव-कुशके मुखसे श्रोताओंको सबसे पहले वही सुननेको मिलता था। आँखों देखी बात वैसी की वैसी सुननेके कारण लोगोंके हृदयोंमें यह विश्वास जमना स्वाभाविक है कि काव्यकी कथामें कहीं भी सत्यका अपलाप नहीं किया गया है। यह विश्वास आगेके कथाभागपर सत्यता और विश्वसनीयताकी छाप लगानेमें विशेष उपयोगी होता है, इसका अनुभव उस समय हो चुका है जब कि मधुपुरीसे लौटते समय शत्रुघ्न मार्गमें महर्षिके आश्रममें ठहरे थे। शत्रुघ्नने अपने साथी सैनिकों सहित लव-कुशके मुखसे रामायणका गान सुना, शत्रुघ्न केवल एक ही रात वहाँ ठहरे, इतने थोड़े समयमें लव-कुशने उन्हें कुछ ही सर्ग सुनाये होंगे। परन्तु गान सुनते ही शत्रुघ्नके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और शरीरकी सुधि जाती रही। (वा० ७। ७१। १७) इससे सहज ही पता लगता है कि लव-कुशके द्वारा गाया जानेवाला कथाभाग अयोध्याकाण्डका ही था। इस गानके सुननेपर सैनिकोंकी जो दशा हुई थी, उसका वर्णन पढ़नेसे अयोध्याकाण्ड-सम्बन्धी हमारा अनुमान और भी दृढ़तर हो जाता है। यह वर्णन इसप्रकार है—

> पदानुगाश्च ये राज्ञस्तां श्रुत्वा गीतिसम्पदम्॥
> अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च ह्याश्चर्यमिति चाब्रुवन्।
> परस्परं च ये तत्र सैनिकाः संबभाषिरे॥
> किमिदं क्व च वर्तामः किमेतत्स्वप्नदर्शनम्।
> अर्थो यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदे पुनः॥
> शृणुमः किमिदं स्वप्नो गीतबन्धमनुत्तमम्।
> (वा० रा० ७।७१।१८–२१)

'शत्रुघ्नके साथी लोग गान सुनते ही सिर झुकाकर दीनसे बन गये और 'आश्चर्य'आश्चर्य' पुकारते हुए परस्पर कहने लगे कि 'अरे यह क्या है? हमलोग कहाँ हैं, स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं? जो बात हमने पहले आँखों देखी थी वही सुन रहे हैं। क्या यह स्वप्नमें तो नहीं सुन रहे हैं।' रामायणगान सुननेपर उस समय साधारण जनताकी कैसी दशा होती थी, इसकी कल्पना करानेके लिये यहाँ पूरे श्लोक उद्धृत किये गये हैं। अन्तिम श्लोकमें सैनिकोंका यह उद्गार कि 'हमने जो बातें अपनी आँखों देखी थी ठीक वही आज सुननेको मिल रही हैं' बड़े ही महत्त्वका है। रामायणी-कथाका वह भाग जिसमें रामवन-गमनसे लेकर अयोध्या लौट आनेतकका वर्णन है अर्थात् आरण्यकाण्डसे युद्धकाण्ड-तकका वर्णन, अयोध्याके नागरिकोंमें किसीकी आँखों देखी घटना प्रायः नहीं है। उनका देखा हुआ कथाभाग तो बाल और अयोध्याकाण्डमें ही है। इससे भी यह स्पष्ट है कि लव-कुशने जो गान किया था उसका अयोध्याकाण्ड होना ही अधिक सम्भव है।

इसी प्रकार अयोध्यामें भी लव-कुशने अयोध्याकाण्डका गान किया होगा और उसे सुनकर लोगोंकी ऐसी ही दशा हुई होगी। राम-वन-वासके बादकी कथाएँ लोगोंको बीच-बीचमें इधर-उधरसे सुनायी पड़ती थीं। अयोध्याकाण्डकी कथा लोगोंकी जानी हुई थी। जब लोगोंने उसे ठीक सिलसिलेवार सुना तब उनका, आगेकी कथाके लिये भी इसी प्रकार ऐसा अनुमान होना कि वह भी ऐसी ही सत्य और सुन्दर होगी, और उसके जाननेके लिये जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक था। अतएव किसीने कथा सुननेके लिये, किसीने सत्यान्वेषणके लिये और किसीने सीताका अपवाद सिद्ध करनेके लिये ही अगला कथाभाग गानेके निमित्त लव-कुशको बहुत ही तंग किया होगा। किसीने कहा होगा कि 'जब रावण सीताके पास आया तब वह क्या करती थी?' 'वह उसे कैसे ले गया? हमें वह कथा सुनाओ।' दूसरेने कहा होगा—'रावणने सीताको कहाँ रक्खा था?' 'उसमें और सीतामें क्या बातें हुईं? यह सुनाओ।' मतलब यह कि, उस समय ऐसे कितने प्रश्न पूछे गये होंगे और गानके लिये

कितना आग्रह किया गया होगा, इसकी कल्पना सभी कर सकते हैं। इसप्रकार गान करते हुए बालक लव-कुशको यदि भूख लग जाय तो उसके निवारणके लिये महर्षिने उन्हें पहलेसे ही फल दे रक्खे थे तथा सर्वथा निस्पृह-भावसे प्रचार करनेके लिये आज्ञा दी थी। प्रचारके लिये भेजते समय महर्षिने स्पष्ट ही कहा था--

> लोभश्चापि न कर्त्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।
> किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा॥
> (वा०रा० ७।९३।११)

पुत्रो ! धनके लिये तनिक-सा भी लालच नहीं करना क्योंकि हम फल-मूलपर रहनेवाले आश्रमवासियोंको धन लेकर क्या करना है ?

गान सुनकर कोई धन देने लगे तो नहीं लेना, यहाँ महर्षिने यही कहा। निष्काम-प्रचारकी दृष्टिसे यही उचित था, पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निष्कामताकी *आवश्यकता महर्षिने कार्य-सिद्ध्यर्थ नहीं बतलायी है।* हमलोग फल-मूलादि खाकर रहनेवाले आश्रमवासी हैं, अपनेको धनसे क्या करना है। उन्होंने अपनी निरपेक्षताका हेतु यही बताया है।

इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि महर्षिने इस समय-तक उनसे इसी भावनासे बर्ताव किया होगा। इसपर भी यदि महर्षिके सम्बन्धमें हमने जो अनुमान किये हैं, उनसे कोई सहमत न हों तो वह आगेके श्लोक देखें। इसप्रकार रामायण-गानका प्रचार होते रहनेसे लव-कुशकी कीर्ति श्रीराम-तक पहुँच जायगी और फिर दरबारमें रामायण-गानका सुअवसर आवेगा, महर्षिका ऐसा अनुमान था और यही वह चाहते थे। राजाके द्वारा दी हुई कोई भी वस्तु न लेनेके सम्बन्धमें उन्हें फिरसे समझानेकी कोई आवश्यकता न थी परन्तु इस निस्पृहताके कारण लव-कुश कहीं विनयहीन होकर रामकी अवज्ञा न कर बैठें। इसी शंकासे महर्षिने उन्हें सतर्क करते हुए कहा—

> आदिप्रभृति नैवं स्यात्तस्यावज्ञाय पार्थिवम्।
> पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः॥
> (वा० रा० ७।९३।१५)

इसमें राजासे नम्रताका बर्ताव करनेका उपदेश देते हुए उसका जो कारण महर्षि बतलाते हैं वह कितनी चतुरताका है। महर्षि कहते हैं-'महाराजका तनिक भी अपमान न करना क्योंकि राजा सब प्राणियोंका धर्मतः पिता है।'

श्रीराम लव-कुशके साक्षात् पिता हैं परन्तु महर्षि सीधी बात न कहकर उन्हें समझाते हैं कि राजा सब प्राणियोंके पिता हैं अतः वह तुम्हारे भी पिता हैं। इस प्रकारान्तरसे रामका पितृत्व समझानेमें मुनिने जिस युक्तिसे काम लिया, उसपर विचारकर हम कह सकते हैं कि इस विषयमें महर्षि कितने सावधान थे और लव-कुशको असली बातका पता न लगने देकर उन्हें किस प्रकारसे पाला था।

महर्षिकी योजनानुसार सभी संयोग एकत्र हो गये। यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामके सम्मुख लव-कुशका गान हुआ। नाना देशोंके नरपति, ऋषि तथा जनताने उसको सुना। इसप्रकार महर्षिने बड़ी चतुराईसे सीता-अपवादको समूल नष्ट कर दिया ! दोनों कुमारोंको आश्रममें पिताका पता नहीं लगने दिया और वहाँ उनकी सारी व्यवस्था साधारण विद्यार्थियोंकी भाँति की गयी। इसका कारण यह है महर्षिको इस बातकी शङ्का थी कि इन तेजस्वी कुमारोंको इस बातका पता लग जाने पर कि निर्दोषा माताको पिताने त्याग दिया है, क्रोध आना सम्भव है। यह कौन कह सकता है कि यह शंका निराधार थी ?

वाल्मीकिकी योजनाके अनुसार सभी बातें हुईं, परन्तु सीतादेवी पुनः शपथके समय जो एक बार रामके सामने प्रगट हुईं। बस, वह अन्तिम बारके लिये ही हुईं। इसका कोई उपाय नहीं था, महर्षिने जिस कार्यको उठाया था वह सिद्ध होकर भी सुख-पर्यवसायी नहीं हुआ तथापि उन्होंने एक चतुर कर्मी पुरुषकी भाँति राजनीतिका यह एक दाव दिखाया था। इस विषयमें तो किसीका मतभेद नहीं होना चाहिये।

रामायणसे परस्पर सहानुभूतिकी वृद्धि

रामायण केवल हिन्दुओंका ही राष्ट्रीय महाकाव्य ही नहीं है, किन्तु उसमें यह विशेष गुण भी है कि वह अपने देशवासियोंके विश्वास तथा चरित्रका चित्र अत्यन्त सत्यतापूर्वक चित्ताकर्षकरूपमें खींचती है, इसका फल यह होता है कि उसके अनुशीलनसे यूरोपनिवासियोंके बहुतसे मिथ्या विश्वास और दुर्भाव जो इस सम्बन्धमें हैं, दूर होजाते हैं और दोनों जातियोंमें परस्पर सहानुभूतिकी वृद्धि होती है। —ग्रीफ्थ

रामायण-पञ्चदशी

(सं०—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

कर्म-प्रधान—

कर्म-प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

अहिंसा—

परम धरम श्रुतिबिदित अहिंसा ।
पर-निन्दा-सम अघ न गिरिसा ॥

सत्य—

धरम न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥

अस्तेय-ब्रह्मचर्य्य—

जननी-सम जानहिं पर-नारी ।
धन पराय बिषते बिष भारी ॥

सन्तोष—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।
जथालाभ संतोष सदाई ॥

भक्त-मुख्य-लक्षण परोपकार—

रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरततें जनि डरपहु सुरपाल ॥

परहित बस जिन्हके मनमाहीं ।
तिन्हकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

जीवात्मा-स्वरूप—

ईश्वर-अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

नाम-माहात्म्य—

सोइ भव-तर कछु संसय नाहीं ।
नाम-प्रताप प्रगट कलिमाहीं ॥

सर्वार्पण और निष्काम भजन—

बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय-कमलमहँ करउँ सदा बिस्राम ॥

शरणागत भक्तकी श्रेष्ठता—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा ।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करउँ सदा तिन्हकै रखवारी ।
जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

सतत-स्मरण—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई ।
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

संसार-भगवन्मय—

सीयराममय सब जग जानी ।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर रूप-रासि भगवन्त ॥

निर्वाण-त्याग—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ॥

सन्तके लक्षण

बिषय अलंपट सीलगुनाकर । परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतिरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीननपर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रानसम मम ते प्रानी ॥
बिगतकाम मम नामपरायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मइत्री । द्विज-पद-प्रीति धरमजनयित्री ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥

ज्ञान-दीपका स्पष्टीकरण*

(लेखक—साहित्यरत्न पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

[ज्ञानदीप रूपक]

मूल

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी॥
ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकटकी नाईं॥
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तबते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
जीव हृदय तम मोह बिसेषी। ग्रन्थि छूट किमि परै न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥

टीका

१—सुनहु तात यह अकथ कहानी।
समुझत बनै न जात बखानी॥

अर्थ—हे तात, यह अकथ कहानी, जो कहने और समझते नहीं बनती, उसे सुनो।

सुनहु—**इससे शिष्य (गरुड़जी) का प्रश्न सूचित किया।**

'ग्यानिहि भगतिहि अन्तर केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता॥'

तात—**से भुशुण्डिजीने शिष्यपर प्रेम दिखलाया।**

यह अकथ—**से भक्तिके साधनका सुकथ होना दर्शाया।**

यथा—

'भगतिके साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥'

कहानी—**से 'अजातवाद' दिखलाया कि हम जो कुछ कहते हैं सो कहानी है। कहानी सत्य नहीं होती, अतः यह भी पारमार्थिक† सत्य नहीं है। सत्य तो एकमात्र निर्विशेष ब्रह्मकी स्थिति है। जिसप्रकार शशके कभी शृङ्ग नहीं हुआ, आकाशमें कुसुम नहीं हुआ, वन्ध्याको पुत्र नहीं हुआ, उसी प्रकार यह सब कुछ भी कभी हुआ ही नहीं, फिर किसका बन्ध और किसका मोक्ष? जो दिखायी पड़ता है सो भ्रम है। उस ब्रह्ममें अंश-अंशी भेद न है और न हो सकता है! माया और उसके प्रपञ्चका उसमें स्पर्श भी नहीं है। यथा—**

(१) 'अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज
अमित अविकार आनन्दसिंधो॥'
(विनय प०)

(२) राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥

(३) 'यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया।'
(विनय प०)

(४) 'जग नभ बाटिका रही है फल फूलि रे।
धुआँ कैसो धौरहर देखि तू न भूलि रे॥'
(विनय प०)

शिष्यको संसार और बन्धकी प्रतीति होती है। उसे इस प्रपञ्चके समझने और इससे मुक्ति लाभ करनेके लिये जिज्ञासा है, अतएव गुरु उसकी दृष्टिके अनुसार, उसके समझानेके लिये निष्प्रपञ्चमें पहले प्रपञ्चका अध्यारोप करते हैं और फिर प्रपञ्चका अपवाद करके यथार्थ स्वरूपका उपदेश करते हैं, अतएव यह अध्यारोप-अपवादका उपदेश भी मिथ्या है। जिज्ञासाके पूर्वके साधनचतुष्टय सब मिथ्या ही हैं। अतएव इस मिथ्या कथाको कहानी कहा। परन्तु इस कहानी सुननेवालेको सिद्धान्त-ज्ञान होता है, क्योंकि कहानीकी समाप्तिपर कहेंगे कि 'कहेउँ ज्ञान-सिद्धान्त बुझाई।' अतः साधनचतुष्टयसे ममता-मलके नष्ट होनेपर ही इस कहानीके कहनेका भी विधान है, यह कहानी यदि

---

* सम्मान्य त्रिपाठीजीने श्रीमानसके 'ज्ञानदीपक-रूपक' पर 'भावप्रकाशाख्य' नामक सुन्दर टीका विख्यात रामायणी पं० श्री भूषणजीके अनुरोधसे लिखी है, उसीका यह एक अंश है, इसमें पहली ८ चौपाइयोंकी टीका है, अगला भाग 'कल्याण' में क्रमशः प्रकाशित होगा। भूमिका और त्रिपाठीजी-लिखित परिचयात्मक दोहाष्टक पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेके समय छप सकेंगे। —सम्पादक

† सत्य दो प्रकारका होता है—(१) पारमार्थिक और (२) व्यावहारिक। पारमार्थिक मिथ्या ही व्यावहारिक सत्य है।

'ममता-रत'से कही जायगी, तो ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति व्यर्थ होगी, यथा–

'ममतारत सन ग्यान कहानी।'
'ऊसर बीज बए फल यथा।'

समुझत बनै न—समझते नहीं बनता। भाव यह कि निर्गुण ब्रह्म और गुणमयी मायाके संयोग-वियोगका इसमें वर्णन है। निर्गुण ब्रह्म ज्ञेय नहीं है, जाना वही जा सकता है जो ज्ञेय हो, स्वयं द्रष्टा कैसे जाना जाय? और द्रष्टा ही ब्रह्म है, अतएव वह नहीं जाना जा सकता, यथा–

जगपेखन तुम देखनहारे। बिधि-हरि संभु नचावनहारे॥
तेउ न जानहि मर्म तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥

माया भी नहीं जानी जा सकती। वह तो अघटन-घटनापटीयसी है, जो हो न सके उसीको कर दिखाना मायाका काम है। यथा–

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥

और संयोग-वियोग ब्रह्ममें बनता नहीं, यथा–'सपनेहु योग-वियोग न जाके' अतएव यदि समझते बने तभी आश्चर्य है।

न जात बखानी—बखानने भी नहीं बनता। भाव यह कि उसको कहनेके लिये उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते, यथा–

केसव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये॥
सून्य भीतपर चित्र रंग नहि बिनु कर लिखा चितेरे।
धोए मिटइ न मरइ भीत दुख पाइय यह तन हेरे॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम तब आपन पहिचानै॥
(विनय०१११)

परन्तु वेदान्तके वाक्योंको गुरु-मुखद्वारा सुनते-सुनते अनुभव हो सकता है, यथा–

'बिनु गुरु होइ कि ग्यान।'
'अनुभवगम्य भजहिं जेहि सन्ता।'

इस चौपाईसे 'नित्यानित्य-वस्तु विवेक' रूपी प्रथम साधन बतलाया गया।

२–ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

अर्थ—चेतन अमल सहज सुखराशि जीव ईश्वरका अंश है।

ईश्वर—ईश्वर और ब्रह्ममें अवस्थाभेदमात्र है, वस्तुभेद नहीं है। ब्रह्मकी कोई अवस्था न होनेके कारण, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी अपेक्षा उसे तुरीय (चौथा) कहते हैं, और उस अपेक्षाको भी छोड़कर उसे तुरीयातीत या केवल तुरीय कहते हैं। यथा–'तुरीयमेव केवलम्' वही ब्रह्म जब जगत्‌के प्रकाशकरूप अर्थात् मायापतिके रूपसे देखे जाते हैं, ईश्वर कहलाते हैं। यथा–

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यानगुनधामू॥

अंस—उस मायापति ईश्वरका अंश। कहनेका भाव यह कि ब्रह्म और मायाको लेकर ही सब प्रपञ्च है। पूर्ण ब्रह्मका खण्ड नहीं होता। यथा–'यद्यपि एक अखण्ड अनन्ता।' फिर भी मलिन-सत्त्वा-माया (अज्ञान) द्वारा उसके अंशकी कल्पना होती है, जिसे कूटस्थ या साक्षी कहते हैं। साक्षी कूटस्थ भी ब्रह्म ही है, यथा—'प्रकृतिपार प्रभु सब उरबासी' परन्तु जैसे महाकाश और घटाकाशमें कल्पित भेद है, वैसे ही यहाँ भी कल्पित भेद है। यथा–'मुधा भेद जद्यपि कृतमाया।' अभिप्राय यह कि तूला-विद्याका आश्रय साक्षी कूटस्थ है, और मूला-विद्याका आश्रय साक्षी ब्रह्म है। प्रत्येक व्यक्तिमें तूला-विद्या भिन्न भिन्न है, और समष्टि-भूता मूला-विद्या एक ही है। तूला-विद्याके भेदसे उसके साक्षी-कूटस्थमें भेद माना जाता है। इसीलिये गोस्वामीजीने 'राम' से ब्रह्म, ईश्वर और कूटस्थ तीनोंका ग्रहण किया है, क्योंकि एक ही तीन भाँतिसे प्रकाशित होता है।

जीव—मलिन-सत्त्वा-मायामें जब ब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो सत्त्वके मालिन्यसे अनन्त प्रतिबिम्ब हो जाते हैं, और उन प्रतिबिम्बोंकी वह मलिन-सत्त्वा-माया ही देह हो जाती हैं। वही देह कारणशरीर कहलाते हैं और उनके अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाते हैं। मलिन-सत्त्वा-माया, तूला-विद्या, अज्ञान, अहंकार, कारणशरीर और नामरूपात्मिका ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। गोस्वामीजीने जीवकी मैले पानीसे उपमा दी है। यथा–

भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

अविनासी—अर्थात् जिस भाँति ईश्वर सद्रूप अविनाशी है, उसी भाँति जीव भी अविनाशी है, सद्रूप है। यथा—'जीव नित्य (तैं केहि लगि रोवा)'

चेतन—अर्थात् जड़से सम्बन्ध होनेपर भी प्रज्ञानघन है, यथा—निज सहज अनुभवरूप (तव खल भूलि धौं आयो कहाँ)

अमल—यानी निर्मल कहनेसे यह दिखलाया कि अभीतक (मुमुक्षितक) जीव ममतारूपी मलसे रहित है। गोस्वामीजीने ममताको मल माना है, यथा—'ममतामल जरि जाय।'

सहजसुखरासी—अर्थात् कारणशरीराभिमानी होनेपर भी आनन्दभोक्ता है। इसीसे कारणशरीरको आनन्दमय कोष कहते हैं। उसकी अवस्था सुषुप्ति है, यथा—'अब सुख सोवत सोच नहि।'

३—सो मायाबस भयेउ गोसाईं। बँध्यो कीर मर्कटकी नाईं॥

अर्थ—वह प्रभु मायाके वश हो गया, और शुक (सुग्गे) तथा बन्दरकी भाँति बँध गया।

सो गोसाईं—वह प्रभु। प्रभुके अर्थमें 'गोस्वामी, शब्द रामचरितमानसमें व्यवहृत है, यथा—

स्वामि गोसाइहिं सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं स्वामि दोहाईं॥

सो गोसाईं जेहि विधिगति टेकी। इत्यादि—

प्रभु (कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्तुंनमर्थः) है पर इस दशाको प्राप्त हो गया। यथा—

'निष्काज राज विहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह परयौं'
(वि०प०)

ईश्वरने तो केवल जगत्‌को उत्पन्न किया, वह उसका भोक्ता नहीं है। भोक्ता तो जीव है, इसलिये जीवको प्रभु कहा। भोगकी कल्पना जीवकी है। उसीने आप्रलयसे लेकर मोक्षतक संसारकी कल्पना की है।

माया—सत्त्व रज और तमकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं, यही ईश्वरकी शक्ति माया कहलाती है, यथा—'सो हरि माया सब गुनखानी।' ब्रह्मसे पृथक् मायाकी सत्ता है नहीं, इसलिये उसे सत् नहीं कह सकते, परन्तु उससे पृथक् मायाका कार्य दृष्टिगोचर होता है, इसलिये उसे असत् भी नहीं कह सकते, अतएव माया अनिर्वचनीया है। ब्रह्मसे वह सर्वथा विलक्षण है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है, और माया मिथ्या, जड़ एवं दुःखरूपा है। मिथ्या, यथा—'समुझे मिथ्या सोपि जड़' यथा—'जासु सत्यतासे जड़ माया।' दुःखरूपा, यथा—'एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जिस प्रकार व्यवहारमें सत्यसे मिथ्या विलक्षण होते हुए भी, सत्यके आधारपर स्थिर रहता है, सत्यके बलसे प्रकाशित रहता है और सत्यके ज्ञानसे बाधित होता है, वैसे ही पारमार्थिक मिथ्या (माया) भी पारमार्थिक सत्य (ब्रह्म) के आश्रित, ब्रह्मसे प्रकाशित तथा, ब्रह्मसे विलक्षण है और ब्रह्मज्ञानसे ही उसका बाध होता है यथा—

झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजङ्ग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे यथा सपन भ्रम जाई॥

तीनों गुणोंका यह स्वभाव है कि वे एक दूसरेको छोड़कर भी नहीं रह सकते, और एक दूसरेको दबाया भी करते हैं। अतः गुणोंके तारतम्यसे मायाके भी अनेक भेद हैं, जिनमें दो प्रधान हैं। शुद्ध-सत्त्वा-माया,—जिसमें रज और तमका लेशमात्र है, विद्या कहलाती है, जगत्‌की रचनामें यही समर्थ है और मलिन-सत्त्वा-माया, अविद्या कहलानेवाली जीवके बन्धनका कारण है। यथा—

तेहिकर भेद सुनौ तुम दोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जेहि बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके॥

बस भयेउ—मायाके वशमें हो गया। अघटन-घटना-पटीयसी मायाकी यह करामात है कि वह छायाद्वारा बिम्बको वशीभूत कर लेती है। यथा—

'करि माया नभके खग गहई।'
'गहै छाँह सक सो न उड़ाई॥'

अतः कूटस्थ, मूला-माया, और प्रतिबिम्ब तीनों मिलकर जीव हुए, अब माया जो-जो और जैसा-जैसा नाच नचाती है, जीव वह और वैसा ही नाच नाचता है। यथा—

'देखा जीव नचावै जाही।'
'नाचत ही निसि दिवस मरयौ।

तबहीं ते न भयो थिर कबहुं जीवन नाम धरयौ।'

बँध्यौ—अर्थात् कूटस्थ प्रतिबिम्बद्वारा मायासे बँध-सा गया, जैसे घटाकाश जलाकाशद्वारा जलसे बँध जाता है। जिसप्रकार प्रतिबिम्ब जलके दोषोंसे दूषित होता है, चञ्चल होनेसे चञ्चल होता है, उछलनेसे उछलता है, गिरनेसे

गिरता है, दौड़नेसे दौड़ता है निदान अपने-आप बँध जाता है। उसी प्रकार जीव भी मायासे बँध-सा गया। परन्तु जड़का उदाहरण देनेसे किसीको जीवके प्रति जड़का सन्देह न हो तथा यह शङ्का न हो कि अज्ञान तो कोई रस्सी नहीं है जिससे कोई बाँधा जा सके, इसलिये कहा है कि—

'बँध्यौ कीर मर्कटकी नाईं'

कीरकी नाईं—सुग्गेकी भाँति बँध गया। भाव यह कि बहेलिया दो तिल्लियाँ गाड़कर उनके सिरेपर एक तीसरी तिल्ली बाँध देता है, और उस तीसरी तिल्लीमें बाँसकी नली पहिना देता है, नीचे दाने रख देता है। सुग्गोंका स्वभाव ऊँचेपर बैठनेका होता है। अतएव जब वह नलीपर बैठकर दाना लेनेके लिये झुकता है, नली घूम जाती है, सुग्गा उलटा लटकने लगता है। अज्ञानसे भयवश उसे छोड़ता नहीं, अन्तमें बहेलिया आकर उसे पकड़ लेता है। विचार करनेसे यहाँ सुग्गेको अज्ञानके सिवा कोई दूसरा बन्धन नहीं है।

किसी महात्माने सुग्गोंकी यह दुर्दशा देखकर एक सुग्गा पाला और उसे लगे पढ़ाने-'देखो! सुग्गा! दानोंका लोभ करके नलीपर न बैठना, और यदि बैठना तो उसके घूमनेपर निडर होकर उसे छोड़ देना।' जब सुग्गा पढ़कर पण्डित हो गया तो उसे छोड़ दिया। उस सुग्गेका वाक्य सुनकर दूसरे सुग्गे भी वैसे ही बोलने लगे। महात्मा बड़े प्रसन्न हुए कि सभी सुग्गोंका भय निवृत्त हो गया। परन्तु उनके आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब कि उन्होंने एक सुग्गेको उसीप्रकार उलटा लटके हुए यह पढ़ते पाया कि 'देखो सुग्गा! दानोंका लोभ न करना' इत्यादि। व्यवहार-कालमें (वाचक ज्ञानी) पण्डितोंकी भी स्थिति मूर्खों-सी देखी जाती है। अतएव पण्डितोंका अज्ञान-बन्धन दिखलानेके लिये 'कीरकी नाईं' कहा।

मर्कटकी नाईं—वानर भी ऐसे ही बँधता है, उसके हाथ जानेलायक छेदवाली कुल्हिया दानोंसे भरकर जमीनमें गाड़ दी जाती है। वानर उसमें हाथ डालकर मूठीमें दाने पकड़ लेता है। जब मूठी उसमेंसे नहीं निकलती तब बँध जाता है। लोभसे, अज्ञानसे मूठी नहीं छोड़ता। अतः वह भी अज्ञानसे ही बँधा है। यह मूर्ख होनेसे 'सुग्गा पण्डित'की भाँति मोक्ष-शास्त्रका पाठ करते हुए बद्ध नहीं है। मूर्खका बन्धन दिखलानेके लिये 'मर्कटकी नाईं' कहा।

इसी तरह जीव अज्ञान-बन्धनसे बँधा हुआ है, हजार प्रयत्न करनेपर भी नहीं छूटता।

४—जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

अर्थ—जड़ चेतनमें गाँठ पड़ गयी, वह यद्यपि झूठी है पर छूटना कठिन है।

जड़ चेतनहिं—जड़-चेतन दोनों विरुद्ध स्वभाववाले पदार्थ हैं। एक अन्धकार है, तो दूसरा प्रकाश है। एक विषय है, तो दूसरा विषयी है। एक मिथ्या है, तो दूसरा सत्य है। इन दोनोंमेंसे एकका दूसरेमें अध्यास (भ्रम) होना, अथवा एकके धर्मका दूसरेमें अध्यास होना मिथ्या है। यथा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित यह अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोआ। जीव नित्य तैं केहि लगि रोआ॥

ग्रन्थि परि गई—गाँठ पड़ गयी अर्थात् तादात्म्य हो गया। जड़में चेतनका अध्यास होने लगा और चेतनमें जड़का। इस गाँठको किसीने बाँधा नहीं है। अनादिकालसे पड़ी हुई है। शिष्यको समझानेमें सुभीतेके लिये 'पड़ गयी' कहा। कारणशरीरमें जो चेतनका अध्यास हुआ वही प्रतिबिम्ब है, वही गाँठ है। यथा—

रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ कालमहँ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई॥

जदपि मृषा—यद्यपि गाँठ झूठी है, भ्रममात्र है। मायाके साथ असंग कूटस्थका सम्बन्ध कैसा? घटाकाशका जलसे सम्बन्ध केवल भ्रमसे सिद्ध है। यथा—

जदपि असत्य देत दुख अहई।

छूटत कठिनई—छूटना कठिन है। किसीका हटाया यह अध्यास नहीं हटता। क्या लोकका क्या वेदका, सब व्यवहार इसी अध्यासपर टिका है। यथा—

'कर्म कि होइ सरूपहिं चीन्हे।'

५—तबते जीव भयउ संसारी। ग्रन्थि न छूट न होइ सुखारी॥

अर्थ—जबसे जीव संसारी हो गया, तबसे न तो गाँठ छूटती है और न यह सुखी ही होता है।

तबसे--अर्थात् कालका कोई नियम नहीं है, अनादि अन्धपरम्परासे। अनादिकालसे संसार ऐसा ही चला आता है। इसीको अविद्या-निशा कहते हैं। इसीमें स्वरूपाज्ञान अर्थात् सुषुप्ति होती है। इस अवस्थाके विभु ईश्वर हैं। अपरिच्छिन्न तथा असङ्ग होनेसे विभुमें अहङ्कारकी गाँठ नहीं होती, परिच्छिन्न और सङ्गी होनेसे जीवमें अहङ्कारकी गाँठ है। इसी गाँठमें आवरण और विक्षेपरूपी निद्रा है। इसी निद्रामें पड़ा हुआ जीव अनेक प्रकारके स्वप्न देखा करता है। यथा--

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥
आकर चारि लाख चौरासी। जोनिन भ्रमत जीव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

इसी सुषुप्तिसे भूतोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। कारणदेह-प्राप्त ईश्वरांशके भोगके लिये ईश्वरेच्छासे तमःप्रधान प्रकृतिमें (१) आकाश (२) वायु (३) तेज (४) जल और (५) पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न हुए, जिनके सत्त्वांशसे क्रमशः पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ और मिलकर अन्तःकरण तथा रजांशसे क्रमशः पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ और मिलकर प्राण उत्पन्न हुए। यथा--

गगन समीर अनल जल धरनी। इनकर नाथ सहज जड़ करनी॥
तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाये॥
बिषय करन सुर जीव समेता॥

इन पाँचो तत्त्वोंमे जो शरीर बना, वही लिङ्गदेह है। यहाँसे संसार अङ्कुरित हो गया, जोकि स्थूलावस्थामें पल्लवित और पुष्पित होगा। इस लिङ्गदेहाभिमानीका नाम तैजस है और इसके विभु हिरण्यगर्भ हैं। इस तैजसके भोगके लिये भगवान्‌ने पञ्चतत्त्वोंका पञ्चीकरण करके स्थूल शरीर तथा इस ब्रह्माण्ड-भुवनकी रचना की, यथा--

जड़ पंच मिलै जिन देह करी करनी बहुधा धरनीधरकी।
(कवित्त०)

सोलह आनेमेंसे आठ आने एक तत्त्वविशेषको लेकर उसमें दो-दो आने शेष चार तत्त्वोंको मिलाकर, उस तत्त्व-विशेषको स्थूलरूप दिया। यही पञ्चीकरण है। जब तैजस स्थूल देहका अभिमानी होता है तब उसे विश्व कहते हैं। इसकी जाग्रत् अवस्था है और विराट् विभु हैं। यथा—

अनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजही।

प्रतिबिम्ब चाहे किसी अवस्थाको पहुँचे, पर बिम्बसे उसका साथ नहीं छूटता। यथा--'ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती।' अवस्थाभेदके सम्बन्धसे बिम्बमें भी भेदकी कल्पना होती है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्के भेदसे जीव क्रमसे प्राज्ञ, तैजस और विश्व हुआ। उसी भाँति तुरीय ब्रह्म भी ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् कहलाये। ऐसा संसारका रूप अनादिकालसे चला आता है, केवल समझानेके लिये 'तबसे' कहते हैं। यथा--

'बिधि प्रपञ्च अस अचल अनादी।'

जीव भयेउ संसारी—जीव अपने सहज स्वभाव सच्चिदानन्द-रूपको छोड़कर ईश्वरांशके ऐश्वर्यको खोकर संसारी हुआ, देहवाला हुआ। अब (१) लिङ्गदेह (२) लिङ्गदेहमें स्थित चिच्छाया और (३) अधिष्ठान चैतन्य, तीनों मिलकर जीव कहलावे। इसप्रकार तीन प्रकारके जीव हुए। (१) पारमार्थिक (२) प्रातिभासिक और (३) व्यावहारिक। पारमार्थिक जीव कूटस्थ है और प्रातिभासिक जीव चित्-जड़की ग्रन्थिवाला प्रतिबिम्ब है और व्यावहारिक जीवलिङ्ग-देहवाला है। इसी तीसरेको संसारी कहा। इसीका लोक-परलोकमें आना-जाना लगा रहता है। स्थूल-शरीर छूटता रहता है, पर यह लिङ्गशरीर नहीं छूटता। यथा--

कौन जोनि जनमेउ जहँ नाही। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माँही॥

ग्रन्थि न छूट न होय सुखारी—न जड़-चेतनवाली अज्ञान-की गाँठ छूटती है और न जीव सुखी होता है। अज्ञान-वाली गाँठ छूटे बिना सहज-स्वरूपकी प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है। किसी प्रकार जड़ चेतनकी गाँठ छूटनी चाहिये। यथा--

'तुलसिदास "मैं" "मोर" गये बिनु जिव सुख कबहुँ कि पावै।'

तीनों चौपाइयोंमें सर्वप्रथम साधन मुमुक्षुत्वका वर्णन किया।

६—श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

अर्थ—वेद-पुराणोंने बहुतसे उपाय बतलाये हैं, पर गाँठ उलझती ही जाती है, छूटती नहीं।

श्रुति पुराण--अर्थात् वेद-पुराणसे बढ़कर कोई प्रमाण नहीं, यथा—(मानसमें) निगम निज बानी। तथापि वे भी

जड़-चेतनके अध्यास-पूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं। अतएव अविद्यावाले ही हैं, पर ग्रन्थिभेदका उपाय बतलानेमें भी यही समर्थ हैं।

'तस पूजा चाहिय जस देवता।'

बहु कहेउ उपाई—बहुत-से उपाय वेद-पुराणोंने बतलाये हैं। जप, तप, व्रत, यज्ञ, दानादि, अनेक साधन जो बतलाये गये हैं, वे सब जीवके कल्याणके लिये ही हैं। यथा—

तप तीरथ उपवास दान मख जो जेहि रुचै करो सो।
पायेहि पर जानिबो करम फल भरि भरि बेद परोसो॥
आगम बिधि जप जोग करत नर सरत न काज खरोसो॥

अधिक अधिक अरुझाई—अधिक-अधिक उलझनेका कारण यह है कि—

अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव-गम्य अखण्ड अनूपा॥

—का कर्मकाण्डमें उपयोग नहीं है। और बाह्यधर्म-देहधर्म, इन्द्रियधर्म और अन्तःकरण-धर्म सम्बन्धी विधि-निषेध कहकर ही कर्मकथाका उपदेश है।

(१) बाह्यधर्म, यथा—

'पूजहु ग्रामदेव सुर नागा। कहो बहोरि देन बलि भागा॥'

(२) देहधर्म, यथा—

'करहु जाइ तप सैलकुमारी'

(३) इन्द्रियधर्म, यथा—

काटिय तासु जीह जो बसाई। श्रवण मूँदि नतु चलिय पराई।'

(४) अन्तःकरणधर्म, यथा—

'मनहु न आनिय अमरपति रघुपति भगत अकाज।'

इन विधियोंके पालनमें धर्म है स्वर्ग है, पर कर्म-सन्तति बढ़ती ही जाती है। बिना अध्यासकी दृढ़ता बढ़ाये कोई धर्म नहीं हो सकता! अतः बाह्य पदार्थ, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें अध्यासोंकी उलझन बढ़ती ही जाती है, यथा—मल की जाहिं मलहीके धोये।'

छूट न—चिज्जड़-ग्रन्थि नहीं छूटती। कारण यह कि साधन-चतुष्टय बिना तत्त्व-विवेकका अधिकार नहीं होता। अतः जिसने साधन नहीं किया उसे शास्त्रके पाण्डित्यसे भी ज्ञान नहीं होता, यथा—

बाक्य ग्यान अत्यन्त निपुन भवपार कि पावै कोई।
निसि घन माँझ दीपके बातन्ह तम निवृत्त नहि होई॥
(विनय० प०)

(१) नित्यानित्य-वस्तु विवेक (२) इहलोक और परलोकके विषयभोगसे विराग (३) षट्-साधन-सम्पत्ति और (४) मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं और शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये षट् सम्पत्तियाँ हैं, इन सबका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

इसप्रकार साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अधिकारी जब गुरु-वेदान्त-वाक्य-जन्य ज्ञानसे ग्रन्थि-भेद करना चाहे तभी सम्भव है। नहीं तो—

सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुण भव बिपति सतावै॥

केवल शास्त्रचर्चा या यों कहिये कि अनधिकार चर्चासे गाँठ नहीं छूटती।

७—जीव हृदय तम मोह बिसेषी। ग्रन्थि छूट किमि परै न देषी॥

अर्थ—जीवके हृदयमें विशेष मोहान्धकार है, इससे दिखायी ही नहीं पड़ता फिर गाँठ तो कैसे छूटे?

जीव हृदय—यहाँ हृदय कहनेसे स्थूल-देहकी प्राप्ति दिखलायी। जीवके स्थूल-देहमें हृदय ही राज-प्रासाद है, यथा—

'अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी।'

तम मोह बिसेषी—मोह अविवेकको कहते हैं, उसीको तम अर्थात् अन्धकार कहा गया है। इसीके कारण अध्यास होता है, और यही अध्यासको बढ़ाता है। यथा—

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही।'

अविद्या-रात्रिमें मोह-तमकी प्रबलता होती है। जीव-हृदयपर अविद्याका अधिकार है, क्योंकि वहीं जड़-चेतन-ग्रन्थि पड़ी हुई है। अन्धकार तो संसारी होनेके पहले ग्रन्थिमात्रसे ही था, परन्तु अब संसारी होनेसे अधिक हो गया। यथा—

मम हृदय-भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहि नहिं बिनय निहोरा॥
तम मोह लोभ अहँकारा। मद क्रोध बोध रिपु मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा॥
मैं एक, अमित बटपारा। केउ सुनइ न मोर पुकारा॥
भागेउ नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा॥

कह तुलसिदास सुनु रामा । तस्कर लूटहि तव धामा ॥
चिंता मोहि नाथ अपारा । अपजस जनि होइ तुम्हारा ॥

ग्रन्थि छूट किमि—गाँठ कैसे छूटे ? छूटना तभी सम्भव है, जब प्रकाशमें यह दिखलायी पड़े कि गाँठ कहाँ है और कैसी है । नहीं तो बिना देखे ही टटोलकर ममताके सूत्रोंको इधर-उधर खींचनेसे बन्धन ही दृढ़ होता है । छूटनेकी कहाँ सम्भावना है ?

परै न देखी—अविद्या-रात्रिमें मोहान्धकार छाया हुआ है । हृदयके भीतर और भी घना अन्धकार है । जड़-चेतनकी गाँठ दिखायी ही नहीं पड़ती । अतएव दीपक जलाना चाहिये ।

८–अस संजोग ईस जौं करई । तबहु कदाचित सो निरुअरई ॥

अर्थ–यदि ईश्वर ऐसा संयोग बना दे, तो कदाचित् वह गाँठ सुलझ जाय ।

अस संजोग—भाव यह कि ऐसा होना क्रिया-साध्य नहीं है । संयोग आन पड़े तो हो जाय; संयोग ब्रह्माके हाथकी बात है, मनुष्यके सामर्थ्यसे सर्वथा परे है । यथा–'जो बिधिबस अस बनै संजोगू ।' ऐसा कहनेका भाव यह कि संयोगोंका सिलसिला बँध जाय । अर्थात् गौ भी मिल जाय, चारा भी मिले, दुहनेवाला, औटनेवाला, दूध ठण्ढा करनेवाला, दही मथनेवाला इत्यादि यथेप्सित मिलते ही चले जायँ ।

ईस जौं करई—अर्थात् ईश्वर यदि करें । भाव यह कि ऐसा संयोग विधि भी नहीं कर सकते, वे तो स्वप्नके विभु हैं, कारणपर उनका अधिकार नहीं है, कर्म शुभाशुभ दिया करते हैं, यथा–'कर्म सुभासुभ देइ बिधाता ।' और ईश्वर सुषुप्तिके विभु हैं । कारणपर भी उनका अधिकार है, कर्मकी अपेक्षा न करके भी संयोग कर सकते हैं । अथवा जीव जिनका अंश है, जिन्होंने करुणा करके उसे नरदेह दिया है, वही चाहें तो करुणा करके ऐसा संयोग भी कर दें, यथा–

'कबहुँक करि करुणा नरदेही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥'

और वह ईशका किया हुआ संयोग इसप्रकार हो कि सात्त्विकी श्रद्धा हरिकी कृपासे हृदयमें बसे, और उस श्रद्धाद्वारा खूब धर्माचरण हो, जिसमें श्रद्धा परिपुष्ट होती जाय और धर्मके साथसे रज और तमके अभिभूत होनेसे सात्त्विक भाव उत्पन्न हो । तब श्रद्धा द्रवीभूत होती है, धर्माचरणका सात्त्विक परिणाम अहिंसा-दया-भावमें प्रकट होता है । तब वशीभूत निर्मल मनको श्रद्धाके चरणोंमें लगा दे, और दृढ़ विश्वास करके अहिंसामें प्रतिष्ठित हो जाय, प्राणिमात्रको अभयदान दे । जबतक धर्मव्रतधारीके हृदयमें दयाका प्रादुर्भाव नहीं होता, तबतक समझना चाहिये कि परम धर्मका उदय नहीं हुआ । अहिंसामें प्रतिष्ठित होनेपर निष्कामतासे अहिंसागत कामनाके अंशको दूर करे । कामनाके अंशको दूर करनेसे जो ताप होता है उसे क्षमाद्वारा तोषसे दूर करे । जब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय तो उसे धृतिसे ठोस करे । तब उस शीतल ठोस निष्काम दयाभावका दमपूर्वक गुरु-शास्त्रोपदेशानुसार विचारसे मन्थन करे । (दमपूर्वक इसलिये कहा कि हृदय-दौर्बल्यको स्थान न मिले, जैसे कामपीड़ित व्यक्तिकी तृप्ति आदि शास्त्रविरुद्ध विषयका दयामें समावेश न हो), विचार करे कि संसार दुःखमय है । हम जीव इसमें पड़े हुए क्लेश उठा रहे हैं, इस दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति कैसे हो, इत्यादि । इन विचारोंसे साधक जिस निश्चयपर पहुँचेगा, वही वैराग्य है । उस निश्चयका यह रूप होगा कि 'ये विषय अनित्य हैं, दुःखकी योनि हैं, चाहे ये इस लोकके हों चाहे परलोकके ।' और फिर उनसे आपसे आप जी हटेगा । जब चित्तमें विराग आ जायगा तब वह विषयोंको छोड़ सकेगा, और तब उसे योगका अधिकार होगा ।

चित्तवृत्तिका निरोध योग है । वैराग्यसे चित्तवृत्ति निरोधकी योग्यता प्राप्त होती है, परन्तु शुभाशुभ कर्मसे सम्बन्ध त्याग किये बिना निरोध नहीं हो सकता । बुद्धि-द्वारा शुभाशुभ कर्म-सम्बन्ध त्यागते ही चित्त निरुद्ध होता है । ममता नष्ट होती है, तब सत् वस्तुमें चित्त एकाग्र होता है । 'तत्' पदका ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है । तब विज्ञानरूपिणी (उपनिषत्-जन्य) बुद्धि उस अपरोक्ष-ज्ञानको चित्तमें जमाकर समतामें स्थापन करती है । अब 'त्वं' पदार्थका शोधन शेष है । अतः इसप्रकारका परोक्ष-ज्ञानी ध्यानमें स्थित होकर अपनेको स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंसे पृथक् भावना करके, अर्थात् 'त्वं' पदार्थका शोधन करके तुरीयावस्थाको प्राप्त होता है । फिर तुरीयावस्थाके संस्कारोंको एकीभूत करके परोक्ष-ज्ञानमें मिला देता है । यह 'असि' पद है । और तब शब्दानुविद्ध समाधिमें स्थित होनेसे आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है, और वह 'सोऽहमस्मि' वृत्तिवाला अपरोक्ष होता है । यह

मोहान्धकारको मिटा देता है। परन्तु अभी चित्-जड़-ग्रन्थि बनी हुई है। विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकार ग्रन्थि-भेदन कर सकती है। यदि ग्रन्थि-भेदन हो गया तो अभ्यास सदाके लिये मिट गया, और सहजस्वरूप कैवल्यकी प्राप्ति हुई। यही परमपद है। इसी बातको दीपकके रूपकमें सुलभताके लिये विशदरूपमें वर्णन किया जायगा।

तबहुँ कदाचित्---भाव यह कि ईशके ऐसा संयोग कर देनेपर भी कार्य-सिद्धिमें बहुत सन्देह है। क्योंकि साधन बहुत कठिन है और संसारी जीव रोगी हैं। रोगीकी क्या सामर्थ्य जो कठिन साधनका सामना कर सके। यथा—

मोह सकल व्याधिनकर मूला। तेहिते पुनि उपजैं बहु सूला॥
एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्षभय प्रीति बियोगी॥

एक व्याधिबस नर मरइ, ए असाध्य बहु व्याधि।
सन्तत पीडहिं जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि॥

और दूसरी बात यह है कि 'अकृतोपास्ति-ज्ञान' जिसमें भक्तिकी सहायता नहीं है, सिद्ध नहीं होता, यथा—

जे ग्यानमान बिमत्त तव भयहरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

सो—वह चित् (अस्ति, भाति, प्रिय) और जड़ (नामरूप) की गाँठ।

निरुअरई—अर्थात् वह गाँठ सुलझे। अस्ति (सत्) भाति (चित्) और प्रिय (आनन्द) ये तीन अंश ब्रह्मके और नाम और रूप, दो अंश मायाके, इन्हीं पाँचोंने उलझकर प्रपञ्चकी गाँठ बना रक्खी है, और इन्हींके उलझनपर उलझन पड़नेसे संसार बना हुआ है, सो सुलझ जाय। अर्थात् तीन अंश ब्रह्मके पृथक् और (नाम-रूप) दो अंश मायाके पृथक् हो जायँ। गाँठके अँधेरेमें होनेके कारण प्रकाशके लिये दीपका संकल्प हुआ। दीपके साधनमें, ठहरनेमें, ऐसा विघ्न बाहुल्य है कि संयोग अनुकूल होनेपर भी कहना पड़ा कि कदाचित् ही वह सुलझ सके। यथा—

माधव मोह-पास क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटै॥
घृत-पूरण कराह अन्तरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अगिन लगाइ कल्पसत औटे नास न पावै॥
तरुकोटरमँह बसि बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करि अबिचार कराहिं मन सुद्ध होइ कहु कैसे ?
अन्तर मलिन बिषय मन अति तनु पावन करी हमारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिधि बिधि मारे॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिबेक न होई।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार कि पावै कोई॥

रघुवर भजो

भजहु मन रघुवर दीनदयाल ॥टेक॥

जौलौं चरण-सरोज न भजिहौ,
फिरिहौ भ्रमत बिहाल।
सुमिरत ही शुभ नाम खगाधिप
नशिहैं भव-दुख-व्याल ॥१॥

भक्त-शिखिन्ह सुखदायक घनवत्
श्यामल गात रसाल॥
पीत वसन वर विज्जु-विनिन्दित
चन्दन भाल विशाल ॥२॥

शीसमुकुट शोभित श्रुति कुण्डल
धनुधर दशमुख काल॥
वर वामांग जनक-तनया-छवि
नयनन्ह करत निहाल ॥३॥

वैर करत निशिचर गन तार्यो
को अस निजपन पाल॥
"श्रीमन" जाहि भजे भय भाजत
दुखदायक जग-जाल ॥४॥

—श्रीनारायणाचार्य शास्त्री वेदान्तभूषण

रामायण-संकीर्तन-माला

बालकाण्डम्

१–शुद्धब्रह्म परात्पर राम
२–कालात्मक परमेश्वर राम
३–शेषतल्प-सुखनिद्रित राम
४–ब्रह्माद्यमरप्रार्थित राम
५–चण्डकिरण-कुलमण्डन राम
६–श्रीमद्दशरथनन्दन राम
७ कौशल्या-सुखवर्द्धन राम
८–विश्वामित्र-प्रियधन राम
९–घोर-ताटका-घातक राम
१०–मारीचादि निपातक राम
११–कौशिक-मख-संरक्षक राम
१२–श्रीमदहल्योद्धारक राम
१३–गौतम-मुनि-संपूजित राम
१४–सुरमुनिवरगण-संस्तुत राम
१५–नाविक-धावित-मृदुपद राम
१६–मिथिलापुर-जन-मोहक राम
१७–विदेह-मानस-रञ्जक राम
१८–त्र्यम्बक-कार्मुक-भञ्जक राम
१९–सीतार्पित-वरमालिक राम
२०–कृत-वैवाहिक-कौतुक राम
२१–भार्गव-दर्प-विनाशक राम
२२–श्रीमदयोध्या-पालक राम

अयोध्याकाण्डम्

२३–अगणित-गुणगण-भूषित राम
२४–अवनी-तनया-कामित राम
२५–राकाचन्द्र-समानन राम
२६–पितृवाक्याश्रित-कानन राम
२७–प्रिय गुह-विनिवेदित-पद राम
२८–तत्क्षालित निज-मृदुपद राम
२९–भरद्वाजमुखऽऽनन्दक राम
३०–चित्रकूटाद्रि-निकेतन राम
३१–दशरथ-सन्तत-चिन्तित राम
३२–कैकेयी-तनयार्थित राम
३३–विरचित-निजपितृकर्मक राम
३४–भरतार्पित-निजपादुक राम

अरण्यकाण्डम्

३५–दण्डकवन-जन-पावन राम
३६–दुष्ट-विराध-विनाशन राम
३७-शरभङ्ग-सुतीक्ष्ण-अर्चित राम
३८–अगस्त्यानुग्रह-वर्धित राम
३९–गृध्राधिप-संसेवित राम
४०–पञ्चवटी-तट-सुस्थित राम
४१–शूर्पणखार्त्ति-विधायक राम
४२–खर-दूषण-मुख-सूदक राम
४३–सीताप्रिय-हरिणानुग राम
४४–मारीचार्तिकृदाशुग राम
४५–विनष्टसीतान्वेषक राम
४६–गृध्राधिपगतिदायक राम
४७–शबरी-दत्त-फलाशन राम
४८–कबन्धबाहुच्छेदन राम

किष्किन्धाकाण्डम्

४९–हनुमत्सेवित-निजपद राम
५०–नत-सुग्रीवाभीष्टद राम
५१–गर्वित-बालि-संहारक राम
५२–वानर-दूत-प्रेषक राम
५३– हितकर-लक्ष्मण-संयुत राम

सुन्दरकाण्डम्

५४–कपिवर-सन्तत-संस्मृत राम
५५–तद्गति-विघ्नध्वंसक राम
५६–सीता-प्राणाधारक राम
५७–दुष्ट-दशानन-दूषित राम
५८–शिष्ट-हनुमद्भूषित राम
५९–सीता-शोध-परायण राम
६०–कृत-चूड़ामणि-दर्शन राम
६१–कपिवर-वचनाश्वासित राम

अथ युद्धकाण्डम्

६२–रावण-निधन-प्रस्थित राम
६३–वानर–सैन्य-समावृत राम
६४–शोषित-सरिदीशार्थित राम
६५–विभीषणाभयदायक राम
६६- पर्वतसेतु-निबन्धक राम
६७–कुम्भकर्ण शिर-छेदक राम
६८–राक्षस-संघ-विमर्दक राम
६९–अहि-महि-रावण-चारण राम
७०–संहृत-दशमुख-रावण राम
७१-विधिभवमुखसुरसंस्तुत राम
७२–खस्थित-दशरथ-वीक्षित राम
७३–सीता-दर्शन-मोदित राम
७४–अभिषिक्त-विभीषण-नत राम
७५–पुष्पक-यानारोहण राम
७६–भरद्वाजाभिनिषेवण राम
७७-भरत-प्राण-प्रियकर राम
७८–साकेत-पुरि-भूषण राम
७९–सकल-स्वीय-समानत राम
८०–रत्न-लसत्पीठास्थित राम
८१–पट्टाभिषेकालंकृत राम
८२–पार्थिवकुल-सम्मानित राम
८३–विभीषणार्पितरंगक राम
८४–कीशकुलानुग्रहकर राम
८५–सकल-जीव-संरक्षक राम
८६–समस्तलोकाधारक राम

उत्तरकाण्डम्

८७–आगत-मुनिगण-संस्तुत राम
८८–विश्रुतदश-कण्ठोद्भव राम
८९–सीतालिङ्गननिर्वृत राम
९०–नीति-सुरक्षित-जनपद राम
९१–विपिनत्याजित-जनकज राम
९२–कारित-लवणासुर-वध राम
९३–स्वर्गत-शम्बुक-संस्तुत राम
९४–स्वतनय कुशलव-नन्दित राम
९५–अश्वमेध-क्रतु-दीक्षित राम
९६–कालावेदित-सुरपद राम
९७- आयोध्यक-जन-मुक्तिद राम
९८–विधिमुख-विबुधानन्दक राम
९९ -तेजोमय-निजरूपक राम
१००–संसृति-बन्ध-विमोचक राम
१०१–धर्मस्थापन-तत्पर राम
१०२–भक्तिपरायण-मुक्तिद राम
१०३–सर्वचराचर-पालक राम
१०४–सर्वभवामय-वारक राम
१०५–वैकुण्ठालय-संस्थित राम
१०६–नित्यानन्द-पदस्थित राम
१०७–राम राम जय राजा राम
१०८–राम राम जय सीता राम

सदाप्रसन्न राम ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥

संक्षिप्त रामचरित माला

बालकाण्डम्

१–श्रीमद्रवि-कुल-दीपक। राम
२–श्रितजन-कल्पक-सीता–राम
३–राक्षस-कुल-बल-शिक्षक राम
४–मखावन-सुविचक्षण राम
५–मायातीत-गुणाश्रित राम
६–सत्वैकगुणाधिष्ठित राम
७–यक्षेश्वरहित-पूजित राम
८–कर-धृतधर्मविराजित राम
९–नरसुरवर-दत्ताभय राम
१०–वाचातीत-गुणोज्ज्वल राम
११–धृत-मानवरूपाश्रित राम
१२–नत-विधि-शङ्कर-माधव राम
१३–कौसल्यावर-नन्दन राम
१४–दशरथतोषण-कारण राम
१५–कौशिकलब्धाखिलशर राम
१६–घोरासुरयोषान्तक राम
१७–विश्वामित्र-सहायक राम
१८–मारीचस्मयवारक राम
१९–चैतन्यद-पटु-पद-नम्र राम
२०–गौतम-हृदयानन्दन राम
२१–जनक-तपःफल-रूपक राम
२२–खण्डित-भर्ग-शरासन राम
२३–क्षोणी-तनया-संगत राम
२४–निर्जित-भार्गव-कुलमणिराम
२५–साकेतपुरी-भूषण राम
२६–सीता-हृत्पञ्जर-शुक राम

अयोध्याकाण्डम्

२७–कैकय-तनया-वञ्चित राम
२८–पित्राज्ञा-परिपालक राम
२९–सीता-लक्ष्मण-सेवित राम
३०–धृत-तापस-वेषाश्रित राम
३१–परम-सुहृद्-गुह-पूजित राम
३२–भारद्वाज-मुदावह राम
३३–चित्रकूटतट-निवसित राम
३४–कैकेयीतनयार्थित राम
३५–अचलसमीकृत-पादुक राम
३६–कृत-पैतृक-मख-राघव राम

अरण्यकाण्डम्

३७–भीषण-कानन-विहरण राम
३८–क्रूर-विराध-विदारक राम
३९–मुनि-जनगण-दत्ताभय राम
४०–राकाचन्द्र-निभानन राम
४१–दिव्य-महामुनि-संनुत राम
४२–कुम्भज-दत्त-महायुध राम
४३–पुण्य-सुतीक्ष्णाभ्यर्चित राम
४४ परिचित-गृध्रकुलाधिप राम
४५–पञ्चवटीतट-संस्थित राम
४६–हृत-शूर्पणखा-नासिक राम
४७–हत-खरदूषण-दानव राम
४८–माया-हरिणोद्धाश्रित राम
४९–दारित-मारीचासुर राम
५०–दैत्येश्वर-हृत-भूसुत राम
५१–दारान्वेषण-तत्पर राम
५२–गृध्राधिप-संबोधित राम
५३–गन्धक-बन्धोन्मन्थक राम
५४–शबरी-दत्त-फलाशन राम
५५–पंपालोकन-दुःखित राम
५६–पवनात्मज-संपूजित राम

किष्किन्धाकाण्डम्

५७–रविज-निवेदित-निज-कथराम
५८–प्राप्तात्मनिजा-भूषण राम
५९–लीलोत्क्षिप्ता-सुरतनु राम
६०–खण्डित-सप्त-महीरुह राम
६१–एकाशुगनि-हतेन्द्रज राम
६२–अभिषिक्तार्कतनूभव राम
६३–गिरिधर्यन्तर-संस्थित राम
६४–वानर-सेना-परिवृत राम
६५–सीतालोकन-तत्पर राम
६६–प्रेषित-वानर-नायक राम
६७–गृध्र-सुबोधित-वानर राम

सुन्दरकाण्डम्

६८–जलनिधि-लङ्घनपटु-भट राम
६९–लङ्कान्तक-समुपासित राम
७०–सीतानन्दकरार्चित राम
७१–मारुतसुत-दत्तोर्मिक राम
७२–विश्रावित-निजनामक राम
७३–दूषित-रावण-विक्रम राम
७४–भस्मीकृत-लङ्कापुर राम
७५–प्राप्त-सती-चूडामणि राम
७६–जलनिधि-वेला-वासक राम

युद्धकाण्डम्

७७–शरणाक्रान्त-विभीषण राम
७८–शयनीकृत-दर्भोत्कर राम
७९–जलनिधि-गर्व-निवारकराम
८०–वारिधि-बन्धन-कौशल राम
८१–चित्रकोटक-परितोषक राम
८२–विपुल-सुवेलाचलगत राम
८३–अहिपाशोत्कर-पीडित राम
८४खण्डित-फणि-शर-बन्धनराम
८५–घटकर्णासुर-विदलन राम
८६–नाशित-मूल-बलोत्कर राम
८७–रावण-कण्ठ-विलुण्ठक राम
८८–अभिषिक्ताहित-सोदर राम
८९–सीतालोकन-कौतुक राम
९०–शुचि-परिशोधित-सीताराम
९१–ब्रह्मेन्द्रादि-समीडित राम
९२–दशरथ-दर्शन-मोदित राम
९३–मृत-वानर-संजीवक राम
९४–पुष्पक-यानाधिष्ठित राम
९५–प्रकटित-पाप-विमोचक राम
९६–विरचित-पशुपति-पूजन राम
९७ भारद्वाजार्चितपद राम
९८–भरतोत्कण्ठा-पूरक राम
९९–जनयित्री-हर्षप्रद राम
१००–नरवानर-दितिजावृत राम
१०१–अभिषेकोत्सव-हर्षित राम
१०२–करुणामुद्रितवीक्षण राम

उत्तरकाण्डम्

१०३–संजीवित-विप्रार्भक राम
१०४–स्मरणैक-सु-तुष्टात्मक राम
१०५–अपवाद-भयैकार्दित राम
१०६–आजड-मोक्षप्रद-पटु राम
१०७–एक-शिलानगरालय राम
१०८–योगीन्द्रगणसुपूजित राम

राज्य

(लेखक—श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)

कहा वैदेहीने—"हे नाथ,
अभी तक चारों भाई साथ
भोगते थे तुम सम-सुख-भोग,
व्यवस्था भेट रही वह योग।

भिक्षु-सा करके, तुमको आज,
राज्य देते हैं कोसलराज।
तुम्हें रुचता है यह अधिकार?"
"प्रिये, पर राज्य भोग या भार!

बड़ेके लिए बड़ा ही दण्ड,
प्रजाकी थाती सदा अखण्ड।
तदपि निश्चिन्त रहो तुम नित्य,
यहाँ राहित्य नहीं, साहित्य।

रहेगा साधु भरतका मन्त्र,
यशस्वी लक्ष्मणका बल-तन्त्र।
तुम्हारे लघु देवरका धाम,
मातृ दायित्व-हेतु है राम।"

"नाथ, यह राज-विधान पुनीत,
किन्तु लघु देवरकी ही जीत!
हुआ जिनके अधीन नृप-गेह-
सचिव-सेनापति युत सस्नेह!!"

विवाहके समय सीताकी अवस्था

(लेखक—पण्डित श्रीराजेन्द्रनाथ विद्याभूषण)

१—वन जानेके समय अयोध्यामें रहकर सास-ससुरकी सेवा करने और राजा भरतकी आज्ञामें रहनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी जब सीताको समझा रहे थे तब सीताने रामकी इन बातोंपर कुछ भी ध्यान न दे उनसे स्पष्ट कहा था कि स्वामीके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है इस बातको पहलेसे ही मैं खूब जानती हूँ। आपके साथ मुझे किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, कैसे बर्तना चाहिये—इस बातकी शिक्षा मुझे अपने माता-पितासे पर्याप्त मिल चुकी है*।

२—श्रीराम जब किसी प्रकार भी सीताको साथ ले जानेके लिये राजी नहीं हुए तब सीताने और भी जोरसे कहा कि मैं अपने नैहरमें ब्राह्मणोंके द्वारा इस बातको पहलेसे ही सुन चुकी हूँ कि मेरे भाग्यमें वनवास लिखा है। जिस दिन मैंने उन सब विद्वानोंसे यह बात सुनी थी उसी दिनसे मेरा भी मन वनवासके लिये उत्साहित हो रहा है।†

उपर्युक्त दोनों अवतरणोंमेंसे एकसे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व ही सीताके माता-पिताने उसको पत्नीका कर्तव्य भलीभाँति सिखा दिया था और दूसरेमें विवाहके पूर्व ही ज्योतिषियोंके द्वारा सीता अपने भाग्यमें वनवास होना सुन चुकी थी। वनवास अवश्य होगा इसके लिये सीताने अपने मनको भलीभाँति तैयार कर रक्खा था। विवाहके बाद न तो सीता कभी नैहर गयी और न सीताको पालनेवाली माता ही अयोध्या आयी। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सीताको माता-पिताके द्वारा पत्नीके कर्तव्यकी शिक्षा नैहरमें ही मिल चुकी थी।

---

* 'अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि संप्रति वक्तव्यो वर्तितव्यं यथा मया॥'
(वा० २। २७। १०)

† 'अथापि च महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम्।
पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे वने॥
लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाहं वचनं गृहे।
वनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महाबल॥'
(वा० २। २९। ८-९)

ज्योतिषियोंके द्वारा वनवास-सम्बन्धी भविष्यद्वाणी भी विवाहके पहले ही हुई थी। 'पुरा पितृगृहे' की उक्ति ही स्पष्ट प्रमाण है। अब रामायणकी कुछ और उक्तियाँ देखिये—

१-राम लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरीमें पहुँचे, उस समय दोनों भाइयोंके अनुपम रूप-लावण्य और यौवनसे उल्लसित, सुसंगठित शरीरको देखकर जनकने आश्चर्यके साथ मुनिसे पूछा—'हे मुनिवर! ये दोनों नवयुवक कुमार—जिनकी चाल हाथी और सिंहके समान, जिनका बल देवताओंके समान और जिनका रूप अश्विनीकुमारके सदृश है—किसके सुपुत्र हैं?[1]

यहाँ राजा जनक श्रीराम-लक्ष्मणको 'समुपस्थित यौवन' अर्थात् नवयुवक कहते हैं, सुतरां विवाहके समय इन दोनों भाइयोंके वय और शारीरिक बलका भी यथेष्ट पता लग जाता है। जनककी यह उक्ति धनुष-भङ्गके पूर्वकी ही है।

४-यज्ञमें विघ्न करनेवाले रावणके अनुचर मारीच और सुबाहु नामक कठोर राक्षसोंका वध करनेके लिये जब विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको लेने दशरथके यहाँ आते हैं, तो रावणके नामसे ही भयभीत होकर दशरथ कहते हैं-'मेरे इस कमलनयन रामकी अवस्था अभी केवल पन्द्रह वर्षकी ही है, इस उम्रमें यह राक्षसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे?'[2] इस प्रसङ्गसे यह पता लगता है कि इस समय रामकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी थी। अनेक जगह घूमने और राक्षसोंसे युद्ध करनेके बाद श्रीराम जनकपुरमें आते हैं और शिव धनुषको तोड़कर जब जानकीका पाणिग्रहण करते हैं, तब राम-लक्ष्मण अवश्य ही यौवन-सम्पन्न हैं।

५-विश्वामित्र जनकसे कहते हैं कि 'ये दोनों राजकुमार आपके यहाँ सुप्रसिद्ध धनुषको देखना चाहते हैं।' इसके उत्तरमें जनकजी बहुत-सी बातें कहनेके बाद धनुषकी प्राप्ति, सीताकी उत्पत्ति, सीताके ब्याहके लिये धनुष-भंगका प्रण प्रभृति अनेक प्रकारकी चर्चा करते हुए कहते हैं 'इसप्रकार जब मेरी अयोनिजा कन्या सीता 'वर्द्धमाना' प्राप्तयौवना हुई तब बहुत-से राजा इसका पाणिग्रहण करनेकी आशासे आये, पर सबको असफल होना पड़ा। कारण, शिव-धनुषको कोई भी उठा नहीं सका।'[3]

मूल श्लोकमें 'वर्द्धमाना' शब्द है, टीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसम्पन्ना' किया है तो किसीने 'प्राप्तयौवना'। इससे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व सीताके शरीरमें यौवनका सूत्रपात हो गया था। अतएव 'समुपस्थित यौवन' रामके साथ जब सीताका विवाह हुआ तब वह भी 'वर्द्धमाना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

६-राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्तिका विवाह हो गया। महाराज दशरथ पुत्र और पुत्र-वधुओंके साथ अयोध्या लौट आये। राजमहलोंमें महोत्सव हो रहा है। अनेक प्रकारके स्त्री-आचार, मांगलिक कार्योंके बाद सीता आदि चारों बहिनें अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें मुदित मनसे आमोद-प्रमोद करती हैं।[4]

मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ रमण करना होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी अवस्थाका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम-लक्ष्मण तो 'प्राप्तयौवन' थे ही, यह बात जनकजी कह ही चुके हैं।

७—वनवासके समय अत्रिके आश्रममें अनसूयाजीके साथ सीताकी पातिव्रत-धर्मकी बातें हो रही थीं, तब सीताजी कहती हैं कि-'विवाहके समय मेरी माताने अग्निके सम्मुख मुझको जो उपदेश दिया था, उसे मैं किञ्चित् भूली नहीं हूँ। उन

१ 'पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ॥
गजसिंहगती वीरौ शार्दूल-वृषभोपमौ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थित-यौवनौ॥
...............कस्य पुत्रौ महामुने!॥
(वा० १।५०।१७-१९)

२ 'ऊन-षोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्ध योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥'
(वा० १।२०।२)

३ 'भूतलादुत्थितां तां तु वर्द्धमानां ममात्मजाम्।
वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुङ्गव!
तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम्।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा॥
प्रत्याख्याता नृपतयः × × ×'
(वा० १।६६।१५, १८, १९, २०)

४ 'अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः॥'
(वा० १।७७।१३-१४)

उपदेशोंको मैंने अपने हृदयमें रख छोड़ा है, माताने कहा था कि स्त्रीके लिये पति-सेवासे बढ़कर और कोई भी तप नहीं है[१]।'

पतिके प्रति पत्नीका क्या कर्त्तव्य है, इसके सम्बन्धमें सीताकी माताने उसे विवाहके समय अग्निके सामने उपदेश दिया था। अतएव यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उस समय सीताजीकी उम्र इसप्रकारका उपदेश ग्रहण करने-योग्य अवश्य हो गयी थी।

८—बातों-ही-बातोंमें सीताने अनसूयासे कहा कि 'पिताने जब मेरी 'पति-संयोग-सुलभ' अवस्था देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। जैसे दरिद्रको धन-नाश होनेपर विषाद होता है मेरे पिताको भी वैसा ही हुआ[२]।'

इस प्रसङ्गमें 'पति-संयोग सुलभ' शब्द आता है, किसी-किसी टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह-योग्य-वयस्य' लिखकर अपना पिण्ड छुड़ाया है किन्तु सीताने इसके बाद जो कुछ कहा है उससे यह पता लगता है कि सीताके लिये कन्या-दाय-पीड़ित जनकजी अपनेको बहुत ही दुखी और अपमानित समझते थे। सीता मानो उस समय अत्यन्त अरक्षणीया सी हो गयी थी।

यहाँपर 'पति-संयोग-सुलभ' पदका यथार्थ अर्थ करनेके लिये रामायणका ही आश्रय लेना होगा। 'रेमिरे:' रहा 'वे पतियोंके साथ निर्जनमें आमोद-प्रमोद करने लगीं' यह प्रसंग विवाहके ठीक बादका है और विवाहके पूर्वकी अवस्था 'पति-संयोग-सुलभ' थी, जिसको देखकर पिताके चिन्ताकी सीमा नहीं रही। अतएव इसका अर्थ सहज ही यह होता है कि, 'वर्द्धमाना' पत्नीके साथ 'प्राप्तयौवन' पतिका मिलाप हुआ।

इस तरह 'प्राप्तयौवन' राम जब 'वर्द्धमाना' सीताके साथ विवाह करते हैं, उस समय उनकी अवस्था प्रायः सोलह वर्षकी है। परन्तु सीताजीकी क्या अवस्था है?

उपर्युक्त आठों स्थलोंका सरल सीधा अर्थ करनेसे तो यही प्रतीत होता है कि विवाहके समय सीताकी अवस्था रामसे सम्भवतः दो एक वर्ष छोटी होगी। ऐसा नहीं मानते हैं तो रामायणके उपर्युक्त स्थलोंकी व्याख्या करना कठिन हो जाता है। यह तो हुई विवाहके समय सीताके उम्रकी बात, किन्तु रामायणमें ही दूसरे स्थलपर सीता अपने ही मुँहसे अपनी उम्र कुछ और ही बतलाती है, उसे माननेपर यह स्वीकार करना पड़ता है कि विवाहके समय वह छः वर्षकी दुधमुँही बच्ची थी।

परिव्राजकके रूपमें जब रावण सीताका हरण करने आता है तब सीता संसार-त्यागी ब्राह्मण अतिथि, बात न करनेसे शायद क्रुद्ध होकर शाप दे देगा, इस आशङ्कासे अपना परिचय देती हुई कहती है कि 'मैं मिथिलाधिपति जनककी कन्या, श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीता हूँ। मैंने बारह वर्षतक इक्ष्वाकु-वंशी श्रीरामके घरमें निवासकर मनुष्यके उपयुक्त सभी सुख भोग लिये हैं, अब मेरे कोई भी वासना शेष नहीं है। मेरे महातेजस्वी स्वामी रामकी अवस्था उस समय पचीस वर्षकी और मेरी अठारहकी थी[१]।'

बारह वर्षतक ससुरालमें रहनेके बाद तेरहवें वर्षके लगते ही रामके राज्याभिषेकका प्रस्ताव हुआ और तब राम मुझको और लक्ष्मणको साथ लेकर वनमें आ गये। (वा० ३।४७।५-७)'

इस वर्णनसे यही पता लगता है कि जब सीता वनमें आयी थी उस समय उसकी उम्र अठारह वर्षकी थी, विवाहके बाद बारह वर्ष वह ससुरालमें रही, तब बच रहते हैं छः वर्ष। पर क्या सीताका विवाह छः वर्षकी उम्रमें हुआ था? क्या छः वर्षकी अबोध बालिकाको विवाहके समय माँ-बापने पत्नीके कर्त्तव्यका उपदेश दिया था और उस उपदेशमालाको सीताने अपने हृदयमें गूँथ रखा था? क्या इस छः वर्षकी शिशु बालिकाको ही

१ पाणिप्रदानकाले च यत् पुरा त्वग्निसन्निधौ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम्॥'
'पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते॥
(वा० २।११८।८-९)

२ 'पतिसंयोगसुलभं' वयोऽवेक्ष्य पिता मम।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः॥
(वा० २।११८।३४)

१—ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम्।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत्॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नामास्मि भद्रं ते रामस्य महिषीप्रिया॥
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी॥
मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥
(वा० ३।४७।२, ३, ४, १०)

'वर्द्धमाना' या 'प्राप्तयौवना' मानकर राजर्षि जनक विवाहकी चिन्तासे व्याकुल हो अपने चारों ओर अँधेरा देखने लगे थे? क्या छः वर्षकी लड़कीके लियेही उसका 'पति-संयोग-सुलभ' समय समझकर पिता सीरध्वज उसके विवाहके लिये व्याकुल हो उठे थे? और फिर क्या यही अबोध बालिकाएँ ससुराल पहुँचकर अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें आमोद-प्रमोद करने लगी थीं। इन सबका क्या उत्तर है?

एक विवाद और है। रामने सोलह वर्षकी 'प्राप्त-यौवन' अवस्थामें सीतासे विवाह किया। यह बात ऊपर कही जा चुकी है, इसके बाद जब राम वन जाते हैं तो सीता उनकी उम्र पचीस वर्ष बतलाती है। यह शब्द भी रामायणके ही हैं। किसी किसी ग्रन्थमें रावणके प्रति कहे हुए सीताके शब्दोंमें 'भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः' की जगह 'समविंशकः' पाठान्तर है। वन-गमनके समय कौसल्याने रोते-रोते रामसे कहा है 'हे रघुनन्दन, दसवें वर्षमें तुम्हारा उपनयन हुआ था, तबसे मैंने सतरह वर्ष इसी आशामें बिताये थे।' इससे भी रामकी अवस्था उस समय पूरे सत्ताईस वर्षकी सिद्ध होती है।

इस वर्णनसे पाठक कुछ अनुमान कर सकेंगे कि विवाहके समय सीताकी अवस्था कितनी थी? उपर्युक्त स्थलोंके अतिरिक्त रामायणमें छोटी-मोटी ऐसी कई बातें और मिलती हैं जिनसे यह भलीभाँति प्रमाणित होता है कि अच्छी तरह ज्ञान-यौवन-सम्पन्ना होनेपर ही सीताका विवाह हुआ था। अन्य रामायणोंमें देखिये—

अध्यात्मरामायणके आदिकाण्डके छठे अध्यायमें कहा है कि मिथिलाकी राजसभामें श्रीरामचन्द्रने हँसते हुए शिव-धनुषको तोड़ डाला। राजा जनक और सारा रनवास आनन्दसे विह्वल हो गया। सीता सोनेकी माला हाथमें लिये मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे रामके समीप आयी और रामके गलेमें माला पहनाकर मानो वह एकदम प्रेमसागरमें डूब गयीं। मूल वर्णनका चमत्कार देखिये—

> सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे।
> स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता॥
> मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा।
> दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तरव्यञ्जितस्तनी॥
> रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ।

यहाँ 'स्मितवक्त्रा' और 'स्मयमाना मुदं ययौ' इन दोनों विशेषणोंसे सीताकी विवाह-कालीन अवस्थाका पर्याप्त आभास मिलता है। छः वर्षकी बालिकाके लिये ऐसी उक्तियाँ कभी नहीं कही जा सकतीं। फिर यदि इनको भी छोड़ दिया जाय अथवा कानूनके दावपेंचसे इनका दूसरा अर्थ करनेकी व्यर्थ चेष्टा की जाय तो 'वस्त्रान्तरव्यञ्जितस्तनी' विशेषणके द्वारा तो सभीको यह मानना होगा कि विवाहके समय सीता 'प्राप्तयौवना' थी और उसकी अवस्था वाल्मीकि-रामायणके अनुसार अवश्य ही 'पति-संयोग-सुलभ' हो चुकी थी, इस प्रसंगको पढ़कर कोई भी संस्कृतका विद्वान यह नहीं कह सकता कि उस समय सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी।

और देखिये, श्रीराम प्रभृति चारों भाई अपनी अपनी पत्नियोंके साथ अयोध्या लौट आये। राजमहलमें बड़ी धूमधाम है। सबके साथ मिलने-जुलनेके बाद 'देवप्रतिम राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न अपने-अपने महलोंमें अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आमोद-प्रमोद करने लगे। जैसे वैकुण्ठमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखसे बीतता है वैसे ही माता-पिताके आदरसे श्रीरामसीताका समय भी बड़े आनन्दसे बीतने लगा।'[1] अध्यात्मरामायणमें व्यासजीकी यह उक्ति वाल्मीकिजीकी उक्तिसे बिल्कुल मिलती-जुलती है हाँ, अध्यात्मरामायणमें सीताको विवाहसे पूर्व ही 'वस्त्रान्तरव्यञ्जितस्तनी' बतलाया गया है अतएव यहाँ 'रेमिरे' शब्दका अर्थ खेल-कूद करके सीताको जबरदस्ती छः वर्षके बना देनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं रही। वाल्मीकिरामायण-में अवश्यही ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया है, तथापि 'रेमिरे मुदिता रहः' एवं 'पति संयोग-सुलभं वयः' इन सब युक्तियोंसे सीताका वय यौवनोल्लसित ही सिद्ध होता है।

कल्कि-पुराण तृतीयांशके तीसरे अध्यायमें लिखा है कि मिथिलाके स्वयंवर-समारोहमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्र धनुष तोड़नेको खड़े हुए, तब जनकने उनके प्रति आदर दिखलाया और जानकीनेभी आँखोंसे उनकी पूजा की—

> स भूप परिपूजितो जनकजाक्षितैरर्चितः।
> करालकठिनं धनुः करसरोरुहे संहितम्॥

यहाँ यह देखा जाता है कि रामका उत्साह बढ़ानेके लिये सीताने कटाक्ष-पात किया, इससे सीताकी उम्रका पूरा पता न लगनेपर भी यह तो समझा ही जा सकता है

---

१ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसम्मिताः।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्व-स्व-मन्दिरे॥
मातृपितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः।
रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः॥
(अ० रामायण १।७।५२-५४)

कि उस समय उसकी उम्र छः वर्षकी कदापि नहीं थी। छः वर्षको दुधमुँही बच्ची भावी प्रियतमके प्रति कटाक्ष करे, यह किसी भी नियमसे अनुमोदित नहीं है।

देवीभागवत तीसरे स्कन्धके अठारहवें अध्यायमें कहा है—'जब यतीके भेषमें रावण सीताको हरनेके लिये आया, तब सीताके पूछनेपर उसने कहा कि 'मैं वास्तवमें यती नहीं, मैं लंकेश रावण हूँ, तुम्हारे लिये मैंने यह वेष धारण किया है, तुम मुझे वरण करो, मैंने तुम्हारे पितासे पहले भी तुमको माँगा था परन्तु शिव-धनुष-भङ्गकी बात सुनकर मैं रुद्र-चापके भयसे स्वयंवरमें नहीं गया, उसी समयसे मेरा मन तुममें लगा है और मैं तुम्हारे लिये विरहातुर हो रहा हूँ। आज तुम्हारा यहाँ वनमें रहना जानकर पूर्वानुरागसे प्रेरित हो तुम्हारे समीप आया हूँ, तुम मेरे परिश्रमको सफल करो।'[1]

छः वर्षकी कन्याको देखकर लङ्केश्वर रावणका मोहित हो जाना और उसके लिये विरहातुर होना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

पद्मपुराण पाताल खण्डके २१ वें अध्यायमें एक बड़ा ही कौतूहल-पूर्ण उपाख्यान है। एक दिन मिथिलाके बगीचेमें सखियोंके साथ घूमती हुई सीताने पेड़पर बैठे हुए शुक-दम्पतिकी मीठी बातें सुनी। शुक और शुकी रामायणके सम्बन्धमें ही बातचीत कर रहे थे। वे कुछ समय तक वाल्मीकिके तपोवनमें थे और वहाँ उन्होंने भावी रामायणका गान सुना था। आज वे उसी गानके सम्बन्धमें परस्पर आनन्दसे वार्तालाप कर रहे थे। कुछ समयतक चुपचाप सुनते रहनेपर सीताने यह समझा कि शुकमिथुन जिस सीताका नाम ले रहे हैं वह मैं ही हूँ और मिथिलामें श्रीरामके द्वारा धनुष-भङ्गकी कथा भी मेरे ही विवाह-सम्बन्धी है। तदनन्तर सीताने सखियोंके द्वारा बड़ी चालाकीसे उन दोनोंको पकड़वा लिया और वह उनसे रामके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें पूछने लगी। सीताके द्वारा राम-सम्बन्धी प्रश्नोंको सुनकर पक्षियोंने सन्देहमें भर सीतासे पूछा—

> त्वं का वा किं सु-नामात्र तव सुन्दरी यत्तु माम्।
> परिपृच्छसि वैदग्ध्याद् रामकीर्तनमादरात्॥

'हे सुन्दरी! तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है? जो तुम बड़े ही आदर और चातुर्यके साथ बारबार श्रीरामके सम्बन्धमें पूछ रही हो? तुम जानकी तो नहीं हो? सीताने कहा—

> या त्वया जानकी प्रोक्त साऽहं जनकपुत्रिका।
> स रामो माम् यदागत्य प्राप्स्यते सुमनोहरः॥
> तदा वां मोचयाम्यद्धा नान्यथा वाक्यमोहिता।
> लीलया च सुखेनास्तां मद्गृहे मधुरादकौ।

'तुम जिस जानकीकी बात कहते हो, वह जनकनन्दिनी जानकी मैं ही हूँ। जब मनोहर मूर्ति राम पधारकर मुझे ग्रहण करेंगे।' तब मैं तुम लोगोंको छोड़ दूँगी, तुम लोगोंने मीठी वाणी सुनाकर मुझे प्रलोभित कर दिया है। इस बीचमें तुम मेरे यहाँ रहकर सुखसे खाओ-खेलो।'

यदि सीताका विवाह छः वर्षकी उम्रमें हुआ था तो उपर्युक्त घटना तो उससे बहुत पहले की यानी तीन चार वर्षकी उम्रमें होनी चाहिये। परन्तु क्या इस अवस्थामें कोई लड़की 'वैदग्ध्यात्' और 'आदरात्' (पाण्डित्य और समादरके साथ) भावी पतिके सम्बन्धमें कुछ पूछ सकती है? इसप्रकार संस्कृत साहित्यके सर्वप्रधान महाकाव्य आदि-कविकृत रामायण, पुराण, उपपुराण और इतिहासोंमें सीताकी विवाहकालीन अवस्थाके विषयमें बहुतसे प्रमाण मिलते हैं। इन सब प्रमाणोंकी पर्यालोचना करनेपर किसी तरह भी यह नहीं माना जा सकता कि विवाहके अवसर-पर सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी।

रही सीताकी उस उक्तिकी बात, जो उसने रावणके प्रति कही है कि विवाहके बाद बारह वर्षतक मैं ससुरालमें रही। वनमें आई तब मेरी उम्र अठारह वर्षकी थी। इस उक्तिके अनुसार विवाहके समय सीताकी उम्र छः वर्षकी माननी पड़ती है, परन्तु ऐसा माननेसे उपर्युक्त उद्धृत श्लोकोंके साथ कुछ भी मेल नहीं खाता, अतएव यहाँ पाठक स्वयं विचार करके निर्णय करें कि रामायणके इन परस्परविरोधी स्थलोंमें कौनसा ग्राह्य और कौनसा त्याज्य है!

---

[1] लङ्केशोऽहं मरालाक्षि! × × ॥
त्वत्कृते तु कृतं रूपं मयेदं शोभनाकृते!॥
× × × × ×
पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽबले।
जनको मामुवाचेदं पणबन्धो मया कृतः॥
रुद्र-चाप भयाच्चाहं सम्प्राप्तस्तु स्वयंवरे।
मनो मे संस्थितां तावत्त्वमयं विरहातुरम्॥
वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः।
आगतोऽस्म्यसितापाङ्गि! सफलं कुरु मे श्रमम्॥
(५२।५७–५९)

श्रीरामचरितमानस-पात्र-परिचय

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया)

अकम्पन—रावणका मामा और उसका सेनापति था, लङ्काके युद्धमें महावीर हनूमान्‌जीद्वारा मारा गया था। इसके प्रहस्त और धूम्राक्ष दो भाई थे, पिताका नाम सुमाली और माताका नाम केतुमाली था। दो बहनें थीं—रावणकी माता केकसी और दूसरी कुम्भीनसी।

अगस्त्य—महर्षि मित्रावरुणके पुत्र थे, इनका पहला नाम मान था। विन्ध्यपर्वतके अहङ्कारको चूर्ण करनेके कारण इनका नाम अगस्त्य पड़ा। महर्षि वरुण आदित्यके यज्ञमें एक बार निमन्त्रित होकर गये थे, वहाँ उर्वशीको देखकर उनका रेतःपात हो गया था, उस रेतका जो भाग कुम्भमें पड़ा, उससे इनकी उत्पत्ति हुई, इसीलिये इन्हें कुम्भज भी कहते हैं। वृत्रासुरके मरनेके पश्चात् कालकेयादि राक्षस समुद्रमें जा छिपे और वहाँसे निकलकर मुनियोंको त्रास देने लगे। इन्होंने देवताओंके आग्रहसे समुद्र पानकर उन राक्षसोंका नाश करा दिया था। आपने ही राजा नहुषको शाप देकर इन्द्रत्वसे च्युत करके सर्प-योनिमें भेज दिया था। इनकी पतिव्रता पत्नीका नाम लोपामुद्रा था। भगवान् राम वनवासके समय इनके आश्रममें गये थे।

अङ्गद—वानरराज वालिके पुत्र थे। श्रीरामचन्द्रजीने वालिको मारकर सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठाया और अङ्गदको युवराज बनाया था। अङ्गदकी माताका नाम तारा था। आप रामचन्द्रजीके दूत बनकर रावणकी सभामें गये थे और वहाँ अपना पद रोपा था, जिसे कोई नहीं हटा सका था। सुग्रीवकी सेनाके साथ लङ्कामें जाकर, इन्होंने अपनी वीरताका परिचय दिया था। एक दिन युद्धमें अङ्गदने इन्द्रजीतको भी हराया था।

अज—अयोध्याके सूर्यवंशी राजा रघुके पुत्र थे। विदर्भ राजकी कन्या इन्दुमतीने स्वयंवर-प्रथाके अनुसार अजको अपना पति बनाया था। विवाहोपरान्त जब इन्दुमतीको लेकर वे जा रहे थे तो राहमें स्वयंवरमें विफलमनोरथ राजाओंने बलपूर्वक इन्दुमतीको छीनना चाहा। युद्ध होने लगा और अन्तमें सबको सम्मोहन-मन्त्रसे अचेतकर आप इन्दुमतीको लेकर अयोध्या गये।

अक्षयकुमार—मन्दोदरीके गर्भसे रावणका पुत्र था। यह मेघनादसे छोटा था। श्रीसीताजीके खोजनेके लिये जब हनूमान्‌जी लङ्का गये थे और रावणके प्रमोद-वनका नाश करना प्रारम्भ किया था, उसी अवसरपर रावणने अक्षयकुमारको हनूमान्‌को पकड़नेके लिये भेजा था। वहीं यह हनूमान्‌जीके द्वारा मारा गया था।

अञ्जनी—केसरी वानरराजकी पत्नी थीं। इसीके गर्भसे श्रीहनूमान्‌जीका जन्म हुआ था। पूर्व जन्ममें यह पुञ्जिकस्थला नाम्नी अप्सरा थी। शापवश वानरी होकर सुमेरु पर्वतपर रहती थी।

अत्रि—ब्रह्माके मानस पुत्र हैं, सप्तर्षियोंमें इनकी भी गणना होती है, कर्दम प्रजापतिकी कन्या अनसूया इनकी स्त्री थी। श्रीदत्तात्रेय, महर्षि दुर्वासा और चन्द्रमा इनके पुत्र हैं। ये दस प्रजापतियोंमें एक प्रजापति भी माने जाते हैं। ये धर्मशास्त्र-प्रवर्त्तक हुए हैं, इनका बनाया धर्मशास्त्र अत्रिसंहिताके नामसे प्रचलित है। भगवान् रामचन्द्रजी इनके आश्रममें गये थे।

अनसूया—कर्दम प्रजापतिकी कन्या और महर्षि अत्रिकी सती साध्वी पत्नी थीं। इनकी माताका नाम प्रसूति था। अत्रि-ऋषिके आश्रममें जब वनवासके अवसरपर श्रीरामचन्द्रजी गये थे तो अनसूयाने श्रीसीताजीको पातिव्रत-धर्मकी महत्तापर उपदेश दिया था।

अरुन्धती—कर्दम प्रजापतिकी कन्या थी और वशिष्ठ मुनिको ब्याही गयी थी।

अहल्या—महर्षि गौतमकी पत्नी थीं। इनके पिताका नाम वृद्धाश्व था। ये अत्यन्त रूपवती थीं इसीलिये देवराज इन्द्रने गौतम ऋषिका रूप धारणकर इनका धर्म नष्ट किया था। गौतमने शाप देकर अहल्याको पाषाण बना दिया था। श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे अहल्याकी पाषाणत्वसे मुक्ति हुई थी।

ऊर्मिला—सीरध्वज जनककी कन्या थी, इनका विवाह लक्ष्मणजीके साथ हुआ था।

कपिल—कर्दम-ऋषिके पुत्र थे। इनकी माता देवहूती थीं। ये सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक हैं। इन्हींके शापसे सगर राजाके साठ हजार पुत्र भस्म हो गये थे।

कबन्ध—कश्यप और उनकी स्त्री दनुसे इसकी उत्पत्ति हुई थी, यह पूर्वजन्ममें गन्धर्व था। एक बार स्थूलशिरा ऋषि इसके गानपर अप्रसन्न हुए, तब इसने हँस दिया था। इसीसे ऋषिने इसे राक्षस होनेका शाप दे दिया। ब्रह्माकी तपस्या कर इसने दीर्घायु होनेका वर प्राप्त किया था। वरके गर्वसे यह सदा इन्द्रका अपमान किया करता था, इन्द्रने क्रुद्ध होकर इसके ऊपर वज्रप्रहार किया और इसके उरु, मुख और मस्तकको तोड़ दिया, पुनः इसके विनय करनेपर इसकी भुजाओंको योजनपरिमित दीर्घ कर दिया और इसके पेटके अन्दर तीक्ष्ण दाँतयुक्त मुँह बना दिया था, तबसे यह दण्डकारण्यमें रहने लगा और सिंह व्याघ्रादिको पकड़-पकड़कर खाने लगा। जब श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें आये तो इसकी भुजाओंको काटकर इसे मुक्त कर दिया। विनय करनेपर स्थूलशिराने ही यह वरदान भी दे दिया था कि श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बाहें काटी जानेपर तुम मुक्त हो जाओगे।

कश्यप—ब्रह्माके मानस-पुत्र हैं। यह एक प्रसिद्ध ऋषि हो गये हैं। दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ इन्हें ब्याही गयी थीं, जिनसे सब जगत्‌की उत्पत्ति मानी जाती है

काकभुशुण्डि—राम-भक्त वायस थे। इनके पिता अलम्बुसादेवीके वाहन चन्द्र नाम काक और माता हंसिनी थी। काकभुशुण्डिजी इक्कीस भाई थे, जिनमें सभी मर गये, केवल यही चिरजीवी हुए। पूर्व जन्ममें यह अयोध्यावासी शूद्र थे। एक बार शङ्करकी पूजा करते समय इनके गुरु आ गये और इन्होंने उनका सत्कार नहीं किया अतः ये शिव-शापसे सर्प हो गये, पुनः शिव तथा गुरुकी कृपासे सगुणरूप रामके उपासक ब्राह्मण हुए, तत्पश्चात् लोमश-ऋषिके शापसे इन्हें काक-योनि प्राप्त हुई।

कालनेमि—यह रावणका चचा एक राक्षस था। मेघनादके शक्तिबाणसे लक्ष्मणजीके मूर्छित होनेपर श्रीहनूमान्‌जी जब सजीवन-मूल लानेके लिये गये थे, उसी समय रावणने भी कालनेमिको सिखाकर भेजा था कि वह हनूमान्‌जीको रास्तेहीमें सूर्योदयतक रोक रक्खे। वह कपट-मुनिके वेषमें सुन्दर जलाशय और वाटिकासे युक्त मायाका आश्रम बना कर बैठ गया। हनूमान्‌जी जल पीने जलाशयमें गये और वहाँ मकरी-अप्सराके द्वारा सब भेद जानकर कालनेमिको पूँछमें लपेटकर पृथ्वीपर पटक दिया। इसप्रकार कालनेमिकी मृत्यु हुई।

कुम्भकर्ण—महाभोजी, महाकाय, राक्षस रावणका छोटा भाई था। इसके पिता विश्रवा मुनि और माता कैकसी थी। इसकी स्त्री (बलिकी दौहित्री) वृत्रज्वाला थी। इसने अति उग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया था परन्तु अन्तमें सरस्वतीकी प्रेरणासे वर माँगते समय छः मास सोनेके लिये और एक दिन भोजनके लिये जगनेका वर माँगा था। यह महा पराक्रमी था, युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारा गया।

कुवेर—चौथे लोकपाल हैं। धनके देवता हैं। अलकापुरी इनकी राजधानी है। यह रावणके सौतेले भाई हैं, पहले लंकामें रहते थे। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत होनेके कारण कुवेर नाम पड़ा। इनके पिता विश्रवा मुनि और माता भरद्वाजकी कन्या देववर्णिनी थी। ये यक्ष-जातिके अध्यक्ष हैं।

कुश—श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माता जानकीजीने इन्हें श्रीवाल्मीकि-मुनिके आश्रममें प्रसव किया था, वहीं इनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा हुई थी। श्रीरामजीके अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर कुश और इनके छोटे भाई लवने वाल्मीकीय रामायणका गानकर सारी सभाको मन्त्र-मुग्ध कर दिया था। इन्हें कुशावती नगरीका राज्य दिया गया था। श्रीरामचन्द्रजीके वैकुण्ठ जानेपर अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवी कुशके शयनागारमें उपस्थित हुई थी और अयोध्याकी दुर्दशा कहकर इनसे कुशावती छोड़कर अयोध्या जानेका निवेदन किया था, अतः यह अयोध्या चले आये और वहीं राज्य करने लगे।

केसरी—वानरराज थे, इनकी स्त्री अञ्जनाके गर्भसे हनूमान्‌जीका जन्म हुआ था।

केहरि—एक वानर था।

कैकसी—रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी माता थी। इसके पिता सुमाली और माता केतुमाली पातालमें रहते थे, कुबेरको लंकामें देखकर ईर्ष्यावश इन्होंने अपनी कन्या कैकसीको विश्रवा-मुनिके प्रति इस उद्देश्यसे अर्पण किया था कि उससे कुबेरसे भी अधिक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो।

कैकेयी—केकय-देशके राजाकी कन्या अत्यन्त सुन्दरी और बुद्धिमती थी। राजा दशरथको ब्याही गयी थी। भरतजी इसीके पुत्र थे। इसने एक बार राजाकी युद्धमें रक्षाकर दो वर प्राप्त किये थे उन्हीं वरोंसे इसने अपनी दासी मन्थराकी अनुमतिसे श्रीरामचन्द्रजीको वनवास और भरतको राज्याभिषेक राजासे माँगा था।

कौसल्या—दक्षिण कोसलराजकी कन्या थीं। राजा दशरथकी सबसे बड़ी रानी थीं। इन्हींके गर्भसे विष्णुभगवान् रामचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए थे। जब रावणको मालूम हुआ कि कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले रामसे मैं मारा जाऊँगा तब उसने बालिका कौसल्याको हरण करके एक सन्दूकमें बन्दकर वह सन्दूक राघव नामक मछलीको दे दी। भवितव्यकी रक्षाके लिये ब्रह्माने रावणका रूप धारणकर उस मछलीसे सन्दूक माँगकर वनमें छोड़ दी, वह सुमन्तको मिली और उसने कौसल्याको राजा दशरथके अर्पण किया।

खर—रावणका सौतेला भाई था। सुमाली राक्षसकी कन्या राका इसकी माता थी, पिता विश्रवा मुनि थे। रावणने इसे जनस्थानका प्रान्ताधीश बनाया था। इसके साथ चौदह हजार सेना थी। लक्ष्मणजीने जब शूर्पणखाके नाक कान काट लिये थे तब इसने श्रीराम-लक्ष्मणसे युद्ध किया था और रामजी द्वारा मारा गया था।

गणेश—(गणपतिजी) श्रीमहादेवके पुत्र हैं, इनकी माता पार्वती हैं। विष्णुके वरसे इनकी अग्रपूजा होती है। ये श्रीरामनामकी महिमाको भलीभाँति जाननेवाले और महाभारतको लिपिबद्ध करनेवाले हैं।

गरुड़—पिता कश्यप और माता विनतासे आपका जन्म हुआ। आप पक्षिराज हैं। विष्णु भगवान्‌के वाहन हैं। श्रीरामचन्द्रजी जब मेघनादके द्वारा नागपाशसे बाँधे गये थे, तो गरुड़ने ही उन्हें उस पाशसे मुक्त किया था।

गालव—विश्वामित्रके प्रिय शिष्य थे। स्वयं एक प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं। इन्होंने अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये बड़ा आग्रह किया था। विश्वामित्रजीने रुष्ट हो ८०० श्याम-कर्ण घोड़े इनसे माँगे, जिन्हें प्राप्त करनेमें इनको दारुण कष्ट सहना पड़ा था किन्तु अन्तमें ये दक्षिणा चुका गुरु-ऋणसे मुक्त हुए।

गुहक—निषादराज, शृङ्गवेरपुरका अनार्य राजा था। राजा दशरथसे इसकी मित्रता थी, यह रामका भक्त था। इसने वनवासमें श्रीरामकी बहुत सेवा की थी। पूर्व जन्ममें यह व्याध था। शङ्करकी कृपासे इसे रामसेवाका अवसर प्राप्त हुआ था।

गैन्द—श्रीरामचन्द्रजीका सेवक एक बड़ा वानर था।

गौतम—एक ऋषि थे, इन्हींकी पत्नी अहल्या थी। इनका न्यायदर्शन प्रसिद्ध है, ये आन्वीक्षिकी विद्याके प्रथम प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अपने न्यायदर्शनमें प्रमाण-प्रमेय आदि सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति बतलायी है। इन्होंने केवल दश ही दिनोंमें इस दर्शनका प्रणयन किया था।

जटायु—सूर्यके सारथी अरुण और माता श्येनीके गर्भसे जटायु उत्पन्न हुआ था। यह गृध्र पक्षी था। राजा दशरथका परम मित्र था। सीताहरण करके ले जाते समय रावणको इसने रोका था और वृद्ध होनेपर भी उससे युद्ध किया था, अन्तमें रावणके खड्गाघातसे घायल हो गिर पड़ा था, जब श्रीरामचन्द्र जी सीताकी खोजमें लक्ष्मणको साथ लिये हुए आये और जटायुको इस दशामें देखा तो बहुत व्याकुल हुए। श्रीरामजीकी गोदमें सिर रक्खे हुए जटायु परमधामको प्राप्त हुआ।

जमदग्नि—महर्षि ऋचीकके पुत्र थे। राजा प्रसेनजित्‌की पुत्री रेणुकाके साथ इनका विवाह हुआ था, इनके पाँच पुत्र हुए, सबसे छोटे परशुराम थे।

जयन्त—देवराज इन्द्रका पुत्र था। इसने काकरूप धारणकर अपनी चोंचसे श्रीजानकीजीको घायल कर दिया था और जब श्रीरामचन्द्रजीने इसके ऊपर बाण चलाया था तब यह तीनों लोकोंमें प्राण बचानेके लिये भागा किन्तु किसीने इसे आश्रय नहीं दिया। अन्तमें हारकर श्रीरामजीके-शरणमें गया, रामचन्द्रजीने इसके प्राण तो नहीं लिये पर एक आँख फोड़ दी।

जाम्बवन्त—ऋक्षराज थे, ब्रह्माके पुत्र थे। यह महाबली थे और सुग्रीवके सेनापति होकर इन्होंने श्रीरामचन्द्रकी सहायता की थी। राम-भक्तोंमें इनकी भी खासी प्रसिद्धि है।

ताड़का—सुकेतु नामक यक्षकी पुत्री थी। (मलद और करूष-देशके राजा) सुन्दको ब्याही गयी थी। मारीच और सुबाहु इसके पुत्र थे। जब अगस्त्य-मुनिके शापसे सुन्द मारा

गया तो यह क्रुद्ध होकर ऋषियोंको सताने लगी, इसपर मुनिने शाप दिया, जिससे यह राक्षसी हो गयी। तबसे यह तपोभूमिमें रहकर ऋषियोंके यज्ञ भ्रष्ट करने लगी, विश्वामित्रजीके मख-रक्षार्थ आये हुए श्रीरामजीके द्वारा यह मारी गयी।

तारा—सुषेण वानरकी कन्या थी, कपिराज बालिको ब्याही गयी थी। अंगद इसका पुत्र था।

त्रिजटा—रावणके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक राक्षसी थी, यह श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति करती थी। रावणकी ओरसे सीताजीकी सेवामें अशोक-वाटिकामें रहती थी। अन्य राक्षसियोंकी भाँति सीताजीके प्रति क्रूर व्यवहार न करके प्रेमका बर्ताव करती और उन्हें सान्त्वना देती थी।

दक्ष—दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे, इन्हें प्रजा-सृष्टिका अधिकार मिला था। इनके मनुकन्या प्रसूतिसे १६ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। १३ कन्याएँ धर्मको, एक चन्द्रको, एक कश्यपको और सती नामकी सबसे प्यारी कन्या शिवको ब्याही गयी थी। दक्षके शिवरहित यज्ञमें सतीने देह त्याग किया था।

दशरथ—सूर्यवंशी महाराजा अज और विदर्भराजकी कन्या इन्दुमतीसे इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनके कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन पटरानियाँ, और तीन सौ साठ अन्य रानियाँ थीं। पटरानियोंसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चार पुत्र हुए थे। इनके पहले शान्ता नामकी एक कन्या थी जिसको इन्होंने अपने मित्र अङ्गदेशाधिपति रोमपादको दत्तकरूपसे दे दिया था और उन्होंने उसे ऋष्यशृङ्गको प्रदान किया था। महाराज दशरथने एक बार आखेट खेलते समय अन्धमुनिके पुत्र श्रवणको हाथीके भ्रमसे शब्दभेदी बाणसे मार डाला, जब अन्धमुनिको यह बात मालूम हुई तो वे बड़े ही बेचैन हुए और राजाको शाप दिया कि हमें जिसप्रकार पुत्रवियोगमें व्याकुल होकर मरना पड़ता है वैसे ही तू भी पुत्रवियोगमें तड़प-तड़पकर मर जायगा। इसी शापके परिणाम-स्वरूप कैकेयीने जब राम-वनवासका वरदान मांगा और रामचन्द्रजी अयोध्या छोड़कर वन गये तो राजा दशरथ उनके वियोगको न सह सके और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

दिलीप—सूर्यवंशी राजा थे, इनकी स्त्री सुदक्षिणा थी। राजा दिलीपके विषयमें एक कथा है कि एक बार स्वर्गसे आते समय इन्हें मार्गमें कामधेनु मिली, उसका दिलीपने अभिवादन नहीं किया, अतः उसने शाप दे दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनीकी सेवा किये बिना तुम्हारे पुत्र नहीं होगा। बहुत दिनोंतक राजाको कोई सन्तान नहीं हुई। अन्तमें वे रानीको साथ ले वशिष्ठजीके आश्रममें गये और वहाँ नन्दिनीकी सेवाकर उसके आशीर्वादसे रघुको पुत्ररूपेण प्राप्त किया।

द्विविद—सुग्रीवका मित्र एक वानर था, इसमें एक हजार हाथीका बल था।

दुन्दुभि—यह महिषाकार दानव था। बालिद्वारा मारा गया था। इसकी अस्थियोंको रघुनाथजीने अपने बायें चरणके प्रहारसे नष्ट कर दिया था। इसके सिरको बालिने ऋष्यमूक-पर्वतपर फेंक दिया था, जहाँ मतङ्ग ऋषि रहते थे। वहाँ रुधिरकी धारा प्रवाहित होते देख ऋषिने बालिको शाप दिया था कि यदि वह उस पर्वतपर जायगा तो भस्म हो जायगा।

दुर्मुख—रामकी सेनाका एक वानर था।

दूषण—खरका भाई और रावणका सेनापति था। इसके अधीन पाँच हजार सेना थी। यह दण्डकारण्यमें रहता था और रामद्वारा मारा गया था।

नल-नील—ये दोनों वानर क्रमसे विश्वकर्मा और अग्निके पुत्र थे। श्रीरामकी सेनामें रहते थे। इन्होंने समुद्रके ऊपर पाषाणका सेतु बाँधा था। इनके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है कि जब ये छोटे बालक थे तब समुद्रके किनारे खेलते-खेलते ऋषि-मुनियोंके आश्रमसे शालग्राम आदि पाषाणकी मूर्तियाँ लाकर समुद्रमें डाल देते थे। इसप्रकार मूर्तियोंके खो जानेपर मुनि लोग नल-नीलको बालक जान क्रोधित नहीं होते और न दण्ड ही देते थे। हाँ, एक दिन एक मुनिने इतना कह दिया कि 'जाओ, तुम लोगोंके हाथसे स्पर्श किया हुआ पाषाण जलमें नहीं डूबेगा।' मुनियोंने इसप्रकार अपने उपास्य मूर्तिकी रक्षा की और उनके आशीर्वादसे नल-नीलने सेतु बाँध अपने उपास्य-देवकी सेवा की।

नारद—देवर्षि नारद ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। दक्षप्रजापतिके पुत्रोंको इन्होंने जगत्‌से विरक्त कर दिया था, इस कारण दक्षने इनको शापसे नष्ट कर दिया। पुनः ब्रह्माके निवेदन करनेपर उन्होंने कश्यपको एक कन्या प्रदान की, जिससे नारद उत्पन्न हुए। इनके विषयमें भागवतमें कहा गया है

कि पूर्वजन्ममें यह दासीपुत्र थे, इनकी माता ऋषियोंकी सेवा करती थी, बाल्यकालसे ही इन्हें ऋषि-उपदेश और प्रसाद प्राप्त होता रहा। जब इनकी माता सर्प-दंशसे मर गयी तो इन्होंने ऋषियोंकी आज्ञा ले तपस्या की और शरीर त्याग करनेके बाद ब्रह्माके मानस पुत्र और महान् भगवद्भक्त हुए।

पनस—(१) रामदलका एक वानर। (२) विभीषणके चार मन्त्रियोंमेंसे एक।

परशुराम—पिता जमदग्नि और माता रेणुकासे इनकी उत्पत्ति हुई थी। विष्णुके दश अवतारोंमें एक यह भी हैं। राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन एक बार जमदग्निके आश्रममें आये थे, वहाँ कामधेनुको देख प्रलुब्ध हो उसे हरणकर ले गये। तब परशुरामजी कामधेनुको लाने गये और कार्तवीर्य-को युद्धमें मार उसे छीन लाये। इसके प्रतिकारमें कार्तवीर्य-के पुत्रोंने जमदग्निको मार डाला तब परशुरामजीने २१ बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया। धनुष-यज्ञके अवसरपर जनक-पुरमें इन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको विष्णुका धनुष चढ़ानेके लिये दिया और उसके चढ़ाते ही आप अत्यन्त विस्मित हो श्रीरामकी स्तुतिकर वनमें तप करने चले गये।

पार्वती—पिता हिमालय और माता मैनासे पार्वतीका जन्म हुआ, इनका विवाह शिवजीसे हुआ। इनकी शिवजीके प्रति अनन्यता आदर्श है। गणेश और स्वामि कार्तिकेय इनके दो पुत्र थे।

प्रहस्त—रावणका सेनापति था। यह रावणके सामने अपनी वीरताकी डींग हाँका करता था। युद्धमें मारा गया।

पुलस्त्य—ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। रावणके पितामह थे। इनकी गणना सप्तर्षियोंमें होती है।

बालि—यह देवराज इन्द्र, और ब्रह्माके अश्रुसे उत्पन्न एक वानरीसे उत्पन्न हुआ था। यह किष्किन्धाका राजा था इसको ब्रह्माका वरदान था कि युद्धमें प्रतिद्वन्द्वीका आधा बल हर लेगा। सुग्रीव इसका सहोदर भाई था, उसके साथ अनीति करनेके कारण रामजीद्वारा मारा गया।

भरद्वाज—भरद्वाज-ऋषिके पिता बृहस्पति, माता ममता थी। प्रयागमें इनका आश्रम था, दुष्यन्त-पुत्र राजा भरतने इन्हें पाला था।

भरत—दशरथके पुत्र थे, इनकी माता कैकेयी और मामा युधाजित थे, इनकी पत्नी माण्डवी थी। इनकी राम-भक्ति भक्तोंके लिये परम आदर्श है।

भानुप्रताप—काश्मीरके निकट केकय-देशका राजा था। इसका पिता सत्यकेतु, भाई अरिमर्दन और मन्त्री धर्मरुचि था। इसने राजा कालकेतुका राज्य हरण किया था। प्रतिहिंसाके विचारसे कालकेतु छल करके राजाके यहाँ रहा और छलसे ब्राह्मणोंको नरमांस भोजन कराया, तब ब्राह्मणोंने प्रतापभानुको शाप दिया कि तू राक्षस-योनिमें जन्म ले। इसी कारण वह रावण होकर उत्पन्न हुआ।

भृगु—इनकी उत्पत्ति ब्रह्मासे हुई थी। यह महादेवके दत्तकपुत्र थे। इन्होंने परीक्षार्थ विष्णु भगवान्के हृदयमें लात मारी थी।

मतङ्ग—ऋष्यमूक-पर्वतपर रहनेवाले एक ऋषि थे, शबरीको भक्तिका उपदेश इन्हींसे प्राप्त हुआ था।

मनु—ब्रह्माके पुत्र और मनुष्य-जातिके आदि पुरुष हैं, इनकी स्त्री शतरूपा है, यही दशरथ हुए थे।

मन्थरा—महारानी कैकेयीकी दासी थी, इसीकी सम्मतिसे कैकेयीने रामके लिये वनवासका वरदान माँगा था। मन्थरा कैकेयीके साथ केकय-देशसे आयी थी।

मन्दोदरी—पिता मयदानव और माता हेमा अप्सरासे मन्दोदरीका जन्म हुआ था। यह रावणकी धर्मशीला पत्नी थी। मेघनाद और अक्षयकुमार इसके दो पुत्र थे। यह प्रसिद्ध पतिव्रता है।

माण्डवी—राजा जनकके भाई कुशकेतुकी कन्या—भरतको ब्याही थी, इसके तक्ष और पुष्कर दो पुत्र थे।

मारीच—ताड़का राक्षसीका पुत्र था। इसका पिता सुन्द यक्ष था। विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके समय रामजीके बाणसे यह समुद्रके किनारे जा गिरा था, पुनः रावणकी प्रेरणासे कपटमृगका रूप धारणकर सीताहरणका कारण बना और श्रीरामजीद्वारा मारा गया।

मेघनाद-(इन्द्रजीत)—रावणका पुत्र था, इसकी माता मन्दोदरी थी। साध्वी सुलोचना इसकी स्त्री थी। एक समय इन्द्रने युद्धमें रावणको बाँध लिया था, फिर मेघनादने इन्द्रसे युद्धकर पिताको छुड़ाया और इन्द्रको बाँधकर लाया था। इसको वर था कि वह बारह वर्षतक निद्रा, नारीको त्यागकर केवल फल अशन करनेवालेके हाथसे मारा जायगा। अतः इसको युद्धमें लक्ष्मणजीने मार डाला।

मैनावती—हिमवानकी पत्नी और पार्वतीकी माता थी।

रम्भ—रामदलका एक वानर था।

रघु—अयोध्याके प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे। इन्हींके नामसे रघुवंश चला। ये बड़े प्रतापी और शूरवीर थे, इन्होंने इन्द्रको हराया था, इनके पिता दिलीप और पुत्र अजये।

राम—अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी कौसल्याके गर्भसे अवधमें अवतीर्ण हुए थे। आपके पिता दशरथ, पुत्र लव और कुश, भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा पत्नी जनकनन्दिनी श्रीसीताजी थीं।

रावण—विश्रवा मुनिका पुत्र था। इसकी माता कैकसी, स्त्री मन्दोदरी थी। इसने उत्कट तपस्याके बलसे ब्रह्मा और शिवसे अनेक वरदान प्राप्त किये थे। एक वरदानके द्वारा इसकी मृत्यु नर और वानरके अतिरिक्त किसीसे भी नहीं हो सकती थी। रामजीने इसको मारा। पूर्व जन्ममें यह जय नामक विष्णुका द्वारपाल था, दूसरे जन्ममें भानुप्रताप राजा भी यही था। कुबेरके पुष्पक-विमानपर बैठकर रावण जब आकाशमार्गसे आता हुआ कैलाशके निकट आया तब नन्दीश्वरने इसे कैलाश पार करनेसे मना किया। नन्दीश्वरकी वानर जैसी-मुखाकृति देखकर यह हँस दिया। इसपर उसने शाप दिया कि जाओ, वानरोंके द्वारा ही तुम्हारा नाश होगा!

रेणुका—यह राजा प्रसेनजितकी कन्या थी। जमदग्निकी पत्नी थी। परशुरामावतार इन्हींके गर्भसे हुआ।

लव—श्रीरामके छोटे पुत्र थे। इनकी माता सीता थीं। वाल्मीकिके आश्रममें इनका जन्म हुआ था, ये उत्तर कोसलके अन्तर्गत श्रावस्तीपुरीके राजा थे।

लवणासुर—मधुराक्षस और रावणकी मौसी कुँभीनसीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई थी। पितृप्रदत्त शूलके प्रभावसे, यह दानव, देव और मनुष्य सबसे अजेय था। इसने राजा मान्धाताको मारा था। यह ऋषियोंपर बड़ा अत्याचार करता था। श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको भेजकर इसका विनाश कराया।

लक्ष्मण—श्रीरामके भाई लक्ष्मण शेषके अवतार थे। इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, पत्नी उर्मिला, पुत्र अङ्गद और चित्रकेतु थे। श्रीरामकी सेवामें इन्होंने उनके साथ वन-गमन किया था। ये अनन्य राम-सेवक थे।

लोमश—एक प्रख्यात अमर ऋषि हैं। आप काकभुशुण्डीजीके गुरु हैं।

लंकिनी—भूलोकवासिनी राक्षसी लंकामें रहती थी। हनूमान्‌जी सीताको खोजने जब लंकामें घुसे थे तब इस राक्षसीने उन्हें रोका था और हनूमान्‌जीने इसे एक घूसा मारा था।

वशिष्ठ—ब्रह्माके श्वाससे उत्पन्न हुए थे, कर्दम-ऋषिकी कन्या अरुन्धतीसे इनका विवाह हुआ था। ये सप्तर्षियोंमें एक हैं, रघुवंशके कुलगुरु हैं। प्रसिद्ध पाराशर ऋषि, इनकी पुत्रवधू अदृश्य-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

वाल्मीकि—आदिकवि थे। इन्होंने रामावतारके पूर्व ही दिव्य दृष्टिसे रामायणकी रचना की थी। जब श्रीरामजीने सीताको निर्वासित किया था तो उसे इन्हींके आश्रममें आश्रय मिला था। यह पहले दस्यु थे, भगवद्भक्तोंकी कृपा तथा राम-नाम जपके प्रभावसे परमभक्त हो गये।

विभीषण—रावणका भाई था, इसके पिता विश्रवा, माता कैकसी, पत्नी (शैलुष-गन्धर्वकी कन्या) सरमा थी, यह श्रीरामका शरणागत भक्त था। रावणके मरनेके बाद लङ्काका राजा हुआ।

विराध—एक विद्याधर था, जो दुर्वासाके शापसे राक्षसयोनिको प्राप्त होकर चित्रकूटके दक्षिण वनमें रहता था, श्रीरामके हाथ मारा गया था।

विश्रवा—रावणादि तीनों भाई, खर, शूर्पणखा और कुबेरका पिता था, यह पुलस्त्यका पुत्र था, इसकी माता दक्षकन्या पृथ्वी, स्त्री देववर्णिनी, कैकसी, राका और मालिनी थीं।

विश्वामित्र—(कौशिक-गाधितनय)-कान्यकुब्जके पुरुवंशके गाधि राजाके पुत्र थे। इन्होंने क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर भी अपने तपोबलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। इनकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा वर्णन है कि गाधिराजकी कन्या सत्यवती ऋचीक-ऋषिको ब्याही थी, गाधिराज और ऋचीकके कोई सन्तान न थी इसलिये ऋचीकने यज्ञावशेष चरुके दो भाग किये। एकके साथ ब्राह्मण-सन्तानका और दूसरेके साथ क्षत्रिय-सन्तानका आशीर्वाद था। दोनों चरु ऋचीकने अपनी पत्नीको देकर ब्राह्मणवाला चरु उसे खानेके लिये तथा दूसरा चरु गाधिराजकी स्त्रीको खानेके लिये कहा। गाधिराजकी स्त्रीने सोचा कि कदाचित् सत्यवतीका चरु अधिक श्रेष्ठ होगा क्योंकि उसके स्वामीने

तैयार किया है, इसलिये छलसे उसने उसके चरुको अपने लिये ले लिया और अपना उसे दे दिया। फलस्वरूप गाधिराज-पत्नीके विश्वामित्र (जो आगे चलकर ब्राह्मण हुए) और सत्यवतीके जमदग्नि हुए, जो ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्र-गुणसे युक्त थे।

शतरूपा—ब्रह्माके बायें हाथसे उत्पन्न हुई थी। स्वायम्भुव मनुकी पत्नी थी। श्रीनारायणको पुत्ररूपसे प्राप्त करनेके लिये इसने बड़ी तपस्या की थी और यही कौसल्यारूपमें अवतरित हुई थी।

शत्रुघ्न—श्रीलक्ष्मणजीके छोटे भाई थे, इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, स्त्री श्रुतिकीर्ति, पुत्र सुबाहु और शूरसेन थे। यह श्रीभरतजीके अनन्य भक्त थे। मधु नामक राक्षसको मारकर मथुरापुरीको इन्होंने ही बसाया था।

शरभ—राम-सेनाका एक यूथपति वानर था।

शरभंग—एक ऋषि थे। दण्डकारण्यमें रहते थे, श्रीरामके परम भक्त थे। इन्होंने श्रीरामका दर्शनकर अपना शरीर त्याग किया था।

शबरी—एक भील-कन्या (वा एक तपस्विनी) थी। मतङ्ग-ऋषिसे इसने ज्ञानोपदेश प्राप्त किया था। यह तपस्विनी भगवान् रामके दर्शनार्थ वनमें तपस्या करती थी, इसने श्रीरामके आनेपर उनकी यथोचित सेवा की और उन्हें वन-फल भोजन कराया था।

शान्ता—राजा दशरथकी कन्या थी। इसको राजाने अपने मित्र अङ्गाधिराज लोमपादको पोष्यपुत्रिकाके रूपमें दिया था। पीछे यह महर्षि ऋष्यशृङ्गके साथ ब्याही गयी थी।

शुक—रावणका एक दूत था।

शृङ्गी—ऋष्यशृङ्ग प्रसिद्ध तपस्वी थे। शमीक अथवा विभाण्डक ऋषिके पुत्र थे, इनकी स्त्री शान्ता थी। राजा दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञका सम्पादन करनेके लिये इनको अयोध्या बुलाया था। इनके आशीर्वादसे राजाको चार पुत्र हुए।

श्रुतिकीर्ति—साकल्यके राजा कुशध्वजकी कन्या थी। शत्रुघ्नको ब्याही गयी थी, इसके सुबाहु और शूरसेन दो पुत्र थे।

सगर—सूर्यवंशी राजा बाहुकके पुत्र थे। इनके दो रानियाँ थीं—सुमति और केशिनी। केशिनीसे असमञ्जस, और सुमतिसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। सगर बड़े प्रतापी राजा हुए हैं, इन्होंने अनेक यज्ञ किये। एक बार इन्द्र ईर्ष्यावश इनके यज्ञाश्वको चुराकर कपिल-मुनिके आश्रममें बाँध आये। सगरके साठ हजार पुत्र उस अश्वको खोजते हुए कपिलके आश्रममें पहुँचे और चोर समझकर उनके लात मारी। मुनिका ध्यान भङ्ग हुआ और उन्होंने शाप देकर सबको भस्म कर दिया। पीछे इसी वंशमें भगीरथ उत्पन्न हुए जो तपस्या करके गंगाजीको लाये और उनका उद्धार किया।

सती—दक्ष प्रजापतिकी कन्या शिवको ब्याही गयी थी। किसी समय शिवजीसे दक्षप्रजापतिकी अनबन हो गयी, इसलिये उन्होंने अपने यज्ञमें शिवको आमन्त्रित नहीं किया। सती शिवकी आज्ञा बिना ही उस यज्ञमें गयी और वहाँ दक्षके मुँहसे शिवकी निन्दा सुनकर क्रोधित हो योगाग्निसे देहको भस्म कर दिया। जब यह समाचार शिवको मिला तो उन्होंने जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटकी जिससे वीरभद्र उत्पन्न हुआ, उसके साथ अन्य शिवगणोंने जाकर दक्षके यज्ञको विध्वंस कर दिया और दक्षका सिर काटकर हवन कर दिया।

सम्पाती—जटायुका बड़ा भाई था। इसके पिता अरुण थे। दोनों भाई एक बार सूर्यको जीतनेकी इच्छासे उड़े। सूर्यके तेजसे जटायुके पंख जलने लगे। उस समय सम्पातीने अपने पंखोंसे उसकी रक्षा की। इसप्रकार अपने छोटे भाईकी सहायता करते वह स्वयं विन्ध्य-पर्वतपर आ गिरा और निशाकर मुनिने इसकी शुश्रूषा की। जब सीताको खोजनेके लिये वानर दक्षिण-समुद्रकी ओर जा रहे थे तब उनकी इससे भेंट हुई थी और इसने अपनी दूरदृष्टिसे सीताका पता बतलाया था।

सहस्रबाहु—(सहस्रार्जुन, हैहयराज या कार्तवीर्य) इसके पिता कृतवीर्य, माता एकावली थी। इसकी स्त्री सत्यासे इसे १००० पुत्र हुए, जिनमें ९९५ को परशुरामजीने मार डाला। यह नर्मदा-नदीके तीर हैहय-देशका राजा था। माहिष्मती इसकी राजधानी थी, एक बार लङ्केश्वर रावणको हराकर इसने बन्दी कर लिया था। जिसे पुलस्त्य मुनिने छुड़ाया। जमदग्नि-मुनिको मारनेके अपराधमें यह परशुरामजीद्वारा मारा गया।

सारण—रावणका एक मन्त्री था, जो रामचन्द्रजीकी सेनामें एक बार भेद लेने गया था।

स्वयंप्रभा—दिव्य गन्धर्वकी कन्या तथा हैमाकी सखी थी। किन्तु भगवान्‌के दर्शनार्थ गुफामें रहकर तपस्या करती थी। हनूमान्‌जीको सीताकी खोजमें जाते समय प्यास लगी, तब जल पीनेके लिये वे इसकी गुफामें गये थे और इससे उनकी भेंट हुई थी।

सीता—(जानकी, उर्विजा, जनकनन्दिनी, भूमिजा) इनके पिता जनक थे। मिथिलामें एक बार अकाल पड़ा था तब राजाने वृष्टिके लिये स्वयं हल चलाया था, उस समय भूमिसे जानकी उत्पन्न हुई। इनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी प्रसिद्ध ही हैं। ये साक्षात् जगज्जननी माया थीं, इन्होंने अपने आचरणोंसे पातिव्रतका महान् आदर्श दिखलाया है।

सुकेतु—ताड़का राक्षसीका पिता था।

सिंहिका—राहुकी माता थी,यह पातालवासिनी राक्षसी समुद्रमें रहती थी। उड़ते जीवोंकी परछाईंसे ही उन्हें पकड़ लेनेकी शक्ति रखती थी। लङ्का जाते समय हनूमान्‌जीने इसे मारा था।

सुतीक्ष्ण—अगस्त्य-मुनिके शिष्य थे। यह प्रसिद्ध रामोपासक थे। इनकी प्रेमाभक्ति आदर्श थी।

सुग्रीव—इनके पिता सूर्य थे और माता ब्रह्माके आँसूसे उत्पन्न एक वानरी थी। श्रीरामचन्द्रजीके मित्र थे। बालिके मारे जानेपर किष्किन्धाके राजा बनाये गये थे।

सुबाहु—ताड़काके साथ रहनेवाला एक राक्षस था,कोई इसे ताड़काका पुत्र बतलाते हैं। विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामजीने इसे मारा था।

सुमन्त—महाराजा दशरथके मन्त्री थे।

सुरसा—स्वर्गलोकवासिनी एक राक्षसी थी। हनूमान्‌जीको लङ्का जाते समय परीक्षाके लिये इसने उनको रोका था। अन्तमें प्रसन्न हो हनूमान्‌जीको आशीर्वाद दिया था।

सुलोचना—वासुकी पुत्री और मेघनादकी पत्नी थी, यह बड़ी पतिव्रता थी।

सुषेण—एक वैद्य वानर था। इसने लक्ष्मणजीकी मूर्छा दूर करनेमें सहायता की थी।

शूर्पणखा—रावणकी छोटी बहन थी। इसके पिता विश्रवा थे वाल्मीकिके अनुसार यह रावण कुम्भकरणसे छोटी और विभीषणसे बड़ी थी, कैकसीकी पुत्री थी, कोई कहते हैं कि इसकी माता राका है और सहोदर भाई खर। विद्युज्जिह्वसे ब्याही गयी थी, इसके पतिको रावणने भूलसे मार डाला था,विधवा होनेपर इसने पञ्चवटीमें श्रीराम लक्ष्मणसे ब्याहका प्रस्ताव किया था। फलस्वरूप इसके नाक और कान काट लिये गये थे।

हनूमान्—इनके पिता केशरी और माता अञ्जना थी। यह पवनके पुत्र प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध रामभक्त हैं। सुग्रीवके मित्र और मन्त्री थे। यह महावीर थे। श्रीरामके गाढ़े अवसरोंपर इन्होंने उनकी सेवा की थी। इनके पुत्रका नाम मकरध्वज था। यह शंकरके अवतार माने जाते हैं। ये बड़े वीर, व्याकरणके पण्डित और वेदज्ञ हैं।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवंशी राजा सत्यव्रतके पुत्र थे। इनकी स्त्री शैब्या और पुत्र रोहिताश्व था। विश्वामित्रने इनके सत्यकी परीक्षा ली थी। सत्यपालनके लिये इन्होंने अपना सर्वस्व विश्वामित्रको दे दिया था और स्वयं रानी सहित बिक गये तथा अनेक कष्ट सहे,परन्तु सत्यका पालन किया। इनका-सा सत्यवादी विरला ही मिलता है।

हैमा—विश्वकर्माकी कन्या थी। दक्षिणके दिव्य नगरमें रहती थी। यह मन्दोदरीकी माता थी।

रामायणकी ओर अधिक आकर्षण

रामायणमें गंगाकी उपत्यकासे दक्षिण ओर विस्तृत राक्षसोंके प्रदेशमें हिन्दू-धर्मके प्रसारका वर्णन पाया जाता है। महाभारतके उपदेश आज्ञापालन तथा कर्त्तव्यपथका निर्देश करते हैं और उनकी पूर्तिके निमित्त सब प्रकारके आत्म-बलिदान अथवा त्यागपर ज़ोर देते हैं। परन्तु उनकी अपेक्षा रामायणमें कहीं अधिक सहानुभूति तथा सहृदयतासे कौटुम्बिक जीवनके आनन्द सुदृढ़ होते दीखते हैं। पुत्र-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, दाम्पत्य-प्रेम तथा अपने सम्बन्धियों और पड़ोसियोंके प्रति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेमके ऊपर उसमें अधिक ज़ोर दिया गया है। तुलसीदास प्रभृति अन्य हिन्दू-कवियोंके द्वारा रामायणका सजीव चित्रण होनेके कारण जनता उसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हुई है।

—नेल्सन (विश्वकोषरचयिता)

आदि कवि वाल्मीकि

(लेखक—पं० श्रीरामचरितजी उपाध्याय)

(१)

सत्काव्य-संसृतिके चतुर,
अचतुर्वदन विधि आप हैं।
रस-रूपमें नवरत्नके,
वसुधा-सुधानिधि आप हैं॥

(२)

सत्काव्य-कल्पद्रुम-गहनके,
आप अनुपम मूल हैं।
सत्काव्य-रस-मकरन्दके तो,
आप विकसित फूल हैं॥

(३)

प्रत्यक्ष वपुधारी प्रणव हैं,
आप काव्याम्नायके।
हैं आप गौतमरूप ही,
सत्काव्यरूपी न्यायके॥

(४)

व्यासादि चेले आपके हैं,
आपके गुरु आप ही।
जगका जनक जगदीश है,
ईश्वर-जनक ईश्वर नहीं॥

(५)

है कौन-सी ऐसी प्रभा,
जिसमें न रविका द्योत है।
है कौन कृति जिसमें न प्रभुकी,
उक्ति ओत-प्रोत है॥

(६)

उच्छिष्ट जो हरका गरल,
उससे हुए विषधर सभी।
जो भाव जूठे आपके,
उनसे हुए कविवर सभी॥

(७)

जो आपसे प्रतिभा-प्रभावित,
भाव हो पाया नहीं।
वह दूसरे कविके हृदयमें,
आज तक आया नहीं॥

(८)

नृपके चरितका चित्र चित्रित,
आपने जैसा किया।
त्रैलोक्यमें किस दूसरेने-
आज तक वैसा किया?

(९)

जब आपने पुस्तक लिखी,
तब राम प्रकटित थे नहीं।
ऐसा चरित-लेखक अपर,
भूपर हुआ है क्या कहीं?

(१०)

अमरावतीसे भी प्रयत*,
साकेतको किसने किया?
यह आपहीका काम था,
राक्षस बना द्विजको दिया॥

(११)

श्रीराम-चरितावलि मुने!
यदि आप लिख देते नहीं।
सन्देह है, तो रामके यों,
नाम हम लेते नहीं॥

(१२)

प्रतिपल बदलता जो सदा,
विधिने रचा उस लोकको।
पर आपने कैसा बनाया,
धन्य अव्यय श्लोकको॥

(१३)

पथके प्रदर्शक आप यदि,
संसारमें आते नहीं।
तो काव्य-काननके पथिक,
हम बन कभी पाते नहीं॥

(१४)

है ईश† भी कवि किन्तु उससे,
अत्यधिक तुम बढ़ गये।
वह आदिकविके मस्तक-
पहुँचा नहीं, तुम चढ़ गये॥

(१५)

कवि आप ही हैं, अन्य भी अब-
काव्यको करते रहें।
नर्तक गिरिश हैं, नाच करके-
भूत भी मरते रहें॥

(१६)

काव्याब्धिपर दृढ़ सेतु बाँधा,
आपने ही पद्यमय।
अब पार करते हैं उसे,
बलहीन भी होकर अभय॥

(१७)

कविवृन्द वन्दित आज भी है,
आपके ही कृत्यसे।
समता न कर सकता यदपि वह,
आपके लघुभृत्यसे॥

(१८)

है रामसे ही आपका यश,
राम-यश भी आपसे।
निर्मुक्त दोनोंने किया,
संसारको त्रयतापसे॥

(१९)

सत्पात्र-गुणको कवि लिखे,
यह आपका आदेश है।
शिल्पी वहाँ जाता नहीं,
जो वनचरोंका देश है॥

(२०)

उसको त्रिदिवमें भी सुधा-
मिल जायगी जाकर कभी।
जिसने सुधा पाई, तुम्हारे-
काव्यको पाकर कभी॥

---

* प्रयत=पवित्र। † कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः (वेद)।

भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया

(लेखक—मेहता पं० श्रीलज्जारामजी शर्मा)

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीका जगद्वन्द्य 'रामायणमानस' परम उत्कृष्ट ग्रन्थ होनेपर भी वह इतिहासकी गणनामें आने योग्य नहीं है। वह वास्तवमें एक महाकाव्य है। उसमें बढ़िया ढंगसे यथायोग्य समय और स्थानोंपर सभी रसोंका समावेश किया जानेपर भी वह भक्तिरसप्रधान है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको अवतार-अवतारी ही नहीं, परब्रह्म, परमात्मा, सर्वेश्वर मानकर उसकी अथसे इतितक रचना की गयी है। कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार महात्मा सूरदासजीने गोस्वामीजीसे कहा कि—'आप जिन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी उपासना करते हैं वे तो भगवान्के अंशावतार हैं किन्तु मेरे आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अवतारी हैं।' वास्तवमें गीतगोविन्दमें कवि-कुल-कमल-दिवाकर जयदेवकी और श्रीमद्भागवतमें वेदव्याख्याता भगवान् वेदव्यासकी गवाही भी उनके इस कथनका प्रतिपादन करती है। जो कुछ भी हो, गोस्वामीजी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—'हैं, मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं ? मैं तो अबतक राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र समझकर ही उनकी आराधना करता था। अब—जब कि आप उन्हें अवतार मानते हैं तो उससे द्विगुण चतुर्गुण रूपसे उनकी उपासना करूँगा।' यह गोस्वामीजीकी अनन्य भक्तिका हार्दिक उद्गार मात्र है किन्तु 'रामायण-मानस' के राम हैं तो वैसे ही जैसे ऊपर कहे गये हैं।

जिस तरह उक्त कहावत प्रसिद्ध है उसी प्रकार कहा जाता है कि—एक बार सम्राट् अकबरने इन दोनों महात्माओंकी करामातके परीक्षणकी इच्छासे जहाँपर ये उपस्थित थे, वहाँ एक मस्त हाथी छुड़वा दिया। हाथीके घण्टोंका शब्द सुनते ही महात्मा सूरदासजी वहाँसे भगे, किन्तु गोस्वामीजी अचल हिमाचलकी भाँति टससे मस भी न हुए। बादशाहने सूरदासजीको बुलाकर इसका कारण पूछा। वह कहने लगे—'मेरा इष्टदेव ग्वालेका छोकरा सात वर्षका बालक है। विशालकाय हाथीको देखकर कहीं डर न जाय। अतः मैं, उसे लेकर भाग निकला।' तब बादशाह बोले—'फिर तुलसीदासजी क्यों नहीं भागे ?' उत्तरमें महात्माजीने कहा—'वह भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रके उपासक हैं। उस समय 'मानस' में मेघनाद-वधकी रचना कर रहे थे। भागते भी तो कैसे भागते ?' दोनोंका भाव दोनोंके हृदयका उद्गार है। दोनों कहावतें और महात्मा सूरदासजीके शब्द डंकेकी चोट प्रकाशित कर रहे हैं कि गोस्वामीजीके विषयमें उनकी कैसी पूज्यबुद्धि थी।

इन उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीकी रचना इतिहास नहीं। इस दशामें जो सज्जन 'मानस' को इतिहास मानकर विविध तर्क करते हैं वे भूलते हैं। गोस्वामीजीने 'रामायण-मानस' की रचना वाल्मीकीय रामायण, हनुमन्नाटक, अनर्घ्य-राघव प्रभृति अनेक इतिहास पुराण और काव्य-ग्रन्थोंके आधारपर की है। उसमें कथा-भाग विशेषकर वाल्मीकीय रामायणसे लिया हुआ है, अन्य भाग प्रायः भागवतके हैं। 'मानस' में किष्किन्धा-काण्डका ऋतुवर्णन भागवतके दशमस्कन्धके ऋतुवर्णनकी छाया है और उत्तरकाण्डका कलिधर्म भागवतके कलिधर्मका ज्यों-का-त्यों भाषान्तर है। राक्षसराज विभीषण ज्येष्ठ-बन्धु रावणसे तिरस्कृत होकर वाल्मीकिके अनुसार अवश्य ही भगवान्से लङ्काका राज्य पानेकी लालसासे गया था। वहाँ भक्तिके नामसे उसके मुखसे एक भी शब्द नहीं कहलाया गया। गोस्वामीजीने अक्रूरके व्रजगमनके प्रसङ्गको भागवतसे लेकर विभीषणके हृदयमें प्रवेश करा दिया और इस तरह गोस्वामीजीकी कृपासे राज्यलोलुप विभीषण भक्तराज विभीषण बना दिया गया। इतना ही क्यों, भागवतसे कंसवधकी रचनाके आधारपर राजाके अखाड़ेमें जो दृश्य दिखाया गया था, वही थोड़े बहुत हेर-फेरके साथ मानसकी जनकसभामें धनुषभङ्गके समय आ बिराजा है। उन्होंने जितना अंश भागवतसे लिया है, बड़ी खूबीके साथ लिया है और कहीं कहीं तो 'मानस' में वह भगवान् वेदव्यासजीसे भी बाजी मार ले गये हैं। वही कंसके अखाड़ेमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराते समय वेदव्यासजीने 'स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्' इस पदका उल्लेख कर राज-सभामें उपस्थित श्रीकृष्णकी माता, मानी, दादी, चाची

झांकी सद्गुरुसदन

स्वर्गद्वार घाट

मन्दिर राजद्वार
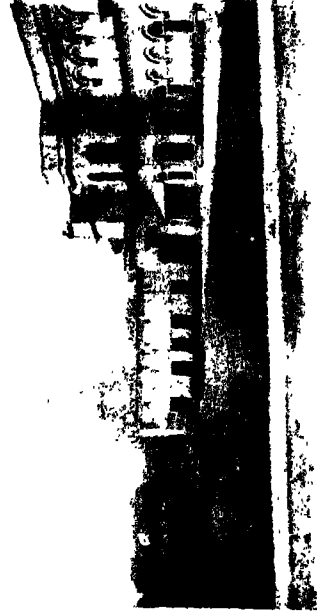
ददुआ राजमहल—पीरो मन्दिर श्रीदर्शनेश्वर नाथ

मन्दिर दशरथ-यज्ञ-भवन

धर्म हरि

त्रेताके ठाकुर

गंज शहीदाँ
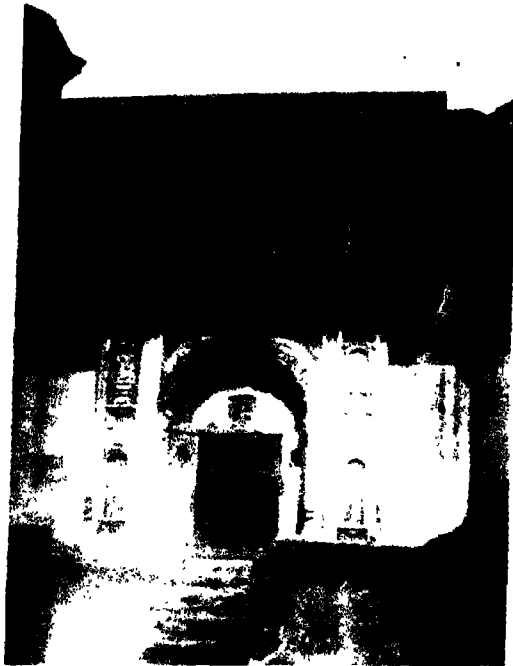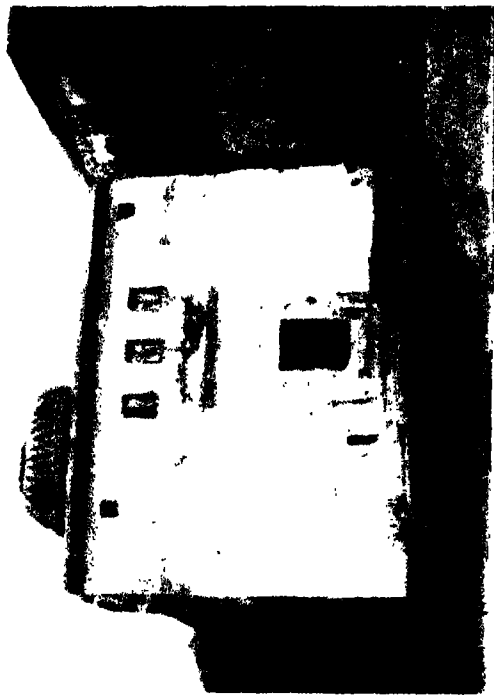
इत्यादिको मानो पक्षपातकका शिकार बना दिया था। गोस्वामीजीको इतना संक्षेप–इतना अनर्थ पसन्द न आया, उन्होंने इसीलिये जनक-सभामें बैठी हुई महिलाओंके विषयमें–'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' इस चौपाईके द्वारा उन रमणीरत्नोंका हार्दिक भाव दिखला-कर केवल उनके साथ न्याय ही नहीं किया बल्कि उनको लोकापवादसे भी बचा दिया। भागवतमें ही क्यों, संस्कृतके यावत् पुराणोंमें–काव्योंमें किसी महिलाके नख-सिखका वर्णन करते हुए उसके सभी अंगोंका उल्लेख किया गया है। परन्तु गोस्वामीजीको जगजननी जानकीके विषयमें या किसी भी रमणीके विषयमें ऐसा लिखना लज्जास्पद मर्यादाविरुद्ध मालूम हुआ। उन्होंने जहाँ-जहाँ भगवतीके नख-सिखका वर्णन करनेकी आवश्यकता समझी, वहाँ-वहाँ नये-नये ढंगसे और ऐसे ढंगसे काम लिया जिसका उनके पूर्ववर्ती किसी कविने कभी स्वप्नमें भी खयाल न किया होगा। यहाँ तक कि 'सीता चरन चोंच हति भागा' का उल्लेख करते हुए उस अङ्गको स्पष्ट बचा दिया, जिसका प्रयोग वाल्मीकिजीने खुले शब्दोंमें किया था।

इस जगह इन उदाहरणोंद्वारा यही दिखला देना इष्ट है कि काव्य और इतिहासमें बहुत भारी अन्तर हुआ करता है। 'रामायण-मानस' जैसे ऐतिहासिक काव्य अवश्य ही इतिहासोंके आधारपर लिखे गये हैं, किन्तु इतिहास-लेखनमें जहाँ व्यक्तिका–समाजका याथातथ्य–हूबहू चित्र खड़ा किया जाता है वहाँ काव्यमें उसके प्रधान पात्र, अथवा पात्रोंका चित्र सुधारकर दिखलाया जाता है। पात्रके दोषोंको छिपाना और गुणोंको प्रकट करना ही कविका उद्देश्य है। परिणाम यह होता है कि प्रायः इतिहासमें प्रधान पात्रका जो उत्कृष्ट गुण है वही काव्यमें कहीं कहीं दोषकी पंक्तिमें लाया जा सकता है। भगवान् रामचन्द्रजीके शुभ्र चरित्रका एक उत्कृष्ट गुण शायद इसी सिद्धान्तके कारण गोस्वामीजीकी लेखनीद्वारा 'मानस' में स्थान पानेका अधिकारी नहीं समझा गया। घटना राम-रावण-समरकी है।

प्राण-प्रिय-बन्धु लक्ष्मणके मेघनादकी शक्तिसे मूर्छित होनेपर केवल नरलीला दिखानेके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र प्राकृत मनुष्यकी तरह घबड़ाकर अवश्य रोये और पछताये थे। अवश्य ही उन्होंने हृदयकी दुर्बलता दिखलानेमें कमाल कर दिया था किन्तु जब वही लक्ष्मण रावणके बाणोंसे बेहोश हुए तब भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तमने एक सर्द आह तक न भरी। इसका एक कारण था। उस समय रोने, घबड़ाने और पछतानेका अवकाश था, इसलिये रोये-धोये, किन्तु इस समयकी दशा बिल्कुल निराली थी। इस समय परम पराक्रमी, विश्वविजयी राक्षसराज रावण बीसों हाथोंसे एक साथ सैकड़ोंकी संख्यामें बाण चला-चलाकर वानरी सेनाका संहार कर रहा था। इतना ही नहीं, इस धूम-धामसे आक्रमण करते हुए भगवान् रामचन्द्रकी ओर वह बढ़ा चला आ रहा था। अपने आश्रित वानरोंकी—उन वानरोंकी जिन्होंने भगवान्की सेवामें आत्मबलि करनेका दृढ़ संकल्प किया था—घोर विपत्तिके समय रक्षा करनेसे मन हटाकर यदि वह एक मिनटके लिये भी ठहरते, भाईकी सेवा-शुश्रूषा अथवा चिकित्साका प्रबन्ध करनेमें लग जाते तो उनके विमल चरित्रमें कर्तव्यशून्यताका काला टीका लगाकर उन्हें स्वार्थीपनका शिकार बनानेमें इतिहास-लेखक कदापि आना-कानी—रियायत न करते। इधर रावणकी शक्तिसे लक्ष्मण मूर्छित हुए थे और उधर वीरकेशरी हनूमान्की लातसे राक्षसराज रावण। रावणको सचेत और युद्धके लिये सन्नद्ध देखकर हनूमान्जी-के परामर्शसे उन्हींके कन्धेपर सवार हो रामचन्द्रजी रावणका मुकाबला करनेके लिये आगे बढ़े। इस तरह भ्रातृस्नेहकी उपेक्षा भले ही कहलावे परन्तु भगवान्ने अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये प्राणप्रिय भाईको—'विष्णोर्भागममी-मांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन्'—के आधारपर छोड़ दिया। उनको एक बार कर्तव्यके अनुरोधसे अन्त्यज तपस्वी शम्बूकका वध करना पड़ा था, दूसरी बार प्राणप्रिया—हृदयेश्वरी जानकीका त्याग करना पड़ा था और तीसरी बार अपने आश्रित भाईको मूर्छित अवस्थामें मृत्यु-शय्याके निकट छोड़ना पड़ा।

इस तरह अवश्य ही वह कलेजेपर पत्थर रखकर परम प्रतापी शत्रुसे युद्धमें मुठभेड़ करनेको सन्नद्ध हुए, परन्तु इसप्रकारका कर्तव्य पालन करते समय यदि वह भाईको भूल जाते तो एक ओरसे हटकर कर्तव्य-शून्यता उनपर दूसरी ओरसे आ चढ़ती। उन्होंने उक्त वाक्यद्वारा अपने प्रिय बन्धुको उनके अवतार होनेकी याद दिलायी। उन्होंने भाईकी सेवा-शुश्रूषाका, उनकी रक्षा-चिकित्साका भार ऋक्षराज जाम्बवान्, वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणपर छोड़ा। इसप्रकारसे सब तरह तैयार होकर

भगवान्ने अपने शत्रुको ललकारा । वह कहने लगे— 'तूने मेरा अप्रिय करनेमें कमी नहीं की है । यदि आज तू इन्द्र, भास्कर, ब्रह्मा, वैश्वानर या शङ्करकी शरणमें भी चला जाय, यदि आज दसों दिशाओंमें भागकर बचना चाहे तो भी मेरे हाथसे बचकर नहीं निकल सकता । आज बेशक अपनी शक्तिसे तूने लक्ष्मणको ताड़ित किया है किन्तु मैं इस दुःखकी शान्तिके लिये तुझे पुत्रों और पौत्रोंसहित मारे बिना न छोड़ूँगा । जिन बाणोंसे मैंने जनस्थानमें चौदह सहस्र राक्षसोंका संहार किया था उन्हींसे तुझे मारूँगा ।' इसके अनन्तर राम और रावणका घोर संग्राम हुआ । वही युद्ध, जिसके लिये कहा जाता है– 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।' तात्पर्य यह कि इनकी भिड़न्त एक निराले ढंगकी थी । वह ऐसा संग्राम था जैसा संसारके इतिहासमें दूसरा–'न भूतो न भविष्यति' । इस भीषण संग्राममें रावण घबड़ा उठा । वही रावण विचलित हो उठा जो सचमुच विश्वविजयी कहलानेकी क्षमता रखता था । रामके बाणोंकी मारसे व्याकुल रावणका धनुष हाथसे गिर पड़ा । उसका सूर्यप्रतिम किरीट खण्ड-खण्ड हो गया ।

आजकलकी कूटनीतिके अनुसार ऐसे घबड़ाये हुए शत्रुको यदि भगवान् रामचन्द्र उसी समय दबोच लेते तो कोई भी उन्हें बुरा कहनेवाला न था । सम्भव है कि घबड़ाये हुए शत्रुपर दया दिखानेवाले श्रीरामपर आजके युद्धपटु वीर कायरता या बुद्धिहीनताका कलङ्क लगावें किन्तु उनके उदार हृदयमें यदि इसप्रकारकी कूटनीतिको स्थान होता तो वह कदापि मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलानेके अधिकारी न होते । वे वास्तवमें भगवान्के अवतार थे । उन्हें अवतार लेकर संसारके इतिहासमें सर्वोत्तम आदर्श, नर-रत्नका एक उत्कृष्ट आदर्श खड़ा करना अभीष्ट था । वे चाहते थे कि उनकी उपमाके वही उपमेय हों । बस, उन्होंने वही कार्य किया जो उनके सदृश महापुरुषको करना चाहिये था । उन्होंने घबड़ाये हुए कर्तव्यशून्य और अपनी प्राणप्रियाको उनकी अनुपस्थितिमें बलपूर्वक चुरा ले जानेवाले नीच शत्रुको समाश्वासन देते हुए सम्बोधन किया—'यद्यपि तूने आज बड़ा भीम कर्म करके मुझे भ्रातृहीन कर दिया है, तू मेरी अनुपस्थितिमें मेरी गृहिणीको बलपूर्वक पकड़ लाया था, इसलिये मैंने आज ही प्रतिज्ञा की थी कि मैं आज तेरा वध करके तुझे सदाके लिये धराशायी कर डालूँगा । किन्तु तू मेरे बाणोंकी मारसे व्याकुल है, तू लड़ते-लड़ते थक गया है इसलिये अब तुझपर प्रहार करना मैं उचित नहीं समझता । जा, लङ्कामें चला जा । फिर जब तू तैयार होकर मुझसे युद्ध करनेके लिये सामने आवेगा, तब देखूँगा कि तुझमें कितना शौर्य है ।'

प्रबल शत्रुसे इस तरह उदारताका–दयाका व्यवहार पाकर रावण भागा हुआ लङ्कामें पहुँचा और तब इधर भगवान् रामचन्द्रको प्रियबन्धु लक्ष्मणकी चिकित्सा कराने–उन्हें आरोग्यता प्रदान करनेका अवसर मिला ।

रामबाणोंके भयसे पीड़ित और व्यथित रावणने यद्यपि लङ्कामें जाकर शरण ली, तथापि उसकी दशा उस समय वैसी ही थी जैसी पराक्रमी शार्दूलका तमाचा खाकर मत्त मतंगकी अथवा गरुड़के पञ्जोंसे छूटे हुए सर्पकी होती है । वह बारम्बार प्रलयाग्निके सदृश अमोघ राम-शरोंकी मारको स्मरणकर व्याकुल हो उठता था । वह राक्षसोंकी सभामें सुवर्ण-सिंहासनपर आसीन होकर सोचने लगा । सभास्थल वही, सिंहासन वही, किन्तु विश्वविजयी रावण आज पराजित, व्याकुल और भयभीत था । उसे आज वह राजसभा, वह ठाट, वह वैभव—सब खानेको दौड़ते थे । इस समय उसे यदि इसके बदले फूसकी झोंपड़ी मिलती तो गनीमत थी । सचमुच ही उसे माता पृथ्वी मार्ग दे देती तो उसमें समा जानेमें ही सन्तोष था । वह जिन रामका, एक समय मनुष्य समझकर निरादर करता था, जिन्हें एक समय तुच्छातितुच्छ मानकर उनकी प्रिय पत्नीको हर लाया था, हार पर हार और राक्षसोंका विनाशपर विनाश होनेपर जिनके लिये उसने— 'निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा । देहौं उतर जो रिपु चढ़ि आवा ॥' का प्रयोग किया उन्हीं रामके आगे आज उसे हार खानी पड़ी । उनकी कृपासे–केवल उन्हींकी दयासे प्राण बचाकर समर-भूमिमेंसे भाग आना पड़ा । रावण-सदृश अभिमानीके लिये इससे बढ़कर लज्जाकी कौन-सी बात हो सकती है ? भगवान् रामकी उस दयाको यदि वह धन्यवादपूर्वक वापस करनेकी क्षमता रखता तो अवश्य ही उसे सन्तोष होता । उसने अपनी करनीपर पछताते हुए कहा—'मैंने माताका, गृहिणीका, और भाईका उपदेश न मानकर बहुत बुरा किया । मैंने अङ्गद-सरीखे बसीठीको पाकर रामके प्रस्तावको ठुकराया । मैंने उग्र तप करके बड़ेसे बड़ा वरदान पाया । उस वरदानके भरोसे मैं सुरेन्द्रतकको तुच्छ समझता था । हाय ! हाय ! मैंने वर माँगते समय मनुष्य-जातिको तुच्छ समझकर बड़ी भारी

भूल की। क्या अच्छा होता जो उस समय मैं मनुष्य-जातिसे भी अपनी अवध्यता माँग लेता। आज राजा अनरण्यका कथन सत्य हुआ। वास्तवमें तपस्विनी वेदवती, पार्वती, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण-कन्याके शाप सच्चे हो गये। निश्चय, अब निश्चय हो गया कि वही वेदवती महाभागा सीताके रूपमें मेरा नाश करनेको अवतरित हुई है। जिस रावणके आगे इन्द्रादि देवता काँपते हैं, जिसका नाम लेते ही त्रिलोकी सिहर उठती है उसी रावणको आज एक तुच्छ मनुष्यके आगेसे, उससे प्राण-भिक्षा माँगकर भाग आना पड़ा।' वाल्मीकीय रामायणमें इस विषयमें जो कुछ लिखा है यह उसका अविकल भाषान्तर नहीं है। भाव उसके हैं और भाषा मेरी है।

इसप्रकार विलाप करते हुए रावणने भगवान् रामचन्द्रके अमोघ बाणोंका शिकार बननेके लिये भाई कुम्भकर्णको जगाया। इसके बाद जो कुछ घटनाएँ हुईं उनका उल्लेख गोस्वामीजीके 'रामायण-मानस' में है, किन्तु सहसा समझमें नहीं आता कि वह ऐसे आवश्यक प्रसङ्गको—जिसका उल्लेख करनेमें शत्रुपर दया दिखानेमें उनके इष्टदेवकी कीर्ति होती थी—क्यों छोड़ गये। अवश्य ही उन्होंने चौबीस हजार वाल्मीकीय रामायणको मानस-जैसी छोटी पुस्तिकामें रखकर गागरमें सागर भरनेका सराहनीय उपक्रम किया है और इसलिये अनेक स्थलोंकी अन्यान्य कथाएँ अन्यत्र भी कहीं घटा देनी और कहीं बिल्कुल छोड़ देनी पड़ी हैं, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि भगवान् रामचन्द्रके चरित्रकी उत्कृष्टता वर्द्धन करनेवाली यह कथा क्यों छोड़ दी गयी? 'माधुरी' की पूर्ण संख्या २१में 'रावणका पश्चात्ताप' शीर्षक नोट देते समय भी इसका कारण मेरे ध्यानमें नहीं आया था। किन्तु अब निश्चय हो गया कि जो कारण अश्वमेध-यज्ञका प्रसङ्ग छोड़ देनेमें था, जो कारण शम्बूकके वधकी कथाका उल्लेख न करनेका था, वही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ। अवश्य ही अश्वमेध-यज्ञका उल्लेख न करनेमें इतिहासका एक आवश्यक अंश छूट गया किन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि 'मानस' काव्य है इतिहास नहीं और काव्यके लिये आवश्यक होता है कि उसके प्रधान पात्र समस्त दोषोंसे बचाये जायँ। अश्वमेध-यज्ञका वर्णन करनेसे पूर्व जगज्जननी सीताका त्याग दिखलाना पड़ता था, लव-कुशके हाथसे राम-सेनाका पराजित होना दिखलाना पड़ता था और ऐसा करना उन्हें अप्रिय था। उन्हें पसन्द न था। इसी तरह शम्बूक-वध युगधर्मके अनुसार वर्णाश्रमधर्मकी रक्षाके लिये जनताके मनोरञ्जनार्थ—उसकी इच्छाको देखकर किया गया था किन्तु 'मानस' जिस समयकी रचना है उस समय यह बात पसन्द की जाने योग्य न थी। ऐसा ही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ, अवश्य ही इस प्रसङ्गका उल्लेख न करनेसे भगवान् रामचन्द्रजीकी विमल और आदर्श कीर्तिका आवश्यक अंश छूट गया किन्तु इसे 'मानस' में न रखकर गोस्वामीजीने उस आक्षेपसे अपने इष्टदेवको बचा लिया जो मूर्च्छितावस्थामें प्राण-प्रिय भाईको, अपने आश्रित भाईको, ज्येष्ठ बन्धुके लिये अपना सर्वस्व त्यागकर साथ चले आनेवाले भाईको सिसकते हुए छोड़कर युद्धमें प्रवृत्त होनेपर किया जाता। उन्हें भगवान् श्रीरामकी नीति-निपुणता दिखलानेकी अपेक्षा अक्षुण्ण भ्रातृस्नेह दिखलाना इष्ट था। किन्तु इतिहासकी दृष्टिसे, चरित्रकी आदर्शताका दिग्दर्शन करते हुए ये तीनों ही घटनाएँ भगवान्के उत्कृष्ट प्रजारञ्जन, नीति-परायणता और कर्तव्य-पालनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये ऐसे आदर्श हैं जैसे संसारके इतिहासमें दूसरे नहीं मिल सकते।

रामायण नैसर्गिक काव्य है

रामायण केवल एक साधारण कहानी नहीं है। यह हृदय-तलसे विनिर्गत हुआ एक नैसर्गिक काव्य है, जिसकी प्रत्येक घटनाको अधिकांश भारतीय सत्य मानते हैं तथा उसमें उनका पूर्ण विश्वास है। यद्यपि इसकी रचना हुए बहुत काल बीत गया तथापि आर्यावर्तके सन्तानमें वह उसी रूपसे वर्तमान है, जैसा कि पचास पीढ़ी पूर्व उसके पूर्वजोंके हृदयमें उसे स्थान प्राप्त था। श्रीरामचन्द्रजीने अपने जन्मस्थानसे लेकर लङ्का-तक, विजयपूर्ण प्रस्थानके समय जिन-जिन मार्गोंसे होकर भ्रमण किया था उनका अब भी धार्मिक यात्री पदशः अनुसरण करते हैं। करोड़ों मनुष्योंका यह दृढ़ विश्वास है कि केवल श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेनेसे ही आत्म-रक्षा तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। अतः जिन्हें भारतीय जनताके विषयमें पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, उनके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

—ओमन ('इण्डियन एपिक्स'के रचयिता)

गोस्वामीजी और महिला-समाज

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी)

इधर कुछ दिनोंसे लोग गोस्वामी तुलसीदासजीपर यह आक्षेप करने लगे हैं कि वह महिला-समाजके निन्दक थे और उसके लिये विष उगला करते थे । गोस्वामीजीको जीवनभरमें कभी स्त्रीका सुख प्राप्त नहीं हुआ, इसीसे वह स्त्रियोंके विरोधी बन उन्हें जली-कटी सुनाने लगे । मासिकपत्रोंमें इस विषयके लम्बे-चौड़े लेख भी निकल चुके हैं । उनमें श्रीरामचरितमानसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामीजी स्त्रियोंके शत्रु थे । पर मेरी समझसे ऐसी बात नहीं है ।

यों तो जितने भक्त और त्यागी हुए हैं प्रायः सबने ही कामिनी-काञ्चनको सब दुःखोंका मूल बताया और उनके त्यागका उपदेश किया है । फिर केवल गोस्वामीजीपर ही यह आक्षेप क्यों ? इसके सिवा 'रामचरितमानस' की जिन पंक्तियोंके सहारे उनपर आक्षेप किया जाता है वह भी युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि वे पंक्तियाँ गोस्वामीजीकी बनायी होनेपर भी दूसरोंके मुँहसे कहलायी गयी हैं । इसलिये वह उनकी उक्ति नहीं हो सकती । कविकी उक्तियाँ-सिद्धान्त वही हो सकता है जो वह स्वयं कहता है । जैसे—

> रामनाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
> तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥
> कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
> तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥
> रामनाम भव-भेषज, हरन घोर त्रय सूल ।
> सो दयालु मोहि तोहिपर, रहें सदा अनुकूल ॥

जो वह दूसरोंके मुँहसे कहलाता है वह उसकी उक्ति नहीं हो सकती । जो पात्र जैसा होता है उसके मुँहसे वैसी ही उक्ति करायी जाती है । अन्यथा होनेसे कविकी निन्दा होती है, पर आक्षेप करनेवाले यह बातें क्यों सोचने लगे ? उन्हें तो गोस्वामीजीपर आक्षेपकर पाण्डित्य दिखाना है । अस्तु—

'मानसरामायण' की जिन पंक्तियोंके कारण गोस्वामीजीपर आक्षेप होता है अब एक-एक कर उनपर ही विचार करता हूँ । आशा है कि पाठक गोस्वामीजीके पक्षमें ही निर्णय करेंगे । सुनिये—

> कवने अवसर का भयउ, गयेउँ नारि-बिस्वास ।
> जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥

'गयेउँ नारि बिस्वास' बस यही इसमें आक्षेपका कारण है पर इससे गोस्वामीजीपर आक्षेप नहीं हो सकता क्योंकि यह महाराजा दशरथकी उक्ति है और उस समयकी है जब कैकेयीने कहा था—

> सुनहु प्रानपति भावत जीका । देहु एक बर भरतहिं टीका ॥
> माँगउँ दूसर बर कर जोरे । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे ॥
> तापस बेष बिसेष उदासी । चौदह बर्ष राम बनबासी ॥

'चौदह बर्ष राम बनबासी' वाक्य राजा दशरथको बाण-सा लगा, इसपर वह पश्चात्ताप कर कहते हैं 'गयेउँ नारि बिस्वास' अर्थात् इस रानी कैकेयीका विश्वासकर मैं फँस गया । इसका संकेत कैकेयीकी ओर है, सारे नारी-समाजकी ओर नहीं, क्योंकि वह कैकेयीका ही विश्वास करके फँसे थे और किसीका नहीं । इसलिये गोस्वामीजीपर आक्षेप व्यर्थ है ।

अब दूसरा दोहा लीजिये—

> काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय ।
> का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाय ॥

यहाँ भी वही हाल है । श्रीरामचन्द्रजी जब वन जानेको तैयार हो गये तब अयोध्यावासी आपसमें दुःखी हो बातचीत करने हैं । कोई कैकेयीको सब अनर्थोंका मूल बताकर गालियाँ देता है, कोई भाग्यको दोष देता है । मतलब यह कि सब ही अपनी-अपनी समझके अनुसार कुछ-न-कुछ कहते हैं । उन्हीं दुःखी अयोध्यावासियोंकी उक्ति है कि—'का न करै अबला प्रबल' अर्थात् स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकती हैं, मतलब, सब कुछ कर सकती हैं । तुलसीदासजीने तो अयोध्याकी जनताका भाव प्रदर्शित किया है, फिर उनपर आक्षेप क्यों ?

इसीप्रकार—

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि-गति भाई ॥

यह भी जनताकी उक्ति है, गोस्वामीजीकी नहीं।

बिधिहु न नारि-हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥

यह भरतजीकी उक्ति है। ननिहालसे आनेपर जब उन्होंने पिताका मरण और राम, लक्ष्मण, सीताका वन-गमन सुना तब वह शोकसे व्याकुल हो गये। जब मालूम हुआ कि इन अनर्थोंकी जड़ रानी कैकेयी ही है, तब तो वह हतबुद्धि हो माताको फटकारने लगे। माताको फटकारते-फटकारते नारी-समाजतकको फटकार डाला। क्रोधमें ऐसा होता ही है। आजकल भी किसीसे लड़ाई होती है तो एकके अपराधपर उसके सारे खानदान और जातिभरको गालियाँ सुननी पड़ती हैं। दो विभिन्न जातिके लोगोंमें झगड़ा होनेपर दोनों एक दूसरेकी जातिको भी निकृष्ट बता देते हैं। इसी तरह भरतजीने मातापर गुस्सा होनेके कारण सारी स्त्रियोंको कपटिन, पापिन और अवगुणोंकी खानितक कह दिया। इस स्वाभाविक वर्णनके हेतु गोस्वामीजीपर आक्षेप न कर उनकी प्रशंसा करनी चाहिये।

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़नाके अधिकारी ॥

यह उक्ति भी समुद्रकी है। श्रीरामचन्द्रजीने जब धनुष चढ़ाया तब समुद्र 'बिप्र रूप आयो तजि माना।' उसी समयकी यह उक्ति है। गोस्वामीजी यहाँ भी बच गये।

विस्तार-भयसे और अधिक न लिख यह लेख यहीं समाप्त करता हूँ। पर इतना और भी निवेदन करता हूँ कि यदि तुलसीदासजी स्त्रियोंके निन्दक होते तो कौसल्या, सुमित्रा, सीता, अनसूया, तारा, मन्दोदरी आदिसे अच्छी अच्छी उपदेशमय बातें न कहलाते। मेरी समझसे गोस्वामीजी महिला-समाजका जितना आदर करते थे, उतना शायद आक्षेप करनेवाले भी न करते होंगे।

कैसे आऊँ द्वार

बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

१

भक्ति-दीप टिम टिम उदोत है,
मन बैठा अज्ञान-पोत है,
शबरी-सा न प्रेम स्रोत है,
शंकाका व्यापार;
हृदय-देशमें मचा वासनाओंका हाहाकार।
बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

२

लिपटा विषम मोहमें यह तन,
कहता हूँ कुछ करना कुछ मन,
तुम्हीं बताओ रघुकुल-नन्दन!
कैसे हाथ पसार
गहूँ चरण, मागूँ किस मुखसे क्षमा-भीख कर्त्तार!
बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

३

न हनुमत-सी स्वामि-भक्ति है,
न लक्ष्मण-सी त्याग-शक्ति है,
सात्विक तुलसी-सम न भक्ति है,
कह दो कौन प्रकार;
गिरूँ, चरण-रजमें कर डालूँ जन्म सफल भर्त्तार!
बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

—प्रो० 'तरङ्ग'

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी दिनचर्या

(लेखक—श्रीयुत बी० एच० वाडेर, बी० ए० एल-एल० बी०)

श्रीरामायण-प्रेमियोंके अवलोकनार्थ भगवान्‌के वनवासकी दिनचर्या अग्निवेशरामायण और लोमशरामचरित्रके आधारपर उपस्थित की जाती है।

(१) विवाहके समय भगवान् रामकी अवस्था पन्द्रह वर्ष तथा महारानी सीताकी केवल छः वर्षकी थी। (अग्नि०रा०)

(२) वनवासके लिये प्रस्थान करते समय भगवान् सत्ताईस वर्षके तथा भगवती सीता इक्कीस वर्षकी थीं।* (लो०रा०)

वन-वास

वर्ष	दिन	घटना
प्रथम	३ रात्रियाँ ···	जलाहार।
,,	चतुर्थ रात्रि ···	फलाहार।
,,	पञ्चम रात्रि ···	चित्रकूटकी यात्रा।
त्रयोदश	······	शूर्पणखाका अपमान तथा नाक-कान काटना।
,,	माघ शुक्ल ८ वृन्द मुहूर्त।	रावणद्वारा सीता-हरण।
चतुर्दश	मार्गशीर्ष शुक्ल १०	सम्पातीने रामसे कहा कि सीता रावणके द्वीपमें हैं।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल ११	श्रीहनूमान्‌जीका कन्या-कुमारीके समीपवर्ती महेन्द्र पर्वतसे छलाँग मारकर लङ्कामें पहुँचना। यह स्थान मद्रास-प्रान्तके तिन्नेवेल्ली (Tinne-velli) जिलेमें है।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १२	वृक्षपर बैठे हुए श्रीहनूमान्‌जीका श्रीसीताजीसे वार्तालाप।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १३	श्रीहनूमान्‌जीद्वारा अक्षय-कुमार आदि राक्षसोंका वध तथा अशोकवाटिका-विध्वंस।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १४	इन्द्रजित्‌द्वारा श्रीहनूमान्‌जीका ब्रह्मपाशमें बंधना और हनूमान्‌जी द्वारा लङ्काका जलाया जाना।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १५	श्रीहनूमान्‌जीका महेन्द्र-पर्वत पर लौटना।
,,	पौष कृष्ण ६ ···	वानरोंद्वारा मधुवनका नाश।
चतुर्दश	पौष कृष्ण ७	भगवान् रामको श्रीसीताजीके शुद्ध होनेका संवाद मिलना।
,,	पौष कृष्ण ८ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र विजय-मुहूर्त मध्याह्न	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित युद्धके लिये प्रस्थान।
,,	पौष कृष्ण ३०	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित समुद्रतटपर ठहरना।
,,	पौष शुक्ल ४	विभीषणका श्रीरामचन्द्रजीके शरण आना।
,,	,, १०से १३तक	सेतु-निर्माण।
,,	,, १४	सेनाओंको सुबेल-पर्वतके उन्नत समतल भागका मार्ग दिखलाना।
,,	पौष शुक्ल १५से माघ कृष्ण २	सेनाओंका समुद्र पारकर लङ्का पहुँचना।
,,	माघ कृष्ण ३ से १० तक	सेनाओंका कई दलोंमें विभक्त किया जाना।
,,	माघ कृष्ण ११	शुक-सारणका सेनामें आ मिलना।
,,	,, १२	श्रीरामका स्व-सैन्य-निरीक्षण।
,,	माघ कृष्ण १३ से ३० तक	रावणका स्व-सैन्य-निरीक्षण तथा उनके उत्साहवर्द्धक युद्ध-कला-प्रदर्शनका अवलोकन।
,,	माघ शुक्ल १	अङ्गदजीका सन्धिकी शर्तें लेकर रावणके पास जाना। (अङ्गद-शिष्टाई)।

* उपर्युक्त दोनों वर्णनोंमें भी सीताकी अवस्थामें मेल नहीं होता, प्रथमके अनुसार सीता श्रीरामसे ९ वर्ष छोटी थीं तो दूसरेके अनुसार उनका ६ वर्ष छोटी होना सिद्ध है। मेरी समझसे सीताका वय विवाहके समय १२ वर्षसे कम किसी प्रकार नहीं था, इस सम्बन्धमें अन्यत्र प्रकाशित 'विवाहके समय सीताजीकी अवस्था' शीर्षक लेख ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। —सम्पादक

वर्ष	दिन	घटना
चतुर्दश	माघ शुक्ल २ से ८ तक	वानरों तथा राक्षसोंमें युद्ध-आरम्भ ।
,,	माघ शुक्ल ९	रातके समय मेघनादद्वारा श्रीराम-लक्ष्मणका नागपाशमें बाँधा जाना ।
,,	,, १०	गरुडद्वारा नागपाश काटा जाना ।
,,	,, १०-११	दो दिन युद्ध बन्द ।
,,	,, १२	श्रीहनूमान्‌जी द्वारा धूम्राक्षका वध ।
,,	,, १३	श्रीहनुमान्‌जी द्वारा कम्पनका वध ।
,,	माघ शु० १४से फाल्गुनकृष्ण १	नीलद्वारा प्रहस्तका वध ।
,,	फाल्गुन कृष्ण ,, २ से ४	श्रीरामद्वारा रावणका रण-भूमिसे भगाया जाना ।
,,	फाल्गुन कृष्ण ५ से ८	चार दिनतक युद्ध बन्द, कुम्भकर्णका निद्रा-त्याग ।
,,	,, ९ से १४	श्रीरामचन्द्रजीद्वारा कुम्भकर्णका वध ।
,,	,, ३०	कुम्भकर्णके मृत्युशोकमें एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।
,,	फाल्गुन शुक्ल १ से ४	नरान्तक एवं चार अन्य राक्षसोंका वध ।
,,	फाल्गुन शुक्ल ५ से ७	अतिकायका वध ।
,,	फाल्गुन शुक्ल ८ से १२ तक	कुम्भ तथा निकुम्भका वध ।
,,	फाल्गुन शुक्ल १२ से चैत्र कृष्ण १	मकराक्षका वध ।
,,	चैत्र कृष्ण २	मेघनादका वानर-सेनापर विजय ।
,,	चैत्र कृष्ण ३ से ७	५ दिनतक युद्ध बन्द तथा वानरोंका वैद्यक ओषधियों तथा वनस्पतियोंका लाना ।
,,	,, ८ से १३	श्रीलक्ष्मणजीद्वारा मेघनादवध ।
चतुर्दश	चैत्र कृष्ण १४	एक दिन युद्ध बन्द, तथा रावणका रण-दीक्षा ग्रहण करना अर्थात् स्वयं सैन्य सञ्चालन करना ।
,,	,, ३०	रावणका युद्धके लिये राजधानीसे प्रस्थान ।
,,	चैत्र शुक्ल १से५	रावणके मन्त्रियोंका वध ।
,,	,, ६से८	महापार्श्वका वध ।
,,	,, ९	श्रीलक्ष्मणजीके शक्तिका खचित हो जाना ।
,,	,, १०	एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।
,,	,, ११	एक दिनके लिये युद्ध बन्द । मातलिका श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें युद्ध-रथ लेकर उपस्थित होना ।
,,	चैत्र शुक्ल १२से वैशाख कृ० १४	लगातार अठारह दिनों तक राम-रावण-युद्ध और अन्तमें रामद्वारा रावण-वध । युद्ध-समाप्ति ।
,,	वैशाख कृ० ३०	रावणका वीरोचित अन्तिम-संस्कार ।
,,	वैशाख शुक्ल १	श्रीरामका सुवेल पर्वतपर लौट जाना तथा युद्धक्षेत्रमें टिकना ।
,,	,, २	लंकामें विभीषणका राज्याभिषेक ।
,,	,, ३	श्रीसीताजीकी शुद्धि और श्रीराम-सीता मिलन ।
,,	,, ४	श्रीरामका पुष्पक विमानपर चढ़कर उत्तर दिशाकी ओर जाना ।
,,	,, ५	श्रीरामचन्द्रजीका भारद्वाजके आश्रममें ठहरना । वनवासके चौदह वर्षोंकी समाप्ति ।
१५ वाँ वर्ष	वैशाख शुक्ल ६	नन्दीग्राममें श्रीराम-भरतका मिलाप ।
,,	,, ७	अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक ।

अब्दरामायणके अनुसार रामायणका तिथिपत्र

(लेखक—श्रीयुत बी०एच० वाडेर बी०, ए०, एल.एल०बी०)

श्रीगिरिधर-कृत एक छोटी-सी 'अब्दरामायण' है। इसमें भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनकी अनेक रोचक घटनाओंका वर्णन है। पता नहीं गिरिधरने इन घटनाओंका कहाँसे संकलन किया है! तिथिपत्रके लिये निम्नलिखित सूची देखिये—

वर्ष	दिन	घटना
	चैत्र शुक्ल ९, आनन्द नाम संवत्सर मध्याह्न कालमें	श्रीरामचन्द्रजीका अवताररूपसे प्रकट होना।
४ था	......	विद्यारम्भ।
११ वाँ	......	व्रतबन्ध
१२ वाँ	......	श्रीरामचन्द्रजीका, विश्वामित्रके साथ उनके आश्रमको जाना।
१५ वाँ	......	स्वयंवरमें श्रीरामचन्द्रजीद्वारा शिव-धनुष-भंग और श्रीसीता-पाणि-ग्रहण।
१५ वेंसे २७ वें तक।	......	अयोध्या निवास।
२७ वाँ	......	श्रीरामचन्द्रजीका वनगमन।
२७ वेंसे ४१ वें तक	......	१४ वर्षका वनवास।
(वनवास-का प्रथम वर्ष)	वैशाख शुक्ल १	वनवासका प्रथम दिवस।
	वैशाख शु० २	श्रीरामचन्द्रजीका चित्रकूट पहुँचना।
,,	वैशाख शु० ६	श्रीभरतजीका श्रीरामचन्द्रजीसे मिलाप। तदनन्तर भगवान्का अनुमान १२ वर्ष ६ महीने पर्यन्त पञ्चवटीमें निवास।
(वनवास का तेरह-वाँ वर्ष)	कार्तिक कृष्ण ३०	शूर्पणखाके नाक-कान काटना।
,,	माघ शुक्ल १५	श्रीसीताजीका अन्तर्धान होना।
,,	फाल्गुन कृष्ण ७	रावणद्वारा(माया) सीताहरण।
(वनवास-का १३ वां वर्ष)	फाल्गुनसे	श्रीरामचन्द्रजीका पम्पा नदीके तटपर पहुँचकर तीन मास तक तपस्या करना।
(वनवास का १४ वां वर्ष)	ज्येष्ठ शुक्ल १	श्रीहनूमान्जीका पम्पासर (हम्पा)के तटपर श्रीरामचन्द्रजी-से मिलाप।
,,	,, ५	श्रीराम-सुग्रीव-भेंट।
,,	,, ८	श्रीरामद्वारा बालि-वध।
,,	,, १३	सुग्रीवका किष्किन्धामें राज्याभिषेक।
,,	,, १५	श्रीरामचन्द्रजीका माल्यवान् पर्वतपर जाकर वर्षाऋतुभर एक गुफामें निवास करना।
,,	श्रावण ...	लिंगार्चन।
,,	आश्विन कृष्ण पक्ष	श्रीरामचन्द्रजीका पितृगण तथा पिताके सम्मानार्थ महालय श्राद्ध करना।
,,	आश्विन शुक्ल १०	श्रीरामचन्द्रजीका गुफा त्यागकर आगे प्रस्थान करना।
,,	कार्तिक शुक्ल १०	सुग्रीवका सेना एकत्र करना।
,,	मार्गशीर्ष कृष्ण ७	श्रीहनूमान्जीका श्रीसीताजीकी खोजमें प्रस्थान।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १०	श्रीहनूमान्जीका समुद्रलङ्घन।
,,	मार्गशीर्ष शुक्ल १२	श्रीहनूमान्जीका अशोक-वाटिकामें सीताजीसे मिलाप।
,,	पौष कृष्ण ७	श्रीहनूमान्जीका अपने दलबल-सहित श्रीरामचन्द्रजीके पास आना।
,,	पौष कृष्ण ३०	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र-तटपर पड़ाव डालना।

भगवान श्रीराम और काकभुसुंडि ।

'चलउँ भागि तब पूप देखावहिं' ।

वर्ष	दिन	घटना
वनवासका १४वाँ अथवा भगवान्‌की आयुका ४१वाँ वर्ष	पौष शुक्ल ४	श्रीविभीषणजीका श्रीरामजीसे मिलाप।
	पौष शुक्ल ८ से १२ तक	सेतु-निर्माण।
,,	पौष शुक्ल १४	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र पार करना।
,,	माघ कृष्ण ३ से १० तक	लङ्कापुरीका घेरा जाना।
	माघ कृष्ण ११	रावणके शुक एवं सारण नामक दूतोंका श्रीरामचन्द्रजीके पास आना।
,,	माघ कृष्ण १२	लङ्काके मुख्य-द्वारका अवरोधकर सेनाका स्थापित कर देना।
,,	माघ कृष्ण ३०	श्रीरामका माया-मस्तक रचकर रावणद्वारा भगवती सीताको धोखा देनेका प्रयत्न।
,,	माघ शुक्ल १	सन्धि (शिष्टाई)के लिये अङ्गदका रावणके पास जाना।
,,	,, ७-८	घनघोर युद्ध।
,,	,, ११	अकम्पनका वध।
,,	,, १३	अंगदद्वारा वज्रदंष्ट्रका वध।
,,	,, १५	नीलद्वारा प्रहस्तका वध।
,,	फाल्गुण कृष्ण २	मन्दोदरीका रावणको, श्रीरामचन्द्रजीके साथ सन्धि करनेके लिये समझाना।
वनवासका १४ वाँ वर्ष	फाल्गुण कृष्ण ४	श्रीरामका रावणके मुकुटोंको नीचे गिरा देना।
,,	फाल्गुन कृष्ण ६ से १४ तक	कुम्भकर्णका युद्धके लिये आना और उसका श्रीरामचन्द्रजी-द्वारा वध।
,,	फाल्गुण शुक्ल ४ तक	महोदर, त्रिशिरा तथा अन्य रावणके सेनापतियोंका युद्धमें मारा जाना।
,,	फा० शुक्ल ५ से ७ तक	अतिकाय वध।
,,	फा० शु० ८ से १२	कुम्भ, निकुम्भ, जङ्घ तथा अन्य राक्षसोंका वध।
,, ,,	फा० शु० १३ से चैत्र कृष्ण १ तक	मकर, अक्ष तथा अन्य योद्धाओंका वध।
,,	चैत्र कृष्ण २	मेघनादका युद्धके लिये आना। श्रीहनूमान्‌जीका द्रोणगिरि लाना और घायल वानरोंका आराम होना।
,,	चै० कृ० ८ से १३	६ दिनोंतक घनघोर युद्ध।
,,	चैत्र शुक्ल ११	मातलिका युद्ध-रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित होना।
,, ,,	चै० शु० १२ से वैशाख कृ० १४	१८ दिनोंतक श्रीराम रावणका घोर युद्ध।
	,, ३०	रावणका वध।
	वैशाख शुक्ल २	श्रीसीता-राम-मिलाप।

तुलसी

तुलसीकृत राम-कथा जगमें, नर-नारिन तारनकूं पुल-सी।

पुलसी भवसागर पारन कूं, पढ़ि कै मन गाँठ गई खुल-सी॥

खुल-सी गठरी गई पापनकी, धुल-सी गई औ जनता हुलसी।

हुलसी जनता, हुलसी वसुधा, हुलसी हुलसी, जानिकै तुलसी॥

श्रीअवन्तविहारी माथुर 'अनन्त'

वनगमन और रावणवधकी तिथियाँ *

(लेखक—पं० श्रीराधाकृष्णजी मिश्र)

(१) श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ होती है ?

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

(३) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको वनवाससे अयोध्यामें लौटे ?

(४) उनके वनवासके चौदह वर्षकी पूर्ति किस भाँति हुई ?

उपर्युक्त विषयोंमें परस्पर बहुत मतभेद है, इस सम्बन्धमें हम अपने विचार क्रमशः प्रकट करते हैं।

(१) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ हुई ?

यह सब जानते हैं कि जिस दिन रामचन्द्रजीका राज्याभिषेक उत्सव था, उसी दिन उनको चौदह वर्षके लिये वनवास-यात्रा करनी पड़ी। इसलिये अभिषेक-तिथिके निर्णयके साथ ही उनकी वन-यात्रा-तिथिका भी निर्णय हो जाता है। अब देखना चाहिये कि उनका अभिषेक किस दिन था ? वाल्मीकीय रामायणमें अभिषेकके मास और नक्षत्रका तो उल्लेख है, पर पक्ष और तिथिका कुछ निर्देश नहीं। न हो, किन्तु मास और नक्षत्र ही पक्ष और तिथिका पता बता देते हैं। महाराज दशरथ अभिषेकसे पहले दिन रामचन्द्रजीको बुलाकर कह रहे हैं कि—

'इस समय चैत्रका सुन्दर और पुण्य मास है, जिसमें सब वन जंगल फूल गये हैं। आज पुष्यसे पहले नक्षत्र पुनर्वसुपर चन्द्रमा आया है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि कल निश्चय पुष्य (नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका) योग है, तुम पुष्यनक्षत्रमें कल अपना अभिषेक करा लो। मेरा अन्तःकरण मानो मुझसे शीघ्रता करा रहा है।' (वा० रा० २। ३। ४ एवं २। ४। २१-२२)

महाराज दशरथके कथनसे स्पष्ट हो गया कि चैत्र-मासके पुष्य-नक्षत्रमें अभिषेक होनेवाला था, इससे पक्ष और तिथिका भी निश्चय आपसे आप होजाता है, क्योंकि ज्योतिषकी गणनाके अनुसार पुष्य-नक्षत्र चैत्र-मासके शुक्लपक्षमें ही आता है, सो भी केवल नवमी दशमी और एकादशी इन तीन तिथियोंके भीतर ही। नवमी रिक्ता होनेसे राज्याभिषेकके लिये वर्जित है। एकादशी मन्वादि तिथि होनेसे राज्याभिषेकके लिये कुछ विशेषता नहीं रखती इसलिये अर्थापत्ति-प्रमाणसे यह सिद्ध हो जाता है कि चैत्र-मासके शुक्ल-पक्षमें पुष्ययुक्त पूर्णातिथि दशमी राज्याभिषेकके लिये नियत हुई थी। किन्तु कैकेयीकी इच्छासे राज्याभिषेक रुक गया और श्रीरामको उसी दिन वन जाना पड़ा। यद्यपि चैत्र-मास राज्याभिषेकके लिये अग्राह्य है जैसा कि मुहूर्तशास्त्रमें लिखा है—

> नाभिषेकः शुभो वाच्यो नृपे चैत्रेऽधिमासके।
> न भूसुते प्रसुप्ते च विष्णौ रिक्तासु रात्रिषु॥
>
> (चण्डेश्वरः)
>
> उत्तरात्रय मैत्रेन्द्र-धातृ-चन्द्र-करोडुषु।
> सश्रुत्यश्वीज्य-पौष्णेषु कुर्याद्राज्याभिषेचनम्॥
>
> (कश्यप)

अर्थात् 'देवशयनके समय, चैत्रमास, अधिक मास, रिक्ता तिथि और मंगलवारमें किसीके मतमें, बुधवारमें भी राजाका अभिषेक अशुभ कहा गया है। तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशीर्ष, हस्त, श्रवण, अश्विनी, पुष्य, और रेवती इन नक्षत्रोंमें राजाका अभिषेक करना चाहिये' फिर भी महाराज दशरथने वर्जित चैत्रमासमें ही रामाभिषेक कर डालनेके लिये शीघ्रता की। इतनी शीघ्रता की कि 'कोमल-साम्राज्यकी भविष्य युवराज्ञीके पिता मिथिलाधिपति नृपति सीरध्वज जनकको और प्रभावशालिनी तरुणा रानी कैकेयीके तेजस्वी पिता प्रबल सम्बन्धी केकय राजाको भी बुला नहीं सके। और कह दिया कि कोई बात नहीं, अभिषेकके प्रिय संवादको वे पीछे सुन लेंगे (वा०रा०२।१।४८)।

---

* श्रीरामके वन जाने और लङ्काविजयके पश्चात् पुनः अयोध्या लौटनेकी तिथियोंके सम्बन्धमें कल्याणमें पहले श्रद्धेय मिश्रजीका एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुका है। तिथिपत्र सम्बन्धी दो अन्य लेख इस अंकमें छपे हैं अतएव पाठकोंके अवलोकनार्थ उस लेखका आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। —सम्पादक

यद्यपि राजाकी मृत्यु आदि राजनैतिक संकटके समय अभिषेकके मुहूर्तके लिये तादृश विवेचनकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु महाराज दशरथने मुहूर्तके विशेष आलोचनकी उपेक्षा कर इतनी त्वरा क्यों की ? इसका उत्तर रामायणमें स्वयं वे ही श्रीरामचन्द्रजीके सामने इसप्रकार दे रहे हैं–

'हे पुत्र राघव ! और भी एक बात है कि आज मैंने (बड़े) अशुभ स्वप्न देखे हैं। (आकाशमें) निर्घात शब्द हो रहे हैं और वहाँसे महानाद करती हुई उल्काएँ पड़ रही हैं दैवज्ञ बता रहे हैं कि मेरे नक्षत्रपर हे राम ! शुक्र, मङ्गल और राहु दारुण ग्रह आये हुए हैं। ऐसे निमित्तों (उत्पातों) के प्रादुर्भाव होनेपर प्रायः राजाकी मृत्यु होती है और (कोई) घोर विपद् आती है। अतः जबतक किसी तरह मेरा चित्त मोहित नहीं होता है, उससे पहले ही (तुम अपना) अभिषेक करा लो क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती। इस तरहके कार्योंमें बहुत विघ्न आ पड़ते हैं, जबतक भरत राजधानीसे बाहर हैं, तबतक ही मेरी सम्मतिमें तुम्हारे अभिषेकके लिये (अच्छा) अवसर है। यह ठीक है कि तुम्हारे भाई भरत (अबतक) सत्-पुरुषोंके आचरणमें स्थिर हैं। किन्तु मेरी सम्मतिमें मनुष्योंके चित्त सदा एकरस नहीं रहते। (वा०रा०अ०)

यह हो सकता है कि रामायण-युगके किसी मुहूर्त-शास्त्रमें राज्याभिषेकके लिये शायद चैत्र-मास वर्जित न हो और यह भी ठीक है कि श्रीराम-राज्याभिषेकका मुहूर्त चाहे दुर्जय दैवगतिके सामने पराजित हो गया, तो भी ऊपरके अवतरणसे यह तो मानना ही पड़ेगा कि कोशलेश्वरने राज्याभिषेकके सब अङ्गोंपर सन्तोष-जनक रीतिसे विचार नहीं किया और न करना चाहा। श्री-रामचन्द्रजीके समक्ष सशंक-हृदय वृद्ध नृपतिने जो हृदयका उद्गार प्रकट किया और जो आवेग दिखाया, उससे तो यही प्रतीत होता है कि उन्हें बढ़िया मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं थी, अभिषेकके लिये बहुत भारी तैयारीकी लालसा भी नहीं थी। लालसा थी तो एकमात्र यही कि किसी तरहसे भी जल्दी-से-जल्दी वे एक बार लोकनयनाभिराम श्रीरामको सूर्यवंशके प्रधान और चिरप्रतिष्ठित राजसिंहासनपर अभिषिक्त देखकर नेत्रोंको सफल कर लें। वे इतने अधीर क्यों हुए ? मालूम होता है कि अयोध्याके साम्राज्य पर जो विपत्ति आनेवाली थी, उसके विषादकी छायाने उनके हृदयको घेर लिया था। उससे समुद्रगम्भीर वे राजर्षि इतने विह्वल और चञ्चल हो गये कि आकाशकी तरह निष्कलंक लोकपावन महात्यागी राजकुमार भरतजी पर भी अकथ्य सन्देह कर बैठे। शेक्सपीयरद्वारा कल्पित कलिनायक हैमलेटका ज्ञान-गर्भ उन्माद और किंग लीयरका परिणामानुकूल पागलपन भी पढ़ा है, पर त्रेतायुगके ऋषि-प्रशंसित देव-वन्दित उस पुण्य-श्लोक अमर नरपतिके मनकी प्रकृत अनवस्थाका चित्र बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। जो हो, ऐसी दशामें जो कुछ होना था वह हो गया। भगवत्-संकेतसे घटनाचक्र घूम गया। अभिषेक-दिन निर्वासन दिनमें परिणत हो गया। अयोध्यावासियोंके आनन्दका सूर्य उदय होते ही अस्त हो गया। वह दिन श्रीरामचरितके ग्रामोफोनमें ऐसा डबल रेकर्ड है जिसके एक तरफ रामा-भिषेकके आनन्दकी भैरवीका आलाप पूर्ण होनेसे पहले ही दूसरी ओर रामवन-यात्राकी सोहनीका शोक-संगीत शुरू हो जाता है। जो हो, आर्यजातिके इतिहास-प्रांगणमें आज भी वह दिन एक ऐसे उच्च गोपुरकी तरह दण्डायमान है, जिसकी एक दिशापर 'सत्यसंध दशरथ और रामाभिषेक' और दूसरीपर 'पितृभक्त श्रीराम और उनकी वन-यात्रा' अङ्कित है एवम् मस्तकपर लिखा है—

'चैत्र शुक्ला १० पुष्यनक्षत्र'

श्रीरामचन्द्रजीके वन-गमनकी तिथिका निर्णय हो गया। इसके बाद यह निश्चय करना है कि—

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

रावणवधतक भगवान्‌की लीलाओंके समय या तिथिका क्रम इसप्रकार है–

चित्रकूट	१— यात्रा-दिनसे छठे दिन, अर्थात् चैत्र-शुक्ला १५ को रामचन्द्रजी चित्रकूट पहुँचे।
अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियोंके आश्रम	२— दण्डकारण्यमें, विभिन्न मुनियोंके आश्रमोंमें रामचन्द्रजी दश वर्षतक रहे और यह सारा समय उनका सुखसे बीत गया, विराधका वध वे वनवासके आरम्भमें ही कर चुके थे।

तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश॥

(रा० ३।११।२६)

सुतीक्ष्ण-आश्रममें पुनर्गमन

३—वनवासके ग्यारहवें वर्षके आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें दूसरी बार आये और वहाँपर अनुमान दस मासतक अर्थात् वर्षाकालकी समाप्ति तक रहे।

सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह।
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमरिन्दमः॥
(रा० ३।११।२८-२९)

अगस्त्याश्रम

४—ग्यारहवें वर्षके ग्यारहवें महीनेमें कार्तिक मासमें श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्य मुनिके आश्रममें पहुँचे।

पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः॥
(रा० ३।११।४०)

बारहवें वर्षके ग्रीष्मकालतक वहींपर रहे।

पञ्चवटी और सीताहरण

५—बारहवें वर्षकी वर्षा ऋतुके आरम्भमें भगवान् श्रीराम पञ्चवटीमें आये, जटायुसे मिले।

'मयूरनादिता रम्याः' 'दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः'।
(रा०३।१५।१३।१४)

वह वर्ष उनका वहींपर समाप्त हो गया। तेरहवें वर्षके मार्गशीर्ष मासतकका समय भी वहींपर निर्विघ्नतासे व्यतीत हो गया।

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः।
शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तत॥
(रा०३।१६।१)

शूर्पणखाके कर्ण-नासिका-छेदनके अनन्तर जनस्थानके चौदह सहस्र राक्षसोंका वध हो लेनेपर तेरहवें वर्षके तीसरे महीने अर्थात् शिशिर ऋतुके अन्तिम मास फाल्गुनके आद्यपक्षमें रावणने सीताजीका अपहरण किया।

कुसुमापचयव्यग्रा पादपानभ्यवर्तत।
कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा॥
(रा०३।४२।३०।३१)

पम्पासरोवर और ऋष्यमूक पर्वत

६—सीतान्वेषणके समय कबन्ध-वध और शबरी-उद्धारके बाद अनुमान तेरहवें वर्षके पाँचवें (वसन्त ऋतुके वैशाख) मासमें भगवान् क्रमशः पम्पासरोवर और ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँच राज्यच्युत सुग्रीवसे मिले।

गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः।
(रा०४।१।१०)

वालिवध और प्रस्रवण पर्वत

७—तेरहवें वर्षके सातवें (आषाढ) मासमें बालिका वध हुआ। पश्चात् श्रावणसे लेकर पौष कृष्णा ८ अर्थात् चौदहवें वर्षके आरम्भतक श्रीरामचन्द्रजी प्रस्रवण या माल्यवान् पर्वतपर रहे।

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः॥
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः।
(रा०४।२६।१३-१५)

लंकाप्रवेश और सीतासंवाद

८—चौदहवें वर्षके प्रथम मास मार्गशीर्षकी शुक्ला ११को महावीर हनुमान् लंकामें घुसे। अगले दिन द्वादशीको उनका श्रीजानकीजीसे संवाद हुआ।

हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः।
(रा०५।५।१)

सेना-प्रयाण

९—पौष कृष्णा अष्टमी उत्तरा-फाल्गुनी-नक्षत्रमें मध्याह्नके समय।

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचये।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्यं दिवाकरः॥
उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य
(रा०६।४।३।६)

सुवेल शिखरपर आरोहण

१०—पौष शुक्ला चतुर्दशी या पौर्णमासीको सेनाके अग्रभागको त्रिकूट पर्वतपर पहुँचा स्वयं सुवेल पर्वतपर चढ़े।

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरंजितः।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च निशा समभिवर्तत॥
(रा०६।३८।१८)

श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त सेना एक मासमें नल-सेतुद्वारा लंकातक पहुँच सकी।
(म० भा० ३।२८२।५०)

सेना-निवेश और दूत-सम्प्रेषण

११—इन दोनों कार्योंमें माघ कृष्णा १ से अमावस्यातकके १५ दिन व्यतीत हो गये।

वानर-राक्षसोंके खण्ड युद्ध — १२—चतुर्दश वर्षके चतुर्थमास (माघ) की शुक्ला प्रतिपद्से भाद्रपदकी अमावस्यातक, लंकासे बाहर वानर और सेना-मन्त्रियोंसे आश्रस राक्षसोंकी साधारण सेनाके खण्ड युद्ध होते रहे।

इन युद्धोंमें छः महीने निकल गये।

अयन्ते सुमहान् काल शयानस्य महाबल।
सुखुसस्त्वं न जानीषे मम राम-कृतं भयम्॥
(रा० ६।६२।१३)

उक्त युद्धोंमें प्रमुख योद्धा और सेनापतियोंने भाग नहीं लिया। आगे इन लोगोंके जो युद्ध हुए उनके विवरण नीचे दिये जाते हैं।

सेनाका संकुल-युद्ध तथा प्रमुख वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध — १३—भाद्र शुक्ला प्रतिपदाको स्वयं रावणद्वारा प्रेषित प्रधान सेनाका वानरोंके साथ संकुल युद्ध हुआ, इसी दिन दोनों ओरके प्रमुख वीरोंका सबसे बड़ा द्वन्द्व-युद्ध हुआ।

निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तथा।
(रा० ६।४२।३२)

रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत।
(रा० ६।४३।४३)

मेघनादका नागपाश — १४—भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाकी रात्रिके समय।

अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोचाशनिसन्निभान्।
रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः॥
(रा० ६।४४।३७-३८)

(१५) धूम्राक्ष-वध	भाद्र शुक्ला	२,
(१६) वज्रदंष्ट्र-वध	,, ,,	३,
(१७) अकम्पन-वध	,, ,,	४,
(१८) प्रहस्त-वध	,, ,,	५,
(१९) रावणका पराजय तथा पलायन	,, ,,	६,
(२०) कुम्भकर्णप्रबोधन	,, ,,	८,
(२१) कुंभकर्ण-वध	,, ,,	१५,
(२२) अतिकाय-वध	आश्विन कृष्ण—	१,
(२३) त्रिशिरा-वध	,, ,,	२,
(२४) देवान्तक-वध	,, ,,	३,
(२५) नरान्तक-वध	आश्विन कृ०	४,
(२६) महोदर-वध	,,	५,
(२७) महापार्श्व-वध	,,	६,
(२८) मेघनादकृत ब्रह्मास्त्र-प्रयोग	,,	७,
(२९) संजीवनी आनयन	,,	८,
(३०) कुम्भ-निकुम्भ-वध	,,	९,
(३१) मकराक्ष } (३२) मायासीता }	,,	दिनमें { रात्रिके { समय
(३३) मेघनाद वध	,,	१३,
(३४) मूल सेना-वध	,,	१४,

(३५) रावण-निर्याण—आश्विन कृष्णा अमावस्या।

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्ष-चतुर्दशीम्।
कृत्वा निर्याह्यमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः॥
(रा० ६।९२।६४)

(३६) रावण-वध—आश्विन शुक्ला नवमी।

व्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्यां रावणं ततः।
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी॥
(कालिकापुराण)

(३७) विजयोत्सव—आश्विन शुक्ला दशमी।

ततस्तु श्रवणेनाऽथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम्।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बल-नीराजनं हरिः॥
(कालिकापुराण)

श्रीरामचरित्रके साधारण और असाधारण सैंतीस अंशोंकी सूची और उनका यथालब्ध समय प्रायः श्रीवाल्मीकीय रामायणके आधारपर ऊपर दिया गया है। कहीं केवल ऋतुका, कहीं ऋतु और मास दोनोंका और कहींपर नक्षत्रके आश्रयसे पक्ष और तिथिका भी निश्चय हो गया है। किन्तु रामावतारकी प्रधान घटना रावण-वधके समयका स्पष्टतया उल्लेख रामायणमें कहीं नहीं किया गया। अतः उनके निर्णयके लिये महाभारत और पुराणोंकी ही ओर अन्वेषककी दृष्टि दौड़ती है, क्योंकि पुरेतिहासके सबसे बड़े कोश यही हैं। रावण-वधके उक्त अन्धकाराच्छन्न अंशको 'कालिकापुराण' प्रकाशित कर देता है कि आश्विन शुक्ला ९ को भगवान् रामचन्द्रजीने रावणका वध किया और अगले दिन देवताओंने सेनामें रोशनी की। सम्भवतः नवमीको रावण देरसे मरा और शेष समय भगवती दुर्गाकी महती पूजामें व्यतीत हो गया, इससे दशमीके दिन देवी-

विसर्जनके अनन्तर देवताओंने विजयोत्सव मनाया। यही कारण है कि नवमी तिथि दुर्गा-पूजाकी प्रधान तिथि मानी गयी और दशमीका नाम 'विजया' हो गया। यद्यपि रावणका वध आश्विन शुक्ला ९ को हुआ, परन्तु विजयोत्सव दशमीके दिन मनाये जानेसे जनसाधारणने रावण-वधका वही दिन मान लिया और आज भी सारे हिन्दुस्थानकी त्योहारी रामलीलाओंमें दशहरेके दिवस ही रावण-वध होता है। रावण-वधके दिन रामचन्द्रजीके वनवासके बारह दिन शेष रह गये थे।

अब देखना चाहिये—

(४) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको वनवाससे अयोध्यामें लौटे !

रामायणमें लिखा है कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥
(रा० ६ । १२४ । १)

अर्थात् 'नियमपरायण रामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूरा होते ही पञ्चमीके दिन भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनि (भरद्वाज) को प्रणाम किया' यहाँपर केवल तिथिका ही निर्देश है, मास और पक्षका नहीं। पर जब यह सिद्ध हो गया कि आश्विन शुक्ला १०को रावणका निधन हो चुका था, तब साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि रामचन्द्रजी जिस पञ्चमीको भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे वह कार्तिक कृष्ण ५ ही थी। कार्तिक कृष्ण ६ को वनवासके चौदह वर्ष पूरे होते थे, इसलिये उस दिन भ्रातृ-भक्त भरतजीके पास रामचन्द्रजीका पहुँच जाना अतीव आवश्यक था।

उनके निश्चित समयपर वहाँ दर्शन नहीं देनेसे महान् अनर्थकी आशंका थी क्योंकि दृढ़व्रत भरतजी चित्रकूटमें रामचन्द्रजीसे कह चुके थे कि—

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वान्तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
(रा० २ । ११२ । २५-२६)

अर्थात् 'हे रघुश्रेष्ठ ! जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे उस दिन यदि आपको नहीं देख पाऊँगा तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।' इसी तीव्र प्रतिज्ञाके प्रभावसे कार्तिक कृष्ण ५को महावीरजीने राम-मेघके चातक महात्मा भरतके पास उपस्थित होकर कहा कि—

'अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि।'

'कल पुष्य नक्षत्रके समय बिना बाधाके आप रामचन्द्रजीको देख सकेंगे' इस सन्देशके अनुसार कार्तिक कृष्ण ६ को पुष्य नक्षत्रके योगमें भगवान् रामचन्द्रजीका भरतजीसे मिलाप हुआ और उसी दिन सब भाइयोंने समारोहके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया। कार्तिक कृष्ण सप्तमीको मध्याह्नकाल* पुष्य नक्षत्रमें ही चौदह वर्षके सुदीर्घ कालके पश्चात् स्थगित श्रीराम-राज्याभिषेक पुनः सुसम्पन्न हुआ। यह विषय ध्यान देनेका है कि रामचन्द्रजीका अभिषेक पहले भी पुष्य नक्षत्रमें ही होनेवाला था और अब दूसरी बार भी उसी नक्षत्रमें हुआ। मालूम होता है कि कार्तिक कृष्ण ६ को मध्याह्नोत्तर और कार्तिक कृष्ण ७ को पूर्वाह्णमें पुष्य नक्षत्र था। तभी यह हो सका कि भरत-मिलाप और अभिषेक जैसे महत्त्वपूर्ण दोनों कार्य एक ही नक्षत्रमें हो सके। श्रीरामाभिषेकके उत्सवका सिलसिला बहुत दिनोंतक रहा, जिसमें लाख घोड़े, उतनी ही धेनु, सौ वृष और तीस करोड़ सुवर्णमुद्राएं तथा कितने ही बहुमूल्य वस्त्र-आभरण ब्राह्मणोंको दानमें दिये गये। (वा० रा० ६ । १३० । ७३-७५) चारों ओरके तपोधन ऋषि और प्रथित राजा आशीर्वाद, बधाई एवं भेंट देनेके लिये उसमें सम्मिलित हुए। सुग्रीव, विभीषण आदि सुहृद्गण तो प्रेम-परवश हो फाल्गुन मासतक राम-राजधानी अयोध्यामें अभिषेक-आतिथ्यका रसास्वादन करते रहे। अभिषेकके उपलक्ष्यमें रोशनी भी अवश्य हुई, पर कितनी हुई और कितने दिन रही.इस विषयका स्पष्टीकरण महर्षि वाल्मीकिजीने अयोध्याकाण्डके अन्तिम सर्गमें नहीं किया। कारण, संक्षेपके लिये वहाँपर नब्बे श्लोकोंमें ही भरत-मिलाप और अभिषेकोत्सवका वर्णन समाप्त कर दिया गया है। हाँ, अयोध्याकाण्डमें रामाभिषेकके आयोजनका वर्णन करते समय आदिकवि लिखते हैं कि—

प्रकाशीकरणार्थं च निशागमनशंकया।
दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्वशः॥
(रा० २ । ६ । १८)

'रात्रिके आनेसे पहले रोशनीके लिये अयोध्याके सब गली-कूचोंमें दीप-वृक्ष (झाड़) बनाये गये। परन्तु दैव-

---

* ततः प्रभाते विमले मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः।
वसिष्ठः पुष्ययोगेन ब्राह्मणैः परिवारितः॥

दुर्भाग्यसे उस दिनकी तैयारी ज्यों-की-त्यों रह गयी! रोशनीके जड़-दीपकोंको कौन पूछे, जब अयोध्यावासियोंके प्राण-मन्दिरके दीपक ही वनमें चले गये। जो हो, श्रीरामाभिषेकके प्रथम मुहूर्तपर भरपेट रोशनी करनेका चाव अयोध्यावासियोंके मनमें ही रह गया। अभिषेकके दूसरे मुहूर्तपर उन लोगोंने रोशनी करनेमें पहली बारकी कसर भी निकाल डाली होगी, इसमें सन्देह नहीं। उपवासके पारणापर व्रती पुरुष कितने जोरसे भोजन करता है? अवरुद्ध जल बाँध टूटनेपर कैसे वेगसे बहता है? जब देवताकी प्रतीक-पूजाके उपचारमें भी कितने ही दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं, तब प्रकृति-पुञ्जके परमाराध्य साक्षात् देव और संसारविजयी रावणके विजेता प्रभु रामचन्द्रके विजय-शोभित अभिषेकके प्रथम सप्ताहमें प्रकाश—रोशनीका जो प्रकाण्ड आयोजन हुआ होगा, उसका अनुमान लगाना कठिन है और यह प्रत्यक्ष है कि वर्तमान दीपावलिमें उसीका प्रतिबिम्ब है।

कार्तिक कृष्ण षष्ठीके दिन श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्या-प्रवेश मान लेनेपर यह सन्देह उपस्थित होता है कि जब चैत्र शुक्ल दशमीको वनवासका आरम्भ हुआ तो कार्तिक कृष्ण षष्ठीको वनवासके चतुर्दश वर्षकी पूर्ति किस तरह हुई? चौदह वर्षमें पाँच महीने और उन्नीस दिनकी न्यूनता न रह जाती है? निस्सन्देह, उक्त सन्देहके औचित्यमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। पाण्डवोंकी वनयात्रा और अज्ञातचर्याके विषयमें भी यही समस्या सामने आयी थी। विराट-नगरके गो-अपहरण-युद्धमें बृहन्नला वेशधारी सत्यसन्ध अर्जुनको पहचान लेनेपर कौरवराज दुर्योधनने हो-हल्ला मचाया था कि पाण्डवोंके तेरह वर्षोंकी पूर्तिमें अभी पाँच महीने और कई दिनकी त्रुटि है, इसलिये प्रतिज्ञात समयसे पहले प्रकट हो जानेके कारण इन्हें फिर वनचर्या और अज्ञातवासकी आवृत्ति करनी पड़ेगी, उस समय परम धर्मज्ञ पितामह भीष्मजीने यह व्यवस्था दी थी कि—

> पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपचीयतः।
> एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादशक्षपाः॥
> त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे धीयते मतिः।
> सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः प्रतिश्रुतम्।
> सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः।
> येषां युधिष्ठिरो राजा कथं धर्मेऽपराध्नुयुः॥
>
> (महाभारत ४। ५२। ३-६)

'अर्थात् हर पाँचवें वर्षमें दो महीने बढ़ते हैं। (इस हिसाबसे) इन पाण्डवोंके (तेरह वर्षोंमें तो आजतक) पाँच मास बारह दिन अधिक हो चुके। मेरी यह सम्मति है कि इन्होंने जो जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, वे सब यथावत् पूरी कर दीं। सभी (पाण्डव) महात्मा हैं और सभी धर्म तथा अर्थशास्त्रके वेत्ता हैं। जिनका युधिष्ठिर (जैसा सत्यवादी) राजा है, वे धर्म (विषय) में कैसे अपराधी हो सकते हैं?

भीष्मजीकी उक्त ज्योतिष-शास्त्रानुकूल व्यवस्थासे यह सिद्ध है कि एतादृश विषयोंमें ३५४ दिनके तिथिबद्ध चान्द्र वर्षोंका ही उपयोग होता है और ३६६ दिनवाले सौर वर्षोंके अधिक मास मिलाकर उनकी पूर्ति की जाती है। अतः चान्द्र वर्षकी पूर्तिके लिये सौर वर्षके अधिक मासकी गणना न्यायसंगत है और उससे धर्मकी कोई हानि भी नहीं होती। ऐसी दशामें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अधिक मासगणनाकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे? और न्यायनिष्ठ रामदर्शनोत्सुक रामगत-प्राण भरतजी भी अधिक मासोंको गिने बिना क्योंकर रह सकते थे? अवश्य ही दोनों ओरसे समय-संगतिपर पूर्ण विवेचना की गयी है। चौदह वर्षमें पाँच मास और उन्नीस दिन अधिक मासोंकी गणनासे बढ़ जाते हैं—यही सोचकर श्रीरामचन्द्रजी कार्तिक कृष्ण षष्ठीको ही दर्शनोत्सुक और प्रतीक्षमाण भरतसे जा मिले। कार्तिक कृष्ण षष्ठीमें पाँच मास और उन्नीस दिन जोड़ देनेसे वनवासके चौदह वर्षोंकी यथावत् पूर्ति हो जाती है। गणित-शास्त्रका जो अपरिहार्य सिद्धान्त कुरुराज दुर्योधन जैसे हठी राज्य-कामुकने बिना आपत्तिके स्वीकार कर लिया, उसे न्याय और त्यागके प्रथम शिक्षक कौसल-राजकुमार महोदार भगवान् रामचन्द्र और भरत किस भाँति त्याग सकते थे?

उक्त सिद्धान्तसे चतुर्दश वर्षकी पूर्तिका समाधान हो गया। साथ ही यह भी निर्णीत हो गया कि दशहरा श्रीराम-विजयका स्मृति-दिवस है और कार्तिक मासमें ही विजय-वैजयन्ती-मण्डित पुष्पक-विमानारूढ श्रीराम अयोध्यामें लौटे थे। इसीलिये दीपावलिका उत्सव मनाया जाता है।

* * * *

राम-नाम

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल०बी०, एम० आर० ए० एस०)

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां,
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

(हनुमन्नाटक)

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ।।

—तुलसी

राम राम कहते रहो जब लग घटमें प्रान ।

—कबीर

कथा है कि एक बार एक सज्जन सरयू अथवा गङ्गापार करके गोस्वामी तुलसीदासजीके पास उपदेश सुनने आये । लौटते समय देर हो गयी, नदीमें पूर आ गया और पासमें नाव भी न थी । उस सज्जनने कुछ व्यग्रता दिखायी । इसपर गोस्वामीजीने कहा—'भाई ! जो भवसागर पार करा देते हैं उनके लिये यह नदी पार करा देना कौन बड़ी बात है ? तुम उन्हीं रामजीका नाम लेकर नदीको यों ही पैदल पार कर जाओ ।' उन सज्जनने वैसा ही किया और नदीके पानीमें उतरकर आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर जब वह गोते खाने लगे तो उन्होंने गोस्वामीजीको अपनी सहायताके लिये पुकारना शुरू किया । यह देख गोस्वामीजीने चिल्लाकर कहा—'भाई कहो कि तुलसीदासके राम हमें पार करें और ऐसा कहते हुए पार हो जाओ ।' उन्होंने वैसा ही किया और वह सचमुच ही पार हो गये ।

क्या उन सज्जनके राम और थे और गोस्वामीजीके और ? अवश्य, बात ऐसी ही है । प्रत्येक मनुष्यके राम अलग अलग हैं । अयोध्याके ऐतिहासिक राजा रामचन्द्रजी सम्भव है एक ही व्यक्ति रहे हों परन्तु उनका वर्णन सबने एक-सा नहीं किया है । वाल्मीकीय रामायणमें वे मर्यादा-पुरुषोत्तम कहे गये हैं तो अध्यात्मरामायणमें विष्णुके अवतार । भवभूतिने उन्हें लोकोत्तर पुरुष माना है तो तुलसीदासजीने साक्षात् परब्रह्म परमात्मा । ऐसी विभिन्नताका कारण स्पष्ट है । ये महापुरुष कोरा इतिहास तो लिखने बैठे ही नहीं थे । इनका उद्देश्य तो एक आदर्श चरित अथवा भगवत्-चरितका वर्णन करना था । इतिहासकी अँधेरी कोठरीमें ढूँढ़ते ढूँढ़ते उन्हें श्रीरामचरितरूपी भूमिका मिल गयी । फिर क्या था, जिसकी जहाँतक पहुँच हुई उसने वहाँतक इस चरितद्वारा भगवद्भावकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न किया । कुछ लोग इस चरितमें सच्चरितमनुष्यकी ही कल्पना कर पाये, कुछ लोकोत्तर पुरुषतक बढ़ गये, किसी-किसीने मर्यादा-पुरुषोत्तमकी सीमा छू ली, किसीने विष्णु अवतारकी झाँकी देख ली और गोस्वामी तुलसीदासजीके समान कुछ महात्माओंने इस चरितमें परब्रह्म परमात्माहीका आविर्भाव देखा । ऐसी स्थितिमें कैसे कहा जा सकता है कि सबके राम एक ही समान थे और सबने 'राम' शब्दका अर्थ एक-सा ही समझा था ।

नदी पार करनेवाले सज्जन रामका जो अर्थ समझते थे, उससे कई दर्जे बढ़कर अर्थ तुलसीदासजीके राममें था । यदि वह सज्जन रामसे केवल अयोध्यावासी राम अथवा साकेतलोकवासी रामका ही अर्थ लेते होंगे तो तुलसीदासजीके रामका अर्थ था—रोम-रोममें और परमाणु-परमाणुमें रमा हुआ अखण्ड चैतन्य, जो विश्वात्मा होकर भी विश्व-नियन्ता है । एक ही रत्न शाक-वणिकद्वारा चार पैसेका, सामान्य जौहरीद्वारा चार सौ का और सच्चे पारखी-द्वारा चार अरब या इससे भी अधिक दामोंका ठहराया जा सकता है । ठीक यही हाल इस 'राम-नाम' का है । कोई इससे अयोध्यावासी रामका अर्थ ले सकते हैं, कोई विष्णु अवतारका अर्थ ले सकते हैं और कोई इसे एकदम परब्रह्म परमात्माका ही नाम मान सकते हैं । इसके अर्थमें जो जितना गहरा गोता लगावेगा वह उतना ही अधिक फल पावेगा ।

वैष्णवलोग 'राम'का अर्थ शरीरी अथवा अवतारी राम समझते हैं । कबीर नानक सरीखे सन्त रामका अर्थ अशरीरी परमात्मा ही मानते हैं । यह अपनी अपनी समझकी बात है । नाम तो एक ही है । जिस मनुष्यके मनमें परब्रह्मकी भावना जैसी-जैसी विशाल और परिपक्व होती जायगी, वह मनुष्य

रामके अर्थकी विशालता भी वैसे-ही-वैसे अनुभव करता चला जायगा। नामी (नामके अर्थ) बदलते गये परन्तु नाम ज्यों-का त्यों रहा। इसीलिये नामकी महिमा बहुत बड़ी-चढ़ी है।

सामान्य जगत्में हम रूपकी (वस्तुकी) प्रधानता पाते हैं, नामकी नहीं। प्यास बुझानेके लिये हमें तो वह तरल पदार्थ जल ही चाहिये। उसका नाम रटते रहनेसे प्यास नहीं बुझ सकती। महत्त्व तो नामधारी व्यक्तिका देख पड़ता है न कि उसके नामका। परन्तु अध्यात्म-जगत्में कुछ उलटा ही खेल है। बात यह है कि अध्यात्म-जगत्के पदार्थोंका (ब्रह्म, आत्मा, शक्ति आदिका) हम दर्शन तो कर नहीं पाते, वे प्रत्यक्ष विषय तो हैं ही नहीं, इसलिये उन्हें ग्रहण करनेमें हमें नामका सहारा लेना पड़ता है और इसी कारण उस क्षेत्रमें नामकी प्रधानता हो जाती है। अध्यात्म-जगत्की वस्तुओंके लिये नामका सहारा बड़ा प्रबल होता है। शब्द और अर्थका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि एक मिला तो दूसरा भी मिला हो समझिये। वह नाम कैसा है जो रूपको न रोक रक्खे और वह रूप कैसा है जो किसी नामसे व्यक्त न किया जा सके!

जिस नाममें रूपका (अर्थका) जितना अधिक समावेश होगा, वह उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा। सामान्य नामोंसे भगवान्के नाम अधिक महत्त्व-पूर्ण हैं और भगवान्के सहस्र (या असंख्य) नामोंमें भी यह राम-नाम इसी कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है। शङ्करजीका 'सहस्रनाम तत्तुल्यं' वाला वाक्य प्रायः प्रत्येक नाम-प्रेमीको विदित होगा। इसी दृष्टिसे विचार करनेपर यह भी विदित हो जायगा कि नदी पार करनेवाले उस सज्जनके रामनाममें और तुलसीदासजीके रामनाममें क्या अन्तर था!

इस राम-नाममें ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण यह दूसरे नामोंसे अधिक महत्त्व-पूर्ण और अधिक अर्थ गाम्भीर्यवाला माना जाता है? इसका उत्तर कई प्रकारसे दिया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि यह 'ॐ' से मिलता-जुलता नाम है और जहाँ 'ॐ' केवल निर्गुण अथवा अधिक-से-अधिक निराकार ब्रह्मका द्योतक माना गया है वहाँ राम शब्द निर्गुण और सगुण तथा निराकार और साकार दोनोंका प्रकाशक है। दूसरी बात यह है कि इस नाममें रमणीयता (रम् धातुवाली) ओतप्रोत भरी हुई है इसलिये भक्तोंको यह नाम विशेष प्रिय है। रमा और रामा—दोनों ही दीर्घ स्वरान्त शब्द हैं, क्योंकि दोनोंकी रमणीयता विकारशील है। केवल राम शब्द ही ऐसा है जिसमें प्रथमके विकार अन्तमें आकर लय हो जाते हैं। तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो अक्षर अपने शरीरके षट्चक्रमें विद्यमान है और जो वास्तवमें अक्षर और अमिट शक्तिशाली बने हुए हैं उनमें 'रं' अग्नि-बीज माना गया है। जो आगकी तासीर है वही इस बीज-मन्त्रकी है। अग्नि केवल भस्म करनेवाली ही नहीं है, उष्ण-शक्ति प्रकट करनेवाली भी है। इसी प्रकार यह बीजमन्त्र न केवल पापोंको भस्म करता है वरं निर्बलोंमें प्रबल आत्मबलका सञ्चार भी करता है। बीजमन्त्रका सम्यक् जप करनेसे तन्निहित शक्तिका आविर्भाव हो जाना अवश्यम्भावी है। इसी तरह रामनामका ठीक-ठीक जप करते रहनेसे यह हो नहीं सकता कि यह नाम अपना फल न दिखावे।

मुँहसे रामनाम कह देना ही उस मन्त्रका सम्यक् जप नहीं है। यह तो वैखरी वाणीका जप हुआ। जपकी वाणी जितनी गहराईसे उठेगी, उसका फल भी उतना ही उत्तम होगा। वैखरीसे मध्यमा वाणी श्रेष्ठ है, उससे भी पश्यन्ती वाणी श्रेष्ठ है और पश्यन्तीसे भी बढ़कर परावाणी है—जो मूलाधारमें गूँजा करती है। उस वाणीसे यदि इस नामका जप हो तो फिर क्या कहना है! यह तो हुई पहली बात। अब दूसरी बात यह है कि यदि नाम-जपके समय अर्थकी ओर कुछ लक्ष्य ही न रक्खा गया तो फिर तोते अथवा ग्रामोफोनकी तरह नाम-रटसे वास्तविक लाभकी आशा कैसे की जा सकती है? माला अँगुलियोंपर घूमे, जीभ मुखमें घूमे और मन दशों दिशाओंमें घूमे; इसे असली जप नहीं कह सकते।

भक्त—भावना

[राम-नामकी महत्ता]

भूयोंके प्रभुत्वका प्रभाव क्या पड़ेगा, जब
मनमें समाई प्रभुता है सुख-धामकी,
'रसिकेन्द्र' दाम, दंड, भेद, की बिसात क्या है,
प्राप्त है अखंड सिद्धि जब सत्य 'साम'की।
क्रोध कर लेगा प्रतिशोध क्या विरोध,—जब
प्रिय है परीक्षा पूर्ण-प्रेम-परिणामकी।
सत्ता पातकोंकी क्यों न पत्ता-सी उड़ेगी, जब
ध्यानमें हमारे है महत्ता रामनामकी।

—श्री-'रसिकेन्द्र'

रामलीलामें सुधार

(लेखक—श्रीयुत राजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०)

जिन महाशयोंने स्वर्गीय लालाजीकृत 'दुखी भारत' (Unhappy India) नामी पुस्तकका अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि 'मदर-इण्डिया' (Mother India) की बदनाम रचयित्री मिस मेयो (Miss Mayo) का हमारे प्रति एक आक्षेप यह भी है कि भारतीय जनताका साहित्यिक रुचिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस अनर्गल आक्षेपका उत्तर देते हुए आचार्य टामसन (Thomson) ने जो इंगलैण्डके किसी विश्वविद्यालयमें बंगभाषाके अध्यापक हैं, यह कहा है कि 'न जाने मिस महोदयाका भारतके किस भागसे परिचय है।' आचार्य महोदयने यह भी कहा है कि प्रत्येक शीत-कालके आरम्भमें उत्तरीय भारतमें दो सप्ताहों तक 'रामलीला' का उत्सव ऐसे समारोहके साथ मनाया जाता है कि ग्राम-ग्राममें खुशीकी लहर-सी दौड़ जाती है। अर्नेष्ट-उड (Earnest Wood) साहेबने भी 'मदर-इण्डिया' का उत्तर देते हुए तुलसीकृत रामायणका उल्लेख कर यह कहा है कि लैटिन (Latin) और ग्रीक (Greek) महाकाव्योंके साथ तुलनामें भी रामायण (Compares more than favourably) का पल्ला भारी रहता है। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson) ने सत्य ही कहा है 'यदि उस प्रभावपर विचार किया जावे जो महाकवि तुलसीदासने स्वरचित रामायण-द्वारा उत्पन्न किया है, तो निःसन्देह वह एशिया महाद्वीपके उन छः चुने हुए प्रसिद्ध रचयिताओंमेंसे एक सिद्ध होते हैं जिनका प्रभाव झोंपड़ोंसे लेकर शाही महलोंतक एक-सा है।'

यूनान (Greece) में भी नाटकीय खेल जनताके शिक्षणका एक विशेष साधन समझा जाता था। सम्प्रति इंगलैण्डके सबसे बड़े दार्शनिक बर्नार्ड-शा (Bernard Shaw) का भी कथन है कि कहानी और विशेषतः नाटक सार्वजनिक शिक्षणके दो बहुत बड़े साधन हैं, अन्यथा जो लोग सूक्ष्म दार्शनिक बातें समझनेकी योग्यता नहीं रखते, उनके लिये मूर्ति-पूजा और कहानियोंके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन शेष ही नहीं रहता।

अब देखना यह है कि आजकल सुशिक्षित भारतीयोंकी क्या दशा है? हमारा अभिप्राय विशेषतः सुशिक्षित हिन्दुओंसे है। उनका एक अङ्ग तो अपनी मस्तिष्कगत दार्शनिकताके अभिमानमें रामलीला और तत्सम्बन्धी दृश्योंको घृणाकी दृष्टिसे देखता है। दूसरा अङ्ग कृत्रिम सहानुभूतिसे कुछ चन्दा इत्यादि दे देता है, पर उत्सवमें इससे अधिक भाग लेना उचित नहीं समझता। उसका विचार है कि यह अव्यवस्था ही जनताके लिये पर्याप्त है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि जब बर्नार्ड-शा प्रभृति दिग्गज लेखक वर्तमान शताब्दिके विचारानुसार नाटकोंकी रचनामें संलग्न हैं और जब तुलसीकृत रामायणके त्रिशतवर्षीय नाटकीय खेलोंके प्रभावसे हिन्दू लोग अब भी जेम्स (James) जैसे विद्वान्की रायमें The Sober (गम्भीर) की उपाधि पानेके अधिकारी हैं तो कोई कारण नहीं दीखता कि हम थोड़ा-सा ध्यान उधर न दें और इस शिक्षण-विधिको अधिकाधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न न करें।

हमारी उपेक्षाका प्रभाव बहुत बुरा पड़ रहा है। जहाँ सुशिक्षितोंका यह कर्त्तव्य है कि नाटकको उसके उचित आदर्शपर सुस्थिर रखनेका प्रयत्न करें वहाँ हमने यह कार्य प्रायः अर्धशिक्षित लोगोंके हाथोंमें ही दे रक्खा है।

परिणाम क्या हुआ है?

(१) मूर्तियोंके शृङ्गारमें समय और स्थानका कोई ख्याल नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजी हैं तो वनवासकी दशामें, पर पाँवोंमें घुँघरू, शिरपर जगमगाता हुआ मुकुट, नाकमें लटकन इत्यादि बराबर दीख पड़ते हैं। भगवान् अपने इस रूपको देखकर हमारी मूर्खतापर अवश्य ही हँसते होंगे। इस शृङ्गारसे त्याग और वैराग्यका ख्याल तो भूलकर भी नहीं आता। समरभूमिमें रावणसे युद्ध करते हुए जहाँ महाकवि तुलसीदासने खूनके धब्बोंसे श्रीरामचन्द्रजीके शरीरको अलङ्कृत किया है, वहाँ आज रामलीलाओंके रामके शृङ्गारमें अनेक विलायती रंगोंकी ही भरमार रहती है! ऐसी दशामें दर्शकोंपर वीर-रसका प्रभाव कैसे पड़ सकता है? होना तो यह चाहिये कि वनवासकी दशामें महाराजकी वेष-भूषा मुनियोंकी-सी हो, मुखपर उल्लासित गम्भीर प्रसन्नतासे जितेन्द्रियताके भावोंका प्रस्फुरण हो, उनके

प्रत्येक गति एवं सङ्केतसे त्याग तथा वैराग्य इसप्रकार प्रकट होते हों कि हम सभी प्रभावित होकर सत्यपर अपना तन-मन-धन निछावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जायँ। फिर युद्धस्थलके श्रृङ्गार एवं दृश्य तो ऐसे होने चाहिये कि वीर-रस मूर्तिमान् होकर दर्शकोंके सामने नाचने लगे और अपने प्रभावद्वारा उनके नस-नसमें वीरत्वका सञ्चार कर दे।

(२) तुलसीदासकी पवित्र पदावलियों अथवा राजा रघुराजसिंह या ललित जैसे कवियोंकी सुन्दर रचनाओंमें नौटंकी या अन्य बाजारू पदोंकी मिलावट होती जा रही है।

एक बार मैंने एक ऐसा गान सुना, जिसमें यह बात थी कि महारानी उर्मिला चिककी आड़से हाथोंको हिलाकर लक्ष्मणजीको श्रीरामके साथ वन जानेसे मना कर रही थीं। आह, यह कितने छिछोरेपनकी बात है, पर लाचारी है। प्रत्येक कवि या तुक्कड़में तो इतनी योग्यता नहीं हो सकती कि वह पुनीत भावनाओंको पूर्णतः व्यक्त कर सके। आपको नौटंकी पसन्द है तो आप कृपया अपनी इस पसन्दको दूसरे अवसरके लिये रख छोड़ें। रामलीलाके पवित्र शिक्षाप्रद अवसरपर रामायणके साथ ऐसे गानोंकी मिलावट तो जनताके लिये विष ही है। अस्तु!

गत वर्षकी घटना है कि जब मेरे घरके बच्चे रामलीलाके बहुत दिनों बाद अपनी बालोचित रीतिसे धनुषयज्ञका खेल खेलते थे तो चाहे और बात वे भले ही भूल जायें पर उस 'टिली-ली-ली' शब्दको कभी नहीं भूलते थे जिसे किसी अबूझ तुक्कड़ने परशुरामजीके प्रति लक्ष्मणजीके मुखसे कहलाया था, कारण यह कि बुरी बातोंका अनुकरण तुरन्त ही होता है। कहाँ रामायणमें परशुराम और लक्ष्मणका वह रोचक संवाद, जिसे पढ़कर शेक्सपियरके 'जूलियस सीज़र' (Julius Ceasor) वाली कैसियस (Cassius) और ब्रूटस (Brutus) की पारस्परिक वार्ता बच्चोंका खेल जान पड़ती है और कहाँ यह 'टिली-ली-ली' की बेहूदी बात! यदि ऐसा ही होता रहा तो किसी दिन लक्ष्मण-जैसे योद्धाकी दशा गली-कूचोंमें फिरनेवाले बालकोंकी-सी हुए बिना न रहेगी।

(३) गति, इङ्गित तथा वार्तालाप पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। बहुधा तो बालकोंको अपना पार्ट (Part) भी नहीं याद होता जो एक खुली हुई कापीसे पढ़ा जाता है, जो बहुत भद्दा प्रतीत होता है।

अतः सुशिक्षित देश-प्रेमियोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे तनिक इस ओर भी ध्यान देनेकी कृपा करें। चाहे वह रामको 'अवतार' मानें अथवा 'मर्यादापुरुषोत्तम', पर सब मिलकर यह कोशिश अवश्य करें कि वह पुनीत पाठ, जिसने हमें शताब्दियोंसे ठीक-ठीक मार्गपर कायम कर रक्खा है, विस्मृत न हो जाय, अन्यथा कुछ दिनों बाद किसी दूसरी मिस मेयोके आक्षेपोंके उत्तरके लिये भी हमारे पास कुछ बाकी न रहेगा।

तुम्हारी बात ज़मानेके रूबरू रह जाय।
जो ग़ैर हैं उन्हें हँसनेकी आरज़ू रह जाय॥

(चकबस्त)

देखिये, अभी २७ मार्च सन् ३० के 'लीडर' में, १४ वें पृष्ठपर 'राष्ट्रीय नाटक' शीर्षक एक लेख छपा है। लार्ट लिटनके समापतित्वमें कोई सभा हुई थी। उसमें ब्रिटेन (Britain) के जगत्-विख्यात नाटककार बर्नार्ड-शा महोदयने नाटकके प्रति राज्यके कर्तव्यपर ज़ोर देते हुए यों कहा था—

On the continent the theatre is recognised as an instrument of culture which the Government must provide, yet in this country official recognition should not be obtained without strict regard For commercial considerations, it is to do the best work in the best way—it must not go in for the horrible policy of giving to the public what the public likes .....that national theatre should have a very liberal endowment.... .People would go to the national theatre as they go the church. अर्थात् 'यूरोपीय महाद्वीपमें नाटक एक शिक्षाका साधन माना गया है जिसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे होना चाहिये। परन्तु इस देशमें उसे सरकारी स्वीकृति नहीं मिल सकी।······ व्यापारजन्य लाभका कुछ भी खयाल न करते हुए इस सर्वोत्तम कार्यको सर्वोत्तम रीतिसे ही करना चाहिये, उस भयङ्कर नीतिको कदापि न अपनाना चाहिये कि सार्वजनिक रुचिके अनुकूल ही वस्तु-प्रदानकी योजना हो, उस राष्ट्रीय नाटकमें बहुत बड़ी अर्पित निधि होनी चाहिये।······लोग उस नाटकमें उसी (पवित्र) भावनासे जायँगे जैसे वे गिरजेमें जाते हैं।'

वहीं मिस लीना-ऐशवेल (Miss Lena Ashwell) ने भी कहा है कि—The function of the national theatre should be to satisfy the hunger of our people for the poetry and beauty of our language. अर्थात् 'राष्ट्रीय नाटकका कर्तव्य, हमारे देशवासियोंकी भाषाके काव्य एवं सौन्दर्यसे सम्बन्ध रखनेवाली क्षुधाको निवृत्त करना है।' हम यहाँ अपनी ओरसे केवल इतना ही कहेंगे कि हमारे पूर्वजोंने रामलीलाको प्रचलित करनेमें इन्हीं सब बातोंपर ध्यान दिया था। उसी विषयपर हमारा भी ध्यान आकर्षित होना चाहिये। अस्तु !

मेरी विशेष प्रार्थना है कि जो सज्जन इस लेखको पढ़ें वह कम-से-कम इसे ऐसे लोगोंतक अवश्य पहुँचा देवें जो रामलीलाके कार्यकर्ता हों। 'आचारः प्रथमो धर्मः' की उक्तिपर विचार करते हुए यह प्रश्न हमारे जीवन और मरणका प्रश्न है, अतः उपेक्षा और उदासीनता छोड़कर हमें इस प्रश्नको हल करना ही होगा।

रामायणमें सगुण ईश्वर

"रामचरित-मानस (रामचरितका सरोवर) तुलसीकृत रामायणके नामसे अधिक प्रसिद्ध है। कविकी सर्वश्रेष्ठ कृति यही ग्रन्थ है और समयके अनुसार यही पहला ग्रन्थ है जो सन् १५७४ ई०में जब कविकी अवस्था ४३ वर्षकी थी, आरम्भ हुआ था। इसीपर कविकी ख्याति निर्भर है। इसे नौ करोड़ मनुष्योंका बाइबिल कहते हैं और वस्तुतः उत्तरीभारतके प्रत्येक हिन्दूको इसका जितना ज्ञान है उतना मध्य कक्षाके अंगरेज किसानको बाइबिलका भी नहीं है। भारतका एक भी हिन्दू, राजा या कुटी निवासी ऐसा न होगा जो इसके प्रचलित दोहोंको न जानता हो या जिसकी बातचीतमें इसका रंग न हो। भारतीय मुसलमानोंकी भाषामें भी इसकी उपमाएँ घुस गयी हैं और उनके बहुतसे मामूली मुहावरोंका, यद्यपि वे यह नहीं जानते, पहले पहल इसी ग्रन्थमें प्रयोग हुआ है।

परमेश्वरके अवतार रूपमें रामचन्द्रका चरित इस ग्रन्थमें वर्णित है। इसका विषय वही है जो वाल्मीकिके प्रसिद्ध रामायणका है। पर तुलसीदासका ग्रन्थ उसका किसी प्रकार अनुवाद नहीं है। उसी घटनापर नयी कथा रची गयी है पर घटनाओंके वर्णन तथा महत्त्वके विवरणोंमें भिन्नता है। ग्रन्थकर्ता स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने यह चरित अनेक ग्रन्थोंसे लिया है। उनमेंसे वाल्मीकिकी कृतिको छोड़कर मुख्य मुख्य ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' (ब्रह्माण्ड पुराणका एक खण्ड) 'भुसुण्डि रामायण' 'वसिष्ठ संहिता' और 'जयदेवकृत' 'प्रसन्नराघव' हैं।"

× × × ×

"तुलसीदासने यह भी शिक्षा दी है कि ईश्वर शरीरधारी है। उपनिषद्के निर्गुण ब्रह्मको मानते हुए जो सभी गुणोंसे हीन है तथा जिसके बारेमें केवल यही कहा जा सकता है कि वह 'यह नहीं है, वह नहीं है'। इन्होंने यही निश्चय किया कि ऐसे पुरुषका विचार मनुष्योंके मस्तिष्ककी शक्तिके बाहर है और केवल उसी ईश्वरका पूजन हो सकता है जो निर्गुणसे सगुण हो गया हो।"

—डा० सर जार्ज ग्रियर्सन

रामायणकालीन लंका
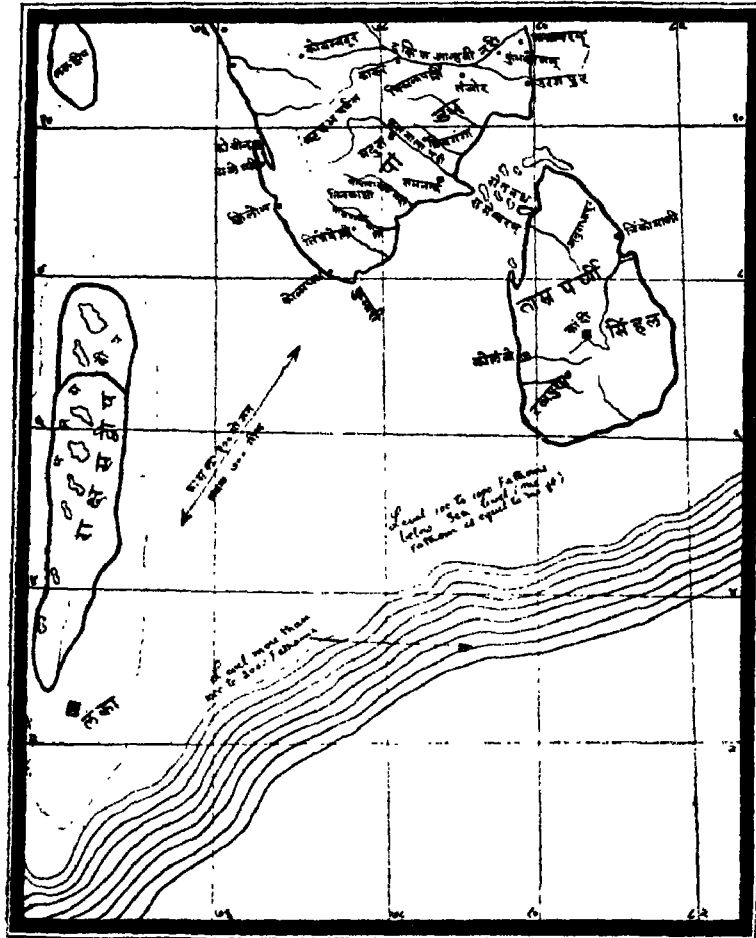
मानचित्रकार श्री वी०एच०वडेर ।

रावणकी लङ्का कहाँ थी?

(लेखक—श्री वी० एच० वाडेर, बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस०)

सन् १९२५ ई० में अखिल भारतीय ओरियण्टल कान्फ्रेंसके मद्रासमें होनेवाले तृतीय अधिवेशनके अवसरपर सरदार माधवराव किबे महाशयने एक निबन्ध पढ़ा था, जिसमें उन्होंने यह दिखलाया था कि वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित रावणकी लङ्का अमरकण्टक पहाड़पर स्थित थी जो विन्ध्याचलकी एक शाखा है और जहाँसे भारत महादेशको उत्तर और दक्षिण दो भागोंमें विभक्त करनेवाली नर्मदा नदी प्रवाहित होती है। बान-नगरके प्रोफेसर जैकोबीने स्वीकार किया है कि रामायणीय कथाका जैन रूपान्तर 'पउमचरिअ' का सम्पादन करते समय जो उन्होंने लङ्काकी स्थिति कहीं आसाममें बतायी थी उससे किबे महाशयका सिद्धान्त कहीं श्रेष्ठ है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है, और वैसे ही बौद्ध-रूपान्तर 'दशरथजातक' भी बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं, जिसको प्रमाण कोटिमें रक्खा जा सके। सन् १९१९ में प्रथम ओरियण्टल कान्फ्रेंस पूनामें भी सरदार साहेबने इसी विषयपर एक लेख पढ़ा था, परन्तु तीसरे अधिवेशनके निबन्धके उपसंहारमें उन्होंने बतलाया कि 'उपलब्ध स्थानीय ज्ञानके अनुसार अब कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि रावणकी लङ्का मध्यभारतमें थी।'

आसाम और मध्यभारत-सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तोंके अतिरिक्त तीसरा एक प्रसिद्ध सिद्धान्त और है, जिसके अनुसार (आधुनिक) सीलोन ही लङ्का और लङ्का ही सीलोन माना जाता है। बहुत-से प्राच्यविद् इसे ध्रुव सत्य मानते हैं। तथापि हम पाठकोंके सामने लङ्काकी स्थितिके विषयमें एक नवीन सिद्धान्त उपस्थित कर रहे हैं, जिसका समर्थन हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य और विशेषकर वाल्मीकीय रामायणसे उद्धृत विशेष महत्त्वपूर्ण तथा विश्वसनीय प्रमाणोंद्वारा होता है। यह चौथा सिद्धान्त साररूपमें इसप्रकार रक्खा जा सकता है—

'लङ्का दक्षिण-महासागरमें स्थित राक्षस-द्वीप नामक एक विशाल द्वीपकी राजधानी थी। यह लङ्का भूमध्यरेखा (Equator)पर या पृथ्वीके मध्यभागमें स्थित थी। भारतवर्षके दक्षिणतटसे राक्षसद्वीप अथवा लङ्काकी दूरी १०० योजन अर्थात् लगभग ७०० मील थी।'

सीलोन और लङ्का एक नहीं है।

पहले हम आप्त-प्रमाणोंद्वारा यह दिखलाना चाहते हैं कि सीलोन और लङ्का दोनों भिन्न भिन्न स्थान थे और *लङ्कानगरीका अस्तित्व सीलोन (सिंहलद्वीप) में नहीं था।*

(१) महाभारत—सभापर्वमें सिंहलद्वीपका उल्लेख है। आसमुद्र दक्षिणी राज्योंपर विजय प्राप्त करनेवाले पाण्डव वीर सहदेवके बाबत कहा गया है कि 'उन्होंने 'ताम्रद्वीप' तथा 'रामक' पर्वतको विजय किया था तदनन्तर तत्कालीन 'लङ्का' के राजा पौलस्त्य विभीषणके समीप कर प्राप्त करनेके लिये दूत भेजे थे*। इस पृथक् पृथक् वर्णनसे सिद्ध होता है कि ताम्रद्वीप और विभीषणकी लङ्का एक नहीं थे। ताम्रद्वीप निश्चय ही सिंहलका प्राचीन नाम है। यूनानी लेखकोंने सीलोनका ताप्रोबन(Taprobane=ताम्रपर्ण) के नामसे उल्लेख किया है।

(२) महाभारत—वनपर्वके ५१वें अध्यायमें वर्णन है कि पाण्डव-वनवासके समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलने आते हैं और उनकी दयनीय दशा देख कौरवोंके प्रति क्रुद्ध होकर धर्मराजके सामने अपने हृदयोद्गार इसप्रकार प्रकट करते हैं—

'राजसूय-यज्ञके समय तुम्हारी इतनी महती विभूति थी कि पृथ्वीके सभी देशोंके राजा अपनी स्थिति और सम्मानको भूलकर छोटे-से-छोटे कार्योंद्वारा तुम्हारी सेवामें लगे रहते थे, वे तुम्हारे शस्त्र और तेजसे घबराये हुए, वंग, अंग, पौण्ड्र, उड्र, चोल, द्रविड, अन्ध्र, समुद्र-तीरस्थ जलमय देश, समुद्रके समीपस्थ देश, 'सिंहल', बर्बर, म्लेच्छ, 'लङ्का' आदि देशोंके राजा तुम्हारे यहाँ निमन्त्रित व्यक्तियोंको

---

* द्वीपं ताम्राह्वयञ्चैव पर्वतं रामकं तथा।
तिमिङ्गलञ्च स नृपं वशे कृत्वा महामतिः॥ (म० सभा० ३१।६९)

भोजनके समय परोसनेका कार्य कर रहे थे, आज तुम्हारी यह दशा है·········।'ॐ

महाभारतकार महर्षि व्यासके इन अवतरणोंसे 'सिंहल' और 'लङ्का' दो भिन्न-भिन्न राज्य सिद्ध होते हैं।

३-मारकण्डेय पुराण-कूर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंकी सूची इसप्रकार मिलती है:—

'लङ्का' कालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा।
दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः॥
ऋषभाः 'सिंहला'श्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः।

(५५। २७)

इन देशोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये कूर्मसे दक्षिण दिशामें अवस्थित हैं। इस सूचीसे भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'लङ्का' और 'सिंहल' दो भिन्न भिन्न देश हैं।

४-श्रीमद्भागवत-पाँचवें स्कन्धमें जम्बूद्वीपके आठों उपद्वीपोंके नाम इसप्रकार दिये गये हैं।

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपानष्टौ उपदिशन्ति। तद्यथा-स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्त्तनो रमणको मंदरहरिणः पाञ्चजन्यः 'सिंहलो' 'लङ्केति'॥ (५। १९। २९-३०)

हे राजन्! जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं, उनके नाम—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्त्तन, रमणक, मन्दर-हरिण, पाञ्चजन्य, 'सिंहल' और 'लङ्का' हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि सातवाँ उपद्वीप 'सिंहल' और आठवाँ 'लङ्का' था।

(५) महान् ज्योतिषी वराहमिहिराचार्यकृत बृहत्संहिताके कूर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंके नामोंका इसप्रकार वर्णन पाया जाता है—

लङ्काकालाजिनः सौरिकीर्णः काञ्चीमरुचीपट्टन-चेर्यार्यक सिंहला ऋषभाः। (अ० १४। ११)

ॐ प्रणयामास राजेन्द्र पौलस्त्याय महात्मने।
विभीषणाय धर्मात्मा प्रीतिपूर्वमरिन्दमः॥ (म० सभा० ३१।७४)
यत्रसर्वान् महीपालान् शस्त्रतेजो भयार्दितान्।
सवङ्गाङ्गान् सपौण्ड्रोड्रान् सचोल द्राविडान्धकान्॥
सागरानूपकाश्चैव ये च प्रान्तनिवासिनः।
सिंहलान्बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः॥
(म० वन० ५१। २२-२३)

इस प्रसंगमें यह बतलाया गया है कि इन नामोंकी गणना बायेंसे दाहिने ओर होनी चाहिये। अतः सिंहल और लङ्का दो द्वीप एक दूसरेसे दूर पृथक्-पृथक् थे और ऋषभ-देश इनके मध्यमें था।

(६) उपर्युक्त उद्धरणोंके अतिरिक्त संस्कृत-नाटकों और काव्योंमें भी ऐसे बहुत स्थल मिलते हैं, जहाँ 'सिंहल' (सीलोन) और 'लङ्का'को सर्वथा भिन्न-भिन्न देश बतलाया है। कम-से-कम इतना तो निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि अबतक संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे ऐसा एक भी प्रमाण पेश नहीं किया गया है जिससे यह सिद्ध होता हो कि वर्त्तमान सीलोन ही प्राचीन लङ्का है। और यह भी खूब सम्भव है कि शायद ऐसा प्रमाण संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिल ही नहीं सके। हम अपने सिद्धान्तके समर्थनमें यहाँ कवि राजशेखरकृत बालरामायण नामक संस्कृत-नाटकका एक स्थल उद्धृत करते हैं। राजशेखर कवि ईसाकी नवीं शताब्दीमें हुए हैं। कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारतका भ्रमण किया था, अतः भौगोलिक वर्णनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है उसपर विश्वास करना सर्वथा निरापद है। उनके बालरामायणके तीसरे अङ्कमें लङ्केश्वर रावणके विनोदार्थ 'सीता-स्वयंवर' नामक अभिनयका विवरण प्राप्त होता है। सीताके पाणिग्रहणकी इच्छासे एकत्रित अन्यान्य राजाओंके साथ सिंहलाधिपति राजशेखर भी उस अभिनयमें एक पात्र है। रावण उसे भर्त्सनापूर्ण शब्दोंमें कह रहा है—

रावण—'सिंहलपते, किमिदं संदिहानं? न च सन्देहदहो वीर-व्रत-निर्वाहः।'

इस आख्यानसे स्पष्ट हो जाता है कि सिंहलेश्वर राजशेखर और लङ्काधिपति रावण दो व्यक्ति थे तथा 'लङ्का' और 'सिंहल' निश्चय ही दो भिन्न देश थे।

पुनः इसी बालरामायणके दशवें अङ्कमें लङ्कासे पुष्पक विमानपर अयोध्या जाते समय भगवान् श्रीराम श्रीसीता-जीको पहले 'लङ्का' और युद्धभूमिका पूर्ण परिचय देते हैं और आगे बढ़नेके बाद सीताजीके ऐसा पूछनेपर कि यह धनुषके समान कौन-सा भूखण्ड दृष्टिगोचर हो रहा है, पास बैठे हुए विभीषणने 'सिंहल'का वर्णन किया है। यथा—

सीता—'अखण्डिताखण्डल कोदण्डमण्डलप्रतिरूपः कतरः पुनरेष उद्देशः?

विभीषण—

पश्यस्यग्रे जलधिपरिखं मण्डलं 'सिंहलानाम्' ।
चित्रोत्तंसं मणिमयभुवा रोहणेनाचलेन ॥
दूर्वाकाण्डच्छविषु चतुरं मण्डनं यद्भूनाम् ।
गात्रश्यामो भवति गलितं रत्नतां शुक्तिगर्भम् ॥

यह ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ विभीषणने 'सिंहल'के विषयमें वर्णन करते हुए लङ्काका कहीं नाम भी नहीं लिया। वास्तवमें लङ्काको तो वे सब पीछे छोड़ आये हैं और उसका परिचय भी श्रीसीताजीको पहले दिया जा चुका है।

उपर्युक्त श्लोकोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि 'सिंहल' उपद्वीप 'लङ्का' से छोटा था और कविने अपना अभिप्राय प्रकट किया है कि लङ्का सिंहलसे दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) में स्थित थी।

लङ्का कहाँ थी ?

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि 'सीलोन' और 'लङ्का'के एक होनेकी धारणा निराधार है। अब यह निश्चय करना है कि लङ्काकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी ? यह पहले कहा जा चुका है कि भारतकी दक्षिणी सीमासे लङ्का १०० (सौ) योजनकी दूरीपर थी। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई चालीस योजन थी। यह परिमाण सिंहलद्वीपके लिये कभी लागू नहीं हो सकता। 'भारतवर्षीय भूवर्णन' के रचयिता प्रो० एस० बी० दीक्षित महोदयका कथन है कि 'सीलोन ही लङ्का है।' परन्तु रामायण-वर्णित सौ योजनकी दूरीका प्रश्न सम्मुख आते ही दीक्षित महोदय भी चक्करमें पड़ जाते हैं और इस तरह उनका निर्णय भी सन्दिग्ध ही रह जाता है।

श्रीहनूमान्‌जी सीताकी खोजमें लङ्का जाते समय जिस मार्गसे गये थे उसपर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि सीलोन और लङ्काकी दूरीको सिद्ध करनेवाला अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध होता है या नहीं।

लङ्का भूमध्यरेखा पर अवस्थित थी।

१. वायुपुराणके भुवनविन्यासप्रकरणके अड़तालीसवें अध्यायमें जम्बूद्वीपके चारों ओर फैले हुए, अङ्ग, यम, मलय, शंख, कुश और वराह इन द्वीपोंका वर्णन आता है। इसी अध्यायके २० से ३० श्लोकमें मलयके वर्णनमें कहा गया है कि 'इस द्वीपमें सुवर्णकी अनेक खानें हैं और यहाँके वासी विभिन्न प्रकारके म्लेच्छ हैं। यहाँ मलय नामका एक विशाल पर्वत है जिसमें चाँदीकी भी खानें हैं। इस पर्वत-पर प्रत्येक पर्वके अवसरपर स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है। इसी द्वीपमें प्रख्यात त्रिकूट पर्वत भी है। यह पर्वत बहुत विस्तृत है और इसमें अनेक अत्यन्त रमणीक उपत्यकाएँ तथा मनोहर शिखर हैं, इसी पर्वतके उत्संगमें लङ्काकी विशाल पुरी बसी हुई है। इस पुरीमें इच्छित रूपधारी, बलगर्वित, देव-शत्रु महात्मा राक्षस रहते हैं। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई तीस योजन है। और इसके पूर्वमें गोकर्ण नामक पवित्र स्थानमें एक विशाल शिव मन्दिर है।*'

इस वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि जम्बूद्वीप इन उपद्वीपोंमेंसे तीसरे अर्थात् मलयद्वीपमें त्रिकूट-पर्वतपर लङ्का नगरी बसी थी। यह मलयद्वीप भारतीय महासागरमें स्थित आधुनिक 'मालदिव'द्वीपपुञ्ज (Maldive Islands) के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। यह 'मालदिव' द्वीपपुञ्ज भूमध्यरेखापर अवस्थित है। यह स्मरण रखना चाहिये कि गोकर्ण नामक पर्वतका जो यहाँ उल्लेख आया है वह भारतवर्षके पश्चिमीघाटपर करवार जिलेमें स्थित पवित्र स्थान आधुनिक गोकर्णनाथसे भिन्न है।

---

* तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम् ।
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च ॥
आकरं चन्दनानाञ्च समुद्राणां तथाकरम् ।
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितम् ॥
× × ×
तथा त्रिकूटनिलये नानाधातुविभूषिते ।
× × ×
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा ।
निर्यूहवलभीचित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी ॥
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशदायामयोजना ।
नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी ॥
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम् ।
आवासो बलदृप्तानां तद्विधादेवविद्विषाम् ॥
मानुषाणामसम्बाधा ह्यगम्या सा महापुरी ।
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदीपतेः ।
गोकर्णनामधेयस्य शंकरस्यालयं महत् ॥
(वायुपुराण ४८।२०–३०)

२. गोलाध्याय--कर्णाटक-प्रदेशके इब्बेविड-स्थानके निवासी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् तथा गणितज्ञ भास्कराचार्यके वर्णनसे जो लङ्काकी स्थितिके विषयमें ज्ञान प्राप्त होता है उससे उक्त सिद्धान्तका पूर्णरूपसे समर्थन होता है। श्रीभास्कराचार्यका जन्म १०३७ शकाब्द या सन् १११५ई० में हुआ था। उन्होंने गोलाध्यायके भुवनकोषमें लिखा है--

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः
प्राक् पश्चिमे रोमकपट्टनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः
सौम्येऽथ याम्ये बड़वानलश्च॥

इस श्लोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि लङ्का भूमध्यरेखापर (कुमध्ये) स्थित थी। भूमध्यरेखाको ज्योतिष-शास्त्रमें निरक्ष अर्थात् ०° शून्य अक्षांश कहते हैं इसी अध्यायके ४३-४४ वें श्लोकमें पुनः वर्णन आता है कि लङ्का भूमध्यरेखापर है और लङ्का तथा अवन्तीके (उज्जैनी) देशान्तरमें (Longitude) बहुत कम अन्तर दिखलाया गया है। इस मतमें तो श्रीभास्कराचार्यका यह दृढ़ विश्वास था। अवन्तीका देशान्तर ७०°, ७५ पूर्व बतलाया गया है।

३. अब हमें यह देखना है कि लङ्काके सम्बन्धमें रामायणमें जो वर्णन आये हैं उनसे भास्कराचार्यके उपर्युक्त मतकी पुष्टि होती है या नहीं। समस्त भारतका भ्रमण करनेवाले श्रीसुग्रीवजी कावेरी नदीके दक्षिण देशोंका विस्तृत वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'जैसे कोई नवयुवती रमणी पतिके पास जाती है, इसीप्रकार समुद्रकी ओर जाती हुई महानदी ताम्रपर्णीको पार करनेके बाद तुम्हें पाण्ड्य-देशका सुवर्णमय प्रवेशद्वार (कवाटं पाण्ड्यानाम्) मिलेगा। इसके बाद समुद्र लाँघना पड़ेगा।* तदनन्तर कहते हैं कि वहाँ एक खाई थी जिसके कारण समुद्रमें आनेवालोंको बड़ी असुविधा होती थी। अतएव अगस्त्य मुनिने विचित्र शिखर महेन्द्र पर्वतका स्थापन कर उस खाईको भर दिया। इस पर्वतका बहुत-सा भाग अभी समुद्रमें है, यह महेन्द्र पर्वत सर्वथा सोनेका है।

अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः॥
चित्रसानुनगः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः।
जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवः॥
(वा० रा० ४।४१।२०-२१)

इन श्लोकोंसे यह ज्ञात होता है कि महेन्द्र-पर्वत कलिङ्ग देशस्थ महेन्द्र-पर्वतसे भिन्न है। और इसका एक भाग-दक्षिणकी ओर बढ़कर समुद्रमें डूबा हुआ है। इसके अनन्तर २४वें श्लोकमें लङ्काके विषयमें कहा है--

द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः॥
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः॥
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्ष समद्युतेः॥
(वा०रा०४।४१।२४-२५)

'इस पर्वतके पश्चिमकी ओर एक द्वीप है जिसका विस्तार सौ योजन है जहाँ इन्द्रके समान कान्तिमान, वध करने योग्य, दुरात्मा राक्षसराज रावण निवास करता है।' इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण रावणके निवासके सम्बन्धमें और क्या हो सकता है? अब यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि राक्षसद्वीप नामक रावणका देश था और लङ्का उसकी राजधानी थी। वह भारतके दक्षिणतम तट पाण्ड्य-देशके प्रवेशद्वार (पाण्ड्य कवाट) से पश्चिम दिशामें था। सिंहल अथवा सीलोनके लिये यह वर्णन कदापि लागू नहीं हो सकता। और 'दक्षिण भारतीय इतिहासका प्रारम्भकाल' (Beginnings of South Indian History) नामक ग्रन्थमें ग्रन्थकर्त्ता मद्रासके प्रसिद्ध प्राच्यविद् डा० एस० के० आयंगर महाशयने बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ यह सिद्ध किया है कि 'पाण्ड्यानां कवाटम्' तामिल-प्रान्तका प्रसिद्ध कवाटपुरम् या कपाटपुरम् ही है। चाणक्यके अर्थशास्त्रमें भी ताम्रपर्णी नदी और पाण्ड्य कवाटका वर्णन आता है। अर्थशास्त्रके टीकाकार श्रीशाम शास्त्रीजीने पाण्ड्य कवाटको पाण्ड्य-देशस्थित मलयकोटि पर्वत बतलाया है, परन्तु यह सर्वथा सन्देहास्पद है क्योंकि पर्वतपर मोती आदि सामुद्रिक वस्तुओंकी उपलब्धि नहीं हो सकती। आयंगर महाशयने इसपर व्याख्या करते हुए 'कवाटं-पाण्ड्यानाम्'को पाण्ड्यदेशका प्रवेशद्वार बतलाया है। यह अधिक युक्ति-सङ्गत प्रतीत होता है। टीकाकारने जिसको मलयकोटि बतलाया है वह वही उदयभूमि है जहाँ पश्चिमी घाट समुद्रमें निमग्न हो गया है। इस पाण्ड्यदेशके प्रवेशद्वारसम्बन्धी उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट हो

---

*ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।
कान्तेव युवतीकान्तं समुद्रमवगाहते॥
ततो हेममयं ··· ··· ···॥
कवाटं पाण्ड्यानां ··· ··· ···।
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम्॥
(वा०रा०४।४१)

जाता है कि भारतका दक्षिणी कन्याकुमारी अन्तरीय ही वह स्थान है, क्योंकि इसीके समीप महेन्द्र-पर्वत समुद्रमें अन्तर्हित हुआ है और सुग्रीवने जो दक्षिण-भारतके भूगोलका निदर्शन कराया है उससे भी यह पता चलता है कि रावणका निवासस्थान राक्षसद्वीप इस पर्वत अंशोसे पश्चिम था।

लंकाका स्थान।

इस कथनके समर्थनमें कुछ ऐसे प्रमाण पेश किये जा सकते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह लंका समुद्रमें विलीन हो गयी थी। जिस स्थानपर इस समय मालडिव द्वीप-समूह है। प्राचीन कालमें यही राक्षसद्वीप था। इसका विस्तार भूमध्यरेखासे ६° उत्तर अक्षांश तथा ३° दक्षिण अक्षांश के तथा ७३° से ७६° के पूर्व देशान्तर बीच विस्तृत था। यह सम्भव है कि जिस समय यह द्वीप क्रमशः जलमग्न हो रहा होगा, उस समय वहाँके निवासी भागकर प्राचीन ताम्रद्वीप (ताम्रपर्णि) में आकर बस गये होंगे, इसी प्रदेशका नाम पीछेसे सिंहलद्वीप अथवा सीलोन पड़ गया होगा।

भूगर्भविद् पण्डितोंकी यह धारणा है कि ईसाके चार हजार वर्ष पूर्व भारतीय महासागरमें लेमोरिया (Lemuria) नामक एक महाद्वीप था। यह भारतवर्षकी दक्षिण दिशामें अफ्रिकाके दक्षिण भागसे लेकर पूर्वकी ओर दक्षिण अमेरिका तक विस्तृत था। कालगतिसे यह महाद्वीप जलमग्न हो गया और वर्तमान समयके मालडिव (Maldives), सायचेलिस् (Sychellis), रोड्रिग्स (Rodrigues), शैगोस (Shagos), मारिशस, (Mauritius) मैडागास्कर (Madagaster), जावा, सुमात्रा, बोर्नियो (Borneo), एसेन्शन (Ascension), फाकलैण्ड (Falkland), ग्राहम् (Graham), और पश्चिमी अण्टार्टिका (West Antartica) प्रभृति उसी प्राचीन विशाल महाद्वीपके पर्वत-शिखर तथा उच्चभूमि भाग मात्र हैं। मलयद्वीप अथवा मालडिव ही आज उस स्थानपर वर्तमान है जहाँ प्राचीनकालमें रावणका राक्षसद्वीप था, जिसकी राजधानी लंका थी।❀

तुलसी-वन्दना

जयति जयति तुलसिदास हिन्दी हितकारी।

प्रगट भुवि भार हरन, विमल राम चरित रचन।
धनि धनि संसार सरन, असरन दुःख टारी॥

कविता नभके दिनेश, भाषा-कैरव निशेश,
कवि-सुरगनमें गनेश, ललित कलाधारी॥

रामायण अति प्रधान, नवल कमल दल समान,
धर्म अर्थ भक्ति ज्ञान, मोक्ष दैनहारी॥

विद्या पीयूष खान, कोविद-जन करत पान,
पाप पुञ्जको कृशान, त्रिविध तापहारी॥

धनि धनि श्रीतुलसिदास, मेटों भव फन्द त्रास।
मधुप शरण गहत आस, भक्तन सुखकारी॥

—योगेन्द्रनाथ शर्मा

❀ लेखक इस सम्बन्धमें सन् १९२६ में 'The Mythic Society's Journal' में और 'The Indian Historical Quarterly' नामक पत्रोंमें अपने विचार प्रगट कर चुके हैं।

इसी विषयमें कलकत्तेसे प्रकाशित बंगला मासिकपत्र 'भारतवर्ष' की फाल्गुन १३३६ और ज्येष्ठ १३३७ की संख्याओंमें पं० राजेन्द्रनाथ विद्याभूषणके दो लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें भी प्रायः इसी मतका समर्थन किया गया है। सम्पादक

रामायणके रचयिता

कौन देता जन्म इस साहित्यको ?
नद बहाता कौन काव्यानन्दका ?
मानता जिसको सभी संसार है—
लघु-सहोदर पूर्ण-ब्रह्मानन्दका ॥ १ ॥

सृष्टि आती दृष्टिमें कुछ और ही—
आदि-कवि वाल्मीकि जो होते नहीं।
प्राकृतिक-सौन्दर्यमें वाचालता—
—बीजको जो वे भला बोते नहीं ॥ २ ॥

लेखिये अद्भुत महत्ता-सत्यता—
सन्तजन-उपदेश-बलकी, भक्तिकी।
और महिमा देखिये फिर रामके—
ठीक उलटे नामकी भी शक्तिकी ॥ ३ ॥

व्याधसे वाल्मीकिने ब्रह्मर्षि बन—
रम्य-रामायण-सुधाकी वृष्टि की—
मानवोंके चित्तमें जिसने महा—
शान्तिकी, आनन्दकी है सृष्टि की ॥ ४ ॥

पापियोंका और कुटिलोंका कभी—
रोग आवागमनका मिटता नहीं।
कर कृपा, कलिकालमें आते न तो—
भक्त 'तुलसी' रूपमें वे जो कहीं ॥ ५ ॥

देववाणी-सम बनाता कौन जन—
मातृभाषा-नागरीको, यत्नसे ?
जो न होते प्रगट 'तुलसी'खानसे—
दिव्य, 'तुलसीदास' जैसे, रत्नसे ॥ ६ ॥

कान्त-कविता-कामिनीके कान्त हैं,
जो सभी साहित्यके मर्मज्ञ हैं।
विज्ञ हैं परिपूर्ण जो नृपनीतिके—
और जो वेदज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ-रामायण-सदृश संसारमें—
राजपथकी है न कोई दर्शिनी।
ज्ञानकी, हरि-भक्तिकी, शुभ-कर्मकी—
दूसरी ऐसी न कोई वर्णिनी ॥ ८ ॥

नीतिका यह दिव्य-आदि निधान है,
गेह है यह ईश-गुण-गण-गीतिका।
स्रोत त्रेता-रीतिका भी है यही—
और है यह काल भवकी भीतिका ॥ ९ ॥

मानता संसार यह सारा इसे—
सत्यता-शुचिता-महत्तागार है।
श्रेष्ठतम-उपदेश-शिक्षाका इसे—
और वह कहता महा-भण्डार है ॥१०॥

चारु-चिन्तामणि यही कलिकालमें,
करनिवासी कल्पतरु यह अन्य है।
श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है पहला यही—
सब पुराणोंका यही मूर्धन्य है ॥११॥

प्रेमसे जो नित्य इसका पाठ कर—
मानता उपदेश भी है सर्वथा—
आपही मिट जायगी उसकी महा—
दुःखदा-आवागमन-जाता व्यथा ॥१२॥

भक्त-कुल-रूपी कुमुद-विधुकी यही—
चाँदनीकी है अनोखी सम्पदा—
जो खिलाकर मञ्जु मानस-कमलको—
जानती घटना न, पर बढना सदा ॥१३॥

काल-वैरीको महा-कलिकालमें—
जालमें यह डालनेका दाव है।
और यह संसाररूपी सिन्धुके—
पार पानेको अनश्वर-नाव है ॥१४॥

हार है यह पण्डितोंके कण्ठका,
सर्व-लौकिक-धर्मका यह सार है।
कष्ट-पातक नष्ट करने हेतु यह—
एक, मानवमात्रका, हथियार है ॥१५॥

जो पुरातन-पुरुष ही साक्षात् हैं—
श्रेष्ठ मर्यादापुरुषके रूपमें—
है उन्हींका चारु-जीवनचरित यह—
सुगमतम-सोपान-सम भवकूपमें ॥१६॥

देहधारी-मुक्ति है जङ्गम यही—
जानकीपति-भक्तिकी यह मूर्त्ति है।
शक्ति है मनमोहिनी यह काव्यकी—
और 'तुलसी'की अलौकिक-स्फूर्त्ति है ॥१७॥

धन्य है कविराज ! तुमको धन्य है,
और कविता भी तुम्हारी धन्य है।
'द्रोण' हो तुम, शिष्य मैं हूँ 'एकलव्य'—
काव्यगुरु मेरा न कोई अन्य है ॥१८॥

—कु० प्रतापनारायण 'कविरत्न'

श्रीराम-नामकी महिमा

(लेखक--आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वे० दर्शनतीर्थ भागवतरत्न)

बंदौं रामनाम रघुबरके। हेतु कृसानु भानु हिमकरके॥

श्रीराम-नामकी महिमाके सम्बन्धमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके उपर्युक्त वचन हैं। चौपाईका अक्षरार्थ है कि 'कृसानु (अग्नि) भानु (सूर्य) हिमकर (चन्द्रमा) इन तीनोंका हेतुरूप जो 'राम' नाम है--उसकी मैं वन्दना करता हूँ।' भावुकोंके सत्संगसे इसका जो कुछ अर्थ मुझे ज्ञात हुआ है उसे मैं प्रेमी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ।

प्रथम अर्थ तो यह है कि, 'राम' इस पदमें तीन अक्षरोंका समावेश देखनेमें आता है। जैसे र-अ-म, ये तीनों अक्षर क्रमसे चौपाईमें कथित--कृसानु-भानु-हिमकर--तीनों देवताओंके बीज हैं। सुतरां 'राम' नाम तीनों देवताओंका कारण है यदि उक्त तीनों शब्दोंका अर्थ न करके केवल कृसानु आदि शब्दोंका ही व्यवहार किया जाय तथापि उक्त शब्दोंमें क्रमपूर्वक र-अ-म अक्षरोंका प्राकट्य दीखता है। यहाँ कोई ऐसा सन्देह कर सकते हैं कि, कृ--में ऋ आती है र नहीं आता है, इसके उत्तरमें व्याकरणका सिद्धान्त कह देना ही पर्याप्त होगा। व्याकरणमें--ऋ-र--का एक ही स्थान माना है अतः ऋ--के स्थानमें--र--कह देनेसे कोई दोषापत्ति नहीं होती। सुतरां यह निश्चय होता है कि, र-अ-म--तीनों वर्णोंके एकत्रित होनेपर 'राम' शब्द हो जाता है और इसी नामके कारण तीनों शब्दोंकी प्रधानता भी हो जाती है। अन्यथा कृसानु-भानु-हिमकर तीनों निरर्थक हो जायँगे। सुतरां 'राम' नाम ही कृसानु आदि शब्दोंकी उत्पत्तिका हेतु समझा गया।

दूसरा अर्थ यह भी होता है कि, 'अग्नि' पाचकरूपसे भोजनोंको परिपक्व करता हुआ प्राणियोंके शरीरका पोषण करता है। सूर्यके प्रकाश और तापसे सुख और आरोग्यताका सञ्चार होता है। 'चन्द्रमा' वनस्पतियोंका पोषण करता हुआ प्राणियोंको सहायता पहुँचाता है, सुतरां प्राणिमात्रके जीवनस्वरूप ये तीन देवता ही सिद्ध होते हैं। परन्तु इन तीनों देवताओंको शक्ति देनेवाला इनका जीवनस्वरूप--'राम' नाम है, रामरूप ब्रह्मके प्रकाशसे ही ये तीनों प्रकाशित हैं। श्रुति कहती है--

'तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'

इसी प्रकार गीतामें भगवान्‌के वचन हैं।--

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(गीता १५। १२)

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, अग्निमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित कर रहा है, श्रीभगवान् कहते हैं कि वह सब मेरा ही तेज है।

तीसरा अर्थ यह है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनोंका प्रधान कारणरूप जो 'राम' नाम है यह तीन कुलोंको उत्कर्ष करनेवाला है। देखिये, अग्निवंशमें श्रीपरशुराम प्रकट हुए। सूर्यवंशमें दशरथकुमार श्रीश्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। चन्द्रवंशमें श्रीबलरामजी प्रकट हुए। सुतरां तीनों कुलोंकी श्रीरामनामसे ही प्रसिद्धि हुई।

चौथा अर्थ यह है कि, व्यवहारमें भी शरीरमें देखा जाता है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमासे ही स्वास्थ्य अच्छा रहता है। मनुष्य-शरीरमें इडा, पिंगला, सुषुम्ना अर्थात् चन्द्र, सूर्य, अग्नि, ये तीन नाड़ियाँ हैं, इन तीनों नाड़ियोंसे जब तक प्राणवायुका सञ्चार होता रहता है तभी तक मनुष्य जीता है और तभी तक उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है। जिस समय इनकी शक्तिका अभाव हो जायगा, स्वास्थ्यमें खराबी उत्पन्न हो जायगी। स्वास्थ्यकी खराबीसे शरीर दुर्बल हो जाता है, उस समय लोग कहते हैं कि, इसके शरीरका 'राम' निकल गया। सुतरां सिद्धान्त यह है कि, राम नामको भूल गया, इसीसे दुर्बल हो गया, यदि राम-नामको न भूलता तो शक्तिहीन न होता, अतः राम-नाम ही सब समयमें सत्य है। देखिये मृत्युके बाद भी 'राम-नाम ही सत्य' रहता है। इसलिये मनुष्य-देह-धारीमात्रको निरन्तर रामका नाम कीर्तन करना उचित है।

'र' और 'म' की रमणीयता।

(लेखक पं० श्रीसुखरामजी चौबे 'गुणाकर')

एक छत्र, इक मुकटमणि, सब बरननपै जोय।
'तुलसी' रघुबर नामके बरन बिराजत दोय॥

स्तवमें ये दोनों वर्ण वर्णमालामें उत्कृष्ट हैं। यही कारण है कि ये वर्ण जिन शब्दोंके मस्तकपर रेफ या अनुस्वाररूपमें विराजमान हो जाते हैं, वे शब्द अपने अर्थका विशेष मूल्य कूतने लगते हैं और एक अनोखी छटा छिटका देते हैं। अपने इस कथनको विशेष स्पष्ट करनेके लिये हम यहाँ कतिपय उदाहरण देकर पाठकोंका मनोरञ्जन करनेका प्रयत्न करते हैं। यथा सागर, आगर, नागर, कर्मी, गर्मी, धर्माधर्म आदिसे यदि 'र' वर्ण निकाल दिया जाय तो शेष साग, आग, नाग, कमी, गमी, और धमाधम शब्द बनकर दुर्गतिमें पड़ जाते हैं। इसी प्रकार यदि कामना, मछली, मसाला, मुकुन्द, मुल्लू आदि शब्दोंसे रामजीका 'म' निकल जाय तो काना, छली, साला, कुन्द और उल्लू आदि हो-शब्दार्थ प्राय हास्यास्पदकी गतिको प्राप्त हो जाते हैं। और यदि 'र' और 'म' दोनों किसी शब्दमेंसे निकल जायँ तो फिर कहना ही क्या? जैसे 'विश्राम' मेंसे 'राम' जब पृथक् हो जाते हैं तो जो शब्द बच रहता है वह 'विष' ही रह जाता है। रसोईमें यदि 'रामरस' न हो तो 'रसोई' का स्वाद बेस्वाद ही है; ऐसे ही इस नर-तनमें 'रामरस' न रहे तो वह नर-तन नितान्त निरर्थक है। 'रसना' रामरस न रहनेसे रस-हीन ही है; नयन नय-हीन हैं यदि वे अन्तर्मुख होकर अपने 'राम' की छवि नहीं निरखते; श्रोत—श्रोत नहीं जो श्रुति-कथा सुनकर 'राम' मय नहीं हो जाते— वे कान 'कान' नहीं कहे जा सकते जो 'कान्ह'-कथाके इच्छुक-भिक्षुक नहीं हैं। एक 'अज्ञात' कविने भी 'र' 'म' की महानता प्रदर्शित करते हुए कहा है—

कोऊ बनावत ऊँच अटा, घनघोर घटा लगि तम्बु कनातैं।
तामसी कोउ तमाम रचै, बहु भूषन गौन सभाकी जमातैं॥
बन्द मृषा भवको यह ख्याल, महाविकराल घनी उतपातैं।
एक 'र' कार 'म' कार बिना सु धिकार सबै संसारकी बातैं॥

हम यहाँ 'र' 'म' वर्णोंका केवल शाब्दिक चमत्कार ही नहीं प्रकट कर रहे हैं। विशिष्ट वर्णोंके उच्चारणका तो अमेरिका, यूरोप, आदिके वैज्ञानिकोंने शरीरके अवयवोंके कष्ट दूर करनेका भी आविष्कार किया है। उन वैज्ञानिकोंका कहना है कि कुछ वर्ण या शब्द ऐसे हैं जिनके Vibrations (कम्पन) से शरीरके विशिष्ट भीतरी भागोंपर धक्का पहुँचता है और परिणामतः उस भागकी अस्वस्थता क्रमशः दूर हो जाती है। एक अमेरिकन पत्रमें एक रोगीने अपना अनुभव प्रकाशित कराया है। उसका कहना है कि मैं कई वर्षोंसे मन्दाग्नि (Dyspepsia) आदि उदर-सम्बन्धी रोगोंसे पीड़ित था। अनेक औषधोपचार किये, पर विशेष लाभ नहीं हुआ। एक दिन मैंने एक बच्चेको पलनेपर 'आ' 'म' शब्द बार-बार चिल्लाते सुना। उसी क्षण मैंने ध्यानसे देखा तो जिस समय बालक इन वर्णोंका उच्चारण करता था, उस समय उसके पेटके ऊपरका पर्दा संकुचित होता और फैलता था, बस, मैं समझ गया कि इन वर्णोंके उच्चारणसे अवश्य पेटके भीतरी अवयवोंपर प्रभाव पड़ेगा। तदनुसार मैंने नित्य उपर्युक्त वर्णोंको जपनेकी क्रिया की, जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे स्वास्थ्यमें क्रमशः परिवर्तन स्पष्ट दिखायी पड़ने लगा। औंधके राजा-साहेबने 'सूर्यनमस्कार' पर एक उत्तम पुस्तक लिखी है, उसमें भी उन्होंने वेद-मन्त्रोंके वैज्ञानिक प्रभावोंकी विशद व्याख्या की है। उज्जैनके श्रीशिवदत्तजी शर्माने 'ओंकार-जप-विधि' नामक पुस्तकमें भी 'ओ३म्' शब्दके जाप करनेवालोंके अनुभवोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि 'ॐ' शब्दके नियमित जाप करनेसे कई मनुष्योंका शारीरिक और नैतिक उत्थान हुआ। अतः यदि भारतीय वैज्ञानिक 'राम' शब्दके Vibrations 'कम्पन' का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो निस्सन्देह उनपर हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके उपदेशोंका रहस्य प्रकट हो जायगा।

अब हम स्वयं 'राम'-जापके अपने अनुभवोंको बतलाते हैं। एक क्षत्रिय जो कफकी बीमारीसे पीड़ित थे, जब कई औषधोपचारसे नीरोग नहीं हुए तब वैद्यने उनके कानमें अद्भुतध्वनि, किरपान और छप्पय जिनमें प्रायः राम, लक्ष्मण और महावीरजीके युद्धका वर्णन था, अच्छे स्वरमें सुनाये जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका

कण्ठ-स्थ कफ बाहर निकल पड़ा और वे स्वस्थ हो गये। दूसरे महाशय जो 'राम' शब्दसे चिढ़ा करते थे, एक बार उदर-शूलसे अत्यन्त बेचैन हो गये। वैद्योपचार असफल होनेपर एक भजनानन्दीने उन्हें सलाह दी कि वे ज़ोरसे 'राम राम' कहें, उन्होंने विनोद-वश ऐसा ही किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका शूल न जाने कहाँ छू हो गया*। अब यहाँ एक धार्मिक दृष्टिसे जप करनेमें हमें जो अनुभव हुआ वह भी सुनिये—

एक बार हम जबलपुर जिलान्तर्गत सिहोरा ग्राममें थे। एक दिन राम-जप करनेकी इतनी धुन समाई कि हमें आत्मविस्मृति-सी हो गयी। उस दिन यात्रा भी करनी पड़ी; परन्तु 'राम-जप' कई व्यवधान पड़नेपर भी ज्यों-का-त्यों जारी रहा। सन्ध्याको घर लौटनेपर क्या दिखायी पड़ा कि श्रीरामजी महाराज अपने प्रिय बन्धुओं और गुरु-जन सहित हमारे द्वारपर ही खड़े हैं। हमारे शरीरमें उस समय रोमाञ्च हो आया। तदनन्तर हमने सावधान होकर सोत्साह दण्डवत् की और अपने अहोभाग्य माने। जो प्रसन्नता हमें उस दिन हुई, कदाचित् ही वह जीवनमें अब सम्भव हो। यथार्थ बात यह थी कि हमारे गृहके प्रमुखने राम-लीलाके पात्रोंको सादर आमन्त्रित किया था, जिसका हमें स्वप्नमें भी भान नहीं था। तो भी हमारे लिये उन पात्रोंके दर्शनमें ही अपने 'राम' की प्रतिमूर्ति झलक उठी, जिसे हमने केवल अपने राम-जापका ही प्रतिफल समझा।

विकारोंके तीव्रतम उत्कर्षमें राम-जप हमें अत्यन्त शान्ति-प्रद होता है। इसकी कई अवसरोंपर परीक्षा कर ली गयी है। अतएव जिनपर 'राम' नामकी महत्ता प्रकट हो जाती है ऐसे भजनानन्दी अपने वातावरणको ही 'राममय' बना डालते हैं। अपने स्वजन-परिवारके नाम भी 'राम' से रहित नहीं रखते। कई व्यापारी 'राम' नामको फलदायक समझकर वस्तुओंको तौलते समय 'राम एक' 'राम दो' कहकर गिनती लगाते हैं। यहाँतक कि धोबी जब कपड़े धोने लगता है तो थकान आदि मिटानेके लिये 'राम-सियाराम' कहता है। उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि 'राम' शब्दके जापसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबकी प्राप्ति सरलतासे ही हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी सच कह गये हैं:—

नहिं कलि-कर्म न भगति-बिबेकू। राम-नाम अवलम्बन एकू॥

तुलसी-स्मृति

कितनी उज्ज्वल विमल विभा है, गोस्वामीजीकी अम्लान—
शुक्लपक्षके धवल गगनमें, सतत दीखती वह द्युतिमान।
परम ज्योतिसे बिछुड़ पड़े थे कभी, यहाँ पर वे मतिमान;
भूल जगतके तुमुल तिमिरमें भटक रहे थे उनके प्रान;
मायाकी अज्ञान-निशामें जब स्वरूपका रहा न ध्यान—
प्रकट हुई तब कालनागिनी-मायासे मणि-ज्योति महान।
अहो खुल गये वहीं अचानक, हियके दिव्य नयन, दो कान—
निखिल सृष्टिमें उन्हें हो गया, सियारामकी छविका ज्ञान।
उसी अतुल छविके कीर्त्तनमें विश्वप्रेमके गाकर गान—
अपना पिँजड़ा छोड़ हुए वे सियाराममें अन्तर्द्धान।

× × × ×

पिंजड़ेमें यह सुग्गा भी तो रटता है नित सीताराम—
फिर भी तो हा इसे न मिलती—शान्ति, मुक्ति औ पावन धाम।
खोलो, खोलो, अन्तर्यामिन्! मेरे भी ये रुद्ध कपाट—
शुक्लपक्षकी उज्ज्वलतामें मैं भी देखूँ रूप विराट।

—श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी

* एकबार प्रसिद्ध रामभक्त गायनाचार्य पं॰ विष्णुदिगम्बरजी पलुस्करने मुझसे कहा था कि ज़ोर-ज़ोरसे लम्बे सुरसे राम-नाम उच्चारण करनेसे ज्वर चला जाता है। उनका ऐसा अनुभव है। —सम्पादक

रामायण और उसकी शाखाएँ

(लेखक—प्रो० श्रीललितमोहन कार एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ)

वेदोंके पश्चात् रामायण ही सर्वोत्कृष्ट भारतीय ग्रन्थ है। भारतवर्षकी सभी मुख्य-मुख्य भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया है। इन अनूदित ग्रन्थोंमें मूल ग्रन्थके मुख्य विषयसे साम्य होते हुए भी कथा-भागमें कुछ परिवर्तन पाया जाता है। जहाँ-जहाँ भारतीय लोगोंने प्रवास किया है वहाँपर वे अपने साथ कम-से-कम तुलसीकृत रामायण-जैसे सर्वप्रिय ग्रन्थको अवश्य ही लेते गये हैं। मुख्य मुख्य व्यापारिक केन्द्रोंमें भारतीय, आह्निक कार्योंकी समाप्तिके बाद तथा विश्रामके पूर्व बहुधा तुलसीकृत रामायणके पदोंको गा-गाकर पाठ किया करते हैं जिससे दिनका कोलाहलपूर्ण वायुमण्डल मध्यरात्रिके समय पवित्र हो जाता है। भारतीय गृहोंमें इसे बच्चे अपनी बड़ी सम्पत्ति समझते हैं और जिस समय माताएँ अथवा दादियाँ भोजन बनाने, सूत कातने अथवा अन्य गृहकार्योंमें लगी रहती हैं उस समय वे उसे पढ़कर उन्हें सुनाते हैं। रेलगाड़ियोंमें प्रायः यह देखनेमें आता है कि दक्षिण भारतके निवासी लकड़ीके समान काठके दो टुकड़ों (करताल) को बजाते हुए द्राविड़ी भाषामें श्रीरामकथाका गान करते हैं। अन्य तीर्थस्थानोंकी भाँति पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरमें भी नित्य सन्ध्याके समय रामायणका पाठ नियमितरूपसे होता है। रामलीलाके द्वारा भी रामायणके दृश्योंका वर्षमें एक बार साक्षात्कार हो जाता है। रावणके पुतलेके दाह, तथा श्रीरामके सहायकोंकी सेनाका सञ्चालन उसी प्राचीन रावण और विजयी श्रीरामकी सच्ची स्मृतिको जागृत कर देते हैं। भरतमिलाप—जहाँ एक वास्तविक राजा एक दूसरेको राज्यका भार सौंपता है—सदा स्मरण रखनेयोग्य आत्मत्यागका एक अपूर्व दृश्य उपस्थित करता है, और इसप्रकार यह भरतमिलाप प्रति-वर्ष जीवित किया जाता है।

रामायणके प्रति सजीव प्रेमका स्पष्ट परिचय इस देशके अन्य प्रान्तोंमें सार्वजनिक कथाके रूपमें मिलता है। सर्वसाधारणको समझानेके लिये इस कथाको नाटकीय स्वरूप दिया जाता है, जहाँपर कथावाचक सभी पात्रोंका अभिनय करता है। अभिनय इतनी कुशलताके साथ किया जाता है कि (एक रामायणी कविके शब्दोंमें) करुणापूर्ण स्थलोंपर पत्थर भी पिघल जाते हैं। इसप्रकार बीते हुए दिनोंकी भावनाएँ जागृत रक्खी जाती हैं। महर्षि वाल्मीकि—जिनकी आयु अधिक बतलायी जाती है—वास्तवमें चिरजीवी हो गये हैं और तबतक न मरेंगे, जबतक संस्कृत भाषा और हिन्दू-धर्मका अस्तित्व इस वसुधापर रहेगा।

रामायणके अतिरिक्त देशी भाषाके अन्य ग्रन्थोंके लगभग आधेसे अधिक विचार वाल्मीकीय रामायणसे लिये गये हैं। इसमें अत्युक्ति नहीं कि जो मनुष्य रामायणसे परिचित नहीं है उसे भारतकी विभिन्न भाषाओंके बहुत-से प्रसङ्ग समझमें नहीं आवेंगे। लक्ष्मण, मन्थरा, विभीषण तथा कनक-मृग आदि ऐसे शब्द हैं जिनके समझनेके लिये किसी कोषकी सहायता नहीं ली जा सकती। भारतके गृहस्थ-जीवनमें रामायणके आदर्शोंका बड़ा अद्भुत प्रभाव है। आज भी भारतीय नारियोंको महारानी सीताकी भाँति पतिव्रता, श्रीरामके तुल्य पति, श्रीदशरथके समान श्वसुर और माता कौसल्याके समान सास पानेके लिये आशीर्वाद दिया जाता है। बहुत-से प्रान्तोंमें विवाहके अवसरपर आज भी स्त्रियाँ भगवान् राम एवं महारानी सीताके आदर्श विवाहसम्बन्धी गीत गाती हैं।

रामायणके अनेक अनुवाद पाये जाते हैं और प्रत्येक ग्रन्थमें सम्पादक अथवा अनुवादकने कुछ-न-कुछ अपनी ओरसे जोड़नेका प्रयत्न किया है। पाली ग्रन्थोंमें भी इस कथाका असंस्कृत रूप 'दशरथ जातक'के नामसे पाया जाता है। कविकुलशिरोमणि कालिदाससे लेकर कविराज पण्डित प्रभृति-संस्कृत कवियोंने रामायणके आधारपर जिन-जिन ग्रन्थोंकी रचना की है उनमें घटनाकी दृष्टिसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। कालिदासकृत 'रघुवंश', भवभूतिकृत 'उत्तररामचरित' एवं 'महावीरचरित', भट्टीकृत 'भट्टीकाव्य', राजशेखरकृत 'बालरामायण' तथा अन्तिम किन्तु धुरन्धर विद्वान् कविराज पण्डितकृत 'राघवपाण्डवीयम्' आदि संस्कृतके अन्य रामायणके आधारपर रचे गये हैं। इनमें 'राघवपाण्डवीयम्' एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक श्लोक साथ-साथ रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थोंकी कथाओंका वर्णन करते हैं। इस अद्भुत ग्रन्थके अवलोकनसे संस्कृत भाषाकी प्रभूत प्रतिभाका परिचय मिलता है। रामायणके

आधुनिक ग्रन्थोंमें वाल्मीकीय रामायणसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। महात्मा तुलसीदासजी तथा श्रीकीर्तिवासजीने रामायणकी घटनाओंका उल्लेख भक्ति और ध्यानसे प्रेरित होकर किया है, जिसका प्रभाव अन्य धर्मावलम्बी मनुष्योंपर भी पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुसलमान-कवियोंने भी रामायणपर रचना की है।

अतः भिन्न-भिन्न कवियोंद्वारा रामायणमें बहुत रूपान्तर हो गया है। सर्वप्रथम हमें इस कथाका उल्लेख 'बौद्धजातक'में मिलता है। इस ग्रन्थके अनुसार, राजा दशरथ काशीके (अयोध्याके नहीं) राजा हैं। उनके रामपण्डित और लक्ष्मणकुमार दो लड़के तथा सीता नामकी एक कन्या है। इन बच्चोंकी माताके मरनेपर राजा दशरथ एक स्थिरचित्त सुन्दरीका पाणिग्रहण करते हैं, जिसके गर्भसे भरतकुमार जन्म लेते हैं। प्रसङ्गवश एक दिन वह रानी अपने पुत्रको युवराज बनानेके लिये राजासे कहती है, राजा सुनते ही क्रोधित हो उठते हैं और कहते हैं-'रे दुष्टा स्त्री! तुझे ऐसा कहनेका साहस कैसे हुआ जब मेरे अन्य दो लड़के अग्निस्कन्धकी भाँति दीप्यमान हो रहे हैं।' अन्तमें राजा अत्यन्त दुखी होकर दोनों बड़े लड़कोंको कूटागारमें बुलाते हैं और उनसे कहते हैं कि 'हे पुत्रो! तुमलोग इस राज्यको छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी ईर्ष्यालु माता तुम्हारा वध कर डालेगी।' पश्चात् दोनों राजकुमार और राजकुमारी उत्तर दिशामें हिमालयकी ओर दस वर्षकी अवधि व्यतीत करने चले जाते हैं क्योंकि ज्योतिषियोंके कथनानुसार राजाकी मृत्युके केवल दस वर्ष ही बच रहे हैं। किन्तु पुत्र-वियोगके कारण राजा दो ही वर्षमें मर जाते हैं और नगरके सब निवासी भरतकुमारके साथ, उनकी बहिन तथा भाइयोंके लौटानेके लिये जाते हैं। राजाकी मृत्युका समाचार जैसे ही उनसे कहा जाता है, रामपण्डित तो धीरपुरुष होनेके कारण नहीं रोते हैं, किन्तु लक्ष्मणकुमार और सीता अत्यन्त अधीर हो उठते हैं। अब रामपण्डित किसी प्रकार भी राजधानीमें आना नहीं चाहते और प्रतिनिधिस्वरूप अपनी कुश निर्मित चरणपादुकाको भेज देते हैं। सब लोग निराश होकर लौट जाते हैं और गद्दीपर रामपण्डितकी चरणपादुकाको रख देते हैं। ये चरणपादुका चेतन हैं और जबतक कार्य न्यायपूर्वक सम्पादित होता है—चुप बैठी रहती हैं, किन्तु अन्याय होते ही वे एक दूसरेपर आघात करने लगती हैं। वनवासका समय बीतनेपर रामपण्डित राजा बनाये जाते हैं और जनकदुहिता (सीता) के साथ विवाह कर लेते हैं। *

उपर्युक्त कथाके औचित्यपर अपनी सम्मति प्रदान करनेका भार मैं पाठकोंके ऊपर ही छोड़ देता हूँ किन्तु बौद्धजनश्रुतिके अनुसार इस कहानीको स्वयं बुद्ध भगवान्ने कहा था और उन्होंने यह भी कहा था कि पूर्वजन्ममें विपद्‌में भी प्रशान्तचेता रामपण्डित मैं ही था।

कवि कालिदासकृत रघुवंशमें भी रामायणके सदृश आदिसे अन्ततक रघुकुलके आचार और धर्मोंके विकासका वर्णन मिलता है और उनकी पराकाष्ठा श्रीरामके जीवनमें हो जाती है। रामचन्द्रके उपाख्यानसे पूर्व रघुवंशमें एक महान् राज्यनिर्माणका क्रम दिखायी देता है और पश्चात् आनेवाले राजाओंके वर्णनमें उसी राज्यकी अस्तव्यस्त दशाका दिग्दर्शन हो जाता है। कविने सबसे अधिक स्थान अर्थात् २१ राजाओंके वृत्तान्तसे पूर्ण रघुवंशका लगभग एक तिहाई भाग श्रीरामके चरित-चित्रणमें ही समाप्त कर डाला है। यहाँ तक कि महाराजा रघु जिनके नामसे काव्यका नामकरण हुआ है, उन्हें भी उतना स्थान नहीं दिया है। महारानी सीताके चरित्र-चित्रणमें कविकी कला पराकाष्ठाको पहुँच जाती है। श्रीलक्ष्मणजीसे उस अज्ञात स्थानमें वनवासकी बात सुन सीताजी मूर्छित हो जाती हैं और चेतना लाभ करनेपर कहती हैं कि 'जब पति स्वयं राजगद्दीपर विराजमान हो उस समय उसके सन्तानकी माताके लिये क्या भिक्षुकोका जीवन बिताना उचित है? मेरी अग्नि-परीक्षाके पश्चात् भी मेरा त्याग करना क्या ठीक है? अथवा कदाचित् यह मेरा दुर्भाग्य है? फिर भी, शिशुपालन आदि मातृत्वसे अवसर पाते ही मैं पञ्चाग्नि ग्रहणकर अति कठिन तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तरमें उन्हें पतिके रूपमें प्राप्त करूँ और मेरा तथा उनका फिर कभी वियोग न हो।''

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
ऊर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।

---

* इस कथासे प्रतीत होता है कि या तो इसका लेखक श्रीवाल्मीकिरामायणसे अपरिचित था, अथवा तो जानबूझकर उसने इसप्रकारकी असम्भव और अनर्गल कल्पना की है। पाठकोंको इससे यह मालूम हो जायगा कि हमारे गौरवमय इतिहासको किस प्रकारसे लोगोंने विकृतरूपसे जनताके सामने रक्खा है।—सम्पादक.

भूयाः यदेवं जनमान्तरेषु
त्वमेव भर्त्ता न च विप्रयोगः ॥

महाकवि भवभूति जिन्होंने पूर्णरूपेण कालिदासको बाणभट्टसे मिला दिया है, अपने पूर्व लेखकोंसे आगे बढ़ना चाहते हैं, जो महारानी सीताके चरित्रको और भी सुन्दर बनानेके लिये भगवान् रामकी ओर कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और उन्हें कम सम्मान प्रदान करते हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे सीताजीके विषयमें 'अपि स्वदेहात्' इत्यादि वचन कहलाये हैं। किन्तु भवभूति उन्हें उत्कर्ष प्रदान करते हैं और उनके मुखसे—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'

—कहला देते हैं। यदि वास्तवमें देखा जाय तो भवभूति-कृत 'उत्तर रामचरित' केवल एकाङ्क अभिनय है। इसके प्रथमाङ्कमें ही उपक्रम और अवसान उपस्थित कर दिये गये हैं। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी अभी-अभी अपनेको सीतासे अभिन्न समझ रहे हैं और तत्क्षण सीता-वियोगका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है। उत्तर-रामचरितके अन्य अङ्क इसी कथाकी पूर्ति तथा पुनः संयोगका सम्पादन करते हैं क्योंकि संस्कृत-साहित्यमें दुःखान्त नाटकका स्थान नहीं है। इससे ज्ञात हो जाता है कि भवभूतिने कालकी एकतापर ध्यान नहीं दिया है, जिसका संस्कृतके अन्य नाटकोंमें पूरा निर्वाह किया गया है। उत्तररामचरितके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पञ्चम तथा षष्ठ अङ्कोंमें जिन-जिन घटनाओंका उल्लेख आता है वे एक ही दिन घटित होती हैं और सातवें अङ्ककी घटना कुछ दिन बाद होती है किन्तु प्रथम एवं द्वितीय अङ्कके मध्य बारह वर्षका अन्तर पड़ आता है।

अमर-काव्य

प्रत्येक मनुष्यके दो रूप होते हैं—पहले रूपमें सन्तों और योगियोंके गुण होते हैं और दूसरेमें ऐसी वृत्तियाँ होती हैं जो मनुष्यको घृणित और दूषित बनाती हैं। श्रीरामचन्द्रजी प्रथम स्वरूपके अवतार थे और रावण दूसरे स्वरूपका था। इससे शिक्षा मिलती है कि हम लोग सभी इच्छानुसार अपने जीवनको दैवी या आसुरी बना सकते हैं। हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं। साधारणतः लोगोंमें सद्वृत्तियोंकी अपेक्षा असद्वृत्तियाँ ही अधिक प्रकट हुआ करती हैं। अर्जुनने इस बातका अनुभव करके श्रीकृष्ण भगवान्‌से वह उपाय बतलानेके लिये प्रार्थना की थी जिसके द्वारा कामना और आसक्तिसे विक्षिप्त-चित्त पुरुष योगकी स्थितिको प्राप्त हो सकता है। भगवान् कृष्णने बड़े ही मनोहर श्लोकोंमें ऐसे विभिन्न साधन बतलाये हैं, जिनसे मन वशीभूत किया जा सकता है—'मुझमें मनबुद्धि लगाकर सब काम करते रहो—'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।' ऐसा न कर सको तो मेरे कर्मोंमें लगे रहो, जो कुछ करो सो मेरे लिये करो 'मत्कर्मपरमो भव' मदर्थमपि कर्माणि।' यह न हो सके तो कर्मफलकी आशा छोड़ दो 'सर्वकर्म फलत्यागं कुरु।' इस तरह अनेक प्रकारसे अहङ्कारपर विजय प्राप्त करने तथा योगियोंकी परमावस्थातक पहुँचनेका रहस्य भगवान्‌ने समझाया।

यह उपदेश श्रीरामचन्द्रजीके आचरण और उपदेशका प्रतिफलरूप है। × × × ×

हम कह सकते हैं कि जैसी भावप्रकाशनकी सरल और चमत्कृत शैली, उच्च विचार तथा दिल फड़कानेवाली घटनाओंसे युक्त रचना वाल्मीकिकी है उससे बढ़कर रचना साहित्य शास्त्रमें हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि यह काव्य वृद्ध-युवा, सज्जन-दुर्जन, आस्तिक-नास्तिक सबके मनको मोह लेता है। ब्रह्माने ठीक ही कहा था कि जबतक चन्द्र-सूर्य चमकते रहेंगे और जबतक ससागरा पृथ्वीका अस्तित्व रहेगा तबतक यह काव्य जीवित रहेगा। —स्वर्गीय जस्टिस् टी०वी० शेषगिरि अय्यर।

श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर

श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका सिंहासन
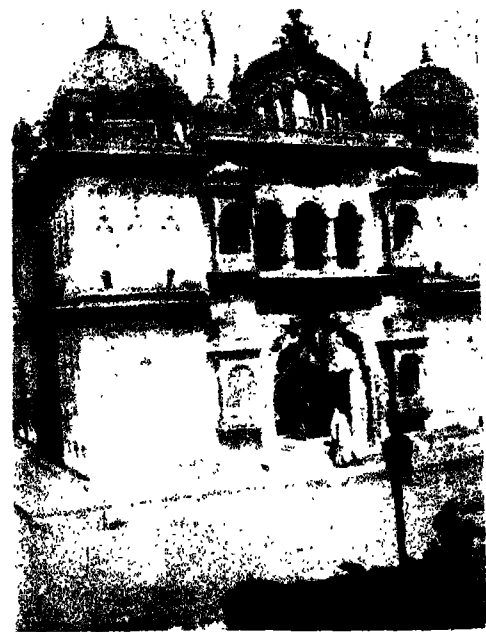
श्रीजानकी मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका पूर्वी दृश्य

(श्रीजनकपुर धाम)

श्रीरामजीके मन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ

श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर

धनुष क्षेत्रसे श्रीरामजीके मन्दिरका सामनेका (पूर्वी) दृश्य

श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दृश्य

राम-नाम-माहात्म्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी पुरी)

भागवतादि भक्ति-ग्रन्थोंमें नवधा भक्तिके विषयमें विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उनमें स्मरण-भक्ति एक अन्यतम है। इस स्मरण-भक्तिका विषय प्रभुका नाम-स्मरण है। प्रभु अनन्त अपार हैं। इसलिये उनके नाम भी अनन्त अपार हैं। उन अनन्त अपार नामोंके प्रत्येक नाम ही प्रभुका वाचक और जापकोंके लिये अभीष्ट सिद्धिदायक है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु उनमें राम-नामकी कुछ और ही महिमा है। भगवान् रामचन्द्र और उनके नामकी यथार्थ महिमा सामान्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, देवतागण भी अच्छी तरह नहीं जानते। स्वयं श्रुति माता भगवान् रामचन्द्रजीके और उनके पावन नामके विषयमें कहती है:—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥
(रामरहस्योपनिषद्)

भगवान् रामचन्द्रजी परमब्रह्मस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी परम तपस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी श्रेष्ठ तत्त्व हैं और रामचन्द्रजी साक्षात् तारक ब्रह्म हैं।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
(रामतापिन्युपनिषद्)

जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्म परब्रह्ममें योगी लोग सदा रमण करते हैं वही परब्रह्म रामायणादि ग्रन्थोंमें रामनामसे कथन किये गये हैं।

महारामायण और अगस्त्यसंहितामें भगवान् शिवजीने रामनामकी विशेषता बतलाते हुए कहा है—हे देवी पार्वति! समस्त वेद, शास्त्र, मुनि और श्रेष्ठ देवता भी अति महान् नामका प्रभाव नहीं जानते हैं, प्रत्युत राम-नामका अर्थ भगवान् श्रीरामचन्द्र ही सम्यक् रूपसे जानते हैं और उन्हींकी कृपासे मैं भी किञ्चित जानता हूँ। हे पार्वति! समस्त वेदपाठ और समस्त मन्त्रोंका जप करनेसे जो पुण्य लाभ होता है उससे कोटिगुण अधिक पुण्य-लाभ केवलमात्र रामनामसे होता है।

अब प्रश्न यह है कि वेदोंमें 'ॐ' मन्त्रकी बहुत ही प्रशंसा की गयी है, वहाँ कहा गया है कि 'ॐ' साक्षात् पर-ब्रह्मस्वरूप है और वही मन्त्रोंका राजा है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी गीतामें 'ॐ' के विषयमें कहते हैं—

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥
(८।१३)

इसीप्रकार भगवान् पतञ्जलिने भी योगसूत्रमें 'तस्य वाचकः प्रणवः' कहकर इसकी महिमा गायी है।

उपर्युक्त श्रुति, स्मृति तथा अन्य अनेकानेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि 'ॐ' से अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र समस्त मन्त्रशास्त्रोंमें दूसरा नहीं है, फिर राम-नाम सब मन्त्रोंसे विशेषतः 'ॐ' से भी बढ़कर किस प्रकार हुआ?

इसका उत्तर यह है कि वस्तुतः 'ॐ' और 'रामनाम'में फलकी दृष्टिसे कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही परमात्माके नाम हैं और दोनोंका ही फल समान है। परन्तु एक प्रकारसे रामनामकी ही ॐकारसे अधिक विशेषता बतलायी जा सकती है, वह यह है कि—

ॐकारके उच्चारणका अधिकार आपामर सर्वसाधारणको नहीं है किन्तु रामनामका उच्चारण उच्च-नीच, विद्वान्-अविद्वान्, साधु-असाधु, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, पापी-पुण्यात्मा सभी मनुष्य, सब समय समान-भावसे कर सकते हैं। इस बातको हम एक दृष्टान्तके द्वारा समझाते हैं—

किसी देशके एक स्वामी हैं, उनका नाम नटवरसिंहजी है। वे उस देशके राजा हैं अतः उनके नामके साथ 'महाराजा' भी जोड़ा जाता है। उनके पूर्वजोंकी उपाधि महाराणा थी इसलिये उनको भी महाराणा कहते हैं। वे बड़े शूरवीर हैं, इसलिये उन्हें बहादुर भी कहा जाता है। सरकारसे उनको के०सी०एस०आई०की पदवी प्राप्त हुई है अतः उनके नामके साथ वह भी जोड़ देनी चाहिये। अब उनका पूरा नाम ऐसा

हुआ 'महाराजा महाराणा श्रीमटवरसिंहजी साहेब बहादुर के०सी०एस०आई।' इस नाममें उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, और महत्त्व भरा रहनेसे भी जो विद्वान् है, जो उच्चकोटिके मनुष्य हैं वे ही इसका उच्चारण कर सकते हैं। परन्तु जो अविद्वान् हैं, साधारण ग्रामीण जनपद हैं, या भृत्य-श्रेणीके लोग हैं वे उस नामका न तो अर्थ जानते हैं और न उच्चारण ही कर सकते हैं। वे लोग तो केवल 'महाराजा साहेब' इतने सहजसाध्य—सहजबोध्य शब्दसे ही अपना काम चलाते हैं और महाराजा साहेब भी उनकी सरलतापर प्रसन्न रहते हैं।

इसी प्रकार 'ॐ' परमात्माका महान् महत्त्वपूर्ण एवं ऐश्वर्यपूर्ण नाम होनेपर भी साधारण श्रेणीके मनुष्य उसका न तो महत्त्व समझते हैं और न ठीक-ठीक उच्चारण ही कर सकते हैं। इसीलिये शास्त्रकारोंने उस 'ॐ' के ही सारभूत अंश 'राम' इन दो अक्षरोंसे परमात्माको सम्बोधित किया है, जिससे सर्वसाधारण उसको उपयोगमें ले सकें। 'राम' शब्दका अर्थ 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' योगीलोग जिसमें रमण करते, ऐसा परमात्मा परब्रह्म है।

(१) एक हिसाबसे 'राम' ॐ से भी सम्मान्य है क्योंकि 'राम' इन दोनों अक्षरोंको ॐकार सदा अपने मस्तक पर धारण किये रखता है। ॐकारके ऊर्ध्वभागमें जो अर्धचन्द्राकार चिह्न है सो 'रकार' का ही चिह्न है। वह ऊपर कैसे गया? 'जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्ध्वगमनम्' इसी संस्कृत कहावतके अनुसार। और जो ॐकारके ऊपर बिन्दु है सो 'मकार' का चिह्न है। 'मोऽनुस्वारः' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार 'मकार' का रूप अनुस्वार हुआ है। अब यदि आप पूछें कि 'राम' शब्दमें जो आकार था वह कहाँ गया? इसका उत्तर यह है कि 'आकार' अकार का ही एक भेद है 'अकारस्याष्टदश भेदाः।' राममें जो आकार है वह केवल उच्चारणके लिये ही है, इसके अतिरिक्त उससे कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, पाणिनि महाराजने कहा ही है कि 'अकार उच्चारणार्थः' इति।

(२) 'राम' इस मन्त्रमें ॐकारका सार आनेसे जिस वर्णके साथ राम यह महामन्त्र अर्थात् ँ नाद बिन्दु लग जाता है वही वर्ण एक अद्भुत मन्त्र-शक्तिवाला बन जाता है। इस विषयमें तुलसीदासजी कहते हैं—

> एक छत्र इक मुकुटमनि सब वर्णनपर जोय।
> तुलसी रघुबर नामके वर्ण बिराजत दोय॥

इसी रीतिसे लँ (पृथ्वीबीज), रँ (अग्निबीज), वँ (वरुणबीज), यँ (वायुबीज), हँ (आकाशबीज), इत्यादि जिस-जिस वर्णके ऊपर 'राम' ये दो अक्षर विराजमान हुए हैं, वही वर्ण महान् शक्तिशाली बीजमन्त्र बन गया है और उन बीज मन्त्रोंके जप करनेसे उन मन्त्रोंके देवता शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

प्राणीमात्रके नाममें 'राम' यह दो अक्षर मालामें सूत्रकी तरह प्रोत है।

'राम' शब्द प्राणीमात्रके नामका भी हेतु है, अर्थात् जीवमात्रके नामोंमें ये दो अक्षर 'राम' पाये जाते हैं। किसी भी व्यक्तिका, कितना भी बड़ा नाम क्यों न हो, अन्तमें उसमें दो ही अक्षर बाकी रह जाते हैं, शेष सब अक्षर उड़ जाते हैं। इस विषयको गणितकी सहायतासे स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक पुरुषको संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार प्रकारके पुरुषार्थ-साधन करने पड़ते हैं, इसलिये प्रत्येक नामके अक्षरोंको पहले चार गुणा करना होगा, ये पुरुषार्थ पञ्चभूतोंकी सहायतासे होते हैं इसलिये उस गुणनफलके साथ पाँच और जोड़ देना चाहिये। अब प्रत्येक पुरुषको पुरुषार्थ-साधन करते हुए शीतोष्ण, सुख-दुःख, क्षुत्पिपासा आदि द्वन्द्व भी सहन करने पड़ते हैं इसलिये उस योगफलको फिर दोसे गुणा करना चाहिये। अब उस गुणनफल-को भगवत् वाक्यानुसार अष्टधा-प्रकृति 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा' द्वारा विभाग करनेसे अवश्य ही चेतनस्वरूप 'राम' ये दो अक्षरात्मक पुरुष ही अवशेष रहेगा। उदाहरणार्थ किसी पुरुषका नाम 'देवदत्त' है, इस नाममें ४ अक्षर हैं, इसको ४ से गुणा करनेसे १६ होते हैं, उसके साथ ५ जोड़ देनेसे २१ होते हैं, २१ को दुगुणा करनेसे ४२ होते हैं, फिर उस ४२ को ८ से विभाग करनेसे बाकी २ रहते हैं और ये दो अक्षर ही 'राम' शब्द हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण नामोंका आधार 'राम' को ही समझना चाहिये—

जीव सर्वदा 'राम' ये दो अक्षर जपता रहता है-

जीव जो श्वास-प्रश्वास लेता है वह अलक्षित भावसे 'राम' नामका ही जप करता है, ऐसा समझना चाहिये।

> राकारेण बहिर्याति मकारेण विशेत् पुनः।
> राम रामेति सच्छब्दो जीवो जपति सर्वदा॥

राकार उच्चारण करता हुआ जीव प्राण-वायुको छोड़ता

है और मकार उच्चारण करता हुआ प्राणको अन्दर प्रवेश कराता है। इसप्रकार जीव अहर्निश 'राम' इन दोनों अक्षरोंको ही जपता रहता है।

रामसे राम-नामका महत्त्व अधिक है।

एक कविने कहा है—

राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मन्यामहे वयम्।
त्वयैका तारितोऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥

हे राम! आपसे आपके नामकी महिमा अधिक मालूम पड़ती है, क्योंकि आपने तो केवल एक अयोध्याका ही उद्धार किया है और आपका नाम तो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों भुवनोंका उद्धार कर रहा है।

राम नाम सर्व पापनाशक है।

माहात्म्यं परमं तवैव महतो हे राम नाम्नः क्षितौ,
राकारं वदतो जनस्य सकलं निर्याति पापं हृदः।
भूयस्तद्विशतीति रोधनविधावास्ते मकारस्ततो,
जिह्वाग्रे तव राम नाम वसतु श्रीरामभृत्यस्य मे॥

हे रामचन्द्रजी! पृथ्वीमें आपके महान् नामका बड़ा भारी माहात्म्य है, 'रा' कहते ही मनुष्यके हृदयस्थित समस्त पाप निकल जाते हैं, फिर वे अन्दर प्रवेश नहीं करने पाते, क्योंकि 'म' कहता हुआ मुख बन्द हो जाता है। ऐसा पवित्र नाम मुझ श्रीरामचन्द्रजीके दासकी जिह्वापर सदा निवास करे।

दैनन्दिनन्तु दुरितं पक्षमासर्तुवर्षजम्।
सर्वं दहति निःशेषं तूलाचलमिवानलः॥

रूईके पहाड़को भी जैसे अग्नि बिल्कुल फूँक देती है, वैसे ही रामनाम भी दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष आदिके समस्त पापोंको निःशेषतया नाश कर देता है।

कलिमें राम-नाम ही एकमात्र आश्रय है

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्रधर्मे खलु नाधिकारः॥

राम इन दोनों वर्णोंको आदरसे स्मरण करता हुआ प्राणी मुक्तिको प्राप्त होता है। कलियुगमें इस राम-नामके स्मरणके अतिरिक्त और किसी भी साधनमें पापात्मा मनुष्योंका अधिकार ही नहीं है।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

कलिमें रामनामसे अतिरिक्त गति नहीं है।

राम-नाम सर्व भय तथा सन्तापहारी है

भक्तराज प्रह्लाद पिता हिरण्यकशिपुके प्रति कहते हैं—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

रामनाम जपनेवालेको भय कहाँ? सर्व-ताप शमन करनेवाला एकमात्र औषधि राम नाम है। हे पिता! देखो, मेरे शरीरके समीप अग्नि भी अब जल-सी शीतल हो गयी है।

राम-नाम उलटा जपनेसे भी मुक्ति

उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना॥

घोर पापी दस्यु रत्नाकर महर्षियोंकी कृपा प्राप्त करके भी जब उनके दिये हुए रामनामका उच्चारण करनेमें असमर्थ हो गया, तब महर्षियोंने एक मृत वृक्षकी ओर इशारा करके उससे कहा कि 'देख रत्नाकर! वह सामने जो वृक्ष दीखता है वह कैसा है?' रत्नाकरने कहा—'मरा' है, तब ऋषियोंने कहा, 'अच्छा! तुम बराबर इसी शब्दका जप किया करो।' रत्नाकर उस उलटे 'राम' शब्दका उच्चारण करते करते जगत्पूज्य कवि वाल्मीकि तथा साक्षात् ब्रह्मस्वरूप बनगये। यह राम-नामकी महिमा है।

राम-नामका प्रभाव

एक समय ब्रह्माजी सब देवताओंसे बोले कि पहले किसकी पूजा होनी चाहिये। यह सुनकर सब देवता आपसमें लड़ने लगे। तब ब्रह्माजीने कहा कि 'आप लोगोंमेंसे जो सबसे पहले सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके मेरे पास आवेंगे वही प्रथम-पूज्य होंगे। यह सुन सब देवता अपने अपने वाहनोंपर चढ़ पृथ्वी-प्रदक्षिणाके लिये निकले, इनमें गणेशजी सबसे पीछे रह गये, एक तो उनका शरीर स्थूल और दूसरे वाहन भी चूहा। वह अपना पराजय सोचकर बहुत व्याकुल हो गये। इतनेमें नारदजी आ गये और उनकी यह दशा देखकर बोले-'गणेशजी! आप घबरायें नहीं मैं आपको एक उपाय बतला देता हूँ। आप पृथ्वीपर 'राम' नाम लिखकर उसकी प्रदक्षिणा करके ब्रह्माजीके पास चले जाइये, आपकी अवश्य जय होगी और आप सबसे पहले पूजित होंगे।' गणेशजीने वैसा ही किया और ब्रह्माजीने रामनामका माहात्म्य विचारकर गणेशजीको

ही सर्व-प्रथम पूज्य ठहराया । इसीसे गो० तुलसीदासजी कहते हैं—

महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम-प्रभाऊ ॥

(२) समुद्र-मन्थनके समय कालकूट नामक ज़हर निकला जिससे सब देव-दानव जलने लगे, तब सब मिलकर भगवान् शंकरकी शरण गये और बोले—'हे भगवन् ! हम सब भस्म हुए जा रहे हैं, कृपा करके इस भयानक विषसे हमें बचाइये ।' दयालु शंकरजी राम-नामका उच्चारणकर उस भयंकर कालकूट विषको पी गये और राम-नामके प्रभावसे वह विष अमृत हो गया, जिससे शिवजी सदाके लिये अमर हो गये । इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

नाम प्रभाव जान सिव नीके । कालकूट फल दीन्ह अमीके ॥

(३) एक समय शंकर भगवान्‌ने पार्वतीजीको भोजनका समय हो जानेसे भोजनके लिये बुलाया, पार्वतीजी कहने लगीं कि मैंने अभी तक विष्णुसहस्रनामका पाठ नहीं किया है, आप भोजन कीजिये, मैं पाठ करके भोजन करलूँगी । तब शिवजीने कहा—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥

राम-नामके माहात्म्यको सुनकर पार्वतीने रामका नाम लेकर भोजन कर लिया ।

(४) सेतु-बन्धनके समय वानर नीलने राम-नामकी शक्तिसे पत्थरोंको जोड़कर सेतु-बन्धन किया था और समुद्र-पर पत्थर तैराये थे और इसी नामकी महिमाको कथामें सुनकर ग्वालिनी यमुना-पार हो गयी थी । राम-नामकी महिमा गायी जाय तो कल्पान्तमें भी पूरी नहीं होगी । संक्षेपसे थोड़े-से शब्द और लिखकर प्रबन्ध समाप्त करता हूँ ।

तुलसीदासजी कहते हैं—

भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥

इसीलिये पुरुष आपसमें मिलनेपर कहते हैं 'राम राम' । स्त्रियाँ भी आपसमें मिलनेपर कहती हैं 'राम राम' । किसीका कोई कष्ट सुना जाय तो मुँहसे निकलता है 'राम राम ।' जीभ बिना कष्टसे पुकारती है 'राम राम ।' मुर्देके पीछे लेते हैं 'राम राम ।' रुद्रयामल तन्त्रमें एक श्लोक है—

शिवे शवे न सञ्चारो भवेत् प्रेतस्य कस्यचित् ।
अतस्तद्दाहपर्यन्तं रामनाम जपो वरम् ॥

मुर्देमें कोई प्रेत घुस न जाय, इसलिये रामनाम जप करना चाहिये । प्रेतसाधन-तन्त्रमें भी कहा है—

'शवसाधनवेलायां रामनाम विवर्जयेत् ।'

शवसाधन करनेके समय रामनाम नहीं लिया जाता है । क्योंकि इस नामको सुनकर प्रेत, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, ब्रह्मराक्षस आदि भग जाते हैं । निकृष्ट योनिके जीव भग जाते हैं, इसी कारण लोग शवको ले जाते अथवा दाह करते समय 'राम नाम सत्य है' ऐसा बोलते हैं । इसी संसर्ग-दोषसे विवाह आदि शुभ कार्योंमें 'राम नाम सत्य है' अमंगल-सूचक माना जाता है परन्तु वास्तवमें राम-नाम सदा सत्य एवं पवित्र है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । भगवान्‌के नाममें जो कोई विद्वेष या आक्षेप करेगा उसको अवश्यमेव नरककी प्राप्ति होगी ।

रामकथा सुरलोक नसैनी

दीन दुखीन अनाथनको कलपद्रुम है कलिमें सुख दैनी ।
पापन-पुञ्ज पखारनको बर-बारि प्रवाह अथाह त्रिबैनी ॥
काम मदादिक काननको जनु जारि उजारत पावक पैनी ।
'श्रोत्रिय' सोच वृथा सब है, जब रामकथा सुरलोक नसैनी ॥

लक्ष्मीचन्द्र श्रोत्रिय

बालिवधका औचित्य

(लेखक—श्रीजनकसुताशरण शीतलासहायजी सावन्त बी०ए०, एल-एल०बी०, सम्पादक 'मानसपियूष')

धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहिं ब्याधकी नाईं॥

बालिवधके विषयमें उपर्युक्त चौपाईको लेकर कुछ समालोचकोंने इसे आलोचनाका विषय बना लिया है और परब्रह्म परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें इसको एक धब्बा माना है।

इस विषयमें तीन प्रकारसे विचार किया जाना आवश्यक है। (१) भगवान् रामचन्द्रजीको निर्गुण निराकार आदि विशेषणयुक्त परब्रह्म परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम मानकर; क्योंकि रामायणके सभी रचयिताओंने उनको अवतार मानकर ही चरित्र-चित्रण किया है। (२) राजनीतिकी दृष्टिसे, जिसमें अवतारसे कोई सम्बन्ध नहीं भी रख सकते हैं और (३) शरणागत-वत्सलता एवं सत्यसन्धताकी दृष्टिसे। उपासक लोग तो श्रीभगवान्के 'विटप ओट' होनेमें शरणागत-वत्सलताको ही मुख्य कारण मानते हैं और यह दास भी उन्हींके विचारोंसे सहानुभूति रखता है। इसीसे इसको सबके अन्तमें रक्खा है।

अब प्रथम दृष्टिसे विचार प्रकट किया जाता है। जो लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानते हैं (उनकी उपासना करते हों या नहीं, इससे हमें सरोकार नहीं) उनसे मेरा यह प्रश्न है कि 'क्या आप भगवान्के सारे कार्योंमें दख़ल रखते हैं, क्या भगवान्के जितने चमत्कार क्षण-क्षणपर प्रकट होते हैं और जो पूर्वसे ही दिखायी दे रहे हैं, आपने उन सबको समझ लिया है? क्या पञ्चतत्त्वसे बनी हुई यह क्षुद्र बुद्धि उन सर्वशक्तिमान्के कार्योंके कारण समझने-सोचनेमें समर्थ हुई है? गर्भमें बच्चा क्यों उलटा रहता है? यह संसार क्यों रचा गया? अमुक वृक्षके पत्तोंमें ऐसे चिन्ह क्यों हैं और अमुकमें दूसरे आकार क्यों हैं? तारागण कितने हैं, कहाँतक हैं? पहले वृक्ष हुआ या बीज? इत्यादि इत्यादि जिसकी अद्भुत करनी है, जो—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। बिनु कर कर्म करइ बिधि नाना
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

क्या उसको समझनेमें आप अपनेको समर्थ पाते हैं? क्या आपने पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कभी सोचे और कुछ निश्चय किया है? आज जो एक Theory निकलती है कुछ वर्ष बाद वह पलट जाती है, जिसे लोग आज एक बातका ठीक उत्तर समझते हैं उसीको कुछ दिन बाद वे ही लोग ग़लत मानते हैं। क्या यह बात ठीक नहीं है? ऐसी हालतमें दासकी क्षुद्र-बुद्धिमें तो यही आता है कि भगवान्के कार्यमें सन्देह करना उचित नहीं। उनके कार्य समयानुकूल और बहुत ही ठीक होते हैं, वे सदा अच्छा ही करते हैं। उनके सब कार्य यदि हमारी समझमें आ जायँ तो उनका सर्वशक्तिमत्ता गुण ही कहाँ रह गया? अन्य मतावलम्बियोंने भी यही मत प्रकट किया है—

हरकि आमद इमारते नौ साख़्त।
रफ़्तो मंज़िल बदीगरे परदाख़्त॥

अर्थात् जो आया, उसने एक नयी इमारत खड़ी की, पर चला गया और मंज़िल दूसरोंके लिये खाली कर गया। तात्पर्य कि जो आता है अपनी अक़्ल लड़ाता है और चला जाता है, कोई पार न पा सका।

वही ईसामसीहका शूलीपर चढ़ना, जिसको ईसाई कुछ वर्ष पूर्व कमज़ोरी और अपने मतपर एक धब्बा समझते थे, आज अपने लिये एक बड़े भारी गौरव और बल यानी मुक्ति (Salvation) का कारण समझते हैं।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परमेश्वर और मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार हैं, तब उनके चरितपर सन्देह कैसा? उनका कोई भी चरित ऐसा नहीं हो सकता जो मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वपर धब्बा डाल सके।

अब यहाँ कुछ महानुभावोंके विचार उद्धृत किये जाते हैं जिन्होंने इस चरितको धब्बा मानकर उसकी यथार्थता बतायी है, अथवा लोगोंकी इस शंकाका समाधान किया है—

पं० रामचन्द्र शुक्ल (लेक्चरार हिन्दू-विश्वविद्यालय) कहते हैं—'रामके चरित्रकी इस उज्ज्वलताके बीच एक धब्बा भी दिखायी देता है। वह है बालिको छिपकर मारना। वाल्मीकि और तुलसीदासजी दोनोंने इस धब्बेपर कुछ सफेद रंग पोतनेका प्रयत्न किया है। पर हमारे देखनेमें तो वह धब्बा ही सम्पूर्ण रामचरितको उच्च आदर्शके

अनुरूप एक कल्पनामात्र समझे जानेसे बचाता है। यदि एक यह धब्बा न होता तो रामकी कोई बात मनुष्यकी-सी न लगती और वे मनुष्योंके बीच अवतार लेकर भी मनुष्योंके कामके न होते। उनका चरित भी उपदेशक महात्माओंकी केवल महत्त्वसूचक फुटकर बातोंका संग्रह होता, वह मानव-जीवनकी विशद अभिव्यक्ति सूचित करनेवाले संबद्ध काव्यका विषय न होता। यह धब्बा भी सूचित करता है कि ईश्वरावतार राम हमारे बीच हमारे भाई-बन्धु बनकर आये थे और हमारे ही समान सुख-दुःख भोगकर चले गये। वे ईश्वरता दिखाने नहीं आये थे। भूल-चूक या त्रुटिसे सर्वथा रहित मनुष्यता कहाँ हो सकती है? इसी एक धब्बेके कारण हम उन्हें मानव-जीवनसे तटस्थ नहीं समझते—तटस्थ क्या, कुछ भी हटे हुए नहीं समझते।'

श्रीयादवशङ्कर जामदारजी कहते हैं—'वालिवध इस काण्डकी एक और विशेषता है। विशेषता कहनेका कारण यह है कि वालिवधके सम्बन्धमें श्रीरामजीपर कपटका दोष लगाया जाता है। आजकल तो विचारकी यह एक परिपाटी-सी हो गयी है। उसके मूलमें 'विटप ओट' और 'ब्याधकी नाईं' ये पद आधारभूत दिखलाये जाते हैं। आक्षेप ठीक है या नहीं, इसका अब थोड़ा विचार करें।

'कपटका दोष सबसे प्रथम वालिने ही लगाया था और वह उस समय लगाया था जब वह पूरा परास्त और मरणोन्मुख होनेके कारण बिलकुल ही क्रोधमें भरा था। यहाँ मुख्य देखना यह है कि वालि मरता जाता था तो भी उसका अहंकार ज्यों-का-त्यों बना ही जाता था। इसका प्रमाण हम वालि-निधन-वर्णनके पहले छन्दमेंके 'मोहि जानि अति अभिमानबस' इन वालिके ही शब्दोंसे लेते हैं। इस अभिमानके वश होकर ही 'धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं॥' वालिने यह प्रश्न किया।

अभिमानी प्रकृतिकी 'गुणाः परं न कुर्वन्ति ततो निन्दा प्रवर्तते।' यह स्वभावसिद्ध प्रवृत्ति रहती है। क्या हमारे लिये भी वालिकी दृष्टिसे देखना ठीक होगा?

'आक्षेपाई दो पदोंमेंसे एक 'तरुओट' है। सभी संहिताएँ एक मतसे यही प्रतिपादन करती हैं। इसलिये इसके सम्बन्धमें किसीको भी तरक करनेका हक नहीं; पर केवल एक इसी बातपर बिलकुल निर्भर रहकर कपटका दोष आरोपित करना सुविचारका लक्षण नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पद—'ब्याधकी नाईं' है। यथार्थमें यह पद निर्दयताका दर्शक है। क्योंकि व्याधकर्म अवश्य ही निर्दयताका होता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह सदा कपटसे ही भरा रहता है। इसलिये व्याध शब्दसे यथाशून्यत्व लेना होगा।

आक्षेप करनेवाले पक्षके लोग व्याध शब्दसे कपटभाव लिया करते हैं। हमारे मतसे जिस व्यवहारके सम्बन्धमें जिस विषयका प्रकाश न करना अत्यावश्यक रहता है, उस व्यवहारके सम्बन्धमें उस विषयका आच्छादन जब किसीसे जान बूझकर किया जाता है, तभी वह क्रिया कपट कहलाती है।

'इस व्याख्यानुसार, अपनेको जानबूझकर छिपाकर, यदि रामजीने वालिपर बाण चलाया होता, तो उनपर कपटका अपराध अवश्य ही प्रमाणित हो सकता। परन्तु मूल ग्रन्थ ही स्पष्ट कहता है कि यद्यपि वालि मैदानमें डटा हुआ प्रत्यक्ष सामने खड़ा था तो भी रामजीने 'एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमतें नहिं मारेउँ सोऊ॥' ऐसा कहकर तुरन्त ही 'कर परसा सुग्रीव सरीरा।' और 'मेली कंठ सुमनकै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥' इस प्रकारसे सुग्रीवको फिर भेजा। इस वर्णनसे यह सोपपत्तिक सिद्ध होता है कि अपनेको छिपाना तो दूर ही रहा, उलटे और वालिकी ही दृष्टि अपनी ओर खींचनेका निःशंक प्रयत्न रामजीने जान-बूझकर किया; स्मरण रहे कि मैं 'पहचान नहीं सका' यह केवल औपचारिक निमित्त बतलाते हुए प्रत्यक्ष पक्षपात भुलानेके लिये और वालिकी दृष्टि उस तरफ खींचनेके लिये श्रीरामजीने सुग्रीवको पुष्पमाला पहनायी थी।

'आक्षेप करनेवालोंका अब ऐसा भी दर्शानेका प्रयत्न होगा कि वालिने रामजीके किसी भी कार्यकी ओर,—सुग्रीवके गलेकी मालाकी ओर भी—दृष्टिक्षेप न किया। पर एक तो यह कहना ही सयुक्तिक नहीं है, क्योंकि वालि कुछ आँखें मूँदकर नींद अथवा समाधिमें तो लड़ ही नहीं रहा था और दूसरे यदि वालिने देखा ही नहीं या देखनेकी परवा न की, तो वह किसका दोष है? साफ-साफ उसीका दोष है।

इन सब बातोंका इसप्रकार विचार करनेपर रामजीके ऊपर लगाया जानेवाला कपटका आक्षेप हमारे मतसे अनुपपत्तिक सिद्ध होता है।'

राजनीतिकी दृष्टिसे विचार

किसी बातकी ठीक समालोचना और जाँच तभी हो सकती है जब समालोचक अपनेको उस समयमें पहुँचा दे जिस समयकी वह घटना है, जो समालोचनाका विषय है। वही समाज-सुधार-सम्बन्धी बातें जो एक शताब्दिके पूर्व घृणासे देखी जाती थीं, आज उचित समझी जाती हैं। वही मनुष्योंका बेचना, गुलाम बनाना, बालविवाह आदि जो पहले अच्छे समझे जाते थे आज बुरे समझे जाते हैं। ऐसे ही आज संसारमें आपके सामने अनेक उदाहरण हैं, समझ लीजिये। जो बात पहलेके समयमें नीतियुक्त समझी जाती थी, उसीको आज अनीति कहा जाता है। इस स्थितिमें क्या हम अपनेको सच्चे समालोचक कह सकते हैं यदि हम उस समयकी घटनाकी यथार्थता वर्तमान कालकी नीतिसे जाँचें? मेरी समझमें तो कदापि नहीं।

हमको वालिवधपर आलोचना करनेके लिये त्रेतायुगकी नीतिका अवलम्बन करना पड़ेगा। उस समयकी नीति अध्यात्म, वाल्मीकि आदिमें भी इस प्रसंगपर दी हुई है और मनुस्मृतिका प्रमाण भी दिया गया है। यथा वाल्मीकीये कि० स० १८—

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत्॥
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः।
भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः॥

(१८-१९। २२-२३)

'तुमने धर्मका त्याग किया, छोटे भाईके जीतेजी उसकी स्त्रीको अपनी स्त्री बना लिया। इसके लिये प्राणदण्ड ही विधेय है......। यही बात गोस्वामीजीने भी कही है—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदिष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

वालिको श्रीरामचन्द्रजीका ईश्वरावतार होना अवगत है। वह जानता है कि सुग्रीवसे उनकी मित्रता हो गयी है और वे उसकी रक्षामें तत्पर हैं। ताराने वालिको समझाया है और प्रार्थना की कि सुग्रीवसे मेल कर लो, वैर छोड़कर उसे युवराज बना दो, अन्यथा तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है—'नान्या गतिरिहास्ति ते' (वा०रा०४।१६।२८)। पर उसने अभिमानवश उसका कहा न माना और यही कहा कि वे धर्मज्ञ हैं, पाप क्यों करेंगे, वा (मानसके कथनानुसार) वे समदर्शी हैं एवं 'जौं कदाचि मोहि मारिहहिं तौ पुनि होउँ सनाथ'। प्रभुने वालिको पहली बार नहीं मारा। उसको बहुत मौका दिया कि वह सँभल जाय, सुग्रीवसे शत्रुभाव छोड़ दे, इससे मेल कर ले, पर वह नहीं मानता। दूसरी बार अपना चिह्न देकर फिर भी भगवान्ने उसे होशियार किया कि सुग्रीव मेरे आश्रित हो जा चुका है यह जानकर भी—'मम भुज बल आश्रित तेहि जानी'—उसने श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषार्थकी अवहेलना की, उनका अत्यन्त अपमान किया, उनके मित्रके प्राण लेनेपर तुल गया, तब उन्होंने मित्रको मृत्युपाशसे बचानेके लिये उसे मारा। इसमें 'विटप ओट'से मारनेमें क्या दोष हुआ?

यदि इसमें अन्याय होता तो रामजी कदापि यह न कह सकते कि छिपकर मारनेके विषयमें न मुझे पश्चात्ताप है न किसी प्रकारका दुःख—

न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरिपुंगव।

(वा०रा०४।१८।३६)

जो श्रीरामजीसे इसका उत्तर माँग रहा है कि 'धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं॥' वह उत्तर पाकर स्वयं कहता है कि मैं निरुत्तर हो गया, आपने अधर्म नहीं किया, यथा—

न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः॥

(वा०रा०४।१८।४४-४५)

अर्थात् उत्तर सुनकर उसने धर्मको निश्चय जानकर राघवको दोष नहीं दिया और हाथ जोड़कर बोला कि आपने जो कहा वह ठीक है इसमें सन्देह नहीं।

जब स्वयं वालि ही यों कह रहा है तब, हमको आज श्रीरामके चरितपर दोषारोपण करनेका क्या हक है?

अच्छा अब आजकलकी नीति भी लीजिये। क्या जो राजा किसी राजासे मिलता है वह उसकी सहायता छोड़ देता है? क्या आज खाई (Trenches) आदिमें जान-बूझकर छिपकर शत्रुपर एवं रात-बिरात छिपकर एकायक धोखा देकर, छलकपटके व्यवहार लड़ाईमें आयज नहीं माने जा रहे हैं? शत्रुको जिस तरह हो सके मारना यही आजकलकी नीति है। इस नीतिके सामने तो रामजी उत्तरदायित्वसे सर्वथा मुक्त हैं। आजकल तो लड़ाईमें धर्म और अधर्मका कहीं विचार ही नहीं है।

यद्यपि मेरी समझमें तो जब वालि स्वयं अपनेको निरुत्तर मानता है तब हमको उसके उत्तरके अनुसन्धानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती? तथापि लोगोंकी शङ्काओंके समाधान और तरह भी हो सकते हैं--

१-श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ हैं। यह त्रैलोक्य जानता है कि 'राम' दो वचन कभी नहीं कहते, जो वचन उनके मुखसे एकबार निकला, वह कदापि असत्य नहीं किया जा सकता। वे मित्र सुग्रीवका दुःख सुनकर प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान।' और यह भी कि 'सखा वचन मम मृषा न होई।' व्याध भयसे नहीं छिपता। मुख्य कारण यह होता है कि कहीं शिकार उसे देखकर हाथसे जाता न रहे। यहाँ 'विटप-ओट' से इसलिये मारा कि-यदि कहीं वालि हमको देखकर भाग गया अथवा छिप गया, (अथवा, शरणमें आ पड़ा-यह बात आगे लिखी गयी है) तो प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। सुग्रीवको स्त्री और राज्य कैसे मिलेगा? पुनः, यदि सामने आकर खड़े होते तो बहुत सम्भव था कि वह सेना आदिको सहायताके लिये लाता। तो यह आपत्ति आती कि मारना तो एक वालिको ही था, पर, उसके साथ मारी जाती सारी सेना भी। स्मरण रहे कि यहाँ छिपनेमें कपटका लेश नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता तो प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बाद वालिके शरणागत होने-पर श्रीराम यह कैसे कहते कि 'अचल करौं तन राखहु प्राना।'

२-वालि जीसे चाहता था कि मेरा वध भगवान्‌के हाथसे हो, यथा-'त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन्वार्यमाणोऽपि तारया' यही बात मानसमेंके 'जौं कदाचि मोहि मारिहहिं तौ पुनि होउँ सनाथ' से भी ध्वनित होती है। सामने जानेपर भला उसकी यह अभिलाषा कैसे पूर्ण होती? भगवान् अन्तर्यामी हैं उन्होंने उसकी अभिलाषा इसप्रकार पूर्ण की।

३-यद्यपि भगवान् सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, उनकी इच्छामें कोई वर या शाप बाधक नहीं हो सकता। तथापि यह उनका मर्यादापुरुषोत्तम अवतार है। 'मानस-मयङ्क'कार एवं और भी कुछ सज्जनोंका मत है कि वालिको किसीका वरदान था कि जो तेरे सम्मुख लड़नेको आवेगा उसका आधा बल तुझको मिल जायगा। प्रभु सबकी मर्यादा रखते हैं, इसीसे तो रावणवधके लिये नर-शरीर धारण किया, नहीं तो जो कालका भी काल है क्या वह बिना अवतार लिये ही रावणको मार नहीं सकता था? अवश्य मार सकता था—पर देवताओंकी मर्यादा, उनकी प्रतिष्ठा जाती रहती। उनके वर और शाप कोई चीज़ न रह जाते। इसीलिये तो श्रीरामदूतने भी ब्रह्माका मान रक्खा और अपनेको नागपाशसे बँधवा लिया—

जौं न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटै अपार।

अतएव ओटसे मारकर वरकी मर्यादा रक्खी।

४-पं० शिवरत्न शुक्ल लिखते हैं कि 'वृक्षकी आड़से मारनेका कारण वालिको अकेला पाना था। अर्थात् नियत स्थलके उस अंशमें वालि सुग्रीवसे युद्ध करके लौटता और फिर वेगके साथ सुग्रीवकी ओर दौड़ता था। अतएव उसी स्थानका लक्ष्य वृक्षकी ओटसे किया गया था कि जिसमें भूलसे भी सुग्रीवके बाण न लगे; क्योंकि उस स्थानपर वालि अकेला था। यही कारण वृक्षकी ओटमें खड़े होनेका है। लोग कहते हैं कि वालि सम्मुख युद्ध करनेवाले वीर योद्धाका आधा बल हर लेता था; पर रामचन्द्रजीके साथ वह ऐसा नहीं कर सकता था। क्योंकि समुद्रका सारा जल जैसे एक घड़ेमें भरा नहीं जा सकता; वैसे ही वालिकी शक्ति रूपी पात्रमें भुवनेश्वरका अर्द्धबल भी नहीं समा सकता। अस्तु' यह शङ्का निर्मूल है।

शरणागत-वत्सलता एवं सत्यसन्धता

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें उनका पूर्ण ऐश्वर्य और पराक्रम सबसे अधिक उनके शरणागत-वत्सलता गुणसे प्रकट होता है। इसी गुणने भक्तोंको रिझा रक्खा है। प्रायः सर्वत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऐश्वर्यको छिपाया है। पर विभीषणजीकी शरणागतिके समय जब एक श्रीहनूमान्‌जी-को छोड़ सुग्रीव, जाम्बवान, अङ्गद आदि सभीने उनको शरणमें न रखनेका मत दिया, तब सुग्रीवको प्रभुने अनेक प्रकारसे समझाया और अन्ततोगत्वा उन्हें यह कहना ही

पड़ा कि 'तुम मेरे प्रभावको नहीं जानते, मैं अँगुलीके अग्रभागके इशारेसे त्रैलोक्यका नाश कर सकता हूँ, थोड़ेसे राक्षस तो क्या चीज़ हैं ? पर मैं शरणागतको नहीं छोड़ सकता, चाहे मेरा सर्वस्व नाश क्यों न हो जाय।' वाल्मीकि आदि रामायणोंमें शरणागतिपर प्रभुके बहुत कुछ वचन हैं। प्रभुने यहाँतक कहा कि 'यह क्या, यदि वह रावण भी हो और मेरी शरण (कपटवेषसे) आया हो तो भी मैं उसे अभय देता हूँ तुम उसे लिवा लाओ।' देखिये, श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगी, पर ऐसे दारुण शोकके समय भी उन्हें सीताजी या और किसीकी चिन्ता नहीं है; लक्ष्मणजीका भी शोक है तो इसी कारण कि विभीषण हमारी शरण आया हुआ है, अब हम उसका मनोरथ कैसे पूरा करेंगे। गीतावलिमें श्रीराम कहते हैं—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥
सुनु सुग्रीव साँचहू मोसन फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता॥
गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति रही सोच भरि छाती॥

यहाँपर शरणागतिपर जैसा प्रबल और दृढ़ भगवद्-वचनामृत है, वैसा शायद ही और कहीं मिले—

कोटि बिप्र-बध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रानकी नाई॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥
मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषा यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

इसी तरह भगवान्‌ने अपने श्रीकृष्णावतारमें भी कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

यही वाक्य आज भगवद्भक्तोंकी अनेक समाजों, पन्थों, मतवादियोंसे रक्षा कर रहे हैं। इसी जगह आकर अन्य मतवादी हिन्दू भाई दाँतके नीचे उँगली दबा लेते हैं, नहीं तो अवतार-खण्डन तो वे करते ही रहे और करते भी हैं।

सुग्रीव वालिसे बहुत कमजोर है। वह स्वयं कहता है कि—

ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

यही कारण है कि श्रीसीताजीकी खोजमें जब उसने वानरोंको भेजा तब चारों दिशाओंकी अन्तिम सीमातकके नाम उसने वानरोंसे बताये। वालिसे संसारभरमें उसका कोई रक्षक न हुआ।

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिन्ता जर छाती॥

ऐसा सुग्रीव जब प्रभुकी शरण हुआ, उससे प्रभुने मित्रता की और उसका दुःख सुनकर एवं यह जानकर कि वालिने उसका सर्वस्व एवं स्त्रीको हर लिया, उनसे न रहा गया, वालिके अधर्मको वे न सह सके। यद्यपि वालिने उनका कोई अपराध नहीं किया था तो भी 'सेवक बैर बैर अधिकारी।' मित्रका शत्रु अपना ही शत्रु है। यह सोचकर उन्होंने तुरन्त प्रतिज्ञा की कि 'सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान।'

प्रभुका बाना है गरीबनिवाज, दीनदयालु, प्रणतपाल ! इसीसे उन्होंने दीन, गरीब और शरणागत सुग्रीवकी रक्षा उसके अति प्रबल शत्रुसे की।

भगवान्‌ने 'विटप-ओट' से वालिको मारनेका चरित वस्तुतः क्यों किया, इसमें क्या रहस्य है—यह तो श्रीराम ही जानें, या वे जानें जिन्हें श्रीराम जना दें। पर श्रीअवधमें जो महात्माओंसे सुना है, वह यह है—

वालि जानता है कि रावणवधके लिये प्रभुने अवतार लिया है, ताराने भी जब उससे कहा कि—

सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवाँ। ते दोउ बंधु-तेज बल-सीवाँ॥
कौसलेस-सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

तब उसने यही कहा कि—

समदरसी रघुनाथ। जो कदाचि मोहि मारिहैं तौ पुनि होउँ सनाथ॥'

और मारे जानेपर जब प्रभु समीप आये तब वह एक बारगी उठ बैठा और कहने लगा कि—

'धर्महेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं॥'

इससे स्पष्ट है कि वह जानता था कि ये परब्रह्म-परमात्मा हैं।

यदि प्रभु सामने आते तो किञ्चित् सन्देह नहीं कि वह दर्शन पाते ही अवश्य चरणोंपर गिर पड़ता। इसका प्रमाण है—

परा बिकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥
× × × । सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा॥

तब श्रीराम बालिको कैसे मारते? और न मारते तो मित्रका काम कैसे होता? एवं सत्यसन्धता कहाँ रह जाती? शरणमें आये हुए सुग्रीवको छोड़ देते तो ब्रह्माण्डभरमें आज उनकी शरणमें कौन विश्वास करता? जीव उनकी शरणमात्र लेनेसे अपने कल्याणका विश्वास और निश्चय कब कर सकता? सामने आनेपर वे शील कैसे छोड़ते? इसीलिये उसे 'विटप-ओट'से मारा।

इसपर यह कहा जा सकता है कि बालि भक्त था तो पहले ही शरणमें क्यों न आया, जब ताराने उसको समझाया था? इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सुग्रीवने आकर उसे ललकारा था। भला ऐसा कौन बलवान् पराक्रमी योद्धा होगा जो शत्रुकी ललकारपर उलटे उसके सामने हाथ जोड़े?–'बाली रिपुबल सहै न पारा।'

छिपकर भी मित्रके शत्रुको मारनेमें कोई दोष नहीं। मान भी लिया जाय, तो भी वह कानून ही और है और शरणागत-वत्सलताका कानून उन सारे सांसारिक कानूनोंसे निराला है। यह तो नियमका अपवाद (Exception to the Rule) है यह तो भगवान्‌का निजका कानून है। अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रभु ब्रह्मण्यदेवत्व आदि गुणोंको भी ताकपर रख देते हैं, उनको यह भी परवा नहीं कि हमको कोई बुरा कहेगा। इसीपर गोस्वामीजीने विनयमें कहा है

'ऐसे राम दीन हितकारी।
तियबिरही सुग्रीव सखा लखि हत्यो बालि सहि गारी।'

और दोहावलीमें भी कहते हैं–

कहा बिभीषन लै मिलेउ कहा बिगारी बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आये पालि॥
बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी रामकृपालको बिरद गरीबनिवाज॥
बंधु-बधूरत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीवकी चितइ न कछू कुचालि॥

इसी विषयमें वा० रा० स० १० भी प्रमाणमें दिया जा सकता है। वहाँ जब महारानीजीने आपसे प्रार्थना की कि आपने राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा की है, पर मेरी प्रार्थना है कि आप बिना अपराधके उनका वध न करें, उस समय प्रभुने यह उत्तर दिया–

रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने।
मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्र्येन परिपालनम्॥
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्॥
मुनीनामन्यथाकर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा।
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्॥
(१६–१९)

अर्थात् 'दण्डकारण्यके ऋषि मेरी शरण आकर मुझसे बोले कि आप ही हमारे नाथ हैं, आप ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं। यह सुनकर मैंने राक्षस-वधकी प्रतिज्ञा की। अब उस प्रतिज्ञाको मैं नहीं छोड़ सकता, सत्य मुझे सदा प्रिय है। मैं प्राण छोड़ सकता हूँ, तुमको एवं लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ पर प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता।' ऐसा ही प्रभुने सुन्दरकाण्डमें सुग्रीवसे कहा है–'मम पन सरनागत भय हारी।'

तात्पर्य कि सत्यसन्धता, प्रतिज्ञारक्षा, साधुपरित्राण तथा दुष्टसंहारके तत्त्व और भगवान्‌की शरणागत-वत्सलताको जो नहीं जानते वे ही प्रभुपर अन्यायका लाञ्छन लगायेंगे। कविके शब्दोंमें ईश्वरावतार-चरित ऐसे होते हैं जिन्हें देख-सुनकर–

जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारी।

आधुनिक समालोचकोंको चाहिये कि वे सहृदयता और सद्भावनासे ही ईश्वरावतार-चरित्रोंपर विचार करनेका कष्ट उठाया करें, तभी उसके रहस्य उनकी समझमें आ सकते हैं।*

* आप 'मानसपीयूष' नामक श्रीरामचरितमानसकी एक बृहत् टीका निकालनेका बड़ा ही सराहनीय और सर्वथा स्तुत्य कार्य कर रहे हैं। अबतक 'मानस' पर जितनी टीकाएँ निकली हैं प्रायः उन सबका सार और अप्रकाशित टीकाओंका रसास्वादन करना हो तो इस ग्रन्थको जरूर पढ़ना चाहिये। इसमें काशीनिवासी प्रसिद्ध रामायणी सा० पं० रामकुमारजीकृत पूरी टीका दी जा रही है, इसके सिवा श्रीवन्दन पाठकजी, महाराज श्रीरामचरणदासजी, पाण्डेय रामबक्सजी, संतसिंहजी ज्ञानी पंजाबी, काष्ठजिह्वा

पतितोद्धारक तुलसी

आखर अमोघ अस्त्र अतुल अनोखे चोखे ,
छन्दके प्रबन्ध आछे अछत बिचारे हैं ।
दीबे काज मेख राव-रंकनके अंकनपे ,
लेखबद्ध करिकै गुसाईंजू उचारे हैं ॥
जन्त्रहू हैं मन्त्रहू हैं आगम निगमहू हैं ,
कलिकी कराल चाल नासिबे दुधारे हैं ।
गाय 'प्रेम' मानसकौं अधम उधारे जेते ,
तुलसीनें तारे तेते नभमें न तारे हैं ॥१॥
पापी व्यभिचारी भारी कपटी कुचाली मूढ़ ,
औगुनकी खान , पढ़ि साँची गतिं धारे हैं ।
चुगुल चवाइ चोर चपल चलाक चित्त ,
चाव चौगुनेसों राम-नामहिं उचारे हैं ॥
जेते गये चलें बढ़ि मानस-सोपानपर ,
धोय मल मानस कौ बुद्धिहिं सुधारे हैं ।
धन्य तेरी कृति 'प्रेम' तुलसी गुसाँई इन ,
तेने जीवं तारे जेते नभमे न तारे हैं ॥२॥

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम' ।

स्वामीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपति उपाध्यायजी, रणबहादुरसिंहजी, कैलासजी, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा ना० प्रचारिणी सभाकी ग्रन्थावलीसे, विनायकी टीका, वीर कविजी मालवीयकृत टीका, बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी टीका, पं०सुधाकरजी द्विवेदी, पं० सूर्यप्रसाद मिश्र, 'तुलसी' 'माधुरी' आदिसे जहाँ जो सुन्दरभाव मिलता है, उनका संग्रह रहता है। इनके सिवा पू० पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज, रामायणी बाबा श्री-रामबालकदासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी रामायणी इत्यादिकी कथाएँ सुनकर लेखकने कई वर्षोंतक जो नोट लिख लिये थे वे भी रहते है। यथावश्यक शब्दोंके अर्थ और उनकी व्युत्पत्ति देकर फिर सरल अक्षरार्थ किया जाता है । प्रमाणसहित कथाएँ दी जाती है। श्रीरामदासजी गौड़ और लाला भगवानदीनजीके विचार भी रहते हैं। कठिन समस्याओंकी मीमांसा की जाती है। मिलानके लिये ग्रन्थोंके श्लोक जो चौपाइयोंसे मिलते हैं, दिये जाते है। जहाँ तहाँ विवादास्पद चौपाइयोंका खुलासा किया जाता है। प्राचीन पाठान्तरोंपर विचार रहता है। इस टीकामें प्रायः रुपयेमें चौदह आना भाग अप्रकाशित टीकाओंका रहता है।

अबतक चार काण्ड समाप्त हो चुके हैं। बालकाण्डके लगभग २२७५ और अयोध्याकाण्डके १५२५ पृष्ठ हैं। रामायण-प्रेमियोंको सावन्तजीसे सम्पादक 'मानस-पीयूष' अयोध्याके पतेसे पत्र-व्यवहार कर प्रकाशित पुस्तकें खरीदनी चाहिये और प्रकाशित होनेवाले भागोंके लिये ग्राहक बन जाना चाहिये।

बाबू शीतलासहायजी अपने सब कार्योंको छोड़कर केवल इसी पवित्र रामसेवामें लग रहे है। मेरी समझसे इन्हें इस कार्यमें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, और घाटा हो रहा है, जो पुस्तकें बिकनेसे ही कम हो सकता है, रामायण-प्रेमियोंको यह परम उपयोगी ग्रन्थ खरीदकर राम-सेवामें सहयोग देना चाहिये। —सम्पादक

तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा

(लेखक—रैवरेण्ड एडविन ग्रीव्स, मेलवर्न, इंगलैण्ड)

न्दी-भाषाके महाकवियोंकी रचनाओं-पर समालोचनात्मक दृष्टिसे कुछ लिखना एक विदेशीके लिये दुस्साहस-मात्र होगा । किन्तु मेरे-जैसे व्यक्तिका जिसने हिन्दी-भाषाके सर्वोत्कृष्ट महाकवि गुसाईं तुलसीदासजीकी रामायणका सौभाग्यवश वर्षों अध्ययन किया है, उनके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि उपस्थित करना कदाचित् क्षम्य हो सकता है ।

तुलसीदासजीने बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें कोई ऐसा नहीं है जो सामान्य दृष्टिसे देखा जा सके । किन्तु हिन्दीके विद्वान् गुसाईंजीके नामसे प्रसिद्ध सभी ग्रन्थोंको उनकी कृति नहीं मानते । सम्भव है कि कुछ निम्नश्रेणीकी रचनाएँ जिनमें गुसाईंजीका नाम है, वस्तुतः उनकी कृति न हो, अतएव महाकविके दोष दिखलानेके विचारसे उनको प्रमाणरूपसे उपस्थित नहीं किया जा सकता ।

उनके समस्त ग्रन्थोंमें रामायण या रामचरितमानसका स्थान सबसे ऊँचा है । मुझे स्मरण है कि हिन्दीके एक विद्वान् इस निर्णयको स्वीकार करनेमें आनाकानी करते थे क्योंकि उनके विचारसे वह स्थान विनयपत्रिकाको प्रदान किया जाना चाहिये । निस्सन्देह विनयपत्रिकामें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो रामचरितमानसमें उतनी नहीं पायी जातीं, किन्तु विनयपत्रिका केवल थोड़े-से संस्कृत पुरुषोंके लिये ही पवित्र धरोहर बनी रह जाती है । रामायणको और रामायणके गुणोंको समझनेवाले ऐसे बहुतेरे सज्जन मिलेंगे जो विनयपत्रिकाके विवाद-ग्रस्त पदोंका विवेचन तो दूर रहा उनको समझनेतककी भी क्षमता नहीं रखते ।

श्रीरामचरितमानसकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सब श्रेणियोंके लोगोंको—यहाँतक कि जो लोग पढ़ना नहीं जानते, केवल सुन सकते हैं, उनको भी समान रूपसे प्रिय है । इससे एक भोलाभाला ग्रामीण जितना आनन्दित होता है, विद्वान् भी उतना ही आनन्द पाता है । रामायणकी कथा बड़ी ही सुन्दरताके साथ कही गयी है, जिससे पाठकका मन आदिसे अन्ततक कहीं नहीं ऊबता । चमत्कारकी अधिकता, कल्पनाकी प्रचुरता, भाषाकी सजीवता, मधुर ध्वनि तथा भाव प्रकाशनकी सुन्दरता और उपादेयताके कारण यह सबको मन्त्रमुग्ध कर देती है । सम्भव है कि इसकी उत्तमता सब जगह एक-सी नहीं हो, परन्तु लेखकको हम कहीं विषयान्तरमें जाते नहीं देखते (जैसा कि कुछ वास्तविक सुकवि झोंकमें आकर कर बैठते हैं) । तथापि यह ग्रन्थ सर्वाङ्गसुन्दररूपमें हमारे सामने उपस्थित है । अब सम्भवतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदासकृत रामायणमें कौन-से ऐसे गुण हैं जिनसे उसने हिन्दी-साहित्यमें सर्वोच्च पद प्राप्त किया है ?

लेखक सङ्कोचके साथ इस प्रश्नका संक्षिप्त उत्तर देनेकी चेष्टा करता है ।

(१) महाकविका मन प्रतिपाद्य विषयमें तन्मय है, उसने अपने आपको भुला दिया है । उसका प्रयत्न अपनी प्रवीणता प्रदर्शित करना नहीं है, वह श्रीरामचन्द्रजीकी महानता और साधुताकी ओर ही पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता है । श्रीरामके प्रति उसकी भक्ति (अथवा उसकी रामभक्ति) उसके समस्त पद्योंमें स्वभावसे ही परिप्लावित है । उसकी रचनाएँ अपने प्रभु और भगवान्‌के अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण हैं । वह कीर्ति कमानेके लिये रचना नहीं करता, उसका एकमात्र लक्ष्य श्रीसीता-रामकी विमल कीर्तिकी स्थापना करना है ।

(२) इस लक्ष्यको सम्मुख रखकर कवि प्रधानरूपसे इस बातपर दृष्टि रखता है, जिसमें उसकी भाषा सरल और सबके समझने योग्य हो । वह अपनी विद्वत्ता, प्रवीणता और रचना-कौशलकी प्रशंसाके लिये पाठकोंको विवश करनेकी इच्छा नहीं करता, वह तो पाठकोंको अपनी बात समझाना चाहता है । निम्नलिखित पद बड़ा ही मनोहर है जिसमें कविने इस विषयकी विवेचना की है और जिसमें साधारण 'भाषा' शब्दका प्रयोग कर अपनी अभिलाषा व्यक्त की है—

भाषा भनित मोरि मति भोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि-हर-पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबरकी॥

गोस्वामी तुलसीदासजी

(शृङ्गवेर पुर)

शान्ता देवीका मन्दिर

श्रीशृङ्गि ऋषिकी समाधि

श्रीरामचन्द्रजीके सोनेका स्थान (राम चौरामें)

श्रीगौरीशङ्कर पाठशाला

निस्सन्देह रामचरितमानसमें बहुतसे ऐसे स्थल हैं जिनके समझनेमें विदेशी पाठकको कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर सम्भवतः उनमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो प्रत्येक भारतीय पाठकके लिये भी सुगम नहीं हैं, किन्तु इस क्लिष्टताका कारण केवल विषयकी गम्भीरता है। कविने इस प्रकारकी रचना अपना पाण्डित्य और गाम्भीर्य दिखलानेके लिये नहीं की है। इस काव्यकी एक बड़ी विशेषता भाषाकी सरलता है। कवि अपनी रचना साधारण जनताके समझने योग्य बनाना चाहता है। उसका उद्देश्य तुलसीदासको विख्यात करना नहीं है, वह तो अपने रामको लोकप्रिय बनाना चाहता है।

(३) एक विशेषता यह है कि इसमें बिना बाधा विभिन्न वृत्तान्तोंका समावेश है। छन्द-योजना भी बहुत ही सुन्दर है। यद्यपि कहीं कहीं चौपाइयों और दोहोंके क्रममें कुछ भेद है परन्तु अधिकांशमें चार चौपाइयोंके बाद एक दोहेका क्रम रक्खा गया है, बीच-बीचमें सोरठोंका प्रयोग करके क्रममें परिवर्तन किया गया है, जिससे रचना और भी रुचिकर हो गयी है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ अनेक प्रकारके छन्दोंका भी समावेश किया गया है, जिनसे काव्यका सौन्दर्य विशेष बढ़ गया है। कहीं कहीं तो विषय और भाषाकी उत्कृष्टताके कारण वे बहुत ही प्रभावोत्पादक हो गये हैं। उदाहरणार्थ इस छन्दको देखिये, जिसका आरम्भ इसप्रकार है—

जय-जय सुरनायक जन-सुख-दायक प्रनतपाल भगवंता।

यह बालकाण्डमें है। अन्यान्य स्थलोंपर ये छन्द युद्धकी भीषणता और भयानक योद्धाओंके मृत्योन्मुख संग्रामके भैरव-निनादसे परिपूर्ण हो रहे हैं। लङ्काकाण्डमें इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

गुसाईंजीने रामायणके पद्योंकी पूर्तिके लिये आवश्यकतानुसार शब्दोंके स्वरूपोंको बदलकर, बहुत-से अन्यान्य शब्दोंको अपनाकर रचनामें एक और नवीनता ला दी है। शब्दोंको उपयुक्त स्थानपर रखने, उनको घटाने-बढ़ाने तथा काटने-छाँटनेकी गोस्वामीजीमें ऐसी विचित्र शक्ति थी कि उनके ऐसा करनेपर भी प्रयुक्त शब्द सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। मैंने एक 'ऐसा' शब्दके रामायणमें ११ भिन्न रूप देखे हैं। इसी प्रकारकी विभिन्नता सर्वनाम, शब्द और अन्यान्य पदोंमें भी पायी जाती है। स्थान-स्थानपर अनुप्रासोंकी छटा दीख पड़ती है। कदाचित् उपर्युक्त छन्दमें यह एक पंक्ति अनुप्रासका सर्वोत्तम उदाहरण है—

जो भव-भय-भंजन जन-मन-रंजन गंजन बिपति बरूथा।

कवि शब्दों और पदोंके प्रयोगमें, विषय-प्रतिपादनके लिये छन्दोंकी गतिमें अपनी विशेष रुचिका प्रदर्शन करता है और भाव तथा रसोंके द्वारा अत्यधिक विभिन्नताकी छटा दिखाता है। रामायणमें उल्लिखित विषयों तथा उनके प्रकाशनके लिये प्रयोग किये गये रसोंकी सूची बना लेना प्रायः असम्भव है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणकी शैली नाटकोंकी भाँति है। यह सत्य है कि पाश्चात्य मनोवृत्तिके लिये रामायणके बहुत-से स्थल कुछ दुर्बोध या क्लिष्ट प्रतीत होते हैं तथा जिस भाषा और रसके द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की गयी है उसमें कुछ अतिमात्रा दीख पड़ती है, परन्तु इससे रामायणके भिन्न-भिन्न पात्रोंके सजीव चरित्र-चित्रणके प्रति पाठकोंकी श्रद्धा कम नहीं हो सकती।

गुसाईं तुलसीदासजीने सरल शान्त वर्णनमें, गार्हस्थ्य सुख-दुःखोंके चित्रणमें (हा ! दीना कैकेयी), युद्धके आघात-प्रतिघातके वर्णनमें, सन्तान और माता-पिताके, भाई-भाई और पति-पत्नीके पारस्परिक मृदुल सम्बन्धके अंकित करनेमें एक-सी कुशलता दिखायी है। सुदीर्घ वनवासकी यात्रासे पूर्व राम-सीताका जो वार्तालाप है वह तो कदाचित् सम्पूर्ण रामायणमें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रसंग है। जिस शूरतासे रामचन्द्रजी वनके कष्टमय जीवनका चित्र खींचकर सीताको दुःखोंसे बचने और घरपर सबकी देखभालमें सुख-पूर्वक रहनेका उपदेश करते हैं, उसी वीरताके साथ सीताजी भी प्रत्येक दशामें पतिके साथ रहकर उसके बड़े-से-बड़े कष्टोंमें समान रूपसे भागीदार बनना चाहती हैं। वह यह नहीं दिखलाना चाहती कि कठिन कार्योंका विनय-पूर्वक करना केवल कर्त्तव्य या भक्तिवश है, वह तो अपना दावा इससे कहीं भावपूर्ण शब्दोंमें पेश करती है, वह कहती है कि प्रभुके साथ वनकी कठिनाइयाँ भोगना मेरे लिये स्वर्ग-सदृश है और उनके अलग रहनेमें यह राजप्रासाद भी नरक-तुल्य है।

(४) तुलसीदासजीके हास्य-विनोदपर तो एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। साहित्य तथा जीवन दोनोंमें विनोदकी बड़ी आवश्यकता है। जीवनके किसी विभागमें विनोदका अभाव एक बड़ा दोष समझा जाता है। प्रायः हास्योत्पादक पद्य तत्काल मनमें जाग उठते हैं, उदाहरणार्थ,

परशुरामकी गर्जना तथा उनके क्रोधके उत्तरमें लक्ष्मणका विनोदपूर्ण उत्तर। अथवा शूर्पणखाकी लक्ष्मणको वरण करनेकी चेष्टा और उसके उत्तरमें लक्ष्मणका श्लेषपूर्ण हास्य देखने योग्य है। लङ्कामें राजप्रासादमें हनूमान् और उनकी पूँछकी कथा हास्यरससे परिपूर्ण है। इसीप्रकार बालकाण्डमें शिवके बहुसंख्यक विचित्र गणोंका वर्णन है। लङ्काकाण्डसे भी ऐसे बहुतेरे अंश उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें विकट तथा प्रौढ़ हास्यरसका समावेश है। कहीं-कहीं तो यह हास्य-विनोद मर्मस्पर्शी—व्यङ्ग-गर्भित हो गया है। क्या मैं निम्नलिखित पद्य इसके एक स्पष्ट चित्रके रूपमें रख सकता हूँ?

समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं।

यद्यपि कुछ सज्जन इसमें व्यङ्ग न मानकर इसका शब्दशः अनुवाद करना ही उचित समझते हैं।

अन्य विषयोंकी भाँति काव्यमें भी लोगोंकी अभिरुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है। कुछ पाठकोंको कवि बिहारीलालकी रचना विशेष प्रिय मालूम होती है। शब्दयोजनामें वे अवश्य ही बड़े प्रवीण हैं, किन्तु उनकी सतसईमें इसके अतिरिक्त कौन-से गुण रह जाते हैं? कुछ दूसरे लोगोंको सूरदासकी कविता बड़ी मनोहर प्रतीत होती है। निश्चय ही न तो कोई भी मनुष्य उनकी साहित्य-सुन्दरता तथा मनोरमताको लघुता प्रदान कर सकता है और न उनके पदोंके माधुर्यमें ही सन्देह कर सकता है। इस विषयपर हमें 'मेकाले' की निर्दोष अंग्रेजीके ऊपर कार्लाइलके वे उद्गार स्मरण हो आते हैं—'हे कान्तिमयी सरिते! बहती जाओ' (Flow on thou shining river)। सूरदास विचित्र फूलों और फलोंसे भरपूर एक ऊँचे पठारपर स्थित हैं, पर क्या नीचेकी समतल भूमि उनकी अभिरामता नहीं रख सकती? यद्यपि उनका स्थान बहुत ऊँचा है तथापि डालों और शाखोंमें भी मनोहरता होती है। महात्मा कबीरजीमें अपने ढंगकी एक महानता है। सम्भवतः कोई भी कवि इतने कम शब्दोंमें इतने ऊँचे भाव नहीं भर सकता। संक्षिप्त कथनकी शक्ति तथा रूखे ओजपूर्ण पदोंके प्रयोगमें उनकी कोई समानता नहीं कर सकता। उनके पदोंमें बहुत-से व्यावहारिक सिद्धान्त कूट-कूट कर भरे हैं। किन्तु तुलसीदास-जी और कबीरजीमें इतनी समानता नहीं कि उनकी तुलना की जा सके।

हिन्दी-साहित्यको अनेक कवियोंने समृद्धिशाली बनाया है, किन्तु तुलसीदासका स्थान निश्चय ही उन सबमें ऊँचा है। अन्य कवियोंमें तुलसीदासजीकी अपेक्षा कोई विशेष गुण भले ही हो परन्तु तुलसीदासजीमें तो अनेक उच्च और महान् गुणोंका समन्वय है। उनकी रामायणमें कैसे धीरत्व और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह दीख पड़ता है! वह हमारे केवल प्रशंसाके ही पात्र नहीं, प्रेमके भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी-साहित्यमें ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासादसे लेकर एक निर्धनकी कुटियातक इतना अधिक प्रसार हो।

राम

रामही चराचरोंमें व्याप्त हैं अखण्ड ब्रह्म,
रामका गुणानुवाद, पुण्यका आगार है।
रामसे सभी महान हैं सुखी जहान बीच,
रामके लिये सदा प्रणाम बार बार है॥
रामसे जुदा कभी हुआ नहीं किसीका चित्त,
रामकी कथा सुधा-त्रिवेणिकाकी धार है।
राममें रमे मुनी, मुनीश्वरोंके मानसोंमें,
राम 'विष्णु' सर्वथा त्रिलोकका आधार है॥

—गंगाविष्णु पाण्डेय, विद्याभूषण 'विष्णु'

रामायण संसारका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है

(लेखक—डाक्टर श्री एच० डब्ल्यू० बी० मॉरेनो, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रेसिडेण्ट 'ऐंगलो इण्डियन लीग')

इस बातको सभी मानते हैं कि रामायण संसारमें सबसे पुराना महाकाव्य है; किन्तु यह सर्वोत्कृष्ट और आदिकाव्य है—इसे बहुत कम लोग जानते हैं। ऐतिहासिक कालके अरुणोदयमें रचे जानेपर भी यह ग्रन्थ सर्वथा अद्वितीय हुआ है। यद्यपि यूनान, रोम, इटली, इङ्गलैण्ड, फारस तथा अन्य देशोंमें भी महाकाव्योंके लिखनेवाले समय समयपर आविर्भूत होते रहे हैं किन्तु सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा सर्वाङ्गीण पूर्ण होनेके कारण रामायणको वह गौरव-युक्त महान् पद सदा प्राप्त रहेगा जिसका अतिक्रमण अथवा प्रतिस्पर्द्धा कोई नहीं कर सकता।

रामायणमें महाकाव्यके लिये आवश्यक सभी नियमोंका पालन किया गया है। यद्यपि दूसरे महाकवियोंने भी उन नियमोंकी अवहेलना नहीं की है तथापि हिमालयस्थ उच्च शिखरकी भाँति यह उन सबसे आगे बढ़ा हुआ है। जो रामायणकी महत्ताको हृदयङ्गम करना चाहते हैं उन पुरुषोंके लिये महाकाव्यके नियमोंका विश्लेषण अधिक उपादेय होगा।

नाटकके समान महाकाव्यमें भी तीन महान् नियमों (सिद्धान्तों) का समावेश होना आवश्यक है—(१) विषयकी महानता—अर्थात् इतिहास तथा पुराणोंके महान् चरित्र-चित्रण, (२) सर्वाङ्गीण चमत्कारपूर्ण क्रियाएँ (३) भाषाकी उत्कृष्टता। अब देखना है कि रामायण कहाँ तक इन नियमोंको पूरा करता है। भगवान् राम स्वयं एक महान् सम्राट् हैं, उनका जन्म एक ऐसे महान् राजवंशमें होता है जिसकी सीमा देवताओं तक पहुँची हुई है। मनुष्य उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं। उनकी पतिव्रता श्री महारानी सीताजी उसी प्रकारके दूसरे महान् राजवंशमें जन्म लेती हैं और अपनी उच्च स्थितिके अनुरूप, अनुकरणीय गुणोंसे विभूषित इस महाकाव्यकी नायिका हैं। भगवान् श्रीरामके भ्राता लक्ष्मणमें भी वे सारे सुन्दर गुण वर्तमान हैं जो एक राजकुमारके लिये आवश्यक हैं। दक्षिणके आदि निवासी वानरोंके आकारवाले पुरुष, श्रीहनूमान्‌जी देवताओंके अवतार हैं जो एक बार अतुल शक्तिके अधीश्वर मारुतिके नामसे प्रसिद्ध थे और (रामायणमें) दक्षिणदेशके शासक हैं। महारानी सीताका अपहरण करनेवाला रावण लङ्काका शक्तिशाली राजा है। यद्यपि उसकी सारी कामनाएँ पाशविक हैं तथापि राज्य-वैभवमें वह किसी भी भारतीय नरेशसे कम नहीं है।

इस महाकाव्यका कथानक सर्वतोभावेन हृदयग्राही है। अंग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध कवि पोप ऐसा नहीं कर सका है, उसके हास्य-वीर-रस-पूर्ण काव्य 'दि रेप आव् दि लॉक' (The rape of the lock) में सुन्दरी बेलिण्डाके एक केशपाशके ऊपर ही सारा बखेड़ा मचता है। रामायणमें लक्ष्मण तथा महारानी सीताके सहित श्रीरामजीका भारतके दक्षिणी प्रदेशमें पर्यटन, मार्गमें ऐतिहासिक विभूतियोंसे मिलाप, भयानक लङ्काधिराजका पराभव, विजय प्राप्त कर अपने राज्यमें लौटना और वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ काल तक राज्य करना आदि घटनाओंका वर्णन है।

रामायणकी भाषा चमत्कार-पूर्ण है तथा संस्कृतके श्लोक-प्रवाहके कारण इस काव्यकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। महाकवि वर्जिल (Virgil) के एनिडकी (Aenid) भाँति ग्रीक अथवा लैटिन महाकाव्योंमें चमत्कारपूर्ण वर्णनके लिये षट्पदी (Hexameter) का उपयोग किया जाता है। मिल्टनने (Milton) भी सीमित पञ्चपदीका (Pentameter) प्रयोग किया है किन्तु रामायणमें इनसे कहीं अधिक चमत्कारिक छन्दोंका प्रवाह है। इसीलिये इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि आज भी श्रीतुलसीदासजीके रामायणको भी जिसमें वाल्मीकीय रामायणकी भाषाकी छाया वर्तमान है, गाँवोंमें लोग शान्तभावसे लगातार कितनी रातों सुनते हैं और मण्डपके नीचे आसनपर बैठे हुए विद्वान् पण्डित श्रीरामके पराक्रमपूर्ण कार्योंका सुन्दर वर्णन करते रहते हैं।

अरस्तूके काव्य-सिद्धान्तके अनुसार किसी ग्रन्थको महाकाव्यकी श्रेणीमें लानेके लिये तीन और नियमोंका पालन आवश्यक है। वे हैं—काल, स्थान तथा क्रियाकी एकता, महाकाव्यकी क्रियाओंका सम्पादन एक ही कालमें होना चाहिये। इतिहासकी भाँति इसका विस्तार एक कालसे

दूसरे कालतक नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ रोमका आगस्टन तथा इङ्गलैण्डका विक्टोरियन-काल है। रामायणमें, श्रीरामजीके वनवास तथा केवल उसी अवधिमें किये गये पराक्रमके थोड़े-से समयको चुनकर कालकी एकताका अच्छा निर्वाह हुआ है। शेक्सपियरके ऑथेलो (Othelo) नामक नाटकमें भी कालकी एकताकी रक्षा हुई है, ठीक वेनेशियन लोगोंके साइप्रस द्वीपपर आक्रमण करनेके पूर्व-ऑथेलो (Othelo) अपनी सेनाके साथ प्रस्थान करनेके लिये विचार करते समय ही मलिनहृदय आइगोकी (Iago) धूर्तताका शिकार बन जाता है। ग्रीक नाटकोंमें भी कालकी एकतापर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। अर्थात् जितने समयमें वास्तविक शोकपर्यवसायी कार्योंकी (Tragedy) समाप्ति होती है उतने ही समयमें नाटकका अभिनय भी समाप्त होता है। सम्राट् हेनरी पञ्चम (King Henry V.) नामक नाटकमें काल एवं स्थानकी एकताका अतिक्रमण हो जाता है और यही कारण है कि शेक्सपियर काल तथा स्थानकी एकताकी कमीको पूरा करनेके लिये सामूहिक-गान (Chorus) उपस्थित करता है। रामायणमें स्थानकी एकताका अच्छी तरह निर्वाह किया गया है। इस महाकाव्यकी सारी लीलाएँ भारतवर्ष तथा लङ्काके मैदानोंमें होती हैं। सम्राट् हेनरी पञ्चम नाटकमें स्थान, इंगलैण्डसे फ्रान्स तथा फ्रान्ससे इंगलैण्ड परिवर्तित होता रहता है, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है— सामूहिक गानसे वह सौख्य बन जाता है। रामायणमें क्रियाकी एकताका भी पालन होता है, समस्त क्रियाओंका सम्बन्ध केवल श्रीरामचन्द्रजीके वनवास तथा उनके लौटनेके सिवा और किसी बातसे नहीं है। लौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजी और महारानी सीताकी क्या दशा हुई? वनमें किसप्रकार महर्षि वाल्मीकिने लव और कुश—इन दोनों कुमारोंका पालन-पोषण किया? किसप्रकार वे अपने राज्यमें पुनः लौटकर आये? इन सब विषयोंका वर्णन रामायणमें है। महाकवि होमर रचित महाकाव्य इलियड (Iliad) की समाप्ति, पाट्रोक्लस (Patroclus) के हत्यारे हेक्टरके (Hector) मारनेके कारण एचलिजके क्रोध-शमनमें, हो जाती है। इसप्रकार यह दुःखान्त दृश्य पूर्ण हो जाता है, क्योंकि एचलिजके क्रोधसे निकलकर दुःखके अनन्त स्रोत फूट पड़ते हैं और वह उन्हींके गीत गाता है और कुछ नहीं कहता, तथा मृतक पाट्रोक्लसके सम्मानार्थ मृतक-क्रिया-सम्बन्धी खेल (Funeral games) की समाप्तिमें महाकाव्यका अवसान होता है। एनिडमें पयाख्यानकथित लकड़ीके घोड़ेकी कहानी, ट्रायनगरका पतन तथा दाह, इनियास (Aeneas) द्वारा एङ्किसेज (Anchises) को सहायता देना तथा उनके गृह-देवताओंकी रक्षादि—घटनाएँ यूनानी दन्तकथाओंसे ली गयी हैं।

संसारके महाकाव्योंके साथ तुलना करनेमें रामायण बड़ी सुन्दरताके साथ उपस्थित किया जा सकता है। महानताके विचारसे 'इलियड' को रामायणके सामने रख सकते हैं। परन्तु बहुत-से स्थलोंपर वह प्रतिभाहीन हो जाता है, जहाँ रचनाशैली तथा विचारोंकी मनोहरताके कारण रामायणकी विजय होती है। इन दोनों महाकाव्योंमें उपर्युक्त तीनों एकताओंका अनुसरण किया गया है और दोनों इस विषयमें अपना विशेष चमत्कार रखते हैं, किन्तु रामायण विशद शैली तथा सुन्दर दृश्योंके चित्रणके कारण एक अनुपम स्थान प्राप्त करता है। स्वयं महाकवि वर्जिल स्वीकार करता है कि एनिड केवल इलियडकी प्रतिच्छाया है। किन्तु इसमें इलियडके समान भाषा और भाव विकसित नहीं हो सके हैं, क्योंकि इसमें ऐसी कोई बात नहीं, जिसे होमरकी उन उपमाओंके सामने रख सकें जो संसारमें अत्यन्त सम्मानित हो चुकी हैं। महाकवि डाण्टे (Dante) के काव्योंमें विचार तथा वर्णनकी रमणीयताका अभाव नहीं है। उसके बनाये हुए इनफर्नो (Inferno) परगेटोरियो (Purgatorio) तथा पैरेडाइज (Paradise) नामक ग्रन्थोंमें ऐसा सुन्दर चित्रण है कि जिसकी प्रतिलिपि आधुनिक कलाविद् उपस्थित नहीं कर सकता। किन्तु कभी-कभी डाण्टेके विचारोंपर पक्षपातका परदा पड़ जाता है, यही कारण है कि वह जगत्में जिन धर्माध्यक्षोंसे घृणा करता है उन्हें नरकमें पहुँचा देता है किन्तु इनफर्नोमें रिमिनीकी Rimini फ्रैन्सिस्काके (Francesca) एक सुन्दर उपाख्यानके निमित्त वह कितने ही विद्रोहात्मक भावोंकी सृष्टि करता है। चमत्कारिक वर्णनके लिये सभी उपादान मिल्टनके 'पैरेडाइज लाष्ट' में हैं, किन्तु शैतानका वर्णन करते समय वह उसीको लगभग वास्तविक नायकके रूपमें ला देता है। इस काव्यके निर्दिष्ट नायक, मनुष्यके पुत्रका व्यक्तित्व अत्यन्त क्षीण और निष्प्रभ हो जाता है जिसे हम ईसाई-धर्म-ग्रन्थकी कथाके कारण श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं, मिल्टनकी रचनाके कारण नहीं। मनुष्यकी प्रथम अवज्ञाका गीत गानेवाले नेत्रहीन प्योरिटन (Puritan) महाकवि मिल्टनके भाव-प्रकाशनकी पेशलता, छन्द-प्रवाह तथा कल्पना-की प्रचुरतामें कोई कमी नहीं आती। फिरदौसीके शाहनामामें फारसके राजाओंका इतिहास है—जिसमें शक्तिशाली रुस्तमका विशेष वर्णन है, किन्तु यह काव्य केवल कथा और

उपकथा तथा युद्ध और सन्धिके विवरणोंसे भरा हुआ है, जिनके पढ़नेसे मन ऊब जाता है। फिर भी इनके मध्यमें सोहराबकी एक आश्चर्यमयी कहानी है। रुस्तमका अज़रबेजान (Azerbaijan) देशनिवासिनी अपनी पत्नी ताहमीना (Taheminah) के साथ केवल एक रात्रिके लिये शयन करना, तदनन्तर उसकी अज्ञानतामें सोहराबका जन्म होना तथा उसी सोहराबका संयोगवश अपने पिताके द्वारा मारा जाना आदि रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरी हुई इस करुण कहानीको पढ़कर ऐसा कोई न होगा जिसकी आँखें सजल न हो उठें। वास्तवमें, जैसा कि स्वयं कवि फ़िरदौसी कहता है कि यदि शाहनामा-जैसे महाकाव्यकी रचना न हुई होती तो रुस्तम एक ग्रामीण वीर ही रह जाता और उसके पराक्रमकी गाथा केवल ग्रामीण भाटोंकी जिह्वापर रह जाती। फ़िरदौसीने केवल इस पूर्वीय देशके महान् वीरके चरित्रको ही अङ्कित नहीं किया बल्कि दिलको हिला देनेवाली सोहराबकी कहानीको हमारे लिये रख छोड़ा, जो आज भी फ़ारसके प्रासाद एवं अन्तःपुरमें रहनेवालेके हृदयको प्रज्वलित करती है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, महारानी सीता, श्रीलक्ष्मणजी, महावीर हनुमानजी तथा रावणका चरित्र भी सुदूर भविष्यमें समयके अगम प्रवाहमें सर्वदा सजीवरूपसे वर्तमान रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दूजनश्रुतिमें सावित्री, शकुन्तला तथा दमयन्ती-जैसी पतिव्रता स्त्रियाँ आ जाती हैं किन्तु धर्मप्राणा सीताके सामने सभी निष्प्रभ हो जाती हैं; जिसे देवता भी प्रणाम करते हैं और अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिर, भीष्म तथा प्रह्लादके चरित्र भी प्राप्त होते हैं किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके विशुद्ध तथा कलङ्कहीन जीवन, एवं राजकीय गुण और शीलके साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती।

रामायणका सार क्या है? पैरेडाइज़ लॉस्टके शुभ उपदेश एवं इलियड काव्यमें वर्णित साधारण चरित्रोंकी अपेक्षा उसकी महत्ता किस प्रकार सार्थक होती है? ग्रीक कहानियोंमें वर्णित वीराग्रगण्य एकिलीज़ तो केवल मनेलास (Manelaus) बन्दी कन्याके लिये ही अपने शिविरमें छिप जाता है; दूसरी ओर ओडसे (Odyssens) एक अत्यन्त कामी पुरुष है जो आजकल सज्जन पुरुषोंके सम्मुख केवल घृणाका पात्र ठहरता है। अजाक्स भी (Ajax) केवल शक्तिमें भीमके समान है, इसके सिवा उसमें और कोई गुण नहीं है। इसके विपरीत श्रीरामचन्द्रजी उस मूल सिद्धान्तको सिखलाते हैं जो चराचरका आधार है क्योंकि परमात्माका प्रथम विधान 'अनुशासन' है। यदि आज सीताजी होतीं तो उनके सामने हमारी बहनें—चाहे वे प्राच्य देशकी हों या पाश्चात्य देशकी हों, लज्जासे नतशिर हो जातीं। श्रीलक्ष्मणजी धर्म और भक्तिसे ओतप्रोत हैं, उनके बाद उस प्रकारके बहुत ही कम भाई हमारे देखनेमें आते हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे केवल सरल और सर्वप्रिय जोनैथन (Jonathan) और डेविड (David) की अमर कहानी कुछ अधिक जँचती है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें रामायणमें और भी महत्त्वपूर्ण विषय प्राप्त होते हैं। कुछ भाष्यकारोंका विचार है कि सीता-शब्दका अर्थ हलके द्वारा बनायी गयी गहरी रेखा है। इसी आधारपर वे कहते हैं कि रामायणमें आलङ्कारिक ढंगसे आर्योंकी विभिन्न क्रियाओंका वर्णन है। उदाहरणार्थ किसप्रकार आर्योंने घूमने-फिरनेवाली जंगली जातियोंको खेती करना सिखलाया तथा शान्तानुकूल जीवनके लाभ बतलाये, जिनका उन्होंने अपने आदि स्थान मध्य एशियामें प्रयोग किया था। यदि इस महाकाव्यका यह महान् अर्थ हो तो भी उसकी उपादेयता बढ़ जाती है। इसकी वास्तविक कथाकी गम्भीरता और मनोहर वर्णनके अतिरिक्त इसमें और भी अधिक गूढ़ तत्त्व भरा है जो विद्वत्तापूर्ण अन्वेषणके लिये बहुत ही विस्तृत क्षेत्र उपस्थित करता है।

वाल्मीकि भले ही डाकू रहे हों किन्तु वह युगोंतक चमकनेवाले उस रत्नकी भाँति हैं, जिसके समीप पहुँचना सम्भव है किन्तु जिसकी समता तथा अतिक्रमण करना असम्भव है। रामायणकी कथा उन वृत्तान्तोंसे भरी है जिसका जादू राजमहलसे लेकर गाँवों और जंगलोंकी झोपड़ियोंतक एक-सा फैला हुआ है। यद्यपि महाभारतकी भाँति इसमें कहानियोंका ताँता नहीं दीख पड़ता और इसमें श्रीमद्भगवद्गीताकी भाँति केवल तत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी नहीं है तथापि महाकाव्यकी दृष्टिसे यह सर्वदाके लिये सर्वोत्कृष्ट और आदिकाव्य है। यद्यपि रामायणको श्रीगणेशजीने नहीं लिखा और न महर्षि व्यासकी विशद बुद्धिसे इसका प्रकाश हुआ तथापि इस धरामें कितने ही वंश आयेंगे और चले जायेंगे किन्तु रामायण ज्यों-की-त्यों ही अवस्थित रहेगी।

'रामचरितमानस कवि तुलसी।'

अवध-मधुरिपु-नाभिसरमें जो खिला अरविन्द।
भक्तिरसका है भरा जिसमें मधुर मकरन्द॥
भाव-सौरभ पुञ्ज जिसका उड़ रहा सब ओर।
हो रहा अलिवृन्द रसिकोंका जहाँ सु-बटोर॥१॥

कलि-तमोमय कालको जिसने किया सुप्रभात।
वह सु-रामचरित्रमानस है जगद्विख्यात॥
कामरिपुके दिव्य-अनुभव-सिद्ध फलका रूप।
साधु तुलसीदासका है तप-प्रभाव अनूप॥२॥

दिव्य-हृद्य उदार भावोंसे भरा भरपूर।
मुग्धता-सुविदग्धता-सह सहज रचना रूर॥
सफल मन्त्र-समान कोमल-कान्त-पद-संयुक्त।
गुणातीत-उदात्त-चिन्मय भक्ति-रससे युक्त॥३॥

नर-हृदयका दिव्य और पवित्रतर उद्गार।
आसुरिकताका तथा भी बीज और विकार॥
सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म मानस-वृत्तिकी भी बात।
द्वन्द्व और विरुद्ध भावोंका परस्पर घात॥४॥

शैल-वन-निर्झर-नदी-वागीश-चन्द्रालोक।
प्रात कमल-विकास सायम् कोक-दम्पति शोक॥
ग्रामके कृषि-खेत हैं त्यों कहीं नगर-सुहाट।
कहीं वल्कलकी छटा है कहीं राज-सुठाट॥५॥

शुद्ध सूनृतवादिताका है अपूर्व विकास।
व्यास और समासका भी दीखिए सुप्रयास॥
पूर्वमें उत्तर कथाकी सूचनाका ढङ्ग।
आनुपूर्वी भाव सङ्गतियुक्त विविध प्रसङ्ग॥६॥

दिव्य-दम्पति-प्रेमका शुद्धत्व और महत्त्व।
है कहीं भ्रातृत्व त्यों ही है कहीं भृत्यत्व॥
रामभक्ति अनन्यता द्वैततासे युक्त।
अङ्ग देवोंकी तथा आराधना संयुक्त॥७॥

ब्रह्मकी अद्वैतता औ जगन्मायावाद।
फिर विशिष्टाद्वैत एवम् द्वैतका संवाद॥
तज विरोधी भाव हो समशील शीतल शान्त।
सम्मिलित सह प्रेम चलते हैं सभी सिद्धान्त॥८॥

विविध ऋषियोंके विविध अनुभव तथा मत-पंथ।
शास्त्रवेद सुकाव्य-दर्शन और भी सद्ग्रंथ॥
दिव्य प्रज्ञा सर्वगामी खींच सबका तत्त्व।
कर दिया कविरत्नने उनका सुखकर एकत्व॥९॥

रामतत्त्व अतर्क्य और अचिन्त्य दिव्य उदार।
ज्यों अनन्ताकाश और अपार पारावार॥
मनो-मति-वाचा परे है वह विचित्र अनूप।
भावके सत्पात्रमें ढलता है उसका रूप॥१०॥

निज सुरुचि-विश्वासके अनुकूल है वह ध्येय।
वस्तुतः वह तत्त्व क्या है यह नहीं-सा ज्ञेय॥
तज दुराग्रह-द्वेष अपने भावके अनुसार।
ईशपदको पूजिये मत कीजिये तकरार॥११॥

यह जगत् सब रामही है, रामहीका खेल।
प्रत्येक अणु प्रतिरेणुमें त्यों है उसीकी मेल॥
है समस्त सु-नाम-रूपोंमें उसीकी ख्याति।
है वही जो कुछ कि है सब अस्ति एवम् भाति॥१२॥

यह विमल मत हो गया जिनसे प्रचारित मित्र।
स्वामि तुलसीदास हैं वे लोक पुण्य-चरित्र॥
शुद्ध शाश्वत-धर्मका जिनने किया उद्धार।
क्षीण आर्य-शरीरमें सञ्जीवनी सञ्चार॥१३॥

ज्ञान-रविकी ज्योतिमें कर प्रेम-अमृत-सुयोग।
दिव्य चन्द्र उगा दिया है, धन्य कवि-उद्योग!
निर्विकल्प सुकल्पनायुत कलित काव्य सुकान्त।
ज्ञानगरिमामय विशद है उपनिषद् वेदान्त॥१४॥

हो रहा है, फिर, कहींपर विधि-निषेध-विधान।
है कहीं त्यों नीतियोंका रुचिरतर व्याख्यान॥
यह सु-रामचरित्रमानस है सुमानस-शास्त्र।
हो रहे जिसके अमित हैं तत्त्वज्ञानी छात्र॥१५॥

तर गये लाखों हैं जिसका पाठ करके सद्य।
स्वतःसिद्ध सुमन्त्र है जिस ग्रन्थका प्रतिपद्य॥
हो गये कितने निरक्षर पढ़ जिसे विद्वान।
सुबुधसे कवि और कविसे सन्त-श्रेष्ठ महान॥१६॥

रङ्कसे हो राव कितने हो गये श्रीमान।
पा चुके हैं लोकमें शुभ कीर्ति औ सम्मान॥
विविध मनकी कल्पनाएँ, कामनाएँ श्चार।
पूर्ण करनेके लिये हैं कल्पवृक्ष उदार॥१७॥

आधिदैविक-आधिभौतिक आदि हैं जो कष्ट।
वे प्रयोग-विधानसे होते हैं इसके नष्ट॥
पाठमें मानसके मानसमें उपजती भक्ति।
पूर्ण दैवी ज्योतिसे होता सुबाचक व्यक्ति॥१८॥

वृत्तियाँ मुरझी हुई करती हैं सुन्दर हास।
उनमें होता है विशद स्वर्गीय-भाव-विकास॥
किन सु-शब्दोंमें करें उस काव्यका गुण-गान।
उन महाकविका करें किस भाँति हम सम्मान!॥१९॥

शुद्ध सम्यग्ज्ञानमय वे सूर्य थे निर्धार।
दिव्य अन्तष्करणमें था प्रेम-वारि अपार॥
हस्तगत ब्रह्माण्ड हृदिगत ब्रह्म था साकार।
कौन पा सकता है उनके विमल यशका पार॥२०॥

महाकवि मुनिराज थे, थे भक्तराज महान्।
सदय परउपकाररत गतमान वे विद्वान्॥
कलि-उदधिमें विकल भारत-पोतके आधार।
हरि-अनुग्रह-विग्रही परमार्थके अवतार॥२१॥

रम्य रामचरित्रमानस रचित कर अभिराम।
स्वामि तुलसीदासजीने कर दिया वह काम॥
सकल विधसे जो हमारा होगया हित-हेतु।
साकेतका सोपान त्यों संसार-सागर-सेतु॥२२॥

शारदके पद बन्दि नितै कविको पद 'बिन्दु' उमाहि चहैं।
शब्द चमत्कृत अर्थ अलंकृत त्यों रस-रीति निबाहि रहैं॥
भूत प्रभूत भये ह्वैहैं अजहूँ सरि बागबगाहि अहैं।
केते कवी कविताहि कहैं तुलसीसौं तुलै कवि ताहि कहैं॥

—'श्रीबिन्दु' ब्रह्मचारी

रामायणके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और शासन-संस्थाएँ

(लेखक—श्रीयुत बी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम०ए०)

प्राचीन हिन्दूशासनके भावों और शासन-संस्थाओंके पुनर्निर्माणके लिये महाकाव्य महाभारतके समान रामायण भी ज्ञातव्य विषयोंकी एक खान है। यद्यपि इस दृष्टिसे रामायणका अध्ययन स्वतन्त्ररूपसे किया जाना आवश्यक था तथापि अबतक इस विषयमें, इधर-उधर कुछ भावोंके और संस्थाओंके साधारण संकेत किये जानेके अतिरिक्त, किसीने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। प्रोफेसर जैकोबी तथा प्रो०एस०लेवी-सदृश प्रसिद्ध विद्वानोंने रामायणपर दो उत्तम निबन्ध लिखे हैं, जिनका उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा। जैकोबी महाशयका Das Ramayana (Bon-1893) और लेवी महाशयका Pour L'histoireon du Ramayana (Journal Asiatique, 1918) इन दोनों निबन्धोंमें भी रामायणकालीन राजनीतिक तथा शासन-सम्बन्धी विधानोंके विषयमें कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है। जैकोबी महाशयको पुस्तक-प्रणयन करते समय जो कुछ सामग्री मिल सकी, उससे उन्होंने वर्तमान रामायणका निकटतम काल निर्णय किया है। उन्होंने रामायणका काल अधिक-से-अधिक ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दी और कम-से-कम ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दी निर्धारित किया है। प्रो० ए० ए० मैकडोनेलकी सम्मतिमें रामायणका मुख्य भाग ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दीके पूर्व प्रणीत हो चुका था। 'दशरथजातक' नामक बौद्धग्रन्थमे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणीय कथाके कुछ भागसे जातकका लेखक परिचित था। वेबरकी यह धारणा कि, इस कथामें यूनानी संस्कृतका प्रभाव है, बिल्कुल निर्मूल है। ऐसी दशामें यह कल्पना युक्तिसंगत है कि जातकोंकी रचनाके पूर्व भी भारतीय जनता इस महाकाव्यके अधिकांश भागोंसे परिचित थी। यह तो सर्वसम्मत है कि रामायणका सङ्कलन भी ईसासे दूसरी शताब्दीके लगभग या उसके पूर्व ही हो चुका था। यदि हम इस धारणाको भी स्वीकार कर लें तो रामायण ईस्वी सन्‌के बहुत ही पहलेकी रचना सिद्ध होती है। अतः इसमें वर्णित विधान प्राचीन हैं इसलिये वे प्राच्य-विद्या-विशारदोंके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। रामायण धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गकी प्राप्तिका उपदेश देती है। (वा०रा०६ ८३।३२-३६) इसमें सामाजिक पद्धति वर्णाश्रमधर्मके अनुसार स्वीकृत की गयी है। इस पद्धतिका सार स्वधर्म पर स्थिर रहना है और

यही सभी प्राचीन ग्रन्थोंका प्रधान विषय रहा है। स्वधर्मका अभिप्राय है कि प्रत्येक पुरुष-स्त्री अपने कर्तव्यका पालन करें। यद्यपि महाभारतने राजधर्मको सब धर्मोंमें श्रेष्ठ बतलाया है, किन्तु रामायण इसपर उतना ज़ोर नहीं देती। वह धर्म और अधर्मका भेद निश्चित करती है—

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

राजधर्मं अहं वक्ष्ये अधर्मं धर्मसंहितम्
(वा० रा० २ । १०९ । २०)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणके प्रणेता राजधर्मके मौलिक सिद्धान्तको माननेके लिये तैयार हैं, पर वे इसीको प्रधान धर्मके रूपमें नहीं मानते। रामायणमें राजधर्म वही बतलाया गया है जिसका राजर्षि लोग पालन करते हैं। इस दृष्टिसे रामायणमें एक महान् नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी सिद्धान्त निहित है।

रामायणमें वर्णित राजनीतिक परिस्थितियोंसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उस समय वस्तुतः सम्पूर्ण भारत अयोध्या-सम्राट्के आधिपत्यमें था। श्रीरामचन्द्रजीकी गति दक्षिणमें कन्याकुमारीतक निर्बाध थी। दूसरे राज्योंके शासक और सामन्तगण या तो इक्ष्वाकुवंशीय राजाके सहकारी थे या उनके अधीनस्थ थे। दण्डकारण्यमें जहाँ कहीं रामचन्द्रजी गये, वहीं उनका स्वागत किया गया। उनका आतिथ्य करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः॥

पुनः जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे मैत्री करके उसके भाई वालिका वध किया, और जब वालिने उनके कर्मको अन्याययुक्त बतलाया, तब रामचन्द्रजी झट्से बोल उठे—

इक्ष्वाकूनां इयं भूमिः सशैलवनकानना।
(वा० रा० ४ । १८ । ६)

'किष्किन्धाप्रदेश, इक्ष्वाकु साम्राज्यका एक भाग है और उस साम्राज्यके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे मुझे दुराचारियों और अधर्मियोंके नाश करनेके अधिकार प्राप्त है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारतका सारा प्रदेश अयोध्या-सम्राट्के अधीन था।

शासनप्रणालीका स्वरूप एक राजतन्त्र(Monarchy) था। शासकतन्त्रके प्रति प्रजामें पैतृक-भावनाका प्रसार था। अर्थात् राजा प्रजाको अपनी सन्तान मानकर व्यवहार करता और लोकप्रिय होता था, एवं इसके बदलेमें प्रजा भी पूर्ण राजभक्त होती थी। इतना होनेपर भी राज्यप्रणाली निरङ्कुश नहीं थी, यह नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक प्रणाली थी। नियन्त्रण 'मन्त्रिपरिषद्'के द्वारा होता था, जिसका प्रधान सदस्य पुरोहित होता था। साथ ही 'पौर' और 'जानपद' आदि अन्यान्य समितियाँ भी होती थीं। इन सबसे बढ़कर कुछ ऐसे लौकिक नियम थे, जिनका सत्कार करना राजाका धर्म समझा जाता था।

तत्कालीन राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार नियम-भङ्ग किये जानेपर राजाको अराजकता (Anarchy) और विप्लव (Revolution) का सामना करना पड़ता था। 'श्रेणी' और 'नैगम' सदृश कुछ अर्द्धराजनीतिक संस्थाएँ भी थीं, जिनके प्रतिनिधि देशके शासनमें मुख्य भाग लेते थे (वा० रा० २ । १२७ । १६) श्रीरामचन्द्रजीके युवराजपदकी घोषणाके समय ये सब प्रतिनिधि उपस्थित थे। राजा दशरथके देहावसानके उपरान्त जब भरतजी रामचन्द्रजीसे उनकी प्रतिज्ञापर पुनर्विचार करानेके लिये अर्थात् उन्हें लौटा लानेके लिये प्रार्थना करने चित्रकूट गये थे, उस समय भी वे उपस्थित थे (वा० रा० २ । ८१ । १२, ८३ । १०)। दशरथजीकी मृत्युके अनन्तर पुरोहित महर्षि वशिष्ठजीने ही भरतको राजधानीमें शीघ्र बुलानेके लिये दूत भेजे थे। रामायणमें आदिसे अन्ततक पुरोहितका स्थान बड़े महत्त्वका है और यह कौटिल्यके इस कथनको स्पष्ट प्रमाणित करता है कि जो राज्य एक योग्य पुरोहितके अनुभवद्वारा रक्षित होता है वह सदा उन्नत होता है, उसकी कभी अवनति नहीं होती। युवराज-निर्वाचनके प्रश्नपर विचार स्थिर करनेवाले लोगोंमें 'पौर' और 'जानपद'के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। (वा० रा० २ । २ । १९-२०) इसप्रकार इन संस्थाओंको महत्त्वके अधिकार प्राप्त थे और ये राजनीतिक कार्य किया करती थीं।

एक राजतन्त्र-शासन प्रायः पैतृकाधिकारके रूपमें था। बहुधा पुत्र ही पिताका उत्तराधिकारी होता था। अभिषेकोत्सवमें राजकुमारको युवराजकी पदवी दी जाती थी। (वा० रा० २ । ३ । ६) राजकुमारोंको प्रान्तीय शासक (Provincial Governers) बनाकर भेजनेकी प्रथा थी। भरतजीके दो पुत्र तक्षशिला और पुष्कलावतीके शासक बनाये गये थे। शत्रुघ्नके दो पुत्र मथुरा और विदिशाके शासक बने थे तथा

सुवेल पर्वत पर श्रीराम की झाँकी ।

लक्ष्मणके दोनों पुत्रोंको उत्तर और दक्षिण कोसल पर शासनका अधिकार प्राप्त था (वा० रा० ७।१०१।११; १०८।९-११; १०२।१; १०७।१७)। यहाँ हमें प्रान्तीय शासनप्रणालीका पता मिलता है, प्रान्तीय शासनप्रणालीका हेतु यही था कि श्रीरामचन्द्रजीका साम्राज्य बहुत दूरतक फैला हुआ था।

क्षत्रिय-राजाओंद्वारा किये जानेवाले राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका वृत्तान्त भी रामायणमें है। राजा दशरथने पुत्रलाभके लिये और रामचन्द्रजीने विश्व-विजयके लिये अश्वमेधका अनुष्ठान किया था (वा० रा० ७।८४।२)। रामायणमें प्रसिद्ध सर्वप्रिय 'कच्चित् सर्ग' के अध्ययनसे हमें तत्कालीन प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तोंका पता लगता है (वा० रा० २।१००)। दो श्लोकोंमें आय और व्ययके बढ़ाने घटानेके सम्बन्धमें उल्लेख मिलता है। व्ययकी सूचीमें मन्दिर, संस्कार, ब्राह्मण, योग्य अतिथि, योद्धा तथा मित्रादि-सम्बन्धी व्ययका समावेश पाया जाता है।

रामायणमें सैनिक संगठन और शासन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। उस समय एक विशेष रणमन्त्री (War Minister) होता था जिसका काम अपने और शत्रुके बलाबलका ज्ञान रखना तथा तदनुसार राजाको सम्मति प्रदान करना होता था (६।१४।२२)। रण-परिषदें (War Councils) भी होती थीं जो युद्ध छिड़नेके पूर्व बुलायी जाती थीं, जिनमें कार्यक्रम बनाये जाते थे। रावणने जब सुना कि रामचन्द्रजी समुद्र पार कर लङ्का आ गये हैं तब उसने अपने 'रण-परिषद्'की सभा बुलायी थी। राजदूतोंका संघ (Institution of Ambassadors) सैनिक नीतिका एक प्रधान अङ्ग था। धर्मशास्त्रका विधान इन सबमें प्रधान दीखता है। रावणसे कहा जाता है कि दूतका वध नहीं किया जा सकता, इस बातसे पता लगता है कि सदाचार ही सब कार्योंका आधार था (वा० रा० ५।५२।११–१५)। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चतुरंगिणी सेना होती थी। सैन्य-सञ्चालन तथा शिविरस्थापन वैज्ञानिक ढंगसे होते थे। यहाँ शस्त्र, शस्त्रोंके प्रयोग तथा रण-नीतिके विषयमें विचार नहीं करना है। एक उल्लेखनीय बात यह होती थी कि शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके बाद उसीको वहाँके सिंहासनपर करद राजाके रूपमें प्रतिष्ठित कर देते थे। और यदि शत्रु-राजा युद्धमें मारा जाता तो उसी प्रकार उसके यथार्थ उत्तराधिकारीको सिंहासनारूढ किया जाता था। उदाहरणार्थ लङ्काविजयके पश्चात् विभीषणको राजतिलक दिया गया था। रामायणमें राजनीतिक संस्थाओंका जो वर्णन मिलता है, उसका यह संक्षिप्त सार है। आशा है कि कोई विद्वान् सज्जन रामायणका विशेष और विस्तृत अध्ययनकर तद्गत उपयोगी सामग्रियोंको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करेंगे।*

सुबेल पहाड़पर श्रीरामजीकी झाँकी

सैल सृंग एक सुन्दर देखी।
अति उतंग सम सुभ्र बिसेषी ॥
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये।
लछिमन रचि निज हाथ डसाये ॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला।
तेहि आसन आसीन कृपाला ॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा।
बाम दहिन दिसि चाप-निषंगा ॥

दुहुँ कर कमल सुधारत बाना।
कहँ लंकेस मंत्र लगि काना ॥
बड़भागी अंगद हनुमाना।
चरन-कमल चाँपत बिधि नाना ॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन।
कटि निषंग कर बान सरासन ॥
एहिबिधि करुनासील गुनधाम राम आसीन।
ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लयलीन ॥

* इस निबन्धमें जो उद्धरण दिये गये हैं वे रामायणके कुंभकोणम् संस्करणसे लिये गये हैं। —लेखक

यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका स्वरूप।

(लेखक—श्रीयुत एच० जी० डॉ० टर्नबुल, एम० ए०, केम्ब्रिज, इङ्गलैण्ड)

ह कहा जा सकता है कि इस अशान्त, व्यवहार-प्रधान युगमें, जहाँ उच्च शिक्षाके लिये ग्रीकका अध्ययन भी अपरिहार्य नहीं समझा जाता, वहाँ रामायणको—सो भी अनुवादके रूपमें—पढ़नेके लिये कहाँ अवसर है? जहाँ आज बहुत थोड़े-से ग्रीक छात्र इलियड और ओडिसीका अध्ययन करते हैं वहाँ संस्कृतके पण्डितों तथा पौराणिक पाठकोंके अतिरिक्त रामायण पढ़नेका सच्चा शौक किसे होगा?

उपर्युक्त आपत्ति उठायी जा सकती है परन्तु वस्तु-स्थितिपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि भारतके प्राचीन महाकाव्यकी कथाओंके अध्ययनके लिये यूरोपमें कुछ सार्वजनिक रुचि वर्तमान है। यद्यपि इङ्गलैण्डमें ग्रीफिथ और दत्त महाशयके वाल्मीकि-रामायणके तथा ग्रौस्स महाशयकृत तुलसीकृत रामायणके अनुवादको बहुत कम लोग देखते हैं, किन्तु बहुत-सी दूसरी ऐसी पुस्तकें हैं जो कुछ-न-कुछ सार्वजनिक रुचिके अनुकूल हैं और जिनके द्वारा श्रीराम-सीताके आख्यानसे अधिकांश पाठक परिचित हो गये हैं और कुछ लोगोंने कथागर्भित भावों और आदर्शोंका भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उन ग्रन्थोंमेंसे उदाहरणके लिये हम भगिनी निवेदिता और ए० के० कुमार स्वामीकृत 'मीथ्स आफ दी हिन्दूज़ ऐण्ड बुद्धिस्ट्स' (Myths of the Hindus and Buddhists) का उल्लेख करेंगे जिसको अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने बहुत ही मनोहर चित्रोंसे सुशोभित कर दिया है।

यद्यपि एक यूरोपियनसे उस नैसर्गिक और सरल श्रद्धायुक्त दृष्टिसे रामायणको देखनेकी आशा नहीं की जा सकती, जिससे उसे एक हिन्दू देखता है। दूसरे शब्दोंमें इसीको यों कह सकते हैं—जैसे हिन्दू बाइबलकी कहानियोंको वास्तवमें उस दृष्टिसे भी नहीं देख सकता, जिस दृष्टिसे उन्हें एक स्वतन्त्र विचारका यूरोपियन देखता है, वैसे ही यूरोपियन लोगोंके भाव रामायणके प्रति हो सकते हैं। तथापि समझदार यूरोपियन रामायणीय कथाको अत्यन्त श्रद्धासे देखेंगे, क्योंकि महाभारतकी भाँति यह भी तो आर्योंके उसी शौर्यप्रधान युगका आभास है, जिस युगमें यूरोपमें इलियड और ओडिसीकी सृष्टि हुई थी। मानव-मस्तिष्क अब भी असंख्य और अचिन्त्य प्रतिभापूर्ण ग्रन्थोंका प्रणयन कर सकता है, परन्तु आदियुगकी उन चमत्कारी रचनाओंकी समानता इनसे नहीं हो सकती। अतएव जो मनुष्य विश्व-संस्कृति या संसारकी सर्वोत्तम भावनाओं और क्रियाओंको सम्यक् प्रकारसे जानना चाहता है, उसे रामायणसे परिचय अवश्य प्राप्त करना होगा।

रामायणका अध्ययन कभी निष्फल नहीं होगा। उसको पढ़नेवाले उसमें आजकलके दैनिक कार्य-शृङ्खलामें आबद्ध पुरुषोंके मस्तिष्कसे कहीं अधिक स्वतन्त्र और अनियन्त्रित रूपसे प्रवाहित आद्ययुगकी कल्पनाओंको पायेंगे और साथ ही उन महान् एवं निश्छल शौर्यपूर्ण कार्योंको देखेंगे जो केवल अहं-भाव-शून्य जगत्में ही सम्भव हैं। इन कार्योंमें निस्सन्देह, श्रीराम और सीताका चरित मुकुटमणि है और केवल उनको जाननेके लिये ही रामायणका अध्ययन उपादेय हो जाता है।

किन्तु हमारे सामान्य पाठक इससे अन्यान्य विभिन्न रुचिकर वस्तु भी प्राप्त कर सकते हैं। तुलनात्मक साहित्यके विद्यार्थी, जो होमरसे अभिज्ञ हैं, रामायण पढ़ते समय उसकी तुलना होमरके इलियडके साथ करेंगे और उनके प्रतिपाद्य विषय तथा काव्यरचनाकी समीक्षा करेंगे। पहले तो वे इस भारतीय महाकाव्यके आकार-प्रकारको देखकर संभवतः चकित हो जायँगे, क्योंकि ऐसी प्रचुर सामग्रीसे युक्त बृहत् ग्रन्थ यूरोपकी अपेक्षा भारतमें ही अधिक पाये जाते हैं। फिर वे रामायणके उन रचना, काल तथा कथास्रोत-सम्बन्धी अनेक मनोरम प्रश्नोंका वर्णन देखेंगे, जिनकी तुलना उस सरस प्रश्नावलीसे की जा सकती है जो 'Homeric Problem' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त जातीय मनोविज्ञानके विद्यार्थीको ग्रीक और भारतके इन महाकाव्योंमें चित्रित कल्पनाओंके विभिन्न स्वरूपोंकी तुलनामें बड़ा रस मिलेगा। उसे अनुभव होगा कि इन दोनोंमें यदि एक समकटिबन्धकी जलवायुसे प्रभावित है तो दूसरा क्रान्तिमण्डलस्थित जलवायुसे,—

जहाँ प्रकृति समृद्ध और चपल है। अवश्य ही इस वर्णन-प्राचुर्यका कुछ भाग उसे अतिशयोक्ति या अत्युक्तिके रूपमें आभासित होगा क्योंकि उसकी रुचि प्राचीन ग्रीक मर्यादा-अवलम्बित यूरोपीय जनश्रुतिके द्वारा निर्मित हुई है। किन्तु रामायणमें कल्पना-समृद्धि और सरसता पाठकोंको चकित कर देगी क्योंकि यूरोपके उत्तम साहित्यमें इसकी उपमा उसे प्राप्त नहीं हो सकती। वह अपने आधुनिक और प्रतिदिनके जीवनसे होमरकी कथा-भूमिको जितना दूर पाता है उससे कहीं अधिक दूर वह क्षेत्र, उन्हें दीख पड़ेगा, जिसमें रामायणकी कथा प्रवाहित होती है। किन्तु इस दशामें भी उसे विशिष्ट चित्रण प्राप्त होगा।

अब हम सहज ही इस निष्कर्षपर पहुँच सकते हैं कि सहानुभूति तथा आन्तर्दृष्टिसे अध्ययन करनेवाले समझदार यूरोपियन पाठकके लिये, चाहे वह हिन्दी या संस्कृत न भी जानता हो, रामायणमें नैतिक और बौद्धिक दोनों प्रकारकी सरस और बहुमूल्य सामग्री है। हजारों वर्ष पूर्व रचित किसी विशिष्ट साहित्यके विषयमें और क्या कहा जा सकता है?

महाकाव्योंमें राक्षस

(लेखक-श्रीयुत एम० एन० ताडपत्रीकर एम०ए०, प्राच्यविद्यालङ्कार)

बाल्यकालसे ही हमारे हृदयमें राक्षसका एक भयानक चित्र खिंचा हुआ है—विशाल शरीर, अग्निके सदृश बड़ी-बड़ी आँखें, भयानक दाढ़ें, तथा ऐसे ही दूसरे भय-उत्पन्न करनेवाले उपादानसे युक्त एक प्राणी मानो मनुष्यको खानेके लिये ही लपक रहा है। रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्योंमें राक्षसोंके उदाहरण मिलते हैं। भेद यही है कि रामायणमें राक्षसोंके आबाद और शासित प्रदेश मिलते हैं किन्तु महाभारतमें कहीं-कहीं प्रसङ्गवश राक्षसोंका उल्लेख आ जाता है।

रामायणमें सबसे पहले हमें ताड़काका वर्णन मिलता है, जो एक यक्षकी कन्या थी और सुन्दसे ब्याही गयी थी, मारीच उसका पुत्र था। ताड़का, मारीच, सुबाहु और इसी प्रकारके अन्य राक्षसोंको भगवान् रामचन्द्रजी अपने बाणोंसे मार डालते हैं। यहीं हमें राक्षसोंकी मायाका वर्णन मिलता है। हमारे विस्तृत साहित्यमें राक्षसोंकी उस माया-शक्तिका उल्लेख है जिसके द्वारा वे सुन्दर-से-सुन्दर तथा विकृत-से-विकृत मानवरूप, एवं अन्य प्राणियोंके रूप भी धारण कर सकते थे, और उनमें स्वेच्छानुसार अदृश्य होनेकी शक्ति भी थी। एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे यज्ञानुष्ठानके बड़े विरोधी थे और यज्ञभूमिको अशुद्ध रक्त और अस्थियाँ बरसाकर अपवित्र और भ्रष्ट कर देते थे।

आगे चलकर अरण्यकाण्डमें भी इन खल-जनोंका उल्लेख है। शूलधारी विराध राक्षस, जिसने दोनों भाइयोंको, राम-लक्ष्मणको लेकर भाग जानेकी चेष्टा की थी, मारा जाता है। उसके दोनों हाथ तलवारसे काट लिये जाते हैं और वह एक गर्तमें गाड़ दिया जाता है। उसके विषयमें यह वर्णन मिलता है कि वह मनुष्य-भक्षी था और सिंह, बाघ, भेड़िया तथा हरिणोंका शिकारकर उन्हें अपने शूलमें टाँग लेता था।

इसके बाद पञ्चवटीके आश्रममें शूर्पणखाका उपाख्यान मिलता है जहाँ श्रीरामचन्द्रजी राक्षस खर, उसके सेनापति दूषण तथा राक्षसोंकी चौदह सहस्रकी शक्ति-शालिनी सेनाका नाशकर विजय प्राप्त करते हैं। यह सेना सब प्रकारके अस्त्रोंसे सुसज्जित थी। खरका रथ सूर्यके तुल्य कान्तिमय था और उसमें नाना प्रकारके धनुष, बाण, तलवार तथा शक्तियाँ वर्तमान थीं। यहाँ एक ही स्थलपर बहुत-से विभिन्न शस्त्रास्त्रोंका वर्णन है। पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये निम्न श्लोकोंका उद्धरण करना उचित प्रतीत होता है।

> मुद्गरैः परिघैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः।
> खड्गैश्चक्रैः रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः॥
> शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः।
> गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः॥

(वा० रा० ३।२२।१८-१९)

अर्थात् मुद्गर, पट्टिश, तीक्ष्ण शूल, बरछी, तलवार, चक्र, चमकीले तोमर रथपर रक्खे थे। शक्ति, भयानक परिघ, अनेक धनुष, गदा, मूसल और वज्रोंको जो देखनेमें भयानक थे, राक्षस लिये हुए थे।

खरको प्रारम्भहीमें अपशकुन होने लगे किन्तु उसने उनकी उपेक्षा की और रणाङ्गणमें पहुँचकर अपनी समस्त सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर आक्रमण कर दिया। यद्यपि भगवान् अकेले ही लड़ रहे थे, तथापि अन्तमें उन्होंने उसकी सारी महती सेनाको मारकर विजय प्राप्त की।

उपर्युक्त वर्णनसे कोई ऐसी बात नहीं ज्ञात होती जिसके द्वारा यह अनुमान किया जा सके कि राक्षसलोग युद्धकलामें किसी प्रकार पिछड़े हुए थे और सम्पूर्ण रामायण पढ़नेपर भी हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं। वानरोंके उस प्रदेशको छोड़कर जिनमें हमें क्रमशः (आधुनिक धारणाके अनुसार) किसी प्रकारकी सभ्यताका विकास नहीं मिलता, हमें आगे चलकर फिर राक्षसोंके महान् प्रदेश और उनके नित्य-के कर्मोंका परिचय मिलता है। राजधानी लंकाकी स्थिति तथा उसके चारों ओरकी किलेबन्दीको देख हमें आश्चर्यसे चकित हो जाना पड़ता है। पश्चात् जब श्रीहनूमानजी मनोहर चन्द्र-ज्योत्स्नासे पूर्ण लङ्कामें प्रवेश करते हैं और प्रसुप्त लङ्का-नगरीको देखते हैं, उस समयका जैसा वर्णन है वैसा उस समयके किसी भी अत्यन्त सभ्य नगरके लिये लागू हो सकता है। और फिर हमें वहाँ सभी भोग-विलासकी सामग्रियोंसे पूर्ण सुप्त अन्तःपुरका वर्णन मिलता है। युद्धकाण्डके अध्ययन करनेसे राक्षसोंकी बुद्धिकी प्रखरताका परिचय मिलता है; वे 'युद्ध-परिषद्'में वाद-विवादके पश्चात् युद्ध-विषयक प्रश्नोंका निर्णयकर व्यूहरचना करके युद्ध करते थे। अन्ततः हमें यह सोचकर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि ऐसी सर्वतोभावेन उन्नत जाति वानरोंके शिला और वृक्षोंके आक्रमणसे कैसे पराजित हुई?

महाभारतकी ओर देखनेसे हमें ज्ञात होता है कि राक्षसलोग उस समय प्रान्तिक शासनसे वञ्चित हो गये थे और संत्रस्त होकर यत्र-तत्र जीवन व्यतीत करते थे। हिडम्ब तथा किरमिर जङ्गलोंमें रहते थे। केवल बकासुरके अधीन ही एक समस्त नगर था। प्रायः इन सभी राक्षसों-को भीमने अपने पराक्रमसे मार डाला था। इसप्रकार यह विदित होता है कि महाभारतकालके राक्षसोंमें रामायणकालीन राक्षसोंकी सभ्यताका ह्रास हो चुका था। वस्तुतः उनकी जाति नष्टप्राय हो चुकी थी, कुछ लोग जो बचे थे, वे सब प्रकारकी विपत्तियोंसे त्राण पानेके लिये सघन वनमें छिपे रहते थे।

अब हम इसी बातको सामने रखकर वेद तथा वैदिक साहित्यकी ओर देखते हैं तो हमें राक्षसोंकी यथार्थ सत्ता नहीं मिलती, वहाँ उन्हें पौराणिक प्राणी माना है। उनको वहाँ शत्रु समझा गया है और मायाद्वारा विभिन्न शरीर धारण करनेकी उनकी शक्ति भी स्वीकार की गयी है। मनुष्य उन राक्षसोंसे युद्ध करनेकी क्षमता नहीं रखते, क्योंकि वे पार्थिव शरीरमें आते ही नहीं हैं। ऋग्वेद ८।१०४ में राक्षसोंके उपद्रव तथा उनके शमनके लिये देवताओंके आवाहनका उल्लेख मिलता है। क्रमशः उन्हें यज्ञोंमें भाग भी मिलने लगा, और इसीके अनुसार मैत्रेयी संहितामें (३·१४, ११, २१) निर्ऋति और राक्षसोंके सम्मानार्थ कुछ यज्ञोंके विधान मिलते हैं। तदनन्तर गृह्य-सूत्रोंमें भी प्राचीन वैदिक प्रमाणका अनुसरण किया गया है और गृहस्थोंको इन प्रतिकूल शक्तियों (Hostile influences) (राक्षसों) के शमनके लिये भाँति-भाँतिकी शिक्षा दी गयी है।

श्रीमद्भगवद्गीताने, जो महाभारतका एक भाग है, राक्षसोंकी उपासनाको तामसरूप माना है। रामायणमें (३।३०।१२) भी रामचन्द्रजी कहते हैं कि मुनियोंने भी खर राक्षसके डरकर उसके सम्मानार्थ एक यज्ञ किया था।

उपर्युक्त विवेचनका सारांश यह है कि रामायणकालमें राक्षसलोग पूर्ण समुन्नत थे और यज्ञमें सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त करनेके लिये उन्होंने पुरोहितोंको नीचा दिखाया था। अनन्तर पृथ्वीसे इस जातिके उठ जानेके बाद महाभारत-कालमें इन दुष्टोंका यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य राक्षसोंकी यथार्थ सत्ताके विषयमें कुछ नहीं कहता; उन्हें केवल पौराणिक प्राणी मानता है।

किन्तु यदि यह सिद्धान्त स्वीकृत किया जाय तो वेदों और महाकाव्योंके सापेक्ष्य कालगणनाके प्रश्नपर हमें पुनः विचार करना पड़ेगा। यहाँपर केवल प्राच्यविद्या-विशारदोंकी गवेषणाके निमित्त यह विषय प्रस्तुत किया गया है।

आदर्श पुरुष श्रीराम

(लेखक–श्री आई० जी० एस० तारापुरवाला बी०ए०, पी-एच० डी०, बार-एट-ला)

रामायणमें मुझे सबसे अधिक प्रभावोत्पादक श्रीरामजीका तत्त्वपूर्ण मनुष्यत्व मालूम होता है । यद्यपि उन्हें करोड़ों मनुष्य मानवरूपमें अवतरित साक्षात् भगवान् मानते हैं तथापि मनुष्यरूपमें वे जैसे प्रतिभासित हुए हैं वैसे ईश्वररूपमें नहीं । परशुराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध प्रभृति अन्यान्य मानव अवतारोंको देखिये । पहले दोमें ईश्वरीय तत्त्वकी प्रतिष्ठा है । बुद्ध नितान्त मनुष्य हैं पर उनके अनुयायियोंने उन्हें ईश्वर अथवा उनसे भी कुछ बढ़कर बना दिया है ।

किन्तु वाल्मीकिके राम पूर्ण मानव हैं । सम्पूर्ण इतिहासमें हम उन्हें कहीं भी मनुष्येतर रूपमें नहीं देखते । यही रहस्य है कि वे हिन्दू-अहिन्दू सभीके हृदयोंको आकर्षित करते हैं । हम शिशुरूपमें, बालकरूपमें, प्रेमी-रूपमें, वीररूपमें, और प्रजाका शासन करते हुए नरपति-रूपमें—प्रत्येक दशामें उनकी उज्ज्वल आदर्श मानवताकी जगमगाती ज्योति देख पाते हैं । वे प्रत्येक क्षेत्रमें आदर्श हैं किन्तु हैं सभी जगह हमी लोगोंमेंसे एक । हम जितने ऊँचे आदर्श मनुष्यकी कल्पना कर सकते हैं उन्हें वैसा ही पाते हैं । सम्पूर्ण कथामें हमें वे कहीं भी देवता या ईश्वरके रूपमें नहीं दीखते और कहीं भी वे अपने साथी जीवोंसे पृथक् नहीं होते । वे मनुष्योंमें एक मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह ही काम करते हैं, बोलते हैं और अनुभव करते हैं । अवश्य ही उनका कर्मस्रोत हमलोगोंके कर्मस्रोतसे सर्वथा पृथक् है, पर दोनोंके कर्म हैं एक ही प्रकारके । उनके भाव ऊँचे हैं, उनके शब्द प्रेमपूर्ण हैं, उनके कर्म किसी भी मनुष्यसे अधिक त्यागमय हैं । पर जीवनभर वे इसी भूमण्डलसे सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हमें अनुभव होता है कि वे हमारे ही निज-जन थे । और हम भी चाहें तो उन्हींके समान अनुभव कर सकते हैं, बोल सकते हैं और कर्म कर सकते हैं ।

वह एक प्रेमी मनुष्यकी भाँति प्रेम करते हैं और सीताजीके सामने अपने हृदयके अत्यन्त गम्भीर भावोंको खोल कर रख देते हैं । यह युगल-जोड़ी हमारे लिये आदर्श है । इसप्रकार नितान्त मनुष्य होते हुए वे यथार्थ आर्य और हिन्दू हैं । यद्यपि भवभूतिने उत्तररामचरितमें इन दोनोंके आदर्श मनुष्यत्वका गुण-गान बड़ी सहृदयताके साथ किया है परन्तु वह कथा निःसन्देह वाल्मीकिसे ही ली गयी है । वाल्मीकि या तुलसीदासकी रामायणमें हमें जैसी मनोहर प्रेम-कथा पढ़नेको मिलती है वैसी संसारमें कहीं नहीं मिलती । इनमें भावोंका चमत्कारिक उद्गम, कर्कशता तथा नाटकीय बाह्य चमक-दमक नहीं है । यहाँ हम प्रेमके प्रवाहको बहुत ही विस्तृत और गम्भीर देखते हैं । वह इतना गम्भीर है कि धरातलपर कहीं उसका एक तरंग-विक्षेप भी दृष्टिगोचर नहीं होता । प्रणयकी हमारी यह प्राचीन विधि हमें सिखाती है कि यद्यपि प्रेम प्रथम दर्शनसे ही उत्पन्न होता है तथापि विवाह हो जानेके बाद भी अनुरञ्जनका अवसान नहीं हो जाता । वस्तुतः वह वहींसे आरम्भ होता है । श्रीसीता-रामकी कथामें हमें दाम्पत्य-प्रेमका बड़ा ही उन्नत प्रकाश दीख पड़ता है । और ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों यह अलौकिक प्रेमभाव गम्भीरतर होता जाता है । हम इन दोनोंमें सर्वत्र ही पारस्परिक समादरका भाव पाते हैं और वह केवल बाह्य प्रदर्शन नहीं ! उनका प्रेम इतना गम्भीर और पवित्र है कि सार्वजनिक प्रदर्शनमें वह कभी आ ही नहीं सकता, इसीलिये वह समस्त 'नारी-जातिका सर्वस्व' हो रहा है और उसमें उनके जीवनका अधिकांश भाग ओत-प्रोत है ।

हम वर्तमान युगके जीव आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं कि इसप्रकारके महान् प्रेमका अन्त ऐसा शोकपर्यवसायी नहीं होना चाहिये था । बीसवीं शताब्दीकी सङ्कुचित दृष्टिके कारण ही हम श्रीरामको सीताके बनवास या अग्नि-परीक्षाके लिये दोषी ठहराते हैं । यदि श्रीराम राजा न होते और अपनी प्रजाको सन्तानवत् न समझते तो उनकी प्रेम-कथा दूसरे ही प्रकारसे लिखी जाती । सीताका जीवन तो केवल प्रेमके लिये ही था, उनके जीवन-धारणमें अन्य कोई हेतु ही नहीं था, परन्तु श्रीरामको दूसरे भी कर्म करने थे, उन्हें केवल सीताकी ही नहीं सारी प्रजाकी चिन्ता थी । शासक और राजा होनेके कारण वह तुच्छ-से-तुच्छ अपवादसे भी बचना चाहते थे । यद्यपि उनका हृदय-

सूत्र विच्छिन्न हो रहा था तथापि उन्होंने अपने पवित्र कर्त्तव्यका पालन किया। प्रजाके प्रति उनका यही कर्त्तव्य था कि जिससे वे अपने राज्यपरिवारकी परमोज्ज्वल ख्यातिको अपवादकी हवासे तनिक भी दूषित न होने दें। इसीसे उन्होंने अपनी आत्माको ही नहीं वरं उससे भी प्रिय—आत्माकी भी आत्मा—सीताको त्याग दिया। इसमें उनको कैसी असीम मर्मवेदना हुई होगी, हम उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। जैसे उनका प्रेम अव्यक्त है उसी प्रकार उनकी यह मर्म-व्यथा भी इतनी पवित्र है कि जिसका दृश्य सर्व साधारणके सामने नहीं रक्खा जा सकता। इसीलिये उनका बाह्य चित्र अत्यन्त शान्त और प्रायः उपरामतायुक्त चित्रित किया गया है। अवश्य ही वहाँ भवभूतिने श्रीरामके हृदयस्थ भावोंका यथार्थ चित्रण किया है। उनके उत्तररामचरित्रमें हम केवल नाट्य दृश्योंको देखते हैं, पर उनसे पता लगता है कि सीता त्यागके कारण प्रेममय भगवान् रामके हृदयमें कितने गहरे घाव थे और उनसे कैसे खून बह रहा था!

श्रीरामचन्द्र अपने अन्यान्य विभिन्न कार्योंके द्वारा भी हमें मनुष्यरूपमें ही प्रभावित करते हैं। हमने यहाँ केवल उनकी 'प्रेम-झाँकी' देखनेका ही प्रयास किया है। वे प्रेमी हैं किन्तु अन्धप्रेमी नहीं। वे सदा-सर्वदा एक सर्वोच्च कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुषके रूपमें दर्शन देते हैं। परिणाम कुछ भी हो, वे सर्वथा कर्त्तव्यका अनुसरण करते हैं। केवल परमात्मा हमें इसप्रकार प्रभावित नहीं करता। क्योंकि हम जानते हैं कि वह मानव-जीवनके गुण-दोषसे परे है। यह श्रीराम-सीताकी कथा नित्य नवीन रहनेवाली है क्योंकि वे दोनों मानवरूपमें अवतरित हैं। हम उनके समान ही अनुभव कर सकते हैं, प्रेम कर सकते हैं किन्तु उनके समान त्याग नहीं कर सकते। इसीलिये हम उनका सम्मान करते हैं। श्रीरामके सदृश त्यागी ईश्वर केवल ईश्वर हो सकता है किन्तु श्रीरामचन्द्रजी मानव-रूपमें हमारे अन्तस्तलमें आदर प्राप्त करते हैं और वे हमारे सामने एक परम आदर्श पुरुषके रूपमें अवस्थित हैं।

रामायणके राक्षस

(लेखक—पं० श्रीगोविन्द शास्त्रीजी दुगवेकर)

राम-कथा प्रायः सब पुराणोंमें लिखी गयी है और केवल रामकथात्मक 'शतकोटि-प्रविस्तर' स्वतन्त्र रामायणों-मेंसे कतिपय उपलब्ध भी हैं। इन सभी राम-कथाओंका आधार आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि-रचित रामायण महाकाव्य है, इसमें कोई सन्देह कर ही नहीं सकता। लोगोंका विश्वास तो यहाँतक है कि, श्रीराम प्रभुके जन्म-ग्रहणसे पूर्व ही यह महाकाव्य रचा गया था। अतः रामायण-सम्बन्धी किसी विषयकी आलोचना इसी ग्रन्थके आधार-पर करना युक्तियुक्त होगा। विस्तारभयसे इस लेखमें अधिकांश मूल श्लोकोंके अवतरण न देकर केवल उनका अनुवाद अथवा सारांश ही दे दिया है। मूल श्लोक जिन्हें देखने हों, उनके सुभीतेके लिये काण्ड, सर्ग और श्लोकोंकी संख्या लिख दी गयी है।

प्रथम हम यह देखना चाहते हैं कि, रामायणके राक्षसोंके रूप, गुण, व्यवहार आदि कैसे थे और मनुष्योंके साथ उनकी कुछ तुलना की जा सकती है या नहीं। राक्षसोंके रूपोंका पुराणोंमें बड़ा ही भयानक वर्णन किया गया है। काव्य होनेपर भी वाल्मीकीय रामायणमें उतनी भयानकता नहीं दीख पड़ती। राक्षसराज रावणका रूप चित्रकारों और कवियोंने अत्यन्त विकराल अंकित किया है। रामायणमें भी एक स्थानपर लिखा है—

> यश्चैष नानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः।
> भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैर्योऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता॥

'यही रावण है, जो देवताओंके भी गर्वको खर्व करने-वाला है और जो नाना प्रकारके भयानक रूपों तथा बाघ, ऊँट, हाथी, हरिन और घोड़ेके मुखोंसे युक्त है तथा भूतोंसे घिरा हुआ शोभा पा रहा है।'

यहाँ पञ्चमुखी और कहीं-कहीं दशमुखी रावणका उल्लेख है। परन्तु ऐसे स्थल रामायणमें बहुत कम हैं।

एकमुख और दो हाथवाले रावणका वर्णन प्रायः सर्वत्र है। हनूमान्‌जी जब रावणके राजभवनमें रात्रिके समय छिपकर पहुँचे, तब उन्होंने उसे सोया हुआ पाया। उसके दोनों हाथोंमें सोनेके आभूषण थे। दोनों कन्धोंपर इन्द्रके वज्र-प्रहारके चिह्न थे। पाँच फणोंके साँपोंकी तरह उसके दोनों हाथ शुभ्र बिछौनेपर पड़े थे, इत्यादि, (५।१०।१५-२२)। इसी तरह गजपर बैठे हुए रावणपर सुग्रीवने जब आक्रमण किया, तब 'रावण उठा और उसने अपने दोनों हाथोंसे उसे उठाकर पृथ्वीपर दे मारा। फिर सुग्रीवने भी गेंदकी तरह उछलकर रावणको दोनों हाथोंसे उठाकर पटक दिया' (६।४०।१३)। रावणके मर जानेपर शोकाकुल विभीषण उसका वर्णन करता है—'पहुँची आदि भूषणोंसे युक्त तुम्हारे दोनों लम्बे हाथ भूमिपर निश्चेष्ट पड़े हुए हैं।' (६।१०९।३) इससे स्पष्ट है कि, रावणके दो ही हाथ थे।

इन्द्रजित्‌का वध होनेपर रावणके क्रोधका इसप्रकार वर्णन किया गया है—'वृत्रासुरके मुखसे जिसप्रकार अग्नि और धुआँ बाहर निकलता था, उसी प्रकार जँभाई देते हुए रावणके मुखसे (वक्त्रात्) लपटें और धुआँ निकल रहा था। उसकी दोनों लाल आँखें (नेत्रे) अधिक लाल हो गयीं और उन आँखोंसे (नेत्राभ्याम्) दीपकके जलते हुए तेलकी बूँदोंकी तरह आँसू झरने लगे, (६।९२।१८-२२)। क्रुद्ध सीता रावणसे कहती है—

'हे अनार्य रावण! मुझे देखते हुए तेरे ये क्रूर और विकराल दोनों नेत्र (नयने) क्यों नहीं पृथ्वीपर गिर पड़ते? उस धर्मात्मा (राम) की पत्नी और दशरथकी पुत्रवधूके साथ इसप्रकारकी बातें करते हुए तेरी जिह्वा (एक ही जिह्वा) क्यों नहीं गल जाती?' (५।२२।१८-१९)। 'सीताकी बातें सुनकर राक्षसाधिपति रावण दोनों आँखें (नयने) फाड़कर उसकी ओर देखने लगा। उसके दो हाथ मन्दराचलके दो उन्नत शिखरोंकी तरह दीख पड़ते थे। बाल-सूर्यके समान दो सुन्दर कुण्डल उसके कानोंमें थे और पुष्पित दो अशोक-वृक्ष जिसप्रकार पर्वतपर शोभा पाते हैं उसी प्रकार वे (कुण्डल) सुशोभित हो रहे थे (५।२२।२६-२८)।' रावण-को अपसकुन जान पड़ने लगे, उस समयके वर्णनमें लिखा है—'उसकी बाईं आँख (एक ही) और बाईं भुजा (एक ही) फड़कने लगी। उसका चेहरा (एक ही) उतर गया और स्वर धीमा हो गया (६।९५।४६)।'

रावण जब युद्धके लिये उपस्थित होता है तब राम उससे कहते हैं—'तेजस्वी कुण्डलोंसे युक्त तेरा सिर (शिरः) मेरे बाणोंसे उड़ जाय और उस धूलि-धूसरित सिरको राक्षसगण घसीटकर ले जायँ (६।१०३।२०)।' रावणको अशुभ चिह्न दीख पड़ने लगे, उसका वर्णन इसप्रकार है—'रावणका मुख देखकर मुखसे आग उगलते और अशुभ शब्द करते हुए सियार भाग रहे थे (६।१०६।२८)।' रावणके हत होनेपर उसकी स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। 'एकको तो उसका शव देखते ही मूर्छा आ गयी। दूसरीने उसका सिर गोदमें उठा लिया। तीसरी कहती है, राजन्! आपका मुखकमल (एक ही) सुकुमार था, भौंहें सुन्दर थीं, नासिका उत्तम थी, मुखकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। तेज सूर्यके समान था। दोनों होंठ लाल थे और दोनों नेत्र चञ्चल थे। नाना प्रकारकी मालाओंसे आपका मुख (वक्त्रं) अलंकृत हो रहा था और उसीसे हँस-हँसकर आप बातें करते थे। वह मुख इस समय रामके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया है। उसकी वह शोभा नहीं रही। धूल उड़नेसे तो मुख बहुत रूक्ष हो गया है और उससे मेद-मज्जा बह रही है।' (६।११०।६-१०; ६।१११।३४-३८) इन अवतरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, सोते, जागते, क्रुद्ध होते, युद्ध करते और मृत अवस्थामें भी रावणके एक ही मुख, दो आँखें, दो कान और दो ही हाथ थे।* इसमें सन्देह नहीं कि, वह बड़ा बलवान्, हृष्ट-पुष्ट और अत्यन्त काला था। हनूमान्‌जीने उसकी सुप्तावस्थाके वर्णनमें कहा है कि,—'गोशालामें उत्तम गौओंके बीच जैसे मोटा-ताजा साँड़ सोया हो, वैसे ही अनेक सुन्दरी स्त्रियोंके बीच, वह पड़ा हुआ था' (५।११।११)।

---

* रावणके जन्मसमयके वर्णनमें कहा है कि 'दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति' अर्थात् दश मस्तकवाला होनेसे उसका नाम दशग्रीव रक्खा गया। जब शूर्पणखा अपने भाई रावणके पास गयी है उस समयके वर्णनमें यह स्पष्ट कहा गया है—'विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम्।' अर्थात् रावणके बीस भुजा और दश मस्तक थे। इसीप्रकार वाल्मीकीय रामायणके अन्यान्य स्थलोंमें भी रावणके दश मस्तक और बीस हाथ होनेका खुले शब्दोंमें वर्णन आता है। असलमें कितने मुख और हाथ थे, सो भगवान् जानें। —सम्पादक

रावणकी तरह कुम्भकर्णका भी रामायणमें एकाध स्थानमें विचित्र विकराल वर्णन किया गया है। लिखा है—

> धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः।
> रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसन्निभः॥
> (६।५२,४७)

अर्थात् 'कुम्भकर्ण सौ धनुष चौड़ा और छः सौ धनुष लम्बा था। उसकी आँखें गाड़ीके पहियेके समान थीं। वह महापर्वतके सदृश और उग्र था।' अतिकाय नामक राक्षसका भी इसी तरहका रूप बताया गया है। उसे देखकर 'सब बन्दर डर गये और यह जानकर कि, यही कुम्भकर्ण है, आपसमें चिपकने लगे (६।७०।७)।' इसी तरह एक बार 'काले पहाड़के समान विभीषणको देखकर और उसे इन्द्रजित् जानकर बन्दर डर गये और भागने लगे थे (६।४१।३२)।'

इस विवेचनसे पता चल सकता है कि, राक्षसोंके सम्बन्धमें लोगोंकी यही धारणा थी कि, वे बड़े विकराल और उग्र होते थे। अब भी वही धारणा है और कवि तथा चित्रकार उनके स्वरूपका इसी भावनाके अनुसार चित्रण करते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। राक्षस भी मनुष्योंकी तरह हुआ करते थे। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने युद्धके समय वानरोंको आज्ञा दी थी कि,—'कोई वानर मनुष्यके रूपमें युद्ध न करे। अपनी सेनामें केवल मैं, लक्ष्मण, विभीषण और उसके अनल, अनिल, हर और सम्पाति नामक चार मन्त्री-जो माली नामक राक्षसके पुत्र हैं,—ये सात ही मनुष्यरूपमें रहें। इस व्यवस्थासे ज्ञात हो सकेगा कि, अपने दलके कौन हैं और शत्रु दलके कौन ?' (६।३७।३३-३५, ७।५।४५)

सोती हुई मन्दोदरीका हनूमान्ने वर्णन किया है कि, 'उसका वर्ण गौर था और उसने बहुत-से अलङ्कार धारण कर रक्खे थे। ('५।१०।५१) उसे देखकर हनूमान्को सन्देह हुआ कि, ये ही तो सीता माता नहीं हैं (५।१०।५३)।' अन्ततः मन्दोदरी राक्षसी होनेपर भी उसका स्वरूप मानुषी-जैसा ही था। अशोक-वनमें सीताको डराने जो राक्षसियाँ आयी थीं, उनका बड़ा भीषण वर्णन है। (कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू)'। ऐसा वर्णन तो है ही, किन्तु यह भी बताया गया है कि, उनमेंसे किसी-किसीके मुख बाघ, भैंस, बकरी, सियार, कुत्ता, हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि जानवरों सदृश थे (५।१७; ५।१२)। त्राटिका (१।२५।१२) अयोमुखी (३।६९।१२-१३) और शूर्पणखा (३।१७।९-११) के विचित्र तथा भयोत्पादक वर्णन तो मूल ग्रन्थमें ही देखने योग्य हैं। परन्तु ये वर्णन आदिकविकी रस-निष्पत्तिकी प्रतिभामात्र हैं।

राक्षसोंके रूपकी उग्र कल्पना लोगोंने उनके नामों और कृतियोंसे ही कर ली है। रावण (गर्जना करनेवाला), कुम्भकर्ण,(जिसके कान घड़ेके समान हों),विभीषण(भयंकर), त्रिशिरा (तीन मस्तकवाला), खर (गदहा), दूषण (दुष्ट) आदि नाम भयानक हैं। परन्तु नामोंसे ही डर जानेका कोई कारण नहीं है।

> विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धश्च दिवाकरः।
> लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च श्रयन्ते नाम धारकाः॥

यह सुभाषित प्रसिद्ध ही है। स्वयं रावणने सीतासे अपने नामकी व्युत्पत्ति कही है कि-'मेरे नामका अर्थ है—शत्रुओंसे हाहाकार करानेवाला। यद्यपि मेरा नाम रावण है, तथापि मुझे पराक्रमी दशग्रीव कहते हैं (३।४८।२;५।२३।८)।' राक्षसोंकी कृतियाँ बड़ी भयानक थीं। त्राटिका मनुष्य-भक्षण करती थी (१।२५।१४)। मारीच दण्डकारण्यमें तपस्वी ब्राह्मणोंको मार खाता था (३।३८।३)। नरमांस रावणका आहार था (३।७२।२३),दूसरोंकी स्त्रियोंको हरणकर उनका सतीत्व नाश करना, रावणने राक्षसोंका स्वधर्म कहा है (५।२०।५)। तो भी राक्षसोंमें कुछ नीतिज्ञ भी थे। यह बात मारीच, शूर्पणखा, कबन्ध, विभीषण, मन्दोदरी आदिके नीति-वचनोंसे स्पष्ट हो जाती है। राक्षस उन्मत्त, हिंसक, अत्याचारी और अविचारी होते थे, इसीसे लोगोंने उनके रूपोंकी उग्र कल्पना कर ली है।

राक्षस नर-मांस-भक्षक और हिंस्र थे सही, किन्तु उनमें भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी। 'रावणकी माता कैकसी सुमाली नामक राक्षसकी कन्या थी। उसका विवाह पुलस्त्यपुत्र विश्रवा ऋषिसे हुआ था। इन्हीं ओड़ीसे रावणादि तीन पुत्र उत्पन्न हुए,जो ब्राह्मण थे (७।९।२३)।' हनूमान्ने इन्द्रजित्से उसकी भर्त्सना करते हुए कहा था,—'तू ब्रह्मर्षिके कुलमें राक्षसयोनिमें उत्पन्न हुआ है (६।८१।१९)।' इससे सिद्ध है कि, राक्षसोंमें वर्णव्यवस्था थी, परन्तु वे आसुरी प्रकृतिके होनेके कारण राक्षस-विधिसे चाहे जिस जाति या वर्णकी स्त्रीसे विवाह कर लेते थे। हनूमान्ने रावणके अन्तःपुरमें रावणकी जो स्त्रियाँ देखीं, वे राजर्षि, ब्राह्मण, दैत्य, गन्धर्व और राक्षसोंकी कन्याएँ थीं (५।९।६८-६९)। अन्ततः राक्षसोंका मनुष्योंसे शरीर-सम्बन्ध भी होता था।

राक्षस तपस्वी और विद्वान् भी हुआ करते थे। रावणका शिवभक्त होना प्रसिद्ध ही है। वह अग्निहोत्री और वेदपाठी भी था। चारों वेदोंका पदच्छेद उसीने किया था। जब वह मरा, तो उसकी चितामें अग्निहोत्रके पात्र रक्खे गये थे। इसका उल्लेख युद्धकाण्डमें है। रावणके अतिरिक्त अन्य राक्षस भी वेदपाठ करते थे। हनूमान्‌ने उत्तररात्रिमें रावणके प्रासादमें ब्रह्मराक्षसोंका षडङ्ग वेदपाठ सुना था (५।१८।२)। विभीषण रावणसे मिलने गया, तब उसने देखा कि, अपने भाईकी विजयकामनासे राक्षस-गण पुण्याहवाचन कर रहे हैं। (६।१।८) निकुंभिला देवी रावणकी कुल-देवी थी। उसके उद्देश्यसे मद्य ढालने और हवन करनेका उल्लेख रामायणमें है (५।२४।४७)। राक्षसों के मद्यप होनेका इससे पता चलता है। वे उग्र तपस्या करते थे। विराध (३।३।६) और रावणने (६।६२।२६) घोर तपस्या की थी। परन्तु उनकी तपस्या ब्राह्मणोचित निष्काम नहीं, सकाम हुआ करती थी।

उनके संस्कार वेदोक्त होते थे। विभीषणका राज्याभिषेक वेदोक्त ही हुआ था (६।११।१४-१६)। राक्षस अनेक विद्या-कलाओंमें निपुण, राजनीति-चतुर, युद्ध-विद्या-विशारद और रसिक होते थे। रावण तो बड़ा अच्छा गायक था (६।२४।४६-४७)। राक्षसोंके वैभवकी सीमा नहीं थी और उनकी मायाका तो कहना ही क्या है? उनकी अन्तिम क्रिया भी मनुष्योंकी तरह की जाती थी। वे जलाये जाते और गाड़ भी दिये जाते थे (३।४।२२-२३)। कबन्धने तो अन्त समयमें कहा कि, मुझे पहले गाड़ दो और फिर जला दो (३।७१।३१)। राक्षस मनुष्य-जैसे ही थे, इसका विस्तृत वर्णन अयोध्याकाण्डमें अनेक स्थलोंमें पाया जाता है।

रामायण-सागरका मन्थन कर राक्षसोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऐसे प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि, राक्षस कोई कल्पनातीत प्राणी नहीं थे। मनुष्यों-जैसे ही थे। किन्तु क्रूर प्रकृतिके होनेके कारण उन्हें राक्षस पदवी प्राप्त हुई थी। हमारे समाजमें वर्तमान समयमें भी राक्षसोंकी कमी नहीं है। परन्तु उनके स्वरूप तुम-आप-जैसे ही हैं।

हमारे अन्तःकरणमें दिनमें कितनी ही बार राक्षसी प्रवृत्तियोंका उदय हुआ करता है और कभी-कभी उनके वशीभूत होकर हम राक्षसी कर्म भी कर बैठते हैं; परन्तु हमें उनका विचार नहीं रहता। इन प्रवृत्तियोंको दबानेका एकमात्र उपाय मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामचन्द्रजीके पावन पद-पङ्कजोंकी शरणागति ही है। इसीसे हम क्षीण-कल्मष होकर अन्त समयमें बालिकी तरह श्रीभगवान्‌से अभिमानपूर्वक पूछ सकेंगे कि, प्रभो!—

अजहूँ का मैं पातकी अन्तकाल गति तोरि।

श्रीरामचरितमानसकी नवधा भक्ति

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा।

दो०—गुरु-पद-पंकज-सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुनगन करै कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजनु सो बेद प्रकासा।

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा।

आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखै परदोषा।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।

रामायणके वानर-ऋक्ष

महर्षि वाल्मीकि रचित रामायणका अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि रामायण-वर्णित ऋक्ष-वानर आजकलके-से पशु बन्दर-रीछ कदापि नहीं थे। वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंके अधिकारी थे। विद्या, बुद्धि, ज्ञान, कला, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, राज्य, भोग, बल, चातुर्य, राजनीति आदि गुणोंमें किसी भी मानव-जातिसे कम नहीं थे। श्रीरामके प्रति भक्तवर श्रीहनूमान्‌जीके ये वाक्य विख्यात ही हैं—

देहदृष्ट्यातु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकम्।
वस्तुतस्तु तदेवाहं इति मे निश्चिता मतिः॥

'शरीर-दृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीव-दृष्टिसे आपका अंश हूँ और वास्तवमें मेरे एवं आपके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, यह मेरा निश्चित मत है।' क्या पशु बन्दर-जातिका कोई प्राणी इसप्रकारके विचार कर सकता है या वाणी बोल सकता है? संक्षिप्तरूपसे वानर-ऋक्ष-जातिके कुछ गुणोंका दिग्दर्शन कराया जाता है—

विद्या

जब श्रीहनूमान्‌जी महाराज ऋष्यमूक-पर्वतसे उतरकर तापस-वेषमें भगवान् श्रीरामके समीप आकर अपने अर्थ-गम्भीर मधुर मनोहर शब्दोंसे रामको प्रसन्न कर लेते हैं तब श्रीराम—सर्वविद्यानिष्णात् राम—साक्षात् सच्चिदानन्दघन राम—अपने भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—'सौमित्रि! तुम सुग्रीवके मन्त्री हनूमान्‌से स्नेहयुक्त सम्भाषण करो, यह हनूमान् वाक्यके रहस्यको जाननेवाला चतुर और महाबली है। यह शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ है। इसके भाषणसे मालूम होता है इसने वेदोंका पूर्ण अभ्यास किया है क्योंकि ऋक्, यजु और सामवेदको न जाननेवाला कोई भी ऐसा उत्तम और स्पष्ट भाषण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यह व्याकरणका भी पूरा पण्डित प्रतीत होता है, क्योंकि इतने लम्बे भाषणमें इसके मुँहसे न तो एक भी अशुद्ध शब्द निकला और न शब्दोंके उच्चारणमें कहीं इसके अङ्गोंमें ही कोई विकार आया।'…(वा० रा० ४।४) हनूमान्‌जीका सीता और रावणसे जो वार्तालाप हुआ, उसमें भी उनके पूर्ण शिक्षित और वेदज्ञ होनेका पता लगता है। कहा जाता है श्रीहनूमान्‌जी संगीत-कलामें भी बड़े निपुण थे। पुरुषोंकी तो बात ही क्या, वानर-स्त्रियाँ भी पूर्ण विदुषी थीं। वालिके मरनेपर विलाप करती हुई तारा श्रीरामसे श्रुति-स्मृतिके प्रमाण देकर स्त्रीका पतिसे अभेदत्व सिद्ध करती है। (वा० रा० ४।२४।३७-३८)

धर्म ज्ञान

प्राणघातक राम-बाणसे मरणासन्न वालि जब श्रीरामको उलाहना देता है, तब श्रीराम धर्म-त्यागके कारण वधका औचित्य सिद्ध करते हुए कहते हैं—'हे वालि! तू अपने निन्दित चरित्रके कारण विपरीतगामी हो गया है। तूने राजधर्मका त्याग कर दिया है, जो पुरुष अपनी पुत्री, बहिन, या छोटे भाईकी स्त्रीके साथ कामवश होकर व्यभिचार करता है वह वध करने योग्य ही है। मैंने महाराज भरतके धर्मशासनकी नीतिके अनुसार तुझे मारकर अच्छा ही किया है, अन्यथा मुझे अपने पापोंके लिये धर्मशास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता।' इसके बाद श्रीरामजी मनुस्मृतिके श्लोकोंका प्रमाण देते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वानर-जातिके लोग धर्मशास्त्रसे परिचित थे और धर्म-पालनके लिये बाध्य थे, तथा धर्म-विरुद्ध कार्य करनेपर दण्डके पात्र समझे जाते थे। पशु-बन्दरोंके लिये श्रीराम कभी ऐसा नहीं कह सकते!

धार्मिक-संस्कार।

वानर-जातिमें सभी संस्कार वैदिक विधिके अनुसार होते थे। उदाहरणार्थ वालिकी मृत्युके अनन्तर उसके और्ध्वदेहिक संस्कारका विवरण पढ़िये—

सुग्रीव और अंगद एक सुन्दर पालकीपर वालिके शवको रखकर श्मशानमें ले जाते हैं, शवपर रत्नोंकी वर्षा की जा रही है, नदीके तीरपर शिविका उतारी जाती है, सूखे काठकी चिता बनाकर उसपर शव रक्खा जाता है, फिर शोकाकुल अंगद पिताकी चिताके अपसव्य प्रदक्षिणा करता है, तत्पश्चात शास्त्र-विधिके अनुसार अग्नि-संस्कार किया जाता है। इसके अनन्तर वानर पवित्र नदीतटपर स्नान करते हैं और सुग्रीव तारा तथा अंगद वालिको जलाञ्जलि प्रदान करते हैं। क्या पशु बन्दरोंमें ऐसी क्रिया सम्भव है? और देखिये—

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीव राज्याभिषेकके लिये किष्किन्धा-नगरीमें प्रवेश करता है, उस समयका वर्णन

(१) मत्तगजेन्द्र-मन्दिर (राघव-प्रयाग)

(२) मन्दाकिनी घाट
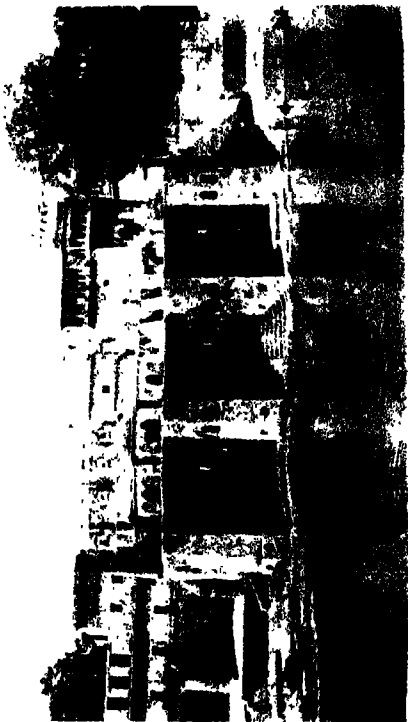
(३) राघव-प्रयाग (संगम) (४) पर्णकुटी नं० १

(१) पर्णकुटी नं० २
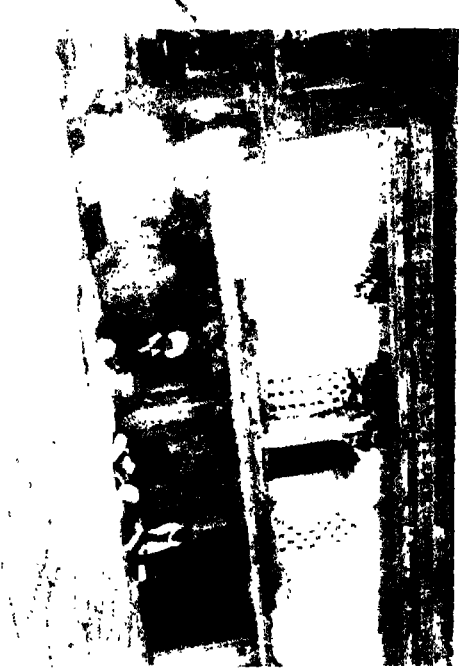
(२) परिक्रमामें तुलसीदासजीका मन्दिर

(३) जानकी कुण्ड (४) तुलसीदासजीका मन्दिर रामघाटके पास

है—सुग्रीवके राज्याभिषेकके लिये वानरोंने शीघ्रतासे ये वस्तुएँ मँगवायीं थीं, सुवर्णालङ्कृत श्वेत छत्र, सोनेके डाँडीवाले दो चवँर, सब प्रकारके रत्न, सकल प्रकारके बीज और औषधियाँ, सक्षीर वृक्षोंके प्ररोह, सुगन्धित पुष्प, सफेद कपड़े, श्वेत चन्दन, सुगन्धयुक्त कमल, अनेक प्रकारके सुगन्धित-द्रव्य अक्षत, सुवर्ण, गेहूँ, मधु, घृत, दही, व्याघ्रचर्म, बहुमूल्य जूतेकी जोड़ी। इसके बाद राजाके शरीरमें लेपन करनेके लिये गोरोचनादि सुगन्धित पदार्थोंको लेकर सोलह रूपसी कुमारिकाएँ आयीं। उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और उन्हें रत्न तथा वस्त्र देकर प्रसन्न किया गया। फिर मन्त्रज्ञाता ऋत्विजोंने कुण्डमें अग्निकी विधिवत् स्थापना कर हवन किया, तदनन्तर सुन्दर सुवर्ण-सिंहासनपर बैठाकर चारों दिशाओंके तीर्थोंके तथा विविध समुद्रोंके निर्मल जलसे सुवर्णपात्रोंद्वारा सुग्रीवका अभिषेक किया गया। यहीं विधिपूर्वक अंगदको भी युवराज-पद दिया गया। (वा० रा० ४।२६) क्या ऐसी विधि पशु-बन्दरोंमें कभी सम्भव है ?

ऐश्वर्य-विलास

किष्किन्धा-नगरीकी अवस्थाका किञ्चित् वर्णन पढ़नेपर वानरोंके ऐश्वर्यका कुछ अनुमान लग जाता है। जिस समय सुग्रीवको चेतावनी देनेके लिये श्रीलक्ष्मणजी सुग्रीवकी नगरीमें गये, उस समय उन्होंने देखा—

अनेक रत्नोंसे छायी हुई उस दिव्य नगरीमें जगह-जगह पुष्पित वृक्ष लग रहे थे। ऊँची-ऊँची छतोंवाले रत्नजटित विशाल भवनोंसे नगरी खचाखच भरी थी, प्रत्येक घरके साथ बगीचा था, जिसमें फल-पुष्प-समन्वित वृक्ष लगे थे। विन्ध्याचल और सुमेरु-जैसे ऊँचे ऊँचे महलोंसे नगरी शोभित हो रही थी। आगे चलकर श्रीलक्ष्मणजीने युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, विद्युन्माली, सूर्याक्ष, हनूमान्, सुबाहु, नल, नील, जाम्बवान् आदि श्रेष्ठ बुद्धिमान् वानरोंके रमणीय और सुन्दर महल देखे। ये सब महल सफेद बादल-जैसे, सुगन्धित पदार्थों और पुष्पमालाओंसे सजाये हुए, धन धान्यादि ऐश्वर्य और रमणी-रत्नोंसे सुशोभित थे। वानरराज सुग्रीवका राजमहल तो श्वेत स्फटिक-मणिकी बड़ी-बड़ी शिलाओंका बना हुआ था, सामने दिव्य पुष्प फल और शीतल छायावाला बगीचा था, दिव्य पुष्प और सोनेके तोरणोंसे महल सजाया हुआ था। अत्यन्त बलवाले वानर शस्त्र धारण किये दरवाजेपर पहरा दे रहे थे! श्रीलक्ष्मणजीने महलके अन्दर जाकर एकके बाद एक सात ड्योढ़ियाँ पार कीं, वहाँ उन्होंने भाँति-भाँतिके रथ और विमान आदि सवारियाँ और बिछाने योग्य बहुमूल्य आसनोंका ढेर देखा। अन्तःपुरमें सोने और चाँदीके बहुत-से बड़े-बड़े पलँगोंपर अमूल्य बिछौने बिछे थे। अन्दर सुन्दर स्वरमें गाना-बजाना हो रहा था, अन्तःपुरमें सुन्दर आकृतिवाली उत्तम कुलमें उत्पन्न अनेक स्त्रियाँ थीं जो उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई सुगन्धित फूलोंके हार गूँथ रही थीं। इसके बाद उन्होंने सुग्रीवके उत्तम गहनों-कपड़ोंसे सजे हुए अगणित नौकरोंको अनेक प्रकारके कार्योंमें लगे देखा! (वा०रा० ४।३३) इससे वानरोंके ऐश्वर्य और विलासका अन्दाजा लगाइये!

कला-कौशल

वानर जाति कलाकौशलमें खूब बढ़ी-चढ़ी थी। विशेष प्रमाण न देकर दो एक प्रमाण ही दिये जाते हैं। देखिये—

बालिका शव श्मशान ले जानेके समय जिस पालकी-पर रक्खा गया था, उसका वर्णन इसप्रकार है—'दिव्य रथ-जैसी पालकी अत्यन्त शोभायमान थी, उसके मध्यभागमें उत्तम भद्रासन बनाया हुआ था। चारों ओर अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्षोंके प्राकृतिक चित्र चित्रित थे। पालकीके अन्दर जानेके दरवाजे बहुत ही सुरूप थे, हवाके आने-जानेके लिये सुन्दर जालियाँ रखी हुई थीं। निपुण शिल्पकारोंद्वारा निर्मित वह सुन्दर शिबिका बहुत ही बड़ी और मजबूत थी, देखनेमें देवताओंके विमान-जैसी थी। उसके अन्दर नानाप्रकारके काठके पहाड़ बनाये हुए थे। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी कारीगरी की गयी थी। वह पालकी उत्तम सोनेके हारों, रंगबिरंगे पुष्पों और लाल चन्दनसे सजायी हुई थी। शिबिकापर भाँति-भाँतिके सुगन्धित फूल बिखराये हुए थे और प्रभातकालीन सूर्य-सदृश कान्तिवाली कमलकी मालाओंसे वह शोभित हो रही थी। (वा०रा० ४। २५)

यह तो मुर्देको उठानेकी पालकीका वर्णन है। अन्य वस्तुओंकी कारीगरीका भी इसीसे अनुमान कर लीजिये।

इसके अतिरिक्त नलकी अध्यक्षतामें वानरोंद्वारा समुद्रपर सौ योजनमें विशाल पुल बनाना तो प्रसिद्ध ही है। वाल्मीकीय रामायणसे पता लगता है कि पुल बाँधनेमें वानरोंने यन्त्रों (मशीनों) द्वारा भी काम लिया था,

लिखा है कि हाथी-जैसी बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वत-शिखरोंको वानरलोग उखाड़कर यन्त्रद्वारा समुद्रतक लाते थे*। सेतु कहीं बाँका टेढ़ा न हो जाय इसलिये वानरगण सूतसे नाप-नापकर पत्थर रखते थे। इसलिये कई वानर हाथोंमें डोरी लिये खड़े रहते थे †। इससे रामायणमें 'कला-कौशल' का भी पता लगता है।

इसके अतिरिक्त, सुग्रीवका विशाल भौगोलिक ज्ञान उस समय प्रकट होता है जब वह सीताकी खोजमें जानेवाले वानरोंके सामने भूगोलका विस्तृत वर्णन करता है। रणमें वानरोंकी शूरता और युद्ध-निपुणता तो प्रसिद्ध ही है। सुग्रीवकी राजनीति और रणनीति-पटुताका यही एक प्रमाण है कि श्रीरामने उसे अपना मन्त्री और सेनापति बनाया था। भगवद्भक्ति और परमार्थज्ञानके विषयमें श्रीहनूमान् परम प्रसिद्ध हैं ही। ऋक्षराज जाम्बवान्‌की रणनीति, बुद्धिकुशलता, जिसने हनूमान्‌जीको बलका स्मरण कराया था, सभीपर विदित है।

इन थोड़ेसे उदाहरणोंसे पता लगता है कि रामायणके ऋक्ष-वानर साधारण पशु रीछ-बन्दर नहीं थे। यह कोई विवेक बुद्धि-सम्पन्न अनार्य मानव-जाति थी। जो आज नष्ट या कहीं रूपान्तरित हो गयी है। सम्भव है इनके पूँछ रही हो, क्योंकि रामायणमें पूँछका वर्णन प्रायः मिलता है। पूँछके द्वारा श्रीहनूमान्‌जीका लङ्का-दहन प्रसिद्ध है। यह भी हो सकता है कि ये उस समयकी अपनी जातिकी सभ्यताके अनुसार कपड़ेकी पूँछ-सी बनाये रखते हों। कुछ मुसलमान-जातियोंमें और राजपूतानेमें चाल थी, और कहीं-कहीं अब भी है, कि स्त्रियाँ अपनी चोटीको ऊनकी आँटीसे गूँथकर इतनी लम्बी बना लेती थीं जो पीठमें पैरोंतक लटकती रहती थी। जयपुरके नागे पूँछ-सी बनाये रखते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ विशेष कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेदाध्ययन, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, ज्ञान-विज्ञान, ईश्वर-भक्ति, राज्य-सञ्चालन, गायन-वादन, कला-कौशल आदि कार्योंको करनेवाली जाति पशु-जाति नहीं हो सकती। सम्भव है इस मानव-जातिका नाम 'वानर' रहा हो। वानर पशु भी होते हैं, इसलिये लोग इन्हें पशु मानने लगे हों। या यह भी हो सकता है कि इनके रूप-रङ्गमें बन्दर-जातिसे कुछ समानता पायी जाती हो, इनमेंसे कुछ लोगोंकी शक्लें बन्दरोंकी-सी भयावनी और कुरूप हों, यद्यपि इनके देवोपम सुन्दर होनेका भी उल्लेख मिलता है। श्रीरामकी सेवामें रहनेवाले वानर देवताओंकी सन्तान थे। इनकी उत्पत्तिके प्रकरणमें लिखा है कि जिस देवताका जैसा रूप, वेश और बल था उसके अंशसे ही वैसे ही रूप, वेश और बलवाले पुत्र उत्पन्न हुए, तथापि कुछ लोग बदसूरत होंगे, आजकल भी तो मनुष्योंमें ऐसे बहुत-से भयावनी शक्लके व्यक्ति देखे जाते हैं जिनके चेहरेकी ओर देखते ही डर लगता है। वानरी स्त्रियोंके तो सुन्दरी होनेका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सम्भव है यह जाति कूदने-फाँदने और वनमें रहनेवाली होनेके कारण फल-मूल खानेमें अभ्यस्त होनेसे बड़े-बड़े शहरोंके लोग मजाकसे इन्हें बन्दर कहने लगे हों, जैसे कुछ दिनों पहले कूद-फाँदमें निपुण पीतवर्ण जापानियोंको रूसी लोग 'पीत-बन्दर' (Yellow Monkeys) कह-कर पुकारा करते थे। रूसी-भालू (Russian Bear) और ब्रिटिश-सिंह (British Lion) नाम आज भी प्रचलित हैं। भारतकी अशिक्षित जनता अङ्गरेजोंको अब भी बन्दर कहती है। पर इन नामोंमेंसे कोई भी जाति पशु नहीं है। राजपूतानेके अगरवालोंमें एक जातिको 'भूत' कहते हैं। इसीप्रकार इनके लिये भी सम्भव है। ऐसे ही 'ऋक्षवान' * पर्वतपर निवास करनेके कारण, एक जाति ऋक्ष कहाने लगी, जिसमें जाम्बवान् थे।

इस विवरणसे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि रामायणमें वर्णित वानर-ऋक्ष पशु नहीं थे। धन-धान्य और ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न मानव-जातिके ही लोग थे, जिनके रहन-सहन और आचार-विचारमें आर्यजातिसे कई बातोंमें अन्तर था और जिनके वर्णाकार भी आर्यजातिसे पृथक् थे, जैसे आज भी चीनी और जापानियोंका कद छोटा और मुँह चिपटा होता है।

फिर ये भाग्यवान् ऋक्ष-वानर तो सब देवताओंके अंश थे जो सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीरामकी लीलामें सम्मिलित होनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। उनकी उत्पत्तिका संक्षिप्त विवरण लिखकर लेख समाप्त करता हूँ।

* हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥
(वा०रा० ६ । २२ । ५९)

† सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति (वा०रा० ६ । २२ । ६१)

* अयं ऋक्षवतः प्रस्थानुपास्ते सहस्रशः ।
(वा०रा० १।१७।३१)

ब्रह्माजीके कहनेसे देवताओंने अप्सराओं, गन्धर्वियों, यक्षकन्याओं, नागकन्याओं, ऋक्षकन्याओं, विद्याधरियों, किन्नरियों और वानरियोंके द्वारा सब प्रकारकी माया जानने-वाले, शूरवीर, वायु सदृश गतिवाले, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, पराक्रमी, शत्रुविजयी, साम-दानादि नीतिनिपुण, दृढशरीरी, शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें पटु, साक्षात् देव-सदृश पुत्र उत्पन्न किये। ब्रह्माजीसे 'जाम्बवान्', इन्द्रसे 'वालि', सूर्यसे 'सुग्रीव', बृहस्पतिसे 'तार', कुबेरसे 'गन्धमादन', विश्वकर्मासे 'नल', अग्निसे 'नील', अश्विनीकुमारोंसे 'मैन्द' और 'द्विविद', वरुणसे 'सुषेण', पर्जन्यसे 'शरभ' और वायुसे 'हनूमान' हुए, तथा अन्यान्य देवताओं, महर्षियों, गरुड़ों, यक्षों, किम्पुरुषों, सिद्धों, विद्याधरों और नागोंने भी हजारों पुत्र उत्पन्न किये। देवोंके भाट-चारणोंने भी सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये। इन सबकी उत्पत्ति मुख्यतः अप्सरा, विद्याधरी और नागकन्याओंसे हुई *! (वा० रा० १।१७)

—रामायण-प्रेमी

रामायण और महाभारत

एक तुलना

(लेखक—डा० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल०)

भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें साहित्यिक दृष्टिसे 'इतिहास' और 'पुराण' का महत्त्व किसी दूसरे ग्रन्थसे कम नहीं है। इधर कुछ दिनोंसे अनेक पाश्चात्य विद्वानोंकी देखा-देखी तथा अन्य कारणों-से 'इतिहास' और 'पुराण' कुछ उपेक्षा-की दृष्टिसे देखे जाने लगे थे। परन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि अब न केवल भारतीय किन्तु पाश्चात्य विद्वानोंके भी इन विचारोंमें परिवर्तन हो रहा है। अब वैदिक साहित्यकी तरह इनकी ओर भी विद्वानोंका ध्यान जाने लगा है। हमारे भारतवर्षमें तो अति प्राचीन कालसे ही इनका गौरव समझा जाता था। यहाँ तक कि इतिहासको 'पञ्चम वेद' माना जाता था—'इतिहासः पञ्चमो वेदानां वेदः।' कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' में कहा है—'सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः।' अर्थात् सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद यह त्रयी और अथर्ववेद तथा इतिहासवेद ये वेद हैं। ब्राह्मणग्रन्थोंमें अनेक जगह इतिहास और पुराणका वर्णन है। पातञ्जल-महाभाष्यमें कहा है—'चत्वारो वेदाः...इतिहासः पुराणम्...।' चतुर्दश विद्याओंमें भी 'पुराण' को गिनाया गया है। इसप्रकार भारतवर्षमें अध्ययनाध्यापनकी प्रत्येक प्रणालीमें इतिहास और पुराणका समावेश था।

इतिहास और पुराणके साहित्यमें रामायण और महाभारतका—जिनका समावेश प्रायः इतिहासमें ही किया जाता है—स्थान बहुत ऊँचा है। इन दोनों ग्रन्थोंके आपेक्षिक निर्माणकालके विषयमें अनेक मत हैं। यहाँ हम उस झगड़ेमें न पड़कर इन दोनोंकी संक्षेपमें एक-दो दृष्टियोंसे तुलना करना चाहते हैं। साधारणतया यही समझा जाता है कि दोनों ग्रन्थ बिल्कुल एक ही प्रकार तथा कोटिके हैं। परन्तु यहाँ हम इन दोनोंकी तुलनामें कुछ उन्हीं बातोंको दिखलाना चाहते हैं जिनमें इन दोनोंका भेद है।

(१) रामायण और महाभारतमें एक मौलिक भेद, जिसकी ओर प्रायः बहुत कम ध्यान जाता है, यह है कि महाभारतको 'वैयासिकी संहिता' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, इसके पर्वोंके अन्तमें समाप्तिसूचक वाक्यमें यह लिखा

* यह लेख तर्ककी दृष्टिसे लिखा गया है। वास्तवमें क्या बात थी, सो भगवान् ही जानें। जब साक्षात् श्रीहनूमान्जी महाराजकी प्रेरणा और सहायतासे लिखित रामचरितमानसने श्रीरामके साथी वानर-ऋक्षोंको बन्दर-भालु बतलाया है तब मुझ सरीखे क्षुद्र प्राणीका कुछ भी लिखना धृष्टता ही है, वास्तवमें भगवान्की शक्ति अनन्त और अतर्क्य है। बन्दर-भालु तो चैतन्य प्राणी हैं, वे चाहें तो जड़ वृक्ष-पाषाणोंको ब्रह्मासे अधिक विद्वान्, कालसे भी अधिक बलशाली, इन्द्रसे भी अधिक ऐश्वर्यसम्पन्न, बृहस्पतिसे भी अधिक बुद्धिमान् और विश्वकर्मासे भी अधिक कलाकुशल बना सकते हैं।—लेखक

रहता है—'इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्रिकायां संहितायां वैयासिक्यां……।' परन्तु वाल्मीकीय रामायणके काण्डोंके अन्तमें इसको 'संहिता' न कहकर केवल 'वाल्मीकीय आदि-काव्य' कहा है। यदि ध्यानसे विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन दो शब्दोंमें सूत्ररूपसे दोनों ग्रन्थोंका सारा भेदभाव भर दिया है। 'संहिता' शब्दका अर्थ है 'एकत्रीकृत' अर्थात् इकट्ठा या संग्रह किया हुआ। प्रारम्भमें 'संहिता' शब्दका प्रयोग जिन-जिन ग्रन्थोंके लिये किया जाता था वे सब इसी प्रकारके थे कि उनको प्रायः साकल्येन प्राग्वर्ती सामग्रीसे ही संगृहीत किया गया था। उनकी स्वतन्त्र रचना नहीं की गयी थी। वैदिक संहिताओंके विषयमें यह बात प्रायः निर्विवाद रूपसे सब मानते हैं। वास्तवमें महाभारत भी ऐसी ही संहिता है। अर्थात् व्यासमुनि इसके बनानेवाले न होकर केवल संग्रहीता ही थे।

इसके विरुद्ध वाल्मीकीय रामायण 'वाल्मीकीय आदि-काव्य' है। अर्थात् वाल्मीकि मुनिने इस ग्रन्थकी रचना स्वयं स्वतन्त्ररूपसे की। कथा प्राचीन रही हो तो भी यह रचना वाल्मीकिजीकी ही है। इसप्रकार जहाँ रामायण एक व्यक्तिकी कृति है, वहाँ महाभारतके विषयमें ऐसी एकता नहीं है। इसी कारणसे जहाँ एक ओर रामायणमें भाव, भाषा तथा रचनाशैलीकी एकरूपता प्रायः समग्र ग्रन्थमें देख पड़ती है वहाँ महाभारतमें यह बात नहीं देखी जाती। नीचे यह भेद कुछ स्पष्ट हो जायगा।

(२) रामायण और महाभारतकी तुलना करनेसे प्रतीत होगा कि दोनोंकी भाषा और रचना-शैलीमें काफी अन्तर है। इसके साथ जहाँ प्रायः समग्र रामायणकी भाषा और रचना-शैलीपर एक व्यक्तिकी छाप प्रतीत होती है, वहाँ महाभारतके भिन्न-भिन्न अंशों और भागोंमें ही भाषा और रचनाशैलीका भेद स्पष्ट दीखता है। इस भेदसे यही प्रतीत होता है कि वे भिन्न-भिन्न अंश न तो एक व्यक्तिकी ही और न एक समयकी रचना हैं। यहाँ इसका विस्तार करनेका अवसर नहीं है। केवल दोनोंके छन्दोंकी रचनाके भेदको दिखलाकर ही हम सन्तोष कर लेंगे।

संस्कृत-भाषामें वैदिक और लौकिक छन्दोंका एक मुख्य भेद यह है कि वैदिक छन्दोंमें प्रायः अक्षरोंकी संख्या ही नियत होती है। परन्तु उन सब अक्षरोंमें कौन गुरु होगा और कौन लघु, यह प्रायः नियत नहीं होता। एक ही पादमें केवल दो तीन अक्षरोंको छोड़कर शेष अक्षरोंको गुरु या लघु करनेकी स्वतन्त्रता होती है। परन्तु लौकिक संस्कृतके छन्दोंमें मात्राछन्दोंको छोड़कर यह बात नहीं है यहाँ पादके प्रत्येक अक्षरका गुरुत्व और लघुत्व नियत होता है। वेदोंके कालसे कालिदासके समयतक आनेमें भिन्न-भिन्न ग्रन्थोंमें छन्दोविषय उपर्युक्त प्रवृत्तियोंका क्रमिक विकास देखा जाता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रथम प्रवृत्ति और पिछले ग्रन्थोंमें द्वितीय प्रवृत्ति देखी जाती है।

उपर्युक्त दृष्टिसे यदि हम रामायण और महाभारतके छन्दोंकी तुलना करें तो रामायणके छन्द कालिदासके छन्दोंके सदृश प्रतीत होंगे और महाभारतमें अनेकानेक छन्द उपनिषदोंकी तरहके मिलेंगे। द्वितीय प्रकारके छन्द रामायणमें प्रायः बिल्कुल नहीं पाये जायँगे। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। उनके पढ़नेसे ही दोनों प्रकारके छन्दोंका भेद स्पष्ट हो जायगा। साथ ही उनके गुरु और लघु अक्षरोंका भी तथा उनके नियत होने या न होनेका भी विचार कर लेना चाहिये।

प्रथम रामायणको लीजिये। सुन्दरकाण्ड ४१ । ३—

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते॥

सुन्दरकाण्ड ४० । २८—

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः
कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः।
तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम॥

इन श्लोकोंके साथ महाभारतके निम्नलिखित श्लोकोंकी तुलना कीजिये। सभापर्व ५८। ४—

तं वै राजा सत्यधृतिर्महात्मा
अजातशत्रुर्विदुरं यथावत्।
पूजापूर्वं प्रतिगृह्याजमीढम्
ततोऽपृच्छद्धृतराष्ट्रं सपुत्रम्॥

आदिपर्व ९० । १—

यदाऽवसो नन्दने कामरूपी
संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान!
हित्वा च त्वं वसुधामन्वपद्यः॥

ये श्लोक स्पष्टतया उपनिषदादिके ग्रन्थोंसे मिलते-जुलते हैं। परन्तु नीचे लिखे श्लोक महाभारतके ही होकर रामायणके जैसे ही हैं—

आदिपर्व १८६। २—

रूपेण वीर्येण कुलेन चैव
शीलेन वित्तेन च यौवनेन।
समिद्धदर्पा मदवेगभिन्ना
मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः॥

आदिपर्व १८६। १२—

तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते
वीरौ यमौ चैव महानुभावौ।
तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य तदा स्म सर्वे
कन्दर्पबाणाभिहता बभूवुः॥

(३) रामायण और महाभारतमें बड़ा भारी भेद भावोंकी दृष्टिसे है। इस दृष्टिसे विचार करनेमें सबसे पहली बात जो मनमें आती है वह है कि जहाँ रामायण आदर्शकी दृष्टि (Idealistic point of view) से लिखी गयी है, वहाँ महाभारत वास्तविक घटनात्मक दृष्टि (Realistic point of view) से लिखी गयी प्रतीत होती है। इस भेदका कारण कुछ भी रहा हो, हमारा उससे यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। हमें यहाँ यही दिखलाना है कि यह भेद दोनों ग्रन्थोंमें वर्त्तमान है। पहले रामायणको लीजिये। रामायण-की सारी कथामें उसके मुख्य पात्रोंका चरित्र आदर्शकी दृष्टिसे ही लिखा गया है। बालि-वध जैसी एक दो घटनाओं-को छोड़कर, जो कुछ-कुछ मनमें खटकती हैं, प्रायः सारे ग्रन्थमें यही प्रयत्न बराबर किया गया है कि उसके नायक-के पक्षको सर्वथा निर्दोष दिखलाया जावे और उसके विपक्षको सर्वथा सदोष।

महाभारतमें यह बात नहीं है। उसकी कथा ऐसी नहीं दीखती जैसी मानो किसी धर्मशास्त्रको सामने रखकर लिखी गयी हो। उसके कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंमें अच्छे और बुरे पात्र हैं, रामायणमें भ्रातृ-प्रेमको आदर्श रक्खा है, तो महाभारतका सारा आधार भ्रातृद्रोहपर है। द्रौपदीके पाँच पति, कुन्तीकी कौमार अवस्थामें कर्णकी उत्पत्ति, स्वयं युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र आदिकी नियोगसे उत्पत्ति, द्रोण, भीष्म और कर्णका अन्याय या छलसे वध,—इत्यादि अनेकानेक बातें हमारी दृष्टिकी पुष्टि करती हैं। द्रौपदीके चीरहरणकी ही बात लीजिये। भीष्म, द्रोण-जैसे वीर और धर्मात्मा एक स्त्रीके प्रति भरी सभामें किये गये घोर अपमानको चुपचाप सह लेते हैं। शायद आजकलका एक साधारण सत्याग्रही भी ऐसा नहीं कर सकता। वह अपने जीवन-दानसे भी एक स्त्रीकी रक्षा करेगा।

इस भेदके मूलमें भी वास्तवमें उपर्युक्त पहला भेद ही है। रामायण वास्तवमें राम+अयन है। वह एक व्यक्तिके ही गुणगान करनेके लिये लिखी गयी है। रामको छोड़कर इसके और पात्रोंमें उतनी सजीवता तथा व्यक्तिगत रोचकता नहीं है। और तो और, लक्ष्मण-जैसे विशिष्ट पात्रके विषयमें ही अधिक सजीवता नहीं दिखलायी देती। उनके जीवनकी घटनाएँ, उनका व्यक्तिगत जीवन सब कुछ अन्धकारमें छिपा है। उर्मिला-जैसी स्त्री-रत्न या सुमित्रा-जैसी माता मानों कभी मुखसे बोलती ही नहीं।

इसके विरुद्ध महाभारत किसी एक व्यक्तिकी गुणगाथा नहीं है। उसमें यह कहना भी मुश्किल हो जाता है कि उसका सर्वप्रधान पात्र कौन है। उसके अनेकानेक पात्र, भीष्म, कुन्ती, गान्धारी, व्यास, कृष्ण, युधिष्ठिर, दुर्योधन, कर्ण आदि बिल्कुल सजीव मालूम होते हैं। हम उनके जीवनकी घटनाओंके साथ-साथ उनके मनके भावोंको भी स्थान-स्थानपर प्रत्यक्ष देखते हैं। यहाँतक कि उन सबका पृथक् पृथक् जीवनचरित लिखा जा सकता है।

(४) रामायण और महाभारतमें एक भेद यह भी है। संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें महाभारतके पात्रोंका जितना उल्लेख मिलता है उतना रामायणके पात्रोंका नहीं। वैदिक-संहिताओं तथा ब्राह्मणोंतकमें विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र या परीक्षितके पुत्र जनमेजय आदिका वर्णन मिलता है। रामायणके विशिष्ट पात्रोंका उल्लेख ऐसे प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं नहीं मिलता। पाणिनिकी अष्टाध्यायीको ही लीजिये; उसमें वासुदेव, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि महाभारतीय नामोंका तो उल्लेख है, पर रामायणीय पात्रका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि समयके गुजरनेके साथ-साथ महाभारतके मुकाबलेमें रामायणका भाग्य जागता

गया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं रामायणका प्रभाव तथा प्रचार बढ़ता हुआ दीखता है और महाभारतका घटता हुआ।

जहाँ प्राचीन समयमें वैष्णव-धर्ममें कृष्णका प्राधान्य दिखलायी देता है वहाँ पिछले समयमें रामका। पिछले समयमें संस्कृत नाटक आदि जितने महाभारतीय कथानकोंको लेकर लिखे गये उससे कहीं अधिक रामायणके आधारपर। आजकल भी जितना प्रचार तुलसी-रामायणका है उतना सूरसागरका नहीं। शायद यहाँ भी इस भेदका कारण यही है कि रामायण आदर्शवादको लेकर लिखी गयी है।

रामायणकी प्राचीनता

आजकल कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि रामायणकी रचना महाभारतके बादकी है, यद्यपि निरपेक्षतापूर्वक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर इस मान्यतामें हठके अतिरिक्त अन्य कोई भी आधार नहीं ठहरता। जिसप्रकार भगवान् रामका काल कौरव-कालसे लाखों वर्ष पहलेका है उसी प्रकार रामायणकी रचना भी है। रामायणमें जिस मर्यादापूर्ण सत्वमयी सभ्यताका वर्णन है, महाभारतमें वैसा नहीं है, इसीसे पता लगता है कि रामायण-कालसे महाभारत-कालकी सभ्यताका आदर्श बहुत नीचा था। गुरुकुल कांगड़ीके प्रसिद्ध अध्ययनशील श्रीयुत रामदेवजीने लिखा है—'धर्ममय एवं आत्मिक तथा प्राकृतिक सब प्रकारकी उन्नतियोंसे परिपूर्ण रामायणके संक्षिप्त इतिहासको वर्णनकर तथा उसके पीछेके एक दीर्घकालके इतिहासको छोड़कर शोकमय हृदयके साथ महाभारतके समयका यत्किञ्चित् इतिहास लिखना पड़ता है। श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र आचरणके प्रतिकूल युधिष्ठिरके जूआ खेलने आदि कर्मोंका, लक्ष्मण भरतादिके भ्रातृ-स्नेहके प्रतिकूल युधिष्ठिरके प्रति भीमके अपमानसूचक शब्दोंका, महाराज दशरथकी प्रजाके सम्मुख सीताको कैकेयीद्वारा तपस्विनीके वस्त्र देनेपर प्रजाका एक साथ चिल्ला उठना 'धिक् त्वां दशरथम्' तथा धृतराष्ट्रकी राजसभामें द्रौपदीकी दुर्दशा होनेपर भी भीष्म, द्रोणादि वीरोंका कुछ भी न कर सकना, कुटिला दासी मन्थराका भी अपमान भरतके लिये असह्य और महारानी द्रौपदीकी दुर्दशामें दुर्योधन-कर्णादिकी प्रसन्नता, सती साध्वी सीताका पातिव्रत और श्रीरामचन्द्रजीका पत्नीव्रत, उनके प्रतिकूल सत्यवती और कुन्तीके कानीन पुत्रोंकी उत्पत्ति और पाण्डवादिके बहुविवाह, श्रीरामचन्द्रजीके वनकी ओर चलनेपर अयोध्यावासियोंका उनके साथ वनगमनके लिये प्रयत्न और युधिष्ठिरके दो बार हस्तिनापुरसे निकाले जानेपर थोड़ेसे नगर-निवासियोंके पाण्डवोंके दुःखके साथ खुल्लम-खुल्ला दुःख प्रकट करनेमें अन्योंका कौरवोंके भयसे मौनावलम्बन, श्रीराम और भरतका महान् राज्य-जैसे पदार्थको धर्मपालनके सम्मुख तुच्छ समझना और उसे एकका दूसरेके हाथमें फेंकना और दुर्योधनका यह कहना कि 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव' युद्धक्षेत्रमें रावणके घायल हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीका यह कहना कि घायलका वध करना धर्मविरुद्ध है और शस्त्र छोड़े हुए भीष्म और द्रोणका वध, रथसे उतरे हुए कर्णका वध, सोते हुए धृष्टद्युम्न, शिखंडी और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका ब्राह्मणकुलोत्पन्न वीराभिमानी अश्वत्थामाद्वारा वध। कहाँ-तक गिनायें। यह सब घटनाएँ हैं जो स्पष्टरूपसे रामायण और महाभारतके समयकी अवस्थाओंको प्रकट करती हैं। यद्यपि महाभारतके समय रामायणके समयकी भाँति ही अथवा उससे भी अधिक आर्यावर्तमें सम्पत्ति भरी हुई थी और रामायणके समयके वीरोंकी भाँति भीष्म, द्रोण, अर्जुनादि कतिपय योद्धा वायव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, वारुणास्त्र, अन्तर्धानास्त्र, ब्रह्मास्त्रादि आग्नेयास्त्रोंकी विद्या भी जानते थे, अश्वतरी नाम अग्नि-यान जलपर चलता था, आर्यावर्तका दबदबा सारी पृथ्वीपर जमा हुआ था; परन्तु रामायणके समयकी अपेक्षा इस समय धर्मका बहुत ह्रास था।……।'

इस अवतरणसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामका और रामायणका काल बहुत ही प्राचीन, शिक्षाप्रद तथा गौरवमय है।

एक रामायण-प्रेमी

मानसकी महत्ता

(ले०--विद्यार्थी श्रीमहेशप्रसादजी मिश्र 'रसिकेश')

घर वीरता औरकौ कायरताकी कलोलिनी माँहि बहा चुके थे।
करिकै करतव्य–पिताकर दाह अघोंकी नदीमैं नहा चुके थे॥
न रच्यो हुतो 'मानस' जौ 'तुलसी' तौ हौं पापने धर्म गहा चुके थे।
कुलकी मरजाद मिटा चुके थे अरु कूर कपूत कहा चुके थे॥१॥

हरि-भक्ति-पयोनिधि भक्तनमण्डली कैसेके आजुलौं ह्याँ बहती।
रहती उफनाती सुभायपकी सरि कैसेके लोकनमैं महती॥
पति-प्रेमकी माधवी-मञ्जु-लता केहिपै कहौ आश्रयकौ लहती।
न भयो हुतो जौ 'तुलसी' तौ कहा 'हुलसी' हुलसी-हुलसी रहती॥२॥

तुम सूकिबेते सुबचाय लियो श्रुति-सास्त्र-सरोरुहके बनकौ।
तुम कालके गालते वारि लियो ध्रुव-धर्मके कर्मके मीननकौ॥
इतते उतते चुनि 'मानस' मैं तुम राम चरित्र-कनूकन कौ।
'तुलसी' तुम झाँझरी नैयामैं आइबो दीनी नहीं जलकौ-तनकौ॥३॥

जब आर्यताकी तरनी कौ चह्यौ जु अनार्यता-अम्बुधि लीलिबेकौ।
हरिकी हरिता कौ रहीम-रहीमता चाह्यो पतालमैं कीलिबेकौ॥
कलमाकी भुजंगिनि ओऽम-जरा पर चाह्यो गरल्ल उगीलिबेकौ।
रच्यो ना छनमै 'तुलसी' तुमनै यह 'चक्र' मिचिलिबे-खीलिबेकौ॥४॥

चहकाय दियो 'तुलसी' तुमनै चिरी-आतमाकी-तपनारतकी।
उफनाय दियो 'तुलसी' तुमनै रसकी नदी घोर-तृषारतकी॥
विकसाय दियो 'तुलसी' तुमनै उरकी कलिका इस-आरतकी।
पनपाय दियो 'तुलसी' तुमनै सुचि-सभ्यता-वल्लरी भारतकी॥५॥

कुहुकाय दियो रमनीयताकी पिकी 'मानस'की सुरभीमँह प्यारी।
प्रगटायके 'मानस'की नभसी उमड़ाय दियो रस निर्झरी-न्यारी॥
निज 'मानस' की रवि-रस्मिन ते विगसाय दियो भली-भाव कियारी।
करि 'मानस' की सुधा-वृष्टि-घनी लहराय दियो कविता-फुलवारी॥६॥

लहि 'सूर'की ओप-अनोखी कियो स्वविकास-प्रकासकौ 'चन्द' नै न्यारे।
उननै निज जोतिकी जालिनते बगरायो हजारन ह्याँपै 'सितारे'॥
'पटबीजन'-जीगनोंकी न रही गनना तिनते जो भयो अधिकारे।
पर धन्य हौ 'मानस' के 'तुलसी' तुम 'सूर' की आँखिकौ खोलनिहारे॥७॥

कियो घोर मरुस्थलमैं 'तुलसी' तुम नन्दन-कानन केर विकास।
कियो घोर प्रलैकी विभावरीमैं 'तुलसी' तुम पूनोकौ चन्द-प्रकास॥
कियो विन्ध्यकी छातीपै तू 'तुलसी' निज मानसकेर अनोखी मिठास।
कियो सागर गागरमैं 'तुलसी' कियो राममैं रावनकेर उजास॥८॥

'वल्मीकि' नै बीज बयो जेहिकौ तेहिमैं कियो अंकुर 'कालियदास'।
'भवभूति' विभूति-भई करिकै कवि 'सूर' कौं सौंपि चल्यो हरि-पास॥
उननै तेहि सींचि कियो दल-भूषित पुषित पुष्पनते अनयास।
कविताकी लताकौ प्रफुल्ल कियो 'तुलसी' तुमनै ही जु परो विकास॥९॥

वाल्मीकीय रामायणसे अवतारवादकी सिद्धि

(७२ उद्धरण और २४० श्लोक)

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीरघुवर मिट्ठूलालजी शास्त्री, काव्य-वेदान्त-तीर्थ, शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०)

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥
(सुन्दरकाण्ड सर्ग १३ श्लोक ५७)

जिन लोगोंने आदिकवि श्रीवाल्मीकिकृत रामायणको नहीं पढ़ा है उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनकी बुद्धिमें यह बात बैठा दी गयी है कि वाल्मीकिजी न तो श्रीरामचन्द्रजी-को विष्णुका अवतार मानते हैं और न अवतार-वादके अनुयायी ही हैं। ऐसे भूले-भटके लोगोंके हितार्थ तथा श्रीमद् वाल्मीकि-मुनि-प्रणीत श्रीरघुवरचरितमें श्रीरामावतारके भक्तोंकी श्रद्धाके संरक्षणार्थ, एवं तद्द्वारा स्वकीय अन्तःकरणकी शुद्धिके प्रयोजनसे यह लेख लिखा जाता है। इसमें यह सिद्ध किया जावेगा कि वा० रामायणके रचयिताने अवतारवादको अत्यन्त स्पष्टरूपसे माना है और उनकी दृष्टिमें राम साक्षात् विष्णुके अवतार ही थे।

अवतारवादका सिद्धान्त श्रीकृष्णभगवान्‌के निम्नोद्धृत गीतोक्त वचनोंपर निर्भर है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४ श्लो० ७-८)

—कि 'जब-जब प्राणियोंके अभ्युदय और निःश्रेयस्के साधन वर्णाश्रमादिरूप धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है तब-तब मैं मायाद्वारा अपने आपको उत्पन्न करता हूँ और सन्मार्गमें स्थित जनोंके परित्राण तथा पापकारियोंके उन्मूलन एवं धर्मके सम्यक् स्थापनके प्रयोजनोंसे मैं प्रत्येक युगमें प्रकट होता हूँ।'

इस सिद्धान्तके अनुसार आर्यजाति प्राचीनकालसे यह मानती चली आ रही है कि जगत्‌का परिपालन करनेवाले सत्त्वगुणात्मक विष्णु भगवान् आसुरी सम्पत्तिका उच्छेद और दैवी सम्पत्तिका प्रसार करनेके लिये तदनुरूप समय उपस्थित होनेपर स्वयं तदुपयुक्त शरीरद्वारा अवतार लेते हैं। ऐसे अवतारोंकी संख्या दश या, चौबीस या असंख्य मानी गयी है।

प्रस्तुत लेखमें वामन, कच्छप (कमठ), वराह, कपिल इत्यादि अवतारोंका स्पष्ट उल्लेख वा० रामायणके श्लोकों-द्वारा करके श्रीरामावतारका विशद वर्णन करनेवाले श्लोकोंका संग्रह किया जावेगा।

विविध अवतारोंका प्रासङ्गिक वर्णन

(१) वामनावतार—

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत ।
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥१९॥
त्रीन् पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् ।
आक्रम्य लोकाँल्लोकात्मा सर्वलोकहिते रतः ॥२०॥
महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा ।
त्रैलोक्यं स महातेजाश्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥२१॥
तेनैव पूर्वमाक्रान्त आश्रमः श्रमनाशनः ।
मयापि भक्त्या तस्यैव वामनस्योपभुज्यते ॥२२॥
(बालकाण्ड सर्ग २९)

[ताटकावध और मिथिलागमनकी कथाओंके मध्यमें सिद्धाश्रमदर्शन की कथा है जिसमें विश्वामित्रजी रामजीसे कहते हैं कि] तब (अर्थात् देवकार्यमें नियुक्त होनेके पश्चात्) महातेजस्वी विष्णु अदितिमें उत्पन्न हुए और वामनरूप धारण करके विरोचन-पुत्र (बलि)के पास आये ॥१९॥ तत्पश्चात् तीन पद (पृथिवी) माँगकर और [समस्त] पृथिवीको प्रतिग्रह (दान) रूपसे प्राप्त करके, [उन तीन पदोंमें सब] लोकोंको आक्रान्त करके, सब लोकोंके हितमें रमण करनेवाले लोकात्मा महातेजस्वी [वामनरूपधारी विष्णुभगवान्] ने [अपने] बलसे बलिका नियमन (बन्धन) करके, महेन्द्रको पुनः दे डाला, (एवं) त्रैलोक्यको पुनर्वार इन्द्रके वशमें कर दिया ॥२०-२१॥ उन्हीं (वामनभगवान्) से [यह] श्रमको दूर करनेवाला आश्रम पहले आक्रान्त (अधिष्ठित) था। उन्हीं वामनके भक्तिसे मैं भी (इसका) [उपभोग] करता हूँ ॥२२॥

(१) फटिक-शिला (२) जानकी कुण्ड (मन्दाकिनीका दृश्य)

(३) फटिक-शिलाके सामनेका दृश्य (४) कामतानाथ
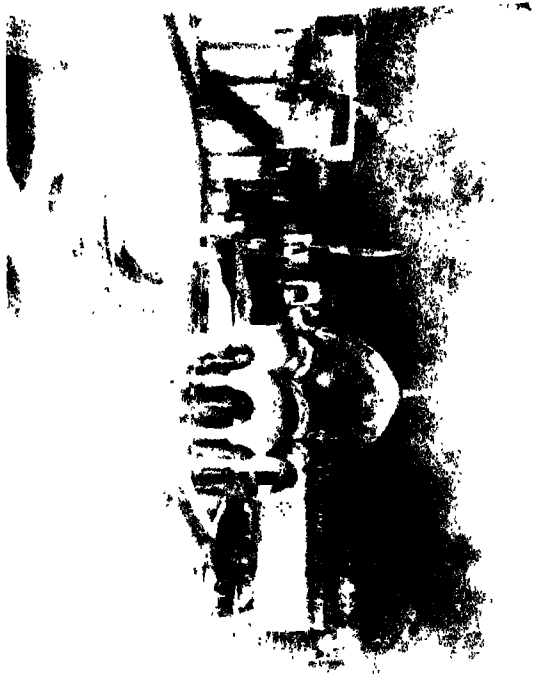
(१) चरण चिह्न (परिक्रमामें) (२) राम-शय्याके ऊपर बना हुआ मन्दिर

(३) राम-शय्या (४) भरत कूप

वामनावतारका वर्णन वा० रामायणके अन्य स्थलोंमें भी मिलता है। यथा—

१—बालकाण्ड सर्ग २९—

इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः।
वर्षाणि सुबहूनीह तथा युगशतानि च॥२॥
तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहातपाः।
एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः॥३॥
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः।
एतस्मिन्नेव काले तु राजा वैरोचनिर्बलिः॥४॥
निर्जित्य दैवतगणान् सेन्द्रान् सहमरुद्गणान्।
कारयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥५॥
यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः।
बलेस्तु यजमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः।
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूचुरिहाश्रमे॥६॥
बलिर्वैरोचनिर्विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम्।
असमाप्तव्रते तस्मिन् स्वकार्यमभिपद्यताम्॥७॥
ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः।
यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति॥८॥
स त्वं सुरहितार्थाय मायायोगमुपाश्रितः।
वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याणमुत्तमम्॥९॥

ये श्लोक पूर्वोद्धृत श्लोकोंके ऊपर उसी सर्गमें वामनावतारकी आवश्यकता और अवसरका विशद वर्णन करते हैं। इनके आगे (श्लोक१०-१८में) विष्णु भगवान् किस प्रकारसे कश्यप और अदितिके पुत्ररूपसे इन्द्रके छोटे भाई बनकर वामनके रूपमें उत्पन्न हुए इसका वर्णन है। तदनन्तर श्लोक १९-२२ की कथा है जो अर्थसमेत ऊपर दी जा चुकी है। पुनः—

२—प्राप्स्यसे त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम्।
यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्ध्वा महीमिमाम्॥(३।६१।२४)

३—जानामि वारुणाँल्लोकान् विष्णोस्त्रैविक्रमानपि।
देवासुरविमर्दांश्च ह्यमृतस्य विमन्थनम्॥(४।५८।१३)

४—मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः।
प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः॥(४।६५।१५)

५—विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव॥(४।६६।३७)

६—प्रहृष्टा विस्मिताश्चापि ते वीक्षन्ते समन्ततः।
त्रिविक्रमं कृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः॥(४।६७।३)

७—भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरम्।
विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रीन् विक्रमानिव॥(४।६७।२५)

८—तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनूमान् प्रकृतौ स्थितः।
त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः॥(५।१।२१०)

९—अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः॥(५।२१।२८)

१०—विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः।
सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा॥(५।३४।२९)

११—तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम्।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं यथा॥(६।६१।२)

१२—त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः।
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम्॥(६।११७।२७)

(२)—कपिलावतार [बालकाण्ड सर्ग ४०]

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान् प्रभुः॥२॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम्।
तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः॥३॥

ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः।
ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम्॥२५॥

श्रुत्वा तद्वचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन।
रोषेण महताविष्टो हुंकारमकरोत्तदा॥२९॥
ततस्तेनाप्रमेयेण कपिलेन महात्मना।
भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः॥३०॥

[पितामह देवताओंसे भविष्यत् कथा कहते हैं कि] जिन धीमान् वासुदेव माधव (अर्थात् सर्वव्यापक और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान्) की यह समस्त वसुन्धरा (पृथिवी) महिषी (रानी) है वे ही प्रभु (सर्वशक्तिमान्) भगवान्, कपिलका रूप धारण करके नित्य [अपने स्वाभाविक योगबलसे] पृथिवीको धारण करते हैं। उनके क्रोधानलसे राजा (सगर) के पुत्र भस्म हो जावेंगे॥ २-३॥

[विश्वामित्र श्रीरामजीसे कहते हैं कि] उन सब महाशरीरधारी, भयानक वेगवाले, महाबली, राजपुत्रोंने वहाँ [आकर] कपिल [रूपधारी] सनातन वासुदेव (अर्थात् विष्णु भगवान्) को देखा॥२५॥

हे ककुत्स्थवंशोद्भव रघुनन्दन (राम), तब उन [सगर-पुत्रों]का वह वचन सुनकर कपिलने बड़े क्रोधके आवेशमें

आकर 'हुं' कार (शब्द) किया। तब उन अप्रमेय (अर्थात् मन, वाणी इत्यादि इन्द्रियोंसे परे एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अविषय) कपिल महात्मा (अर्थात् परमात्मा) के द्वारा सभी सगरसुत राखके ढेर (अर्थात् भस्म) कर दिये गये ॥ २९-३० ॥

३—कमठ (कच्छपा)वतार[बालकाण्ड सर्ग ४५]

[विश्वामित्र मुनि रामजीसे गङ्गावतरण और सागरपूरण-की कथा कहकर गङ्गा पार करके उत्तरतीरस्थित विशाला-नगरीके राजवंशके सम्बन्धमें पूर्व-वृत्तान्त वर्णन करते हैं]—

पूर्वं कृतयुगे राम दितेः पुत्राः महाबलाः।
अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥१५॥
ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम्।
अमरा विजराश्चैव कथं स्यामो निरामयाः ॥१६॥

पहले कृत (सत्य) युगमें महाबली दैत्यों और परम धार्मिक देवताओंने सोचा कि हम किस प्रकारसे जरा-मरण-रहित हों ॥१५-१६॥

तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विपश्चिताम्।
क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै ॥१७॥
ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥१८॥

उन्होंने विचारते हुए यह मत स्थिर किया कि हम समुद्र मथकर उसमें [से] रसको प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ तब [समुद्रके] मथनेका निश्चय करके, और वासुकि (नाग) की मन्थनरज्जु (जिसे भाषामें डेहिरा या गेरुवां कहते हैं) एवं मन्दर (पर्वत) को मथानी बनाकर उन अपरिमित बलवालोंने [समुद्रको] मथा ॥१८॥

[तब वासुकि सर्पके सिर महाविषको उगलने लगे, जिससे सब जगत् दग्ध होने लगा। तब तो देवलोग शंकर महादेवजीके पास शरणकी इच्छासे आकर 'त्राहि-त्राहि' पुकारे और स्तुति करने लगे। देवताओंकी स्तुतिको सुनकर देवदेवेश्वर प्रभु (महादेवजी) प्रकट हो गये तब शङ्ख-चक्र-धर हरि (विष्णु भगवान्)ने शूलधारी रुद्रसे मुस्कराकर कहा कि देवताओंके मथनेपर जो वस्तु पहले प्राप्त हुई यह हे सुरश्रेष्ठ, आपका [भाग] है, अतः आप इस विषको अग्रपूजारूपसे ग्रहण करें। यह कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और शिवजीने देवताओंका भय देखकर और शार्ङ्गधर भगवान्का वाक्य सुनकर घोर हालाहल विषको अमृतके समान ग्रहण किया। देवताओंको छोड़कर शिवजी भी चलते बने। देवासुरोंने फिर मथना प्रारम्भ किया। तब तो मथानीरूप मन्दराचल पातालमें प्रविष्ट हो गया अतः देवोंने गन्धर्वों समेत पर्वतके उद्धारके लिये मधुसूदन (भगवान् विष्णु) की स्तुति की। (१९-२८)]

इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः ॥२९॥
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः।
पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥३०॥
देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः ॥३१॥

यह [स्तुति] सुनकर हृषीकेश हरि (विष्णु भगवान्) ने कच्छपका रूप धारण किया और पर्वतको पीठपर करके वहीं समुद्रमें शयन किया। फिर पर्वतके अग्रभागको लोकात्मा पुरुषोत्तम केशवने हाथसे थामकर देवोंके मध्यमें स्थित होकर मथना प्रारम्भ किया ॥२९-३१॥ सहस्र वर्षोंके पश्चात् [इस समुद्रमन्थनसे] धन्वन्तरि (वैद्य) ६०करोड़ अप्सराएँ और उनकी असंख्य परिचारिकाएँ, वरुणकी कन्या (सुरा), उच्चैःश्रवाः नामक हय, कौस्तुभ रत्न और अमृत निकले (३१—३८) ॥

(४)—विष्णुका 'मोहिनी' (मायातनु) को धारण करना—

[बालकाण्ड सर्ग ४५—(श्लोक४०-४१) इस अमृतके लिये दैत्योंने देवताओंसे त्रिलोकीको कँपानेवाला महाघोर युद्ध किया। सभी असुर राक्षसोंसे मिलकर एक (ओर) हो गये।]

यदा क्षयं गतं सर्वं तदा विष्णुर्महाबलः।
अमृतं सोऽहरत् तूर्णं मायामास्थाय मोहिनीम् ॥४२॥
ये गताभिमुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम्।
संपिष्टास्ते तदा युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४३॥

जब सब कुछ क्षयको प्राप्त हो गया तब वे महाबलवान् विष्णु (भगवान्) मोहिनी (अर्थात् काम और मोहको उत्पन्न करनेवाली) माया [के शरीर]को धारण करके शीघ्र ही उस अमृतको ले गये ॥४२॥ जो कोई [सुर या असुर] अविनाशी पुरुषोत्तम विष्णुके सामने [अमृतग्रहणकी इच्छासे] गये वे सब महासामर्थ्यवान् विष्णुके द्वारा युद्धमें पीस डाले गये ॥४३॥

[देवताओंने दैत्योंको बुरी मार मारा । इसप्रकारसे इन्द्र, दैत्योंका नाश करके, राज्य पाकर मुदित हो, ऋषि-चारणों समेत लोकोंका शासन करने लगे (४४—४५)]

५—परशुरामावतार [बालकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक १६—२४]—रामावतारके प्रसङ्गमें देखिये ।

६—वराहावतार [अयोध्याकाण्ड सर्ग११०]—

स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम् ॥ ३ ॥

तब उस [त्रिमूर्ति विराट्के विष्णवात्मक अंश] ने वराह होकर वसुन्धरा (पृथिवी) का उद्धार किया ॥ ३ ॥ [अरण्य० ३१ । २४ श्रीरामावतारके प्रसङ्गमें एवं युद्धकाण्ड ११७ । १३ आर्षस्तवमें देखिये ।]

७—कृष्णावतार [बाल० ४० । २, अरण्य० ३१ । २३]—कपिल और रामके अवतारोंके प्रसङ्गमें तथा युद्धकाण्ड ११७ । १५] आर्षस्तवमें देखिये ।

८—विष्णुका हयग्रीव-हनन—

तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् ।
आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥(४।४२।२६)

वहाँ [अर्थात् उस चक्रवान् नामक पर्वतमें] पञ्चजन और हयग्रीव दानवको मारकर पुरुषोत्तम (विष्णु भगवान्) ने वहाँसे [विश्वकर्मा-निर्मित सहस्रारोंवाला] चक्र और शङ्ख ले लिया ॥२६॥

९—श्रीरामावतारका विशद वर्णन—

अब हम श्रीरामावतारके सूचक और विविध स्थलोंसे संगृहीत प्रायः समस्त रामायण-वाक्योंका समावेश यहाँ पूर्वापरके क्रमसे करते हैं ।

१—(बालकाण्ड सर्ग १५)—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
भागप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥ ४ ॥
ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदसि देवताः ।
अब्रुवँल्लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं महत् ॥ ५ ॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः ।
सर्वान् नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥ ६ ॥

ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणानसुरांस्तदा ।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥९॥

तन्महन्नो भयं तस्माद् राक्षसाद् घोरदर्शनात् ।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि ॥११॥
एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् ।
हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥१२॥
तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् ।
अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥१३॥
नाऽकीर्तयदवज्ञानात् तद्रक्षो मानुषांस्तदा ।
तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते ॥१४॥
एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १६ ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा ।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥ १७ ॥
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः ।
तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥ १८ ॥
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥१९॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥२०॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥२१॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ।
स हि देवान् सगन्धर्वान् सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान् ॥२२॥
राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योद्रेकेण बाधते ।
ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥२३॥
क्रीडन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातिताः ।
वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥२४॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।
त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥२५॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ।
एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः ॥२६॥
पितामहपुरोगांस्तान् सर्वलोकनमस्कृतः ।
अब्रवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ॥२७॥
भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥२८॥

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२९॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम् ।
एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥ ३० ॥
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ।
ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ॥ ३१ ॥
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥
ततो देवर्षिगन्धर्वाः सरुद्राः साप्सरोगणाः ।
स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३२ ॥
समुद्धतं रावणमुग्रतेजसं
प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम् ।
विरावणं साधुतपस्विकण्टकं
तपस्विनामुद्धर तं भयावहम् ॥ ३३ ॥
तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं
विरावणं रावणमुग्रपौरुषम् ।
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं
सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥

[ऋष्यशृङ्गद्वारा दशरथकी पुत्रेष्टि प्रारम्भ हो गयी ।] वहाँ गन्धर्वों समेत देव, सिद्ध और परमर्षि लोग भाग-ग्रहणके निमित्त विधिपूर्वक एकत्रित हुए ॥४॥ उस [यज्ञ-] सभामें वे देवता यथायोग्य एकत्रित होकर लोककर्ता ब्रह्माजीसे [निम्नलिखित] महत्त्वपूर्ण वचन बोले ॥५॥ हे भगवन् ! आपके प्रसाद (वरदान) से [प्राप्त] बलसे रावण नामक राक्षस हम सबको पीड़ित कर रहा है, उसका शासन करनेके लिये [हम] समर्थ नहीं हैं ॥६॥ ········ वरदानसे मोहित हुआ [वह] महाबली, ऋषियों, गन्धर्वों समेत यक्षों, ब्राह्मणों [और] असुरोंको अतिक्रमण कर रहा है ॥९॥ ········ अतः उस घोरदर्शन राक्षससे हमें बड़ा भय है । हे भगवन् ! उसके वधके लिये आपको उपाय करना चाहिए ॥११॥

तब सब देवताओंसे इसप्रकार निवेदित [ब्रह्माजी] विचार करके बोले कि वह लो उस दुरात्माके वधका उपाय विदित हो गया ॥१२॥ उसने यह बात कही थी (अर्थात् वर माँगा था) कि मैं गन्धर्वों, यक्षों, देवताओं और राक्षसोंका अवध्य हूँ (अर्थात् इनसे न मारा जाऊँ) । मैंने [भी] तब कह दिया था कि ऐसा ही हो ॥ १३ ॥ उस राक्षसने उस समय तुच्छ जानकर मनुष्योंका नाम नहीं लिया था । इसलिये वह मनुष्यसे मारा जा सकता है, अन्य उसका मृत्युजनक नहीं है ॥१४॥ ब्रह्माजीके कहे हुए इस प्रिय वाक्यको सुनकर उस समय वे सब देव [और] महर्षि बड़े प्रसन्न हुए ॥१५॥

इसी अवसरमें अत्यन्त प्रकाशयुक्त जगत्पति विष्णु [भगवान्] शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये, पीताम्बर और तपे हुए सुवर्णके केयूर (बाजूबन्द) धारण किये हुए तथा श्रेष्ठ देवताओंसे नमस्कृत होते हुए गरुड़पर चढ़कर आये जैसे सूर्य (भगवान्) मेघपर ॥१६-१७॥ और वहाँ ब्रह्माजीसे मिलकर (अथवा ब्रह्माजीसे भी नमस्कृत होते हुए वहाँ आकर) एकाग्र-चित्त [हो] बैठ गये । प्रणाम करते हुए सब देवताओंने सम्यक् स्तुति करके उनसे कहा ॥१८॥

हे विष्णो ! लोकोंकी हितकामनासे [अवतार लेनेके लिये] हम तुम्हें नियुक्त करेंगे । हे व्यापक विष्णो ! तुम इस धर्मज्ञ, महादानी, महर्षियोंके समान तेजस्वी और अयोध्याके अधिपति दशरथकी ह्री (लज्जा) श्री (लक्ष्मी) [और] कीर्ति (ख्याति) के सदृश तीन भार्याओंमें, अपनेको चार प्रकारका करके, पुत्ररूपसे अवतार लो । हे विष्णो ! वहाँ तुम मनुष्य होकर देवताओंसे अवध्य विशाल लोककण्टकरूप रावणको युद्धमें मारो । क्योंकि वह मूर्ख राक्षस रावण बलकी अधिकतासे गन्धर्वों समेत देवों, सिद्धों और श्रेष्ठ ऋषियोंको पीड़ित कर रहा है । इस (बलाधिक्यके) कारणसे उस रौद्र (अर्थात् भले-बुरेके विचारसे रहित रावण) ने ऋषियोंको तथा [स्वर्गस्थ] नन्दनवनमें क्रीड़ा करते हुए गन्धर्वों और अप्सराओंको विनिपातित किया है । निश्चय उसके वध [के निमित्त प्रार्थना करने] के लिये [ही] हमलोग मुनियोंके साथ आये हैं ॥ १९-२४ ॥ और इन्हींसे सिद्ध गन्धर्व [तथा] यक्ष तुम्हारे शरणको प्राप्त हुए हैं । हे शत्रुके तपानेवाले देव ! तुम हम सबकी परम-गति हो (अर्थात् हमारी अन्तिम दौड़ तुम्हीं तक है) ॥ २५ ॥ [अतः] देवताओंके शत्रुओंके वधके लिये मनुष्योंके लोकमें [अवतार लेनेका] मन (अर्थात् संकल्प) करो । देवताओंमें श्रेष्ठ और सर्वलोकोंसे नमस्कार किये गये देवेश विष्णु इसप्रकारसे स्तुति किये जानेपर ब्रह्माप्रमुख एकत्रित हुए धर्मसहित सब देवताओंसे बोले ॥ २६-२७ ॥ तुम लोग भयको त्याग दो, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम्हारे हितके लिये मैं देवों और ऋषियोंके भयदायक महाबली क्रूर रावणको पुत्रों,

पौत्रों, अमात्यों, मन्त्रियों और भाई-बन्धुओंके समेत युद्धमें मारकर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक इस पृथिवीको पालन करता हुआ मनुष्यलोकमें निवास करूँगा ॥ २८-३० ॥

इसप्रकार आत्मवान् विष्णुदेवने देवोंको वर देकर मनुष्यलोकमें अपनी [योग्य] जन्मभूमिका विचार किया। तदनन्तर [उन] कमलपत्र-जैसे नयनोंवाले [विष्णु भगवान्] ने अपने आपको चार प्रकारका करके राजा दशरथको उस समय [अपना] पिता [बनाना] चाहा। तब रुद्र और अप्सराओंके गणों समेत देवों, ऋषियों और गन्धर्वोंने दिव्यरूप स्तुतियोंसे मधुसूदन (भगवान् विष्णु) को प्रसन्न किया ॥ ३०-३२ ॥—

उस उद्धत, उग्र तेजवाले, महाभिमानी, इन्द्रशत्रु, [त्रिलोकीको] रुलानेवाले, तपस्वियोंके भयदायक, साधुओं और तपस्वियोंके उस प्रसिद्ध रावणरूप कण्टकको [समूल] उन्मूलन करो ॥ ३३ ॥ हे देवश्रेष्ठ (उपेन्द्र), उस [त्रिलोकीको] रुलानेवाले, उग्र पौरुषवाले रावणको सेना और बान्धवों समेत मारकर ही चिरकालके लिये सन्तापरहित [होते हुए तुम अपने द्वारा] रक्षा किये गये अपने [वैकुण्ठनामक] स्वर्गलोकमें [जो रागादि] दोष [रूप] कल्मषों (मलों) से रहित [है] आओ ॥ ३४ ॥

२—(बालकाण्ड सर्ग १६)—

तनो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ।
जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ २ ॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् ।
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ ३ ॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः ।
येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥ ४ ॥
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः ।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ ५ ॥
अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः ।
एवं पितामहात् तस्माद् वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥
उत्सादयति लोकांस्त्रीन् स्त्रियश्चाप्युपकर्षति ।
तस्मात् तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ ७ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् ।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥
स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन् काले महाद्युतिः ।
अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥ ९ ॥
स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम् ।
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥१०॥
ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥ ११ ॥
दिव्यपायससंपूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम् ।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥१५॥
समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् ।
प्राजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप ॥१६॥
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥ १९ ॥
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ॥ २० ॥
सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥ २६ ॥
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा ।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥ २७ ॥
कैकेय्यै चाऽवशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात् ।
प्रददौ चाऽवशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥ २८ ॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः ।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥ २९ ॥
ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-
ऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा ॥३१॥

तब श्रेष्ठ देवोंसे नियुक्त (प्रार्थित वा आज्ञप्त) हुए नारायण विष्णु (भगवान्) [रावणके वधके उपायको] जानते हुए भी देवताओंसे [उनके अविनीतपन और लज्जा छुड़ानेके अभिप्रायसे, अज्ञकी नाईं] इसप्रकार मधुर वचन बोले ॥१॥ हे देवताओ, उस राक्षसोंके अधिपतिके वधमें कौनसा उपाय है जिसका आश्रय लेकर मैं उस ऋषियोंके कण्टकको मारूँ ॥२॥

ऐसे कहे गये सब देवता लोगोंने अविनाशी (अविकारी) विष्णु (भगवान्) को उत्तर दिया कि तुम मानवरूपको धारण करके युद्धमें रावणको मारो ॥ ३ ॥ क्योंकि

उस शत्रु-दमनकारी [रावण] ने दीर्घकालतक कठिन तप किया था जिससे लोकोंके पूर्वज [तथा] लोकस्रष्टा ब्रह्माजी प्रसन्न हुए ॥५॥ सन्तुष्ट [होकर] प्रभु (ब्रह्माजी) ने उस राक्षसको मनुष्यसे भिन्न अन्य नाना प्रकारके प्राणियोंसे भय न होनेका वर दिया ॥४॥ क्योंकि वरदानमें उसने पहले ही मनुष्योंको तुच्छ कहा था। इसप्रकार उन पितामह (ब्रह्माजी) से [पाये हुए] वरदानसे गर्वित [हुआ वह] तीन लोकोंको पीड़ित कर रहा है और स्त्रियोंको भी उठवा लेता है। इस कारणसे हे शत्रुको तपानेवाले (भगवन्), उसका वध मनुष्योंसे [होना] निश्चित है ॥६-७॥

आत्मवान् विष्णुने देवोंके इस वचनको सुनकर राजा दशरथको उस समय पिता [बनाना] चाहा ॥८॥ उस समय (जब भगवान्की अवतार लेनेकी इच्छा हुई तब) उन महाप्रकाशयुक्त और शत्रुओंका नाश करनेवाले अपुत्र राजा (दशरथ) ने भी पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा करते हुए पुत्रेष्टिका यजन किया ॥९॥ वह विष्णु (भगवान्) [अवतारविषयक] निश्चय करके और पितामह (ब्रह्माजी) को आमन्त्रितकर (अर्थात् मैं चलता हूँ ऐसा कहकर) देवों [और] महर्षियोंसे पूजित होते हुए अन्तर्धान हो गये ॥१०॥

तब (अर्थात् विष्णुके अन्तर्धानके अनन्तर ही) यजमान (दशरथ) के [यज्ञसम्बन्धी] अग्निसे अतुल प्रभावाला (अर्थात् बिजली इत्यादिके समान जिसके तेजके सामने आँख न ठहर सके ऐसा जाज्वल्यमान) महाबल-वीर्यवाला विशाल प्राणी प्रकट हुआ [यह विशाल प्राणी 'एको विष्णुर्महद्भूतम्' के अनुसार स्वयं विष्णु ही थे जो अन्तर्हित होकर अपने तेजसे सम्पन्न पायसको लिये हुए होमाग्निसे प्रकट हुए, क्योंकि भगवान्का तेज धारण करनेकी शक्ति अन्यमें नहीं है—टीकाकार श्रीरामकृत तिलकव्याख्या] ॥११॥ ······दिव्य पायस (खीर) से पूर्ण विशाल मायामयी पात्रीको, मानो प्रिया पत्नीको, दोनों बाहुओंसे स्वयं ग्रहण करके ॥१५॥ राजा दशरथको देखकर यह वाक्य बोला कि हे राजन्, तुम मुझे यहाँ आया हुआ प्रजापतिका [भेजा हुआ—प्रजापति (प्रजापालक) विष्णुसे उत्पन्न हुआ—अर्थात् विष्णुरूप] पुरुष जानो ॥ १६ ॥ हे राजसिंह, तुम इस धन्य (प्रशस्त) [और] आरोग्य-वर्द्धक [तथा] देव (प्रजापति) द्वारा निर्मित [एवं] प्रजा (सन्तान) के देनेवाले पायसको ग्रहण करो ॥१९॥ [और अपनी] अनुरूप (योग्य) भार्याओंको दे दो कि वे खा लें। उनमें तुम पुत्रोंको प्राप्त करोगे जिसके लिये हे राजन्! यज्ञ कर रहे हो ॥२०॥

वह (राजा) अन्तःपुरमें जाकर कौसल्यासे ही यह बोले कि यह अपनेको पुत्र देनेवाला पायस लो ॥२६॥ तदनन्तर राजाने आधा पायस कौसल्याको दे दिया। और सुमित्राको भी राजाने [शेष] आधेमेंसे आधा (अर्थात् पूर्ण पायसका चतुर्थांश) दे दिया और कैकेयीको अवशिष्ट (चतुर्थांश) का आधा (अर्थात् सबका अष्टमांश) पुत्र-प्रयोजनके कारणसे दिया और पुनः महामति (राजा) ने सुमित्राको [कैकेयीकी अपेक्षा बड़ी होने (?) और कौसल्याकी अपेक्षा छोटी होनेका] विचार करके पायसका अमृततुल्य अवशिष्टार्ध (अन्य चतुर्थांशका कैकेयीसे बचा हुआ अर्ध अर्थात् समस्तका अष्टमांश जो बच रहा था) दे डाला। इसप्रकार राजाने उन भार्याओंको पृथक् पृथक् [विभाग करके] पायस दे दिया। [कालिदास (रघुवंश सर्ग १० श्लोक ५४-५७) इत्यादि अन्य लोगोंके मतानुसार चरुविभाग इसप्रकार हुआ कि कौसल्याको जो आधा भाग दिया, उसीके आधेका आधा सुमित्राको दिलाया अर्थात् समस्त चरुके आठ भागोंमेंसे प्रथम चार भागोंका चतुर्थांश वा समस्तका अष्टमांश सुमित्राको दिलानेपर कौशल्याके पास आधेका तीन चौथाई वा समस्तका $\frac{3}{8}$ रहा। इसी प्रकार कैकेयीको दूसरा आधा दिया जिसमेंसे (आधेका) आधा पुनः सुमित्राको दिलानेपर कैकेयीके पास भी समस्त चरुका $\frac{3}{8}$ रहा। इसप्रकार सुमित्राके दोनों पुत्र प्रत्येक अष्टमांश थे और राम तथा भरत प्रत्येक $\frac{3}{8}$] ॥ २७ २९ ॥ तब राजाकी [अग्नि और आदित्यके समान तेजवाली] उन उत्तम स्त्रियोंने उत्तम पायसको पृथक् पृथक् खाकर शीघ्र ही अग्नि और आदित्यके समान तेजवाले गर्भोंको धारण किया ॥३१॥

३ (बालकाण्ड सर्ग १७)—

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्भगवानिदम् ॥ १ ॥
सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥ २ ॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ।
नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥ ३ ॥

अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च ।
यक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च ॥ ५ ॥
किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च ॥
सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥ ६ ॥

ते तथोक्ता भगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् ।
जनयामासुरेवं ते पुत्रान् वानररूपिणः ॥ ८ ॥
ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥

ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ॥ १७ ॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ।
ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महाबलाः ॥ १८ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे ।
यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ॥ १९ ॥
अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक् पृथक् ॥

विष्णुके उस महात्मा राजाका पुत्रत्व प्राप्त करनेपर स्वयम्भू भगवान् (ब्रह्माजी) सब देवताओंसे यह बोले ॥ १ ॥ [हे देवो ! तुम लोग] सत्य प्रतिज्ञावाले, वीर और हम सबका हित चाहनेवाले विष्णु (भगवान्) के—बली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, मायाके जाननेवाले, शूर, वेगमें वायुके समान वेगवाले, नीति जाननेवाले, बुद्धिशाली और विष्णुसदृश पराक्रमी-सहायकोंको उत्पन्न करो ॥ २-३ ॥ ·········मुख्य अप्सराओंमें, गन्धर्व-स्त्रियोंके शरीरोंमें, यक्षों और नागोंकी कन्याओंमें, ऋक्षों और विद्याधरोंकी स्त्रियोंमें, और किन्नरियोंके शरीरोंमें तथा वानरियोंके शरीरोंमें [तुम लोग अपने अपने] समान पराक्रमवाले पुत्रोंको वानररूपसे ········उत्पन्न करो ॥ ५-६ ॥ भगवान् (ब्रह्माजी) से ऐसा कहे गये उन [देव] लोगोंने उस शासन (आज्ञा) को अङ्गीकार करके इस (आगे कहे हुए) प्रकारसे वानररूपी पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ ऋषियों, महात्माओं, सिद्धों, विद्याधरों, नागों और चारणोंने वनमें विचरनेवाले वीर पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ ·········ऐसे अनेकों सहस्र [वानर] सृजे गये [जो] रावणके वधमें उद्यत [होंगे] ॥ १७ ॥ वे अमित बलवाले, वीर, विक्रमशाली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, हस्ती तथा पर्वतके सदृश [आकार-वाले], सुन्दर, महाबली, ऋक्ष, वानर और गोपुच्छ (गोलाङ्गूल-जातिके बन्दर) शीघ्र ही उत्पन्न हुए । जिस [जिस] देवका जो रूप, वेष और जो पराक्रम है उसीके तुल्य पृथक् पृथक् उस उस [के पुत्र] का [भी रूपादि] उत्पन्न हुआ ॥ १८-२० ॥···············॥

४—(बालकाण्ड सर्ग १८)—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः ।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥८॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥९॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
कौसल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥१०॥
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥११॥
कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणाऽमिततेजसा ।
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥१२॥
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥१३॥
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत् सुतौ ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥१४॥
पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः ।
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥१५॥

तब यज्ञके समाप्त होनेपर छः ऋतु व्यतीत हो गये । उस समय बारहवें मासमें, चैत्र [शुक्ल] नवमी तिथिको, अदिति देवतावाले (पुनर्वसु) नक्षत्रमें, पाँच ग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि, बृहस्पति और शुक्र) के ऊँची राशियों (क्रमशः मेष, मकर, तुला, कर्क और मीन) में स्थित होनेपर, तथा चन्द्रमासहित बृहस्पतिके कर्कट लग्नोदयमें वर्तमान होते हुए—कौसल्याने दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त, जगत्के नाथ, सब लोकोंसे नमस्कृत (अथवा—सर्वलोकरूप अर्थात् विराट्रूप और नमस्कार किये गये-इससे यह सूचित होता है कि रामके प्रकट होनेके समय माताने उनके विराट् रूपका दर्शन किया और उससे विस्मित होकर नमस्कार किया था जिससे तत्काल ही भगवान्ने बालकका रूप धारण कर लिया—तिलकव्याख्या । इसी भावको गोस्वामी तुलसीदासजीने—

"भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्याहितकारी ,
हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुतरूप निहारी ।।"
"कह दुइँकर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता ।"
"सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।"

--इत्यादि छन्दोंमें दर्शाया है ।), विष्णुके अर्धांश, महाभाग, रक्तनेत्रोंवाले, लम्बी भुजाओंवाले, लाल ओंठों-

वाले, दुन्दुभिके समान शब्दवाले, इक्ष्वाकु-वंशको आनन्दित करनेवाले पुत्र रामको जना ॥ ८–११ ॥ उस अमित तेज-वाले पुत्रसे कौसल्या ऐसी शोभित हुई जैसे देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रसे अदिति ॥ १२ ॥ सत्य पराक्रमवाला और साक्षात् विष्णुके सब गुणोंसे युक्त चतुर्थांश भरत नाम [पुत्र] कैकेयीमें उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर सुमित्राने विष्णुके अर्धांशसे संयुक्त, वीर और सब अस्त्रोंमें कुशल लक्ष्मण और शत्रुघ्न [नामक दो] पुत्रोंको जना ॥१४॥ निर्मल बुद्धिवाले भरत पुष्य (नक्षत्र) और मीन लग्नमें उत्पन्न हुए। तथा सुमित्राके दोनों (यमज) पुत्र सार्प (अर्थात् आश्लेषा नक्षत्र) में तथा कर्क-लग्नमें सूर्य (की उच्च स्थिति) के समय उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

[इसप्रकार वाल्मीकि-रामायणमें जन्म-पत्रका विशद वर्णन होना इस बातका सूचक है कि उस प्राचीनकालमें भी फलित ज्योतिषका माहात्म्य ऐसा ही सत्य माना जाता था जैसा वर्तमान कालमें है। तिलकव्याख्याकार श्रीराम वर्माने 'विष्णोरर्धम्'का अर्थ यह किया है कि विष्णु भगवान् तो शङ्ख, चक्र और अनन्तसे विशिष्ट हैं परन्तु राममें शङ्ख-चक्रादिका अभाव होनेसे विष्णुके कुछ कम आधे राम थे, (पहले भी अन्योंके मतसे तिलककार कौसल्याके भागमें आये हुए पायसको $\frac{3}{8}$ बता चुके हैं)। इसीप्रकार भरतके सम्बन्धमें 'चतुर्भागः' का अर्थ आधे पायसके चतुर्थांश न्यून अर्थात् समस्त चरुके $\frac{3}{8}$ के अनुसार 'चतुर्न्यूनो भागश्चतुर्भागः' किया है। तथा सुमित्राके पुत्रोंके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धसमन्वितौ' का अर्थ 'रामके एक भागसे युक्त' करते हुए दोनोंमेंसे प्रत्येकके 'पायसका अष्टमांश' होनेका समर्थन किया है। परन्तु यदि खींचा-तानीके द्वारा ही राम और भरत विष्णुके $\frac{3}{8}$, $\frac{3}{8}$ तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{8}$ अंशावतार सिद्ध किये जा सकते हैं—तो इसकी अपेक्षा अधिक सरलतासे पूर्व कथनानुसार राम तो $\frac{1}{2}$ और लक्ष्मण $\frac{1}{4}$ तथा भरत, शत्रुघ्न प्रत्येक $\frac{1}{8}$ अंशावतार यहाँ भी सिद्ध होते हैं। यथा 'विष्णोरर्धम्' का अर्थ रामके सम्बन्धमें स्पष्ट $\frac{1}{2}$ अंश है। भरतके सम्बन्धमें 'साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः' का अर्थ होगा साक्षाद्विष्णु (अर्थात् राम, $\frac{1}{2}$) का चतुर्थांश (अर्थात् $\frac{1}{8}$)। एवं लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धसमन्वितौ' के अर्थमें 'अर्ध' शब्दकी आवृत्ति करके विष्णु (राम) के आधे (अर्थात् समस्तके $\frac{1}{4}$) लक्ष्मण और 'तदर्ध' (उसके आधे अर्थात् समस्तके $\frac{1}{8}$) शत्रुघ्न। सर्वथा वाल्मीकि रामायणसे सिद्ध है कि चारों भाई विष्णुके (न्यूनाधिक चार रूपोंमें) अवतार थे।]

५—(बालकाण्ड सर्ग २९)—

[इस लेखमें सर्वप्रथम वामनावतारके सम्बन्धमें इसी सर्गके जो श्लोक (२–९ और १९–२२) उद्धृत किये जा चुके हैं उनके अन्तमें विश्वामित्रजी रामसे कह चुके हैं कि इस सिद्धाश्रममें पहले वामनावतारधारी विष्णु तपस्या करके सिद्ध हो चुके थे उसीमें आजकल मैं रहता हूँ। अर्थात् यह सिद्धाश्रम प्रथम विष्णु भगवान् (वामन) का और अनन्तर उनकी भक्तिसे मेरा है। उसीके आगे कहते हैं—]

> एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः ।
> अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥२३॥
> अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।
> तदाश्रमपदं तात तवाऽप्येतद् यथा मम ॥२४॥

इस आश्रममें [यज्ञ-] विघ्नकारी राक्षस आते हैं। हे पुरुषोत्तम ! यहाँ उन दुराचारियोंको मारना चाहिये ॥२३॥ [कारण यह है कि] हे राम ! आज हम उस सर्वसुन्दर आश्रम-को चल रहे हैं, वह आश्रम जैसे मेरा है वैसे ही हे तात ! तुम्हारा भी है ॥ २४ ॥

[इसपर तिलककारने भी उचित ही लिखा है कि -'हे तात, तदेतदाश्रमपदं यथा मम स्वकीयं तथा तवापि विष्णववतारत्वात्तेन गृहीतत्वादभिसन्धिः ।' अर्थात् हे तात ! इस आश्रम स्थानमें जैसी ममता मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी है; क्योंकि तुम उन्हीं विष्णुके अवतार हो जिन्होंने वामनरूपसे इस आश्रमको अपनाया था–यह गूढार्थ है।]

[यदि यह कहा जाय कि अयोध्याके राज्यके अन्तर्गत होनेसे ही सिद्धाश्रममें रामको भी ममता विश्वामित्रको इष्ट थी जिससे उसे अपवित्र करनेवाले राक्षसोंका विनाश करना रामके लिये आवश्यक था। तो उत्तर यह है कि चक्रवर्ती होनेसे दशरथ भले ही इस सुदूरवर्ती सिद्धाश्रमके भी स्वामी हो सकते हों परन्तु राम जो अभीतक युवराज भी नहीं हुए थे और जो वनवासकी अवस्थामें बालिवध इत्यादि समस्त अवसरोंपर सदा यही कहा करते थे कि राज्य और पृथिवी भरतकी है और मैं केवल उनके आदेशमें वर्तमान

होकर दुष्टोंका शासन और शिष्टोंका रक्षण करता हूँ, वे किसी युक्तिसे अभीतक सिद्धाश्रमके 'स्वामी' नहीं ठहर सकते। अतः विष्ण्ववतारके ही सम्बन्धसे विश्वामित्रके वाक्यकी सङ्गति लग सकती है, अन्यथा नहीं।]

[यह कथा असङ्गत या प्रक्षिप्त भी नहीं हो सकती, क्योंकि यह पिछले सर्ग २८ के निम्नलिखित प्रश्नका उत्तरमात्र है-—

सर्वं मे शंस भगवन् कस्याश्रमपदं त्विदम्।
सम्प्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः ॥२०॥

हे भगवन्! मुझसे सब कहो कि यह आश्रमस्थान किसका है (और वह कौन स्थल है) जहाँ वे वेदविनाशक दुराचारी पापी आते हैं ॥२०॥]

६—(बालकाण्ड सर्ग ७६)—

तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः।
रामं कमलपत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥१७॥
एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१८॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः ॥१९॥

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥२४॥

[अपने वैष्णव] तेजों [के राममें जाकर प्रविष्ट होने] के कारण वीर्यरहित हो जानेसे जड़समान हुए जमदग्नि-पुत्र (परशुराम), कमलपत्र-सदृश नेत्रोंवाले रामसे धीरे-धीरे बोले ॥१२॥·········हे शत्रुओंको तपानेवाले (विष्णुरूप राम), इस धनुषके परामर्श (ग्रहण, आकर्षण, इत्यादि) के कारणसे तुम्हें, क्षय न हो सकनेवाले, (आदि और अन्तसे रहित), तथा मधु (नामक राक्षस) को मारनेवाले, एवं देवोंके परम स्वामी (अर्थात् साक्षात् विष्णु भगवान् ही) जान गया हूँ। तुम्हें स्वस्ति (मङ्गलकी प्राप्ति) हो ॥१७॥ अनुपम कर्म करनेवाले, एवं युद्धमें प्रतियोद्धारहित तुमको ये सब आये हुए देवगण देख रहे हैं ॥१८॥ हे ककुत्स्थवंशोद्भव (राम), और जो त्रिलोकीके नाथ होते हुए तुमने मुझे अशक्त कर दिया, यह तुम्हारे लिये कोई लज्जाकी बात नहीं होनी चाहिये [तिलककारकी व्याख्याके अनुसार—इससे परशुरामने अपनेको भगवान्‌का अंश होना और रामजीका पूर्ण भगवदवतार होना सूचित किया। भाव यह है कि अपनेसे भिन्न द्वारा अशक्त किये जानेमें लज्जा होती है न कि अपने आप मायाके द्वारा वैसा हो जानेमें। इस व्यवहारका प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि दया करके दशरथादिके प्रति स्वरूपका बोधन हो तथा राममें पूर्ण तेज आ जावे। क्योंकि यदि विष्णुका तेज किसी अंशमें भी अन्यत्र (बिखरा) रहता तो रावणका वध दुष्कर होता। इसीलिये (मूलमें) पूर्व ही कहा जा चुका है कि रावणका वध चाहनेवाले देव-गन्धर्वादि लोग देखने आये थे] ॥११॥ ·········तब जमदग्नि-सुत [परशु-] राम प्रभु [स्वयं भी] प्रपूजित होते हुए दशरथ-पुत्र रामकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थानको चले गये ॥२४॥

[यहाँ श्लोक ११ में यदि रामके विष्णु होने और परशुरामके भगवदंश होने, और इसी कारणसे परशुराम (रूप भगवान्‌के अंश) का पराजय एवं भगवान्‌की लज्जाका हेतु होनेमें रामायणकारका अभिप्राय न माना जावेगा तो यह वाक्य ही असंगत हो जावेगा क्योंकि दूसरेके कारण दूसरेको लज्जा होना बिल्कुल उल्टी बात है। अतः श्लोक ११ के अभिप्रायसे और श्लोक २४ में आये हुए 'प्रभु' पदसे परशुरामका अंशावतार होना सूचित होता है। और परशुराम ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय रामकी प्रदक्षिणा करते हैं इससे भी श्रीरामजी विष्णुके अवतार सिद्ध होते हैं।]

७—(अयोध्याकाण्ड सर्ग १)—

सर्वे एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः।
स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः ॥५॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥६॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥७॥

[श्रीरामके यौवराज्याभिषेककी भूमिकासे अयोध्याकाण्ड-का प्रारम्भ करते हुए, और तत्सम्बन्धमें भरत और शत्रुघ्नके अपने मातुल (मामा) अश्वपतिके यहाँ जाकर वृद्ध पिताका स्मरण करने, और पिताके पुत्रोंका स्मरण करनेकी सूचना देकर, श्रीरामायणकार लिखते हैं कि—]

उन (राजा दशरथ) को पुरुषोंमें श्रेष्ठ सब चारों ही [पुत्र] ऐसे प्रिय थे जैसे [विष्णुको] अपने शरीरसे निकली हुई चारों भुजाएँ ॥५॥ उन (चारों) में भी महातेजस्वी राम पिताको [विशेष] आनन्ददायक (अत्यन्त अभिमत) और [सब] प्राणियोंके मध्यमें स्वयम्भू (ब्रह्माजी) के समान अधिक गुणवान् थे ॥६॥ क्योंकि वे दर्पपूर्ण रावणका वध चाहनेवाले देवोंसे प्रार्थित हुए सनातन विष्णु [थे जो] मनुष्यलोकमें जन्मे थे ॥७॥

८-(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४)

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम् ।
श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२१॥

[प्रयागमें भरद्वाज मुनि रामसे कहते हैं कि-] हे काकुत्स्थ ! मैं निश्चयही तुम्हें बहुत कालके पश्चात् [मेरे] समीप आया हुआ देख रहा हूँ और मैं तुम्हारे अकारण विवासन (घरसे निकाल दिये जानेकी वार्ता) को सुन चुका हूँ ॥२१॥

[तिलककारने 'बहुत कालके पश्चात् आया हुआ देखने'के दो अर्थ निकाले हैं (१) कदाचित् राम पहले भी प्रयागमें भरद्वाजका दर्शन कर चुके थे (२) अथवा पूर्वकल्पके रामावतारमें उनका प्रयागागमन मनमें रखते हुए भरद्वाजने ऐसा कहा हो। हमारी दृष्टिमें वाल्मीकि रामायणकारको रामका इस जन्ममें कभी पहले प्रयाग आकर भरद्वाजमुनिके दर्शन करना अभीष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि रामायण या किसी अन्य ग्रन्थमें ऐसे पूर्व आगमनका कोई प्रयोजन अथवा सङ्केतमात्र भी नहीं मिल रहा है। अतः रामायण-कारने 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' के सिद्धान्तानुसार पूर्वकल्पसम्बन्धी रामावतारके प्रयागागमनको चिरजीवी भरद्वाजमुनिके मुखसे स्वीकार कराया है यही पक्ष शेष रह जाता है। अतः यह प्रसङ्ग भी रामायणकारके माने हुए अवतारवादका पोषक है।]

९-(अयोध्याकाण्ड सर्ग ११०)

इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे ॥ २ ॥

[जाबालिके वचनोंसे रामको क्रुद्ध हुआ जानकर वसिष्ठ-जी रामको समझाते हैं-] हे लोकोंके नाथ ! इस जगदुत्पत्ति-को मुझसे समझो [यहाँ 'लोकनाथ' का अर्थ 'प्रजा-जनोंके स्वामी' या 'राजा' नहीं हो सकता क्योंकि (१) दशरथके मर जानेपर पिता-माताके आदेशानुसार राजा तो भरत होते, न कि राम, (२) 'लोक-समुत्पत्तिम्' पदमें 'लोक' का अर्थ 'भूर्भुवःस्वरादि' है वही 'लोकनाथ' में भी इस लिये होना चाहिये कि जो 'लोकोंका नाथ है उसे लोकों-की उत्पत्ति जाननी चाहिये' (३) तिलकव्याख्याकारने भी लिखा है-'लोकनाथेत्यनेन लोकनाथावतारत्वं ध्वनयति' कि 'लोक-नाथ' पदसे जगत्पति (विष्णु) का अवतार होना सूचित करते हैं] ॥ २ ॥

१०--(अरण्यकाण्ड सर्ग २७)—

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात् प्रसादितः ॥६॥

[खर रामसे लड़ने आ रहा था। परन्तु त्रिशिराने जो विभीषणके समान ही राक्षसोंके स्वभावसे विपरीत भगवद्भक्त था आकर खरसे कहा कि तुम न आओ किन्तु मुझे भेजो। यदि मुझसे राम मारे गये तो हर्षपूर्वक जनस्थान (पञ्चवटी) को लौट जाना, परन्तु यदि मैं मारा गया तो तब तुम रामसे लड़ने जाना। इस प्रकार]—

उस त्रिशिराने [अन्तकालमें भगवत्तत्त्वको पहचानकर उन्हींके हाथसे] मृत्यु पानेके लोभसे खरको प्रसन्न कर लिया [और खरसे आज्ञा पाकर घोड़ोंवाले सुन्दर रथपर त्रिशिरा युद्धमें श्रीरामजीके अभिमुख गया] ॥ ६-७ ॥ [इसी सर्गके श्लोक १७ में रामके लिये 'अप्रमेयात्मा' विशेषण भी दिया गया है।]

११—(अरण्यकाण्ड सर्ग ३१)—

[अकम्पन नामक राक्षसने लङ्कामें जाकर रावणसे जनस्थानस्थित खरादि राक्षसोंके रामद्वारा मारे जाने और अपने बच आनेकी वार्ता कही जिसपर रावणने जनस्थानमें जाकर राम-लक्ष्मणको मार डालनेका निश्चय किया। अकम्पनने निम्नलिखित शब्दोंमें यह बात असम्भव बतलायी और रामके मृत्युका एकमात्र उपाय सीताहरण और तद्वियोग-दुःख बतलाकर रावणको सीतापहरणके लिये प्रेरित किया-]

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः ।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥२३॥
सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् ।
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥२४॥
भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद्विभुः ।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥२५॥
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः ।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥२६॥
न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥२७॥

[चित्रकूट]

भरत मन्दिर

सीताकी रसोई

हनुमान-धारा (२)

अनुसूयाजी (चित्रकूट)

कामतानाथ गिरि २ (चित्रकूट)

भरद्वाज आश्रम (प्रयाग)

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि ।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥२८॥

महायशवाले राम कुपित होनेपर [यमके समान संहारमें प्रवृत्त होते हुए किसीके भी] विक्रमसे [ब्रह्मादि-द्वारा भी] रोके नहीं जा सकते । किन्तु वे बाण-वर्षा करके पूर्ण नदीका वेग रोक सकते हैं [इससे कृष्ण-बलभद्रके अवतारको सूचित किया]॥ २३ ॥ यह श्री-संयुक्त राम ताराओं, ग्रहों और नक्षत्रों समेत आकाशको भी अवसन्न (शून्य) कर सकते हैं [जैसा त्रिविक्रम (वामन) अवतारमें किया था, तथा जलमें डूबनेसे] कष्टावस्थाको प्राप्त होती हुई पृथ्वीका भी उद्धरण कर सकते हैं [जैसा यज्ञवराहा-वतारमें किया था] ॥ २४ ॥ विभु (व्यापक भगवान् राम) समुद्रकी वेला (मर्यादा) को तोड़-फोड़कर [सब] लोकों-को डुबो सकते हैं [जैसा प्रलयकालमें करते हैं] अथवा अपने बाणोंसे समुद्रके वेगको [इससे समुद्रपर सेतु बाँधनेका सामर्थ्य दिखाया है] वा वायु [इत्यादि पञ्चभूतों] को उड़ा सकते हैं ॥ २५ ॥ अथवा महायशवाले वह श्रेष्ठ पुरुष अपने विक्रमसे लोकोंका संहार करके फिरसे प्रजाओंका सृजन करनेको भी समर्थ हैं [यहाँ—'पुनः' और 'अपि'= 'फिर भी'—इन शब्दोंसे सर्वसृष्टि और संहारके व्यापार उन्हींके अधीन बतलाये हैं । इससे यह व्यङ्ग्य होता है कि वे जगत्की स्थिति और संहारके कर्ता हैं । अकम्पन राक्षसको भी ऐसा ज्ञान भगवान्हीकी कृपासे था]॥ २६॥ हे दशग्रीव ! तुम वा राक्षसोंका समूह भी रामको रणमें नहीं जीत सकते जैसे पापी लोग स्वर्गको नहीं [पा सकते] ॥ २७ ॥ सब देवासुर [मिलकर] भी उनका वध नहीं कर सकते [ऐसा] मैं मानता हूँ [अर्थात् तुम्हारे पुत्रद्वारा जीते हुए इन्द्र भी यदि तुम्हारा साहाय्य करें तो भी राम-को नहीं जीत सकते] उनके वधका [केवल] यह (आगे कहा हुआ) उपाय है इसलिये मेरे [मुख] से [तुम] एकाग्रमन होकर सुनो ॥ २८ ॥

१२—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६४)—

[जैसा आशय अकम्पन राक्षसके वाक्य (सर्ग ३१ श्लोक २३-२८) का है वैसे स्वयं श्रीरामजी अपने विषयमें कहते हैं—]

यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः ।
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥
तथाऽहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ ७५ ॥
पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां
दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
स-देव-गन्धर्व-मनुष्य-पन्नगं
जगत् सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥७६॥

हे लक्ष्मण ! जैसे जरा (बुढ़ापा), मृत्यु, काल, विधि (भाग्य), सभी प्राणियोंमें कभी रोके नहीं जा सकते वैसे ही मैं भी क्रोधसंयुक्त हुआ निःसन्देह रोका नहीं जा सकता ॥ ७५ ॥ यदि मैथिली सीताको पहले जैसी सुन्दर नहीं लौटाते हैं तो मैं देवों, गन्धर्वों, मनुष्यों, नागों और पर्वतों-समेत जगत्को नाश करनेको तैयार हूँ [यह मानुषदेह धरके लीलामात्र क्रोधका प्रकाशन है सही, किन्तु अपने विषयमें असम्भव बात बोलनेकी आशा रामसे नहीं की जा सकती । अतः जगत्का नाश करनेके सामर्थ्यसे वे अवश्य भगवद्वतार करके ही रामायणकारको इष्ट हैं] ॥७६॥

१३—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६६)—

[सीताहरणपर शोकाकुल हुए रामको प्रलयाग्निके समान लोकोंके विनाशके लिये उद्युक्त, और जैसे कभी पहले नहीं देखे गये थे वैसे संक्रुद्ध होकर, युगान्तकालमें शिवजीके समान, सर्व जगत्को भस्म करनेके लिये सन्नद्ध देखकर लक्ष्मणका तो लोकविनाशके भयसे मुख सूखने लगा । लक्ष्मणने विनयपूर्वक रामसे प्रकृतिस्थ होनेकी प्रार्थना करने और बहुत कुछ समझानेके पश्चात् यह निवेदन किया कि पहले हमलोग सर्व लोकोंको तबतक ढूँढें जबतक सीताऽपहारीका पता न लगे । फिर भी यदि साम(शान्त उपाय) से देवता लोग सीताको न फेरेंगे तो समयानुसार लोकनाशके लिये शरसन्धान कीजियेगा (सर्ग ६५) । (सर्ग ६६) इतनेपर भी जब राम प्रकृतिस्थ न हुए तब बहुत बहुत समझाते हुए लक्ष्मणजी अन्तमें बोले—]

मामेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान् ।
अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद् बृहस्पतिः ॥१७॥
बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया ।
शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम्॥१८॥
दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् ।
इक्ष्वाकुवृषभाऽवेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे॥१९॥
किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ ।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि॥२०॥

हे वीर ! मुझको ही तुमने पहले बहुत कुछ समझाया है । तुम्हें भला कौन शिक्षा देगा, साक्षात् बृहस्पति भी

[नहीं सिला सकता, तब अन्यकी कौन गिनती है]॥ १७॥ हे महाप्राज्ञ, और तुम्हारी बुद्धिको तो देवता भी नहीं पहुँच सकते [इससे ईश्वरता सूचित की। तब मैं तो केवल] शोकके कारण सोये हुए तुम्हारे [ही] ज्ञानको [मानो] जगा रहा हूँ ॥ १८॥ हे इक्ष्वाकुकुलश्रेष्ठ, और अपने दिव्य तथा मानवी (दोनों ही प्रकारके) पराक्रमको देखते हुए [अर्थात् दिव्य पराक्रमके लिये यह उपयुक्त समय नहीं है इसका विचार करते हुए केवल मानवी-पराक्रमका उपयोग करके] शत्रुवधमें प्रयत्न करो ॥१९॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें सर्व [लोकों] का विनाश करनेसे क्या [लाभ होगा] ? किन्तु ढूँढ़कर केवल उसी पापीका उन्मूलन करना चाहिए ॥ २०॥

[सर्व लोकोंके विनाशका सामर्थ्य और दिव्य पराक्रम मनुष्यमात्रमें होना असम्भव है। इससे रामजी अवश्य विष्णववतार ही थे।]

१४—(किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १८)—

[सर्ग १६ में रामके द्वारा बाणविद्ध होनेपर सर्ग १७ में बालीने रामपर अनेक कटु आक्षेप किये थे और उत्तर माँगकर चुप हो गया था। सर्ग १८ में जब श्रीरामजीने सब आक्षेपोंका समुचित उत्तर दे दिया तब (श्लोक ४४) बालिको श्रीरामजीपर मिथ्या अभियोग लगानेके कारण बड़ा पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ और धर्मविषयमें निश्चय हो जानेसे जब उसके मनमें रामका एक भी दोष न रहा तब वह हाथ जोड़कर रामसे बोला—]

त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ।।५७।।
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ।।५८।।

शराभितप्तेन विचेतसा मया
प्रभाषितस्त्वं यदजानता विभो।
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम
प्रसादितस्त्वं क्षम मे हरीश्वर ।।६६।।

तुमसे [अपना] वध चाहता हुआ मैं ताराके द्वारा रोका जाता हुआ भी [अपने] भ्राता सुग्रीवसे द्वन्द्वयुद्ध [करने] आया ।।५८।।......।। हे महेन्द्रके समान भयानक विक्रमवाले, हे सर्वव्यापक, हे हरीश्वर (देवराज इन्द्रके भी स्वामी भगवन् विष्णो), बाणसे पीड़ित और विक्षिप्तचित्त होते हुए अज्ञानवश (अर्थात् आप भगवान् हैं इस बातको भूलकर) मैंने आपको जो कुछ कह डाला, प्रसन्न होकर आप मेरा वह [दुर्वचन] क्षमा करें ॥ ६६ ॥

१५—(किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २४)—

[तारा बालिवधसे अत्यन्त आर्त होकर, इन्द्रसदृश और दुरासद एवं विशुद्धसत्त्ववाले महानुभाव श्रीरामजीके समीप जाकर बोली—]

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च
जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च,
क्षितिक्षमवान् क्षतजोपमाक्षः ।।३१।।

तुम अप्रमेय (अर्थात् देश और कालके परिच्छेदसे रहित तथा गुणोंकी इयत्ता करके दुर्ज्ञेय) और दुरासद (अर्थात् योगियोंको भी प्राप्त होनेके लिये अशक्य) और जितेन्द्रिय (अर्थात् हृषीकेश या इन्द्रियातीत) [यहाँ तक रामका निर्गुण ब्रह्म होना प्रतिपादन करके आगे उनके सगुण रूपकी स्तुति करती है] और उत्तम (अर्थात् पुरुषोत्तम विष्णु भगवान्) के धर्मों [को धारण करने] वाले हो। तुम्हारी कीर्ति [सदा] अक्षीण [बनी रहती है अर्थात् किन्हीं ऐसे कर्मोंसे भी, जो पापके समान आभासमान हो, कभी क्षीण नहीं होती] है और [तुम] विचक्षण (विशेष ज्ञानवान्), पृथिवीके सदृश क्षमावान् तथा रक्तनेत्रोंवाले हो ॥ ३१ ॥

मारुति (हनूमानूजी) ने रामको क्या माना है—

१६—(सुन्दरकाण्ड सर्ग १३)—

[सीतान्वेषणके लिये लङ्कामें पहुँचे हुए हनूमान् अशोकवनिकामें मनसे भी पहुँचनेके पूर्व इष्टदेवतादिको प्रणाम करते हैं—]

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ।।५७।।
स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः ।।५८।।

[यहाँ हनूमान्जी रुद्रादि देवताओंसे भी पूर्व राम, लक्ष्मण और सीताको नमस्कार करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि वे इनको रुद्रादि देवोंके भी ऊपर (अर्थात् साक्षात् विष्णु और लक्ष्मीके अवतार) होनेसे अपना इष्टदेव मानते हैं। और क्रम भी इसी बातका सूचक है क्योंकि सबसे प्रथम [राम-लक्ष्मणरूप] भगवान् और उनकी मायाको, फिर

उनसे छोटे अन्यान्य देवताओंको, फिर उनसे भी छोटे अपने राजा (स्वामी) सुग्रीवको नमस्कार किया। यदि वे राममें मनुष्यत्व-बुद्धि रखते होते तो देवताओंके पश्चात् उन्हें नमस्कार करते। यह बात भी विशेष ध्यान देनेके योग्य है कि उक्त देवताओंमें कहीं विष्णुका नाम नहीं लिया—यद्यपि रामायणके मतानुसार विष्णु ही इन्द्र-रुद्रादि सबसे बड़े गिने जाने चाहिए थे। यदि रामको नमस्कार करनेसे ही विष्णुके लिये भी नमस्कार गतार्थ न होता तो मुख्य दो-तीन देवताओंकी भी गणनामें विष्णुका नाम न छोड़ा जा सकता।]

१७—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ३०)—

यथा तस्याऽप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।।६।।

[यहाँ भी हनूमान्‌जी रामके लिये 'अप्रमेय' शब्दका (अर्थात् जिनका स्वरूप और गुण देश-काल वा इयत्तासे परिच्छेद्य नहीं है) प्रयोग करके रामका साक्षात् ब्रह्म होना सूचित करते हैं।]

१८—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ५१)—

[तथापि यदि सन्देह हो तो हनूमान्‌जीके रामविषयक वर्णनसे जो उन्होंने रावणके समक्ष किया था रामजी स्वयं ही जगत्के स्थिति-उत्पत्ति-संहार-कर्ता और सर्वलोकोंके ईश्वर सिद्ध होते हैं—]

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ।।३८।।
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।।३९।।

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ।।४२।।

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य
स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ।।४३।।

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ।।४४।।

हे राक्षसराजोंके राजा (रावण तू) मुझ रामजीके दास [यह विशेषण इस कारणसे दिया है कि समीप रहनेके कारण दासको अपने स्वामीकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान होता है अतएव उसकी बात विश्वासके योग्य है] विशेषतः दूत [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि दूतका अधिकार हितके उपदेशमें होता है और वह विपक्षीकी बातको ज्यों-का-त्यों दुहराता है जिससे उसके कहे हुए समाचारमें शङ्का करनेका अवकाश नहीं] (और एक) वानरके [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि मैं न तो रामकी (मनुष्य) जातिका और न तुम्हारी (राक्षस) जातिका हूँ किन्तु एक तीसरी जातिका होनेसे पक्षपातरहित होकर न्याय्की बात कहूँगा। तीनों विशेषणोंसे अपना सत्यवक्ता होना प्रमाणित किया है] सत्य वचनको सुन ॥३८॥ महायशवाले राम [समस्त] चराचर भूतों (अर्थात् सब जातियोंके प्राणियों) सहित सब लोकोंको सम्यक् संहार करके फिरसे उसी प्रकार सृजनेको समर्थ हैं [इससे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और संहारका कर्ता होना बतलाया] ॥३९॥..........॥ 'सभी लोकोंके ईश्वर' एवं राजश्रेष्ठ रामका इस लोकमें ऐसा अपकार करके तेरा जीवन [बचना] असम्भव है ॥४२॥ हे निशाचरोंके राजा (रावण), देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, यक्ष सभी लोग 'तीनों लोकोंके नियन्ता' श्रीरामजी-के समक्ष युद्धमें नहीं ठहर सकते हैं ॥४३॥ ब्रह्माजी [जो] स्वयं उत्पन्न होनेवाले (सर्वादि हिरण्यगर्भ) [तथा] चार मुखोंवाले (अर्थात् सर्वज्ञ) [हैं], अथवा रुद्र (शिवजी) [जो] तीन नेत्रोंवाले (अर्थात् तीसरे ज्ञानरूपी नेत्रसे अज्ञानजनित कामादिको भस्म करनेवाले) [तथा] त्रिपुरका अन्त करनेवाले [हैं], अथवा इन्द्र [जो] महाऐश्वर्यवाले [तथा] देवताओंके नायक [हैं] (अर्थात् जगत्‌की उत्पत्ति तथा संहार करनेमें समर्थ और महाबली देवता भी कोई) रामजीके [आगे] युद्धमें नहीं ठहर सकते ॥४४॥

[हनूमान्‌जीने जैसे यहाँ रावणके सामने अपनेको 'तीनों लोकोंके ईश्वर भगवान् राम' का 'दास' कहा है वैसे ही (सीताजीके सामने सुन्दरकाण्ड सर्ग २१ श्लोक २०, इत्यादि) अन्य स्थलोंमें भी अपनेको उन्हींका दास कहा है। परन्तु लौकिक दृष्टिसे तो हनूमान्‌जी अपनेको सुग्रीवका ही दास कह सकते थे। रामके दास तो उनमें अवतारदृष्टि रखनेके ही कारण अर्थात् परम वैष्णव होनेके ही कारण थे। इस उद्धरणमें भी ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्रका तो नाम है परन्तु विष्णुका नाम केवल इसीलिये नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णुके अवतार थे।]

युद्धकाण्डके प्रमाण

१६—(युद्धकाण्ड सर्ग १७)—

[रावणका पक्ष छोड़कर आया हुआ विभीषण अपने आनेका समाचार रामके पास पहुँचानेके लिये कहता है—]

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥१६॥
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥१७॥

[मेरी बात न माननेवाले] उस (रावण) से कठोर वचन कहा हुआ और दासके समान अपमानित हुआ मैं वह (विभीषण अब) पुत्रों और स्त्री [सब] को छोड़कर श्रीरामजीके शरण आया हूँ [इससे विभीषणने एक सच्चे वैष्णवके समान 'आत्मनिवेदन' को दर्शाया है] ॥१६॥ सब लोकोंके शरण्य [तथा जगत्‌के] महान् आत्मा रामसे शीघ्र मुझ विभीषणको उपस्थित हुआ निवेदित करो ['महात्मने' और 'सर्वलोकशरण्याय' पर तिलकव्याख्याकारने लिखा है कि विश्रवाके द्वारा कैकसीको दिये गये—'मम वंशानुरूपश्च (यः स) धर्मात्मा च भविष्यति (च न संशयः)'—इत्यादि (उत्तरकाण्ड सर्ग ९ श्लोक २७) वरदानके अनुसार 'सात्त्विक' होनेके कारण और ब्रह्माजीसे भी उसी प्रकारका वर पाये होनेके कारण विभीषण रामके विषयमें यह जानता था कि वे सर्वलोकस्रष्टा और सर्वलोकान्तर्यामी भगवान्‌का अवतार हैं एवं सब लोकोंके शरण्य और महान् आत्मा हैं] ॥१७॥

यहाँ 'महात्मने' का अर्थ—

२०—किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥

(वा० यु० का० । ८३ । ४३)

अर्थात् [मायामयी सीताको वास्तविक सीता जानकर इन्द्रजित्‌से आहत हुई देखकर हनुमान्‌ने जब यह संवाद रामसे निवेदित किया तब वे शोकसे अत्यन्त विह्वल हो गये । उन्हें समझाते हुए लक्ष्मणजीने कहा कि हे दीर्घ-भुजाओंवाले और राक्षस क्षयका व्रत-धारण-करनेवाले नरश्रेष्ठ (राम) उठो] क्या तुम अपनेको महान् आत्मा (अर्थात् 'परमात्मा'—तिलकव्याख्या) नहीं जानते [जो ऐसा शोक करते हो]--इस स्थलके समान 'परमात्मा' ही लेना होगा । तथापि यदि कोई हठवश न माने, तो 'सर्वलोकशरण्याय' का अन्य अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि हमारे प्रदर्शित अनेक स्थलोंमें 'लोक' का अर्थ 'पृथिव्यादि' लिया गया है न कि 'प्रजाजन ।' अतः इन विशेषणोंसे ऐसे स्थलोंमें रामायणकारको रामजी भगवदवतार करके ही इष्ट हैं ।

२१—(युद्धकाण्ड सर्ग १७)—

[विभीषणके भावकी परीक्षाके सम्बन्धमें वानर लोग रामसे कहते हैं—

अज्ञातं नास्ति ते किञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव ।
आत्मानं पूजयन् राम पृच्छस्यस्मान् सुहृत्तया ॥२५॥

हे राम, तुमको तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है (अर्थात् तुम 'सर्वज्ञ' भगवान् हो) तथापि हे राम ! तुम अपने आपको ही बड़ा बनाते हुए (अर्थात् अपने ही बड़प्पनके कारणसे) हमें सुहृद्भावसे पूछते हो ॥२५॥

२२—(युद्धकाण्ड सर्ग १८)—

[विभीषणके विषयमें जब सुग्रीवने कहा कि यह कुटिल राक्षस रावणका भ्राता है और इसलिये आया है कि आप या लक्ष्मण या मैं जब इसकी ओरसे विश्वस्त हो जावें तो यह हमपर प्रहार करे, तब रामने इसपर विचार करके शुभ्रतर उत्तर दिया—]

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥२२॥
पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥२३॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥३३॥

वह चाहे दुष्ट हो अथवा अदुष्ट, [परन्तु] क्या यह राक्षस किसी प्रकारसे मेरा अणुमात्र भी अहित कर सकता है ? ॥ २२ ॥ [क्योंकि] हे वानरराज [यदि मैं] चाहूँ [तो सभी] पिशाचों, दानवों, यक्षों और पृथिवीभरके उन (रावणादि समस्त) राक्षसोंको [केवल] अङ्गुलीके अग्रभागसे ही मार डालूँ [इससे राम भगवान्‌ने अपने विषयमें 'सङ्कल्पसिद्धि'रूप ईश्वरताका चिह्न दर्शाया है । यद्यपि मुझे अपने अतिरिक्त किसी दूसरे सहायकी आवश्यकता नहीं है तथापि मेरे अवतारका प्रयोजन मनुष्योंको संसारकी मर्यादा सिखाना ही है अतएव मैं मानुषमर्यादामें स्थित होकर तुम-जैसे सहायकी प्राप्ति इत्यादि व्यवहारकी अपेक्षा रखता हूँ—यह तिलकव्याख्याकारका आशय है] ॥ २३ ॥············॥ मेरा यह व्रत है कि जो एक ही (स्वात्मरूपा अनन्य) वृत्तिसे

मुझे प्राप्त होता है अथवा (औपाधिक भेदका अवलम्बन करके सेवक-स्वामी, शिष्य-गुरु, रक्ष्य-रक्षक इत्यादि भावसे उपासना करता हुआ) मैं तुम्हारा हूँ इसप्रकार याचना करता है उसे सब प्राणियोंकी ओरसे अभय प्रदान करता हूँ [इसपर भी व्याख्याकारने अत्युत्तम विस्तृत व्याख्यान किया है जिससे रामके भगवदवतार होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है] ॥३३॥

२३—(युद्धकाण्ड सर्ग १६)—

[विभीषण चार राक्षसों समेत आकर रामके चरणोंमें प्रणाम करके स्वयं आत्मनिवेदन करता है—]

> अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥४॥
> भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ।
> परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥५॥
> भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥६॥

मैं रावणका छोटा भाई और उससे अपमानित हुआ आपके शरण आया हूँ क्योंकि आप सब भूतोंके शरणके स्थान हैं। [यहां 'लोक' शब्दके स्थानमें 'भूतों' अर्थात् 'प्राणियों' का नाम लेनेसे अधिकतर स्पष्टरूपसे रामका भगवदवतार होना सूचित किया है।] मैंने लङ्का और मित्रों और धन [सभी] को [आपके लिये] छोड़ दिया है ॥४-५॥ क्योंकि मेरा राज्य, जीवन, और [सभी] सुख आपहीके अधीन हैं [इससे सर्वज्ञ भगवान् राम अवश्य रावणका वध करेंगे यह निश्चय व्यङ्ग्य है] ॥६॥

२४—(युद्धकाण्ड सर्ग ३४)—

[रावणकी जननी और वृद्ध मन्त्रीकी रावणसे कही हुई बातको उन्हीं शब्दोंमें सरमा सीतासे कहती है कि (श्लो० २१) मैथिली (सीताजी) को सत्कारपूर्वक रामके समर्पण करो क्योंकि जनस्थानमें उनका जो अद्भुत (अलौकिक) कर्म देखा गया है वही उनके पराक्रमका पर्याप्त निदर्शन (नमूना) है]

> लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।
> वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो युधि ॥२२॥

[बल्कि रामका एक अनुचर अकेला हनूमान् ही सब राक्षसोंको जीत सकता है यथा] हनूमान्का समुद्रको लाँघना, [सीताको] देखना, और [रामका खरादि] राक्षसोंको युद्धमें मारना, यह सब युद्धमें कौन मनुष्य कर सकता है ? [इसलिये न तो हनूमान् वानर हैं और न राम मनुष्य हैं, किन्तु सब देवावतार हैं—(तिलकव्याख्या)] ॥२२॥

२५—(युद्धकाण्ड सर्ग ४०)—

[न केवल हनूमान् ही किन्तु सुग्रीव भी रामको 'लोकनाथ' और अपनेको रामकी ओरके भावानुसार 'मित्र' होता हुआ भी अपनी ओरके भावानुसार 'रामका दास' मानता था जैसा उसने रावणको ललकारते हुए कहा है—]

> लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।
> न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥१०॥

हे राक्षस ! मैं 'लोकोंके नाथ' रामका सखा और दास हूँ। मैं राजाओंके राजा (राम) के तेजसे (अनुगृहीत हुआ) आज तुझे न छोड़ूँगा ॥१०॥

२६—(युद्धकाण्ड सर्ग ५०)—

[राम और लक्ष्मणको शरविक्षत तथा मोहापन्न देखकर जब विभीषण निराश होकर विलाप करने लगा तब सुग्रीवने कहा कि हे धर्मज्ञ विभीषण ! लङ्कामें सपुत्र रावणका मनोरथ पूरा होनेका नहीं है बल्कि तू ही लङ्काका राजा होगा और—]

> गरुडाधिष्ठितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
> त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥२२॥

गरुडसे अधिष्ठित हुए ये दोनों, राम और लक्ष्मण, मोह छोड़कर रणमें अनुयायियों समेत रावणको मारेंगे [विभीषणको सान्त्वना देनेवाले इस वाक्यसे सुग्रीवने अपना, रामजी के सम्बन्धमें भगवदवतार होनेका, ज्ञान सूचित किया] ॥२२॥

[(श्लो० ३६) तब एक मुहूर्तके पश्चात् वानरोंने विनताके पुत्र महाबली गरुडको प्रज्वलन्त अग्निके सदृश देखा और (श्लो० ३७) गरुडको आया देखकर वे नाग जिन्होंने शर बनकर राम-लक्ष्मणको बाँध रखा था भाग खड़े हुए। (श्लो० ३८-३९) तब गरुडके हस्तस्पर्शसे उनके सब घाव (व्रण) भर गये और (श्लो० ४०) उनका रूप, बलादि पहलेसे दूना निखर आया। (श्लो० ४४-४५) रामके पूछनेपर गरुडने अपना परिचय इसप्रकार दिया—]

> अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
> गरुत्मानिह संप्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥४६॥

मैं तुम्हारा बाहिर सञ्चरण करनेवाला प्राण एवं प्रिय मित्र गरुड तुम दोनोंकी सहायताके हेतु यहाँ आया हूँ [बहिःसञ्चारी 'प्राण' कहनेसे गरुडने विष्णववतार राम-लक्ष्मणके साथ विष्णुवाहनके रूपसे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। अन्यथा श्लोकके पूर्वार्द्धका अर्थ असंगत होगा] ॥४६॥

२७—(युद्धकाण्ड सर्ग ५९)—

[रावणने लक्ष्मणके शक्तिबाण लगनेपर, इस भयसे कि पूर्वसदृश कहीं फिर भी न जी उठे, रामको असहाय कर देनेके अभिप्रायसे, लक्ष्मणको समुद्रमें फेंक देनेके लिये उठाना चाहा। परन्तु—]

हिमवान् मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः ॥१०९॥
शक्त्या ब्राह्म्या तु सौमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे।
विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥११०॥
ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥१११॥

हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥११६॥
आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्।
वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः।
शत्रूणामप्रकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत् कपेः ॥११७॥

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥१२०॥

गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥१२६॥
तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
क नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि ॥१२७॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान् वा
स्वयम्भुवैश्वानरशङ्करान् वा।
गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा
तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥१२८॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः।
वायुपुत्रं महावेगं वहन्तं राघवं रणे ॥१३१॥
रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन्।
आजघान शरैर्दीप्तैः कालानलशिखोपमैः ॥१३२॥

[जिस रावणके लिये] हिमालय, मन्दर, मेरु (ये पर्वत) अथवा देवताओं सहित तीनों लोकका (तो) भुजाओंसे उठा लेना सहज था [वह] भरतके छोटे भाई (लक्ष्मण) को न उठा सका ॥१०९॥ [क्योंकि] सुमित्राके पुत्र (लक्ष्मण) ने वक्षःस्थलके मध्यमें ब्राह्मी शक्तिद्वारा आहत होते हुए भी, अपने आपको, निःसंशय विष्णुके अंश होनेका (अथवा चिन्तन न किया जा सकनेवाला विष्णुका भाग अपने प्रति) अनुस्मरण किया [तिलकव्याख्या—अपनी ही वस्तु अपने आप (अर्थात् स्वामी) को नहीं मारती है इस आशयसे लक्ष्मणने ब्रह्मशक्तिमूलक आपत्तिसे अपना रक्षण करनेके लिये 'मैं भगवान्के तेजका अंश ही हूँ' ऐसा ध्यान किया। माया-मानुष-शरीर-धारीका ऐसा ध्यान करना औरोंकी दृढ़ प्रतीतिके लिये है, परन्तु सर्वदा नहीं होता। इसप्रकार लक्ष्मणने 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी भावनाके द्वारा अपने शरीरको भारी कर दिया था, यह स्पष्ट है] ॥११०॥ तब (अर्थात् लक्ष्मणके अपनी महिमाका अनुसन्धान करनेपर) देवोंका कण्टक (रावण) दानवोंके दर्पका हनन करनेवाले सुमित्रापुत्र (लक्ष्मण) को (दो) बाहुओंसे दबाकर हिलाने-डुलानेमें भी समर्थ न हो सका [तब उठा लेनेमें तो क्या समर्थ होता] ॥१११॥ ··········॥ तदनन्तर रावणसे पीड़ित उन लक्ष्मणजीको तेजस्वी हनूमान् अपनी भुजाओंसे परिग्रहण करके रामके समीप ले आये। वह (लक्ष्मणजी) शत्रुओं (अर्थात् रावण तथा उसके सहायभूत अनुचरों) के लिये अप्रकम्प्य (हिलाने-डुलानेको अशक्य) होते हुए भी वायुपुत्र वानर (हनूमान्) के लिये मित्रभाव और परमभक्तिके कारण लघु (हलके) हो गये [भगवान् वा भगवदवतारोंका यह केवल भक्तोंके सहज वश होना स्वाभाविक ही है] ॥११६-११७॥ ············॥ शत्रुविनाशक लक्ष्मण अपने विषयमें विष्णुके निःसंशय वा अचिन्त्य अंश [होने] का अनुस्मरण करते हुए आश्वस्त (शान्तियुक्त) और विशल्य (घाव-रहित अर्थात् सब गात्रोंमें नीरोग) [हो गये] ॥१२०॥ ············॥ [क्रुद्ध हुए] राम गम्भीर वाणीसे राक्षसोंके राजा (रावण) से बोले ॥१२६॥ हे राक्षससिंह, ठहर ठहर, तू मेरा ही ऐसा अपकार करके भला कहाँ जाकर छुटकारा पावेगा? ॥१२७॥ यदि तू इन्द्र, यम और सूर्यके अथवा स्वयम्भु (ब्रह्माजी), अग्नि और शङ्कर (शिवजी) के शरण वा दश प्रकारकी दिशाओं [के अन्तों] में भी जावेगा तो भी [वहाँ] गया हुआ [भी] आज मुझसे नहीं छूट सकता (अर्थात् आज मैं तुझे न छोड़ूँगा) [वहाँ भी

ब्रह्मा, शङ्करादि देवोंके साथ विष्णुका नाम नहीं है क्योंकि राम स्वयं ही विष्णु थे] ॥१२८॥ रामका वचन सुनकर महाबलवान् राक्षसराज (रावण) ने महारोष (अतिक्रोध) से आविष्ट होते हुए और 'पूर्व वैरका अनुसरण करते हुए,' महावेगवाले वायुसुत (हनूमान्) को [जो] रथमें रामको [अपने ऊपर] चढ़ाये हुए [थे], प्रलयकालकी अग्निज्वालाओं सरीखे दीप्त शरोंसे मारा [यहाँ रावणका 'पूर्ववैर' या तो हनूमान्से या रामसे होना चाहिये। वर्तमान शरीरोंमें दोनोंसे उसका वैर नवीन ही था जो 'पूर्व' नहीं कहा जा सकता। हनूमान्‌जीके वर्तमान शरीरसे पूर्व रावणका वैर उनसे तो कुछ नहीं था किन्तु उनके पिता वायुसे इसलिये था कि वे भी उसके शत्रु देवोंमेंसे एक थे। परन्तु यह वैर भी कुछ विशेष तीव्र नहीं हो सकता। अतः रावणके अपने हिरण्यकशिपु आदि पूर्वजन्मोंमें जो वैर नृसिंहाद्यवतारधारी विष्णुसे था उसीसे यहाँ रामायणकारका अभिप्राय प्रतीत होता है] ॥१३१-१३२॥

२८—(युद्धकाण्ड सर्ग १०८)—

[इन्द्रके भेजे हुए रथके सारथि (मातलि) ने राम और रावणके युद्धको रात-दिन मुहूर्त-क्षण कभी न रुकनेवाला देखा, और रामके जयको अबतक न देखा]

> अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ।
> अजानन्निव किं वीर त्वमेवमनुवर्तसे ॥१॥
> विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।
> विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥२॥
> ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ।
> जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३॥

तब तो मातलिने उसी समय रामको स्मरण दिलाया कि हे वीर! तुम क्यों ऐसा व्यवहार कर रहे हो, मानो जानते हो न हो ॥१॥ [इसे] मारनेके लिये 'हे प्रभो' तुम पितामहका (ब्राह्म) अस्त्र इसकी ओर चलाओ। देवताओंने [इसके] विनाशका जो समय कहा था वह अब चालू है ॥२॥ तब मातलिके उस वाक्यसे स्मरण दिलाये हुए उन (विष्ण्ववतार) रामने निःश्वास लेते हुए सर्पके समान दीप्त शर (ब्रह्मास्त्र) को ग्रहण किया ॥३॥

[यहाँ देवेन्द्रका सारथि देवलोकनिर्णीत बातोंका 'स्मरण' रामको विष्ण्ववतार होनेके कारण ही दिला सकता है। मनुष्यमात्र होकर राम मातलिके कहनेपर भौचक-से देखते रह जाते और मातलिका स्मरण दिलाना भी बिल्कुल असङ्गत होता।]

२९—(युद्धकाण्ड सर्ग १११)—

[रावणकी ज्येष्ठ पत्नी मन्दोदरी पतिको रामके हाथसे मरा हुआ देखकर विलाप करने लगी (श्लोक १-२)। उसे विश्वास न हुआ कि देवादि सर्व जगत्को दहलानेवाले रावणको मानुषमात्र रामने क्योंकर मारा (श्लोक ३-८)! अथवा स्वयं यमराज रामरूपसे मायाका प्रयोग करके आये होंगे (श्लोक ९)। अथवा इन्द्रने (रामरूप धारण करके) तुम्हें मारा होगा, परन्तु तुम-जैसे महाबलीके सामने युद्धमें खड़े होनेकी भी शक्ति तो बेचारे इन्द्रमें नहीं है (श्लोक १०-११)। अतः—]

> व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ॥११॥
> अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ।
> तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ॥१२॥
> श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ।
> मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१३॥
> सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः ।
> सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥१४॥
> सराक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् ।
> इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥१५॥
> स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ।
> यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥१६॥
> खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः ।
> यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ॥१७॥
> प्रविष्टो हनुमान् वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ।
> क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥१८॥
> उच्यमाने न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ॥१९॥
> पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२३॥

यह (राम) प्रकटरूपसे (सचमुच ही) महायोगी (अर्थात् स्वाभाविक सर्वशक्तियुक्त भगवान् योगेश्वर) सनातन (सदा रहनेवाले) परमात्मा (अर्थात् सर्व आत्माओंके भी अन्तर्यामी आत्मरूप ईश्वर) ॥११॥ आदि (जन्म) मध्य (वृद्धि) और निधन (नाश) से रहित, महत्से भी परम महान् ['महतो महीयान्' श्रुतिके अनुसार], तमः (अज्ञान) से परे ['तमसः परस्तात्' श्रुतिके अनुसार], धाता (सब भूतोंके सृजनेवाले) ['यतो वा इमानि भूतानि

आपन्ते' श्रुतिके अनुसार], [अब उनके विग्रहगुणोंको कहती है—] शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले ॥१२॥ हृदयमें श्रीवत्स [का चिह्न धारण करने] वाले, जिनसे लक्ष्मी कभी पृथक् नहीं होती, जो जीते नहीं जा सकते, शाश्वत (अपक्षय नामक भावविकारसे रहित), ध्रुव (परिणामरहित) [यहाँतक भगवान्‌को छओं भावविकारोंसे रहित बतलाया], मनुष्यका रूप धारण किये हुए और सत्य पराक्रमवाले विष्णु ही हैं ॥१३॥ [जो] वानररूपको प्राप्त हुए सब देवोंसे घिरे हैं (अर्थात् ऐसे देवोंको अपना सहाय बनाये हुए हैं । लोकोंकी हितकामनासे [ऐसे] श्रीमान् सर्वलोकेश्वरने देवोंके भयानक शत्रु [रूप तुमको] राक्षसपरिवारसमेत मारा है । तुमने पहले इन्द्रियोंको [कठिन तपस्याद्वारा] जीतकर [तब] त्रिलोकीको जीता था । मानो उसी वैरका स्मरण करते हुए इन्द्रियोंने तुम्हें जीत रक्खा था [जिससे तुम सीताऽपहरणमें प्रवृत्त हुए और अन्तमें मारे गये] । ठीक उसी समय जब जनस्थान (पञ्चवटी) में बहुत-से राक्षसोंसे संयुक्त भ्राता खर मारा गया था [यह सिद्ध हो चुका था कि] राम मनुष्य नहीं (किन्तु साक्षात् ईश्वर) हैं । ठीक उसी समय जब देवताओंको भी अगम्य लङ्कानगरीमें हनूमान् घुस आए थे [उनके] बलसे हमलोग व्यथित हो चुके थे । मेरी कही हुई इस बातको कि रामसे सन्धि कर लो जो तुमने ग्रहण नहीं किया उसीका यह फल प्राप्त हुआ है ॥१४—१६॥······॥ हे ! मेरे स्वामी तुम निश्चय पतिव्रता (सीता) के शापसे दग्ध हुए हो ॥२३॥

३०—(युद्धकाण्ड सर्ग ११७)—

[(श्लोक १—५) सीताके अग्निप्रवेशके समय जब राम खिन्नचित्त हुए तब कुबेर, यम, पितृगण, १००० नेत्रोंवाले इन्द्र, जलेश्वर वरुण, त्रिनेत्र वृषध्वज महादेवजी, सर्वलोककर्ता ब्रह्माजी, इन सब देवोंने विमानोंद्वारा लङ्कामें रामके समीप आकर कहा—]

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः ।
································ ।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे ॥६॥
ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ।
त्रयाणामपि लोकनामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥७॥
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः ।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ॥८॥
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप ।
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥९॥

इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ।
अब्रवीत् त्रिदशश्रेष्ठान् रामो धर्मभृतां वरः ॥१०॥
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे ॥११॥
इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यपराक्रम ॥१२॥

(आर्ष-स्तव)

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥१३॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥१४॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥१५॥
सेनानीर्ग्रामणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्त्वं क्षमा दमः ।
प्रभवश्चाऽव्ययश्च त्वामुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥१६॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥१७॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः ।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥१८॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परात्परः ॥१९॥
प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति ।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥२०॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च ।
सहस्रचरणः श्रीमाञ् शतशीर्षः सहस्रदृक् ॥२१॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥२२॥
त्रीँल्लोकान्धारयन्राम देवगन्धर्वदानवान् ।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥२३॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो ।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥२४॥
संस्कारास्त्वभवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥२५॥

अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ २७ ॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर ॥ २८ ॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥ २९ ॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥ ३० ॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥
इममार्षस्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ३२ ॥

[यहाँ सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिये कि उक्त देवोंके साथ विष्णुके आनेका कोई प्रसङ्ग इसीलिये नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णु हैं ।] (तुम) सब लोकके कर्ता [रामके मनुष्य शरीरके विषयमें सर्वलोककर्ता इत्यादि विशेषण उनके मूल (विष्णु) स्वरूपके अभिप्रायसे ही दिये गये हैं -तिलकव्याख्या ।] ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, और विभु (सर्वव्यापक) [होते हुए भी] क्योंकर अपने आपको [इन्द्रादि] देवगणोंमें श्रेष्ठ नहीं समझते [क्योंकि 'विष्णु-मुखा वै देवाः' यह श्रुति भी विष्णुको (अर्थात् तुम्हें) ही सब देवोंमें प्रमुख बताती है] ॥६॥ [कतकव्याख्यामें 'ऋतधामा' इत्यादि तीन श्लोक (७—९) स्वीकार नहीं किये गये हैं । तीर्थव्याख्यामें इनका व्याख्यान अधोलिखित प्रकारसे किया गया है—] पूर्व (अर्थात् पूर्वकल्पमें अथवा सृष्टिसे पूर्व तुम) वसुओं [के मध्य] में ऋतधामा नामक वसु और प्रजापति [हुए थे तथा] तीनों ही लोकोंके आदिकर्ता (अर्थात् अण्ड और अण्डाधिपतिरूप आदि-सृष्टिके कर्ता, एवं) स्वयंप्रभु (अर्थात् सबके नियन्ता होते हुए स्वयं किसीसे नियमित न होनेवाले) हो ॥७॥ रुद्रोंमें आठवें रुद्र (अर्थात् महादेवजी) और साध्योंमें पाँचवें (अर्थात् वीर्यवान् नामक) भी [तुम्हीं हो] । [विराट्-रूपका वर्णन करते हैं—] दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे (दोनों) कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा [तुम्हारी दोनों] आँखें हैं ॥८॥ हे शत्रुओंको तपानेवाले (भगवन् विष्णो) [तुम्हीं तुम] अन्त, आदि और मध्यमें दिखायी पड़ते हो [इससे यह सूचित किया कि सर्वभूततत्त्व तुम्हीं हो] । और [अग्निप्रवेशके समय] सीताकी उपेक्षा साधारण मनुष्यकी भाँति कर रहे हो ॥९॥

[इन्द्रसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त] उन (पूर्वोक्त) लोकपालों-द्वारा ऐसा कहे गये लोकस्वामी रघुकुलोत्पन्न धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राम श्रेष्ठ देवोंसे बोले— ॥ १० ॥ मैं अपने आपको मनुष्य (एवं) दशरथका पुत्र राम मानता हूँ । ऐसा (मनुष्यशरीरमें अहंबुद्धिवाला) मैं जो (परमार्थस्वरूप) और जहाँसे (जिस कारणसे) हूँ उसे आप (भगवान् ब्रह्माजी) मुझको बतावें [यही, शिष्यकी जिज्ञासा होनेपर गुरुद्वारा ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जानेका, मार्ग सर्वत्र श्रुति-स्मृतियोंमें प्रसिद्ध है । इसी कारणसे रामने अपने भक्तोंको अपना स्वरूप बोधन करानेके लिये अज्ञ शिष्यकी भाँति जिज्ञासु बनकर सर्वज्ञ गुरु ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—तिलकव्याख्या] ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने ऐसा पूछते हुए काकुत्स्थ (राम) से कहा, हे सत्य पराक्रमवाले (विष्णो) मेरे सत्य वाक्यको सुनो ॥ १२ ॥

[ब्रह्माजीने रामके प्रश्नके उत्तरमें श्लोक १३ से ३२ तकका 'आर्षस्तव' नामक दिव्य पुरातन इतिहास सुनाया । इसमें रामको-नारायणदेव, चक्रायुध, एकशृङ्गवराह, अक्षरब्रह्म, विष्वक्सेन, चतुर्भुज, शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरुषोत्तम पुरुष, विष्णु, कृष्ण, सृष्टि-प्रलय [-कारण], उपेन्द्र, मधुसूदन, पद्मनाभ, तीनों लोकोंका आदिकर्ता, स्वयंप्रभु, यज्ञ, वषट्कार, ओङ्कार, दिनान्तमें पृथ्वीके जलपर महोरग (अनन्त या शेषनाग) के ऊपर सोनेवाला, (२१-२६) विराट्स्वरूप, श्रीवत्सलक्षण, वामनावतारमें तीन डगोंसे तीनों लोक नापकर और बलिको बाँधकर महेन्द्रको राजा बनानेवाला—बतलाकर (श्लोक २७-२९में) स्पष्ट कहा गया है कि—]

सीता [साक्षात्] लक्ष्मी हैं और आप विष्णुदेव एवं कृष्ण (अथवा श्यामवर्ण) प्रजापति हैं ॥२७॥ रावणके वधके लिये इसलोकमें मनुष्यशरीरमें आये हैं । हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! तुम हमारा वही कार्य कर चुके हो ॥ २८ ॥ रावण मारा गया, [अब] तुम [कुछ कालतक महाराजपदसे] प्रसन्न होते हुए ब्रह्मलोकको [लौट] चलो ······॥ २९ ॥

[रामके महत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले इस ब्रह्मोक्त वाक्यको सुनकर लोकसाक्षी अग्निदेव सीताजीको गोदमें

लिये चितासे निकल आये और सुरूपवती सीताको रामके अर्पण करके बोले कि यह तुम्हारी सीता है जिसमें कोई पाप नहीं है (सर्ग ११८ श्लो०१–५)। इसे ग्रहण करो (१०)। रामने ऐसा ही किया। इसके अनन्तर सर्ग ११९ में महेश्वरने रामसे कहा है कि हर्ष है कि तुम यह कर्म कर चुके (श्लो० २) अब अपनी माताओं, भाइयों तथा सुहृज्जनोंको आनन्दित करके, अयोध्याका राज्य पाकर एवं वंश स्थापन करके तथा अश्वमेध-यज्ञ करके ब्रह्मलोकको जाना चाहिये (४–६)। देखो तुम्हारे द्वारा तारित हुए यह राजा दशरथ जिन्हें इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है विमानपर विराजमान हैं, तुम और लक्ष्मण इन्हें प्रणाम करो (७–८) प्रभुने वैसा ही किया और पिताको देखा (९–१०)। विमानस्थ राजा दशरथने अत्यन्त हर्षित होते हुए रामको गोदमें बिठाकर और गलेसे लगा कर कहा (११-१२)। तुम्हारे वनगमनके विरहसे स्वर्ग भी मुझे अच्छा न लगा, किन्तु कैकेयीकी बातें मेरे हृदयमें गड़ती रहीं (१३-१४)। आज तुम्हें और लक्ष्मणको सकुशल देख और छातीसे लगाकर मैं दुःखसे ऐसा छूट गया हूँ जैसे कुहरेसे सूर्य (१५) हे पुत्र ! तुम-जैसे महात्मा सुपुत्रने मुझे तार दिया जैसे अष्टावक्रने धर्मात्मा कहोल ब्राह्मणको (१६)]

३१—(युद्धकाण्ड सर्ग ११९)—

> इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
> वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
>
> एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
> अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ २९ ॥
>
> एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।
> देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥ ३० ॥

और हे सौम्य ! अब मैंने जाना है कि जिसप्रकार रावणके वधके लिये सुरेश्वरों (देवों) से [प्रार्थित] पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णुरूप तुम) यहाँ [मेरे पुत्रके शरीर-में] छिपे थे ॥ १७ ॥ ···············[अनन्तर राजाने लक्ष्मणको रामकी शुश्रूषामें ही परम-कल्याणकी-प्राप्तिका उपदेश करते हुए समझाया और कहा—] ये इन्द्रसहित तीनों लोक तथा सिद्ध और परमर्षिलोग [इन] महात्मा (परमात्मा) पुरुषोत्तम (विष्णुरूप राम) का प्रणाम करके अर्चन कर रहे हैं ॥ २९ ॥ हे सौम्य (वत्स लक्ष्मण) शत्रुओंको तपानेवाले राम[रूप तत्त्व ही] वह (प्रसिद्ध) ब्रह्मसंमित (वेदप्रतिपादित) अव्यक्त अक्षर है जो देवोंका हृदय और गुह्य ['देवानां हृदयं ब्रह्माऽन्वविन्दत्' तथा 'एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम्' इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें] कहा गया है ॥ ३० ॥

३२—(युद्धकाण्ड अन्तिम सर्ग १२८)—

[अन्तमें समस्त रामायणके श्रवण वा पाठ करनेवालेको सदा जो फल मिला करता है उसके प्रसङ्गमें कहा गया है कि–]

> प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ।
> आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ ११७ ॥
> एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
> प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ ११८ ॥

राम निरन्तर प्रसन्न होते हैं [और] निश्चय करके वे [ही] सनातन विष्णु आदिदेव महाबाहु हरि नारायण प्रभु हैं ॥ ११७ ॥ इसप्रकार इस ऐतिहासिक आख्यानको निःशङ्क उच्चारण किया करो, तुम्हारा [सदा] कल्याण हो, और विष्णुका बल बढ़े ॥ ११८ ॥

सूचमेचिकासे तथा व्याख्याकारोंके अभिप्रायानुसार, निम्नलिखित रामायण-वाक्योंमें तथा ऐसे ही अनेक अनुवृत्त स्थलोंमें भी अवतार-वादका सङ्केत मिलेगा जिनका अधिक विस्तार यहाँ लेखवृद्धिके भयसे नहीं किया जा सकता—

३३–उत्तरोत्तरयुक्तौ च वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।
सुभ्रूरायतताम्राक्षः साक्षाद्विष्णुरिव स्वयम् ॥ (२।२।४३)

३४–हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै ।
मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥
कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया ।
वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशाः ॥(३।४।१४-१५)

३५–अहमेवाहरिष्यामि सर्वाल्लँोकान्महामने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ (३।५।३३)

३६–त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।
प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥ (३।६।८)

३७–अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ (३।७।१४)

३८–सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥ (३।९।३२)

३९–तानहं समतिक्रान्ता राम त्वाऽपूर्वदर्शनात् ।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥(३।१७।२३)

वाल्मीकिकृत इस श्लोकमें जो ध्वनि है कदाचित् उसीसे प्रेरित होकर कालिदासको भी ऐसी रचनाकी सूझी थी—

रामममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥
(रघुवंश ११ । २०)

परन्तु कालिदासके पद्यमें 'अमत-परार्थता' नामक वाक्य-दोष है जिसकी अपेक्षा आदिकविका श्लोक नितान्त निर्दोष है ।

४०-इति राजर्षयः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः ।
जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्च देवताः ॥
आविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्विव्यथिरे तदा ॥
(३।२४।२४-२५)

४१-अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।
अहो वीर्यमहो दार्ढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥
एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ।
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरन्दरः ॥
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।
एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥
रामं चैवाऽव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥
(३।३०।३२,३४,३५,३६,४०)

४२-इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।
अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ॥
(३ । ४३ । ४६-४७)

४३-ततस्त्रिविनतं चापमादायाऽऽत्मविभूषणम् । (३।४४।२)

४४-असक्तं संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ॥
न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति ॥(३।५०।२४)

४५-प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।
जगत्सर्वममर्यादं तमसाऽन्धेन संवृतम् ॥
न वाति मारुतस्तत्र निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा ॥
कृतं कार्यमिति श्रीमान् व्याजहार पितामहः ।
प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः ॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ।
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छया ॥
(३ । ५२ । ९-१२)

४६-इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् ।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥
(४।१।११४,१२२)

त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः ।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुद्ध्यसे ॥

४७-जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः । (५ । ३० । ४४)

कुछ व्याख्याकारोंकी दृष्टिसे रावण भी वालि, त्रिशिरादि भगवद्भक्तोंके समान रामके हाथसे मृत्यु चाहता था । परन्तु तिलकव्याख्यामें (अरण्य० ५४ । ६ इत्यादि स्थलोंमें) इस मतका युक्तियुक्त खण्डन किया गया है । अतः इस विषयके प्रमाणोंका समावेश प्रस्तुत लेखमें नहीं किया गया है । तथापि अन्योंके मतसे थोड़े ऐसे प्रमाण भी अवतार-वादके पोषक होनेसे यहाँ अन्तमें दिग्दर्शनरूपसे उद्धृत किये जाते हैं—

४८-प्रसह्य तस्या हरणे दृढं मनो
समर्थयामास वधाय रावणः ॥ (३ । ४६ । ३७)

४९-क्रोशन्तीं रामरामेति रामेण रहितां वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ (३।५२।८)

५०-तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ (३।५।४३)

५१-तदेषा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे ॥(३।३४।२५)

५२-वधाय सीता सानीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥(६।९४।११)

युद्धकाण्डमें सर्ग ३५ के अन्तिम श्लोकसे पूर्व—

रामं मन्यामहे विष्णुं मानुषं रूपमास्थितम् ।
न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ॥
येन बद्धः समुद्रे च सेतुः स परमाद्भुतः ।
कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण ॥

ये दो श्लोक भी किन्हीं रामायण-पोथियोंमें थे, जिनमें प्रथममें स्पष्टतया राम विष्णुके अवतार बताये गये हैं। परन्तु रामवर्माके तिलकसे पता चलता है कि 'कतक'-व्याख्याकी दृष्टिमें ये दोनों श्लोक प्रक्षिप्त हैं, इसी कारणसे प्राचीन व्याख्याकारोंने इनका व्याख्यान नहीं किया। इसी विचारसे हमने भी इस लेखके प्रमाणोंमें इसप्रकारके प्रमाणोंका समावेश नहीं किया है ।

यद्यपि उत्तरकाण्डकी प्रामाणिकता भी युद्धकाण्ड सर्ग ६० श्लोक ५-१२ तथा सर्ग ११० श्लोक १२-१३,इत्यादिसे ही सिद्ध है कि जहाँ सूत्ररूपमें उन-उन कथाओंका संकेत

विद्यमान हैं जो उत्तरकाण्डके सर्ग १०, ११, १७, १८, २१, २४, २६ इत्यादिमें विस्तारसे मिलती हैं और जिनके बिना युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अर्थवत्ता भी अपूर्ण ही रहती है क्योंकि उत्तरकाण्डके अतिरिक्त अन्यत्र रामायणभरमें कहीं इनका विशद वर्णन नहीं किया गया है। (और इसप्रकारसे उत्तरकाण्ड एक प्रकारका परिशिष्ट है जो स्वयं आदिकवि वा उनके कुछ ही कालके पश्चात् होनेवाले किसी ऐसे महापुरुषका रचा प्रतीत होता है जिसने युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अपूर्ण बातोंको ही पूर्ण करनेका सफल प्रयत्न किया है) तथापि आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें उत्तरकाण्ड वाल्मीकिकृत और अतएव प्रामाणिक नहीं समझा जाता है। इसीसे उत्तरकाण्डस्थ प्रमाणोंको मैंने इस लेखमें स्थान नहीं दिया है, यद्यपि उनकी एक बड़ी संख्या है। इसप्रकार यह लेख यहीं समाप्त करके भगवदर्पण करता हूँ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

उदासी साधु भगवान् श्रीराम

(लेखक—स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन महन्त, श्रीसाधुबेला)

अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतवर्ष ही संसारकी सभ्यताका आदिस्रोत रहा है। यहींसे संसारके समस्त विभागोंमें धर्म, सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला, कौशल आदिके प्रचारक महात्मा, साधु तथा धर्मगुरु जाया करते थे। साधुका स्वरूप ही धर्म-उपदेश, जाति-रक्षा और देश-सेवाकी निशानी है। यही कारण है कि सृष्टिके आदिकालसे आजतक धर्म-रक्षा, देश-सेवाकी बागडोर साधु-महात्माओंके हाथोंमें रही है और आगे भी रहेगी।

भगवान्के अवतार धारणका प्रण भी साधु-रक्षा ही है—'परित्राणाय साधूनां।' यही नहीं मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने अवतार धारणकर अनेक बाल-लीलाएँ करते हुए जब जनकपुरमें जाकर धनुष तोड़ा तब परशुरामजीने उदासी साधुके वीर-बानेमें ही आकर बातचीत की थी—

गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा।
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥
संत भेष करनी कठिन बरनि न जाय सुरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीररस आये जहँ सब भूप॥

श्रीपरशुरामजीको देखकर सब राजाओंने खड़े होकर पितासमेत अपना-अपना नाम लेते हुए उनको प्रणाम किया। यह साधु-स्वरूपका ही प्रताप था।

तदनन्तर श्रीरामने अपनी चौदह वर्षकी वनयात्रामें उदासी साधुके रूपमें रहकर देश-हित, नीति-उपदेश, लोक-मर्यादा, ब्रह्मचर्यव्रतद्वारा वेदप्रतिपादित साधु शब्दको चरितार्थ करके दिखा दिया। भगवान् त्रिकालदर्शी थे, ऊँचा-नीचा सब जानते थे, उन्हें यह पूर्णतया विदित था कि यदि हम साधुरूप धारण किये बिना ही पृथ्वीका भार उतारेंगे तो आगे महात्मा साधु लोगोंमें साहस प्रकार होकर देश और धर्म-रक्षाके पुण्य कार्योंमें उनको कैसे प्रवृत्त करेगा? जब देश और धर्मरक्षाका कार्य इनके हाथसे निकल जायगा तो साधुओंकी महत्ता लुप्त हो जायगी और ऐसा होनेपर इन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे। जब साधुओंको कष्ट होता है तब मुझे अवतार लेना पड़ता है; इसलिये भगवान्ने पहलेसे ही साधु-रूप धारणकर सबका कल्याण किया।

इस गूढ़ रहस्यका पूर्ण ज्ञान श्रीमती महारानी कैकेयीजीको भी था, तभी उन्होंने अपने पति महाराजा दशरथजीसे वरदान माँगते समय श्रीरामजीके लिये चौदह वर्षके वनवासके साथ-साथ उनके लिये उदासी-साधु-भेष और तपस्वी-वृत्तिसे रहना भी माँगा—

तापस भेष बिसेष उदासी। चौदह बरस राम बनबासी॥

महाराजा दशरथजीको यह बात वज्राघातसे भी अधिक कठोर प्रतीत हुई, पर इसके भीतर जो गूढ़ रहस्य था उसको वे नहीं समझ सके। यह भगवान् रामकी इच्छा थी। उसमें माता सहायक हो गयी। जिस समय श्रीरामने

रामायण द्रुमं नौमि रामरक्षा नवांकुरम् ।
गायत्री बीज वम्नाय मूलं मोक्ष महाफलम् ॥

Lakshmibilas Press Ltd., Cal

साधुवेष धरकर वन जानेकी बात सुनी उस समय उनका मुख-कमल खिल गया, उनकी मनमानी हो गयी। वे बोले—

मुनि गन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर॥

श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका कारण माता-पिताकी आज्ञासे उनकी मनोकांक्षाकी पूर्ति होना था। भगवान् तुरन्त ही राजोचित वैभव, अलङ्कार और निवास-स्थान त्यागकर वनको चले, घरके रमणीय पदार्थोंका एक बार मुड़कर भी अवलोकन न किया।

'मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी॥'
'राम तुरत मुनि बेष बनाई। चले जनक जननी सिर नाई॥'

माता कैकेयीके दिये मुनि-(साधु)-पट धारणकर श्रीरामने वनका सीधा मार्ग लिया। उनका उदासी साधुभेषमें वन जाना सुन धर्मपत्नी महारानी सीता कब रुक सकती थीं? उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया—

की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जात न जाना॥

श्रीरामने वनके अनेक दुःख सुनाकर उनकी परीक्षा ली, पर यह पतिप्राणा वीर-पत्नी धर्मसे कब पीछे पैर रखनेवाली थी, साफ कह दिया—

राखिय अवध जो अवधि लगि रहत न जानिय प्रान।

सीताने रामजीके साथ समस्त वनयात्रामें तपस्विनीरूपमें रहकर उनका साथ दिया। यह है हमारे भारतवर्षका गौरवपूर्ण सच्चा पतिव्रत-धर्म। इन दोनोंको साधुरूपमें वन जाते देख लक्ष्मण—रामजीसे एक क्षण भी पृथक् न रहनेवाले लक्ष्मण—कब ठहर सकते थे? उनके तो जीवन-सर्वस्व प्राण-धन श्रीरामजी ही थे। यह है भ्रातृस्नेहके पूर्ण स्वरूपका एक उज्ज्वल चित्र।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मणने चौदह वर्षोंतक वनमें प्रेमपूर्वक उदासी साधुभेष धारणकर तदनुकूल व्यवहार और आचरणोंद्वारा साधु शब्दको चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने जटा धारण की, (अनुजसहित सिर जटा बनाये), अन्न नहीं खाया, केवल कन्द-मूल-फलका भोजन किया—

सिय सुमंत भ्राता सहित कंद-मूल-फल खाय।

जब श्रीरामचन्द्रजी वनमें ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें मिलने गये तब अनेक जगह ऋषि और मुनियोंने उनको उदासी साधुरूपमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया। श्रीरामजी वृद्ध महात्माओंको प्रथम प्रणाम किया करते थे। साधुको साधु आपसमें प्रणाम किया करते हैं। अगर श्रीरामचन्द्रजी क्षत्रियरूपमें गये होते तो उनको ब्राह्मणसाधु प्रणाम नहीं कर सकते। यदि कहा जाय कि राजा या बलिष्ठ जानकर किया होगा तो यह नीतिके विरुद्ध होगा। जब रामजीके पिता महाराजा दशरथजीको कोई ब्राह्मण-साधु प्रणाम नहीं करता था, बल्कि वे ही मुनियों और साधुओंका आगमन सुनकर आगे जाकर प्रणाम कर उनको सादर साथ लाते थे—

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारे आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम धन्य आजु नहिं दूजा॥

तब भला रामजी क्षत्रियरूपमें होते तो उनको कौन साधु प्रथम प्रणाम कर सकता था और श्रीरामजीको ही यह कब स्वीकार होता! भगवान् वेद तथा लोक-मर्यादा-भंगका कलंक अपने शिरपर क्यों लेते! वह तो स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। जब वे उदासीन मुनि सुतीक्ष्णके आश्रममें गये तब सुतीक्ष्णने उनको उदासी साधु या तपस्वीके वेषमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—'परेउ लकुट इव चरननि लागी।'

श्रीहनूमान्‌जीने विप्ररूपमें होते हुए भी भगवान्‌को प्रथम प्रणाम किया, इसका कारण भी रामजीका साधुरूपमें होना था, क्योंकि साधु सर्व वर्णोंका गुरु होता है। इसीसे हनूमान्‌जीने कोई हानि नहीं समझी। यदि रामजी क्षत्रिय-रूपमें होते तो हनूमान्-जैसे पण्डित कब ऐसा कर सकते थे!

जब श्रीशङ्करजीने रामको वनमें देखकर मन-ही-मन प्रणाम किया था, तब भी रामजी उदासी साधुके ही रूपमें थे—

पिता बचन तजि राज उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥

नारदजीने भगवान् रामको पम्पासरपर उदासी साधु-रूपमें बैठे देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—

करत दंडवत लिये उठाई। राखे बड़ी बार उर लाई॥

नोट—मुनि नाम साधुका और ऋषि नाम विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणका होता है। मुनि और ऋषिके पृथक्त्वको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने गीतामें बताया है, 'मुनीनामप्यहं व्यासः' (१०।३७) 'महर्षीणां भृगुरहं' (१०।२५)।—लेखक

—भगवान् अथवा राजा जानकर नहीं किया था। ऐसा करना तो धर्म-मर्यादाके विरुद्ध होता। तब आजकलका-सा मनमानी घरजानीवाला समय नहीं था; गोसाईं तुलसीदासजी उस समयकी मर्यादा दिखाते हुए लिखते हैं—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग॥

यदि कोई कहे कि नारदजीने भगवान् या राजा जानकर प्रणाम किया था तो उसका उत्तर यह है कि जब वे अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास ब्रह्माजीके भेजे गये थे उस समय रामजी क्षत्रिय राजकुमारके वेषमें थे, इसलिये उन्होंने नारदजीको देखते ही सहसा उठकर प्रणाम किया—

देखि राम सहसा उठि धाए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥
सादर निज आसन बैठारे। जनकसुता तब चरन पखारे॥

इससे साफ प्रकट है कि अयोध्यामें रामजीने साधुरूप नहीं धारा था इसलिये नारदजीको प्रणाम किया था और पम्पासरोवरपर नारदजीने साधुरूप जानकर ही प्रथम प्रणाम किया था। बालिने अन्त समय श्रीरामजीके जटाधारी साधुरूपका ही ध्यान किया था—'स्याम गात सिर जटा बनाय।'

इसी प्रकार महारानी भगवती सीताने भी अपने पतिके स्वरूपका समस्त वनयात्रामें अनुकरण किया है। जब हनूमान्‌जीने लङ्काकी अशोक-वाटिकामें सीताजीका दर्शन किया, तब सती-शिरोमणि सीताका शरीर अत्यन्त कृश था और उन्होंने जटाजूट धारण कर रक्खा था—

कृस तनु सीस जटा इक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन-श्रेनी॥

रावण श्रीरामजीको उदासी साधु ही जानता था इसीसे कई जगह अपने वचनोंमें रामजीके लिये तपस्वी शब्दका प्रयोग किया है—'मम पुर बस तपसिन्ह मन प्रीती' 'कहु तपसिन्ह कर बात बहोरी।' इत्यादि

यदि किसीको संशय हो कि उदासी भेष तो पहले था ही नहीं फिर भगवान् रामचन्द्रजीका तपस्वी, उदासी, साधु भेषमें रहना लिखकर कहीं गोसाईं तुलसीदासजीने गलती तो नहीं की? प्रिय पाठको! गोसाईंजीने कोई गलती नहीं की है। उन्होंने उपर्युक्त प्रसङ्ग श्रीवाल्मीकि रामायणके आधारपर अक्षरशः सत्य लिखा है। देखिये—

नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः॥
(२।११।२७)

एताश्चान्याश्च सुहृदामुदासीनाः शुभाः कथाः।
आत्मसम्पूजनीः शृण्वन्ययौ रामो महापथम्॥
(२।१७।१२)

वेदप्रतिपादित सनातनधर्मी उदासी भेष अनादिकालसे चला आ रहा है। १०८ उपनिषदोंमें ४६ वाँ निर्वाण उपनिषद् तथा गरुड़पुराण आचार-खण्ड ४६। ६-१० और कूर्मपुराण २।७६-८०-८१ देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अन्य कई पुराणों तथा महाभारतादि इतिहासोंमें उदासी साधुओंकी कथाएँ बहुत प्रकारसे आती हैं। लेख बढ़ जानेके भयसे उद्धृत नहीं की गयीं। गोसाईं तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें श्रीरामजीको छोड़कर अन्य कई जगह उदासी साधुओंका वर्णन किया है। जैसे भरतजीके पूछनेपर भरद्वाज मुनिने अपनेको उदासीन तपस्वी बताया है—

सुनहु भरत हम मृषा न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥

आगे चलकर और भी लिखते हैं—

'साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद बिरक्त सन्यासी॥'
'प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥'
'मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥'
'कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यानरत मुनि सन्यासी॥'

क्या आज भी साधु लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रके उस आदर्श जीवन और उपदेशका अनुसरण और धारण करके त्याग एवं तपस्याका परिचय देंगे, जिससे समस्त भारतका कल्याण होकर पूज्य साधु-समाज फिर पूर्ववत् आदरणीय होकर भारतकी विमल कीर्तिकी गगन-चुम्बी पताका फहराता हुआ संसारमें भगवान् रामचन्द्रकी भक्तिका प्रचार करके स्वयं कृतार्थ होकर औरोंको भी कृतार्थ करेगा!

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आशीर्वादसे देशका कल्याण हो।

फ़ारसीमें रामायण

(लेखक—श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी, आलिम-फ़ाज़िल)

मुसलमानोंके राज्यकालमें भारतमें हिन्दूसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद फ़ारसीमें हुआ था अथवा यह कहना चाहिये कि अनेक फ़ारसी ग्रन्थ संस्कृत-पुस्तकोंके आधारपर लिखे गये थे। हिन्दू-समाजमें रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह सभी जानते हैं। यही कारण है कि फ़ारसीमें भी अनेक रामायणें पायी जाती हैं।

रामायणको फ़ारसी जामा पहनानेका पता सबसे पहले अकबरके समयमें मिलता है। एक इतिहाससे पता चलता है कि सन् १५८२ ई०में 'महाभारत' का फ़ारसी अनुवाद समाप्त होनेके बाद सन् १५८४ ई०में मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनीको रामायणके फ़ारसी अनुवादके लिये आज्ञा हुई। सन् १५८९ ई०में वह अनुवाद समाप्त हुआ। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार उसकी सचित्र और सुसज्जित प्रति शाही पुस्तकालयमें रखी गयी। यह अनुवाद फ़ारसी पद्यमें था। इसकी कोई प्रति कहीं है या नहीं—इस विषयमें मैं अबतक कुछ नहीं जान सका। परन्तु फ़ारसीमें जो रामायणें मेरी दृष्टिसे गुज़री हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

(१)

लगभग १२ वर्ष गुज़रे, मैंने 'नद्वतुल उलमा' नामी लखनऊकी इस्लामी संस्थाके पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित फ़ारसी रामायण देखी थी, उसपर लिखा हुआ है—'रामायण फ़ैज़ी।' यह सन् १२३४ ई०की लिखी हुई है। यह अधिकांश फ़ारसी गद्यमें है और इसमें पद्यका अंश बहुत ही थोड़ा है।

सम्राट् अकबरने जो अनुवाद कराया था, उससे यह ग्रन्थ बिल्कुल पृथक् प्रतीत होता है, क्योंकि सम्राट्की रामायण सर्वथा पद्यमें थी। उक्त रामायणमेंसे कुछ अंश इसप्रकार है—

जंग लश्करे रावन बाफ़ौजे ज़फ़रे मौजे श्रीरामचन्द व शिकस्त ख़ुर्दन व कुश्तः शुदन फ़ौजे रावन बद किरदार।

सहर गाहां कि शाहंशाह ख़ावर लिवाय ज़फ़र दर अरसा मशरिक़ बर फ़राख़्त, ख़बर रस्तन हनुमान व आवुरदन ख्वाह संजीवन व सहीहुलबदन व तन्दुरुस्त शुदन बहादुराने फ़ौज श्रीरामचन्द मुफ़स्सल व मुशर्रह बरावन ज़ाहिर शुद विस्यार ग़मगीन् गर्दीदः अज़्ले अज़ ग़ायत फ़िक्र नक़्श दीवार हैरत मान्द, बाद अज़ साअते दलेराने फ़ौज ख़ुदरा आमादा पैकार नमूदा वर्दी किस्म तरतीब दाद॥

(२)

दूसरी रामायण फ़ारसी पद्यमें मुल्ला मसीह-कृत है। मुल्ला साहबको बहुतेरे लोग यह समझते हैं कि वह पानीपत (करनाल) के निवासी थे पर दरअसल वह कराना (ज़िला सहारनपुर) के निवासी थे। उन्होंने जहाँगीर बादशाहके ज़मानेमें अपना ग्रन्थ रचा था।

उक्त ग्रन्थ 'रामायण-मसीही' के नामसे मुंशी नवल-किशोर साहबके यन्त्रालय लखनऊसे सन् १८९९ ई० में प्रकाशित हो चुका है। वह मझले आकारके ३३० पृष्ठोंमें है। उदाहरणार्थ कुछ अंश इसप्रकार है—

शकरे गुफ़्तार ईं शीरीं फ़साना।
बदीं आहंग बसरूद ईं तराना॥
कि रायॆ बूद अन्दर किशवरे हिन्द।
बज़ेरे ख़ातमश बङ्गाल ता सिन्द॥
बशहरे अवध नामश राजा जसरत।
ज़े तख़्तश आसमां मीबुर्द हसरत॥

पन्द दादन कुम्भकरन रावनरा व एराज़ शुदन रावन अज़ ओ—

ज़मीं बोसीद व गुफ़्त ऐ शाह दौरां।
दिले मन् मान्दा अस्त इमरोज़ हैरां॥
कि अज़ ख़ाबम् चरा बेदार करदी।
ख़िलाफ़े आदतम् आज़ार करदी॥
मगर कारे दर उफ़्तादः बदुश्मन।
कि शोरांदी चुना ख़ुश ख़ाब बरमन॥
बगुफ़्ता राम लङ्कारा क़तल कर्द।
सरासर शहर देवांरा ख़लल कर्द॥

(३)

तीसरा ग्रन्थ श्रीमान् चन्द्रभान 'बेदिल' कृत पद्यमें है। यह ग्रन्थ औरङ्गज़ेबके राज्यकालमें किसी समय रचा गया था।

यह भी मुंशी नवलकिशोर साहबके यन्त्रालय लखनऊसे सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हो चुका है। केवल ११४ पृष्ठोंमें है।

इस प्रतिसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि श्रीयुत 'बेदिल' जीने रामायणको पहले फ़ारसी गद्यमें लिखा था। परन्तु आपकी गद्य-रामायणका कुछ पता नहीं लगता। बल्कि उसका सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। अतः फ़ारसी पद्य-रामायणका ही कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है:—

मस्लहत् बर अंगेख़तन् रावन बामहोदर वज़ीर आज़म ख़ुद व क़रार दादन् बर जंग।

बरोज़े दिगर शाहे लंका बतख़्त,
बर आमद बसद आब व ताबे ज़ेबख़्त॥
हमः बारयाबाने दरगाह ऊ,
सतादन्द बर जाये ख़ुद रूबरू॥
ज़े शहज़ादहा अन्दरां मजलिसे,
नशिस्तः बजाहाय ख़ुद हर कसे॥

(४)

लाला अमरसिंह नामक सज्जन जातिके कायस्थ थे, इन्होंने संवत् १७८३ वि० (१७०५ ई०) में एक रामायण फ़ारसी गद्यमें लिखी थी। यह रामायण पं० माधवप्रसादजी-के उद्योगसे सन् १८७७ ई० में मुंशी नवलकिशोर साहबके यन्त्रालय लखनऊमें प्रकाशित हो चुकी है। इसका नाम 'रामायण अमर-प्रकाश' है। बड़े आकारके ५४४ पृष्ठोंमें है।

नमूनेके रूपमें कुछ अंश नीचे है—

दानायान पेशीन चुनीं गुफ़्तः अन्द कि दर शहर प्राग (प्रयाग) अज़ मुलहिक़ शुदन गङ्गा व जमुना व सरस्वती त्रिबेनी नाम तीर्थ अस्त हर कस दर उमर ख़ुद यक मरतबः ग़ुसुल नुमायद् अज़ाबहाय जन्म जन्म आँरा बरवद् व आंकि बनाम माह मकर ग़ुसुल नुमायद मरातिब ऊ चिः तवां गुफ़्त? अज़ अर्थ व काम व मोक्ष व धर्म हमः हासिल शवद।

(५)

पांचवें ग्रन्थके लेखक ला० अमानतरायजी हैं। यह जातिके क्षत्रिय व लालपुर नामक ग्रामके निवासी थे। उस ग्राममें अधिकांश क्षत्रिय ही थे जो वस्तुतः रणमेंकी थे। पर यह विद्या-क्षेत्रके एक शूर थे। दैवयोगसे बाढ़ आयी। लालपुरकी दशा बिगड़ी। ला० अमानतरायजी देहली पहुँचे। इनके विद्वत्ताकी चर्चा चारों ओर फैली। नवाब अमजद अली साहबने इन्हें अपने यहाँ नौकर रक्खा और जब नवाब साहब स्वर्गलोक सिधारे तब उनकी बहिन रहीमुन्निसा बेगम लालाजीकी जीविकाकी सहायिका बनीं। लालाजीने पहले 'श्रीमद्भागवत' को फ़ारसी पद्यमें किया था। देशमें जब उसका अच्छा सत्कार हुआ तो आपने रामायणको सन् १७५४ ई०में फ़ारसी पद्यका जामा पहनाया।

यह अपूर्व ग्रन्थ भी मुंशी नवलकिशोर साहबके यन्त्रालयसे सन् १८७२ ई०में प्रकाशित हो चुका है। ६७८ पृष्ठोंमें है। नमूनेके रूपमें आरम्भका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है केवल इसीसे मालूम हो सकता है कि इस रामायणके पद्य फिरदौसीके शाहनामाके समान ज़ोरदार हैं।

फ़साहत बयानाने हिन्दी ज़बां,
कुनन्द ईं चुनीं शरहे ईं दास्तां॥
कि दर नस्ले राजा मनू कामगार,
बसे राजा शुद ज़ीनते रोज़गार॥
हमः साहबे जुमला रूये ज़मीं,
कशीदः जहां ज़ेर अंगुश्ते नगीं॥
ज़बरदस्त व फ़ैयाज़ व आलीहिमम्,
चु बहर व चु अब्र सख़ावत अलम॥
अज़ीं हा यके ऊ मगर नाम बूद,
चु ख़ुर ज़ूद ऊ दर जहां आम बूद॥

(६)

एक ग्रन्थ लाहौरके एक पण्डित श्रीबेलीराम मिश्रजीके पुत्र पण्डित रामदासजी कृत है। इसके रचे जानेका समय सन् १८६४ ई० है। मैं इसे अभी तक स्वयं नहीं देख सका, इस कारण इसकी बाबत और अधिक नहीं लिख सकता।

× × ×

सम्भव है कि उक्त रामायणोंके सिवा कुछ अन्य और भी रामायण फ़ारसीमें हों, किन्तु उनके विषयमें न तो मुझे अभी कुछ पता ही चला है न उनके देखने-की नौबत ही आयी है। यदि किसी सज्जनको कुछ और पता हो और वह कृपया मुझे सूचित करनेका कष्ट करें तो मैं उनका आभारी हूँगा।

मराठीमें रामायण

(लेखक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पाङ्गारकर बी०ए०, सम्पादक 'मुमुक्षु')

उत्तर-भारतमें गुसाईं तुलसीदासजीकी रामायण जैसी लोकप्रिय है, दक्षिण अर्थात् महाराष्ट्रमें ज्ञानेश्वर महाराजकी ज्ञानेश्वरी भी वैसी ही है। ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवद्गीतापर एक अद्वितीय टीका ग्रन्थ है, वह ज्ञान-भक्तिप्रधान है। इसमें अद्वैत-ज्ञानका भक्तिके साथ उत्कृष्ट सम्मेलन है तथा ज्ञान-भक्तिकी एकरूपता है। मराठी साहित्यके सभी उत्कृष्ट ग्रन्थ ज्ञानेश्वरीके ढंगपर ही लिखे गये हैं। ज्ञानेश्वरी, एकनाथजीकी भागवत और रामदासजीका दासबोध इन तीन ग्रन्थोंको महाराष्ट्र वेद-सदृश मानता है। नामदेव और तुकारामके अभंग भी इसी प्रणालीके हैं। शिवोपासकोंके लिये 'शिवलीलामृत' और दत्तात्रेयके भक्तोंके लिये 'गुरुचरित्र' ये दोनों सम्प्रदाय-ग्रन्थ भी महाराष्ट्रमें लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्रीय अन्तःकरणकी स्थिति ज्ञानप्रधान है परन्तु उस ज्ञानके साथ भक्तिकी एकरूपता है। निरे वेदान्त-ज्ञान और कोरी उपासनाका महाराष्ट्रमें विशेष आदर नहीं। ज्ञान और उपासना, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, एवं मूर्त और अमूर्त इन सबमें महाराष्ट्रीय मन पूर्ण अभेद मानता है और महाराष्ट्रके समस्त सन्तकवियोंका उपदेश भी यही है।

मराठी साहित्यका यह रहस्य समझ लेनेके बाद मराठीमें रामकथाको किसने कैसे गाया है, यह जानना विशेष आनन्दप्रद होता है। यद्यपि महाराष्ट्रमें राम और कृष्णको सब एकरूप ही मानते हैं तथापि स्वामी रामदासने राम और हनूमान्‌की उपासनाका विशेष प्रचार किया। अन्य अनेक सत्पुरुष और कवि श्रीकृष्ण अर्थात् विट्ठलके उपासक हैं। 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह रामदासका मन्त्र है और 'रामकृष्ण हरि' कृष्णोपासकका मन्त्र है। सारांश यह है कि रामचरित्र और राम-नामका महत्त्व सर्वत्र मान्य है। श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीराम-चरित्र हिन्दूमात्रके लिये सर्वथा पूज्य और प्रिय हैं, और किसीकी किसी भी उपासनासे अविरुद्ध हैं। राम और रामनाम सकल लोकप्रिय हैं।

मराठी भाषामें अनेक सन्तों और कवियोंने रामचरितका गान किया है और रामचरितसम्बन्धी पृथक् उपाख्यान तो असंख्य हैं। राम-नामका गौरव-गान अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभीने किया है।

मराठी भाषामें रामचरित्रका सर्वांशमें सुन्दर वर्णन चार-पाँच कवियोंने किया है। इन सबमें सबसे बड़ा अत्यन्त सरस, विद्वत्ता, प्रतिभा और प्रसादगुणयुक्त, आध्यात्मिक तत्त्वोंसे निर्मित होनेपर भी श्रीरामकथाके माधुर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाला ग्रन्थ एकनाथजीका भावार्थ-रामायण है। यह चालीस हजार ओवियों (मराठीका एक छन्द)का प्रकाण्ड ग्रन्थ भावुकोंको अत्यन्त प्रिय है। वाल्मीकि, अध्यात्म, आनन्द और योगवाशिष्ठ रामायण इत्यादि अनेक संस्कृत-ग्रन्थोंमें वर्णित कथाओंको अपनी इच्छानुसार चुनकर कविने स्वतन्त्रताके साथ उनका सविस्तर वर्णन किया है। श्रीएकनाथजी महाभागवत माने जाते हैं और श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धपर लिखी हुई उनकी मराठी टीका भी ज्ञानेश्वरीके समान ही लोकप्रिय और सर्वमान्य है। मेरे निर्णयके अनुसार एकनाथजीका काल वि० सं० १५८५ से १६५५ है। भावार्थ-रामायण उनका अन्तिम ग्रन्थ होनेके कारण उसका रचनाकाल वि० सं० १६४५से १६५५ तक ठहरता है अर्थात् यह ग्रन्थ भी गुसाईं तुलसीदासजीके रामायणके समकालीन ही है। श्रीएकनाथजी काशी गये थे। उनका भागवतग्रन्थ काशीमें ही वि० सं० १६३० में पूरा हुआ था। इसके सिवा उनके 'रुक्मिणी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थकी पूर्ति भी काशीमें वि०सं०१६२८ की रामनौमीके दिन हुई थी। इससे उनका करीब तीन वर्ष काशीमें रहना सिद्ध होता है। इस बीचमें एकनाथजी और तुलसीदासजीका काशीमें परस्पर प्रेम-परिचय अवश्य हुआ होगा क्योंकि दोनों ही महाभागवत थे। अवश्य ही दोनोंमेंसे किसीके ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख नहीं मिलता।

एकनाथजीकी रामायणमें रामकथा और ब्रह्मज्ञानका उत्कृष्ट एकीकरण है। अतएव उसके अध्ययनसे सगुणप्रेम और अध्यात्मज्ञान दोनोंकी साथ ही प्राप्ति हो जाती है। 'श्रीराम मुझसे बरबस अपना चरित्र गान करवाते हैं,' इस बातका उन्होंने बड़ी ही मनोहर रीतिसे वर्णन किया है।

'जागृति माजी वर्तता। पुढे प्रकाशे रामकथा।
दुश्चितपणें ठेवो जातां रामतत्त्वता।
रामायण दावी ॥'

श्रीराम अपनी सत्तासे बलात्कार कथा कहला रहे हैं। जागते राम, सोते राम, मनमें राम, मौनमें राम, भाव्य-चर्चामें राम इसप्रकार—

रामें पुरविली पाठी खिलिली दृष्टी रामायणीं।

—राम मेरे ऐसे पीछे पड़े कि मेरी दृष्टि श्रीरामायणपर अटक गयी। श्रीरामके द्वारा इसप्रकार बलात्कार निज गुण-गान करवानेका दुर्द्धर प्रसङ्ग विरले ही ग्रन्थकारोंके भाग्यमें होता है। श्रीराम सर्वथा अज—अजन्मा हैं। अजसे दशेन्द्रिय दशरथरूपसे अवतरित हुए, उनकी चार रानियाँ हैं। कौसल्या-सद्विद्या, सुमित्रा-शुद्धमेधा, कैकेयी-अविद्या और उसकी दासी मन्थरा-कुविद्या। लक्ष्मण आत्म-बोध हैं, भरत भावार्थ हैं, श्रीराम पूर्ण आनन्द-विग्रह हैं। इस-प्रकार एकनाथजीने रामायणका बहुत ही सुन्दर रूपक बाँधा है। आध्यात्मतत्त्वकी ओर ऐसी निर्मल दृष्टि रखते हुए भी उन्होंने समस्त कथा-भागका अत्यन्त रसपूर्ण और मधुर भाषामें सविस्तर वर्णन किया है। हनूमान्‌जीकी रामभक्ति इतनी असीम थी, एकनाथजी कहते हैं—

रामा वांचूनि ब्रह्मज्ञान। आह्मासी न लगे, न लगे जाण।
आमुचें ब्रह्म रघुनन्दन। बोले गर्जून हनुमन्त।'

अर्थात् श्रीहनूमान्‌जीने गरजकर कहा कि राम ही मेरे ब्रह्म हैं, उनके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा ब्रह्मज्ञान नहीं चाहिये। इस एक ही ओवीसे कथाके वर्णनकी सरसताका पता लग जाता है, विस्तार-भयसे अधिक नहीं लिखा जाता।

एकनाथजीके नाती मुक्तेश्वरने भी एक श्लोकबद्ध रामायणकी रचना की है, उसकी श्लोक-संख्या १७२५ है। महाराष्ट्रके छोटे-छोटे गाँवोंमें अनपढ़ और पढ़े-लिखे लोगोंको—सभी स्त्री पुरुषोंको श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथाका अमृत पिलानेवाला अत्यन्त रसिक और लोकप्रिय कवि था श्रीधर। उसने वि०सं० १७५६ में हरिविजय और १७६० में रामविजय एवं १७६६ में पाण्डवप्रताप इन तीन सुन्दर ग्रन्थोंका निर्माण कर श्रीराम-कृष्णके चरित्रका महाराष्ट्रके कोने-कोनेमें प्रचार कर दिया।

महाराष्ट्रमें रामोपासनाका प्रचार बढ़ानेवाले महापुरुष थे श्रीशिवाजी महाराजके मोक्षगुरु समर्थ श्रीरामदास। इनका समय वि०सं० १६६५ से १७३८ है। इन्होंने रामायणके दो काण्ड लिखे हैं, जिसमें श्रीहनूमान्‌जीके चरित्रका सविस्तर वर्णन है, पहला सुन्दरकाण्ड और दूसरा युद्धकाण्ड। रामदास-जीने इन्हीं दोनों काण्डोंपर रचना की, तथापि उनकी इस रामायणकी अपेक्षा महाराष्ट्रमें उनके लिखे हुए राम-नामके अभंग, पद, करुणाष्टक, स्तोत्र, सवैया आदि स्फुट कविताओंका अधिक प्रचार है और उन्हींसे लोगोंमें रामभक्ति टिकी है। श्रीरामदासजी रामके अनन्य भक्त थे। इन्होंने श्रीराम और श्रीमारुतिजीकी उपासनाका प्रचार किया और रामनवमीके उत्सवको लोकप्रिय बनाया।

मराठीमें रामकथापर लिखनेवाले एक विख्यात कवि हैं मयूर-पण्डित अथवा मोरोपन्तजी। इनका काल वि०सं० १७८६ से १८५१ है। इनकी जीवनी काव्यविवेचनासहित अबसे २४ वर्ष पूर्व मैंने प्रकाशित की थी। उसमें इस कविकी रामायणके सम्बन्धमें दो-तीन प्रकरणोंमें करीब ८० पृष्ठोंमें मैंने सविस्तर विवेचन किया था। इस कविने १०८ रामायणें लिखी हैं, जिनमें कुछ तो बहुत छोटी दस-बीस श्लोकोंकी हैं और कुछ दो-चार हजार श्लोकोंतक पहुँची हैं। इनके ये ग्रन्थ बड़े अद्भुत हैं, इन सबकी श्लोक-संख्या जोड़नेपर १६ हजारसे अधिक होती है। इन्होंने नाना प्रकारके छन्दोंमें रचना की है। आर्या-रामायण, अनुष्टुप-रामायण, विद्युन्माला-रामायण, दिण्डी-रामायण, प्रहर्षिणी-रामायण, सवाया-रामायण, स्रग्विणी-रामायण इत्यादि। इन रामायणोंके नाम छन्दोंके अनुसार ही रक्खे गये हैं।

कवि मोरोपन्त बड़े विद्वान्, साहित्यज्ञ, छन्द-शास्त्रमें निष्णात और अत्यन्त रामभक्त थे। इनकी रामायणोंमें कई प्रसङ्ग तो बहुत ही मज़ेदार हैं। मोरोपन्ती-रामायण मानो विश्वकर्माकी एक अद्भुत सृष्टि है।

राम

रामके ही चिन्तनमें मनको लगाता रहूँ,
रामके गुणोंका ही मृदुल गान गाऊँ मैं।
रामको निहारा करूँ अनिमेष चक्षुओंसे,
रामको पुकारा करूँ रामको ही ध्याऊँ मैं॥
रामके ही पद-पङ्कजोंका षटपद बनूँ,
रामके ही प्रेमका प्रसाद नित्य पाऊँ मैं।
आशा अभिलाषा और यही लालसा है मेरी,
राम-नामसे ही राममें हो मिल जाऊँ मैं॥

—भगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद एम० ए०एल-एल० बी०

बंगलामें रामायण

बंगालकी जनतामें सबसे अधिक तीन ही ग्रन्थों-का प्रचार है, जिनकी कथाओंको भक्तिपूर्ण हृदयसे सैकड़ों नर-नारी एकत्र होकर सुनते हैं—कृत्तिवासकृत रामायण, काशीरामदासकृत महाभारत और कृष्णदासकृत श्रीचैतन्य-चरितामृत। झोंपड़ीसे लेकर राजमहलोंतक इनकी अवाधित गति है। कृत्तिवासी रामायणके बंगलामें कई संस्करण निकल चुके हैं। इसके रचयिता पं० कृत्तिवास ई० सन् १४३२ की वसन्तपञ्चमी रविवारको बंगालके नदिया-जिलान्तर्गत फुलिया नामक गाँवमें पैदा हुए थे। यह गाँव वर्तमान राणाघाटसे सात मील दक्षिण-पश्चिम है। कृत्तिवासके पितामह मुरारी ओझा अपने समयके एक सर्वमान्य प्रधान पण्डित थे। इनके पिताका नाम वनमाली और माताका मालिनी था। ये ब्राह्मण थे।

गौड़-नरेशके आदेशसे कृत्तिवासने इस ग्रन्थकी रचना की थी। रचना इतनी सुन्दर है कि आबाल-वृद्ध-वनिता सभीके लिये परम आदरकी वस्तु है। इस ग्रन्थने बंगालकी जनताको श्रीरामचरित्रसे परिचित कर धर्मभाव और सामाजिक आदर्शको बहुत ऊँचा उठा दिया है।

कृत्तिवासने वाल्मीकि और अध्यात्मके सिवा अन्यान्य पुराणोंका भी आश्रय लिया है। सारी रचना बंगलाके पयार-छन्दमें है। भाषा बहुत सरल है। कहीं-कहीं अद्भुत कथाएँ हैं। श्रीहनूमान्‌जी जब द्रोणाचल-पर्वतको लेकर आये, तब उनकी काँखमें तेजपुञ्ज सूर्यदेवको देखकर श्रीरामको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि 'हनूमान्, सूर्यदेवको तुमने काँखमें कैसे दबा रक्खा है?' हनूमान् बोले—'नाथ! मैं पहाड़पर सजीवनी खोज रहा था, मुझे यह डर था कि कहीं सवेरा न हो जाय। मैं सूर्यके पास गया और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि आपके वंशज श्रीराम इस समय कष्टमें हैं, अतएव जबतक श्रीलक्ष्मण न जी उठें, तबतक आप उदय न हों। परन्तु सूर्यने मेरी बात नहीं मानी। मैंने सोचा कि सूर्य उदय हो जायँगे तो बहुत बुरा होगा। अतः मैं उन्हें पकड़ लाया, इससे अब रात नहीं बीतेगी।' इसके बाद श्रीरामने सूर्यको छुड़ा दिया। मूल वर्णन इस-प्रकार है।

कक्षतले ताहार देखिया दिनकरे।
जिज्ञासा करेन राम पवनकुमारे॥
कि अद्भुत देखि, 'बापू पवननन्दन।
तोमार शरीरे केन रविर किरन॥
हनूमान बोले 'प्रभु कर अवगति।
आनिवारे औषध गेलाम रातारातिः॥
औषधि खुँजिया आमि शिखरे बेड़ाइ।
पूर्वदिके दिनपति देखिया डराइ॥
पर्वत हइते गेनू भास्करेर ठाँई।
जोड़ हाथ करि स्तव करिनू गोसाँई॥
तोमार सन्तान अति कातर श्रीराम।
क्षणेक कश्यप-पुत्र करह विश्राम॥
यावत लक्ष्मण वीर नापान जीवन।
तावत उदय नाहि हइओ तपन॥
आमार ए वाक्य ना शुनेन दिनपति।
धरिया एने छि ताइ ना पोहाय राति॥
राम बलेन, 'बापू एकि चमत्कार।
ना पोहाय रजनी ना घूचे अंधकार॥
सूर्येर उदय-जन्य संसार-प्रकाशे।
छाड़ह भास्कर इनि उठून आकाशे॥
रामेर वचने वीर तोले दुई हात।
बाहिर हइल तबे जगतेर नाथ॥
सूर्येर प्रणाम करे पवन-नन्दन।
यतेक वानर करे चरण-वन्दन॥
आदिकर्ता आपन वंशेर दिवाकर।
शत शत प्रणाम करेन रघुवर॥
उदय-पर्वते भानु करेन गमन।
पोहाइल विभावरी प्रकाशे भुवन॥

इसप्रकार बहुत रोचक वर्णन है। इसके अतिरिक्त श्रीराजकृष्ण राय महाशयने भी वाल्मीकिके आधारपर बंगला पद्यमें रामायण-रचना की है। माइकेल मधुसूदन दत्तका मेघनाद-वध काव्य बड़ा ही रोचक और ओजस्वी है। इनके सिवा बंगलामें वाल्मीकि, अध्यात्म और गुसाईंजीकृत सभी रामायणोंके अनुवाद हो चुके हैं तथा रामायण और रामायणके पात्रोंपर अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गयी हैं।

उत्कल-रामायण

(लेखक—पं० श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय)

'ग्रन्थावली' के लेखक पं० श्यामसुन्दर रायगुरु बी० ए० लिखते हैं—हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें जिस भाँति गुसाईंजी-कृत रामचरितमानसका प्रचार और आदर है, बङ्गालमें जिस भाँति कृत्तिवास पण्डित विरचित 'रामायण' का मान है, दक्षिण-देशमें 'भास्कर-कवि' कृत रामचरित्र जैसा आदृत है, उसी भाँति उत्कल-प्रान्तमें बलरामदास कविद्वारा रचित 'रामायण' का प्रचार है। इन्हें यदि 'उत्कल-वाल्मीकि' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। ये उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रके समयमें अर्थात् ईसा की सोलहवीं सदीमें विद्यमान थे। ये जातिके करण (उत्कलीय कायस्थ) थे। घर इनका श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) में था। इनके पिताका नाम महापात्र सोमनाथ था। इनकी जननीका नाम था मनोमाया। रामायण-रचनाके समय इनकी अवस्था केवल ३२ वर्षकी थी। वाल्मीकि-रामायणके आधारपर इन्होंने अपनी रामायणकी रचना की। पर स्थान-स्थानपर बहुत-सी बाहरी और नयी बातें भी जोड़ी गयी हैं। हम इनकी रामायणको मूल संस्कृत-ग्रन्थका अनुवाद नहीं कह सकते। ३२ वर्षके युवकके लिये इतने बड़े ग्रन्थका प्रणयन बड़े साहसका कार्य कहा जायगा। उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

(उड़िया भाषा)

सामवेदुँ सम्भूत ए सात काण्ड कहि,
कृष्णरूप अनन्त अपूर्व तनु बहि।
ताहा प्रसादे मोते सारदा दया कला,
रामायण ग्रन्थ मोर मुखे उच्चारिला॥
चौबिस सहस्र श्लोक ए गीत रस,
बालमीक मुनि याहा कलेक प्रकाश।
विद्वजन मुखकुँ ये सुनिलइँ ताहा,
दया कले मोते ये कमला देवी नाहा॥
तेनु पहि महाकाव्यकु ये वाक्य कलि,
लक्षे पद ठिक करि गीते बसाइलि।

जन्मरु मुरुख मोर अलप बयस,
ग्रन्थकला काले मोते बरस बतिस।
दारा सुत धन जन सुखभोग शिरी,
अलपे आपने देइ अछन्ति ता हरि॥

इन्होंने अपनी रामायणका नाम 'जगन्मोहन-रामायण' कहा है। उसमें एक लाख पद हैं।

'जगन्मोहन' बलि ए रामायण नाम।
तत्थ करि भजिले पाइब विष्णु स्थान॥
× × × ×
श्रीजगन्नाथङ्क चरित मुहिं कहि।
रामायण सात काण्ड लक्षे पद होई॥

ब्राह्मणेतर जातिके एक व्यक्तिद्वारा रचित ग्रन्थ उपेक्षासे न देखा जाय, इस भयसे कविने लंकाकाण्डमें लिखा है:—

मुहिं हीन पापी ये विशेषे शूद्र योनि।
मुश जने कोप न करिब इहा शुनि॥

इनकी भाषा अत्यन्त सरस और सरल है। सरलताके लिये इन्होंने ग्राम्य शब्दोंको साहित्यगत करनेमें आनाकानी नहीं की है। अपने समयकी लोक-प्रचलित भाषाका नमूना इनके ग्रन्थभरमें देखा जाता है। वर्णनामें आडम्बर-शून्यता है। छन्दमें भी स्वच्छन्दता है। किसी पदके अक्षर १२, किसीके १३ वा १४ और कहीं-कहीं १५ और १६ अक्षर भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक पं० विजयचन्द्र मजुमदार महोदय लिखते हैं—

Balram Das is not ashamed of using those words freely which soon after his time came to be regarded as vulgar, for the poet reckons himself as one of the common people of the country. Balram Das as a national poet has sung for the people and by making Orissa a miniature world by itself has taught his countrymen to love the land of their birth.

मजुमदार महोदयके ऐसा लिखनेका कारण है। बलरामदासजीने ढेंकानाल राज्यान्तर्गत कपिलास पर्वतको

प्रसिद्ध कैलास पर्वत माना है। उड़ीसाके कई स्थानोंमें श्रीराम-लक्ष्मणको विचरण कराया है एवं 'बामखडा' और 'बणाई' राज्योंका भी उल्लेख किया है।

बलरामदास अपने समयके प्रसिद्ध भक्तोंमेंसे थे। जनश्रुति है कि एक बार रथयात्राके अवसरपर पण्डे और पुजारियोंने आपसे अभद्रताका व्यवहार किया था। आप उस अपमानको न सहकर महोदधिके निकट 'बाँकी मुहान' में आ कातर होकर भगवन्नामोच्चारणपूर्वक रोने लगे। इधर श्रीजगन्नाथ महाप्रभुका रथ आगे न बढ़ा—लोग खींच खींच कर थक गये। पीछे स्वप्नमें तत्कालीन गजपति महाराजको यह आदेश हुआ कि मेरे भक्तका अपमान किया गया है। उससे क्षमा माँगी जाय और उसे आदरपूर्वक आमन्त्रित किया जाय, तब रथ चलेगा। वैसा ही किया गया। तबसे इनकी गणना पुरीके प्रधान हरिभक्तोंमें होने लगी। इसी घटनाको लक्ष्यकर किसी बंगीय कविने लिखा था—

बन्दे ओड़िया बलरामदास महाशय।
जगन्नाथ बलराम वश यार हय॥

इनकी यह कथा उड़िया-भाषाके भक्त-माल कवि रामदासकृत 'दार्ढ्यता-भक्ति-रसामृत' में दी गयी है।

इनके रचे हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके नाम हैं—

(१) कान्त कोइली (२) अर्जुनगीता (३) बेढा परिक्रमा (४) मृगुणीस्तुति (५) ब्रह्माण्डभूगोल (६) गुप्तगीता (७) दुर्गास्तुति।

कहा जाता है कि आपने प्रौढ़ावस्थामें प्रसिद्ध चैतन्यदेव महाराजसे वैष्णवधर्मकी दीक्षा ले ली थी। लोग इन्हें 'मत्त बलरामदास' भी कहा करते थे, क्योंकि ये सदैव हरिनामामृत पानकर मत्त रहा करते थे।

उदाहरणार्थ २०-२५ पंक्तियाँ हम 'आदि-काण्ड' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

नमो नारायण प्रभु कमलापति।
नीलगिरि-शिखर ये अपूर्व मूरति॥
सुन्दर श्रीमुखे नीलगिरि पाए शोभा।
कि जाणि कि पटान्तर शरत् शशी प्रभा॥
नयन-युगल किवा शतदल पद्म।
जगत् जीवन नाथ परम-आनन्द॥

सर्व जन निस्तारण सुरगण साहा।
सर्वदा ये शंख चक्र गदा पद्म बाहा॥

× × ×

श्रीजगन्नाथङ्क आज्ञा शिररे मुँ घरि।
ग्रन्थ बखाणिवा इच्छा आदि अन्त करि॥

कविने श्रीनीलाचल या नीलगिरिकी वर्णना तथा श्रीदारुब्रह्म जगन्नाथ महाप्रभुके श्रीपुरुषोत्तमधाम(पुरी नगर) के सुन्दर शब्द-चित्र अङ्कित करते लिखा है कि श्रीजगन्नाथ महाप्रभुकी आज्ञासे मैं इस रामायण-रचना-कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

कविने पुरीधाममेंही ग्रन्थकी रचना की थी। उस समय पुरीका नाम पुरुषोत्तमपुरी था। पुरुषोत्तमका उड़िया अपभ्रंश नाम 'पुरुखम' होता है। पाटना नगर विशेषतः राजधानीको कहा जाता है। इसका समर्थन इन दो पंक्तियोंसे होता है—

पाटना-नगर नाम पुरुखम पुरी।
ब्रह्मा सृजि अछि जाहा अति यत्न करि॥

श्रीरामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए कवि बलरामदास लिखते हैं कि पार्वतीजी श्रीसदाशिवजीसे जो-जो प्रश्न करती हैं उन्हींको लेकर रामायणकी अमृतरूपी कथा बनी है। एक बार 'कपिलास कन्दर' में जब विश्वनाथ शिवजी विराजमान थे तब उनसे चौ-माथ (चतुर्मुख) ब्रह्माजी मिले। कुशल-जिज्ञासाके पश्चात् शिवजीने ब्रह्माजी-से कहा कि मेरा शरीर इन दिनों 'बलहीन दुर्बल' हो रहा है, इसका कारण क्या है और यह दुर्बलता क्योंकर दूर हो। ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि आपने दक्ष-महायज्ञके विध्वंस करनेमें जो 'तामस भाव' धारण किया उसी पापसे यह अस्वस्थता उत्पन्न हुई है। इसके दूर करनेका एकमात्र उपाय 'तारक ब्रह्म' का जप करना है, सो आप वही करें। कविके शब्दोंमें ब्रह्माजी कहते हैं—

पड़िला तोते से महापापर ये भोग।
शरीर असुस्थ साधि न पारिबु योग॥
एबे सदाशिव तू मोहर बोलकर।
तारक ब्रह्म नाम तु जपि पाप हर॥
राम नाम जपिले ये छाड़ि जिब पाप।
विश्वामित्र मुनि ऋषि छन्द अनुष्टुप॥

साधन कर हे शिव रामनाम पद–।
दुर्बलङ्का नाश जिब सुबल आनन्द ।।
होइब प्रापत तोते सकल पदार्थ।
सर्व क्लेश नाश जिब होइब सामर्थ्य ।।
एते होइ ब्रह्मा मुखे सामवेद घोषि।
रुद्रङ्कु हि 'राम' पद कहिले विशेषि ।।
कृताञ्जलि होइ रहिले से सदाशिव।
ब्रह्माङ्कर कल्याणरे देह सुस्थ हेब ।।
इत्यादि।

× × ×

वनवासमें जानेके लिये उद्यत श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसे कहते हैं—

कहारि सङ्ग ते तु गोन करिबु कलि।
तोते तूहि रक्षा करुथिबु महथिली ।।

गुजरातीमें रामायण

(ले०—श्रीयुक्त प्रह्लाद चन्द्रशेखर दीवानजी)

आधुनिक गुजराती, पश्चिमी राजस्थानी और प्राचीन गुजरातीसे निकली है। ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके अन्ततक तो अपभ्रंश सौरसेनी ही गुजरात और मालवा आदि प्रान्तोंमें प्रचलित थी। तदनन्तर लगभग सोलहवीं शताब्दीके अन्ततक पश्चिमी राजस्थानीका बोल-बाला रहा। आधुनिक गुजरातीकी उत्पत्ति सत्तरहवीं शताब्दीके प्रारम्भिक चतुर्थांशसे पूर्व नहीं हुई थी, उस समयसे अंग्रेजी शासनकी शिक्षाकी नवीन पद्धतिके प्रारम्भकालतक यानी १९वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततकके समयमें जिस गुजराती साहित्यका निर्माण हुआ वह अन्य भाषाओंकी तुलनामें नगण्य था। इसके सिवा श्रीकृष्णके चरित्रसे सम्बन्धित महाभारतका अंश गुजरातके व्यावहारिक और कौतूहल-प्रिय आत्माको जितना खींच सका उतना रामायण खींच भी नहीं सकी। गुजराती साहित्यके अनुशीलनसे यह बात सहज ही समझमें आ सकती है तथापि रामायणके सम्बन्धमें मुझे जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है वह निम्नलिखित है।

सोलहवीं शताब्दीमें गुजरातमें भालण नामक एक अच्छे कवि हो चुके हैं। उनके उद्धव नामक एक पुत्र था। सतरहवीं शताब्दीमें सबसे पहले उसीने रामायणकी रचना की। इसी शताब्दीमें महाकवि प्रेमानन्दका शिष्य रत्नेश्वर हुआ। यह संस्कृतका अच्छा पण्डित था, इसने भी लङ्काकाण्डकी रचना की, इसका निवास-स्थान डभोई था।

अठारहवीं शताब्दीमें प्रीतमदास नामका एक साधु खेड़ा जिलेके सन्देसर गाँवमें एक मठमें रहता था। इसको वेदान्तका अच्छा अभ्यास था। गुजराती और हिन्दीमें इसने अनेक ग्रन्थों और पद्योंकी रचना की। इन्हींमेंसे एक अध्यात्मरामायण भी है।

उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततक शिक्षाकी प्राचीन पद्धति ही प्रचलित थी। जिसके कारण अनेक भक्त-कवि पैदा हुए इनमेंसे एकका नाम गिरधरदास था। यह बड़ौदाके निकट किसी गाँवके लाड-बनिया थे। इन्होंने एक जैन-यतीसे संस्कृत और हिन्दी सीखी थी और उसीके प्रतापसे इन्होंने अनेक पद्य-ग्रन्थोंकी रचना की। इनमें रामायण मुख्य है। गुजरातीमें इन्हींकी रामायण सबसे अच्छी मानी जाती है और वह लोकप्रिय भी है। इस कविके अन्य ग्रन्थोंके नाम तुलसी-विवाह, गोकुल-लीला, अश्वमेध और मथुरा लीला हैं। इसके अतिरिक्त इसी सदीमें एक रामायण रणछोड़भक्त नामक कविकी बनायी हुई भी है।

इस शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें शिक्षाकी नवीन पद्धतिका आरम्भ हुआ और दूसरे चतुर्थांशमें उसको जब गुजरातमें भी चारों ओर फैलने लगी और उसके फलस्वरूप तथा भारतमें मुद्रणकलाके प्रवेश और प्रचारके कारण गुजराती साहित्य भी विभिन्न नूतन दिशाओंमें विकसित होने लगा। प्राचीन साहित्यपर भी विशेष और गम्भीर अध्ययन आरम्भ हुआ और उसके परिणामस्वरूप अबतक स्वतन्त्र ग्रन्थों और भाषान्तरोंके रूपमें रामायण-सम्बन्धी लगभग तीस ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

हाड़ोती भाषामें रामायण

(लेखक—श्रीनन्दकिशोरजी सक्सेना)

राजपूतानामें कोटा, बूँदी और झालावाड़ रियासतें हाड़ोती नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रान्त (हाड़ोती) की बोली बड़ी ही सुन्दर, रसीली, चित्ताकर्षक है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाका गुणानुवाद जब विभिन्न भारतीय भाषाओंमें हुआ तो यह प्रान्त भी ऐसा अभागा नहीं था कि भगवान् रामके गुण-गानसे शून्य रहता। अस्तु, इस भाषामें भी बड़ा ही सुन्दर अनुवाद हुआ है। इस अनुवादकी कुछ पंक्तियाँ पाठकोंके सम्मुख रक्खी जाती हैं। पाठकगण इनको पढ़कर हँसें नहीं, क्योंकि प्रत्येक प्रान्तकी भाषा निराली होती है।

श्रीपार्वतीजी श्रीशिवजीसे भगवान् रामके अवतार-धारण करनेका कारण पूछती हैं—

सदाशिव पूँछूँ, राम अवतार ,
पृथ्वीको बांने कैसे उतार्यो भार
तान (सदा शिव पूँछूँ जी)
निर्गुण ब्रह्म सगुण क्यों होया, मनुष्य देहको धार
भूप दशरथके क्यों लियो अवतार
काई तपस्या करी छी भूपने, जी मूँ जन्म्याँ आर
(सदा शिव पूँछूँजी)

श्रीशिवजी कहते हैं—

परी उमा भला पूँछ्या समचार
रामका चरित्र कहूँ अवतार ॥
जब जब दुःख पड़्यो री भक्तनपर
होयो धर्मको नाश ;
असुर जब जन्म्याँ पृथ्वीपर आर
दुखी हो गया गऊ ब्राह्मण देवता
जब लीनो अवतार ॥

जिस समय रामलीला होती है उस समय इसे ग्रामवासी ऐसी तर्ज़से गाते हैं कि दर्शकगण मुग्ध हो जाते हैं, परन्तु समझते हैं केवल हाड़ोतीवासी ही।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज ताराको विलाप करते हुए देखकर समझाते हैं, वह भी सुनिये—

जीव अविनाशी पड़ी या देह
ऐरी तारा किसपर करती स्नेह,
पृथ्वी अग्नि गगन जल वायु, यों कर रच्यो शरीर
बीच मल मूत्र भरी री या देह।
जीव अमर छै सुन जे री तारा, किसपर धार्यो नेह ॥

परमप्रिय पाठकगण ! इस भाषाकी रामलीलामें वह आनन्द आता है जो अवर्णनीय है। रामलीला हो जानेके बाद भी लोग बारहों महीने रामचरितको बड़े प्रेमके साथ गाते हैं। वास्तवमें भगवान्की लीलामें जो आनन्द है वह किसी वस्तुमें भी नहीं है—

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम् ,
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥

द्रविड़ रामायण

द्रविड़ी भाषामें एक रामायण है। इसमें बहुत नयी-नयी घटनाओंका समावेश है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उसकी कुछ बातें संक्षेपमें यहाँ दी जाती हैं—

द्रविड़देशके राजाका नाम जीमूतवाहन था। एक बार इसने शत्रुओंसे भयभीत होकर लङ्का और पाताललङ्काके महाबली और प्रतापी राक्षसराज भीमकी शरण ग्रहण की। राक्षसराजके कोई पुत्र नहीं था, और वह बूढ़ा हो चला था। उसने जीमूतवाहनको सर्व सुलक्षण-सम्पन्न समझकर गोद (दत्तक) ले लिया। जीमूतवाहनका वहीं एक सुन्दरी राक्षस-कन्यासे विवाह हो गया! महाराज भीमने लङ्का और पाताललङ्काके राजसिंहासनपर जीमूतवाहनको बैठा दिया। इसी जीमूतवाहनके वंशमें माली, सुमाली और माल्यवान नामक तीन बलवान राजा हुए थे। परन्तु विद्याधरदेशके राजा इन्द्रने उनसे लङ्काका राज्य छीन लिया

जिससे उन्हें भागकर पाताललङ्कामें आना पड़ा। इन तीनोंमें सुमालीके पुत्रका नाम रत्नश्रवा था। प्रतापवान और दिग्विजयी राक्षसराज रावण इसी रत्नश्रवाका पुत्र था। रावणने विद्याधर-देशके राजा इन्द्रको पराजितकर लङ्कामें पुनः अपना राज्य स्थापित किया। तदनन्तर किष्किन्धा-राज्यको जीतकर वहाँ ऋक्षरज और सूर्यरजको राजा बनाया। सूर्यरजके बालि और सुग्रीव नामक दो लड़के थे। रावणने किष्किन्धा-राज्यके बदलेमें बालि और सुग्रीवकी सुन्दरी बहिनके साथ विवाह करना चाहा। बालिको यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा और इस विषयमें सुग्रीव आदिके साथ उसका मतभेद हो गया। झगड़ा बढ़ाना उचित न समझकर बालि राजसिंहासन सुग्रीवको सौंपकर चला गया और सुग्रीव अपनी बहिनका विवाह रावणके साथ करके निर्विघ्न राज्य करने लगा। एक बार सुग्रीवका अपनी स्त्री 'सुतारा' से कुछ मनमुटाव हो गया। जिससे घबराकर सुग्रीव राजधानीसे दूर किसी एक स्थानमें छिपकर रहने लगा। इधर मौका पाकर किसी एक दुष्ट मनुष्यने सुग्रीवका रूप धारणकर किष्किन्धामें आकर राज्यपर अधिकार कर लिया। पीछेसे जब सुग्रीवको इस अप्रिय घटनाका पता लगा, तब वह घबराकर अपने प्राणोपम मित्र हनुवर-देशके राजा पवनजयके पुत्र हनुमान्‌के पास उनकी सलाह लेने गया। राजा हनुमान्‌को अपने चरोंद्वारा यह संवाद मिला ही था कि कोसलदेशके सूर्यवंशी रामचन्द्र नामक एक अति बलवान वीर राजकुमार अपने शूरवीर भाई लक्ष्मणसहित किसी कारणवश वनमें आये हैं और समीप ही कहीं विचर रहे हैं। हनुमान् स्वयं श्रीरामके पास गया और अग्निकी साक्षी बनाकर सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करवा दी। राम सुग्रीव दोनोंने परस्पर सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। यह निश्चित हुआ कि राम नकली सुग्रीवको मारकर मित्र सुग्रीवको उसका राज्य वापस दिला देंगे और सुग्रीव राम-महिषी सीताका पता लगाकर उसे रामके पास लानेके कार्यमें सहायता पहुँचावेगा। नकली और असली सुग्रीवका चेहरा बहुत ही मिलता-जुलता था। इसलिये श्रीरामने पहचाननेके लिये असली सुग्रीवको माला पहना दी और नकली सुग्रीवके साथ युद्धकर हनुमान्‌की सहायतासे उसे मारकर असली सुग्रीवको उसका राज्य वापस दिला दिया। तदनन्तर सीताकी खोजके लिये सुग्रीवने चारों ओर दूत भेजे। इन दूतोंने लौटकर खबर दी कि लङ्काका राजा रावण सीताको हरकर ले गया है। रास्तेमें सीताका रोना-चिल्लाना सुनकर राजा जटायुने उसे दुष्टके चंगुलसे छुड़ानेका प्रयत्न किया था, परन्तु वह सफलमनोरथ नहीं हो सका, रावणने उसको मार डाला।

सीताका पता लगनेपर यह प्रश्न उठा कि सीताको रावणके पंजेसे कैसे छुड़ाया जाय। इसपर सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि राजा हनुमान् सीताको लौटा देनेके निमित्त रावणको समझानेके लिये लङ्का जायँ। हनुमान्‌को भेजनेकी यह योजना बहुत ही युक्तियुक्त थी। क्योंकि हनुमान् रावणकी भाँति राक्षस वंशके राजा और रावणके दूरसम्पर्कीय सम्बन्धी थे। कारण, सुग्रीवकी बहिन रावणको ब्याही थी। इसके अतिरिक्त हनुमान् परम बुद्धिमान्, असाधारण शूरवीर और कुशलवक्ता तो थे ही। हनुमान् श्रीरामके पाससे कुछ वस्तुएँ चिह्नस्वरूप सीताको देनेके लिये साथ लेकर महेन्द्र और दधिमुख-पर्वतके मार्गसे लङ्का गये और रावणसे मिलकर उसको सब तरहसे समझाया, परन्तु उसने एक भी बात नहीं सुनी। हनुमान् लौट आये। अब युद्धके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं रह गया। अब श्रीराम, सुग्रीव और हनुमान् युद्धकी तैयारीमें लगे। सुग्रीव और हनुमान्‌ने अन्यान्य द्राविड़ी नरेशोंका सहयोग प्राप्तकर बड़ी सेना इकट्ठी की। तदनन्तर लङ्कापर चढ़ाई करनेके लिये श्रीराम सेनासहित चले। इस यात्रामें उन्हें वेलान्धपुर, सुवेलाचल और हंसद्वीप आदि राज्योंसे होकर जाना पड़ा। उस समय वेलान्धपुरमें समुद्रनामक राजा राज करता था। उसने रामकी सेनाको अपने राज्यमेंसे होकर जानेके लिये मार्ग दिया।

इसप्रकार द्राविड़ी रामायणमें कई अद्भुत बातें हैं। यह वर्णन पुराने 'बंगाली' नामक बंगला-मासिक-पत्र और मराठीके 'केसरी' नामक पत्रमें प्रकाशित लेखोंके आधारपर किया गया है।

श्रीरामका आदर्श विजय-रथ

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा-पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रिजु जोरे॥
ईस-भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम यम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

सौरज धर्म जाहि रथ चाका । सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥ बल विवेक दम परहित घोरे । क्षमा दया समता रजु जोरे ॥
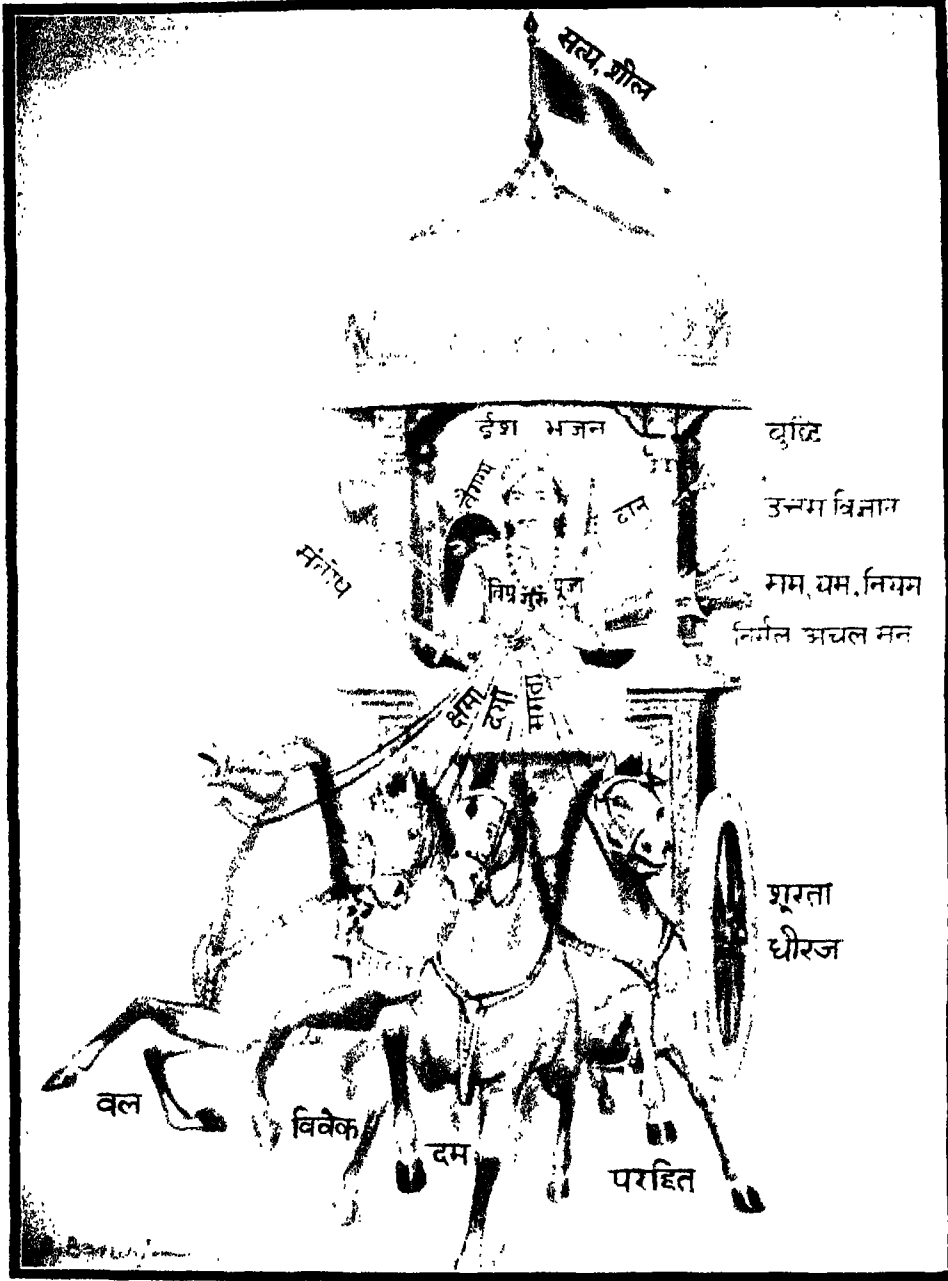
ईश भजन सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ॥ दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा । वर विज्ञान कठिन कोदण्डा ॥

अजेय-रथ ।

संयम नियम शिलीमुख नाना । अमल अचल मन त्रोण समाना ॥

कवच अभेद विप्रगुरु पूजा । यहि सम विजय उपाय न दूजा ॥

रामायण और राजनीति

(लेखक—काव्यतीर्थ प्रो० लौटूसिंहजी गौतम एम० ए०, एल० टी०, एम० आर० ए० एस०)

न्दू धर्म-ग्रन्थोंमें रामायणका स्थान बहुत ऊँचा है। सचमुच यह रत्नोंका भण्डार है। इस निराले महाग्रन्थका नाम 'पञ्चम वेद' रखना सब तरहसे ठीक है। यह धर्म-नीति, राज-नीति और समाज-नीतिके उपदेशोंसे पूर्ण है। इसमें वे सुलभ साधन बतलाये गये हैं जिनसे मानव-जीवनका पूर्ण विकास और शेषमें अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्ति हो सकती है।

भगवान् व्यासकृत अध्यात्मरामायण और आदि-कवि-रचित वाल्मीकि-रामायण दोनों ही ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। इन्हीं दोनोंके आधारपर भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अनेक रामायणोंकी रचना हुई है। उनमें गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानसका स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

रामायणने मनुष्य-जीवनकी समस्याओंको बड़े अच्छे ढंगसे हल किया है। गृहस्थमें रहते हुए भी हम अपने अन्तिम ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। इसी विषयका रामायणमें विशद विवेचन किया गया है। ब्रह्मज्ञानको माननेवाले वेदान्ती, बौद्ध और जैन आदि दार्शनिकोंने गृहस्थ-धर्मकी अपूर्णता सिद्ध की थी; पर रामायणमें इन माया, छाया और वैराग्यवादियोंको अच्छा उत्तर दिया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये कुछ सद्गुणोंकी आवश्यकता है। जीवनमें किसी एक विशेष झुकावकी प्रवृत्तिमें निवृत्तिकी आवश्यकता है। यथार्थ आत्मत्याग और आध्यात्मिकताकी जरूरत है जो घर और वन दोनों ही स्थानोंमें सम्भव है। रामायणके प्रधान नायक भगवान् श्रीरामका पदानुसरण करना ही प्रधान साधन है, क्योंकि आदर्श गृहस्थ और संसारके समस्त यति तथा वनवासी पुरुषोत्तम श्रीरामकी चरण-पादुका छूनेमें अपना अहोभाग्य समझते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि रामायणमें धर्म, राज्य और समाजकी नीतिका उपदेश भरा है। प्रस्तुत लेखमें रामायणकी राजनीतिपर ही दो-चार शब्द लिखने हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है कि 'हिन्दू-सभ्यतामें राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ कभी विकसित नहीं हुईं। यहाँ तो जन्मसे अवसान तक और जागनेसे सोनेतक केवल धर्मका ही अखण्ड साम्राज्य छाया रहता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंके पास और रक्खा ही क्या है? वही एकतन्त्रवाद (Autocracy) और वही राजाको ईश्वर बतलानेवाली भेड़-सदृश प्रजा! इतना ही नहीं हिन्दू-राजाओंकी आज्ञा रूसके अत्याचारी ज़ारके समान ही निरंकुश होती है। इनमें पाश्चात्य उदार राजनीतिकी कल्पना तो आकाश-कुसुमवत् है।' इस निराधार उक्तिका पूर्ण उत्तर स्वतन्त्र लेखमें दिया जा सकता है। इसके सिवा इनके सुप्रसिद्ध विद्वान् इसकी सारहीनता सिद्ध कर ही चुके हैं। यहाँपर इतना ही कह देना अलम् होगा कि रामायणमें उस मनुष्यत्वहीन कठोर राजनीतिका या शासनकलाका वर्णन अवश्य ही नहीं है जिसके कारण आज सभ्य और असभ्य संसारमें हाहाकार मच रहा है। रामायणकी राजनीति मनुष्यके प्रेम, आत्मत्याग और सर्व-भूत-हितकी भावनापर अवलम्बित है। इस राजनीतिका उद्देश्य लोकसंग्रह है। दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि हिन्दुओंकी राजनीतिका आधार धर्म है। रामायणमें रावणकी राजनीति भी है, पर वह जघन्य होनेके कारण त्याज्य है। श्रीरामकी राजनीति ही धर्मानुमोदित और ग्राह्य है।

नाहिन राम राजके भूखे। धरमधुरीन बिषय-रस रूखे॥

श्रीरामकी यह भावना ही उत्कृष्ट राजनीति है। पाश्चात्य देशोंमें राजनीतिको ही धर्म समझा जाता है। जघन्य-से-जघन्य कार्य करनेपर भी किसीको राजनीतिक लाभ होता हो तो भी वे उसे धर्म ही मानते हैं। पर श्रीराम-की राजनीतिमें यह बात कदापि नहीं। जिस राजनीतिका विकास यूरोपकी पिछली चार शताब्दियोंमें हुआ है, सम्भवतः उस राजनीतिका उल्लेख रामायणमें न हो। उसके न होनेमें कोई हानि तो है ही नहीं, मानव-समाजका लाभ अवश्य है। पाश्चात्य राजनीति (Politics) या शासनकला यूरोपके लिये भले ही कल्याणकारक हो, हमारे लिये तो वह घातक ही है। हमारी राजनीति तो मनुष्यता, समता, दया और प्रेमकी गोदमें फली-फूली है। रामायणमें देवर्षि नारदने वाल्मीकिजीके प्रति श्रीरामकी गुणावलिका वर्णन किया है। वहाँ अन्य गुणोंके साथ ही श्रीरामको अत्यन्त बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी और दयालु बतलाया है। मेरे

विचारसे तो श्रीराम जिस ग्रन्थके नायक हैं वह रामायण भारतीय राजनीतिका एक अनूठा ग्रन्थ है। 'अप्रमत्त प्रजां रक्षेत्' प्रमाद छोड़कर प्रजाकी रक्षा करना ही राजाका कर्तव्य है। इस कर्तव्यकी रक्षा रामायणमें आदिसे अन्त-तक की गयी है। महर्षि वाल्मीकिने आदर्श राजा, आदर्श राजकुमार और आदर्श राजनीतिका वर्णन किया है।

महाराज दशरथकी उम्र ढल रही है। कार्यकी शक्ति क्षीण होती जा रही है। उन्हें मालूम होता है कि क्षमता न रहनेपर राजधर्ममें विश्रृंखलता आ जायगी। उनके श्वेत केश श्रीरामको युवराज बनानेका परामर्श दे रहे हैं। इसी विषयको गोस्वामी तुलसीदासजीने यों कहा है—

राउ सुभाउ मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहु जरठपन अस उपदेसा॥
नृप युबराज रामकहँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

महाराज दशरथने रूसके ज़ार, इटलीके मुसोलिनी अथवा अभागे भारतके क्रूर शासक औरंगजेबकी भाँति मन-माना फरमान नहीं निकाला। उन्होंने राज्य-परिषद्की बैठकमें सबके सामने कहा—'आप लोग जानते हैं कि हमारा राज्य कैसा उत्तम है? हमारे पूर्वजोंने पुत्रके समान प्रजाका पालन किया है, मैंने भी यथाशक्ति आलस्य त्यागकर सेवा की है, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, प्रजा-पालनका धर्म बड़े ही दायित्वका है। अतः मैं श्रीरामको युवराज बनाकर प्रजापालनका भार सौंपना चाहता हूँ। आप लोग निस्संकोच अपनी सम्मति दीजिये।' उपस्थित ब्राह्मण, सामन्त, राजा, नागरिक एवं राज्य तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंने मिलकर परामर्श किया और सबने एकमतसे रामको युवराज बनानेकी सम्मति दी। महाराजा दशरथको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ। प्रजा कहीं मेरे दबावसे मेरी रायमें राय न मिला दे, अतएव महाराज दशरथने उनसे फिर पूछा—

कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्॥

'मैं धर्मपूर्वक राज्यका शासन कर रहा हूँ, फिर आप-लोग महाबलवान् युवराज क्यों चाहते हैं?' उन लोगोंने मुक्तकण्ठसे कहा, 'महाराज! रामके गुणोंको देखकर ही हम ऐसा चाहते हैं, अतएव आप शीघ्र ही उनका अभिषेक करवाइये।' दशरथकी राजनीतिका अनुमान पाठक इसीसे कर सकते हैं।

श्रीरामके राजनैतिक जीवनका श्रीगणेश होनेवाला है, राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं। सब लोग बड़े प्रसन्न हैं, पर श्रीरामको जब यह शुभ समाचार मिलता है तब वे सहसा कह उठते हैं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

श्रीरामकी त्यागमूलक राजनीतिका यह एक आदर्श है। आज भाइयोंमें ज़रा-सी भूमि और तनिक-से स्वार्थके लिये खून-खराबी हो जाती है। इतिहासज्ञ जानते हैं कि औरंगजेबने अपने बड़े भाई दाराको कत्ल करवाया, बेचारे मुरादको धुला-धुलाकर मार डाला, शुजाको जङ्गलोंमें भटकाया और सगे बापको कैद किया तथा मुग़ल-साम्राज्य-के विनाशका बीज बोया। यह सब क्यों हुआ? उसकी अतृप्त राज्यलिप्सा और बद्ध-स्वार्थके कारण। यह राजनीति रामकी राजनीति नहीं है। यह तो संसारके इतिहासमें एक आदर्श वस्तु है। रामने प्रेममूलक राजनीतिसे गुह निषादको अपने वशमें कर लिया। उसकी दशा मन्त्र-मुग्ध नागराजकी-सी हो गयी। ज़रा देखिये—

लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरषु अपारा॥
करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे॥

जहाँ कोई इसप्रकार अनुराग-रञ्जित होकर मिलता है वहाँ क्या राजनीतिके सिद्धान्तके अनुसार अङ्गरक्षकोंकी किसी प्रकारकी चेष्टाकी अपेक्षा है?

राम-वनगमनके पश्चात् भाई भरतको यही चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं राज्यकी कोई प्राचीन प्रथा टूट न जाय और बड़े भाई रामके रहते उनसे छोटा होनेके कारण मुझको राज्य-शासन देना देश और समाजके लिये हानिकर सिद्ध न हो। भरतकी गहरी राजनीतिक शिष्टता और नम्रता आदर्श है। वह कहते हैं—

कहौं साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू॥
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

भरतने भावी राज्यक्रान्तिका विचारकर श्रीरामसे मिलनेकी इच्छा की और सेनाके साथ अयोध्यासे प्रस्थान किया। गुह निषादको भरतपर सन्देह हुआ था और उसने उनसे लोहा लेना चाहा था। परन्तु भरतकी साधुतारूप विमल गंगाकी धारामें स्नानकर वह निष्पाप हो गया। श्रीरामने जब भरतको ससैन्य आते हुए सुना तो उनकी

राजनीतिक पटुता क्रोधके सामने विलुप्त नहीं हो गयी। धैर्यमूर्ति राम अपने मनमें किसी भी राजनीतिक बातकी आशंकासे विचलित न हुए। श्रीरामकी यह राजनीतिक परीक्षा थी और वे इसमें उत्तीर्ण हो गये।

भरत-सुभाउ समुझि मनमाहीं। प्रभु-चित हित-थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने॥

लक्ष्मणको बड़ा क्रोध आया। वे युद्धके विचारोंमें निमग्न हो अनेक कड़ी बातें कहने लगे। और भरत, शत्रुघ्नके वधकी प्रतिज्ञातककी नौबत आ गयी। किन्तु राजनीति-कुशल श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें समझाया—

सुनहु लषन भल भरत-सरीखा। बिधि-प्रपञ्चमहँ सुना न दीखा॥
भरतहि होइ न राज-मद बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँकि काँजी-सीकरन्हि छीरसिंधु बिनसाइ॥

यह तो थी रामकी राजनीतिक गम्भीरता, और

कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ॥

यह थी श्रीरामकी सच्ची भावना। भरत आये और चरणपादुका लेकर चले गये। श्रीरामके समक्ष अवधका साम्राज्यका बड़ा प्रलोभन था! किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहते हुए भरतका प्रेम निबाहा। श्रीराम आगे बढ़कर मुनियोंसे मिले। उनके साथ-साथ मुनि-वृन्द भी चल पड़ा। एक स्थानपर—

अस्थि-समूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन लागि अति दाया॥

मुनिगणने उत्तर दिया--

निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाये॥

यह था श्रीरामका भाव और यह थी उनकी सहृदयता! क्या राजा या राजकुमारके लिये अपनी प्रजाका दुःख देखकर भी उसके निवारणकी चेष्टा न करना राजनीतिमें कहीं लिखा है? यदि नहीं, तो भला क्या राम इस आदर्शसे पीछे पैर रखनेवाले थे? उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की—

निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

यही है उस राजनीतिकी शक्ति, जिसके भरोसेपर शासन किया जाता है।

श्रीराम गोदावरीके तटपर पञ्चवटीमें रहते थे। उस समय—

सूपनखा रावनकै बहिनी। दुष्टहृदय दारुन जसि अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

शूर्पणखाने श्रीरामसे विवाहका प्रस्ताव किया। श्रीरामने लक्ष्मणको और लक्ष्मणने श्रीरामको संकेत किया। अपनी इच्छा पूर्ण न होते देख शूर्पणखाको क्रोध आया और उसने विकराल भेष धारण किया। लक्ष्मणने उसके नाक और कान काट लिये। तदनन्तर खर, दूषण, त्रिशिरा-समेत चौदह हजार निशाचरोंको श्रीरामने धराशायी किया। शूर्पणखाके अपमानका बदला लेनेके लिये रावणने जगदम्बा श्रीजानकीजीको हरनेका निश्चय किया और मारीचके पास जाकर सहायता माँगी। श्रीरामचन्द्रजीका नाम सुनकर मारीच काँप उठा और रावणको श्रीरामचन्द्रसे वैर न करनेकी सलाह देने लगा। वह एक बार भगवान्‌का प्रभाव देख चुका था। श्रीरामके भयसे कह उठा--

राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर।
दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः॥
रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥
न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि।
(वा० रा० ३। ३९। १७-१८-२०)

'हे रावण! जिस स्थानपर रामचन्द्रजी नहीं हैं वहाँ भी मैं उन्हींको देखता हूँ। स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मेरा मन घबड़ा जाता है और मैं बकने लगता हूँ। हे रावण! रामचन्द्रसे डरे हुए मुझको रथ, रत्न आदि रकारसे प्रारम्भ होनेवाले पदार्थ भी भयभीत कर देते हैं। यदि मुझे देखना चाहते हो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न कहो।'

वाल्मीकि-रामायणके अ० का० ३९, ४०, ४१, ४२ सर्गोंमें रावण और मारीचका वाद-विवाद सब राजनीतिज्ञोंके लिये विशेषतया आधुनिक शासकोंके देखने योग्य है। मारीच रावणको समझाता है—

वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण।
ये त्वामुत्पथमारूढं नानुगृह्णन्ति सर्वशः॥
(वा० रा० ३। ४१। ३)

'हे रावण! जो मन्त्री कुमार्गमें जानेसे तुम्हें नहीं रोकते वे वध्य हैं। तुम उनको क्यों नहीं मार डालते?' परन्तु रावणने तो पक्के शासकका व्रत ले लिया था। वह था आजकलकी भाषामें Thorough Administrator अर्थात् 'पूर्णशासक।' रावणने बड़े अभिमानसे कहा था--

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः ।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव सन्निधौ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥
(वा० रा० ३ । ४० । ६-७)

अर्थात् 'खरको मारनेवाले रामचन्द्रके प्राणोंसे प्यारी सीताका मैं अवश्य हरण करूँगा, सो भी तुम्हारे सामने ही । मारीच ! यह मेरा निश्चित विचार है । इसको इन्द्र, देवता या असुर कोई नहीं बदल सकते ।' रावणने जिस दिन सीताहरणका निश्चय किया था, उसीदिन उसकी श्रीका नाश होना प्रारम्भ हो गया था ।

श्रीरामकी राजनीतिका पूर्ण परिचय सुग्रीव-मैत्री और विभीषणकी शरणागतिसे मिलता है । उनकी संगठनात्मक शक्ति बहुत ही प्रौढ़ थी । समय पड़नेपर भगवान् श्रीराम सुग्रीवसे कहते हैं —

त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिन्शरणं भवान् ।
तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥
(वा०रा०४ । १२ । ३६)

'हम सब इस समय तुम्हारे अधीन हैं । इस वनमें तुम्हीं हमलोगोंके रक्षक हो । तुम शंका न करो, पुनः युद्ध करो ।' सुग्रीवको समझा-बुझाकर श्रीराम उसे वालिसे लड़नेके लिये प्रेरित करते हैं और अन्तमें वालिका वध करते हैं । राजनीतिपर श्रीराम और वालिका वाद-विवाद अनुशीलन करने योग्य है । वालिका राजनीतिक तर्क बड़ा ही मर्मस्पर्शी है । इसके उत्तरमें श्रीराम यह कहते हैं—

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः ।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥
(वा०रा०४ । १८ । १८)

अर्थात् 'सनातन-धर्मको त्यागकर तुम छोटे भाईकी स्त्रीका उपभोग कर रहे हो इसी कारणसे तुमको मैंने मारा है ।' इस उत्तरसे वालि निरुत्तर हो जाता है । श्रीरामका सुग्रीवको राजा बनाना उनकी राजनीतिपटुताका उत्तम उदाहरण है । सुग्रीवका विषयासक्त होकर विलम्ब करना, फिर लक्ष्मणद्वारा उसको उचित मार्गपर लाना तथा सीताकी खोज करवाना आदि विषय श्रीरामकी राजनीतिक चतुरताके द्योतक हैं ।

यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है । मेरे तुच्छ मनसे ऊपर कथितानुसार रामायण एक राजनीतिक ग्रन्थ है परन्तु भगवान् वेदव्यासजीका अध्यात्मरामायण आध्यात्मिक दृष्टिसे लिखा गया है । अतः वह आध्यात्मिक शास्त्रका गौरव है । और महात्मा तुलसीदासजीका रामचरितमानस भक्ति-रससे प्लावित है । वाल्मीकि-रामायणमें राजनीतिका अच्छा विवेचन है । इस महाग्रन्थमें पद-पदपर राजनीतिक उपदेश दिये गये हैं । वास्तवमें कोई भी रामायण श्रीरामका विषय होनेसे राजनीतिसे शून्य नहीं हो सकती । यदि इस विषयकी गम्भीर एवं विस्तृत विवेचना की जाय तो अधिक स्थानकी आवश्यकता पड़ेगी । अतः सूक्ष्मरूपसे ही इसके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाता है ।

भगवान् रामने महारानी सीताके अन्वेषणके लिये श्रीहनूमान्‌जीको भेजा । श्रीहनूमान्‌जीने बड़ी बुद्धिमत्तासे माता सीताका पता लगा लेनेके बाद अपने शत्रु राक्षसोंके हृदयपर अपने प्रबल प्रभुत्वका सिक्का जमाना चाहा । उन्होंने राजनीतिके चार अंगोंमें साम, दान और भेदके उपयुक्त क्षेत्र न देख दण्डकी आयोजना की । अशोक-वाटिकाको उजाड़ा, 'रामकाज' के लिये बँध गये, लंका जलायी और अन्तमें पूर्णमनोरथ होकर लौटे एवं सीताका सन्देश रामको सुनाया ।

श्रीरामकी वानरी सेना समुद्रपर है । रावणका छोटा भाई विभीषण रावणसे फूटकर भगवान्‌से मिलने जाता है । वानर उसके आनेके रहस्यको समझ नहीं पाते । यहाँपर श्रीरामचन्द्र जिस उदार राजनीतिका वर्णन करते हैं उसे देखकर शत्रु भी मित्र हो सकते हैं । भगवान् कहते हैं 'सबसे पहली बात तो यह है कि विभीषण शरणागत है अतः रक्षणीय है । यदि मान भी लें कि वह दशाननका भाई है तो भी हे सखा !—

जगमहँ सखा निसाचर जेते । लछिमन हनइ निमिषमहँ तेते ॥
जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहौं ताहि प्रानकी नाईं ॥

अतः—

उभय भाँति ले आवहु, हँसि कह कृपानिकेत ।'

जब विभीषण आया तो रामने 'भुज बिसाल गहि हृदय लगावा' और बड़ी नम्रतासे पूछा—

'खल मंडली बसहु दिन-राती । सखा ! धर्म निबहै केहि भाँती ॥'

एक ओर श्रीरामका आत्मविश्वास, दूसरी ओर लक्ष्मणको प्रोत्साहन, तीसरी ओर सच्ची सहृदयता और उदारता ! इन सब सुन्दर गुणोंके सम्मिश्रणसे श्रीरामकी राजनीतिमें और भी सौन्दर्य आ जाता है । आगे चलकर भगवान् कहते हैं—

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरस अमोघ जगमाहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ॥

इन चौपाइयोंमें कैसी राजनीति और कितना आत्म-विश्वास है। वानरोंमें कोई भी ऐसा न था जिससे श्रीरामने कुशल-प्रश्न न पूछा हो। यह आदर्श है नेतृत्वका। नेताका कर्तव्य है कि वह सबकी सम्मति ले और सबके कल्याण-मार्गको स्थिरकर कार्यक्षेत्रमें उतरे। श्रीरामको विनयद्वारा समुद्रसे पार जानेका कोई मार्ग नहीं दिखलायी देता, अतः यहाँ उनको राजनीतिका रहस्य बतलाना पड़ा।

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब बिनु भय होइ न प्रीति ॥

शक्तिसे भय और भयसे प्रीति, यह राजनीतिका उच्चतम उपदेश है। श्रीरामने इसीके अनुसार कार्य कर समुद्रको अपने वशमें किया।

संसारके इतिहासमें राजनीतिका वर्णन किसने न पढ़ा होगा। आज भी राजनीतिका पालन होता है। पर श्रीरामकी राजनीति इन सबसे निराली है। उन्होंने युद्धके समय रावणके साथ पद पदपर राजनीतिका पालन किया है। उन्होंने विभीषणका उचित उपयोग किया है। रामने रावणका नाशकर सुवर्णमयी लङ्का विभीषणको दी और आर्य संस्कृति-सभ्यताका झण्डा फहराया। तदनन्तर सती सीताको लेकर अयोध्या आये। अयोध्यामें अपने वानरोंको गुरु वशिष्ठका परिचय इन शब्दोंमें करवाया—

पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनिपद लागहु सकल सिखाये ॥
गुरु बसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे ॥

और गुरु वशिष्ठसे वानरोंके विषयमें कहा—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर-सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे ॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये ॥

एक ओर अपनी विजयका श्रेय गुरुको और दूसरी ओर अपने सहायक वानरोंको देकर आप तटस्थ रह गये। विजय-श्री आपके ही मस्तकको सुशोभित कर रही थी, परन्तु आपने उसका सारा श्रेय दूसरोंको ही दिया। अहा! राजनीतिक पटुता, सज्जनता, शिष्टता, कृतज्ञता, नम्रता और निरभिमानताका कैसा अलौकिक उदाहरण है! इस राजनीतिमें आजकलकी राजनीतिकी नृशंसता और पशुता नहीं है। इसमें मदान्धता, नास्तिकता, स्वार्थपरता और अहम्मन्यता नहीं है। दण्ड तो इसलिये दिया जाता है कि वह—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥
(मनु० ७। १८)

भगवान् रामने लोक-कल्याणार्थ रावणके प्राण अवश्य ले लिये। परन्तु उन्होंने उसकी आत्माको अपनेमें मिलाकर उसको शुभ गति दी। तभी तो कहा है—'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यम्।' मारकर भी मोक्ष देना, अपराधीको भी भौतिक बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्ति देना, भगवान्‌की विश्वबन्धुताके एक अंगका सुन्दर परिचय है। रामायणकी रामकी इसी भावनापर अवस्थित राजनीति नित्य लोक-कल्याण-कारिणी है।

यह शंका हो सकती है कि जिस आधुनिक राजनीतिको हेय समझकर उसकी निन्दा की गयी है वह भी तो रामायणमें पायी जाती है। रावणकी एकान्तनीति 'भक्षण-भक्ष्य' (eat or be eaten) ही थी। जिसका पालन आजकल पाश्चात्य राजतन्त्रमें किया जाता है। श्रीरामने भी बालिवध क्यों किया था?

इसका उत्तर यह है कि रावणकी नीति रामायणकी दृष्टिसे त्याज्य होनेके कारण वह रामायणकी राजनीति नहीं कही जा सकती। श्रीरामका बालि-वध संसारके कल्याणके हेतु अथवा आर्य-संस्कृतिकी उन्नतिके लिये भी आवश्यक था अतः उसमें स्वार्थका दोष देखना भ्रान्तिमात्र है। इस विषयपर स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है, स्थानाभावसे यहाँ विशेष वर्णन नहीं किया जाता। निस्सन्देह श्रीरामकी राजनीति लोकसंग्रह और कल्याणके लिये ही थी।

आज श्रीरामकी राजनीतिसे संसारका पुनः उद्धार—कल्याण हो सकता है। इस प्रजारञ्जनी राजनीतिसे सेनाकी बढ़ती हुई संख्या रुक जायगी। इससे दबे हुए छोटे-छोटे देशोंके साथ न्याय होनेके कारण अनेक भावी विप्लवोंका अन्त हो जायगा। इसके अवलम्बनसे अवयव-विगलित जाति अपना स्वरूप पहचानेगी। इसीसे सत्य, धर्म, दया, न्यायादि मनुष्योचित भावोंकी रक्षा होगी। इससे मानव-समाजके विकासमें पूर्ण सहायता मिलेगी। रामायणके प्रेमियोंका—रामके भक्तोंका कर्तव्य है कि वे श्रीरामकी राजनीतिद्वारा मदान्ध और जड़वादग्रस्त मनुष्योंको ही नहीं, वरन् राष्ट्रोंको सुधारकर सन्मार्गपर लानेका प्रयत्न करें। यह कार्य धार्मिक उत्थान और संसारके कल्याणका है। बोलो राजा रामचन्द्रकी जय!

बालि-वधका राजनीतिक कारण

(लेखक—पं० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्याभूषण)

वल सीताहरणको लेकर ही रामसे रावणका वैर था, सो बात नहीं है। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंसे रावणकी शत्रुता बहुत दिनोंसे चली आती थी। इक्ष्वाकुसे नीचेकी पांचवीं पीढ़ीके राजा अनरण्यके साथ रावणका भयानक संग्राम हुआ था, जिसमें रावणके हाथसे अनरण्य मारे गये थे। इस युद्धके बहुत दिनों बाद इक्ष्वाकुसे दसवें राजा मान्धाताके साथ भी रावणका युद्ध हुआ था (उत्तरकाण्ड सर्ग १९।२६)। राजा दशरथ भी रावणके पराक्रमसे भली भाँति परिचित थे। इतना ही नहीं, वह रावणके नामसे डरते भी थे। रावण कभी छोटे मोटे उपद्रव नहीं करता था। इन सब कामोंके लिये तो वह अपने सेवकोंको ही नियुक्त रखता था। जिस कामको दूसरे नहीं कर सकते, वैसे बड़े काममें वह स्वयं लगता था। विश्वामित्रने जब यज्ञ आरम्भ किया, तब रावणने उसमें विघ्न डालनेके लिये मारीच और सुबाहु नामक दो महाबली राक्षसोंको नियुक्त कर दिया। यज्ञ-रक्षाका अन्य कोई उपाय न देखकर विश्वामित्र दशरथके दरबारमें रामको माँगने गये। विश्वामित्रने तपोबलसे यह जान लिया था कि रामके अतिरिक्त दूसरेसे मारीच-सुबाहु नहीं मर सकते। रावण दक्षिण समुद्रके उस पार लङ्कामें था और विश्वामित्र यज्ञ करते थे उत्तर हिमालयके अन्तःपाती सिद्धाश्रममें! वहाँ रावण-प्रेरित सुबाहु और मारीच यज्ञमें विघ्न करते थे और उनको मारनेके लिये विश्वामित्र आये थे अयोध्याके राजा दशरथके पास रामको माँगने! मानो सारी पृथ्वीमें किसी एक हलचलका सूत्रपात हो रहा था। विश्वामित्रके मुखसे 'रावण-प्रेरित' शब्द सुनते ही दशरथ सहम गये और उन्होंने कपट छोड़कर कहा—

> नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः।
> देवदानवगन्धर्वाः यक्षाः पतगपन्नगाः॥
> न शक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि।
> स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः॥
> तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः।
>
> (वा० रा० १।२०)

'रावणकी तो बात ही दूर है मैं तो उसकी सेनाके साथ भी युद्ध नहीं कर सकता। फिर मेरे पुत्र तो हैं ही किस गिनतीमें?' जो कुछ भी हो वसिष्ठकी प्रेरणासे दशरथने रामको विश्वामित्रके हाथ सौंप दिया। लक्ष्मण भी बड़े भाईके साथ चल दिये।

मारीच-सुबाहुका वध हो चुका। रावणके कानोंतक यह संवाद अवश्य ही पहुँचा था और इस संवादसे मारीच-हन्ता रामके प्रति रावणके मनमें कैसे भाव पैदा हुए, आदि-कविकी भाषामें इस सम्बन्धमें स्पष्टरूपसे कुछ अवगत न होनेपर भी रामायणकी घटनाओंपर विचार करनेसे उस मनोभावका रूप बहुत कुछ समझा जा सकता है। क्रमशः इस विषयपर विचार कीजिये।

रामके वनगमनके बाद जब भरतने ननिहालसे लौट कर सारी बातें सुनीं और सब लोगोंको साथ लेकर रामकी सेवामें उपस्थित हो वापस लौटनेके लिये उनसे अत्यन्त आग्रह किया। तब अनेक प्रकारसे समझाकर अन्तमें रामने स्पष्ट ही कह दिया कि 'भाई, मैं नहीं लौटूँगा। पिताजीने जिस प्रकारसे विभाग कर दिया है मैं उसी प्रकारसे राज्य-भोग करूँगा—

> त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम्।
> वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा॥
> एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ।
> व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः॥
>
> (वा० रा० २।१०१)

तुम अयोध्या जाओ और मैं दण्डकारण्य जाता हूँ। तुम्हारे सहचर शत्रुघ्न हैं तो मेरे साथी लक्ष्मण हैं। (वा०रा० २। १०१) अनेक प्रकारसे समझानेपर भी जब भरत किसी तरह नहीं माने तब रामने और भी दृढ़तासे कहा—'भरत, तुम जाकर मनुष्योंपर राज्य करो और मैं वनचर पशुओंका राजा बनूँगा। तुम प्रसन्न-हृदयसे नगरको लौट जाओ, इधर मैं भी सहर्ष दण्डकारण्यमें प्रवेश करूँगा। सूर्य-किरणोंका निवारण करनेवाला छत्र तुम्हारे मस्तकपर शीतल छाया करेगा। इधर मैं भी वनके वृक्ष-समूहोंकी घनी छायाका आश्रय लूँगा। भाई, कुशलबुद्धि शत्रुघ्न तुम्हारे सहायक हैं, इसी प्रकार सौमित्र लक्ष्मण यहाँ मेरे प्रधान मित्ररूपसे रहेंगे। हम चारों ही
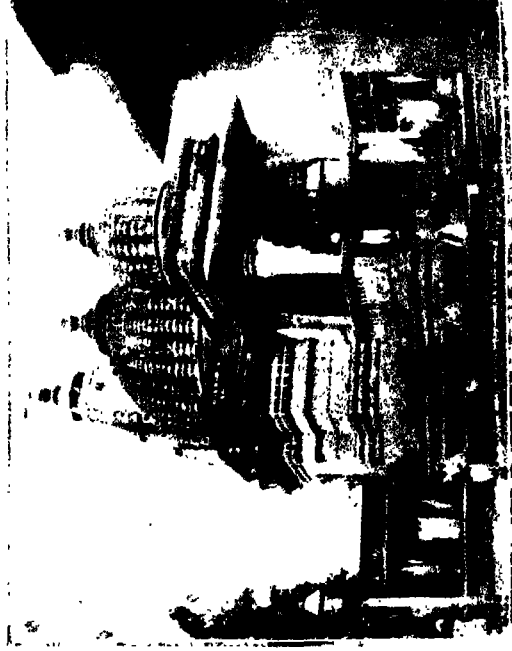
नासिक गोदावरी दृश्य (२)

पंचवटीमें श्रीराम मन्दिर

नासिक गोदावरी दृश्य (१)

नाड़का नाला

गोदावरीपर नारो शंकरका मन्दिर

श्रीत्र्यम्बकेश्वर मन्दिरका बाहरी दृश्य

गोदावरीका पुल

रामकुण्ड और गंगामन्दिर

भाई महाराजके चार सुपुत्र हैं अतएव आओ, हम सब मिलकर महाराजको सत्यपर स्थिर करें। तुम इसमें किसी प्रकारकी न तो आपत्ति करो और न विषाद ही करो।' (वा० रा० २, १०७। १७ से १९)

रामकी इस उक्तिसे यह प्रतीत होता है कि दशरथ मानो सबके सामने राज्यका बँटवारा कर गये थे। एकके लिये अयोध्या और दूसरेके लिये दण्डक-वन। श्रीरामचन्द्र पिताके किये हुए बँटवारेको शिर चढ़ाकर आज दण्डकवनमें नवीन राज्यकी स्थापनाके लिये चले।

राम-वन-गमनके बहुत पहलेसे ही रावणकी विधवा बहिन शूर्पणखा दण्डकवनमें रहती थी। मदगर्वित, क्रोधान्ध रावणने प्रमादसे शूर्पणखाके स्वामी अपने बहनोईको मार डाला था। तदनन्तर अपने मौसेरे भाई खर नामक राक्षसको चौदह हजार सेनाका स्वामी बनाकर और दूषणको सेनापति बनाकर शूर्पणखाकी रक्षाके लिये उसके साथ दण्डक वन भेज दिया था। खर-दूषणके अत्याचारसे दण्डकारण्यवासी ऋषियोंके नाकोंदम हो गया था और उनके सारे कर्मकाण्ड प्रायः मिट चुके थे। रावण स्वयं लङ्कामें रहा और विधवा युवती बहिनको भेज दिया समुद्रके उस पार घोर दण्डक-वनमें। और फिर उसकी खोज खबर भी नहीं रक्खी, ऐसा क्यों किया? उत्तर आगे मिलेगा।

रावण कितना बड़ा पराक्रमी और भयङ्कर अपराजेय वीर था, इस बातको दशरथ भलीभाँति जानते थे। दण्डकारण्यमें रावणका एकाधिपत्य था, यह बात इसीसे सिद्ध होती है कि बहिन शूर्पणखाके रहनेके लिये रावणने दण्डकवनको ही चुना था। जब विश्वामित्र रावणपक्षीय और खास रावणके द्वारा ही नियुक्त यज्ञ-विघ्नकारी सुबाहु और मारीचको मारनेके लिये श्रीरामचन्द्रको माँगने गये थे, तब रावणके नामसे ही राजा दशरथ कितने अधिक डर गये थे, यह बात ऊपर कही जा चुकी है। राजपरिवारकी प्रधान और प्रथम सन्तान रामको लक्ष्मणसहित विश्वामित्र ले गये थे। उस समय बालक राम-लक्ष्मणके प्रति कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों ही रानियोंका समान आकर्षण था। क्योंकि युवराज्याभिषेककी बातसे पूर्वतक कैकेयी रामको खूब चाहती थी, और बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखती थी, इस बातको सभी जानते हैं। ऐसी अवस्थामें रावणके दलके और रावणके द्वारा ही नियुक्त दोनों राक्षसोंके वधके लिये विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणके जानेकी और साथ ही प्रबल पराक्रमी रावणके बल-विक्रमकी चर्चा राम-माताओंमें अवश्य ही हुई होगी, यह सहजहीमें समझा जा सकता है। प्रसङ्गतः दण्डकारण्यमें रावण-सोदरा शूर्पणखाका सेनासहित निवास करना, वहाँ रावणका एकाधिपत्य होना, रावणसम्बन्धी अन्य अनेक विषयोंकी आलोचना होकर, स्त्रीस्वभाव-सुलभ अनेक दन्तकथाओंसे उसका एक रूप बन जाना भी सम्पूर्ण स्वाभाविक है। अब देखना यह है कि इस अनुमानकी सार्थकता कहाँ तक होती है।

मन्थराने अपने कुपरामर्शमें कैकेयीको केवल दो ही वर माँगनेकी बात सिखायी थी—एकमें रामको चौदह वर्षका वनवास और दूसरेमें भरतका राज्याभिषेक। इसके सिवा उसने और कुछ भी नहीं सिखलाया था। पर जब कैकेयीका मिजाज बिगड़ा तब वह मन्थराके द्वारा कुबुद्धिरूप जहरकी घूँट पिलाये जानेसे पूर्व जैसे सोलहों आने अच्छी थी, वैसे ही, बल्कि उससे भी और अधिक बुरी हो गयी। इसीलिये उसने मन्थराके 'वनवास शब्दके साथ' 'दण्डकारण्य' शब्द और जोड़ दिया। देशमें भयानक जंगल तो और बहुतसे थे, उसे दण्डक ही क्यों याद आया? निश्चय ही दण्डकारण्यके सम्बन्धमें पहलेसे ही उसके मनमें कुछ संस्कार बद्धमूल थे। यह नहीं कि वह स्थान सुखोपभोगके लिये सुन्दर है किन्तु इसके विपरीत उसकी धारणा यह थी कि दण्डक भयङ्कर राक्षसोंसे पूर्ण रावणशासित होनेके कारण विपत्तिपूर्ण और सत्पुरुषोंके रहनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। उसने सुखसे रहनेके लिये रामको वहाँ नहीं भेजा था। पिता दशरथके विभागके अनुसार राम दण्डक लें और भरत अयोध्यामें राज्य करें, यह बात भरतको समझानेके समय स्वयं श्रीरामके मुखसे हम सुन ही चुके हैं।

दण्डकारण्यमें शूर्पणखाको भेजकर रावण निश्चिन्त था। क्योंकि उसके समुद्र पार लङ्कामें रहनेपर भी उसका अभिन्नहृदय मित्र वीरश्रेष्ठ बालि तो दण्डकके समीप ही राज्य करता था। बालिकी जानकारीमें रावणकी और रावणकी जानकारीमें बालिकी कोई क्षति नहीं हो सकती थी या उनपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती थी। वे दोनों अग्निको साक्षी देकर (Offensive-Defensive) सन्धि-सूत्रमें बँध चुके थे। इस पार बालिका साम्राज्य था और उस पार रावणका, बीचमें था विराट् समुद्र। इस पारसे रावणके राज्यपर आक्रमण करनेवालेको सबसे पहले बालिके साथ युद्ध करना होगा और उस पारसे बालिके राज्यपर आक्रमण करनेवालेके साथ सर्वप्रथम रावणका युद्ध होना अनिवार्य था। इस सन्धिका प्रस्ताव रावणने ही पहले किया था। बालिके साथ बल-परीक्षामें

हारकर रावणने उससे कहा 'हे वानर-श्रेष्ठ ! मैंने आपका बल अपनी आँखों देख लिया, अब मैं अग्निको सामने रखकर आपके साथ चिरबन्धुत्व स्थापन करना चाहता हूँ। हे वीरराज! आजसे हमारे और आपके स्त्री, पुत्र, घर, राज्य, भोग, आच्छादन, भोजन सब अविभक्त हो गये यानी एक हो गये।' यह कहकर उसने अग्नि जला दी और दोनोंने परस्पर हृदयसे लगकर स्नेहपूर्ण भ्रातृत्वकी स्थापना की। इसके बाद दोनों मित्र परस्पर हाथ पकड़कर महलमें गये।' (वा० रा० ७ । ३४ । ४०से४३)

अतएव शूर्पणखाके विहारक्षेत्र दण्डक-वनपर ही नहीं, रावणराज्यके किसी भी अंशपर किसी प्रकारसे भी यदि कोई भारतवर्षसे आक्रमण करने जाता तो उसको सबसे पहले वीरश्रेष्ठ वालिसे लड़ना अनिवार्य था।

श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे दण्डक-वनमें आये। वनवासमें दस वर्षका लम्बा समय अनेक आश्रमोंमें घूमकर और तीन वर्षका समय पञ्चवटीमें रहकर आपने बिताया। अब केवल एक वर्ष बाकी है, इसी समय रावणने सीताको हर लिया।

रावणके सदृश दुर्द्धर्ष राक्षस दूसरा नहीं। लङ्कामें उसका निवास है। ऐसे शत्रुको दमन करनेके लिये जो कुछ आवश्यक है सुग्रीव सबसे पहले वही कर रहे हैं—'हे लक्ष्मण ! आप शान्त हों, सुग्रीव राक्षसाधम रावणका वधकर रोहिणीके साथ चन्द्रमाकी भाँति सीतासहित रामको लावेंगे। रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव करोड़ों वानरोंकी सेना एकत्र करनेमें लगे हैं।' (कि० सर्ग ३५)

ताराकी इस उक्तिसे प्रतीत होता है कि रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव भीषण और वृहत् आयोजनमें लगे हुए हैं। रावणने सीताको हर लिया,इस बातको सभी जान गये हैं और उसके समुचित प्रतिकारकी चेष्टा भी हो रही है, यह भी ताराकी बातोंसे स्पष्ट है। परन्तु यहाँ एक विकट प्रश्न उपस्थित होता है कि सारी बातें जाननेपर भी सुग्रीवने अनेक स्थानोंके नाम बतला-बतलाकर उन देशोंमें जाकर सीताके अपहरण करनेवाले रावणका पता लगानेके लिये वानरोंसे क्यों कहा ? रावण सीताको लङ्कामें ले गया था, यह बात तो ताराने लक्ष्मणसे पहले ही कह दी थी, फिर इतिहास-भूगोलके इतने लम्बे व्याख्यानकी क्या आवश्यकता थी ? सीधे शब्दोंमें लङ्का कहनेसे ही काम चल सकता था। इस शङ्काका समाधान किसी अगले लेखमें किया जायगा।

आज तो हमें यह देखना है कि रामने केवल सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये ही वालिको मारा था इसमें कोई और भी कारण था।

श्रीरामने जब भरतको अयोध्या लौट जानेके लिये जोर देकर कहा था। तब यह भी स्पष्ट कह दिया था कि पिताके किये हुए विभागके अनुसार तुम अयोध्यामें जाकर मनुष्योंके राजा बनो और मैं दण्डकारण्यमें जाकर वनचरोंका 'राज-राज' बनता हूँ। राजा और 'राज-राज' अर्थात् राजाके राजामें बहुत अन्तर है। दण्डक-वनमें शूर्पणखाके नाक-कान काटने और खर-दूषणको मारनेसे रावणके साथ घोर शत्रुता हो ही गयी थी। इस बातसे राम-लक्ष्मण अपरिचित नहीं थे। शूर्पणखानेही रामके पूछनेपर यह साफ कह दिया था कि रावण, कुम्भकरण, विभीषण और दूषण आदि मेरे भाई हैं। ऐसी अवस्थामें महाबली रावणकी बहिनके नाक-कान काटनेका कितना भयङ्कर परिणाम हो सकता है, राजनीति-विशारद श्रीरामके लिये इस बातको समझना बाकी नहीं था। रावणके साथ किष्किन्धा-नरेश महावीर वालिकी मैत्री और सन्धिकी बात पहले कही जा चुकी है। अब यह भी मालूम होता है कि सीताहरणके बाद सहायताके लिये श्रीराम सुग्रीवके साथ मैत्री करनेके लिये तैयार न भी होते और वालिको मारकर सुग्रीवको फिरसे राज्यगद्दीपर बैठानेकी प्रतिज्ञा न भी करते तो भी उन्हें वालिको तो मारना ही पड़ता। समुद्रके उस पार लङ्कापति रावणपर आक्रमण करनेके लिये सारा उद्योग इस पार वालिके राज्यमें ही करना था। रावण-बन्धु महावीर वालि मित्रके विरुद्ध रणसज्जाको कभी सहन नहीं कर सकता। सन्धि-सूत्रके अनुसार रावणका शत्रु वालिका भी शत्रु था। अतएव रावणके साथ युद्ध करनेसे पूर्व ही रामको वालिके साथ युद्ध करना पड़ता। दण्डकमें राज्यस्थापन और लङ्कापति रावणके साथ विवाद यह दोनों ही बातें वालिके जीवित रहते सहज नहीं थीं। अतएव रामका सर्वप्रथम कर्त्तव्य हो गया था—वालिको पराजित करना। अन्यथा सीता-उद्धार एक प्रकारसे असम्भव था। इसीलिये श्रीरामचन्द्रने एक दक्ष राजनीतिज्ञकी भाँति आगे-पीछेकी सारी बातोंको सोच-समझकर सुग्रीवके साथ मैत्री और वालि-वधकी प्रतिज्ञा करके करोड़ों वानर-सेनाकी सहायतासे कर्त्तव्य-सम्पादनका निश्चय किया था। अवश्य ही वालिका प्रतिद्वन्द्वी सुग्रीव इतना गहरा नहीं जा सका। राज्यभ्रष्ट सुग्रीव तो केवल वालिका वध और स्वराज्यका

उद्धार ही चाहता था। अपने ये दोनों ही उद्देश्य श्रीरामद्वारा सिद्ध होते देखकर उसने सेनासहित अपने आपको रामकी सहकारितामें लगा दिया। रामचन्द्र धर्मोपार्जनके लिये वनमें नहीं गये थे। जीवनके प्रारम्भमें राजपुत्र राम अपनी प्यारी जन्मभूमिको छोड़कर जानेको बाध्य हुए थे। प्रकृतिके लीलानिकेतन निविड दण्डकारण्यमें नवीन और विशाल साम्राज्य स्थापनके लिये ही कृतसङ्कल्प होकर श्रीरामने दण्डकमें प्रवेश किया था। वे वीर थे। उनके लिये कोई भी कार्य दुष्कर नहीं था। वे प्रसन्नचित्तसे आनन्दके साथ अपने दिन बिता रहे थे। इसी बीचमें सीताका अपहरण होनेसे रावणके साथ युद्धका उद्योग करना पड़ा और उसीके अंगीभूत अवश्य कर्तव्योंमें बालिवध भी एक कर्तव्य था। अतएव रामपर किसी प्रकार भी दोषारोपण नहीं किया जा सकता। सीताके उद्धारके लिये बालिके राज्यमें रहकर बालिके जीते समुद्रपर पुल बाँधना और रावणके सर्वनाशके लिये विपुल उद्योग करना असम्भव था। सीताके उद्धारके लिये सबसे पहले बालिका वध अत्यन्त आवश्यक था। प्रसङ्गवश इस बालि-बधके उपलक्ष्यमें सुग्रीवके साथ मैत्री हो गयी। जिससे समुद्र-बन्धन आदि कठिन कार्य बहुत कुछ सहज-साध्य हो गये। यह भी बालि-बधका एक रहस्य है।

रामायण और श्राद्ध-तर्पण

(लेखक—पं० श्रीआशारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणाचार्य, वेदान्तपाथक)

र्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी दिव्य लीला और उनके द्वारा स्थापित दिव्य आदर्शोंका तथा उनके अनुकरणीय आचरणों-का वर्णन जिसप्रकार श्रीमहाल्मीकिजीने अपनी रामायणमें किया है, वैसा वर्णन करनेका सौभाग्य किसी दूसरे ग्रन्थकारको प्राप्त नहीं हो सका। यही कारण है कि इस ग्रन्थमें सब सम्प्रदायोंकी समान श्रद्धा है। और प्रायः सभी आस्तिक पुरुष अनुकरण करनेके विचारसे ही इसका अध्ययन करते हैं। इसी ग्रन्थसे प्रसङ्गवश श्राद्ध-तर्पण जैसे जटिल विषयपर कुछ दिग्दर्शन कराना अनुचित न होगा। आजकल श्राद्ध तर्पणपर कुछ लोगोंकी अश्रद्धा बढ़ रही है। इस बातको भी दृष्टिमें रखकर यह प्रसङ्ग उपादेय ही प्रतीत होगा।

रामायणमें सर्व प्रथम, अयोध्याकाण्डके ७६ वें और ७७ वें सर्गोंमें, श्राद्ध-तर्पणादिका वर्णन आया है, जहाँ भरतजीने महाराज दशरथका और्ध्वदेहिक संस्कार कर कौसल्या आदि रानियोंके सहित उदकदान दिया है—

> ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः।
> यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः॥
> कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च।
> पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम्॥
> (वा० रा० २।७६।२२-२३)

अर्थात् 'रोती-रोती वे स्त्रियाँ मुरझा गयीं। उन लोगोंने बार बार विलाप किया, फिर वे राजस्त्रियाँ सरयूके तीरपर सवारियोंसे उतरीं। उन रानियोंने तथा मन्त्री और पुरोहित आदिने भरतके साथ राजाको जलाञ्जलि दी। अनन्तर वहाँसे रोते हुए वे नगरमें आये और दस दिनोंको भूमि-शयन आदिके द्वारा दुःखपूर्वक बिताया।' तथा—

> ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः।
> द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्॥
> ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम्।
> वासिकं बहुशुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा॥
> (वा० रा० २।७७।१-२)

अर्थात् 'दस दिन बीतनेपर राजकुमार भरतने ग्यारहवें दिनके आत्मशुद्धि करनेवाले कर्म किये। बारहवें दिन उन्होंने राजाके सब श्राद्धकर्म किये और ब्राह्मणोंको धनरत्न, बहुत-सा अन्न, अनेक प्रकारके दामी वस्त्र, बकरी और अनेक गौएँ प्रदान की।

इस प्रकरणमें तर्पण, द्वादशाहादि, सपिण्डीकरणके अन्तमें श्राद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे दिये गये ब्राह्मणोंके दानका भी स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है। जो लोग शङ्का करते हैं कि 'दान अन्यको दिया जाता है और प्राप्त होता है अन्यको', यह बात असङ्गत-सी है। उनको उपर्युक्त उद्धरण-पर आस्तिक-भावसे विचार करना चाहिये। आगे श्रीरामचन्द्रजी द्वारा किये हुए पितृ-तर्पणादिका उल्लेख पाया जाता है—

ते सुतीर्थां ततः कृच्छ्रादुपगम्य यशस्विनः ।
नदीं मन्दाकिनीं रम्यां सदा पुष्पितकाननाम् ॥
शीघ्रस्रोतसमासाद्य तीर्थं शिवमकर्दमम् ।
सिषिचुस्तूदकं राज्ञे तैतत्ते भवत्विति ॥
प्रगृह्य तु महीपालो जलपूरितमञ्जलिम् ।
दिशन्याम्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥
एतत्ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् ।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥
(वा० रा० २।१०३।२४-२७)

अर्थात् 'वे यशस्वी सुन्दर घाटवाली रमणीय मन्दाकिनी नदीके तीरपर बड़े कष्टसे गये । मन्दाकिनी नदीके पासका वन सदा पुष्पित रहता है । शीघ्र चलनेवाली मन्दाकिनीके सुन्दर और बिना कीचड़के घाटपर जाकर उन लोगोंने पिताको यह कहकर जल दिया कि यह जल आपको मिले । श्रीरामचन्द्र अपनी अञ्जलिको जलसे भरकर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके रोते हुए बोले–हे राजसिंह, यह विमल और अक्षय मेरा दिया हुआ जल पितृलोकमें आपको प्राप्त हो ।

इसप्रकार जलाञ्जलिके पश्चात् इङ्गुदी और बेरसे पिण्डदानादिका भी विधान है–

पैङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे ।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥
इदं भुंक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम् ।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥
(वा० रा० २।१०३।२९-३०)

अर्थात् उसपर इङ्गुदी और बेरके फल रखकर, दुखी रामचन्द्र बोले–'महाराज ! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन कीजिये, क्योंकि हमलोगोंका यही भोजन है । मनुष्य जो अन्न खाता है उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं ।'

इस प्रसङ्गके पश्चात् रामजीके द्वारा जटायुके तर्पणका वर्णन आया है–'

शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥
(वा० रा० ३।६८।३६)

इसका अभिप्राय स्पष्ट ही है । जटायु देवांश, दिव्य-बलशाली पक्षिराज था तथा राजा दशरथका मित्र था । इसलिये उसके तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होनेपर भी भगवान् रामचन्द्रजीने उसका तर्पणादि किया । इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्डके २५ वें सर्गमें सुग्रीवद्वारा सम्पादित वालिके श्राद्धादिका तथा युद्धकाण्डमें विभीषणकृत रावणके तर्पणादिका वर्णन आया है । इन अवतरणोंको देखकर स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्राद्ध-तर्पणादिका विधान सनातन है और आर्षग्रन्थोंके आधारपर स्थित सनातन कृत्य है ।

जीवित पुरुषके श्राद्धसे इन अवतरणोंका कुछ सम्पर्क ही नहीं है और न आस्तिक पुरुष इनमें अनार्ष भावनाकी ही कल्पना करते हैं । अतएव 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' इस श्रुतिके अनुसार इस नित्यकर्ममें श्रद्धापूर्वक भाग लेकर अपना कर्त्तव्य पालनकर सनातन मर्यादाकी रक्षा करना प्रत्येक धर्मप्राण हिन्दूका परम कर्त्तव्य है ।

राम अटल रहे

रामचन्द्रकी माता कैकेयीने रामचन्द्रके वनवास जानेका वरदान माँगा । दशरथको वह कुबूल करना पड़ा । मामूली तौरपर तो यहाँ कह सकते हैं कि दशरथ पागल तो नहीं हो गये थे ? पर रामचन्द्र क्यों डिगने लगे ? उनसे कहा गया, तुम्हारे वियोगमें पिता रो रोकर मर जायँगे, अयोध्या विधवा हो जायगी । पर उन्होंने सब बातोंको तुच्छ समझा–

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाइ बरु बचन न जाई ॥

अयोध्या निस्तेज हुई, दशरथकी मृत्यु हुई, पर राम अटल रहे ।⋯⋯

–महात्मा गांधी

रामायणमें सत्य और प्रेम

(लेखक—श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'मेसेज'*)

रा मायणका महत्त्व श्रीरामचन्द्रजीके वनवासमें निहित है। श्रीरामचन्द्रजीके पिता राजा दशरथने अपनी छोटी रानी कैकेयीको उसकी इच्छानुसार दो वरदान देनेकी प्रतिज्ञा की थी। जब रामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही थीं, उनकी विमाताने अपने सपत्नीके पुत्रको राज्याभिषेकके लिये चुने जानेपर ईर्ष्या करते हुए राजासे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको कहा। एक वरसे उसने श्रीरामचन्द्रके लिये चौदह वर्षका वनवास और दूसरेसे अपने पुत्र भरतके लिये अयोध्याका राज्य माँगा। यह सुनते ही राजाके शिरपर मानो वज्रपात हो गया! इस शुभ अवसरपर आकस्मिक ऐसा वरदान माँगनेसे वे दुःखमग्न हो गये। अपनी मृत्युके समयतक भी उनके मुखसे स्वीकृति-सूचक शब्द न निकल सके। किन्तु उस युगमें प्रतिज्ञा-पालन अत्यन्त पवित्र कर्म समझा जाता था, प्रतिज्ञाकी अवमानना अक्षम्य अपराध था। और दशरथजी-को चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े, प्रतिज्ञाको पूरा करना उनका धर्म था।

श्रीरामचन्द्रजीने अपनी विमातासे जब अपने पिताके शोकका कारण सुना तो वे राजाको शोकमुक्त करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आत्मत्याग करनेको तैयार हो गये! सच पूछिये तो पिताकी प्रतिज्ञाके लिये रामचन्द्रजी उत्तरदायी नहीं थे, और न राजासे ही उन्हें कोई ऐसी स्पष्ट आज्ञा मिली थी। किन्तु उनकी सत्यके प्रति ऐसी महान् श्रद्धा थी कि उन्होंने राजाको सत्यके आर्यपथसे गिरते नहीं देखना चाहा, चाहे उन्हें इसके लिये प्राण भी क्यों न देने पड़ें। यद्यपि सारी प्रजाने उनसे आग्रह किया, भरतने भी स्वयं उनसे प्रार्थना की और ऋषियोंने समझाया परन्तु श्रीरामचन्द्रजी अपने निश्चयपर सुदृढ़ रहे, क्योंकि वह सत्यको ही परमधर्म समझते थे। जब भरतने राज्यशासन ग्रहण करनेके लिये प्रबल युक्तियाँ पेश कीं, जब सारे नगर-निवासी प्रार्थना करने लगे तब श्रीरामने कहा—'सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है, सब पदार्थोंमें सत्यको ही परम पुनीत वस्तु समझना चाहिये। सत्यपर ही वेद अवलम्बित हैं। पिताकी आज्ञाका अनुवर्त्तन करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनेपर, अब मैं लोभसे, प्रमादसे या अज्ञानसे कभी सत्यकी मर्यादाका उल्लङ्घन न करूँगा।'

वे इस आत्म-त्यागकी कठिनाइयोंसे पूर्ण परिचित थे, वे अपने सिरपर आनेवाली आपद्-विपद्को देखते थे, किन्तु सत्यके निमित्त उन्होंने उनकी कुछ भी परवा न की। आधुनिक कूटनीतिज्ञ उनके इस कार्यको विवेकशून्य समझेंगे, किन्तु आजकलकी गर्हित कूटनीति जो अर्द्धसत्य या असत्यके आधार-पर ठहरी हुई है, उस युगमें किसीको मालूम ही नहीं थी। आजकी भाँति श्रीरामचन्द्र सत्यको, अपनी आत्माको लूट और परस्वापहरणके बाजारमें बेचनेके लिये तैयार न थे। सांसारिक लाभके लिये आसक्ति, लोभ और स्वार्थपरताके द्वारा अन्धे होनेके कारण, आधुनिक युगमें, हममेंसे अधिकांश मनुष्य इसकी महत्ताका अनुभव नहीं कर सकते। सत्यकी महिमा आज जड़वादके चकाचौंधमें, लोभ और लूट-खसोटके कूड़े-करकटमें, अहङ्कार और दम्भकी धूलमें लुप्त-प्राय हो गयी है। प्राचीनकालके यहूदियोंने सत्यके लिये ईसाको सूलीपर चढ़ा दिया, पर आधुनिक कालके यहूदियोंने सत्यको ही सूलीपर चढ़ा दिया है। श्रीरामचन्द्रजीका युग एक दूसरा ही युग था। आधुनिक कालके हीन मतवाद उस युगके सरल चित्त और ईश्वरसे डरनेवाले लोगोंके हृदयको स्पर्शतक नहीं कर सके थे। किन्तु उस समय भी सत्यके निमित्त श्रीरामकी महती निष्ठाने आत्मत्यागी ऋषियोंको भी चकित कर दिया था। सत्यकी रक्षाके लिये उनके प्रिय भाई लक्ष्मणका—जो उन्हें प्राणसे भी प्रिय

*'दी मेसेज'(The Message) अंग्रेजीका सर्वधर्मसमन्वय कारक और प्रेमका प्रचारक बहुत अच्छा मासिकपत्र है, इसमें साधु वास्वानीजीके और सदानन्दजीके बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख रहते हैं। सदानन्दजी बहुत पवित्र भावसे यह कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजी जाननेवालोंको यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिये। इसका वार्षिक मूल्य सिर्फ एक रुपया है। यह गोरखपुर 'आनन्द-आश्रम' से प्रकाशित होता है—सम्पादक।

थे—वन जाना आत्मत्यागका एक दूसरा उदाहरण है। यह सत्य-प्रेम ही उनके सर्वप्रिय होनेका जीवन-सूत्र है, जिसके कारण वे अवतार माने गये हैं।

इसके अतिरिक्त हम रामचन्द्रजीमें उन दलितों, अनार्यों और पहाड़ी तथा जङ्गली जातियोंके प्रति अगाध प्रेमका परिचय पाते हैं, जिन्हें लोग छोटी नज़रसे देखते, घृणा करते और पशुवत् व्यवहार करते थे तथा जिन्हें बन्दर, भालु, निशिचर और राक्षस प्रभृति नामोंसे पुकारते थे। एतदर्थ इसप्रकारका साहसिक कार्य करनेके लिये एक राजकुमारमें बहुत बड़े उत्साहकी आवश्यकता थी। अन्त्यज राजा गुहको मित्रवत् आलिङ्गन करना, शबरीके जूँठे बेर खाना, वानरराज सुग्रीवके साथ मैत्री, राक्षसराज विभीषणके प्रति प्रेमभाव, जटायुका दाह-संस्कार करना, शत्रु रावणके मरणोपरान्त उसकी अन्त्येष्टि प्रभृति कराना, श्रीरामके ये कार्य लोगोंको इतने प्रिय लगे कि वे उनके लिये प्रत्येक प्रकारका त्याग करनेके लिये तैयार हो गये। वस्तुतः वे लङ्काके युद्धमें इन्हीं दलित, आर्त तथा उपेक्षित लोगोंके प्रति अन्यतम प्रेम रखनेके कारण ही विजय प्राप्त कर सके थे। वे उस समय राजा नहीं थे और उनके पास सेनाको देनेके लिये—यहाँतक कि भोजन प्रदान करनेके लिये भी—कुछ न था। किन्तु प्रेमके कारण ही उन्होंने एक विशाल सेनाका सङ्गठन कर लिया, लोग उनके प्रेम और सद्व्यवहारसे इतने मुग्ध हो गये कि उनमेंसे प्रत्येकने श्रीरामके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करना अपना पवित्र धर्म समझा। हमारे नवयुवकोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीसीताजीके रावणद्वारा हरे जानेपर श्रीरामने उनके लिये शोकाकुल होकर जो विलाप किया है उसीसे उनके पत्नी-प्रेमका पता लगता है। वाल्मीकिकी रचना यहाँ बड़ी सुन्दर हो गयी है।

श्रीरामका प्रजाके प्रति प्रेम लोक-प्रसिद्ध है ही। 'राम-राज्य' सुन्दर शासनके लिये एक पर्यायवाची परम्परागत नाम पड़ गया है। आधुनिक सरकार इस शासनकलासे कब शिक्षा ग्रहण करेगी?

अपनी प्रजाकी सम्मतिके प्रति श्रीराममें इतना आदर था कि एक तुच्छ धोबीके विचारसे उन्होंने अपनी प्राण-प्रिया सीताको वनवासके लिये भेज दिया।

श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रमें भ्रातृभक्ति तथा भ्रातृप्रेमके पवित्र भाव पूर्णरूपसे विकसित हैं। वे रामकी विपत्तिमें स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं और रामायणके पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि राम-प्रेमके कारण उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट प्रसन्नतापूर्वक सहे थे।

श्रीसीताजी एक आदर्श हिन्दू-महिला थीं, स्त्री-सुलभ गुणोंकी अवतार थीं। अपार कष्टों और विपत्तियोंकी परवा न करके अपने पतिके साथ वनमें गयी थीं। उन्होंने अपने पतिके साथ वन जानेके लिये आज्ञा माँगते समय जो तर्क उपस्थित किये थे, वे उनके स्वामी और प्रभुके प्रति अनुपम भक्तिसे ओतप्रोत थे। हमारे आधुनिक स्त्री-समाजको सीताजीका अनुकरण करना चाहिये और उससे यथेष्ट उपदेश प्राप्त करना चाहिये।

श्रीहनूमानका प्रेम और प्रभुभक्ति, जिसने उनके नाम-को अमर बना दिया और जिसके कारण वे देवत्वको प्राप्त हुए, मानव-जीवनके इतिहासमें एक विलक्षण बात है।

सारांश यह है कि रामायण आदिसे अन्ततक सत्य और प्रेमकी विजयका आख्यानमात्र है। सत्य-प्रेम, पत्नी-प्रेम, पति-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, शत्रु-प्रेम, प्रभु-प्रेम, दीन और दलितोंके प्रति प्रेम, गिलहरीके समान छोटे जीवोंके प्रति प्रेम, चारों ओर प्रेम-ही-प्रेम है! और प्रेम ही एकमात्र मुक्तिका मार्ग है। जो लोग इस बातका अनुभव नहीं करते, वे रामायणको व्यर्थ ही पढ़ते हैं। रामायणके प्रणेता, अमर यशस्वी ऋषि वाल्मीकिने ठीक ही कहा है—

> इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्।
> यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
> एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः।
> सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥

जो मनुष्य इस पवित्र, पुण्यमय, वेदार्थप्रतिपादक, आयु-प्रदाता (जीवन प्रदान करनेवाले) रामायणका पाठ करता है, अध्ययन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर अपने पुत्र-पौत्रादि सम्बन्धियोंसहित स्वर्गको प्राप्त होता है।

रामायणी-प्रजा

(लेखक—श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर)

रामचन्द्रजीने लोकानुरञ्जनका असिधारा-व्रत ग्रहण किया था वह अभी भी पूरा नहीं हुआ है। वाल्मीकिने जैसा लिखा वैसी ही लीला रामचन्द्रजीको करनी पड़ी । तुलसीदासजीने उस रामायण-कथामें बहुत कुछ परिवर्तन किया । श्रीरामचन्द्रजीको वह भी मंजूर रखना पड़ा । अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, आनन्द-रामायण, भावार्थरामायण इत्यादि अनेक प्रासादिक ग्रन्थों-में श्रीरामचन्द्रजीको नये-नये रूपमें अपनी लीला दिखानी पड़ती है । भक्तवत्सल प्रभु भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये सभी कुछ सहन करते हैं ।

रामायणमें भारतीय जीवनका आदर्श चित्रित है । नारदजीका उद्देश्य आदर्श राजाका चित्र प्रदर्शित करना था । वाल्मीकिने यह चित्र तैयार करके मनुष्य-जातिके सामने अनन्तकालके लिये रख दिया है । रामायणमें आदर्श राजा (रामचन्द्र), आदर्श पुत्र (रामचन्द्र), आदर्श भाई (लक्ष्मण और भरत), आदर्श सेवक (हनुमान्), आदर्श भक्त (शबरी), आदर्श पुरोहित (वशिष्ठ), आदर्श मित्र (गुहक और विभीषण), आदर्श सहायक (जटायु), आदर्श सचिव (अंगद), आदर्श पत्नी (कौसल्या, सीता और उर्मिला तथा मन्दोदरी), आदर्श शत्रु (रावण), इत्यादि कई सुन्दर आदर्श बताये गये हैं। क्या हम कह सकते हैं कि रामायणी-प्रजा भी आदर्श है ?

रामायणने बताया है कि राजा परम्परा और प्रजाकी इच्छाके अनुसार राज्यके उत्तराधिकारीका निर्णय कर सकता था । राजा दशरथने प्रजासे पूछा कि राम तुम्हें पसन्द हैं ? लोगोंने आनन्दित होकर कहा, 'अवश्य' रामचन्द्र ही हमें पसन्द हैं ।' परन्तु कैकेयीने लोगोंकी पसन्दगीको नहीं माना । बस, लोग चुपचाप बैठ गये । बेचारे क्या कर सकते थे ? रामचन्द्रजीको चौदह वर्षका वनवास हुआ, लोग उनके पीछे चले । रामचन्द्रजीने उनको वापस लौटा दिया । वे रोते-रोते वापस लौट आये । दशरथजीका देहान्त हुआ । कैकेयीने राजसूत्र अपने हाथमें लिया । प्रजाने चुपचाप उसे मंजूर कर लिया । फिर भरतजी आये । उन्होंने राजधानी बदल दी । यह तो प्रजाको मंजूर ही करना पड़ा ।

श्रीरामचन्द्रजी जंगलमें कहाँ गये? उनका क्या हुआ? इस बातकी तो प्रजाने कभी कुछ खोज-खबर नहीं ली । सीताका हरण हुआ, जटायुका वध हुआ, रामचन्द्रजीने वानर और रीछोंकी मदद ली, समुद्रपर सेतु बाँधा, लंकापर हमला किया, दुनियाका असाधारण युद्ध हुआ, लेकिन रामायणी-प्रजाको उसका कुछ भी पता नहीं था । हनुमान्‌जी उत्तरसे द्रोणागिरि ला सके, लेकिन रामायणी-प्रजा दक्षिणसे रामचन्द्रजीकी खबरें मालूम नहीं कर सकी । रावणका वध हुआ, लंका विभीषणको दी गयी, सीताने अग्नि-परीक्षा दी, इन बातोंकी भी इन लोगोंको कोई खबर नहीं थी ।

अत्यन्त लोकप्रिय राजा रामचन्द्रजीके प्रति अनुरक्त प्रजाकी इतनी उदासीनता क्यों थी ? कुछ समझमें नहीं आता । क्या प्रजाको सुध-बुध नहीं थी ? क्या धर्मका खयाल ही न था ? मानो इस तोहमतका निराकरण करनेके लिये ही रामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके साथ विजययात्रा पूरी करके अयोध्या पधारे तब प्रजाने अपने हकका सवाल पूछा कि सीता माता रावण-जैसे दुराचारीके घरमें रहकर कैसे शुद्ध रह सकीं ? अग्नि-शुद्धि तो हम लोगोंने देखी ही नहीं है । उसका इतबार कैसे करें ? रावणके घरमें सीताजी रही थीं, इतना शायद ये सब लोग देख आये होंगे ! इसलिये उस बातपर तो विश्वास कर लिया, पर अग्नि-परीक्षा नहीं देखी थी, उसपर विश्वास कैसे करें ? शास्त्रोंने ही कहा है,'चक्षुर्वै सत्यम् ।'

ऐसी प्रजाको लेकर रामचन्द्रजीने राज्य किया । सीताका त्याग करके सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा पास रखकर अश्वमेध-यज्ञ किया । फिर तो वाल्मीकिजी स्वयं सीताको दोनों पुत्रोंके साथ वापस ले आये । तो भी क्या हुआ—

'शान्तमथवा किमिहोत्तरेण ?'

क्या ऐसी प्रजाको पृथ्वीपर भारभूत समझकर ही श्रीरामचन्द्रजी अपने साथ निजधाम ले गये ?

रामायणकालसे यह आवश्यकता मालूम होती है कि इस देशमें तेजस्वी धर्मभीरु प्रजाका अवतार हो ।

रामायणी शक्ति

(लेखक--श्रीनलिनीकान्त गुप्त, अरविन्दआश्रम—पाण्डिचेरी)

कवित्वकी दृष्टिसे अतुलनीय होनेपर भी रामायण केवल एक काव्यमात्र ही नहीं है; रामायण है एक शक्ति।

यह रामायणी शक्ति, भारत-शक्तिका एक प्रधान अंग—एक मुख्य स्वरूप है। जिन मन्त्र-शक्तियोंने भारतकी शिक्षा-दीक्षाको, भारतके धर्म-कर्मको एक महान् वैशिष्ट्य प्रदानकर निर्मित किया है, उन सबमें वाल्मीकिकी यह गाथा एक विशेष अवदान है।

प्रथम वेद और उपनिषद्, इनके बाद रामायण और महाभारत, तीसरे पुराण एवं चौथे धर्म या स्मृति-शास्त्र हैं। भारतकी समस्त शिक्षा-दीक्षा इन्हीं चार प्रस्थानोंके द्वारा हुई है। इन्हीं चारोंने भारतीय जीवन-प्रतिभाको आकृति और प्रकृति—स्वरूप और स्वभाव प्रदान किया है।

भारतकी आदिमूल मातृ-शक्ति है वेद। भारतकी अन्तरात्मा यहीं है। दूसरे छोरपर, भारतके दैहिक आयतनका विधान है स्मृति। यह बाहरी स्थूल कर्मक्षेत्रकी, व्यवहारिक जीवन-यात्राकी व्यवस्था है। इन दोनों छोरोंके-इस अन्तरात्मा और देहके बीचमें जो अन्तःकरणकी पृथक्-पृथक् भूमियाँ हैं, उनका निर्माण किया है रामायण, महाभारत और पुराणोंने।

वेद-उपनिषद् भारत-प्रतिभाकी बुनियाद हैं, पर वह बुनियाद बहुत अन्दर, बहुत गहरी और लोक-दृष्टिसे परे है। उसके सत्य, शाश्वत, अव्यय, स्थाणुने गुप्तरूपसे पीछेसे समस्त भारतजीवनको धारण कर रक्खा है और वह सबमें शक्तिका सञ्चार कर रहा है। दूसरी ओर स्मृति केवल उसकी प्रशाखा-पत्रमात्र है। वह उसके केवल बहिरंगका विकास है। स्मृतिका सत्य, देश, काल और पात्रके नियमाधीन है, वह नित्य परिवर्तनशील है। रामायण-महाभारत भारतीय जीवनके प्रधान काण्ड हैं, और पुराण हैं इनकी कतिपय मुख्य शाखाएँ।

अन्तरात्माके सत्यको, वैदिक औपनिषदिक सिद्धिको रामायण और महाभारतहीने जीवनमें—प्राणोंके स्पन्दन-रूपमें सबल मूर्त करके धारण करनेकी चेष्टा की है और पुराणोंने उसी प्राणलीलाको विशद विवरणद्वारा व्याख्या करके विशेषरूपसे स्पष्ट और विशेषरूपसे नित्य-नैमित्तिक व्यवहार बनाना चाहा है। आरण्यकमें साधकमण्डलीके मध्यमें वेद-शक्ति छिपी हुई है। परन्तु जनसाधारणमें, समाजके जीवनमें जो शक्ति प्रकट है वह प्रकाशमें निकलती है रामायण, महाभारत तथा पुराणोंसे। भारतके चित्तको, मूलप्राणको—जो कार्यकारिणी प्रकृतिकी प्रतिष्ठा है-निर्माण किया है रामायण और महाभारतने! पुराणोंने उस चित्त धर्मको और भी गोचर और अलंकृत करके ग्रहण किया है और तदनुसार स्थूलतर मन बुद्धिको उसी साँचेमें ढालकर तैयार करनेकी कोशिश की है।

रामायणने भारतकी चित्तवृत्ति, प्राणोंकी धाराको स्पर्श किया है, उसका निर्माण किया है हृदयके अवदानसे, तथा सरल सुकुमार अथच समर्थ भावशीलनके कल्याणसे। परन्तु महाभारतने उन प्राणोंको बाँध लिया है स्थिर बुद्धि-स्थित इच्छाशक्तिके-सुदृढ़ मानसिक शक्तिके दबावसे। कहा जा सकता है कि रामायणका मूलमन्त्र है 'सत्य' और महाभारतका है 'धर्म'। सत्यकी सहज स्फूर्ति ही सत्य है; एक सहज बोध, सरल अनुभव उसे व्यक्त करता है। परन्तु धर्मकी उत्पत्ति है सम्यक् बुद्धिसे, कर्त्तव्यज्ञानसे और आदर्श-परायणतासे। धर्मकी स्थिति है न्यायसंगत और युक्तियुक्त विचारके आधारपर, परन्तु सत्य तो स्वतःसिद्ध है। वह एक नैसर्गिक औचित्यके आधारपर स्वयं प्रकाशित है।

रामायणके दशरथ, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनूमान्, सुग्रीव, विभीषण आदि सभी पात्रोंने कर्त्तव्यके निर्धारण और सम्पादनमें विचार-विवेचनपर विशेष निर्भर नहीं किया है। यदि वहाँ मस्तिष्क पहुँचकर तौल-माप करना चाहता तो कई पात्रोंकी एकाधिक क्रिया सम्भवतः दूसरे ही प्रकारकी होती। परन्तु ये तो अनुप्राणित हुए हैं सहजात स्वभावसिद्ध विवेकसे। इनके कर्म हैं अन्तरकी एक महत्ताके, उदारताके, विशालताके और उन्मुक्तताके परिप्लव! यहाँतक कि कैकेयी, मन्थरा एवं रावण-सरीखे पात्र भी अपने विकर्मके पथपर जितने उत्साहके साथ चले हैं उतने बुद्धि, युक्ति अथवा किसी उद्देश्यका आश्रय करके नहीं। इसके विपरीत महाभारतके वीरगण युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदिमें कर्मका प्रवाह सीधे प्राणोंसे उत्सरित होकर नहीं

आया, वह मानों घूम-फिरकर मस्तिष्कके अन्दरसे होता हुआ बाहर निकला है। महाभारतके महापुरुष श्रीकृष्णमें बुद्धियोग विशेषरूपसे विकसित है। उनकी गीताका प्रधान-मन्त्र ही है 'बुद्धियोग'। परन्तु श्रीराम सरल निर्मल प्राणोंकी सहज गतिके विग्रह हैं। पाण्डवोंके प्रत्येक पादविक्षेपमें एक परिमित, आत्मप्रतिष्ठ, मनका स्थिर सङ्कल्प, इच्छा-शक्तिकी कल्पना परिस्फुटित है। परन्तु सीताके कर्मके साथ है एक सरल भावगर्भ भाव। उसमें मन, बुद्धि अथवा युक्तिकी खाद नहीं है।

महाभारतकी शक्तिसे मानो तपश्चर्याका, कृच्छ्रताका गम्भीर, उदात्त और कठोर ताप निकल रहा है। रामायणी शक्ति भी शक्तिमान है किन्तु वह एक उदार, महान् प्रसन्न-कान्त-गुणसे मण्डित है। महाभारत उत्तुङ्ग शैलशिखर है तो रामायण विशाल जलधि। महाभारत क्षात्रगुणका आधार है, कृप और द्रोण ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियधर्म और आचारको ग्रहण किये हुए हैं। रामायणके हावभावमें ब्राह्मण-गुणका परिचय विशेष है। रामायणके नायकके क्षत्रिय होनेपर भी शम, दम, शुचि, अन्तरात्माकी सरल शुभ्रता, प्राणोंकी सहज महत्ता आदि सच्चे ब्राह्मणके गुणोंने उनकी प्रकृतिका वैशिष्ट्य रच दिया है। वाल्मीकिके हाथोंसे जिस सृष्टिकी रचना हुई है उसका सत्त्वगुण रजोगुणको अतिक्रम कर गया है। व्यासकी सृष्टिमें सत्त्वकी अपेक्षा रजोगुणकी ही अधिक प्रधानता है। महाभारत दिन-दुपहरीका प्रखर प्रकाश है तो रामायण है पूर्णिमाकी स्निग्ध ज्योत्स्ना।

भारतके प्राणोंमें रामायणी शक्तिने तारुण्य, सुकुमारता, सहज महानुभावता, नैसर्गिक गरिमा, अनायास सौष्ठव, अयत्नप्राप्त परिपाठ्य सरलता और आर्जव आदि गुण भर दिये हैं। व्यासदेवका आविर्भाव द्वापरके अन्तमें हुआ था। उनको हमारा निर्माण करना था कलियुगके लिये। सम्भवतः इसी हेतुसे उन्होंने हमलोगोंको विशेष सजग, सावधान, दृढ़, कुछ रूढ़ और रूखा बनाना चाहा। परन्तु सौम्य सहास्य वाल्मीकिको इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे हमारे प्राणोंमें जिस शक्तिका सञ्चार कर रहे हैं उसमें कोई जबरदस्ती प्रयास और बुद्धिका सङ्कल्प नहीं है। वह शक्ति है वर्द्धनशील शिशु या तरुलताकी अटूट अव्यर्थ अथच प्रशान्त अन्तःसलिला जीवनी शक्ति, जो हृदयके अन्तस्तलमें प्रतिष्ठित है।

महाभारतका प्रयास है सत्ताका (गीताकी भाषामें) 'ऊर्जित' करके निर्माण करना; रामायण चाहती है सत्ताको 'श्रीमान्' करके प्रकाशित करना !

श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महत्त्व

(लेखक—'उर्मिला-पद-रज-कण')

रामायणमें रामसेवा-व्रती श्रीलक्ष्मणजीका और उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है फिर वह अनुपम कैसे हो गया? वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौनावलम्बन ही चरित्रकी परम उज्ज्वलताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं, और न ले जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-नैहरमें रहनेका उपदेश दिया था, सो तो लोकशिक्षा, सती पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सत्शिक्षाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें ले जाना ही चाहते थे, क्योंकि उनके गये विना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए विना उसकी मृत्यु असम्भव थी जो अवतार धारणका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् जगन्नायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दघन थे। वह उनसे कभी अलग रह भी नहीं सकती! केवल पातिव्रतकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्ता और उनकी सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। वह भी सीताकी भाँति ही साथ आनेके लिये प्रेमाग्रह कर सकती थीं, परन्तु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें

सुभीता था, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पतिका एकमात्र धर्म था और जिसके लिये उर्मिला पूर्ण सहमत और सहायक थी। इन्द्रजित् मेघनादको वरदान था कि जो महापुरुष लगातार बारह वर्षतक फलमूल खावेगा, निद्राका त्याग करेगा और अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनादका मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-वधमें कारण बननेके लिये सीताजीका श्रीरामलीलामें सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी रामलीलामें शामिल होनेके लिये तीव्र महाव्रत-पालनपूर्वक मेघनाद-वधके लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिलाजी-का भी राम-लीलाको सुचारुरूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका व्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिलाजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजीका महाव्रत पालन होना कठिन था और वे घरपर रहते तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिलाजीको अवश्य समझा ही होगी या महान् विभूति होनेके कारण वह इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-धर्मका वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति लक्ष्मणजीका सेवाधर्म सम्पन्न होता है, जिन रामकी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्ण हुए थे वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है। यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थीं? वह आजकलकी भाँति भोगकी भूखी तो थीं ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नीका धर्म है, इस बातको वह खूब समझती थीं और यही उर्मिलाजीने किया।

लोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण बड़े निठुर थे, राम तो सीताको साथ ले गये, परन्तु लक्ष्मणने तो उर्मिलासे बात-तक नहीं की।' पर वह क्या बात करते, वह इस बातको खूब जानते थे कि मेरा और मेरी पत्नीका एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालनमें मद्गतप्राणा कर्त्तव्यपरायणा प्रेममयी उर्मिलाको सदा ही बड़ा आनन्द है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा विछोह सह सकती है। जनकपुरसे ब्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मण और उनकी अनुगामिनी सती उर्मिलाने अपना राम-सेवा धर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये वीरांगना उर्मिला भी उसी प्रकार सम्मत और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण-माता वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्म-परायणा वीरांगनाएँ अपने पति-पुत्रोंको हँसते-हँसते रणाङ्गणमें भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिलाने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोली नहीं, परन्तु यहाँ न तो बोलनेका अवकाश ही था और न धर्ममें नित्य हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोलनेकी आवश्यकता ही थी, और न मर्यादा ही ऐसी आज्ञा देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरन्त करने योग्य प्रबल मनचाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सलाह-मशविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख करती है, क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परन्तु परतन्त्र सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिलाको साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती, जहाँ वनमें श्रीरामजी सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे वहाँ उर्मिलाको साथ ले जानेमें तो ज़रूर आपत्ति करते। जो कार्य स्वामीकी रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसीप्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थीं। लक्ष्मण उनको जानते थे। धर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियोंके सम्हालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निठुरताका बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके व्रतपालनका महत्त्व देखिये। वे दिनरात श्रीसीता-रामके पास रहते हैं। कन्द-मूल-फल ला देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको झाड़ना-बुहारना, वेदिकापर चौका लगा देना, श्रीसीता-रामकी रुचिके
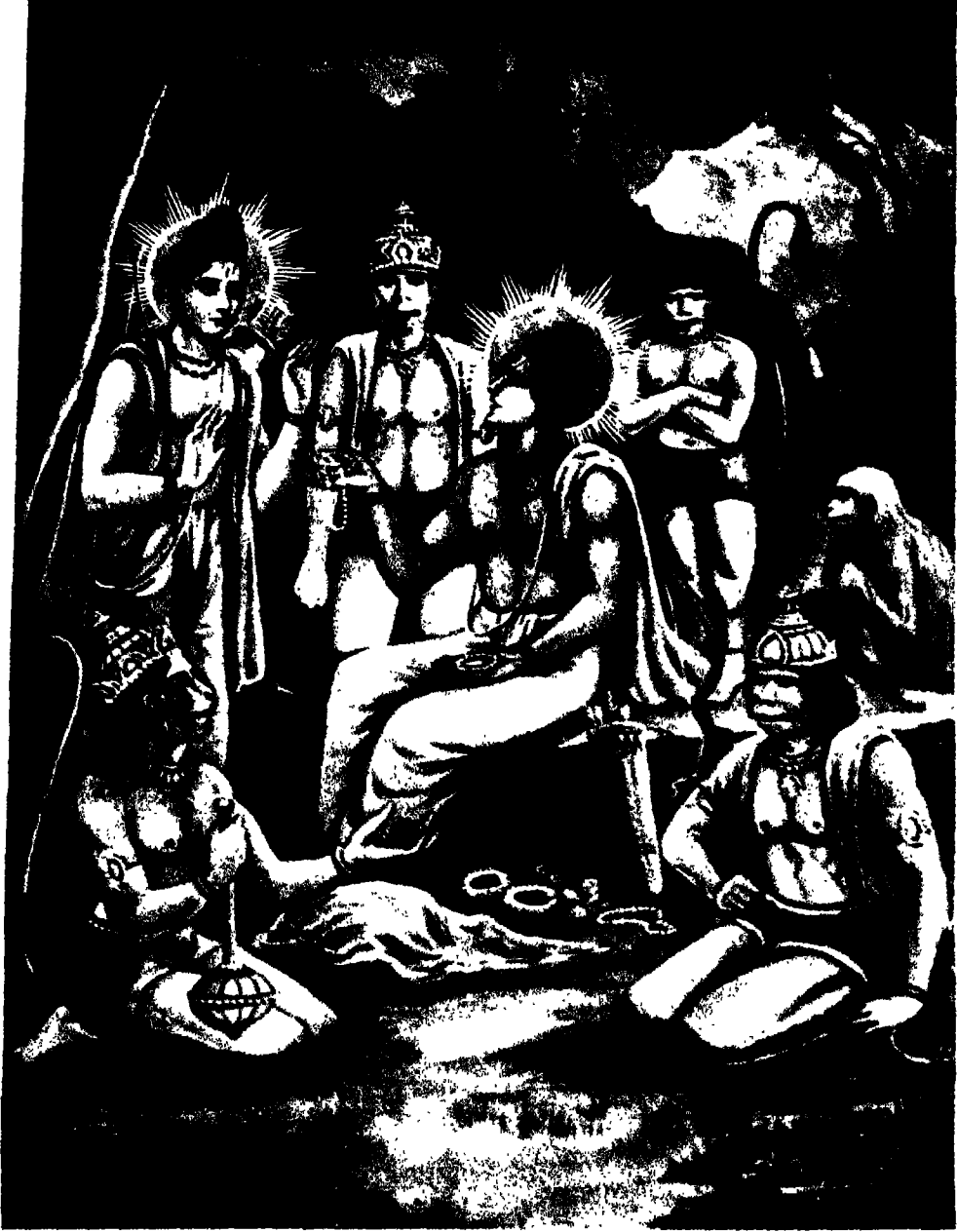
श्री सीताजीके गहने।

नाहं जानामि केयूरं नाहं जानामि कुण्डलम्।

नूपुरं चैव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिनरात सजग रहकर वीरासनसे बैठे राममें मन लगाये राम-नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्यव्रतका तो पता इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अंगका कभी दर्शन नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डालदिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनूमान्‌जीकी प्रेरणासे सुग्रीवके पास पहुँचे तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखलाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

> नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
> नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥
> (वा० रा० ४।६।२२)

'स्वामिन्! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवरोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके पास सीताजीको अकेले बेधड़क छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्‌के साथ युद्धके लिये आये थे तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें गिरिगुहामें भेज दिया था—

> 'राम बोलाइ अनुजसन कहा'—
> 'लैहि जानकिहि जाहु गिरिकंदर।'

मायामृगको मारनेके समय भी सीताके पास आप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे। और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवाव्रत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था, क्योंकि वे श्रीरामको छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

> गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
> जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥
> मोरे सबहि एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अंतर-जामी॥
> धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही॥

रामजन्मकी प्रतीक्षा

(१)

कहके गए थे पर आते हो न लाड़ले क्यों,
वयस व्यतीत होती जा रही बिछोहमें;
चाह करती हूँ, भरती हूँ आह दिन-रात,
स्वासा चलती है सदा आशा बन टोहमें।
कान खड़े ध्यान हैं लगाए व्योम वाणी ओर,
आँखें थक बैठीं अंत शबरीकी खोहमें;
छूत औ अछूत--अंग-अंग हो रहे हैं दूत,
जाने कहाँ पूत! सो रहे हो किस गोहमें।

(२)

कृषक विदेह देह तोड़ जोतते हैं भूमि,
तो भी शस्य-श्यामला न सीता कर पाती है;
खूनके घड़े अरे! गड़े ही गड़े जाते सड़े,
होंगे पड़े सोचते—यही तो मति आती है।
आतुर निषाद भुज-भर भेंटनेको यहाँ,
उसकी न, तात, तुम्हें सुध ही सताती है;
आशा-अभिलाषा उपजाती छोड़ ताती याद,
आती रामनौमी पछताती रह जाती है।

मातादीन शुक्ल साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण

पशु-पक्षियोंका रामप्रेम

(लेखक—श्रीरामेश्वर बाजोरिया)

पाहन, पसु बिटप बिहँग अपने करि लीन्हे । महाराज दशरथके रंक राय कीन्हे ॥

रामचरित अगाध कल्याण-रत्नोंकी खानि है। उसमें जीवनको ऐसे सुन्दर सीधे सर्वमान्य पथपर लानेकी शक्ति है कि जिससे सहज ही सुख-शान्ति और भक्ति-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसीसे वह सदासे सबका आदर्शरूप और प्रिय रहा है, और है। जिसमें अपना परम हित सूझता है उसी कार्यको सब किया करते हैं। वह परमहित भगवत्प्रेमका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। जग-मङ्गलकर्ता जनसुखदायक भगवान् श्रीराम साक्षात् ईश्वर थे, परम-पिता थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। वे प्रत्येक चराचर प्राणीके दुःख-सुखका, हिताहितका सर्वदा ध्यान रखते थे। इसी लोक-हित, इसी जन-कल्याणके लिये ही तो वे अपनी प्रतिज्ञानुसार अवतरित हुए थे, फिर भला उनके चराचर-प्रिय होनेमें आश्चर्य ही क्या? वे केवल उनको साक्षात् भगवान्‌रूपसे जाननेवाले वशिष्ठादिके ही प्रिय न थे वरन् प्रेम-मुग्ध माता-पिताके भी अत्यन्त प्रिय थे। यहाँ ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब माता-पिताको अपना कुपूत पूत भी अच्छा लगता है, तब फिर राम तो आज्ञाकारी मातृ-पितृ-भक्त थे, इससे उनका प्रिय होना स्वाभाविक ही है। यह ठीक है, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तो पुर-जन-परिवार सभीके अतिप्रिय थे। सारी प्रजा सदा उनको देखती रहना चाहती थी, सदा उनके पास रहना चाहती थी। उसको उनसे बिछुड़नेका नाम भी सुनते ही प्राणान्त कष्टका अनुभव होने लगा था। इसका वर्णन वन-गमनके प्रसंगमें सभी रामकथाओंमें आता है। उसे पढ़कर कौन सहृदय पाठक उनके कष्टकी सहानुभूतिसे रो नहीं उठता। भगवान्‌की सृष्टिमें मनुष्य सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझा गया है, अपने हितैषीके प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा प्रकट करना उसका स्वाभाविक कर्तव्य है, धर्म है। परन्तु अखिल भुवन-प्रिय रामको पशु-पक्षी और लता-द्रुम भी कितना प्रेम करते थे, यह कुछ ध्यानसे मनन करनेका विषय है। यहाँ इसी विषयका कुछ वर्णन करना है।

सांसारिक जीवोंके सुखके लिये भगवान् अपनी लीला-द्वारा माता कैकेयीसे प्रेरित महाराज दशरथकी आज्ञा पाकर वल्कल-वस्त्र धारणकर सीताजी और लक्ष्मणसहित वनको जा रहे हैं। सुमन्तजीको उन्हें रथमें बैठा वन दिखलाकर जल्दी वापस लौटा लानेकी आज्ञा हुई है। पुर-नर-नारियोंके दुःखका तो आज कहना ही क्या है, पर जरा पशु-पक्षी और पेड़-पौधोंका भी हाल देखिये।

ततस्त्वयोध्यारहिता महात्मना पुरन्दरेणेव मही सपर्वता।
चचाल घोरं भयशोकदीपिता सनागयोधाश्वगणा ननाद च ॥
(वा० रा० २।४१।२०)

सारी अयोध्या आज भगवान्‌के वियोगमें काँप उठी, घोड़े और हाथी चिग्घाड़ मारने लगे, सर्वत्र शोक-साम्राज्य छा गया। सभी भक्तिमान् जङ्गम और स्थावर प्राणी भगवान्‌को वनमें कष्ट होनेकी आशंकासे दुःखित हैं और भगवान्‌से अपनी मूक भाषा-निश्चेष्ट चेष्टामें लौट चलनेकी प्रार्थना करते हैं।

भक्तिमन्तीह भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च।
याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय ॥
अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मूलैरुद्धतवेगिनः।
उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः ॥
निश्चेष्टाहारसंचारा वृक्षैकस्थानविष्ठिताः।
पक्षिणोऽपि प्रयाचन्ते सर्वभूतानुकम्पनम् ॥
ददर्श तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥
(वा० रा० २।४५।२९-३२)

भगवान्‌की लीलामें उसीके दिये रूपसे शामिल रहनेवाले अचर वृक्षादि चल नहीं सकते बोल नहीं सकते परन्तु श्रीराम तो उन्हें भी अत्यन्त प्रिय हैं, इसीसे तो वे भी आज दुःखी हैं। स्वयं भगवान् इन जड़ जीवोंकी दशाका वर्णन करते हुए लक्ष्मणसे कहते हैं—

पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः।
यथा निलयमायद्भिर्निलीनानि मृगद्विजैः ॥
(वा० रा० २।४६।३)

हमारे दुःखोंसे दुःखी होकर छिपे हुए पशु-पक्षियोंके शब्दोंसे विहीन इस शून्य वनके रुदनको देखो।'

कृपालु कल्याणमय श्रीरामने सुमन्तको आज्ञा दी—

अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सौम्येत्युवाच ह ॥
(वा० रा० २। ४६। ११)

'हे सौम्य! तुम सावधानीसे घोड़ोंकी देख-भाल करो।' भावुक भक्तगणोंका उन पशु-पक्षियोंको, इन नद-नदियोंको और लता-वृक्षोंको कृतपुण्य—धन्य धन्य कहना ठीक ही है; जिनके लिये स्वयं भगवान्—

कदाहं पुनरागम्य सरय्वा पुष्पिते वने।
मृगयां पर्यटिष्यामि मात्रा पित्रा च संगतः ॥
(वा० रा० २। ४९। १४)

—कहकर उनसे पुनर्मिलनकी उत्कण्ठा दिखलाते हैं। निषादराज गुहका गुण-गानकर कौन अपनेको पवित्र करना नहीं चाहेगा। नगर-निवासी शिक्षित, सभ्य जनसमुदायसे दूर विकट घोर जंगलमें रहकर हिंसावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेवाले दयामाया-हीन मनुष्य भी परम नम्र और सेवा-भाववाले बनकर रामके दासोंमें उच्च गिने जानेवाले बन जाते हैं, यह सारी लीला अपने भगवत्-चरणोंमें प्रेम और उनकी (चरणोंकी) दीन दयालुताकी ही है। एक अनावश्यक और हानिकर एवं निन्दनीय पर रूढ़िगत साधारण बानको भी जहाँ हम छोड़नेमें असमर्थ होते हैं वहाँ उन भीलोंका- जिनको हम जंगली कहते हैं—सर्वथा बदलकर अपने अतिथिकी सेवामें हाथ जोड़कर खड़े हुए उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करना कितने आश्चर्यकी बात है? जिनपर 'उसकी' कृपा हो उनका देवता—नहीं नहीं—स्वयं ब्रह्मा, बन जाना भी कोई अनोखी बात नहीं, 'मसकहि करइ बिरंचि सम।' वह 'तो कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ' है।

अब भगवान् गुहराजके साथ गंगाको पारकर आगे बढ़ना चाहते हैं, सुमन्तको यहाँसे लौट जानेके लिये समझा रहे हैं। परन्तु सुमन्तको राजा और राजमाताओंके साथ-साथ उन पशुओं और घोड़ोंका भी दुःख स्मरण हो आता है और वह कहता है—

मम तावन्नियोगस्थास्त्वद्बन्धुजनवाहिनः।
कथं रथं त्वया हीनं प्रवक्ष्यन्ति हयोत्तमाः ॥
(वा० रा० २। ५२। ४७)

'हे राम! ये घोड़े जिनकी देख-भाल मेरे अधीन है, आप बान्धवोंको ही ले चलते हैं। अब आप लोग कोई इस रथपर नहीं रहेंगे तब ये घोड़े रथको कैसे ले जायँगे?' सचमुच रामके जानेके बाद उनके वियोगमें घोड़ोंकी बड़ी बुरी दशा हुई—

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥
नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जल मोचहिं लोचनबारि।
ब्याकुल भयउ निषाद सब रघुबर-बाजि निहारि॥

× × ×

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। रामबियोग बिकल दुख तीछे॥
जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि-बिरहगति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती

भयउ निषाद बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥

वे बेचारे जिधर राम गये थे उधर देख-देख पंख-कटे पक्षीकी तरह विकल हो बार-बार हिनहिनाने लगे। दुःखके मारे उनका खाना-पीनातक छूट गया। आँखोंसे अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। राम-विरहाकुल घोड़ोंकी दशा देखकर उपस्थित लोग भी विषाद-मग्न हो गये। वे उन पशुओंको कृतकृत्य समझने लगे, जो श्रीरामको इतना प्रेम करते हैं कि उनके वियोगमें अपने शरीर-प्राणकी भी परवा नहीं।

घोड़े यह देखनेके लिये बार-बार कनौटी उठाकर इधर-उधर देखते हैं कि कहीं किसी ओरसे रामचन्द्रजी आ तो नहीं रहे हैं या पास ही कहीं बोल तो नहीं रहे हैं। वे उनके दर्शन पाने और उनके वचनामृत सुननेको व्याकुल हो रहे हैं। अशिक्षित जंगली जानवरोंको लाकर रथमें जोड़नेसे उनकी जो दशा होती है वही इन चतुर घोड़ोंकी हो गयी है। चलते-चलते बार-बार अटक (ठहर) जाते हैं, और गर्दन घुमाकर पीछेकी ओर देखते हैं कि एक बार फिर रामजीके दर्शन हो जायँ। रामका वियोगजनित उनका दुःख अपार है। यदि वे किसीके मुँहसे राम, लक्ष्मण और सीताका नाम सुन पाते हैं तो हुंकारकर उसकी ओर प्रेमसे देखने लग जाते हैं। उन घोड़ोंकी विकल दशाका वर्णन कैसे हो सकता है? वे मणिहीन सर्पकी तरह व्याकुल हैं। जब निषाद उनकी दशा देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और यह सोचकर कि ऐसे घोड़ोंके

रथमें बैठे सुमन्तके साथ कुछ आदमियोंका होना अत्यन्त आवश्यक है, न मालूम रास्तेमें इन घोड़ोंको क्या हो जाय, उन्होंने रथके साथ अपने चार आदमी भेज दिये।

पाठको देखी अपने इन पशुओंके विमल प्रेमकी दुर्लभ झाँकी। हम मनुष्य क्या इन पशु कहलानेवाले घोड़ोंकी बराबरी कर सकते हैं? वे परम धन्य हैं जो रामके वियोगमें इसप्रकार अपनी सुधि-बुधि खो देते हैं।

अस्तु, किसी प्रकार गिरते-पड़ते घोड़ोंने रथको अयोध्याजीतक पहुँचा दिया। सुमन्त महलोंमें चले गये। फिर, बेचारे घोड़े रामवियोगको और अधिक न सह सके। उनकी इस करुणापूर्ण दशाका ध्यानकर आगेकी बातका लिखना-पढ़ना कठिन हो जाता है, इसीसे बादका कुछ पता नहीं मिलता। न-जाने उन घोड़ोंने भी महाराज दशरथजीकी तरह वियोगमें अपने प्राण खो दिये या पुनर्दर्शनकी आशासे भरत और कौसल्याकी तरह किसी प्रकार जीवित रहे।

ऋक्ष-वानरोंके प्रेमकी बात तो भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कही है, उसके विषयमें हम क्या कहें। विहंगवर गीधराजकी कथा तो प्रसिद्ध ही है, उनका रामपर अत्यन्त प्रेम था।

यदि वे सबके परमप्रिय प्राणाराम न होते तो 'जीव चराचर याचत जेही' क्यों कहा जाता। वे तो अवश्य ही सबके आत्मा होनेके कारण सर्वप्रिय हैं।

जय! सर्वप्रिय श्रीराम और उनके प्रेमियोंकी।

रामायणके कुछ रत्न

(लेखक—श्रीयुत रामायणशरणजी रामायणी)

मंगल भवन अमंगल-हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर-बिहारी॥

श्री रामायणका महत्त्व अनिर्वचनीय है। इसकी महिमा जितनी गायी जाय उतनी ही थोड़ी है। मैं इस रामचरित-रत्नाकरमेंसे कुछ रत्न रामायणाङ्कके पाठकोंको भेंट करता हूँ। कृपया स्वीकार करें। उपहार प्रश्नोत्तरके रूपमें हैं।

१—'श्रीरामचरितमानस किस मन्त्रार्थपर है, जैसे श्रीमद्भागवत द्वादशाक्षर मन्त्रपर है और श्रीवाल्मीकीय रामायण गायत्रीके चौबीस अक्षरों-पर है?'

'श्रीमानसरामायण 'श्रीरामाय नमः'-इस षडक्षर तारक मन्त्रराज पर है। परन्तु गुप्त है। 'वर्णानां' इस प्रथम श्लोकमें 'र'कार 'अ'कार बिन्दुसहित रामबीज है और पाँच अक्षर पाँच काण्डोंमें हैं, और अन्तका विसर्ग उत्तरकाण्डके अन्तमें है।'

२—'ग्रन्थकारने इस ग्रन्थको 'व' कारसे क्यों प्रारम्भ किया?'

'ग्रन्थके आदि और अन्तमें भी वकार ही है। वकार अमृत बीज है, इससे श्रीरामचरितमानसको 'अमियमय' सूचित किया। जैसे अमृत पान करनेवालेको दूसरे रस-पान करनेकी अपेक्षा नहीं, वैसे ही श्रीरामचरितामृत पान करने-वालेको दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं है।

३—'तुलसीकृत रामायणका श्रीरामचरितमानस नाम कैसे पड़ा?'

'इसको श्रीशिवजीने रचकर बहुत समयतक अपने मानसमें रक्खा, फिर सुअवसर पाकर श्रीशिवासे कहा। इसी-से 'रामचरितमानस' नाम पड़ा।'

४—'श्रीरामचरितमानसमें गीतोपदेशका वर्णन कहाँ है?'

'श्रीरामचरितमानसमें गीताका भाषान्तर या समानार्थक वर्णन बहुत जगह मिलता है। विस्तारभयसे मैं यहाँ नहीं लिखता। केवल मानसमें जितनी गीताएँ हैं उनके नाम-मात्र यहाँ लिखे जाते हैं, सज्जनगण रामायणमें पढ़कर देख लें। अयोध्याकाण्डमें ९१ दोहेसे ९३ दोहेतक निषादके प्रति श्रीलक्ष्मणजीका उपदेश 'श्रीलक्ष्मणगीता' है। अयोध्याकाण्डमें दोहा १२५ से १३१ तक 'श्रीवाल्मीकि-गीता' है। आरण्यकाण्डमें पञ्चवटीमें दोहा १४ से १८ दोहे तक श्रीलक्ष्मणजीके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'श्रीराम-गीता' है। लङ्काकाण्डमें श्रीविभीषणके प्रति श्रीरघुनाथजीने

जो धर्ममय रथका रूपकमें वर्णन किया है वह 'श्रीभगवद्गीता' है। उत्तरकाण्डमें ४२ दोहेसे ४६ दोहेतक श्रीअयोध्या-वासियोंके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'पुरजनगीता' है। पुनः उत्तरकाण्डके अन्तमें ११६ दोहेसे ११८ दोहेतक 'ज्ञानगीता' और ११९ दोहेसे १२० दोहेतक 'श्रीभक्तिगीता' है।'

५—'मनरूपी दर्पणमें मल क्या है?'

'काई विषय मुकुर मन लागी।'

६—'मनरूपी दर्पणके साफ करनेका उपाय क्या है?'

'श्रीगुरुदेवके चरणकमलकी रज।' यथा—

'श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि' — 'जन मन मञ्जु मुकुर-मल हरनी।'

७—'परमेश्वरका रूप हृदयमें कैसे आ सकता है?'

'सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे॥'

८—'श्रीरामजीको वश करनेका उपाय क्या है? और किसने उन्हें वश किया?'

'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेहु रामू॥'

९—'श्रीरामजी कैसे रीझते हैं?'

'रीझत राम सनेह निसोते।'

'तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे।'

'रीझेउँ देखि तोरि चतुराई।'

१०—'पापोंसे मुक्त होनेके विषयमें श्रीरामचरित-मानसमें क्या कहा है?'

'बिबसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक संचित अघ दहहीं॥'

'तीरथ अमित कोटिसत पावन। नाम अखिल अघ-पुञ्ज नसावन॥'

'राज कि रहै नीति बिनु जानें। अघ कि रहै हरि-चरित बखानें॥'

'सनमुख होय जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासौं तबहीं॥'

'सरदातप निसि ससि अपहरई। सन्त-दरस जिमि पातक टरई॥'

११—'श्रीरामायणमें सहज स्वरूप किसको कहते हैं?'

'स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर तीनोंसे परे या पञ्चकोशादि तथा तीनों गुणोंसे परे भिन्न, अथवा जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंसे अतीत और तुरीय अवस्थामें प्राप्त विमल आनन्दकी राशि शुद्ध सच्चिदानन्दघनस्वरूप ही सहज स्वरूप है। यथा—

'ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥'

'मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥'

'संकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखण्ड अपारा॥'

१२—'वेदमें परमधर्म किसको कहा है?'

'श्रुति कह परम धरम उपकारा।'

'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।'

'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥'

१३—'सन्त किसकी प्रशंसा करते हैं?'

'परहित लागि तजै जे देही। संतत संत प्रसंसहि तेही॥'

१४—'ईश्वरका प्रण क्या है?'

'प्रन हमार सेवक हितकारी।' 'मम प्रन सरनागत भयहारी॥'

१५—'कौन मनुष्य भवसागरमें नहीं पड़ता?'

'भव कि परहिं परमातम बिन्दक।'

१६—'भवसागरमें कौन लोग पड़ते हैं?'

'भवसिन्धु अगाध परे नर ते। पद-पंकज-प्रेम न जे करते॥'

१७—'संसारमें यश कैसे मिलता है और अपयश कैसे?'

'पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावै कोई॥'

१८—'संसारमें किसकी भक्ति बिना सुख नहीं मिलता?'

'श्रुति पुरान सदग्रन्थ कहाहीं। रघुपति-भगति बिना सुख नाहीं॥'

१९—'जीव किसके विमुख होनेसे सुख नहीं पाता?'

'राम-बिमुख सुख जीव न पावै।'

'जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला।'

'जिमि सुख लहै न शंकर-द्रोही॥'

२०—'जगत्‌में किसको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है?'

'परहित बस जिनके मनमाहीं। तिनकहँ जग दुरलभ कछु नाहीं॥'

'हरि-प्रसाद दुरलभ कछु नाहीं॥'

२१—'जगत्‌में सबसे दुर्लभ क्या है?'

'सबसे दुरलभ मनुज सरीरा।'

'सत्संगति दुरलभ संसारा।'

२२—'मनुष्यकी संसारमें सबसे बड़ी हानि क्या है?'

'हानि कि जग यहि सम कछु भाई।
भजिय न रामहिं नर तनु पाई॥'

२३—'परायी निन्दा करनेका क्या फल है ?'

'पर-निंदा-सम अघ न गरिसा ।'

'सबकी निन्दा जे नर करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥'

२४—'शोक करने योग्य कौन मनुष्य है ?'

'सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई ॥'

२५—'श्रीरामजी कब कृपा करते हैं ?'

'मन क्रम बचन छाँडि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई ॥'

२६—'श्रीरामजीको स्वप्नमें भी कौन अच्छा नहीं लगता ?'

'सिव पद-कमल जिनहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं ॥'

२७—'श्रीरामभक्तके लक्षण क्या हैं ?'

'बिनु छल बिस्वनाथ-पद-नेहू। राम भगतकर लच्छन एहू ॥'

२८— किस उपायसे जीव शोक-रहित हो सकता है ?'

'चहुँ जुग तीन काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव असोका ॥'

२९—'संसारमें अभागी कौन हैं ?'

'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय-अनुरागी ॥'

३०—'बड़भागी कौन हैं ?'

'सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥'

'रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी ॥'

३१—'श्रीरामजीका स्वभाव कैसा है ?'

'अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोककर राऊ ॥'

'सुनहु रामकर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥'

'उमा सुभाव राम जिन जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना ॥'

'अस सुभाव कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं ॥'

'मैं जानौं निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥'

'राम सुभाव सुमिरि बैदेही। मगन प्रेम-तन-सुधि नहिं तेही ॥'

'जासु सुभाव अरिहु अनुकूला ॥'

३२—'लोक और परलोकमें सुखका क्या उपाय है ?'

'जो परलोक इहाँ सुख चहहू।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ॥'

'सुलभ सुखद मारग यह भाई।
भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥'

केवटका अतुल प्रेम

(लेखक—पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल साहित्य-रत्न)

मन, आओ ! परम मनोहर भगवती भागीरथीके तटपर देखो कैसी रमणीयता है ? क्या ही छबीली छटा छिटक रही है। कृपागार, परम उदार श्रीरामजी श्रीमिथिलेश-किशोरी और प्यारे लखनलालजी सहित पधारे हैं। चलो, उनका पावन चरण-रज मस्तकपर धारणकर जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कलुष-पुञ्जको धो डालें। सम्भव है कि आज इस तापस वेषमें 'बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम-सरिस कोउ नाहीं।' से भी विशेष उदारता हो।

वह देखो, वही हैं हमारे प्यारे राम! वही हैं हमारे हृदय-धन !! जीमें आ रहा है कि चरण पकड़कर जीभर रो लें और उन कोमल अरुण चरणोंको प्रेमाश्रुओंसे ही धो डालें ! पर नहीं, ठहरो। इनका उचित अधिकारी वही उत्कण्ठामें बाट जोह रहा है, उसका हठीला मन मनमानी करनेको आतुर बैठा है ! चलें उसकी सीधी-सादी अमृतमयी वाणी सुनें और उसीके कर-कमलोंद्वारा प्रेमसे धोये हुए चरणामृतका पान करें ! आज प्रेम-पारावार प्रभु मचले हुए भक्तके वश हो प्रेमका पाठ पढ़ायेंगे और अपने भव्य भाव प्रकटकर भवसागरसे भी पार लगायेंगे।

वाह रे मनचले बड़भागी केवट ! धन्य तेरा अनन्य प्रेम ! धन्य तेरी निष्कपट भक्ति ! धन्य तेरा अनूठा हठ ! तू—

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥

—इस चौपाईको चरितार्थ करता हुआ भी सरकारसे खुले अलफाज़ोंमें सीनाज़ोरी कर रहा है। जिन्होंने सुर-असुर सबको 'प्रबल कर्मकी डोरीमें' बाँध रक्खा है, उन्हींको आज तूने बातों ही बातोंमें बाँध लिया, और बाँधा भी ऐसा कि अपने पिता-पितामह तकका बन्धन मुक्त करवा लिया ! धन्य है !

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥

नाव माँगनेपर खुले शब्दोंमें साफ इन्कारी और फिर एक तुर्रा तानाज़नीका भी 'तुम्हार मरमु मैं जाना।' *क्या खूब ? कैसा सौम्य और सरल भाव है ! जिस प्रभुके* भृकुटि-विलाससे ही सृष्टिका लय-विकास होता है। जो अखिल ब्रह्माण्डका नायक है, राजराजेश्वर है, उसपर यह आक्षेप कि मैं तुम्हारी भीतर खूब जानता हूँ। सहजमें तुम्हारी बातमें नहीं आ सकता। फिर इतने पर भी चुप नहीं रहा। कहने लगा—

एहि घाटतें थोरिक दूर अहै
कटिलौं जल थाह दिखाइहौं जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी
घरनी घर क्यों समझाइहौं जू ।।
तुलसी अवलंब न और कछू
लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।।

महाराज ! गंगाजीमें जलकी गहराई कमरतक ही है । आइये, मैं निकटका मार्ग दिखला दूँ । आप उसी मार्गसे निकल जाइये, नावकी जरूरत ही क्या है ? मैं तो सरकार अधम दीन हूँ, नाव ही मेरा रोजगार है—

'यहि प्रतिपालौं सब परिवारू। नहिं जानौं कछु और कबारू ।।

यही मेरी जीसे प्यारी जीविका है ! न जाने आप-सरीखे कितने राजा-बाबू इससे उतर गये हैं। हमें किसीसे परिचय तो करना नहीं है,'खरी मजूरी चोखा काम' आपका अच्छा काम होगा, थोड़ा बहुत इनाम-अकराम दे देंगे। जन्मभर तो इसीसे काम है, महाराज !

तरनिउ मुनि-घरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई ।।

ऐसा काम मैं नहीं करना चाहता। चलिये जल्द, आपको वह मार्ग बतला दूँ, मुझे तो अपना काम करना है और आपको भी बिलम्ब होता होगा। पर सरकार, मैं आपको यों ही नावपर नहीं बैठा सकता।

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवटकी जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं ।
सब परिवार मेरो याही लागि राजाजू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ।।
गौतमकी घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभुसों निषाद ह्वैकै बाद न बढ़ाइहौं ।
तुलसीके ईस राम रावरेसों साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं ।।

आप जानते ही हैं, आपके चरणकी धूलि छूते ही मेरी नाव भी बन जायगी। फिर बाल-बच्चोंको दो रोटी कहाँसे मिलेगी ? हाँ, एक उपाय है—मुझे चरण धो लेने दीजिये।

पदपदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं,
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं ।।
बरु तीर मारहु लखनु पै जबलगि न पायँ पखारिहौं,
तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं ।।

और क्या कहूँ ? बड़े सरकारकी सौगन्ध करके कहता हूँ—नाथ, पैर धोये बिना तो पार नहीं उतारनेका। छोटे सरकार टेढ़े-टेढ़े ताक रहे हैं, भले ही ये बाण मारकर मेरे प्राण ले लें। मैं मारा जाऊँगा, पर बाल-बच्चोंके लिये नाव तो बच जायगी।

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद-पदुम पखारन कहहू ।।

वाह रे 'पद-पदुम'के सच्चे पुजारी ! क्यों न हो, आज तेरा प्यारा नाम प्रत्येक राम-भक्तके रोम-रोममें रम गया है। धन्य तेरा प्रेमाग्रह ! जिन चरणोंको श्रीविदेहजीने अपनी लाड़ली कुमारी सीताको अर्पित करके पखारा था,जिन चरणोंकी धूलि जन्मजन्मान्तर तपश्चर्या करके महर्षिगण कठिनतासे प्राप्त कर सकते हैं। आज तूने अपने सरल प्रेमसे उनको प्राप्त कर लिया।

आनन्दकन्द श्रीकौसलकिशोर श्रीराम अपने जनकी 'प्रेम-लपेटी अटपटी' वाणी सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोले-

बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू ।।

बस, अब क्या था। भक्तने मनमाना पदार्थ पाया। वह प्रेममें विह्वल हो चरणोंपर गिर पड़ा और लगा प्रेमाश्रुओंसे ही पावन चरणोंको पखारने। उसके आनन्दका पार नहीं रहा—'जनु रंक अनु पारस पावा।'

श्रीरामजीने कहा—'भाई, हमें देर हो रही है। यह क्या कर रहे हो। जल्दी पार उतार दो।' प्रभुके बार-बार कहनेपर केवट दौड़कर कठौता ले आया और बोला कि 'नाथ ! जल्दी न कीजिये। जल्दीका मार्ग तो मैंने आपको पहले ही बतला दिया था। जरा शान्ति रखिये। मैं आपको बुलाने तो गया ही नहीं था, अनेक घाट थे, जल्दी थी तो इधर न आते। अब तो जबतक मेरा काम न होगा, तब-तक आपका भी नहीं होनेका। मैं जब रजके एक-एक कणको चरणसे छुड़ा लूँगा, तब नाव मिलेगी।' प्रभु मुसकराये और वह—

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा ।।

केवट परमानन्दमें मग्न हो धीरे धीरे प्यारेके चरण धो रहा है। अनन्य प्रेमभाजन केवट, आज तेरे सौभाग्यको देवगण भी ललचा रहे हैं ! जिन चरणोंकी पादुका-मात्रसे ही श्रीभरतलालजीने नन्दीग्राममें पर्णकुटी बनाकर १४ वर्षकी अवधि पार की थी। जो चरण श्रीशंकर भगवान्‌के हृदय-मानसमें सदैव निवास करते हैं, आज

तूने उनको इतना वशमें कर लिया कि बार-बार कहनेपर भी नहीं बोलता।

देवगण आनन्दमग्न पुष्प वर्षा करते हुए मुक्तकण्ठसे पुकार उठे—

'महि सम पुण्यपुञ्ज कोउ नाहीं।'

केवटने खूब रगड़-रगड़कर चरण धोये और फिर—

पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

पार ले आकर केवटने पुनः प्रणाम किया। प्रभु सकुचाये। कुछ देना चाहिये, फिर क्या दें? जगन्माता श्रीजानकीजीने प्रभुके मनका सङ्कोच जानकर—'मनि-मुदरी मन मुदित उतारी।' सरकार केवटको उतराई देने लगे, पर केवट बड़ा चालाक था, उसने कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा॥

'फिरती बार मोहि जो देवा।' देखा, जाल बिछाकर कैसे फाँस लिया सरकारको। चौदह वर्ष बाद श्रीअवध लौटते समय फिर इसी घाटपर आना होगा!

बोलो भक्त और भक्तवत्सल भगवान्‌की जय।

रसने!

[भक्ति-गान]

भजन कर ले, अरी रसना! सरस हो, भजन कर ले। अरी रसना०।

रामकी सुनके कथा, उससे कुछ सबक पा ले,
तू भी भूतलमें गुणोंसे महा सुयश छा ले।
चख चुकी खूब तो विषयोंके विषैले भोजन,
है सुधा जिसमें भरी अब वही भोजन खा ले॥

भक्ति-भावोंसे प्रभुका हृदय हर ले।
अरी रसना! सरस हो, भजन कर ले। अरी०॥१॥

पूज्य कृतियोंका पूर्ण मान करनेके लिये; ज्ञान गुरु-गौरवका गान कर रसने!
'रसिकेन्द्र' पूर्वजोंकी आन, बान, शानपर; भक्तिभरी भावनाका दान कर रसने!
मुक्ति मिल जायगी, तू पायगी अमर-पद; सत्य, धर्म-धारणाका ध्यान कर रसने!
सरस सुधाकी धार बरस रही है, बस;—रामकी कथाका रस पान कर रसने!

व्याप रही संसारमें रामायणकी शक्ति,
पाता सिद्धि अभीष्ट वह, करता जो वर-भक्ति।

राम रटके तू सागर अगम तर ले।
अरी, रसना, सरस हो भजन कर ले। अरी० ॥२॥

जब-जब भूमि-भार भारी भरपूर होता, भूतलमें पापों भरे घड़े भर जाते हैं,
तब-तब हरि अवतार ले पसार प्रभा, दानवोंको मार भार भूमिका हटाते हैं।
त्रेतायुगका पवित्र रामका चरित्र, मित्र, अबतक सुन-सुन भक्त सुख पाते हैं,
राजनीति-मर्म, न्याय, धर्म, पुण्य-कर्म भरे, वीर, रणधीर राम-राज्यमें दिखाते हैं॥

रामचन्द्र बल-धामके बल-विक्रमका गान,
बरस वीर-रस, डाल दे—बेजानोंमें जान।

भव्य भारत भी पहिली प्रभा भर ले।
अरी रसना, सरस हो, भजन कर ले। अरी० ॥३॥ —रसिकेन्द्र

रामचरितमानस

(लेखक—महात्मा गांधीजी)

भिन्न भिन्न मित्र पूछते हैं—

'रामायणको आप सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता, क्यों ? देखिये, तुलसीदासजी-ने स्त्री-जातिकी कितनी निन्दा की है। बालि-वधका कैसा समर्थन किया है। विभीषणके देश-द्रोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजीपर घोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। ऐसे ग्रन्थमें आप कौन सौन्दर्य देख पाते हैं ? तुलसीदासके काव्य-चातुर्यके लिये तो, शायद, आप रामायणको सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते होंगे ? यदि ऐसा ही है तो, कहना पड़ेगा कि आपको काव्य-परीक्षाका कोई अधिकार ही नहीं।'

उपर्युक्त सब सवाल एक ही मित्रके नहीं हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न मित्रोंने भिन्न-भिन्न समयपर जो कुछ कहा है और लिखा है, उसका सार है। यदि ऐसी एक-एक टीकाको लेकर देखें तो सारी-की-सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्तोष यही है कि इस तरह प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको उत्तर देनेके लिये अपने चित्रको प्रदर्शिनीमें रक्खा और नीचे इस तरह लिखा—'इस चित्रमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके अंग-प्रत्यंग दोष-पूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो वेद, बाइबल और कुरानमें भी बहुतेरे दोष बताये हैं, परन्तु उन ग्रन्थोंके भक्त उनमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। प्रत्येक ग्रन्थकी परीक्षा पूरे ग्रन्थके रहस्यको देखकर ही की जानी चाहिये। यह बाह्य परीक्षा है। अधिकांश पाठकोंपर ग्रन्थविशेषका क्या असर हुआ है यह देखकर ही ग्रन्थकी आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यों न देखा जाय रामायणकी श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रन्थको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि उसमें एक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरित-मानसके लिये यह दावा अवश्य है कि उससे लाखों मनुष्योंको शान्ति मिली है। जो लोग ईश्वर-विमुख थे वे ईश्वरके सम्मुख गये हैं और आज भी जा रहे हैं। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस अनुभवजन्य ज्ञानका भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिये रामचरितमानसका सहारा लेते हैं, इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमेंसे अकेले पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि तुलसीदासजीने स्त्रियोंपर अनिच्छासे अन्याय किया है। इसमें और ऐसी ही अन्य बातोंमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओंसे परे नहीं जा सके थे अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नहीं, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। इसमें हम तुलसीदासजीके दोषोंका नहीं परन्तु उनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

ऐसी दशामें सुधारक क्या करें ? क्या हमको तुलसीदासजी-से कुछ सहायता नहीं मिल सकती ? अवश्य मिल सकती है। रामचरितमानसमें स्त्री-जातिकी काफी निन्दा मिलती है, परन्तु उसी ग्रन्थद्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमें परिचय मिलता है। बिना सीताके राम कैसे ? रामका यश सीताजीपर निर्भर है। सीताजी-का रामजीपर नहीं। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मन्दोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस पवित्र भण्डारमेंसे मिल सकते हैं। मेरे विचारमें इन सब दृष्टान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक स्त्री-जातिके निन्दक नहीं थे। ज्ञानपूर्वक तो वह स्त्री-जातिके पुजारी ही थे। यह तो स्त्रियोंकी बात हुई। परन्तु बालि-वधादिके बारेमें भी दो मतोंकी गुंजाइश है। विभीषणमें तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषणने अपने भाईके साथ सत्याग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोंके प्रति सहानुभूति रखना या उन्हें छिपाना देशभक्तिके नामको लजाना है, इसके विपरीत देशके दोषोंका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचन्द्रके बर्तावमें निर्दयता नहीं थी, उसमें राजधर्म और पति-प्रेमका द्वन्द्वयुद्ध था।

जिसके दिलमें इस सम्बन्धकी शंकाएँ शुद्ध भावसे उठें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको मन्त्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृदय शंकित हो, उसे छोड़ दें। सत्य, अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने छल किया था, इसलिये हम भी छल करें, यह सोचना औंधा पाठ पढ़ना है। यह विश्वास रखकर कि रामजी कभी छल कर ही नहीं सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थका ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता' न्यायानुसार सब ग्रन्थ दोषपूर्ण हैं, यह समझकर हंसवत् दोषरूपी नीरको निकाल फेंकें और गुण-रूपी क्षीर ही ग्रहण करें। इस तरह अपूर्णमें सम्पूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगोंकी परिस्थितिपर निर्भर रहेगा। स्वतन्त्र सम्पूर्णता केवल ईश्वरमें ही है और वह अकथनीय है। (नवजीवनसे)

केवटका सर्वांगपूर्ण प्रेम

(लेखक—पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)

परम पुनीत श्रीरामायणजीमें भक्तराज केवटका प्रेम-प्रसंग एक अलौकिक घटना है। यह प्रसंग ज्ञान एवं भक्ति-रस-सुधासे पूर्ण है। भक्तिसे आकर्षित होकर ही मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रने यह चरित्र प्रदर्शित किया, अन्यथा श्रीभगवान्‌को तो नौकापर चढ़नेकी आवश्यकता भी नहीं थी, परम भगवद्भक्त श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कवितावलीमें तो केवटके मुखसे ही यह बात स्पष्ट करा दी है कि यदि आपको पार जाना अभीष्ट है और चरण धुलाना अभीष्ट नहीं है तो 'यहि घाट ते थोरिक दूर अहै कटिलौं जल थाह देखाइहौं जू' अर्थात् 'नौकाके पीछे आप क्यों पड़ रहे हैं, इस घाटके समीप ही भगवती भागीरथी केवल कटिपर्यन्त ही हैं, यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है, मैं स्वयं आपके आगे आगे चलकर बता दूँगा' इत्यादि। किन्तु श्रीभगवान्‌को तो भक्तको विमल भक्तिके रससे तृप्त करना था, अतएव यह प्रसंग उसके अनोखे भावोंको प्रदर्शित कराकर प्रकट किया है।

कुछ सज्जनोंकी यह धारणा है कि निषादराज और श्रीचरणामृत पान करनेवाला केवट दोनों एक ही व्यक्ति हैं। यह धारणा असंगत-सी प्रतीत होती है। केवट-प्रसंग तो श्रीभगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे सुमन्तके विदा होनेके पश्चात्—

बरबस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आपु चलि आये ॥
माँगी नाव न केवट आना। .... ॥

इत्यादि स्थानसे आरम्भ होता है और—

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ ॥

—पर समाप्त होता है। 'विदा' शब्द भी इस बातका ज्वलन्त उदाहरण है। और निषादराजका प्रसंग—

'यहि सुधि गुह निषाद जब पाई'—से प्रारम्भ होकर

तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावन दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि गवन भवन तिन्ह कीन्ह ॥

—पर समाप्त होता है। पुनः दूसरे स्थानपर भी—

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। .... ॥

इत्यादिसे भी यही प्रमाणित होता है कि केवट और गुह दो व्यक्ति हैं। कारण कि पाँच व्यक्ति नौकासे उतरते हैं—सीता, राम, गुह, लक्ष्मण और केवट। केवट तो गुह (निषादराज) की प्रजामात्र है। *

* अध्यात्मरामायणमें यह प्रसंग बालकाण्डमें अहल्योद्धारके बाद ही जनकपुरके रास्तेमें गंगापार होनेके समय आता है। अहल्याका पाषाणसे ऋषिपत्नी हो जानेके कारण आसपास बड़ा हो-हल्ला मच गया था, गाँवोंके रहनेवाले सरल लोगोंने यही समझ लिया था कि रामके चरण-रजसे पत्थर ही स्त्री बन जाता है, अतएव वहाँ केवट कहता है—

क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ ! दारुदृषदोः किमन्तरम् । मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि । नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो ! विद्धि कुटुम्बहानिः ॥

श्रीराम और केवट

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

उस भक्तिका पर्यायवाची शब्द 'प्रेम' है, अतएव इस प्रसंगमें भक्तिके स्थानमें प्रेमका ही विवेचन किया जाना उचित होगा। प्रेममें अतुल, अकथ, अलौकिक शक्ति है इसी कारणसे यह प्रसंग अलौकिक है! सच्चिदानन्दघन प्रभु प्रेमके वशीभूत होकर ही नाना अवतारोंद्वारा अमित विचित्र लीलाएँ करते हैं। कभी पुत्र और कभी जामाता बनकर सेवा-शुश्रूषा करना, कभी अपने प्रेमियोंके वश होकर नृत्य करना, कभी विनय-निहोरा कर हा हा खाना, कभी भीलनीके जूँठे फल खाना, कभी खगका श्राद्ध करना, कभी मानवतीके मनानेको परम सुन्दर वपु धारण करना, कभी ऊखलमें बँध जाना, कभी रुदन ठानना, कभी रथका पहिया लेकर दौड़ना और कभी अपनेको परम कृतकृत्य मानना इत्यादि सभी लीलाएँ भगवान् अपने प्रेमी जनोंके प्रेमवश होकर ही करते हैं। वेद-शास्त्र-पुराण सभी सगुण ब्रह्मके प्रेमकी गाथा गाते हैं। ठीक ही कहा है—

जाकी मायावस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो।।

भगवान् नारदजीने भी प्रेमके विषयमें यही कहा है कि-'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' (ना० भ० सू० ५१)

देखा जाय तो समग्र नारदभक्तिसूत्र 'प्रेम' शब्दपर ही एक पूरा निबन्ध है। ऐसे अनिर्वचनीय शब्दपर तो ग्रन्थके ग्रन्थ भी अपर्याप्त हैं, उस प्रेमकी महिमा कहकर कौन पार पा सकता है? प्रेमका स्वरूप, प्रेमकी शक्ति, प्रेमकी प्रधानता, प्रेमका साधन, प्रेमकी दशा इत्यादि प्रत्येक विषय ही गहन और लिखने योग्य है † किन्तु इन सबपर यहाँ थोड़ा थोड़ा लिखना भी कठिन है तथापि केवटके प्रेमको उपर्युक्त विषयोंमेंसे एक-आधपर घटाना असंगत नहीं होगा।

'केवटका प्रेम' ज्ञानमय है, केवट और ज्ञानके सादृश्यका विचार करनेसे इसप्रकार तुलना होती है कि ज्ञानका काम, भवसागरसे पार तथा ब्रह्म-जीवकी एकरूपता होना है। केवटका यह कथन कहा जाता है—

तुम केवट भवसागर केरे। नदी नावके हम बहुतेरे।।
तुम्हरी हमरी कस उतराई। नापित नापितकी बनवाई।।

इन शब्दोंमें तरण-तारण और सादृश्यताका भाव भरा है, केवट शब्द ही ज्ञानका बोधक है-केवटके प्रेममें अशंकता, निर्भयता, उदासीनता, ढीठता, निठुरता आदि गुण अनुपम सादृश्यताके द्योतक हैं। सुतरां केवटका प्रेम ज्ञानमय है जो भक्तिका प्रधान काण्ड है।

केवटका-सा सुहावना मंगलमय सुअवसर भी संसारके इतिहासमें इने गिने व्यक्तियोंको ही नसीब हुआ है। एक दिन महाराज बलिको मिला था, जब सोनेकी झारीमें जल भरके उन्होंने श्रीभगवान्‌के पद-पङ्कज पखारे थे। फिर भगवान् कमलयोनि विधाताने इन्हीं चरणोंका प्रक्षालन करके लोक-हितार्थ उस पावन चरणामृतको निज कमण्डलुमें भर लिया था, तदनन्तर योगिराज विदेहको भी वह दिन दिखायी दिया था, जब उन्होंने—

बहुरि राम पद पंकज धोये। जे हर-हृदय-कमलमहँ गोये।।

इन सब भाग्यनिधि महापुरुषोंने प्रभु-पद-सरसीरुह धोये अवश्य थे परन्तु इस केवटकी तो धोवनि कुछ और ही है। अबतक चरण धोनेवाले ही चरण धुलानेवालेसे चरण धोनेका निहोरा करते आये हैं। किन्तु यहाँ तो चरण धुलाने-वाले-ही धोनेवालेका विनय-निहोरा कर रहे हैं। सत्य है प्रेम या भक्ति क्रियासाध्य नहीं है, श्रीराम-कृपासाध्य है।

प्रेमकी दशाएँ भक्तमालमें भावानुकूल, अमित कहकर प्रधानतः बारह बतलायी हैं। भक्तशिरोमणि महात्मा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने केवट-प्रसंगमें प्रेमकी बारहों दशाएँ वर्णन की हैं। सबसे पहली प्रेमकी 'उत्स' दशा कही गयी है—

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि किय जग तिहुँ पगते थोरा।।

यहाँ केवटके प्रेमकी 'उत्स' दशाका वर्णन है। 'उत्स' दशामें साधक जब 'गुण-ग्राम-श्रवण-'रूप बीज बोता है तब वह साक्षात् नयनगोचर होकर साधकको कृतकृत्य करता है। अपने पूर्व संस्कारके बलपर केवटने स्वयं भगवान्‌को वहाँ पा लिया और देखते ही उसने पहचान लिया, जिससे चरण धोनेके मिससे उसने श्रीभगवान्‌से प्रेम-विनोद प्रारम्भ किया। प्रेमकी दूसरी 'वत्' दशा है—'वत्' शब्द-

---

वाल्मीकीयरामायणमें 'चरण-पखारन' प्रसंग नहीं है, परन्तु निषादराज गुहकी आज्ञासे नाविक (केवट) लोग नौका लाते हैं और वही श्रीरामको पार उतारते हैं। निषादराज वहीं रह जाता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि गुह और केवट दो व्यक्ति थे।

† प्रेमके सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो गीताप्रेससे 'प्रेमयोग' नामक ग्रन्थ मँगाकर अवश्य पढ़िये—सम्पादक

का अर्थ है जो अर्थात् जो वस्तु वाञ्छित है उसीकी चर्चा करना, उसीकी प्राप्तिका उद्योग करना 'यत्' दशा है।

जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तो पद-पद्म पखारन कहहू॥

इसमें 'यत्' वाचक 'जो' शब्द है, उसका निर्वाह यहाँ कैसा सुन्दर किया गया है अर्थात् जो शब्दमें प्रेमकी 'यत्' दशा समायी हुई है। तीसरी 'ललित' दशा–मनको प्रसन्न करनेवाली दशा है, जिससे गुरु-जनादिसे लज्जा भय आदि दूर होकर प्रीतममें परायणता होती है। पीछे सुधि होनेपर लज्जा और भय प्राप्त होता है।

जासु नाम सुमिरत इकबारा। उतरहि नर भव-सिन्धु अपारा॥

तथा—

पद-पद्म धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं,
मोहि राम राउर आनि दसरथ सपथ सब साँची कहौं।
बरु तीर मारहिं लखन पै जबलगि न पाँव पखारिहौं,
तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

इन शब्दोंमें प्रेमकी कितनी मनोहर दशा वर्णित की गयी है, यहाँ केवट अपने व्यवसायकी बराबरीका दावा रखता हुआ बराबरका व्यवहार निभाना चाहता है। श्रीलक्ष्मणजी-का भय भी मानता है, और अपनेको दृढ़ एवं सत्यप्रतिज्ञ भी सिद्ध करता है। चौथी दशा 'वलित' है—यह दशा विकलतासूचक है। यथा—

'अमित काल मैं कीन्ह मजूरी।'

तथा—

'मिटे दोष दुख दारिद पावा।'

यहाँ केवट अपनी विकलित दशाको प्रभुके सम्मुख वर्णन करता है। पाँचवीं 'निलिन' दशा है, अर्थात् प्रीतमके संयोगका परमसुख 'मिलित' दशा है।

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा॥

चरण-कमलोंके पखारनेके अनुरागमें केवटको गोस्वामीजीने कितना आनन्दित चित्रण किया है। यह उदाहरण छठी 'गलित' दशामें भी घटित होता है जिसमें कि भक्त अपनेको भूल-सा जाता है। सातवीं 'कलित' दशा है जिसको प्राप्तकर भक्त प्रेममें मग्न हो अपनपा बिसारकर तन्मय हो जाता है।

कहेउ कृपालु लेउ उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई॥

कहाँ तो बराबरीका दावा था कि हम दोनों नाविक हैं, व्यवहार शुद्ध रहना चाहिये, कहाँ उतराई लेनेकी पूछते ही अकुलाकर चरण गह लेता है। यह प्रेमकी 'कलित' दशाका ही चित्र है। आठवीं 'छिलित' दशा है जिसमें स्नेहकी रगड़से कभी-कभी भक्तका हृदय छिल जाता है। यथा—

'कहेउ तुमार मर्म मैं जाना।'

तथा—

'सुनि केवटके बैन प्रेम लपेटे अटपटे।'

तथा—

फिरती बार जो कछु मोहि देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा॥

आदि वाक्य केवटके प्रेमकी छिलित-दशा सूचित करते हैं। सब कुछ पा लिया किन्तु तृप्त नहीं हुआ। पुनः लौटती बार आकर जब देंगे तब सिरपर धरकर ग्रहण किया जायगा। इतनेमें तो स्नेहकी वृद्धि हुई है, प्रेमका नित्य नाता जोड़ लिया गया है। भगवान्‌का पूछना केवटके स्नेहार्द्र हृदयको छीलना है जिसका कि आर्द्र प्रेमी उत्तर दे देता है। नवीं 'चलित' दशा है, यहाँ चलना पारलौकिक यात्रासे सम्बन्ध रखता है।

पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारकर प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लै पार॥

अर्थात् प्रेमका नाता जोड़कर उसने पुरुषों सहित अपनी परलोकयात्रा निष्कण्टक कर ली है। दसवीं 'क्रान्त' दशा है जिसमें तृप्त होकर प्रेमी प्रियतममें अपना मनोरथ पूर्ण समझता है और अपने भाग्यकी सराहना करता है।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥

भाव स्पष्ट है। ग्यारहवीं 'विह्वन' दशा है जिसमें मनहरण-को प्राप्त करके भी मान न त्यागनेपर उसके वियोगमें मन विशेष हरण हो जानेसे पछतावा होता है। यथा—

पद नख निरखि देव सरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहमति करषी॥

भगवान्‌को केवटके प्रेममें मग्न देखकर श्रीगंगाजीको भी पछतावा हुआ। बारहवीं 'संतप्त' दशा है जिसमें पूर्ण तृप्त होकर प्रेमी प्रेमरसमें सम्यक् तृप्त होकर मग्न बना रहता है। यथा—'नाथ आज हम काह न पावा॥' इत्यादि—

केवटके अमित भाग्य और कृपालुकी अतुल कृपालुता दोनोंकी महिमा ही अकथनीय है। धन्य केवट! जिनकी अपार मायाका पार विधि-हरि-हरने भी न पाया, उन्हें पार करना तुम्हारे ही जिम्मे आया।

मानस और व्याकरण

(लेखक-पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी)

कुछ लोगोंको प्रायः यह कहते सुना है कि कविताकाश-कलाधर कविवर गोस्वामी तुलसीदासजीके 'रामचरित-मानस'में व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगोंकी प्रचुरता है। उसमें लिङ्ग-वचनके व्यभिचारके अतिरिक्त 'ने' विभक्तिका बहिष्कार पद-पदपर दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामीजीने भूलकर भी कहीं 'ने' विभक्तिका प्रयोग नहीं किया है।' पर यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। जिन्हें हिन्दी व्याकरणका तनिक भी ज्ञान है, या जो उसकी बारीकियाँ समझते हैं वे ऐसा कभी नहीं कह सकते। हाँ, केवल पाणिनिका पाठ करनेवाले जो चाहें सो कह सकते हैं। मुझे तो 'रामचरित-मानस' में व्याकरणानुकूल प्रयोग ही अधिकतासे मिले हैं। उनमें न तो लिङ्ग-वचनका व्यभिचार ही हुआ है और न 'ने' विभक्तिका बहिष्कार ही। कहीं-कहीं एकाध स्थानमें शिथिल प्रयोग अवश्य है, पर उसे गोस्वामीजीके मत्थे मढ़ना कदापि उचित नहीं, क्योंकि रामचरितमानसकी बड़ी छीछालेदर हुई है। लेखकों और प्रकाशकोंकी कृपासे ही गोस्वामीजी-पर ऐसा आक्षेप होता है। जिन लोगोंको गोस्वामीजी पर व्याकरण न जाननेका सन्देह है उनका सन्देह दूर करनेके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करता हूँ।

सबसे पहले मैं यही दिखानेका प्रयत्न करूँगा कि गोस्वामीजीने 'ने' विभक्तिका प्रयोग किया है और अच्छा किया है। जिनका यह अनुमान है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी भाषामें 'ने' का व्यवहार नहीं था, वह नीचे लिखी चौपाइयाँ ज़रा ध्यानसे पढ़ें और विचारें। बस, यही मेरी प्रार्थना है। अच्छा देखिये—

'चतुराई तुम्हारि मैं जानी'

इसमें 'ने' का प्रयोग है या नहीं? यदि कोई कहे 'नहीं' तो मैं उसे दयाका पात्र समझूँगा, क्योंकि इसमें 'ने' का प्रयोग है, पर उह्य है। कवियोंको ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार है। यदि गोस्वामीजी लिखते—

चतुराई तुम्हारि मैं जाना।

—तो अवश्य ही 'ने' का अभाव रहता, पर यहाँ यह बात नहीं है। यहाँ 'ने' साफ मालूम होता है। इसका अन्वय होगा—

मैं (ने) तुम्हारि चतुराई जानी।

इसी तरह—

'कही जनक जस अनुचित बानी'

—को समझना चाहिये। कोई कहे कि ऐसा घुणाक्षर-न्यायसे हो गया है तो और भी उदाहरण लीजिये। यथाः—

सत्संगत महिमा नहिं गोई।
निज निज मुखन कही निज होनी।
भले पोच सब बिधि उपजाये।
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
कपट छुरी उर पाहन टेई।
कारन कवन कुटिलपन ठाना।
सहे धरम-हित कोटि कलेसा।
मरन काल बिधि मति हर लीन्ही।
परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
लछिमनहू यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
सो गोसाँइ बिधि गति जो छेकी। सकै को टारि टेक जो टेकी॥

इत्यादि इसके प्रचुर प्रमाण हैं। विस्तार-भयसे केवल अयोध्या और बालकाण्डसे ही कुछ चुने हुए उदाहरण दिये हैं। शेष पाँच काण्ड अभी छुए भी नहीं हैं। जिन्हें विश्वास न हो वह एक बार मानसरामायण ध्यानसे पढ़ जायँ तो आप ही विश्वास हो जायगा।

अब लिङ्ग-वचनका प्रयोग देखिये। वह भी बावन तोले पाव रत्ती ठीक ही मिलेगा।

'मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी।

ऊँची अच्छी रुचि, क्या अच्छा प्रयोग है। और सुनिये—

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
लखब देबि बड़ि चूक हमारी।
चोर नारि जिमि प्रगट न रोई।
चढ़ी चंग जनु खैंच खिलारू।

सीय मातु कह बिधि-बुधि बाँकी ।

बरसा बिगत सरद रितु आई ।

भूमि परत भा ढाबर पानी । जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥

इनमें बास पूछी, बीभ करि बूझी, चूक हमारी, चोर नारि रोई, चढ़ी चंग, बिधि-बुधि बाँकी, सरद रितु आई, भा ढाबर पानी और माया लपटानी, ये प्रयोग लिङ्गकी शुद्धि डंकेकी चोट बता रहे हैं। अब वचनकी शुद्धि देखिये—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन पठये बन बालक ऐसे ॥

माता-पिताके लिये कैसे और बालक (राम + लक्ष्मण) के लिये ऐसे, कैसे व्याकरणसम्मत प्रयोग हैं। अच्छा और भी सुनिये—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये ।

और

जाने सरद रितु खंजन आये ॥

'सब सुकृत सुहाये' और 'खंजन आये' देखकर भी क्या कोई गोस्वामीजीपर व्याकरण न जाननेका दोष लगा सकता है ?

कुछ लोगोंका कहना है कि *गोस्वामीजीने* 'का, की, के' का व्यवहार न कर केवल 'कर' से ही काम चलाया है। पर यह बात भी भ्रमसे खाली नहीं है। रामायणमें दोनों प्रकारके प्रयोग मिलते हैं, *यथा—*

मोह-मगन मति नहिं बिदेहकी। महिमा सिय रघुबर सनेहकी॥

सुर नर मुनि सबकी यह रीती ।

भूतल परे लकुटकी नाईं ।

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। हाँ, एक चिन्तनीय प्रयोग भी मिला है, पर मैं उसे *गोस्वामीजीके मत्थे नहीं मँढ़ना चाहता, क्योंकि यह निश्चय ही लेखकोंकी भूल है। यथा-*

खर-दूषनपहँ गइ बिलखाता । धिक धिक तव पौरुष बल भ्राता॥

यहाँ 'गई बिलखाता' न होकर बिलखाती होना चाहिये था। इसी तरह एक स्थानपर और सन्देह हुआ था, पर अब दूर हो गया। क्या कोई सज्जन 'बिलखाता' का भी सन्देह दूर कर देंगे ?

मित्रवर पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी 'स्वतन्त्र' सम्पादक से प्रार्थना है कि वह अपने सूत्रोंके द्वारा इसका निर्णय कृपाकर कर दें। हाँ वह सन्देहवाली चौपाई यह है—

मर्म बचन सीता जब बोला। हरिप्रेरित लछिमन मन डोला ॥

पर एक दूसरी रामायणमें नीचे लिखा पाठ मिलनेसे सन्देह दूर हो गया ।

मर्म बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ॥

लेखकोंसे 'मति' का मन हो जाना असम्भव नहीं। मतिका मन होनेसे 'डोली' का 'डोला' और 'बोली' का 'बोला' हो जाना भी स्वाभाविक ही है ।

आशा है, गोस्वामीजीके व्याकरण-ज्ञानपर सन्देह करनेवाले सज्जन इतनेहीसे सन्तुष्ट हो जायँगे और फिर सन्देह न करेंगे ।

रामायण-सम्बन्धी यत् किञ्चित्

(लेखक—पं० श्रीझाबरमलजी शर्मा)

(१) प्राक्कथन

हिन्दू-जातिके परमाराध्य मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका पुण्य-चरित चित्रित कर रामायणके रूपमें महर्षि वाल्मीकि जगत्के लिये शिक्षाका अक्षय्य एवं विपुल भण्डार छोड़ गये हैं। रामायण केवल राम-रावण-युद्धकी मारकाट-का शुष्क इतिहास नहीं है, प्रत्युत वह सर्वोच्च मानव-समाजका कर्तव्य-शास्त्र है। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि रामायण भारतवर्षकी धर्मप्राण आर्य-जातिका सर्वस्व है। रामायणका विशेष माहात्म्य लिखकर समझानेकी आवश्यकता नहीं। कोटि-कोटि श्रद्धालु हिन्दुओंके हृदय-पटलपर अतिप्राचीन कालसे वाल्मीकि-रामायणकी महिमा अङ्कित है। यहाँ रामायणका पठन-पाठन और श्रवण पुण्यप्रद एवं अभीष्ट-फलदायक समझा जाता है। रामायणके प्रति हिन्दुओंकी जो यह अटूट श्रद्धा है, वह धर्म-बुद्धिसे है, कोरे इतिहास या काव्यकी दृष्टिसे ही नहीं। रामायणकी महिमाका द्योतन करनेके लिये निम्नाङ्कित कुछ वचन ही पर्याप्त हैं—

वाल्मीकिगिरिसम्भूता राम-सागरगामिनी ।
पुनातु भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥

× × ×

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

× × ×

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसंमतम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवर्हणम् ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम् ।

× × ×

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

× × ×

जो महापुरुष रामायणकी रचनाकर धन्य हो गये हैं, निस्सन्देह वह मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि हमारे प्रणम्य एवं श्रद्धासमन्वित भक्तिके पात्र हैं ।

(२) महर्षि वाल्मीकि

वाल्मीकि अति प्राचीन महर्षि हैं । प्रचेता-तनय होनेसे उनका नामान्तर प्राचेत भी है । वह तपोनिष्ठ त्रिकालज्ञ ऋषि-श्रेष्ठ महापुरुष थे । भरद्वाज-जैसे प्रख्यात ऋषि उनके शिष्य-समुदाय-भुक्त थे । लब्ध-राज्य भगवान् रामचन्द्रका समस्त चरित प्रशस्त अर्थ-समन्वित विचित्र पदोंमें उन्होंने वर्णन किया है । आरम्भमें उन्होंने पञ्चशतसर्गात्मक छः काण्डोंकी रचना की । सप्तम उत्तर काण्ड महर्षिने पीछे बनाया ।

जिस समय लोकापवाद-भयसे भगवान् श्रीरामने सगर्भा सीताका त्याग किया उस समय रामाज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सतीशिरोमणि सीताको गङ्गाके पर-पारवर्ती तमसा-नदी-तीरस्थ पुण्यकर्मा महर्षि वाल्मीकिके स्वर्ग-तुल्य आश्रम-में ही छोड़ा था । वह वहीं महर्षिकी रक्षामें रहीं । उसी आश्रममें जन्मग्रहणपूर्वक लालित-पालित होकर सुस्वर-सम्पन्न परम मेधावी कुश और लवने महर्षि वाल्मीकि-द्वारा रामायण-गानकी शिक्षा लाभ की थी । वाल्मीकिके आश्रममें ही शत्रुघ्नको रामचरित श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ।

आधुनिक अन्वेषणकारियोंका मत है कि Tons नामक एक नदी जो बुन्देलखण्डसे होकर प्रयागसे थोड़ी दूरपर गङ्गामें मिलती है, वही तमसा नदी है और इसी सङ्गम-स्थानके पास वाल्मीकिजीका तपोवन था ।

महर्षि वाल्मीकिके सम्बन्धमें यह प्रवाद भी प्रचलित है कि उनका पूर्व नाम रत्नाकर और दस्यु-वृत्ति थी । राम-का उलटा भूलसे 'मरा' 'मरा' जपनेके प्रभावसे उन्होंने महर्षि-पद पाया । किन्तु यह बहुत पीछेकी कल्पना मालूम होती है । इसका कोई प्राचीन प्रामाणिक आधार भी नहीं है ।

(३) रामायणकी शिक्षा

रामायणके साथ संसारके किसी ग्रन्थकी तुलना नहीं हो सकती । इसका कारण यह है कि महर्षि वाल्मीकिने अपने हृदयके सत्यको रामायणके प्रत्येक श्लोकके साथ विजड़ित कर दिया है । इस विशेषतासे रामायणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है । वाल्मीकि-रामायणपर मनोनिवेशपूर्वक विचार कीजिये । वह विविध रस समन्वित काव्य है, सत्य-घटनावलम्बित इतिहास है और है कर्तव्यविधायक सोदाहरण स्मृति । रामायणके द्वारा ही हमारे समक्ष मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका आदर्श उपस्थित होता है, राक्षसराज रावणकी दुर्दान्त प्रवृत्ति और कार्यप्रणालीका परिचय मिलता है । राम और रावणकी कार्य-पद्धतियोंका परस्पर मिलान कर हम भिन्न-भिन्न परिणामोंकी शिक्षा रामायणसे पा सकते हैं । पिताके प्रति पुत्रका क्या कर्तव्य है, भाई भाईका परस्पर क्या सम्बन्ध है, क्या व्यवहार है, प्रतिज्ञाका पालन कैसे करना चाहिये, प्रजाके प्रति राजाका क्या धर्म है, एक-पत्नीव्रतकी क्या महिमा है, लोकापवादसे किसप्रकार डरना चाहिये, धर्म-विरोधियोंका शमन किस तत्परतासे किया जाय इत्यादि बातें हमें भगवान् रामके आदर्शसे मालूम होती हैं । इसके अतिरिक्त रामायण-वर्णित दशरथ और कौसल्या प्रभृतिका अपत्य-स्नेह, कलहप्रिय मन्थराकी परोत्कर्ष-असहिष्णुता, सीताका पातिव्रत, लक्ष्मणकी निःस्वार्थ सेवा, भरतका भ्रातृ-भक्ति-प्रधान स्वार्थ-त्याग, सुग्रीवकी मैत्री, हनूमान्की एकान्त प्रभुभक्ति और विभीषणकी शरणागतिके उदाहरण मानव-समाजके लिये शिक्षाके उत्कृष्ट साधन हैं । रामायणसे जिन आदर्शोंकी शिक्षा मिलती है उन आदर्शोंमें-से यदि कोई एक भी आदर्शका पालन कर सके तो उसके जीवनके धन्य होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं । वह अपने लिये, अपनी जातिके लिये—सभीके लिये उपयोगी हो सकता है । वह स्वयं आदर्श बनकर अपने समाजको आदर्श बना सकता है । जननी और जन्मभूमिको स्वर्गसे भी अधिक गरीयसी बताने वाला—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—यह महामन्त्र महर्षि वाल्मीकिके हृदयकी ही मधुर ध्वनि है ।

(४) रामायणमें वर्णाश्रम-धर्म

भगवान् श्रीरामचन्द्रके समयमें वर्णाश्रम-धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारोंवर्ण अपने-अपने धर्मके दृढ़ अनुयायी थे। यथा—

> क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।
> शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥
> (वा०रा०१।६।१९)

अपने धर्मसे विपरीत शूद्र शम्बूक तपस्या करने लगा था, उसका श्रीरामचन्द्रजीको वध करना पड़ा। यही नहीं, ब्राह्मण लोग शूद्रको मन्त्र दान करनेपर पतित हो जाते थे। सुन्दरकाण्डके ८ वें सर्गके ५ वें श्लोकमें इसका उल्लेख है। ब्राह्मणोंके लिये यान और आसनादिकी स्वतन्त्र व्यवस्था थी।

(५) रामायणकी विवाह-विधि

रामायणमें स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी कन्याको पति स्वयं वरण करनेका अधिकार नहीं था। वे स्वेच्छा-चारिणी नहीं थीं। वीर्यशुल्का सीताजीके स्वयंवरका आयोजन भी सीताजीने स्वयं नहीं, किन्तु राजा जनकने अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये किया था। जब श्रीरामचन्द्रका प्रबल पौरुष उन्होंने देख लिया—उनको और उनके भाइयोंको उपयुक्त पात्र समझ लिया—तब राजा दशरथको दूतद्वारा सन्देश भेजकर बुलाया। राजा दशरथ भरत-शत्रुघ्नको लेकर वसिष्ठादि सहित जनकपुर आये। वहाँ वर-पक्षकी ओरसे इक्ष्वाकु-कुल-पुरोहित भगवान् वसिष्ठने वंशावली सुनायी और वधू-पक्षका वंश कीर्तन स्वयं राजा जनकने किया। इसके पश्चात् जनक दशरथको गोदान एवं पितृकार्य (नान्दीमुख श्राद्ध) करनेके लिये कहते हैं। यह कृत्य विवाहसे पहले दिन सम्पन्न हुए। दूसरे दिन समस्त कर्तव्यकर्म समाधानपूर्वक राजा दशरथ ऋषियोंको अग्रणी बनाकर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नसहित राजा जनकके द्वारस्थ हुए। उसी समय वसिष्ठजीने आगे बढ़कर जनकको विवाहकी तैयारी करनेके साथ-साथ दशरथादिको यज्ञागारमें आनेकी अनुमति देनेके लिये कहा। जनक पहलेसे ही कन्याओं सहित तैयार बैठे थे। ऋषियों और पुत्रों सहित राजा दशरथके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचनेपर राजा जनकने वसिष्ठजीसे कहा—'आप ऋषियों सहित लोकाभिराम रामका विवाह-कार्य कराइये। इसके पश्चात् विश्वामित्र और शतानन्द ने मण्डपमें विधिपूर्वक वेदी-रचना की और—

> अलञ्चकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः ।
> सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च सांकुरैः ॥
> अंकुराढ्यैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूपकैः ।
> शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥
> लाजचूर्णैश्च पात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः ।
> दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥
> अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
> जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥
> ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ।
> समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ॥
> (वा०रा०१।७३।२१-२५)

इसके बाद राजा जनक कौशल्यानन्दवर्द्धन श्रीरामसे कहते हैं—

> इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।
> प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ॥
> पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।

यह कहकर राजाने मन्त्रपूत जल छोड़ दिया। इसी तरह लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके हाथमें क्रमानुसार उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्तिके उद्देश्यसे जलनिक्षेपपूर्वक राजा जनकने सबको आशीर्वाद दिया—

> सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ।
> पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः ।

तदनन्तर कन्यागृहीताओंने तीनवार अग्निकी प्रदक्षिणा करके राजा तथा ऋषियोंकी परिक्रमा की और यों विवाह-विधि समाप्त हुई। यह भी रामायणसे सिद्ध है कि राजा जनकने बड़ा दहेज दिया था। इस विवाह-विधानको कन्याओंका स्वेच्छासम्मत स्वयंवर नहीं कहा जा सकता। रामायणमें यह भी देखा जाता है कि विवाहके सम्बन्धमें कन्या स्वतन्त्र—स्वेच्छाचारिणी नहीं, प्रत्युत अपने पिताके सर्वथा अधीन थीं। इसका उदाहरण—जहाँ वायु, कुशनाभकी कन्याओंसे भार्या बन जानेकी प्रार्थना करता है वहाँ वे

कन्याएँ उसको बड़ी कड़ी फटकार बताती हैं और कहती हैं—

> मा भूत्स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम् ।
> अवमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥
> पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।
> यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥
>
> (१।३२।२१-२२)

हे दुर्बुद्धि वायु ! अपने सत्यवादी पिताका अपमान करके हम अपनी इच्छासे स्वयंवर करें, ऐसा समय कभी न आवे । हमारे पिता कुशनाभ ही हमारे प्रभु और परम दैवत हैं वे जिस पुरुषके साथ हमारा विवाह करेंगे वही हमारा पति होगा ।

(६) रामायणकी कुछ फुटकर बातें ।

प्रायः चौबीस सहस्र श्लोकात्मक सप्तकाण्ड रामायणके वर्णित विषयोंकी चर्चा किसी एक लेखमें नहीं हो सकती । उनका ज्ञान मनोयोगसे पढ़ने या सुननेपर ही हो सकता है। रामायणमें राजा दशरथकी जिस राज्य-व्यवस्थाका वर्णन है, उसके साथ समुन्नतसे समुन्नत राज्यकी व्यवस्थाकी तुलना की जा सकती है। विपुल वैभवशालिनी अयोध्याकी मनोहरताका चित्र भी रामायणमें अनुपम है। इसके अतिरिक्त रामायणमें पितरोंके तर्पण और श्राद्धका भलीभाँति प्रतिपादन है। प्रायोपवेशन (धरना) का भी उल्लेख मिलता है। भरतजी रामचन्द्रजीको वापस लानेके लिये धरना देकर बैठ गये थे किन्तु रामचन्द्रजीने धरनेको क्षत्रियोंके लिये अनुचित बताकर उन्हें मना कर दिया था। सीताकी खोजमें जाकर जब अङ्गदादि वानर कुछ पता नहीं चला सके तब उन्होंने भी प्रायोपवेशन करनेका विचार किया था। रामायण-कालमें संस्कृत बोलचालकी भाषाके रूपमें प्रचलित थी। इल्वल ब्राह्मणका रूप धारणकर संस्कृत बोलकर ही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करता था। हनूमान्‌जीने भी सर्वप्रथम अशोकवनमें पहुँचकर सीताजीसे किसप्रकार वार्तालाप किया जाय—इस विषयमें बड़ा सोच-विचार किया और अन्तमें संस्कृतमें ही भाषण करना निश्चित किया। उस समय वेदशास्त्रोंके पठन-पाठनकी सुव्यवस्था थी। वेदशास्त्र-सम्पन्न ब्राह्मण विद्वानोंका बड़ा समादर था, उन्हें दान-दक्षिणा भी खूब मिलती थी। पण्डित लोग सभाओंमें पहुँचकर विजय पानेकी इच्छासे शास्त्रार्थ भी किया करते थे। हवन एवं यज्ञानुष्ठान भी बड़ी धूम-धामसे विधिपूर्वक सम्पन्न होते थे। देवताओंके उद्देश्यसे कामना-सिद्धिके लिये स्त्रियाँ पूजा, प्रार्थना और रात्रि-जागरण (रातीजगा) भी किया करती थीं ।

तुलसी-काव्य

(लेखक—श्रीदामोदरसहायसिंहजी, एम० टी०, 'कविकिंकर')

(१)

जानि परै मारग न छाये कुस कास उहाँ
　　इहाँहूँ न सूझै कछु मारग सुझावनो ।
सर सरितानको लतानको वितान उहाँ
　　हरे हरे सूझै इहाँ अन्ध-जस सावनो ॥
'दामोदर' दीननको गृहतें विहीननको
　　एक दुखदाई दूजो दुर्जन दुखावनो ।
नातो साधुसज्जनके हेतु सब भाँतिन ही
　　काव्य तुलसीके कैधौं सावन सुहावनो ॥

(२)

रामको जनमसो संजोगिनको आनँद है
　　राम बनबाससो बियोगिन दुखावनो ।
दादुरको सोर चहुँओर राम जस सोई
　　रावनको जुद्ध रैन-रूपसो भयावनो ॥
भायप भरतको अनूप हरियाली भरो
　　खेतनमें नाज राम-राज मन भावनो ।
पावनो मनोरथ नसावनो हियेको सोक
　　काव्य तुलसीके कैधौं सावन सुहावनो ॥

(३)

राम रस अमल अमृतकी बिसद बूँदें
　　भकसालि ऊपर सदाहीं बरसावनो ।
मरुभूमि मालवपै बायें दाहिनेपर सम
　　जोग जुक्तिकौं हूँ भक्ति-भावन भुलावनो ॥
राम स्यामताके छाये घन घनघोर सिया—
　　'दामोदर' दामिनी दमंक दमकावनो ।
हिय हुलसावनो नसावनो हियेको पीर
　　काव्य तुलसीके कैधौं सावन सुहावनो ॥

रामायणमें आदर्श भ्रातृ-प्रेम

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

अनुज-जानकी सहित प्रभु चाप-बान-धर राम।
मम हिय-गगन इन्दु इव बसहु सदा निष्काम।।

गवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रक्षक आजतक कोई दूसरा नहीं हुआ, ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं होगा। श्रीराम साक्षात् परमात्मा थे, वे धर्मकी रक्षा और लोकोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। उनके आदर्श लीलाचरित्रको पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें महान् पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कार्य परम पवित्र, मनोमुग्धकारी और अनुकरण करने योग्य है। ऐसे अनन्त गुणोंके समुद्र श्रीरामके सम्बन्धमें मुझ-सरीखे व्यक्तिका कुछ लिखना एकप्रकारसे लड़कपन है तथापि अपने मनोविनोदके लिये शास्त्रोंके आधारपर यत्किञ्चित् लिखनेका साहस करता हूँ, विज्ञजन क्षमा करें। श्रीराम सर्वगुणाधार थे। सत्य, सुहृदता, गम्भीरता, क्षमा, दया, मृदुता, शूरता, धीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्यादा-संरक्षकता, एक-पत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्रह्मण्यता, मातृपितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञा-तत्परता, शरणागत-वत्सलता, त्याग, साधु-संरक्षण, दुष्ट-विनाश, निर्वैरता, सख्यता, लोकप्रियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें विलक्षण विकास था। इतने गुणोंका एकत्र विकास जगत्में कहीं नहीं मिलता। माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा आदर्श बर्ताव है, उसकी ओर ख्याल करते ही मन मुग्ध हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता तो आजतक कहीं नहीं देखनेमें आयी। कैकेयी और मन्थराको छोड़कर उस समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था जो श्रीरामके व्यवहार और प्रेमके बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो। वास्तवमें कैकेयी भी श्रीरामके प्रभाव और प्रेमसे सदा मुग्ध थी। राम-राज्याभिषेककी बात सुनकर वह मन्थराको पुरस्कार देनेके लिये प्रस्तुत हुई थी, श्रीरामके गुणोंपर उसका बड़ा भारी विश्वास था। वनवास भेजनेके समय शत्रु बनी हुई कैकेयीके मुखसे भी ये सच्चे उद्गार निकल पड़ते हैं—

तुम अपराध जोग नहीं ताता। जननी-जनक-बन्धु-सुख-दाता।।
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम पितु-मातु-बचन-रत अहहू।।

कैकेयीका रामके प्रति अप्रिय और कठोर बर्ताव तो भगवान्‌की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोकहितार्थ हुआ था। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे। देव, मनुष्य, राक्षस और पशु-पक्षी किसीका भी रामसे विरोध नहीं था। यज्ञविध्वंसकारी राक्षसों और शूर्पणखाके कान-नाक काटनेपर खर, दूषण, त्रिशिरा, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदिके साथ जो वैर-भाव और युद्धका प्रसंग आता है, उसमें भी रहस्य भरा है। वास्तवमें रामके मनमें उनमेंसे किसीके साथ वैर था ही नहीं। राक्षसगण भी अपने सकुटुम्ब-उद्धारके लिये ही उन्हें वैर-भावसे भजते थे। रावण और मारीचकी उक्तियोंसे यह स्पष्ट है—

सुररंजन भंजन महि भारा। जौं जगदीस लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करिहौं। प्रभु-सर तें भवसागर तरिहौं।।
होइ भजन नहिं तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा।।
—रावण

मम पाछें धर धावत, धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं। धन्य न मो सम आन।।
—मारीच

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामके जमानेमें चराचर जीवोंका श्रीरामके प्रति जैसा आदर्श प्रेम था, वैसा आजतक किसीके सम्बन्धमें भी देखने सुननेमें नहीं आया।

श्रीरामकी मातृ-भक्ति कैसी आदर्श है। स्वमाता और अन्य माताओंकी तो बात ही क्या, कठोर-से-कठोर व्यवहार करनेवाली कैकेयीके प्रति भी श्रीरामने भक्ति और सम्मानसे पूर्ण ही बर्ताव किया।

जिस समय कैकेयीने वन जानेकी आज्ञा दी, उस समय श्रीराम उसके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए बोले, माता, इसमें तो सभी तरह मेरा कल्याण है—

मुनिगन मिलन बिशेष बन सबहिं भाँति हित मोर ॥
तेहिमहँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ॥

श्रीरामने कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे कहा—

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यते ।
माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु ॥
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन ।
मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥
(वा०रा०२।२२।६-८)

'हे लक्ष्मण ! मेरे राज्याभिषेकके संवादसे अत्यन्त परिताप पायी हुई माता कैकेयीके मनमें किसी प्रकारकी शङ्का न हो तुम्हें वैसा ही करना चाहिये । मैं उसके मनमें उपजे हुए शंकारूप दुःखको एक घड़ीके लिये भी नहीं सह सकता । हे भाई ! जहाँतक मुझे याद है, मैंने अपने जीवनमें जानमें या अनजानमें माताओंका और पिताजीका कभी कोई जरा-सा अप्रिय कार्य नहीं किया ।'

इसके बाद वनसे लौटते हुए भरतजीसे श्रीरामने कहा—

कामाद्वा तात ! लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् ।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ।
(वा०रा०२।११२।१९)

'माता कैकेयीने (तुम्हारी हित-) कामनासे या (राज्यके) लोभसे जो यह कार्य किया, इसके लिये मनमें कुछ भी विचार न कर भक्तिभावसे उनकी माताकी भाँति सेवा करना।'

इससे पता लगता है कि रामकी अपनी माताओंके प्रति कितनी भक्ति थी । एक बार लक्ष्मणने वनमें कैकेयीकी कुछ निन्दा कर डाली । इसपर मातृभक्त और भ्रातृप्रेमी श्रीरामने जो कुछ कहा सो सदा मनन करने योग्य है—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥
(वा०रा० ३।१६।३७)

हे भाई ! बिचली माता (कैकेयीकी) निन्दा कभी मत किया करो । बातें करनी हों तो इक्ष्वाकुनाथ भरतके सम्बन्धमें करनी चाहिये । (क्योंकि भरतकी चर्चा मुझे बहुत ही प्रिय है)

इसीप्रकार उनकी पितृभक्ति भी अद्भुत है । पिताके वचनोंको सत्य करने लिये श्रीरामने क्या नहीं किया । पिताको दुखी देखकर जब श्रीरामने कैकेयीसे दुःखका कारण पूछा तब उसने कहा कि 'राजाके मनमें एक बात है परन्तु वे तुम्हारे डरसे कहते नहीं हैं, तुम इन्हें बहुत प्यारे हो, तुम्हारे प्रति इनके मुखसे अप्रिय वचन ही नहीं निकलते, यदि तुम राजाकी आज्ञापालनकी प्रतिज्ञा करो तो ये कह सकते हैं, तुमको वह कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिसके लिये इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की है ।' इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
(वा०रा०२।१८।२८-२९)

'अहो मुझे धिक्कार है, हे देवि ! तुमको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, मैं महाराजा पिताकी आज्ञासे आगमें कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष खा सकता हूँ, समुद्रमें कूद सकता हूँ ।' लक्ष्मणने जब यह कहा कि ऐसे कामासक्त पिताकी आज्ञा मानना अधर्म है, तब श्रीरामने सगरपुत्र और परशुरामजी आदिका उदाहरण देते हुए कहा कि 'पिता प्रत्यक्ष देवता हैं, उन्होंने किसी भी कारणसे वचन दिया हो, मुझे उसका विचार नहीं करना है, मैं विचारक नहीं हूँ, मैं तो निश्चय ही पिताके वचनोंका पालन करूँगा ।'

विलाप करती हुई जननी कौसल्यासे श्रीरामने स्पष्ट ही कह दिया था कि—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥
(वा० रा० २।२१।३०)

'मैं चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम करता हूँ, मुझे वन जानेके लिये आज्ञा दो, माता ! पिताजीके वचनोंको टालनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ।'

श्रीरामका एकपत्नीव्रत आदर्श है, पत्नी सीताके प्रति रामका कितना प्रेम था, इसका कुछ दिग्दर्शन सीताहरणके पश्चात् श्रीरामकी दशा देखनेसे होता है । महान् धीर वीर राम विरहोन्मत्त होकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कदम्ब, बेल, अशोकादि वृक्षोंसे और हरिणोंसे सीताका पता पूछते हैं । यहाँ भगवान् श्रीरामने अपने 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' के वचनको मानो चरितार्थ कर दिया है । वे विलाप करते हैं, प्रलाप करते हैं, पागलकी भाँति ज्ञानशून्य-से हो

आते हैं, मूर्छित हो पड़ते हैं, और 'हा सीते हा सीते' पुकार उठते हैं।

श्रीरामका सख्य-प्रेम भी आदर्श है। सुग्रीवके साथ मित्रता होनेपर आप मित्रके लक्षण बतलाते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रके दुख रज मेरु समाना॥
देत लेत मन संक न धरहीं। बल अनुमान सदा हित करहीं॥
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सत्य मित्र गुन एहा॥

फिर उसे आश्वासन देते हुए कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि करब काज मैं तोरे॥

इसी प्रकार रामका भ्रातृप्रेम भी अतुलनीय है। रामायणमें हमें जिस भ्रातृप्रेमकी शिक्षा मिलती है, भ्रातृप्रेमका जैसा उच्चातिउच्च आदर्श प्राप्त होता है वैसा जगत्के इतिहासमें कहीं नहीं है। पाण्डवोंमें भी परस्पर बड़ा भारी प्रेम था। उनके भ्रातृप्रेमकी कथाएँ पढ़-सुनकर चित्त द्रवित हो उठता है और हम उनकी महिमा गाने लगते हैं, परन्तु रामायणके भ्रातृप्रेमसे उसकी तुलना नहीं हो सकती। रामायणकालसे महाभारतकालके भ्रातृप्रेमका आदर्श बहुत नीचा था। इस कालकी तो बात ही क्या है, जहाँ बात-बातमें लड़ाइयाँ होती हैं और ज़रा-ज़रा-से सुख-भोगके लिये भाइयोंकी हत्यातक कर डाली जाती है! आज इस लेखमें श्रीराम प्रभृति चारों भाइयोंके भ्रातृप्रेमके सम्बन्धमें यथामति किञ्चित् दिग्दर्शन कराया जाता है।

श्रीरामका भ्रातृप्रेम

लड़कपनसे ही श्रीराम अपने तीनों भाइयोंके साथ बड़ा भारी प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। खेल-कूदमें भी कभी उनको दुःखी नहीं होने देते थे। यहाँ तक कि अपनी जीतमें भी उन्हें खुश करनेके लिये हार मान लेते थे और प्रेमसे पुचकार पुचकारकर दाँव देते थे—

खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥

श्रीराम तीनों भाइयोंको साथ लेकर भोजन करते, साथ ही खेलते और सोते थे। विश्वामित्रजीके साथ उनके यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण वनमें गये। अनेक विद्या सीखकर और राक्षसोंका विनाशकर मुनिके साथ दोनों भाई जनकपुरमें पहुँचे। धनुष भंग हुआ। परशुरामजी आये और कोप करके धनुष तोड़नेवालेका नामधाम पूछने लगे, श्रीरामने बड़ी नम्रतासे और लक्ष्मणजीने तेजयुक्त वचनोंसे उनके प्रश्नका उत्तर दिया। लक्ष्मणजीके कथनपर परशुरामजीको बड़ा क्रोध आया, वे उनपर दाँत पीसने लगे। इसपर श्रीरामने जिस चतुरतासे भाईके कार्यका समर्थनकर भ्रातृप्रेमका परिचय दिया, उस प्रसंगके पढ़नेपर हृदय मुग्ध हो जाता है।

तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई, परन्तु श्रीरामने स्वयंवरमें विजय प्राप्त कर अकेले ही अपना विवाह नहीं करा लिया। लक्ष्मणजी तो साथ थे ही, भरत-शत्रुघ्नको बुलाकर सबका विवाह भी साथ ही करवाया।

विवाहके अनन्तर अयोध्या लौटकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे और अपने आचरणोंसे सबको मोहित करने लगे। कुछ समय बाद भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। पीछेसे राजा दशरथने मुनि वशिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मतिसे श्रीरामके अतिशीघ्र राज्याभिषेकका निश्चय किया। चारों ओर मंगल-बधाइयाँ बँटने लगीं और राज्याभिषेककी तैयारी की जाने लगी। वशिष्ठजीने आकर श्रीरामको यह हर्ष-संवाद सुनाया। राज्याभिषेककी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता परन्तु श्रीराम प्रसन्न नहीं हुए, वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे 'अहो! यह कैसी बात है, जन्मे साथ, खाना-पीना, सोना-खेलना साथ हुआ, कर्णवेध, जनेऊ और विवाह भी चारोंके एक साथ हुए, फिर यह राज्य ही मुझ अकेलेको क्यों मिलना चाहिये, हमारे निर्मल कुलमें यही एक प्रथा अनुचित है कि छोटे भाइयोंको छोड़कर अकेले बड़ेको ही राजगद्दी मिलती है—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भयउ उछाहा॥
बिमल बंस यह अनुचित एकू। अनुज बिहाइ बड़े अभिषेकू॥

श्रीरामको अकेले राज्य स्वीकार करनेमें बड़ा अनौचित्य प्रतीत हुआ। मनकी प्रसन्नतासे नहीं, परन्तु पिताकी आज्ञासे उन्हें राज्याभिषेकका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। परन्तु उनके मनमें यही था कि मैं सिर्फ यह प्रथा भर पूरी कर रहा हूँ, वास्तवमें राज्य तो भाइयोंका ही है। भरत शत्रुघ्न तो उस समय मौजूद नहीं थे, अतः श्रीरामजीने लक्ष्मणसे कहा—

सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान्राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥
(वा० रा० २।४।४४)

'भाई सौमित्रे ! तुम (लोग) वाञ्छित भोग और राज्य-फलका भोग करो, मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे ही लिये है।'

इसके बाद ही इस लीला-नाटकका पट परिवर्तन हो गया। माता कैकेयीकी कामनाके अनुसार राज्याभिषेक वनगमनके रूपमें परिणत हो गया। प्रातःकालके समय जब श्रीराम पिता दशरथकी सम्मतिसे सुमन्तके द्वारा कैकेयीके महलमें बुलाये गये और जब उन्हें कैकेयीके वरदानकी बात मालूम हुई तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, वे कहने लगे कि 'माता ! इसमें बात ही कौन-सी है, मुझे तो केवल एक ही बातका दुःख है कि महाराजने भरतके अभिषेकके लिये मुझसे ही क्यों नहीं कहा—

गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात ॥
दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः ।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥
(वा० रा० २ । १९ । १०-११)

महाराजकी आज्ञासे दूतगण अभी तेज घोड़ोंपर सवार होकर मामाजीके यहाँ भाई भरतको लानेके लिये जायँ। मैं पिताजीके वचन सत्य करनेके लिये बिना कुछ विचार किये चौदह वर्षके लिये दण्डकारण्य जाता हूँ। प्राणप्रिय भाई भरतका राज्याभिषेक हो, इससे अधिक प्रसन्नता मेरे लिये और क्या होगी ? विधाता आज सब तरहसे मेरे अनुकूल है—

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जो न जाउँ बन ऐसेहि काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़-समाजा॥

धन्य है यह त्याग, आदिसे अन्ततक कहीं भी राज्यलिप्साका नाम नहीं, और भाइयोंके लिये सर्वदा सर्वस्व त्याग करनेको तैयार ! इस प्रसंगसे हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि छोटे भाइयोंको छोड़कर राज्य, धन या सुखका अकेले कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये। योग्यता-वश कहीं ग्रहण करना ही पड़े तो उसमें भाइयोंका अपनेसे अधिक अधिकार समझना चाहिये, बल्कि यह मानना चाहिये कि उन्हीं लोगोंके लिये मैं इसे ग्रहण करता हूँ और यदि ऐसा मौका आ जाय कि अब भाइयोंको राज्य, धन, सुख मिलता हो और इसलिये अपनेको त्याग करना पड़ता हो तो बहुत ही प्रसन्न होना चाहिये।

इसके बाद श्रीराम माता कौसल्या और पत्नी सीतासे विदा माँगने गये। श्रीरामने भरत या कैकेयीके प्रति कोई भी अपशब्द या विद्वेषमूलक शब्द नहीं कहा। बल्कि सीतासे आपने कहा—

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः ॥
भ्रातृपुत्र समौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥
(वा० रा० २ । २६ । ३२-३३)

'मेरी माताओंको नित्य प्रणाम करना, मुझपर स्नेह करनेमें और मेरा लाड़-प्यार तथा पालन-पोषण करनेमें मेरी सभी माताएँ समान हैं। साथ ही तुम भरत-शत्रुघ्नको भी अपने भाई और बेटेके समान समझना, क्योंकि वे दोनों मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं।'

यहाँ विशेष आग्रह और प्रेमके कारण सीताजीको भी साथ चलनेकी अनुमति श्रीरामको देनी पड़ी, तब लक्ष्मणजीने भी साथ चलना चाहा। श्रीराम ऐसे तो पुरुष थे ही नहीं, जो अपने आरामके लिये लक्ष्मणसे कहते या उसे उभारते कि 'ऐसे अन्याय राज्यमें रहकर क्या करोगे तुम भी साथ चलो।' उन्होंने लक्ष्मणको घर रहनेके लिये बहुत समझाया, अनेक युक्तियोंसे यह चेष्टा की कि किसी तरह लक्ष्मण अयोध्यामें रहें, जिससे राज्य-परिवारकी सेवा-सम्हाल हो सके, और लक्ष्मणको वनके कष्ट न भोगने पड़ें, परन्तु जब लक्ष्मणने किसी तरह नहीं माना तब उसको सुख पहुँचानेके लिये श्रीरामने साथ ले जाना स्वीकार किया।

श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मण और सीतासहित वनको चले गये। वनमें लक्ष्मणजी श्रीराम-सीताकी हर तरह सेवा करते हैं और श्रीराम भी वही कहते और करते हैं जिससे श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मण सुखी हों।

सीय-लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
जुगवहिं प्रभु सिय-अनुजहि कैसे। पलक बिलोचन-गोलक जैसे॥

इससे यह सीखना चाहिये कि अपनी सेवा करनेवाले छोटे भाई और पत्नीको जैसे सुख पहुँचे वैसे ही कार्य करने चाहिये तथा उनकी वैसे ही रक्षा करनी चाहिये जैसे पलकें आँखोंकी करती हैं।

× × ×

भरतके ससैन्य वनमें आनेका समाचार पाकर जब श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मणजी क्षुब्ध होकर भरतके प्रति

न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'भाई ! भरतको मारनेकी बात तुम क्यों कहते हो, मुझे अपने बान्धवोंके नाश करनेसे प्राप्त होनेवाला धन नहीं चाहिये, वह तो विषयुक्त अन्नके समान है—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते ॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
मम प्राणात् प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ॥
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् ।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः ।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथागतः ॥
अम्बां च कैकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन् ।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः ॥
(वा०रा० २।९७।४-६ एवं ८ से १२)

हे लक्ष्मण ! मैं सत्य और आयुधकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी तथा और जो कुछ चाहता हूँ, वह सब तुम्हीं लोगोंके लिये ! राज्यकी इच्छा तुम्हीं लोगोंके धन और सुखके लिये करता हूँ। भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख होता हो तो उसमें आग लगजाय। हे भाई ! मैं तो समझता हूँ मेरे प्राणप्यारे भ्रातृवत्सल भाई भरतने जब अयोध्यामें आकर यह सुना होगा कि मैं जटा-चीर धारणकर तुम्हारे और जानकीके साथ वनमें चलागया हूँ तब वह कुलधर्मको स्मरण करके अति स्नेहके कारण व्याकुल होकर कातर और अप्रिय वचनोंसे माता कैकेयीको अप्रसन्न और पिता दशरथजीको प्रसन्न करता हुआ हम लोगोंके दर्शनके लिये तथा मुझे लौटाकर राज्य देनेके लिये ही आ रहा है।' वह मनसे भी कभी विपरीत आचरण नहीं कर सकता। तुम्हें राज्यकी इच्छा हो तो मैं भरतसे कहकर दिलवादूँगा। तुम भरतके सम्बन्धमें भूल समझ रहे हो ! भाई भरतको कभी राजमद नहीं हो सकता—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंचमहँ सुना न दीसा॥

भरतहिं होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुन छीर, अवगुन जल ताता। मिलै रचै परपंच बिधाता॥
भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुणदोष बिभागा॥
गहि गुन-पय तजि अवगुन-बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी॥
कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ॥

श्रीराम भरतका गुण गान करते हुए प्रेमके समुद्रमें निमग्न हो गये ! लक्ष्मणजीको अपनी भूल मालूम हो गयी ! यहाँ भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणके प्रति जो नीतियुक्त तीखे और प्रेमभरे वचन कहे, उनमें प्रधान अभिप्राय तीन समझने चाहिये। प्रथम, भरतके प्रति श्रीरामका परम विश्वास प्रकट करना, दूसरे, लक्ष्मणको यह चेतावनी देना कि तुम भरतकी सरलता, प्रेम, त्याग आदिको जानते हुए भी मेरे प्रेमवश प्रमादसे बालककी तरह ऐसा क्यों बोल रहे हो ? और तीसरे, उन्हें फटकारकर ऐसे अनुचित मार्गसे बचाना।

भरत आये और 'हे नाथ ! रक्षा करो' कहकर दण्डकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े। सरलहृदय श्रीलक्ष्मणने भरतकी वाणी पहचानकर उन्हें श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करते देखा हृदयमें भ्रातृप्रेम उमड़ा, परन्तु सेवा-धर्म बड़ा जबरदस्त है। लक्ष्मणजीका मन करता है कि भाई भरतको हृदयसे लगा लूँ परन्तु फिर अपने कर्तव्यका ध्यान आता है तब श्रीराम-सेवामें खड़े रह जाते हैं, इसप्रकार—

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन-मनकी गति भनई॥
रहे राखि सेवापर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥

आखिर सेवामें लगे रहना ही उचित समझा, परन्तु श्रीरामसे निवेदन किये बिना उनसे नहीं रहा गया—लक्ष्मणजीने सिर नवाकर प्रेमसे कहा—

भरत प्रनाम करत रघुनाथा !

भगवान् तो भरतका नाम सुनते ही विह्वल हो गये और प्रेममें अधीर होकर उन्हें उठाकर गले लगानेको उठ खड़े हुए। उस समय श्रीरामकी कैसी दशा हुई—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा॥
बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान॥
भरत रामकी मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान॥

यहाँ चारों भाइयोंका परस्पर प्रेम देखकर सभी मुग्ध हो गये। भरतकी विनय, नम्रता, साधुता और राम-भक्ति देखकर तो लोग तन-मनकी सुधि भूल गये। श्रीरामको पिताके मरण-संवादसे बड़ा दुःख हुआ। यथोचित शास्त्रोक्त विधिसे क्रिया करनेके बाद समाज जुड़ा। भरतने भाँति भाँतिसे अनेक युक्तियाँ दिखलाकर श्रीरामको राज्यग्रहणके लिये प्रार्थना की। वशिष्ठादि ऋषियोंने, मन्त्री, पुरवासी और माताओंने भी भरतका साथ दिया। जब भगवान् श्रीरामने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया तो भरतजीने कहा कि मैं अनशन व्रत रखकर प्राण दे दूँगा। इसपर श्रीरामने उन्हें पहले तो धरना देनेके लिये फटकारा, फिर, विविध भाँतिसे समझाकर शान्त किया और अन्तमें चरणोंमें पड़े रोते हुए भरतको अपने हाथोंसे खींचकर गोदमें बैठा लिया और प्रेमवश कहने लगे—

हे भरत, मुझे वनवाससे लौटाकर राज्याभिषेक करानेके लिये तुमको जो बुद्धि हुई है सो स्वाभाविक ही है, यह गुरुसेवा द्वारा प्राप्त विनय-विवेकका फल है। इस श्रेष्ठ बुद्धिके कारण तुम समस्त पृथ्वीका पालन कर सकते हो। परन्तु—

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥
(वा० रा० २।११२।१८)

'चन्द्रमा चाहे अपनी श्री त्याग दे, हिमालय हिमको छोड़ दे, समुद्र मर्यादाका उल्लंघन करदे पर मैं पिताकी प्रतिज्ञाको सत्य किये बिना घर नहीं लौट सकता।'

श्रीगुसाईंजीने लिखा है कि श्रीरामने अन्तमें प्रेमविवश हो कर भरतजीसे कहा कि—

भैया! तुम दुःख न करो, जीवकी गति ईश्वराधीन है, हे भाई! मेरी समझसे तो तीनों काल और तीनों लोकोंमें जितने पुण्यश्लोक पुरुष हैं वे सब तुमसे नीचे हैं। तुमको जो मनमें भी कुटिल समझेगा, उसके लोक-परलोक बिगड़ जायँगे, माता कैकेयीको वही लोग दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधुओंका संग नहीं किया है। मैं शिवको साक्षी देकर सत्य कहता हूँ, कि भाई! अब यह पृथ्वी तुम्हारे रक्खे ही रहेगी। तुम अपने मनमें कुछ भी शंका न करो। हे प्यारे! देखो! महाराजने मुझको त्याग दिया, प्रेमका प्रण निबाहनेके लिये शरीर भी छोड़ दिया परन्तु सत्य नहीं छोड़ा। इसलिये मुझको उनके वचन टालनेमें बड़ा संकोच हो रहा है, परन्तु उससे भी बढ़कर मुझे तुम्हारा संकोच है, गुरुजी भी कहते हैं, अतः अब सारा भार तुमपर है, तुम जो कुछ कहो, मैं वही करनेको तैयार हूँ—

मन प्रसन्न करि सोच तजि कहहु करौं सो आज।
सत्यसिन्धु रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाज॥

सोच छोड़कर प्रसन्न मनसे आज तुम जो कुछ कह दोगे वही करनेको तैयार हूँ यानी मुझे सत्य बहुत प्यारा है परन्तु उससे भी बढ़कर तुम प्यारे हो। तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।' इससे अधिक भ्रातृप्रेम और क्या होगा? जिस सत्यके लिये पिता-माताकी परवा नहीं की, आज अनायास वही सत्य, लौटानेके लिये आए हुए, भाई भरतके प्रेमपर छोड़ दिया गया!

अवश्य ही भरत भी श्रीरामके ही भाई थे। उन्होंने बड़े भाई श्रीरामका अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उन्हें संकोचमें डालना नहीं चाहा और बोले कि—

जो सेवक साहिब संकोची। निज हित चहै तासु मति पोची॥

'जो दास अपने मालिकको संकोचमें डालकर अपना कल्याण चाहता है उसकी बुद्धि बड़ी ही नीच है। मैं तो आपके राजतिलकके लिये सामग्री लाया था परन्तु अब—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करहिं सब मिटिहिं अनट अवरेब॥

प्रभु निःसंकोच होकर प्रसन्नतासे जिसको जो आज्ञा देंगे वह उसीको सिर चढ़ाकर करेगा, जिससे सारी उलझन आप ही सुलझ जायगी।' अन्तमें श्रीरामने फिर कहा 'भैया! तुम मन वचन कर्मसे निर्मल हो, तुम्हारी उपमा तुम्हीं हो, बड़ोंके सामने छोटे भाईके गुण इस कुसमयमें कैसे बखानूँ? भाई! तुम अपने सूर्यवंशकी रीति, पिताजीकी कीर्ति और प्रीति जानते हो, और भी सारी बातें तुमपर विदित हैं। अवश्य चौदह वर्षतक तुमको बहुत कष्ट होगा—

जानि तुमहि मृदु कहौं कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाये। ओड़िअहिं हाथ असनिके घाये॥

हे प्यारे! मैं तुम्हारे हृदयकी कोमलता जानता हुआ भी तुम्हें यह कठोर वचन कह रहा हूँ परन्तु क्या करूँ? यह समय ही ऐसा है, इस समयके लिये यही उचित है, जब बुरा समय आता है तब भले भाई ही काम आते हैं तलवारके वारको बचानेके लिये अपने ही हाथकी आड़ करनी पड़ती है।'

भगवान्‌के इन प्रेमपूर्ण रहस्यके वचनोंको सुनते ही भरत श्रीरामकी रुखको भलीभाँति समझ गये। उनका विषाद दूर हो गया। परन्तु चौदह साल निराधार जीवन रहेगा कैसे? अतः

सो अवलम्ब देव मोहि देवा। अवधि पार पावौं जेहि सेवा॥

भगवान्‌ने उसीसमय भरतजीकी इच्छानुसार अपनी चरणपादुका परम तेजस्वी महात्मा भरतजीको दे दी! भरतजी पादुकाओंको प्रणामकर मस्तकपर धारणकर अयोध्या लौट गये।

× × ×

श्रीरामने कुछ समय तक चित्रकूटमें निवास किया, फिर ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते घूमते पंचवटीमें आये। वहाँ कुछ समय रहे। वनमें रहते समय भगवान् प्रतिदिन ही लक्ष्मणजीको भाँति भाँतिसे ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका उपदेश किया करते। एक दिन उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—

संत-चरन पंकज अति प्रेमा। मन-क्रम-बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलकि सरीरा। गद-गद गिरा नयन बह नीरा॥
कामादिक मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥
बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करइ निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, करउँ सदा बिस्राम॥

इसप्रकार सत्‌चर्चा और परम रहस्यके वार्तालापमें ही समय बीतता था। भाईपर इतना प्रेम था कि श्रीराम उन्हें हृदय खोलकर अपना रहस्य समझाते थे।

× × ×

सीता-हरण हुआ, लङ्कापर चढ़ाई की गयी और भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। एक दिन शक्तिबाणसे श्रीलक्ष्मणके घायल हो जानेपर श्रीरामने भाईके लिये जैसी विलाप-प्रलापकी लीला की, उससे पता लगता है कि छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति श्रीरामका कितना अधिक स्नेह था।

श्रीराम कहने लगे—

किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
(वा० रा० ६।१०१।१२-१३)

'अब युद्धसे, राज्यसे या जीवनसे क्या प्रयोजन है जब कि प्यारा भाई लक्ष्मण रणभूमिमें सो चुका है। भाई! जिसप्रकार महातेजस्वी तुम मेरे साथ वनमें आये थे उसीप्रकार मैं भी तुम्हारे साथ परलोकमें जाऊँगा।' गुसाईंजी लिखते हैं—

श्रीराम प्रलाप करते हुए कहते हैं—

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जो जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर करहीना॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावहि मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई॥
अब अपलोक सोक सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननीके एक कुमारा। तात तासु तुम प्रान-अधारा॥
सौंपेसि मोहि तुम्हहिं गहि पानी। सबबिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन॥*

* यह भगवान् श्रीरामकी प्रलाप-लीला मानी जाती है, प्रलापमें कुछका कुछ कहा जाना ही स्वाभाविक है। 'प्रभुप्रलाप सुनि कान' आगेके दोहेके इस वाक्यसे भी प्रलाप ही सिद्ध होता है। भगवान् शिवके इन वचनोंसे कि, "उमा एक अखंड रघुराई। 'नर गति' भगत-कृपालु देखाई" से भी साधारण मनुष्यवत् प्रलाप ही ठहरता है। इसमें अर्थान्तर करनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि दूसरा अर्थ किया जाय तो उपर्युक्त चौपाइयोंमें—'जो जनतेउँ बन-बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥' इस चौपाईका अर्थ यह करना चाहिये कि यदि मैं जानता कि वनमें बन्धुओंसे बिछोह होगा तो मैं (पिता बचन मनतेउँ) पिताके वचन मानकर वनमें तो आता, परन्तु ('नहिं ओहू') लक्ष्मणका आग्रह स्वीकार कर उसे वनमें साथ नहीं लाता।

इसी प्रकार 'निज जननीके एक कुमारा। तासु तात तुम प्रान अधारा' इस चौपाईका अर्थ यों करना चाहिये कि मैं जैसे अपनी माताका प्यारा इकलौता बेटा हूँ, वैसे ही अपनी माता सुमित्राके तुम प्राणाधार हो।

इस चौपाईका अर्थ यह भी किया जा सकता है कि 'मैं अपनी माताके एक ही लड़का हूँ और तुम उसके (मेरे) प्राणाधार हो। अर्थात् तुम्हारे जीवनसे ही मेरा जीवन है।'

राम-विलाप ।

प्रभु-विलाप सुनिकान, बिकल भए बानरनिकर ।
आइ गयेउ हनुमान, जिमि करुना महं बीर रस ॥

जो भाई अपने लिये घरद्वार छोड़कर मरनेको तैयार है, उसके लिये विलाप किया जाना उचित ही है परन्तु श्रीरामने तो विलापकी पराकाष्ठा कर आतृप्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनूमान्‌जीके द्वारा संजीवनी लानेपर लक्ष्मणजी स्वस्थ हो गये। राम-रावण युद्ध समाप्त हुआ। सीता-परीक्षाके अनन्तर श्रीराम सबको साथ लेकर पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या लौटनेकी तैयारीमें है। इसी समय विभीषण प्रार्थना करने लगे—

'भगवन्! यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, यदि आप मुझपर स्नेह करते हैं तो मेरी प्रार्थना है—आप कुछ समय तक यहाँ रहें, लक्ष्मण और सीता सहित आपकी मैं पूजा करना चाहता हूँ। आप अपनी सेना तथा मित्रों सहित घर पधार कर उसको पवित्र करें और यत्किंचित् सत्कार स्वीकार करें। मैं आपके प्रति आज्ञा नहीं कर रहा हूँ, परन्तु स्नेह-सम्मान और मित्रताके कारण एक सेवककी भाँति आपको प्रसन्न करनेकी अभिलाषा रखता हूँ। (वा० रा० ६। १२१। १२-१५) विनयका क्या ही सुन्दर सीखने योग्य तरीका है!

श्रीरामने उत्तरमें कहा—

न खल्वेतत्त कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥
(वा० रा० ६। १२१। १८-१९)

हे राक्षसेश्वर, मैं इस समय तुम्हारी बात नहीं मान सकता, मेरा मन भाई भरतसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है, जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटानेके लिये विनीत प्रार्थना की थी और मैंने उसको स्वीकार नहीं किया था। मित्रवर, तुम मेरी इस प्रार्थनापर दुःख न करना।

तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु तात।
दसा भरतकी सुमिरि मोहिं निमिष कलप सम जात॥
तापस बेष सरीर कृस, जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतन करु, सखा! निहोरौं तोहि॥
जो जैहौं बीते अवधि, जियत न पाऊँ बीर।
प्रीति भरतकी समुझि प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥

विभीषण नहीं रोक सके, विमानपर सवार होकर चले। भगवान्‌ने अपने आनेका संवाद हनूमान्‌के द्वारा भरतजीके पास पहलेसे ही भेजकर उन्हें सुख पहुँचाया।

तदनन्तर अनन्तशक्ति भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँचकर क्षणमें लीलासे ही सबसे मिल लिये।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला॥
कृपादृष्टि सब लोग बिलोकी। किये सकल नरनारि बिसोकी॥
छन महँ सबहि मिले भगवाना। उमा मर्म यह काहु न जाना॥

भरतके साथ भगवान्‌का मिलन तो अपूर्व आनन्दमय है। फिर शत्रुघ्नसे मिलकर उनका विरह-दुःख नष्ट किया। राज-तिलककी तैयारी हुई। स्नान-मार्जन होने लगा। श्रीराम भी भाइयोंकी वात्सल्य-भावसे सेवा करने लगे। भरतजी बुलाये गये, श्रीरामने अपने हाथोंसे उनकी जटा सुलझाई। तदनन्तर तीनों प्राणप्रिय भाइयोंको श्रीरामने स्वयं अपने हाथसे मल-मलकर नहलाया। भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न पितृतुल्य श्रीरामके इस वात्सल्य-भावसे मुग्ध हो गये।

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निजकर राम जटा निरुवारे॥
अन्हवाये प्रभु तीनिउँ भाई। भगत-बछल कृपालु रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटिसत सकहिं न गाई॥

शिवजी कहते हैं कि भरतजी (आदि भाइयों) के भाग्य और प्रभुकी कोमलताका बखान सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते। धन्य आतृप्रेम!!

भगवान् श्रीराम तीनों भाईयोंसे सेवित होकर राज्य करने लगे। रामराज्यकी महिमा कौन गा सकता है? भगवान् समय समय पर अपनी प्रजाको इकट्ठा कर उन्हें विविध भाँतिसे लोक-परलोकमें उन्नति और कल्याणके साधनोंके सम्बन्धमें शिक्षा देते हैं। ऐसा न्याय और दया-पूर्ण शासन, सुन्दर बर्ताव, प्रेमभाव, लोक-परलोकमें सुख पहुँचानेवाली तथा मुक्तिदायिनी शिक्षा, सबप्रकारके सुख रामराज्यके अतिरिक्त अबतक अन्य किसी भी राज्यमें कभी देखे, सुने, या पढ़े नहीं गये!

× × ×

समय समय पर भाईयोंको साथ लेकर श्रीराम वन-उपवनोंमें जाते हैं भाँति भाँतिके शिक्षाप्रद उपदेश करते हैं एक समय सब उपवनमें गये। भरतजीने श्रीरामके लिये अपना दुपट्टा बिछा दिया, भगवान् उसपर विराजे, तदनन्तर

श्रीहनूमान्‌जीके द्वारा भरतजीके प्रश्न करनेपर श्रीरामने सन्त-असन्तके लक्षण बतलाते हुए अन्तमें बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया—

परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निरनय सकल पुरान बेद कर। कहउँ तात जानहिं कोबिद्‌बर ॥
नर-सरीर धरि जे परपीरा। करहिं ते सहहिं महा-भवभीरा ॥
करहिं मोहबस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना ॥
कालरूप तिन्हकहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फलदाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ-दायक। भजहिं मोहि सुर-नर-मुनिनायक

कैसा सुन्दर सबके ग्रहण करने योग्य उपदेश है! ऐसे बड़े भाई अनन्त पुण्यबलसे ही प्राप्त होते हैं!!

× × ×

आगे चल कर लवणासुरको मारनेके लिये शत्रुघ्नके कहनेपर श्रीरामने उन्हें रणाङ्गणमें भेजना स्वीकारकर कहा कि 'वहाँका राज्य तुम्हें भोगना पड़ेगा। मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्नको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी परन्तु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। न चाहनेपर भी छोटे भाईको वचनोंमें बाँधकर राजसुख देना, राम सरीखे बड़े भाईका ही कार्य है

इसके बाद लक्ष्मण-त्यागका प्रश्न आता है, कुछ लोग इसको श्रीरामका बड़ा ही निठुर कार्य समझते हैं। जिस भाईने राज्यको और राजाको दारुण ऋषि-शापसे बचाया, उसके लिये पुरस्काररूपमें भी पहलेका विधान बदल देना उचित था, परन्तु ऐसा कहनेवाले लोग इस बातको भूल जाते हैं कि श्रीराम सत्यप्रतिज्ञ हैं, इसी सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने लक्ष्मणका त्याग कर दिया परन्तु प्यारे भाई लक्ष्मणका वियोग होते ही आप भी भरत शत्रुघ्न और प्रजा-परिजनोंको साथ लेकर परम धामको प्रयाण कर गये!

श्रीरामके भ्रातृप्रेमका यह अति संक्षिप्त वर्णन है। श्रीरामकी भ्रातृवत्सलताका इससे कुछ अनुमान हो सकता है। भाईयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाईको राज मिलनेके प्रस्तावसे अपना हक छोड़कर परम आनन्दित होना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका उस भाई भरतकी माता कैकेयी पर भक्ति करना, भरतका गुणगान करना, धरना देनेके समय भरतको और भरतपर क्रोध करनेके समय लक्ष्मणको फटकार बताकर अन्याय-मार्गसे बचाना, भरतकी इच्छापर अपने सत्यव्रतको भी छोड़ देना, लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेपर उनके साथ प्राण त्याग करनेको तैयार हो जाना, समय समयपर सदुपदेश देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर समभावसे पूर्ण प्रेम करना और लवणासुरपर आक्रमणके समय जबरदस्ती राज्याभिषेकके लिये शत्रुघ्नसे स्वीकार कराना आदि श्रीरामके आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको यथायोग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये!

श्रीभरतका भ्रातृप्रेम

सिय-राम-प्रेम-पियूष पूरन होत जनम न भरतको।
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

भरतजीकी अपार महिमा है। रामायणमें भरतजीका ही एक ऐसा उज्ज्वल चरित्र है जिसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दीख पड़ता। भरतजी धर्मके ज्ञाता, नीतिज्ञ, त्यागी, सद्‌गुणोंसे युक्त, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति, श्रद्धा-भक्तिसम्पन्न और बड़े बुद्धिमान् थे। वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, शान्ति, सरलता गम्भीरता, सौम्यता, ममता, मधुरता, अमानिता, सुहृदता और स्वामीसेवा आदि गुणोंका इनमें विलक्षण विकास था। भ्रातृप्रेमकी तो आप मानों सजीव मूर्ति थे।

श्रीराम-वनवास अच्छा ही हुआ, जिससे भरतजीका उच्च प्रेम-भाव जगत्‌में प्रकट हो गया। राम-वियोग न होता तो विश्वको इस अतुल प्रेमकी सुधा-धारामें अवगाहन करनेका सुअवसर शायद ही मिलता।

प्रेम अमिय मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटे सुर-साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर॥

गम्भीर समुद्ररूप भरतजीको अपने वनवासरूपी मन्दराचल-पर्वतसे मथकर कृपासिन्धु रघुनाथजीने सुर-सन्तोंके हितार्थ प्रेमरूपी अमृतको प्रकट किया है।

श्रीराम-वनवास और दशरथजीकी मृत्यु होनेपर गुरु वशिष्ठकी आज्ञासे भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये केकयदेश-को दूत जाते हैं। उधर भरतजीको दुःस्वप्न होता है, जिससे वे व्याकुल हो जाते हैं और माता-पिता तथा भाई-भौजाईकी मङ्गलकामनासे दानपुण्य करते हैं। दूतोंने जाकर गुरुका सन्देश सुना दिया। भरतजीने कुशल पूछी,

जिसके उत्तरमें दूतोंने भी मानो व्याजसे ही कहा कि 'आप जिनकी कुशल पूछते हैं वे कुशलसे हैं।' भरतजी उसी दिन चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचकर उसे श्रीहीन देख बड़े दुःखित हुए, उनका हृदय परिवारकी अनिष्ट आशंकासे भर गया, न तो किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत हुई और न किसी-ने कुछ कहा ही। लोग तो उस समय भरतजीको रामवनवास और दशरथकी मृत्युमें हेतु समझकर बहुतही बुरी दृष्टिसे देखते थे, अतः उनसे कोई अच्छी तरह बोलता ही कैसे? आगे चलकर प्रजाने साफ कहा है—

> मिथ्या प्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
> भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा ॥
> (वा० रा० २।४८।२८)

'झूठा बहाना करके कैकेयीने श्रीरामको सीता लक्ष्मणसहित वनमें भेज दिया है। अब हम लोग उसी प्रकार भरतके अधीन हैं, जैसे कसाईके अधीन पशु होते हैं।' लोग सामने आते हैं और दूरसे ही जुहार करके मुँह फेरकर चले जाते हैं—

> पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं जोहारहिं जाहिं ।
> भरत कुसल पूछि न सकहिं भय बिषाद मनमाहिं ॥

घबराये हुए भरतजी पिताकी खोजमें माता कैकेयीके महलमें पहुँचे और 'पिता कहाँ हैं' ऐसा पूछने लगे, कैकेयी अपने कियेपर फूली नहीं समाती थी, वह समझती थी कि भरत भी मेरी कृति सुनकर राजी होंगे, अतः उसने कठोर बनकर झट्से कह दिया—

> या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः ।
> राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः ॥
> (वा० रा० २।७२।१५)

'सब भूत-प्राणियोंकी अन्तमें जो गति होती है वही तुम्हारे पिताकी भी हुई, महात्मा तेजस्वी और यज्ञ करने-वाले राजाने सत्पुरुषोंकी गति प्राप्त की है।'

यह सुनते ही भरत शोकपीड़ित हो 'हाय! मैं मारा गया' पुकारकर सहसा पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए कहने लगे,'हाय पिताजी! मुझे दुःखसागरमें छोड़कर कहाँ चले गये—

> असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क गतोऽसि भो ।
> (अध्यात्म रा० २।७।६७)

हे पिता, मुझे रामके हाथोंमें सौंपे बिना ही आप कहाँ चले गये।' कैकेयीने विलाप करते हुए भरतको उठाकर उसके आँसू पोंछे और कहा कि 'बेटा, धीरज रक्खो, मैंने तुम्हारे लिये सब काम बना रक्खा है'-समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया। (अ० रा० २।७।६८) परन्तु भरतजीका रोना बन्द नहीं हुआ, उन्होंने कहा—

> यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।
> तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
> पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
> तस्य पादौ गृहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥
> धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः ।
> आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ॥
> पश्चिमं साधु सन्देशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ।
> (वा० रा० २।७२।३२-३५)

यह तो शीघ्र बता कि मेरे पिता-तुल्य बड़े भाई सरल-स्वभाव वह श्रीरघुनाथजी कहाँ हैं, जिनका मैं प्रिय दास हूँ। मैं उनके चरण-वन्दन करूँगा, क्योंकि अब वे ही मेरे अवलम्ब हैं। आर्य-धर्मके जाननेवाले लोग बड़े भाईको पिताके सदृश समझते हैं। माता,यह भी बतला कि धर्मज्ञ, दृढव्रत सत्यपराक्रमी मेरे पिता राजा दशरथने अन्त समयमें क्या कहा था,मैं उनका अन्तिम शुभ सन्देश सुनना चाहता हूँ।' उत्तरमें कैकेयीने कहा—

> रामेति राजा विलपन् हा सीते लक्ष्मणेति च ।
> स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ॥
> इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव ।
> कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ॥
> सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया ।
> लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥
> (वा०रा०२।७२।३६-३८)

'बेटा! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तेरे पिता अन्तकालमें 'हा राम! हा सीते!' पुकारते हुए परलोक सिधारे हैं। हाथी जिसप्रकार पाशमें बँधकर विवश हो जाता है उसी प्रकार काल-पाशसे बँधकर तेरे पिताने केवल यही कहा था कि 'अहो! सीताके साथ लौटकर आये हुए श्रीराम-लक्ष्मणको जो मनुष्य देखेंगे, वही कृतार्थ होंगे।' यह सुनते ही भरतजीके दुःखकी सीमा न रही।

> तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम् ।
> तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुत्र ते गताः ॥
> (अध्यात्म रा० २।७।७१)

भरतजीने पूछा 'माता ! क्या उस समय श्रीरामजी, लक्ष्मण या सीताजीमेंसे कोई भी नहीं था, वे सब कहाँ चले गये थे ?' तब वज्र-हृदया कैकेयीने सारी कहानी सुनाते हुए कहा कि—

रामस्य यौवराज्यार्थं पित्रा ते सम्भ्रमः कृतः ।
तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥
राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् ।
याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।
ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवैव हि ॥
रामं सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव ।
सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥
सौभ्रात्रं दर्शयन्राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ।
वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥
प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः ।

(अध्यात्म रा० २ । ७ । ७२—७६)

'तुम्हारे पिताने रामके राज्याभिषेककी बड़ी तैयारी की थी, परन्तु तुम्हें राज्य दिलानेके अभिप्रायसे मैंने उसमें विघ्न डाल दिया, वरदानी राजाने पूर्वमें मुझे दो वर देनेको कह रक्खा था, उनमेंसे एकसे मैंने तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य माँगा और दूसरेसे रामके लिये मुनि-व्रत-धारण-पूर्वक चौदह सालका वनवास माँगा । तुम्हारे पिता सत्यपरायण राजाने तुम्हें राज्य दे दिया, और रामको वन भेज दिया । पतिव्रता सीता भी रामके साथ वन चली गयी, और सच्चा भ्रातृत्व दिखाकर लक्ष्मण भी उन्हींके पीछे चल दिये । उन लोगोंके वन जानेपर उन्हींका चिन्तन करते हुए और 'हा राम, हा राम' पुकारते हुए महाराजा भी परलोक सिधार गये !'

कैकेयीके इन वचनोंसे मानो भरतजीपर वज्रपात हो गया । वे पिताकी मृत्युको तो भूल गये और अपने हेतुसे श्रीरामका वनगमन सुनते ही सहम गये, पके हुए घावपर मानो आगसी लग गयी ।

भरतहि बिसरेउ पितु-मरन सुनत राम बन गौन ।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौन ॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छत जनु लाग अँगारू ॥

भरतजी व्याकुल हो उठे और दारुण शोकमें सारी सुध-बुध भूलकर माताको धिक्कारकर चिल्लाते हुए कहने लगे—

'अरी क्रूरे ! तू राज चाहनेवाली माताके रूपमें मेरी शत्रु है, तू पतिघातिनी और कुल-घातिनी है, तू धर्मात्मा अश्वपतिकी कन्या नहीं है, उनके कुलका नाश करनेवाली राक्षसी पैदा हुई है । तू जानती नहीं कि श्रीरामके प्रति मेरा कैसा भाव है इसीसे तूने यह अन्याय किया है, मैं राम-लक्ष्मणको छोड़कर किसके बलपर राज्य करूँगा ? तूने मेरे धर्मात्मा पिताका नाश कर दिया और मेरे भाइयोंको गली गली भीख माँगनेके लिये भेजा है, एकपुत्रा माता कौसल्याको पुत्र-वियोगका दुःख दिया है, जा तू नरकमें पड़ । तू राज्यसे भ्रष्ट हो जा । अरी दुष्टे ! तू धर्मसे पतित है, भगवान् करें मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे ! मैं इस समस्त राज्यको भाईके प्रति अर्पण कर दूँगा, जा तू अग्निमें प्रवेश कर जा, जंगलमें निकल जा या गलेमें रस्सीकी फाँसी लगाकर मर जा । मैं सत्यपराक्रम रामको राज्य देकर ही अपना कलङ्क धोऊँगा और अपनेको कृतकृत्य समझूँगा ।'

(वा० रा० २ । ७४)

भरतजीने राम-प्रेममें नीति भूलकर शत्रुघ्नसे यहाँतक कह डाला कि—

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ।

(वा० रा० २ । ७८ । २२)

'हे भाई ! इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीको मैं मार डालता, यदि धर्मात्मा श्रीराम मातृहत्यारा समझकर मुझसे घृणा न करते ।'

आखिर भरतजीने माताका मुँह देखना तक पाप समझा और बोले कि—

जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहु जाई ॥

× × ×

इतनेमें कुबड़ी मन्थरा इनाम पानेकी आशासे सज-धजकर आयी । उसे देखते ही शत्रुघ्नजीका क्रोध बढ़ा, वे लगे उसे इनाम देने, परन्तु दयालु भरतजीने छुड़ा दिया । इसके बाद भरतजी माता कौसल्याके पास पहुँचे और उनकी दयनीय दशा देखकर व्याकुल हो उठे । कौसल्याजीने भी कैकेयी-पुत्रके नाते भरतपर सन्देह करके कुछ कटु शब्द कहे । कौसल्याजीके कटु वचनोंसे भरतका हृदय विदीर्ण हो गया, और वह मूर्छित होकर कौसल्याके चरणोंमें गिर पड़े, जब होशमें आये तब ऐसी-ऐसी कठोर शपथें खाने लगे, जिनसे माताका हृदय पसीज गया । भरतने कहा—
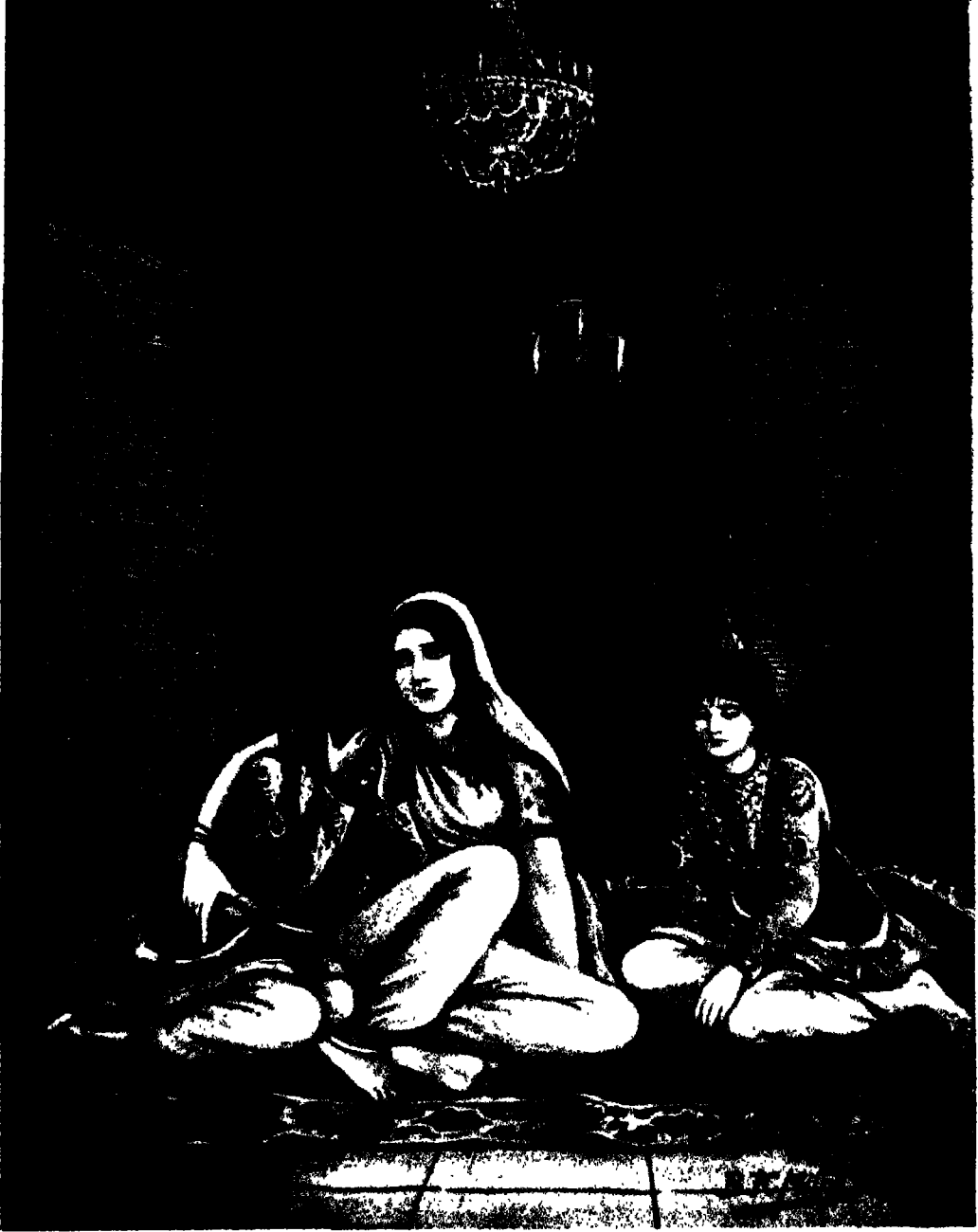
कौशल्या भरत ।

माता भरत गोद बैठारे । आंसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥

कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ।
अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ।।
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वा वशिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्यासमन्वितम् ।।
(अध्यात्म रा० २।७।८८-८९)

'माता ! श्रीरामके राज्याभिषेकके विषयमें कैकेयीने जो कुकर्म किया है, उसमें यदि मेरी सम्मति हो या मैं उसे जानता भी होऊँ तो मुझे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगे, और वह पाप भी लगे जो गुरु वशिष्ठजीको अरुन्धतीजीसहित तलवारसे हत्या करनेमें लगता है।'

कौसल्याने गद्गद होकर निर्दोष भरतको गोदमें बिठा लिया और उसके आँसू पोंछकर कहने लगी—'बेटा ! मैंने शोकमें विकल होकर तुमपर आक्षेप कर दिया था। मैं जानती हूँ—

राम प्रानतें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानतें प्यारे ।।
बिधु बिष चुवै स्रवै हिम आगी । होइ बारिचर बारिबिरागी ।
भए ग्यान बरु मिटै न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ।।
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ।।
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ।।

भरतजीके राम-प्रेमका पता कौसल्याके इन वचनोंसे खूब लगता है। भरतका चरित्रबल और चिर आचरित भ्रातृप्रेम ही था जिसने इस अवस्थामें भी कौसल्याके द्वारा भरतको भ्रातृप्रेमका ऐसा जोरदार सर्टिफिकेट दिलवा दिया।

× × ×

पिताकी शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके बाद राजसभामें गुरु, मन्त्री, प्रजा और माताओंने यहाँतक कि माता कौसल्याने भी भरतको राजसिंहासन स्वीकार करनेके लिये अनुरोध किया परन्तु भरत किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए। उन्होंने अटलरूपसे कह दिया—

आपनि दारुन दीनता कहौं सबहि सिरनाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ-पद जियकै जरनि न जाइ ।।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । को जियकी रघुबर बिनु बूझा ।।
एकहि आँक इहै मनमाहीं । प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ।।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी । भइ मोहि कारन सकल उपाधी ।।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।।
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ।।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ।।

भरतके प्रेम भरे वचन सुनकर सभी मुग्ध हो गये। रामदर्शनके लिये वनगमनका निश्चय हुआ। सभी चलनेको तैयार हो गये। रामदर्शन छोड़कर घरमें कौन रहता ?

जेहि राखहि घर रहु रखवारी । सो जानै गरदन जनु मारी ।।
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहै जग-जीवन लाहू ।।
जरौ सुसम्पति सदन-सुख, सुहृद मातु पितु भाइ ।।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ।।

भरतजीने भगवान् रामकी सम्पत्तिकी रक्षा करना कर्तव्य समझकर जिम्मेवार कर्तव्यपरायण रक्षकोंको नियुक्त कर दिया और अयोध्यावासी नर-नारी चल पड़े। उस समय भरतके साथ नौ हजार हाथी, साठ हजार धनुर्धारी, एक लाख घुड़सवार थे। इसके सिवा रथों, माताओं और ब्राह्मणियोंकी पालकियों एवं सदाचारी ब्राह्मणोंकी तथा कारीगरों एवं सामानकी बैलगाड़ियोंकी गिनती ही नहीं थी।

भरतजीने वन जाते हुए मनमें सोचा—'श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पैदल ही नंगे पाँव वन-वन घूमते हैं और मैं सवारीपर चढ़कर उनसे मिलने जा रहा हूँ, मुझे धिक्कार है।' यह विचारकर भरत और शत्रुघ्न पैदल हो लिये। दोनों भ्रातृभक्त भाइयोंको पैदल चलते देखकर अन्य लोग भी मुग्ध होकर सवारियोंसे उतरकर पैदल चलने लगे—

देखि सनेह लोग अनुरागे । उतरि चले हय गज रथ त्यागे ।।

यह देखकर माता कौसल्याने अपनी डोली भरतके पास ले जाकर मधुर वचनोंमें कहा—

तात चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ।।
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक-कृस नहि मग-जोगू ।।

माता कौसल्याकी आज्ञा मानकर भरतजी रथपर चढ़ गये। चलते-चलते शृंगवेरपुर पहुँचे। यहाँ निषादराजने भी भरतपर सन्देह किया परन्तु परीक्षा करके भरतका आचरण देख वह मन्त्रमुग्धकी भाँति भरतकी सेवामें लग गया। इंगुदीके पेड़के नीचे जहाँ श्रीरामने 'कुश-किसलय'की शय्यापर लेटकर रात बितायी थी, गुहके द्वारा उस स्थानको देखकर भरतकी विचित्र दशा हो गयी ! वे भाँति-भाँतिसे विलापकर कहने लगे 'हा ! यह बिखरी हुई पत्तोंकी शय्या क्या उन्हीं श्रीरामकी है जो सदा आकाशस्पर्शी राजप्रासादमें रहनेके अभ्यासी हैं। जिनके महल सदा पुष्पों, चित्रों और चन्दनसे चर्चित रहते हैं, जिनके महलका ऊँचा चूड़ा नृत्य करनेवाले पक्षियों और मयूरोंका विहारस्थल है, जिसकी

सोनेकी दीवारोंपर विचित्र चित्रकारीका काम किया हुआ है, वही स्वामी राम क्या इसी इंगुदी पेड़के नीचे रहे हैं? हा! इस अनर्थका कारण मैं ही हूँ—

हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः।
सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम्॥
कथमिन्दीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः।
सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः॥
(वा० रा० २।८८।१७-१९)

हाय! मैं कितना क्रूर हूँ, हा! मैं मारा गया, क्योंकि मेरे ही कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताजीके साथ ऐसी कठिन शय्यापर अनाथकी भाँति सोना पड़ा। अहो! चक्रवर्ती कुलमें उत्पन्न हुए, सबको सुख देनेवाले, सबका प्रिय करनेवाले, कमनीय-कान्ति, नील कमलके समान कान्तिवाले, रक्ताक्ष प्रियदर्शन श्रीरामचन्द्रको, जो सदा ही सुख भोगनेके योग्य तथा इस दुःख-भोगके अयोग्य हैं, मेरे ही कारण इस जमीनपर सोना पड़ा।'

तदनन्तर भरतजीने उस कुश-शय्याकी प्रणाम-प्रदक्षिणा की—

कुस-साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई॥
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥

यहाँसे भरतजी फिर पैदल चलने लगे, जब सेवकोंने घोड़ेपर सवार होनेके लिये विशेष आग्रह किया तब आप कहने लगे—

रामु पयादेहि पाय सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

भाई! मुझे तो सिरके बल चलना चाहिये। क्योंकि जहाँ रामके चरण टिके हैं वहाँ मेरा सिर ही टिकना योग्य है। सीता-राम सीता-रामका कीर्तन करते हुए भरतजी प्रयाग पहुँचे। उनके पैरोंके छाले कमलके पत्तोंपर ओसकी बूँदोंके समान चमकते हैं—

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस-कन जैसें॥

तदनन्तर महाराज भरतजी मुनि भारद्वाजके आश्रममें पहुँचे। परस्पर शिष्टाचारके उपरान्त भरद्वाजजीने भी भरतके हृदयपर मानो गहरा आघात करते हुए उनसे पूछा—

कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च॥
(वा० रा० २।९०।११)

'क्या तुम उन पापहीन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणका वधकर निष्कण्टक राज्य भोगनेकी इच्छासे तो वनमें नहीं जा रहे हो?' भरद्वाजजीके इन वचनोंसे भरतजीका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। वे कातर-कण्ठसे रोते हुए बोले—

हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।
(वा० रा० २।९०।१२)

'भगवन्! यदि त्रिकालदर्शी होकर आप भी ऐसा ही मानते हैं तब तो मैं मारा गया। ऐसा कठोर वचन नहीं कहना चाहिये।'

कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम्॥
वनवासादिकं वापि नहि जानामि किञ्चन।
भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम॥
इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वार्तमानसः।
ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वा शुद्ध एव वा॥
मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि।
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः॥
(अध्यात्म रा० २।८।४६-४९)

'हे मुनिश्रेष्ठ! कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेके लिये जो कुछ किया या राम-वनवासादिके सम्बन्धमें जो कुछ हुआ, इस विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता, इस सम्बन्धमें आपके चरणयुगल ही मेरे लिये प्रमाण हैं।' इतना कह मुनिके दोनों चरणोंको पकड़कर भरतजी कहने लगे, 'हे देव! मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध, इस बातको आप भलीभाँति जान सकते हैं। हे स्वामिन्! श्रीरामजीके राजा रहते, मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है, मैं तो सदा-सर्वदा श्रीरामका एक किंकर हूँ।'

इसपर भरद्वाजजीने प्रसन्न होकर कहा 'मैं तुम्हारी सब बातें जानता था, मैंने तो तुम्हारे भाव दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये ही तुमसे ऐसा पूछ लिया था। वास्तवमें तुम्हारे समान बड़भागी दूसरा कौन है, जिसका जीवन-धन-प्राण श्रीरामके चरणकमल हैं—

सो तुम्हार जीवन-धन-प्राना। भूरि भाग को तुम्हहिं समाना॥
सुनहु भरत रघुबर मनमाहीं। प्रेम-पात्र तुम सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती॥

मैं जानता हूँ तुम राम, सीता, लक्ष्मणको अत्यन्त प्यारे हो, वे जब यहाँ ठहरे थे तो रातभर तुम्हारी ही प्रशंसा कर रहे थे। तुम तो भरत! मानो श्रीराम-प्रेमके शरीरधारी अवतार हो।

तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

हे भरत! सुनो, हम तपस्वी उदासी बनवासी हैं, तुम्हारी खातिरसे झूठ नहीं बोलते, हमारी समझसे तो हमारी समस्त साधनाओंके फलस्वरूप हमें श्रीराम-सीता और लक्ष्मणके दर्शन मिले थे और अब श्रीरामदर्शनके फल-स्वरूप तुम्हारे दर्शन हुए हैं, सारे प्रयागनिवासियों सहित हमारा बड़ा सौभाग्य है—

भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेममगन मुनि भयऊ॥

इसके अनन्तर भरद्वाज मुनिने सिद्धियोंके द्वारा परम सम्मान्य अतिथि भरतजीका आतिथ्य-सत्कार किया, सभी प्रकारकी विलास-सामग्री उत्पन्न हो गयी; सब लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार खान-पान और भोगादिमें लग गये परन्तु भरतजीको रामके बिना कहीं चैन नहीं है, वे किसी भी प्रलोभनमें नहीं आ सकते।

संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा राखे भा भिनुसार॥

भरद्वाजजीकी सिद्धियोंद्वारा उत्पन्न सम्पत्ति मानो चकई है, और भरतजी चकवा हैं, मुनिकी आज्ञा बहेलिया है, जिसने उस रातको भरतजीको आश्रमरूपी पिंजरेमें बन्द कर रक्खा और इसी प्रकार सबेरा हो गया। चकई-चकवा रातको नहीं मिल सकते। इसी तरह विलास-सामग्री और भरतजीका (आश्रमरूपी पिंजरेमें) एक साथ रहनेपर भी मिलाप नहीं हुआ! धन्य त्यागपूर्ण भ्रातृप्रेम!

× × ×

रास्ता बतानेके लिये निषादको आगे करके महाराज भरतजी चित्रकूटकी ओर जा रहे हैं मानो साक्षात् अनुराग ही शरीर धारण करके चल रहा हो। यहाँपर गुसाईंजीने बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है। भरतजीके न तो पैरोंमें जूते हैं और न सिरपर छत्र है। वे निष्कपटभावसे प्रेमपूर्वक नियम-व्रत करते हुए जा रहे हैं। भरतजी जिस मार्गसे निकलते हैं उसीमें मानो प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ता है और वहाँका वातावरण इतना विशुद्ध हो जाता है कि वहाँके जड़-चेतन जीव भरतके भवरोग-नाशक दर्शन पाकर परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। जिन रामजीका एक बार भी नाम लेनेवाला मनुष्य स्वयं तरता और दूसरोंको तारनेवाला बन जाता है वे श्रीराम स्वयं जिन भरतजीका मनमें सदा चिन्तन किया करते हैं, उनके दर्शनसे लोगोंका बन्धन-मुक्त हो जाना कौन बड़ी बात है?

भरतजीके दर्शनसे भ्रातृप्रेमके भाव चारों ओर फैल रहे हैं, जब महाराज भरतजी श्रीराम कहकर साँस लेते हैं तब मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है, उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?

जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥

मार्गके नर-नारी भरतजीको पैदल चलते देख-देखकर नेत्रोंको सफल करते हैं और भाँति-भाँतिकी चर्चा करते हैं। वनकी नारियाँ भरतजीके शील प्रेम और भाग्यकी सराहना करती हुई कहती हैं—

चलत पयादेहिं खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु॥
भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख-दूषन हरनू॥

'अहो! पिताके दिये हुए राज्यको छोड़कर आज भरत फल-मूल खाते हुए पैदल ही श्रीरामको मनाने जा रहे हैं, इनके समान भाग्यवान् दूसरा कौन होगा? भरतजीके भाईपन, भक्ति और आचरणोंका गुण गाने और सुननेसे दुःख और पाप नाश हो जाते हैं।'

भरतका ऐसा प्रभाव पड़ना ही चाहिये था!

भरतजीसहित सबको शुभ सकुन होने लगे, जिससे प्रेम और भी बढ़ा, प्रेमकी विह्वलतासे पैर उलटे-सीधे पड़ रहे हैं, इतनेमें रामसखा निषादराजने शैलशिरोमणि चित्रकूटको दूरसे दिखलाया। अहा! इसी पुण्यवान पर्वत-पर मेरे स्वामी रघुनाथजी रहते हैं, यह सोचकर भरतजी प्रणाम करने लगे और सियावर रामचन्द्रजीकी जय-ध्वनि करने लगे। उस समय भरतको जैसा प्रेम था, उसका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते। कविके लिये तो वह उतना ही कठिन है जितना अहंता-ममतावाले मलिन मनुष्यके लिये ब्रह्मानन्द!

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकै न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह-मम-मलिन-जनेषु॥

भरतजीने सारे समुदायसहित मन्दाकिनीमें स्नान किया और सब लोगोंको वहीं छोड़कर वे केवल शत्रुघ्न और गुहको साथ लेकर आगे चले। यहाँपर भरतजीके मनकी दशाका चित्रण श्रीगोस्वामीजीने बहुत ही सुन्दर किया है—

समुझि मातुकरतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मनमाहीं॥
राम-लखन-सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

मातु मते महुँ मानि मोहि जो कुछ कहहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौं सनमानहि सेवक मानी॥
मोरे सरन रामकी पनही। राम सुस्वामि दोष सब जनही॥

धन्य भरतजी! जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु जब अयोध्याके दूत, सब नगर-निवासी, माता कौसल्या, निषाद और त्रिकालदर्शी भरद्वाजजी तकने एक एक बार सन्देह किया तो यहाँ भी लक्ष्मण-सीता मुझपर सन्देह न करेंगे या श्रीराम ही मुझे मन-मलिन समझकर न त्याग देंगे, इसका क्या भरोसा है? यह कौन मान सकता है कि माताके मतके साथ मेरा मत नहीं था। जो कुछ हो, राम चाहे त्याग दें, परन्तु मैं तो उन्हींकी जूतियोंकी शरण पड़ा रहूँगा। माताके नाते मैं तो दोषी हूँ ही। पर श्रीराम सुस्वामी हैं, वे अवश्य कृपा करेंगे।

फिर जब माताकी करतूत याद आ जाती है तो पैर पीछे पड़ने लग जाते हैं, अपनी भक्तिकी ओर देखकर कुछ आगे बढ़ते हैं और जब श्रीरघुनाथजीके स्वभावकी ओर वृत्ति जाती है तो मार्गमें जल्दी-जल्दी पाँव पड़ते हैं। इस समय भरतजीकी दशा वैसी ही है जैसे जलके प्रवाहमें भँवरकी होती है, जो कभी पीछे हटता है, कभी चक्कर खाता है और कभी फिर आगे बढ़ने लगता है। भरतके इस प्रेमको देखकर निषादराज भी तन-मनकी सुधि भूल गया।

फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथसुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जल-प्रवाह जल-अलि-गति जैसी॥
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

भरत-शत्रुघ्न प्रेममें विह्वल हुए चले आ रहे हैं—

स तत्र वज्रांकुशवारिजांचित ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमंगलान्यचेष्ट यत्पादरजः ससानुजः॥
अहो! सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि।
पश्यामि यत्पादरजोविमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम्॥
(अध्यात्म रा० २।९।२-३)

जहाँ श्रीरामके वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल आदि चिह्नोंसे अंकित शुभ चरण-चिह्न देखते हैं वहीं दोनों भाई उस चरणरजमें लोटने लगते हैं और कहते हैं कि अहो! हम धन्य हैं जो श्रीरामके उन चरणोंसे चिह्नित भूमिका दर्शन कर रहे हैं, जिन चरणोंकी रज ब्रह्मादि देवता और वेद सदा खोजते रहते हैं।

भरतकी इस अवस्थाको देखकर पशु, पक्षी और वृक्ष भी मुग्ध हो गये। पशु-पक्षी जब पाषाणकी भाँति एकटकी लगाकर भरतकी ओर देखने लगे और वृक्षादि द्रवित होकर हिलने-डोलने लगे—

होत न भूतल भाउ भरतको। अचर सचर चर अचर करत को॥

भरत-शत्रुघ्नकी यह दशा देख निषादराज प्रेममें तन्मय होकर रास्ता भूल गया। दो पागलोंमें तीसरा भी पागल होनेसे कैसे बचता? तीनों ही मतवाले हो गये। देवताओंने फूल बरसाकर निषादको सावधान करते हुए रास्ता बताया। बलिहारी प्रेमकी!

× × ×

इधर लक्ष्मणजीको सन्देह हुआ, उन्होंने समझा कि भरत बुरी नीयतसे आ रहे हैं, अतः वे नीतिको भूलकर कहने लगे, आज मैं उन्हें भलीभाँति शिक्षा दूँगा—

राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥

श्रीरामने लक्ष्मणजीकी नीयतकी प्रशंसाकर उन्हें भरतका महत्त्व समझाया, लक्ष्मणजीका चित्त शान्त हो गया!

भरतका जीवन बड़ा ही मार्मिक है। सर्वदा साधु और निर्दोष होते हुए भी सबके सन्देहका शिकार बनना पड़ता है। भरतके सदृश सर्वथा राज्यलिप्सा-शून्य धर्मात्मा त्यागी महापुरुषपर इसप्रकारके सन्देहका इतिहास जगत्‌में कहीं नहीं मिलता। इतनेपर भी भरत सब सहते हैं, ऊबकर आत्महत्या नहीं कर लेते। शान्ति, प्रेम और सहिष्णुतासे अपनी निर्दोषताका डंका बजाकर जगत्पूज्य बन जाते हैं।

कुछ ही समय बाद श्रीभरतजी वहाँ आ पहुँचे और दूरसे ही व्रतोपवासोंके कारण कृश हुए श्रीरामको वृक्षके आसनपर बैठे देखकर दौड़े और फूट-फूटकर रोते हुए यों कहने लगे—

यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम् ।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः ॥
वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः ।
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन् ॥
अधारयद्यो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा ।
सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम् ॥
यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः ।
शरीरक्लेशसंभूतं स धर्मं परिमार्गते ॥
चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपसेवितम् ।
मलेन तस्यांगमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ॥
मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥

(वा० रा० २ । ९९ । ३१ से ३६)

मेरे बड़े भाई राम, जो राजदरबारमें प्रजा और मन्त्रियों द्वारा उपासित होने योग्य हैं वे, आज इन जंगली पशुओंसे उपासित हो रहे हैं। जो महात्मा अयोध्याजीमें उत्तमोत्तम बहुमूल्य वस्त्रोंको धारण करते थे वे आज धर्माचरणके लिये इस निर्जन वनमें केवल मृगछाला धारण किये हुए हैं। जो श्रीरघुनाथजी एक दिन अपने मस्तकपर अनेक प्रकारकी सुगन्धित पुष्पमालाएँ धारण करते थे आज वे इस जटाभारको कैसे सह रहे हैं? जो ऋत्विजों-द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ कराते थे वे आज शरीरको अत्यन्त क्लेश देते हुए धर्मका सेवन कर रहे हैं। जिनके शरीरपर सदा चन्दन लगाया जाता था आज उनके शरीरपर मैल जमी हुई है। हाय! निरन्तर सुख भोगनेवाले ये मेरे बड़े भाई श्रीरामजीको आज मेरे लिये ही इतना असह्य कष्ट सहन करना पड़ रहा है, मुझ क्रूरके इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है।' यों विलाप करते और आँसुओंकी अजस्र धारा बहाते हुए भरतजी श्रीरामके समीप जा पहुँचे, परन्तु अत्यन्त दुःखके कारण उनके चरणोंतक नहीं पहुँच पाये। बीच ही में 'हा आर्य,' पुकारकर दीनकी भाँति गिर पड़े। शोकसे गला रुक गया। वे कुछ बात नहीं कह सके। इसप्रकार—

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा ॥

(वा० रा० २ । १०० । १)

'जटा वल्कलधारी भरतको हाथ जोड़े हुए जमीनपर पड़े श्रीरामने देखा, भरतजीकी कान्ति उसी प्रकार मलिन हो रही थी, जैसे प्रलयकालमें सूर्यकी होती है। श्रीरामने विवर्ण और दुर्बल भरतको बहुत ही कठिनतासे पहचाना और बड़े आदरके साथ जमीनसे उठाकर उनका सिर सूँघ गोदमें बैठाकर कहा। 'भाई! तुम्हारा यह वेश क्यों? तुम जटा-वल्कल धारणकर राज्य त्यागकर वनमें कैसे आये!' इसपर भरतजीने पिताकी मृत्युका संवाद सुनाया और कहा कि 'मेरी मा कैकेयी विधवा होकर निन्दाके घोर नरकमें पड़ी है, मैं आपका दासानुदास हूँ, भाई हूँ, शिष्य हूँ, आप मुझपर दया करें।

एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥

(वा० रा० २ । १०१ । १२)

पिताका मरणसंवाद सुनते ही श्रीरामकी आँखोंमें आँसू भर आये। माताओं और गुरु वशिष्ठादि ब्राह्मणोंको प्रणामकर तथा सबसे मिलकर श्रीरामने मन्दाकिनीपर जाकर स्नान किया, तर्पणकर पिण्डदान दिये। उस दिन सबने उपवास किया। दूसरे दिन सबलोग एकत्र हुए, तब भरतजीने राज्याभिषेकके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की और कहा कि—

राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा ।
क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे ।
राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥
इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे ।
मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित् स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ॥

(अ०रा० २ । ९ । २३-२५)

आप सबमें बड़े हैं, मेरे पिताजीके समान हैं, अतः आप राज्यका पालन कीजिये। प्रजा-पालन ही क्षत्रियोंका धर्म है। अनेक प्रकार यज्ञ करके एवं कुल-वृद्धिके लिये पुत्र उत्पन्न करके पुत्रको राजसिंहासनपर बैठानेके बाद आप वनमें पधारियेगा। यह वनवासका समय नहीं है। मुझपर कृपा कीजिये, मेरी मातासे जो कुकर्म बन गया है उसे भूलकर मेरी रक्षा कीजिये।

इतना कहकर भरतजी दण्डकी तरह श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े, श्रीरामने स्नेहसे उठाकर गोदमें बैठाया और आँखोंमें आँसू भरकर धीरेसे श्रीभरतजीसे बोले—'भाई! पिताजीने तुम्हें राज्य दिया है, और मुझे वन भेजा है—

अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः ॥
पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ।
स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् ॥

(अ० रा० २ । ९ । ३१-३२)

'अतएव हम दोनोंको यत्नपूर्वक पिताके वचनानुसार कार्य करना चाहिये। जो पिताके वचनोंकी अवहेलना कर स्वतन्त्रतासे बर्तता है वह जीता ही मरेके समान है और मृत्युके बाद नरकगामी होता है। इसलिये तुम अयोध्याका राज्य करो।' भरतने कहा—'पिताजी कामुकतासे स्त्रीके वश हो रहे थे, उनका चित्त स्थिर नहीं था, वे उन्मत्त-से थे, उन्मत्त पिताके वचनको सत्य नहीं मानना चाहिये।' इसपर श्रीरामजीने कहा, 'प्रिय भाई ! ऐसी बात मुखसे नहीं कहनी चाहिये, पिताजी न तो स्त्रीके वशमें थे, न कामुक थे और न मूर्ख थे, वे बड़े ही सत्यवादी थे और अपने पहलेके वचनोंको सत्य करनेके लिये ही उन्होंने ऐसा किया। हम रघुवंशी उनके वचनोंको कैसे असत्य कर सकते हैं ?' भरतजीने कहा—'यदि ऐसा ही है तो मैं भी आपके साथ वनमें रहकर लक्ष्मणकी भाँति आपकी सेवा करूँगा, यदि आप मेरी इस बातको भी स्वीकार न करेंगे तो मैं अनशन व्रत लेकर शरीर-त्याग कर दूँगा।' श्रीरामने उनको उलाहना देकर समझाया परन्तु जब किसी प्रकार भी भरत नहीं माने तब श्रीरामने वशिष्ठजीको इशारा किया। श्रीरामका इशारा पाकर गुरु वशिष्ठजीने भरतको एकान्तमें ले जाकर कहा—

> एकान्ते भरतं प्राह वशिष्ठो ज्ञानिनां वरः।
> वत्स ! गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यं सुनिश्चितम्॥
> रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा।
> रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः॥
> योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी।
> शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा॥
> रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः।
> तस्मात्त्यजाग्रहं तात ! रामस्य विनिवर्तने॥
>
> (अध्यात्म० रा० २। ९। ४२-४६)

'बेटा ! मैं तुमसे एक निश्चित गुह्य बात बतलाता हूँ। श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-वधार्थ प्रार्थना की थी तदनुसार ये दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, जनकनन्दिनी सीताजी योगमाया हैं और लक्ष्मणजी शेषजीके अवतार हैं जो सदा रामजीके पीछे-पीछे उनकी सेवामें लगे रहते हैं। श्रीराम रावणको मारनेके लिये वनमें अवश्य जायँगे, इसलिये तुम इन्हें लौटा ले जानेका हठ छोड़ दो।'

श्रीरामका अपने प्रति असाधारण प्रेम, अपने सेवाधर्म और गुरुके इन गुह्य वचनोंपर खयाल कर भरतजी वापस अयोध्या लौटनेको तैयार हो गये और श्रीरामकी चरण-पादुकाओंको प्रणाम करके बोले कि—

> चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्॥
> फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
> तवागमनमाकाङ्क्षन्वसन्वै नगराद्बहिः॥
> तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप।
> चतुर्दश हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम॥
> न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
> तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्॥
>
> (वा० रा० २। ११२। २३-२६)

'हे आर्य रघुनन्दन ! मैं जटा-वल्कल धारण करूँगा, फल-मूल खाऊँगा, सारे राज-काजका भार आपकी चरण-पादुकाओंको सौंपकर आपकी राह देखता हुआ चौदह सालतक नगरके बाहर निवास करूँगा। चौदहवर्षके पूर्ण होनेपर पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन यदि आपके दर्शन न होंगे तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।'

श्रीरामने भरतकी दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर अत्यन्त प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिया और ठीक अवधिपर अयोध्या लौटनेका वचन दिया। धर्मज्ञ भरतजीने श्रीरामजीके प्रति प्रणाम-प्रदक्षिणा करके स्वर्णजटित पादुकाओंको पहले मस्तकपर धारण किया और तदनन्तर उन्हें हाथीपर रखवाया ! वनसे अयोध्या लौटकर नगरसे बाहर नन्दिग्राममें पहुँचकर कहा—

> एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्।
> योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते॥
> छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।
> आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम॥
> भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम्।
> तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति॥
> क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम्।
> चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सह पादुकौ॥
> ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः।
> निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम्॥
> राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।
> राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम्॥
>
> (वा० रा० २। ११५। १४-२०)

'अहो ! मेरे पूज्य भाईने यह राज्य मुझे धरोहररूप सौंपा है, और इसके योगक्षेमके लिये ये स्वर्ण-पादुकाएँ दी

हैं। ये पादुका भगवान्‌की प्रतिनिधि हैं, अतः इनपर छत्र धारण करो, मेरे गुरु श्रीरामकी इन्हीं पादुकाओंसे धर्म-राज्यकी स्थापना होगी। मेरे भाईने प्रेमके कारण मुझे यह राज्यरूप धरोहर दी है, जबतक वे लौटकर नहीं आवेंगे तबतक मैं इसकी रक्षा और सेवा करूँगा। मेरे ज्येष्ठ बन्धु श्रीरघुनाथजी जब सकुशल यहाँ पधारेंगे तब इन दोनों पादुकाओंको उनके चरणोंमें पहनाकर आनन्दसे दर्शन करूँगा। पादुकाओंके साथ ही यह धरोहररूप राज्य उन्हें सौंपकर राज्यभारसे छूटकर मैं निरन्तर उनकी आज्ञामें रहता हुआ उनका भजन करूँगा। इसप्रकार दोनों पादुका, राज्य, और अयोध्या उन्हें पुनः सौंपकर मैं कलङ्क-मुक्त हो जाऊँगा।'

तदनन्तर पादुकाओंका अभिषेक किया गया, भरतजीने स्वयं छत्र-चामर धारण किये। भरतजी राज्यका समस्त शासन-सम्बन्धी कार्य पादुकासे पूछकर करते थे। जो कुछ भी कार्य होता था या भेंट आती थी सो सबसे पहले पादुकाको निवेदन करते, पुनः उसका यथोचित प्रबन्ध करते और वह भी पादुकाको सुना देते थे। इसप्रकार पादुकाके अधीन होकर भरतजी नन्दिग्राममें नियमपूर्वक रहने लगे। उनकी 'रहनी-करनी' के सम्बन्धमें गुसाईंजी लिखते हैं—

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस-साथरी सवाँरी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि-धरम सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। तन मन बचन तजे तिनु तूरी॥
अवधराजु सुरराजु सिहाहीं। दसरथ-धन सुनि धनद लजाहीं॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक-बागा॥
रमाबिलास राम-अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

× × × ×

देह दिनहि दिन दूबरि होई। घट न तेज बल मुख-छबि सोई॥
नित नव राम-प्रेम-पन पीना। बढ़त धरमदल मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
ध्रुव बिस्वास अवधि राका-सी। स्वामिसुरति सुर-बीथि बिकासी॥
रामप्रेम-बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि-समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस-गनेस-गिरा गम नाहीं॥

नित पूजत प्रभुपाँवरी प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति॥

पुलक गात हिय सिय-रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥

भरतजीकी इस वैराग्य-त्यागमयी मञ्जुल मूर्तिका ध्यान और उनके आचरणोंका अनुकरण कर कृतार्थ हो जाइये!

इस प्रसंगसे हम लोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि छोटे भाईको बड़े भाईके साथ कैसा त्याग और विनयपूर्ण बर्ताव करना चाहिये।

× × ×

रावणवधके अनन्तर श्रीराम सीता, लक्ष्मण, मित्रों और सेवकों सहित पुष्पक-विमानपर सवार होकर अयोध्या आ रहे हैं। उधर भरतजी महाराज अवधिके दिन गिन रहे हैं। एक दिन शेष रहा है, भरतजीकी चिन्ताका पार नहीं है। वे सोचते हैं—

कारन कवन नाथ नहिं आए। जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराए॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारबिन्द अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्पसत कोरी॥
जन-अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

श्रीरघुनाथजी क्यों नहीं आये? क्या मुझे कुटिल समझकर भुला दिया? धन्य है बड़भागी भैया लक्ष्मणको, जिसका रामके चरणकमलोंमें इतना अनुराग है। मुझे तो कपटी और कुटिल जानकर ही नाथने वनमें साथ नहीं रक्खा था (असलमें कैकेयी-पुत्रके लिये यह ठीक ही है)। मेरी करनी सोचनेसे तो सौ करोड़ कल्पोंतक भी उद्धार नहीं हो सकता। परन्तु भगवान्‌का स्वभाव बड़ा ही कोमल है वे अपने जनोंका अवगुण नहीं देखते। मेरे मनमें भगवान्‌के इस विरदका दृढ़ भरोसा है, सगुन भी शुभ हो रहे हैं, इससे निश्चय होता है भगवान् कृपापूर्वक अवश्य दर्शन देंगे। परन्तु यदि अवधि बीतनेपर भी ये अधम प्राण रहेंगे तो मेरे समान जगत्‌में दूसरा नीच और कौन होगा?

भरतकी इस व्याकुल दशाको जानकर उधर 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' की प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् भी व्याकुल हो गये, उन्होंने सन्देश देनेके लिये

हनूमान्‌जीको भेज दिया। रामविरहके अथाह समुद्रमें भरतजी-का मन डूब रहा था, इतनेहीमें ब्राह्मणका स्वरूप धारणकर श्रीहनूमान्‌जी मानो उद्धार करनेके लिये जहाजरूप होकर आ गये। हनूमान्‌जी रामगतप्राण, रामपरायण भरतजी-की स्थिति देखकर मुग्ध हो गये, उनके रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे आँसू बहने लगे। भरतकी कैसी स्थिति थी?

बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

हनूमान्‌ने भरतको आँसू बहाती हुई नाम-जप-परायण ध्यानस्थ मूर्तिको देखकर परम सुखसे भरकर कानोंमें अमृत बरसानेवाली वाणीसे कहा—

जासु बिरह सोचहु दिनराती। रटहु निरन्तर गुनगन पाँती॥
रघुकुल-तिलक सुजन-सुखदाता।आयहु कुसल देव-मुनि-त्राता॥
रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। सीता-अनुजसहित प्रभु आवत॥

यह वचन सुनते ही भरतजीके सारे दुःख मिट गये। प्यासेको अमृत मिल गया। प्राणहीनमें प्राण आगये। भरतजी हर्षोन्मत्त होकर पूछने लगे—

को तुम तात! कहाँतें आये। मोहि परमप्रिय बचन सुनाये॥

हनूमान्‌जीने कहा कि—

मारुत-सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना।
दीनबन्धु रघुपति कर किंकर। × × ×

भरतजीने उठकर हनूमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया—

सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥

प्रेम हृदयमें नहीं समाता है, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह रही है, शरीर पुलकित हो रहा है। भरतजी कहते हैं-

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोहि राम पिरीते॥
बार बार बूझी कुसलाता। तोकहँ देउँ काह सुनु भ्राता॥
यहि सन्देश सरिस जगमाहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिंन तात! उरिन मैं तोहीं। अब प्रभुचरित सुनावहु मोहीं॥

हनूमान्‌जीने चरण-वन्दन कर सारी कथा संक्षेपमें सुना दी। तदनन्तर भरतजीने फिर पूछा—

कहु कपि कबहुँ कृपालु गोसाईं। सुमिरहिं मोहि निज दासकि नाईं॥

निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मोहि सुमिरन करयो,
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तनु चरननि परयो।
रघुबीर निज मुख जासु गुन-गन कहत अग-जग-नाथ जो,
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत, सदगुन-सिंधु सो॥

श्रीहनूमान्‌जीने गद्गद होकर कहा—

राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरतसन हरष न हृदय समात॥

भरत और हनूमान् बार-बार गले लगकर मिलते हैं। हर्षका पार नहीं है। हनूमान्‌जी वापस लौट गये, इधर सारे रनिवासमें और नगरमें खबर भेजी गयी। सभी ओर हर्ष छा गया। सारा नगर सजाया गया!

भगवान्‌का विमान अयोध्यामें पहुँचा। भरतजी, शत्रुघ्नजी भगवानीके लिये सब मन्त्रियों और पुरवासियों सहित सामने गये। विमान जमीनपर उतरा, भरतजी विमानमें जाकर श्रीरामके चरणोंमें लोट गये। और आनन्दाश्रुओंसे उनके चरणोंको धोने लगे। श्रीरघुनाथजीने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर भरतजी भाई लक्ष्मणजीसे मिले और उन्होंने माता सीताको प्रणाम किया। श्रीरामने भरतको गोदमें बैठाकर विमानको भरतके आश्रम-की ओर जानेकी आज्ञा दी। तदनन्तर नगरमें आकर सबसे मिले। श्रीरामने भरतकी जटा अपने हाथोंसे सुलझाई। फिर तीनों भाइयोंको नहलाया। इसके बाद स्वयं जटा सुलझाकर स्नान किया।

तदनन्तर भगवान् राजसिंहासनपर बैठे। तीनों भाई सेवामें लगे। समय-समयपर भरतजी अनेक सुन्दर प्रश्न करके रामसे विविध उपदेश प्राप्त करने लगे। और अन्तमें श्रीरामके साथ ही परमधाम पधारे।

श्रीभरतजीका चरित्र विलक्षण और परम आदर्श है। उनका रामप्रेम अतुलनीय है, इसीसे कहा गया है कि—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम, राम जप जेही॥

वास्तवमें भरतजीका भ्रातृ-प्रेम जगत्‌के इतिहासमें एक ही है। इनका राज्य-त्याग, संयम, व्रत, नियम आदि सभी सराहनीय और अनुकरणीय हैं। इनके चरित्रसे स्वार्थत्याग, विनय, सहिष्णुता, गम्भीरता, सरलता, क्षमा, विराग और प्रधानतः भ्रातृभक्तिकी बड़ी ही अनुपम शिक्षा लेनी चाहिये।

श्रीलक्ष्मणका भ्रातृप्रेम

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारबिन्द-अनुरागी॥

राम-सेवकके नाते लक्ष्मणजीकी महिमा अपार है। लक्ष्मणजीका अवतार श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनकी सेवा करनेके लिये ही हुआ था। इसीसे आज रामकी श्याम मूर्तिके साथ लक्ष्मणकी गौर मूर्ति भी स्थापित होती है और रामके साथ लक्ष्मणका नाम लिया जाता है। राम-भरत

रामेश्वर मन्दिरका एक स्तम्भ

रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार

रामेश्वर मन्दिरका एक पार्श्व प्रवेशद्वार

श्रीरामेश्वरजीके मन्दिरकी प्रदक्षिणा (फेरी)

राम झरोखा

लक्ष्मण-तीर्थ (तालाब)

या राम-शत्रुघ्न कोई नहीं कहता, परन्तु राम- लक्ष्मण सभी कहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी धीर, वीर, तेजस्वी, ब्रह्मचर्यव्रती, इन्द्रियविजयी, पराक्रमी, सरल,सुन्दर, तितिक्षा-सम्पन्न, निर्भय, निष्कपट, त्यागी, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, तपस्वी, सेवाधर्मी, नीतिके जाननेवाले, सत्यव्रती और रामगतप्राण थे। उनका सबसे मुख्य धर्म श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनका अनुसरण करना था। वे श्रीरामसेवामें अपने आपको भूल जाते थे। भरतजीका विनय और मधुरता युक्त गम्भीर प्रेम जैसे अमोलख है, वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीका वीरतायुक्त सेवामूलक अनन्य प्रेम भी परम आदर्श है।

लड़कपनमें साथ खेलने-खानेके उपरान्त पन्द्रह वर्षकी उम्रमें ही लक्ष्मणजी अपने बड़े भाई श्रीरामजीके साथ विश्वामित्रके यज्ञरक्षार्थ चले जाते हैं। वहाँ सब प्रकारसे भाईकी सेवामें नियुक्त रहते हैं। इनकी सेवाके दिग्दर्शनमें जनकपुरका वह दृश्य देखना चाहिये, जहाँ रातके समय विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण महाराजा जनकके अतिथिरूपमें डेरेपर ठहरे हैं। गुसाईंजी उनके बर्तावका इसप्रकार वर्णन करते हैं—

समय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरु-पद-पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥
निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं सन्ध्या बन्दन कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई॥
जिन्हके चरनसरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु-पद-पदुम पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि आग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चाँपत चरन लखन उर लाए। सभय सप्रेम परम सचुपाए॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पदजलजाता॥
उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुन-सिखा-धुनि कान।
गुरुतें पहिलेहि जगतपति जागे राम सुजान॥

अहा, क्या ही सुन्दर आदर्श दृश्य है! श्रीराम-लक्ष्मण नगर देखने गये थे, वहाँ नगरवासी नर-नारी और समवयस्क तथा छोटे बालकोंके प्रेममें रम गये, परन्तु अबेर होते देख गुरु विश्वामित्रजीका डर लगा। अतएव बालकोंको समझा-बुझाकर वह मिथिलामोहिनी जुगल-जोड़ी डेरेपर लौट आयी। आकर भय, प्रेम, विनय और संकोचके साथ गुरु-चरणोंमें प्रणामकर दोनों भाई चुपचाप खड़े रहे, जब गुरुजीने आज्ञा दी तब बैठे, फिर गुरुकी आज्ञासे ठीक समय-पर सन्ध्यावन्दन किया। तदनन्तर कथा-पुराण होते-होते दो पहर रात बीत गयी। तब मुनि विश्वामित्रजी सोये। अब दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे। मुनि बार-बार रोकते और सोनेके लिये कहते हैं पर चरण दबानेके लाभ-को वे छोड़ना नहीं चाहते, बहुत कहने-सुननेपर श्रीराम भी लेट गये, अब लक्ष्मणजी उनके चरणोंको हृदयपर रखकर भय-प्रेम सहित चुपचाप दबाने लगे। ऐसे चुपचाप प्रेमसे दबाने लगे कि महाराजको नींद आ जाय। श्रीरामने बार-बार कहा, तब लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणकमलोंका हृदयमें ध्यान करते हुए सोये। प्रातःकाल मुर्गेकी ध्वनि सुनते ही सबसे पहले लक्ष्मणजी उठे, उनके बाद श्रीरामजी और तदनन्तर गुरु विश्वामित्रजी। इस आदर्श रात्रिचर्यासे ही दिनचर्याका भी अनुमान कर लीजिये। आज ऐसा दृश्य सपनेकी-सी बात हो रही है। इससे अनुमान हो सकता है कि श्रीलक्ष्मणजी रामकी किसप्रकार सेवा करते थे।

× × ×

श्रीलक्ष्मणजीकी भ्रातृभक्ति अतुलनीय है। वे सब कुछ सह सकते थे परन्तु श्रीरामका अपमान, तिरस्कार और दुःख उनके लिये असह्य था। अपने लिये-अपने सुखोंके लिये उन्होंने कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। अपने जीवनको तो सर्वथा त्यागमय और रामकी कठिन सेवामें ही लगाये रक्खा, परन्तु रामका तनिक-सा तिरस्कार भी उनको तलमला देता और वे भयानक कालनागकी भाँति फुंकार मार उठते। फिर उनके सामने कोई भी क्यों न हो वे किसीकी भी परवा नहीं करते।

जनकपुरके स्वयंवरमें जब शिवधनुषको तोड़नेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ, तब जनकजीको बड़ा क्लेश हुआ, उन्होंने दुःखभरे शब्दोंमें कहा—

अब जनि कोउ माखइ भट मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
जो जनतेउँ बिनु भट महि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई॥

जनकजीकी इस वाणीको सुनकर सीताकी ओर देख-कर लोग दुखी हो गये। परन्तु लक्ष्मणजीके मनकी कुछ दूसरी ही अवस्था है। जब जनकके मुँहसे 'अब कोई वीरता-का अभिमान न करे' यह शब्द निकले, तभी वे अकुला उठे, उन्होंने सोचा कि श्रीरामकी उपस्थितिमें जनक यह क्या कह रहे हैं, परन्तु रामकी आज्ञा नहीं थी, चुप रहे लेकिन जब जनकजीने बार-बार धरणीको वीरविहीन

बतलाया तब लक्ष्मणजीकी भौंहें टेढ़ी और आँखें लाल हो गयीं, उनके होठ काँपने लगे, आखिर उनसे नहीं रहा गया, उन्होंने श्रीरामके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥
कही जनक जस अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥

जहाँ रघुवंशमणि श्रीरामजी बैठे हों वहाँ ऐसी अनुचित वाणी कौन कह सकता है? लक्ष्मण कहते हैं कि 'हे श्रीराम! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वभावसे ही इस ब्रह्माण्डको गेंदकी तरह हाथमें उठा लूँ और—

काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी ॥

फिर आपके प्रतापसे इस बेचारे पुराने धनुषकी तो बात ही कौन-सी है, आज्ञा मिले तो दिखाऊँ खेल—

कमल-नाल जिमि चाप चढ़ाऊँ। जोजन सत प्रमान लै धाऊँ ॥
तोरउँ छत्रकदण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करउँ प्रभु-पद-सपथ पुनि न धरउँ धनु हाथ ॥

लक्ष्मणजीके इन वचनोंसे पृथ्वी काँप उठी, सारा राज-समाज डर गया, सीताजीका सकुचाया हुआ हृदय-कमल खिल उठा, जनकजी सकुचा गये, विश्वामित्रसहित सब मुनिगणों और श्रीरघुवीरजीको हर्षके मारे बारम्बार रोमाञ्च होने लगा। लक्ष्मणजीने अपनी सेवा बजा दी, रामका महत्त्व लोगोंपर प्रकट हो गया। वीररसकी जीती-जागती मूर्ति देखकर लोग विमुग्ध हो गये। परन्तु इस वीररसके महान् चित्रपटको श्रीरामने एक ही सैनसे पलट दिया—

सयनहिं रघुपति लखन निवारे। प्रेमसमेत निकट बैठारे ॥

तदनन्तर शिवजीका धनुष गुरुकी आज्ञासे श्रीरामने भंग कर दिया। परशुरामजी आये और कुपित होकर धनुष तोड़नेवालेका नाम-धाम पूछने लगे। श्रीरामने प्रकारान्तरसे धनुष तोड़ना स्वीकार किया।

नाथ संभु-धनु भंजनिहारा। होइहहिं कोउ एक दास तुम्हारा ॥

यहाँ परशुराम-लक्ष्मणका संवाद बड़ा ही रोचक है। लक्ष्मणने व्यंग-भावसे श्रीरामकी महिमा सुनायी है और श्रीरामने भाई लक्ष्मणकी उक्तियोंका प्रकारान्तरसे समर्थन किया। मानो दोनों भाई अन्दरसे मिले हुए ऊपरसे दो प्रकारका बर्ताव करते हुए एक दूसरेका पक्ष समर्थन कर रहे हैं। आखिर श्रीरामके मृदु गूढ़ वचन सुनकर परशुरामजीकी आँखें खुलीं, तब उन्होंने कहा—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटहि संदेहू ॥

धनुष हाथमें लेते ही आपसे आप चढ़ गया—

छुवत चाप आपहि चढ़ि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ ॥

भगवान्‌का प्रभाव समझ परशुरामजी गद्गद हो गये और उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको प्रणामकर अपना रास्ता लिया।

चारों भाइयोंका विवाह हुआ। सब अयोध्या लौटे। राज-परिवार सुखके समाजसे पूर्ण हो गया। माताएँ आनन्दमें भर उठीं।

× × ×

तदनन्तर श्रीभरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। परन्तु लक्ष्मणजी नहीं गये। उन्हें ननिहाल ससुरारकी, नगर-बस्तीकी कुछ भी परवा नहीं, रामजी साथ चाहिये। रामके बिना लक्ष्मण नहीं रह सकते। छाया कायासे अलग हो तो लक्ष्मण रामसे अलग हों, उन्हें रातके समय न तो रामके बिना नींद आती है और न रामके प्रसादको छोड़कर और कुछ खानेको कभी जी ही चाहता है—

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ॥

राम-राज्याभिषेककी तैयारी हुई, लक्ष्मणजीके आनन्दका पार नहीं है। श्रीरामको राजसिंहासनपर देखनेके लिये लक्ष्मण कितने अधिक लालायित थे, इसका पता राजसिंहासनके बदले वनवासकी आज्ञा होनेपर लक्ष्मणजीके भभके हुए क्रोधानलको देखनेसे ही लग जाता है। जो बात मनके जितनी अधिक प्रतिकूल होती है, उसपर उतना ही अधिक क्रोध आता है।

जब श्रीराम वनवास जाना स्वीकार करके कैकेयी और दशरथकी प्रणाम-प्रदक्षिणाकर माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये महलसे बाहर निकले, तब लक्ष्मणजी भी क्रोधमें भरकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनके पीछे-पीछे गये। वे हर हालतमें श्रीरामके साथ हैं।

दोनों भाई माता कौसल्याके पास पहुँचे। श्रीरामने सारी कथा सुनायी। माताके दुःखका पार नहीं रहा, माताने रामको रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीराम न माने। श्रीरामका यह कार्य लक्ष्मणजीको नहीं रुचा, वे श्रीरामके पूर्ण अनुयायी थे परन्तु श्रीरामको अपना हक छोड़ते देखकर उनसे नहीं रहा गया। लक्ष्मणजीके चरित्रमें यह एक विशेषता है, वे जो बात अपने मनमें जँचती है, सो बड़े

जोरदार शब्दोंमें रामके सामने रखते हैं, उनकी उक्तियोंका खण्डन करते हैं, कभी विह्वल होकर विलाप नहीं करते। पुरुषत्व तो वचनमें टपका पड़ता है, परन्तु जब श्रीरामका अन्तिम निर्णय जान लेते हैं, तब अपना सारा पक्ष सर्वथा छोड़कर रामका सर्वतोभावसे अनुगमन करने लगते हैं। दशरथजी और कैकेयीके इस आचरणसे दुखी हुई माता कौसल्याको विलाप करते देख भ्रातृप्रेमी लक्ष्मणजी मातासे कहने लगे—

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥
हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु॥
(वा० रा० २। २१। १६–१८)

'हे देवि! मैं सत्य, धनुष, दानपुण्य और इष्टकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं यथार्थ ही सब प्रकारसे अपने बड़े भाई श्रीरामका अनुयायी हूँ। यदि श्रीराम जलती हुई अग्निमें या घोर वनमें प्रवेश करें तो मुझे पहले ही उनमें प्रवेश हुआ समझो! हे माता! जैसे सूर्य उदय होकर सब प्रकारके अन्धकारको हर लेता है उसी प्रकार मैं अपने पराक्रमसे आपके दुःखको दूर करूँगा। आप और श्रीरामचन्द्र मेरा पराक्रम देखें।' इन वचनोंमें भ्रातृप्रेम कितना छलकता है!

इसके अनन्तर वे श्रीरामसे हर तरहकी वीरोचित बातें कहने लगे—'हे आर्य! आप तुरन्त राज्यपर अधिकार कर लें। आप किसी तरहका भय न करें, मैं धनुष-बाण हाथमें लिये आपकी सेवा और रक्षाके लिये सर्वदा तैयार हूँ। मैं जब कालरूप होकर आपकी सहायता करूँगा तब किसकी शक्ति है जो कुछ भी विघ्न कर सके? अयोध्याभरमें एक कैकेयीको छोड़कर दूसरा कोई भी आपके विरुद्ध नहीं है, परन्तु यदि सारी अयोध्या भी हो जाय तो मैं अयोध्या-भरको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मनुष्यहीन कर डालूँगा। भरतके मामा या उनके कोई भी हितैषी मित्र पक्ष लेंगे तो उनका भी वध कर डालूँगा। कैकेयीमें आसक्त पिताजी यदि कैकेयीके उभाड़नेसे हमारे शत्रु होंगे तो उनको कैद कर लूँगा या मार डालूँगा। इसमें मुझे पाप नहीं लगेगा। अन्याय करनेवालोंको शिक्षा देना धर्म है।'

त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम्।
काऽस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन॥
(वा० रा० २।२१।१५)

'हे शत्रुसूदन! आपसे और मुझसे वैर करके किसकी शक्ति है जो भरतको राज्य दे सके!'

श्रीरामने लक्ष्मणको सान्त्वना देते हुए कहा—

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम्।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम्॥
धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमनुत्तमम्॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम्।
पितुर्हि वचनाद्वीर! कैकेय्याहं प्रचोदितः॥
तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम्।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम्॥
(वा० रा० २।२१।३९।४१।४३।४४)

'लक्ष्मण! मैं जानता हूँ, तुम्हारा मुझमें बड़ा प्रेम है और यह भी जानता हूँ कि तुममें अपराजेय पराक्रम, तेज और सत्त्व है, परन्तु भाई! इस लोकमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य भरा है। पिताके वचन धर्म और सत्यसे युक्त हैं। हमें उनका पालन करना चाहिये। हे वीर! सत्य और धर्मको श्रेष्ठ समझनेवाला मैं कैकेयीके द्वारा प्राप्त हुई पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। तुम भी इस क्षात्रधर्मवाली उग्र वृत्तिको छोड़ दो और इस तीक्ष्णताका त्यागकर विशुद्ध धर्मका आश्रय ले मेरे विचारका अनुसरण करो।

हे भाई! तुम क्रोध और दुःखको छोड़कर धैर्य धारण कर, अपमानको भूलकर हर्षित हो जाओ। पिताजी सत्यवादी और सत्यप्रतिज्ञ हैं, वे सत्यच्युतिके भयसे परलोकसे डर रहे हैं, मेरे द्वारा सत्यका पालन होनेसे वे निर्भय हो जायँगे। मेरा अभिषेक न रोका गया तो पिताजीका सत्य जायगा, जिससे उनको बड़ा दुःख होगा और उनका दुखी होना मेरे लिये भी बड़े ही दुःखकी बात होगी। हे भाई! मेरे वनवासमें दैव ही प्रधान कारण है, नहीं तो जो कैकेयी माता मुझपर इतना अधिक स्नेह रखती थी वह मेरे लिये वनवासका वरदान क्यों माँगती? उसकी बुद्धि दैवने ही बिगाड़ी है। आजतक कौसल्या और कैकेयी आदि सभी माताओंने मेरे साथ एक-सा बर्ताव किया है। कैकेयी मुझे

कभी कटु वचन नहीं कह सकती, यदि वह प्रबल दैवके वशमें न होती। अतएव तुम मेरी बात मानकर दुःख-रहित हो अभिषेककी तैयारीको जल्दी-से-जल्दी हटवा दो।'

श्रीरामके वचन सुनकर कुछ देर तो लक्ष्मणने सिर नीचा करके कुछ सोचा परन्तु पुरुषार्थकी मूर्ति लक्ष्मणको रामकी यह दलील नहीं जँची, उनकी भौंहें चढ़ गयीं, सिरमें बल पड़ गया, वे क्रोधमें भरे बिलके साँपकी तरह साँस लेने लगे और पृथ्वीपर हाथ पटककर बोले—'आप ये भ्रमकी-सी बातें कैसे कह रहे हैं, आप तो महावीर हैं—

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।
वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते॥
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति॥
द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च।
दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति॥
(वा० रा० २।२३।१६–१८)

'दैव दैव तो वही पुकारा करते हैं जो पौरुषहीन और कायर होते हैं। जिन शूरवीरोंके पराक्रमकी जगत्‌में प्रसिद्धि है, वे कभी ऐसा नहीं करते। जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे दैवको दबा सकते हैं, उनके कार्य दैववश असफल होनेपर भी उन्हें दुःख नहीं होता। हे रघुनन्दन! आज दैव और पुरुषार्थके पराक्रमको लोग देखेंगे, इनमें कौन बलवान है, इस बातका आज पता लग जायगा।'

अतएव हे आर्य—

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत्प्राणयशः सुहृज्जनैः।
यथा तवेयं वसुधा वशा भवेत्तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः॥
(वा० रा० २।२३।३९)

'मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपके किस शत्रुको आज प्राण, यश और मित्रोंसे अलग करूँ (मार डालूँ)। प्रभो! मैं आपका किंकर हूँ, ऐसी आज्ञा दें जिससे इस सारी पृथ्वीपर आपका अधिकार हो जाय!' इतना कहकर लक्ष्मणजी राम-प्रेममें रोने लगे। भगवान् श्रीरामने अपने हाथोंसे उनके आँसू पोंछकर उन्हें बार-बार सान्त्वना देते हुए कहा कि 'भाई! तुम निश्चय समझो कि माता-पिताकी आज्ञा मानना ही पुत्रका उत्तमोत्तम धर्म है, इसीलिये मैं पिताकी आज्ञा माननेको तैयार हुआ हूँ। फिर इस राज्यमें रक्खा ही क्या है, यह तो स्वप्नकी दृश्यावलिके सदृश है—

यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत्।
यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते॥
भोगामेघवितानस्थ विद्युल्लेखेव चञ्चलाः।
आयुरप्यग्निसंतप्तलोहस्थजलबिन्दुवत्॥
क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज॥
तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते।
देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः॥
आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः।
यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः॥
तावत्संसारदुःखौघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः।
तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय॥
(अध्यात्मरामायण २।४)

'यदि यह सब राज्य और शरीरादि दृश्य पदार्थ सत्य होते तो उसमें तुम्हारा परिश्रम कुछ सफल भी हो सकता, परन्तु ये इन्द्रियोंके भोग तो बादलोंके समूहमें बिजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं और यह आयु अग्निसे तपे हुए लोहेपर जलकी बूँदके समान क्षणविनाशी है। भाई! यह क्रोध ही मानसिक सन्तापकी जड़ है, क्रोधसे ही संसारका बन्धन होता है, क्रोध धर्मका नाश कर डालता है, अतएव इस क्रोधको त्यागकर शान्तिका सेवन करो, फिर संसारमें तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। आत्मा तो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि आदि सबसे विलक्षण ही है। वह आत्मा शुद्ध, स्वयंप्रकाश निर्विकार और निराकार है। जबतक यह पुरुष आत्माको देह, इन्द्रिय, प्राण आदिसे अलग नहीं जानता, तब तक उसे संसारके जन्म-मृत्यु-जनित दुःखोंसे पीड़ित होना पड़ता है, अतएव हे लक्ष्मण! तुम अपने हृदयमें आत्माको सदा-सर्वदा इनसे पृथक् (इनका द्रष्टा) समझो!'

× × ×

श्रीराम वन जानेको तैयार हो गये, सीताजी भी साथ जाती हैं, अब लक्ष्मणजीका क्रोध तो शान्त है परन्तु वे श्रीरामके साथ जानेके लिये व्याकुल हैं, दौड़कर श्रीरामके चरणोंमें लोट जाते हैं और रोते हुए कहते हैं—'हे रघुनन्दन आपने मुझसे कहा था कि तू मेरे विचारका अनुसरण कर, फिर आज आप मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हैं

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना॥
(वा० रा० २।३१।५)

'हे भाई! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, मोक्ष या संसारका कोई भी ऐश्वर्य नहीं चाहता।' यहाँ तो लक्ष्मणकी यह

तेजोमयी विकराल मूर्ति और कहाँ यह माताके सामने बच्चेकी-सी फरियाद! यही तो लक्ष्मणजीके भ्रातृप्रेमकी विशेषता है। श्रीरामजी भाई लक्ष्मणके इस व्यवहारसे मुग्ध हो गये और उन्हें छातीसे लगाकर बोले—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे॥
(वा० रा० २।३१।१०)

भाई! तुम मेरे स्नेही हो, धर्मपरायण, धीर, सदा सन्मार्गमें स्थित हो, मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो, मेरे वशवर्ती हो, मेरे आज्ञाकारी हो और मेरे मित्र हो! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, परन्तु तुम्हें साथ ले चलनेसे यहाँ दुःखी पिता और शोकसन्तप्त माताओंको कौन सान्त्वना देगा?

मात-पिता-गुरु-स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनमकर नतरु जनम जग जाय॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु पद सेवकाई॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥

बड़ी ही शुभ शिक्षा है, परन्तु चातक तो मेघकी स्वाति-बूँदको छोड़कर गंगाकी ओर भी नहीं ताकना चाहता, एकनिष्ठ लक्ष्मण एक बार तो सहम गये प्रेम-वश कुछ बोल न सके, फिर अकुलाकर चरणोंमें गिर पड़े और आँसुओंसे चरण धोते हुए बोले—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरमनीति उपदेसिअ ताही। कीरति, भूति, सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

भगवान्ने देखा कि अब लक्ष्मण नहीं रहेंगे, तब उन्हें आज्ञा दी, अच्छा—

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

लक्ष्मण डरते-से माता सुमित्राजीके पास गये कि कहीं माता रोक न दें। परन्तु वह भी लक्ष्मणकी ही माँ थीं, उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

'जाओ बेटा! सुखसे वनको जाओ, श्रीरामको दशरथ, सीताको मुझे और वनको अयोध्या समझना। बेटा!

अवध तहाँ जहँ रामनिवासू। तहँइ दिवस जहँ भानुप्रकासू॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति-भगत जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम-बिमुख सुत तें बड़ि हानी॥

लक्ष्मणका मनचाहा हो गया, वे दौड़कर श्रीरामके पास पहुँच गये और सीताके साथ दोनों भाई अयोध्यावासियोंको रुलाकर वनकी ओर चल दिये।

× × ×

एक दिनकी बात है, वनमें चलते-चलते सन्ध्या हो गयी। कभी पैदल चलनेका किसीको अभ्यास नहीं था, तीनों जने थके हुए थे, वनमें चारों ओर काले साँप घूम रहे थे। लक्ष्मणने जगह साफकर एक पेड़के नीचे कोमल पत्ते बिछा दिये। श्रीराम-सीता उसपर बैठ गये। लक्ष्मणजीने भोजनका सामान जुटाया। श्रीराम इस कष्टको देखकर स्नेहवश लक्ष्मणसे बार-बार कहने लगे कि 'भाई! तुम अयोध्या लौट जाओ, वहाँ जाकर माताओंको सान्त्वना दो। यहाँके कष्ट मुझको और सीताको ही भोगने दो।' इसके उत्तरमें लक्ष्मणने बड़े ही मार्मिक शब्द कहे—

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ॥
नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप!
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना॥
(वा० रा० २।५३।३१-३२)

'हे रघुनन्दन! सीताजी और मैं आपसे अलग रहकर उसी तरह नहीं जी सकते, जैसे जलसे निकालनेपर मछलियाँ नहीं जी सकतीं। हे शत्रुनाशन! आपको छोड़कर मैं माता, पिता, भाई शत्रुघ्न और स्वर्गको भी नहीं देखना चाहता।'

धन्य भ्रातृ-प्रेम! इसीलिये तो श्रीराम भी लक्ष्मणके साथ प्राण देनेको तैयार हुए थे!

जिस समय निषादराज गुहके यहाँ श्रीराम-सीता रातके समय लक्ष्मणजीके द्वारा तैयार की हुई घासपत्तोंकी शय्यापर सोते हैं उस समय श्रीलक्ष्मण कुछ दूरपर खड़े पहरा दे रहे हैं, गुहक आकर कहता है 'आपको जागनेका अभ्यास

नहीं है आप सो जाइये। मैंने पहरेका सारा प्रबन्ध कर दिया है।' इस बातको सुनकर श्रीलक्ष्मणजी कहने लगे-

> कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
> शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा॥
> (वा० रा० २।८६।१०)

'दशरथनन्दन श्रीराम सीताके साथ जमीनपर सो रहे हैं, फिर मुझे कैसे तो नींद आ सकती है और कैसे मेरा जीवन सुखकर हो सकता है?'

वनमें श्रीलक्ष्मणजी हर तरहसे श्रीराम-सीताकी सेवा करते हैं। चित्रकूटमें काठ और पत्ते इकट्ठे करके लक्ष्मणने ही कुदालसे मिट्टी खोदकर सुन्दर कुटिया बनायी थी। फल-मूल लाना, हवनकी सामग्री इकट्ठी करना, सीताके गहने-कपड़ोंकी बाँसकी पेटी तथा शस्त्रास्त्रोंको उठाकर चलना, जाड़ेकी रातमें दूरसे खेतोंमेंसे होकर पानी भरकर लाना। रास्ता पहचाननेके लिये पेड़ों-पत्थरोंपर पुराने कपड़े लपेट रखना, झाड़ू देना, चौका देना, बैठनेके लिये वेदी बनाना, जलानेके लिये काठ ईंधन इकट्ठा करना और रातभर जागकर पहरा देते रहना, यह सारे काम लक्ष्मणजीके जिम्मे हैं और बड़े हर्षके साथ वे सब कार्य सुचारुरूपसे करते हैं।

> सेवहिं लखन करम मन बानी। जाइ न सील सनेह बखानी॥
> सेवहिं लखन सीय-रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥

× × ×

आज्ञाकारितामें तो लक्ष्मणजी बड़े ही आदर्श हैं। कितनी भी विपरीत आज्ञा क्यों न हो, वे बिना 'किन्तु-परन्तु' किये चुपचाप उसे सिर चढ़ा लेते हैं, आज्ञा-पालनके कुछ दृष्टान्त देखिये-

१-वनवासके समय आपने आज्ञा मानकर लखनेको सारी इच्छा एकदम छोड़ दी।

२-भरतके चित्रकूट आनेके समय बड़ा गुस्सा आया, परन्तु श्रीरामकी आज्ञा होते ही तथ्य समझकर शान्त हो गये।

३-खर-दूषणसे युद्ध करनेके समय श्रीरामने आज्ञा दी कि 'मैं इनके साथ युद्ध करता हूँ, तुम सीताजीको साथ ले जाकर पर्वत-गुफामें जा बैठो।' लक्ष्मण-सरीखे तेजस्वी वीरके लिये लड़ाईके मैदानसे हटनेकी यह आज्ञा बहुत ही कड़ी थी, परन्तु उन्होंने चुपचाप इसे स्वीकार कर लिया।

४-श्रीसीताजी अशोकवाटिकासे पालकीमें आरही थीं। श्रीरामने पैदल आनेकी विभीषणको आज्ञा दी इससे लक्ष्मणजीको एक बार दुःख हुआ, परन्तु कुछ भी नहीं बोले।

५-श्रीरामके द्वारा तिरस्कार पायी हुई सीताने जब चिता जलानेके लिये लक्ष्मणजीको आज्ञा दी, तब श्रीरामका इशारा पाकर मर्म-वेदनाके साथ इन्होंने चिता तैयार कर दी!

६-सीता-वनवासके समय श्रीरामकी आज्ञासे पत्थरका-सा कलेजा बनाकर अन्तरके दुःखसे दग्ध होते हुए भी सीताजीको वनमें छोड़ आये।

इनके जीवनमें राम-आज्ञा-भंगके सिर्फ दो प्रसंग आते हैं, जिनमें प्रथम तो, सीताको अकेले पर्णकुटीमें छोड़कर माया-मृगको मारनेके लिये गये हुए श्रीरामके पास जाना और दूसरा मुनि दुर्वासाके शापसे राज्यको बचानेके लिये अपने त्यागे जानेका महान् कष्ट स्वीकार करते हुए भी दुर्वासाको श्रीरामके पास जाने देना। परन्तु ये दोनों ही अवसर अपवादस्वरूप हैं।

सीताजीके कटु वचन कहनेपर लक्ष्मणने उन्हें समझाया कि 'माता, यह शब्द मायावी मारीचके हैं, श्रीरामको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत सकता, आप धैर्य रक्खें। मैं रामकी आज्ञाका उल्लंघन कर आपको अकेली छोड़कर नहीं जा सकता।' इतनेपर भी जब उन्होंने तमककर कहा कि 'मैं समझती हूँ, तू भरतका दूत है, तेरे मनमें काम-विकार है, तू मुझे प्राप्त करना चाहता है, मैं आगमें जल मरूँगी परन्तु तेरे और भरतके हाथ नहीं आ सकती।' इन वचन-बाणोंसे पवित्र-हृदय जितेन्द्रिय लक्ष्मणका हृदय बिंध गया, उन्होंने कहा, 'हे माता वैदेही! आप मेरे लिये देवस्वरूप हैं, इससे मैं आपको कुछ भी कह नहीं सकता, परन्तु मैं आपके शब्दोंको सहन करनेमें असमर्थ हूँ। हे वनदेवताओ! आप सब साक्षी हैं, मैं अपने बड़े भाई रामकी आज्ञामें रहता हूँ, तिसपर भी माता सीता स्त्री-स्वभावसे मुझपर सन्देह करती हैं। मैं समझता हूँ कि कोई भारी संकट आनेवाला है। माता! आपका कल्याण हो, वनदेवता आपकी रक्षा करें। मैं जाता हूँ।' इस अवस्थामें लक्ष्मणका वहाँसे जाना दोषावह नहीं माना जा सकता।

दूसरे प्रसंगमें तो लक्ष्मणने कुटुम्बसहित भाईको और भाईके साम्राज्यको शापसे बचानेके लिये ही यह त्याग किया था।

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीलक्ष्मणजी रामसे ही प्रेम करते थे, भरतके प्रति तो उनका विद्वेष बना ही रहा, परन्तु यह बात ठीक नहीं। रामकी अवज्ञा करनेवालेको अवश्य ही वे क्षमा नहीं कर सकते थे, परन्तु जब उन्हें मालूम हो गया कि भरत दोषी नहीं हैं तब लक्ष्मणके अन्तःकरणमें अपनी कृतिपर बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ और वे भरतपर पूर्ववत् श्रद्धा तथा स्नेह करने लगे। एक समय जाड़ेकी ऋतुमें वनके अन्दर शीतकी भयानकताको देखकर लक्ष्मणजी नन्दिग्रामनिवासी भरतकी चिन्ता करते हुए कहते हैं—

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥
त्यक्त्वा राज्यञ्च मानञ्च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान्।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः॥
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिन्दमः।
सन्त्यज्य विविधान् सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः॥
जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते॥

(वा० रा० ३।१६।२५-३३)

'हे पुरुषश्रेष्ठ! ऐसे अत्यन्त शीतकालमें धर्मात्मा भरत आपके प्रेमके कारण कष्ट सहकर तप कर रहे होंगे। अहो! नियमित आहार करनेवाले तपस्वी भरत राज्य, सम्मान और विविध प्रकारके भोग-विलासोंको त्यागकर इस शीतकालमें ठंडी ज़मीनपर सोते होंगे। अहो! भरत भी इसी समय उठकर अपने साथियोंको लेकर सरयूमें नहाने जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पले हुए सुकुमार शरीरवाले भरत इतने तड़के सरयूके अत्यन्त शीतल जलमें कैसे स्नान करते होंगे? कमलनयन श्यामसुन्दर भाई भरत सदा नीरोग, धर्मज्ञ, सत्यवादी, लजावश परस्त्रीकी ओर कभी न ताकनेवाले, जितेन्द्रिय, प्रिय और मधुर-भाषी और लम्बी भुजाओंवाले महात्मा हैं। अहा! भरतने सब प्रकारके सुखोंका त्यागकर सब प्रकारसे आपका ही आश्रय ले लिया है। महात्मा भाई भरतने स्वर्गको भी जीत लिया क्योंकि आप वनमें हैं इसलिये वे भी आपकी ही भाँति तपस्वी-धर्मका पालनकर आपका अनुसरण कर रहे हैं।'

इन वचनोंको पढ़नेपर भी क्या यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मणका भरतके प्रति प्रेम नहीं था? इनमें तो उनका प्रेम टपका पड़ता है।

× × ×

लक्ष्मणजी अपनी बुद्धिका भी कुछ घमण्ड न रखके श्रीराम-सेवामें किसप्रकार अर्पित-प्राण थे, इस बातका पता तब लगता है कि जब पञ्चवटीमें भगवान् श्रीराम अच्छा-सा स्थान खोजकर पर्णकुटी तैयार करनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा देते हैं। तब सेवा-परायण लक्ष्मण हाथ जोड़कर भगवान्‌से कहते हैं कि हे प्रभो! मैं अपनी स्वतन्त्रतासे कुछ नहीं कर सकता।

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥

'हे काकुत्स्थ! चाहे सैकड़ों वर्ष बीत जायँ पर मैं तो आपके ही अधीन हूँ। आप ही पसन्द करके उत्तम स्थान बतावें।'

इसका यह मतलब नहीं है कि लक्ष्मणजी विवेकहीन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे एवं समय-समयपर रामकी सेवाके लिये बुद्धिका प्रयोग भी करते थे किन्तु जहाँ रामके किये कामपर ही पूरा सन्तोष होता वहाँ वे कुछ भी नहीं बोलते थे। उनमें तेज और क्रोधके भाव थे, पर वे थे सब रामके लिये ही। लक्ष्मण विलाप करना, विह्वल होना, डिगना और रामविरोधीपर क्षमा करना नहीं जानते थे। इसीसे अन्य दृष्टिसे देखनेवाले लोग उनके चरित्रमें दोषोंकी कल्पना किया करते हैं परन्तु लक्ष्मण सर्वथा निर्दोष, रामप्रिय, रामरहस्यके ज्ञाता और आदर्श भ्राता हैं। इनके ज्ञानका नमूना देखना हो तो गुहके साथ इन्होंने एकान्तमें जो बातें की थीं, उन्हें पढ़ देखिये। जब निषादने विषादवश कैकेयीको बुरा भला कहा और श्रीसीतारामजीके भूमि-शयनको देखकर दुःख प्रकट किया तब लक्ष्मणजी नम्रताके साथ मधुर वाणीसे उससे कहने लगे—

काहु न कोउ सुख-दुखकर दाता। निजकृत करम भोग सब भ्राता॥
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनम मरन जहँ लगि जगजालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह-मूल परमारथ नाहीं॥

सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपञ्च जिय जोइ॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग-जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपञ्चबियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोहभ्रम भागा। तब रघुनाथ-चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन-क्रम-बचन राम-पद-नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत, अलख, अनादि अनूपा॥
सकल बिकार-रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुजतन सुनत मिटहिं जग-जाल॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर-चरन रत होहू॥

श्रीलक्ष्मणजीकी महिमा कौन गा सकता है ! इनके समान परमार्थ और प्रेमका, बुद्धिमत्ता और सरलताका, परामर्श और आज्ञाकारिताका तेज और मैत्रीका विलक्षण समन्वय इन्हींके चरित्रमें है । सारा संसार श्रीरामका गुणगान करता है, श्रीराम भरतका गुण गाते हैं और भरत लक्ष्मणके भाग्यकी सराहना करते हैं। फिर हम किस गिनतीमें हैं जो लक्ष्मणजीके गुणोंका संक्षेपमें बखान कर सकें !

श्रीशत्रुघ्नका भ्रातृ-प्रेम

रिपुसूदन पद-कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥

रामदासानुदास श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीराम और भरत-लक्ष्मणके परमप्रिय और आज्ञाकारी बन्धु थे। शत्रुघ्नजी मौनकर्मी, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषय-विरागी, सरल, तेजपूर्ण, गुरुजनोंके अनुगामी, वीर और शत्रुतापन थे। श्रीरामायणमें इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता परन्तु जो कुछ मिलता है, उसीसे इनकी महत्ताका अनुमान हो जाता है। जैसे श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामके चिर-संगी थे, इसीप्रकार लक्ष्मणानुज शत्रुघ्नजी श्रीभरतजीकी सेवामें नियुक्त रहते थे। भरतजीके साथ ही आप उनके ननिहाल गये थे और पिताकी मृत्युपर साथही लौटे थे। अयोध्या पहुँचनेपर कैकेयीजीके द्वारा पितामरण और राम-सीता-लक्ष्मणके वनवासका समाचार सुनकर इनको भी बड़ा भारी दुःख हुआ। भाई लक्ष्मणके शौर्यसे आप परिचित थे, अतएव इन्होंने शोकपूर्ण हृदयसे बड़े आश्चर्यके साथ भरतजीसे कहा—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्॥
बलवान्वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥
(वा० रा० २। ७८। २-३)

'श्रीराम, जो दुःखके समय सब भूतप्राणियोंके आश्रय हैं, वे हमलोगोंके आश्रय तो हैं ही, ऐसे महाबलवान् राम एक स्त्री (कैकेयी)के प्रेरणासे ही वनमें चले गये । अहा ! श्रीलक्ष्मण तो बलवान् और महापराक्रमी थे, उन्होंने पिताको समझाकर रामको वन जानेसे क्यों नहीं रोका ?' इस समय शत्रुघ्नजी दुःख और कोपसे भरे थे, इतनेमें राम-विरहसे दुःखी एक द्वारपालने आकर कहा कि 'हे राजकुमार ! जिसके षड्यन्त्रसे श्रीरामको वन जाना पड़ा, और महाराजकी मृत्यु हुई, वह क्रूर पापिनी कुब्जा वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई खड़ी है, आप उचित समझें तो उसे कुछ शिक्षा दें।' कुब्जा भरतजीसे इनाम लेने आ रही थी और उसे दरवाजेपर देखते ही द्वारपालने अन्दर आकर शत्रुघ्नसे ऐसा कह दिया था, शत्रुघ्नको बड़ा गुस्सा आया, उन्होंने कुब्जाकी चोटी पकड़कर उसे घसीटा, उसने ज़ोरसे चीख मारी । यह दशा देखकर कुब्जाकी अन्य सखियाँ तो दौड़कर श्रीकौसल्याजीके पास चली गयीं, उन्होंने कहा कि अब मधुरभाषिणी, दयामयी कौसल्याके शरण गये बिना शत्रुघ्न हमलोगोंको भी नहीं छोड़ेंगे। कैकेयी छुड़ाने आयीं तो उनको भी फटकार दिया। आखिर भरतने आकर शत्रुघ्नसे कहा—'भाई ! स्त्री-जाति अवध्य है, नहीं तो मैं ही कैकेयीको मार डालता—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥
(वा० रा० २। ७८। २३)

'भाई, यह कुब्जा यदि तुम्हारे हाथसे मारी जायगी तो श्रीराम निश्चय ही तुमसे और मुझसे बोलना छोड़ देंगे।' भरतजीके वचन सुनकर शत्रुघ्नजीने उसको छोड़ दिया । यहाँ यह पता लगता है कि प्रथम तो रामकी धर्मनीतिमें स्त्री-जातिका कितना आदर था, स्त्री अवध्य समझी जाती थी। दूसरे, शोकाकुल भरतने इस अवस्थामें भी भाई
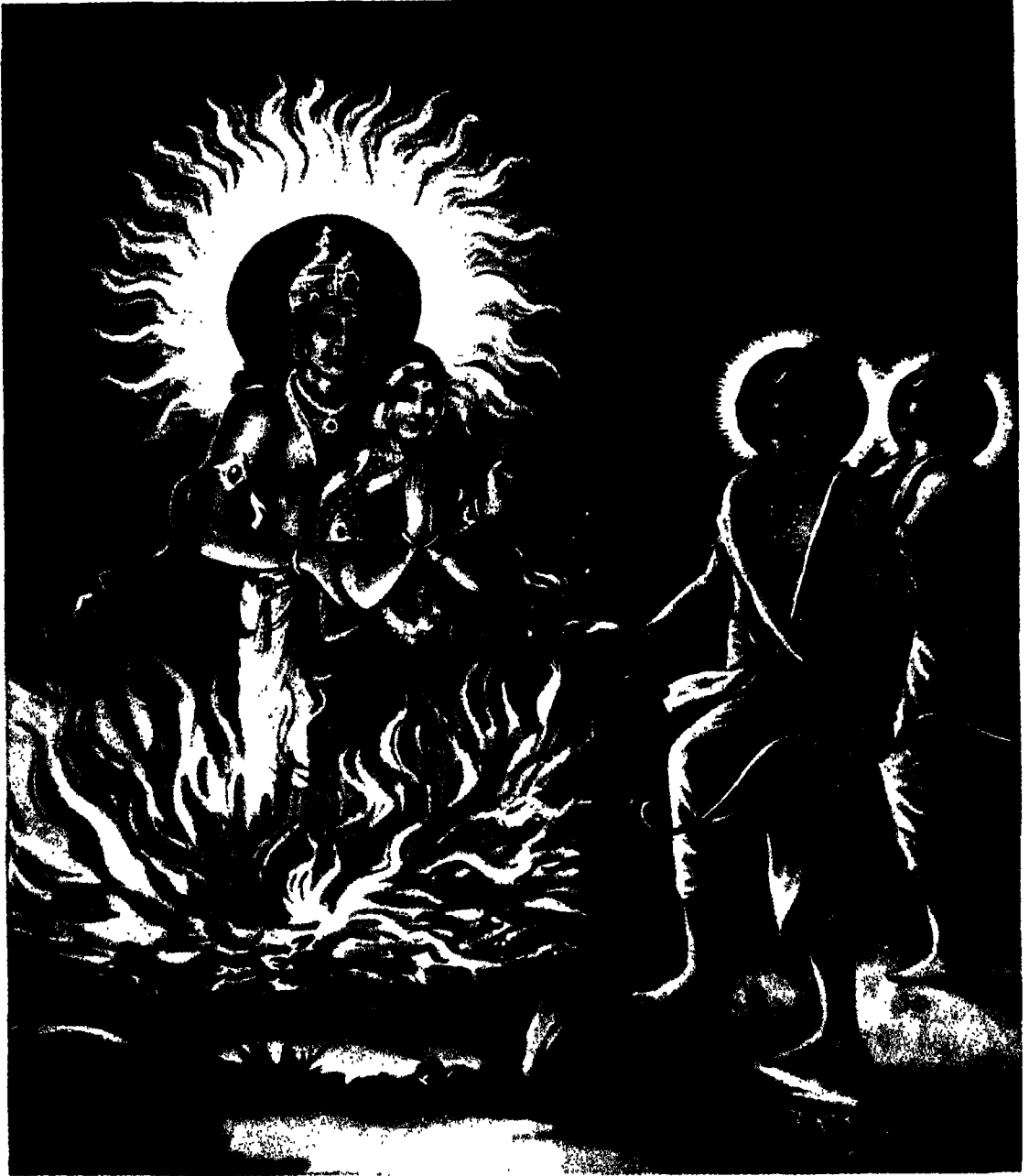
सीताजीकी अग्नि-परीक्षा

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥

शत्रुघ्नको भ्रातृ-प्रेमके कारण रामकी राजनीति बतलाकर अधर्मसे रोका, और तीसरे, रोषमें भरे हुए शत्रुघ्नने भी तुरन्त भाईकी बात मान ली। इससे हमलोगोंको यथायोग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो लोग यह आक्षेप किया करते हैं कि प्राचीन कालमें भारतीय पुरुष स्त्रियोंको बहुत तुच्छ बुद्धिसे देखते थे, उनको इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

× × ×

इसके अनन्तर शत्रुघ्नजी भी भरतजीके साथ श्रीरामको लौटाने वनमें आते हैं, और वहाँ भरतजीकी आज्ञासे रामकी कुटिया ढूँढते हैं। जब भरतजी दूरसे श्रीरामको देखकर दौड़ते हैं, तब श्रीरामदर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी पीछे-पीछे दौड़े आते हैं, और—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिंग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥
(वा० रा० २। ९९। ४०)

वे भी रोते हुए श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करते हैं श्रीराम आसनसे उठ अपने हाथोंसे उन्हें उठाते हैं, फिर दोनों छातीसे लिपट जाते हैं। इसी प्रकार शत्रुघ्न अपने बड़े भाई लक्ष्मणजीसे भी मिलते हैं—भेंटे लखन ललकि लघु भाई।

इसके बाद श्रीराम भरतके संवादमें लक्ष्मण-शत्रुघ्नका बीचमें बोलनेका कोई काम नहीं था। दोनोंके अपने-अपने नेता बड़े भाई मौजूद थे। शत्रुघ्नने तो भरतको अपना जीवन सौंप ही दिया था। इसीसे भरत कह रहे थे कि—

सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सबहि सनाथ।

शत्रुघ्नजीकी सम्मति न होती या शत्रुघ्नके भ्रातृप्रेमपर भरोसा न होता तो भरतजी ऐसा क्योंकर कह सकते?

पादुका लेकर लौटनेके समय श्रीरामसे दोनों भाई पुनः गले लगकर मिलते हैं। रामकी प्रदक्षिणा करते हैं। लक्ष्मणजीकी भाँति शत्रुघ्नजी भी कुछ तेज थे, कैकेयीके प्रति उनके मनमें रोष था, श्रीराम इस बातको समझते थे, इससे वनसे विदा होते समय श्रीरामने शत्रुघ्नजीको वात्सल्यताके कारण शिक्षा देते हुए कहा—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन॥
(वा०रा०२। ११२। २७)

'हे भाई, तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है तुम माता कैकेयीके प्रति कुछ भी क्रोध न करके उनकी रक्षा करते रहना।' इतना कहनेपर उनकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे भर गयीं! इससे पता लगता है कि श्रीराम-शत्रुघ्नमें परस्पर कितना प्रेम था!

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतजीके साथ अयोध्या लौटकर उनकी आज्ञानुसार राज और परिवारकी सेवामें रहते हैं तथा श्रीरामके अयोध्या लौट आनेपर प्रेमपूर्वक उनसे मिलते हैं 'पुनि प्रभु हरषि शत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।' तदनन्तर उनकी सेवामें लग जाते हैं। श्रीरामका राज्याभिषेक होता है और रामराज्यमें सबका जीवन सुख और धर्ममय बीतता है।

एक समय ऋषियोंने आकर श्रीरामसे कहा कि लवणासुर नामक राक्षस बड़ा उपद्रव कर रहा है, वह प्राणिमात्रको—खास करके तपस्वियोंको पकड़कर खा जाता है। हम सब बड़े ही दुखी हैं। श्रीरामने उनसे कहा कि 'आप भय न करें मैं उस राक्षसको मारनेका प्रबन्ध करता हूँ।' तदनन्तर श्रीरामने अपने भाइयोंसे पूछा कि 'लवणासुरको मारने कौन जाता है?' भरतजीने कहा 'महाराज! आपकी आज्ञा होगी तो मैं चला जाऊँगा।' इसपर लक्ष्मणानुज शत्रुघ्नजीने नम्रतासे कहा—'हे रघुनाथजी! आप जब वनमें थे तब महात्मा भरतजीने बड़े-बड़े दुःख सहकर राज्यका पालन किया था, वे नगरसे बाहर नन्दीगाँवमें रहते थे, कुशपर सोते थे, फलमूल खाते थे, और जटावल्कल धारण करते थे। अब मैं दास जब सेवामें उपस्थित हूँ तब इन्हें न भेजकर मुझे ही भेजना चाहिये।' भगवान् श्रीरामने कहा—'अच्छी बात है तुम्हारी इच्छा है तो ऐसा ही करो, मैं तुम्हारा मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राज्याभिषेक करूँगा, तुम शूरवीर हो, नगर बसा सकते हो, मधुराक्षसके पुत्र लवणासुरको मारकर धर्म-बुद्धिसे वहाँका राज्य करो। मैंने जो कुछ कहा है, इसके बदलेमें कुछ भी न कहना, क्योंकि बड़ोंकी आज्ञा बालकोंको माननी चाहिये। गुरु वशिष्ठ तुम्हारा विधिवत् अभिषेक करेंगे अतएव मेरी आज्ञासे तुम उसे स्वीकार करो।' श्रीरामने अपने मुँहसे बड़ोंकी आज्ञाका महत्त्व इसीलिये बतलाया कि वे शत्रुघ्नकी त्याग-वृत्तिको जानते थे। श्रीराम ऐसा न कहते तो वे सहजमें राज्य स्वीकार न करते। इस बातका पता उनके उत्तरसे लगता है। शत्रुघ्नजी बोले—

'हे नरेश्वर! बड़े भाईकी उपस्थितिमें छोटेका राज्याभिषेक होना मैं अधर्म समझता हूँ। इधर आपकी आज्ञाका पालन भी अवश्य करना चाहिये। आपके द्वारा ही मैंने यह धर्म सुना है। श्रीभरतजीके बीचमें मुझको कुछ भी नहीं बोलना चाहिये था—

व्याहृतं दुर्वचं घोरं हन्ताऽस्मि लवणं मृधे ।
तस्यैव मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥
उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥
(वा० रा० ७।६३।४-५)

'हे पुरुषश्रेष्ठ! 'लवणासुरको मैं मारूँगा' मैंने ये दुर्वचन कहे, इसीसे मेरी यह दुर्गति हुई। बड़े भाइयोंके बीचमें कभी नहीं बोलना चाहिये। ऐसा करना अधर्मयुक्त और परलोकका नाश करनेवाला है।' धन्य शत्रुघ्नजी, आप राज्य-प्राप्तिको 'दुर्गति' समझते हैं! कैसा आदर्श त्याग है! आप फिर कहते हैं कि 'हे काकुत्स्थ! एक दण्ड तो मुझे मिल गया, अब आपके वचनोंपर कुछ बोलूँ तो कहीं दूसरा दण्ड न मिल जाय, अतएव मैं कुछ भी नहीं कहता। आपकी इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ।'

भगवान्‌की आज्ञासे शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हो गया, तदनन्तर उन्होंने लवणासुरपर चढ़ाई की, श्रीरामने चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, एक सौ उत्तम हाथी, क्रय-विक्रय करनेवाले व्यापारी, खर्चके लिये एक लाख स्वर्णमुद्राएँ साथ दीं। और भाँति-भाँतिके सदुपदेश देकर शत्रुघ्नको विदा किया। इससे पता लगता है कि शत्रुघ्नजी श्रीरामको कितने प्यारे थे।

रास्तेमें ऋषियोंके आश्रमोंमें ठहरते हुए वे जाने लगे। वाल्मीकिजीके आश्रममें भी एक रात ठहरे, उसी रातको सीताजीके लव-कुशका जन्म हुआ था। अतः वह रात शत्रुघ्नजीके लिये बड़े आनन्दकी रही। शत्रुघ्नजीने मधुपुर जाकर लवणासुरका वध किया। देवता और ऋषियोंने आशीर्वाद दिये। तदनन्तर बारह सालतक मधुपुरीमें रहकर शत्रुघ्नजी वापस श्रीरामदर्शनार्थ लौटे। रास्तेमें फिर वाल्मीकिजीके आश्रममें ठहरे। अब लव-कुश बारह वर्षके हो गये थे। मुनिने उनको रामायणका गान सिखला दिया था। अतएव मुनिकी आज्ञासे लव-कुशने शत्रुघ्नजीको रामायणका मनोहर और कल्याणोत्पादक गान सुनाया। राम-महिमाका गान सुनकर शत्रुघ्न मुग्ध हो गये—

श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोचनः ।
स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥
(वा० रा० ७।७१।१७)

'उस गानको सुनकर पुरुषसिंह शत्रुघ्नकी आँखोंमें आँसुओंकी धारा बह चली, और वे बेहोश हो गये। उस बेहोशीमें एक घड़ी तक उनके ज़ोर-ज़ोरसे साँस चलता रहा।' धन्य है!

इसके अनन्तर उन्होंने अयोध्या पहुँचकर श्रीरामसहित सब भाइयोंके दर्शन किये। फिर कुछ दिनों बाद मधुपुरी लौट गये।

× × ×

परम धामके प्रयाणका समय आया, इन्द्रियविजयी शत्रुघ्नको पता लगते ही वह अपने पुत्रोंको राज्य सौंपकर दौड़े हुए श्रीरामके पास आये और चरणोंमें प्रणामकर गद्गद्कण्ठसे कहनेलगे—

कृत्वाभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दनः ।
तवानुगमने राजन् ! विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम् ।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः ॥
(वा० रा० ७।१०८।१४-१५)

'हे रघुनन्दन! हे राजन्! मैं अपने दोनों पुत्रोंको राज्य सौंपकर आपके साथ जानेका निश्चय करके आया हूँ। हे वीर! आज आप कृपाकर न तो दूसरी बात कहें और न दूसरी आज्ञा ही दें, यह मैं इसलिये कह रहा हूँ कि मैं खासतौरपर आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहता।' मतलब यह कि आप कहीं साथ छोड़कर यहाँ रहनेकी आज्ञा न दे दें जिससे मुझे आपकी आज्ञा भंग करनी पड़े, जो मैंने आज तक नहीं की। धन्य है भ्रातृप्रेम!

भगवान्‌ने प्रार्थना स्वीकार की और सबने मिलकर श्रीरामके साथ रामधामको प्रयाण किया।

उपसंहार

यह रामायणके चारों पूज्य पुरुषोंके आदर्श भ्रातृप्रेमका किञ्चित् दिग्दर्शन है। यह लेख विशेषरूपसे भ्रातृ-प्रेमपर ही लिखा गया है। अन्य वर्णन तो प्रसंगवश आ गये हैं, अतएव दूसरे उपदेशप्रद आदर्श विषयोंकी यथोचित चर्चा नहीं हो सकी है। इस लेखमें अधिकांश भाग वाल्मीकि, अध्यात्म और रामचरितमानसके आधारपर लिखा गया है।

वास्तवमें श्रीराम और उनके बन्धुओंके अगाध चरित्रकी थाह कौन पा सकता है। मैंने तो अपने विनोदके लिये यह चेष्टा की है, त्रुटियोंके लिये विज्ञजन क्षमा करें। श्रीराम और

उनके प्रिय बन्धुओंके विमल और आदर्श चरितसे हमलोगोंको पूरा लाभ उठाना चाहिये। साक्षात् सच्चिदानन्दघन भगवान् होनेपर भी उन्होंने जीवनमें मनुष्योंकी भाँति लीलाएँ की हैं जिनको आदर्श मानकर हम काममें ला सकते हैं।

कुछ लोग कहा करते हैं कि 'श्रीराम जब साक्षात् भगवान् थे, तब उन्हें अवतार धारण करनेकी क्या आवश्यकता थी, वे अपनी शक्तिसे यों ही सब कुछ कर सकते थे।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् सभी कुछ कर सकते हैं, करते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, परन्तु उन्होंने अवतार धारणकर ये आदर्श लीलाएँ इसीलिये की हैं कि हमलोग उनका गुणानुवाद गाकर और अनुकरण कर कृतार्थ हों, यदि वे अवतार धारणकर हमलोगोंकी शिक्षाके लिये ये लीलाएँ न करते तो हमलोगोंको आदर्श शिक्षा कहाँसे और कैसे मिलती? अब हम लोगोंका यही कर्तव्य है कि उनकी लीलाओंका श्रवण, मनन और अनुकरण कर उनके सच्चे भक्त बनें! लेख बहुत बड़ा हो गया है इसलिये यहीं समाप्त किया जाता है।

श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

(लेखक—श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी)

काव्यमें कवि केवल अपनी दशाओंका वर्णन करता है, नानाविध कल्पनाओंके द्वारा वह अपनी भावनाओंको प्रकट करता है और महाकाव्य वह है जिसमें वह सम्पूर्ण समाज और समस्त देशकी संस्कृति, भावना, रीति-नीति तथा मानव-प्रकृतिके सभी शुभाशुभ रूपोंका चित्रण करता है। उसके महाकाव्यमें जगद्ब्रह्मके दर्शन होते हैं। श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजी महाराजका श्रीरामचरितमानस ऐसाही महाकाव्य है। उसमें नायकत्वके सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम-रूप, नरत्वके दिव्य आदर्शके साथ-साथ असुरभावके भी पूर्ण विकाशका उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। इसीसे उसमें प्रत्येक प्रकृति और दशाके अनुकूल उक्ति मिल जाती है और उसका समाजमें सहजभावसे व्यवहार होता है। अब हमें यह देखना है कि श्रीरामचरितमानस महाकाव्य कैसे है और उसके सम्पूर्ण लक्षण उसमें कैसे घटित हैं?

साहित्यदर्पणमें महाकाव्यके लक्षण इसप्रकार दिये हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेनाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागराः॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥

मानसमें इनकी चरितार्थता—

धीरोदात्तनायकत्व—धीरोदात्त नायक उसे कहते हैं जिसमें आत्मश्लाघा न हो, क्षमाशील एवम् अत्यन्त गम्भीर हो, हर्ष-शोकसे जो अभिभूत न हो, गर्व भी जिसका विनयाच्छन्न हो और जो दृढ़व्रत हो, यथा—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥

अनात्मश्लाघा—

'समय बिलोके लोग सब आनि जानकी भीर।
हृदय न हरष-बिषाद कछु बोले श्रीरघुबीर॥

नाथ, सम्भु-धनु भंजनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिय किन मोही॥

राममात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुमसन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

चितै सबनिपर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरे बल मैं रावन मारा। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सारा॥

गाम्भीर्य्यातिशय—यथा—

राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥

क्षमा—यथा—

कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहिकर बध उचित।
प्रभु छाड़े करि छोह को कृपालु रघुबीर सम॥

इत्यादि।

महासत्त्वत्व—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः
तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदम्॥

पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमय-हरष न हृदय कछु पहिरे बल्कल चीर॥

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू।

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहि जुबराजू॥
गुरु सिख देइ राम पहँ गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन-सयन-केलि-लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग-संग सब भयउ उछाहा॥
बिमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू॥

बिमातासे बनवास-प्रसङ्ग सुनकर—

सब प्रसङ्ग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई॥
मन मुसुकाहि भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द-निधानू॥

स्थैर्य—

प्रात कहा मुनिसन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मखकी रखवारी॥
मुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि-द्रोही॥
बिनु फर-बान राम तिहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

पावक सर सुबाहु पुनि जारा। अनुज निसाचर कटक सँहारा॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव-मुनि झारी॥

निगूढमानता—

छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भयबस नावहिं माथ॥

देव-दनुज-भूपति-भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल-कलङ्क तेहि पावँर जाना॥
कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहि न रन रघुबंसी॥
बिप्रबंसकै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डराई॥

दृढव्रतता—यथा—

राय राम राखन-हित लागी। बहुत उपाय किए छल त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम-धुरन्धर धीर सयाने॥
मातु बचन मुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरुके फूला॥
सुख-मकरन्द भरे श्रीमूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला॥
जौ नहि फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्य-सन्ध दृढ़व्रत रघुराई॥

वनवासको स्वीकार कर लिया, फिर अनेक प्रेमानुरोध और करुणा-प्रार्थनाओंपर भी विचलित नहीं हुए।

वनमें मुनियोंका अस्थि-समूह देखकर—

निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय पन कीन्ह।

वालिवध-प्रतिज्ञा—यथा—

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म-रुद्र-सरनागतहु गए न उबरिहि प्रान॥

उन रघुकुलतिलक धीर-वीरशिरोमणिने जो कुछ कहा, वह कर दिखाया, जिसका अङ्गीकार और स्वीकार कर लिया, अन्ततक सब प्रकार उसका निर्वाह किया। क्षत्रियोंके सर्वश्रेष्ठ पवित्र सूर्यवंशमें, परमप्रतापी सार्वभौम चक्रवर्ती-कुलमें अवतार धारण किया। रूप, शील, कुल, वयस्, गुण, गौरव, विद्या, प्रतिभा, विनय, बल, विक्रम, तेज, शौर्य ऐश्वर्य, माधुर्य तथा करुणादि निखिल कल्याणगुणवारिधि होनेसे दशरथ-राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी नायकत्वके दिव्य आदर्श एवम् पुरुषोत्तमत्वकी मञ्जु मर्यादा हैं। जैसे वे नृपत्वमें चक्रवर्ती हैं, वैसे ही नायकत्वमें सार्वभौम अतएव धीरोदात्त नायकवर्गके छत्रपति राजा मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

(क्रमशः)

रामायणमें आदर्श पितृभक्ति

(लेखक—राजाबहादुर राजा श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्त्व-विशारद टेकाली)

पिता हि परमः स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि वेदप्रतिपादित वाक्योंसे सकल-सुख-समन्वित, त्रितापशून्य, पुण्यकर्मा पुरुषोंकी भोग्यभूमि तथा पवित्र-चरित्र-देव-वृन्दके आवास दिव्य स्वर्गकी कामनावाले मनुष्य यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं । उसी स्वर्गकी प्राप्तिके लिये पुराणप्रतिपादित मार्गमें अग्रसर होनेवाले लोग तीर्थ-सेवन, भजन-पूजन करते हैं, तथा उपनिषदोंमें श्रद्धाशील मनुष्य तत्त्वज्ञानका साधन करते हैं । मीमांसाके अनुयायी वेद-प्रतिपादित यज्ञकर्ममें तत्परताको ही उपासना मानते हैं। इन सब धर्मशास्त्रानुमोदित मार्गोंपर चलनेवाले साधक विभिन्न शास्त्रोक्त साधनाओंद्वारा जिस लोकको उत्तम समझ प्राप्त करना चाहते हैं और साहित्यामृतसेवी चरम लक्ष्य कर जिसकी ओर एकटक देखते हैं-वह स्वर्ग क्या है? कहाँ है ? कैसे पहचाना जाता है ? और उसे प्राप्त होनेवाले मनुष्य वहाँ क्या सुख भोगते हैं ? इन प्रश्नोंके उपयुक्त उत्तर खोजते समय महर्षि वेदव्यासरचित महाभारतका उपर्युक्त श्लोक स्मरण हो आता है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वर्गप्राप्त पुरुष जिन सुखका उपभोग करते हैं, उसकी उपलब्धि पितासे ही होती है । पितृसेवी तीनों तापोंसे छूट जाता है । तपके प्रभावसे जो कुछ प्राप्त होता है, पितृभक्तको वह भी अनायास मिल जाता है । पिताको सन्तुष्ट रखनेवाले पुरुषसे समस्त देवता भी सन्तुष्ट रहते हैं। दृष्टान्तके लिये रामायणका नाम लिया जा सकता है जिसे हम विशुद्ध पितृभक्तिका आदर्श ग्रन्थ समझते हैं । इस ग्रन्थके नामकरणमें भी पितृभक्तिका भाव व्यञ्जित है । राम × अयन=रामायण अर्थात् परमपितृभक्त श्रीरामका स्थान; तात्पर्य यह है कि वह ग्रन्थ जिसमें आदर्श पितृभक्त श्रीरामके चरित्रका निर्देश हुआ हो ।

अतः उपर्युक्त चारों प्रश्नोंके उत्तर इसप्रकार दिये जा सकते हैं- (१) पितासे स्वर्ग भिन्न नहीं है अर्थात् पिता ही स्वर्ग है । (२) वह पिता हमारे समीप रहते हैं । (३) हमारे हस्तगत वस्तुकी तरह वे हमारे अधीन रहते हैं । (४) उनके सन्तोषसे प्राणीमात्र प्रसन्न हो सुखकी वृष्टि करते हैं ।

आदिकविने पितृभक्तिका स्वरूप-निदर्शन करनेके पूर्व पितृत्वको यथेष्टरूपसे दिखलाया है । यथा—पुत्रप्राप्तिके लिये राजा दशरथकी चिन्ता, श्रीवसिष्ठजीके परामर्शसे पुत्रेष्टिका समारम्भ, ऋष्यशृङ्गको बुलानेके लिये सुमन्त्रका उपदेश तथा ऋषिका आगमन और यज्ञारम्भ प्रभृति विभिन्न सन्दर्भोंका उद्ग्रन्थन किया गया है । महाराज दशरथके पुत्र प्राप्त होनेके पश्चात् ऋषिवर्य विश्वामित्रने अयोध्या पधार कर प्रबल पराक्रमी विविध मायाविशारद मारीच, ताड़का, सुबाहु आदि दुर्दान्त राक्षसोंके विनाशार्थ महाराजसे उनके पञ्चदश वर्षीय पुत्र श्रीरामको माँगा । इच्छा न होने-पर भी महाराजने श्रीरामको विश्वामित्रके मख-रक्षार्थ अरण्य-गमनके लिये आज्ञा दे दी और श्रीरामने भी राजकुमारोचित सुख-सम्भोग-स्पृहाको उपेक्षाकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक विश्वामित्रका अनुगमन किया । यहाँ विचार करनेपर यह सहज ही जाना जा सकता है कि श्रीरामको राज्यसुखसे अरण्य-गमन अधिक सुखकर था । कहाँ तो श्रीरामका युद्धकलान-भिज्ञ पञ्चदशवर्षीय सुकुमार बालक कहा जाना और कहाँ उनका ही दुर्दान्त भयंकर राक्षसोंसे निविड़ अरण्यमें अकेले युद्धके लिये भेजा जाना । कैसा भयङ्कर व्यापार है ? परन्तु वस्तुतः श्रीराम कलानभिज्ञ न थे क्योंकि उनके लौकिक ज्ञान तथा विशेष अभिज्ञताका कविवर वाल्मीकिजीने खूब वर्णन किया है । पितृ-आदेशके प्रति ऐसी श्रद्धाका कारण, उनके सुकोमल अन्तःकरणमें पितृभक्तिका जो अङ्कुरोद्गम हो रहा था, निःसंशय वही था ।

श्रीराम निःसन्देह यह समझते थे कि पिता हमारे परम देव हैं उनकी आज्ञा पालन करनेसे हमें अवश्य ही सब प्रकारसे सुख-सौभाग्य तथा समुन्नतिकी प्राप्ति होगी । उनके हृदयमें ऐसा विश्वास होनेपर उसमें भक्तिलताका संवर्धन भी सहज ही होने लगा, जिसके फलस्वरूप दुर्दान्त राक्षसोंका वध, विश्वामित्रकी मख-रक्षा, शस्त्रास्त्र-प्राप्ति, अनेक विषयोंमें अभिज्ञता, अहल्योद्धार, शिवधनुर्भंग, विशुद्ध कीर्ति-रूपिणी जानकी देवीका लाभ तथा परशुराम-गर्व-हरण आदि अनेक आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न हुए । अतः

यदि पितृ-भक्तिकी पराकाष्ठासे उनका हृदय परिप्लावित न होता तो वे विश्वामित्रके मखकी समाप्तिपर अपना कार्य समाप्त हुआ समझ ऋषिकी आज्ञा प्राप्तकर अयोध्या लौट सकते थे किन्तु ऐसा होनेसे पूर्वोक्त अभीष्ट-परम्पराकी प्राप्ति कैसे होती ? इसपर विचार करनेसे ज्ञात हो जाता है कि वेद-व्यासकृत उपर्युक्त पितृप्रशस्तिमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। यदि कहीं फलमें व्यतिक्रम दीख पड़े तो समझना चाहिये कि वहाँ पितृभक्तिमें आत्म-विशुद्धि नहीं है, अन्यथा आदि-कवि अपने ग्रन्थमें पितृभक्तिके अखण्ड फलभोगका निर्देश ही नहीं करते।

राजा दशरथने जर्जरित देह तथा वार्द्धक्यके कारण राज्यभारको अपने कन्धेसे उतारकर सर्वगुण-युक्त ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको जब युवराज बनानेका निश्चय किया और अयोध्याके नागरिकों और राजनीतिज्ञोंने भी जब इसके लिये आग्रह किया, तब पिशाचिनी मन्थराने कैकेयीको राजा दशरथसे दो कठिन वर माँगनेके लिये उसकाया। फलतः कैकेयीने एक वरसे श्रीरामके लिये चौदह वर्ष वनवास माँगा और दूसरेसे भरतको यौवराज्य देनेके लिये राजासे कहा। सत्यनिष्ठ परम धार्मिक महाराज दशरथ अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरणकर कैकेयीके इन वज्रतुल्य वचनोंको सुन स्तब्ध हो गये। तब 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' के अनुसार रानीने उनके प्राण-प्रतिम रामको वनवास जानेका आदेश किया। सूर्यवंशके इस घोर विप्लवके विषयमें रामायण-रचयिताके अभिप्रायकी विवेचना करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणमें पितृभक्तिका आदर्श दिखानेके हेतुसे ही ग्रन्थकर्ताने इस प्रसङ्गका उल्लेख किया है। एक ओर श्रीराम नवयुवक राजकुमार हैं जिनकी राज्यलालसा, विलास-वैभवादि-सुख-संभोगस्पृहा तथा पुरवासियोंके स्नेह-सम्भाषणादि अभीष्ट योग सर्वदा अभिलषणीय हैं और उधर वार्द्धक्यसे जर्जरित जीवनलालस राजा दशरथका कठोर वनगमनादेश—वह भी एक दो दिनके लिये नहीं, सुदीर्घ चौदह वर्षोंके लिये जटा-वल्कल-भूषित वनचारी-वेषधारण कर परिभ्रमण करना, कितना विरोधसूचक है ! साधारण पुरुष तो यह सुनकर ही विक्षिप्त हो जायगा, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि श्रीराम स्वल्पवयस्क होते हुए भी धीर, स्थिर तथा प्रसन्न चित्तसे उस आज्ञाके पालन करनेमें तत्पर होते हैं। यहाँ पाठकोंको श्रीरामकी पवित्र अमृतोक्तिका उपहार प्रदान करना सुसंगत होगा—

> अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः।
> उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः॥
> उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते॥

'आज्ञाके बिना (केवल आशय समझकर ही) पिताका कार्य सम्पादन करनेवाला पुत्र उत्तम है। आज्ञा पानेपर जो पिताका कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है और जो आज्ञा पानेपर भी उसका पालन नहीं करता वह तो मल-स्वरूप है।' ऐसा कहकर उसे चरितार्थ कर देनेमें श्रीरामके गम्भीर अन्तःकरणका सुन्दर परिचय मिलता है। मांसास्थियुक्त शरीरधारी कौन ऐसा पुरुष है जो यों कर सके यदि कोई शङ्का करे कि श्रीराम और कर ही क्या सकते थे ? तो उत्तर यह है कि सामान्य राज्यके लिये कौरव-पाण्डव लड़ गये। हेमनीय रमणी-सम्पर्कसे प्रबल पराक्रान्त वीरेन्द्र शुम्भ-निशुम्भमें भ्रातृविद्वेष उत्पन्न हो गया। ऐसे ही कितने विद्वेषानल प्रज्वलित हुए, जिनसे इस संसारके कितने वंश तथा धनराशि-समन्वित साम्राज्य भस्मसात् हो गये। भिक्षुसे लेकर ब्राह्मणतक प्रत्येक प्राणी अपने स्वार्थके लिये क्या नहीं करता ? प्रतिदिन इसी अनिष्ट-सन्तापसे क्या प्राणिवर्ग सन्तप्त नहीं हो रहे हैं ? फिर भी नये-नये सुख-सम्भोगकी प्राप्तिके लिये लग जाते हैं, यह तो प्राणीमात्रका स्वभाव है इस विषयमें अब अधिक विस्तार अयुक्त है।

अब हम लेखके प्रकृत विषयको देखा जाय तो पता चलता है कि पिताके आदेशको अवनत-मस्तक हो ग्रहण कर, प्राणप्रियतमा जानकी और प्राणप्रिय लक्ष्मणके साथ पितृ भक्ताग्रणी नववयस्क श्रीरामने चौदह वर्षोंतक अरण्यमें तापस वृत्तिसे कालातिपात किया। इतना ही नहीं, महाराज दशरथके देहान्तके उपरान्त भरतके आग्रह करनेपर भी पितृ-आदेश उल्लंघन करनेकी कल्पना उनके मनमें स्वप्नमें भी उदित नहीं हुई। शबर-राज गुहने जब अपने राज्यमें बसनेके लिये श्रीरामसे अनुरोध किया था तब वहाँ भी राज्याडम्बरके साथ कालक्षेप करना पिताके अभिप्रायके विरुद्ध समझ उन्होंने उसे अस्वीकार किया। दण्डकारण्यमें जब शूर्पणखा, खर-दूषण तथा त्रिशिरादि राक्षसोंके घोर अत्याचारसे पीड़ित हुए। तब भी 'पितृ-आदेश-का पालन करना कष्टकर है' यह उनके मनमें नहीं आया। सतीशिरोमणि प्राणप्रिया जानकीके अपहरण होनेपर भी पितृ-आदेशके पालनके नियमोंमें रत्तीमात्र भी कमी

नहीं हुई। यह पितृ-भक्ति धन्य है! कौन कह सकता है कि ऐसी पितृ-भक्ति सफल नहीं होती?

पिताके जीवित रहनेपर उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले बहुत मिलेंगे, पर पिताके मर जानेपर भी उनकी आज्ञापर इसप्रकार डटे रहनेका उदाहरण श्रीरामके सिवा अन्यत्र नहीं मिलता!

धर्मादर्श वीरेन्द्रचूडामणि श्रीरामने लङ्काकाण्डके अन्तमें अपनी प्राण-प्रिया सीताके अपहार-जनित दोषके परिहारके लिये अग्नि-परीक्षा करायी। पर अग्निपरीक्षाके अनन्तर भी उनके मनमें सीताका निर्दोष होना नहीं जँचा, तब उनके पिता श्रीदशरथने स्वर्गलोकसे आदेश किया -'जानकी सती-शिरोमणि है इसमें सन्देह नहीं'। श्रीरामने पिताकी इस आकाशवाणीको सुनते ही अपना वामाङ्ग सीताके लिये समर्पित कर दिया।

चतुर्दशवर्ष-वनवासके बाद अयोध्या लौटकर राजग्रहण और प्रजापालन प्रभृति कार्य भी श्रीरामके जीवनमें पितृ-आदेशके द्वारा ही हुए थे। इसप्रकार भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन पितृ-आदेशसे ओतप्रोत था!

जगत्में दृश्यमान देव-देवीगण जो देवालयोंमें विराजमान हो रहे हैं वे सब स्थूलतः अन्तःप्राण हैं, उनकी प्रतिदिनकी पूजा-अर्चना हमलोगोंके अधीन है। अदृश्यमान—स्व-स्व-धामस्थित देव-देवीगण मानव-चक्षुके अगोचर हैं। काल्पनिक ज्ञानदृष्टि-गोचर देव-देवियोंके अभीष्टप्रद होनेसे भी उन लोगोंसे हम लोगोंकी अभिलाषा-सिद्धि अति दूर है। परन्तु पितृदेव इन सबोंमें श्रेष्ठ है, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। हमसे अपराध होनेपर भी वे हमें शाप नहीं देते। आराधना नहीं करनेपर भी वे असन्तुष्ट नहीं होते अपितु वे सदा-सर्वदा पुत्रकी उन्नतिके लिये सचेष्ट रहते हैं। अतः ऐसे पितृदेवकी उपासना इस जगत्में मानवमात्रको अवश्य करनी चाहिये। इसप्रकार हमें पितृ-आराधनामें तत्पर कर उन्नतिपथमें पहुँचानेके लिये आदिकविने रामायण नामक वेदोपम ग्रन्थकी रचना करके हमारे अभिवन्दनीय स्थानको प्राप्त किया है। इस विषयको अधिक दृढ़ीभूत करनेके लिये इस प्रबन्धके शीर्षकके नीचे लिखे हुए 'पिताहि परमः स्वर्गः' इत्यादिकी पुनरावृत्तिकर हम लेखको समाप्त करते हैं।

श्रीराम-नाम

(लेखक-महात्मा गांधीजी)

रा मनामके प्रतापसे पत्थर तैरने लगे। रामनामके बलसे वानर-सेनाने रावणके छक्के छुड़ा दिये। रामनामके सहारे हनूमान्ने पर्वत उठा लिया और राक्षसोंके घर अनेक वर्ष रहनेपर भी सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह सालतक प्राण धारण कर रक्खे, क्योंकि उनके कण्ठसे सिवा रामनामके दूसरा कोई शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है कि कलिकालका मल धो डालनेके लिये रामनाम जपो।

इसप्रकार प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकारके मनुष्य रामनाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होनेके लिये रामनाम हृदयसे लेना चाहिये। जीभ और हृदयको एकरस करके रामनाम लेना चाहिये।

× × ×

रामनामके गीत गानेके लिये यदि कोई मुझसे कहे तो मैं सारी रात गाया करूँ। सो यदि आप अपनेको दुखी और पतित मानते हों—और हम सब पतित हैं—तो सुबह, शाम और सोते समय रामनामका रटन करो और पवित्र होओ।

× × ×

मैं अपने उन पाठकोंके सामने भी इसे पेश करता हूँ जिनकी दृष्टि धुँधली न हुई हो और जिनकी श्रद्धा बहुत विद्वत्ता प्राप्त करनेसे मन्द न हो गयी हो। विद्वत्ता हमें जीवनकी अनेक अवस्थाओंसे पार ले जाती है, पर संकट और प्रलोभनके समय वह हमारा साथ बिल्कुल नहीं देती। उस हालतमें अकेली श्रद्धा ही उबारती है। रामनाम उन लोगोंके लिये नहीं है जो ईश्वरको हर तरहसे फुसलाना चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षाकी आशा उससे लगाये रहते हैं। वह उन लोगोंके लिये है जो ईश्वरसे डरकर चलते हैं और जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं पर अपनी निर्बलताके कारण उसका पालन कर नहीं पाते।

× × ×

इसलिये पाठक खूब समझ लें कि रामनाम हृदयका बोल है। जहाँ वाचा और मनमें एकता नहीं, वहां वाचा

केवल मिथ्यात्व है, दम्भ है, शब्दजाल है। ऐसे उच्चारणसे चाहे संसार भले धोखा खा जाय, पर वह अन्तर्यामी राम कहीं धोखा खा सकता है? सीताकी दी हुई मालाके मनके हनूमान्‌ने फोड़ डाले क्योंकि वे देखना चाहते थे कि अन्दर रामनाम है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटोंने उनसे पूछा—'सीताजीकी मणिमालाका ऐसा अनादर?' हनूमान्‌ने जवाब दिया—'यदि उसके अन्दर रामनाम न होगा तो सीताजीका दिया होनेपर भी वह हार मेरे लिये भारभूत होगा।' तब उन समझदार सुभटोंने मुँह बनाकर पूछा—'तो क्या तुम्हारे भीतर रामनाम है?' हनूमान्‌ने छुरीसे तुरन्त अपना हृदय चीरकर दिखाया और कहा—'देखो अन्दर रामनामके सिवा अगर और कुछ हो तो कहना।' सुभट लज्जित हुए, हनूमान्‌पर पुष्पवृष्टि हुई और उस दिनसे रामकथाके समय हनूमान्‌का आवाहन आरम्भ हुआ।

(नवजीवनके पुराने अंकोंसे संकलित)

श्रीरामकथामें एक अद्भुत पाठान्तर

(लेखक—श्रीयुत जी० एन० शोधनकर एम० ए०, एल-एल० बी०)

प्रायः सभी प्राच्य विद्या विशारदोंका मत है कि हिन्दुओंके महाभारत, रामायण इत्यादि पुरातन ग्रन्थोंके जो पाठ इस समय विद्यमान हैं वे ज्योंके त्यों मूलग्रन्थके यथार्थ पाठ नहीं हैं, उनमें बहुत कुछ उलटफेर हुआ है। रामकथाकी भी यही अवस्था है। गोरेसियोका बंगलिपिबद्ध पाठ, मार्शमैन, श्लीगेल और बर्लिन लाइब्रेरी (जिसके दो संस्करण भारतमें हो चुके हैं) के संस्कृतपाठ—सभीमें कुछ-न-कुछ पाठभेद अवश्य पाया जाता है। इसी प्रकार बम्बईमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणके आधारपर 'ग्रिफिथ' का पद्यमय अंगरेजी अनुवाद तथा गोरेसियोकी प्रतिसे 'हिपोलिट् फांश्' का फ्रेंच रूपान्तर भी पाठभेदसे मुक्त नहीं है। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण और तुलसीके रामचरित-मानसमें भी कथा-भेदतक पाया जाता है। कुछ दिन हुए ग्रियर्सन साहबने किसी काश्मीरी लेखकके एक ग्रन्थकी खोज की थी, जिसमें लिखा था कि श्रीसीताजी मन्दोदरीकी औरस कन्या थी और माताके परित्याग करनेपर जनकने उन्हें पाला-पोसा था। बंगालके अद्भुत रामायणमें भी यह कथा इसी प्रकार वर्णित है। पर सर्वसाधारणमें सीताजीके भूमिसे उत्पन्न होनेकी गाथा ही प्रचलित है। इसी प्रकार और भी विभिन्न प्रान्तोंमें अनेक कथा-भेद भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं, यहाँ उन सबके विवरणकी आवश्यकता नहीं। यहाँ तो केवल रामकथाका एक अद्भुत पाठान्तर उपस्थित करना ही हमारा उद्देश्य है।

'लोकापवादके भयसे सीताजीका परित्याग करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया। वाल्मीकि मुनिके आश्रमसे लौटनेपर श्रीराम-सभामें सबके सामने अपने निर्दोषत्वको दिखलाकर सीताजीके निजधाम प्रयाण करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीता-विरहित विराग-वृत्तिसे अवशेष जीवन व्यतीत किया।' यही कथा सर्वत्र प्रचलित है। पर महाकवि भवभूतिने अपने 'उत्तररामचरित' नाटकके 'सम्मेलनाङ्क' में श्रीसीताजी और श्रीरामजीका पुनर्मिलन वर्णन किया है।

यहाँ सहज ही यह प्रश्न उठता है कि ऐसे विद्वान तथा महाकविने श्रीरामकथामें इतना बड़ा परिवर्तन क्यों और किस आधारपर किया? क्या हम इसे कविकी निरी निरंकुशता कहेंगे अथवा नाटकको सुखान्त बनानेके लिये उनका ऐसा करना उपयुक्त था? कुछ विद्वानोंका मत है कि संस्कृत-नाट्यशास्त्रके नियमोंके अनुसार शोक-पर्यवसायी नाटकोंकी रचना एक काव्य-दोष समझा जाता है। कदाचित् इसी दोषके परिहारके लिये भवभूतिने अपने नाटकमें 'सम्मेलनाङ्क' की आयोजना की हो। यह कल्पना तथ्यपूर्ण हो सकती है क्योंकि संस्कृत साहित्यमें भासकविके नामपर प्रसिद्ध 'त्रिवेन्द्रम् सिरीज' के एक शोकान्त नाटकके अतिरिक्त और किसी शोकान्त नाटकका उल्लेख नहीं मिलता। पर अब पता चला है कि इस बहुश्रुत, विद्वान् और कविश्रेष्ठने जो यह महत्त्वपूर्ण कथान्तर उपस्थित किया है उसका आधार प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बृहत्कथा' है। डा० बूलरके (Buhlar) मतानुसार इसकी रचना ईसाकी प्रथम या द्वितीय

शताब्दिमें हुई थी । क्षेमेन्द्र दासव्यास, सोमभट्ट तथा अन्यान्य कवियोंके कथनानुसार यह ग्रन्थ पैशाची भाषामें लिखा गया था । बाणभट्ट, सुबन्धु, दण्डी प्रभृति महाकवियोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह ग्रन्थ ईसाकी पाँचवीं या छठीं शताब्दितक प्रचलित था । इस ग्रन्थके छायास्वरूप तीन ग्रन्थ संस्कृत-भाषामें और एक ग्रन्थ तामिलमें आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थोंमें काश्मीरका 'बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' सबसे पुराना है। प्रसिद्ध विद्वान् M. Lacote ने इसका सम्पादन किया है। दूसरा ग्रन्थ क्षेमेन्द्रदास व्यासकृत 'बृहत्कथामञ्जरी' है, जिसकी रचना १०३० ई०के लगभग हुई । और तीसरा ग्रन्थ काश्मीरी कविश्रेष्ठ सोमदेवभट्टकृत 'कथासरित्सागर' नामक बृहद्ग्रन्थ है जो १०७० ई०के लगभग प्रणीत हुआ माना जाता है। यद्यपि अन्तिम दोनों, क्षेमेन्द्र और सोमदेव समकालीन ही थे तथापि उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थ स्वतन्त्र रीतिसे ही रचे हैं । 'बृहत्कथामञ्जरी' एक छोटी पुस्तक है, परन्तु 'कथासरित्सागर' तो एक विशाल ग्रन्थ है । इन सब ग्रन्थोंमें 'कथासरित्सागर' विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने कहा है—

> यथा मूलं तथैवैतन् न मनागप्यतिक्रमः ।
> ग्रन्थविस्तरसंक्षेपमात्रं भाषा च विद्यते ॥
>
> (कथा० स० सा० १।१।१०)

इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'कथासरित्सागर' में वर्णित कथाएँ ज्यों-की-त्यों पहले 'बृहत्कथा' में रही होंगी । और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति, जो ईसाकी ७ वीं और ८ वीं शताब्दीके सन्धिकालमें उपस्थित थे, 'बृहत्कथा' से पूर्णतया परिचित थे ।

अब हम उत्तररामचरितके 'सम्मेलनाङ्क' के आधारका निदर्शन करते हैं । कथासरित्सागरके 'अलङ्कारवती लम्बकमें' 'काञ्चनप्रभा' नाम्नी विद्याधरी अपनी कन्या अलङ्कारवतीके विरहानलसे सन्तप्त अपने भावी जामाता नरवाहनकी सान्त्वना करती हुई श्रीरामकथाका वर्णन करती है । इसी कथामें सीताराम-संयोगका विवरण प्राप्त होता है, साथ ही कुछ और अनोखी बातें हैं जो सर्वसाधारणको ज्ञात नहीं । अतः उस कथाका मूल हम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करते हैं । एक दिन अपनी नगरीमें गुप्तवेशमें घूमते हुए प्रभु श्रीरामने देखा कि, एक पुरुष—

> हस्ते गृहीत्वा गृहिणीं निरस्यन्तं निजात् गृहात् ।
> परस्येयं गृहमगात् इति दोषानुकीर्तनात् ॥

—'अपनी स्त्रीको हाथसे पकड़कर अपने घरसे निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि तू दूसरेके घर गयी थी ।' इसपर वह स्त्री कहती है—

> रक्षो गृहेऽस्थिता सीता रामदेवेन नोज्झिता ।
> अयमभ्यधिको यो मामुज्झति ज्ञातिवेश्मगाम् ॥

'प्रत्यक्ष शत्रु और तिसपर भी तमोगुणके अवतार राक्षसेश्वरके घर रहनेपर भी सीता निर्दोषा रही और मुझे बन्धुके गृह जानेपर भी इतना लाञ्छित किया जाता है !' इसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं-'कहाँ एक साधारण पुरुषकी स्त्रीके सर्वथा उपेक्षणीय सामान्य अपराधके लिये दण्ड—गृहनिर्वासन और कहाँ प्रजाके आदर्शभूत, मर्यादापुरुषोत्तम कहलानेवाले राजर्षि रामचन्द्रका सीतापर ऐसा उत्कट प्रेम ! श्रीरामचन्द्रका आदर्श इतना गिरा हुआ है ? ऐसा कदापि नहीं हो सकता !' यह विचारकर लोकापवादके भयसे प्रभुने अपनी प्राणप्रियाका परित्याग कर डाला और जनकनन्दिनी वाल्मीकिके आश्रमकी ओर आश्रय पानेके लिये अग्रसर हुईं । सीता दुर्दैवके फेरमें पड़ी हुई थी । जो ऋषिमुनि श्रीसीता-रामके गुण-वर्णनमें जीवनकी सफलता मानते थे, वही लोग उस सतीके सतीत्वपर शङ्का करने लगे—

> नूनं सीता सदोषेयं त्यक्ता भर्त्तान्यथा कथम् ।

'अवश्य ही यह सीता सदोषा है नहीं तो इसके पति इसे क्यों त्यागते ?' हा ! विधि-विधान कैसा विलक्षण है ! आज ऋषिगण सीताको पापमूर्ति समझकर ठहरने नहीं देते हैं और कहते हैं 'द्वितीयं क्रियतामाश्रमम्' अर्थात् किसी दूसरे आश्रमको चली जाओ ! आह ! इससे अधिक दुःखदायी बात और क्या हो सकती है ? परन्तु सहस्ररश्मि सूर्यको अन्धकारका भय कैसे हो सकता है ? सीता निर्भय होकर कहती है—

> भगवन्तो यथा वित्थ तथा शोधयतेह माम् ।
> अशुद्धायाः शिरश्छेदं निग्रहः क्रियतां मम ॥

'भगवन् ! आप लोगोंको मेरे विषयमें जो सन्देह है उसकी जाँच कर लें, यदि मैं अशुद्धा होऊँ तो दण्डस्वरूप

मेरा सिर काट डाला जाय।' ऋषियोंने सतीकी सत्य-परीक्षा करना निश्चित किया और कहा—

अस्त्यत्र टिट्टिभसरो नाम तीर्थं महावने।
टिट्टिभी हि पुरा कापि मर्त्रान्यासङ्गशङ्किना॥
मिथ्यैव दूषिता साध्वी चक्रन्दाशरणा भुवन्।
लोकपालांश्च तैस्तस्या शुद्ध्यर्थं तद्विनिर्मितम्॥
तत्तैषा राघववधूः परिशुद्धिं करोतु नः।

'इस महावनमें टिट्टिभ-सर नामका पुनीत सरोवर है। प्राचीन कालमें एक टिटिहरीके पतिने अन्यासक्त होनेकी शङ्कासे झूठे ही उस साध्वीको दूषित ठहराया था। इसपर वह टिटिहरी अखिल भूमण्डलमें शरण पानेके लिये चिल्लाती फिरी, अन्तमें लोकपालोंने उसकी शुद्धिके लिये इस सरोवरका निर्माण किया। उसी सरके किनारे इस राघव-पत्नीकी परिशुद्धि भी की जाय।' फिर क्या था? जगन्माता श्रीसीताजी तत्काल उस सरोवरके तट पहुँचीं और इसप्रकार त्रिभुवनको थर्रानेवाला शपथोच्चार किया—

यदार्यपुत्रादन्यत्र न स्वप्नेऽपि मनो मम।
तदुत्तरेयं सरसः पारमम्ब वसुन्धरे॥

'यदि मेरा मन आर्यपुत्र श्रीरामसे अन्यत्र स्वप्नमें भी न गया हो तो हे माता वसुन्धरे! इस सरोवरको मैं पार कर जाऊँ।' इतना कहना था कि श्रीसीताजी उस अगाध सरको लीलासे पार कर गयीं।

इस दिव्य दृश्यका ऋषियोंके ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। उनका सन्देह समूल नष्ट हो गया। और तत्पश्चात्—

ततस्तां ते महासाध्वीं प्रणेमुर्मुनयोऽखिलाः।
राघवं शप्तुमैच्छंश्च तत्परित्याग मन्युना॥

—'वे अखिल मुनि उस महासाध्वी श्रीसीताजीको प्रणाम करने लगे और क्रोधित हो सीताको परित्याग करनेके कारण साक्षात् श्रीरामको शाप देनेके लिये उद्यत हो गये।' बात उचित थी। लोकापवाद-भयसे ही क्यों न हो, पूर्ण निष्पापा सतीके साथ अन्याय करनेवाले रामचन्द्रको भी दण्ड क्यों न दिया जाय? पर वह ठीक नहीं। जिसके पुण्य-प्रभावसे और सतीत्वकी अमोघ शक्तिके बलसे आर्य संस्कृतिकी पताका आज सारे संसारमें फहरा रही है और भविष्यमें भी फहराती रहेगी वह आर्य-स्त्री पातिव्रतसे कदापि विचलित नहीं हो सकती, वह सदा 'पतिहितेरता' और सदी पति-का वाञ्छती बनी रहेगी। उसका सतीत्व ही उसके पतिका सदा रक्षक है। भारतीय महिलाओंका यह विशेष गुण है। तात्पर्य यह कि श्रीसीताजीने ऋषिवृन्दको शापोद्यत अवस्थासे विरत करते हुए कहा—

युष्माभिरार्यपुत्रस्य न ध्यातव्यममंगलम्।'

'आप लोगोंके लिये आर्यपुत्रके अमङ्गलका ध्यान करना भी उचित नहीं, फिर शाप देना तो और भी अनुचित है।' सतीके पतिप्रेमका यह सर्वोच्च आदर्श अवश्य ही आदरणीय है। उन्होंने ऋषियोंसे स्पष्ट कहा—'शप्तुमर्हथ मामेव' अर्थात् 'शाप देना हो तो आप मुझे शाप दें।' आर्य-स्त्रीके मुख-कमलसे ये शब्द कैसी शोभा दे रहे हैं? दोष सर्वथा रामचन्द्रजीका है और प्रायश्चित्त सती सीता अपने माथे ले रही हैं! सच है, जगत्को सिखावन देनेवाले जनक और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी पत्नी ऐसा न करे तो और कौन स्त्री करेगी?

अस्तु, कुछ दिन बीतनेपर सीताजीके लव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन सीताजी उसे लेकर स्नान करने चली गयीं। उनकी अनुपस्थितिमें ही वाल्मीकिजी आश्रममें लौटे और लवको हिंडोलेमें न पा बड़े चिन्तित हुए। उन्हें भय हुआ कि कोई हिंस्र पशु बालकको उठा तो नहीं ले गया। सीताके भयसे तत्काल ही ऋषिने तपोबलसे कुशद्वारा एक बालककी रचना की और उस कुश-बालकको हिंडोलेमें सुला दिया। इसप्रकार सीताजीके लव और कुश दो पुत्र हो गये।

एक दिन इन सीताकुमारोंने—

अर्चालिंगं च वाल्मीकेश्चक्रतुः क्रीडनीयकम्॥

'वाल्मीकि मुनिके अर्चनीय शिवलिङ्गको क्रीडाकी सामग्री बना डाला।' उनके इस दोषके परिहारके लिये मुनिने परम दुर्घट प्रायश्चित्त सुनाया—

गत्वा कुबेरसरसः स्वर्णपद्मान्यानय त्वकः।
तदुद्यानाच्च मन्दारपुष्पाण्यानयतु द्रुतम्॥
ताभ्यां प्रानर्चितं लिंगमर्चयतामुभौ।

'कुबेरसर जा कर लव स्वर्णपद्मोंको और उसी उद्यानसे मन्दार पुष्पोंको लावें और दोनों भाई शिवलिङ्गकी पूजा करें।' इसे सुनते ही वह बालक कुबेर-सर पहुँचा और वहाँके रक्षक यक्षोंको मारकर स्वर्णपद्म तथा मन्दार पुष्प लेकर लौटा, रास्तेमें एक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगा, इतनेमें—

तत्रान्तरे च रामस्य नर्मेधे सुलक्षणम्।
छिन्दन् पुरुषमागच्छत् तेन मार्गेण लक्ष्मणः॥

स लवं समराहूतं मोहनास्त्रेण मोहितम् ।
क्षात्रधर्मेण बध्वा तं अयोध्यामानयत्पुरीम् ॥

'श्रीरामके नरमेधके हेतु सुन्दर लक्षणोंसे युक्त पुरुषोंको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते लक्ष्मणजी उसी मार्गसे लौटे और लवको युद्धके लिये ललकारकर उसे मोहनास्त्रसे मोहित कर बाँध करके अयोध्यापुरी लेगये ।' पाठक विचार कर सकते हैं कि इस समय सीताकी क्या दशा हुई होगी ? पर सर्वज्ञ वाल्मीकिजीने कुशको दिव्य शस्त्रास्त्र देकर अयोध्या जाकर लवको छुड़ा लानेकी आज्ञा दी । कुशने तुरन्त अयोध्याके लिये प्रस्थान किया और वहाँ जाकर—

रुध्यमानामयोध्यायां यज्ञभूमिं रुरोध सः ।

अयोध्यामें घोर संग्राम हुआ । पर सीताजी-जैसी पतिव्रता-शिरोमणिको, लोकापवाद तथा धर्मके नामपर, निर्वासित कर देनेवाले राम और लक्ष्मण, साक्षात् नारायणके अवतार भी उस जैसी महासतीके पुत्र और ऋषिवर वाल्मीकि-के परमभक्त त्रिभुवनविजयी वीर कुशके सामने कैसे ठहर सकते थे ? क्षणमात्रमें कुशने उन त्रिभुवन-कम्पी वीरवरोंको पराजित कर दिया । अन्तमें रामचन्द्रजीके पूछनेपर उसने कहा—

कुशस्ततोऽब्रवीत् बद्ध्वा लक्ष्मणेनाग्रजो मम ।
आनीत इह तस्याहं मोचनार्थमिहागतः ॥
आवां लव-कुशौ रामतनयौ इति जानकी ।
माता नौ वक्ति चेत्युक्त्वा तद्वृत्तान्तं शशंस सः ॥

लक्ष्मण मेरे बड़े भाईको बाँधकर यहाँ लाये हैं । मैं उनके छुड़ानेके लिये यहाँ आया हूँ । हमारी माता जानकीने बतलाया है कि हम दोनों लव-कुश श्रीरामके पुत्र हैं ।' इस वृत्तान्तको सुनकर श्रीरामका हृदय भर आया और उन्होंने उन बाल-वीरोंको पकड़कर हृदयसे लगा लिया—

अथ सीतां प्रशंसत्सु वीरोऽपश्यत्सुतौ शिशू ।
पौरेषु मिलितेष्वत्र स तौ रामोऽग्रहीत् सुतौ ॥
आनाय्य सीतादेवीं च वाल्मीकेराश्रमात्ततः ।
तया सह सुखं तस्थौ पुत्रन्यस्तभरोऽथ सः ।

श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी प्रशंसा करते हुए और उन दोनों अपने शिशु पुत्रोंको देखते हुए नगरनिवासियोंके साथ आनन्दसे उनको ग्रहण किया और वाल्मीकिजीके आश्रमसे श्रीसीता देवीको बुलवाकर पुत्रोंके ऊपर राज्यभार छोड़कर वे सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे ।

यही 'कथासरित्सागर' में कही हुई कथाका संक्षेपरूप है । अब पाठक सहज ही देख सकते हैं कि इस वर्णनमें और लोक-विश्रुत रामायणी कथामें कितना भेद है ? उपर्युक्त टिट्टिभ-सर और नीर-परीक्षाका वृत्तान्त रामायणमें नहीं पाया जाता । रावण-वधके पश्चात् सीताजीके अग्नि-प्रवेशकी कथा सबको विदित है । पर सीताजीकी यह सरोवरप्रवेशकी बात एकदम अनोखी है । हाँ, सीताजीका नदी-प्रवाहके मार्गको बदल देने या नूतन गंगधाराको उत्पन्न करनेकी कथाएँ प्रचलित हैं परन्तु सत्य-परीक्षार्थ सीताजीका सरोवर—प्रवेश करना एक बिल्कुल नयी बात है । वैसे इस कथामें, नरमेधका उल्लेख भी कम आश्चर्यजनक नहीं । श्रीरामके अश्वमेधकी बात तो प्रसिद्ध ही है पर श्रीरामके समय नरमेधकी राक्षसी प्रथा प्रचलित थी यह अत्यन्त ही असम्भव प्रतीत होता है । ❀ तीसरी बात, इस कथामें कुश-लक्ष्मणका अयोध्यामें युद्ध होता है । रामायणीय कथाके अनुसार यह युद्ध वाल्मीकिके आश्रमके समीप हुआ था । कहीं-कहीं तो इस युद्धके वाल्मीकि-आश्रमके समीप होने और कुश-लवके द्वारा श्रीराम-लक्ष्मणके पराजित होनेकी बात मिलती है । पद्मपुराणमें भी इस युद्धकी भूमि आश्रमके समीप ही बतलायी गयी है । इस कथामें कुश अपने माता-पिताका नाम स्पष्ट कह देते हैं और वाल्मीकि तथा अध्यात्म-रामायणमें दोनों बालक अपनेको मुनि-कुमार और वाल्मीकिजीके शिष्य कहते हैं और राम-सभामें राम-कथाका सुस्वर गान करते हैं । ऋषियोंका प्रभुको शाप देनेके लिये उद्यत होनेकी और लवके स्वर्णपद्म लानेकी कथा भी उल्लेखनीय है । एक और कथाभेद इसमें यह है कि जहाँ अन्य स्थलमें श्रीरामचन्द्रको सीता-सम्बन्धी अपवादकी कथा दूतोंद्वारा प्राप्त होती है वहाँ इस कथामें उसे श्रीराम गुप्तवेषमें अयोध्यामें घूमते हुए स्वयं सुनते हैं । इस कथामें सती सीताके एक ही पुत्र होनेका वर्णन है और रामायणमें लव-कुश दोनोंके जानकीजीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी बात पायी जाती है । कुश-से कुशकी उत्पत्तिका वर्णन अध्यात्म रामायणमें भी नहीं पाया जाता । तथापि यह कथा समस्त भारतमें प्रचलित है । इस कथामें

❀ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नरमेध यज्ञ करना कदापि सम्भव नहीं माना जा सकता । सम्भव है, नरमेध माननेवाले लोगोंने अपनी कल्पनासे ऐसी बातें लिख दी हों । परन्तु इन बातोंपर कभी विश्वास करना योग्य नहीं ।

सीता निर्वासनके पश्चात् सीता-रामका पुनः संयोग दिखाया गया है। यह कथा रामायणीय कथासे बिल्कुल विरुद्ध है। वाल्मीकीय रामायणमें सीता-निर्वासनका उल्लेख तो मिलता है पर सीताराम-संयोगकी बात नहीं मिलती। और 'कथासरित्सागर'में स्पष्ट लिखा है—

तया सह सुखं तस्थौ पुत्रन्यस्तभरोऽथ सः।

सोमदेवके कथनानुसार यह अनुमान किया जाता है कि यह कथा ऐसी ही 'बृहत्कथा' में वर्णित होगी। यह सम्भव नहीं कि सोमदेव-जैसा बहुश्रुत और विद्वान् कवि रामायणकी कथा (सीता-निर्वासन और मुनि आश्रमसे लौटते ही श्रीसीताजीके निज धाम-गमन) से अपरिचित हो और साथ ही यह भी सम्भव नहीं कि उन्होंने 'सरित्सागर' के आधारभूत बृहत्कथामें वर्णित राम-कथाके विपरीत ऐसा फेरफार किया हो। अतः सोमदेवके कथनानुसार ही बृहत्कथामें श्रीसीता-राम-संयोग अवश्य ही वर्णित रहा होगा। साथ ही यह भी निस्सन्देह है कि भवभूति इस प्रसिद्ध महान् ग्रन्थसे अवश्य परिचित थे। दण्डी, बाण,सुबन्धु प्रभृति कविवरोंके कथनानुसार ईसाकी छठीं शताब्दिमें यह ग्रन्थ प्रचलित था, अतः भवभूतिका इससे परिचित होना नितान्त सम्भव है। प्रोफेसर लेवीका भी यह मत है कि भवभूतिने मालतीमाधवका कथानक बृहत्कथाकी उस मूल कथासे लिया था जिसके आधारपर ही सोमदेवने कथासरित्सागरमें मदिरावतीकी कथा लिखी थी।

M. Lacote द्वारा प्रकाशित 'बृहत्कथा-श्लोक संग्रह' की विषयसूचीमें उपर्युक्त रामकथाका वर्णन नहीं है, पर क्षेमेन्द्रकी 'बृहत्कथा-मञ्जरी' में रामकथा अति संक्षेपमें वर्णित है तथा यह श्लोक भी उसमें पाये जाते हैं—

टिट्टिमोऽन्विततटे जायां दृष्ट्वान्येन समागताम्।
प्रतिश्रयार्थिना भर्तृधिया निर्व्याज मानसाम्॥
पुत्रौ कुशलवाभिख्यौ उक्तौ वाल्मीकिना स्वयम्।
तौ प्राप्य रामोदवितां विशुद्धामानिनाय ताम्॥

'स्वयं वाल्मीकिजीके कहने पर कि ये कुश-लव नामके दोनों आपके पुत्र हैं, श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें ग्रहण करके उस अपनी विशुद्धा भार्या श्रीसीताजीको बुला भेजा।' इस प्रकार बृहत्कथाके आधारपर लिखे गये तीन संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे दो ग्रन्थोंमें श्रीसीता-रामके पुनः सम्मेलनका वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, कथासरित्सागरके ग्रन्थकार तो यहाँतक कहते हैं कि 'यथा मूलं तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रमः।' इससे यह अनुमान सुदृढ़ होता है कि बृहत्कथामें श्रीसीता-राम-सम्मेलनकी कथा अवश्य वर्णित थी और क्योंकि यह ग्रन्थ ईसाकी छठीं शताब्दीमें प्रचलित था। अतः बहुश्रुत विद्वान् भवभूतिने इस कथासे परिचित होनेके कारण उत्तररामचरितके सम्मेलनाङ्ककी रचना करते समय इस कथाको अपने मनश्चक्षुके सामने अवश्य रक्खा था।

साथ ही यह बात भी याद रखने योग्य है कि रामकथा-जैसी परम प्रसिद्ध और परम पुनीत कथामें, नाट्यरचनाके लिये ही क्यों न हो, सहसा ऐसा विपर्यास करना भी सहज नहीं। और नाटककी लोकप्रियताके लिये भी ऐसा करना तबतक उचित नहीं समझा जाता, जबतक कविको उसके लिये तत्कालीन साहित्यमें कुछ आधार न मिल जाय। अन्तमें हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उपर्युक्त सोमदेवकी कथासे मिलती-जुलती कथाएँ अन्यत्र भी पायी जाती हैं।

दोनों लोकोंका पन्थ

बेदनको भेद बेदब्यासने बखान्यौ सोई,
सरल सुबोध भाषाबद्ध करि गायौ है।
रामायन बाल्मीकि आदि गुरु ग्रन्थन के,
भाव भरि कीन्हौं सार-संग्रह सुहायौ है॥
पान करि पावन सुजान-अनजान, ऐसो
बानीमय पावन पियूष बरसायौ है।
दास तुलसीने ग्रंथ मानसके ब्याज मानो,
पंथ दुहुँ लोकनको पाधरो बनायौ है॥

—अर्जुनदास केडिया।

तुझे अर्पण करें

लोचन लखें तो लखें तेरा ही अनूप रूप,
वाणी जो करे तो करे तेरे गुण गानको।
श्रवण सुनें तो सुनें तेरे ही मधुर बैन,
तेरे ही तनू की गन्ध मुग्ध करे प्राणको।
त्वचा भी छुए तो छुए तेरी ही चरण-धूलि,
मन भी सोचे तो सोचे तेरे गुण-तानको।
हृदय तेरा ही लोभी तेरा ही आसक्त बने,
अर्पण तुझे ही करे "चंद्र" प्रिय प्राणको।

—ताराचंद पांड्या बी० ए० "चंद्र"

परसत पद पावन सोक-नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन-सुख-दायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥

સ. સા. મુદ્રણાલય અમદાવાદ.

अहल्याका पद-वन्दन

राम-पद-पदुम-पराग परी।

ऋषि-तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी॥

प्रबल पाप पति-साप-दुसह-दव दारुन जरनि जरी।

कृपा-सुधा सिंचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख-फरनि फरी॥

निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुबति बराय बरी।

सोइ मूरति भइ जानि नयन-पथ इकटकतें न टरी॥

बरनति हृदय सरूप-सील-गुन-प्रेम-प्रमोद भरी।

तुलसिदास अस केहि आरतकी आरति प्रभु न हरी॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी स्वकथित जीवनी

(लेखक—साहित्यरत्न पं० श्रीविद्यानन्दजी त्रिपाठी)

कविकुल-चूडामणि, धर्मप्राण, सकल-शास्त्र-तत्त्वज्ञ, भगवद्भक्ताग्रगण्य श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका परिचय देनेकी कम-से-कम हिन्दी जाननेवालोंके लिये कोई आवश्यकता नहीं है। आपको काशी-लाभ हुए केवल तीन सौ वर्ष बीते हैं, फिर भी आपकी जीवनीके विषयमें बहुत कुछ खोज होनेपर भी कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी बल्कि भ्रम और भी बढ़ गया। इनके माता-पिताके नाम, इनकी जन्मभूमि आदिके विषयमें ऐसा घोर मतभेद है कि जिसका सामञ्जस्य होना नितान्त असम्भव-सा हो गया है। श्रीवेणीमाधवरचित 'गोसाईं चरित' का नाम बहुत दिनोंसे सुनते आते हैं, परन्तु वह पुस्तक बहुत खोज करनेपर भी प्राप्त नहीं हुई।

ऐसी अवस्थामें कविने स्वयं अपने विषयमें प्रसंगानुसार कहीं कहीं जो कुछ कह दिया है उसीके संग्रहसे सन्तोष करना है। यह कविजी भी ऐसे विरक्त थे कि अपने विषयमें गौरवकी बात तो कहना ही नहीं चाहते थे, बहुत नाराज हुए तो कह उठे—

'मेरी जाति पाँति न चहूँ काहूकी जाति पाँति,
मेरे कोऊ कामको, न हौं काहूके कामको।
साधु कै असाधु भलो कै पोच सोच कहा,
का काहूके द्वार परौं, जो हौं सो हौं रामको॥'

तथा—

धूत कहौ अवधूत कहौ
रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब,
काहूकी जात बिगारन सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको
जाको रुचै सो कहै कछु कोऊ।
माँगिके खैबो मसीतको सोइबो,
लैबेको एक न दैबेको दोऊ॥

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोसाईंजीने किसी पवित्र ब्राह्मण-कुलमें जन्म ग्रहण किया था यदि ऐसा न होता तो वे रजपूत कहनेसे न चिढ़ते। दूसरे, उन्होंने स्वयं लिखा है 'भलो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको।' इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि गोस्वामीजीका शरीर भी सुन्दर था। नागरी-प्रचारिणी-सभाके प्रबन्धसे छपे हुए रामायणमें जैसा बेढङ्गा चित्र दिया हुआ है, उनका शरीर वैसा नहीं था। 'सुन्दर' पदसे तो खड्गविलास-प्रेस बाँकीपुरमें छपे हुए रामचरितमानसमें जिस प्राचीन चित्रकी प्रतिलिपि दी हुई है वही समीचीन जँचती है, और वही प्रतिलिपि, गोस्वामीजीके अखाड़ेके पार्श्ववर्ती स्वर्गीय विन्ध्येश्वरीप्रसाद पण्डाजीके यहाँ गोस्वामीजीका जो प्राचीन चित्र है, उससे मिलती जुलती है।

गोस्वामीजीके माता-पिताने इनके जन्म लेते ही-चाहे अभुक्त मूलमें जन्म लेनेके कारणसे ही हो-इन्हें त्याग दिया था, और ये बहुत दिनोंतक बहुत ही दुखी अवस्थामें भटकते फिरे थे। यथा—

जायो कुल मंगन बधायो ना बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनकको।
बारेते ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनकको॥

तथा—

मातु पिता जग जाय तज्यो
बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर
कूकर टूकन लागि ललाई॥

परन्तु बचपनहीमें इन्हें किसी अच्छे महात्माका सत्संग हुआ, और उन्हींका शिष्यत्व प्राप्त होनेसे ये राम-रंगमें रंग गये, यथा—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

गोस्वामीजीके हृदयमें जैसी गुरुभक्ति थी, उससे उनके गुरुजीके अलौकिक सद्गुणोंका परिचय मिलता है, और उनके सत्संगसे गोस्वामीजीमें जैसे सद्गुण, श्रद्धा, विश्वास, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका उदय हुआ, उससे भी कहा जा सकता है कि गुरुदेव बोधमय शङ्कररूप ही थे।

गोस्वामीजीका नाम चाहे उनके गुरुजीने रक्खा हो, अथवा उनके रामनामकी रटनको सुनकर लोगोंने ही रख लिया हो-रामबोला था, जिसका उल्लेख गोस्वामीजी अभिमानके साथ किया करते थे, यथा 'रामबोला नाम हैं गुलाम राम साहिको' फिर विनयपत्रिकामें कहते हैं कि 'रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।'

गोस्वामीजीकी अपनी मातृभूमिके प्रति कैसी भक्ति थी, उसकी छाया श्रीरामचन्द्रजीसे अयोध्याका वर्णन करवानेमें आगयी है, यथा—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥

गोस्वामीजी स्वयं जिस भाँति चित्रकूटका वर्णन करते हैं और वहाँके कोल-किरात, बेलि-बिटप, तृणकी भी महिमा कहते हैं, इससे उनके चित्रकूट-प्रान्तमें जन्म ग्रहण करनेकी बात युक्तियुक्त मालूम होती है। चित्रकूट जाते समय—

कबि अलखित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

—बटुका श्रीरामचन्द्रसे मिलना और फिर उसका पृथक् न होना, श्रीरामचरितमानसमें एक ऐसी विचित्र घटना है, जिससे उक्त स्थलको उनकी जन्म-भूमि माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

गोस्वामीजीके ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि पारलौकिक साधनके उपयुक्त शास्त्रानुभवके होते हुए भी, गोस्वामीजीको गृहस्थाश्रमका पूरा अनुभव था, उन्होंने अवश्य ही गृहस्थ जीवन निर्वाह किया था, और उसके मर्मको उनकी कुशाग्र बुद्धिने अच्छी तरह समझ लिया था। विनयमें तो उन्होंने स्वयं स्पष्ट स्वीकार ही किया है—

लरिकाईं बीती अचेत चित चंचलता चौगुनो चाय।
जोबन जुर जुबती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय॥

इत्यादि।

परन्तु ऐसे महापुरुषोंका बहुत दिनोंतक गृहस्थीके जालमें फँसे पड़ा रहना असम्भव था। निमित्त कारण चाहे कुछ भी हुआ हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि अवसर पाते ही रुका हुआ वैराग्यका सोता फूट पड़ा, और

बाढ़ विपुल बैराग मनहु भाल भूल भाल बस

—को चरितार्थ कर दिखलाया।

गोस्वामीजीके रामानन्दीय सम्प्रदायी (वैरागी) होनेके अनुकूल अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। इस सम्प्रदायके गृहस्थ शिष्यको विरक्त होनेमें किसी विशेष संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ती। घरका त्याग देना ही पर्याप्त समझा जाता है, गृहस्थीके समयकी ली हुई दीक्षा ही यथेष्ट होती है। मालूम होता है कि गोस्वामीजीने भी ऐसा ही किया था, यथा—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

दूसरे वैरागीसमाज अपना अच्युत गोत्र बतलाता है और गोसाईंजी भी कहते हैं—

अतिही अयाने उपखानेहू न बूझै लोग

साहिबके गोत गोत होत है गुलामको ।

इस पदसे अच्युत गोत्र ही ध्वनित होता है । वैष्णव-सम्प्रदायमें स्मार्त सम्प्रदाय केवल वैरागियोंका है, और गोसाईंजीके स्मार्त-वैष्णव होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

संक्षेपतः गोस्वामीजीकी सम्पूर्ण जीवनी नीचे लिखे हनुमानबाहुकके दो कवित्तोंमें आ जाती है, यथा —

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,

राम नाम लेत माँगि खात टूक-टाक हौं ।

परयो लोकरीतिमें पुनीत प्रीति रामराय ,

मोह-बस बैठयो तोरि तरक तराक हौं ॥

खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो

अंजनीकुमार सोध्यो रामपानिपाक हौं ।

तुलसी गोसाईं भयो, भोंडे दिन भूलि गयो,

ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥

असन-बसन-हीन विषम विषाद लीन

देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ।

तुलसी अनाथसो सनाथ रघुनाथ कियो

दियो फल सील सिन्धु आपने सुभायको ॥

नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो

बिहाय प्रभु भजन बचन मन कायको ।

ताते तन पेषियत घोर बरतोर मिस

फूटि फूटि निकसत लोन राम-रायको ॥

साधु-वेषधारी होनेपर गोस्वामीजीने अपनी अमृतमयी वाणीसे रामरस बरसाना आरम्भ किया और इनकी महिमा दिगन्तमें प्रसिद्ध हुई । ऐसे भगवद्भक्तका करामाती होना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, यथा—

रामप्रताप सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जायो ।

निदान इनका नाम बड़ा परन्तु महापुरुष सरल होते हैं, अपनी कच्ची-पक्की सब कह डालते हैं । यथा—

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय ।

ते तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ॥

गोस्वामीजी बहुत दिनों तक अयोध्यामें रहे और वहीं रामचरितमानसकी रचना संवत् १६३१ की रामनवमीको प्रारम्भ की । इस समय गोस्वामीजीकी परिपक्वावस्था थी । यथा—

भयउ सुमानस सुथिर थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

आप प्रयागराज, वृन्दावन, जनकपुर, हिमालय, चित्रकूट आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करते थे और इन तीर्थोंका वर्णन भी इनके ग्रन्थोंमें पाया जाता है । रामचरितमानसके निर्माणके ४६ वर्ष बादतक जीवित रहनेसे तो यही अनुमान होता है कि गोस्वामीजीके विशेष नहीं, तो शतायु होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है ।

यद्यपि गोस्वामीजीके नामसे बहुत-से ग्रन्थ देखे जाते हैं, परन्तु बारह ग्रन्थ तो गोस्वामीजीद्वारा रचित होनेमें सब एकमत हैं । (१) रामचरितमानस (२) रामलला-नहछू (३) वैराग्यसंदीपनी (४) बरवै रामायण (५) पार्वतीमंगल (६) जानकीमंगल (७) रामाज्ञा प्रश्न (८) दोहावली (९) कवितावली (१०) गीतावली (११) श्रीकृष्णगीतावली और (१२) विनयपत्रिका । इन्हीं ग्रन्थरूपी स्मारकोंने गोस्वामीजीका नाम अमर कर दिया है । इन ग्रन्थोंको देखनेसे गोस्वामीजीके प्रगाढ़ पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्व, अनन्य रामोपासना, सरल स्वभाव, निश्चल विश्वास, उच्च उदारभाव आदिका पता चलता है । ये ग्रन्थ ऐसे हैं कि इनको वैष्णव, शैव, शाक्त सभी सानन्द पढ़ते हैं, और किसीके हृदयपर ठेस नहीं लगने पाती । अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी और द्वैतवादी सभी मनन करते हैं और किसीको अरुन्तुद नहीं बोध होता ।

रामके गुलामनकी रीति प्रीति सूधी सब,

सबसों सनेह सबहीको सनमानिये ।

इस पदको गोस्वामीजीने कार्यमें परिणत करके दिखला दिया है और अपनी रचनाकी फल-श्रुतिमें जो गोस्वामीजीने कहा है कि—

गावत बेद पुरान अष्टदस , छवो शास्त्र सब ग्रन्थनको रस ,

मुनि जन धन सन्तनको सरबस , सार अंस सब बिधि सबहीको ॥

सो बिल्कुल ठीक है ।

अपनी रचनामें गोस्वामीजीने सम्पूर्ण शास्त्रोंका सामञ्जस्य कर दिखाया है, एक वाममार्गका सामञ्जस्य करनेमें गोस्वामीजी असमर्थ रहे । इतना ही नहीं, गोस्वामीजी वाममार्गको श्रुति-सम्मत नहीं मानते थे, यथा—

तजि श्रुति पंथ बाम पथ चरहीं । बंचक बिरचि बेष जग छरहीं ॥

रावणके प्रति अंगदकी उक्ति है—

कोउ कान बस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
जीवत सव समान ये प्राणी।

गोस्वामीजीने अखिल वेदमूलक वादोंको, अधिकारी भेदसे ठीक माना है। अद्वैतवादको गोस्वामीजी परम अधिकारीके लिये ठीक मानते हैं, यथा—

मोहि परम अधिकारी जानी।
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
निरबिकार निरवधि सुखरासी। मनगोतीत अमल अबिनासी॥
सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥

और जब भुशुण्डिजीने उस उपदेशको नहीं माना, तब मुनिजीसे क्रोधपूर्वक कहलाते हैं कि—

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥

भुशुण्डिजी इसी प्रकरणका उल्लेख करते हुए गरुड़जीसे कहते हैं कि 'भक्तिपच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि साप'

यहाँ भी भुशुण्डिजीका हठ कहकर अद्वैतवादकी उत्कृष्टता दिखलायी है। ज्ञानदीप-प्रकरणमें तो 'सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा' कहकर स्पष्ट अद्वैतवादका स्थापन करते हैं, परन्तु सामान्य जीवके लिये इसे नितान्त दुष्कर समझते हैं। इसभाँति अद्वैतवादको गोस्वामीजीने ज्ञानमार्गके नामसे उक्त किया है।

विशिष्टाद्वैत मध्यम अधिकारियोंके लिये माना है, यथा—

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।

अथवा—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।

इस वादको गोस्वामीजी भक्तिमार्गके नामसे उक्त करते हैं। भक्ति-मणिके प्रकरणमें ज्ञानकी दुष्करता और भक्तिके सुकरताको बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है, और इसभाँति ज्ञानपर भी भक्तिकी प्रधानता दिखलायी है।

सब सिद्धान्तोंको आदर देते हुए देखकर लोगोंमें भ्रम उत्पन्न होता है कि स्वयं गोस्वामीजीका कौन-सा सिद्धान्त था? और इसपर वाद-विवाद उपस्थित हो जाता है। परन्तु विचारणीय बात है कि अशेष वादोंका यथास्थान आदर तथा पञ्चदेवोपासन सिवा अद्वैतवादके और कहाँ सम्भव है?

प्रामाणिक रीतिसे यह भी पता चलता है कि इस सम्प्रदायके परमाचार्य भगवान् रामानन्दजी ज्योतिर्मठके ब्रह्मचारी थे। बारह वर्षतक गिरनारपर तप करके उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। इनके सम्प्रदायमें भजनका प्राधान्य है। इसीसे लोगोंको इनके विशिष्टाद्वैतानुयायी होनेका भ्रम हो जाता है। परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है, शङ्कर सम्प्रदायवाले भी निरुपाधि-ज्ञानको (उपासनाहीन) अकिञ्चित्कर मानते हैं। स्वयं नाभाजीने भक्तमालमें भगवान् शङ्कराचार्यकी भक्तोंमें गणना की है, यथा—'आचारज शङ्कर सुभट' निदान रामानन्दीय सम्प्रदायमें वादविवादकी अभिरुचि कभी भी नहीं रही। गुरु-परम्परासे मौखिक उपदेशकी प्रथा गोस्वामीजी तक चली आयी, और गोस्वामीजीने उसे लिपिबद्ध करके रामचरितमानस नाम रक्खा। अतएव यह उक्त सम्प्रदायका एकमात्र साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। इसके मूलसम्प्रदायप्रवर्तक भी शङ्कर ही माने गये हैं यथा—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
सो सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम-भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
औरौ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
……………………………भाषाबद्ध करब मैं सोई॥

कवितावलीमें गोसाइँजीने कहा है कि 'बेष बिरागको राग भरो मनु' इससे उनका वैरागी होना सिद्ध होता है और हंसवेष भी कहा है, यथा '[illegible] हमको बेष बड़ो सबसे [illegible]' कदाचित् वैरागियोंके वेषको हंस-वेष और संन्यासियोंके वेषको परमहंस-वेष माना हो।

गोस्वामीजीकी सरलता, साधुता और भजनका संसारमें भी ऐसा आदर किया कि जहाँ-जहाँ उनका वास-विश्राम हुआ वे सब स्थान तीर्थरूप माने गये, और वहाँ मन्दिर-अखाड़े बने हुए हैं।

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

इस विश्वासपर गोस्वामीजी काशीमें आ बसे, और वहीं—

संवत सोलह सै असी, असी गंगके तीर।
सावन स्यामा तीजको तुलसी तज्यो सरीर॥

प्रह्लाद घाट, काशी। पं० गंगारामजी जोशीका घर।

पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दृश्य, काशी
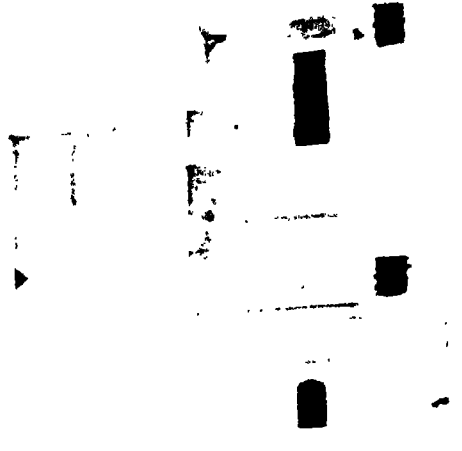
विनय-पत्रिका भवनका बाहरी भाग, काशी

तुलसीघाट, काशी
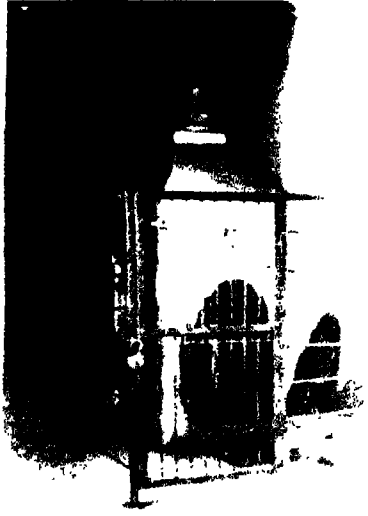
श्रीहनूमानजीका मन्दिर, काशी

गोस्वामी तुलसीदासजीका चित्र, काशी

संकटमोचनका भीतरी दृश्य, काशी

संकटमोचनका बाहरी दृश्य, काशी

आजकलका प्रचलित पाठ है कि-

सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ सरीर ।

-परन्तु यह पाठ नितान्त अशुद्ध है। भडुरके कई दोहे 'सावन शुक्ला सप्तमी' परक हैं, यथा—

सावन शुक्ला सप्तमी जौ गर्जे अधिरात,

तथा-

सावन शुक्ला सप्तमी उदय न देखिय भान । इत्यादि

अतः सावन शुक्ला सप्तमी लोगोंके ज़बानपर थी, और सावन श्यामा तीज का अर्थ भी उतना सीधा नहीं है। अतएव प्रमादसे इस पदके स्थानको भी सावन शुक्ला सप्तमीने दखल कर लिया ।

गोस्वामीजीके अखाड़ेका कई पुश्तसे सेवक होनेके नाते मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि 'सावन श्यामा तीज' पाठ ही शुद्ध है। गोस्वामीजीके अखाड़ेमें तथा टोडरमलके (जिनके यहाँका पञ्चनामा गोसाईंजीके हाथका लिखा श्रीमान् काशीनरेशके यहाँ सुरक्षित है) वंशज चौधुरी लालबहादुर सिंहके यहाँ भी यही तिथि मान्य है।

यह सुनकर भी कष्ट होता है कि किसी महाशयने, सम्भवतः डाक्टर ग्रियर्सनके अनुमानका अनुसरण करते हुए कवितावलीसे यहाँतक सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि उस समय काशीमें प्लेग फैला हुआ था । यथा

संकर सहर सर नारि नर बारिचर
बिकल सकल महामारी माजा भई है।
एक तौ कराल कलिकाल सूल मूल, तामें,
कोढ़में की खाजु सी सनीचरी है मीनकी।

अतः गोसाईंजीको भी प्लेग हो गया, फोड़ा हुआ, बाहुमें पीड़ा हुई, यथा—

'पायँपीर पेटपीर बाहुपीर मुँहपीर
जरजर सकल सरीर पीरमई है।

बहुत-से देवी-देवता मनाये गये, जब नहीं अच्छे हुए तब यह कहा कि 'होहु रहौ मौनही बयो सो जानि लूनिये' और देहान्त हो गया ।

शरीरीका शरीरसे वियोग किसी-न-किसी हेतुसे होता ही है, प्लेगका हेतु होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

परन्तु जिस समय काशीमें प्लेग फैला था उस समय कवितावलीके ही अनुसार मीनकी सनीचरी थी, और यदि दोहावलीकी सहायता ली जाय तो यह भी सिद्ध होता है कि उस समय रुद्रबीसी भी चल रही थी, यथा—

अपनी बीसी आपनें पुरहिं लगायो हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्वकी करौं बिस्वके नाथ ॥

अतः मीनकी सनीचरी और रुद्रबीसी दोनों संवत् १६७१ में ही समाप्त हो जाती है, और गोसाईंजीका देहावसान संवत् १६८० में हुआ, अतः गोसाईंजीके देहावसानका कारण प्लेग प्रमाणित करनेके लिये इतना बड़ा साहस करना कि मीनकी सनीचरी तथा रुद्रबीसीको भी ९ वर्ष आगे तक खींच ले जाना उपयुक्त नहीं मालूम होता ।

वैद्य-डाक्टरोंके पूछनेसे पता चलेगा कि बाहुपीर बाहु-मूलसे उठकर उँगलियों तक जाती है, और अति असह्य वेदना पैदा करती है, अतएव बाहुमूलकी पीर प्लेगकी द्योतक नहीं है, और न बरतोर का अर्थ प्लेगकी गिलटी है, और न 'होहु रहौ मौन बयो सो जानि लूनिये' यह पद ही कविता-वलीकी प्राचीन लिपिमें मिलता है, अतएव उनका प्लेगसे मरना नयी खोजके प्रयत्नमें शाबाशी पानेवालोंकी कपोल-कल्पनाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि यदि उक्त रोगसे गोस्वामीजी-का देहावसान हो गया होता, तो हनुमानबाहुकका अनुष्ठान रोगकी निवृत्तिके लिये कदापि न किया जाता । हनुमानबाहुकके अनुष्ठानकी परिपाटीसे ही यह बात सिद्ध है कि गोस्वामी इस रचनाके बलसे इतनी बड़ी पीरसे विनिर्मुक्त हुए ।

गोस्वामीजीकी लिखावट

गोस्वामीजीके अक्षर सुन्दर और पुष्ट होते थे। संवत् १६६९ में उनके भक्त टोडरमलके वंशजोंमें संपत्ति-विभागके लिये झगड़ा हुआ । गोस्वामीजीने विभाग कर दिया और उसे दोनों पक्षोंने प्रमाण माना । तदनुसार पञ्चनामा लिखा गया, उसमें दो श्लोक और एक दोहा गोस्वामीजीके हाथका लिखा हुआ है । स्वर्गवासी महाराज ईश्वरीनारायणसिंह काशिराजने उस पञ्चनामेको टोडरमलके वंशजोंके यहाँसे अपने यहाँ मँगवा लिया, और वहाँ अबतक मौजूद है ।

दूसरी लेखरूपमें गोस्वामीजीके हाथकी लिखी हुई वाल्मीकीय रामायण सातों काण्ड पं० राधाकान्त पाण्डेय नवाबगंज काशीके यहाँ थी, जिसमेंसे उत्तरकाण्ड इस समय कीन्स कालिजकी लाइब्रेरीमें है. उसमें 'लि० तुलसीदासेन' अन्तमें लिखा हुआ है, दो काण्ड और भी कहीं चले गये, शेष तीन काण्ड पण्डितजीके यहाँ मौजूद हैं। इस ग्रन्थके अक्षर और पञ्चनामेके अक्षर बिल्कुल एक-से हैं।

इनके अतिरिक्त गोस्वामीजीके लेखका पता नहीं चलता। राजापुरकी प्रति भी बहुत प्राचीन है, पर उसके अक्षर वैसे मेल नहीं खाते जैसे कि पञ्चनामा और उपर्युक्त वाल्मीकीय रामायणके अक्षर मिल जाते हैं

गोस्वामीजीकी रचना

गोस्वामीजीके उपर्युक्त १२ ग्रन्थोंमेंसे कई एक तो

गोस्वामीजी लिखित वा० रामायण उत्तरकाण्डका प्रथम पृष्ठ

गोस्वामीजी लिखित वा० रामायण उत्तरकाण्डका अन्तिम पृष्ठ *

तीसरी मिथिलाके किसी पण्डित-घरानेमें कोई पोथी है, जो गोस्वामीजीके हाथकी लिखी हुई कही जाती है परन्तु उसके दर्शनका सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ।

चौथी मलीहाबादकी रामायण भी गोस्वामीजीके हाथकी लिखी हुई कही जाती है, परन्तु विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि यह बात गलत है

आरम्भसे अन्ततक क्रमपूर्वक रचे हुए हैं, और शेष उनकी विभिन्न समयकी कविताओंके संग्रहमात्र हैं। ग्रन्थोंके नामोंमें भी परिवर्तन हुआ है, रूपमें भी परिवर्तन हुआ है। इस विषयमें जहाँतक मुझे पता चला है, सर्वसाधारणके सामने उपस्थित करूँगा, जिसमें इस विषयके खोजनेवालोंको उनके प्रयत्नमें सहायता मिले। †

---

* ये दोनों छायाचित्र 'क्वीन्स कालेज'की लाइब्रेरीके उत्तरकाण्डसे लिये गये हैं। इस कृपाके लिये हम लाइब्रेरियन महोदयका हृदयसे धन्यवाद करते हैं।—सम्पादक

† इस विषयमें आपका 'तुलसीकृत ग्रन्थोंके शुद्ध पाठकी खोज' शीर्षक लेख मिल गया है। स्थानाभावसे इस अङ्कमें न छप सका। किसी अगले अङ्कमें छापनेका विचार है। —सम्पादक

श्रीहनूमान्‌जीका महत्त्व

(लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र शंकरजी टकी महाराज बी० ए०)

जय देव,जय देव,जय मारुतिराया,श्रीमारुतिराया ।
आरति ओवाळूं तुज, भक्त्यामृत प्याया ॥
लङ्कारूपी काम-क्रोधा जाळुनियां ।
बुद्धी सीता शुद्धी, करिसी कपिवर्या ॥
अगाध शक्ती तुझी, न कळे कोणासी ।
द्रोणागिरि तूं उचलुनि, शेषा रक्षीसी ।
दवडुनि गरुडगर्वा, फोडुनि मणि ताना ।
दास्य भक्ती आम्हां, शिकविसी हनुमंता ॥
ब्रह्माण्ड पुराणीं, आइकले ज्ञान ।
फेडिसि तेंचि पुनरपि अर्जुन रथीं पूर्ण ॥
धालिसि उडी तद ओढे, जधि तूं मंदिरीं या ।
श्रीशंकरसुत राम, लागे तव पाया ॥

उस दिन मुझे उपर्युक्त आरतीकी स्फूर्ति हुई और मैंने गोपालको बुलाकर इसे लिखवा लिया । आज श्रीहनूमान्‌की प्रेरणासे उस आरतीका स्पष्टीकरण करनेका अवसर प्राप्त हुआ है । श्रीहनूमान् कौन हैं, उनका क्या अधिकार है ? प्रभृति प्रश्नोंके उत्तर जान लेनेपर आरतीका अभिप्राय सहज ही हृदयङ्गम हो जायगा । अतः भारतीय पौराणिक साहित्यके अवतरण देकर मैं इस विषयको स्पष्ट करूँगा ।

केसरी तथा अञ्जनी वानर-युग्मसे वायुदेवताके प्रसादसे एक पुत्र हुआ, वही बालक हनूमान् नामसे प्रख्यात हुआ। श्रीहनूमान्‌जी रुद्रांश लेकर अवतरित हुए थे । इनका जन्म चैत्र-शुक्ल १५ को हुआ ।

जिस दिन यह सूर्यके बिम्बको पकड़ने आकाशमें उड़े, उस दिन सूर्यग्रहण था । जब यह आकाशमें तीन सौ योजन ऊँचे उड़गये, तब सूर्य घबरा गये । सब देवता दौड़े आये । पर इनके सामने किसीकी एक भी न चली । तब इन्द्रने इनपर वज्रप्रहार किया, जिससे हनु भंग होनेके कारण श्रीहनूमान्‌जी मूर्छित होकर गिर पड़े । इस प्रसङ्गको देखकर इनके पिता वायुदेवने सब देवताओंके प्राणवायुको आकर्षण कर लिया, जिससे सब घबराकर उनकी शरण गये और हनूमान्‌को सचेतकर उन्हें बहुत-से वरदान दिये । इन्द्रवज्रसे हनु-भंग हो जानेके कारण इनका हनूमान् नाम पड़ा । यह अत्यन्त बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा पराक्रमी हैं । इन्होंने श्रीरामचन्द्रसे सुग्रीवका सख्य कराया, सीताके अन्वेषणका कठिन कार्य भी इन्होंने किया, रावणका गर्व नष्ट किया और श्रीरामचन्द्रजीकी अन्य अनेक प्रकारसे सहायता की । यह एकनिष्ठ रामभक्त हैं । किंपुरुषवर्ष[1]में रहकर श्रीरामकी उपासना करते हैं । ये अमर हैं । अर्जुनके रथपर महाभारतयुद्धमें यही बैठे थे । इनके मारुति, महावीर, अञ्जनिनन्दन आदि अनेक नाम हैं । इनकी रामायण-रचना 'नाटकरामायण' या 'हनुमन्नाटक' के नामसे विख्यात है ।

श्रीहनूमान्‌का जन्म चैत्र-शुक्ला पूर्णिमाको होनेका कारण यह है कि सद्भक्त सगुण मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रतिपदासे नव दिन नवधा भक्तिकी साधना प्रारम्भ करता है । पहले दिन श्रवण-भक्ति करनेके उपरान्त फिर क्रमशः प्रतिदिन कीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन आदि भक्तियोंको निष्काम बुद्धिसे करके तथा उन सबको ईश्वरार्पण करनेपर उसे नौमीको रामदर्शन-का लाभ होता है । अर्थात् अन्तिम भक्ति करनेसे सद्गुरु-कृपासे उसे स्वरूप-बोध होता है ।

श्रीहनूमान् यह देखकर कि, सूर्यरूप ज्ञानको राहुरूप अज्ञान ग्रस रहा है तथा यह जानकर कि, ज्ञान-अज्ञान दोनों ही मायानिर्मित हैं । ब्रह्मभावसे वह उनपर झपट पड़े । उस समय उनका विरोध करनेके लिये इन्द्रादिरूप कामादि षड्रिपुओंने अपनी वज्ररूप शक्ति उनके हनुरूप भूमिकापर डाली, किन्तु वह केवल स्पर्शकरके ही गेंदकी तरह उछल गयी ।

अब उपर्युक्त आरतीकी मीमांसा करते हैं—

'जयदेव, जयदेव, जय मारुतिराया ।' मरुत अर्थात् वायुके प्रसादसे इनका जन्म होनेके कारण उन्हें मारुति या वायुसुत कहते हैं । इसमें श्रीहनूमान्‌जीको प्रेमपूर्वक गौरव

[1] जम्बूद्वीपके एक खण्डका नाम किंपुरुषवर्ष है ।

प्रदानकर ज्ञानयुक्त भक्तिका आस्वादन करनेके लिये 'आरती ओवालूं' यह पद दिया गया है।

लंका दहन

'लङ्का रूपी काम क्रोध जाळुनियाँ। शुद्धि सीता शुद्धि करिति कपिवर्या

'इस पदसे लङ्कादहन तथा सीता-शुद्धि-अर्थात् श्रीहनूमान्‌जीकी इन लीलाओंमें जीवोंके सत्वरूपी दर्पणका रज-तमरूप लेप नष्ट हो जानेपर चित्तशुद्धि-योगसे प्रतिबिम्ब बिम्बमें मिल जानेपर सद्‌गुरुकी कृपासे 'तत्त्वमसि' वाक्यका ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, यह बतलाया। इस लीलाका वर्णन आपटे महोदयके बालरामायणमें इसप्रकार किया है

'सीताको अनुकूल करनेके लिये रावणने उसे बहुत मनाया, परन्तु सीताने उसकी एक बात भी नहीं सुनी। पश्चात् रावणने राक्षसियोंके पहरेमें रखकर सीतासे छल किया। इसपर भी उसके वशमें न होनेके कारण उसे एक वर्षकी अवधि दी और उस अवधिके बीतनेपर यदि वह राजी न हुई तो उसे मार डालनेकी धमकी दी। इस अवधिमें अब दो ही मास बाकी रह गये थे। सीता बारम्बार श्रीरामका स्मरण करती हुई महान् दुखी हो रही थी। उसे अन्न-जल भी अच्छा नहीं लगता था। इस दशामें अचानक हनुमानजीने आकर श्रीरामचन्द्रकी दी हुई अंगूठीका स्मृतिचिह्न दे श्रीराम-लक्ष्मणके कुशलयुक्त होने और शीघ्र ही आकर उसे छुड़ा ले जानेका समाचार निवेदनकर ढाढस दिया। उस समय श्रीजानकीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने हनुमान्‌को यह कहकर विदा किया कि शीघ्र जाकर श्रीराम-लक्ष्मणको ले आओ। श्रीहनूमान्‌ने वहाँसे जाते समय अशोक-वनको विध्वंस कर डाला। यह समाचार पा राक्षस दौड़े आये, पर उन सबको भी उन्होंने मार डाला। तब रावणने अपने पुत्र अक्षय तथा इन्द्रजीतको भेजा। जिनमें अक्षयको तो हनुमान्‌जीने पछाड़ दिया, पर इन्द्रजीतके आप स्वयं ही अधीन हो गये। तब राक्षस इनके हाथ-पैर बाँधकर रावणके समीप ले गये। रावणने उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी, परन्तु विभीषणके राजधर्म समझानेपर उसने उनकी पूँछमें चिथड़े लपेट तेल डालकर आग लगानेकी आज्ञा दी। रावणकी इस आज्ञाका पालन होते ही हनुमान्‌जी उछले और इन्होंने एक घरसे दूसरे घरपर कूदते हुए सारी लङ्काको जला दिया। पश्चात् समुद्र पारकर अंगदादि वानरोंसे आ मिले और सबके साथ रामचन्द्रजीके समीप गये। श्रीहनूमान्‌जी चिह्नके लिये श्रीसीताजीकी वेणीकी दिव्यमणि लाये थे उसे श्रीरामचन्द्रजीको दिखलाकर सब वृत्तान्त निवेदन करने लगे। तब श्रीरामको अत्यन्त हर्ष हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे श्रीहनूमान्‌जीको छातीसे लगा लिया।

द्रोणगिरि लाना

श्रीहनूमान्‌जीके द्रोणगिरि उठा लानेकी कथा श्रीवैद्यकृत रामायणमें इसप्रकार है

'सुषेण (रामसैन्यका वानर) श्रीरामको सान्त्वना देते कहता है--

'महाराज, लक्ष्मण मरे नहीं हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। इनका मुख निस्तेज नहीं हुआ है। इनके करतल पद्म-पत्रके समान शीतल और सुखस्पर्श जान पड़ते हैं। हृदयकी धुकधुकी चल रही है। श्वासोच्छ्‌वास भी मन्द-मन्द चलता प्रतीत होता है। इस समय यदि सञ्जीवनी मिल सके तो मैं इन्हें तुरत सचेत कर सकता हूँ। तब श्रीहनूमान्‌जी आगे बढ़कर बोले, 'हे सुषेण! सञ्जीवनी कहाँ मिलेगी? बताओ, मैं उसे एक क्षणमें ले आ सकता हूँ।' सुषेणने कहा 'इस दुष्कर कार्यको करनेवाला तू ही है, और कोई नहीं। जा, हिमालयपर कैलासके दक्षिण शृङ्गपर सञ्जीवनी महौषधि है, और वहीं विशल्यकरणी तथा सावर्ण्यकरणी नामकी ओषधियां हैं, उन्हें शीघ्र ला।' यह सुनते ही श्रीहनूमानजी उड़े और थोड़े ही समयमें हिमालय-पर्वत-पर पहुँच कैलासपर्वतके दक्षिण शृङ्गपर ओषधि ढूँढने लगे, पर उन्हें पहचान न सके। फिर यह सोचकर कि खोजनेमें विशेष विलम्ब हो जायगा, श्रीहनूमान्‌जी उस सम्पूर्ण शृङ्गको ही उखाड़ कर उसे गेंदकी तरह हाथमें ले हिमालयसे उड़े और लङ्कामें सुषेणके समीप उतरे। सुषेण श्रीहनूमान्‌जीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर रह गया और उसने अतिप्रेमसे उनकी पीठ ठोंकी। किञ्चित् विश्राम करके हनूमान्‌ने कहा--'इस शृङ्गपरकी ओषधियां आप पहचान लीजिये, मैं पहचान नहीं सका और विलम्ब होनेके भयसे इस शृङ्गको ही लेते आया।' सुषेणजीने आवश्यक ओषधियोंका रस निकाल श्रीलक्ष्मणजी-के नाकमें छोड़ा जिससे वे तत्काल सावधान हो उठ बैठे।

लंका जलानेके बाद हनुमानजी जननी सीताकी चरण वन्दना कर रहे हैं।

श्रीलक्ष्मणजीको जीवित करनेके लिये द्रोणाचल लाना

श्रीहनुमानजीके द्वारा गरुड़जीका गर्व-हरण

हनूमानजीका हार तोड़ना और हृदय चीरकर दिखलाना।

श्रीरामका हनूमानके प्रति ज्ञानोपदेश

पार्थके रथपर हनूमानजी

श्रीहनूमानजी पर इन्द्रका वज्र गिराना

गरुड़-गर्व-हरण

गरुड़के मनमें अपने परम पराक्रमी होनेका महान् गर्व था। यह जानकर श्रीविष्णु भगवान्‌ने आज्ञा दी कि—'हे सुपर्ण, तू बड़ा पुरुषार्थी है, तेरे-जैसा पुरुषार्थी तीनों लोकमें और कौन होगा? अब तू शीघ्र वनमें जाकर एक बन्दर पकड़ कर ला। तू अकेला ही पकड़ लायगा या अपने साथ कुछ सेना भी लेता जायगा?' यह सुन कर गरुड़ बड़े आवेशमें आये और उन्होंने श्रीहरिसे कहा—'मैं तो गिरते हुए आकाशको भी अपने बलसे धारण कर सकता हूँ, मुझे यही आश्चर्य मालूम होता है कि आप मुझ-जैसे पराक्रमीको बन्दर पकड़ने क्यों भेज रहे हैं? हे सभासदो! देखो, मैं अभी बन्दर पकड़ लाता हूँ।' ऐसा कहकर श्रीहरिको चरण-वन्दना कर गरुड़ आकाशमें उड़े। शीघ्र ही वनमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि हनूमान् उनकी ओर पीठ किये हुए बैठे हैं और कौतुकसे फल खा रहे हैं; साथ-साथ मुँहसे रामनाम-कीर्तन भी कर रहे हैं। यह देखकर गरुड़ने कहा—'रे बन्दर! तूने सारा वन नष्ट कर डाला और सारे वनचरोंको भगा दिया। अरे पामर! तूने तो सब फल भी खा डाले। तू बड़ा अन्यायी है, मैं तुझे दण्ड दूँगा।' गरुड़की इस बातको सुनकर हनूमान्‌जीने मुसकरा-कर कहा कि—'तुम अपना नाम हमें बताओ। तुम्हें किसने भेजा है?' गरुड़ने कहा कि 'मेरा पुरुषार्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। मैं कश्यपसुत, श्रीहरिका दूत पक्षिराज गरुड़ हूँ। मैंने सब देवताओंको परास्त कर अपने पुरुषार्थसे अमृत प्राप्त किया है। मेरे भयसे नागराज पृथिवीके नीचे जा छिपे हैं।' इसपर हनूमान्‌जीने कहा—'जो अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा करता है वह सौ मूर्खोंकी अपेक्षा भी अधिक अज्ञानी है। बल, यश, कीर्ति, धर्म, पुरुषार्थ तथा अपनी परम विद्याकी जो अपने मुँहसे प्रशंसा करता है, वह वास्तवमें वैसा नहीं होता।' इसपर गरुड़ने हँसकर कहा कि, 'रे बन्दर, मालूम होता है, मरते समय तेरी मूली बोलने लगी है।' हनूमान्‌जीने भी वैसा ही उत्तर दिया, जिसे सुनकर गरुड़ने आकाशमें उड़कर ऐसी प्रबल गर्जना की कि सकल अचल वनचरादि जीव भयभीत हो गये। तब अकस्मात् गरुड़ हनूमान्‌जीपर झपटा और चोंच मारने लगा। पर हनूमान्‌जी ज़रा भी न हिले। पर्वतपर भ्रमर, बड़े पेड़पर मक्खी या हाथीके कन्धेपर चींटीका जैसा भार होता है वैसा ही गरुड़का भार हनूमान्‌जीको मालूम हुआ। क्षणभर ऐसी लीला करनेके उपरान्त हनुमान्‌जीने गरुड़को पाँवोंमें दबा गर्दन पकड़कर उठाया, जिससे गरुड़ घबरा गया, उसकी आँखें निकलने लगीं, तब उसको पकड़कर हनूमान्‌जीने समुद्रमें फेंक दिया। श्रीहनूमान्‌ने गरुड़को जो द्वारकासे फेंका तो वह साठ सहस्र योजन दूर जाकर समुद्रमें गिरा और छटपटाकर डूबने लगा, फिर साँस रोककर वह पानीसे ऊपर आया और मनमें कहने लगा कि 'मैंने जो हरिके सामने अभिमान किया था, उसका पूरा फल मिल गया। संसारमें कोई विद्या-मदसे मस्त है तो कोई धनमदमें उन्मत्त है, पर भगवान् ज़रा भी अभिमान करनेसे उन्हें दण्ड देते हैं।' अब गरुड़जी श्रीहरिका स्मरण करने लगे। उन्होंने कहा—'हे भक्तवत्सल! आप मुझपर क्यों कोप करते हैं?' गरुड़को दिशाभ्रम हो गया, इतनेमें उसने द्वारकाका प्रकाश देखा। तब श्रीहरि-कृष्णका नाम जपते हुए वह आकाशमें उड़ा और मनमें सोचने लगा कि 'यदि फिर उसी वनसे जाऊँगा तो वह बन्दर मुझे फिर पकड़ लेगा, अतः वह दूसरे मार्गसे ही लौटा। किसी प्रकार द्वारकाके महाद्वारपर आया और वहाँ मूर्छित हो गिर पड़ा। सेवकोंने यह समाचार श्रीहरितक पहुँचाया और गरुड़को भी उठाकर श्रीहरिके चरणोंपर रख दिया। तब श्रीहरिने कृपापूर्वक उसके नेत्रोंमें जल लगाकर उसे सचेत किया।

भीम गर्व-गंजन

कथा है कि एक बार छोटे-बड़े ऋषि रत्नकी थालियों-में देव-दुर्लभ षट्रस भोजन कर रहे थे, उस समय भीमने ब्राह्मणोंसे इसप्रकार कठोर वचन कहे—'हे ब्राह्मणो! देखो, पात्रमें आप कुछ भी उच्छिष्ट न छोड़ सकेंगे। यदि ऐसा करेंगे तो मैं उसे आपकी चोटियोंमें बाँध दूँगा। जितना आपके पेटमें अँटे उतना माँग लें। थालीमें अधिक लेकर छोड़ देना ठीक नहीं होगा। मेरा स्वभाव आप लोग अच्छी तरह जानते ही हैं।' भीमके भयसे ब्राह्मण अत्यल्प आहार करने लगे, जिससे वे बेचारे दुर्बल हो गये। यह बात श्रीहरि ताड़ गये और भीमसे बोले—'तुम शीघ्र जाकर गन्धमादनसे ऋषियोंको बुला लाओ, उनकी बड़ी आवश्यकता है।' भीमके मनमें अपने बलका गर्व था अतः वह तेजीसे उन ऋषियोंको लाने चले। मार्गमें वृद्ध वानरके वेशमें महान् पर्वतकी तरह अपनी पूँछ मार्गमें अड़ाकर हनुमान्‌जी बैठे थे। उनसे भीमने गर्जकर कहा—'रे वानर! रास्तेमेंसे पूँछ हटा, मुझे शीघ्र ऋषिदर्शन करनेकी आवश्यकता है।' इसपर श्रीहनूमान्‌जीने नम्रतापूर्वक कहा—'हे

भीम, मैं अब वृद्ध हो गया हूं, परन्तु तुम तो महाबली भीमसेन हो, अतः तुम ही जरा पूँछको हटा दो।' भीमसेन राजी हो गये और दस सहस्र हाथियोंका बल लगाकर पूँछ हटाने लगे, पर वह जरा भी न हटी तथा पर्वतकी तरह अचल पड़ी रही। भीमसेनको हतबल देख हनूमान्जी जोरोंसे हँस पड़े और बोले कि 'हे धर्मानुज! तू गर्वको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन कर।' तब तो भीमसेन श्रीहनूमान्जीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे। 'हे भगवन्! आप श्रीरघुनाथके प्यारे हैं, आपने रावणके बल-दर्पको चूर्ण किया और श्रीसीताके शोकको दूर किया है।' भीमको निरभिमान होते देखकर श्रीहनूमान्जीने अपनी पूँछ हटा ली, तब भीम गन्धमादन-पर्वत चले गये।

हार फोड़ना

श्रीधरस्वामी अपने रामविजयमें लिखते हैं, 'श्रीसीताने वानर-वृन्दको वस्त्रालङ्कारादिसे गौरवान्वित करनेके उपरान्त श्रीहनूमान्को अपने कण्ठका दिव्य रत्न-हार दिया। वह हार अद्वितीय था, तीनों लोकोंसे भी उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता था। उसकी एक एक मणि इस पृथ्वीकी कीमतकी थी। श्रीजानकीजीने ऐसे हारको हनूमान्जीके गलेमें डाल दिया। श्रीहनूमान्जी हार पहन कर एक पेड़पर चढ़ गये और एक-एक मणिको दाँतसे फोड़कर देखने लगे। पर किसी भी मणिमें उन्हें राम नहीं दिखायी दिये, तब उन्होंने 'व्यर्थ पाषाण' कहकर उनको फेंक दिया। यह देखकर लोगोंने कहा कि 'व्यर्थ ही हार क्यों नष्ट कर रहे हो।' श्रीहनूमान्जीने कहा कि 'इनमें राम नहीं दीखता' तब लोगोंने आक्षेप किया कि 'क्या तुम अपने हृदयमें भी राम दिखा सकते हो?' यह सुनते ही श्रीहनूमान्जीने अपना हृदय चीरकर दिखलाया। उसमें उन लोगोंने, जिस प्रकार बाहर श्रीरामचन्द्र सिंहासनपर विराजमान थे, वैसी ही मूर्ति देखी। तब सबने उठकर श्रीहनूमान्जीको वन्दन किया।

श्रीहनूमान्के प्रति श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम

श्रीवैद्यकृत रामचरित्रमें लिखा है कि 'जब सुग्रीवादि श्रीरामचन्द्रजीसे अलग होने लगे तो भगवान्ने सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त, मैन्द, द्विविद, अङ्गद, हनूमानादि सब लोगोंको रत्न-आभूषण आदिसे सत्कृत किया और उन लोगोंसे विनयके साथ कहा कि 'हमें आप लोग याद रखियेगा, तब उन सब लोगोंकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वे श्रीरामचन्द्रके चरणोंपर शीश धर उनकी प्रदक्षिणा कर विदा हुए। सबसे पीछे श्रीहनूमान्जीने विदा होते समय विनती की- 'हे महाराज! मेरा प्रेम, मेरी भक्ति आपमें निश्चल रहेगी, अन्यत्र कहीं भी न जायगी। जबतक इस जगत्में रामकथाका प्रचार रहेगा तबतक मेरे प्राण इस देहमें रहेंगे। मैं नित्य आपके गुणानुवाद सुना करूँगा और इसीसे मेरे विरह-दुःख-का शमन होगा।' श्रीहनूमान्जीकी इस विनयको सुनकर भगवान्का शरीर रोमाञ्चित हो गया और शीघ्र ही सिंहासनसे उठ उन्होंने हनूमान्जीको दृढ़ आलिंगन करते हुए कहा - 'हे हनूमान्! तुमने मुझपर इतने उपकार किये हैं कि मैं उनमेंसे एकका भी बदला नहीं चुका सकता। पर मैं यही चाहता हूँ कि तेरे उपकारका बोझ मेरे सिरपर ही रहे और प्रत्युपकार करनेका कोई प्रसङ्ग ही न आवे, ऐसी मेरी इच्छा है। तेरे कथनानुसार जबतक लोग मेरी कथाका गान करेंगे तबतक तू जीवित रहेगा और तेरा यश सर्वत्र फैलेगा।' ऐसा कह श्रीरामने अपने कण्ठका नवरत्नोंका हार उनके गलेमें डाल दिया।

ज्ञानोपदेश

श्रीहनूमान्जीको भगवान् श्रीरामने ब्रह्माण्ड-पुराणमें जीव-ईश्वरकी एकताका ज्ञानोपदेश किया था, वही पार्थको गीतामें और उद्धवको भागवतमें किया था। श्रीहनूमान्जी अनन्यशरण और परम ज्ञानी भक्त थे।

जो पवनसुत श्रीहनूमान्जी सदा श्रीरघुनाथजीके ध्यानमें रहते हैं तथा जो श्रीरामके मुख्य प्राण हैं ऐसे अञ्जनितनयकी जो सेवा करते हैं उन्हें श्रीरामचन्द्र स्वयं प्रकट होकर दर्शन देते हैं, अतः अपने मनमें उन हनूमान्का चिन्तन करो। उन्हींके हृदयसे राम-भक्ति प्रवाहित होती है। जो उन कपिश्रेष्ठका मनमें स्मरण करता है वह धन्य है। जहाँ श्रीराम गुणगान होता है वहाँ श्रीहनूमान्जी गान और नृत्य करनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रकी प्रीतिके सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ऐसे श्रीहनूमान्की जो वन्दना करते हैं वे धन्य हैं।*

* मूल लेख मराठी भाषामें आया था, लेख वेदान्तके बहुत सुन्दर सिद्धान्तोंसे पूर्ण और बहुत ही बड़ा था, लेखमें मराठी भाषाके पद्य भी बहुत ही उद्धृत किये गये थे। लेख बहुत बड़ा होने और अधिकांश काव्यमय होनेके कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया गया। केवल श्रीहनूमान्जीके जीवनसम्बन्धी कुछ बातें दे दी गयी हैं। इसके लिये श्रद्धेय लेखक महोदयसे मैं क्षमा चाहता हूँ। आपका मूल मराठी लेख मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है, बहुत ही उपादेय और सुन्दर है। —सम्पादक

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० १

मानचित्रकार—श्री वी० एच० वडेर
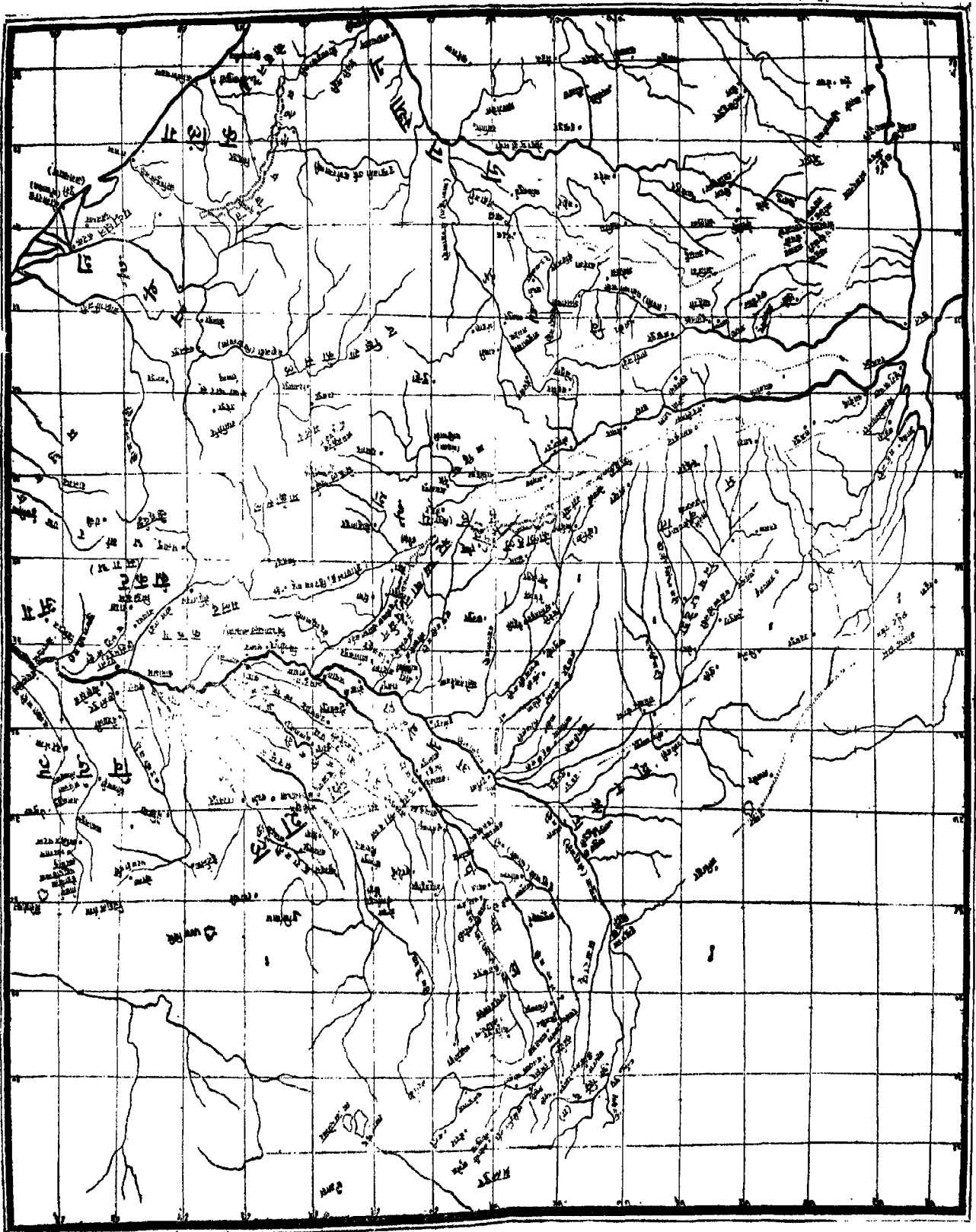
रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन

(लेखक—श्री बी० एच० वडेर बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस०)

छ समयसे रामायण एवं महाभारत प्रभृति ऐतिहासिक काव्य और पुराणोंकी विद्वानोंमें जाँच-पड़ताल और तुलनात्मक बुद्धिसे भी विवेचन होने लगा है। रामायण महाभारतकी ऐतिहासिक परीक्षा अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्वानोंने की है। इनमें भी काल-गणनाकी दृष्टिसे और बौद्ध ग्रन्थोंके प्रमाणोंकी दृष्टिसे मद्रासी लेखकोंने विशेष चर्चा की है। कर्णाटक, महाराष्ट्र, बंगाल आदिमें भी अन्यान्य दृष्टियोंसे पौराणिक ग्रन्थोंका अध्ययन हुआ और हो रहा है। परन्तु भौगोलिक दृष्टिसे इस विषयका जितना विवेचन होना चाहिये उतना अभी नहीं हो पाया है। इस लेखमें हम मुख्यतः रामायणके भौगोलिक विषय पर ही विचार करना चाहते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने वनवासके चौदह वर्ष भारतके किस-किस भागमें भ्रमण या निवास करते बिताये, इस विषयमें प्राचीन ग्रन्थोंमें क्या प्रमाण मिलते हैं, इस लेखमें हमें विशेषकर इसीपर विचार करना है।

पिता दशरथकी आज्ञा सिर चढ़ाकर श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ वैशाख शुक्ला १ को रथमें सवार होकर वनको चले। वे सबसे पहले वेदश्रुति नदीके तटपर आये। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अयोध्या नगरी सरयू अथवा घाघरा नदीके दक्षिण तटपर बसी हुई थी। सरयूके दक्षिण की ओर सबसे पहले मिलनेवाली नदी वेदश्रुति ही है जिसका वर्तमान नाम तानसा या तमसा है। महर्षि वाल्मीकिका आश्रम जिस तमसाके तटपर था, वह तमसा दूसरी थी और गंगाके दक्षिण की ओर बहती थी। तानसा (वेदश्रुति) और गोमतीके मध्यमें दूसरी कोई नदी ही नहीं है। इस तमसा (वेदश्रुति) और सरयूके तटोंको महाराज दशरथने यज्ञमण्डपों और वैदिक मन्त्रोंसे सुशोभित एवं पवित्र किया था। कालिदासके रघुवंश (६।१७) में इसका वर्णन मिलता है। इससे भी तमसाका 'वेदश्रुति' होना सिद्ध है। श्रीयुत दीक्षितने अपने भारतवर्षीय प्राचीन भू-वर्णनमें वेदश्रुति और तमसाको दो बतलाया है, परन्तु हमारे मतसे यह ठीक नहीं। तमसाके तीरपर अर्थात् अयोध्यासे पन्द्रह मीलपर श्रीरामजीने पहला मुकाम किया था, दीक्षितजीका यह कथन अयुक्त है। किसी भी ग्रन्थमें इसका कोई आधार नहीं मिलता।

वेदश्रुति पार करनेके बाद दक्षिणमें पहले गोमती मिली, उसके अनन्तर स्यन्दिका या आधुनिक सई नदी मिली। गोमती तो आजकल प्रसिद्ध ही है। स्यन्दिका (सई) उस कोशल-देशकी दक्षिण सीमापर थी, जो वैवस्वत मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुको दिया था। श्रीरामने सीतासे यही बात कही है।

इसके अनन्तर स्यन्दिकाके दक्षिणकी ओर स्थित छोटे-छोटे भोज-राज्योंको पार करते हुए श्रीरामका रथ गंगाके निकट पहुँचा, यहाँ सुमन्त्र सहित सभी लोग रथसे उतर पड़े। यह प्रदेश राम-सखा निषाद गुहके अधीन था। गुहकी राजधानी शृंगवेरपुर थी, जिसका वर्तमान नाम सिंगरौर है। यह गाँव प्रयागसे १८ मील वायव्य दिशामें गंगा-तटपर बसा हुआ है। रातभर यहाँ ठहरकर दूसरे दिन सबेरे गुहकी सहायतासे गंगापार करके श्रीराम दक्षिण तटपर पहुँचे।

शृंगवेरपुरसे आगे पूर्वकी ओर गंगा-यमुनाके संगमपर आये। मार्गमें एक बड़ा वन मिला (वा० रा० २।५४।२)। गंगा-यमुनाके संगमके पास भरद्वाजजीका आश्रम था और वहीं प्रयाग क्षेत्र था। वहाँ एक रात ठहरे और वहाँ रहनेकी इच्छा न होनेके कारण भरद्वाजके उपदेशानुसार वहाँसे दश कोसपर स्थित चित्रकूट-गिरिपर जानेके लिये दूसरे ही दिन श्रीरामचन्द्रजी रवाना हो गये। प्रयागके पास यमुनापार करनेके बाद एक कोस जानेपर नील-कानन नामक वन मिला। चित्रकूटके नीचे चित्रकूटा उर्फ मन्दाकिनी नामकी नदी बहती थी। इस चित्रकूट-पर्वतपर ही श्रीरामने अपनी पर्णकुटी बनायी।

श्रीरामचन्द्रके वनगमनके छठे दिन पुत्रशोकके कारण राजा दशरथका स्वर्गवास हो गया। उस समय भरत-शत्रुघ्न अपने ननिहाल केकय-देशमें थे। केकय-देशकी राजधानी 'गिरिव्रज' थी। देशको बिना राजाके रखना विपत्तिमूलक समझकर दशरथके मन्त्रिमण्डलने मुख्य पुरोहित वशिष्ठसे कहा और वशिष्ठने भरत-शत्रुघ्नको लिवा लानेके लिये

दूतोंको केकय-देश भेजा (वा० रा० २।६८।११)। उस समय केकय-देशमें अश्वपति नामक नरपति शासन करते थे। प्राचीनकालमें चन्द्रवंशमें अत्रि गोत्रोत्पन्न केकय नामक एक राजा हुए थे। उन्हींके नामपर देशका नाम केकय पड़ गया था। उन राजाका वंशवृक्ष इसप्रकार है —

शिबि, वृषदर्भ, सुवीर, मद्र, केकय एवं अंग, वंग, कलिंग, सुह्म, पुण्ड्र, आन्ध्र आदि राजपुत्र जहाँ बसे, उन देशोंके नाम भी उन्हींके नामानुसार पड़ गये। (वायु-पुराण ९९।२४—३३)
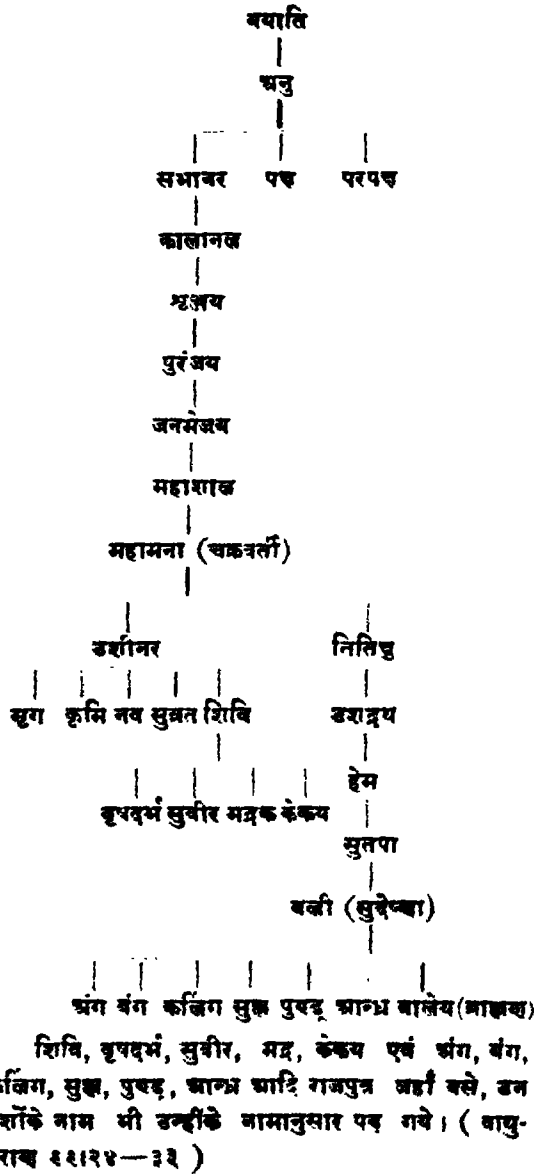
रामायणके अयोध्याकाण्डमें भरतको लानेके लिये दूत किस मार्गसे गये और भरत चतुरंगिणी सेना लेकर अयोध्यातक किस मार्गसे आये इसका वर्णन देखनेसे मालूम होता है कि वे दूत विपाशा अर्थात् आधुनिक व्यास तथा शाल्मली* नदीको देखते-देखते गये। पश्चात् चिनाब-नदीके उसपार वितस्ता (बेहात या झेलम) नदीके पास केकय-देशकी राजधानी गिरिव्रज (राजगृह) मिलती है। इसका नाम गिरिव्रज भी पाया जाता है। मुसल्मानोंके शासनकालमें गिर्जकका नाम बदलकर जलालपुर पड़ा है। सिकन्दर और पोरसकी लड़ाई इसी गाँवके पास हुई थी। जनरल कनिंगहमने अपने प्राचीन भारतके भूगोलमें इस प्रकारकी विशेषरूपसे समीक्षा-परीक्षा करके यह निर्णय किया है, कि गिर्जक गिरिव्रजका अपभ्रंश है। श्रीवशिष्ठजीके भेजे हुए दूत जल्दीके कारण नजदीकके रास्तेसे ही गये। वे प्रथम अपरताल देशके पश्चिमकी ओरसे प्रलम्बदेशके उत्तरमें बहनेवाली मालिनी नदीके तीरपरसे उत्तरकी ओर आकर पुनः पश्चिमकी ओर लौटे। प्रलम्ब आजकलके मण्डावर या मंडोरका नाम था। यह गाँव पश्चिम रुहेलखण्डमें बिजनौरके उत्तर आठ मीलपर बसा हुआ है। प्रो० नन्दलाल दे अपनी 'दी ज्योग्राफीकल डिक्शनरी आफ एन्शयण्ट एण्ड मेडिएवल इंडिया' (The Geographical Dictionary of ancient and medieval India) नामकी पुस्तकमें लिखते हैं कि मालिनी नदी पश्चिममें प्रलम्ब-प्रान्त और पूर्वमें अपरताल-देशके बीचमें बहती हुई अयोध्याके ऊपर ४० मीलपर सरयू अर्थात् घाघरा नदीमें मिलती थी। इसके तटपर शकुन्तलाके पालक पिता कण्वऋषिका आश्रम था। ग्रीफिथ साहबकी रायमें आजकल जिसे चुका नदी कहते हैं, वही मालिनी नदी है।

तदनन्तर वे दूत हस्तिनापुरमें गंगा-नदी पार करके पश्चिमकी ओर मुड़े। हस्तिनापुर-शहरकी स्थापना पुरुवंशज कौरव-पाण्डवोंके पूर्वज हस्ती राजाने की थी। गंगा-नदीकी गति बदल जानेके कारण इस प्राचीन शहरके अवशेष कहाँपर हैं, यह निश्चित नहीं किया जा सकता। परन्तु पुराणान्तर्गत वर्णनसे यह पता चलता है कि यह शहर मेरठके ईशानकोणमें २२ मीलपर गंगा-नदीके दाहिने तटपर था। वहाँसे आजकलका बिजनौर शहर पास है। फिर पाञ्चाल (उत्तर) कुरुजाङ्गल आदि देशोंमेंसे होते हुए शरदण्डा-नदीके किनारे-किनारे अनेक नदी-सरोवर पार करके कुलिंग (कुलिन्द) नगरमें वे जा पहुँचे।

* शाल्मली=चन्द्रभागाकी सहायक नदी।

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २

मानचित्रकार—श्री वी०एन०वडेर।

राम
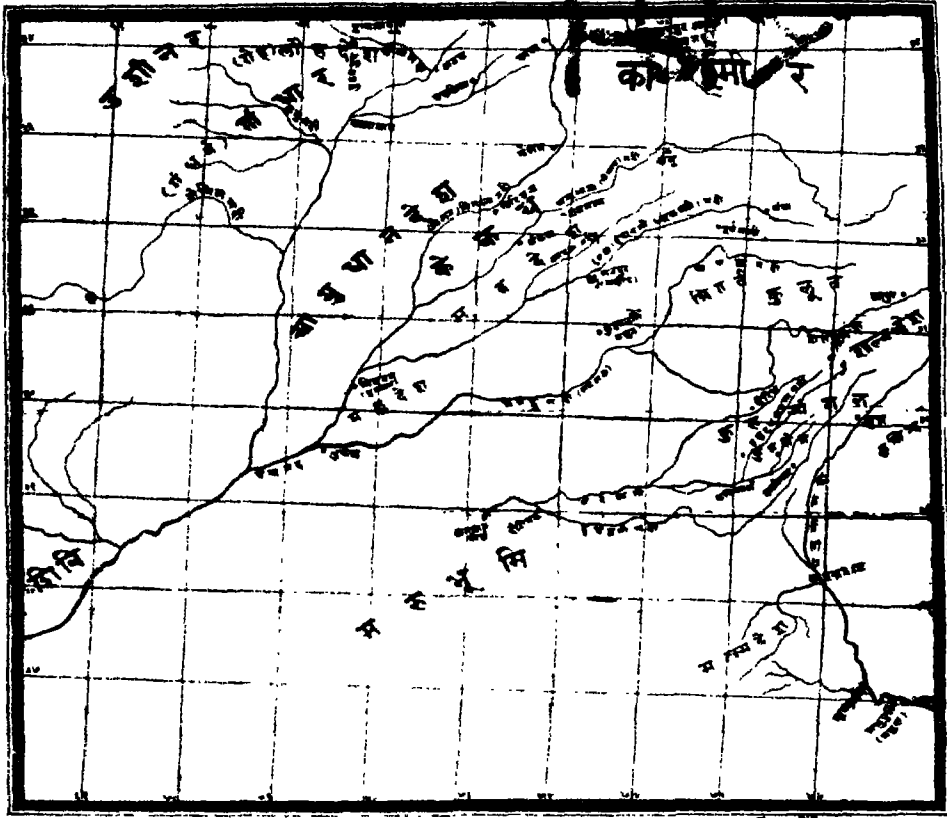
पाञ्चाल देश उत्तरी और दक्षिणी भागोंमें पीछे विभक्त हुआ होगा, जिसमें उत्तर पाञ्चाल अर्थात् रुहेलखण्डकी राजधानी अहिच्छत्र थी। कुरुजाङ्गल प्रान्त हस्तिनापुरके वायव्यमें वर्तमान सरहिन्दभागका अरण्य प्रदेश है। कुरुक्षेत्रमें इस कुरु-जाङ्गलका समावेश था पर श्रीरामचन्द्रके समयमें इस प्रान्तको कुरुजाङ्गल या कुरुक्षेत्र नहीं कहते होंगे। कुलिन्द दिल्लीके उत्तरमें स्थित सहारनपुर जिला है। शरदण्डा नदी कौन-सी थी यह निश्चय नहीं किया जा सकता।

तत्पश्चात् वे अभिकाल तथा तेजोभिभवन गाँव और इक्षुमती नदीको पार करके आगे बढ़े। इक्षुमती नदीको आजकल काली नदी कहते हैं। यह कन्नौज (कान्यकुब्ज) के पास गंगासे मिलती है। आगे यमुना पार किये बिना ही वे वाल्हीक (पञ्जाब) की ओर मुड़े। सुदाम-पर्वतके पाससे विपाशा (व्यास) तथा शाल्मली-नदियोंको देखते हुए गिरिव्रज (गिर्झक) नगरमें पहुँचे। सुदाम-पर्वतके आधुनिक नामका पता नहीं चलता।

भरतके साथ चतुरंगिणी सेना होनेके कारण उनको कुछ दूरका मार्ग स्वीकार करना पड़ा था। इसका वर्णन अयोध्याकाण्ड सर्ग ७१ से आगे मिलता है। उनको क्रमशः सुदामा, ह्लादिनी और शतद्रु नदी मिली। सुदामा चन्द्रभागा (चिनाब) नदीका ही दूसरा नाम हो सकता है। ह्लादिनी नदीका पाट अत्यन्त विस्तीर्ण था। इसपरसे अनुमान किया जा सकता है कि वह वर्तमान रावी (इरावती) नदी होगी। अन्तिम शतद्रु (सतलज) तो प्रसिद्ध ही है।

तदनन्तर ऐलधान और उसके समीप बहनेवाली शिलावहा नदी मिली। पश्चात् विशाल पर्वतोंको पार करके भरत चैत्ररथ वनमें आ पहुँचे और आगे पश्चिमकी ओर बहनेवाली सरस्वती नदी मिली।

शिलावहा नदीका ठीक-ठीक पता नहीं मिलता। तथापि सरस्वती (सुरसुटी अथवा घग्घर) नदीमें उत्तरसे आ मिलनेवाली अरुणा और कौशिकी नदियोंमेंसे वह एक हो सकती है। अम्बाला जिलेके पूर्व भागका नाम चैत्ररथ वन होगा। आगे सुचक्षु तथा सीता-नदीपरसे होते हुए एवं अञ्जोत्री गाँवके पास जा करके भरतजी दक्षिणकी ओर मुड़े।

काश्मीरके उत्तर वाग्रतमें जो सुचक्षु और सीता नामकी नदियाँ बहती हैं, वे भिन्न हैं। हमारी रायमें इसी नामकी नदियाँ अञ्जोत्रीके पास भी बहती होंगी।

इसके बाद भरत वीरमत्स्य-देशके उत्तरमें स्थित प्रदेशमें होते हुए भारुण्ड नामके वनमें आ पहुँचे। इसके आगे चलनेपर कुलिंगा उर्फ वेगिनी नदी मिली और ह्लादिनी नदीको पार करके भरत यमुना-नदीके पास आ पहुँचे। वहाँ यमुनातीरपर उन्होंने सेनासहित विश्राम किया। यमुना पार करनेके उपरान्त अंशुधान नामक ग्रामके पास गंगाको पार करना असम्भव देख भरत प्राग्वटपुर आये और वहाँ भरतने ससैन्य गंगाको पार किया। इसके अनन्तर वे कूटिकोष्टिका नदीके समीप आये।

कूटिकोष्टिका नदी रामगंगासे मिलनेवाली अयोध्या प्रान्तकी कोह नदी है, यह कोहकूटिका नदी पूर्वकी ओरसे रामगंगामें आ मिलती है और इसीका दूसरा नाम कोशिला भी है। कूटिकोष्टिका नदी ससैन्य पार करके भरत धर्मवर्धन गाँवको गये और तोरण ग्रामके दक्षिणकी ओरसे जम्बुप्रस्थ गाँवमें पहुँचे। इसके बाद वरूथ नामक गाँव मिला। इसके आगे रम्यवनमें वास करके भरत पूर्वकी ओर चल पड़े और उज्जिहान नगरमें पहुँचे। फिर बाहिनी नदीकी ओर चलकर तथा सर्वतीर्थ नामके गांवमें थोड़े समय निवास करके उन्होंने उत्तरगा नदीको पार किया तदनन्तर हस्तिपृष्ठक गाँवमें आ पहुँचे। अनन्तर कुट्टिका नदीको पार करके लोहित्य ग्राममें कपिवती नदीको पार किया। आगे एकसाल ग्रामके समीप स्थाणुमती नदी उतरकर विनतगांवके पास गोमती नदीको पार किया और कलिंग नगरके पास सालवनमें आ पहुँचे, एवं रातोरात उस वनको पारकर अरुणोदयके समय अयोध्यामें आये। मार्गमें कुल सात रातें व्यतीत हुईं। वा० रा० २। ७१। १७ तक ऐसा वर्णन मिलता है और वा० रा० २। ७७। २२ में उस दिन दशरथ राजाके देहान्तके पश्चात् तेरहवें दिनके प्रारम्भ होनेका उल्लेख है।

तदनन्तर भरत श्रीराम-दर्शनार्थ चतुरंगिणी सेना-सहित निकले। उनके साथ कैकेयी, सुमित्रा तथा कौसल्याजी थीं। जिस मार्गसे श्रीरामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे थे, उसी मार्गसे भरत भी चित्रकूट-गिरिपर रामचन्द्रकी पर्णकुटीपर गये। चित्रकूट-गिरि भरद्वाज-आश्रम अर्थात् प्रयागसे ३॥ योजन अर्थात् २४-२५ मीलपर था। जी. आई. पी. रेलवेके चित्रकूट स्टेशनसे ३॥ मील दूर यह पर्वत है।

आजकल इसका नाम कामतानाथगिरि हो गया है। चित्रकूटके उत्तरकी उपत्यकापर जो एक चौकोन शिला है वही सीतासेज है (वा० रा० २।९६)। यह स्थान जी. आई. पी. के बहौसा स्टेशनके समीप ही दक्षिणमें है। इस पहाड़में बहुत-सी खोदी हुई इमारतें हैं। अस्तु,

श्रीरामके दर्शन कर चुकनेपर श्रीरामकी आज्ञासे भरत अयोध्या लौटकर नन्दिग्राममें रहने लगे। इधर जब श्रीरामजी चित्रकूटपर वास कर रहे थे, तब खर नामक राक्षसकी जनपदके सब तपस्वियोंको भगाने और सतानेकी शिकायत उनके पास आयी। अतएव उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी अत्रि-आश्रमकी ओर चल पड़े। इससे स्पष्ट है कि अत्रिमुनिका आश्रम वन-प्रदेशमें था। वनमें प्रवेश करनेपर पहले विराध नामक राक्षस मिला। इसके पिताका नाम जव और माताका शतह्रदा था। विराधकी बाहोंको काटकर राम-लक्ष्मणने उसे परास्त किया और गाड़कर उसे मुक्ति दी।

विराधकी समाधिसे प्रतापी शरभंग मुनिका आश्रम १०-२० मीलपर होगा। श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित उस आश्रमकी ओर पधारे। मार्गमें रामने लक्ष्मणको इन्द्र-रथ दिखलाया। तत्पश्चात् शरभंग ऋषिसे मिलकर उनकी आज्ञासे राम सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमकी ओर जानेके लिये रवाना हुए। इसके पूर्व ही शरभंग ऋषिने रामके समक्ष अग्नि-प्रवेशके द्वारा देहत्याग करके स्वर्ग प्राप्त किया। सुतीक्ष्ण मुनिका आश्रम मन्दाकिनी नदीके उद्गमकी ओर था।

उपर्युक्त वर्णनके अनुसार विराधकी समाधि, शरभंग मुनिका आश्रम तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमका वर्तमान पूर्व बुन्देलखण्डके पन्ना रियासतमें होना स्पष्ट प्रकट होता है।

सुतीक्ष्ण मुनिने रामसे कहा,—'हे राम! वानप्रस्थोंके विराट् समुदायके नाथ आपके होते हुए भी अनाथोंकी तरह राक्षस उनका बारम्बार घात करते हैं इसलिये आप उनका संरक्षण करें।' श्रीरामने सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमके मार्गमें सुमेरुके समान एक ऊँचा पर्वत देखा (वा० रा० ३।७)। मुनिका आश्रम एक घोर वनमें था। इस वनको दण्डकारण्यका उत्तर भाग मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी समग्र दण्डकारण्य तथा उसमें वास करनेवाले ऋषियोंके आश्रम-दर्शनार्थ विदा हुए। मार्गमें उन तीनोंने ८ वर्गमीलका एक महान् सरोवर देखा। उस सरोवरके मध्य भागसे सुस्वर गायनकी आवाज आती थी। धर्मभृत नामक मुनिने रामचन्द्रसे कहा कि 'यह सरोवर माण्डकर्णी मुनिने दस हजार वर्ष घोर तपश्चर्या करके निर्माण किया है और इसका नाम पञ्चाप्सर सरोवर है एवं यह सार्वकालिक है।'

इस पञ्चाप्सर सरोवरके बारेमें प्रो० नन्दलाल दे अपने भौगोलिक कोष पृष्ठ ६५ में लिखते हैं कि, छोटा नागपुरके माण्डलिक रियासत उदयपुर नामक स्थानमें यह सरोवर था। इस सरोवरका अधिकांश सूख गया है और वहाँ कपु, बन्धनपुर आदि गाँव बस गये हैं। इस पञ्चाप्सर तीर्थके आसपास अनेक मुनियोंके आश्रम थे। श्रीरामचन्द्रजी सब आश्रमोंमें थोड़े-थोड़े समयतक रहे। कहीं दस महीने, कहीं साल भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या छः महीने, और कहीं साल दो सालसे भी अधिक रहे। इसप्रकार श्रीरामके दस वर्ष मुनियोंके आश्रमोंमें सुखसे बीते। तब रामचन्द्र फिर सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको लौट आये। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद उन्होंने अगस्त्य मुनिके आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमसे दक्षिणकी ओर चार योजनपर अगस्त्य ऋषिके बन्धुका आश्रम था और उसके दक्षिणमें एक योजनपर अगस्त्य ऋषि वास करते थे।

वहाँ कुछ काल व्यतीत करके श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण सहित अगस्त्य ऋषिकी आज्ञानुसार पञ्चवटीकी ओर रहनेके लिये रवाना हुए। यह प्रदेश अगस्त्याश्रमसे दो योजनके अन्तरपर था। इस प्रदेशपर राक्षसोंका बारम्बार आक्रमण होता था। पञ्चवटी जाते हुए श्रीरामकी एक महाकाय गीध पक्षीसे भेंट हुई। अनन्तर वे तीनों पञ्चवटी पहुँचे। इस प्रदेशका वर्णन वा० रा० ३।१५ में है। इनके साथ जटायु भी था। पञ्चवटीमें पर्णशाला बनाकर उन्होंने एक चातुर्मास व्यतीत किया। तत्पश्चात् हेमन्त-ऋतुका प्रारम्भ होनेपर एक दिन प्रातःकाल रावणकी भगिनी शूर्पणखा उस आश्रममें पहुँची, और सीताको मारनेके लिये तैयार होनेपर लक्ष्मणने उसके नाक-कान काटकर उसे निकाल बाहर किया।

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २
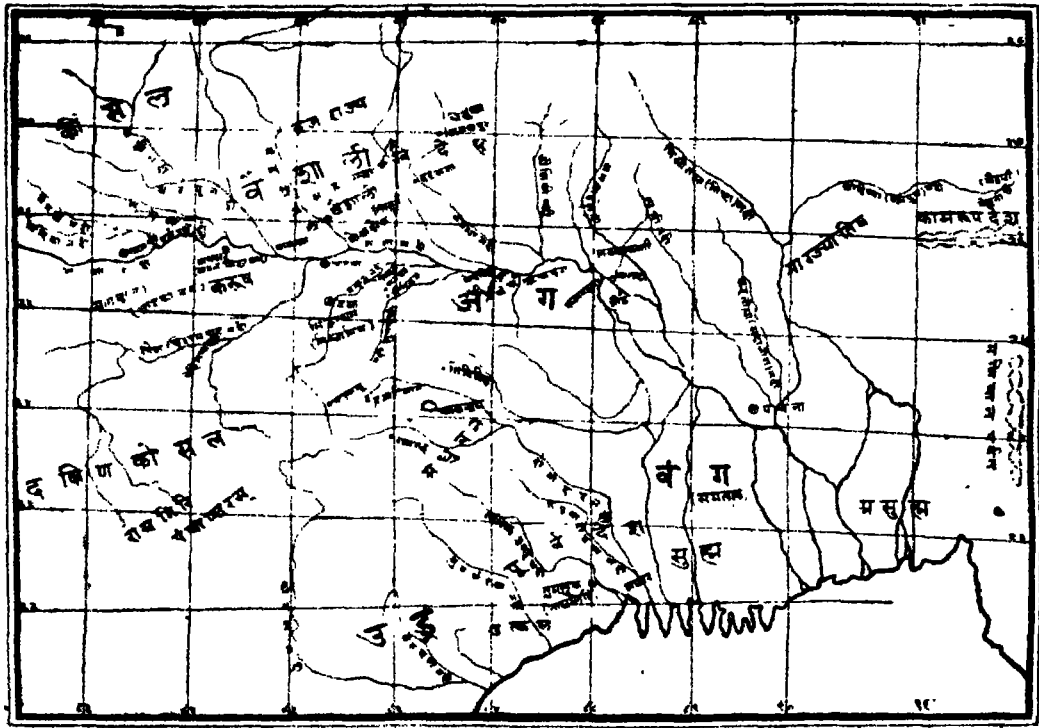
मानचित्रकार—श्री वी०एन०वडेर।

इसपर वह खर-दूषणके पास आकर उन्हें श्रीरामसे युद्ध करनेके लिये प्रोत्साहित कर अपने साथ ले आयी। चौदह हजार सेना लेकर खर और दूषण जनस्थानसे चले। खर-दूषण रावण-राज्यके सीमा-रक्षक थे (वा०रा०३।३१)। महा शक्तिशाली श्रीरामने उन चौदह हजार राक्षसोंसहित खर, दूषण, त्रिशिरा आदिका रणमें वध कर डाला। उपर्युक्त पञ्चवटी, जनस्थान आदि प्रदेशोंका अभी तक सन्तोषजनक निर्णय नहीं हुआ है। बहुत-से विद्वानोंके मतानुसार जनस्थान और पञ्चवटी वर्तमान बम्बई प्रान्तके नासिक शहरके समीप गोदावरी नदीके उद्गम स्थानके पास थे। किन्तु कुछ विद्वानोंके मतानुसार प्राचीन समयमें गोदावरी नदीके मुखके समीप उसके उत्तर-दक्षिण तटपर स्थित आन्ध्र प्रान्तके एक विभागका नाम जनस्थान था। पार्जीटर अपने 'Ancient Indian Historical Tradition' नामक पुस्तकके पृष्ठ २७८ में लिखते हैं:—

Rama travelled south to Prayaga then southwest to the region of भोपाल, then south across the नर्मदा and then to a district where he dwelt ten years. That was probably the छत्तीसगढ़ district, because that was called the दक्षिण कोसल and in it was a hill called रामगिरि. His long stay then connected it with his home कोसल, hence probably arose its name. Also later the people of पूर्व कोसल part of old कोसल through fear of जरासंध migrated to the south no doubt to this district. [Vide J. R. A. S. of 1908 P. 323 & Mahabharat 2-13-591.] Afterwards he went south to the middle गोदावरी where he came into conflict with the राक्षस colony of जनस्थान.

श्रीरामचन्द्रके कालमें दक्षिण भारतमें सभ्य अर्थात् आर्य लोगोंकी आबादी केवल जनस्थान और किष्किन्धामें थी। उस समय पाण्ड्य लोगोंकी आबादी नहीं थी। उसी प्रकार कोल (कुल्य), चोल, केरल आदिकी भी आबादी नहीं थी। यह पार्जीटर साहबका मत है। इससे हम सहमत नहीं हैं क्योंकि ययाति राजाके पाँच पुत्रोंमें तुर्वसु नामक पुत्रकी वंशावली प्रायः सब पुराणोंमें निम्नलिखित प्रकारसे वर्णित है।
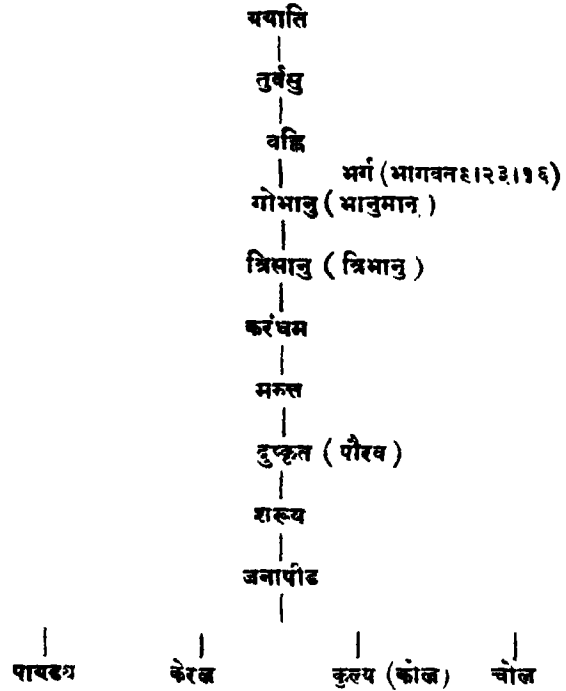
तेषां जनपदाः कुल्याः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।
(वायुपुराण ९९। ६)

अर्थात् इन राजपुत्रोंने अति प्राचीन कालमें दक्षिण भारतमें अपने नामपर आबादी कायम की थी। प्रो० नन्दलाल देके अनुसार औरङ्गाबाद अथवा देवगिरि (दौलताबाद) के समीपवर्ती प्रदेशका नाम जनस्थान था। इस मतको न माननेके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) 'अनर्घ-राघव' के कर्ता मुरारीका काल शालिवाहनका ७ वाँ शक है। उसने अपने नाटकके चौथे और पाँचवें अङ्कोंमें ऋष्यमूक पर्वतको जनस्थानके पास ही बतलाया है। ऋष्यमूक-किष्किन्धा दक्षिणमें तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिण तटपर थे, ऐसा 'प्रसन्न-राघव'-नाटककार जयदेव कविने स्पष्ट बतलाया है। जयदेव कवि शालिवाहनकी तेरहवीं शताब्दिमें हो गये हैं। इसीप्रकार शालिवाहनकी आठवीं शताब्दिमें हुए बालरामायणके कर्त्ता राजशेखर कविका भी यही मत है।

(२) 'उत्तररामचरित'कार प्रसिद्ध कवि भवभूतिके 'महावीरचरितम्' अङ्क ४ से भी निम्नलिखित बातें स्पष्टतः प्रकट होती हैं—

जनस्थान, पञ्चवटी, जटायुका निवास-स्थान, प्रस्रवण गिरि आदि सब स्थान गोदावरीके मुहानेके निकटवर्ती प्रदेशमें थे और जनस्थानके मध्यभागमें प्रस्रवण गिरि था। (महावीर चरितम् ५।१५)

(३) एते ते कुहरेषु कुहरेषु गद्गदनद० आदि श्लोकोंसे गोदावरी नदीके संगमके समीपका प्रदेश जनस्थान सिद्ध होता है।

(४) कालिदासके रघुवंश (६।६२) के अनुसार जनस्थान पाण्ड्यदेशकी सीमाके बिल्कुल समीप था। किंबहुना दोनों प्रदेश एक दूसरेसे मिले हुए थे। कदाचित् गोदावरी नदीका दक्षिण तीर पाण्ड्यदेशकी उत्तर सीमा हो।

(५) शालिवाहनकी तीसरी शताब्दिमें विमलचन्द्रसूरि नामक एक जैन ग्रन्थकार हुए हैं। उन्होंने रामचरित्रपर 'पद्म चरित्र' अथवा 'पउम चरिय' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसीके आधार पर हेमचन्द्रने अपने 'जैन रामायण' नामक ग्रन्थकी रचना की है। जैन रामायणमें लिखा है कि दण्डकारण्यान्तर्गत कर्णरवा-नदीके तटपर जब श्रीरामचन्द्रजी पहुँचे, तब वर्षा ऋतु समीप आ गयी थी, इस कारण श्रीरामने लक्ष्मणको समुद्र तटसे न तो बहुत दूर और न बहुत पास किसी प्रशान्त स्थानमें कुटी बनानेकी आज्ञा दी। वह चातुर्मास उन्होंने क्रौञ्चरवा नदीपर बिताया। इससे स्पष्ट है कि जनस्थान गोदावरीके मुहानेके समीपके प्रदेशका नाम था। कर्णरवा नदीके दक्षिणमें जनस्थान और किष्किन्धा थे और कर्णरवा नदी नर्मदा और ताप्तीके दक्षिणमें थी। जनस्थान जानेसे पहले मार्गमें समुद्र पड़नेका वर्णन जैन-रामायणमें है। इससे भी उपर्युक्त सिद्धान्तका समर्थन होता है। खर राक्षसका निवासस्थान समुद्रतटपर था और जिस स्थानपर रामचन्द्रने खरका वध किया, वह गाँव अब भी 'खरवाड़ा' के नामसे प्रसिद्ध है और पूर्वी किनारेपर अङ्कोलके उत्तर ५ मीलकी दूरीपर है। वहाँ खर-वध-सम्बन्धी बहुत-सी प्राचीन दन्तकथाएँ भी प्रचलित हैं।

जनस्थानसे तीन कोस चलनेपर क्रौञ्चारण्य मिला। रोहिण पर्वतकी उपत्यकापर रामने सुवर्ण मृगका वध किया, और जटायुकी अन्त्येष्टिकर गोदावरीके तटपर पहुँचे। रावणके सीतापहरण करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें खोजनेके लिये जनस्थान छोड़ा। क्रौञ्चारण्यके पूर्व तीन कोसपर मतंगाश्रम वन था। आगे एक गहरे दर्रेमें उन्हें अयोमुखी राक्षसी मिली। उसे मारकर श्रीराम-लक्ष्मणने गहन वनमें प्रवेश किया। वहाँ एक कोस लम्बे शरीरवाला कबन्ध राक्षस मिला। कबन्धको मुक्ति देकर राम-लक्ष्मण उसकी सलाहसे सुग्रीवसे मित्रता करने गये। अस्तु,

बेल्लारीसे पूर्वकी ओर समुद्र-तटतक, छोटे-बड़े पर्वतोंकी पूर्वसे पश्चिम ओर फैली हुई श्रेणियाँ हैं। बेल्लारीके पूर्व छः मीलपर लोहाचल नामका एक पर्वत है, उसे प्राचीन समयमें क्रौञ्च पर्वत कहते थे। वहाँ एक तीर्थ है। उस क्षेत्रमें प्राचीन कालमें अगस्त्य ऋषि आये थे। क्रौञ्चारण्य अति गहन था, ऐसा रामायणमें वर्णन मिलता है। कृष्णा नदीके दक्षिण तटपरके गुण्डकल और नंद्याल प्रदेशोंको प्राचीन समयमें क्रौञ्चारण्य कहते होंगे।

क्रौञ्चरवा नदी कौन-सी थी, यह निश्चित नहीं बतलाया जा सकता। परन्तु वह गोदावरीके दक्षिणमें होनी चाहिये, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन ग्रन्थोंमें कृष्णा नदीका नाम कहीं भी दिखलायी नहीं देता। आधुनिक कुछ ग्रन्थोंमें कृष्णावेणीके नामसे इसका उल्लेख मिलता है, कदाचित् क्रौञ्चरवा कृष्णा नदीका ही प्राचीन नाम हो। रामायण तथा विमल सूरिके ग्रन्थान्तर्गत वर्णनसे ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती।

तत्पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मणने फल-फूलयुक्त उत्तर कुरु देशके सदृश नन्दनवनके समान एक सुन्दर वनमें प्रवेश किया और वे पम्पासरके पश्चिम तटपर आ पहुँचे। पम्पासरके सामने ऋष्यमूक पर्वत था। पम्पाके पश्चिम तीरपर उन्होंने कुछ कालतक निवास किया। वहाँ शबरी श्रीरामके चित्रकूट छोड़नेके समयसे उनकी प्रतीक्षामें आश्रम बनाकर रहती थी। उस प्रदेशका नाम 'मतङ्ग वन' था। उपर्युक्त 'मतङ्गाश्रम-वन' इस विचारसे दूसरा ही होना चाहिये। इस 'मतङ्ग वन' में मतङ्ग ऋषिने प्रत्यकस्थली वेदीकी स्थापना की थी। वहाँ उस मुनिके प्रभावसे एकत्रित होकर आये हुए सप्तसागर शबरीने श्रीरामको दिखलाये। उस सप्तसागर-तीर्थमें श्रीरामने बड़ी श्रद्धासे स्नानकर पितृ-तर्पण किया। (वा० रा० ३।७४।२६ तथा ३।७५।४)

सीतादेवीका हरण करके रावण पम्पासरतक पश्चिमकी ओर मुँह करके गया, पश्चात् उस सरोवरको पार कर लेनेपर वह लङ्का-नगरीकी ओर अर्थात् दक्षिणाभिमुख होकर चलने लगा। तदनन्तर रावण अपनी कामभागिनी सीताको गोदमें लेकर धनुषसे छूटे बाणकी तरह आकाश-मार्गसे नदी, पर्वत

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ४
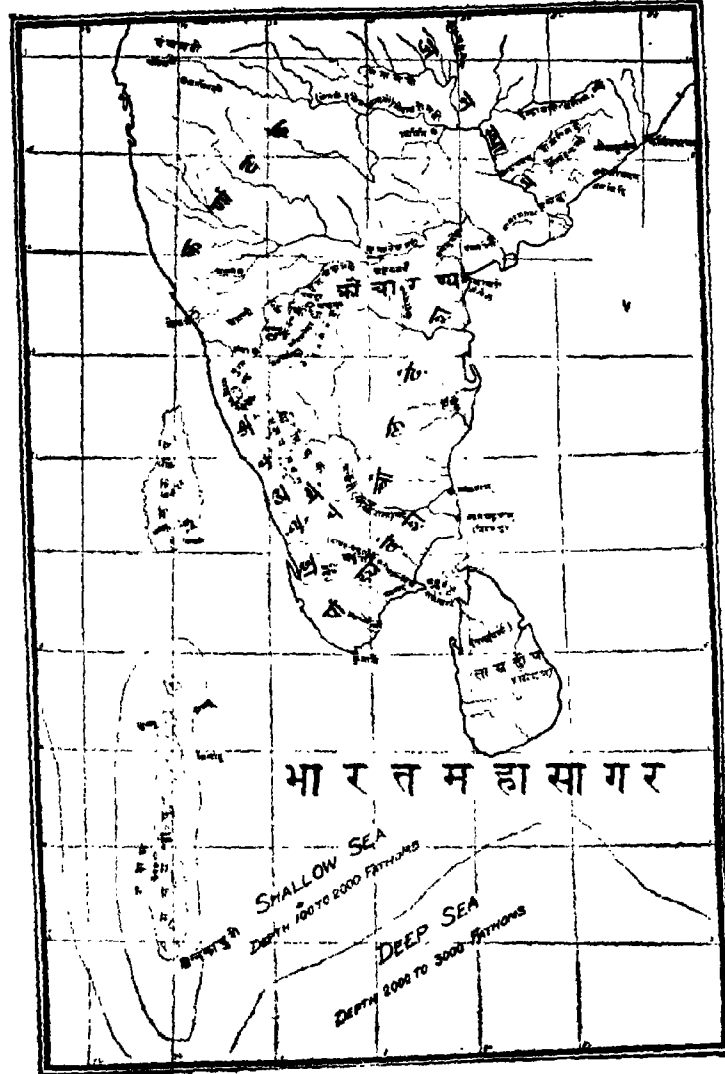
दक्षिण भारत और लंका (मानचित्रकार श्री वी० एच० वेटर)

રામાજ૮

और सरोवरोंको पार करता हुआ सरटिसे निकल गया। वह तिमि नामक मत्स्य और नक्रोंके तथा वरुणके अक्षय निवासस्थान–सागरको लाँघता हुआ चला। (वा० रा० ३।५४।१–८)

मध्यभारतमें रीवाँ प्रान्तके दक्षिणमें सौ मीलके अन्दर ही लङ्का थी, ऐसा आग्रहपूर्वक सिद्ध करनेवाले महानुभावोंने वाल्मीकीय रामायणान्तर्गत उपर्युक्त वर्णनको ज़रा भी महत्त्व न देकर मध्यभारतमें जो एक बड़ा दलदल था, उसीको सागर मान लिया है। उसी प्रकार वे रामायणोक्त समुद्रकी दूरी और लम्बाई-चौड़ाई तथा लङ्काकी लम्बाई-चौड़ाईके वर्णनको भी अतिशयोक्ति कहकर वाल्मीकिके आर्ष काव्यको अद्भुत कथाओंका उपन्यास मानते हैं।

अस्तु, पम्पासरके समीप ही पम्पा नदी बहती थी। बेल्लारी जिलेका हम्पी क्षेत्र ही पम्पा है और पम्पा नदी उस क्षेत्रके पाससे बहती है। जिसप्रकार काठियावाड़ और मारवाड़की भाषामें 'स' के स्थानपर 'ह' के उपयोग करनेकी परिपाटी है, उसी प्रकार कनाड़ी भाषामें 'प' के स्थानमें 'ह' का प्रयोग होना प्रसिद्ध है।

श्रीरामने एक वसन्त ऋतु ऋष्यमूक पर्वतपर बितायी। वहाँ रहते समय हनूमान्‌जीकी प्रेरणासे उनकी सुग्रीवके साथ मैत्री हुई। वालिके भयसे सुग्रीव माल्यवान पर्वतपर रहता था, और वालि किष्किन्धा नगरीमें रहता था। वालि इतना बलवान् था कि ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठकर पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक तथा दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्र-तक प्रतिदिन चक्कर लगा आया करता था।

सुग्रीवका कार्य करनेके लिये रामचन्द्रजीने ऋष्यमूकसे किष्किन्धा जानेका निश्चय किया। सप्तजन-मुनिके आश्रमसे किष्किन्धा विशेष दूरीपर थी। सप्तजन मुनिका आश्रम तथा सप्तसागर तीर्थ एक ही प्रदेशमें थे। वहाँसे ऋष्यमूक पर्वत करीब ही होना चाहिये। श्रीरामजी उस पर्वतसे सुग्रीवको साथ लेकर तथा अपना प्रचण्ड धनुष लेकर रवाना हुए। उनके साथ हनूमान्, नल, नील और तार नामक वीर-वानर भी थे। मार्गमें निर्मल नीरवाहिनी समुद्रगामिनी नदियोंका उन्होंने अवलोकन किया। रास्तेमें एक अत्यन्त आश्चर्यजनक वन उन्हें मिला। उसी वनमें सप्तजन-मुनि सतत जलमें शीर्षासनसे (सिर नीचे और पैर ऊपरकर) तपश्चर्या करते थे, श्रीराम उनकी वन्दनाकर आगे बढ़े। (वा०रा०४।१३।२६)

इसके पश्चात् वालि-सुग्रीवका युद्ध हुआ और श्रीरामकी कृपासे वालिका वध हुआ। वालिकी अन्त्येष्टि श्रीरामने एक नदीके तीरपर अंगदद्वारा सम्पन्न करवायी। निःसंशय वह नदी आधुनिक तुङ्गभद्रा ही थी। वालिका दहन जिस स्थानपर किया गया था, वह स्थान आजकल भी देखनेको मिलता है।

पश्चात् श्रीरामने सुग्रीवके राज्याभिषेक तथा अंगदके यौवराज्याभिषेक करनेकी हनूमान्‌को आज्ञा की, और वर्षाका प्रथम मास श्रावण शुरू हो जानेके कारण प्रस्रवण गिरिपर वास करनेकी अपनी इच्छा सुग्रीवसे प्रकट की। सुग्रीवने वर्षाकाल समाप्त होनेपर अर्थात् कार्तिकमें रावणवधके लिये यत्न करनेका श्रीरामको आश्वासन दिया। श्रीरामने प्रस्रवण-पर्वतके शिखरपर एक महान् विस्तीर्ण गुहामें निवास करनेका निश्चय किया। उस गुहाके पास एक रमणीय सरोवर था और एक अत्यन्त निर्मल जलवाली पूर्ववाहिनी नदी बहती थी। रमणीय किष्किन्धापुरी वहाँसे बहुत दूर नहीं थी। (वा०रा०४। २७)

उपर्युक्त वर्णनसे किष्किन्धा-नगरीका विन्ध्य पर्वतके समीप होना किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि विन्ध्य पर्वतके पाससे पूर्वकी ओर बहनेवाली कोई नदी नहीं है, उपर्युक्त नदी निःसंशय तुङ्गभद्रा नदी ही है। ऋष्यमूक, पम्पा, माल्यवान पर्वत, प्रस्रवण-गिरि, किष्किन्धा आदि सब स्थान आज भी हम्पी क्षेत्रके आस-पासके प्रदेशमें प्रसिद्ध हैं। और निःसन्देह यह प्रदेश अत्यन्त प्राचीनतम प्रतीत होता है। उसी विभागके पास ही प्राचीन विजयनगर राज्यकी राजधानीके भग्नावशेष अब भी दृष्टिगोचर होते हैं।

'एक विद्वान्‌का मत है कि (१) किष्किन्धा विन्ध्यपर्वतके उत्तरमें गंगा-यमुनाके पश्चिम और चित्रकूटके नैऋत्यमें थी तथा रियासत रीवाँका कन्धो नामक ग्राम ही प्राचीन किष्किन्धा है और (२) अमरकण्टक ही प्रस्रवण गिरि है।' इस मतके विरुद्ध एक दूसरे विद्वान् लेखकने वर्तमान अनागोंदीको ही प्रबल प्रमाणोंसे किष्किन्धा निश्चित किया है। इसी लेखकने यह सिद्ध किया है कि किष्किन्धा, हम्पी (पम्पा), अनागोंदी, विजयनगर, विद्यानगर आदि सब एक ही प्रदेशमें तुङ्गभद्राके तीरपर थे। परम्परागत जानकारी भी इसी मतको पुष्ट करती है। अनागोंदीसे पम्पासर दो मील पर है। माल्यवान-पर्वत पास ही है। पम्पा (हम्पी) गाँवसे चार मील दूर

अनागोंदी (किष्किन्धा) है और मार्गमें चक्रतीर्थ है। विरूपाक्ष-क्षेत्रकी सीमाके अन्दर किष्किन्धा, पम्पासर, माल्यवान-पर्वत, ऋष्यमूक-पर्वत, इन सबका समावेश हो जाता है। अञ्जनी पर्वत भी करीब ही है। अनागोंदीसे वालिकी गुहा १॥मीलपर है। प्रस्रवण पर्वत माल्यवान् पर्वतसे सटा हुआ ही था। जयदेव कविका अभिप्राय भी ऐसा ही है। 'प्रसन्नराघव' नाटकके वर्णनसे ऋष्यमूक-पर्वत और किष्किन्धाका तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणमें होना संशयातीत है। बालरामायण-कार कवि राजशेखर (शक ८००-६००) ने रामवनवासका बहुत ही व्यवस्थित वर्णन किया है। उससे भी किष्किन्धाका निःसन्देह तुङ्गभद्राके समीप होना ही प्रमाणित होता है। प्रसिद्ध कवि भवभूतिका ऐसा स्पष्ट अभिप्राय मिलता है कि किष्किन्धा-नगरी विन्ध्य-पर्वत और गोदावरी नदीके दक्षिणमें बहुत दूर थी।

जैन-कवि विमलसूरिका भी यही मत है कि दण्डकारण्यके आग्नेयमें समुद्रके पास तथा कर्णरवा-नदीके दक्षिणमें बहुत दूर जनस्थान था और कर्णरवा-नदी नर्मदा तथा ताप्ती नदियोंके दक्षिणमें थी, और किष्किन्धा उसके भी दक्षिणमें थी।

वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें वर्णित भूवर्णनमें आग्नेय देशोंकी सूचीमें किष्किन्धा-देशका नाम दिया हुआ है। पर उससे ठीक निश्चय नहीं हो सकता।

महाभारत (सभापर्व) में दक्षिणके देशोंकी सूचीमें किष्किन्धाका नाम आया है। अतः किष्किन्धा-नगरी तुङ्गभद्राके तट-प्रान्तमें थी, यह बात सिद्ध होती है।

प्रो० डायसन भी किष्किन्धाको दक्षिण भारतके मैसूर राज्यमें बतलाते हैं। (Classical Dictionary of Hindu Mythology, Geography etc. Page159

इसी प्रकार सीतान्वेषणके लिये श्रीराम-लक्ष्मण जब दक्षिणकी ओर चले तब मार्गमें उन्हें पक्षिश्रेष्ठ, मरणोन्मुख जटायु मिला। उसने रावणका आकाशमार्गसे सीताको दक्षिणकी ओर ले जानेका समाचार श्रीरामसे निवेदन किया। जटायुकी अन्त्येष्टि क्रिया श्रीरामने स्वयं सम्पन्न की। जिस स्थानपर यह घटना हुई वह स्थान आजकल मद्रास-प्रान्तके गण्टूर-जिलेमें विनुकोंडा-ग्रामके समीप एक पहाड़ीपर बतलाया जाता है। विनुकोंडाका अर्थ 'समाचार मिलनेका स्थान' है। (Provincial Geographies of India, Madras Presidency. Page 280.) आगे श्रीराम क्रौञ्चारण्यमें पहुँचे जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

विस्तार-भयसे वहाँके समस्त भूगोल-वर्णनका विस्तृत विचार यहाँ करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। अन्य किसी लेखमें इसपर विचार किया जा सकता है। अस्तु।

सुग्रीवकी आज्ञासे गये हुए वानर वीरोंको एक मासके अन्दर खोज करके लौट आनेकी विशेष आज्ञा थी। तबतक राम-लक्ष्मण प्रस्रवण-गिरिपर ही वास करते थे। सीताकी खोजमें गये हुए वानर वीरोंमें हनूमान्‌के सिवा और किसीका विशेष वर्णन रामायणमें नहीं मिलता। अङ्गद तथा तारको लेकर हनूमान्‌जी चले थे वे दूर जाकर विन्ध्य-पर्वत ढूँढ़ने लगे, वहाँ कण्डुनामके ऋषिसे उनकी भेंट हुई। ढूँढ़ ढूँढ़कर थक जाने-पर वे वानर विन्ध्य पर्वतके नैऋत्यमें आये। उन्हें वहाँ ऋक्षबिल नामकी प्रचण्ड गुहा मिली। उस विवरमें मेरुसावर्णिकी स्वयंप्रभा नाम्नी कन्या, जो हेमा अप्सराके स्थानकी रक्षा कर रही थी, उन्हें मिली। यह वानरवीर जब उस गुफामें थे, तभी उन्हें मिला हुआ एक मासका समय समाप्त हो गया, जिससे सब वानर बहुत ही घबड़ा गये। तब उस स्वयंप्रभाने अपने योगबलसे सब वानरोंको उस विवरके बाहर विन्ध्य-पर्वतकी उपत्यकापर पहुँचा दिया। अङ्गदने कहा कि आश्विन(अश्वयुज) महीनेकी अवधि समाप्त हो गयी। (वा० रा० ४.५३.६)

आगे हनुमानके मुखसे यह वाक्य निकलते हैं कि 'राजा सुग्रीवकी आज्ञाके कारण सीताका पता लगाये बिना अब यहाँसे लौट जानेपर हमारी जान जाना निश्चित ही है तो हम यहीं पवित्र समुद्र-तीरपर अन्न-जल त्याग करके क्यों न प्राण दे दें।' (वा० रा० ४।५३।२०)

इसपर सब वानर अनशन करनेके निश्चयसे जब बैठ गये, तब जटायुका बलवान् भाई सम्पाति वहाँ आया और वानररूपी अपने भक्ष्यको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पर अङ्गदके मुखसे जटायुका किस्सा सुनते ही पूर्वेतिहास सुननेकी उसे प्रबल इच्छा हुई। अङ्गदने उससे जटायुवधकी तथा कुल रामकहानी सुनायी। इसपर उसने सीताका वृत्तान्त तथा रावणकी लङ्काका वृत्तान्त वानरोंसे निवेदन किया—

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिँल्लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।

(वा० रा० ४।५८।२०)

और लङ्कामें रावणके अन्तःपुरमें सीताके रहनेका स्थान बतलाया। चाक्षुष्मती विद्याके योगसे वह सौ योजनसे दूरका दृश्य भी देख सकता था और उसी विद्यासे प्राप्त

दिव्य दृष्टिके कारण यह पता उसने बतलाया था। पश्चात् सम्पातिके निवेदन करनेपर वानर उसे समुद्रतटपर ले आये, और वह सुपार्श्व पक्षीसे उसे जो संवाद प्राप्त हुआ था उसे कहने लगा—

'सुपार्श्व महेन्द्र-पर्वतका द्वार अवरुद्ध करके अपने भक्ष्यकी प्रतीक्षामें जब बैठा था तब रावण सीताको ले जा रहा था और रावणके गिड़गिड़ानेके कारण उसने उसे जाने दिया।' तदनन्तर जटायुके नामसे समुद्र-तटपर तर्पण करके सम्पाती जब फिर पर्वतपर आ बैठा, तब उसने कहा—'यह दक्षिण समुद्रके तटका विन्ध्य-पर्वत है, यहाँ पर एक निशाकर ऋषि आश्रममें तपश्चर्या करते थे, उनके स्वर्ग सिधारनेके पश्चात् आठ हजार वर्ष मैंने इस पर्वतपर बिताये।' (वा० रा० ४।६०।८)

सम्पातीको इस रामकार्यके करने ही पङ्ख आ जानेका वरदान मिला हुआ था। अतः वानरोंसे सीता-समाचार कहतेही उसके पङ्ख फिर आ गये तब वे सब दक्षिण समुद्रके उत्तर तीरपर जाकर ठहरे।

उपर्युक्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि भारतकी दक्षिण सीमापर जो पर्वत था उसका नाम विन्ध्याद्रि था। नर्मदा नदीके उत्तरका विन्ध्याद्रि उत्तरविन्ध्याद्रि है। अङ्गदका यह दल और सम्पाती कुमारी-अन्तरीपके प्रदेशमें ठहरे थे, ऐसा वाल्मीकीय रामायणसे स्पष्ट होता है। महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर चढ़कर हनुमानने सौ योजन विस्तीर्ण उस समुद्रको लाँघनेकी तैयारी की। वह प्राणवायुको हृदयमें निरुद्ध करके उड़े और प्रचण्डरूप धारण करके आकाशमार्गसे जाने लगे। उस समय समुद्रपर जो उनकी छाया पड़ी, वह दस योजन चौड़ी तथा तीस योजन लम्बी थी। (वा० रा० ५।१।७४) हनुमानजी जब आकाशमार्गमें प्रयाण कर रहे थे, तब इक्ष्वाकुकुलाधिपति सगर राजाके द्वारा बढ़ाये हुए समुद्रने उसी कुलमें उत्पन्न रामको सहायता करनेका उत्कृष्ट विचार किया। तब उसने अपने जलमें आच्छादित सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकको हनुमानकी सहायता करनेके लिये उदकके बाहर आनेको कहा। अचानक मैनाक-पर्वतके बाहर निकलनेके कारण हनुमानको वह एक विघ्न प्रतीत हुआ और हनुमानने अपने वक्षःस्थलके धक्केसे उसे नीचे गिरा दिया।

तत्पश्चात् सुरसा नाम्नी नागमाताके मुखमें जाकर अङ्गुष्ठ-प्राय देहसे बाहर निकलकर तथा उसके गर्वको मिटाकर हनुमान् आगे बढ़े तब उन्हें सिंहिका राक्षसी मिली जिसने उनकी छाया पकड़ ली। तब हनुमानने अपना शरीर बढ़ाया और फिर छोटा रूप धारण करके वे उसके मुखमें गये और मुँह फाड़कर निकल आये। पश्चात्—

> ददर्श तं पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम्।
> द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च॥
> (वा० रा० ५।१।२०५)

आकाशमार्गमें उड़ते हुए हनूमानने सौ योजनके अन्तमें एक वनपंक्ति देखी और नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित द्वीप और उसमें उपवन देखे। इसके बाद नदियोंके मुख भी देखे। तदनन्तर हनूमान् शरीर छोटा करके उस द्वीपके त्रिकूटाचल-पहाड़के लम्ब नामी शिखरपर उतरे और वहाँसे लङ्का-नगरीका निरीक्षण किया। तत्पश्चात् सीतादेवीके दर्शनकर हनूमानने उनसे राम-लक्ष्मणका सारा वृत्तान्त निवेदन किया और उनको आश्वासन दिया। श्रीरामचन्द्रके लिये सीताका सन्देश तथा मिलनका चिह्न (सहदानी) लेकर हनूमान् वहाँसे लौटे। लौटती बार राक्षस-वीरोंको अपने बाहुबलका यथेच्छ पराक्रम दिखलाकर बीचमें अरिष्ट नामके एक श्रेष्ठ पर्वतपर आरूढ़ हुए (वा० रा० ५।५६।२५)। वह पर्वत ४० कोस (८० मील) चौड़ा तथा १२० कोस (२४० मील) ऊँचा था। वहाँसे उड़नेके लिये प्रचण्डरूप धारणकर हनूमान् आकाशरूपी समुद्रमें तैरने लगे और कुछ समयके बाद महेन्द्र-पर्वतके उस शिखरपर आ पहुँचे जहाँ जाम्बवन्त, अङ्गदादि वानर थे और वहाँ उनको लङ्काका सब हाल सुनाया। वहाँसे राम-दर्शनार्थ चले और सुग्रीवके संरक्षित मधुवन नामक वनमें आ पहुँचे। वहाँसे प्रस्रवण-गिरिपर जाकर हनूमानने सीताकी खोज एवं लङ्कादहन आदि सब समाचार रामचन्द्रसे निवेदन किये तथा सीता देवीका दिया हुआ चिह्न देकर उनका वृत्तान्त कहा। इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध हुआ और उसमें रावणका वध करके श्रीरामने सीताको छुड़ा लिया।

उपर्युक्त वाल्मीकीय रामायणके विस्तृत वर्णनमें वानर राजा किस प्रदेशपर राज्य करते थे तथा लङ्का-नगरी कहाँ थी, इसका पता चल जाता है। लङ्काके सम्बन्धमें 'रावणकी लङ्का कहाँ थी?' शीर्षक प्रबन्धमें हमने लङ्काका स्थान-निर्णय-सम्बन्धी अपना मत प्रकट किया है, पाठक उसे ध्यानसे पढ़ें।

रामायणमें जो और भी भौगोलिक वृत्तान्त मिलता है, उसे हो सका तो दूसरे लेखमें देनेका विचार करके हम इस लेखको समाप्त करते हैं।

रामायणकालीन स्थान-परिचय

(लेखक श्रीयुत बी० एच० वडेर बी० ए०,एल-एल० बी०, एम० आर० ए०एस०)

अगस्त्याश्रम–यह आश्रम रोहिया-पर्वतपर स्थित है। यह पूर्वी-पश्चिमी घाटोंके नीचे दक्षिण-भागमें कार्डमम-पर्वतसे नीचे स्थित है। यह पृथिवीतलसे ६२०० फीट ऊँचा सूच्याकार पर्वतशृङ्ग है। अगस्त्यजी यहींपर वास करते थे। कार्डमम-पर्वत त्रावनकोरकी सीमापर अवस्थित है। (Provincial Geography of Madras)

अगस्तिपुरी–यह नासिकसे २४ मील दक्षिण-पूर्वके कोणपर है।

अजितवती–छोटी गण्डक

अर्धगंगा–कावेरी।

अपर ताल–इसे नकशेमें दिखलाया है (देशान्तर ७१° अक्षांश २१-३०°)

अपर विदेह–रङ्गपुर तथा दीनाजपुर।

अभिसरी–उत्तरी पञ्जाबका हजारा जिला।

अत्रि-आश्रम–दण्डकारण्यकी सीमापर

अर्बुद–आबू पर्वत

अयोध्या–प्रसिद्ध है।

अरुणकुण्डपुर–वारङ्गल

अश्वतीर्थ–गंगा तथा काली नदीका संगम।

अहिच्छत्र–उत्तर पाञ्चाल (रुहेलखण्ड) की तात्कालिक राजधानी।

अंग–यह प्रान्त भागलपुरके समीप था। इसकी राजधानी चम्पापुरी गङ्गाके तीरपर थी। इसकी पश्चिमीय सीमा गङ्गा तथा सरयूके संगमतक थी।

अवन्ति–आधुनिक उज्जैनसे पूर्वकी ओर एक प्राचीन नगर।

अंशुमती–यमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

अंशुधान–गङ्गा नदीके किनारेका एक गाँव।

आनर्त–मालवाका कुछ भाग तथा गुजरात

इक्षुमती–रुहेलखण्डस्थ काकलीनदीका प्राचीन नाम।

इल्वल–एलोरा Ellora—निजामराज्यके दौलताबाद-नगरके समीप पहाड़ोंको काटकर बनायी गयी गुफाओंमें यह स्थल प्रसिद्ध है

उकलक्षेत्र–देखिये 'सोरों'।

उज्जनक–उज्जैन, यह स्थान काशीपुर या गोविषाणसे १ मील पूर्वकी ओर या मदावरसे दक्षिण-पूर्वकी ओर ६७ मीलपर है।

उत्कल–उड़ीसा या उड़ू।

उत्तरगा नदी-उत्तानिका नदी–इन नदियोंको आजकल रामगंगा कहते हैं। यह अवध-प्रदेशमें होकर बहती हैं।

उशीनर–दक्षिणी अफ़गानिस्तान।

ऋक्षवान् पर्वत–गौड़वाना पर्वतश्रेणी। यह पर्वत विन्ध्याचलका पूर्वीय भाग है। इसका विस्तार बङ्गालकी खाड़ीसे लेकर नर्मदा नदीके उद्गमस्थानतक है।

ऋष्यमूक पर्वत–यह पर्वत मद्रास-प्रान्तके बेल्लारी-जिलान्तर्गत पम्पा या हाम्पी (Hampi)के समीप है।

ऋष्यशृङ्गाश्रम–भागलपुर जिलान्तर्गत माधीपुर तहसील-में सिंहेश्वर स्थानपर था।

एकसाल–स्थाणुमती नदीपर स्थित एक ग्राम।

ऐलधान–शिलावहा नदीपर स्थित एक बस्ती।

ओंकारनाथ–इसे आजकल अमरेश्वर कहते हैं। यह नर्मदा-नदीपर स्थित महेश नामक स्थानसे ५ मील पूर्वकी ओर मंडलेश्वरके समीप है।

कण्व-आश्रम–मालिनी-नदीपर स्थित बिजनौर।

कपित्थ–देखिये 'संकास्या।'

कपीवती नदी–भैगू-नदी यह रामगंगा नदीकी एक शाखा है।

करुष–बिहारप्रान्तान्तर्गत शाहाबाद जिलेका पूर्वीय भाग इस नामसे प्रसिद्ध था। इसके पश्चिमी भागको मलद कहा जाता था।

कर्णाट–प्राचीनकालमें दक्षिण-भारतका एक प्रान्त। आजकलके बेलगाँव, धारवाड़, बीजापुर, बेल्लारी तथा इनके आसपासकी सभी देशी रियासतें इसीमें हैं।

कर्मनाशा–यह नदी बिहारप्रान्तान्तर्गत जिला शाहाबाद-की पश्चिमी सीमापर है।

करतोया नदी—यह रङ्गपुर तथा दिनाजपुर जिलोंमें बहती है इसका दूसरा नाम 'सदानीरा' है।

कलिङ्ग देश—उड़ीसासे दक्षिण तथा द्रविड़ देशसे उत्तर पूर्वीघाटपर एक प्रदेश।

कष्टहारिणी घाट—मुँगेरमें है।

कांची—चिङ्गलपट जिलेमें। आधुनिक 'काञ्जीवरम्।'

कान्यकुब्ज—आधुनिक कन्नौज नगर।

काम्पिल्य—कम्पिल—यह फर्रुखाबाद जिलेके फतेहगढ़ (यू० पी०) से २८ मील उत्तर-पूर्व है।

कामरूपदेश—आसाम प्रान्त। इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी, जिसका वर्तमान नाम गौहाटी है।

कारापथ—कालाबाग अथवा काराबाग। यह सिन्धुनदीपर है। श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणजीके पुत्र चन्द्रकेतुको यहाँका राजा बनाया था।

कालिन्दी नदी—यमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

कावेरी—प्रसिद्ध नदी है। अर्धगङ्गा भी कहते हैं।

किष्किन्धा (आनागोंदी) विजयानगर-राज्यान्तर्गत तुङ्गभद्रा-नदीपर स्थित है। जिला बेल्लारीमें होस्पेटसे ६ मील तथा हाम्पी (पम्पा) से ४ मीलकी दूरीपर है।

कुटिकानदी इसे कौसिला नदी कहते हैं। यह अवध प्रान्तकी रामगंगाकी पूर्वीय शाखा है।

कुरुक्षेत्र—नार्थ वेस्टर्न रेलवेके कुरुक्षेत्र स्टेशनके समीप एक प्राचीन नगर।

कुरुजांगल—यह स्थान हस्तिनापुरसे उत्तर पश्चिमकी ओर सरहिन्दमें है। बौद्धकालमें इसे श्रीकण्ठ देश कहा जाता था। यह कुरुक्षेत्रका एक भाग था।

कुलिंगपुरी—दिल्लीसे उत्तरका सहारनपुर जिला।

कुशस्थली—द्वारका, द्वारावती।

कूटिकोष्टिका नदी—अवधप्रान्तमें रामगंगा नदीकी एक छोटी-सी शाखा।

केकय—झेलम तथा चेनाब नदीके मध्यका प्रदेश। यहाँका राजा अश्वपति था।

केरल—इसमें आजकलके तीन प्रदेश हैं; कनाडा, मलाबार तथा ट्रावनकोर।

कोसल—अवधप्रान्त।

कौशिकी नदी—कुशीनदी। यह गंगामें मिलती है।

क्रथकैशिका—बरार-प्रदेशान्तर्गत पयोष्णि नदी।

कृष्णवेणी—वर्तमान कृष्णानदी।

क्रौञ्चारण्य—इस विस्तृत जंगलका प्रसार मद्रासप्रान्तके समस्त साम्वूर-राज्यमें है। यह जिला बेल्लारी, गुन्तकल, नान्दयाल तथा पूर्वीय घाटपर स्थित आंगोले तक फैला हुआ है। जनस्थानसे तीन कोस दूर है।

गङ्गा नदी—प्रसिद्ध है

गन्धर्व देश—कुनार तथा सिन्धु-नदीके बीच काबुल नदीके-किनारे किनारेका प्रदेश।

गर्गाश्रम—रायबरेली जिलेमें गंगाके पार बकसरके ठीक सामने।

गाधिपुर—कन्नौज।

गालवाश्रम—जयपुर (Jeypur से तीन मीलकी दूरीपर है।

गिरिव्रज—चेनाब (चन्द्रभागा) नदीपर स्थित केकयदेशकी राजधानी। सम्प्रति झेलमसे उत्तर-पश्चिमकी ओर ३० मीलपर गिरजाक या जलालपुर।

गोकर्ण पर्वत—गोकर्णक्षेत्रके समीप पश्चिमी घाटपर।

गोदावरी नदी प्रसिद्ध है। इसे रेवा या सुरला-नदी और दक्षिण-गङ्गा भी कहते थे। इसीके किनारे जटायुकी और्ध्वदेहिक क्रिया की गयी थी।

गोप्रतार-घाट—यह फैजाबादमें सरयू नदीपर है। यहाँपर श्रीरामचन्द्रजी परमधाम पधारे थे।

गोमती नदी—यह नदी आजकल भी इसी नामसे प्रसिद्ध है, इसीपर लखनऊ नगर अवस्थित है।

गौतमाश्रम—तिरहुतमें, जनकपुरसे २४ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर परगना जरैलके अहियारी गाँवमें अहिल्यास्थान।

घग्गर नदी—दृषद्वती नदी।

चन्द्रिकापुरी—देखिये 'श्रावस्ती'।

चम्पा-चम्पानगर-चम्पापुरी—भागलपुरके पास चम्पा नगर। यह अंगकी प्राचीन राजधानी भी है।

च्यवनाश्रम—शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत चानसा या चयनपुर।

चर्मण्वती नदी—आधुनिक चम्बल नदी।

चित्रकूट पर्वत—यह चित्रकूट स्टेशनके समीप है। आजकल इसे कामतानाथ-गिरि कहते हैं। विराध यहीं मारा गया था।

चित्रकूटा नदी—देखिये मन्दाकिनी नदी।

चेर—एक समय इसके भीतर ट्रावनकोर, मलाबारका कुछ हिस्सा, तथा कोयम्बटूर था।

चैत्ररथ बन—बिहार।

चोल अथवा द्रविड़ देश—कारोमण्डल-किनारेपर, कृष्णा तथा कावेरी नदीके मध्यका प्रदेश। इसकी राजधानी कांचीपुर अथवा कांची था—

जनस्थान—महाकवि भवभूतिकी दृष्टिसे जनस्थान तथा पञ्चवटी दोनों ही गोदावरी नदीके मुहाने हैं। आजकल यहाँ खरवादी बस्ती है। यह दण्डकारण्यकी दक्षिण सीमा पर है। (साथका नक्शा देखिये) यहीं खर, दूषण, त्रिशिरा आदि रहते थे।

जन्हु आश्रम—भागलपुरसे पश्चिमकी ओर ई० आई० रेलवेपर स्थित सुल्तानगंजमें। इसी स्थानपर अब गैबीनाथ महादेवका मन्दिर है।

जमदग्नि-आश्रम—गाजीपुर जिलेमें जमानिया नामक बस्ती।

जाबालि-पट्टण—जबलपुर।

तक्षशिला—आजकलका तक्षिला ग्राम।

तमसा नदी—यह नदी अयोध्यासे दक्षिण सरयूनदी और गोमतीनदी के बीचमें है।

ताम्रपर्णी नदी—आजकल यह तिन्नेवेल्ली जिलेमें ताम-बरवारीके नामसे प्रसिद्ध है। कृष्णानदीकी एक शाखा है।

दक्षिण कोसल—मध्यभारतका गोंडवाना जिला।

दक्षिण गङ्गा—गोदावरी नदी।

दक्षिण मथुरा—मदुरा।

दण्डकारण्य—यह वन चित्रकूट-पर्वतसे लेकर जनस्थान अथवा गोदावरी-नदीके मुहानेतक फैला हुआ था। (विमलसूरि ३०० ए० डी०)

दशार्ण—मध्यभारतकी धस्सान (Dhassan) नदी।

दुर्वासाश्रम—यह भागलपुर-जिलान्तर्गत कहलगाँव (Colgong) शहरसे एक मीलकी दूरीपर इसी नामके एक पर्वतपर स्थित था। अथवा—गया जिलेके नवादा तहसीलमें रजौलीसे ७ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर इस आश्रमका स्थान है।

दृषद्वती नदी—घग्घर नदी।

द्रविड़ देश—देखिये 'चोल'

धनुष्कोटि / धनुःतीर्थ — भारत तथा सीलोनके मध्यका पम्बन नामक जल-मार्ग।

धर्मपट्टण—देखिये 'श्रावस्ती।'

धर्मारण्य—सत्य अथवा कृतयुगमें बिहार, बंगाल तथा उत्कलमें आर्योंका अभिनिवेश (भगवान् श्रीरामके समयसे पूर्व)

धवला नदी / धुमेला नदी — बूढ़ी राप्ती। / अर्जुनी। / सीताप्रस्था। / बाहुदा।

धोपापपुर—सुलतानपुरसे १८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर गोमती-नदीपर स्थित है।

नन्दीग्राम—नन्दिगाँव—अयोध्यासे एक कोस है।

नर्मदा नदी—प्रसिद्ध ही है।

नीमसार अथवा—नैमिषारण्य — आजकल इसे नीमसार कहते हैं। यह ओ० आर० आर० के सण्डीला स्टेशनसे २४ मीलकी दूरीपर तथा गोमती-नदीके बायें किनारेपर स्थित सीतापुरसे २० मीलकी दूरीपर है।

पञ्चवटी—आधुनिक नासिक। महाकवि भवभूतिके अनुसार यह गोदावरी नदीका मुहाना है। विमलसूरिके अनुसार यह जनस्थान, जो दण्डकारण्यके दक्षिण पूर्व है—में था। (३०० ए० डी०)

पञ्चाप्सर सरोवर—छोटा नागपुर राज्यके उदयपुर जिलेमें है। अ० २२° दे० ८४° के पास है। (श्रीनन्दलाल दे)

पर्णाशा नदी—बनास नदी।

प्रलम्ब—मुंदावर या मुन्दोर, पश्चिमी रुहेलखण्डमें बिजनौरसे ८ मील उत्तर है।

प्रयाग—प्रसिद्ध है। यहाँपर भरद्वाज-आश्रम था।

पम्पासर—इसे 'हाम्पी' भी कहते हैं। यह मद्रास-प्रान्तके बेल्लारी जिलान्तर्गत होस्पेटके पास है। अनागोंदीसे २ मील है।

पयस्विनी नदी—देखिये 'मन्दाकिनी नदी।'

पाञ्चाल—रुहेलखण्ड।

पाण्ड्य जनपद—यहाँ आजकलके तिन्नेवेल्ली तथा मदुरा जिले हैं। पूर्वीय किनारेपर स्थित नागपट्टण तथा किसी समय मदुरा राजधानी थी।

पुष्कलावती—स्वात नदी तथा काबुल नदीके संगमपर स्थित पुकेलावती गाँव।

प्रस्रवण पर्वत–तुङ्गभद्रा नदीके पास है।

प्राग्ज्योतिष–कामरूप अथवा कामाख्या। कामरूपकी प्राचीन राजधानी।

प्राग्वटपुर–गङ्गा-नदीपर एक नगर।

प्राचीनवाहिनी नदी (जाह्नवीतुल्य) किष्किन्धाके पास

प्रेतशिला–देखिये 'रामगया।'

फल्गु नदी–प्रेतशिला आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण लोप हो गयी है। इसे मधु नदी भी कहते थे।

ब्रह्मजनि पर्वत (ब्रह्मयोनि) यही गयशिर पर्वत है।

ब्रह्मसर धर्मारण्यमें है।

बाहुदा नदी–धवला नदी–अब इसका नाम धुमेला अथवा बूढ़ी राप्ती है। यह अवधमें राप्तीकी एक शाखा है।

बाह्लीक आधुनिक बलख-प्रान्त।

बिन्दुसार गङ्गोत्तरीसे २ मील दक्षिण है।

भारद्वाज आश्रम प्रयागमें है।

भारुण्ड देश वीरमत्स्य देशसे उत्तर।

भीमरथी भीमा नदी

भृगु आश्रम बलिया–यह गङ्गा तथा सरयूके संगमपर है। बध्राश्रम भी इसीका नाम है।

मतङ्ग-आश्रम, मतङ्ग-सरोवर–मद्रास प्रान्तके बेलारी ज़िलेमें पम्पा नदीके पास। क्रौञ्चारण्यसे ३ कोसके भीतर है (वा॰ रा॰ ३। ६९। ८)

मतङ्ग-वन–पम्पाके पश्चिमी तीरपर।

मतिपुर मदावर–बिजनौरसे ८ मीलकी दूरीपर है।

मधु नदी–प्रेतशिला आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण इसका लोप हो गया है।

मधुपुरी–मथुरा–इसे शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवणको मारकर बसाया था। मथुरासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर महोली नामक स्थान है। यही प्राचीनकालमें मधुपुरीके नामसे प्रसिद्ध था।

मन्दराचल–भागलपुर जिलेके बाँका तहसीलमें बौसीसे २-३ मील।

मन्दाकिनी नदी–चित्रकूटा नदी अथवा पयस्विनी नदी। यह ऋक्ष्यवान् पर्वतसे निकलकर चित्रकूटमें बहती हुई कुछ आगे आकर यमुनामें मिल जाती है।

मरुद–बिहारान्तर्गत शाहाबाद जिलेका पश्चिमीय भाग।

मल्लदेश पञ्जाब-प्रान्तका मुलतान जिला। लक्ष्मणके पुत्र अङ्गदको श्रीरामचन्द्रजीने इस स्थानका राजा बनाया था।

महानदी–प्रसिद्ध है।

महेन्द्रपर्वत–पूर्वीय घाटपर गञ्जाम जिलेमें है।

मार्कण्डेयाश्रम–कमायूँ जिलेमें, बागेश्वरके पास सरयू तथा गोमती-नदीके संगमपर स्थित है।

माल्यवान् पर्वत–अनागोंदीके पास है।

मालिनी नदी (संदिग्ध)–प्रलम्ब तथा अपर-ताल नामक प्राचीन जिलोंके मध्यमें बहनेवाली चुक (शुक) नदी, यह नदी अयोध्यासे ५०मील ऊपर सरयू नदीमें गिरती है। ऋषि कण्वका आश्रम इसी नदीपर स्थित था।

माहिष्मती नर्मदा-नदीपर स्थित आधुनिक माण्डला।

मिथिला–(१) वैजयन्त नगर (२) विदेहमें जनकपुरसे दक्षिण एक नगर।

मेखल–(क) अमरकण्टक पर्वत जो कि नर्मदा-नदीका उद्गम स्थान है।

मैनाक पर्वत–शिवालिक-पर्वतमाला।

यमुना प्रसिद्ध जमना नदी।

यवद्वीप–जावा द्वीप।

रत्नपुर मध्यप्रान्तमें छत्तीसगढ़ प्रदेशमें दक्षिण कोसल-की राजधानी।

रन्तिपुर–चम्बल नदीपर रमताम्बर नगर

रामगया, रामशिला ब्रह्मयोनि पर्वतके पासकी अन्य पहाड़ियाँ। यहाँपर श्रीरामने पितृ-श्राद्धमें पिण्डदान दिया था। (वायुपुराण)

रामनाद–रामेश्वरके पास एक नगर। रामनादका राजा सेतुपति-वंशकी सन्तान था। लङ्कासे लौटते हुए श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरपर सेतुकी रक्षाके लिये जिन सात व्यक्तियोंको नियुक्त किया था, उनमेंसे एक रामनाद था।

रामेश्वर–प्रसिद्ध ही है।

रामेश्वर-संगम चम्बल तथा बनास नदीका संगमस्थान।

रोहतास—ससरामसे १०मील दक्षिण शाहाबाद ज़िलेमें है। इसको राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने बसाया था।

रोहण पर्वत-सीलोनमें सुमनकूट पर्वतको कहते हैं। आजकल वह ऐडम पीक (Adam,s Peak) के नामसे प्रसिद्ध है।

लक्ष्मणावती—लकनौती, यह गौडका दूसरा नाम है, इसका भग्नावशेष मालदाके पास है।

लवपुर—लवकोट, लववार अथवा लाहौर है। इसकी स्थापना भगवान् श्रीरामके पुत्र लवने की थी।

लाङ्गुली-राजपूतानेकी लूनी नदी।

लोमशगिरि-यह गया जिलान्तर्गत नवादा सब-डिवीजनके रजौली स्थानसे ४मील उत्तर है।

लोमशाश्रम-लोमशगिरि पर है।

लोह—अफगानिस्तान।

लोहित्यग्राम-कपीवती नदीपर स्थित है।

लोहित्यसागर—बंगालकी खाड़ी।

लोहित्या-नदी-ब्रह्मपुत्र-नदी।

वत्सभूमि-प्रयागसे पश्चिम एक जिला। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी।

वानीरमालिनी नदी धर्मारण्यकी नदी।

वाल्मीकि-आश्रम-तमसा नदीपर। गंगासे दक्षिण। प्रयागसे १० कोस।

वालिगुहा-अनागोंदी स्थानसे १॥ मील दूर है।

वितस्ता नदी-पंजाबकी झेलम नदी।

विदर्भ-बरार।

विदिशा-मध्यभारतका भिलिसा ग्राम।

विदेह-आधुनिक तिरहुत— इसे मिथिला भी कहते हैं।

विनतग्राम-गोमती नदीपर एक ग्राम।

विन्ध्याद्रि-प्रसिद्ध है। यह पर्वत भारतवर्षको उत्तरी तथा दक्षिणी दो भागोंमें विभक्त करता है।

विनुकोंडा—गन्टूर जिलेमें इस नामका एक नगर तथा एक पर्वत है, इसका अर्थ 'सुननेका पर्वत' है। परम्परा-से यह बात चली आती है कि इसी स्थलपर श्रीरामचन्द्रजीने सीता-हरणका समाचार सुना था।

विपाशा नदी-पञ्जाबप्रान्तकी व्यास नदी। (वेदोंकी आर्जीकया नदी)

विरूपाक्ष क्षेत्र-(हाम्पीमें मन्दिर)। इसके अन्तर्गत किष्किन्धा, पम्पासरोवर, तारा, माल्यवान् तथा ऋष्यमूक पर्वतादि हैं।

वेदश्रुता नदी तमसा या तामसा नदी।

वैडूर्यपर्वत—सतपुरा पर्वत।

वैतरणी नदी—यह नदी कलिङ्ग प्रान्तमें बहती हुई बङ्गाल-की खाड़ीमें गिरती है।

वैशाली-हाजीपुरसे १८ मील उत्तर गण्डक नदीपर स्थित बेसारग्राम।

बंग—बंगाल। किसी समय यह पाँच प्रान्तोंमें विभक्त था। १-पुण्ड्र २-समतट ३-कामरूप ४-ताम्रलिप्त तथा ५ कर्णसुवर्ण।

शतद्रु नदी-पञ्जाबकी सतलज नदी।

शरभंग-आश्रम उन्नयपुरमें। अत्रि-आश्रमसे दक्षिण दिशामें।

सरयू नदी-सरयू या घाघरा नदी— गङ्गा नदीकी एक शाखा। इसीके किनारेपर अवध या कोसलकी तत्कालीन राजधानी अयोध्यापुरी है।

शिवि-सिविस्तान। सिन्ध नदीके किनारे सिन्धप्रान्तका एक भाग।

शुकक्षेत्र-देखिये 'सोरों'।

शूर्पारक-बम्बई प्रान्तमें बम्बईके पास सोपारा नामसे प्रसिद्ध है।

शोण—सोन नदी। यह गंगा नदीमें गिरती है। इसका एक नाम हिरण्यवाह भी है।

शृङ्गवेरपुर—आधुनिक सिंगरौर। प्राचीनकालमें यहाँका राजा गुह था।

श्रावण-उन्नावसे २० मील दक्षिणपूर्वकी ओर तमसा नदीपर स्थित है। इसी स्थलपर राजा दशरथने भूलसे श्रवण अथवा सिन्धु-ऋषिको मार डाला था।

श्रावस्ती—सूर्यवंशी राजा श्रावस्तने इसे बसाया था। आजकल रापती अथवा ईरावती नदीके दक्षिण तटपर सहेत-महेतके नामसे प्रसिद्ध है। यह अयोध्यासे ५८ मील उत्तरकी ओर है। प्राचीनकालमें यह उत्तर कोसलकी राजधानी थी। इसके तीन नाम हैं १-धर्मपत्तन २-चन्द्रिकापुरी ३-सहेत-महेत।

सदानीरा नदी—देखिये 'करतोया'।

स्यन्दिका नदी—अवध-प्रदेशकी आधुनिक सई नदी। गोमती और गंगाके बीचमें कोसल-देशकी दक्षिण सीमापर बहती है।

सरस्वती नदी—आजकल इसे सरस्वती अथवा घग्गर नदी कहते हैं। यह उत्तर राजपूतानेकी रेतमें लुप्त हो गयी है।

सहेत-महेत—देखिये 'श्रावस्ती'।

सिद्धाश्रम-थोरा तथा गंगा नदीके संगमके पास शाहाबाद जिलेमें बक्सरके नामसे प्रसिद्ध है।

सीता नदी—यारकन्द अथवा जरफ्शाँनदी। इसीपर यारकन्द शहर बसा हुआ है।

सीतासेज—कालिंजर पर्वतकी एक पहाड़ी (साधारण ऊँचा पथरीला भाग)

सुतीक्ष्ण-आश्रम-शरभंगाश्रमसे दक्षिण।

सुवर्णद्वीप—सुमात्रा।

सुवामा नदी—रामगंगा नदी। देखिये 'उत्तरगा नदी'।

सुह्मदेश—आराकानप्रान्त। एक समय इसकी राजधानी ताम्रलिप्ता थी।

सैरिन्ध—सरहिन्द।

सोमगिरि—हाला-पर्वतका दक्षिणी भाग।

सोरों—शूकरक्षेत्र या उकलक्षेत्र—यह स्थान एटासे २७ मील उत्तर-पूर्वकी ओर है। कहते हैं इसी स्थानपर हिन्दीके पूजनीय महाकवि तुलसीदासका बाल्यकालमें पालन-पोषण हुआ था।

संकास्या—फर्रुखाबाद-जिलान्तर्गत फतेहगढ़से पश्चिमकी ओर २३ मीलपर इक्षुमती-नदीपर कपित्थके नामसे प्रसिद्ध है।

हत्याहरण—हरदोईसे २८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर कल्याणमलके पास है।

हरद्वार—गंगापर प्रसिद्ध नगर है।

हस्तिनापुर—अधुना गङ्गा-नदीके दाहिने तटपर स्थित एक ग्राम। यह दिल्ली तथा मेरठसे उत्तर-पूर्व तथा बिजनौरसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर है।

हाटक—लाचक (मानसरोवरके पास अवस्थित स्थान)

हारीताश्रम—एकलिंग। राजपूतानेके उदयपुरसे ६ मील उत्तर।

हिरण्यवती—छोटी गण्डकी।

हिरण्यवाह—देखिये 'शोण नदी'।

निम्नलिखित स्थानोंके नाम रामायणमें आते हैं परन्तु इनके सम्बन्धमें ठीक-ठीक पता नहीं लगता।—अग्निशोदल, अभिकाल, अंशुमती, इक्षुसागर, उज्जिहान नगर, ऋषभ-पर्वत, कबन्ध वन, कलिङ्गनगर, कालमही नदी, कुलिन्द, कुब्ज, क्षीरसागर, गिरिश्रृंग, जम्बूप्रस्थ ग्राम, जातरूपशैल पर्वत, तेजोभिभव, तोरण ग्राम, दूषवाह आश्रम, धर्मवर्धन, प्रभास, प्रस्रवणस्थली वेदी, मणिमान् पर्वत, महाग्राम, रौप्यक द्वीप, वरूथ ग्राम, वाहिनी नदी, वीरमत्स्य देश, शरदण्डा, शबरी आश्रम, शल्यकर्तन, शाल्मली नदी, शिलावहा नदी, शिशिर पर्वत, सप्तजनमुनि-आश्रम, सप्तसागरतीर्थ, स्थाणुमती नदी, सुचक्षु नदी, सुदर्शन सरोवर, सुदामा नदी, सोरोन, हस्तिपृष्ठक ग्राम, ह्रादिनी नदी आदि।

रामावतार-रहस्य

(एक नवीन दृष्टि)

(लेखक—श्रीमोतीलाल रविशंकर घोड़ा, बी० ए०, एल-एल० बी०)

आर्यकी अविनाशी सम्पत्ति समझी जानेवाली रामायणी कथा सर्वांशमें चाहे ऐतिहासिक न हो परन्तु रामायण और श्रीरामचन्द्रजी ये दोनों हिन्दू-समाजको गृहस्थाश्रम और राजधर्मका अद्वितीय आदर्श दिखला रहे हैं। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। पर प्रस्तुत लेख इस आदर्शकी दृष्टिसे नहीं लिखा जाता है। यह लेख एक नवीन दृष्टिसे लिखा जाता है, इसलिये यदि किसी पाठकको कुछ अनुचित प्रतीत हो तो हम पहलेहीसे क्षमा माँग लेते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीको हम परमात्मा, श्रीविष्णु भगवान्‌का अवतार मानते हैं, हमारी इस आस्तिक बुद्धिके नातेसे तो हमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी है। अवतारवादपर हम एक भिन्न दृष्टिसे विचार करना चाहते हैं, इसलिये एक नवीन विचार सृष्टि करनेका प्रयास किया जाता है। अवतारवाद और विकासवाद इन दोनोंमें कुछ-कुछ समानता है, और ये दोनों ही वाद बुद्धिवाचक होनेके कारण विचारके योग्य ठहरते हैं।

हमारे पुराणोंका अध्ययन करनेसे पता लगता है कि इन ग्रन्थोंकी रचनामें किसी अद्भुत युक्तिका उपयोग किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि इनमें वर्णित कथाओंको लोकोपकारक बनानेके लिये, उनके मूल शुभ अंशोंके आधारपर उन्हें नये वस्त्राभूषणोंसे सज्जित किया गया है। इसके अतिरिक्त, 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' हमारे इस तात्त्विक सूत्रमें निहित मुख्य भावको सर्वथा चरितार्थ करनेकी भी चेष्टा पुराणकारोंने की है।

पुराणोंके पाठकको सूक्ष्म दृष्टिसे कथाओंका पर्यवेक्षण करना होगा। क्योंकि अवताररूपसे माने हुए देव-दानवोंके चरित्र-चित्रण करके ही पुराणकार चुप नहीं हो गये हैं, उन्होंने उन देव-दानवोंका एक ओर ज्योतिश्चक्रकी दृष्टिसे और दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वर्णन किया है। इस वर्णनके द्वारा उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विषयोंकी एकार्थता सिद्ध कर दी है। मतलब यह कि हमारी पुराण-कथाएँ ऐसी हैं कि उनको हम भिन्न-भिन्न अर्थोंमें घटा सकते हैं, और इसी दृष्टिसे यह लेख लिखा गया है।

वेदमें 'यज्ञ' 'विष्णु' और 'सूर्य' ये तीन शब्द एक ही अर्थमें व्यवहृत हैं, इनके अतिरिक्त उदय होते, केन्द्रमें स्थित रहते और अस्त होते सूर्यकी जिन तीन अवस्थाओंकी हम बार-बार आवृत्ति देखते हैं, वे तीनों ही विष्णुके एकके बाद एक अवताररूपसे समझी गयी हैं, ऐसा भी वेदादि ग्रन्थोंके आधारपर कहा जा सकता है। अन्य अवतारोंके सम्बन्धमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। रामायणके आधारपर हम श्रीरामजीको सूर्यवंशी मानते हैं। इससे श्रीरामका सूर्यके साथ सम्बन्धित होना सिद्ध है। रमाने वाली आनन्द प्रदान करनेवालेको राम कहते हैं। ऐसे तेजस्वी पुरुष ही 'सूर्यवंशज राम' हैं, यह सीधा अर्थ किया जा सकता है। प्रखर किरणोंवाले सूर्यका परशुराम उग्रस्वरूप है, उसके झुकनेपर (पराजित होनेपर) जो नया स्वरूप (सूर्यका) बनता है उसका अल्प उग्र होकर लोकमात्रको सुख पहुँचानेवाला होना स्वाभाविक ही है (ढले हुए सूर्यका स्वरूप उग्रतामें कम और सुखकारक होता है)। श्रीरामके जन्मकालसे ही लोकमात्रको आनन्द होता है परन्तु आनन्द तो वही है जो होता ही रहे। रामका वय ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-ही-त्यों आनन्द भी बढ़ता जाता है, पर कहाँ तक और किस प्रमाणमें? राम अपनी प्रिया श्रीसीतारूपी द्युतिका त्याग करके भी लोकमात्रको प्रसन्न करनेसे नहीं चूकते।

श्रीराम अपना पराक्रम दिखाकर जो सीताका वरण करते हैं, यह बात भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है। परशुराम, संक्रान्तिकालके सूर्यका स्वरूप होनेसे अर्धक्रान्तिवृत्तिरूपी धनुषका भंग करनेवाले रामरूपी सूर्यसे पराजित हों, नष्ट हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है। रामकी पत्नीका नाम सीता है। 'सीता' शब्दका अर्थ 'शुद्ध' या 'हलरेखा' होता है, और वह द्युतिरूप भी है, तथा सौम्य भी है। धनुष-भंग करके रामरूपी सूर्य सीतारूपी द्युतिका वरण करते हैं। इसका अर्थ यह करना चाहिये कि रामरूपी सूर्यका तेज लोकमात्रको सह्य है। उत्तरायणका सूर्य दिन बीतनेके साथ ही दक्षिणायनका होने लगता है। यह बात श्रीरामके अपनी पत्नी सीताके साथ दक्षिण-गमनकी कथासे इतनी अधिक मिलती है कि राम-कथा और सूर्य-कथाको हम परस्पर पृथक् नहीं कह सकते। रामकी शक्तिरूपा सीताका रावणने हरण किया, इस कथाको जो हम सूर्यके अन्य अवतारों—नृसिंह या वामनकी कथाके साथ तुलना करते हैं तो तत्त्वतः उन सबसे एक ही अर्थका बोध होता है। सूर्यकी अपनी वास्तविक द्युतिरूप पत्नीको कैद कर रखनेवाले 'तेजोमण्डल' रूपी हिरण्यकशिपुका जैसा नृसिंहरूपी विष्णु भगवान्ने ध्वंस किया था, उसी प्रकार (वायुपुराणके अनुसार) हिरण्यकशिपुके अवतार रावणका,—जिसने सीताको कैद कर रक्खा था—रामरूपी सूर्य—विष्णुद्वारा ध्वंस हुआ और परिणाममें रामरूपी सूर्यको सीतारूपी द्युतिकी पुनः प्राप्ति हुई।

मतलब यह कि रामायणान्तर्गत राम-कथाका हम ज्योतिर्विद्याकी दृष्टिसे अन्यरूपमें भी अर्थ कर सकते हैं और ऐसा करनेसे अवश्य ही रामायणी कथाका प्रयोजन भी नष्ट नहीं होता!

बरसाये देत

छाये देत छोर छोर सावनी घटा-सी छटा,
दुष्टन जवास झोरि झोरि झरसाये देत।
बिज्जु सी परत धाय पातक-पहारन पै,
चातक विबुध उर भक्ति सरसाये देत।
दास तुलसीके छंद गरजत मेघ जैसे,
भक्त मंजु मानस मयूर हरसाये देत।
राम यश पावन सुहावन है धारा धर,
जगमें पियूष बारि धारा बरसाये देत।

जगन्नाथप्रसाद द्विवेदी

श्रीरामनामकी महत्ता

(लेखक—विविध-विद्या-विशारद पं० आनन्दघनरामजी तासगाँवकर)

अति प्राचीन कालसे श्रीरामनाम-स्मरणकी जो इतनी महिमा चली आयी है, इसका कारण क्या है ? यह रामनामका स्मरण हमारे ऐहिक या पारमार्थिक कल्याणमें क्या और कैसे काम आता है, यह जानना चाहिये। रामनामका यह प्रचार केवल पुरानी लीक पीटते चले आनेका ही एक नमूना है या इसमें कोई गम्भीर विचार भी है, यह जाननेके लिये इस नामकी महिमा जिन्होंने बतायी है उनकी योग्यता क्या और कितनी थी यह देखकर आज जिन आधिभौतिक शास्त्रोंकी इतनी उन्नति हुई है उन आधिभौतिक शास्त्रोंकी कसौटीपर कसकर यह देखना होगा कि इस रामनामकी महिमा कितनी उज्ज्वल है और उससे कितना बड़ा उपकार हो सकता है। ऐसा करनेसे आधुनिक कालके सुशिक्षित मनुष्यको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहेगा और वह इसका उपयोग करके अपना व्यावहारिक और परमार्थिक लाभकर लेगा।

उपनिषदोंमें वर्णित महिमा

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दचिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

'योगीलोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें रममाण होते हैं उसीका रामपदसे बोध होता है। उसीको परब्रह्म कहते हैं।'

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः।
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥

—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

'यह मन्त्र रामका वाचक है और राम वाच्य हैं। इन दोनोंका जो योग है वह सब प्रकारके साधकोंको फल देनेवाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥

स्वयं श्रीरामचन्द्र भगवान् शंकरसे कहते हैं—हे शिव ! मुमूर्षुके दाहिने कानमें जिस किसीको राममन्त्रका उपदेश हो और जो कोई इसप्रकार जप करे वह मुक्त होगा।

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः॥

—रामोत्तरतापिन्युपनिषद्

'गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु इन सब नामोंके जपसे होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा रामनाम-मन्त्रके जपका फल अधिक है।'

इसप्रकार रामनामके जपकी महिमा उपनिषदोंने गायी है। अब मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे राम इन अक्षरोंके उच्चारणमें क्या शक्ति है, यह देखना चाहिये।

वर्णोच्चार-गुण-धर्म-वर्णन

'र' वर्ण दाहक विकृतिकर है।
'अ' स्वर सर्वगत और आकर्षक है।
'म' वर्ण विद्वेषी मोहनकर है।

—अक्षमालिकोपनिषद्

बीजाक्षर गुणवर्णन

'र' अग्निबीज है।
'आ' वायुबीज है।
'म' आकाशबीज है।

पृथ्वीबीज स्तम्भक, आपबीज शान्तिकर, तेजबीज दाहक, वायुबीज चालक और आकाशबीज संक्षेपक है। इन अक्षरोंके मिश्रोच्चारणका परिणाम विकृत पञ्च महाभूतोंकी स्थूल सृष्टिपर तथैव अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके सूक्ष्म स्वरूपपर भी घटित होता है। आकाशसे पृथ्वीतक आनेमें जैसे सूक्ष्मसे स्थूलमें आना होता है वैसे ही स्थूलको पुनः लौटाकर पृथ्वी और आपको अग्नि, वायु और आकाशमेंसे होकर इनके भी परे जो मूलस्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप है उसमें ले आनेकी सामर्थ्य भी इन्हीं अक्षरोंमें अर्थात् रामनाममें है। देखिये, गुसाईं तुलसीदासजी, क्या कहकर रामनामका वन्दन करते हैं—

बंदौं रामनाम रघुबरके। हेतु कृसानु भानु हिमकरके॥

शरीरमें प्राणोंका कार्य चलानेवाली जो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ हैं उनके अधिष्ठाता देवता इस राम-नाममें आ जाते हैं। कृशानु (अग्नि) सुषुम्नाके, भानु (सूर्य) पिंगलाके और हिमकर (चन्द्र) इडाके अधिष्ठाता देवता हैं। इन देवताओंको जगाकर, श्वास-प्रश्वासको सम करके प्राणको सुषुम्ना-नाड़ीमें ले जाकर समाधि-सुखमें उसे पहुँचानेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है; यही नहीं, प्रत्युत अखिल ब्रह्माण्डको चलानेवाली जो ये अग्नि, सूर्य और सोम-शक्तियाँ हैं इनपर भी स्वामित्व स्थापित करनेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है, इसीलिये इस रामनामका वन्दन करते हैं।

रामनामकी इस अद्भुत सामर्थ्यका रहस्य भी तुलसीदास-जीने रहस्यमय भाषाके द्वारा ही कथन किया है। कहते हैं—

एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनानि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नामके, बरन बिराजत दोउ॥

'एक छत्र और एक मुकुट मनि' यानी अर्धमात्रा और उसपर बिन्दी। इनके साथ सब वर्णों सहित अथवा किसी अक्षरयुक्त वर्णसहित जिस 'अ' कारका योग होता है और उस अकारके योगसे इसप्रकार जो ओंकारस्वरूप है वही 'राम' इन दो वर्णोंमें शोभायमान है। रामनामका उच्चार ॐकारका ही उच्चार है। 'रेफस्योर्ध्वा गतिः।' 'मोऽनुस्वारः।' ये वचन और सूत्र प्रसिद्ध हैं। 'र' कार रेफ चिह्न सूचित करता है, वही छत्र है। 'म' कार बिन्दु चिह्न सूचित करता है, वही मुकुटमणि है और दोनोंको जोड़नेवाला 'आ' है जो 'अ' का ही दीर्घस्वरूप है। इसलिये र् आ म-'राम' ॐकारस्वरूप ही है। ॐकारके जपका जो कुछ माहात्म्य वेदों और उपनिषदोंने बताया है वही माहात्म्य रामनामके जपका है। रामनामके जपका स्वयं अनुभव प्राप्त करके तुलसीदासजीने उसकी इतनी महिमा गायी है। परन्तु शब्दादि प्रमाणोंपर जिनका विश्वास नहीं, उन आधुनिक नवशिक्षितोंका इतनेसे समाधान न होगा। उन्हें आधिभौतिक शास्त्रीय पद्धतिसे ही रामनामकी महिमा जँचा देनी होगी।

आधिभौतिक पद्धतिसे विवेचन करनेके लिये, इस विषयको ध्वनि-शास्त्रकी दृष्टिसे देखना होगा। ध्वनि-निर्माण करनेवाली इन्द्रियोंके सम्बन्धसे इन्द्रिय-विज्ञान भी देखना होगा। फिर शरीर और मनका सम्बन्ध होनेसे शरीरविज्ञान और मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे भी इसकी जाँच करनी होगी।

इस शरीरमें भिन्न-भिन्न कार्य करनेवाले पर साथ ही परस्परावलम्बी अनेक भाग हैं—(त्वचा, स्नायु, नसें, हड्डी, ज्ञानतन्तु इत्यादि) इन सबके संयोगसे शरीर बनता और चलता है। एक ही शरीरके अन्दर ये भिन्न भिन्न स्थूल और सूक्ष्म शरीर ही हैं। इनमें ज्ञानतन्तु सबसे सूक्ष्म है। इन सबके अन्दर कोई चालक शक्ति है जिनके बिना ये शरीर अपना काम नहीं कर सकते। शरीरके इन भिन्न-भिन्न भागोंकी स्थूल और सूक्ष्म क्रिया-शक्तिके ज्ञानके लिये इनके कुछ खास नाम रक्खे हैं—जड़-इन्द्रियसमूह शरीरको जड़ अथवा स्थूल देह, शुद्ध मानस-शक्तिको कारण-देह और आत्मशक्ति-को महाकारणदेह कहा है—

इस देहका इस अखिल ब्रह्माण्डके साथ निकट सम्बन्ध है। ब्रह्माण्डके पञ्च महाभूतोंके अंशसे ही यह शरीर बना है। और ब्रह्माण्डकी उष्णता, विद्युत् और प्राण इन शक्तियोंसे ही यह क्रियायुक्त हुआ और कार्य कर रहा है। इतनी बातें सामने रखकर अब हम यह देखें कि मुखसे निकलनेवाले शब्द या ध्वनिका क्या परिणाम होता है।

(१) ध्वनिसे प्रकम्पन होता है। यह प्रकम्पन स्पष्ट या अस्पष्ट, धीमा या तेज, ह्रस्व या दीर्घ जैसा होगा वैसा वह वातावरणमें आन्दोलन उत्पन्न करके फैलने लगेगा।

(२) इस आन्दोलनसे वातावरणमें कम्पके वर्तुलाकार रूप उत्पन्न होते हैं।

(३) फिर इन वर्तुलोंके मिलनसे विशिष्ट आकृतियाँ बनती हैं।

(४) कम्पके उस वायुमण्डलमें जो सूक्ष्म और स्थूल द्रव्य हों उनपर उन आकृतियोंका परिणाम होता है।

(५) इसप्रकार सूक्ष्मरूपसे होनेवाला यह क्षणिक परिणाम योग्य संस्कार होनेसे सतत कार्य करता रहे तो उससे स्थूल कार्य निर्माण होता है।

(६) इस ध्वनिकम्पका परिणाम ईथर नामक (जिसे अवहवायु कहते हैं) अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यपर भी होता है और उससे उसकी समतामें भी प्रकम्पन-कार्य आरम्भ होता है।

(७) ईथरमें होनेवाली यह कम्पन-क्रिया ही प्राण-तेज (Odic light) है।

सीताका पाताल-प्रवेश ।

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् । स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्॥

(८) हृदयमें होनेवाले ये सूक्ष्म कम्प तेज और उष्णता-के रूपमें त्वक् और नेत्रके द्वारा ज्ञात होनेकी कक्षामें आ जाते हैं तभी उन्हें व्यवहारमें तेज और उष्णता कहते हैं।

इसप्रकार हृदयपर होनेवाले ध्वनिके परिणामका विचार हुआ। अब शरीरके किन-किन भागों और ग्रन्थों-पर क्या परिणाम होता है, इसका विचार करें।

मुँहसे मन्त्रोच्चार करनेके पूर्व उस उच्चारका अपने मनमें उत्पन्न होना आवश्यक होता है। मनमें उत्पन्न हुए बिना वह मुँहसे निकल ही नहीं सकता। पर मनके भी पूर्व उसका अपने मस्तिष्कमें किसी सूक्ष्म अनुद्भूत-सी अवस्थामें होना जरूरी है। मस्तिष्कमें होनेसे ही वह मनमें उत्पन्न होकर मुखके द्वारा बाहर निकलता है।

पिण्डब्रह्माण्डका शाश्वत और व्यापक वस्तुस्वरूप तथा विचारस्वरूपका बोध करानेवाले श्रीराम-मन्त्रके कम्प (Vibrations) मस्तिष्कके अन्तर्भागके सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तन्तुओंको कम्पित किये हुए वहाँ अनुद्भूतरूपमें रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो उन कम्पोंका कहींसे उत्थापन नहीं हो सकता। इन अनुद्भूत कम्पोंका उत्थापन होनेपर वे कम्प वहाँसे ज्ञानवान् नाड़ी-जाल (Sympathetic Nerve) में, फिर वहाँसे ज्ञानेन्द्रिय नाड़ी-जाल (Sensory) के वाग्-नाड़ी-जालमें रहनेवाले शब्दोत्पादक (Hypoglossal Nerve) गतिवान् (Motor Nerve) ज्ञान-तन्तुओंको प्रेरित करते और जीभको कम्पित करके मन्त्रका स्पष्ट उच्चार कराते हैं। राममन्त्रके कम्प इसप्रकार बाह्य वातावरणपर पवित्र और समर्थ परिणाम करके फिर लौटकर शरीरके अन्तर्भागोंपर परिणाम करते हुए मूल उत्पत्ति-स्थानमें आ पहुँचते हैं। सृष्टि-शास्त्रका यह अबाधित सिद्धान्त है कि, जो-जो शक्ति जिस-जिस मूल स्थानसे उठकर क्रियामें प्रवृत्त होती है वह शक्ति फिर उसी मूल उत्पत्ति-स्थानमें आकर अपना वर्तुल (Circulation) पूरा करके ही लयको प्राप्त होती है। इस नियमके अनुसार राम-नामके जो कम्प अपने मूल स्थानसे उठकर मुँहतक आकर बाहर निकलते हैं और फिर वर्तुल पूरा करते हुए लौटते हैं, वे शरीरमें अन्दरकी ओर जाते हुए जीभके स्नायुओंमेंसे होकर गतिवान् ज्ञानतन्तुओंमें आते हैं, वहाँसे ज्ञान-तन्तुओंके शब्दज्ञानरज्जु (Auditory Nerve) में कम्प उत्पन्न करते व्युत्क्रम रीतिसे ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जालमें कम्पित करते हुए जब मानस ग्रन्थमें आते हैं तभी वे अपने और दूसरोंके शरीरके शब्दका स्वरूप पकड़ सकते हैं, वहीं उनके अर्थका कार्य निर्माण होता है और श्रीरामस्वरूप तेज अवतरित होकर मस्तिष्क पिण्डान्तर्गत ब्रह्महृदय (Seat of the Soul) में विलीन हो रहता है। इस प्रकार यह पूरी क्रिया प्रत्येक जपमें होती है। और राम-मन्त्रके जपसे, स्थूल और सूक्ष्म क्रियास्वरूप संस्कारसे, मानस-शक्तिमें, विद्युत् और प्राणमें प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं और उनके संघ तथा संघसमुच्चयसे सूक्ष्म और शान्त तेजोमय आकृति निर्माण होती है।

इस तेजोमय देवताकृतिमें उष्णता नहीं, शान्ति होती है (सूर्यकोटिप्रतिकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभं)। इस आकृतिकी निर्माणक्रियामें मन्त्र शब्दोच्चार, मन्त्र अर्थाकार और भावना-स्वरूप जितना ही समर्थ और दृढ़ होगा उससे उतने ही अधिक तेजस्वी और बलवान् मानसिक तेज-कम्पन और चैतन्य विद्युत्-कम्पन होते हैं और उसी परिमाणसे युक्त उस देवताका सूक्ष्म अथवा स्थूल देह निर्माण होता है। मन्त्र-शास्त्रके नियमानुसार इसप्रकार जपके द्वारा उस देवताका वह आकार हमारे मानसिक ग्रन्थमें उच्च भूमिकापर सूक्ष्म रूपसे तैयार होने लगता है और जैसे-जैसे इसका संस्कार सतत जपसे दृढ़ होता है वैसे-वैसे हमारे सम्पूर्ण शरीर और मनमें पवित्र शुद्ध भक्ति फैलकर वह मनुष्यको इसी मनुष्य देहमें देव बना डालती है, उसे ज्ञानयुक्त भक्त और मुक्त बना देती है। श्रीरामनामके जपमें इतनी सामर्थ्य है।

इसप्रकार वेद और उपनिषत्के वचनोंसे, अनुभवी सन्तोंकी वाणीसे, मन्त्रशास्त्रसे, शरीरशास्त्र और मनो-विज्ञानसे तथा ध्वनिशास्त्रसे श्रीरामनामके जपकी अपार महिमा सिद्ध होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'

इसप्रकार जप-यज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है ही, पर इसमें रामनामके जपकी महिमा सबसे अधिक है, यह ऊपरके विवेचनसे पाठकोंके ध्यानमें आ गया होगा। इस दृष्टिसे रामरक्षास्तोत्रमें जो यह कहा है, वह यथार्थ ही है कि—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

यहाँतक जप और राममन्त्र जपकी महिमाका दिग्दर्शन करनेके पश्चात् अब मन्त्र-जपकी क्रमपद्धतिका विवरण भी यहाँ दे देना आवश्यक मालूम होता है।

वाचिक जप—इस जपके दो अंग हैं—प्रथम वाचिक और अनन्तर उपांशु। जोरसे स्पष्ट उच्चार करते हुए तालबद्ध स्वरके

साथ जिसके आवर्तन होते हैं उसे वाचिक जप कहते हैं; और जिसमें होंठ और जीभ हिलते हैं पर स्वर इतना धीमा होता है कि अपने ही कानमें वह सुनायी दे, शब्द बाहर न जाय उसे उपांशु जप कहते हैं। इन वाचिक और उपांशु जपोंसे वाणी और श्रवणका कार्य करनेवाले स्नायुओं और ज्ञानतन्तुओंमें गति निर्माण होती है और उससे अन्तर्बाह्य जगतपर वैखरी वाणीसे गतिशील प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं। इनसे अन्तर्बाह्य सृष्टिमें इष्ट परिवर्तन होता है।

मानसिक जप—इस जपमें होठ या जीभके हिलनेका काम नहीं है। मनसे मनोमय शब्दका मन-ही-मन स्पष्ट उच्चार करना होता है। यह उच्चार शब्दोच्चारप्रेरक ज्ञान-तन्तुओंमें होता है और उससे कानोंके शब्दज्ञान तन्तु कम्पित होकर मनसे होनेवाला स्पष्ट उच्चार मनको ही सुनायी देता है। इसप्रकार जो जप होता है उसे मानसिक जप कहते हैं। यह मानसिक जप मध्यमा वाणीसे ज्ञानतन्तुओंमें सूक्ष्म गति उत्पन्न करके हृदय आदि सूक्ष्म द्रव्योंमें कम्प निर्माण कर पिण्ड-ब्रह्माण्डके सूक्ष्म शरीरपर परिणाम करते हैं।

ध्यान जप—यह जप पश्यन्ती वाणीसे मानस तेजाकार देवता मानस प्रत्यक्ष करके स्वतन्त्र ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जाल (Sympathetic Nerve System) और नाड़ीचक्र (Nervous flexuous) को सूक्ष्म गति देकर हृदयसे भी सूक्ष्म प्राणद्रव्यमें प्रकम्पन उत्पन्न करता है और उसका पिण्ड-ब्रह्माण्डके कारण शरीरपर परिणाम होता है।

अनन्य जप—यह जप परावाणीसे कुण्डलिनी नाड़ीमें तेज उत्पन्न करके जीवात्मतेजमें सूक्ष्मतर गतियुक्त प्रकम्पन उत्पन्न करता है और पिण्डब्रह्माण्डके महाकारण देहपर परिणाम करके जीवात्मरूपी लघु केन्द्रको परमात्मरूपी बृहत्केन्द्र बनाया करता है।

यह मन्त्र-जपकी क्रमपद्धति है। प्रथम उच्चस्वरसे रामनामका जो जप करता है, उसे उसके अनजानते ही, जैसे-जैसे अभ्यास बढ़े, वैसे-वैसे, उसकी प्रकृति आप ही इसका ज्ञान करा देती है, और वह वाचिक जपसे मानसिक जपमें, मानसिकसे ध्यानमें और ध्यानसे अनन्य जपमें पहुँच कर ईश्वररूप हो जाता है। जिसको इस रामनामका एक बार रसास्वाद मिला और वह इस रामनाम-चक्रमें अटका कि फिर वह और कोई प्रयत्न किये बिना, उसकी गतिके वेगके साथ आप ही आगे बढ़ता जाता है और स्वभावतः ही मनुष्यत्वके परे पहुँचकर श्रीराम-प्रभुत्वको प्राप्त होता है।

—————

श्रीमानसकी चौपाइयोंके विनोदी अर्थ

(लेखक—कविसम्राट् पद्यार्थवाचस्पति पं० बाबूरामजी शुक्ल*)

सबकर मत खग नायक एहा।
करिय राम पद पङ्कज नेहा॥ उ० का०

(१) सबकर मत (सबहीके मत=सम्प्रदाय) ख शून्य अर्थात् कुछ नहीं, सार हीन हैं। गनायक एहा (यह एक अर्थात् अङ्क गिना गया है कि करिय राम पद पङ्कज नेहा (हरिभक्ति कर्त्तव्य है) भाव, बिना अङ्कके शून्य व्यर्थ होते हैं, जब अङ्क साथमें हो, तब शून्य सार्थक होता है, इसी भाँतिसे हरिभक्तिसे योग विराग आदि सफल होते हैं, ० या ०० वा ००० = कुछ नहीं पर १० = दश और ॰०१ = $\frac{1}{100}$। रामनामको अङ्क है, सब साधन हैं सून। अङ्क गये कछु हाथ नहिं, अङ्क रहे दश गून॥ तुलसी सतसई

(२) सबकर (सबही कुछ करनेवाला) हे खगनायक! मत एहा (हे गरुड़ यह मत है) कि—करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिभक्ति करे)

(३) हे खगनायक! सब कर (सबही धर्म अर्थ काम मोक्षका फल) मत एहा (यह सम्प्रदाय है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिप्रेम करे)

(४) हे खगनायक! सबक (सकल सृष्टिके शिरपर) एहा रमत (यही रमता है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिपद प्रेम करे) क = सिर जैसे दशकन्धर—दश शिर धारण करनेवाला।

शङ्का—किस रूपको भजे? उत्तर

(५) स (सत्त्वगुणमें) ब (वासुदेव हैं) र (रजोगुणसे) क (ब्रह्मा हैं) न (तमोगुणसे) म (शिव हैं) पर—करिय राम-पद पङ्कज नेहा ऐसा ही श्रीमद्भागवतमें कहा है—सत्त्वं रजस्तमः इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते। स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः। क=ब्रह्मा म—शिव। संस्कृत कोष देखो।

*आप लोक और चौपाइयोंके पदोंका अर्थ करनेमें बड़े ही सिद्धहस्त हैं और आपकी विलक्षणतापर मुग्ध होना पड़ता है। रामायणकी चौपाइयोंके सम्बन्धमें आपने एक बड़ा लेख भेजा है। नमूनेके तौरपर उसीका एक छोटा-सा अंश पाठकोंके विनोदार्थ दिया जाता है। पूरा लेख न छाप सकनेके लिये सम्मान्य शुक्लजी महाराज कृपापूर्वक क्षमा करें। —सम्पादक

तुलसी-रामायण

(लेखक—श्रीविनोबाजी भावे)

रतीय साहित्यके इतिहासमें तुलसीदासजीके रामायणका एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और उस भाषाका यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टिसे तो इस ग्रन्थका स्थान अद्वितीय है ही पर भारतके सात आठ करोड़ लोग इसे वेद-तुल्य प्रामाणिक मानते हैं, यह नित्य परिचित तथा धर्म-जागृतिका एकमात्र आधार है; अतः धर्मदृष्टिसे भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। रामभक्तिका प्रचार करनेमें, 'शिष्यादिच्छेत पराजयम्' इस न्यायसे वाल्मीकीय रामायणके पराजयका आनन्द देनेवाला यह ग्रन्थ है अतः भक्तिमार्गके दृष्टिसे भी यह अद्वितीय ही है। तीनों दृष्टियोंका ऐक्य करके यदि इसपर विचार किया जाय तो यह अनन्वयालंकारका उदाहरण प्रतीत होता है। राम-रावणके युद्धकी उपमा जैसे राम-रावण युद्ध ही था वैसे ही तुलसीरामायणकी तुलना भी तुलसीरामायण है।

प्रथम तो रामायण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र है और फिर तुलसीदासजीने भी उसे विशेष मर्यादापूर्वक लिखा है, इस कारण यह ग्रन्थ छोटे बालकोंके भी हाथमें देने योग्य पवित्र और निर्दोष बन गया है। इसमें काव्यके सब रसोंका वर्णन नैतिक मर्यादाकी रक्षा करते हुए किया गया है। स्वयं भक्तिको भी नियमोंसे नियन्त्रित किया गया है। अतः सूरदास-जैसी मस्त भक्ति इसमें देखनेको नहीं मिलती। तुलसीदासकी भक्ति नियमित थी। नियमित और मस्त भक्तिमें यही मौलिक भेद है जो श्रीराम-भक्ति और श्रीकृष्ण-भक्तिमें है। पर यहाँ भी तुलसीदासजीकी कुछ विशेषता है ही।

तुलसी-रामायणका वाल्मीकीय रामायणकी अपेक्षा अध्यात्मरामायणसे अधिक सम्बन्ध है। बहुतेरे वर्णनोंमें—विशेषतः भक्तिके उद्गारोंमें तो भागवतकी छाया दीख पड़ती है, गीताकी छाया तो है ही। महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मावलम्बी सन्तोंके ग्रन्थोंसे जो परिचित हैं उन्हें तुलसी-रामायणमें कहीं भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती! वही नीति, वही निर्मल भक्ति, वही संयम है। सुदामाजीको अपने ग्राममें लौट आनेपर भी जैसे भ्रम हुआ था कि हम फिर द्वारकामें ही पहुँच गये हैं, उसी प्रकार तुलसी-रामायण पढ़ते समय महाराष्ट्रीय सन्त-मण्डलीके वचनोंसे परिचित मनुष्यको ऐसी शंका होती है, कहीं हम चिरपरिचित वचन तो नहीं पढ़ रहे हैं। महाराष्ट्रीय सन्तोंमें भी श्रीएकनाथका तुलसीदाससे विशेष साम्य पाया जाता है। श्रीएकनाथके भागवत और तुलसी-रामायणमें तो अत्यन्त साम्य दिखलायी पड़ता है। श्रीएकनाथने भी रामायण लिखी है पर उनके आत्माका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, उनके भागवतमें! श्रीरानाडेको इसी भागवतने पागल बना दिया था। नाथ कृष्णभक्त थे तो तुलसीदासजी रामभक्त थे। नाथने कृष्ण-भक्तिकी मस्तीको उतारा, यह उनकी विशेषता थी। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सबके सब कृष्णभक्त तथा मर्यादाशील थे।

तुलसीदासजीकी मुख्य करामात उनके अयोध्याकाण्डमें दिखलायी देती है। उस काण्डकी रचनामें उन्होंने विशेष परिश्रम किया, ऐसा दिखलायी देता है। अयोध्याकाण्डमें भरतकी भूमिका अद्भुत है। भरतजी तुलसीदासजीकी ध्यान-मूर्ति थे। इस ध्यानमूर्तिके चुननेमें औचित्य प्रतीत होता है। लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, पर एकको संयोगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तो दूसरेको वियोगका। वियोग भी 'सौभाग्य'स्वरूप हो गया क्योंकि उसमें भी भरतजीने संयोगका अनुभव किया। हमारे भाग्यमें परमेश्वरके वियोगमें रहकर काम करना बदा है, लक्ष्मणजीकी तरह संयोगमें रहकर कार्य करनेका हमारा अहोभाग्य नहीं है, अतः वियोगमें रहकर भी हमें सौभाग्य किस तरह प्राप्त हो सकता है, यह जाननेके लिये भरतजीका आदर्श हमारे लिये बहुत उपयोगी है।

शारीरिक संयोगकी अपेक्षा मानसिक संयोगका विशेष महत्त्व है। शरीरसे सन्निकट रहकर भी मनुष्य मनसे दूर रह सकता है। दिन-रात नदीकी ओढ़नी ओढ़कर सोया हुआ पत्थर आर्द्रतासे बिल्कुल अलिप्त रह सकता है। इसके विरुद्ध शारीरिक वियोगमें भी मानसिक संयोग रह सकता

है। इसमें संयम कसौटी है। भक्तिकी तीव्रता वियोगसे बढ़ती है। यदि आनन्द ही देखा जाय तो प्रत्यक्ष स्वराज्य-प्राप्तिके आनन्दकी अपेक्षा स्वराज्य-प्राप्तिके प्रयत्नोंमें जो आनन्द मिलता है, वह कुछ और ही है, केवल उसके अनुभव करने योग्य रसिकता होनी चाहिये। भक्तोंमें यह रसिकता होती है अतः वे मुक्तिकी इच्छा न करके भक्तिमें ही सुखी रहते हैं। भक्तिका अर्थ है बाह्य वियोगमें आन्तरिक ऐक्य। यह कोई मामूली भाग्य नहीं, यह तो परम भाग्य है। मुक्तिसे भी बढ़कर अहोभाग्य है। भरतजीका यही सौभाग्य था। लक्ष्मणजीका भी अहोभाग्य था। पर प्रथम तो वह हमें नसीब नहीं और दूसरे वह वास्तविक है भी नहीं। इसका कारण 'अंगूर खट्टे हैं' यह नहीं बल्कि 'उपवास मीठा है' यही है। भरतजीके भाग्यमें उपवासकी मधुरता है।

'संन्यासीको भी मोक्षका लोभ होता ही है।' गीता-रहस्यमें लोकमान्यने ऐसा आक्षेप किया है, पर हमारे साधु-सन्तोंने इस आक्षेपसे बचनेका भी तरीका ढूँढ निकाला है। उन्होंने लोभको ही संन्यास दे डाला। स्वयं तुलसीदासजी भी भक्तिकी नोन-रोटीपर राजी हैं। मुक्तिकी मिठाईका उन्होंने तिरस्कार किया। तुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—'मुकति निरादरि भगति लोभाने।' ज्ञानदेव महाराजने भी 'भोग-मोक्ष निबलोण पायातळी।' 'मोक्षाची सोडी बाँधी करी' 'चहुं पुरुषार्थां शिरीं। भक्ति जैसी।' आदि वचनोंमें मुक्तिको भक्तिकी चेरी बनाया है और साधुवर तुकाराम महाराजने तो 'नको ब्रह्मज्ञान आत्मस्थितिभाव' कह करके मुक्तिको इस्तीफा ही दे डाला है। श्रीएकनाथने भक्तिको मुक्तिसे कई स्थानोंमें श्रेष्ठ बतलाया है। गुजरातके नरसी मेहता तो 'हरिना जन तो मुक्ति न मागे' की ही रटन्त लगाया करते थे। सारांश, कि सब भागवत-धर्मीय वैष्णव-भक्तगण मुक्तिके लोभसे पूर्णतया मुक्त रहे हैं। इस वैष्णव-परम्पराका उद्गम भक्तशिरोमणि प्रह्लादसे है। 'नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः' अर्थात् 'इन गरीबोंको छोड़कर मैं अकेला ही मुक्त होना नहीं चाहता' यह सूक्ष्म जवाब प्रह्लादने नृसिंहजीको दिया था। कलियुगमें श्रौत, स्मार्त, संन्यास-मार्गकी स्थापना करनेवाले श्रीशंकराचार्यने भी—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।'

—इस गीताके श्लोकपर भाष्य करते हुए 'संगं त्यक्त्वा' अर्थात् 'मोक्षेऽपि फले संगं त्यक्त्वा'—'मोक्षकी भी आसक्ति छोड़ करके'—अपनी तरफसे ऐसे शब्द जोड़कर प्रतिपादन किया है। तुलसीदासजीके भरत इस भक्ति-भाग्यकी साक्षात् मूर्ति हैं। भरतजीकी माँग देखिये—

> अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
> जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन ॥

इसप्रकार लोकमान्यके आक्षेपका सन्तोंने पूर्णतया उत्तर दिया है।

भरतजीमें वियोग-भक्तिका उत्कर्ष दिखलायी देता है, इसी कारण वे तुलसीदासजीके आदर्श बने। भरतजीने सेवाधर्मका उत्तम रीतिसे पालन किया, नैतिक मर्यादाका भी पूर्ण परिपालन किया, ईश्वरका विस्मरण कभी न होने दिया, ईश्वरी आज्ञा मानकर ही प्रजापालन किया और इस सबका श्रेय ईश्वरको अर्पण करके स्वयं सदा अलग रहे। जनपदमें रहकर अरण्य-वासका अनुभव किया। वैराग्ययुक्त चित्तसे यम-नियमादि विषम व्रतोंका पालन करके आत्माको ईश्वरसे दूर रखनेवाले देहके परदेको पतला कर डाला। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि भरतजी-जैसे भक्त पैदा न होते तो मेरे-जैसे पतितको रामके सम्मुख कौन करता ?—

> सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम न भरतको।
> मुनि-मन-अगम-जम-नियम-सम-दम विषम व्रत आचरन को ॥
> दुख-दाह-दारिद-दंभ-दूषन सुजस-मिस अपहरत को।
> कलिकाल तुलसी-से सठहिं हठि राम-सनमुख करत को ॥

रामायणमें राम-सखा भरत, भारतमें शकुन्तलाके पुत्र पराक्रमी भरत और भागवतमें जीवन्मुक्त जड भरत, ऐसे तीन भरत प्राचीन इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। हिन्दुस्थानको 'भारतवर्ष' संज्ञा शकुन्तलाके वीर भरतसे मिली होगी, ऐसा ऐतिहासिकोंका अनुमान है, श्रीएकनाथजीने जडभरतसे यह संज्ञा प्राप्त होना बतलाया है और तुलसीदासजी कदाचित् इसको रामभक्त भरतसे प्राप्त बतलाते होंगे। कुछ भी हो पर आजके वियोगी भारतके लिये भरतजीकी वियोग-भक्तिका आदर्श सब प्रकार अनुकरणीय है ! तुलसीदासजीने इस आदर्शको पवित्र अनुभवसे प्रदीप्त करके हमारे सम्मुख रखा है। उसके अनुसार आचरण करना हमारा कर्तव्य है।

मानस सरोवर ।
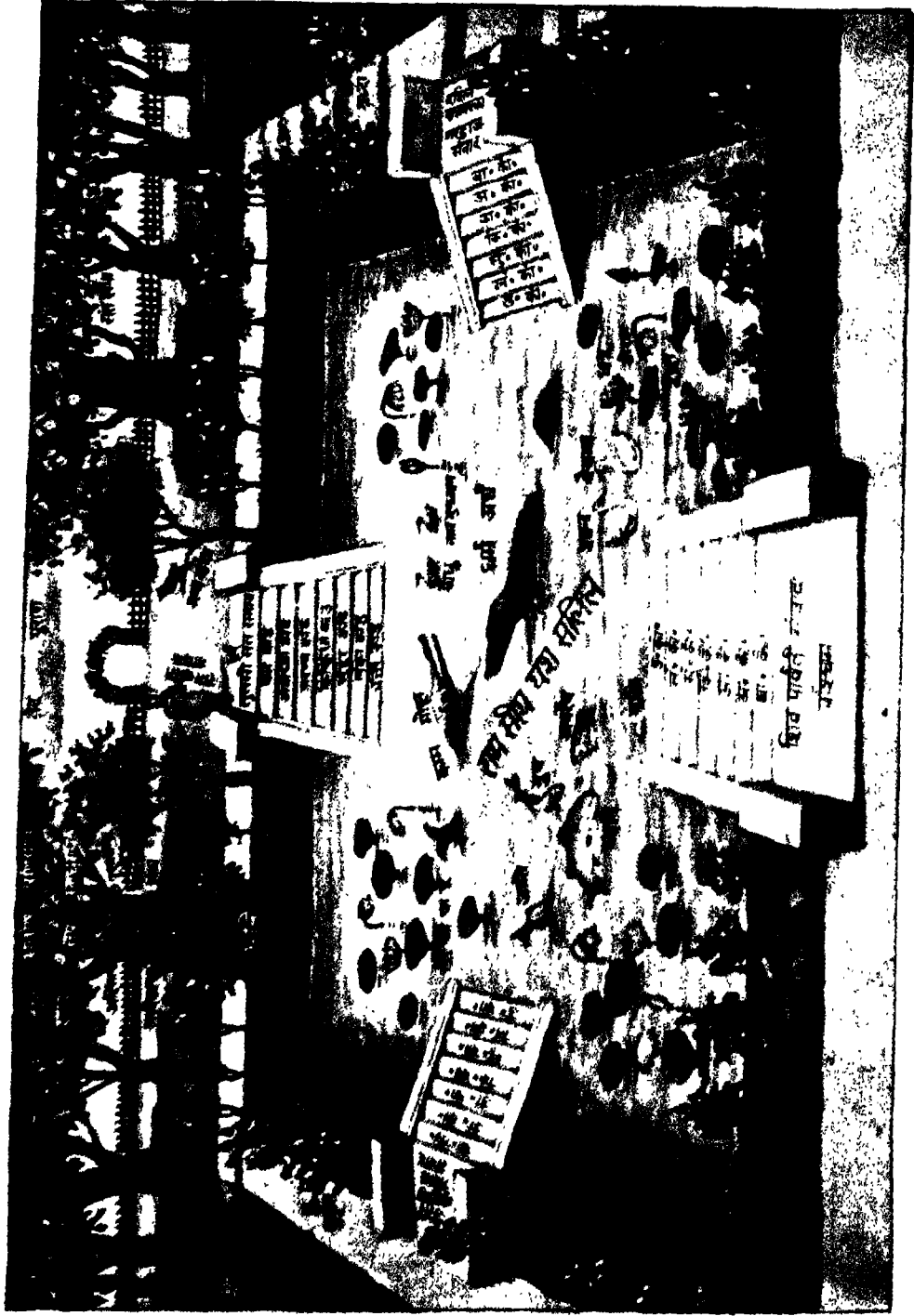
प्रार्थना !

सच्चिदानन्द सनातन रूप ।
अगुण अज अव्यय अलख अनूप ॥
अगोचर आदि अनादि अपार ।
विश्वव्यापक विभु विश्वाधार ॥

न पाता जिनकी कोई थाह ।
बुद्धि-बल हो जाते गुमराह ॥
सन्त श्रद्धालु, तर्क कर त्याग ।
सदा भजते मनके अनुराग ॥

समझकर विषवत् सारे भोग—
त्याग, हो जाते स्वस्थ निरोग ।
एक बस, करते प्रियकी चाह ।
विचरते जगमें बे-परवाह !

धरा धन धाम नाम आराम ।
सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥
देखते सबमें, ऐसे भक्त ।
सतत रहते चिन्तन-आसक्त ॥

प्रेम-सागरकी तीक्ष्ण तरंग ।
बाँध मर्यादाका कर भंग ॥
बहा ले जाती, जब श्रुति-धार ।
सन्त तब करते प्रेम-पुकार ॥

प्रेम-वश विह्वल हो श्रीराम ।
भक्त-मन-रंजन अति अभिराम ॥
दिव्य मानव-शरीर-वर धार—
अनोखा, हरि लेते अवतार ॥

मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण ।
सुरासुर सकल विश्व मुग्ध-करण ॥
मधुर मञ्जुल मूरति द्युतिमान् ।
विविध क्रीड़ा करते भगवान् ॥

दयावश करते जग-उद्धार ।
प्रेमसे, तथा किसीको मार ॥
विविध लीला विशाल शुचि चित्र ।
अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥

जिन्हें गा-सुनकर सब संसार ।
सहज होता भव-वारिधि पार ॥
तोड़ माया-बन्धन जग-जाल ।
देखता 'सीय-राम' हर-हाल ॥

वही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप ।
दिखाते रहो राम रघु-भूप ॥
'सकल जग सीय-राममय' जान ।
करूँ सबको प्रणाम तज मान ॥

अकिञ्चन

रामायण हमें क्या सिखाती है

१–शुद्ध सच्चिदानन्दघन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अखिल विश्व एवं विश्वकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और लीला हैं।

२–परमात्मा समय-समयपर अवतार धारणकर प्रेम-द्वारा साधुओंका और दण्डद्वारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोककल्याणार्थ आदर्श लीला करते हैं।

३–भगवान्‌की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है। उदाहरण—विभीषण।

४–सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य सभीका सुखपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

५–मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह भगवत्-शरणागतिपूर्वक संसारके समस्त कर्म ईश्वरार्थ त्यागवृत्तिसे फलासक्ति-शून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है।

६ वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना परम कर्त्तव्य है।

७ माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है। उदाहरण—श्रीराम, श्रीश्रवणकुमार।

८–स्त्रियोंके लिये पातिव्रत परम धर्म है। उदाहरण श्रीसीताजी।

९–पुरुषके लिये एकपत्नी-व्रतका पालन अति आवश्यक है। उदाहरण श्रीराम

१०-भाइयोंके लिये सर्वस्व त्यागकर उन्हें सुख पहुँचाने-की चेष्टा करना परम कर्त्तव्य है। उदाहरण श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न।

११–धर्मात्मा राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी सेवा करना प्रजाका प्रधान कर्त्तव्य है। उदाहरण-(१) वनगमनके समय अयोध्याकी प्रजा। (२) लङ्काके युद्धमें वानरी प्रजाका आत्मबलिदान।

१२-अन्यायी अधर्मी राजाके अन्यायका कभी समर्थन न करना चाहिये। सगे भाई होनेपर भी उसके विरुद्ध खड़े होना उचित है। उदाहरण—विभीषण।

१३–प्रजारञ्जनके लिये प्राण-प्रिय वस्तुका भी विसर्जन-कर देना राजाका प्रधान धर्म है। उदाहरण–श्रीरामजीद्वारा सीता-त्याग।

१४-प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वस्व दान दे डालना। उदाहरण-दशरथ और श्रीराम।

१५-धर्मपर अत्याचार और स्त्रीजातिपर ज़ुल्म करनेसे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली सम्राटका विनाश हो जाता है। उदाहरण—रावण।

१६-मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना तथा उसके सभी कार्य करना। उदाहरण—श्रीराम सुग्रीव और श्रीराम–विभीषण।

१७-निष्काम सेवा-भावसे सदा सर्वदा भगवान्‌के दासत्वमें लगे रहना। उदाहरण—श्रीहनूमानजी।

१८-सौतके पुत्रोंपर भी प्रेम करना। उदाहरण कौसल्या, सुमित्रा।

१९ प्रतिज्ञा-पालनके लिये सगे भाईतकका उसके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखते हुए भी त्याग कर देना। उदाहरण श्रीरामके द्वारा लक्ष्मण-त्याग।

२० ब्राह्मण-साधुओंका सदा दान-मानसे सत्कार करना। उदाहरण श्रीराम।

२१-अवकाशके समय भगवच्चर्चा या सच्चिन्तन करना। उदाहरण श्रीराम आदि भाइयोंकी बातचीत।

२२-गुरु, माता, पिता, बड़े भाई आदिके चरणोंमें नित्य प्रणाम करना।

२३ पितरोंका श्रद्धापूर्वक तर्पण-श्राद्ध करना।

२४ अन्यायका सर्वदा और सर्वथा प्रतिवाद करना। उदाहरण—लक्ष्मण।

२५ धर्मपालनके लिये बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करना। उदाहरण—श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, भरत।

२६-द्विजमात्रको नित्य ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये।

२७ सदा निर्भय रहना चाहिये। उदाहरण श्रीराम-लक्ष्मण।

२८-बहुविवाह कभी नहीं करना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

२९-साधु-सन्त-महात्माओंके धर्मकार्यकी रक्षाके लिये सदा तैयार रहना। उदाहरण-श्रीराम-लक्ष्मण

३०-अपना बुरा करनेवालेके प्रति भी अच्छा ही बर्ताव करना। उदाहरण-श्रीरामका बर्ताव कैकेयीके प्रति, श्रीवशिष्ठका बर्ताव विश्वामित्रके प्रति।

३१ स्त्रीके लिये परपुरुषका किसी भी अवस्थामें जानबूझकर स्पर्श नहीं करना। उदाहरण—लङ्कामें सीताने हनूमान्‌की पीठपर चढ़कर जाना भी अस्वीकार कर दिया।

३२ पुरुषोंको परस्त्रीके अङ्ग नहीं देखना चाहिये। उदाहरण-लक्ष्मणजीने बरसों साथ रहनेपर भी सीताके अंग नहीं देखे, इससे वे उनके गहने तक नहीं पहचान सके।

३३-साधारण-से-साधारण जीवके साथ भी प्रेम करना चाहिये। उदाहरण-श्रीराम।

३४-भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर प्रेमसे उनकी चरण-रज मस्तकपर धारण करनेसे जड़ भी चैतन्य हो सकता है। उदाहरण-अहल्या।

३५-बड़ोंके बीचमें अनधिकार नहीं बोलना। उदाहरण-शत्रुघ्न।

३६-नास्तिकवाद किसीका भी नहीं मानना। उदाहरण-श्रीरामने जाबालि-सरीखे ऋषि और पिताके मन्त्रीकी बात नहीं मानी।

चित्र-परिचय

उद्धारकर्त्ता भगवान् (रंगीन) अन्दरका मुख-पृष्ठ यह चित्र गीता अ० १२ श्लो० ६-७ के आधारपर बनाया गया है। विशाल भवसमुद्रमें धनकी गठरी बाँधे और भोग-विलासमें रत स्त्री-पुरुष गोते खा रहे हैं। भगवान्‌का अनन्यभक्त भगवान्‌की ओर मन और नेत्रोंको लगाये भवसमुद्रमें डूबते हुए लोगोंको उबारनेके लिये निष्काम प्रयत्न कर रहा है, भगवान् स्वयं सुन्दर सुदृढ़ नौकापर स्थित हैं और भक्तकी बाँह पकड़कर उसे पार ले जानेके लिये नौकापर चढ़ाना चाहते हैं।

श्रीरामपञ्चायतन (रंगीन) पृष्ठ १ भगवान् श्रीराम सीताजी-सहित सिंहासनपर विराजमान हैं, भरतजी और लक्ष्मणजी चँवर डुला रहे हैं, शत्रुघ्नजी भेंट लिये खड़े हैं, श्रीहनूमान्‌जी चरण दबा रहे हैं।

श्रीरामगीता—पृष्ठ ४ श्री 'राम' शब्दमें सारी रामगीता लिखी है।

सोहे रामसियाकी जोरी—पृष्ठ २० -युगल जोड़ीका ध्यान करनेवालोंके लिये बहुत ही सुन्दर चित्र है।

श्रीपरशुराम-राम (रंगीन) पृष्ठ ३६ -विवाहके बाद अयोध्या लौटनेके समय परशुरामजी रास्तेमें मिलते हैं, उन्हें देखते ही दशरथजी अत्यन्त डर जाते हैं, मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र शान्त खड़े हैं, श्रीलक्ष्मणजी तेजसे भर रहे हैं, श्रीराम हाथमें धनुष लेते ही चढ़ा देते हैं, परशुरामजी अत्यन्त विस्मित हो जाते हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ३६ देखिये।

सीता-वनवास पृष्ठ ४५-गंगाके उस पार लक्ष्मण-जीने रोते हुए, सीताको रामका सन्देश सुनाया, सुनते ही सीताजी सहम गयीं, लक्ष्मण रोने लगे, बड़ा ही करुणा-जनक दृश्य है! चित्र बहुत सुन्दर भावपूर्ण है। रामायणांक पृष्ठ ५२ और वा० रा० ७।४८ देखिये।

श्रीराम-सीताकी गुप्तमन्त्रणा-पृष्ठ ५५ (रंगीन)—सीताजी एकान्तमें श्रीरामको देवताओंका सन्देश सुनाती हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ५५ देखिये।

श्रीरामके चरणोंमें भरत (रंगीन) पृष्ठ ६६- श्रीराम-सीता चित्रकूटमें पर्णकुटीके बाहर वेदिकापर बैठे हैं, लक्ष्मणजी पास खड़े हैं, कुटियामें दोनों भाइयोंके धनुष-बाण, तलवार-ढाल आदि टँगे हुए हैं। इतनेमें भरतजी आकर दूरसे ही 'हा आर्य!' कहकर गिर पड़ते हैं, वहाँ श्रीराम और लक्ष्मणके भाव देखने ही योग्य हैं। शत्रुघ्नजी पीछे खड़े चरणोंमें गिरना ही चाहते हैं। निषादराज इस झाँकीको देखकर आनन्दमें भर रहा है। रामायणांक पृष्ठ ६६ वा० रा० २।९९ देखिये।

कैकेयीकी क्षमा-याचना, (रंगीन) पृष्ठ ८५-चित्रकूटके एकान्त स्थलमें कैकेयीजी श्रीरामसे क्षमा माँग

रही हैं, श्रीराम उन्हें सान्त्वना दे रहे हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ८४ तथा अध्यात्म रा० २ देखिये।

श्रीराम-प्रतिज्ञा-(रंगीन) पृष्ठ ११३—ऋषियोंकी हड्डियोंका ढेर देखकर श्रीराम राक्षसोंको मारनेकी प्रतिज्ञा भुजा उठाकर कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी मुग्धभावसे यह दृश्य देख रहे हैं, सीताजी सोच रही हैं, मुनि प्रसन्न हो रहे हैं।

भक्त-प्रवर रामाजी-पृष्ठ १२४-आपका संक्षिप्त परिचय कल्याणमें निकल चुका है। रामायणाङ्क पृष्ठ १२४ देखिये।

श्रीसीताराम-(रंगीन) पृष्ठ १५२-वनवासका निश्चयकर श्रीराम सीताजीके महलमें जाकर उन्हें यह संवाद सुनाते हैं, सीताजी साथ चलनेको बड़े ही प्रेम और आर्तभावसे प्रार्थना कर रही हैं। वा० रा० २। ३० देखिये।

श्रीशिव-परिछन-(रंगीन) पृष्ठ १७६-शिवजी बारात लेकर पहुँचे हैं, गिरिजाकी माता दमादका परछन करने स्वर्ण-थाल लेकर स्त्रियोंके साथ दरवाजेपर आयी है, परम तरंगी भूतोंको देखकर स्त्रियाँ डर गयी हैं, मैनाजीके चेहरेपर दुःख, परिताप, भय, निराशाके भाव खूब चित्रित किये गये हैं, शिवजी गम्भीर हँसमुख खड़े हैं, बराती देवता और भूत-प्रेत ठहाका मारकर हँस रहे हैं। गोसाईंजीके रामायणका बालकाण्ड देखिये।

श्रीराम-शबरी-(रंगीन) पृष्ठ १६८ परम प्रेमिका तपस्विनी शबरीजी श्रीरामको चुने हुए फल बड़े ही प्रेमसे खिला रही हैं, चित्र दर्शनीय है।

श्रीसीता-अनुसूया-(रंगीन) पृष्ठ २११-अत्रिमुनिके आश्रमका अन्तःपुर है, श्रीसीताजी मुनिपत्नी अनुसूयाजीके चरणोंमें गिर रही हैं, अनुसूयाजी आशीर्वाद देकर पतिभक्तिका उपदेश करती हैं। गुसाईंजीकी रामायण अरण्यकाण्ड देखिये।

श्रीविश्वामित्रकी रामभिक्षा-पृष्ठ २२४-दशरथजीके दरबारमें श्रीविश्वामित्रजी राम-लक्ष्मणको माँग रहे हैं, दशरथ चिन्तामग्न हैं, श्रीराम-लक्ष्मण मुसकरा रहे हैं।

श्रीरामजन्म-पृष्ठ २३६-यह प्राचीन चित्र श्रीकौशलकिशोरजीसे प्राप्त हुआ है।

श्रीराम-पादुका-पूजन (रंगीन) पृष्ठ २४८—श्रीरामकी चरणपादुका स्वर्णसिंहासनपर सुसज्जित है। ऊपर छत्र है, भरतजी ध्यानस्थ हुए स्वयं पंखा झेल रहे हैं, नीचे धूप जल रही है। मानस उत्तरकाण्ड देखिये!

श्रीरामायण-गान-शिक्षा—पृष्ठ २६६—महर्षि वाल्मीकिजी सीतापुत्र बालक लव-कुशको सुर-तालके साथ रामायणका वही गान सिखा रहे हैं जिसको गाकर दोनों बालकोंने रामकी सारी सभाको मुग्ध कर दिया था।

सदाप्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्र-(रंगीन) पृष्ठ २८० यह ध्यानके योग्य बड़ा ही मनोहर चित्र है।

श्रीराम और काकभुशुण्डि-(रंगीन) पृष्ठ ३०४-भगवान्‌की बाललीलाका आनन्द लूटनेके लिये श्रीभुशुण्डिजी छोटेसे कौए बने हैं। श्रीराम मालपूआ दिखा रहे हैं, कौआ उड़ना चाहता है और पीछेकी ओर ताक रहा है। बड़ा सुन्दर चित्र है। तुलसीरामायण उत्तरकाण्ड गरुड़-भुशुण्डि संवाद देखिये।

सुबेल-पहाड़पर श्रीरामकी झाँकी (रंगीन) पृष्ठ ३४१-परिचय उसी पृष्ठमें छपी रामायणकी चौपाइयोंमें देखिये।

श्रीगोसाईं तुलसीदासजी पृष्ठ ३४०।

श्रीरामायण-द्रुम पृष्ठ ३८८ परिचय चित्रसे ही जाना जा सकता है, इसके प्रेषक पं० श्रीभगवद्दासजी मिश्रको अनेक धन्यवाद।

अजेय-रथ-पृष्ठ ४०० -जब रावण युद्धके लिये आया तब श्रीरामको रथ-विहीन देखकर विभीषणने कहा—'हे नाथ! आप बिना रथ रावणको कैसे जीत सकेंगे?' श्रीरामने उत्तर दिया—'सखे! जिस रथसे विजय प्राप्त होती है वह रथ ही दूसरा है।' इसके बाद श्रीरामने जिस रथका वर्णन किया, उसीके आधारपर यह चित्र बनाया गया है। मानसका लङ्काकाण्ड देखिये।

श्रीसीताजीके गहने (रंगीन) पृष्ठ ४१० सुग्रीवके दिये हुए गहने पहचाननेके लिये श्रीरामजी भाई लक्ष्मणको दिखा रहे हैं, शोकसे भरे लक्ष्मणजी कहते हैं—मैं इनको नहीं पहचानता। रामायणाङ्क पृष्ठ ४१६, वा० रा० ४। ६ देखिये।

श्रीराम और केवट-पृष्ठ ४२६-गंगाके तीरपर भाग्यवान केवट श्रीरामके चरण बड़े चावसे धो रहा है, केवटका चेहरा आनन्दपूर्ण है, श्रीराम कृपादृष्टिसे उसकी

मोर देख रहे हैं। देवतागण पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। रामायणांक पृष्ठ ४२३ देखिये।

श्रीराम-विलाप-पृष्ठ ४४०-लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर भगवान् विलाप कर रहे हैं, सुषेण वैद्य पास बैठे हैं। हनूमान्‌जी द्रोणगिरि उठाये आ रहे हैं।

श्रीकौसल्या-भरत-(रंगीन) पृष्ठ ४४५-भरत-शत्रुघ्न ननिहालसे लौटकर माता कैकेयीसे मिलनेके बाद कौसल्याजीसे मिलते हैं, भरतजीको सच्चा प्रेमी और दुखी जानकर माता गोदमें ले लेती हैं, दोनों माँ-बेटे रो रहे हैं रामायणाङ्क पृष्ठ ७७ और वा०रामायण तथा तु०रामायणमें देखिये।

श्रीसीताकी अग्नि-परीक्षा (रंगीन) पृष्ठ ४६०-सीताको लेकर अग्निदेवता जलती हुई लपटोंमेंसे प्रकट होकर श्रीरामको सीता समर्पित करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण आनन्द और आश्चर्यमें निमग्न हैं, उनके मुख और शरीरपर अग्निका प्रकाश पड़ रहा है। रामायणाङ्क पृष्ठ ५० तथा वा० रा०६। ११८ देखिये

अहल्याका उद्धार पृष्ठ ४७३, कथा प्रसिद्ध है। तुलसीरामायण-बालकाण्ड देखिये।

श्रीसीताका-पाताल-प्रवेश-पृष्ठ ५०० पृथ्वी माता स्वयं प्रकट होकर सीताको लेकर पातालमें प्रवेश कर रही हैं। श्रीराम-लक्ष्मण, मुनिगण और लव-कुश आश्चर्य और शोकमें डूब रहे हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ५४ देखिये।

मानस-सरोवर (रंगीन) पृष्ठ ५०५ श्रीरामचरित-मानसके आरम्भमें गोसाईंजीने मानस-सरका बड़ा ही सुन्दर रूपक बाँधा है। उसीके आधारपर यह सुन्दर शिक्षाप्रद चित्र बनाया गया है। मानस-बालकाण्डमें यह प्रसङ्ग देखना चाहिये।

श्रीहनूमान्‌जीके चित्र ७

लङ्का-दाहके बाद सीता चरण वन्दन द्रोणगिरि लाना गरुड़-गर्व-हरण हार तोड़ना और हृदय चीरकर दिखलाना	पृष्ठ ४८०
श्रीरामका ज्ञानोपदेश पार्थ-रथपर श्रीहनूमान्‌जी श्रीहनूमान्‌जीपर इन्द्रका वज्र गिराना	पृष्ठ ४८१

इनका परिचय 'श्रीहनूमान्‌जीका महत्व' शीर्षक लेख पृष्ठ ४७६ में देखिये। चित्र भेजनेके लिये श्रीसद्भक्तिप्रसारक मण्डली अंधेरीको अनेक धन्यवाद!

माननीय काशीनरेशकी अभूतपूर्व परमसुन्दर रामायणके चित्र-३०

मूल चित्र रंगीन बड़े ही सुन्दर हैं, सारी रामायण चित्रोंसे भरी है, उन्हीं चित्रोंमेंसे ३० चित्रोंके छाया-चित्रोंके ब्लाक बनवाकर चित्र छापे गये हैं। ये चित्र बाबू श्रीकौसलकिशोरजी बी०ए० एल०टी०से हमें प्राप्त हुए हैं। इसके लिये हम माननीय महाराज काशीनरेश और श्रीकौसलकिशोरजीके बड़े ही कृतज्ञ हैं। चित्रोंके परिचयके लिये प्रत्येक चित्रके नीचे घटनाक्रमको बतलानेवाली चौपाई या दोहा दे दिया गया है, उसीके आसपासका पूरा विवरण प्रत्येक चित्र है, श्रीरामचरितमानसकी कथा निकालकर मिलान कीजिये। प्रत्येक चित्र कथाके आधारपर ही बना है!

श्रीअयोध्यापुरीके चित्र—३१

ये चित्र हमें सम्मान्य रायबहादुर अवधवासी लाला सीतारामजी बी० ए० और उनके सुपुत्र बाबू कौसल-किशोरजी बी० ए० एल० टी० की कृपासे प्राप्त हुए हैं। इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं। चित्रोंका पूरा परिचय बाबूसाहब लिखकर भेज न सके। लालाजी लिखित 'अयोध्याकी झाँकी' पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेपर प्रायः सब चित्रोंका ऐतिहासिक परिचय पाठकोंको मिल सकेगा। पुस्तक तैयार हो रही है।

श्रीजनकपुरधाम, चित्र—६

श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर—यह मन्दिर महाराजा टीकमगढ़का बनवाया हुआ है। कहा जाता है, महाराजने सत्रह लाख रुपये व्यय किये थे, जिसमें केवल इस मन्दिरके निर्माणमें नव लाख रुपये खर्च हुए।	पृष्ठ ३२८

श्रीजानकीजीका सिंहासन—(श्रीजानकी-मन्दिरके अन्दर यह चाँदी-सोनेका सिंहासन है, यह भी राजा टीकम-गढ़ने लगभग ४० हजार रुपये लगाकर बनवाया था। इसपर श्रीराम-जानकीकी सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं।) पृष्ठ ३२८

श्रीजानकी मन्दिरके भीतर श्रीजगमोहनमन्दिरका पूर्वी दृश्य पृष्ठ ३२८

श्रीराममन्दिरके सामनेका धनुषक्षेत्रसे पूर्वी दृश्य-पृष्ठ ३२६

श्रीराममन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ-पृष्ठ ३२६

श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दृश्य सेठ रामदासजीकी बिल्डिंगसे-पृष्ठ ३२६

श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर जानकी मन्दिरसे उत्तर-पृष्ठ ३२६

ये सातों चित्र श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजीकी प्रेरणासे जनकपुरवासी सेठ श्रीरामदासजीकी कृपासे प्राप्त हुए हैं। सेठजीने फोटो उतारनेतकका खर्च अपने पाससे दिया है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

शृंगवेरपुरके चित्र ४।

शान्तादेवीका मन्दिर—शान्ताजी भगवान् श्रीराम-की बड़ी बहिन ऋष्यशृङ्गको ब्याही गयी थी। पृष्ठ ३४१

श्रीशृङ्गीऋषिकी समाधि—शान्ताजीके मन्दिरके पश्चिम एक मन्दिर बना हुआ है, इसीको ऋषिकी समाधि बतलाते हैं। पृष्ठ-३४१

श्रीरामके सोनेका स्थान—कहा जाता है कि वन जाते समय यहाँ भगवान् सोये थे।

श्रीगौरीशङ्कर-पाठशाला—यह पाठशाला श्रीमती बहुआइन योधाकुँअरिजी आनापुर स्टेटने अपने पतिकी पुण्यस्मृतिमें स्थापित की थी। पृष्ठ ३४१

यही स्थान निषादराजकी राजधानी और ऋष्यशृङ्गका निवासस्थान बतलाया जाता है। आजकल इसका नाम सिंगरौर है। कहते हैं यहींसे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीने तापस वेष धर गंगा-पार किया था। ये चित्र और विवरण श्रीयुत महेशप्रसादजी आलिमफाजिलने कृपापूर्वक भेजा है, इसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

चित्रकूटके चित्र—२२

ये चित्र भी श्रद्धेय लालाजी और बाबू कौसलकिशोरजी-की कृपासे ही मिले हैं इनका परिचय लालाजी लिखित 'चित्रकूटकी झाँकी'नामक पुस्तकमें शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

भरद्वाज आश्रम (प्रयाग)—रा० ब०लाला सीता-रामजी द्वारा प्राप्त। पृष्ठ-३७७

नासिक पञ्चवटी, चित्र—८

नासिक गोदावरी दृश्य १, नासिक गोदावरी दृश्य २, ताड़का-नाला, पञ्चवटीमें श्रीराममन्दिर (यही प्रधान मन्दिर है)	४०६
गोदावरीपर नारोशङ्करका मन्दिर, त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर (बाहरी दृश्य) यह प्रसिद्ध पीठ गोदावरीसे १८ मील दूर है। गोदावरीका पुल रामकुण्ड और गंगामन्दिर—इसी कुण्डमें स्नान किया जाता है।	४०७

इन आठ चित्रोंमें तीन बाबू कौसलकिशोरजीकी कृपासे और शेष 'मुमुक्षु'-सम्पादक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए० की कृपासे मिले हैं। एतदर्थ धन्यवाद!

सेतुबन्ध रामेश्वरम्-चित्र—६

इन छः चित्रोंमें तीन बाबू धर्मचन्द्र खेमका रंगून प्रवासीसे और शेष बाबू कौसलकिशोरजीसे मिले हैं। इस कृपाके लिये धन्यवाद।

श्रीकाशीके चित्र—८।

प्रह्लादघाट, पं० गंगारामजी जोशीका घर। पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दृश्य।	पृष्ठ ४७६

गोस्वामीजी पहलेपहल काशीमें प्रह्लादघाटपर मारवाड़ी पुष्करणा ब्राह्मण पं० गंगारामजी जोशीके घर रहते थे, जोशीजीसे आपका बड़ा प्रेम था। जोशीजीके पास जहाँगीर बादशाहका बनवाया हुआ गोस्वामीजीका एक चित्र था जो अब उनके उत्तराधिकारी पं०रणछोड़लाल-जी व्यासके पास है। व्यासजीने प्रयत्न करके गोस्वामीजीकी एक मूर्ति बनवाकर स्थापन कर दी है।

विनयपत्रिका लिखनेका स्थान। तुलसीघाट।	पृष्ठ ४७६
श्रीहनूमान्जीका मन्दिर। गोस्वामीजीका चित्र। संकटमोचनका भीतरी दृश्य। संकटमोचनका बाहरी दृश्य।	पृष्ठ ४७७

संकटमोचन हनूमान्जीकी स्थापना गुसाईंजीने की थी।

ये चित्र हिन्दू स्कूलके हेडमास्टर पं० रामनारायणजी मिश्र बी०ए०की प्रेरणासे उनके विद्यार्थी श्रीदेवनारायणजीने बड़े परिश्रमसे उतरवाकर दिये हैं, एतदर्थ दोनों सज्जनोंको अनेक धन्यवाद!

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ५
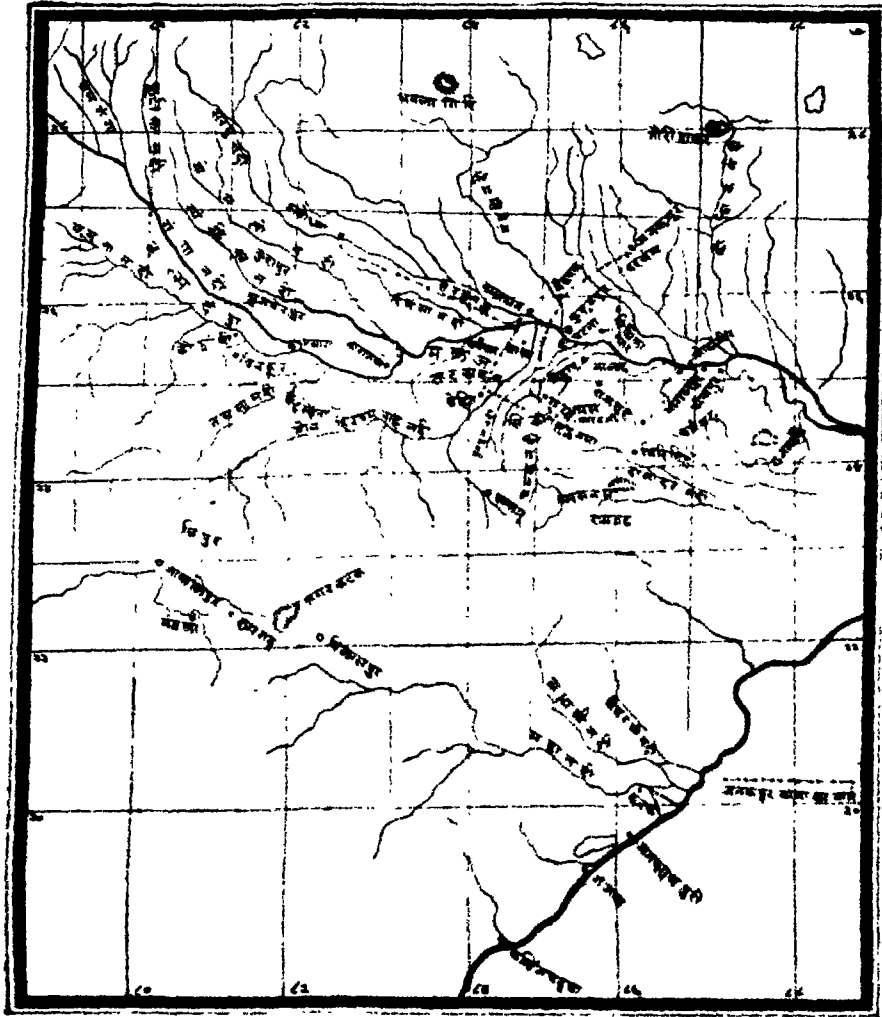
श्रीरामकी जनकपुर यात्रा (मानचित्रकार श्री वी०एच०वडेर)

क्षमा-याचना

भगवान् श्रीरामका चरित्र लोक-परलोकमें नित्य परम कल्याणकारी है। इससे इहलौकिक मनवाञ्छित सुख और परम आनन्दस्वरूप श्रेयकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमात्माके धराधाममें मानवादि रूपोंमें अवतीर्ण होकर विविध लीलाएँ करनेका एक प्रधान कारण यह भी है कि मनुष्य उन लीलाओंको गाकर, उन्हें पढ़-सुनकर, उनका अनुकरणकर अविद्याकी अनादि ग्रन्थियोंसे मुक्त हो जाय और विश्वमय केवल एक भगवान्के ही दर्शनकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाय। कलियुगी जीवोंके लिये तो दुःखोंसे छूटनेका प्रधान साधन भगवान्के गुणोंका गान करना ही है। गोस्वामीजीके अनुभवके वचन हैं—

> कलिजुग-सम जुग आन नहिं जो नर कर बिस्वास।
> गाइ राम-गुन-गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

भारतवर्षमें लाखों वर्षोंसे इस काव्यरूपमें प्रकाशित सच्चे इतिहास रामायणका इतना प्रचार और आदर इसी पारमार्थिक दृष्टिसे है। इतिहास और काव्य तो बहुत-से हैं, पर उनके कथन-श्रवणके प्रभावसे जन्म-मृत्युका चक्र नहीं छूटता, अविद्याकी फाँसी नहीं टूटती; किन्तु श्रीराम और श्रीकृष्णके चरित्रोंसे पूर्ण पुण्य-ग्रन्थ रामायण, महाभारत और भागवत आदिमें यह विशेषता है। इनके कथन-श्रवणसे पुण्य-लाभ होता है, लौकिक कामनाएँ सिद्ध होती हैं, सदाचारकी वृद्धि होती है, दैवी-सम्पत्तिके गुणोंका विकास होता है और कैवल्य मोक्ष तथा परमात्माके अनन्य और विशुद्ध प्रेमतककी प्राप्ति हो जाती है। इसी विश्वासके कारण हिन्दूजाति इन ग्रन्थोंको पूजती है और इसी विश्वाससे कल्याण-सञ्चालकोंका भी यह क्षुद्र प्रयास है।

हम सबके भावोंका आदर करते हुए तथा सर्वव्यापी, सर्वात्मा, विश्वरूप परमात्माके एवं यथायोग्य बुद्धिकी विशालताके नाते सबको पूज्य और वन्दनीय मानते हुए नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहते हैं कि हम श्रीराम और श्रीकृष्णको साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा मानते हैं और श्रद्धाभक्तिपूर्वक उनके अलौकिक गुण-कर्मोंको गाने और सुननेमें ही अपना परम सौभाग्य समझते हैं। अपनी लौकिक और विषय-विमोहित अनिश्चयात्मिका तुच्छ बुद्धिके द्वारा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंकी समालोचना करने और उनके उचितानुचितकी मीमांसा करनेका हम अपना अधिकार नहीं समझते।

किसी भी बहाने भगवान्की लीलाओंका स्मरण और उनका गुण-गान होना हमलोगोंके लिये परम कल्याणप्रद है, इसी निश्चयसे रामायणाङ्क प्रकाशित करनेका प्रयास किया गया है। हम इस बातको खूब समझते हैं कि रामायणांकके सम्पादनकी योग्यता हममें नहीं है। न तो आभ्यन्तरिक रहस्य समझनेके लिये हृदयमें श्रीरामकी भक्ति ही है और न वाह्य परीक्षणके लिये विद्या ही है, इसीसे मनमें कई बार स्फुरणा होनेपर भी पूरा साहस नहीं होता था। इसके अतिरिक्त विघ्न भी अनेक आये। इस कार्यमें प्रधान सहायक बाबा राघवदासजीको सरकारने मेहमान बना लिया, एक दूसरे सहायक भी सत्याग्रह-संग्राममें चले गये, एक निपुण चित्रकार ठीक समयपर बीमार पड़ गये, ब्लाक बनानेवाले और चित्र छापनेवाले कारीगर भी बीमार हो गये, एक बड़ी मशीन टूट गयी और मनमें भी अनेक प्रकारकी तरंगें उठीं, परन्तु 'तेरे मन कछु और है करताके कछु और।' श्रीरामको यह कार्य कराना अभीष्ट था, इसीसे हो गया। हम जब अपनी ओर देखते हैं तो हमें निस्संकोच यह सत्य मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना पड़ता है कि हमारी शक्ति, हमारी योग्यता, हमारी इच्छा और हमारी लगनके बलपर रामायणांक नहीं निकला है। श्रीरामने प्रेरणा की, कृपालु और प्रेमी मित्रोंने कृपाकर बारंबार उत्साह दिलाया, लेखक महोदयोंने कृपापूर्वक लेख भेजे, सुयोग्य चित्रकार मिल गये, तीर्थोंके चित्र-संग्रहमें सम्मान्य रायबहादुर लाला सीतारामजी बी० ए० तथा आपके सुपुत्र लाला कौसलकिशोरजी बी०ए०एल० टी०, मुमुक्षु-सम्पादक श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पाङ्गारकर बी० ए०, चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी, श्रीयुत महेशप्रसादजी प्रो० हि० वि० विद्यालय, पं० रामनारायणजी मिश्र बी०ए० सैन्ट्रल हिन्दू स्कूल काशी, सेठ रामदासजी, श्रीधर्मचन्दजी खेमका, पं० भगवद्दासजी अयोध्या आदिसे सहायता प्राप्त हुई, ब्लाक बनवाने और चित्रादि छपवाकर भेजनेमें श्रीबजरंगलालजीने

हमलोगोंके उलाहने सहते हुए भी बड़ी मदद की। इस-प्रकार सारा सामान जुट गया। यद्यपि यह सारा कार्य श्रीरामकी प्रेरणासे ही हुआ तथापि हमें तो इन कृपालु सज्जनोंका कृतज्ञ होना ही चाहिये। चित्र-संग्रहमें लाला सीतारामजी और बाबू कौसलकिशोरजीने जिस परिश्रमके साथ सहायता की है उसके लिये तो हम उनके बड़े ही कृतज्ञ हैं। अयोध्या, चित्रकूट, प्रयाग और काशी रामायण-के सभी चित्र आपसे ही प्राप्त हुए हैं।

इसके सिवा लेखादिके संग्रहमें तथा अन्यान्य प्रकारसे अनेक सज्जनोंने सहायता दी है, जिनमें निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं अतएव हम उन सभी सज्जनोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं—

पं० जीवनशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०, श्रीरङ्गनाथ रामचन्द्र दिवाकर एम० ए० एल-एल० बी०, श्री वी० एच० वडेर एम० ए०, एल-एल० बी०, रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, श्रीशङ्करनारायण ऐयर बी० ए० बी० एल०, श्रीजनकसुताशरण शीतलासहायजी बी०ए०एल-एल० बी० सम्पादक 'मानसपीयूष', साहित्यरत्न पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी, श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री एम० ए० पी-एच० डी०, स्वामी अखण्डानन्दजी, श्रीयुत रामचन्द्रकृष्ण कामत, सद्भक्तिप्रचारक मण्डली-अजमेर, श्री टी० बी० कृष्णस्वामी राम सम्पादक 'सत्वसुनिदास', श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी सम्पादक 'विशाल-भारत', श्रीगौरीशङ्करजी गोयनका, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे सम्पादक 'श्रीकृष्ण-सन्देश', महात्मा बालकरामजी विनायक कनकभवन अयोध्या आदि आदि।

रामायणांकके लिये हिन्दीके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला और अंग्रेजीमें भी बहुत-से लेख आये थे जो अनुवाद करके प्रकाशित किये गये हैं। लेखकोंमें युक्तप्रान्त, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्णाटक, मद्रास, पंजाब, राजपूताना आदि विभिन्न प्रान्तीय विद्वानोंके सिवा इंगलैण्डके भी कुछ विद्वान हैं। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी हैं। इससे रामायणकी लोक-प्रियताका भी पता लगता है।

हम अपने कृपालु लेखकों और कवियोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए त्रुटियोंके लिये उनसे हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हैं। कई लेखोंमें स्थानाभाव और अन्यान्य कारणोंसे काट-छाँट की गयी है, कई अधूरे छपे हैं, कुछका केवल अंशमात्र ही छपा है और कुछ लेख देरसे आनेके कारण तथा स्थानाभावसे इच्छा रहनेपर भी बिलकुल नहीं छप सके हैं। गत बार 'गीतांक' बहुत बड़ा हो गया था जिसके कारण घाटा भी रहा और कुछ विशिष्ट मित्रोंने इस बार आकार कुछ छोटा करनेके लिये अनुरोध भी किया था, इससे रामायणांक लगभग ४०० पृष्ठका निकालनेका विचार किया गया था परन्तु लेख इतने अधिक आ गये कि विवश होकर आकार बढ़ाना पड़ा, तिसपर भी सैकड़ों लेख रह गये। लेख न छाप सकनेके अपराधके लिये लेखक महोदय क्षमा करें, स्वीकृत लेख आगामी अंकोंमें छापनेका विचार है।

रामायणांककी सूचना छापकर विभिन्न भाषाओंके देशी एवं विदेशी सहयोगियोंने जो कृपा की है उसके लिये हम उनके ऋणी हैं।

इस अंकके लिये जितने विषय सोचे गये थे उनमेंसे बहुत-से रह गये हैं। ऐसे-ऐसे कई अंक हों तो रामायणके सब विषयोंपर कुछ कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। यह अंक तो श्रीरामकी कृपासे जैसा कुछ बन सका है आपलोगोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है, कैसा हुआ है, इसका निर्णय आप ही करें। हम-सरीखे विद्या और कलाहीन अल्प-बुद्धि व्यक्तियोंका सम्पादकके आसनपर बैठना पाँच सवारोंमें शामिल होनेके समान हास्यास्पद ही है और वास्तवमें बड़े सङ्कोचका विषय है किन्तु बड़ोंकी आज्ञा और मित्रोंके प्रेमसे यह निर्लज्जता स्वीकार करनी पड़ी है। सज्जन, महात्मा, ज्ञानी, भगवद्भक्त, रामायणके मार्मिक विद्वान् और विद्वान् सम्पादकगण इस धृष्टताके लिये क्षमा करें।

हे राम! अन्तमें तेरे पतितपावन चरणोंमें यह विनीत प्रार्थना है कि इस कार्यमें अनेक जगह प्रमादवश तेरी अवज्ञा हुई होगी, तू दयालु है अपनी ओर देखकर क्षमा कर। तेरी कृपासे इसी बहाने तेरे कुछ नाम आ गये हैं और तेरी लीलाएँ पढ़ने-समझनेका किञ्चित् सौभाग्य मिला है। यह सब तेरी ही कृपा, इच्छा और प्रेरणासे हुआ है। यह तेरी चीज तेरे ही चारु चरणोंमें अर्पण है। हमें तो दया-कर तू ऐसा बना ले कि जिससे हमारे मन सदा तेरे ही चरण-कमलोंके भ्रमर बने रहें और तन-मनकी सारी क्रियाएँ केवल तेरी ही प्रेरणासे तेरे ही अर्थ हों!

ज्वालाप्रसाद कानोड़िया }
हनुमानप्रसाद पोद्दार } संयुक्त सम्पादक

श्रीपरमात्मने नमः

गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तकें

ग्राहकोंके लिये नियम

(१) 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जाते इससे 'गीता-प्रेस' को अलग लिखकर सब पुस्तकें चित्र आदि अलग मँगवाना चाहिये।

(२) पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें।

(३) अगर १५ दिनमें पत्रका उत्तर या माल न पहुँचे तो दूसरा पत्र साफ साफ लिखें। इस स्मृति पत्रमें अपनी माँग आदिका उल्लेख फिरसे करना चाहिये।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता किस किसको, कितने दामकी, और उसकी कितनी कापियाँ चाहिये यह ब्योरेवार लिखना चाहिये।

(५) अगर किताबें मालगाड़ी या रेल पार्सलसे मँगवानी हों तो रेलवे स्टेशनका नाम जरूर लिखें।

(६) वी० पी० में कुछ भूल मालूम हो तो पार्सल लौटावें नहीं; छुड़ा लें। लिखनेपर बादको भूल दुरुस्त कर दी जाती है। माल दस दिनतक पोस्ट आफिसमें भी रुकवा सकते हैं।

(७) जो सज्जन आर्डरके मुताबिक माल मँगवाकर बिना कारण लौटा देंगे, उनसे लौटानेका कुल खर्चा लिया जा सकता है।

(८) एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंके लिये डाक-महसूल और रजिस्ट्री खर्चसहित टिकट भेजें। खर्च न मिलनेसे पुस्तक नहीं भेजी जाती। रजिस्ट्रीके दाम न मिलनेसे खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

(९) कमीशन-दर इसप्रकार है:—५) से १०) तक १२॥) सैकड़ा, फिर २५) तक १८॥) इससे ऊपर २५) सैकड़ा। इससे ज्यादा कमीशनके लिये लिखापढ़ी न करें। ५) से नीचे कमीशन नहीं है।

(१०) पुस्तकें रवाना कर देनेके पहले ही न भेजनेकी सूचना मिलनेसे माल न भेजा जायगा पर माल भेज देनेके बाद यदि ऐसी सूचना मिलेगी तो दोनों तरफका किराया आदि खर्च ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(११) डाकमें या रेलगाड़ीमें खराब हुई या खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

बड़ा सूचीपत्र मँगाइये !

(१) श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र]

पाँचवाँ संस्करण

इसकी टीका इतनी सरल है कि साधारण पढ़े लिखे मनुष्य भी बिना अधिक परिश्रमके इसे समझ सकते हैं। श्लोकोंके ठीक ठीक अनुवाद, पदच्छेद और अन्वयके कारण विद्यार्थियोंके लिये भी यह बड़े कामकी चीज है। इसकी सबसे अधिक विशेषता यह है कि अर्थमें कहीं भी खींचातानी नहीं की गयी है। प्रत्येक संस्कृत शब्दके सामने उसका अर्थ दे दिया गया है, जिससे कुछ दिनोंके अभ्याससे केवल श्लोक-पाठसे ही अर्थका बोध हो सकता है। त्यागसे भगवत्प्राप्ति-विषयक अनुभव-पूर्ण निबन्ध भी इसके अन्तमें जोड़ दिया गया है। प्रारम्भमें गीताके प्रधान और सूक्ष्म विषय भी दे दिये गये हैं। इसकी छपाईमें शुद्धताका बहुत अधिक खयाल रखा गया है। ऐसी शुद्ध छपी और सस्ती गीता बहुत कम मिलती है। अक्षर बहुत बड़े और छपाई साफ है, कागज अच्छा लगाया गया है, हाथ-करघेके बुने हुए कपड़ेकी अच्छी मजबूत जिल्द लगायी गयी है। ५७० पृष्ठ हैं। किताबका आकार डिमाई ८ पेजी है। चार तिरंगे चित्र हैं। दाम सिर्फ १) है। इतनी सस्ती ऐसी गीता शायद और न मिल सके। थोड़े ही दिनोंमें इस पुस्तकको

४१ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। १।) वाली १ प्रति गीता वी० पी० से मँगानेवालेको ॥) डाकखर्च, पैकिंग -) और मनिआर्डर फीस ≈) कुल १॥ ≋) पड़ेगा। इसलिये ख्याल करके आर्डर दें ताकि लौटाना न पड़े।

(२) छोटे टाइपकी २२ × ३० साइजकी सोलह पेजी मझोली गीता (सचित्र)

इसमें यह विशेषता है कि प्रत्येक श्लोकके साथ किनारेपर ही सूक्ष्म विषय दे दिया गया है। वह एक प्रकारसे श्लोकका सारांश है। प्रधान विषय हर अध्यायके आरम्भमें रक्खा गया है। इन विशेषताओं-के सिवा शेष बातें गीता नं० १ के अनुसार ही हैं। पृ० ५६८; मूल्य बिना जिल्द ॥≈) सजिल्द ॥।=); डाक महसूल एक प्रतिका ।-), दोका ॥) और तीनका ॥≈)

(३) छोटे साइजकी गीता (सचित्र)

[सादा संस्करण]

इसमें श्लोकोंके साथ भाषाटीका भी है। नियमित रूपसे अर्थसहित पाठ करनेवाले सज्जनोंके लिये यह गीता बड़ी उपयोगी है। छपाई, सफाई सुन्दर और कागज बढ़िया है। कवरपर भगवान् श्रीकृष्णका रंगीन चित्र दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ३५२, फिर भी मूल्य केवल ≠)॥ सजिल्द ≈)॥ अबतक इसकी दो लाख तीसहजार प्रतियाँ छप चुकी हैं।

(४) केवल भाषा-गीता (सचित्र)

संस्कृत श्लोक न पढ़ सकनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है। छोटे अक्षरोंसे जिनकी आँखोंमें पीड़ा होने लगती है वे इससे अधिक लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि इसके अक्षर बड़े और गहरे हैं। स्त्रियोंके लिये इसे विशेषरूपसे मँगवानेकी सिफारिश है। एक तिरंगा चित्र देनेपर भी इसका मूल्य केवल ।) रक्खा गया है। सजिल्द ।≈)

(५) केवल मूल गीता (सचित्र)

इसका टाइप खूब मोटा रक्खा गया है। सीखनेके लिये बालकों और स्त्रियोंके लिये यह अवश्य मँगवानी चाहिये। जिनके नेत्रोंकी दृष्टि कुछ कम है, जो छोटे अक्षर नहीं पढ़ सकते हैं उनको यह मूल गीता पाठके लिये अपने पास रखनी चाहिये। श्रीभगवानका एक सुन्दर तिरङ्गा चित्र भी दिया गया है। मूल्य ।-) सजिल्द ।≋)

(६) गीता ताबीजी साइज

देखनेमें बड़ी मनोहर है। पाकेटके एक कोनेमें रक्खी जा सकती है। अक्षर सुन्दर और साफ हैं। आकार २ × २ ½ इञ्ची, पृ० २९६, सजिल्द मूल्य केवल =) इतने कम दाममें ऐसी सुन्दर गीता दूसरी कोई नहीं है। पन्द्रह हजार पुस्तकें छप चुकी हैं। प्रारम्भमें एक सादा चित्र भी है।

(७) मूल गीता और विष्णुसहस्रनाम (सचित्र)

[छठा संस्करण]

मूल श्लोकोंके अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम भी इसमें छाप दिया है। चार सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित १३२ पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल =)। केवल पाठ करनेवालोंके कामकी चीज है।

(८) गीता डायरी

यह प्रत्येक गृहस्थ, प्रत्येक विद्यार्थी और प्रायः हर विभागके मनुष्यके पास रहने योग्य है। सन्त-महात्माओंके अमूल्य वचन, सरकारी विभागोंके प्रतिदिन व्यवहारमें आनेवाले मुख्य-मुख्य नियम, साधारण

बीमारियोंके अनुभवपूर्ण सीधे सादे-नुस्खे आदि इसके आरम्भमें दे दिये गये हैं। हिन्दी पत्र, व्यवहारिक गणितके कुछ चुने हुए हिसाब और १ जनवरीसे हिन्दी, अंगरेजी और बंगला तिथियोंके सिवा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपको सम्पूर्ण गीता भी इसीमें मिलेगी। एक पन्थ दो काज। इससे अधिक और लाभ क्या हो सकता है ? इसपर भी मूल्य केवल ।) सजिल्द ।-)

बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वानों और पत्र-सम्पादकोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है।

(९) प्रेम-योग

लेखक-श्रीवियोगीहरिजी, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य १।) सजिल्द १॥)

(१०) तत्त्वचिन्तामणि

लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, विशेष विवरण पृष्ठ ७-८ में देखिये। मूल्य ॥-) सजिल्द १)

(११) भक्त-बालक

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य ।-)

(१२) भक्त-नारी

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य ।-)

(१३) पत्र पुष्प (सचित्र)

कल्याण-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके हृदयसे निकले हुए, प्रेममूर्ति प्रभुके चरणोंमें समर्पित सुन्दर पत्र-पुष्पोंका संग्रह है। इसके अन्तमें प्रत्येक मनुष्यके द्वारा त्यागने और ग्रहण करने योग्य बातोंका भी विस्तृत उल्लेख कर दिया गया है। पृष्ठ ६६ मूल्य ≥)॥ सजिल्द ।)॥

(१४) मानव-धर्म

लेखक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य ≥)

१५ साधन-पथ

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य =)॥

(१६) भजन-संग्रह (प्रथम भाग)

दूसरा संस्करण

भक्तराज तुलसीदासजी, सूरदासजी, कबीरजी और मीराबाईके सरस, भावपूर्ण और प्रेमभरे चुने हुए भजनोंका अच्छा संग्रह है। पहला संस्करण बहुत जल्दी बिक गया। पाकेट साइज, मूल्य केवल =)

(१७) स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी

इसके लेखक हैं 'कल्याण'के सुयोग्य सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। कई पाठशालाओंमें यह पाठ्यपुस्तकके रूपमें पढ़ायी जा रही है। वर्तमान समाजके डावाँडोल और दूषित वायुमण्डलको दृष्टि-कोणमें रखते हुए यह पुस्तक प्रेमी सज्जनोंके विशेष आग्रहसे लिखवायी गयी थी। कन्याओंके कोमल हृदयोंमें इसके निरन्तर पाठसे बहुत अच्छा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना है। सधवा स्त्रियोंके धर्मका बड़ी रोचक शैलीसे विशद वर्णन किया गया है। पति-सेवाके-दिव्य-व्रतका पालन करती हुई गृह-देवियाँ किस प्रकार मनुष्य-जन्मके चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गमें तत्पर, अग्रसर और सफल हो सकती हैं इसका सप्रमाण

उल्लेख करके लेखकने गागरमें सागर भर दिया है । विधवा-धर्मका निरूपण भी उत्तमतापूर्वक किया गया है । प्रश्नोत्तरके रूपमें होनेसे यह पुस्तक बड़ी रोचक बन गयी है । दाम्पत्य-प्रेम और गृहस्थादर्शको हिन्दूघरोंमें देखनेके इच्छुकोंको इसका प्रचार विशेषरूपसे करना चाहिये । पृष्ठ ५६ मूल्य ≈)

(१८) सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय

साधकोंको इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये ।

साकार और निराकारके ध्यानादिका रहस्यपूर्ण भेद और सरल विधि जाननेके इच्छुकोंको इसे पढ़नेके लिये हमारा विशेष अनुरोध है । मूल्य -)॥

(१९) गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग

इसमें गीताके उक्त दो विषयोंपर बड़ी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की गयी है । प्रायः प्रत्येक मनुष्य इसे समझकर लाभ उठा सकता है । मूल्य केवल -)॥

(२०) मनुस्मृति द्वितीय अध्याय सटीक

इसमें मनुस्मृतिके दूसरे अध्यायके मूल श्लोक और सरल हिन्दीमें उनका अनुवाद है । बड़े कामकी पुस्तक है । मूल्य -)॥

(२१) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय

इसके लेखक हैं–श्रीजयदयालजी गोयन्दका । विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये । मूल्य -)॥

(२२) मनको वशमें करनेके उपाय (सचित्र)

लेखक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार—मनका स्वरूप क्या है, साधकको इसके आक्रमणोंका किस प्रकार सामना करना पड़ता है तथा अन्तमें इसपर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है—इत्यादि जानने योग्य बातोंका उल्लेख बड़ी रोचक शैलीसे किया गया है मूल्य -)॥

श्रीजयदयालजी गोयन्दका-रचित अन्य छोटी पुस्तकें

(२३) गीताका सूक्ष्म विषय

इसमें गीताके प्रत्येक श्लोकका सरल हिन्दीमें सारांश दिया गया है । पाकेट साइज मूल्य -)।

(२४) श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश

मनको उसकी करुणापूर्ण प्रार्थनाओंके लिये जीवात्माके द्वारा भर्त्सना, भगवान्‌के प्रभावका प्रार्थनाके रूपमें कथन तथा साकार ईश्वरकी मानसिक पूजा आदिका बड़ी रोचक शैलीसे वर्णन किया है । श्रीविष्णु भगवान्‌के दो रंगीन चित्र देनेपर भी मूल्य केवल -) ही रखा गया है ।

(२५) त्यागसे भगवत्प्राप्ति

गृहस्थमें रहता हुआ भी मनुष्य जिन सात प्रकारके त्यागोंके फलस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है उनका प्रतिपादन इसमें किया गया है । मूल्य -)

(२६) ब्रह्मचर्य

लेखक श्रीकल्याण-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । ब्रह्मचर्यके महत्त्व और उसके सूक्ष्म तत्त्वोंपर बड़ा मार्मिक विवेचन किया गया है । मूल्य -)

(२७) भगवान क्या हैं ?

भगवान्‌के विषयमें मनुष्योंको अधिकतर जो शङ्काएँ होती हैं उनका समाधान गीतादि शास्त्रों और अपने अनुभवके आधारपर किया गया है। भगवद्ध्यानकी विधियां भी लिखी गयी हैं। भाषा सरल है। मूल्य -)

(२८) समाज-सुधार

समाजके जटिल प्रश्नोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। सुधारके प्रधान साधनोंका उल्लेख भी कर दिया गया है। मूल्य -)

(२९) एक सन्तका अनुभव

साधकों और सच्चे सुखके अभिलाषियोंके लिये बहुत ही कामकी चीज है। मूल्य -)

(३०) स्वामी मगनानन्दकी जीवनी

ये अच्छे संन्यासी हो गये हैं इनकी जीवनी बहुत ही उपदेशप्रद है। मूल्य -)

(३१) हरेरामभजन

इस पुस्तकमें उपदेश और १६ नामोंके मन्त्रकी दो मालाएँ हैं मूल्य)॥।

(३२) श्रीविष्णुसहस्रनाम

मूल विष्णुसहस्रनाम, गुटका साइज, मोटे अक्षर, भगवान्‌के चित्रसहित पाठ करनेवालोंके लिये बहुत सुभीतेकी चीज है। मूल्य ॥

(३३) श्रीसीतारामभजन

आरम्भमें गुसाईंजीके दोहोंका सुन्दर संग्रह है, फिर श्रीसीतारामकी दस मालाओंके मन्त्र छपे हैं। मूल्य)॥

(३४) श्रीशंकराचार्यजीकृत प्रश्नोत्तरी सटीक

स्वामी श्रीशंकराचार्यजीकी प्रश्नोत्तरी प्रसिद्ध है। इसमें उन्हींके मूल श्लोक और अनुवाद है। मूल्य)॥

(३५) सन्ध्या

इसमें सन्ध्याके मन्त्र और सरल हिन्दीमें उसकी विधि छापी गयी है। मूल्य)॥

(३६) बलिवैश्वदेवविधि

गृहस्थोंके लिये अवश्य कर्तव्य बलिवैश्वदेवके मन्त्र और करनेकी विधि मोटे कागजपर छपी है। मूल्य)॥

(३७) पातञ्जलयोगदर्शन (मूल)

इसमें चारों पादोंके सभी सूत्र शुद्धतापूर्वक छापे गये हैं। मूल्य)।

(३८) धर्म क्या है ?

नामसे ही पुस्तकके विषयका पता लग जाता है। प्रश्नोत्तरके ढंगपर होनेसे यह पुस्तिका बड़ी रोचक बन गयी है। मूल्य)।

(३९) दिव्यसन्देश

वर्तमान समयके दाम्भिक युगमें किस उपायसे शीघ्र भगवत्-प्राप्ति हो सकती है, इस पुस्तिकामें इस बातके सरल उपाय बतलाये गये हैं। मूल्य)। यह पुस्तक गुजराती, मराठी, बंगला और अंग्रेजीमें भी मिल सकती है।

(४०) श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन

इसमें श्रीहरिसंकीर्तनकी ४१ तरहकी धुनि छापी गयी है, कीर्तनके प्रेमियोंके लिये बड़े कामकी चीज है। मूल्य)।

(४१) गीता दूसरा अध्याय सटीक

श्रीमद्भगवद्गीताका दूसरा अध्याय मूल श्लोक और सरल हिन्दी अनुवाद प्रचारार्थ छापा गया है। मूल्य)।

(४२) लोभमें पाप रहता है

महाभारतके एक अध्यायका अनुवाद है। बहुत सुन्दर उपदेशकी चीज है। मूल्य आधा पैसा।

(४३) गजल गीता

लड़कोंके गाने लायक सरल हिन्दीमें गजलके ढंगपर गीताके बारहवें अध्यायके कुछ उपदेशोंका अनुवाद है। लड़के इसे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य आधा पैसा।

(४४) भगवन्नामांक

यह कल्याणका एक विशेषांक है, इसमें रंग-बिरंगे ४१ चित्र हैं। पृष्ठ संख्या ११० । मूल्य ॥ॾ)

(४५) बंगला गीता

मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारणभाषा और टिप्पणियोंसहित। मूल्य १) सजिल्द १।) (यह १।) वाली गीताका उल्था है।) पृष्ठ ५४०, चित्र ४, छपाई सफाई सुन्दर है।

(४६) भक्तांक

यह भी कल्याणका विशेषांक है, इसमें रंग बिरंगे ५५ चित्र और २५० पृष्ठ, मू० १॥ॾ) सजिल्द२ॾ) इसमें कमीशन नहीं है।

(४७) गीतांक

पृष्ठ संख्या ५०२ चित्र संख्या १७० मूल्य २॥ॾ) सजिल्द ३ॾ) इसमें भी कमीशन नहीं है।

(४८) रामायणांक

इसी वर्षका कल्याणका विशेषांक पृष्ठ ५१२ चित्र १७०के लगभग मूल्य २॥ॾ) इसमें भी कमीशन नहीं है।

विशेष सुभीता

एक साथ सिरीज मगानेवाले ग्राहकोंको डाकमहसूल और पेकिंग नहीं देना पड़ेगा।

सिरीज नं० १ पुस्तक नं० १ सजिल्द और पुस्तक नं० २ से नं० ४४ तक, अजिल्द कुल ४४ पुस्तकें रु० ८॥-) में।

सिरीज नं० २ पुस्तक नं० २ तथा ८ से १० तक अजिल्द कुल ४ पुस्तकें रु० ३) में।

सिरीज नं० ३ पुस्तक नं० ३ और ८ तथा नं० ११ से ४३ तक कुल ३५ पुस्तकें रु० १ॾ) मे

सिरीज नं० ४ पुस्तक नं० ३ और नं० १० सजिल्द तथा नं० ११-१२-१४-१५-१६ अजिल्द कुल ७ पुस्तकें रु० ३।-) में।

आध्यात्मिक संसारका अनुपमेय ग्रन्थ

तत्त्व-चिन्तामणि

इस महान् ग्रन्थके लेखक हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका,

पृष्ठ ३९२ मोटा एण्टिक कागज मूल्य ।।।-) सजिल्द १) दो सुन्दर रंगीन चित्र

कल्याणके पाठक और पाठिकाएँ आपके नामसे चिरपरिचित हैं। ऐसे सज्जनके ग्रन्थपर हमारी ओरसे विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं दीखती। हिन्दी, मराठी, बंगला, अंग्रेजीके विद्वान् पत्र-सम्पादकोंकी इस तात्त्विक ग्रन्थपर क्या सम्मति है इसका पता निम्नलिखित कुछ अवतरणोंसे लग सकेगा:—

अपूर्व शान्ति

'इन लेखोंके पढ़नेसे पाठकके हृदयमें अपूर्व शान्ति और विरक्ति तथा ईश्वरके प्रति आस्थाकी भावना बढ़ती है। लेखकके स्वयं साधक होनेसे लेखोंकी महत्ता और भी बढ़ जाती है।'—कर्मवीर

जीवन-क्षेत्रमें सफलता

'यह पुस्तक प्रधानतः गीताके आधारपर जीवन-तत्त्वकी व्याख्या करती है। इसमें क्रियात्मक जीवनके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन है और जीवनके विभिन्न अंगोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिये आवश्यक भाँति-भाँतिके धर्मोंका निर्देश किया गया है। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि किस प्रकार गीतोक्त आदर्श धर्मका वाणिज्य—व्यापारमें भी उपयोग हो सकता है और किसप्रकार इन व्यवहारोंके द्वारा भी परमार्थ प्राप्त किया जा सकता है। यह पुस्तक वस्तुतः अपने अधिकारीके हाथमें आत्मकी कसौटीके समान है।' —अंग्रेजी मराठा, पूना।

अच्छा लाभ

गोरखपुरसे 'कल्याण' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है। उसमें जयदयालजी गोयन्दकाके समय-समयपर लिखे २८ निबन्धोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया गया है। ज्ञानीकी अनिर्वचनीय स्थिति, भगवान् क्या हैं, अनन्य प्रेम ही भक्ति है, उपासनाका तत्त्व, धर्म क्या है, कर्मका रहस्य आदि निबन्धोंके नामोंसे ही पुस्तकका प्रतिपाद्य विषय ध्यानमें आने योग्य है। धार्मिक ग्रन्थ पढ़नेकी जिनकी रुचि हो उनको इस ग्रन्थके वाचनसे अच्छा लाभ हो सकता है। विशेषतः हिन्दी भाषासे परिचय प्राप्त करनेके लिये प्रस्तुत पुस्तक बहुतोंको उपयुक्त मार्गप्रदर्शक है। -ज्ञानप्रकाश मराठी, पूना।

तत्त्व-चिन्तामणि ज्योतिस्तम्भ है

…… 'गोयन्दकाजीकी 'तत्त्वचिन्तामणि' मिली। मेरे लिये बहुत कामकी साबित हुई है। गोयन्दकाजीकी पुस्तकका मेरेपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, इसप्रकारकी कृतियाँ उन लोगोंके लिये ज्योतिस्तम्भस्वरूप हैं जिनको विस्तीर्ण जीवन-सागरमें उचित मार्ग बतानेवाला कोई रक्षक न हो। ……—ताराचन्दराय एम० ए०, प्रोफेसर बर्लिन युनिवरसिटी।

चिन्ताको दूर करनेवाला तत्त्वचिन्तामणि

'तत्त्व-चिन्तामणि' परमार्थ ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प खिला है। इसके २८ सुशोभित दलोंके ऊपर देखनेवाले तत्त्व जिज्ञासुको प्रत्यक्ष भगवान् ही खड़े होकर अपने प्रज्वलित तेजसे नरककी चिन्ताको दूर करनेवाला 'चिन्तामणि' स्वयं ही पाठक-पाठिकाओंके गलेमें बाँध देते हैं। अभूतपूर्व दृश्य नजर आता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

(भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके लगभग नवीन और प्राचीन विषयोंपर प्रामाणिक पुस्तकें लिखनेवाले महाराष्ट्रके महान् विद्वान्) —पं० आनन्दघन रामजी, ताहराँव।

यह गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है

'तत्त्वचिन्तामणि' पढ़कर बहुत तृप्ति हुई। इसमें सरल हिन्दीमें साधनाका पथ प्रदर्शित किया गया है। वास्तवमें यह श्रीमद्भगवद्गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है।.........साधनतत्त्व, ध्यानतत्त्व, अवतत्त्व आदि अति सुन्दर भावसे प्रतिपादित हुए हैं।.........साधनमार्गमें चित्तशुद्धि प्रभृतिके लिये कर्मकी जो आवश्यकता है, वह सुन्दर भावसे दिखलायी गयी है। छपाई और कागज उत्कृष्ट है। मूल्य नाममात्र ॥-)..........धर्मजिज्ञासु हिन्दूमात्रके लिये इस पुस्तकका पठन करना कर्तव्य है।—बंगला हितवादी, कलकत्ता.

मानव-धर्म

पृष्ठ-सं० १०७ मूल्य केवल ≈)

महत्त्वपूर्ण पुस्तक

"....इसमें धर्मकी आवश्यकता, धृति, क्षमा आदि विषयोंपर प्राचीन गाथाओंको लेकर अच्छा विवेचन किया गया है।.....पाठकोंका ध्यान धर्म एवं आचरणकी ओर कराया गया है।...धर्मका साहित्यसे उचित सामञ्जस्य कराया है।...भाषा बहुत ही सरल है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका प्रचार इस समय खूब होना चाहिये। अन्तमें भी मनोरञ्जक कहानियों द्वारा ही धर्मका उपदेश दिया गया है। आशा है कि ऐसी पुस्तकको हिन्दी-प्रेमी अपनानेमें देर न करेंगे।"

—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी मुखपत्रिका 'सम्मेलनपत्रिका'

धार्मिक जीवन

'यह पुस्तक मनुस्मृतिमें बताये हुए धर्मके दश लक्षणोंकी व्याख्या है। इन दस गुणोंको भली भाँति समझनेसे, इनके अनुसार चलनेमें धार्मिक जीवन होना निश्चित है। यदि इस पुस्तकका पाठशालाओंमें प्रत्येक हिन्दू-बालकको पाठ पढ़ा दिया जाय तो उसे अपने धर्मका बहुत कुछ ज्ञान हो जाय और चरित्र भी सुधर जाय।'

—श्रीहरिरामजी पाण्डेय—धर्मोपदेशक—हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी।

साधन-पथ

पृष्ठ-सं० ७२, भगवान्का एक अत्यन्त मनोमोहक सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य केवल ≈)॥

स्वामी विज्ञानहंसजी लिखते हैं—

'साधन-पथ पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ। आपका परिश्रम और विचार बहुत ही सराहनीय है। साधकोंके लिये सच्चा पथ-प्रदर्शक है।.....अवश्य ही अपने पास रखकर सदा अध्ययन करते रहना चाहिये।'

हिन्दू विश्वविद्यालय काशीके धर्म-शिक्षक लिखते हैं—

'...साधनमें बड़ी सहायता देनेवाली है। लेखक बड़े अनुभवी पुरुष जान पड़ते हैं।.....पढ़कर यही विचार मेरे मनमें उठा कि लेखक महाशयने उन सब ही बातोंको बता दिया जिनको साधन-पथके पथिकको ध्यानमें रखना चाहिये।'

पुस्तक इतनी सुन्दर है कि एक मराठीके मासिक पत्रमें भी हाथों हाथ छप गयी है।

पवित्र प्रेमकी अपूर्व झाँकी

हृदयकी कलियाँ खिला देनेवाला

प्रे म यो ग

लेखक–हिन्दी-संसारके सुपरिचित श्रीवियोगी हरिजी

दो खण्ड, पृष्ठ ४६८, बहुत मोटे एण्टिक कागज, मनोहर रंगीन चित्र सहित, मूल्य १) सजिल्द १॥)

हिन्दी-साहित्य जगत् श्रीवियोगी हरिजीके नामसे अपरिचित नहीं है। आपहीकी भावुकतापूर्ण लेखनीसे लिखा हुआ यह ग्रन्थ अपने ढंगका एक ही है। सजीव भाषा और दिव्य भावोंसे सना हुआ यह प्रेमयोग प्रेम-साहित्यका एक पूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि प्रायः सभी धर्मावलम्बियोंके प्रेम-विषयक आदर्श अनुभवों और मनोहर सूक्तियोंका विचित्र संग्रह है। सन्तों, महात्माओं, भक्तों और अनुभवी कवियोंके प्रेमपर निकले हुए हृदयहारी उद्गारोंका अभूतपूर्व ऐसा आलोचनात्मक विशद संग्रह निस्सन्देह पठनीय है।

आचार्यश्रीकी सम्मति

"आपकी भेजी हुई तीनों पुस्तकें मिली हैं—प्रेमयोग, मानवधर्म और साधनपथ। परमार्थविषयक इतनी अच्छी पुस्तकें हिन्दीमें मैंने नहीं देखीं। इस तरहकी पुस्तकोंका प्रकाशन करके आप सर्वसाधारणका बड़ा ही उपकार कर रहे हैं। जो तत्त्व और ज्ञान संस्कृतके बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें निहित है उसे आपने सभीके लिये कौड़ीमोल सुलभ कर दिया। अध्यात्म और सदाचारविषयक इतनी सुन्दर पुस्तकें निकालकर आप अक्षय पुण्यकी प्राप्ति कर रहे हैं और साथ *ही थोड़ी भी हिन्दी जाननेवालोंको कल्याणमार्गकी ओर भी ले जा रहे हैं। आप धन्य हैं। आपकी ये पुस्तकें* रत्नवत् हैं।" —महावीरप्रसाद द्विवेदी

हिन्दीके पुराने महारथी पं० लज्जारामजी मेहताकी लम्बी सम्मतिका कुछ अंश पढ़िये—

"……प्रेम-जैसे गहन गम्भीर और पवित्र विषयके प्रत्येक अंगका भिन्न-भिन्न शीर्षकसे प्रतिपादन करनेमें श्रीवियोगी-हरिजीने सफल प्रयत्नकर कमाल कर डाला है…………। और तो सब ठीक ही है, किन्तु महात्मा सूरदासजी और गोस्वामी तुलसीदासजीके वात्सल्य-रसके दिग्दर्शनवाले पैंतीस पृष्ठ पढ़नेमें मेरी जो दशा हुई है उसे मेरा हृदय ही जानता है। प्रत्येक दो-दो चार-चार पंक्तियाँ पढ़ते समय मेरी आँखोंसे धाराप्रवाह आँसू बहते थे, बार-बार ऐनक हटा-हटाकर मैं उन्हें पोंछता था और फिर आगे बढ़नेका प्रयत्न करता था। कई बार इच्छा हुई कि किसी दूसरी बार कलेजेको कड़ा करके इतने पृष्ठोंका अवलोकन करूँगा, परन्तु पोथी छोड़ना भी नहीं बन सका।"

लोकमान्य तिलकद्वारा प्रतिष्ठित और श्रीकेलकरजीद्वारा सम्पादित प्रसिद्ध महाराष्ट्र पत्र 'केसरी' के उद्गार सुनिये—

"प्रेमका अर्थ कामक्रीड़ा नहीं। प्रेमका स्वरूप तो इससे कितना ही उच्च है। वह कैसा है? इस पुस्तकमें श्रीवियोगी हरिजीने उत्तम और विशद प्रकारसे दिखाया है। 'जो प्रेम शरीरके साथ क्रीड़ा करता है वह प्रेम नहीं, मोह है।' इस तत्त्वको लेखकने भली प्रकार दिखाया है।………प्रेमके विविध स्वरूपोंका मार्मिक विवेचन किया गया है। दूसरे खण्डमें 'विश्वप्रेम क्या है' यह दिखाकर सूरदास, तुलसीदासके काव्योंमें वात्सल्य रस कैसा ओत-प्रोत है यह दिखा मातृभक्ति और स्वदेशप्रेमके स्वरूपका दर्शन किया गया है। पुस्तक पठनीय है।"

वैदिक-अन्वेषणकारी श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके 'वैदिकधर्म'की सम्मति—

"यदि इस जगत्में कुछ दिव्य वस्तु है तो केवल प्रेम ही है। यदि इस स्थूल जगत्में रहते हुए चैतन्य जगत्का अनुभव लेना है तो अपने अन्दर प्रेमकी वृद्धि करनी चाहिये। सच्चा उच्च और दैवी प्रेम कौनसा है, और घातक मोह कौनसा है, यह साधारण मनुष्य नहीं जान सकता।…………जो यह 'प्रेमयोग' पुस्तक पढ़ेंगे वे उच्च प्रेम और हीन मोहका अन्तर जान सकते हैं। पुस्तक गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित हुई है, इतना कहनेमात्रसे इसकी उत्तमताका निश्चय हो सकता है।"

नयी पुस्तकें ! ॥ श्रीहरिः ॥ नयी पुस्तकें !

दो बहुत ही सुन्दर सचित्र पुस्तकें

(१) भक्त-बालक

पृष्ठ ८०, मोटा कागज, पुष्ट टाइटल, ४ रंगीन और १ सादा चित्र, पुस्तक सबके पढ़ने योग्य मोटे टाइपमें छपी है, दाम केवल ।~)।

इसमें भक्त चन्द्रहास, सुधन्वा, मोहन, गोविन्द और धन्नाकी सरस एवं भक्तिरससे भरी हुई कथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है। बार-बार भगवान् और उनके प्रभावका स्मरण होता है।

(२) भक्त-नारी

पृष्ठ ८०, मोटा कागज, पुष्ट टाइटल, ३ रंगीन और ३ सादे चित्र, पुस्तक सुन्दर मोटे टाइपमें छपी है, दाम केवल ।~)

इसमें भक्तिमती शबरीजी, मीराबाई, जनाबाई, करमैतीबाई और तपस्विनी रबियाकी प्रेमभक्तिसे पूर्ण बड़ी ही रोचक और उपदेशपूर्ण जीवनियाँ हैं। पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्दसे भर जाता है। चित्त भगवान्की ओर तेज़ीसे दौड़ने लगता है।

भगवान्के प्यारे भक्तोंके जीवनकी मीठी-मीठी बातोंको पढ़ने-सुननेसे आनन्द तो होता ही है, साथ ही हृदयके मल नष्ट होकर उसमें भगवान्की प्रेमा-भक्तिका अंकुर भी दृढ़तासे जम जाता है। दोनों पुस्तकोंमें ऐसी ही जीवनियाँ हैं। सर्वसाधारणसे इनके मधुर और पवित्र पठनसे अपने तन-मन-वचनको प्रफुल्लित करनेकी प्रार्थना है।

अन्य नयी पुस्तकें अन्य नयी पुस्तकें

(३) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जाननेयोग्य विषय

लेखक—'कल्याण'—पाठकोंके सुपरिचित श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

सुन्दर मोटे टाइपमें छपी हुई, पृष्ठ-संख्या ४३, मूल्य -)॥ डाकखर्च अलग।

पुस्तकका विषय नामसे ही जान पड़ता है। इसमें सरल सुबोध भाषामें गीताके कुछ विषय समझानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे जीवन्मुक्तका स्वरूप, जीव, ईश्वर और ब्रह्मका भेद; कर्म, विकर्म और अकर्मका स्वरूप; क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम; गीता मायावाद मानती है या परिणामवाद, ज्ञानयोग आदि शब्दोंका पृथक् पृथक् अर्थोंमें प्रयोग। पुस्तक सबके मनन करने योग्य है। इसकी अनेक विद्वानोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह पुस्तक 'गीता-परीक्षा समिति' की परीक्षामें रक्खी गयी है।

(४) एक सन्तका अनुभव

ऋषिकेशनिवासी त्यागी सन्त श्रीनारायणस्वामीने कृपाकर अपने जीवनमें जो साधन किये हैं, उन्हींको अपनी ही लेखनीसे लिख दिया है। साधकों और सच्चे सुखके अभिलाषियोंके लिये बहुत ही कामकी चीज़ है। पुस्तककी उपयोगिताको देखकर महाराष्ट्रके प्रसिद्ध विद्वान् श्री आर०के० कामतने मराठी अनुवाद करनेकी अनुमति माँगी है। पुस्तक नित्य मनन करने योग्य है। खरीदकर साधुओंमें बाँटनेसे बहुत लाभ हो सकता है। मूल्य -) डाकखर्च अलग।

गुजराती गीता, प्रह्लादचरित्र, वैराग्यपदावली, आचार्यके सदुपदेश चित्रकूटकी झाँकी आदि पुस्तकें शीघ्रही निकलनेवाली हैं।

Registered No. A. 1724.

श्रीरामायणकी आरती

आरति श्रीरामायणजीकी ।

कीरति कलित ललित सियपीकी ॥ टेक ॥

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ,

वाल्मीकि विज्ञान विसारद ।

सुक सनकादि सेष अरु सारद ,

बरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥१॥

संतत गावत संभु भवानी ,

औघट संभव मुनि विज्ञानी ।

व्यास आदि कविपुंग बखानी ,

काकभुसुंडि गरुड़के हियकी ॥२॥

चारउँ वेद पुराण अष्टदस ,

छहों सास्त्र सब ग्रन्थनको रस ।

तन मन धन संतनको सर्बस ,

सार अंस सम्मत सबहीकी ॥३॥

कलिमल-हरनि विषय-रसफीकी ,

सुभग सिंगार मुक्ति युवतीकी ।

हरनि रोग भव मूरि अमीकी ,

तात मात सबविधि 'तुलसी'की ॥४॥

ॐ

ॐ

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत् चित आनँद भूमा जय जय।
जय जय विश्वरूप हरि जय, जय अखिलात्मन जगमय जय।
जय विराट जय जगत्पते, गौरीपति जय रमापते ॥

वार्षिक मूल्य—भारतमें ४≈) विदेशमें [illegible]) एकप्रतिका मूल्य ।≈) इस अङ्कका मूल्य ॥)

Edited by Hanuman Prasad Poddar, Printed and Published by
Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur.

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांक सहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≈) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६≈) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।≈) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।≈ मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अंकसे १२ वें अंकतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरे सालके उस अङ्क तक नहीं बनाये जाते। 'कल्याण'का वर्ष श्रावणसे शुरू होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहले तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम पता साफ साफ लिखना चाहिये। महीने दो महीनों-के लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिख-कर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेप रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डर द्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी कभी तो हफ्ते दो महीनेतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलने तक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। यद्यपि दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधा है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या और अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर, रुपयोंका तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर' के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर' के नामसे भेजने चाहिये।

सीता-अन्वेषण ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
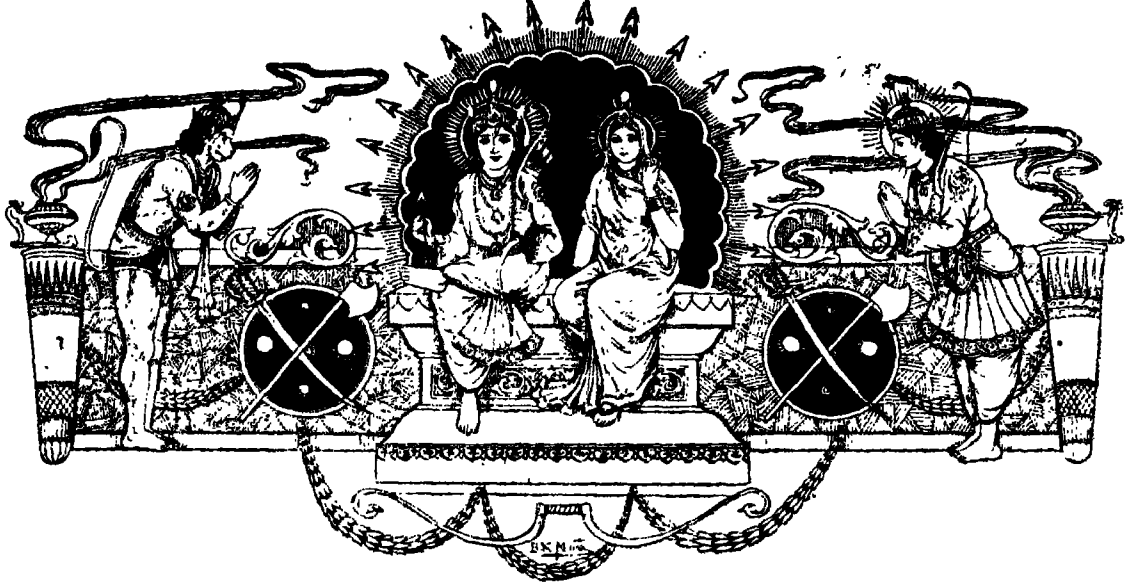
मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५ खण्ड १ | भाद्रपद कृष्ण ११ संवत् १९८७ अगस्त १९३० | संख्या २ पूर्ण सं० ५०

एक रामतें मोर भल

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ रामतें सकल फल ।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक रामतें मोर भल ॥

—गोसाईंजी महाराज

श्रीरामका राजधर्मोपदेश

त्यागमूर्ति धर्मात्मा भरतजी चित्रकूटमें श्रीरामजीके चरणोंपर पड़े हैं, आँसुओंसे उनके चरण धो रहे हैं, भरतका वेष तपस्वियोंका-सा है, अत्यन्त शोकके कारण थोड़े ही दिनोंमें उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया है। श्रीरामने प्रेमसे उठाकर भरतको हृदयसे लगा उनका मस्तक सूँघा और गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे उनकी इस दशाका कारण पूछा। पहले तो पिताजीके सम्बन्धमें प्रश्न किये फिर वे राजधर्मके विषयमें पूछने लगे। श्रीरामजीके प्रश्नोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय राजधर्म कैसा था? श्रीरामजीने भरतको विषादमय देखकर कहा--

'हे सौम्य! तुम अभी बालकके समान हो, तुम्हारे हाथसे कहीं राज्य तो नष्ट नहीं हो गया? हे सत्यपराक्रम! तुम पिताजीकी सेवा तो करते हो? भाई! अपने इक्ष्वाकु-कुलके आचार्य धर्मप्रेमी, विद्वान् महातेजस्वी महर्षि वशिष्ठजीकी पूजा तो करते हो? माता कौसल्या, सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली सुमित्रा और आर्या देवी कैकेयी तो तुमसे प्रसन्न हैं? विनयी, सर्वशास्त्रज्ञ, कर्मकाण्ड-निपुण, असूयारहित, कुलगुरु वशिष्ठजीके पुत्र, जो तुम्हारे पुरोहित हैं, उनका भलीभाँति सत्कार तो करते हो? बड़े बुद्धिमान्, वेदविधिके ज्ञाता, अत्यन्त विनयी गुरुपुत्र सुयज्ञ, जिनको तुमने अग्निकार्यके लिये नियुक्ति की है, हवनके पूर्व और हवनके पश्चात् तुम्हें उसकी सूचना तो देते हैं? तुम देवता, गुरुजन, पितर, पिताके समान पूज्य बड़े बूढ़े लोग, वैद्य, ब्राह्मण और नौकरोंका यथायोग्य सत्कार तो करते हो? इसी प्रकार शस्त्रास्त्रके प्रयोग जाननेवाले, अर्थ-शास्त्रके विद्वान्, राजनीतिविशारद धनुर्वेदके ज्ञाता सुधन्वा पण्डित आदि सत्पुरुष तुम्हारे द्वारा आदर तो पाते हैं? तुमने अपने समान विश्वासी शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय, कुलीन और ऊपरकी चेष्टासे ही मनके भावको समझ जानेवाले लोगोंको तो अपना मन्त्री बनाया है? क्योंकि शास्त्रज्ञ और मन्त्रकी रक्षा कर सकनेवाले मन्त्रियोंके द्वारा सुरक्षित मन्त्र ही राजाओंकी विजयका मूल कारण है।'

'तुम जागनेके समय सोते तो नहीं हो? रातके पिछले पहर उठकर अपने कार्योंकी सिद्धिका उपाय तो सोचते हो? अकेले ही तो किसी बातका मनमाना निश्चय नहीं कर लेते? अथवा बहुत-से अयोग्य आदमियोंके साथ मिलकर तो निश्चय नहीं करना चाहते? तुम्हारे स्थिर किये हुए विचारका काम पूरा होनेके पहले ही लोगोंको पता तो नहीं लग जाता? थोड़े प्रयत्नमें बड़ा फल उत्पन्न करनेवाला उपाय निश्चय कर लेनेपर फिर उसके अनुसार कार्य करनेमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सामन्त राजा तुम्हारे किसी विचारको कार्यके सिद्ध होने या सिद्धिके समीप पहुँचनेके पहले ही जान तो नहीं लेते? तुम्हारे निश्चित विषयोंको तुम्हारेद्वारा या मन्त्रियोंद्वारा कहे जानेसे पूर्व ही अनुमान, तर्क, युक्ति आदिके द्वारा कोई जान तो नहीं लेते? परन्तु तुम और तुम्हारे मन्त्रीगण दूसरोंके निश्चय किये हुए विषयोंको अनुमान, युक्ति और तर्कके द्वारा जान तो लेते हो? हजारों मूर्खोंकी अपेक्षा एक पण्डितको तुम अपने पास रखना अच्छा समझते हो न? क्योंकि संकटके समय पण्डित ही उत्तमोत्तम उपाय सोचकर राजाका महान् कल्याण करता है। राजा चाहे हजारों लाखों मूर्खोंको अपने पास रक्खे, उनसे समयपर कोई सहायता नहीं मिलती, पक्षान्तरमें एक ही बुद्धिमान्, शूरवीर, दक्ष, विचक्षण मन्त्री राजा या राजपुत्रको विशाल समृद्धिकी प्राप्ति करवा सकता है। तुम उत्तम

सेवकोंको उत्तम कार्यपर, मध्यमको मध्यम कार्यपर और छोटे सेवकोंको छोटे कामपर यानी जिसके लायक जो काम हो, उसको उसी कामपर नियुक्त करके सबकी ठीक व्यवस्था तो रखते हो ? बड़े-बड़े कामोंपर भलीभाँति परीक्षा किये हुए, बाप-दादोंके समयके मन्त्रियोंके वंशज, निष्पाप, ऊँचे विचारवाले लोगोंको ही नियुक्त करते हो न ? तुम किसीको ऐसा उग्रदण्ड तो नहीं देते, जिससे दुखी होकर प्रजा या मन्त्री तुम्हारा तिरस्कार करते हों ? हे भाई ! जैसे कुलीन स्त्री पर-स्त्रीमें आसक्त पुरुषका तिरस्कार करती है वैसे ही यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण तुमपर कोई अपराध लगाकर तुम्हें यज्ञके योग्य नहीं समझकर तुम्हारा अपमान तो नहीं करते ? धनके लोभसे राजाकी बीमारी बढ़ानेवाले वैद्यको, राजाके ऐश्वर्यको भ्रष्ट करनेके लिये विश्वासी सेवकोंको फोड़नेवाले सेवकको जो राजा प्राण-दण्ड नहीं देता वह स्वयं ही मारा जाता है। हे भरत ! तुम्हारा सेनापति तुमसे सदा प्रेम करनेवाला शूर-वीर, धीर, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन और चतुर तो है न ? युद्धकलामें निपुण, बलवान्, वीरतामें परीक्षा किये हुए प्रधान योद्धाओंको तुम सदा सम्मान-दानसे प्रसन्न तो रखते हो न ? सेनाको अन्न और वेतन प्रतिमास ठीक समयपर मिल जाता है न ? इस कार्यमें कुछ भी देर तो नहीं होती ? क्योंकि सैनिकोंको अन्न और वेतन समय-पर न मिलनेसे वे विद्रोही हो उठते हैं जिससे बड़ा अनर्थ हो जाता है। तुम्हारे कुलके प्रधान लोग तुमपर प्रेम तो रखते हैं न ? वे तुम्हारे हितके लिये समयपर स्वेच्छासे सदा प्राण देनेको तैयार तो रहते हैं न ? हे भाई ! अपने ही देशके विद्वान्, चतुर, प्रतिभाशाली, जैसा कहा हो वैसा ही कहने-वाले पण्डितोंको ही तुमने दूत बनाया है न ?

हे भरत ! एक दूसरेको न पहचाननेवाले तीन-तीन गुप्तदूतोंद्वारा तुम अपने राज्यके पन्द्रह और दूसरेके राज्यके अठारह तीर्थोंका पूरा पता तो रखते हो न ? १ मन्त्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति ५ द्वारपाल, ६ रनिवासका रक्षक, ७ कारागृह-अध्यक्ष (जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट), ८ खजाञ्ची, ९ राज्यकी आज्ञा सुनानेवाला, १० वकील, ११ न्यायकर्त्ता (जज), १२ व्यवहार-निर्णायक (पञ्च या जूरी), १३ सेनाको वेतन चुकानेवाला, १४ कर-संग्रहकर्त्ता (तहसीलदार) १५ नगराध्यक्ष, (म्युनिसिपलिटिका चेयरमैन) १६ राष्ट्रान्तपाल (सीमारक्षक), १७ दुष्टोंको दण्ड देनेवाला, और १८ जल, पर्वत और वनोंके किलोंकी रक्षा करनेवाला, ये अठारह तीर्थ हैं, इनमें मन्त्री, पुरोहित और युवराजको अलग कर देनेपर पन्द्रह बचते हैं। इन सबके कार्योंपर राजाकी जरूर निगरानी रखनी चाहिये। हे शत्रुदमन ! देशका अहित करनेवाले जिन लोगोंको तुमने देशसे निकाल दिया है, वे यदि देशमें फिर आ बसते हैं तो तुम उनको दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते ? तुम नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते ? परलोक-ज्ञानसे शून्य अनर्थपरायण, पाण्डित्याभिमानी लोगोंसे बहुत बुराई होती है। ऐसे दुर्बुद्धि लोग प्रामाणिक धर्म-शास्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी शुष्क तर्क-बुद्धिसे अर्थहीन उपदेश किया करते हैं। भाई ! हमलोगोंके वीर पूर्वजोंके द्वारा सेवित यथार्थ अयोध्या (जहाँ युद्धार्थ कोई भी शत्रु नहीं आता) नामवाली और मजबूत दरवाजोंवाली, हाथी, रथ और घोड़ोंसे भरी हुई, अपने-अपने कर्ममें लगे हुए जितेन्द्रिय उत्साही और उत्तम हजारों ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंसे युक्त, अनेक प्रकार बड़े-बड़े सुन्दर महलोंवाली, अनेक प्रकारके विद्वान् और धन-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण विशाल नगरीकी भलीभाँति रक्षा तो करते हो न ? हे भाई ! जिसमें अनेक देव-मन्दिर हैं, अश्वमेधादि यज्ञ करने योग्य अनेक स्थल हैं, जो बुद्धिमान् मनुष्योंसे पूर्ण है, नदी, तालाब आदि जलाशयोंसे युक्त है, जिसमें सभी स्त्री-पुरुष सुप्रसन्न हैं, जहाँ अनेक सभाएँ और उत्सव हुआ करते हैं, अच्छी खेती होती है, पर जो

बादलोंपर निर्भर नहीं है, जो गौ आदि पशुओंसे भरा है, जहाँ पशुहिंसा बिल्कुल नहीं होती जहाँ हिंस्र पशु नहीं हैं अर्थात् हिंसक पशुओंने हिंसा छोड़रक्खी है, किसीको किसी प्रकारका भय नहीं है, अनेक धातुओंकी खानें हैं, जहाँ पापी मनुष्य नहीं रहते, ऐसा अपने पूर्वजोंद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली देश तुम्हारे शासनमें सुखी तो है ? हे भाई ! अपने देशमें रहनेवाले खेती और गोरक्षापर आजीविका चलानेवाले वैश्योंपर तुम प्रेम तो करते हो न ? खेती और व्यापारमें लगे हुए वश्योंकी सारी इच्छाओंको पूर्ण करके तुम उनका भलीभाँति संरक्षण तो करते हो न ? देशमें बसनेवाली प्रजाका पालन करना राजाका धर्म है। तुम स्त्रियोंका किसी प्रकार अपमान तो नहीं होने देते हो ? स्त्रियोंका भली-भाँति सन्तोष तो कराते हो ? वे तुमसे सुरक्षित तो रहती हैं ? तुम उनके वचनोंपर अतिविश्वास तो नहीं करते ? और उन्होंको इष्ट मानकर अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते हो ?

हे भारत ! जहाँ बहुत-से हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसा अपना हाथीवन तो सुरक्षित है ? तुम अच्छे हाथी, हथिनी और घोड़ोंके संग्रहमें तृप्त तो नहीं होते ? तुम प्रतिदिन प्रातःकाल राजमार्गों-पर जाकर प्रजाको अपने सुसज्जित शरीरसे दर्शन तो देते हो ? तुम्हारे कर्मचारी, निशङ्क होकर तुम्हारे सामने बेअदबीसे तो नहीं आते ? अथवा तुमसे डरकर या तुम्हें अभिमानी समझकर तुम्हारे सामने आनेमें सङ्कोच तो नहीं करते ? कर्मचारियों-को न तो बहुत पास रखना चाहिये और न बहुत दूर ही। बीचका मार्ग ही अच्छा है। हे भाई, तुम्हारे सब किले धन-धान्य, हथियार, जल, अनेक प्रकारके यन्त्र-शिल्पी और धनुर्धारी वीरोंसे तो भरे हैं ? तुम्हारी आमदनी खर्चसे ज्यादा तो है ? तुम्हारा धन नाचने गाने और खुशामद करनेवाले अपात्रोंमें तो खर्च नहीं होता ? राजाको आमदनीसे खर्च कम करना चाहिये और वह भी प्रजाको अन्न, जल, वायु आदि दैवी वस्तुओंसे यथायोग्य सुख पहुँचानेवाले देवों, प्रजाके सुखाकांक्षी पूज्य पितृ-गणों, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मणों, पूज्य अतिथियों, राज्यरक्षक योद्धाओं, सम्बन्धी और प्रिय मित्रोंके पोषण करनेमें और प्रजाके सुखके कार्योंमें करना चाहिये।

हे भाई ! तुम्हारे राज्यके न्यायाधीश, किसी सदाचारी साधुपर कोई झूठा अपराध लगनेपर धर्मके ज्ञाता पुरुषोंके द्वारा निर्णय कराये बिना ही धनके लोभसे उसे दण्ड तो नहीं दे देते ? अथवा घरके मालिक या तुम्हारे सिपाही द्वारा पकड़े हुए चोरको, उसके चोर सिद्ध हो जानेपर एवं चोरीका माल पकड़ा जानेपर भी लोभसे छोड़ तो नहीं देते ? सारांश कि राजाको यह खयाल रखना चाहिये कि जिसमें उसके राज्यमें निरपराधी प्रजा दण्डित न हो और अपराधी छूट न जाय ! हे भाई ! तुम्हारे शास्त्रज्ञ मन्त्रीगण धनी और गरीबके मामलेमें लोभ छोड़कर निष्पक्ष यथार्थ न्याय तो करते हैं ? क्योंकि राजाके अन्यायके कारण बिना अपराध दण्डित हुए मनुष्योंकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं वे भोग-विलासके लिये राज्य करनेवाले राजाके पुत्र और पशुधनको नष्ट कर डालते हैं। हे प्रिय ! तुम वृद्धों, बालकों और प्रधान वैद्योंका दान, स्नेह और मधुर वचनोंसे सत्कार तो करते हो ? इसी प्रकार देवताओं, गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, अतिथियों, देवमन्दिरों और तपस्या आदि द्वारा पवित्र हुए ब्राह्मण आदिको प्रणाम तो करते हो ?

भाई ! प्रातःकालका समय धर्मोपार्जनका है, उस समय अर्थोपार्जनके कार्यमें लगकर धर्मका बाध तो नहीं करते ? ऐसे ही मध्याह्नकाल राज-काज देखनेका यानी अर्थ-संग्रह करनेका है, उस समय धर्मकार्यमें लगकर अर्थका बाध तो नहीं करते ? अथवा इन्द्रिय-भोगार्थ, कामके वश हो धर्म अर्थ दोनों-को बाधित तो नहीं करते हो ? समयका उचित विभाग करके ही धर्म, अर्थ और कामका यथा-

योग्य आचरण करते हो न ? भाई ! देशके विद्वान् ब्राह्मण और समस्त प्रजाजन तुम्हारा कल्याण तो चाहते हैं ?

नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता ज्ञानियोंका संग न करना, आलस्य, इन्द्रियोंके वश होना, महत्त्वपूर्ण कार्यका अकेले ही विचार करना, विपरीत दृष्टिवाले अयोग्य पुरुषोंकी सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्यका आरम्भ न करना, गुप्त मन्त्रणाओंका भेद खोल देना, प्रतिदिन प्रातःकाल नित्यकर्म न करना, सब ओरके शत्रुओंपर एक ही साथ चढ़ाई कर देना, और महापुरुषोंको आते देख सिंहासनसे उठकर उसे प्रणाम न करना ये चौदह राजदोष समझे जाते हैं, तुममें इनमेंसे एक भी दोष तो नहीं है न ?

हे बुद्धिमान् भरत ! दशवर्ग[1], पञ्चवर्ग[2], सप्तवर्ग[3], चतुर्वर्ग[4], अष्टवर्ग[5], और त्रिवर्ग[6], को तो तुम तत्त्वसे जानते हो ? त्रिविध विद्या[7],की ओर तो तुम्हारा ध्यान है न ? बुद्धिसे इन्द्रियोंको जीतनेका उपाय[8], षड्गुण[9], दैवी आपत्ति[10], मानुषी आपत्ति[11], राज-कर्तव्य[12], बीसवर्ग[13], पाँच प्रकृति[14], राजमण्डल[15], पञ्चयात्रा[16], दण्डविधान, एवं सन्धि और विग्रह, ये सब नीतिशास्त्रके तत्त्व हैं। इनमें

१–शिकार, जूआ, दिनमें सोना, व्यर्थ बकवाद, अति स्त्री-संग, मदिरा आदि नशीली चीजोंका सेवन, नाचना, गाना, बाजे बजाना और बेमतलब भटकना। यह कामसे उत्पन्न होनेवाला 'दशवर्ग' है।

२ पाँच प्रकारके किले बनाना—समुद्र, नदी, तालाब आदि जलस्थानमें, पर्वतपर या पर्वतोंके बीचमें, वृक्षोंपर या वृक्षोंसे भरे जंगलमें, ऊसर जमीनमें (रणक्षेत्रमें) और हथियारोंके बीचमें। यह पञ्चवर्ग है।

३–राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किले, खजाना, सेना और सहायक बन्धु, यह सप्तवर्ग है, इनकी परस्पर सहायतासे राज्य सुदृढ़ होता है।

४–साम, दान, भेद और दण्ड यह चतुर्वर्ग है।

५–चिढ़ना, दुःसाहस, द्रोह, ईर्षा, असूया, अर्थदोष वचनकी कठोरता और कठोर दण्ड, यह अष्टवर्ग है। यह क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका समूह है।

६–धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग है। उत्साह, प्रभु और मन्त्रको भी त्रिवर्ग कहते हैं।

७–वैदिक धर्मज्ञान, खेती-व्यापार आदि वृत्तिका ज्ञान और राजनीतिका ज्ञान।

८–यम, नियम, आसन प्राणायाम और विचार विवेक आदि योग और ज्ञानके साधन।

९–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय।

१०–अग्नि, बाढ़, अकाल, भूकम्प, वज्रपात, अनावृष्टि, महामारी आदि।

११–चोर, डाकू, शत्रु, राजद्रोही, अधिकारी, और राज्यलोभी आदि मनुष्योंके द्वारा प्राप्त होनेवाली विपत्तियां।

१२–शत्रुपक्षके लोभी, अभिमानी, क्रोधी और डरपोक मनुष्योंको धन मान देकर, प्रियकार्य कर और भय दिखलाकर वशमें करना।

१३–बालक, वृद्ध, दीर्घकालका रोगी जातिबहिष्कृत, डरपोक, डरपोक साथियोंवाला, लोभी, लोभी साथियोंवाला बैरागी, अत्यन्त विषयासक्त, चञ्चल, देव और ब्राह्मणोंका निन्दक, अभागी, प्रारब्धवादी, अकालपीड़ित, सेनाहीन, अयोग्य स्थानमें निवास करनेवाला, बहुत शत्रुओंवाला, कालपीड़ित, और सत्यधर्ममें प्रीति न रखनेवाला। यह बीसवर्ग है। ऐसे शत्रुओंसे सन्धि करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इनपर विजय प्राप्त करना सहज है।

१४–मन्त्री, देश, किला, खजाना और दण्ड, यह पांच प्रकृति हैं।

१५–विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार, मध्यस्थ और उदासीन, ये द्वादश राजमण्डल हैं।

१६–विगृह्ययान (बड़ी सेना साथ लेकर जाना) संधाययान (जिस शत्रुपर आक्रमण किया था, उससे सन्धि करनेके बाद दूसरे शत्रुपर हमला करने जाना) संभूययान (शूरवीरोंको साथ लेकर जाना), प्रसंगतोयान (जिसपर हमला करने जा रहे थे, उसको छोड़कर बीचमेंही दूसरे शत्रुपर हमला करना) और उपेक्ष्ययान (जिसपर चढ़ाई की थी, उसे बलवान समझकर उसके मित्रपर चढ़ाई करना)

कुछ ग्रहण करने योग्य, कुछ त्याग करने योग्य और कुछ प्रतीकार करने योग्य हैं। तुम इन सबके भेदोंको समझते हुए यथायोग्य ग्रहण, त्याग और प्रतीकार तो करते हो न ?

हे बुद्धिमान्! तुम शास्त्रानुसार तीन चार निपुण मन्त्रियोंसे एक साथ या उनके मनकी बात जाननेके लिये अलग अलग राय लेकर तो सारे कार्य करते हो न ? वेदोक्त क्रियाओंको करके तुम वेदको सफल तो करते हो ? तुम्हारे सारे राज्यकार्य सफल तो होते हैं ? उत्तम आचरण करके तुम श्रवण किये शास्त्रोंको तो सफल कर रहे हो ? धर्मपरायणा और सन्तानवती होकर स्त्रियाँ तो सफल हैं ? भाई भरत! मेरे कथनानुसार ही तुमने आयु, यश, धर्म, अर्थ और कामको प्रदान करनेवाली सद्बुद्धिका आश्रय ले रक्खा है न ? तुम अपने पिता-पितामहादिके व्यवहारके अनुकूल ही व्यवहार करते हो न ? क्योंकि वही शुभ और सत्पथा वृत्ति है। तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले तो नहीं खाते ? अधिक प्रेम होनेके कारण भोजन चाहनेवाले मित्रोंको यथेच्छ भोजन तो देते हो न ? इसप्रकार धर्मानुसार शासन करनेवाला राजा अपनी प्रजाका पालन करके समस्त पृथ्वीपर अपना आधिपत्य स्थापित करता है और मृत्युके अनन्तर स्वर्ग या परमधामको जाता है।' यह वर्णन वाल्मीकिरामायणके आधारपर लिखा गया है।

—रामायण-प्रेमी

श्रीरामायणकी अनुष्ठान-विधि

(लेखक—पं० गौरीशंकरजी द्विवेदी)
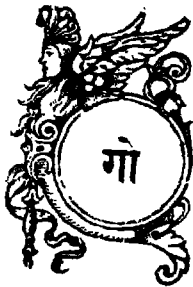
गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें जो भक्ति-सुधा-सरिता प्रवाहित की है उसका क्षेत्र अवतारवाद और भक्ति है, यह सर्वसम्मत है। शुद्ध परमात्म-ज्ञानभानुके आलोकमें उसके चमत्कृत होनेके साथ ही उसका उद्गम और अवसान उस सनातन-तत्त्व तन्त्रमें होता है जिसके बिना यह सारी रचना अपूर्ण रह जाती है। यह है राम-नाम-जपकी महिमा। मन्त्र-जप तन्त्र-शास्त्रका मूल है। तान्त्रिकोंकी सारी शक्तिका केन्द्र मन्त्र-जपमें ही होता है। तन्त्रमें हमारी श्रद्धा आदिकालसे है। वेदसे लेकर आधुनिक कालके नानापुराणनिगमागमसम्मत रामचरितमानसतक जितने ग्रन्थ सनातनधर्मपर लिखे गये हैं सबमें तन्त्रका प्रभाव है। इसकी शक्तिके विषयमें गोस्वामीजीने स्वयं कहा है—

मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व ।
महामत्त गजराजकहँ बस कर अंकुश खर्व ।।
मंत्र महामणि विषय व्यालके । मेटत कठिन कुअंक भालके ।।

इसप्रकार मन्त्र-माहात्म्यके द्वारा तन्त्रशास्त्र (आगम)का सार रामनाम श्रीरामचरितमानसका प्राण है। इस प्राणकी प्रतिष्ठा कथाके द्वारा हुई है। ज्ञान और भक्ति दो पार्श्व-सहकारी हैं।

इसप्रकार प्राण-प्रतिष्ठा हो जानेके अनन्तर मन्त्रका यजन-पूजन सनातन कृत्य है, जो 'मन्त्रा वै देवाः' के अनुसार वैदिक युगके यज्ञ-विधानके उपरान्त पौराणिक कालके नवधाभक्तिके एकीकरणमें व्यक्त होता है। इसीका प्रत्यक्ष स्वरूप पौराणिक कथाओंके माहात्म्यमें प्राप्त होता है। इन कथाओंका अनुष्ठान, इनकी पूजा-पाठ-विधि भारतके प्रत्येक प्रान्तोंमें पायी जाती है। इन कथाओंके द्वारा तन्त्रशास्त्र-विहित मन्त्र-देवकी प्राण-प्रतिष्ठा, यजन-पूजनादि विधियाँ समारोहके साथ की जाती हैं, इनमें मुख्यरूपेण भक्ति और गौणरूपसे ज्ञान-चर्चा होती है। समाजकी नैतिक और आध्यात्मिक दशाको सौम्य और समुन्नत बनानेमें इन अनुष्ठानोंका बड़ा हाथ रहा है और इनके द्वारा संस्कृतिकी रक्षा भी हो सकी है। यहाँ रामायणकी अनुष्ठान-विधिपर कुछ लिखा जाता है। परम भागवत नारदमुनिने श्रीसनत्कुमारसे ध्यानपूर्वक जो रामायणपाठकी

विधि बतलायी थी उसीका यहाँ संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया जाता है।

परम पुनीत चैत्र, कार्तिक या माघमासमें श्रीरामायणकी कथा नौ दिनतक नित्य श्रद्धापूर्वक कहलावे। शुक्ल-पक्षमें पञ्चमीसे कथारम्भ करे। प्रतिदिन अपामार्गकी शाखा ले दन्त-संशुद्धि कर स्नानादि करे और शुद्ध शुक्लवस्त्र धारणकर, नारायणका नाम-स्मरण करता हुआ आचमन करके अपने बन्धु-बान्धवोंको बुलाकर रामभक्तिपरायण हो स्वस्तिवाचन करे। पश्चात् सङ्कल्प करके भक्तिभावसे पञ्चदेवताओंकी अर्चनाकर श्रीमद्रामायणके पुस्तककी अर्चना करे। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी मूर्ति स्थापित करे और हनूमान्‌की भी प्रतिमा रक्खे। आवाहन करके आसनादि प्रदान करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यसे भक्तिपूर्वक श्रीनारायणकी पूजा करे और प्रत्यह एक बार, दो बार या तीन बार जितना हो सके अपनी शक्तिके अनुसार होम करे। तदनन्तर कर्मनिष्ठ उत्तम ब्राह्मणसे श्रीरामायणकी कथा श्रवण करे। इसीप्रकार नव दिनतक नित्य कथा सुने। नवें दिन कथा समाप्त होनेके पश्चात् कथावाचक ब्राह्मणको गौ, वस्त्र, द्रव्यादि यथाशक्ति प्रसन्नतापूर्वक भक्तिभावसे दान करे और श्रीमद्रामायणकी पुस्तक अपनी शक्तिके अनुसार विद्वान् ब्राह्मणोंमें बाँटे।

श्रीरामचरितमानसके नवाह्निक पाठका क्रम इसप्रकार है-

प्रथम दिवस बालकाण्डके 'जो सुमिरत सिधि होइ' इस सोरठेसे लेकर 'हियँ हरषे कामारि' इस दोहेतक।

द्वितीय दिवस 'सुनु सुभ कथा भवानि' इस सोरठेसे 'सतानंद पद बंदि प्रभु' इस दोहेतक।

तृतीय दिवस-'सीय स्वयंबर देखिय जाई' इस चौपाईसे 'कीन्ह सौच सब सहज सुचि' इस दोहेतक।

चतुर्थ दिवस-'भूप बिलोकि लिए उरलाई' इस बालकाण्डकी चौपाईसे 'स्यामल गौर किशोरवर' इस अयोध्याकाण्डके दोहेतक।

पञ्चम दिवस-'कोटि मनोज लजावनि हारे' इस चौपाईसे 'राम सैल सोभा निरखि' इस दोहेतक।

षष्ठ दिवस-'नव केवट ऊँचे चढ़ि धाई' इस अयोध्याकाण्ड-की चौपाईसे 'हारि परा खल बहुत बिधि' इस दोहेतक।

सप्तम दिवस-'जेहि बिधि कपट कुरंग सँग' इस आरण्यकाण्ड-के दोहेसे लंकाकाण्डके 'कह मारुतसुत सुनहु प्रभु' इस दोहेतक।

अष्टम दिवस-'पवनतनयके बचन सुनि' इस लङ्का-काण्डके दोहेसे उत्तरकाण्डके 'जहँ तहँ धावन पठइ पुनि' इस दोहेतक।

नवम दिवस 'अवधपुरी अति रुचिर बनाई' इस चौपाईसे उत्तरकाण्डके अन्ततक।

इसप्रकार श्रीरामायणका पाठ समाप्त होनेपर प्रतिदिन आरती करे और मङ्गलगान करे तत्पश्चात् सुमन वर्षाकर श्रीनारायण-गुण-गानकर कथा समाप्त करे। जबतक कथा होती रहे तबतक भगवान् श्रीराम और शिवजीका नाम-जप करता रहे। इसप्रकार रामायणकथाका वाचन करवानेसे ऋद्धि-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति और परमधाम तक, अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मनचाही सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

दीजे सुमति

'दशरथजी' के 'लाल' 'जनकजी' के 'जामाता'।
'सीताजी' के 'देव', 'भरतजी' के वर 'भ्राता'।
'शंकरजी' के 'पूज्य', 'मारुतीजी' के 'स्वामी'।
'रावण' के 'अरि' प्रबल, 'सुरों' के 'बल' निष्कामी।
'तुलसी' के सर्वस्व 'प्रभु', विप्र 'गुणाकर' की विनति।
चरण—कमलमें होय रति, यही राम दीजे सुमति।

सुखराम चौबे 'गुणाकर'

आदर्श राज्य-व्यवस्था

अर्थात्

रामराज्य और प्रजासन्तोष

(लेखक—श्री०सी०एस०त्रिवेदी महोदय)

प्रत्येक देशकी, देशवासियोंकी, समाजकी और समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी आर्थिक, शारीरिक, औद्योगिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति प्रधानतः उनकी राज्यव्यवस्थापर अवलम्बित हैं। चारों दिशाओंके प्रायः सभी देशोंने इस सर्व-मान्य सिद्धान्तका अनुभव किया है और इसीलिये वे अपने अपने यहाँ आदर्श राज्य-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठाके लिये प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे हैं।

एक या अनेक कारणोंसे बढ़ते हुए दुःख, दारिद्र्य, बेकारी और असन्तोषके कारण साधारण प्रजाको जीवन-निर्वाहके आवश्यक साधनोंकी प्राप्तिमें भी उत्तरोत्तर कठिनता बढ़ती जा रही है। आत्मसम्मानकी सम्मान्य भावनाका भी सहजमें पोषण नहीं होता। इसप्रकारके अनेक कारणोंसे प्रत्येक देशकी अधिकांश प्रजाका जीवन क्रमशः मधुरिमा-शून्य बनता जा रहा है। उनमें तीव्रता और कटुता बढ़ रही है। इस प्रवृत्तिने कई जगह तो राजा-प्रजामें कटुता उत्पन्न कर दी है। प्रजामें बढ़ती हुई इस असन्तोषकी भावनाने अनेक सम्राटों और राजाओंको निर्वासित करा दिया है और अनेक साम्राज्योंके सिंहासन हुला दिये हैं।

कैसी राज्य-व्यवस्थासे प्रजा सुखी, सन्तोषी, सम्पन्न और आत्मबलयुक्त हो सकती है, इस प्रश्नने जगत्के महापुरुषोंको भी चक्करमें डाल रक्खा है, इसीलिये यूरोपके पृथक् पृथक् देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी राज्य-व्यवस्था (Forms of Government) का प्रयोग हो रहा है। करोड़ों मनुष्योंके सुख, सन्तोष और जीवनकी आहुतिसे गढ़ी जानेवाली इन राज्य-व्यवस्थाओंमें कौन-सी उपादेय है, इस बातको अभी पाश्चिमात्य प्रजा एकस्वरसे निश्चयरूपसे नहीं बतला सकी है। उसने अभीतक अपनी राज्य-व्यवस्था-का आदर्श अर्थात् आदर्श राज्यव्यवस्था (Ideal form of Government) प्रतिष्ठित नहीं की है।

समुचित स्पष्ट आदर्शके अभावसे पाश्चात्य देशोंकी स्थिति—उन राष्ट्रोंकी स्थिति ध्रुवहीन जहाजके सदृश है। ध्येय या आदर्शके अभावके कारण, ध्येयप्राप्तिके साधनोंपर भी आवश्यक विचार नहीं किया जा सकता। साधनका समुचित निर्देश किये बिना राज्य-व्यवस्थाके सिद्धान्तका निश्चय न होना स्वाभाविक ही है।

सौभाग्य-वश इस विषयमें भारतकी स्थिति पाश्चिमात्य देशोंकी अपेक्षा अच्छी है। स्वराज (Home Rule) स्वतन्त्रता (Independence) और औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) आदि पारिभाषिक शब्दोंको एक ओर रखकर भारतके जनसाधारणसे राज्य-व्यवस्थाका आदर्श पूछा जाय तो वे तुरन्त 'रामराज्य' का नाम लेंगे।

लगभग समस्त भारतद्वारा स्वीकृत और समस्त जगत् द्वारा सहज ही आदर्शरूपमें आदरित रामराज्यकी इतनी यशोगाथा क्यों गायी जाती है? इस प्रश्नका उत्तर पानेके लिये सम्पूर्ण रामायणको भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे पढ़ जानेकी आवश्यकता है। विभिन्न धर्मावलम्बियोंकी दृष्टिमें भी रामायण धर्मग्रन्थकी हैसियतसे एक सर्वमान्य ग्रन्थ है। किसी भी दूसरे धर्मग्रन्थकी अपेक्षा इसका पठन-पाठन अब भी अधिक होता है। परन्तु राजनीतिक (Political Standpoint) दृष्टिसे इसका अभ्यास करनेवाले नहींके बराबर हैं। यदि इस ग्रन्थका राजनीतिक दृष्टिसे बारीकीके साथ अध्ययन किया जाय और वह जगत्के सामने रक्खा जाय तो आज जैसे रामराज्यके लिये भारत तलमला रहा है, रामायण-वर्णित राज्य-व्यवस्थाके लिये वैसी ही तलमलाहट सारे जगत्में हो जाय, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

प्रत्येक राज्यमें राजा (Ruling Power-Sovereign authority) और प्रजा (Ruled Subject) ये दो मुख्य वर्ग होते हैं। राजाका प्रजापर और प्रजाका राजापर असर (Interaction) होता है। राजाका भला बुरा होना उसकी शिक्षा (Education) और आसपासके वातावरण (Surroundings) पर अवलम्बित है। श्रीरामको एक राजकुमार (Prince) की हैसियतसे जैसी शिक्षा मिली थी और उनके आसपास जैसा वायुमण्डल उपस्थित

किया गया था, वैसी शिक्षा और वैसा वातावरण हो तो आज भी श्रीराम-सरीखे राजा हो सकते हैं और रामराज्यकी स्थापना हो जा सकती है। रामराज्यकी प्रजामें उस समय जैसा सन्तोष, सुख और आबादी थी वैसी ही स्थिति आज भी उत्पन्न की जा सकती है। इस दृष्टिसे देखनेपर पता चलेगा कि यह रामायण राजा और प्रजा दोनोंके लिये एक बड़ा ही उपयोगी राजनीतिक-शास्त्र है।

जैसे समष्टि (Society) का मुख्य आधार व्यष्टि (Individual) है, वैसे ही राज्यका मुख्य आधार एक कुटुम्ब है। आदर्श कुटुम्ब (Ideal family) आदर्श राज्यका प्रथम सोपान है। यह आदर्श कुटुम्ब यदि राज-कुटुम्ब होता है तो उसका प्रभाव सारे समाजपर बहुत ही शीघ्र पड़ता है। रामायणका अर्थ है एक आदर्श राज्य-कुटुम्बका इतिहास। दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि इस आदर्श राज्य-कुटुम्बके व्यक्ति हैं। हनूमान्, अंगद प्रसिद्ध राज्य-सेवक हैं। आदर्श राजाके प्रति आदर्श राज-भक्तिके मूर्तिमान सिद्धान्त रामायणके पन्ने-पन्नेमें भरे हैं।

रामायण जनताके सामने केवल राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, विश्वामित्र, हनूमान् आदिके आदर्श (Ideals) चरित्र ही उपस्थित नहीं करती, वह इस उच्च आदर्शके साथही दैनिक जीवन-व्यवहारमें Actual every day life) आनेवाले कितने ही साधारण और सांसारिक भोगदृष्टिवाले पात्रोंको भी उपस्थित करती है। कैकेयी, मन्थरा, शूर्पणखा, बालि, रावण आदि इसी श्रेणीके पात्र हैं।

'पहलेका समय अच्छा था। उस समय लोग भी भले थे। अब इस घोर कलिकालमें तो चरित्रका माहात्म्य ही नहीं रहा।' इसप्रकार कहनेवालोंको रामायण खूब मुँहतोड़ जवाब देती है। कलियुगमें नहीं, त्रेतायुगमें भी-किसी विदेशी राज्यमें नहीं, साक्षात् रामराज्य और खास भगवान् रामचन्द्रजीके महलोंमें भी भले और बुरे दोनों ही तरहके मनुष्य थे, नेकी-बदी, अच्छे-बुरे और पुण्य-पापकी भावना सृष्टिके प्रारम्भसे ही चली आती है और सृष्टि विनाशके पूर्व उसका सर्वथा विनष्ट होना भी कठिन ही है। यह सत्य सभीको जान रखना चाहिये। पापका-दुष्टात्माओं-का सर्वथा अभाव तो असम्भव है। हाँ, राम जैसे पुण्यशील चरित्रसे पापात्मा मनुष्य भी अपना चरित्र निर्मल और अमर कर सकता है। दुष्टकी—पापकी—केवल निन्दा करनेमें नहीं, अपने चरित्र-विकाससे ही उसका पराजय करनेमें मनुष्यकी महत्ता निहित है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे यही शिक्षा मिलती है।

भगवान् रामचन्द्रजी किसप्रकारकी शिक्षा और किस-प्रकारके संयोगोंसे एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श शिष्य और आदर्श स्वामी हो सके थे, इसका तत्त्व जाननेके लिये तो रामायणका बहुत ही सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करना आवश्यक है, परन्तु भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनके कतिपय मुख्य-मुख्य प्रसंगोंका सहज विहंगावलोकन (Birds-eye-view) करनेसे भी चरित्रके विकासमें—राज्य-व्यवस्थामें-आदर्श राज्यके संगठनमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

महाराज दशरथके वृद्धावस्थामें चार पुत्र हुए। इन चारों पुत्रोंमें उनकी रामचन्द्रजीपर अधिक प्रीति थी। राजकुमारके पन्द्रह-सोलह वर्षकी किशोरावस्थाको पूरी करनेके पहले ही महर्षि विश्वामित्र-राज्यके एक प्रजाजन-ने अपने यज्ञकी रक्षाके लिये राजासे उनको माँगा।

तपस्वी मुनियोंका—सत्पुरुषोंका-राज्यकी सदाचारी प्रजाका यथायोग्य संरक्षण करना राज्यका सर्वप्रथम कर्तव्य है, महाराज दशरथ इस बातको भलीभाँति जानते थे। अतः उन्होंने राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके साथ भेज दिया। रामराज्यकी राज्य-व्यवस्थाका—प्रजाके प्रति प्रेमका-राजाके उत्तरदायित्वके ज्ञानका-प्रजाके दुःख सुनकर उसे निर्भय रखनेके लिये राजाकी तत्परताका यह एक अमूल्य उदाहरण है। दशरथजीके दरबारमें शूरवीर सेनापति भी थे, परन्तु प्रजाका संरक्षण करनेके लिये राजा अपने लाड़ले पुत्रोंको राक्षसोंके साथ लड़ने भेज देते हैं, यह रामराज्यकी महत्ता है। जो राजा अपनी प्रजाके संरक्षणकी वेदीपर अपने प्यारे और कोमल अंगके बच्चोंको होम देनेमें जरा भी नहीं झिझकता, उस राजाके प्रति प्रजाकी कितनी और कैसी भक्ति होगी? इसका अनुमान सभी कर सकते हैं।

विश्वामित्रके आश्रममें रामचन्द्रजीने क्या किया? उन्होंने ऋषि-मुनियोंको यज्ञ करनेके लिये कहा और स्वयं उनकी पर्णकुटियोंके पहरेदार बने। जन्मसे ही राज्यवैभवमें पले हुए इन दोनों बालकोंको ऋषियोंका संरक्षण करते देख प्रजा कैसे हर्षोन्मत्त न हो जायगी? राम-लक्ष्मणकी

स्वधर्मपरायणवृत्ति, सुख-स्वार्थके त्यागकी शक्ति और मुनि-शुश्रूषाकी उत्सुकता महान् तपस्वीके तपसे भी विशेष उग्र थी।

राज्यकी ओरसे विश्वामित्रजीको जो संरक्षण (Protection) मिला था, वे भी उसका बदला चुकाये बिना रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे। प्रजाके प्रति वात्सल्यभाव दिखानेवाले राजा दशरथके प्रति महर्षि विश्वामित्र भी राजभक्ति दिखलानेमें पीछे नहीं हटे। राज्यके कलुषित वातावरणमें जिन सद्गुणोंका विकास नहीं हो सकता, ऐसे सद्गुणोंका विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीमें विकास कर दिया। श्रीराममें महान् शारीरिक शक्ति आ गयी। संयम (Control) रहित शक्ति बिना लगामवाले घोड़े जैसी है। इस बातको महर्षि भली-भाँति जानते थे। अतएव भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रमें इन्होंने संयमकी शक्तिका भी विकास कर दिया।

श्रीरामको सीता-स्वयंवरमें ले जानेवाले भी विश्वामित्र ही थे। हजारों योद्धाओंसे जो शिवजीका धनुष नहीं टूट सकता, रामचन्द्रजीने उसीको तोड़ डाला और परिणाम-स्वरूप सीता-रामके शुभ विवाहका शुभ सुयोग उपस्थित हुआ। इन सबका श्रेय विश्वामित्र-जैसे महर्षिको ही है। वास्तवमें यह प्रजा-रञ्जनका ही पुण्य प्रभाव था।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा सती सीताजीके भाग्यमें अभी राज्य-वैभवका सुख नहीं था। अभी उन्हें महान् संकटोंके पहाड़ लाँघने थे। रामचन्द्रजीको युवराज पद देनेकी तैयारी होते होते ही एक दुष्टा दासीकी बुरी सलाहसे सौतेली माता कैकेयी उभड़ पड़ी और उसने रामचन्द्रजीको वन और अपने पुत्र भरतको युवराज-पद देनेके लिये महाराज दशरथसे प्रार्थना की। राजा वचनबद्ध थे। कैकेयीको दिये हुए वचनका पिताजी पालन कर सकें और कुटुम्बका क्लेश दूर हो, इस विचारसे श्रीरामचन्द्रजीने स्वेच्छासे ही यह निर्वासन-वनवास स्वीकार किया। राजसिंहासनके लिये किये जानेवाले काले कारनामोंके तो सैकड़ों दृष्टान्त इतिहासमें हैं परन्तु ऐसे महान् स्वार्थ-त्यागका उदाहरण तो कोई विरला ही होता है।

रामके इस स्वार्थ-त्यागसे-संयमसे-राजा दशरथ बहुत दुखी हुए। कैकेयीके अत्याचारसे प्रजा तिलमिला उठी, तो भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें कैकेयीके प्रति वैर या द्वेषके विचारकी एक लहर तक नहीं उठी।

भगवान् रामचन्द्रजी और सती सीताके लिये तो यह प्रसङ्ग बहुत ही दुःखका था; परन्तु यह दुःखद घटना न हुई होती—रामचन्द्रजी वनमें न जाते तो रामकी रामायण भी शायद नहीं लिखी जाती। सत्यके लिये-परमार्थके लिये-राजा दशरथकी शान्तिके लिये किये गये स्वार्थ-त्यागने उस स्वार्थ-त्यागीको तपस्वी बना दिया और उसके इस तपमेंसे एक ऐसा तेज प्रकट हुआ जिसने अखिल विश्वको प्रकाशित कर दिया! यह सिद्धान्त भगवान् रामचन्द्रजीके लिये जितना लागू होता है उतना ही सृष्टिके प्रत्येक प्राणीके लिये भी होता है।

श्रीरामचन्द्रजीके वनवाससे समस्त प्रजा दुखी हुई, परन्तु उन सबमें सबसे अधिक दुखी भरतजी थे। जिस राज्य-वैभवके लिये कैकेयीने यह दावानल सुलगाया था उस राज्य-वैभवको भरतजीने ठुकरा दिया। अन्यायसे प्राप्त राज्यके राजा या शासकके प्रति प्रजाका भक्तिभाव या प्रेम कभी नहीं हो सकता। भरतजी इस बातको भलीभाँति जानते थे। प्रजाका प्रेम धर्मात्मा रामचन्द्रजीके प्रति था। प्रजाके आन्तरिक प्रेमको भरतजीने बाह्य स्वरूप दिया। वे राज्य-वैभवका त्यागकर स्वयं भगवान् रामचन्द्रजीके पास चित्रकूट गये।

वाल्मीकि रामायणके अयोध्याकाण्डके १००-१०१ सर्गमें भगवान् रामचन्द्रजीके साथ भरतके मिलापका बड़ा ही सुन्दर शिक्षाप्रद वर्णन किया गया है। उस समय श्रीरामजीने अपने दुःखके सम्बन्धमें या कैकेयीके प्रति द्वेषभावको लेकर एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया।

वनमें रहनेपर भी प्रजाके प्रति रामचन्द्रजीका कितना प्रेम था, इस बातका पता उन प्रश्नोंसे लग जाता है जो (इन सर्गोंमें) श्रीरामने भरतजीसे किये थे?

शासकपर कैसा और कितना भारी विशाल उत्तर-दायित्व है, इस बातका पता श्रीरामकी उक्त प्रश्नावलीसे भलीभाँति लग जाता है। राजाका अर्थ प्रजापर भारी कर लगाकर उसका धन चूसकर मौज-शौकके लिये विदेशोंमें रहनेवाला मनुष्य नहीं। राजा वह नर-रत्न है जो प्रजासंरक्षणके लिये अपने राज्य-सुख और वैभवको त्यागकर, आवश्यकता पड़नेपर अपने कोमलाङ्ग बालकोंकी भी—प्रजाके सुख और सन्तोषके लिये—बलि देनेको तैयार रहते हैं। राजाका यह आदर्श (Ideal) जगत्‌की किस प्रजाको आज भी मान्य न होगा?

राज्य-व्यवस्थामें कौन-कौन-से मुख्य दोष हैं, यह बात भी भगवान् रामचन्द्रजी भरतको समझाते हैं। भगवान् रामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे बुद्धिमान् भरत ! नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, विद्वानोंका अपमान, नित्य करने योग्य कर्मोंमें आलस्य, चक्षु आदि पाँचों इन्द्रियोंके वश हो जाना, राज्य-सम्बन्धी बातोंका अकेले मनमाना विचार करना, जिसकी सम्मति लेना उचित न हो, उस विपरीत दृष्टिवालेके साथ मिलकर विचार करना, मन्त्रीके साथ निश्चित किये हुए कार्यका आरम्भ करनेमें विलम्ब करना, निश्चय किये हुए कार्यको गुप्त रखनेमें असावधानी करना, प्रातःकालके नित्यकर्ममें आलस्य, चारों ओरके शत्रुओंको दण्ड देना और महापुरुषोंको आते देख खड़े न होना, यह राजाओंके दोष हैं। इन दोषोंसे प्रत्येक राजाको दूर रहना चाहिये।

संयमका बल ही यथार्थ बल है, यह भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनसे सिद्ध है। सुख-भोगकी लोलुपतासे नहीं, दुःख-भोगकी तत्परतासे ही भगवान् रामचन्द्रजी देव-कोटिमें गिने जाते हैं। स्वार्थ-सिद्धिसे नहीं, परमार्थकी पूरी लगनसे ही वे परमात्म-पदको प्राप्त हैं।

मनुष्यकी उन्नति पशु-बलसे नहीं, आत्मबलसे होती है, यह सिद्धान्त राम-रावणके युद्धसे स्पष्ट है। भगवान् रामचन्द्रजीसे रावण (लोकदृष्टिसे) शारीरिक बलमें अथवा बुद्धिबलमें किसी प्रकार भी कम नहीं था। वह भगवान् महादेवजीका परम भक्त था! सर्व शास्त्रोंका अखण्ड अभ्यासी था। वेदपर भी उसने भाष्य लिखे थे और युद्ध-कलामें तो पूर्ण निपुण था ही। परन्तु वह नैतिक बल—आत्मबल रावणमें नहीं था, जो श्रीरामचन्द्रजीमें अखण्ड था। भगवान् रामचन्द्रजी एकपत्नीव्रतधारी थे और रावण लम्पट था; रामचन्द्रजी प्रजापालनको परम धर्म मानते थे, तो रावण प्रजाको पीड़ा पहुँचानेमें ही आनन्द मानता था। गुरु, आचार्य, विद्वान् एवं वृद्धोंके प्रति रामका पूज्यभाव था, परन्तु रावण विभीषण और सती मन्दोदरी-जैसे हितैषियोंकी भी अधिकांश सम्मतियोंका तिरस्कार करता था। अज्ञान, अधर्म, विषयलम्पटता, इन्द्रियलोलुपता, उच्छृङ्खलता और अभिमान यह रामचन्द्रजीको छू भी नहीं सकते थे, पर रावणके अन्दर तो इन अवगुणोंने घर ही कर रक्खा था। ऐसे राजाका—ऐसी राज्य-व्यवस्थाका विनाश होना स्वाभाविक ही था और हुआ भी वैसा ही।

पितृभक्ति, गुरुभक्ति, मातृभक्ति, स्वार्थत्याग, संयम, एक-पत्नीव्रत, महान् संकटोंको सहन करनेकी तत्परता, कैकेयी-सी दुःसह माताके प्रति भी वैरभावका अभाव और स्नेह-भावका सद्भाव, राज्यवैभवका तिरस्कार, प्रजापालनका प्रेम, दूसरोंके दुःख देखकर उनमें भाग लेनेकी उत्सुकता, दुष्टोंको दण्ड देनेकी शक्ति और तत्परता एवं अपने ऊपर आनेवाले अनेक दुःखोंकी लापरवाही आदि सद्गुण श्रीरामचन्द्रजीमें रामायणके पन्ने-पन्नेमें देखे जाते हैं।

श्रीराम गये, रावण गया, हजारों वर्ष बीत गये, परन्तु आर्य प्रजाके मुखमेंसे राम शब्द नहीं गया और न कालान्तरमें कभी जायगा। जहाँतक आर्य-प्रजाके हृदयमें राम हैं, राम-भक्ति है जहाँतक पतितपावनी रामायण श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करती है, वहाँतक राम और रामराज्यके स्थापनकी इच्छा आर्यावर्तसे कभी दूर नहीं की जा सकती!

जैसे एक दीपकसे हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं वैसे ही रामायणके रामचरित्रकी एक दिव्य ज्योतिमेंसे हजारों राम—नरवीर—धर्मवीर—पैदा करनेकी शक्ति आर्यावर्तमें है। प्रभो! आर्य-प्रजा (Civilised world) को हजारों राम पैदा करनेका सामर्थ्य दीजिये। उसे राम-राज्य-स्थापन करनेकी शक्ति दीजिये। उसकी इस शक्तिको आवश्यक सुयोग और सावकाश दीजिये। आर्यावर्तकी प्रजाकी—अखिल विश्वकी प्रजाकी जगन्नियन्तासे यही प्रार्थना है। सती-सीता-सारी दुनियाँ—समस्त विश्व-जनता आज वरमाल हाथमें लिये खड़ी है और शिवजीका धनुष तोड़कर अपने शारीरिक और मानसिक संयम शक्तिका निश्चय करानेवालेकी—भगवान् रामचन्द्रजीके अवतारकी, धर्मराज्यके स्थापनकी उत्सुकतासे बाट देख रही है।

श्रीरामायणद्वारा जगत्का कल्याण

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजी)

किसी भी ग्रन्थकी परीक्षा बहिरंग और अन्तरंग दो ही प्रकारसे हुआ करती है, ग्रन्थकी रचना किस समय हुई, ग्रन्थका विषय ऐतिहासिक घटनापर निर्भर है या केवल कल्पना है, साहित्यकी दृष्टिसे उसमें क्या-क्या त्रुटियाँ और क्या-क्या महत्त्व हैं, कवितामें कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं और कौन-कौन-सी न्यूनताएँ हैं, इन सब विषयोंका परीक्षण 'बहिरंग-परीक्षा' कहलाती है। अन्तरंग परीक्षामें इन बातोंका विचार न कर समालोचकका ध्येय केवल यही रहता है कि ग्रन्थका मन, बुद्धि तथा आत्मापर कैसा प्रभाव पड़ता है, ग्रन्थके विचारसे जीवन समुन्नत होता है या अधोगतिकी ओर खिंचता है। उसके नायक-नायिकाओंके चरित्रोंसे चित्तमें शान्ति, उदारता तथा आत्मबलकी वृद्धि होती है अथवा पाशविक वृत्तियाँ जागृत होती हैं, ग्रन्थकर्त्ताने किस ध्येयको सामने रखकर उसकी रचना की है और उसका वह उद्देश्य सफल हुआ है या नहीं? इत्यादि। रामायणकी समालोचनामें हम बहिरंग-परीक्षाको बुद्धिमान् तार्किक महानुभावोंके ऊपर छोड़कर केवल अन्तरंग-परीक्षाकी ओर ही अग्रसर होते हैं। क्योंकि हमें तो बगीचेके सुमधुर पौष्टिक फलोंको खाना और खिलाना ही रुचिकर है। जिन विद्वानोंको केवल पेड़ गिननेमें रुचि हो वह भले ही ऐसा किया करें।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि रामायणके पाठ करने और मनन करनेसे अद्भुत शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। मानसिक स्थिति दैवीसम्पत्तिसे परिपूर्ण हो जाती है, श्रद्धा-भक्तिकी वृद्धि होती है, तथा आत्मबल और आत्मज्ञानका उदय होने लगता है। रामायणसे हजारों जीवोंका उद्धार हुआ है और आज भी इस अपूर्व ग्रन्थके भक्तगण भक्ति और ज्ञानका आस्वादन कर जीवन सफल कर रहे हैं। वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीता और रामायणादि ग्रन्थोंने ही भारतमें आध्यात्मिक विचारोंका सञ्चार कर इस देशको धार्मिक बना रक्खा है। ये ग्रन्थ न होते तो सम्भवतः धर्मका नितान्त लोप हो जाता, पाशविक वृत्तियाँ बढ़ जातीं और अधर्म-परायणताके कारण इस पवित्र भारतकी सन्तान भी विषयवासनाओंमें लम्पट होकर अज्ञानके गहरे अन्धकारमें ठोकरें खाती फिरतीं। इन्हींके प्रतापसे भारत इस गिरी दशामें भी आज धर्मके कुछ अंगोंको पकड़े हुए है।

यद्यपि आज देशकी परिस्थिति बड़ी शोचनीय है परन्तु जबतक रामायण-जैसे ग्रन्थोंमें हमलोगोंकी रुचि है, हम उन्हें प्रेमसे पढ़ते हैं और उनके विचारोंपर गम्भीरतासे मननकर जीवनको धर्मके साँचेमें ढालनेका प्रयास करते रहते हैं तब-तक निराशाका कुछ भी कारण नहीं है। खेद इस बातका है कि आजकल बहुत से लेखक और पत्र प्रमादवश ऐसे साहित्यकी रचना कर रहे हैं, जिससे हमारे प्राचीन साहित्यके आध्यात्मिक और धार्मिक प्रभावोंको बहुत बड़ी हानि पहुँच रही है। क्या बुराइयोंका तथा गन्दगीका नंगा चित्र खींचनेसे समाजकी किसी प्रकारकी भी गंदगी कभी धुल सकती है? कीचड़को कीचड़से धोना जैसे निष्फल और व्यर्थ है वैसे ही जाति-देशके अनुचित आचार-विचारों और व्यवहारोंका शोधन उन्हींको सामने रखनेसे नितान्त असम्भव है। मन स्वभावसे ही चञ्चल और विषयोंमें रुचि रखनेवाला है, उसकी दुष्ट वासनाओंको नष्ट करनेके लिये उसके सामने उच्च विचार और धार्मिक भाव रखने चाहिये, तभी वह धर्मपरायण हो सकता है। हमें

प्रसन्नता है कि 'कल्याण' की यह धार्मिक सेवा देशमें सराही जा रही है और इसके प्रेमियोंकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे सूचित होता है कि जनतामें धर्म-प्रेम अभी मौजूद है, इसलिये नैराश्यका कुछ भी भय नहीं है। निःस्वार्थ देशसेवा कभी निष्फल नहीं हुआ करती।

संस्कृतके आदिकवि महर्षि वाल्मीकि और देश-भाषाके सुविख्यात कवि भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायण रचकर जगत्का जो महान् कल्याण किया है, उनसे मनुष्य-जाति कभी उऋण नहीं हो सकती। ऐसे महात्माओंके बलसे ही धर्म-स्तम्भ खड़ा रहता है, इन्हीं जैसे विश्वोपकारक महानुभावोंके कारण भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी प्रभा जगत्में प्रकाश फैलाये रहती है। वह मनुष्य धन्य है जो इस प्रभाके सहारे अपना मार्ग ढूँढ़ लेते हैं और निर्दिष्ट स्थानपर जा पहुँचते हैं। रामायण वास्तवमें एक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है, जिससे मानव-जीवनकी यथार्थ समुन्नति होती है, इसमें बहती हुई भक्ति और ज्ञानकी निर्मल और कल्मषनाशिनी धारा मानसिक कूड़े-कर्कटको बहा ले जाकर आत्माको उज्ज्वल बना अन्तमें मुक्त कर देती है। इसमें तार्किक गोरखधन्धे नहीं, दार्शनिक युक्तियोंके गहन जालमें बुद्धिको फँसानेकी कोशिश नहीं। इसमें तो केवल मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके उन आदर्श चरित्रोंका वर्णन है, जिससे साधारण बुद्धिका मनुष्य भी अपने जीवनको विशाल बना सकता है, शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है एवं प्रेमार्णवमें अवगाहन कर जन्म-जन्मान्तरके मलोंको निःशेषरूपसे धो सकता है।

भगवान् श्रीरामने दार्शनिक युक्तियोंद्वारा जगत्को उपदेश न देकर मनुष्यमात्रके सम्मुख केवल अपना सच्चरित्र रक्खा है। इससे मनुष्य जीवनपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा सैकड़ों दर्शन-ग्रन्थों और हजारों युक्तियोंसे भी असम्भव है। महापुरुषोंका यही महत्त्व है कि वे जगत्का उपकार अपने जीवनका आदर्श सामने रखकर ही किया करते हैं। उनमें अगाध प्रेम होता है, वे परम त्यागकी मूर्त्ति होते हैं, धैर्य, पुरुषार्थ और आत्मबलसे पापियोंका भी उन्हें उद्धारकर परमधामके अधिकारी बना देते हैं, अपने भक्तोंको परमानन्द प्रदान करते हैं। समता ही उनका स्वभाव है; शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, सभीके लिये कर्णधार बन उन्हें संसार-सागरसे पार करदेते हैं। संसारमें सदैव देखा जाता है कि मनुष्योंको सन्मार्गपर ले जाना उन्हीं सत्पुरुषोंका काम है जो बहुत वाक्-पटुता न दिखा अपने सदुपदेशोंको केवल अपने जीवनमें ही चरितार्थ कर जनताको जीता-जागता आदर्श दिखा जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि अनेक लोग धुरन्धर व्याख्यानों और सुन्दर रसीले लेखोंद्वारा अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनके परिश्रमका कोई स्थायी प्रभाव देशवासियोंपर नहीं पड़ सकता। वास्तविक चिरस्थायी प्रभाव उन्हीं महापुरुषोंने देशमें फैलाया है और सत्य धर्मकी विद्युत् उन्हीं इने-गिने महात्माओंद्वारा सञ्चरित हुई है, जो स्वयं परमत्यागी थे, निश्चयात्मिका बुद्धिवाले और आत्मनिष्ठ थे, जिन्हें अपनी ख्याति और स्वार्थ-साधनासे अत्यन्त घृणा थी और जो समस्त जीवोंसे आत्मवत् प्रेम करते थे। ऐसे महात्माओंका केवल जीवन ही जगत्-कल्याणके लिये काफी है। ऐसे सत्पुरुषोंके उपदेशों और चरित्रोंमें कोई अन्तर नहीं हुआ करता।

महान् उत्कृष्ट जीवनका रहस्य त्याग ही है। जिसमें त्यागकी जितनी अधिकता है, उसके आत्माका उतना ही अधिक विकाश होता है। मोह और विषयासक्ति ही बन्धनके कारण हैं, यही अज्ञान है। आत्मा वास्तवमें नित्यमुक्त, ज्ञानस्वरूप है। अज्ञानके आवरणके कारण मेघाच्छादित रवि-मण्डलकी भाँति परिच्छिन्न-सा दीख पड़ता है, वह आवरण वैराग्यद्वारा जितना क्षीण होता है उतना ही आत्माका प्रकाश विकसित होता जाता है। अज्ञानान्धकारके नाश होते ही आत्माकी अप्रमेय शक्ति तथा ज्ञानका प्रकाश पूर्णतया

प्रस्फुटित हो जाता है, फिर आत्मा और परमात्माका भेद भी नष्ट हो जाता है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम नित्यमुक्त परात्पर ब्रह्म निज महिमामें स्थित जगत्के हितार्थ अपनी अचिन्त्य मायाशक्तिके द्वारा भूमण्डलपर अवतीर्ण हुए। निजानन्दमें स्थित भगवान्में ग्रहण और त्यागका आभासमात्र भी नहीं हो सकता। जो स्वयं मायाधीश हैं वह किसका ग्रहण करें और किसका त्याग करें। सब कुछ उन्हींकी विभूति है। वे निर्विकार, शुद्ध, पूर्ण और आनन्दस्वरूप हैं। माया वा प्रकृति उन्हींकी अचिन्त्य शक्ति है। वे स्वयं ही अपने नाना कल्पित रूपोंमें लीला कर रहे हैं। जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, समयानुकूल भौतिक देह धारणकर अपने भक्तोंको आनन्द और प्रेममें मग्न कर उद्धार करते हैं तथा मायाबद्ध दुष्टबुद्धिवाले विषयासक्त पाप-निरत प्राणियोंको भी अपनी अप्रमेय दयाके कारण दण्ड देकर पापमुक्त कर परम धामके अधिकारी बना देते हैं। यह सब उनकी लीलामात्र है। श्रीरामावतारमें जगत्में धर्ममर्यादा स्थापन करना उनका उद्देश्य था। परम त्याग क्या वस्तु है। इससे आत्मिक बल कितना विकसित होता है। सब अवस्थाओंमें रहते हुए भी किस प्रकार निजानन्दमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं हो सकती, समस्त जगत्के जीवोंसे प्रेम और शत्रु-मित्रोंमें समभाव कैसे रहा करता है, निर्भयता, सहनशीलता तथा धैर्य देहधारियोंमें कैसे होने चाहिये, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम तथा दाम्पत्य-जीवनका आदर्श क्या है, प्रजा-रक्षक राजाका धर्म क्या है, राजाको किस तरह आसक्तिरहित बुद्धिसे साम्राज्य-वैभव भोग करते हुए भी केवल प्रजाके हितार्थ अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तुको भी त्याग करनेमें किञ्चिन्मात्र भी संकोच नहीं करना चाहिये, इत्यादि सद्भावोंको स्वकर्मोंसे चरितार्थकर दिखाना भगवान् श्रीरघुनाथजीका उद्देश्य था।

निर्बलोंपर बलवानोंका अत्याचार होते देखना और दुष्टोंका ज़ुल्म सहना महान् कायरता है और एक प्रकार नपुंसकता है। ऐसा तभी होता है जब मनुष्य इन्द्रियोंका दास और विषय-विलास-विमूढ़ होता है, विषयासक्तमें निर्भयता और मानसिक तथा शारीरिक बलका अभाव हो जाता है। ऐसा कायर मनुष्य अपने ही आत्माका नाश नहीं करता वरं अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले प्राणीके आत्माके पतन होनेमें मुख्य सहायक बनता है। इसप्रकार कायर मनुष्य दो पापोंका भागी हो जाता है। श्रुति भी कहती है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' जिसमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल नहीं वह मनुष्य नितान्त निकम्मा पृथ्वीपर भाररूप ही है, अपने ही इन्द्रिय-सुखोपभोगमें लम्पट रहकर ऐसा प्राणी मनुष्यत्वका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवद्भक्तका लक्षण यही है कि वह सर्वथा निर्भय और विषयासक्ति-रहित रहे। दुष्ट कर्मोंकी प्रवृत्तिके सिवा उसे और किसीसे भी भय नहीं होता क्योंकि वह समस्त जगत्को भगवान्का रूप ही देखता है। फिर भयका कोई कारण ही नहीं रह जाता। एक मनुष्य रात-दिन चाहे भगवान्के विग्रहके सामने घण्टी बजा-बजाकर मुँहसे दिखाऊ स्तोत्र-पाठ करता रहे परन्तु यदि उसमें पाप रहते हैं और उसके हृदयमें निर्भयता और दुष्ट बलवानोंके अत्याचारोंसे लोक-हितार्थ असहिष्णुता नहीं है तो उसका पूजा-पाठ केवल ढोंगमात्र है। ऐसे ही अद्वैत ज्ञानका अधिकारी पुरुष भी कायर नहीं हो सकता। श्रीरघुनाथजीके चरित्रसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि दुष्टोंके अन्याययुक्त पाशविक अत्याचारोंका प्रतीकार न करना आत्मनिष्ठ धीर पुरुषके लिये असम्भव हो जाता है। भगवान्ने पापात्मा दुष्ट राक्षसोंके घोर जुल्मोंसे प्रजाकी रक्षा कर न्याय-राज्यकी स्थापना की थी। नानाप्रकारके परिश्रम और कष्ट सहकर भी केवल धर्म स्थापन करनेके अभिप्रायसे ही भगवान्का वह उद्योग था। राक्षसोंकी धन-सम्पत्ति तथा राज्य जीतकर भी उन्हींको वापस सौंप देना 'रघुपति राजा राम' का ही काम था। महापुरुषोंके सत् कर्मोंका यही स्वरूप है, वे कोई भी कर्म स्वार्थके उद्देश्यसे नहीं किया करते। इतना ही नहीं, वरं

श्रीभगवान्‌ने रणमें प्राण दे देनेपर रावणादि प्रतिपक्षियोंको सद्गति भी प्रदान की। उदारचरित दयानिधि प्रभुका यह कर्म उन्हींके योग्य था। सूरदासजीने एक पदमें गाया है कि 'एक लोहा पूजामें राखो एक घर बधिक परो। पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो॥' पतितपावन भगवान्‌के स्पर्शमात्रसे राक्षसोंके उद्धार होनेमें कुछ आश्चर्य नहीं।

समस्त जगत्‌ विशेषतः पाश्चात्य गौरांग-देशोंके लिये भगवान्‌ श्रीरामकी महान्‌ उदारताका अनुकरण करना ही हितकी बात है। जबतक वर्तमान स्वार्थपरायणता और अभिमान हमारे हृदयको जकड़े हुए हैं तबतक किसी प्रकारके पैक्ट कानफरेंस फलीभूत नहीं होंगे। भीरु भावोंके रहते संसारमें सच्ची शान्ति नहीं फैलेगी। मायाकी प्रबल महिमा है,जो मनुष्य अपने आपको सभ्य मानते हैं, वे ही घोर स्वार्थ-वश केवल अपना ही नाश नहीं कर रहे हैं, वरं जगत्‌को भी अशान्तिकी अग्निमें भून रहे हैं। प्राणिमात्रसे निःस्वार्थ प्रेम बढ़ाये बिना और सबके हितमें अपना हित माने बिना न अपना ही कल्याण है और न जगत्‌का ही। श्रीरघुनाथजीके विशाल प्रेमके प्रभावने वानर, भालु आदि पशु-जातियोंको भी सहायक और मित्र बना लिया, फिर मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है ? मनुष्यमात्र आजतक भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके आनन्दमें विभोर हो जाते हैं। भारतवासी तो उनके चरित्रोंकी कथा सुन सुनकर अपना जीवन सफल मानते हैं और श्रीरामकी जन्म-भूमि भारतदेशमें जन्म लेनेको अपने पूर्व-जन्मोंकी सुकृतिका फल मानकर अपने जीवनको धन्य समझते हैं।

जिस महापुरुषमें अहिंसा और त्याग परिपक्व अवस्थामें वर्तमान है, वह सदैव निर्भय तो होता ही है, उसके हृदयमें प्राणि-मात्रके प्रति अगाध प्रेम भी होता है, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' उसका अटल स्वभाव बन जाता है, वह अपने समस्त जीवनको जगतके हितार्थ न्यौछावर कर देता है। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' ऐसे महात्मा जिस कामको आरम्भ करते हैं, तन-मन-धन सब कुछ उसीमें लगा देते हैं, एक लक्ष्य होकर अविचलित-भावसे निष्काम कर्म करना ही उनका ध्येय होता है।

चित्तवृत्तियोंका समुचित निरोधकर एकाग्रतासे कर्म करना योगीका लक्षण है। हमलोगोंके कार्य इसीलिये अधूरे रह जाते हैं कि विविध कामनाओंमें हमारी वृत्तियाँ बिखरी रहती हैं, निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती, संशय घेरे रहते हैं, धैर्यका अभाव रहता है और इसी कारण एकाग्रता नष्ट होनेसे किसी कार्यमें सफलता नहीं होती। श्रीरघुनाथजीने जगत्‌के मनुष्योंको अपने चरित्रोंद्वारा शिक्षा देनेके अभिप्रायसे परम-त्यागका आदर्श दिखलाया है, त्यागसे ही महान्‌ आत्मबल प्राप्त होता है, जिस आत्मबलके प्रभावसे महा कठिन कर्म भी सुगम हो जाते हैं। इसी परम त्यागसे अनासक्त-बुद्धि प्राप्त होती है, फिर अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु भी त्याग करना उसके लिये अत्यन्त सुलभ हो जाता है।

रघुपति श्रीरामचन्द्रका शासनकाल एक अद्भुत आदर्श है। 'रामराज्य' एक विख्यात कहावत बन गयी है। ऐसे धर्मयुक्त प्रजा-पालनका उदाहरण संसारमें शायद कहीं भी आजतक नहीं मिलता, भगवान्‌के शासनमें स्वार्थका लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। उन्होंने अपना समस्त जीवन केवल प्रजाके हितार्थ ही समर्पण कर दिया था। श्रीराम-राज्यका वर्णन करते हुए श्रीवाल्मीकि मुनिने रामायणमें लिखा है कि 'रामराज्यमें सब लोग सत्य-धर्मपर आरूढ़ थे, सभी सुखी थे, राजा रामकी भाँति कोई किसीको सताता नहीं था। सारी प्रजा अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको प्रसन्नतासे निबाहती थी, किसीकी अधर्ममें रुचि नहीं थी, सभी सद्गुणोंसे सुशोभित थे।'

अध्यात्मरामायणका कथन है कि 'यद्यपि भगवान्‌ राम साक्षात् शुद्ध-ब्रह्म ही थे, आत्माराम और नित्य मुक्तस्वभाव थे तथापि लोक-संग्रहार्थ असंख्य धन खर्च करके उन्होंने अश्वमेधादि अनेक यज्ञयाग किये। उनके राज्यमें कोई विधवा नहीं होती थी, किसीको सर्पादि हिंस्र जीवोंका भय नहीं था कोई भी रोगादिसे पीड़ित नहीं था। चोरी आदिसे किसीको हानि

नहीं पहुँचती थी, पाप-कर्ममें कोई भी रुचि नहीं रखता था। रामके राज्यमें पिताके जीते सन्तानकी मृत्यु नहीं होती थी। आबालवृद्ध श्रीरघुवीरको इष्टदेव मानकर उनकी पूजा करते थे। समयपर वर्षा होती थी। समस्त राज्य धन-धान्यसे भरपूर था। सबलोग स्वधर्ममें निरत और सद्गुणसम्पन्न थे। राघव भी अपनी प्रजापर पुत्रवत् प्रेम करते थे।' क्या वर्तमान समयके राज्याधीश श्रीरामके शासनका अनुकरणकर संसारकी दिनों-दिन बढ़ती हुई अशान्ति और अधर्मपरायणता नष्टकर स्वयं सुखी होंगे और प्रजाको सन्तुष्ट करेंगे?

रघुपति राजा रामके अनेक अपूर्व चरित्रोंमें श्रीजानकी महारानीके परित्यागपर बहुत-से लोग आक्षेप करते हैं, वह लोग उनके और सारे चरित्रोंको बड़े आदर-भावसे सराहते हैं परन्तु उनकी समझमें उनका यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय और कठोर है। पर गम्भीर विचार करनेसे सीता-परित्याग ही उनका सर्वोत्कृष्ट महान् चरित्र है। सौतेली माताकी इच्छापर पिताके वचनको सत्य करके निष्कण्टक राज्य परित्याग कर वनवास स्वीकार करना इतना महत्त्वका नहीं, जितना अपनी परम प्रिया वैदेहीका परित्याग करना है। प्रजाके सन्तोषके हेतु, राज्यमें शान्ति बनाये रखनेके अभिप्रायसे भगवान्‌ने एक ऐसे महान् त्यागका उदाहरण विषयासक्त जीवोंके सम्मुख उपस्थित किया है जो उन जैसे महाप्रभु आत्मारामसे ही बन सकता था। प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी मानसिक स्थिति और बुद्धिके अनुकूल ही विचार किया करता है। विषयासक्त मनुष्योंके द्वारा भगवान्‌का यह कर्म भयङ्कर और निन्दनीय माना जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि ऐसा परम त्याग उनकी बुद्धिकी सीमासे परे है। पर उन लोगोंको यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान् रामचन्द्र और जगज्जननी श्रीसीता महारानी साधारण विषयासक्त मनुष्य तो थे ही नहीं, जिन्हें छोटी-से-छोटी वस्तु भी त्यागना महा कठिन होता है। ऐसे महान् त्यागके तारतम्यको परखनेके लिये कसौटी भी वैसी ही पवित्र होनी चाहिये जैसा कि वह अपूर्व कर्म था। दोनों पति-पत्नी सांसारिक प्रलोभनोंसे विरक्त और अपनी निजी महिमा एवं निजानन्दमें परिपूर्ण थे। जिन्हें राज्य-वैभव और वनस्थ जीवन समान था। स्थितधी मनुष्यके यही तो लक्षण हैं। गीतामें कहा है—

> दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
> वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

ऐसे स्थितधी महात्मा शारीरिक वियोगको वियोग नहीं समझते। प्रजारक्षक महिपालका धर्म ही यह है कि वह अपने राज्यको निजी सम्पत्ति न मान प्रजाके हितार्थ और उसके सन्तोषके निमित्त अपना सर्वस्व समर्पण करनेसे भी न झिझके। ऐसे त्यागका प्रभाव प्रजाके हृदयपर खूब ही पड़ता है। यही कारण था कि अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके ऊपर तन मन धन न्योछावर करते थे। राज्यमें सब भाँति शान्ति और आनन्द विद्यमान था। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह सोलहों आने सत्य उक्ति है। परित्यक्ता श्रीजानकीजीका रघुनाथके प्रति सन्देश भी बड़े गौरवका है। वह कहती हैं—'हे लक्ष्मण! महाराजसे कहना कि 'आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप भलीभाँति जानते हैं कि मैं निष्पापा हूँ। सदैव आपकी अनुगामिनी और भक्ता हूँ। मैं जानती हूँ कि आप लोकापवाद और प्रजाके हितार्थ ही मेरा परित्याग कर रहे हैं। राजाका धर्म सब प्रकारसे प्रजाको सन्तुष्ट करना है। मैं अपने शरीर-सुखकी इतनी परवा नहीं करती, जितनी आपके सुख्याति और यशकी। स्त्रीके लिये भर्त्ता ही परम देवता है, वही उसका मित्र और वही उसका गुरु है, इसलिये सदैव स्त्रीके लिये पतिका कार्य पूरा करनेमें सहायक बनना परम धर्म है।'

धन्य माता! यह भाव तुम-जैसी नारी-रत्नके ही हो सकते हैं। तभी तो भारतवासी स्त्री-पुरुष तुम्हारे पवित्र नामका नित्य स्मरण कर अपना जीवन सफल करते हैं!

भवतरणोपाय

अवधूत और रामदासका संवाद

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

रामममन्त्रोपदिष्टारं राममन्त्रैकजापकम्।
रामस्य सेवकं सेव्यं सच्चिदं च नमः शिवम्॥

दिनोंमें रामदासने सुना कि यमुना-किनारे एक अवधूत आये हुए हैं, वह कुछ फल लेकर उनके दर्शनको गया तो देखा कि लंगोटी लगाये एक बावला-सा मनुष्य हाथमें ईंट लिये बहुत-से लोगोंके पीछे लाल-लाल आँखें किये दौड़ रहा है और वे सब डरके मारे भागे चले जा रहे हैं। जब लोग बहुत दूर निकल गये तो पगला भी यमुनाजीकी तरफ चला गया। रामदासकी उसके पास जानेकी हिम्मत नहीं पड़ी, वह घर लौट आया। दूसरे दिन फिर गया, अवधूत रेतीमें बैठा हुआ कुछ गा रहा था। रामदासको गाना सुननेमें तो रस आया परन्तु मतलब कुछ भी नहीं। उसने पास जाकर अवधूतके सामने फल रख दिये। अवधूतने पाँच-चार फल आप खा लिये और शेष रामदासको दे दिये, पश्चात् वह रेतीमें ही लेट गया और शामतक पड़ा रहा—कुछ भी नहीं बोला, रामदास दिनभर बैठा रहा, जब शाम हो गयी, तो घर लौट आया। तीसरे दिन फिर उसी समय गया और फल सामने रखकर बैठ गया, अवधूतने कुछ फल आप खा लिये और कुछ रामदासको देकर खानेके लिये कहा। जब रामदास खा चुका तो अवधूत कहने लगा-

बच्चा! क्या चाहता है? रोज क्यों आता है? मेरे पास धन-दौलत तो धरी है नहीं, खुद ही लंगोटी लगाये बैठा हूँ। दुनिया आती है, कोई धन माँगता है, कोई सन्तान माँगता है, कोई दवा पूछता है, दम नाकमें आ गया है, तुझे भी यदि किसी संसारी वस्तुकी इच्छा हो, तो तुरन्त भाग जा और फिर कभी आना नहीं।

रामदास—(हाथ जोड़कर) महाराज! मैं संसारकी कोई वस्तु आपसे नहीं माँगता, मैं तो भवसागरसे तरनेका उपाय आपसे पूछना चाहता हूँ, यदि आप जानते हों और मैं उस उपायको कर सकूँ, तो कृपया बताइये!

अवधूत एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ा और रामदासकी परीक्षा लेनेके लिये कहने लगा—

बच्चा! भवसागरसे तरना चाहता है? सागरसे आजतक तो कोई तरा नहीं, विद्वानोंने बड़े बड़े जहाज और स्टीमर आदि सागरके पार जानेको बनाये हैं, परन्तु पार तो कहीं है ही नहीं, फिर कोई कैसे जा सकता है? हाँ, एक टापूसे दूसरे टापूको चले जाते हैं, पार तो कोई अबतक जाने पाया ही नहीं है। तू सागरके साथ 'भव' विशेषण लगाकर कहता है कि भवसागरसे तरना चाहता हूँ, तो बता भवसागरका स्वरूप क्या है और तू क्यों तरना चाहता है? तुझे क्या दुःख है? बूढ़े-बूढ़े लोग जिनके मुखमें दाँत नहीं, पेटमें आँत नहीं—मेरे पास आते हैं और भव-सागरमें फँसनेका ही उपाय पूछते हैं, तरनेका उपाय तो कोई नहीं पूछता! तू तो अभी बच्चा है, बीस वर्षसे अधिक उम्रका नहीं जँचता, तुझपर अभीसे कौन-सा संकट आ पड़ा, जो भवसागरसे तरनेका उपाय पूछता है?

भवसागर

अवधूतका प्रश्न सुनकर रामदास भवसागरका वर्णन करने लगा—

महाराज! मैंने संस्कृत नहीं पढ़ी है, थोड़ी-सी हिन्दी जानता हूँ, मैंने एक पुस्तकमें भवसागरका वर्णन इसप्रकार पढ़ा है और ऐसा ही मेरा अनुभव भी है कि यह भवसागर ब्रह्माजीका बनाया हुआ है। जैसे सागर अगाध होता है, वैसे ही इस भवसागरमें आशारूपी अगाधता है। वह आशा इतनी गहरी है कि उसकी गहराईका पता ही नहीं चलता। तीनों लोकोंके प्राप्त होनेपर भी आशा पूर्ण नहीं होती। इन्द्र तीनों लोकोंका राजा है, वह भी जब किसीको तपस्या करते सुनता है तो उसका तप भंग करनेके लिये अप्सराएँ भेजता है या घबराकर स्वयं ही दौड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि भवसागरमें आशा अगाध है। समुद्रमें जल होता है, यह भवसागर मनोरथ-रूप जलसे पूर्ण है, जिसे देखो, किसी-न-किसी मनोरथमें डूब रहा है, एक मनोरथ पूर्ण हो गया तो दूसरा तैयार है,

मनोरथोंका कभी अन्त ही नहीं आता, इसलिये मनोरथोंकी जलसे ही उपमा देना ठीक है। जैसे सागरमें तरंगें हैं, वैसे भवसागरमें तृष्णा तरंग है। कमर झुक जाती है, हाथ-पैर काम नहीं देते, लड़के-बाले निरादर करते हैं, खाटपरसे उतार लिया जाता है—मर जाता है, तिसपर तृष्णा नहीं जाती, वह तो मरे हुएके साथ सती हो जाती है। काम, क्रोध, लोभादि इस भवसागरके जलजन्तु हैं, जो इस जीवको अनेक प्रकारके कष्ट देते रहते हैं और अन्तमें मौका पाकर खा डालते हैं। शब्दादि विषयोंका ग्रहण करना, भवसागरमें डूब जाना है। इसप्रकार मैं सबको भवसागरमें डूबता ही देखता हूँ, कोई आप-सरीखे धीर, विरक्त, विद्वान् भले ही न डूबते हों, नहीं तो सब डूब ही जाते हैं।

जैसे समुद्रमेंसे चौदह रत्न निकले थे, वैसे इस भवसागरमें भी चौदह रत्न हैं। सन्त महात्मा उत्तम रत्न हैं, उपासक अमृत है, कर्मी चन्द्रमा है और ज्ञानी कामधेनु है, दुष्टजन नष्ट रत्न हैं। विमुख जीव विष है और विषयी जीव वारुणी यानी मदिरा है। बाकी रत्नोंमें सब हैं, धर्मी ऐरावत है, पण्डित उच्चैःश्रवा है, सुकवि अप्सरा है, दानी कल्पवृक्ष है, दयावान् धन्वन्तरि हैं, भुवादि शंख हैं, अनेक देशके राजा मणि हैं, मतपक्षी आचार्य धनुष है और पतिव्रता लक्ष्मी है। महाराज! इस भयङ्कर भवसागरको देखकर भय लगता है, इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि भवसागरसे निकालकर मुझे सुख-शान्तिका स्थान दिखाइये! इसमें मैं किसीको सुखी नहीं देखता, कोई कामके वश हुआ स्त्रीका मर्कट बनकर नाचता है, कोई क्रोधके वश आप जलता है और दूसरोंको भी जलाता है, कोई लोभमें ऐसा अन्धा हो रहा है कि उसको हिताहित सूझता ही नहीं। कवि, पण्डित कहलानेवाले भी थोड़े-से धनके लोभसे कुत्तोंके समान लड़ते और अपनी हँसी कराते हुए देखनेमें आते हैं। अधिक क्या कहूँ, आप सब जानते ही हैं, इसलिये भवसागरसे पार होनेका उपाय पूछता फिरता हूँ। बहुत-से स्थानोंपर ठोकरें खा चुका हूँ, यदि आप संसारसे तरनेका उपाय जानते हों और मुझे अधिकारी समझते हों तो बताइये!

रामदासकी कहानी सुनकर अवधूत फिर खिलखिलाकर खूब हँसा और कहने लगा—वाह! भाई वाह! तूने तो भवसागरका अच्छा रूपक बाँधा! गोस्वामीजीकी रामायणमें एक सोरठा है—

> बंदौं बिधि-पद-रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
> संत सुधा ससि धेनु, प्रकटे खल बिष बारुनी॥

इस सोरठेका भाव तूने बड़ी उत्तम रीतिसे दिखाया है। सचमुच यह भवसागर तेरे कथनानुसार ही भयङ्कर है, जो इस भयंकर भवसागरसे पार जानेका उपाय खोजते हैं, और इससे पार हो जाते हैं, उन्हींका जन्म सार्थक है, शेष तो सब माताके मलमात्र हैं और माताको दुःख देनेके लिये ही उन्होंने जन्म लिया है! तेरे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने तुझ-से सुपात्र सुबुद्धि पुत्रको जन्म दिया। भाई! रामायणका पाठ किया कर, प्रेमपूर्वक रघुनाथजीके दिव्य गुणोंका गान किया कर और रघुनाथजीके 'राम' नामका जाप किया कर, बस, निश्चय जान, तेरा बेड़ा पार है!

रामदास—(प्रसन्न होकर) महाराज! कृपया राम-नामका प्रभाव सुनाइये!

राम-नामका प्रभाव

अवधूत—भाई! राम-नामका प्रभाव तो वेद, शास्त्र, मुनि, देवता आदि कोई भी नहीं जानते, केवल एक राम ही जानते हैं। महारामायणमें शिवजीके वचन हैं—

> वेदाः सर्वे तथा शास्त्रा मुनयो निर्जरर्षभाः।
> नाम्नः प्रभावमत्युग्रं ते न जानन्ति सुव्रते॥
> राम एवाभिजानाति कृत्स्नं नामार्थमद्भुतम्।
> ईषद्वदामि नामार्थं देवि तस्यानुकम्पया॥

इससे सिद्ध है कि नामका प्रभाव सम्पूर्णरूपसे कोई नहीं जानता। जब जानता ही नहीं तो कोई कह किसप्रकार सकता है? रघुनाथजी राम-नामका प्रभाव जानते हैं किन्तु वे कह नहीं सकते क्योंकि शिष्टपुरुष तो अपनी बड़ाई सुनकर ही सकुच जाते हैं। जो सुनकर ही सकुच जायँ, वह अपनी बड़ाई अपने मुखसे किसप्रकार करें, इसलिये राम-नामका प्रभाव रघुनाथजी भी कह नहीं सकते! यदि कोई रामनामका किञ्चित् प्रभाव कह सकता है तो वह भी श्रीरामकी भक्ति और कृपासे ही! गोस्वामीजीने राम-नामका प्रभाव बहुत कुछ कहा है, उसीमेंसे किञ्चिन्मात्र सुनाता हूँ। गोस्वामीजी कहते हैं—

> बंदौं रामनाम रघुबरको। हेतु कृसानु भानु हिमकरको॥

रघुवरका राम-नाम जगतका पोषण करता है क्योंकि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा जगत्के पोषण करनेवाले हैं, जैसे अग्नि प्रथम तो भोजनको पचाता है, फिर भोजनको पचाकर देहका पोषण करता है, शीतमें सब अग्निसे तापते हैं, आहुति आदि देनेसे अग्नि सब प्रकारका फल देता है, रातके समय

वह प्रकाश करता है, इत्यादि अनेक प्रकारसे अग्नि पोषण करता है। सूर्य अँधेरेको नष्ट करता है, उष्णता देकर भूमिको शोधता है, जल बरसा कर अन्नादि अनेक ओषधि उत्पन्न करता है, पाले और जलकी सर्दीको दूर करता है, इत्यादि अनेक प्रकारसे भानु पोषण करता है। चन्द्रमासे अमृत झरता है, उससे ओषधियाँ पुष्ट होती हैं। चन्द्रमा शीतलता देकर ताप दूर करता है, प्रकाशसे आनन्द देता है। इसप्रकार अग्नि, भानु और चन्द्रमा जगत्के पोषण करनेवाले हैं। इन तीनोंका कारण राम-नाम है अर्थात् रकार अग्निका बीज है वही कृशानुके रेफ है, इसीसे अग्निमें तेज है। आकार भानुका बीज है, वह भानुके अन्दर भकारमें अकार है, इसलिये भानुमें प्रकाश तापादि प्रताप हैं। मकार चन्द्रमाका बीज है, वही हिमकरके अन्दर मकार है, इसीसे चन्द्रमामें शीतलतादि गुण हैं। यह स्थूलरूप है। सूक्ष्मरूपसे इन तीनोंका रामनामके अन्दर वास है, जब कोई रामनाम स्मरण करता है, तो उसके चित्तमें तीनोंका प्रभाव प्रकट हो जाता है। अर्थात् अग्निके बीज 'र'कारके प्रभावसे मनके मोह आदि मैल और शुभाशुभ कर्म जल जाते हैं, भानुके बीज 'अ'कारके प्रभावसे अविद्यारूप अँधेरा दूर हो जाता है और वेद-शास्त्रादिके अर्थका प्रकाश होता है एवं चन्द्रका बीज 'म'कार तीनों तापोंको हरकर हृदयमें शीतलता कर देता है। दिव्यरूपसे 'र'कार वैराग्यका हेतु है क्योंकि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियोंके विषयोंकी चाहसे काम-क्रोधादि विकारों सहित संसारके सुखके हेतु मन रागद्वेषादि व्यापारमें फँसा है, 'र'कार इस व्यापारको छुड़ाकर मनको शुद्ध करके स्वतन्त्र कर देता है। 'अ'कार ज्ञानका हेतु है, क्योंकि अकार जड़-चैतन्यकी ग्रन्थिको भेदन करता है अर्थात् ईश्वरका अंश जीव है और प्रकृतिका अंश मन है। जीव मनके अधीन होकर अपने स्वरूपको भूलकर संसारमें फँस गया है इससे देहको ही सत्य मानने लगा है, 'अ'कार इस भ्रमको मिटाकर आत्मदृष्टिका प्रकाश करता है, तब जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान होता है, जोकि सदा स्वतन्त्र और आनन्दराशि है। 'म'कार भक्तिका हेतु है, समस्त आशा-भरोसा छोड़कर प्रभुकी शुद्ध शरणागतिका नाम भक्ति है, इस भक्तिको 'म'कार प्राप्त कराता है। कहा है—

> 'र'कारहेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।
> 'अ'कारो ज्ञानहेतुश्च 'म'कारो भक्तिहेतुकम्॥

'र'कार वैराग्यद्वारा परलोकमें और अग्निद्वारा लोकमें पोषण करता है, 'अ'कार ज्ञानद्वारा परलोकमें और भानुद्वारा लोकमें पोषण करता है और 'म'कार भक्तिद्वारा परलोकमें और चन्द्रमाद्वारा लोकमें सुख देता है, इस प्रकार श्रीराम-नाम जीवोंका लोक और परलोक दोनोंमें लालन, पालन और पोषण करता है, यह राम-नामका प्रथम अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

> बिधि-हरि-हरमय बेद प्रानसे। अगुन अनूपम गुननिधानसे।

श्रीराम-नामसे प्रणव सिद्ध होता है, जैसा कि महा-रामायणमें कहा है—

> 'र'कार गुरु ककारस्तथा वर्णविपर्ययः।
> 'म'कार व्यञ्जनश्चैव प्रणवं चाभिधीयते॥

प्रणवमें अकार, उकार और मकार तीन वर्ण हैं, ये तीनों वर्ण विधि-हरि-हरमय हैं, इनमें अकार सतोगुण-रूप है, इससे विष्णु उत्पन्न होकर सब ब्रह्माण्डोंका पालन करते हैं; उकार रजोगुणरूप है, इससे ब्रह्मा उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करते हैं और मकार तमोगुणरूप है, इससे रुद्र उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंका नाश करते हैं। यही बात महारामायणमें कही है—

> अकारः प्रणवे सत्त्वमुकारश्च रजोगुणः।
> तमोहलू मकारः स्यात् त्रयोऽहंकारमुद्भवे॥
> प्रिये भगवतो रूपं त्रिविधो जायतेऽपि च।
> विष्णुर्विधिर्हरश्चैव त्रयोगुणविधारिणः॥

प्रणवके दो रूप हैं, एक अगुण और दूसरा सगुण। इनमें अगुण अनुपम यानी उपमारहित है और सगुण गुण-निधान है यानी अनेक दिव्य गुणसम्पन्न है, अगुण प्रणवका रूप ॐ है और सगुण प्रणवका रूप 'ओं' है, इस 'ओं'में जैसे बीजमें वृक्ष होता है, इसी प्रकार सर्व जगत् विद्यमान है। यह राम-नामका संक्षेपसे दूसरा अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

> महामंत्र जेहि जपत महेसू। कासी-मुकुति-हेतु उपदेसू॥

राम-नाम महामन्त्ररूप है। इस महामन्त्रको देवोंमें श्रेष्ठ, योगी, ज्ञानी और भक्तोंमें अग्रणीय, नाद-वेदके आचार्य और प्रलयकर्ता महेश जपते हैं, इसलिये राम-नाम सर्वोपरि श्रेष्ठ है। इस प्रभावसे ही शिवजी अजर अमर हैं,

इसीलिये वे कालकूटको पान करके पचा गये थे, यह बात गोप्य है। इसी मन्त्रका कानमें उपदेश करके शिवजी काशीमें पशु-पक्षी आदिको मुक्त कर देते हैं। यह बात रामतापिनी उपनिषद्में प्रसिद्ध है, इसप्रकार राम-नामके जपसे मुक्ति प्राप्त होती है, यह तीसरा अर्थ है।

राम-नामका पूजन कर गणेशजी सबसे प्रथम पूज्य हुए, यानी राम-नामके अन्दर सब ब्रह्माण्ड है, यह चौथा अर्थ है। वाल्मीकि उलटा नाम जपकर सब पापोंसे मुक्त हो गये, इसलिये राम-नाम उलटा-सीधा किसी प्रकार भी जपनेसे वह अनेक जन्मोंके पापोंको नष्टकर भगवत्के निकट पहुँचाता है, यह पाँचवाँ अर्थ है। राम-नाम सहस्र नामोंके समान है, यह छठा अर्थ है। इसप्रकार हे भावुक ! गोस्वामीजीने राम-नामका बहुत कुछ प्रभाव वर्णन किया है, उसका पूरा वर्णन करने और समझानेको बहुत समय चाहिये, सारांश यह कि राम-नामके जपसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

सिद्धियोंकी प्राप्ति–हे भावुक ! जिनको सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा है, वे साधक श्रवण, नेत्रादि इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर और मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारकी वृत्ति खींचकर एकाग्र होकर राम-नाम जपते हैं, और अणिमादि सिद्धियोंको प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं। जैसे (१) रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे थोड़े कालमें त्रिकालज्ञत्व सिद्धि प्राप्त होती है यानी तीनों कालका ज्ञान हो जाता है (२) फिर कुछ समय पीछे अद्वन्द्व सिद्धि प्राप्त होती है यानी शीतोष्ण नहीं व्यापता। (३) तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर चित्ताद्यभिज्ञता-सिद्धि मिलती है अर्थात् दूसरेके चित्तकी बात जानी जा सकती है। (४) फिर थोड़े दिनोंमें 'अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भः' सिद्धि मिलती है अर्थात् अग्नि आदिसे बाधा नहीं होती (५) फिर कुछ कालमें अपराजिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी किसीसे भी पराजय नहीं होती इत्यादि क्षुद्र सिद्धियाँ राम-नामके जपसे स्वाभाविक प्राप्त हो जाती हैं।

(१) श्रीरामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे थोड़े ही दिनोंमें क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह, जन्म-मरणादि षडूर्मी ही नाश हो जाती हैं। (२) ब्रह्माण्डनादमें श्रवण देकर, रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे दूरश्रवण-सिद्धि प्राप्त होती है यानी दूरकी बात सुनी जा सकती है (३) सूर्यतेजमें रामरूप स्थित करके, उसमें मनदृष्टि लगाकर नाम जपनेसे दूरदर्शनसिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् दूरकी वस्तु दीखने लगती है (४) पवनमें रामरूप स्थित करके उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे मनोजव-सिद्धि मिलती है, यानी मनके समान देहकी गति हो जाती है (५) अनन्तर मनोरथमें रामरूप स्थित करके उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे मनोरथ-सिद्धि प्राप्त होती है यानी मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाती है (६) सब देहोंमें स्थित आत्मामें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे परकाय-प्रवेश-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी वह दूसरी देहमें प्रवेश करनेको समर्थ हो सकता है (७) प्राणायामकी विधिसे ब्रह्मरन्ध्रमें प्राण चढ़ाकर, वहाँ रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे स्वच्छन्द-मृत्यु-सिद्धि प्राप्त होती है। (८) देवसत्त्वसहित रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे देवांगना-क्रीड़ा-सिद्धि प्राप्त होती है (९) सत्य संकल्पमय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे यथासंकल्प-सिद्धि प्राप्त होती है। (१०) अभंग आज्ञामय प्रभुमें मन लगाकर नाम जपनेसे आज्ञा-अप्रतिहता-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी उसकी आज्ञाका कभी भंग नहीं हो सकता। ये दश सिद्धियाँ सामान्य गुण-सम्बन्धी हैं।

(१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्राओंमें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे अणिमा-सिद्धि प्राप्त होती है यानी शरीर अणुमात्र हो सकता है। (२) ज्ञानमय महत्तत्त्वमें रामरूप स्थित करके उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे महिमा-सिद्धि प्राप्त होती है देह स्थूल हो सकता है। (३) आकाशादि पञ्चभूतोंमें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे लघिमा-सिद्धि प्राप्त होती है, देह लघु हो सकता है। (४) सात्त्विक अहंकारमय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे प्राप्ति-सिद्धि प्राप्त होती है यानी इन्द्रिय और देहसहित पराये देहमें प्रवेश किया जा सकता है। (५) क्रिया-महत्तत्त्वमय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे प्राकाम्य-सिद्धि प्राप्त होती है यानी भूमि आदिके गुप्त पदार्थ दिखायी देने लगते हैं। (६) त्रिगुण-माया-प्रेरक कालमय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे ईशता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी ईश्वरी-शक्ति प्रेरणादि प्राप्त हो सकती हैं। (७) तुरीय अवस्थामय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे, वशिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी मन विषयोंमें विलग हो जाता है। (८) अगुणमय रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे कामावसायिता-सिद्धि प्राप्त होती है, यानी इच्छामात्रसे सर्वाङ्ग सुख प्राप्त रहते हैं। इत्यादि आठों सिद्धियाँ भगवत्-प्रधान हैं, सबसे श्रेष्ठ ईश-सिद्धि

है, परिचित रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं परन्तु आजकल तो विषय-सुख-सिद्धि ही परम सिद्धि मानी जाती है। इसी सिद्धिमें सब जीव स्वाभाविक लग रहे हैं, तब अन्य सिद्धियोंको कौन पूछे?

भगवत्‌के चार प्रकारके भक्त हैं—आर्त, अर्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी, इन चारोंके नाम आधार है, इनमें ज्ञानी भक्त भगवान्‌को विशेष प्यारा है। यद्यपि चारों युगोंमें राम-नामका प्रभाव समान ही है, फिर भी कलियुगमें राम-नामका प्रभाव विशेष है, क्योंकि कलियुगमें राम-नामके सिवा अन्य उपाय नहीं है। कलियुगमें राम-नाम कल्पवृक्ष है, यानी कल्पवृक्षके समान अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। पापीसे पापी भी रामनामके प्रभावसे शुद्ध होकर भगवत्-सम्बन्धी हो जाता है। इसलिये हे भावुक! मेरा यही कहना है कि तनसे, मनसे, वचनसे राम-नामकी शरण लेनेपर भवसागरसे पार होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

रामदास—भगवन्! आपने अभी कहा कि रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कृपया रामरूपका भी किञ्चित् परिचय दीजिये, क्योंकि परिचय बिना प्रीति नहीं होती, यह अटल नियम है।

अद्भुत (प्रसन्न होकर) भाई! राम-रूपका गोस्वामीजी-ने इसप्रकार वर्णन किया है, ध्यान देकर सुन—

रामका रूप

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि 'जो रूप श्रीराम करके आख्य यानी प्रसिद्ध है, उस रूपकी मैं वन्दना करता हूँ, वह श्रीरामरूप कैसा है कि अशेष कारणसे परे है। जीवोंकी उत्पत्तिका आदि हेतु प्रकृति है, उस प्रकृतिको कारण कहते हैं। कारणरूप प्रकृतिके संगसे आत्मा अपनी आत्मदृष्टि भूलकर जीव हो गया। जब जीव मायामें बद्ध हुआ, तब बुद्धि हुई, जब असत् बुद्धि हुई, तब जीव असत् वासनामें बँध गया, जब जीव असत् वासनामें बँधा, तब अहंकार हुआ, अहंकार होनेसे जीवमें विषमता आयी। सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे अहंकार तीन प्रकारका है। सात्त्विक अहंकारसे दश इन्द्रियाँ और मन हुआ, राजस अहंकारसे इन्द्रियोंके देवता हुए और तामस अहंकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सूक्ष्मभूत हुए। सूक्ष्मभूतोंसे, क्रमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी पाँच स्थूलभूत हुए। इसप्रकार स्थूलशरीर हुआ। विषय-संगसे काम हुआ, कामनाका नाश होनेसे क्रोध हुआ, क्रोधसे मोह हुआ, मोहान्ध होनेसे बुद्धि नष्ट हुई, तब जीव विषयी हो गया। इस प्रकार अशेष कारण जो आदि प्रकृति है, उससे श्रीरामरूप परे हैं अर्थात् श्रीरामरूप, आनन्दरूप स्वतन्त्र, सदा अचल, एकरस है, प्रकृतिके गुण श्रीरामरूपको छूते तक नहीं है। कहा है—

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानु शोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो।
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥

अर्थात् श्रीरामरूप न चलता है, न बैठता है, न किसीके लिये शोक करता है, न आकांक्षा करता है, न तजता है और न कुछ करता है, वह आनन्दमूर्ति है, अचल है, परिणामहीन है और मायाके गुणोंमें अनुगत हुआ-सा प्रतीत होता है। सब रूपोंसे परे होनेसे श्रीरामरूप स्वतन्त्र है, क्योंकि श्रीरामकी इच्छासे अनेक भगवत्‌रूप लोकोंका कार्य कर रहे हैं। जैसा कि कहा है—

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंसते नाना॥

सदाशिवसंहितामें भी इसी प्रकार कहा है—

महाशम्भुर्महामाया महाविष्णुश्च शक्तयः।
कालेन समनुप्राप्ता राघवं परिचिन्तयन॥

कूर्मपुराणमें कहा है—

मत्स्यः कूर्मो वराहो नरहरिरतुलो वामनो जामदग्निः
सभ्राता कंसशत्रुः करुणमदवपुर्म्लेच्छविध्वंसनश्च।
एते चान्येपि सर्वे तरणिकुलभवो यस्य जाताः कुलांशैः
तं व्यापं ब्रह्मतेजं विमलगुणमयं रामचन्द्रं नमामि॥

श्रुतिमें कहा है—'यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्यकारणयोः परः परमपुरुषो रामो दाशरथी बभूवः॥' श्रीरघुनाथजीकी मायाके वशमें अखिल विश्व यानी सम्पूर्ण संसार है। भाव यह है कि जितने विषयी जीव हैं और ब्रह्मादि जितने देवता यानी

मुक्त जीव हैं और जितने असुर यानी विमुख जीव हैं वे सब श्रीरामकी मायाके वशमें हैं। श्रीरामकी आज्ञासे श्री, भू-लीला आदि तैंतीस शक्तियाँ लोकोंका सब कार्य करती हैं, जैसे कि महारामायणमें कहा है—

'स्वे स्वे कार्ये रताः सर्वाः शक्तयः त्रीणित्रिंशतीः।
यस्मिन्काले भवेद्यासां सीतारामानुशासनम्।
तस्मिन्कालेषु कुर्वीत सर्वेकार्यमशेषतः॥'

इन रघुनाथजीकी सत्यतासे मृषा जगत् भी मोहकी सहायतासे निश्चय करके सत्य ही भासता है। जैसे रज्जुमें तमकी सहायतासे सर्प भासता है इसी प्रकार कारणरूप मायाके अन्तर्भूत भगवत्की सत्यतासे संसार सत्य भासता है। यह संसार ऐसा अथाह है कि ब्रह्मादि भी इसमें पड़े हुए डूब रहे हैं; जो कोई संसारसे पार होना चाहे, उसके लिये श्रीरघुनाथजीके पादारविन्द जहाजरूप हैं। यानी श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी शरणागति बिना जीवका कल्याण नहीं होता। जैसे कि कहा है—

हिमते अनल प्रकट बरु होई। राम-बिमुख सुख पाव न कोई॥

यही बात सत्योपाख्यानमें कही है—

विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिश्च राघवे॥

मैं ऐसे श्रीरघुनाथजीको नमस्कार करता हूँ।

हे भावुक! उपर्युक्त कथनका सारांश यह है कि श्रीराम शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, वे ही लोकोद्धारके लिये नर-रूप धारण करके अनेक प्रकारके अद्भुत चरित्र करते हैं, जिनका गान और श्रवण करनेसे पापीसे पापी जीव भी शुद्ध होकर भगवत्को प्राप्त हो जाते हैं।

रामदास—महाराज! रामायणका महत्त्व भी कृपया सुनाइये!

रामायणका महत्त्व

अवधूत—भाई! जब परात्पर श्रीरामने रघुनन्दनरूपसे अवतार लिया तभी वेदोंने भी वाल्मीकिद्वारा रामायणरूपसे अवतार लिया, इसीसे रामायणका महत्त्व प्रकट है। रामायणके वक्ता-श्रोता दोनों शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, गोस्वामीजीके गुरु, गोस्वामीजी और उनके शिष्य सभी ज्ञाननिधि और ज्ञातज्ञेय हैं, तब रामायणका कितना महत्त्व है, यह स्पष्ट ही है। इस रामायणके प्रभावसे लाखों-करोड़ों जीवोंका कल्याण हो चुका है, हो रहा है और आगे भी होता रहेगा! अधिक क्या कहूँ, भाई! मैं तो रामायणको भाषाका वेद मानता हूँ। वेदमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड हैं, इन्हीं तीनोंका रामायणमें विस्तारसे वर्णन है। वेद प्राचीन संस्कृत-वाणीमें होनेसे सबको सुलभ नहीं है और रामायण तो भाषा होनेसे सबको सुलभ है, यह रामायणकी विशेषता है! इसके सिवा ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, वामन, ब्रह्म-वैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य राजसीपुराण; नारदीय, विष्णु, वाराह, गरुड़, पद्म, भागवत सात्त्विकी पुराण और मीन, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि तामसी पुराण एवं सनत्कुमार, नरसिंह, स्कन्द, दुर्वासा, आश्चर्य, नारद, कपिल, मानव, ब्रह्माण्ड, भार्गव, गरुड़, महेश्वर, कालिका, साम्ब, सूर्य, विष्णु, पाराशरी और देवी भागवत उपपुराण तथा अन्य सब शास्त्रोंका सम्मत रामायणमें वर्णन है। इसलिये इसकी जितनी महिमा वर्णन की जाय, उतनी थोड़ी है। इसके पढ़नेसे अन्तःकरण निर्मल होकर भगवत्के सम्मुख होकर सुखी हो जाता है। भाव यह है कि अन्तःकरण चार हैं। वस्तुमें संशय होना कि यह है अथवा नहीं इसका नाम मन है, वस्तुमें निश्चय होना बुद्धि है, वस्तुका स्मरण करना चित्त है और जब वस्तुमें ऐसा आग्रह हो कि यह ऐसी ही है, दूसरी नहीं है, इसको अभिमान कहते हैं। विषयोंकी चाहसे अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प रूप जो दुःख है, वह पुराणोंमें मन लगानेसे, निगमागममें चित्त लगानेसे, अन्य सम्मतमें बुद्धि लगानेसे और कथा-वर्णनमें अहंकार लगानेसे अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। अंतःकरण निर्मल होते ही जीव भगवत्के सम्मुख होता है और भगवत्के सम्मुख होते ही जीवके करोड़ों जन्मके उपार्जन किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंसे सब प्रकारका दुःख है, पाप नष्ट होते ही जीव सुखी हो जाता है। इतनेहीमें रामायणका महत्त्व समझ लो।

अवधूतका इतना उपदेश सुनकर रामदास अवधूतको प्रणाम करके घरको चला आया, क्योंकि सन्ध्या हो गयी थी फिर रातके दश ग्यारह बजेतक अवधूतके कथन किये हुए वाक्योंका विचार करता रहा, तदनन्तर सो गया। दूसरे दिन उसी समय फिर अवधूतके पास गया, तो वहाँ उन्हें न पाया। इधर-उधर ढूँढनेसे कहीं पता न लगा, रमते राम थे, कहीं रम गये। रामदासको बहुत शोक हुआ,

परन्तु उसका समाधान तो हो ही चुका था, इसलिये उसने नियमपूर्वक रामायणके पाठ करनेका, राम-नाम जपनेका और सच्चिदानन्द राम-रूपके चिन्तन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया!

राम-नामके निरन्तर अभ्याससे कुछ कालमें रामदासको राम-नाम स्वाभाविक हो गया और स्वप्नमें भी उसके चित्तमें राम-नामकी धारा बहने लगी। रक्तमें, प्राण-वायुमें स्थिररूप राम-नाम नृत्य करने लगा और उसके देहस्थ-परमाणु राम-नाममय हो गये! सागर और सागर-गामिनी नदियाँ राम-नाम गाने लगीं, कल-हंस मधुर-ध्वनिसे राम-नामका कीर्तन करने लगे! आकाशचारी पक्षी राम-नाम कूजने लगे और जगत्का प्राणरूपवायु राम-नामका घोष करने लगा! विश्वकी माता प्रकृति राम-नामका कीर्तन करने लगी, जगत् राम-नाममय हो गया और राम-नाम जगन्मय हो गया! इसप्रकार रामनामके प्रभावसे रामदास-को रामप्रेमकी प्राप्ति हुई और वह राममें लीन होकर सर्वमय राम ही हो गया! वह यमराजके भयको निवारण करनेवाले श्रीरामरूपका ध्यान करने लगा और बाहर-भीतर परम शुद्धिको देनेवाले श्रीरामके गुणोंका मनन करने लगा। प्रत्येक प्राणीमें स्थित श्रीरामको नमन करने लगा और सर्वत्र, सब वस्तुओंमें श्रीरामका ही दर्शन करने लगा!

इसप्रकार बड़भागी रामदास चराचरविश्वमें सच्चिदानन्द-घन कौसल्या-नन्दनका ही दर्शन करने लगा! वह चन्द्रमण्डल-में आनन्द-सागर, नटनागर, मुनि-यज्ञ-रक्षक श्रीरामको हँसते हुए देखता था। गङ्गा-नदीके जलमें लीलामय, सौम्यस्वरूप अहल्योद्धारक श्रीरामको नृत्य करते देखता था! मारुतमें जन-रञ्जन धनु-भञ्जन श्रीरामको दौड़ते देखता था! पर्वतके जलके झरनोंमें मायावर, सीता-वरको गान करते देखता था! बालकोंकी क्रीडामें निषादके सखा श्रीरामको खेलते देखता था! मार्गमें चलते हुए पथिकोंमें चित्रकूट-विहारी श्रीरामको गमन करते देखता था! सूर्यमें खरदूषण-नाशक श्रीरामको प्रकाश करते देखता था! रोगीके रोगमें रोगके नाश करनेवाले जटायुके श्राद्धकारी श्रीरामको शान्ति देते हुए देखता था! सब जीवोंके श्वासमें सबके जीवन सुग्रीवके मित्रको जीवन देते हुए देखता था! सब प्राणियोंके शरीरोंके रक्तमें लोक-स्वामी वालिके मुक्तिदाता श्रीरामको बहते हुए देखता था! जिस देवका द्यौ मूर्धा है, जिसके चन्द्रादित्य लोचन हैं, जिसके चरण धरणी हैं, ऐसे सर्वके लोचन रावणारि श्रीरामको ब्रह्माण्डमें परिपूर्ण देखता था! जिस देवके उदरमें ब्रह्माण्ड हैं, उस परमात्मा, परब्रह्म, अयोध्यापति, सर्वान्तर्यामी विभुको सबमें देखता था! अनन्त, अपराजित, अन्तर्बाह्यपूर्ण, अन्तर्बाह्यशून्य, चिन्मय आनन्दरूपको ही सर्वदा सर्वत्र देखता था! सब इन्द्रियोंसे, आनन्दायतन श्रीरामको देखता था, सब इन्द्रियोंसे रसनायक रसाब्धिको नित्य पीता था! पीता हुआ ही जगत्के आह्लादकारक श्रीरामको देखता था और देखता हुआ ही, श्रीराम-आनन्दरूप अमृतको सदा पीता था! सर्व अंगोंसे निरन्तर परमेश्वर श्रीरामका सेवन करता था, प्रत्येक प्राणीमें विश्वरूप श्रीरामका दर्शन करता था! सर्व मंगलोंके मंगल, सर्व पावनोंसे पावन, आनन्दसागरमें मग्न होकर अतिशोभन श्रीरामको निहारता था! इसप्रकार संदर्शन करनेसे अव्यय, सच्चिदानन्द, परिपूर्ण, शान्त, परमात्मा श्रीराममें चराचर विश्व लीन होगया और बड़भागी रामदास समाधिमें श्रीरामके अनुग्रहसे परब्रह्म श्रीरामको जानकर श्रीरामका अनुसन्धान करता हुआ, पृथिवीको पवित्र करता हुआ विचरने लगा!

रे भोला! यदि रामदासके चरित्रको पढ़कर भी तू भूला ही रहा, चेतमें न आया, तो कब आयगा? भाई! चेत जा! प्रयत्नपूर्वक श्रीरामके ध्यानयोगका आश्रय कर, ध्यानयोगके प्रसादसे मनुष्य दुस्तर मायाको तर जाता है। जब ध्येयमें लगा हुआ मन केवल ध्येयको ही देखता है, अन्य किसीको नहीं जानता, तब ध्यान कहलाता है। जैसे ध्यानके प्रभावसे कीट भी भ्रमर हो जाता है, उसीप्रकार ध्यानके सामर्थ्यसे जीव भी केवल हो जाता है। चेष्टासहित योगका अभ्यास करनेसे पुरुष चेष्टाहीन, सदा भावरूप स्थिरब्रह्मको प्राप्त होता है। अरण्यका आश्रय करनेसे, नासाग्र अवलोकन करनेसे, बहुत श्रवण करनेसे अथवा बाह्य उपाय करनेसे योग सिद्ध नहीं होता, योग तो परब्रह्मके चिन्तन करनेसे सिद्ध होता है। दानव, मानव, देव, पशु, वृक्ष, ग्राह, सागर, शैल, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, भूत, सर्वकर्म, भाव सब हरिके रूप हैं, सबमें सर्वत्र एक हरि ही वर्तमान है। जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ निरञ्जन, निष्कल, पर-ब्रह्म, सच्चिदानन्द लक्षण श्रीरामको ही देख! सदा आनन्दरूप, महा उज्ज्वल, अचिन्त्यशक्ति श्रीरामका एकाग्र मन होकर ध्यान कर! नर-देह-रूप तरणीको और कर्णधाररूप गुरुको प्राप्त होकर अभी अभी घोर संसार-सागरसे तरनेका उपाय कर! परात्पर

श्रीराममें भक्तिसे विचरता हुआ सदा ब्रह्मचर्यका पालन कर ! जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ श्रीराम ही हैं, सर्वत्र व्यापक विभु श्रीरामको छोड़कर मन कहाँ जायगा ? कहीं नहीं ! श्रीराम धर्म हैं, श्रीराम व्रत हैं, श्रीराम कर्म हैं, श्रीराम सनातन हैं, ज्ञात और अज्ञात श्रीराम ही हैं, निश्चय-निश्चय सब श्रीराममय ही है। इसलिये—

मत कर कोई काम, राम ही केवल भज रे ।
कर भगवतकी आश, आश सबकी ही तज रे ॥
दिन दोका संसार, सार इसमें कछु नाहीं ।
भगवत केवल सार, प्रेमकर भगवत माहीं ।
राम नामका जाप कर, रघुबर गुण कर गान रे ।
भोला ! जा सब भूल रे, रामरूप धर ध्यान रे ॥

मानसके दो रत्न

(लेखक-श्रीभैरवसिंहजी राठौर)

सेवक कर पद नयनसे, मुखसो साहिब होय ।
तुलसी प्रीतिकी रीति भक्ति, सुकबि सराहैं सोय ॥
मुखिया मुखसो चाहिये, खान पान कहँ एक ।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥

बस, यह दोहे रामचरितमानसमें दो रत्न हैं। प्रथम दोहेमें राजा और प्रजा अथवा कुटुम्ब और कुटुम्बके प्रधानका सम्बन्ध बतलाया है। दूसरेमें प्रधानका कर्तव्य बतलाया है। इन दोहोंमें ऊपरी तौरसे देखनेसे ज्ञात होता है कि प्रधान अथवा राजाका तो कर्तव्य बतला दिया पर प्रजाका या कुटुम्बके अन्य व्यक्तियोंका कर्तव्य नहीं बतलाया । पर नहीं, ध्यानसे देखनेपर पता चलता है कि प्रजाका कर्तव्य प्रथम दोहेमें ही आ गया है । सेवक कैसे हों ? कर-पद-नयनसे अर्थात् केवल काम करनेवाले, पर उसका फल चाहनेवाले नहीं । इधर-उधरसे जो कुछ प्राप्त करें वह स्वयं अपने पास न रखकर मुखिया मुखको दे दें । पर मुखिया भी मुखके समान होना चाहिये । मुखका काम है कि जो कुछ कर-पद-नयनसे प्राप्त हो सब भक्षण कर ले । यदि दूसरे दोहेद्वारा उसका अगला कर्तव्य न बतलाया जाता तो अनर्थ हो जाता। इसलिये दूसरे दोहेकी आवश्यकता हुई और मुख-मुखियाका कर्तव्य बतला दिया कि वह 'खान-पान कहँ एक' अवश्य है पर उसका कर्तव्य है कि विवेकयुक्त कर-पद-नयन आदि सभी अंगोंका पालन करे ।

बस, यही नियम जहाँ भी बर्ता जायगा वहाँ सुख और शान्ति रहेगी । प्रकृतिमें देखिये, नदी-नाले सभी जगह जगह से जल लाकर समुद्र मुखियाको दे देते हैं वह उन्हें फिर वर्षाद्वारा जल देकर उनका पालन करता है। इसप्रकार नदी-नाले तथा समुद्र सभी जलसे पूर्ण रहते हैं। और यज्ञ-चक्र जारी रहता है। कुछ मूढ़ तालाब इस नियमका भंग करके पानीको अपनेमें रोक लेते हैं, परिणाम यह होता है कि पानी सड़ जाता है और कुछ दिनमें सूख जाता है। ताल कंगाल हो जाता है। यही राजा-प्रजामें है। प्रजा जबतक अपनी कमाई राजाको देती है और राजा उस कमाईको प्रजाके ही कल्याणमें व्यय करता है तबतक राज्यमें सुख चैनकी बंशी बजती है। राजा-प्रजा सभीका पोषण होता है । इस नियमका भंग होनेसे आजकल जो हालत है वह प्रकट है । कुटुम्बमें भी आज सभी अपनी कमाई अपने पास रखना चाहते हैं। फल होता है-विग्रह और निर्धनता । यदि सभी अपनी-अपनी कमाई कुटुम्बके मुखियाको दे दें और वह भी विवेकके साथ सभीका पालन करे तो आनन्द रहे। समाजमें भी सभी वर्ण अपनी कमाईको स्वयं खाना चाहते हैं। फल होता है— समाजकी छिन्न-भिन्नता । गीताका यज्ञ-चक्र यही है कि सभी छोटोंका कर्तव्य है कि निष्काम कर्म करें और उससे जो धन प्राप्त हो वह मुखियाको दे दें, अपने पास न रक्खें तथा मुखिया-को चाहिये कि विवेकसे उस धनद्वारा सभीका पोषण करे ।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

इसीको महात्मा तुलसीदासजीने उपर्युक्त दो दोहोंमें बतलाया है। इसीको कायम रखनेके लिये भगवान्ने कहा है । इसप्रकार चलाये हुए यज्ञ-चक्रको जो इस जगत्में आगे नहीं चलाता, उसकी आयु पापरूप है, उस इन्द्रिय-लम्पटका जीवन व्यर्थ है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

अतएव हम सभीका कर्तव्य है कि अपना-अपना धर्म पालन करते हुए इसको कायम रक्खें ।

श्रीवाल्मीकीयका राम-वनगमन

(लेखक—पं० श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

संयोग और वियोग दोनों इस संसाररूपी रथके पहिये हैं। मनीषियोंने, प्रिय वस्तुके संयोगसे मनकी जो वृत्ति होती है उसे सुख और उसके वियोगका नाम दुःख बताया है। सभी प्रकारके द्वन्द्वोंका मूल कारण संयोग और वियोग ही है। कौन मनुष्य इस बातको चाहेगा कि जो संसारमें सबसे अधिक प्यारा समझा जाता है, जिसके दर्शनसे रोम-रोम खिल जाते हैं, वह हमारा प्यारा पात्र हमसे बिछुड़ जाय! किन्तु, मनुष्यके चाहनेसे ही सब काम नहीं हुआ करते! हम लाख प्रयत्न करें कि हमारा अपने प्रेमीसे वियोग न हो, किन्तु एक दिन वह अवश्य ही होता है। संसारमें जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग होना निश्चित ही है। इस प्राकृतिक नियमको कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता। जो संयोग-सुखसे सुखी होकर हँसा है, उसे वियोग वेदनासे व्याकुल होकर रोना भी पड़ेगा ही! हँसना-रोना, सुख-दुःख ये सभी जीवनके व्यापार हैं। ऐसा कौन संसारी पुरुष होगा, जिसे कभी किसीके भी लिये आँसू न बहाने पड़े हों?

संसारमें थोड़ा बहुत वियोगजन्य दुःख सभीको भोगना पड़ता है। जिसे संयोगमें जितना ही अधिक सुख मिला होगा, उसे वियोगमें उतने ही दुःखका भी अनुभव होगा। वियोगका सम्बन्ध उसके पूर्वके संयोगके साथ है। इसलिये जो अधिक सहृदय है, जिसका हृदय बहुत ही कोमल है, जिसका स्वभाव अत्यधिक मिलनसार है उसे वियोगका दुःख भी उतना ही अधिक सहन करना पड़ता है।

क्या वियोग सचमुच निरानन्ददायक है? यदि यह बात सत्य होती तो संसारसे आजतक नल, युधिष्ठिर, मोरध्वज और हरिश्चन्द्रकी कथाएँ कभीकी लोप हो गयी होतीं। इन करुण-कथाओंके श्रवणसे लोग अपने जीवनको अभीतक आनन्दरहित क्यों बनाते रहते? इससे जान पड़ता है, कि वियोगमें भी आनन्द है, किन्तु उस आनन्दका अनुभव सभी नहीं कर सकते। जिसने अणु परमाणुमें उस एक ही अखण्ड सत्ताका साक्षात्कार कर लिया है, जो संयोग और वियोगके दुर्गम स्थानसे ऊँचा उठ गया है वही वियोगजन्य सुखका आस्वादन कर सकता है। वही संयोग और वियोगकी दो तारवाली वीणाके साथ एक ही स्वरमें गायन कर सकता है। वही इस अद्भुत आनन्दका अनुभव कर सकता है। अनुभव करके दूसरोंको उसका स्वाद चखाने वाले सन्त इस संसारमें विरले ही पैदा होते हैं। उन्हें चाहे कवि कहिये, विधाता कहिये, दैवज्ञ अथवा मनोविज्ञान-शास्त्री जो कुछ भी कह लीजिये, उनमें सभी प्रकारकी सामर्थ्य होती है। वे हमें तनिक-सी बातपर रुला सकते हैं और जरा-सी बातपर हँसा सकते हैं।

रोनेमें कितना आनन्द है, इसे वही जान सकता है, जो किसीकी यादमें रोया है। अपने दुःखसे रोनेवाले तो बहुत मिलेंगे किन्तु उनके रोनेका कोई स्थायी महत्त्व नहीं। जो दूसरोंके दुःखसे दुखी हो उठे, जिसका हृदय करुणाके लिये अपने-परायेका भेद-भाव न रखता हो, असलमें, वही महापुरुष है। उसकी करुणा ही सचमुचमें करुणा कही जा सकती है। उसकी वेदना ही सुखकर वेदना है और उसकी वियोगजन्य पीड़ा ही सुखकरी—मधुमयी पीड़ा है। उसके अनुभवमें आनन्द है, उसके श्रवणमें सौन्दर्य है और उसकी स्मृतिमें मीठा-मीठा सुख है। इसीलिये तो कवियोंने करुण रसको सर्व रसोंमें श्रेष्ठ माना है।

आदिकवि भगवान् वाल्मीकिजीने अपने जीवनमें करुणाको प्रत्यक्ष किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन उसी जीवनाधारके पादपद्मोंमें समर्पित था। उन्होंने करुण-कण्ठसे करुणानिधानका अहर्निश आह्वान किया था। इसी लिये उनके प्रत्येक कार्यमें करुणा थी। करुणा क्या थी उनका सम्पूर्ण शरीर ही एक प्रकारसे करुणाका विग्रह बन गया था। जिसप्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित मुँहतक लबालब भरा अमृतका प्याला तनिक-सी ठेस लगनेसे ही छलकने लग जाता है, उसी प्रकार उस करुणामूर्ति ऋषिके कोमल हृदयमें भी क्रौंच पक्षीकी कातर वाणी सुनकर एक गहरी-सी गर्म ठेस लगी। बस, उस गर्म ठेसके लगते ही उनका नवनीतके समान स्निग्ध-हृदय द्रवीभूत होकर बह निकला। उस हृदयकी धारासे जो लोकपावनी मुनि मन-हारिणी सुरसरि बही, उसने इस त्रैलोक्यको पावन कर दिया। महामुनिकी वह अमर कृति संसारके सभी जीवोंको सुख-

–दायिनी हुई। श्रीवाल्मीकीय रामायणने संसारको एक दिव्यालोक प्रदान किया, जिसके प्रकाशकी किरणोंसे सभी दिशाएँ अनन्त कालके लिये आलोकित हो उठीं।

वाल्मीकीय रामायणका जन्म करुणाके द्वारा ही हुआ है। इसलिये उसके आदि, मध्य और अन्तमें करुणा ही करुणा भरी है। हम यह भी कह सकते हैं कि उसमें करुणाके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अन्य रसोंका जो वर्णन हुआ है वह केवल करुणाकी पूर्तिके लियेही है। जैसे 'राजा आ रहा है' कहनेसे केवल राजाका बोध नहीं होता। उसके साथ नौकर-चाकर, पुरोहित, मन्त्री, सवारी, वाहन आदि सभीका बोध होता है किन्तु वे सभी 'राजा' के ही अन्तर्गत आजाते हैं, क्योंकि राजा अंगी है और सेवक आदि उसके अंग हैं। इसी प्रकार रामायणमें करुणारस अंगी है और शेष सभी रस उसके सहायक अंग हैं।

वाल्मीकीय रामायणमें तीन स्थल इतने करुणापूर्ण हैं कि उनके श्रवणसे वज्रहृदय पुरुष भी बिना रोये नहीं रह सकता। आदिमें राम-वनगमन, मध्यमें लक्ष्मणकी मूर्छा और अन्तमें सीता और लक्ष्मणका परित्याग। इन तीनों स्थलोंके वर्णनमें आदिकविने करुणाका ऐसा प्रचण्ड प्रवाह बहाया है कि उसमें प्रवेश करनेपर अच्छे-अच्छे तैराकोंके पैर उखड़े बिना नहीं रह सकते। इन सबमें मुझे राम-वनगमन सबसे श्रेष्ठ जँचता है। उस लोहकी लेखनीसे लिखे हुए प्रसंगको मैंने जब-जब पढ़ा है, तब-तब मैं खूब ही रोया हूँ। अब भी कोई मुझे उस प्रकरणको सुनाने लगे तो अश्रुओंके वेगको रोकना मेरे लिये कठिन हो जायगा। महाकविने उन पोले श्लोकोंके भीतर, कभी न चूकनेवाला ऐसा जादूका रस भर दिया है, जो सीधा हृदयपर ही वार करता है और बेचारी आँखोंपर आफ़त आ जाती है। धन्य हैं आदिकवि, जिन्होंने इस करुण-कथाका कथन किया है; और धन्य हैं वे वाचकवृन्द, जिन्होंने उसके श्रवणसे अपने श्रोत्रोंको सफल बनाया है!

भगवान् वाल्मीकिके 'राम' छद्मवेषधारी राम नहीं हैं। वे संसारसे परेके, राग-द्वेष-शून्य तथा दुःख-सुखको समान समझनेवाले, मायापति महेश नहीं हैं। यद्यपि वाल्मीकिके राम विष्णुके अवतार साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं, किन्तु जब उन्होंने नर-तन धारण ही कर लिया, तब तो फिर उन्होंने अपना सभी पुराना ऐश्वर्य मानों भुला दिया है। वे नरवेषमें आकर पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम बन गये। मायिक विकारोंसे उन्होंने अपनेको पृथक् नहीं दिखलाया, किन्तु वे दुःखमें दुःख और सुखमें सुखकी लीला करने लगे। हाँ, यह बात जरूर थी कि वे साधारण अज्ञ पुरुषोंकी भाँति दुःखमें एकदम कातर होकर अधीर नहीं हो उठते थे और न सुखमें आपेसे बाहर होकर अपने विवेकको ही खो बैठते थे। यही तो उनकी श्रेष्ठता थी, इसीलिये तो वे पुरुषोत्तम कहलाये। आदिकविने भी हमें कहीं बीचमें इस बातको फिर समझानेका कष्ट नहीं किया है, कि श्रीराम दुःख-सुखसे परे हैं, इन्हें हर्ष-शोकके भाव नहीं व्याप सकते। यही नहीं, किन्तु वे रामपर विपत्ति पड़नेपर स्वयं रोये हैं और साथ ही उन्होंने पाठकोंको भी खूब रुलाया है। यही तो उस महान् कविकी महत्ता है।

राम-वन-गमनके वर्णनमें कविने जो अपनी अद्भुत प्रतिभा-शक्ति दिखलायी है उसका दिग्दर्शन हम इस संकुचित स्थलमें कैसे करा सकते हैं? क्या कभी गागरमें भी सागर भरा जा सकता है? उसका पूरा आनन्द तो उस अयोध्याकाण्डके अद्भुत स्थलको आदिसे अन्ततक पढ़नेमें ही आ सकता है, किन्तु पाठकोंकी प्रसन्नताके निमित्त हम उसका यत्किञ्चित् दिग्दर्शन कराते हैं।

यकायक राजाका बुलावा सुनकर श्रीराम अपने पिता दशरथजीके समीप जाते हैं। कैकेयीके द्वारा अपने वनगमनकी बात सुनकर वे पिता दशरथ और सौतेली माता कैकेयीको प्रणाम करके अपनी जननी कौसल्यासे वनगमनकी आज्ञा लेने उनके महलोंमें जाते हैं।

जीवनकी सभी मनोहर आशाओंका पुत्रके अभ्युदयमें ही सुख-स्वप्न देखनेवाली माता उस समय पुत्रकी मङ्गल-कामनाके निमित्त देव पूजनमें व्यस्त थी। न जाने उन्होंने कितने देवताओंकी मनौती मान रक्खी थी। जैसे तैसे करके वह सुहावना समय अब सन्निकट आ पहुँचा। सभी देवताओंको पूजाके द्वारा प्रसन्न करना चाहिये। विघ्न-बाधाके भयसे महारानी कौसल्या पूर्ण विधानसे असंख्य ब्राह्मणोंको मनमानी दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अग्निमें हवन करा रही थीं। वे पूजागृहमें ही थीं, उसी समय पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र उनसे वन जानेकी आज्ञा लेने आ पहुँचे। माताको अभी इन बातोंका कुछ भी पता नहीं था, वे अभी तक पुराने मनसूबे ही बाँध रही थीं।

प्रिय पुत्र रामचन्द्रको आया देख माता प्रेमके कारण अधीर हो उठीं। उन्होंने पुत्रका आलिङ्गन किया, उनका

माथा सूँघा और बड़े-बड़े आशीर्वाद देकर अन्तमें वात्सल्य-प्रेमके अधीन हो रामचन्द्रको जल्दी ही कुछ खा लेनेके लिये कहा।

भोजनके लिये जो राजसी आसन बिछा था, उसे स्पर्श कर रामचन्द्रजी हाथ जोड़ विनीत वचनोंसे बोले—'माता! आपको पता नहीं है, मेरे सभी प्रिय जनोंके लिये इस समय बड़ा ही भय आया है, किन्तु आप सबको इससे दुखी न होना चाहिये। मैं दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। अब मुझे राजसी आसनसे क्या काम? अब तो मेरे लिये कुशासन ही पर्याप्त होगा। मैं चौदह वर्ष वनमें रहूँगा, जंगली वस्त्र धारण करूँगा और कन्द-मूल-फल खाकर ही अपना निर्वाह करूँगा।'

ओह, इन वेदनापूर्ण वचनोंको सुनकर देवी कौसल्याको कितना अपार दुःख हुआ होगा, इसकी पूर्ण कल्पना क्या कोई कर सकता है? महाकविने निम्नलिखित तीन श्लोकोंमें उसके दुःखका चित्र खींचा है—

> सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।
> पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता॥
> तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।
> रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्॥
> उपावृत्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम्।
> पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विममर्श च पाणिना॥
>
> (वा० रा० २।२०।३२-३४)

'इस (भयङ्कर) संवादके सुननेसे देवी कौसल्या कुल्हाड़ीसे काटी हुई सालकी शाखाके समान सहसा भूमिपर गिर पड़ीं, मानों स्वर्गसे कोई देवाङ्गना गिरी हो। दुःखके अयोग्य, बेहोश कौसल्या कटे केलेके समान गिर पड़ी। श्रीरामचन्द्रने अपनी माताको उठाया। करवट बदलकर दुःखिनी कौसल्या उठीं, जिस प्रकार बोझसे लदी घोड़ी उठती है, उनके सम्पूर्ण शरीरमें धूल लग गयी थी, श्रीरामचन्द्रने उसे अपने हाथसे झाड़ा।'

उस समय माताके धैर्यका बाँध सचमुच टूट गया होगा। जिन बातोंको अबतक वे अपने पुत्रसे छिपाये रखती थीं, भारी दुःख पड़नेपर वे बातें आपसे आप ही बाहर निकल पड़ीं! वे बड़े ही दुःखके साथ कहने लगीं—'पुत्र! यदि तुम उत्पन्न न हुए होते तो मुझे दुःख होता अवश्य, किन्तु तब यह पुत्र-वियोगरूपी असह्य दुःख न होता। बन्ध्याको पुत्रहीन होनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा दुःख नहीं होता। मैंने पतिके प्रेमसे होनेवाले सुख और कल्याण कभी नहीं देखे। हे राम! मैंने सोचा था कि पुत्रके समयमें मैं सुख भोगूँगी, पर अब हृदय छेदनेवाली अपनेसे छोटी सौतोंकी बहुत-सी अरुचिकर बातें, उनसे बड़ी होनेपर भी सहनी पड़ेंगी। हे पुत्र! जब तुम्हारे रहनेपर ही यहाँ मेरा इतना अधिक तिरस्कार था, तब तुम्हारे चले जानेके बाद मेरा क्या हाल होगा? उस समय तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी। राम! तुम्हें उत्पन्न हुए अट्ठाईस वर्ष हो गये और ये वर्ष अपने दुःखोंकी समाप्तिकी कामनासे मैंने जैसे-तैसे करके बिताये। सौतोंके द्वारा अपमानको सहते-सहते मैं बूढ़ी हो गयी, अब मुझसे ये दुःख नहीं सहे जायँगे। तुम्हारा पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख न देखनेसे दुःखिनी मैं किस प्रकार अपना जीवन बिताऊँगी? राम! मेरा हृदय बड़ा ही कठोर है इसी कारण वह फटता नहीं। अवश्य ही मेरी मृत्यु नहीं है। मृत्युके घरमें शायद मेरे लिये जगह ही नहीं रही! इसीसे तो यमराज आज मुझे उठा नहीं ले जाते। मेरा हृदय लोहेका बना हुआ है, तभी तो यह ऐसे भयंकर दुःखके आनेपर न तो टूटता ही है और न फटता ही है। यह बात बिल्कुल ठीक है कि निश्चित समयके पहले किसी प्रकार भी मृत्यु नहीं हो सकती। पुत्र-कल्याणकी कामनासे मैंने जो व्रत, दान, संयम किया, वह सब अनर्थक हुआ। मैंने जो तपस्या की वह भी व्यर्थ गयी।' इसप्रकार अनेक विलाप करती हुई माता अधीर होकर कहने लगी—

> अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा
> त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ।
> अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः
> सुदुर्बला वत्समिवाभिकांक्षया॥
>
> (वा० रा० २।२०।५४)

'चन्द्रमुख राम! तुम्हारे बिना मेरा यह गर्हित जीवन व्यर्थ है। इसलिये जिसप्रकार बछड़ेके पीछे दुबली गौ चलती है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे वन चलूँगी।'

वन जानेवाले रामसे माताने हृदयको पिघला देनेवाली बातें कहीं, किन्तु सत्यप्रतिज्ञ राम उनसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। पास ही खड़े हुए लक्ष्मण इन सभी बातोंको सुन रहे थे। रामके कल्याणमें ही सदा तत्पर रहनेवाले लक्ष्मण इसको सहन नहीं कर सके। उन्होंने राजाको खूब ही खरी-खोटी सुनायी, कैकेयीको भी बुरा-भला कहा और रामको उनका अधिकार

सुझाया। उन्होंने आवेशके साथ कहा—"पुरुषोत्तम, राजा किस बल-भरोसेपर और किस कारणसे तुम्हारा यह प्राप्त राज्याधिकार कैकेयीको देना चाहते हैं? हे शत्रुविजयिन्! आपसे और मुझसे वैर करके राजा भरतको राज्य देनेकी कौन-सी शक्ति रखते हैं? इसलिये आप अभी राज्यपर जबरदस्ती अधिकार कर लें। यमराजके समान धनुष-बाण लेकर आपकी सहायता करनेको मैं तैयार हूँ।' माता रामके स्वभावको जानती थी, इसलिये उन्होंने न तो लक्ष्मणकी इन बातोंका समर्थन ही किया और न विरोध ही। उन्होंने केवल इतना ही कहा 'राम! अपने भाई लक्ष्मणकी सब बातें तुम सुनो, इसके अनन्तर जो कुछ तुम उत्तम समझो वह करो।' रामको और करना ही क्या था? प्रेममें—आज्ञा-पालनमें अधिकारका ध्यान कैसा? इन कार्योंका पूर्ण निर्वाह तो एक त्यागके ही द्वारा हो सकता है। इसलिये उन्होंने लक्ष्मणकी बड़ाई करते हुए उन्हें उनका कर्तव्य सुझाया। माताको सान्त्वना दी और उन्हें समझाते हुए विवेकी राम बड़ी ही सरलताके साथ बोले—'माता! तुम सोचो तो सही, हम सबके गुरु धर्मात्मा महाराज दशरथ अभी जीवित हैं, उनके रहते तुम विधवा स्त्रियोंकी भाँति मेरे साथ वनमें कैसे चल सकोगी? पिताकी आज्ञाका पालन करना मेरा और तुम्हारा सभीका परम धर्म है। माता! मैं राज्यलोभके कारण पिताकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता।' माताने जब देखा कि राम किसी भी प्रकार अपने निश्चयसे डिगनेवाले नहीं हैं तो उन्होंने रोते-रोते रामकी बातें स्वीकार कीं। दुःखिनी माताने कड़ी छाती करके रामकी मंगल-कामनाके लिये उनका स्वस्त्ययन किया। निरन्तर अश्रुओंके प्रवाहसे जिसकी छाती भीग रही है, ऐसी माताने विलाप करते हुए अपने इकलौते पुत्रको छातीसे चिपटा लिया। रोते हुए रामके माथेको सूँघकर अपनेको अभागिनी समझने वाली माताने पुत्रको अनेक आशीर्वाद दिये। बार-बार पुचकारकर और उनके मुरझाये हुए मुखकमलको निहारकर माताने उन्हें विदा किया। वहाँसे रामचन्द्रजी सीताजीके महलोंमें गये।

मनुष्य चाहे कितना भी साहसी क्यों न हो, कैसा भी पण्डित अथवा विवेकी हो, किन्तु हर्ष और शोकके भाव उसके चेहरेपर प्रकट हो ही आते हैं। रामचन्द्र अपने परिजनोंसे पृथक् होनेवाले थे अतः उनके चेहरेपर वियोग-जन्य भावके लक्षण प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन्हें ऐसी दशामें देखते ही सीताने उसका कारण पूछा तथा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—

> अद्य बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्येण राघव।
> प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः॥
> (वा० रा० २।२६।९)

'हे राघव! यह क्या? विद्वान् ब्राह्मण तो कह रहे हैं कि आज पुष्य नक्षत्र है, जिसके देवता बृहस्पतिजी हैं, इसलिये इसमें आरम्भ किया हुआ कार्य सफल होता है। यह समय अभिषेकके योग्य है, अतएव आपको प्रसन्न होना चाहिये था। मैं देखती हूँ कि बात इसके बिल्कुल विपरीत है। कहिये तो सही, आप उदास क्यों हैं?'

सीताके पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीने आदिसे अन्ततक सभी वृत्तान्त सुनाया और उन्हें अपने पीछे उनका कर्तव्य सुझाकर अयोध्यामें ही रहनेका उपदेश दिया। रामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुनकर पतिप्राणा सीताने न तो कैकेयीको ही बुरा-भला कहा, न अपने श्वसुर धर्मात्मा महाराज दशरथहीकी निन्दा की, और न श्रीरामचन्द्रजीसे ही पुरमें रहनेका आग्रह किया। किन्तु वे इस बातसे दुःखी हुईं कि श्रीराम मुझे अयोध्यामें रहनेके लिये क्यों कह रहे हैं। इसीलिये स्नेहसे कुपित होकर दृढ़ताके साथ बोलीं 'राघव! यदि आप आज ही वन जा रहे हैं, तो मैं आपके रास्तेके कुश-कण्टकोंको रौंदती हुई आगे-आगे चलूँगी। मैं आपके साथ वन जाऊँगी, इसमें कुछ भी सन्देह न कीजिये। महाभाग! मैं वन जानेके लिये तैयार हूँ। अब मैं किसी प्रकार रुक नहीं सकती।' सीताके इन दृढ़ वचनोंको सुनकर भी राम उन्हें साथ ले चलनेको राजी न हुए। वे उन्हें जंगलोंके भयङ्कर दुःखोंको सुनाकर डरानेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने खूब विस्तारके साथ बीहड़ वनोंमें होनेवाले भयङ्कर दुःखोंका वर्णन किया।

ये बातें सुनकर सीता न तो डरी ही और न अपने निश्चयसे तनिक विचलित ही हुईं। वे रो रोकर पतिसे कहने लगीं—'मैं आपकी सेविका हूँ, पतिव्रता हूँ, दीना हूँ और सुख-दुःखको समान समझनेवाली हूँ। हे राघव! आप मुझे साथ ले चलें, क्योंकि मैं आपके सुखदुःखकी संगिनी हूँ। यदि आप इसप्रकारकी दुःखिनी मुझको अपने साथ वन ले जाना नहीं चाहते, तो मैं अपनी मृत्युके लिये विष, आग या जलका उपयोग करनेका विचार करूँगी।' इतनेपर भी जब सीताने देखा कि पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र मुझे वन ले

चलनेको राजी नहीं हैं, तब तो वे बहुत ही अधीर हो उठीं। उनका क्रोध आवश्यकतासे अधिक बढ़ गया था, किन्तु वह क्रोध स्नेहसे भीगा हुआ और ममत्वसे भरा हुआ था। वे श्रीरामचन्द्रको स्नेहके साथ तीक्ष्ण तानें मारती हुई प्रेम और अभिमानके साथ बोलीं—

किं त्वा मन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥
(वा० रा० २।३०।३)

'मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनकने आपको पुरुष-शरीरधारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया।'

इसप्रकार सीताने जब भाँति-भाँतिसे श्रीरामचन्द्रको मजबूर किया और किसी प्रकार भी अयोध्यामें रहनेको राज़ी न हुई तो रामने उन्हें साथ चलनेकी अनुमति दे दी। लक्ष्मण कब चूकनेवाले थे? उन्होंने कौसल्याके घरसे ही रामचन्द्रका पल्ला पकड़ लिया था। उन्हें विशेष समझाना व्यर्थ था, इसलिये सहजमें ही साथ जानेकी अनुमति मिल गयी।

अब रामचन्द्रजीने वन-गमनकी तैयारियाँ शुरू कर दीं। लक्ष्मण उसी तत्परताके साथ वन-गमनकी तैयारी करने जुट गये जिस तत्परतासे अबसे थोड़ी देर पहले राज्याभिषेककी तैयारीमें जुटे हुए थे। अब वन जाना ही है—यह सोचकर राम साहसी पुरुषकी भाँति सभी सामान ठीक करने लगे। उन्होंने कोषाध्यक्षसे अपना निजी धन मँगवाया और उसे क्रमसे सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बाँट दिया। अपने तथा लक्ष्मणके घरोंकी रक्षाके निमित्त बहुत-सा धन देकर विशेष-विशेष नौकर नियुक्त कर दिये। सभी ब्राह्मण अपनी इच्छानुकूल धन-सम्पत्ति पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए और रामचन्द्रको भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देने लगे।

ऐसे समयमें भी रामचन्द्रका विनोदी स्वभाव कुछ कम नहीं हुआ। अयोध्यामें उस समय गर्गगोत्री त्रिजट नामका एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके सन्तान तो बहुत थी। किन्तु घरमें खानेका पूरा ठिकाना नहीं था। बेचारा ब्राह्मण होकर भी कुदाल और हल लेकर दिनभर कड़ी धूपमें खेतपर काम किया करता था। दुःखके कारण वह दुर्बल ब्राह्मण पीला पड़ गया था। उसकी स्त्रीने उससे कहा—'आप मेरी बात सुनिये, राजकुमार राम आज सभी ब्राह्मणोंको मनमानी दक्षिणा बाँट रहे हैं। आप भी चले जायँ। आपके भाग्यमें होगा तो कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा।' स्त्रीके वचन सुनकर उस दुर्बल ब्राह्मणने एक फटा-सा चिथड़ा अपने शरीरपर लपेट लिया और राजकुमार रामके महलोंकी ओर चल पड़ा। राजकुमार साधारण मनुष्योंकी तरह बाहर खुले मैदानमें तो घूमते ही नहीं थे उनसे मिलना कोई हँसी खेल नहीं थी। रामचन्द्र पाँच पहरोंके भीतर रहते थे। किन्तु अब तो वनवासी बन चुके हैं, इसलिये आज उनके पास जानेके लिये किसीको भी मनाई नहीं है। इसीलिये वह त्रिजट ब्राह्मण पाँचों खण्डोंको पारकर सीधा रामचन्द्रके पास पहुँच गया। किसी भी खण्डमें पहरेवाले सिपाहियोंने उसे नहीं रोका। वह तेजस्वी ब्राह्मण रामचन्द्रके समीप जाकर बोला—'महाबली राजपुत्र! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं, मैं वनमें रहता हूँ, मेरी कोई निश्चित वृत्ति नहीं है, आप मेरी ओर देखें।' श्रीरामचन्द्रने उस ब्राह्मणकी ओर देखकर मुसकराते हुए कहा—'विप्रवर, अभी मैंने अपनी हजार गौओं-मेंसे एक भी गौ किसीको नहीं दी। इसलिये आप एक काम कीजिये। यह डण्डा लीजिये—इसको आप जोरसे फेंकें। यह जहाँ जाकर गिरेगा, वहाँ तककी सभी गौएँ आपकी होंगी।' यह सुनकर उस दुर्बल ब्राह्मणमें न जाने कहाँसे बल आ गया। उसने जल्दीसे अपनी फटी धोतीको खूब जोरोंसे कसकर बाँध लिया और अपने सारे बलको हाथमें एकत्रित करके जोरसे डण्डा फेंका। कई हजार गौओंके झुण्डको पार करता हुआ डण्डा सरयूके उस पार जा गिरा। रामचन्द्र उस दुर्बल ब्राह्मणके इस कृत्यको देखकर हँस पड़े और प्रसन्न होकर बोले—'विप्रवर! आप कुछ और न समझें यह तो मैंने आपके साथ विनोद किया था। मैं इन सूखी हड्डियोंको देखना चाहता था, कि इनमें कितना बल है? ये गायें सब आपकी हुईं और भी जो आपको आवश्यकता हो, सो यहाँसे ले जायँ, क्योंकि मैं ब्राह्मणोंका दास हूँ। मेरा सारा धन ब्राह्मणोंके लिये ही है।' रामचन्द्रने उस ब्राह्मणको इसप्रकार सन्तुष्टकर विदा किया।

सारा धन बाँटकर राम अपनी पत्नी और भाईके साथ पैदल ही राजासे विदा होनेके लिये राजभवनमें चले। पुरवासियोंके उस समयके दुःखको कौन कह सकता है? महाकविने उसका बड़ा ही सजीव और हृदयग्राही वर्णन किया है। स्थानाभावके कारण यहाँ उसका तनिक भी उल्लेख नहीं हो सकता।

सुमन्तने आकर दुखी और बेहोश राजाको समाचार दिया कि अपना सभी धन ब्राह्मणोंको बाँटकर राम वन आ रहे हैं और वे आपके दर्शन करनेके लिये द्वारपर खड़े हैं।

'हा ! क्या वह भयङ्कर समय सचमुचमें सन्निकट आ पहुँचा अब मैं अपने निर्दोष प्यारे पुत्रको इन्हीं आँखोंसे वनवासीके वेषमें देखूँगा।' कड़ी छाती करके राजाने सुमन्तसे कहा—'सूत ! मेरी सब स्त्रियोंको बुला लाओ, मैं एक बार इन सबके सहित रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ।' महाराजकी आज्ञा क्षण भरमें ही पूरी की गयी। देखते-ही-देखते साढ़े तीन सौ रानियाँ दुःखसे लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ती हुई वहाँ आ उपस्थित हुईं। उनके वस्त्र अश्रुओंसे भीगे हुए थे। रानियोंके आ जानेपर राजाने भाई और सीतासहित रामको भीतर बुला भेजा। रामको देखते ही राजा दौड़कर बड़े वेगसे उनकी ओर चले, किन्तु बीचमें ही मूर्छा आ जानेके कारण बेहोश होकर गिर पड़े। जल्दीसे दौड़कर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने उन्हें सँभाला, सुकुमार सीताने भी इस काममें सहायता की। राजाके दोनों नेत्रोंसे सावन-भादोंकी वर्षाके समान अश्रुओंकी झड़ी लग रही थी। वे बेहोश हुए पलँगपर पड़े थे। शोक-समुद्रमें डूबे हुए राजाको क्षण भरमें होश हुआ। तब विनीत भावसे श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़कर पितासे बोले—

> आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
> प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम्॥
>
> (वा० रा० २।३४।२२)

हे महाराज ! मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि आप हम सब लोगोंके स्वामी हैं, हम दण्डकारण्यको जानेके लिये तैयार हैं। आप प्रसन्न होकर हमारी ओर देखें और हमें जानेकी आज्ञा दें।

धर्मपाशमें बँधे हुए राजाकी उस वेदनाका अनुभव तो उनके निम्नलिखित शब्दोंसे लगता है। वे दुखी होकर रामचन्द्रसे बोले—

> अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
> अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥
>
> (वा० रा० २।३४।२६)

'हे राघव ! कैकेयीने वरदानके द्वारा मुझे मोहित कर लिया है, मैं राज्यके अयोग्य हूँ, क्योंकि मैं अब अपने अधीन नहीं हूँ, इसीलिये हे पुत्र ! मुझे कैदकर तुम अयोध्याके राजा बनो।'

राजाके इन वचनोंको सुनकर रामचन्द्र बोले—'महाराज ! हजारों वर्षोंतक आप पृथ्वीका राज्य भोगें। राज्य करनेकी मेरी इच्छा ही नहीं है, मैं तो वनमें जाकर रहूँगा और चौदह वर्ष पूरे होनेपर फिर आपके श्रीचरणोंके दर्शन करूँगा।' पिताने देखा राम वन जानेसे रोके नहीं जा सकते। वेदनाके सागरमें डुबकियाँ लगाते हुए बूढ़े बाप अपने सिंह-सदृश पराक्रमी पुत्रको इसप्रकार बिल्कुल ही तैयार देखकर दीनता और करुणाके साथ बोले—

> अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
> एकाहदर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम्॥
> मातरं मां च संपश्यन् वसेमामद्य शर्वरीम्।
> तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि॥
>
> (वा० रा० २।३४।३३-३४)

'बेटा ! तुम वन जाये बिना मानोगे नहीं, किन्तु मेरी एक अभिलाषा है, तुम आज मत जाओ, जिससे एक दिन और एक रात्रिका समय मैं तुम्हें देखकर सुखसे बिता सकूँ। राम ! इस (दुःखिनी) अपनी माताकी ओर एवं मेरी ओर देखकर, बस, आज एक ही रात्रिके लिये यहाँ मेरे पास और रह जाओ। आज रहकर और मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करके कल प्रातःकाल भले ही खुशीके साथ चले जाना।' २८ वर्षतक दिन-रात्रि पास रहनेपर जिन महाराजके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए, वे एक दिनमें ही अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण होनेका सुख-स्वप्न देख रहे हैं। सच है, 'डूबतेको तिनकेका सहारा भी बहुत होता है।' एक रातके रहनेकी अनुनयमें कितनी करुणा भरी पड़ी है ! सचमुच यदि राम उस रात्रि रहकर बूढ़े बापके पास बैठकर उसकी थालीमें साथ ही भोजन कर लेते, तो महाराज दशरथ अवश्य ही कृतकृत्य हो जाते। किन्तु विधिका विधान विचित्र है, जो पुत्र सदा अपने पिताके मुखकी ओर इसलिये देखता रहता था कि देखें पिता किस समय क्या आज्ञा करते हैं। ऐसा न हो कि उसके पालन करनेमें तनिक भी विलम्ब हो जाय, वही पुत्र आज धर्म-पाशमें बँधनेके कारण ऐसा कठोर हो गया है कि इतनी चिरौरी करनेपर भी एक रात्रि रहनेको राजी नहीं होता, इसीका नाम भवितव्यता है !

कैकेयी जानेके लिये जल्दी कर रही थी, उस समय वह यमराजकी सहोदरा तथा विषधर सर्पिणी बनी हुई थी। उसे वहाँ श्रीरामका क्षणभर भी रुकना अच्छा नहीं लगता था। महाराजने रामको रोकनेके सैकड़ों प्रयत्न किये, किन्तु सभी निष्फल हुए। तब उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्री सुमन्तको ओर इशारा किया। सुमन्त ओरसे सिर घुमा, कई बार

लम्बी लम्बी साँसें छोड़, हाथसे हाथ मल, दाँत कटकटाकर, क्रोधसे लाल आँखें बना—अधिक क्रोधके कारण भयङ्कर दुःख भोगते हुए, महाराजके अभिप्रायको समझ अपने तीक्ष्ण वचनरूपी बाणोंसे कैकेयीके हृदयको कँपाते हुए तथा उसके अन्तस्तलको अपने अनुपम वाक्य-बाणोंसे बेधते हुए, बड़े ही क्रोधके साथ बहुत-सी उलटी-सीधी बातें कहने लगे। कैकेयीकी माताकी क्रूरताका कथन करके क्रोधित सुमन्तने उसे कुलघातिनी बताया और कहा तू उसीकी क्रूर कर्म करनेवाली कलंकिनी कन्या है। तुझसे ऐसी ही आशा की जा सकती है। सच है, बेटी माँके ही समान गुण वाली होती है। किन्तु उसपर सुमन्तकी इन बातोंका कुछ भी असर नहीं हुआ। वशिष्ठ, वामदेव, सिद्धार्थ आदि सभी समझदार व्यक्तियोंका समझाना व्यर्थ हुआ। वह अपने विचारको किसी प्रकार भी न बदल सकी। तब दुखी होकर महाराजने कहा—'अच्छा, सेना, धन, कोष, वस्त्र, आभूषण और सभी राजसी सामग्रियाँ रामचन्द्रके साथ वनमें जायँ और इस शून्य राज्यको भरत भोगे।' तब डरी हुई कैकेयी बोली—'जब सभी वस्तुएँ चली जायँगी तो इस साररहित राज्यको लेकर भरत क्या करेगा। उसको ऐसा राज्य नहीं चाहिये।'

जब दुखी राजाने इस बातपर कैकेयीको बहुत बुरा-भला कहा और स्वयं रामचन्द्रके साथ वन जाने तकको उद्यत हो गये, तब रामचन्द्र बड़े ही विवेकपूर्ण वचनोंसे बोले—

> त्यक्तभोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवतः ।
> किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥
> यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
> रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥
> (वा० रा० २।३७।२-३)

पिताजी! मैंने तो सभी प्रकारके भोगोंका त्याग कर दिया है। मेरा निर्वाह जंगली वस्तुओंसे ही हो जायगा, जब मैंने सभी प्रकारकी आकांक्षाओंका त्याग कर दिया है, तब मेरे साथ सेनाकी क्या आवश्यकता है? जिसने अपना सबसे बढ़िया हाथी दे डाला उसे हाथी बाँधनेकी रस्सीसे भला मोह कैसा? वह क्या रस्सीके लिये आग्रह कर सकता है? अतएव सज्जनश्रेष्ठ राजन्! मुझे इस सेनाकी आवश्यकता नहीं। ये सब सेना आदि वस्तुएँ मैंने भरतको दे दी हैं। मेरे लिये तो आपलोग वल्कल-वस्त्र ले आवें। मेरा काम एक खनती और खाँचीसे ही चल जायगा। यही चीजें मुझे मिलनी चाहिये।

निर्लज्जा कैकेयी इतने आदमियोंके बीचमेंसे उठकर स्वयं वल्कल-वस्त्र ले आयी। उस वज्रहृदयाको इसमें तनिक भी लज्जा न लगी। रामचन्द्र और लक्ष्मणने सब आदमियोंके देखते-ही-देखते अपने महीन वस्त्र उतारकर रख दिये और मुनियोंके पहनने योग्य वल्कल-वस्त्र पहन लिये।

ओः! उस समयका दृश्य कैसा हृदयविदारक होगा, जब सुकुमारी सीताके सामने चीर-वस्त्र आये होंगे। जिसने कभी दुःख नहीं देखा था, जो सदा लाड़-चाव और प्यारसे पली थी, वही राजकुमारी विदेहकन्या और चक्रवर्ती महाराज दशरथकी पतोहू आज दशरथके सामने मुनि-पत्नियोंकी तरह वल्कल-वस्त्र धारण करेगी! सचमुच उस समय वहाँके सभी उपस्थित स्त्री तथा पुरुषोंका हृदय फटकर चकनाचूर हो गया। विश्वकविकी अमर लेखनीने सीताके मनोभावोंका कैसा सजीव चित्र खींचा है—

> अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।
> संप्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥
> सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
> कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥
> (वा० रा० २।३७।९-१०)

सदा पीताम्बरोंको पहननेवाली सीता अपने वल्कल-वस्त्रोंको देखकर ऐसे भयभीत हो गयी जैसे विशालाक्षी हरिणी जालको देखकर डर जाती है। शुभलक्षणा जानकी कैकेयीसे वे वस्त्र पाकर लज्जित और दुःखित हुई, जानकीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह लज्जित हो गन्धर्वराजके समान अपने पतिसे बोली—

> कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ।

'वनवासी मुनि किसप्रकार चीर पहना करते हैं?' बेचारी-ने काहेको किसीको चीर बाँधते देखा था, इसलिये अपने चीर पहिननेके अज्ञानको स्मरणकर वह लज्जित हुई और वहीं ठिठुक गयी, एक चीरको तो उसने कन्धेपर रख लिया और दूसरेको हाथमें लिये हुए वह सरलताके साथ रामचन्द्रजीके मुखकी ओर देखने लगी। सीता चीर पहनना नहीं जानती है, यह सोचकर धर्मात्मा राम सीताके समीप गये और अपने हाथसे पीताम्बरके ऊपर चीर कस दिया। जानकीको यति-वेषमें चीर पहने देखकर समूचा राजभवन

रुदनके भीषण रवसे गूँज उठा ! उस हृदय हिला देनेवाले दृश्यसे सभी दुखी हुए ! गम्भीरताके सागर भगवान् वशिष्ठ भी अपने आवेशको नहीं रोक सके और उन्होंने अनेक प्रकारकी जली-कटी बातें कैकेयीको सुनायी।

बेहोश और दुखी राजाको प्रणामकर रामचन्द्रजी भाई और पत्नीसहित वन जानेके लिये रथपर बैठे। उनके वियोगसे व्याकुल अपार भीड़ आँखोंसे अश्रु बहाती हुई और कलंकिनी कैकेयीको जली-कटी सुनाती हुई रथके पीछे-पीछे चली। रोकना और समझाना सभी बेकार हुआ। उस वियोगकी बाढ़में कोई किसीकी नहीं सुनता था। सभी एक अद्भुत आकर्षणसे स्वयं ही खिंचे जा रहे थे।

श्रीरामचन्द्रके चले जानेपर दुखी राजा पागलोंकी तरह यह कहते हुए घरसे पैदल ही दौड़े कि 'मैं अपने प्यारे पुत्रको देखूँगा।' उनके पीछे-पीछे साढ़े तीनसौ रानियाँ भी चलीं। सम्पूर्ण नगर समानरूपसे दुखी था। इतनी अपार भीड़ होनेपर भी कहीं धूलिका नामतक नहीं था। कारण, वहाँकी धूलि सबके आँसुओंसे कीच हो गयी थी। रामचन्द्रने अपनी माता और पिताको रथके पीछे-पीछे आते देखा ! सदा सवारियोंपर चलनेवाली माताको अनाथिनीकी तरह रथके पीछे-पीछे दौड़ते देखकर मातृभक्त श्रीराम दुःखसे तिलमिला उठे। वे धर्मपाशमें बँधे थे, इसलिये सामने देखते हुए भी मातासे आँखें न मिला सके। पुरवासी हाहाकार कर रहे थे। माता कौसल्या रामके रथके पीछे बिना बछड़ेवाली गौकी तरह करुण स्वरमें 'हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते !' कहती हुई जोर-जोरसे रुदन कर रही थीं। राम-लक्ष्मण और सीताके लिये उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसू बह रहे थे। रामचन्द्रने कई बार अपने रथके चारों ओर चक्कर लगाती हुई अपनी दुःखिनी माताको देखा। वह पगलीकी भाँति इधरसे उधर किसी खोई हुई चीजको ढूँढ रही थी। रामचन्द्र सारथीसे बार-बार कहते हैं, 'जल्दी रथ बढ़ाओ ! जल्दी करो !' किन्तु चारों ओरकी उमड़ी हुई भीड़ रथको आगे बढ़ने दे तब तो ! इतनेमें ही महाराज दशरथने भी जोरसे चिल्लाकर सुमन्तसे रथ रोकनेके लिये कहा। सुमन्त दुविधामें पड़ गया। राम चलनेके लिये कहते हैं और प्रजाजन तथा महाराज चिल्ला-चिल्लाकर ठहरनेका आग्रह कर रहे हैं। शोक-सन्तप्त राम उस समय सूतसे बोले—

'भैया सूत ! यह भीषण दुःख अब अधिक समय तक नहीं देखा जाता। तुम रथको जल्दी हाँको !

बेचारा सारथी क्या करता ? उसे बचावके लिये रास्ता मिल गया। सूतने ढीली करके घोड़ोंके चाबुक मारी। घोड़े तिलमिलाकर चलने लगे। जनसमूह एक स्वरमें ऊँचे स्वरसे पुकार उठा 'हा राम !'

रथ जब राजमहलको पारकर राजपथपर चलने लगा तब भीड़ने चारों तरफसे आकर फिर घेर लिया। वे लोग रामचन्द्रके साथ वन जानेका निश्चयकर दृढ़तासे रथके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। रामने सबको यथाविधि समझा-बुझाकर लौटानेका प्रयत्न किया। उन्होंने देखा—भीड़के साथ बड़े-बड़े श्रोत्रिय और वेदज्ञ ब्राह्मण पैदल चल रहे हैं। उन्होंने रामके साथ वनमें रहनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है। बृहस्पति और अंगिराके समान तेजस्वी महाराजाओंके भी पूजनीय और श्रद्धेय ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल होकर रामचन्द्रके रथके साथ दौड़ रहे हैं। उन वृद्ध ब्राह्मणोंको वे किसी प्रकार भी न रोक सके। यद्यपि रामने हृदय कठोर कर लिया था, किन्तु अभी आँखोंकी लिहाजको न छोड़ सके थे। वृद्ध ब्राह्मणोंको पीछे-पीछे आते देख वे रथसे उतर पड़े और भाँति-भाँतिसे अनुनय-विनय करने लगे। राम किसी भी प्रकारसे लौटनेको राजी नहीं हैं, यह सोचकर वृद्ध ब्राह्मण दुःखके साथ कातरस्वरमें अपने सफेद बालोंको दिखाकर कहने लगे—

> त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद् धर्मपथे स्थितम्॥
> याचिता नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः।
> शिरोभिर्निभृताचार महीपतनपांसुलैः॥
>
> (वा० रा० २।४५।२६-२७)

धर्मात्मा रामचन्द्र ! यदि आप-जैसे श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष भी धर्मका तिरस्कार करेंगे—ब्राह्मण-वचनरूपी धर्मकी ओरसे विमुख होंगे—तब अन्य साधारण लोग धर्मका पालन किसप्रकार करेंगे ? हम प्रार्थना करते हैं, आप लौट चलें। आप धर्मानुष्ठानमें अचल हैं। हम जमीनपर लोटनेके कारण धूलसे भरे हंसके समान श्वेत केशोंसे युक्त सिरोंवाले ब्राह्मण आपसे प्रार्थना करते हैं, आप लौट चलें।

ब्राह्मणोंने दीनताके साथ दुःखपूर्ण शब्दोंमें अपनी परिस्थिति बतायी, वे बोले—'बहुत ब्राह्मणोंका यज्ञ फैला हुआ है, वे तभी यज्ञ कर सकेंगे जब आप लौटकर अयोध्याको चलेंगे। आप स्थावर और जंगम सभी प्राणियोंके प्रिय हैं।' इसप्रकार ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिसे प्रार्थनाएँ

की, किन्तु रामचन्द्रजी अपने निश्चयसे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

> एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने।
> ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्॥
> (वा० रा० २।४५।३२)

इसप्रकार लौटनेके लिये श्रीरामचन्द्रसे ब्राह्मणोंने प्रार्थना की, उसी समय रामचन्द्रको आगे आनेसे रोकती हुई तमसा नामकी नदी दीख पड़ी।

इसप्रकार श्रीरामचन्द्रकी राहको तमसाने रोक लिया और हमारी लेखनीको स्थल-संकोच बार-बार रोक रहा है, इसलिये इस लेखको हम यहीं समाप्त करते हैं। अन्तमें पाठकोंसे इतना ही निवेदन करना है कि यदि राम-वन-गमनके अद्भुत आनन्दका पूर्णरीत्या रसास्वाद करनेकी इच्छा हो तो श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणके इस प्रकरणको आद्यन्त अवश्य ही पढ़ जाइये। कविने एक-एक श्लोकमें करुणरसके वे भाव भर दिये हैं जिन्हें हजार बार पढ़नेपर भी वही अनिर्वचनीय आनन्द आता है। नित्य पढ़ते रहिये, आपको वे श्लोक रोज नये ही मालूम पड़ेंगे!

हे राम! तुम वनमें रहकर भाँति-भाँतिके क्लेशोंको सहते रहे, दुःख उठाकर भी हमारे लिये आनन्द ही छोड़ गये। यही तो तुम्हारी रमणीयता है। तुम्हारे सभी कर्म अद्भुत हैं। संसारी मनुष्य तुम्हारी लीलाओंके रहस्य कैसे समझ सकते हैं? प्रभो! तुम्हारे सभी प्रकारके चरित्र सुननेमें प्रीति हो, यही इस पामर प्राणीकी अन्तिम प्रार्थना है!

मर्यादा-पुरुषोत्तम राम

(लेखक-कविराज पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति 'श्रीहरि')

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामके पवित्र चरित्रकी विशेषता तथा लोकप्रियताका इससे अधिक और प्रमाण ही क्या हो सकता है कि आज धर्मप्राण समस्त हिन्दू-जाति भगवान् रामको अवतार पुरुष या महापुरुषके रूपमें ही नहीं किन्तु साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरके रूपमें भक्तिभरित हृदयसे स्मरण करती है। जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये असंख्य शताब्दियोंके अनन्तर आज भी हिन्दूजातिका प्रत्येक व्यक्ति भगवान् रामको ही स्मरण करता है। सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति एवं जीवन-मरणके समयमें भी जिन महापुरुषका नाम स्मरण करके असंख्य प्राणी आज भी असीम सुख-शान्तिका अनुभव करते हों, उनके पवित्र चरित्रकी महनीयताके सम्बन्धमें किसीको सन्देह ही क्या हो सकता है? धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेदोंके होते हुए भी आज समस्त हिन्दू-जाति मर्यादा-पुरुषोत्तम रामको अपना आदर्श महापुरुष मानती है। संसारका इतिहास देखनेसे पता चलता है कि जो गौरव भगवान् रामको प्राप्त है, वह गौरव संसारके किसी भी महापुरुष या नेताको अबतक नहीं प्राप्त हो सका है। धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक तीनों जगत्में ही भगवान् रामका चरित्र अतुलनीय है। यही कारण है, धार्मिक जगत्में भगवान् रामको उनके भक्तगण परब्रह्म परमेश्वरके रूपमें, सामाजिक जगत्में मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें एवं राजनैतिक जगत्में आदर्श नेता या राजाके रूपमें लोग उन्हें स्मरण करते हैं। भगवान् रामके राज्यशासनकी सर्वोत्कृष्टताका पता तो इसी बातसे चल जाता है कि इस बीसवीं शताब्दी या वैज्ञानिक युगमें भी किसी सुख-शान्ति-पूर्ण समृद्ध राज्यके लिये 'रामराज्य' की उपमा दी जाती है। उत्तर भारतके ग्रामोंमें 'रामदुहाई' की प्रथा अबतक भी प्रचलित है। जिस समय कोई भी दण्डनीय अपराधी 'रामदुहाई' कहकर अपने अपराधकी क्षमा माँगता है, तो उसे तुरन्त छोड़ दिया जाता है। कई युग बीत जानेपर भी भगवान् रामके नामका व्यापक प्रभाव अबतक भी वैसा ही बना हुआ है। भगवान् रामके चरित्रका चिन्तन तथा अध्ययन वह आत्मिक शान्ति प्रदान करता है, जो अतुलनीय शान्ति संसारके किसी भी महापुरुष या अवतारपुरुषके चरित-चिन्तनके द्वारा प्राप्त करना सर्वथा कठिन है। यही कारण है, भारतके विभिन्न प्रान्तवासी, भगवान् रामके भावुक भक्तोंने अपने-अपने प्रान्तकी भाषाओंमें अपनी-अपनी सुरुचिके अनुसार भगवान् रामके पवित्र चरित्रका गान किया है।

रामकी पितृभक्ति

जिन लोगोंने रामायण आदि ग्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका भली प्रकार मनन तथा अध्ययन किया है, उन्हें यह भली भाँति विदित है कि संसारके इतिहासमें मर्यादा-पुरुषोत्तम रामकी पितृभक्ति अतुलनीय है। किसी कविने बहुत ही ठीक कहा है—

> आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
> न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥

राज्याभिषेकके लिये बुलाये जाकर और जंगलके लिये भेज दिये जानेवाले भगवान् रामकी मुखाकृतिके ऊपर तनिक भी हर्ष-विषाद-जनित विकार नहीं दिखलायी पड़े। कितना अपूर्व त्याग है, कितना अद्भुत चरित-बल है। युवराज राम अपने मूर्च्छित पूज्य पिताजीके समीपमें खड़े हैं। समीपमें ही विमाता कैकेयी बैठी हुई हैं। पूज्य पिताजीकी इस दयनीय दीन-दशाको देखकर कल्याणमय राम माता कैकेयीसे अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें पूछते हैं कि *'मातः! मेरे पूज्य पिताजी आज इतने दुखी क्यों हैं?'* कैकेयी उत्तर देती है—'राम! पिताके दुःखके कारण तुम हो। मैंने तुम्हारे पिताजीसे दो वरदान माँगे हैं। एक वरदानके द्वारा भरतके लिये अयोध्याका राज्य और दूसरे वरदानके द्वारा चौदह वर्षका तुम्हारे लिये वनवास।' माताके इन वचनोंको सुनकर भगवान् राम गोस्वामी-तुलसीदासजीके शब्दोंमें क्या कहते हैं—

> सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी॥
> तनय मातु-पितु-तोषनि-हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
> भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
> जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा॥

पूज्य पिताजीके वचनोंकी रक्षा या आज्ञापालनके लिये अपने आदर्श चरितके कारण गुरुजनोंकी आँखोंके तारे, अयोध्याकी समस्त प्रजाके प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भगवान् राम, 'जिनका आज राज्याभिषेक होनेवाला था' वनवासी मुनियोंके वेषमें अनुज लक्ष्मण तथा मिथिलेश-राजकुमारी भगवती सीता देवीके सहित अयोध्याका समस्त राज्य-वैभव छोड़कर जंगलको जा रहे हैं। घनश्याम रामकी यह अपूर्व पितृभक्ति तथा आदर्श त्याग अनन्त शताब्दियोंके अनन्तर आज भी हम भारतीयोंके चरित्र-निर्माणमें विशेषरूपसे सहायक हो रहा है। जिस समय हमारा मन अनेक प्रकारकी भोग-तृष्णाओंसे मलिन होकर कर्तव्य-भ्रष्ट होने लगता है, उस समय भगवान् रामका पवित्र-चरित्र ही हमारे पथप्रदर्शकका काम करता है।

रामका भ्रातृप्रेम

इतिहास-ग्रन्थोंमें भ्रातृप्रेमके अनेक सुन्दर-सुन्दर उदाहरण हमें देखने और सुननेको मिल सकते हैं किन्तु भगवान् रामका भ्रातृप्रेम जो एक अमूल्य शिक्षासे हम भारतीयोंको कृतकृत्य कर रहा है, वह सर्वथा वर्णनातीत है। छोटी-छोटी-सी बातोंके ऊपर आज संसारके विभिन्न देशोंमें कितने ही भाई अपने प्यारे भाइयोंके प्राणोंके गाहक बन जाते हैं किन्तु इस पुण्यदेश भारतमें हमें जहाँ कहीं भी भ्रातृप्रेमके कुछ हृदयग्राही उदाहरण मिलते हैं उनका साक्षात् सम्बन्ध एकमात्र भगवान् रामके आदर्श चरितकी शिक्षासे है। आधीरातका समय है. मेघनादकी शक्तिसे आहत, प्रिय अनुज लक्ष्मणका अचैतन्य शरीर अपनी पवित्र गोदमें लिये हुए भगवान् राम सञ्जीवनी बूटी लेनेके लिये गये हुए हनूमान्के आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हनूमान्जी अभीतक नहीं आये हैं, प्रातःकाल होते ही लक्ष्मणके जीवनकी आशा जाती रहेगी, इस काल्पनिक वियोग-वेदनासे पीड़ित होकर भगवान् राम अपने आँसुओंकी वर्षासे समस्त चराचरको शोकसागरमें डुबोते हुए कहते हैं—

> सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
> अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥

कैसी करुणामयी उक्ति है और कैसा अकृत्रिम विचित्र भ्रातृप्रेम है। यदि आज भगवान् रामका दिव्य चरित 'रामायण' आदि पुण्य ग्रन्थ हमारे समक्षमें न होते तो साधारण जनसमाजको भ्रातृप्रेमकी ऐसी सुन्दर शिक्षा कहाँसे मिलती?

रामका प्रजारञ्जन और भगवती सीतादेवी

जिन आदर्श सती भगवती सीतादेवीने अपने पिता तथा श्वसुरके राजमन्दिरोंके समस्त विषय-विलास तथा सुखोपभोगोंको छोड़कर आज अपने प्यारे पतिदेव भगवान् घनश्याम रामके साथ कण्टकाकीर्ण दण्डकारण्यकी कर्कश भूमिको ही फूलोंके पाँवड़े मान रक्खा है, वही कल रावणके द्वारा हरी जाकर लङ्का पहुँचायी जा रही हैं। लङ्का-विजय होनेपर भी अयोध्याकी राजराजेश्वरी बिना किसी सवारीके पैदल ही भगवान् रामके सामने लायी जाती हैं

और उनकी अग्नि-परीक्षा होती है। अभी रामको राज्याभिषेक हुए थोड़े भी दिन नहीं हुए हैं और न अयोध्या राज्यकी राजलक्ष्मी जनककिशोरीको एक दिनके लिये भी नयनाभिराम रामकी सुखमयी मुखच्छवि देखनेका अवसर ही मिला है कि अकस्मात् पुनः वज्रपात होता है। एक साधारण रजकके द्वारा लगाये हुए अपवादके कारण जन्मदुःखिनी जानकी आज फिर भी पतिदेवसे परित्यक्ता होकर अपने देवर लक्ष्मणके साथ जंगलको जा रही हैं। भाईकी आज्ञाको शिरोधार्य मानकर भ्रातृभक्त लक्ष्मण अचेतनावस्थामें ही शेर और भालुओं-जैसे हिंसक पशुओंसे भरे हुए उस भीषण जंगलमें राजराजेश्वरी, अवधकी राजलक्ष्मी जनकनन्दिनीको छोड़कर अयोध्या वापिस जा रहे हैं। चैतन्यलाभ होनेपर रोती और कलपती हुई भगवती सीतादेवी भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं कि हे सर्वान्तर्यामिन्! भक्तवाञ्छाकल्पतरु !! भगवन् !!! यदि मैं अपने दुर्भाग्यके कारण इस जीवनमें घनश्याम रामकी सेवाका पुण्य-फल नहीं पा सकी हूँ तो भी जन्म-जन्मान्तरमें मुझे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ही पति रूपमें प्राप्त हों, हे अनाथोंके नाथ! जगन्नाथ !! यही मुझ अनाथिनीकी आपसे प्रार्थना है। हे करुणामय! प्रभो !! मेरे प्यारे देवर लक्ष्मण मुझ अभागिनीको जङ्गलमें छोड़कर अकेले अयोध्या जा रहे हैं, उन्हें मार्गमें किसी प्रकारका कष्ट न हो, वे निरापद अपनी यात्राको समाप्त करके मेरे पतिदेवकी राजधानी अयोध्या नगरीतक पहुँच जायँ और उन्हें सब प्रकारसे राज्यकार्यमें सहायता पहुँचावें, यही मेरी आपसे अन्तिम विनती है। सतीत्वका यह अपूर्व आदर्श, भारतकी देवियोंका यह उज्ज्वल चरित्र आज हम भारतीयोंको कहाँ मिलता यदि भगवान् रामके भावुक भक्तोंके द्वारा संसारमें रामचरितका प्रचार न होता। परस्पर विरोधिनी इन घटनाओंके सम्मिश्रणसे किस प्रकारके सुन्दर और सुमधुर भावोंकी सृष्टि हुई है, इन बातोंके रहस्यका पता लगाना केवल उन भावुक रामभक्तोंके लिये ही सुलभ है, जिन्होंने पूर्ण भक्ति तथा श्रद्धाके साथ मनोयोगपूर्वक रामायण आदि ग्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका अध्ययन तथा मनन किया है। जिन भगवान् रामने पञ्चवटीमें रावणके द्वारा सीतादेवीके हरी जानेपर अपनी पर्णकुटीके चारों ओर—

सीतेति हा जनकवंशजवैजयन्ति !
हा मद्विलोचन-चकोर-नवेन्दुलेखे !
इत्थं स्फुटं बहु विलप्य विलप्य राम-
स्तामेव पर्णवसतिं परितश्चचार ॥

—हा सीते! हा मिथिलेशनन्दिनि! हा रामके लोचन-चकोरके लिये अभिनव चन्द्रलेखे! तुम कहाँ हो? इस-प्रकारके प्रकट करुण विलाप-कलापके साथ जनककिशोरीको खोजते हुए श्रीरामने दण्डकारण्यके साधारण प्राणियोंको कौन कहे तरु-लताओं तकको रुला दिया था। वेही भक्तवत्सल, दीनबन्धु दयामय राम अपनी जीवनसहचरी, प्राणाधिक-प्रियतमा, आदर्श सती भगवती सीतादेवीको एक साधारण प्रजापवादके कारण पूर्णगर्भा होनेपर भी पुनः वनवासको भेज रहे हैं, यह कैसी हृदयद्रावक घटना है? राग-विराग, कोमलता-कठोरता एवं दया-निर्दयताका एक ही स्थानपर कैसा अपूर्व सम्मिश्रण है? अविचारक लोग इस घटनाको लेकर चाहे भगवान् रामके चरितके ऊपर किसी प्रकारका आक्षेप क्यों न करें किन्तु सम्पूर्ण रामचरितके अन्दर यही एक ऐसी घटना है जिसने भगवान् रामको 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' एवं भगवती सीतादेवीको 'आदर्श सती' के सर्वोच्च पदपर आसीन किया है। अन्तमें मैं इस माङ्गलिक श्लोकके साथ-साथ सर्वसाधारणसे भगवान् रामके चरितका चिन्तन करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्,
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदं प्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्,
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

—•—

रामायण

चित्रमें ललाम है चरित्रमें ललाम शुभ,
नाममें ललाम पद्यपाठमें ललाम है।
पाठसे कुवासना भी नष्ट होती चित्तकी है,
बुद्धिहीन नर होता रामका गुलाम है॥
चौपाई ललाम, छंद-सोरठा ललाम 'विष्णु'
दास तुलसीका खूब कामिल कलाम है।
वर्ण हैं ललाम और काण्ड हैं ललाम सब,
शास्त्रमें पुराणमें रामायण ललाम है॥

—गंगाविष्णु पाण्डेय

राम-चरित-मानसकी विशेषता

(लेखक-श्रीदामोदरसहायसिंहजी, कविकिंकर)

म-चरित-मानस अर्थात् गोसाईं तुलसीदासकी विश्व-वन्दित परम प्रसिद्ध चौपाई-रामायण साहित्य-संसारका अनुपम काव्यरत्न है, जिसकी मधुर प्रखर ज्योतिसे भारतवर्ष ही क्यों, सारा संसार चकित और मुग्ध हो रहा है और जिसकी तुलनाका दूसरा ग्रन्थ हिन्दी भाषामें तो क्या, अन्य भाषाओंमें भी शायद ही मिले। हिन्दी भाषासे इसे हटा दीजिये, बस, हिन्दी साहित्यकी शोभा ही नहीं, महिमा भी आधी ही रह जाती है। निःसन्देह यह ग्रन्थ-शिरोमणि भूत-भावन भवानी-पति भगवान् शिवजीकी कृपाका प्रत्यक्ष फल है, जैसा कि स्वयं कविने स्वीकार किया है—

संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी। राम-चरित-मानस कवि तुलसी॥

सचमुच ऐसी सर्वाङ्गसुन्दर काव्य-निर्माण-प्रतिभाकी प्राप्ति बिना विशेष देवबलके सम्भव नहीं। यदि यह ग्रन्थ आध्यात्मिक गगनका अज्ञान-तिमिर-नाशक देदीप्यमान मार्तण्ड है तो साहित्यिक आकाशका भी चमकता रस बरसाता हुआ पूर्ण शरच्चन्द्र है। यदि इसमें बाह्य जगत्का प्रकाण्ड प्रदर्शन है तो अन्तर्जगत्की भी अमिट सत्यता है। यदि इसमें बाहरी घोर युद्ध—देवासुर-संग्राम—का वर्णन है तो भीतरी भीषण मानसिक समरकी भी भरपूर चर्चा है जो मानव-मानसमें सदासे होता आ रहा है।

राम-चरित-मानस स्वर्ग और मर्त्यका अपूर्व सम्मेलन है। अनुराग और विरागका अनुपम गँठ-बन्धन है। विज्ञ और विभागका लासानी जुटाव है। भक्ति, ज्ञान और कर्म-काण्डकी अलौकिक पवित्रतासम्पन्न त्रिवेणी है। द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैतकी एक विचित्र शृंखला है। वेद-शास्त्रोंका सार और उपनिषदोंका निचोड़ है। इसकी बहुत-सी चौपाइयाँ मन्त्र-स्वरूपिणी हैं। कविने बड़े ही कौशलसे तत्कालीन विरोधी सम्प्रदायोंमें मेल करा दिया है। वैष्णव होनेपर भी मानसकार शिव, शक्ति और विष्णुमें भेद नहीं मानते थे। उन्होंने बड़ी चतुराईसे शिवजीको 'सेवक स्वामि सखा सिय पी के' लिखकर बहुत-सा सन्देह और बहुत-सी मलिनता मिटा दी है। 'भवभव विभव पराभव-कारिनि' लिखकर शाक्तोंको भी अपना लिया है। सचमुच मत-मतान्तरोंके सम्बन्धमें कविने बड़ी ही उदारतासे काम लिया है। मानसमें साम्प्रदायिकता नहीं है—पक्षपात नहीं है। यह कहावतों और नीति-वाक्योंका भण्डार है। यथा—

टेढ़ जानि सँका सब काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू॥

लोकप्रियता इसमें कूट-कूटकर भरी है। इस गुणमें यह ग्रन्थ अद्वितीय है, यदि ऐसा कहा जाय तो भी मैं समझता हूँ, अत्युक्ति नहीं होगी। लाखों मनुष्योंने इसे पाठ करनेके लिये नागरी सीखी है। इसप्रकारसे साक्षरताके प्रचारमें इसने कम सहायता नहीं पहुँचाई है। सहज तो ऐसा कि निपट गँवार भी इसका अर्थ कर लेते हैं और कठिन ऐसा कि महामहिम पण्डितोंकी बुद्धि भी कुण्ठित होकर चक्कर काटने लगती है।

यह ग्रन्थ कभी पुराना नहीं होता। आज तीन सौ वर्षोंके बाद भी वैसा ही नया है। बल्कि यों कहना चाहिये कि प्रतिदिन नवीन होता जाता है। सैकड़ों बार पढ़नेके बाद फिर पढ़ना शुरू कीजिये आपको नित्य नयी नवीनताएँ मिलती ही जायँगी। इसे स्त्री-पुरुष, गृहस्थ-संन्यासी, ब्राह्मण-शूद्र, बालक-नवयुवक, जवान-बूढ़े सभी प्रकारके लोग दिलचस्पीसे पढ़ते हैं। मैं इसे चालीस-पैंतालीस वर्षोंसे बराबर नित्य पढ़ रहा हूँ पर कभी जी नहीं ऊबता, प्रत्युत बार-बार पढ़नेकी इच्छा बनी ही रहती है। कभी तो पाठ करनेमें हर्षातिरेक और रोमाञ्च, और कभी-कभी करुणातिरेक और अश्रुपात अनायास हो जाते हैं। जीवनभर अध्ययन और मननकी सामग्रियाँ इसमें प्रस्तुत हैं। इतना ही नहीं, इसका विषय कई जन्मोंमें हल किये जानेकी चीज है। इसमें क्या नहीं है? सच्चे खोजनेवालेके लिये सब कुछ है। भुक्ति-मुक्ति दोनों ही अपने-अपने स्थानपर सुशोभित हैं। प्रयत्न करनेसे इनके द्वारा भोग और मोक्ष दोनों मिल सकते हैं। निर्मल आध्यात्मिकता और नीतिपूर्ण लौकिकताका इसमें मणि-काञ्चन-योग है। गूढ़-से-गूढ़ वेदान्त और सांख्यके सिद्धान्त सरल-से-सरल भाषामें भरे पड़े हैं। साथ ही नीतिमत्तापूर्ण व्यवहारोंका प्रचुर निदर्शन है। राजनीति इसमें आदर्श-स्वरूप है। देखिये, नीचे लिखे दोहेमें सम्पूर्ण राजनीति-सागरको गोसाईंजीने मानो घड़ेमें भरकर कमाल किया है—

मुखिया मुखसो चाहिये खान पानको एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥

इसके पात्र सर्वथा आदर्श हैं। इसके नायक-नायिका राम-सीता ब्रह्म-मायाके स्वरूप अथवा परमेश्वर और परमेश्वरीके रूप हैं। राजा और प्रजा, पिता और पुत्र, भाई और भाईका उत्तमोत्तम नमूना जैसा मानसमें है वैसा अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। भले पात्रोंकी तो बात ही क्या, बुरे पात्र भी संसारमें अपने सानी नहीं रखते। रावण-सा शक्तिशाली और विद्वान् दूसरा कौन है? मानस मनोयोग-पूर्वक पढ़नेपर मालूम होता है कि इसके पात्र मानो आँखोंके सामने नाच रहे हैं अथवा मानसिक जगत्में एक बड़ी विशद रामलीला हो रही है।

प्रकृति-वर्णन तो कविने मनोहर और हृदयग्राही किया ही है, मनोभाव-विश्लेषणमें भी बड़ी दुर्लभ दक्षता दिखायी है, जो किसी-किसी सुकविके लिये बड़े गर्वकी वस्तु है। वर्णना-शैली बड़ी रुचिकर है। विषय-विशेषका विस्तृत वर्णन अथवा संक्षिप्त वर्णन कविके बाँए हाथका खेल है। 'अर्थ अमित अति आखर थोरे' का सिद्धान्त खूब निबाहा गया है। मानसकी भाषामें अवधी और ब्रजभाषा मिली हुई है। कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी और भोजपुरीकी भी पुट है। भाषाकी प्रामीणता, प्रसाद और माधुर्य-गुणोंमें स्वाभाविकरूपसे परिणत हो गयी है। यह भी मानसकी एक विशेषता है। इसमें शब्दविन्यास, अर्थसौष्ठव, काव्य-रीति, घटनाक्रम, और व्यंग्य-वक्रोक्तियोंकी छटा देखते ही बनती है। घटना क्रमबद्ध अर्थात् सिलसिलेवार कथाभाग सफलतापूर्वक लिखनेकी योग्यता गोसाईंजीमें विलक्षण पायी जाती है। यदि यह योग्यता महात्मा सूरदासमें होती तो सम्भवतः वह तुलसीदाससे भी बढ़ जाते। इस ग्रन्थमें नवरसोंकी धाराएँ अनवरत बहती रहती हैं। शृंगार-रसका इसमें बाहुल्य है परन्तु प्रशंसाकी बात तो यह है कि अश्लीलताका कहीं नामो निशान नहीं! रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार ऐसे सहज स्वाभाविक ढंगसे पाये जाते हैं मानो कविको इनके लिये कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ा था। साहित्यशास्त्रके अधिकांश अलंकारोंसे यह ग्रन्थ पग-पगपर सुशोभित है। और तो क्या, सम्पूर्ण राम-चरित-मानस ही एक बड़ा-सा मानसरोवरका रूपक है, जैसा कि इसके नामसे प्रकट है। यह पुस्तक मुगल-राज्यत्वकालमें लिखी गयी थी तो भी यह सर्वतः धर्ममयी बन गयी और समयका जादू इसपर न चल सका। यह आश्चर्य, सौभाग्य और विशेषताका विषय है। एक बात और है। गोसाईंजीने बहुत-से ग्रन्थ लिखे पर सभीका विषय रामचरित ही रहा। हाँ, कृष्ण-गीतावलीमें कृष्णचरित अवश्य है पर कविके लिये राम और कृष्णमें भेद नहीं था। यह भी कम विशेषताकी बात नहीं। इस भाँति इस ग्रन्थशिरोमणिकी बहुत-सी विशेषताएँ हैं, जिनमेंसे कुछ मैंने ऊपर गिनानेकी चेष्टा की है।

जिस भाँति खोटे और खरे सोनेकी जाँच कसौटीपर कसनेसे होती है उसी भाँति काव्य कसनेकी भी कसौटी होती है! इसकी जाँचके छः प्रकार होते हैं--

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

अर्थात् काव्य कीर्ति बढ़ाता है, धनोपार्जन कराता है, व्यावहारिक ज्ञान देता है, अमंगल या दुःखको दूर करता है, परमानन्दकी तत्काल प्राप्ति कराता है और भार्याके समान मनोहर एवं हितकर उपदेश देता है। ये काव्य-निर्माणके प्रयोजन हैं। यदि इन गुणोंमेंसे दो एक भी भलीभाँति प्रभूतरूपसे किसी काव्यमें पाये जायँ तो भी उस काव्यकी सार्थकता हो जाती है, पर राम-चरित-मानसमें तो सभी गुण लागू होते हैं। मानसकारकी सुकीर्तिका तो कहना ही क्या? वह संसारमें वायुकी तरह दिगन्त-व्यापिनी हो रही है। भारतवर्षमें कौन ऐसा स्त्री, पुरुष या बालक है जो गोसाईंजीको उनके रामायणके कारण नहीं जानता? भारतवर्ष तो स्वदेश ही है, विदेशोंमें—यूरोप-अमेरिकामें—भी उनका यशोगान निरन्तर हो रहा है। उनके ग्रन्थका बहुत-सी विदेशी भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है और वहाँके लोग उसे बड़ी श्रद्धासे देखते हैं तथा गोसाईंजीको संसारके इने-गिने महाकवियोंमें मानते हैं। जो कवि राजाओंके आश्रित रहते थे वे पारितोषिक इत्यादिसे बहुत-सा धन उपार्जन करते थे। परन्तु सच्चे विरक्त गोसाईंजी तो धनकी परवा नहीं करते थे। उन्होंने अपना सब धन एक बार चोरोंको दे दिया था। इसलिये वह किसी राजाके आश्रित रहकर अन्य कवियोंकी तरह उसकी झूठी-सच्ची प्रशंसा नहीं करते थे। उनका तो सिद्धान्त था—

कीन्ह जो प्राकृत नर गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछताना ॥

वह अपने 'राजा-राम'के आगे किसी सम्राट्की क्या परवा करते थे? उनके सामने बादशाह जहाँगीरको मुँहकी

जानी पड़ी थी। इसलिये उनके धनोपार्जनकी बात ही क्या रही ? हाँ, यह अवश्य है कि उनके बाद बहुत-से प्रकाशकोंने राम-चरित-मानसको प्रकाशित करके और बेच करके बहुत-सा धन प्राप्त किया है। मेरा तो अनुमान है कि यदि इस ग्रन्थका प्रकाशन किसी व्यक्तिविशेषकी सम्पत्ति होता तो वह अवश्य इससे प्रचुर लाभ उठाकर संसारके बड़े धनियों और पूँजीपतियोंमें गिना जाता। व्यवहार-कौशल इस ग्रन्थमें आदर्शस्वरूप है। स्वामी-सेवकके, शत्रु-मित्रके, राजा-प्रजाके, भाई-भाईके बर्ताव जो इसमें मिलते हैं उन्हें ध्यानमें रखनेसे कौन ऐसा मनुष्य है जो लाभ नहीं उठाता ? इस ग्रन्थ-रत्नमें अमङ्गलके नाश करनेकी, दुःख दूर करनेकी अमोघ शक्ति है। हनुमानबाहुककी रचना करके गोसाईंजीने अपनी बाहुका कड़ा दर्द दूर किया था। मानसकी बहुत-सी चौपाइयाँ मन्त्रोंका-सा चमत्कार दिखाती हैं—

कठिन दुर्भाग्य दूर करनेके लिये—

मंत्र महामनि बिषय ब्यालके। मेटत कठिन कुअंक भालके ॥

विषयवासना दूर करनेके लिये—

मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जो एहि सर परई ॥

भारी संकट हटानेके लिये—

दीनदयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

काव्यनिर्माणमें सहायता-प्राप्तिके लिये—

जेहिपर कृपा करहिं जन जानी। कबि उर अजिर नचावहि बानी ॥

समयविशेषपर परमेश्वरकी सहायता-प्राप्तिके लिये—

मोरे हित हरि सम नहि कोऊ। एहि अवसर सहाय सो होऊ ॥

सब भाँति अपना सुधार करनेके लिये—

मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहि कृपा अघाती ॥

अधिक कहाँतक कहा जाय, इसके द्वारा लाखों मनुष्योंकी लौकिक और पारलौकिक कठिनाइयाँ दूर होकर भारी भलाई हुई है और हो रही है। इसका पाठ करते समय चरित्रचित्रण, भावोंकी सजीवता, और अद्भुत रचना देखकर मनुष्योंका मन तत्काल ही प्रफुल्लित हो आनन्द-सागरमें गोते खाने लगता है। मनोहर और उच्च उपदेशरत्न तो इस ज्ञान समुद्रमें अनगिनत भरे पड़े हैं। गोसाईंजी डंकेकी चोट कहते हैं—

देह धरेकर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई ॥

क्यों, क्या इससे बढ़कर भी कोई सदुपदेश हो सकता है ?

व्यंग्यके अभाव वा न्यूनाधिक्यसे काव्य क्रमशः साधारण, मध्यम और उत्तम श्रेणीके होते हैं। व्यंग्यप्रधान काव्य उत्तम कोटिका होता है। मानस उत्तम कोटिका काव्य है, क्योंकि इसमें जहाँ-तहाँ व्यंग्योंका प्राधान्य है। विशेषकर लक्ष्मण-परशुराम-संवाद और अंगद-रावण-संवादमें तो व्यंग्योंकी भरमार ही है। फिर इसमें काव्यके प्रधान गुण ओज, माधुर्य और प्रसाद प्रचुरतासे पाये जाते हैं। प्रसाद-गुणके लिये तो यह ग्रन्थ परम प्रसिद्ध ही है, जिस हेतु निपट गँवार भी पढ़कर कुछ अर्थ समझ ही लेते हैं। मानस पढ़नेपर माधुर्यका प्रभाव पाठकोंके हृदयपर पड़े बिना नहीं रहता। ओजकी अपेक्षा प्रसाद और माधुर्यसे मानसका अधिकांश व्याप्त है। उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं—मानसके पाठक अपने हृदयसे पूछ लेवें। उत्तम काव्यका लक्षण तो गोसाईंजी स्वयं बतलाते हैं—

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥

कविताको सरल करनेके ही अभिप्रायसे ग्रन्थकारने मानसकी भाषा ग्राम्य रक्खी है। सचमुच इसके गुणोंपर मोहित होकर विरोधी भी मानसकी प्रशंसा करते देखे गये हैं।

महाकाव्य तो अनेक हैं, पर राम-चरित-मानस अपने ढंगका एक अद्वितीय महाकाव्य है। इसलिये यदि इसे महामहाकाव्य कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। इसमें नव रसोंका समावेश यथास्थान बड़े ही मनोहर ढंगसे किया गया है। विभाव, अनुभाव, सञ्चारी और स्थायी-भावका अपूर्व प्रदर्शन है। महाकवि भवभूतिके उत्तर-राम-चरितकी तरह इसमें एक ही रस (करुणा) व्याप्त नहीं है। राम-सीताके सम्बन्धमें बड़े सुन्दर संयोग और वियोग-शृंगारका वर्णन किया है। सीताजीकी अनुपम शोभा यों वर्णित है—

सोभा रजु मंदर सिंगारू। मथै पानि-पंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सँकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ॥

क्या कोई भी उत्तम-से-उत्तम खुला शृंगार उपर्युक्त वर्णनका सामना कर सकता है ? क्या उन वर्णनोंमें अधिक

कविकला है ? मनु सतरूपाने जिस राम-सीतारूपका वर्णन किया था उसका वर्णन संयोग-शृंगारका एक उत्कृष्ट नमूना है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहि तनु सोभा निरखि कोटि-कोटि-सत काम ॥इत्यादि ।

जनकपुरकी फुलवारीमें शृंगार-रसका विशद वर्णन है । पूर्वानुराग बड़ी ही मार्मिक रीतिसे वहाँ दिखाया गया है । सम्पूर्ण ग्रन्थमें यत्र-तत्र रामके रूप और शोभाका वर्णन बड़ी सुन्दरतासे किया गया है । सीताहरणके बाद रामका विलाप और उन्माद, तथा हनूमान्‌जीद्वारा लाये गये राम-सन्देश और सीता-सन्देश वियोग-शृंगारके उत्तम उदाहरण हैं । शिवजी और रामजीके विवाहमें जहाँ-तहाँ हास्यरसकी छटा विराजती है । करुणारससे तो समूचा अयोध्याकाण्ड परिप्लावित है । इस काण्डमें ग्रामवासी नर-नारियोंका प्रसंग तथा चित्रकूटमें भरत-राम-संवाद गोसाईंजीकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ प्रतीत होती हैं। मेरी क्षुद्र बुद्धिमें तो भरतका चरित्र रामायणके सब पात्रोंसे उत्तम और निष्कलंक है । राजकुमार भरतमें अलौकिक वैराग्य और अनुराग, सदाचार और सेवाका अनुपम सामञ्जस्य है, उनका चरित्र शेष और शारदाको भी अगम है

प्रेम अमिय मंदर बिरह भरत पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटे सुरसाधुहित कृपासिंधु रघुबीर ॥

× × ×

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गम नाहीं ॥

युद्ध-प्रकरणमें जहाँ-जहाँ क्रोधका स्थायी भाव परिपुष्ट हुआ है तहाँ-तहाँ रौद्र रस देखनेको मिलता है । लोग कहते हैं कि ब्रजभाषा या प्राकृतमें, भूषण कविकी कविताओंको छोड़कर, वीर-रसकी रचनाएँ नहींके बराबर हैं, किन्तु मानसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता । युद्धके प्रसंगमें तथा अनेक संवादोंमें वीर-रसकी कविताएँ प्रचुरतासे पायी जाती हैं । एक दान-वीरका उदाहरण लीजिये—

जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

अयोध्याकाण्डमें भरतका आगमन सुनकर मल्लाहोंने जो उत्साह और वीरत्व दिखाया था वह बड़ा विलक्षण है—

भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा । एकहिं एक बढ़ावहि हरषा ॥

× × ×

जीवत पाउ न पाछे धरहीं । रुंड-मुंडमय मेदिनि करहीं ॥

लङ्कादहनमें भयानक-रसका समावेश है किन्तु मानससे अधिक कवितावलीमें विस्तृत और विशद वर्णन है । मैं उसे पाठकोंसे पढ़नेका अनुरोध करता हूँ । वानरी-सेनाकी जहाँ गीध सम्पातिसे भेंट हुई है वहाँ भी भयानक-रस है । युद्धमें सैनिकोंके मारे-काटे जानेपर बीभत्स-रसकी धार बह चली है—

बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बह जनु फैन ।
कादर देखत डरहि तेहि सुभटनके मन चैन ॥

× × ×

काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं । एकते छीनि एक लेइ खाहीं ॥
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥

× × ×

भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नाना बिधि गावहिं ॥

× × ×

काटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोलहिं । सीस परे महि जय जय बोलहिं ॥

अद्भुत-रस मानसके बहुत स्थानोंमें प्रदर्शित हुआ है । ईश्वरके गुण-वर्णनमें, राम-विवाहमें, हनुमत्-यात्रामें, लङ्का-दहनमें, विराटरूपोंके वर्णनमें जहाँ देखिये वहीं अद्भुत-रसका साम्राज्य है । कैलास, तीर्थ, मुनि-कुटीर स्तुति-गान और राम-राज्यके वर्णनोंमें शान्त-रस बहुतायतसे पाया जाता है—

बैठ सोह काम-रिपु कैसे । धरें सरीर सान्त रस जैसे ॥

कहा जाता है कि ब्रजभाषा या प्राकृतमें प्रकृति-वर्णन की कमी है, पर मानस-रामायणमें सो बात नहीं है । इसमें अनेक स्थानोंमें प्रकृतिके जीते-जागते चित्र हैं । चित्रकूटके उपवन, पम्पासरोवर, और लङ्का-नगरीके वर्णन पढ़िये । राजा प्रतापभानुके शिकारमें एक सूअरका वर्णन बड़ा विचित्र है—

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू । जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं । मनहु क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥

चित्रकूटके एक वट वृक्षके फल-पत्तोंका वर्णन उत्प्रेक्षा-द्वारा किया गया है । देखिये—

नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला ॥
मानहु अरुन तिमिरमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुखमा-सी ॥

किष्किन्धाकाण्डमें वर्षा और शरद्-वर्णन विस्तारसे किया गया है, जिसकी प्रायः प्रत्येक चौपाईमें अनोखी उपमा है। केवल छः पंक्तियोंमें संक्षिप्त षट्ऋतुका वर्णन अरण्यकाण्डके अन्तमें नारी-निन्दाके ब्याजसे नारदके प्रति रामने किया है। बालकाण्डके प्रारम्भहीमें मानसकी मुख्य घटनाओंका विभाग छः ऋतुओंके अनुसार केवल पाँच पंक्तियोंमें किया गया है, यथा--

हिम हिमसैल-सुता-सिव-ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू ॥
बरनब राम-बिबाह-समाजू। सो मुदमंगलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम-बन-गवनू। पंथकथा खर आतप पवनू ॥
बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥
राम-राजसुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥

मानस अलंकारोंकी खान है। कुछ थोड़े-से नगण्य अलंकारोंको छोड़कर प्रायः सभी अलंकार इसमें पाये जाते हैं। मैं पहले कह चुका हूँ कि सम्पूर्ण ग्रन्थ ही एक बड़े रूपकमें दिखाया गया है। बालकाण्डके प्रारम्भमें इस रूपकको कविने स्वयं समझाया है—

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई ॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
इत्यादि।

ऐसे तो एक-से-एक अनूठे अलंकार मानसमें भरे पड़े हैं, पर मुझे सबसे बढ़कर गोसाईंजीके रूपक पसन्द आते हैं, जो जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण ग्रन्थमें बहुतायतसे बिखरे पड़े हैं। भरद्वाज मुनिके आश्रममें राजकुमार भरतकी कैसी पहुनाई हुई सो सुनिये—

संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रम पींजरा राखे भा भिनुसार ॥

जनकपुरके और ससैन्य अयोध्याके निवासियोंको रामजी चित्रकूटमें अपने आश्रमको लिये जा रहे हैं। इस प्रसंगके रूपककी छटा देखिये—

आस्रम सागर सान्त रस पूरन पावन पाथ।
सेन मनहु करुना सरित लिये जात रघुनाथ ॥

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
सोच उसाँस समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा ॥
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकइ न खेइ एक नहि आवा ॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहु उठेउ अंबुधि अकुलाई ॥

कैसा सुन्दर उत्प्रेक्षान्तर्गत सांगरूपक है, कहते नहीं बनता।

राम-चरित-मानस अध्यात्म-तत्त्वका खजाना है, जिसमें अगणित रत्न जहाँ-तहाँ भरे पड़े हैं। ईश्वर (राम) के नाममें अचल श्रद्धा और विश्वास उपजानेका प्रकाण्ड प्रयत्न सैकड़ों स्थानोंमें मानसकारने किया है, जो उनके मतसे ईश्वर-प्राप्तिका सर्वोत्तम और सर्वसुगम साधन है। मानसमें बहुत-सी ईश-स्तुतियाँ हैं जो आध्यात्मिक विचारोंसे परिपूर्ण हैं। प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी डाक्टर ग्रियर्सनका कथन है कि यह ग्रन्थ भारतवर्षके लिये वेदोंसे भी बढ़कर है, बहुत ठीक है। साहित्यिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंका इसमें बड़ा मनोहर सम्मेलन है। कौन अधिक विशद है, कहते नहीं बनता। कहीं पहला बाजी मार ले जाता है और कहीं दूसरा। मानो समतुल्य मल्लोंकी भिड़न्त है। बात तो यह है कि कविकर्मकुशल और अध्यात्मशिरोमणि मानसकारने गूढ़ अध्यात्मज्ञानका बड़े विशद साहित्यिक शैलीमें उद्घाटन किया है। मानसमें सात गीताएँ यथास्थान गुम्फित हैं। गीतासे मेरा अभिप्राय उस ज्ञान-वर्णनसे है जो 'माया ब्रह्म जीव जगदीसा' के सम्बन्धमें किया जाता है। अयोध्याकाण्डमें लक्ष्मणगीता, अरण्यकाण्डमें रामगीता, और लंकाकाण्डमें रथ-गीता कही गयी है। उत्तरकाण्डमें चार गीताएँ हैं— यथा—पुरजनगीता, सिद्धान्तगीता वा भुशुण्डिगीता, ज्ञानगीता वा ज्ञानदीपक, और भक्तिगीता वा भक्तिमणि। स्थान-संकोचके कारण मैं इन गीताओंको उद्धृत नहीं कर सकता। पाठक मूलग्रन्थमें इसका अध्ययन करें। मानसका आध्यात्मिक तर्क इतना बलवान और हृदयग्राही है कि उसने अकेले लाखों हिन्दू-नर-नारियोंको विधर्मी मुसलमान-क्रिस्तान होनेसे रोककर सनातन वैदिक धर्मको सुरक्षित रखा है। ज्ञान और योगका प्रसंग छेड़ते हुए मानसकारने भक्तिपर बड़ी विशद व्याख्या की है और इसे ही कलिकालमें सुगम मार्ग बतलाया है। उनका सिद्धान्त है कि भक्ति सुगम होनेपर भी स्वतन्त्र

अन्तिम आध्यात्मिक तत्त्व है, जिसके अधीन ज्ञान और विज्ञान है। देखिये वे अपने चरितनायकके मुँहसे अवध-वासियोंके प्रति क्या कहलवाते हैं—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न जप तप मख उपवासा॥
सरल सुभाउ न मन कुटिलाई। जथालाभ सन्तोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहु कहाँ बिसवासा॥
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

रामको वश करनेका सुगम स्वाभाविक ढंग सुना आपने?

मनके कुरोगोंको दूर करनेके लिये गोसाईंजीका सिद्धान्त-रामबाण-औषध सुनने ही योग्य है। वह यह भी कहते हैं कि इसकी दूसरी दवा नहीं है—

सदगुरु बेद-बचन बिसवासा। संयम यह न बिषयकी आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा अति रूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं॥

लेख बढ़ गया। सम्पादकजीकी आज्ञा है कि संक्षिप्त लिखो। पर क्या करूँ—कितना संक्षिप्त करूँ? इस ग्रन्थकी विशेषताओंका भलीभाँति उल्लेख करनेके लिये एक बड़ीसी पोथी चाहिये। मेरी इच्छा है कि राम-चरित-मानसकी साहित्यिक विशेषता, आध्यात्मिक विशेषता, साम्प्रदायिक विशेषता, व्यावहारिक विशेषता और विलक्षण लोकप्रियतापर कुछ विस्तृत आलोचनाएं लिखकर कल्याणको समर्पित करूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि सब मिला-जुलाकर गोसाईं तुलसीदास-सदृश दूसरा कवि हिन्दीमें देखनेमें नहीं आया। मेरे मित्र पण्डित रामनरेश त्रिपाठीजीका कथन है कि हिन्दीभाषामें केवल तुलसीदास ही कवि कहलाने योग्य हैं। दूसरे कवि जैसे बिहारी केशव आदि तो अलंकारोंके कृत्रिम बलपर कवि कहलाते हैं। इस कथनमें अत्युक्ति हो सकती है, पर श्रीहरिऔधजीका यह कथन नितान्त सत्य है—

कविता करके तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसीकी कला।

धन्य कविकुलचूडामणि भक्तप्रवर तुलसीदास! और धन्य उनकी काव्यनिर्माणकारिणी कला!!

श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

(लेखक—श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी)

(पृष्ठ ४६३ से आगे)

नसका अङ्गीरस—शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीन रसोंमेंसे एक रस महाकाव्यमें अङ्गी भावसे रक्खा जाता है और सब अङ्गरूपसे आते हैं। अब यह देखना है कि मानसका अङ्गीरस कौन है? उसका साधारणतः अध्ययन करनेसे यह प्रतीत होता है कि उसका अङ्गीरस वीर है। रामायणमें तीन युद्ध प्रधानरूपसे हुए हैं। पहला कौशिकाश्रमपर मारीच-सुबाहुसे, दूसरा पञ्चवटीपर खर-दूषणसे और तीसरा लङ्कामें रावणसे। अस्तु, ये तीनों संग्राम बाल, अरण्य और लङ्काकाण्डमें क्रमशः वर्णित हैं। बालकाण्डके सीता-स्वयंवरमें, किष्किन्धाके बालिवध-प्रसङ्गमें और सुन्दरकाण्डके मारुति-चरित्रमें भी वीररस छाया है। अयोध्याकाण्डमें भरतकुमारपर निषाद-राजके सन्देह और लक्ष्मणकुमारके रोषसे तो बहुत ही विशदरूपसे वीररस बना है। रहा उत्तर, सो उसमें चरित-भाग बहुत थोड़ा है। उसके आदिमें 'गये जहाँ सीतल अमराई' पर वह समाप्त हो गया है। बालका पूर्व और उत्तरका उत्तरांश चरितभागसे रहित है। वे क्रमशः ग्रन्थकी भूमिका और उपसंहारमात्र हैं। कथासूत्रसे वे अलग हैं। इस हेतु रामायणमें वीररसका ही प्राधान्य है और वही उसका अङ्गीरस सिद्ध है।

कुछ लोग रामायणमें करुणरसको प्रधान मानते हैं। उनका कहना है कि सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड कारुणिक प्रसङ्गोंहीसे भरा हुआ है—श्रीराम-वन-गमन, दशरथ-मरणकी कथाएँ करुणरससे सराबोर हैं। फिर अरण्य और लङ्का-काण्डोंमें श्रीजानकी-हरण और लक्ष्मण-शक्ति-वेध भी करुणरसके मार्मिक स्थल हैं। अतः करुणरस ही रामायणमें प्रधान मानने योग्य है।

परन्तु ऐसा नहीं। करुणकी मात्रा वीररससे स्वल्प ही है। इससे उसे प्रधानता नहीं दी जा सकती। वीररस ही रामायणका अङ्गीरस सिद्ध है।

विशेष अध्ययनसे उपर्युक्त उभयपक्ष यथार्थ नहीं जान पड़ते। न तो वीर ही और न करुण ही मानसका अङ्गीरस

है। चाहे उनमेंसे कोई श्रीमद्रामायण (वाल्मीकीय) का अङ्गीरस हो, परन्तु श्रीरामचरितमानसका अङ्गीरस तो नहीं है। उसका तो अङ्गीरस उन दोनोंसे भिन्न कोई तीसरा ही है। वह है भक्तिरस अथवा शान्तरस। चरित-निर्माणके सङ्कल्पके समय कविके हृदयमें जिस रसका सञ्चार रहता है वही उसकी रचनामें अवतरित होता है और लोकमें निसर्गतः उसीका प्रभाव व्याप्त होता है। विचार करनेसे यह उद्बोधित होता है कि मानस रचनेके समय कविकी वृत्ति स्वान्तःसुख अथवा आत्मानन्दमें ही लीन थी। उसीकी प्राप्ति ग्रन्थ-निर्माणका प्रयोजन और उद्देश्य था। उन्होंने अपनी आत्मामें सनातन शब्द-ब्रह्मकी अर्चना की है। सरयूजीके रूपकमें कविकी दशा व्यक्त हो गयी है, यथा—

भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता-सरितासी। राम बिमल जस जल भरितासी॥

मानसका आदि-मध्य-अन्त राम-महिमा और रामभक्तिसे भरपूर है—परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीरामके पादारविन्दोंको, महाकवि महाराज, मानसके पुण्य नीरसे, निरतिशयानुरक्ति-पूर्वक क्षालित कर रहे हैं। जैसे ईखके हर एक पोरमें रस होता है वैसे ही मानसके प्रत्येक शब्दमें रामभक्ति भरी हुई है। उसीका सहज प्रभाव उसके पाठकोंपर पड़ता है। अतएव उसीको उसका अङ्गीरस कहना युक्तियुक्त होगा।

वृत्तकी ऐतिहासिकता—चरित अत्यन्त प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है; इसमें कुछ कहना ही नहीं। कविने प्रधान-रूपसे श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका आधार लिया है। इसको उन्होंने स्वीकार किया है, यथा—'यद्रामायणे निगदितं।'

काव्य-फल—चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) मेंसे मानसमें कौन फलित है?

रामायणमें सामान्यतः धर्मका निरूपण है। उसमें उसका संस्कार और विकार अथवा व्यवहार, दोनों दिखलाये गये हैं, अर्थात् विधि और अनुष्ठान, धर्मके इन उभय रूपोंका उसमें निदर्शन एवं सङ्घटन हुआ है। श्रीरामचरित-मानसमें धृति, क्षमा आदि सद्गुणरूप सामान्य धर्म तथा विशेष (व्यक्तिगत) धर्मका सुचारुरूपसे उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। निगमागमके तत्त्व और उपदेश उसमें मूर्तिमान् होकर, अत्यन्त मनोहर रूप धारणकर हमको अपनी ओर सहज ही आकर्षित करते हैं। उसके नायक हमारे पूज्य और इष्ट हो जाते हैं, वे हमसे मिलते हैं और हम उनके संग संग डोलते फिरते हैं। वे हमारे दुःख पूछते हैं और हमारे हृदयको सान्त्वना देते हैं। इसप्रकार हमारी श्रद्धा उनमें टिक जाती है। उनके सखा-सहायक हमारे सखा-सहायक और उनके शत्रु हमारे शत्रु बन जाते हैं। उनके प्रिय पात्रोंसे हमारी पूरी घनिष्ठता हो जाती है—इतनी कि हमको अनुभव होने लगता है कि हम भी त्रेतामें प्राप्त हैं और उनके समाजमें सम्मलित हैं।

रामायणका यह धार्मिक समाज प्रवृत्तिपथसे निवृत्तिकी ओर गया हुआ है, उसके सामाजिक धर्ममें प्रवृत्ति और निवृत्तिका भेद मिटा हुआ है, उसके सभी सत्पात्र शुद्ध निवृत्ति-सुखका उपभोग करते हैं, सबकी अन्तर्वृत्ति पुरुषोत्तम श्रीरामके चरणोंमें लगी हुई है। इसप्रकार सभी परमात्म-परायण और जीवन्मुक्त हो रहे हैं, कवि स्वयम् निर्देश करते हैं—

कोसल-पुरबासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुतें प्रिय लागहीं सबकहँ राम कृपाल॥
उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्मसच्चिदानन्दघन रघुनायक जहँ भूप॥

कविने यह दिखाया है कि सम्पूर्ण चराचर-जगत्का नियन्ता—नायक सर्वेश्वर ही राजराजेश्वर होकर इस धरातलकी शोभा बढ़ा रहा है, वह समस्त जीवलोकका पिता और पति ही अपने स्वाभाविक प्रजापतिरूपमें प्रकट होकर प्रजावर्गको कृतार्थ कर रहा है। अतएव तत्परायण होना और उसके चरणोंमें भक्ति करना जीवकुलका परम धर्म है। उन्हीं कल्याणास्पद पदपद्मोंकी ओर उन्होंने दयापूर्वक हमको आकर्षित किया है, इस भयङ्कर भवार्णवसे पारकर शाश्वत आनन्दके दिव्य देशमें हमें ले जानेका उन्होंने पुण्य प्रयत्न किया है। इस हेतु परमार्थ या मोक्ष ही श्रीरामचरित-मानसका पुरुषार्थ-फल है। कविने उसकी फल-स्तुतिमें यह प्रकट भी कर दिया है। यथा—

'श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥'

'राम-चरन-रति जो चहै अथवा पद निरबान।
भाव-सहित सो यह कथा करै श्रवन-पुट पान॥'

'भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा॥'

'भवसागर'से तरने और 'भवबन्धन' से छूटनेके सुगम उपायका उपदेश अवसर पाते ही मनीषी कविने जगह-जगह दे डाला है। वे कवि-कर्त्तव्यका पालन करते हुए धर्माचार्य और तत्त्वाचार्यका भी कार्य करते चलते हैं। परमार्थकी ओर पूर्णरूपसे उनका लक्ष्य है। भगवान् रामके सर्वेश्वरत्व एवं परब्रह्मत्वका अखण्ड ज्ञान उन्हें बना रहता है। गोस्वामीजीने अपूर्व चमत्कार यह दिखाया है कि उन्होंने भूतलके अवताररूप रामजीको अवतारी वेदोदित '……सच्चिदानन्दाद्वैतैकरूपात्मा'* परमात्मा रामसे बिल्कुल मिला दिया है। वह अपनी उदार ब्रह्म-बुद्धिसे ही सब कुछ देखते हैं और उसीसे उन्होंने अपने रामचरितमानसका निर्माण किया है। अस्तु, यह माननेमें कुछ भी अनुपपत्ति नहीं दिखायी देती कि मानस भक्तिरससे ही भरा है और भवसिन्धुसे जीवोंके उद्धारहीकी ओर उसका लक्ष्य है।

यद्यपि श्रीमद्गोस्वामिपादको उपदिष्ट रामभक्ति अपवर्ग-फलसे उत्कृष्ट है तथापि यहाँ उसे स्थूल-भावसे मोक्षका ही भेद मानकर आलोचना की गयी है। सूक्ष्म आलोचना करते समय उसे बन्ध-मोक्षसे अतीत सहजा ब्राह्मी स्थिति ही कहना उचित होगा। कविने धर्मरूप वृक्षको मोक्षका फल माना है और भक्तिको उसका मधुर रस,यथा—

'सब कर फल हरिभक्ति सोहाई।'

'सब साधन कर फल यह सुन्दर। तव पद-पङ्कज प्रीति निरन्तर ॥
'सबतें सो दुर्लभ खग राया। राम-भगतिरत गत मद माया ॥
'राम-भगति सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरियाईं ॥
'जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥
'तथा मोक्ष-सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरिभगति बिहाई ॥
'अस बिचारि हरि-भगत सयाने। मुकुति निरादरि भगति लोभाने ॥
'भगति करत बिनु जतन-प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा ॥
'भोजन करिय तृपिहित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥
'असि हरिभगति सुगम-सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥

मानसकारने जिस भक्तिकी ऐसी महिमा कही है और जो उनके मानसकी फल-स्वरूपा है वह प्रेमलक्षणा और परा भक्ति ही है, जिसका महर्षि शाण्डिल्य तथा देवर्षि नारदने अपने सूत्रोंमें वर्णन किया है, यथा—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे' 'फलरूपत्वात्', स्वयं फलरूपेति (ब्रह्मकुमाराः) सा कस्मै परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च, यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, तृप्तो भवति '……आत्मारामो भवति।'

निर्वाणगति इस भक्तिमें सहज ही सिद्ध है 'अनइच्छित आवै बरियाई' तथा 'रहि न सकै हरिभगति बिहाई।' परन्तु कवित्व-शक्तिकी तरह यह भी ईश्वरदत्त दिव्य गुण है। भक्तिमें बड़ी विशेषता तथा सौलभ्य यह है कि उसमें अहम्मति और इच्छाका अत्यन्त अभाव होता है और अहङ्कार ही जीवेश्वरभेद तथा इच्छा ही बन्धनका मुख्य कारण है। भक्तकी मति-गति सर्वतोभावसे एक-मात्र भगवन्हीमें लीन रहती है, इसके अतिरिक्त न उसे और कुछ दीखता, न भाता है। गोस्वामीजीने इसी भक्तिकी उत्कृष्टता वर्णन की है, जो ज्ञानलब्ध ब्राह्मी गतिसे अभिन्न है। पर सौलभ्य और अबाधताके कारण उन्होंने उसे (भक्तिको) अधिक कहा है। (क्रमशः)

रामायण और तुलसी

विश्व सकलकी पूज्य, पुण्य-प्रद-प्रभा प्रकासिनि,
भक्ति-भाव भरि भव्य, विज्ञता विमल विकासिनि,
मंजुल, मृदुल, मनोज्ञ, निखिल नित नीति सुहावनि,
देती सुख-प्रद सतत, सबहिं रामायण पावनि,
भुवि विदित सकल कल्याणमय, नित कलिकलुष नसावनी।
है मुद मङ्गलमय सदा-श्रीरामचरित विस्तारिणी ॥
मथि पुराण, श्रुति, वेद, निर्मयी स्वर्ग-नसेनी,
भक्ति-प्रेम-साहित्यमयी, बन गयी त्रिवेनी,
यहि जल जो जन न्हात, सुखद सद्गति सो पावत,
'तुलसी' के उपकार मान, गुण गरिमा गावत,
नित इसके आश्रयसे उन्हें,
मिलती कीर्ति अगम्य है।
'शङ्कर' व्यापी विश्वमें,
'श्रीतुलसी-स्मृति' रम्य है ॥

—गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

*श्रीरामतापिनी उपनिषद्।

श्रीसुतीक्ष्णजीकी प्रेमा-भक्ति

(लेखक–पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

राम-चरित-मानसके अरण्य-काण्डान्तर्गत श्रीसुतीक्ष्ण मुनिके प्रसङ्गकी आलोचना करनेपर आपमें नवधा, प्रेमा, परा आदि सर्व प्रकारकी भक्तियोंका आदर्श तथा सगुणोपासनाके अनेक रहस्य स्पष्टतया परिलक्षित होते हैं। नवधासे यह तात्पर्य है कि भक्ति नौ प्रकारकी मानी गयी है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(भागवत)

श्रीसुतीक्ष्णजीमें यह इसप्रकार पायी जाती है—

(१) **श्रवण**–प्रभु आगमन स्रवन सुनि पावा।

(२) **कीर्तन**–कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई।

(३) **स्मरण**–हे बिधि! दीनबन्धु रघुराया।
मोसे सठपर करिहहिं दाया॥

(४) **पाद-सेवन**–परेउ लकुट इव चरननि्ह लागी।

(५) **अर्चन**–निज आस्रम प्रभु आनिकै, पूजा बिबिध प्रकार।

(६) **वन्दन**–कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी।
अस्तुति करउँ कवनि बिधि तोरी॥

(७) **दास्य**–मन-क्रम-बचन राम-पद-सेवक।

(८) **सख्य**–मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला।

(९) **आत्मनिवेदन**–को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।

प्रेमा–अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई।

परा–मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा।
पुलक सरीर पनसफल जैसा॥

मानसमें नवधा भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है। एक तो उपर्युक्त भागवत-कथित है जो श्रीलक्ष्मणगीताके प्रसङ्गमें आयी है। जब उन्होंने ईश्वर, जीवादिका भेद पूछते समय भगवान् श्रीरामसे पूछा था कि 'कहहु सो भगति करहु जेहि दाया' तब उसके उत्तरमें कहा गया था कि—

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो संत होइँ अनुकूला॥

पुनः—

—भक्तिक साधन कहौं बखानी।
प्रथमहि बिप्र-चरन अति प्रीती। निज निज धरम निरत श्रुति रीती॥
तेहिकर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम चरन उपज अनुरागा॥
स्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं—

यहाँ इसी नवधा भक्तिका लक्ष्य है। यह उस भक्तके लिये है जो सन्त-शरण नहीं प्राप्त कर सकता हो, अर्थात् गृहस्थाश्रम त्यागकर अपनेको सन्त-सेवामें लगा उनकी कृपाका भागी न हो सकता हो। ऐसा भक्त वर्णाश्रम-धर्मका पालन करता हुआ विप्र-चरणोंमें निष्ठा कर उसके फल-स्वरूप विषयोंसे वैरागी बन उपर्युक्त श्रवण आदि भक्तियोंके द्वारा क्रमशः प्रेम और परा भक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ होता है।

दूसरी नवधा भक्ति श्रीमुख द्वारा ही श्रीशबरीजीके प्रति यों कही गयी है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मनमाहीं॥
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु-पद-पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन-गन, करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन-धर्मा॥
सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥

यह नवधा-भक्ति जब साधक सन्तके सर्वथा अनुकूल हो जाता है, (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**) उसमें जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, (**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं**) तब सद्गुरुका संयोग होनेसे उत्पन्न होती है। अर्थात् गृहस्थाश्रमसे उपराम-चित्त और निवृत्ति-मार्गकी दृढ उत्कण्ठासहित सर्वतोभावेन विरक्त सन्तकी शरण होकर उसके सान्निध्यमें उपस्थित रह सेवामें रत रहना, सन्तके संगरूप प्रथम भक्ति है। जब उस सन्त गुरुदेवसे भगवत्-कथा सुन-सुनकर उसमें रति होती है तो**

सुतीक्ष्णका प्रेमोन्माद ।

अविरल प्रेम-भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥

Lakshmibilas Press Ltd., Cal.

वह दूसरी भक्ति कहलाती है। तीसरी भक्ति कथा आदिके श्रवणका सुख मिलते-मिलते गुरुमें अधिक प्रेम होकर उनके पद-कमलकी सेवा होना है। चौथी भक्ति श्रवण करते-करते गुण-गान करनेकी उत्कण्ठा होनेपर निष्कपट-रूपसे स्वयं गुण-गान करने लगना है। पाँचवीं भक्ति श्रीगुरु-देवसे प्राप्त राम-मन्त्रके जापमें दृढ़ विश्वास-पूर्वक आरूढ़ होना है। सत्संगके प्रभावसे इन्द्रियोंका दमन और नानाविध कर्मोंकी प्रवृत्तिसे वैराग्य होकर सत्धर्ममें मन लगना छठी भक्ति है। सातवीं राग-द्वेषकी निवृत्ति होकर सम-बुद्धि होना और जगत्‌का भगवद्‌रूप ही दीखना है। इस समय सन्तोंमें अधिक निष्ठा हो जाती है। आठवीं यथा-लाभमें ही सन्तुष्ट होकर दोषदृष्टिका आत्यन्तिक त्याग होना है। नवमी भक्ति सरल चित्त, सबसे निश्छल व्यवहार, केवल भगवान्‌का भरोसा करना और हृदयके हर्ष-विषाद, तथा दीनता-रहित हो जाना है।

विरक्त भक्त शबरीके प्रति कही गयी इस भक्तिके द्वारा और अनुरक्त भक्त लक्ष्मण-गीतोक्त भक्तिके द्वारा प्रेमा और परा भक्तिको प्राप्त कर सकते हैं, रामायणमें दोनोंके वर्णन करनेका यही अर्थ है।

अब श्रीसुतीक्ष्णजीकी योग्यता, नम्रता, दीनता विचारने योग्य है—

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मोसे सठपर करिहहिं दाया॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मनमाहीं॥
नहि सतसंग जोग जप जागा। नहि दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाके गति न आनकी॥

भक्तिकी पराकाष्ठाके यही लक्षण हैं, सच्चे भक्त अपनेमें कोई योग्यता होना कब मान सकते हैं?

'नहि सतसंग' कहनेमें एक रहस्य है, श्रीसुतीक्ष्णजी किसी कारण-वश अपने गुरुदेव महर्षि अगस्त्यजीसे विद्या पढ़ चुकनेके बादसे ही अलग रहनेके लिये विवश हो गये थे। वह कारण आगे मालूम हो जायगा। सन्त-समागमका सुयोग न पानेके कारण ही आपमें श्रवणादि नवधा भक्तिकी ही तारतम्यता पायी जाती है।

श्रीसुतीक्ष्णजी जब प्रभु-आगमन सुनकर प्रेमानन्दमें मग्न हो गये तब श्रीरघुनाथजी आपकी अतिशय प्रीति देख-कर—पैदल चलकर पास पहुँचनेमें देर होना जान ऐसी परम प्रेमा-दशामें तत्काल प्राप्त न होनेसे अपना विरद झूठा होता समझकर त्वराके कारण हृदयमें ही प्रकट हो ध्यानद्वारा साक्षात् हो गये। फिर क्या था—

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥

श्रीसुतीक्ष्णजी हृदयमें ही सरकारको पाकर रोमाञ्चित हो मार्गमें ही अचल होकर बैठ गये। जब श्रीरघुनाथजी निकट आ गये और बहुत प्रकारसे जगाने लगे तो ध्यान-जनित सुखकी समाधिके कारण मुनि नहीं जागे। तब विरद संभारन पुनीत-प्रेमानुगामी प्रभु श्रीराम, जिन्होंने पैदल चलकर आनेमें कुछ विलम्ब होता देख प्रेमविवश हो प्रेमीके हृदयमें ही प्रकट होकर अपना विरद संभाला था, भला उसके हृदयमेंसे उसका प्रेम ज्यों-का-त्यों रहते सर्वथा कैसे निकल सकते थे? अतः—

भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥

भगवान् अपने लीला-अवतार-विग्रह राजपुत्र-रूपको छिपाकर अपने ही नित्य अवतारी विग्रह चतुर्भुजरूपसे हृदयमें दर्शन देते हैं, जिससे अवताररूप दाशरथी रामके द्विभुज रूपके उपासक सुतीक्ष्णजी घबड़ाकर जग भी जायँ और भगवान् अपने दूसरे नित्यरूपसे हृदयमें बने भी रहें। वैसा ही हुआ भी—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनिबर जैसे॥

जैसे मणिधर सर्प मणिहीन हो जानेपर विकल हो जाता है वैसे ही राम-रूप छिप जानेसे सुतीक्ष्णजी अकुला उठे। यहाँ मुनिको चतुर्भुज-रूपका द्वेषी बताना अपनी अल्पज्ञताको ही सूचित करना है। कारण, यह उपमा ही इस प्रसङ्गको स्पष्ट कर रही है कि साँप मणिके जानेसे विकल होता है न कि किसी चीजको देखनेसे। सुतीक्ष्णजी 'भूप-रूपके दुराने' से विकल हुए हैं न कि चतुर्भुज-रूपको देखनेसे। भला, जो नित्य विग्रहके अवतारका प्रेमी होगा वह अवतारी स्वरूपसे द्वेष क्यों करेगा? कहीं अवतारी और अवतारमें भी कोई भक्त द्वैत-बुद्धि कर सकता है? कदापि नहीं। देखिये श्रीसुतीक्ष्णजीका ही वचन यहाँ ऐक्यका प्रमाण दे रहा है—

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सबके हृदय निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्रीसहित खरारी। बसहु मनसि मम कानन चारी॥

इन्होंने जिनसे सब कुछ सीखा था, उन गुरुदेव अगस्त्यजीके भी ऐसे ही अभेदके वचन हैं—

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनन्ता। अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता॥
अस तव रूप बखानौं जानौं। पुनि पुनि सगुन ब्रह्म रति मानौं॥

ऐसे ऐक्यके बोधमें द्वेष कैसे सम्भव है?

जैसे ही श्रीसुतीक्ष्णजी अकुलाकर जगे वैसे ही सामने श्रीसीता और लक्ष्मणजी सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर—

परे लकुट इव चरननिह लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी॥

जैसे हाथसे छोड़ देनेपर छड़ी बेलाग-शीघ्रतासे पृथ्वीपर गिर पड़ती है वैसे ही वे बेसुध होकर चरणोंपर गिर पड़े। 'दण्ड इव' न कहकर 'लकुट इव' कहनेसे उनका कृश गात होना सूचित किया गया है। श्रीस्वायम्भुवमनुके प्रसङ्गमें—

'परे दंड इव गहि पद पानी' कहकर—

'हृष्टपुष्ट तन भये सोहाये। मानो अबहिं भवनते आये॥'

—सूचित किया गया था।

कृपालु भगवान्ने उन्हें अपनी विशाल भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया, उस समय ऐसी शोभा हुई मानो तमाल-तरुसे कनक-लता भेंट रही हो। यहाँ श्रीमुनिजीके गौर शरीर तथा श्रीसरकारके श्याम तनुकी तारतम्यता की गयी है। मुनि भगवान्को आश्रमपर लाकर विविध प्रकारसे उनकी पूजाकर बोले, 'हे प्रभो! सरकारकी महिमा अमित है और मेरी बुद्धि तुच्छ है, मैं किस प्रकार स्तुति करूँ?' मुनिने चौदह चौपाइयोंमें ऐसी दीनतासे स्तुति समाप्त की है कि प्रत्येक दो-दो चौपाइयोंके अन्तिम चरणमें एक बार 'नौमि' तो दूसरी बार 'त्रातु' शब्द क्रमपूर्वक आते गये हैं। जिन पदोंमें स्वरूपके सौन्दर्यका कथन है उनके अन्तमें नमस्कारात्मक 'नौमि' तथा जिन पदोंमें विरद कथित हैं उनके अन्तमें रक्षात्मक 'त्रातु' शब्द बराबर चला आया है। इस अपूर्व भावके अतिरिक्त एक विशेष बात यह भी है कि 'नौमि' के अहं-कर्त्ताके आरोपको भी 'त्रातु' से सँभाला जा रहा है। अर्थात् 'मैं किसी योग्य नहीं हूँ' रूपी अपने निश्चयकी पुष्टि 'त्रातु' से करते जा रहे हैं कि कहीं भूलकर भी यह भाव न आ जाय कि मैं स्तुतिका कर्त्ता हूँ। धन्य है ऐसी दीनता!

अब आपकी अभीष्ट याचनाका रहस्य देखिये—

आप सगुण-ध्यानके बड़े प्रेमी हैं, अतः यही वर माँगते हैं कि 'हे भगवन्! यद्यपि आप एक अन्तर्यामी व्यापकरूपसे तो सबके हृदयमें बसते ही हैं, तथापि मेरे मानसमें तो इसी वनमें विचरनेवाले रूपसे श्रीसीता-लक्ष्मणलालजीसहित निवास कीजिये। परन्तु प्राप्तिमें विघ्नकी शंकासे डरनेवाले आर्त याचककी तरह श्रीसुतीक्ष्णजीने सोचा कि '*काननचारी*' सङ्केत देकर श्रीअवतार-विग्रहको तो मैंने निश्चित कर लिया, पर काननमें विचरना तो केवल चौदह वर्षोंके लिये ही है, कहीं ऐसा न हो कि सरकारके काननसे लौटकर राज्यासीन होनेपर जटाजूट उतारकर किरीट, मुकुट आदि धारण करनेसे प्रभुका 'काननचारी' रूप न रहनेके कारण मेरे हृदयसे भी ध्यानका तिरोभाव हो जाय। अतः पुनः सँभाल लेते हैं—

जो कोसल-पति राजिवनयना। करौ सो राम हृदय मम अयना॥
अस अभिमान जाय जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

यहाँ 'कोसलपति' और 'रघुपति' शब्दोंसे वह कसर पूरी कर दी गयी है!

श्रीलीलाधाम प्रभुजीने देखा कि मुनिजी थोड़ी देर पहले तो ध्यानमें इतने मग्न थे कि मेरे जगानेपर भी नहीं जागते थे, परन्तु इस समय उनकी याचनामें कितनी दूरकी सोच-सँभाल प्रकट होती है! अतः इन्हें और सचेतकर अवसर दे अति आर्तताके रहस्यका आनन्द लेना चाहिये। भगवान् भी भक्तोंके साथ विनोद करनेमें वैसे ही सुखी होते हैं जैसे भक्त भगवान्की लीलामें। भगवान् श्रीमुखसे बोले—

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही॥

'हे मुने! और भी जो कुछ इच्छा हो सो माँगनेमें कसर न करो, मैं सब कुछ देनेको तैयार हूँ।'

सुतीक्ष्णजीने विचारा, मालूम होता है माँगनेमें अब भी कोई-न-कोई कसर रह गयी है, तभी तो प्रभुजी ऐसे कह रहे हैं। अहा! मैं अल्पज्ञ जीव कहाँतक सोच विचार कर सकता हूँ। उचित और उत्तम तो यही है कि प्रभुके ही ऊपर छोड़कर अपने अभीष्टको सर्वाङ्ग पुष्ट कर लूँ। अतः मुनि बोले—

कह मुनि मैं बर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परइ झूठ का साँचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥

तब श्रीसरकारने यह कौतुक किया कि और तो सब प्रकारके उत्तम वर दे दिये, पर ध्यानका प्रसङ्ग यह देखनेके लिये नहीं आने दिया कि मुनिजीको वास्तवमें तो ध्यानकी ही आतुरता है, देखें उसके अभावमें यह क्या सोचते हैं? प्रभु बोले—

अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुनग्यान निधाना॥

यह सुन सुतीक्ष्णजी व्याकुल-चित्त हो सोचने लगे कि और सब कुछ तो सरकार दे रहे हैं परन्तु मैंने जो सतत ध्यानका मुख्य वर माँगा था उसकी तो चर्चा भी नहीं की! उसी कमीको तो पूरी करनेकी बात थी। फिर सोचने लगे कि प्रभुने जिस त्रुटिको सुधारनेके लिये अवसर दिया था वह तो यही है कि कोसलपति या रघुपतिस्वरूप तो अवधिबद्ध ही है—

> दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
> रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥
> (वा० रा०)

प्रभु ग्यारह हजार वर्षोंतक ही तो कोसलपतिरूपसे रहेंगे। पीछे परधाम पधारनेके बाद ऐसा न हो कि श्रीराज्यासीनरूपका ध्यान भी हृदयसे तिरोहित हो जाय। इसलिये मुनिने पुनः याचना की—

प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥

> अनुज-जानकी सहित प्रभु चाप-बान-धर राम।
> मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा यह काम॥

हे श्रीधनुष-बाण-धारी रामजी! आप श्रीलषणलालजी और श्रीसीताजीसहित मेरे हृदयमें आकाशचन्द्रवत् सदैव निवास करें। यही मेरी कामना है। तब श्रीसरकार-

एवमस्तु करि रमा-निवासा। हरषि चले कुंभज ऋषि पासा॥

हर्षित हो एवमस्तु कह अगस्त्यजीके पास चले।

अब सुतीक्ष्णजीका अपने गुरुवर्य श्रीअगस्त्यजीसे पृथक् रहनेका कारण सुनिये। आप पहले जब विद्याध्ययन करते थे, तब सब कुछ पढ़ चुकनेपर आपने गुरुजीको गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये बहुत मजबूर किया। गुरुजीने बार-बार कहा कि हम यों ही उऋण कर देते हैं, तुम गुरुदक्षिणाका हठ न करो। परन्तु जब आपने किसी प्रकार आग्रह करना नहीं छोड़ा तो अगस्त्यजी सरोष होकर बोले कि 'नहीं मानते हो तो जाओ दक्षिणामें श्रीरामजीको लाकर मुझसे मिलाओ।'

तभीसे सुतीक्ष्णजी वहाँसे चले आये और श्रीसरकार-की प्राप्तिके लिये अरण्यमें भजन करने लगे। उक्त बातके कारण लौटकर गुरुदेवके पास नहीं गये। इसीलिये श्रीरघुनाथजीका वन-आगमन सुनकर आप और भी अधिक प्रेम-मग्न हो नाचने लगे थे।

जब प्रभु चलने लगे तो सुतीक्ष्णजी बोले—

बहुत दिवस गुरु दरसन पाए। भए मोहि यहि आश्रम आए॥
अब प्रभु संग जाउँ गुरुपाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥

हे नाथ! मुझे इस आश्रममें आये बहुत दिन हो गये। मैंने बहुत दिनोंसे गुरुजीके दर्शन नहीं पाये। प्रभुके संग मैं भी चलूँ? इसमें सरकारके लिये कोई संकोचकी बात नहीं है; मैं तो अपने प्रयोजनसे चलना चाहता हूँ।

देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिये संग बिहँसे दोउ भाई॥

कृपानिधान श्रीरामजी मर्मको जान गये। दोनों भाई हँस पड़े एवं मुनिको साथ ले लिया और—

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥

अगस्त्यजीके आश्रमके निकट पहुँचे तो—

तुरत सुतीछन गुरुपहँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कौसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसदिन देव जपत रहु जेही॥

श्रीसुतीक्ष्णजीने तुरन्त आगे बढ़कर गुरुदक्षिणासे उऋण होनेके लिये अपने गुरुदेवके पास जा दण्डवत् की और 'हे देव! आप जिन तीन मूर्तियोंका रात-दिन जाप करते हैं वे श्रीजानकीजी और लषणलालसहित भगवान् रामचन्द्रजी आपसे मिलने आ पहुँचे हैं' कहकर आपने ऋणको सूद-दर-सूद चुका दिया।

सुनत अगस्त तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥

श्रीअगस्त्यजी सुनते ही दौड़े और दर्शन पाकर प्रेममग्न हो गये। इसप्रकार मुनि सुतीक्ष्णजी गुरुदक्षिणाके बन्धनसे मुक्त हो गये।

उसकी प्रेमाभक्ति अनुपम और परम सराहनीय है जिसने अपने प्रभुको प्रेमके बलसे सचमुच प्राप्तकर दक्षिणाका धन बना दिया।

इस प्रसङ्गसे माता-भक्तिके सर्वाङ्ग तथा उपासनाके गूढ़ प्रभाव और आर्त प्रेमके रहस्यके सिवा एक और भी भारी उपदेश मिलता है, अर्थात् गुरु और शिष्यके बीच यदि दक्षिणाका व्यवहार हो तो ऐसी ही सेवाकी भेंट माँगी जाय।

वह शिष्य धन्य है जो ऐसे सत्य कर्मका सौभाग्य प्राप्तकर स्वयं भी कृतार्थ होता है और अपने गुरुदेवको भी कृतकार्य कर सन्तुष्ट कर देता है।

हनूमानूजी (हनुमन्त)

(लेखक—राय बहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०)

हनूमानूजी श्रीरघुनाथजीके परमभक्त, बड़े वीर और बड़े ज्ञानी थे। इनके जन्मकी कथा वाल्मीकीय रामायण-किष्किन्धाकाण्डमें यों लिखी है कि जब सीताजीकी खोज करते-करते वानर सेना समुद्र-तटपर पहुँची तो अथाह जल देखकर सब घबरा गये। अङ्गदने धीरज धरके उनसे कहा कि यह समय विक्रमका है विषादका नहीं। विषादसे पुरुषका तेज नष्ट हो जाता है और तेज-हीन पुरुषका कोई काम सिद्ध नहीं होता। तुम लोग हमें यह बताओ कि तुममेंसे कौन वीर समुद्र फाँद सकता है? इसपर अनेक वानर बोल उठे, किसीने कहा कि हम तीस योजन फाँद सकते हैं, किसीने चालीस कहा; जाम्बवन्तने नब्बे योजन फाँदनेका बल बताया। इसपर अङ्गदने कहा कि समुद्रकी चौड़ाई सौ योजन है सो हम फाँदनेको तो फाँद जायँगे किन्तु यह निश्चय नहीं है कि लौट भी सकेंगे। जाम्बवान् बोला कि आप सबके स्वामी हैं, आपको न जाना चाहिये। इसपर अङ्गदने उत्तर दिया कि न हम जावें, न और कोई जाय तो हम लोगोंको यहीं मर जाना चाहिये, क्योंकि सुग्रीवकी आज्ञा है कि बिना सीताका पता लगाये हमको मुहँ न दिखाना। जब यह बातें हो रही थीं तो हनूमानूजी एकान्तमें बैठे थे। जाम्बवान्ने कहा कि तुम चुपचाप क्यों बैठे हो, तुम्हारी भुजाओंमें इतना बल है जितना कि गरुड़के पंखोंमें। तुम्हारी माता अञ्जना, पहले पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सरा थीं। अग्निमुनिके शापके कारण वानरी हो गईं। और कुञ्जर नाम वानरश्रेष्ठके घरमें जन्मीं, उनका विवाह केशरीके साथ हुआ था। वर्षाऋतुमें वह एक बार पहाड़पर घूम रही थीं कि पवनने उनका अञ्चल उड़ा दिया। अञ्जनाने कहा कि हमारा पातिव्रत-धर्म कौन नष्ट करना चाहता है? इसपर पवनदेवने उत्तर दिया कि तुम्हारा पातिव्रत-धर्म भंग न होगा। हमारे संसर्गसे तुम महासत्त्व, महातेजस्वी और महापराक्रमी पुत्र जनोगी। वही पुत्र तुम हो। जब तुम बालक ही थे, बनमें सूर्यको उदय होते देख उसे फल समझकर, उसके खानेको दौड़े थे। इसपर इन्द्रने तुम्हारे ऊपर वज्र प्रहार किया और तुम्हारी बाईं हनु (दाढ़) टूट गयी। तबसे तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ा।*

ब्रह्मपुराणमें यह कथा विशेष विस्तारके साथ दी हुई है। गोदावरी और फेना (पेनगङ्गा) के संगमपर एक बड़ा तीर्थ है, जिसमें स्नान-दान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थके अनेक नाम हैं, वृषाकपि, हनुमत, मार्जार और अञ्जक। यह तीर्थ गोदावरीके दक्षिण तटपर है और इसकी कथा यह है—

'केशरीके दो स्त्रियाँ थीं, अञ्जना और अद्रिका। दोनों पहले अप्सराएँ थीं। शापके वश अञ्जनाका मुँह वानरका-सा हो गया था, और अद्रिकाका बिल्लीका-सा। दोनों अञ्जन पर्वतपर रहती थीं। एक बार अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँचे। दोनोंने उनकी पूजा की और मुनिने प्रसन्न होकर दोनोंको एक एक पुत्रका वर दिया। दोनों उसी पर्वतपर नाचती-गाती रहीं। वहीं वायुदेव और निऋतिदेव पहुँच गये। वायुके संसर्गसे अञ्जनाके हनुमान् पुत्र हुए और निऋतिदेवके संयोगसे अद्रिकाके अद्रि नाम पिशाचराज पुत्र हुआ। पीछे गोदावरीमें स्नान करनेपर दोनोंकी शाप-निवृत्ति हुई। जहाँ अद्रिने अञ्जनाको नहलाया उस तीर्थका नाम आञ्जन और पैशाच पड़ा। और जहाँ हनुमानूजीने अद्रिकाको स्नान कराया था वह मार्जार, हनुमत् और वृषाकपिके नामोंसे प्रसिद्ध हुआ।†

वृषाकपिका अर्थ है जिसका सम्बन्ध वृषकपिसे हो और वृषकपिकी कथा अध्याय १२९ में दी हुई है।

दैत्योंका पूर्वज बड़ा बलवान् हिरण्य तपस्याके बलसे देवताओंका अजेय हो गया था। उसका बेटा महाशनि भी बड़ा बली था। उसने एक युद्धमें इन्द्रको हाथीमें बाँधकर अपने पिताको भेंट कर दिया। पिताने इन्द्रको बन्द रक्खा। पीछे महाशनिने वरुणपर चढ़ाई कर दी। परन्तु वरुणदेवने उसे अपनी बेटी देकर सन्धि कर ली। इन्द्रके बँध जानेसे देवता बहुत दुखी हुए और उन्होंने विष्णुसे सहायता

* वाल्मीकीय रामायण-किष्किन्धाकाण्ड ६६

† यह संगम अकोलाके दक्षिण निज़ामराज्यमें है।

माँगी। विष्णुने उत्तर दिया कि वरुणदेवकी सहायताके विना हम कुछ नहीं कर सकते। तब देवता वरुणके पास गये।*

वरुणके कहनेसे महाशनिने इन्द्रको छोड़ तो दिया परन्तु उनको बहुत फटकारा और उनसे कहा कि तुम वरुणको आजसे गुरु मानो। इन्द्र मुँह लटकाये अपने घर आये और इन्द्राणीसे अपनी दुर्दशा कही। इन्द्राणीने कहा कि 'हिरण्य मेरा चचा था तो भी मैं अपने चचेरे भाईकी मृत्युका उपाय बताती हूँ। तपस्या और यज्ञसे सब कुछ हो सकता है। तुम दण्डक-वनमें शिव और विष्णुकी आराधना करो।' इन्द्रने शिवकी पूजा की। शिवने कहा कि 'हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम विष्णुकी पूजा करो।' तब इन्द्र और इन्द्राणीने आपस्तम्बके साथ गोदावरीके तटपर—गोदावरी और फेनाके संगमपर विष्णु भगवान्‌की आराधना की। शिव और विष्णुके प्रसादसे जलमेंसे शिव विष्णु दोनोंका स्वरूप धारण किये हुए (अर्थात् चक्रपाणि और शूलधर) एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातलमें जाकर महाशनिको मारा, यह इन्द्रका प्यारा मित्र अब्जक वृषाकपि कहलाया।

वृषाकपि अरिन्दनका नाम अध्याय ७० में उन लोगोंके साथ भी आया है जिन्होंने गोदावरी तटपर तीर्थ-स्थापन किये थे।

विचारनेसे यह ध्वनित होता है कि वृषाकपि † और हनुमन्त एक ही थे। वृषाकपिका अर्थ है पुल्लिंग बन्दर। क्या हनूमान्‌जी ऐसे ही बन्दर थे जैसे आजकल अयोध्या आदि नगरोंमें उपद्रव करते हैं। जो ऐसे ही थे तो क्या कारण है जो आजकल कोई बन्दर ज्ञानी नहीं निकलता? हम तो यह समझते हैं कि हनूमान्‌जी और उनके सैनिक दक्षिण देशके निवासी थे। आजकलके विज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि हजारों वर्ष पहले भारतका दक्षिण प्रान्त अफ्रीका Africa से मिला हुआ था, पीछे धरती धँस जानेसे अरब सागर बन गया। अफ्रीकाके हब्शियोंका मुँह बन्दरोंसे बहुत मिलता जुलता है। दोनोंकी चिपटी नाक, दबे मत्थे और थूथनकी भाँति आगे निकले हुए मुँह अब भी देखे जाते हैं। क्या इस बातके माननेमें कोई आपत्ति हो सकती है कि ये वानर उन्हीं हब्शियोंके भाई हों जो अफ्रीकामें अबतक बसे हैं और भारतमें नष्ट हो गये या वर्णसंकर होकर यहाँके निवासियोंसे मिल गये। इसमें एक शंका हो सकती है कि रामायणके बन्दर पिंगल वर्ण थे और अफ्रीकाके हब्शी काले होते हैं परन्तु यह आबहवाका असर है।

अब रहा हनूमन्त नाम। जो हम मान लें कि हनूमान् और उनके सैनिक प्राचीन द्रविड़ थे तो सम्भव है कि रावणकी ‡ भाँति हनूमन्त भी किसी तामिल-शब्दका संस्कृत रूप हो और जब हनूमन्त शब्द बना तो उसकी उत्पत्ति दिखानेको इन्द्रके वज्रसे दाढ़ टूटनेकी कथा रची गयी हो। इस कथासे भी यह ध्वनित होता है कि हनूमान्‌जी पहले ऐसे कुरूप न थे। मुँह टूट जानेसे बन्दरका-सा हो गया। ऐसे ही वृषाकपि भी किसी द्रविड़ शब्दका संस्कृत अनुवाद हो सकता है। क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि वानर गोदावरीके दक्षिणके रहनेवाले थे, जहाँ आजकल कनाड़ी या तामिल भाषा बोली जाती है। हम इस विषयमें १९१३ के जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटीसे प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर पार्जिटरका मत उद्धृत करते हैं।

वृषा पुल्लिंगके लिये द्रविड़ शब्द आण है। और यह शब्द कनाड़ी, तामील और मलयालम तीनों भाषाओंमें बोला जाता है। तेलगूमें इसके बदले मन और पोट्टु बोलते हैं। कपि बन्दरके लिये इन चारों भाषाओंमें दो शब्द हैं—एक कुरंगु, दूसरा मंडी। वानरवाची कुरंगु तामिल भाषाका है। शेष तीनोंमें कुरंगु हरिनको कहते हैं। मलयालममें इस शब्दके दो रूप हैं। कुरंग हरिन और कुरन्नु बन्दर§। तामिल भाषामें मंडी विशेषकर बँदरियाको कहते हैं। मलयालममें मंडी काले मुहँके बन्दरोंके अर्थमें बोला जाता है। कनाड़ी और तेलगूमें मंडी संयुक्त शब्दोंमें हिन्दी 'लोग'के अर्थमें आता है। यह अर्थ विचारनेके योग्य है। कनाड़ीमें बन्दरके लिये दो शब्द हैं कोटि और तिम्मा। और दोनों नये हैं। यह बात सर्व-सम्मत है कि तामिलमें प्राचीन शब्द बहुत हैं। अब आण और मंडीके मिलानेसे एक द्रविड़ शब्द बन जाता है। और उसका संस्कृतानुवाद वृषाकपि होता है।

* ब्रह्मपुराण अध्याय ८४

† क्योंकि हनूमानके संसर्गसे वह वृषाकपि तीर्थ कहलाया।

‡ इस शब्दपर विचार आगे किसी लेखमें किया जायगा।

§ बन्दरके लिये संस्कृतमें शाखामृग-शब्दका प्रयोग इसका उदाहरण है।

आख-मंडीका संस्कृतरूप हुआ हनुमन्त। द्रविड़ शब्दके संस्कृत शब्द बनानेके लिये बहुधा एक 'ह' पहले जोड़ दिया जाता है। इसके कई उदाहरण मिस्टर पार्जिटरने दिये हैं। जैसे तामिल-भाषामें इडुम्बीका अर्थ है 'गरबीली स्त्री।' यही नाम उस स्त्रीका था जो हिडिम्बा कहलायी।

आजकल हनुमान्को तामिलमें अनुमवडन कहते हैं जिससे प्रकट है कि तामिलमें संस्कृतका 'ह' गिर जाता है। इसीसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान्जी दक्षिणदेशके प्राचीन निवासी थे और उनका असली नाम आख-मंडी था। जिसका अक्षरार्थ लेकर संस्कृतमें वृषाकपि * बनाया गया और संस्कृतरूप हनुमन्त हुआ।

हम यहाँ इतना और कहना चाहते हैं कि प्राचीन यूरोपमें एक असभ्य लड़ाकी जाति वंडल Vandal थी। उनके आक्रमणोंसे रोम-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया था। बंदर और वंडल शब्द बहुत मिलते-जुलते हैं, बच्चे बहुधा बन्दरको बण्डल ही कहते हैं।

वैदेही-विलाप

(पृष्ठ २०१ से आगे)

(१०)

तडित्पीता-गात्रा, रुचिर-नयनी अम्बुज-मुखा,
जगन्माता, धात्री, रघुकुलवधू, मैथिलि-सुता,
अयोध्या-सी रम्या, ललित नगरी हाय! तजके,
बिहा वस्त्राभूषा, वल्क विपिनके साज सजके,

(११)

बनालीमें आई, सुख बस यही क्या निरखने,
अनाथा दीना-सी, अहह प्रभु! योंही बिलखने,
भला यों भी कोई, निज प्रियतमा नाथ! तजते,
तुम्हें भी क्या ऐसे, अयशकर हैं साज सजते!

(१२)

मनोवाञ्छा मेरी, विमल नव आशा सुनहरी,
जलाने आई हैं, बरबस विषादानल भरी,
प्रणाली प्यारी वे, प्रिय-प्रणयकी है अब कहाँ?
निराशाका कैसा, यह मच रहा क्रन्दन यहाँ!!

(१३)

उपेक्षा ऐसी तो, अबतक न की नाथ! तुमने,
सुनी देखी ऐसी, कब निठुरता हाय हमने,
रँगी रागोंमें जो, अविकच अभी मञ्जु नवला,
बनी जाती देखो, नव-कमलिनी काल-कवला!

(१४)

सहे कैसे कोई, यह विरह दावानल कहो?
जली जाती वाञ्छा-ललित-लतिका कोमल अहो!
दयाशाली भी क्या, अहह विधि! पाषाण बनते?
भला कैसे कोई, प्रणय-प्रणमें दोष गिनते?

(१५)

कहो क्या पाया है, विपिन-मगमें कंकण भला?
लता-गुल्मोंमें क्या, प्रभुवर तुम्हें नूपुर मिला?
कहीं पा जाते जो, सुरति तब क्या हा! न करते?
बिनाही दोषोंके, निज प्रियतमा क्यों बिसरते!!

(१६)

बचाती आशा ही, दुर्दिन-निहिता-काम-कलिका,
बिहाती हैं रातें, निरख नित तारा-अवलिका,
बढ़ाता है चिंता, दुखद बन चिंता-मणि महा,
गिराती अंगारे, नितप्रति अशोकावनि यहाँ!

(१७)

कभी क्या आयेंगी, रुचिर सुखकारी सुघड़ियाँ?
लुटायेंगी आँखें, जब न अपनी शुभ्र लड़ियाँ!
प्रतीक्षामें हारे, प्रिय-विरह-जोरे अब दहे,
तुम्हें घोरे प्यारे, यह नयन-तारे तिर रहे!!

(१८)

मुझे जन्मा तो क्या, अवनि कितनी निष्ठुर बनी,
कभी होती है क्या, जननि शिशुसे भी अनमनी?
समा जाती मैं तो, अब अवनिमें हाय! मुझसे।
सदाको पा जाती, बस सहज ही त्राण दुखसे॥

—रमाशङ्कर मिश्र 'श्रीपति'

---

* आधुनिक संस्कृतमें 'वृषाकपि' के अनेक अर्थ हैं—इन्द्र, शिव, विष्णु आदि।

ज्ञानदीपक-स्पष्टीकरण

(लेखक—साहित्यरत्न पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी)

(पृष्ठ २७१ से आगे)

९—सात्त्विक श्रद्धा धेनु सोहाई।
जो हरि कृपा हृदय बसि आई॥

अर्थ—सात्त्विकी श्रद्धा बियाई हुई अच्छी गौ है, यदि वह हरि-कृपासे हृदयमें आकर बसे।

सात्त्विक श्रद्धा—श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—(१) तामसी (२) राजसी और (३) सात्त्विकी। यहाँ तामसी एवं राजसी श्रद्धाका उपयोग नहीं है। यहाँ तो सात्त्विकी श्रद्धाकी ही आवश्यकता है, क्योंकि यह पुरुष श्रद्धामय है। जिसकी जैसी श्रद्धा है वैसा ही वह है, अतएव सात्त्विकी श्रद्धावाला पुरुष भी सात्त्विक होगा।

धेनु सोहाई—सोहाई ब्याई गौ है। भाव यह कि राजसिक-तामसिक श्रद्धा भी गौ हैं, पर वे सोहाई नहीं हैं, दूध न देंगी, यथा—

तामस धर्म करहिं नर, तप मख व्रत जप दान।
देव न बरसहिं धरनिपर बोए न जामहिं धान॥

बहु रज स्वल्प सत्त्व कछु तामस। द्वापर हर्ष शोक भय मानस॥

हरिकृपा—हरि सत्त्वगुणके अधिष्ठाता हैं, अतएव सात्त्विकी श्रद्धाकी प्राप्तिके लिये हरिकी कृपाकी आवश्यकता है। हर तमोगुणके अधिष्ठाता हैं, सुषुप्तिके विभु हैं, उनकी कृपासे हरिकी कृपा होती है, सुषुप्तिकी कृपासे जागृति होती है और जागृति ही तुरीयका द्वार है। जब शङ्कर कृपा करके तमको दबावेंगे, तब सत्त्वका उदय होगा।

जो हृदय बसि आई—अर्थात् जो हरिकी कृपासे हृदयमें आकर बसे, क्योंकि 'जीव हृदय तम मोह बिसेषी, हृदयमें अन्धकार भरा हुआ है। बछड़ेवाली गौ तमोमय अँधेरी जगहमें जाना नहीं चाहेगी। (इस चौपाईमें श्रद्धा[१] सम्पत्तिका वर्णन किया है।)

१०—जप तप व्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥

अर्थ—जप, तप, व्रत, यम, नियम और वेदविहित धर्माचार, ये सब अपार हैं। जप, तप, व्रत, शुभ धर्माचार ये सब उपरामताके अङ्ग हैं, यम-नियम दोनों समाधानके अङ्ग हैं।

जप तप व्रत—यहाँ जपसे वाचा, तपसे मनसा और व्रतसे कर्मणा धर्माचरण बतलाया है, नहीं तो नियममें तीनोंका समावेश हो जानेसे पुनरुक्ति दोष आ जायगा, और गोस्वामीजीने यहाँ अर्थ लिया भी है।

जप, यथा—

तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनङ्ग अराती॥

तप, यथा—बिसरी देह तपहि मन लागा। (इससे तितिक्षाका* वर्णन किया)

व्रत, यथा—हरि तोषण व्रत द्विज सेवकाई।

यम पाँच हैं—'ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहात्'

(१) ब्रह्मचर्य—स्मरणादि अष्टविध मैथुनके अभावको कहते हैं†। यथा—

ब्रह्मचर्य व्रतरत मति धीरा। तुमहि कि करइ मनोभव पीरा॥

(२) अहिंसा—सदा सर्वदा किसी भी प्राणीसे द्रोह न रखनेको कहते हैं, यह सब यम नियमोंकी जड़ है, यथा—

'परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।'
'धर्म कि दया सरिस हरियाना॥'

---

१ यह षट् सम्पत्तियोंमेंसे पाँचवीं है।

* शीतोष्ण सुख-दुःखादि सहनेको तितिक्षा कहते हैं, यह षट् सम्पत्तियोंमेंसे चौथी है।

† स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

स्त्रीके रूप, लावण्य हावभाव आदिका स्मरण करना, दूसरेके प्रति कहना, स्त्रीके साथ क्रीडा करना, स्त्रीका दर्शन करना, एकान्तमें सम्भाषण करना, स्त्रीके सङ्गके लिये दृढ़ निश्चय करना, उसकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना तथा अभीष्ट निश्चयकी पूर्ति करना, इन आठ प्रकारके आचरणोंसे बचनेको ब्रह्मचर्य कहते हैं।

इसीकी सिद्धिके लिये शेष यम-नियमोंका उपयोग है। अहिंसाकी प्रतिष्ठा होनेसे उसके सन्निकट प्राणिमात्र वैर त्याग देते हैं, यथा—

'करहिं एक सँग गज पंचानन। बैर बिगत बिचरहिं सब कानन ॥'

(३) सत्य-इन्द्रिय और मनके द्वारा जैसा निश्चय किया गया, वैसी ही वाणी और वैसे ही मनके होनेको सत्य कहते हैं। वह वाणी वञ्चिता,* भ्रान्ता,† और प्रति-पत्तिवन्ध्या ‡ न होनी चाहिये। प्राणियोंके उपकारके लिये होनी चाहिये, उपघातके लिये नहीं। यथा—'कहहिं सत्य प्रिय बात बिचारी।' इससे क्रियाके फलको आश्रय मिलता है, यथा—'सत्य मूल सब सुकृत सुहाये।'

४-अस्तेय-शास्त्र-विधिके प्रतिकूल दूसरेके द्रव्यको लेना स्तेय कहलाता है, और उस स्तेयके निषेधको अस्तेय कहते हैं। स्पृहा न रखना भी अस्तेय कहलाता है। यथा-'धन पराव बिषते बिष भारी।' इससे सब रत्न उपस्थित होते हैं, यथा—'ढारहिं रत्न तटहिं नर लहहीं।'

५-अपरिग्रह-विषयोंके अर्जन, रक्षण, क्षय और संगसे हिंसादि दोष होते हैं, अतएव उनके अस्वीकारको अपरिग्रह कहते हैं, यथा—

'यद्यपि अर्थ अनर्थ मूल तम कूप परब पहि लागे ।
तदपि न तजत मूढ़ ममता बस जागतहू नहि जागे ॥'
(विनय०)

इससे जन्मकथंताका बोध होता है, यथा—'निज निज मुखन कही निज होनी।'

नियम भी पाँच हैं—'शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।'

१-शौच-देह और मनके मलको दूर करना शौच है। यथा—'सकल शौच करि जाइ अन्हाये।' शौचकी स्थिरतासे बुद्धिकी शुद्धि, उससे मनकी प्रसन्नता, उससे एकाग्रता, उससे इन्द्रियजय, और उससे आत्म-दर्शनकी योग्यता होती है। अपने शरीरसे घृणा और दूसरेके संसर्गसे घृणा होती है। यथा—'रहहि न अंतहु अधम सरीरू।'

२-सन्तोष-प्राप्त साधनसे अधिक पैदा करनेकी अनिच्छाको सन्तोष कहते हैं, यथा—'आठवँ यथा लाभ सन्तोषा।' इसके द्वारा सबसे बढ़कर सुखकी प्राप्ति होती है, यथा—'मन सन्तोष सुनत कपि बानी।'

३-तप-जाड़ा-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वके सहनेको कहते हैं। यथा—

'कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥'

इससे देह-इन्द्रियकी सिद्धि और अशुद्धिका क्षय होता है, यथा—

'बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एकपग दोऊ ॥
मगँहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये ॥'

४ स्वाध्याय मोक्षशास्त्रका पढ़ना अथवा प्रणवका जप करना। इससे देवता-ऋषियोंके दर्शन होते हैं। यथा—

'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भक्त-सिरोमनि भे प्रहलादू ॥'

५-ईश्वरप्रणिधान-सब कर्मोंका ईश्वरार्पण कर देना, यथा—'प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।' इससे समाधिकी सिद्धि होती है। यथा—'सहज बिमल मन लागि समाधी।'

अपारा-कहनेका भाव यह है कि इन दशों यम-नियमोंमेंसे एक-एक असाध्य है। इनका पार नहीं पाया जा सकता। यह रोगी जीव क्या पार पावेगा?

जो श्रुतिकह-अर्थात् जिसके लिये वेदमें विधि है। वेदकी आज्ञा ही धर्म है। वेदकी आज्ञा दो प्रकारकी होती है (१) विधि और (२) निषेध। जिनमें निषेध सर्वथा त्याज्य है, इसलिये 'शुभ धरम अचारा' कहा।

शुभ धर्म अचारा-इसमें सम्पूर्ण कर्मकाण्ड आ गया। यज्ञ-दानादि शेष धर्म सब इसीके अन्तर्गत हैं। यथा—

*-वञ्चनापूर्ण, जैसे अपने पुत्र अश्वत्थामाका मरण सुनकर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरसे पूछा-'हे आयुष्मन्! हे सत्यवादी! सचमुच अश्वत्थामा मारा गया?' इसके उत्तरमें, युधिष्ठिरका अश्वत्थामा नामक हाथीको अभिलक्ष्यकर, 'हां, सच अश्वत्थामा मारा गया' ऐसा कथन वञ्चनापूर्ण है, यहां वाणी वञ्चिता कही जाती है। वक्ताका अभिप्राय अन्य हो और श्रोता अन्य समझ जाय। जैसे यहाँपर युधिष्ठिरने हाथीको लक्ष्यकर कहा, और द्रोणाचार्यने अपना पुत्र समझ लिया। पर इसको कहनेमें युधिष्ठिरने छलसे काम लिया, इसलिये यह वाक्य सत्य नहीं है।

† भ्रान्तिप्रयुक्त। वक्ताको स्वयं भ्रम हो और दूसरेको समझाना चाहे।

‡ अप्रसिद्ध पदोंके रहनेसे यथार्थ बोध करनेमें अक्षम। जैसे आर्य लोगोंके प्रति म्लेच्छभाषा बोध करानेमें असमर्थ है।

जहँ लगि कह्यो पुरान श्रुति एक एक सब याग ।
बार सहस्र सहस्र नृप कियो सहित अनुराग ॥

इस चौपाईसे उपरम * कहा ।

११—तेइ तृण हरित चरइ जब गाई । भावबच्छ शिशु पाइ पेन्हाई ॥

अर्थ–उस हरे तृणको जब गाय चरे और भावरूपी बछड़ा पाकर उसके थनमें दूध आ जाय ।

तेइ तृण हरित–वे ही हरे तृण अर्थात् जप,तप,व्रत,यम, नियम और शुभ धर्माचार ये छहों प्रकारके सरस तृण उस श्रद्धारूपिणी गौके लिये चारारूप हैं । लौकिक गौका चारा तृण, औषधि और वनस्पति-भेदसे तीन प्रकारका होता है, और उनके भी बीजरुह तथा काण्डरुह-भेदसे दो प्रकार होते हैं । कुल छः प्रकार हुए । इसी भाँति श्रद्धारूपिणी गौके चाराके भी जप, तपादि भेदसे छः प्रकार कहे हैं ।

हरा तृण कहनेका भाव यह कि तृण सूखा न हो, वरन् सरस हो; नहीं तो गौ चावसे न खायगी, फलतः यथार्थ तृप्ति न होगी, दूध भी कम होगा, जिससे बछड़ेकी तृप्ति भी कठिन हो पड़ेगी, फिर और कामोंके लिये दूधका मिलना तो दूरकी बात है । अतः जप-तपादि आनन्दरहित न हों, यथा—

अस्थिमात्र है रह्यो सरीरा । तदपि मनाक मनहि नहि पीरा ॥

चरै जब–भाव यह कि जैसे गौ गोठ छोड़कर बाहर जाय और गोचरभूमिमें चरे, इसीभाँति श्रद्धा भी हृदयसे बाहर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूपी गोचरमें, जिस रुचिसे भूखी गाय हरी घास चरती है, उसी रुचिसे शुभ धर्माचरण करे और तृप्त हो, यथा—

नित नव राम प्रेमपन पीना । बढ़इ धर्म दल मन न मलीना ॥

गाई–गाय कहा, धेनु नहीं कहा, क्योंकि बच्चा घर छोड़ आयी है । अकेली घास चर रही है, पर चित्त बच्चेकी ओर लगा है, यथा—

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गई ।

यह गाय जब अघाकर तृण चरे, तभी इतना दूध दे सकेगी कि जिसमें बच्चेका भी काम चले और अपने काम भी आवे, स्मरण रखना चाहिये कि चरा हुआ चारा गौके पेटमें है । यह सामर्थ्य गौमें ही है कि उस चारेका सात्त्विक परिणाम दूधके रूपमें जगत्के कल्याणके लिये देवे, राजसिक परिणाम अपने शरीरके पोषणके लिये अलग करले, और तामसिक परिणाम गोबर आदि पृथक् दे । किसी भी शिल्पीकी सामर्थ्य नहीं है कि इस भाँति सात्त्विक, राजस और तामस परिणाम किसी उपायसे पृथक् कर सके । इसी भाँति श्रद्धासे आचरित शुभधर्म श्रद्धाके उदरमें जाकर परिणामको प्राप्त होता है, और उसके सात्त्विक परिणाम—परम धर्म—से जगत्का हित होता है, नहीं तो जिस भाँति तृणादि मनुष्यके ग्रहण योग्य नहीं रहते, उसी भाँति श्रद्धाहीन शुभ धर्म भी मनुष्यके कामके नहीं होते, यथा—श्रद्धा बिना धर्म नहि होई । बिनु महि गन्ध न पावै कोई ॥

गौने जितने प्रकारका तृण खाया है, उन सबके सात्त्विक परिणामका स्वारस्य दूध है, इसी प्रकार श्रद्धासे जो यम-नियमादि आचरित हुए हैं उनके सात्त्विक परिणामका स्वारस्य परम धर्ममें है ।

भावबच्छ शिशु–श्रद्धारूपिणी धेनुका सात्त्विक भाव अबोध बच्चा है, वह छल-कपट नहीं जानता, अतएव बहुत प्यारा है । चरनेके समय भी उसीकी ओर ध्यान लगा रहता है । इसी भाँति श्रद्धासे धर्माचरण हो और वह भाव हत न होने पावे, यथा—

किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग बस किय शुभ, सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं संचि पचि सुकृत सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस कृपानिधि दम्भ लेत अँजोरि ॥

पाइ पन्हाई–जब गौ हरी हरी घास चरके तृप्त होकर सन्ध्याके समय घर लौटती है, तो बालक-बच्छको पाकर द्रवीभूत हो जाती है । उसके थनोंमें दूध आ जाता है । इसी भाँति श्रद्धा धर्माचरण करके कृतकृत्य होकर भाव-पुष्टिके लिये अन्तर्मुख होती है । उस समय वह परम धर्म प्रसवमें समर्थ होती है, यथा—

दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई ।

(क्रमशः)

---

* उपरम स्वधर्मानुष्ठानको कहते हैं, यह षट् सम्पत्तियोंमेंसे तीसरा है ।

महर्षि वशिष्ठकी महत्ता

(लेखक—श्रीकालीप्रसन्नजी चक्रवर्ती बी० ए०)

रामत्वं रामचन्द्रो दशरथतनयः कौशिको ब्राह्मणत्वम्,
संख्यातीतास्तथान्ये भुवि समधिगता मत्प्रसादान्महत्त्वम्।
जेतारं षड्रिपूणां तरणिकुलगुरुं ज्ञानविज्ञाननिष्ठम्,
भूदेवादर्शमेडे विधितनुजनुषं तं यतीन्द्रं वशिष्ठम्॥

श्रीरामचन्द्रके पवित्र चरित्र वर्णन करते हुए देवर्षि नारदने महर्षि वाल्मीकिसे कहा था—'इस समय समस्त भूमण्डलमें श्रीरामचन्द्र ही सब शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले आदर्श राजा हैं। धनुर्वेदके, दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंके पारदर्शी पण्डित होते हुए भी दयासागर हैं। उनके अन्तःकरणमें कदापि अनुचित हिंसाभाव पैदा नहीं होता। वे विनयी और नितान्त नम्र हैं, परन्तु दीनताको अपने पास भी फटकने नहीं देते। ओजस्विता, तेजस्विता, सहिष्णुता, संयमशीलता, अहङ्कारशून्यता और राजनीतिमत्ता आदि अनन्त गुणोंके आजकल वे ही एकमात्र निवास-स्थान हो रहे हैं। धर्मविमुख अत्याचार-प्रचारक, दुष्ट दुर्विनीत दुर्दान्त दैत्यदलका दमन करना तो उन्होंने अपना ध्येय ही बना लिया है। अपने शत्रुओंको तो वे कराल कालके विकराल गालमें भेज देते हैं, किन्तु शरणागतोंको देखकर उनके हृदयमें क्षमा और करुणाका समुद्र उमड़ पड़ता है। प्रजापालन उनके अवतारका एकमात्र उद्देश्य हो रहा है। उनकी सत्यपरायणता ऐसी बढ़ी-चढ़ी हुई है कि 'रामो द्विर्नाभिभाषते' इसप्रकारकी लोकोक्ति विख्यात हो गयी है। श्रीरामचन्द्रजी सत्यवादी होते हुए भी प्रियवादी तथा प्रियदर्शन हैं। एकाधार मनुष्यका आकार इतने संख्यातीत अगणित गुणोंका आगार हो, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है।'

इस समय भारतमें और अन्यान्य पाश्चात्य देशोंमें यह बड़ा भारी आन्दोलन उपस्थित हुआ है कि जब प्रत्येक देशकी उन्नति उसके निवासियोंकी शिक्षापर ही निर्भर है तो किसप्रकारकी शिक्षाका प्रचार होना चाहिये, जिससे मनुष्य सुशिक्षित हों और अपने देशकी उन्नति कर सकें। सुशिक्षा प्रदान करनेके लिये आदर्श शिक्षककी आवश्यकता होती है। इस विचारसे इन दिनों सर्वत्र 'गुरु ट्रेनिङ् विद्यालयों' की स्थापना की जा रही है।

अध्यापक वशिष्ठ

ऐसी परिस्थितिमें आदर्श शिक्षाप्राप्त श्रीरामचन्द्रजीके गुरु कौन थे, और उनको कैसी शिक्षा दी गयी थी, इन बातोंपर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक और सामयिक प्रतीत हो रहा है। यद्यपि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी भगवान् विष्णुके ही अवतार थे, उनके लिये वास्तवमें किसी भी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं थी, तथापि मानव-शरीर कैसा और कितना पूर्ण हो सकता है इस बातको दिखानेके लिये ही परमात्मा नरदेह धारण करते हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था* कि 'हे अर्जुन! सब मनुष्य मेरे ही पथके पथिक हैं। यदि मैं वर्णाश्रमोचित कर्म न करूँ तो सारा मानव-समाज कर्तव्यविमुख और नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।' सभी अवतार अपने लीला-शरीरके अनुरूप काम करते हैं। इसीलिये महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र आदर्श मनुष्यके रूपमें चित्रण किया है। देवर्षि नारदने श्रीरामको मनुष्य समझकर ही प्रशंसा की है†। श्रीराम भी अपनेको मनुष्य ही समझते थे। इसी विचारसे वशिष्ठजीने उनको आदर्श शिक्षा दी थी।

रघुवंशियोंके कुलगुरु आदर्श ब्राह्मण महर्षि वशिष्ठ अयोध्यामें ही निवास करते थे। एक दिन महाराज दशरथने उनसे प्रार्थना की कि आप मेरे कुलगुरु हैं इसलिये श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इनकी शिक्षा-दीक्षाका उचित सुप्रबन्ध कीजिये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सूर्य-वंशियोंको आदर्श शिक्षा देना ही महर्षि वशिष्ठके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। महाराज दशरथकी प्रार्थनाको महर्षिने सानन्द स्वीकार किया। उन्होंने राजकुमारोंको पन्द्रह वर्ष तक सब प्रकारकी आश्रमोचित शिक्षाएँ दीं। श्रीरामचन्द्र

* यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

† बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥

पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही शस्त्र और शास्त्रके पूर्ण पारदर्शी हो गये।

गुरु-गृहकी शिक्षा समाप्त होनेपर जनपद-चारित्र्य (नागरिकता) की शिक्षाके लिये वशिष्ठद्वारा चुने गये अच्छे विद्वानोंकी देख-रेखमें समानवयस्क कतिपय अन्य राजकुमारोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी तीर्थ-यात्राके लिये भेजे गये*। प्रायः सालभरमें भारतके सब तीर्थोंमें, हिमालयसे समुद्रतट कुमारिका पर्यन्त और द्वारकासे गंगा-सागर तक श्रीरामने पर्यटन किया। इस भ्रमणमें उन्होंने काशी, उज्जयिनी आदि विद्यापीठों, बहुविध वाणिज्य व्यापारकेन्द्रों, सैनिकोंके विविध व्यूहों, अनेक राजाओंकी शासन-पद्धतियों और सर्वभूत-हित-रत अनेक ऋषि-महर्षियोंके प्रशान्त गम्भीर आश्रमोंका सशिक्षण निरीक्षण किया। इस समय श्रीरामके कोमल हृदयपर वनौकस विरक्त महर्षियोंके पवित्र चरित्रका अधिक प्रभाव पड़ा। तीर्थाटनसे लौटते ही नयनाभिराम श्रीरामके मनमें तत्कालसुलभ वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे दुःखमय संसारकी अनित्यताका अनुभव कर दिन-प्रति-दिन मलिन होने लगे। रामकी यह अवस्था वशिष्ठजीको विदित हुई। अन्य गुरुओंकी तरह गुरु वशिष्ठने समावर्तनके साथ-ही-साथ अपनी शिक्षा समाप्त न की थी। रामके हृदयमें जो उद्वेगप्रद अशान्तिकारक असामयिक वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसको दूर करनेके लिये आदर्श अध्यापक महर्षि वशिष्ठने जो समयोचित उपदेश दिया, वही एक अपूर्व महान् ग्रन्थ योगवाशिष्ठके नामसे विख्यात है। अर्जुनके वैराग्यजनित व्यामोहको हटाकर निष्काम कर्मयोगमें प्रवृत्त करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीताका उपदेश किया था। किन्तु उसके बहुत दिनों पहले ही महात्मा वशिष्ठने श्रीरामको वैसा ही उपदेश किया था। उन्होंने योगवाशिष्ठमें सिद्ध किया है कि यह पृथ्वी कर्म-भूमि है। यहाँ कर्म करना अत्यावश्यक है। ममतारहित होकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे मनुष्य नित्य सुखी जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य है जीवनको सुखमय बनाना। यह पाश्चात्य पण्डित भी मानते हैं। किन्तु उनके सुखका मूल है भोग। इधर वशिष्ठप्रवर्त्तित शिक्षापद्धतिका मूल है कामना-परित्याग। वही स्थायी सुख देनेवाली है। पाश्चात्य जगत्की शिक्षामें इस जगत्के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये जिस देशमें आर्थिक उन्नति अधिक है वही सर्वोन्नत समझा जाता है। अमेरिकामें प्रत्येक विद्यार्थीका करोड़पति होना ही एकमात्र सर्वोच्च अभिलाष है। इसीलिये वहाँके गुरु अपने छात्रोंको अर्थकरी विद्या सिखला कर निश्चिन्त हो जाते हैं। परन्तु वशिष्ठप्रमुख भारतीय गुरु अर्थकरी विद्या प्रारम्भमें सिखलाकर अन्तमें स्थायी सुख देनेवाले ज्ञानका उपदेश करते थे। आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति अर्थात् दुःखका अत्यन्त अभाव ही सच्चा सुख है। इस संसारमें दुःखके कारण सर्वत्र वर्तमान हैं। दुःखका बिल्कुल न होना असुलभ अवश्य है, किन्तु दुःखके सहन करनेका अभ्यास करनेसे वह सुलभ हो जाता है। चौबीस घण्टेमें एक समय आधपेट भोजन न पानेवाले गरीब ज़मीनपर ही सुखपूर्वक निद्रा लेते हैं। लेकिन कितने ही लोग मक्खन, मिश्री, मलाई, मोदक, मालपूओंका इच्छानुसार संहार करके भी शशिकान्त-कोमल दुग्धधवलशय्यातल-पर करवटें बदलते रहते हैं। वास्तवमें दुःख-सहन-शक्ति ज्ञान और अभ्यासपर ही निर्भर है। श्रीरामचन्द्रको भी अभ्यासके लिये ब्रह्मचर्यका और ज्ञानके लिये योगवाशिष्ठका उपदेश मिला था। उपदेश देनेके बाद वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीको विद्वान् समझकर निश्चिन्त नहीं हो गये, बल्कि इस ज्ञानका कार्यक्षेत्रमें ठीक-ठीक उपयोग होता है या नहीं, इसका भी निरीक्षण करते रहे।

श्रीरामका विवाह किस कुलमें और कैसी कन्यासे होना चाहिये, इसका परामर्श भी वशिष्ठसे लिया गया था। रावण-वधके अनन्तर जब श्रीराम अयोध्या लौटे, तो उन्होंने उनका राज्याभिषेक भी किया। शासन-सूत्र हाथमें आनेपर भी श्रीरामको महर्षि वशिष्ठजी सदा उपदेश देते रहते थे। मुनि ऋष्यशृङ्गके बारह वर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञमें निमन्त्रित होकर जब वशिष्ठजी चले गये थे, तो वहाँसे भी इन्होंने अपने प्रिय शिष्य रामको राजनैतिक उपदेश भेजा था† कि राजाका प्रधान धर्म प्रजारञ्जन है। इससे जो यश प्राप्त होता है, उसीको तुम अपनी अतुल सम्पत्ति

* विद्यागृहाद् विनिष्क्रम्य रामो राजीवलोचनः।
वशिष्ठप्रहितैर्विप्रैः शास्त्रज्ञैश्च समन्वितः॥
स्निग्धैः कतिपयैरेव राजपुत्र वरैः सह।
निरगात् स्वगृहात् तस्मात्तीर्थयात्रार्थमुद्यतः॥
(योगवाशिष्ठ, वै० प्र०)

† जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-
स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-
स्तस्माद् यशो यत् परमं धनं वः॥

समझना। जैसा गुरु वैसा ही शिष्य, श्रीरामचन्द्रजीने भी इस सन्देशको पाकर प्रतिज्ञा की कि * 'स्नेह, दया, सुख और तो क्या, प्राणप्रिया जानकीको भी यदि त्यागना पड़े तो मैं सहर्ष त्याग कर सकता हूँ, किन्तु प्रजानुरञ्जनसे कदापि मुँह न मोड़ूँगा।' इस प्रतिज्ञाको उन्होंने कार्यरूपमें परिणतकर संसारको दिखला भी दिया। वस्तुतः स्नेह, दया, मित्रता और प्राणप्रिया—इनमें किसी एकके फन्देमें फँसकर ही मनुष्य कर्त्तव्य-पालनसे विचलित हो जाते हैं। महाराज शाक्यसिंह—जिनका नाम अन्तमें बुद्ध हुआ—इसी चक्करमें आ गये थे। श्रीराम और अर्जुनकी तरह इन्हें भी संसारकी असारता ज्ञात हुई थी। पहले दिन रोगी, दूसरे दिन वृद्ध, तीसरे दिन मृत शरीर और चौथे दिन एक संन्यासीको देख महाराज शाक्यसिंह अपना राज्य-कार्य छोड़कर विरक्त हो गये थे। यदि महर्षि वशिष्ठ अथवा श्रीकृष्णकी तरह शाक्यसिंहको गुरु मिले होते, तो वे कभी भी एकाश्रमोचित एकदेशीय बौद्ध-धर्मका प्रचार संसारमें न करते।

तत्त्वदर्शी वशिष्ठ

श्रीरामचन्द्रजीकी शङ्काओंको दूर करनेके लिये गुरु वशिष्ठजीने, 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' कैसे है? ब्रह्म और जगत्में क्या सम्बन्ध है? किसप्रकार सूक्ष्मसे स्थूलकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं? इन तत्त्वोंका उपदेश विशदरूपसे सरल मधुर और प्राञ्जल-भाषामें किया है। आजकल पाश्चात्य जगत्के नवनवाविष्कृत विज्ञानको देखकर लोग मुग्ध और चमत्कृत हो रहे हैं। परन्तु योगवाशिष्ठको ध्यानपूर्वक पढ़नेवाले इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि इन सब विषयोंका पूर्ण ज्ञान भगवान् वशिष्ठको था। वर्त्तमान युगमें लार्ड केलविन्का 'आवर्त्तवाद' (Vorten Theory) एक महान् आविष्कार समझा जाता है। परन्तु उत्पत्ति-प्रकरणमें वशिष्ठजीने बतलाया है कि † जैसे जलाशयका जल आवर्त्ताकारमें स्फुरित होता है, वैसे ही एकमात्र जागतिक शक्तिसम्पन्न मन ही दृश्य जगत्‌रूपमें प्रकाशित होता है। रादरफोर्ड महोदयका 'स्पन्दनवाद' (Electron Theory) भी योगवाशिष्ठमें पाया जाता है। इन 'वादों' को बतानेके बाद वशिष्ठकी विमल बुद्धि उस सूक्ष्मतम बादमें भी पहुँची है जिसकी कल्पनाका गन्धलेश भी पाश्चात्य अन्तःकरणमें नहीं है। आधुनिक पाश्चात्य पण्डित-मण्डली स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेकी चेष्टा कर रही है। इसमें उसे सफलता मिलेगी या नहीं, भगवान् जानें। परन्तु वशिष्ठप्रमुख प्राचीन ऋषिगण योगबलसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म आदि कारणमें पहुँचकर 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' के अनुसार मन्त्रको प्रत्यक्ष करते थे। अतः उनके उपदेशानुसार ब्रह्मसे चिदाकाश और चिदाकाशसे चित्ताकाश तथा भूताकाशकी कल्पना होकर उसमें स्पन्दन होता है और उसीसे इस जगत्की सृष्टि होती है। वशिष्ठजीने कहा भी है कि 'हे राम' जब तक तुम्हें पूर्ण ज्ञान नहीं होता, तब तक मैं आकाशत्रयकी कल्पनाके अनुसार सृष्टिप्रकरण समझाऊँगा।‡ कुछ दिन हुए पाश्चात्य लोग 'परमाणुवाद' (Atomic Theory) पर्यन्त पहुँचे थे। अब स्पन्दन वाद (Electron Theory) तक पहुँचकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं, जिसकी वशिष्ठजीने मरुभूमिकी मरीचिकासे तुलना की है।

सर जगदीशचन्द्र बसु महोदयने वृक्षादि उद्भिदोंमें भी मन है, इस बातका आविष्कार कर वैज्ञानिक जगत्को स्तम्भित कर दिया है। किन्तु लाखों वर्ष पहले वशिष्ठ महाराजने कह दिया है कि आकाशमें, वायुमें, अग्निमें, वृक्षोंमें, पृथ्वी और पर्वतोंमें भी शुद्ध चैतन्य है।§ स्थूल जगत्के मिथ्यात्वका परिज्ञान अनादिकालसे मानव-हृदयमें बद्धमूल है। सर्वविध वस्तुसमन्वित सुरासुरकिन्नराधिष्ठित स्थावर जङ्गमात्मक यह दृश्य जगत् महाप्रलयके समय बिलकुल नष्ट हो जायगा। तब तेज या अन्धकार कुछ भी नहीं रहेगा। केवल वही एक अखण्ड सत्ता रह जायगी जो दर्शन-दृश्यसे

---

* स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

† सर्वं हि मन एवेदमित्थं स्फुरति भूतिमत्।
जलं जलाशयस्फारैर्विचित्रैश्चक्रकैरिव॥
(यो॰वा॰ उ॰ प्र॰)

‡ यावद् रामाप्रबुद्धस्त्वमाकाशत्रयकल्पना।
तावदेवावबोधार्थं मया त्वमुपदिश्यसे॥
आकाशचित्ताकाशाश्चिदाकाशकलंकिताम्।
प्रसृतावदहनात् यथामरुमरीचयः॥
चिनोति मलिनं रूपं चित्ततां समुपागतम्।
त्रिजगन्तीन्द्रजालानि रचयत्याकुलात्मकम्॥

§ शुद्धं हि चेतनं नित्यं नोदेति न च शाम्यति।
स्थावरे जङ्गमे व्योम्नि शैलेऽग्नौ पवने स्थितम्॥
परमार्थघनं शैलाः परमार्थघनं द्रुमाः।
परमार्थघनं पृथ्वी परमार्थघनं नभः॥

पृथक् भादिमध्यान्तहीन चित्तविरहित अद्वैत विज्ञानस्वरूपहै, जिसमें जगत्का परिस्फुरण होता है। रूपहीन आकाशमें जिस-प्रकार नील पीतादि रूपका भान होता है, उसी प्रकार चिन्मय ब्रह्ममें मिथ्या जगत् दृष्टिगोचर होता है। जैसे समुद्रका जल कहीं तरङ्गरूपमें और कहीं आवर्तरूपमें दिखायी पड़ता है, जैसे एक ही सुवर्ण कटक, अङ्गद और केयूर प्रभृति नानारूपमें परिणत होकर दिखायी देता है, उसी प्रकार एक ही चिदात्माके अनन्त रूप साधारण लोगोंको दृष्टिगोचर होते हैं। वशिष्ठने रामसे कहा है कि 'हे राम, वही ब्रह्म अज, अनादि, अजर, अमर, शाश्वत और अमूर्त है, सबका कारण है। उसको जाननेसे आत्मज्ञान-लाभकर जीवन्मुक्त बन सकोगे। बहिर्जगत्के व्यावहारिक लोकाचारको वासना-विहीन होकर करते रहो। सुख और दुःखमें निस्पृह और राग-द्वेषशून्य होकर अपने कर्तव्योंका पालन करनेसे ही तुम जीवन्मुक्त हो सकते हो।'

निर्विकार सत्यव्रत वशिष्ठ

पाठक यह न समझें कि वशिष्ठजी केवल परोपदेशकुशल ही थे। उन्होंने अपने जीवनमें उसे करके भी दिखा दिया है। विश्वामित्रजी ब्रह्मर्षि कैसे हुए—इसका सविस्तर वर्णन वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारतमें पाया जाता है। इन पुस्तकोंको पढ़नेवालोंको यह भी ज्ञात होगा कि उनमें वशिष्ठजीका चरित्र कैसा उन्नत, उदार, रागद्वेषरहित, क्षमा-परायण, सत्यसम्पन्न, त्यागयुक्त और ब्रह्मबल-परिपूर्ण है। जब कान्यकुब्जके राजा विश्वामित्र मृगया-व्यापारसे तृषार्त होकर सेनासहित महर्षि वशिष्ठके आश्रममें आये, तब महर्षिने उनका राजोचित स्वागत किया और ससैन्य उनको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये सविनय आग्रह किया। पहले तो वशिष्ठाश्रमकी प्राकृतिक सम्पत्ति देखकर ही विश्वामित्र चकित और चमत्कृत हो गये। सर्वर्तुसुलभ सुन्दर-सुन्दर फल-पुष्पोंसे सुशोभित वृक्षोंके प्रशान्त शीतल तलमें फलमूलजलाहारी महर्षि, देवर्षि, सिद्ध, चारण प्रभृति तपस्या-परायण तपस्वियोंकी मण्डली देखकर विश्वामित्रजी मन्त्रमुग्ध हो गये। जब उन्होंने यह देखा कि एक ही शबला नाम्नी कामधेनुसे वशिष्ठजीने अगणित सेनासहित उनका सर्वविध आतिथ्यसत्कार सम्पन्न कर दिया; तब तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। विश्वामित्रजी इस अभूत-पूर्व आतिथ्यसे सन्तुष्ट तो खूब हुए; परन्तु शबलाको ले लेनेका प्रबल लोभ भी उनके मनमें उत्पन्न हुआ और उन्होंने उस कामधेनुको दे देनेका प्रस्ताव किया। वशिष्ठजीने पहले बहुत समझाया कि इस गायकी सेवा राजा-महाराजाओंसे नहीं हो सकती। यह आपके यहाँ जा भी नहीं सकती। यह इस आश्रमका जीवन है। इसीके द्वारा सब ऋषि महर्षियोंके सर्वविध देवर्षि-पितृकार्य सम्पन्न होते हैं। आप कृपाकर इसे न ले जाइये। परन्तु विश्वामित्र कब मानने लगे। उन्होंने वशिष्ठजीको तरह तरहके लोभ दिखाये। अन्तमें उस कामधेनुके बदले राज्य दे देनेको भी तैयार हो गये। किन्तु वशिष्ठजी तो आदर्श ब्राह्मण थे। उनके निकट लोभ कैसा? जब विश्वामित्र सब उपायोंसे थक गये तब उन्होंने कहा कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावतके अनुसार संसारकी सब वस्तुएँ राजाकी ही हैं, यह कहकर शबलाको बलपूर्वक ले चलनेको उन्होंने अपने सैनिकोंको हुक्म दिया। आज्ञा पाते ही वे उसको पकड़कर ले चलने लगे। शबलामें यह शक्ति थी कि विश्वामित्रकी सारी सेनाका कचूमर मिनटोंमें ही निकाल दे। किन्तु आज विश्वामित्र महर्षि वशिष्ठके अतिथि हैं। इसलिये वह बिना वशिष्ठकी आज्ञाके कोई काम करना उचित नहीं समझती थी। इतना होनेपर भी वशिष्ठजीके चेहरेपर लेशमात्र भी क्रोधका भाव नहीं था और असाधारण शान्ति विराजमान थी। किन्तु शबलाने जब अत्याचारियोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर सजल नेत्रसे वशिष्ठजीकी ओर देखा और उनसे आत्मरक्षाके लिये आज्ञा माँगी, तो उन्होंने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, कपिला तो सब चीजोंको पैदा करनेवाली कामधेनु थी। वशिष्ठजीकी आज्ञा पाते ही अपने रोमकूपोंसे कई सहस्र सैनिकोंको प्रकटकर उसने विश्वामित्र और उनकी सारी सेनाका चेहरा बिगाड़ दिया। यह देखकर विश्वामित्र अत्यन्त लज्जित हुए और वशिष्ठजीके ऊपर क्रुद्ध होकर शिवजीकी तपस्या करनेके लिये चले गये। अपनी घोर तपस्यासे आशुतोषको तुष्टकर और उनसे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्राप्तकर बदला लेनेकी नीयतसे फिर वशिष्ठके आश्रमपर पहुँचे और किसी प्रकारकी सूचना न देकर ही ऊधम मचाने लगे। विश्वामित्रके तीव्र अस्त्र-शस्त्रोंके प्रबल आघातसे आश्रमके जीव विकल हो गये और ऋषि तथा ऋषिकुमार त्राहि-त्राहि करने लगे। अब वशिष्ठसे न रहा गया। वे अपना ब्रह्मदण्ड लेकर विश्वामित्रके सामने खड़े हो गये। उन ब्रह्मदण्डसे ठोकर खाकर विश्वामित्रके सब अस्त्र बेकाम हो गये। ब्रह्मास्त्र-पर्यन्त भी विफल हो गया। यह देखकर विश्वामित्रने समझा कि

ब्रह्मबलके सामने कोई बल चल नहीं सकता। अतः वे ब्राह्मण बननेकी इच्छासे दक्षिणावर्तकी ओर तपस्या करने चले गये। तपस्वी होनेपर भी वशिष्ठके ऊपर वे सदा आगबबूला रहा करते थे और वशिष्ठकी अथवा उनके कुलकी हानिके लिये सर्वदा चेष्टा करते रहते थे। एक दिन *वशिष्ठजीके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिके द्वारा अभिशप्त राजा* कल्माषपादको देखकर विश्वामित्रने सोचा कि इसीसे वशिष्ठ-कुलका नाश हो सकता है। ऐसा सोचकर राक्षसरूपधारी कल्माषपादके द्वारा उन्होंने वशिष्ठजीके एक सौ पुत्रोंको मरवा डाला! इससे वशिष्ठजी दुःखित अवश्य हुए, किन्तु *विश्वामित्रके प्रति किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं किया।* जब विश्वामित्रने अपनी उग्र तपस्यासे ब्रह्मादि देवताओंको भयभीत कर दिया तब देवताओंने विश्वामित्रको राजर्षि, महर्षि और अन्तमें ब्रह्मर्षि होनेका वर दिया। किन्तु विश्वामित्र ब्रह्मादि देवताओंके ब्रह्मर्षि कहनेसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने कहा कि जबतक वशिष्ठ ब्रह्मर्षि नहीं कहेंगे तबतक मैं अपनी तपस्या पूर्ण न समझूँगा। जब वशिष्ठजीने देखा कि विश्वामित्रमें अब क्रोध या द्वेषकी मात्रा थोड़ी भी न रही तब उन्होंने आकर विश्वामित्रको हृदयसे लगा लिया और उनको ब्रह्मर्षिका पद प्रदान किया। निर्वैर विश्वामित्रने भी महात्मा वशिष्ठजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

व्यवहारकुशल ऋत्विक् वशिष्ठ

महर्षि-पदसे प्रायः लोग संन्यासी समझते हैं किन्तु यह भूल है। वशिष्ठजी गृहस्थ थे। कर्दम ऋषिकी कन्या, स्वायम्भुव मुनिकी दौहित्री अरुन्धतीसे उनका विवाह हुआ था। उनके सौ पुत्र थे। सब ही पितृतुल्य विद्वान् और तपस्वी थे। वशिष्ठके ज्येष्ठपुत्र शक्तिऋषिके पुत्र पराशरजी थे जिनकी संहिता प्रसिद्ध है। पराशरजीके पुत्र महामहिमशाली वेदव्यासको कौन नहीं जानता? इतने विशाल परिवार-युक्त गृहस्थ होनेपर भी वशिष्ठजी भोग-विलाससे बिलकुल विरत थे। यदि वे चाहते तो दशरथ प्रभृति सूर्यवंशी राजाओंसे अतुल सम्पत्तिका संग्रह कर सकते थे। परन्तु उनको धनकी क्या जरूरत? वे कर्मवीर इतने थे कि महाराज दशरथने अपने अश्वमेध-यज्ञका सम्पूर्ण प्रबन्ध उन्हींके करकमलोंमें अर्पित कर दिया था। सरयू-नदीके उत्तरीय तटपर यज्ञ-भूमि बनानेके लिये कारीगर और मजदूरोंका प्रबन्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको निमन्त्रण देना, उनके मर्यादानुरूप निवास तथा भोजनका प्रबन्ध, ऋषि-महर्षियोंका आह्वान और उनके कर्त्तव्यका विभाग तथा कर्त्तव्य एवं मर्यादाके अनुसार उनको ससत्कार दक्षिणा देना—इत्यादि कार्य वशिष्ठजीने उत्तम रीतिसे सम्पन्न किये। किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। आगन्तुक ऋत्विक्से लेकर साधारण मजदूर तक सब लोग अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गये। अश्वमेध सविधि सम्पन्न हुआ। वशिष्ठजी स्वयं भी इतने बड़े ऋत्विक् थे कि इन्द्रने अपने यज्ञका होता वशिष्ठजीको ही बनाया था। सूर्यवंशी राजाओंके कुलपुरोहित तो वह थे ही; परन्तु उनकी कार्यकुशलता, निस्पृहता, विद्वत्ता और तन मनसे यजमानका सर्वविध कल्याण साधन करना—इत्यादि गुणावलिसे मुग्ध होकर चन्द्रवंशीय महाराज संवरणने भी अपने कुलका पुरोहित वशिष्ठजीको ही बनाया था।

आजकलके अध्यापक यदि महर्षि वशिष्ठजीके आदर्शको अपने सामने रक्खें तो बड़ा उपकार होगा। *शिक्षक यदि सदाचारी और सुशील हों तो शिष्य अवश्यमेव* सदाचारी और सुशील होंगे। भारतीय शिक्षकसमुदाय महर्षि वशिष्ठके समान विद्वान्, तपस्वी, निर्लोभी, निरहङ्कारी, सत्यवादी, त्यागी, क्षमाशाली और कर्त्तव्यपरायण बन जाय तो कभी भी किसीको भी ऐसा कहनेका अवसर न मिलेगा कि आजकलके विद्यार्थी उच्छृङ्खल होते हैं और अपने अध्यापकोंका कहना नहीं मानते।

भक्त-भावना

विषय विलास आस छोड़ि विष-रास जैसे
पक बिसवास करि प्रेम-पंथ पावेंगे।
और परपंचकी कथानकों गिराय दूर
मधुर गिरासों गुन गोबिंदके गावेंगे॥
काम-रसहू पै दिये आमरस आनि पूरो
राम-रस पीवनमें जीवन बितावेंगे।
होवेंगे अनाथके सनाथ हम वाही दिन
और नाथ छोड़ि रघुनाथके कहावेंगे?

अमृतलाल माथुर।

श्रीरामचरितमानस-विनोद

(लेखक—श्रीमन्त यादवशंकरजी जामदार, रिटायर्ड सबजज)

नकी जो अनेकानेक वृत्तियाँ हैं उनमें विनोद भी एक वृत्ति है। जीवन-संग्रामके लिये, अवान्तर वृत्तियाँ जितनी आवश्यक होती हैं, उतनी ही आवश्यकता इस विनोदी-वृत्तिकी भी है। विनोदी-वृत्तिके अभावमें मनुष्य-जीवन क्लिष्ट तथा भारभूत-सा मालूम होने लगता है। इस वृत्तिमें दुःख भुलानेकी एक अद्भुत शक्ति है। इस विचारसे देखनेवाला पुरुष यही कहेगा, कि इस वृत्तिका निर्माण कर परमेश्वरने मानव-जाति-पर बड़ा भारी उपकार किया है।

यहाँ विनोदी-वृत्तिका शास्त्रीय दृष्टिसे विशद विचार करनेका अवसर नहीं। अतः यहाँ विनोदके गुणानुसार तीन स्थूल भेद दिखलाकर ही विषयका विवेचन किया जाता है। गुणानुसार भेद करनेका प्रधान कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यमें सत्वादि तीन गुण अवश्यमेव रहते हैं।

विनोदके तीन भेद

१ सात्त्विक-विनोद—(प्रेम-पर्यवसायी विनोद) जिस विनोदकी अन्तिम परिपक्वता स्थायी प्रेम और आनन्दमें हो।

२ राजस-विनोद—(मध्यम विनोद) जिसका परिणाम क्षणिक सुख अर्थात् तात्कालिक मनोरञ्जन हो।

३ तामस-विनोद—(औपहासिक विनोद) जिसका परिणाम दिल्लगी, मज़ाक, तुच्छता इत्यादिके द्वारा स्वाभाविक ही अनर्थमय होता है।

अब उपर्युक्त भेदोंको उदाहरणोंद्वारा समझिये!—

(१) सात्त्विक (प्रेम-पर्यवसायी) विनोदका उदाहरण स्वयं श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका ही है। गुसाईंजीकी धर्मपत्नीने उनसे प्रेमभरा विनोद किया, परिणाम यह हुआ कि वे महान् राम-प्रेमी बन गये और हम दीन संसारियोंको रामचरितमानसकी उपलब्धि करा दी। जिन्हें इसके सत्यकी ध्वनि देखनी हो वे इन चौपाइयोंमें देखें—

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥
रहे कर्मबस परिहरि नाहू।······················॥

(२) राजस (मध्यम) विनोदके उदाहरण उपस्थित करनेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका सभीको अनुभव है। इस मनोरञ्जक विनोदके बिना किसी भी सांसारिक मनुष्यकी दिनचर्या प्रायः सुखकर नहीं होती।

(३) तामस (औपहासिक) विनोदके प्रधान उदाहरण रामायण और महाभारतमें ही हैं।

कैकेयी देवीके विषयमें स्वयं गुसाईंजी ही कहते हैं—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरतु मातु मुसुकानि॥

भरत-माता 'काने······चेरी' आदि कहकर यदि मुसकुराती नहीं तो उसका मन्थराके प्रति कड़ा रुख नहीं बदलता जिससे मन्थराको कुछ भी बोलनेका साहस न होता। कैकेयीका यह हँसना ही—यह विनोद ही राम वनवासका कारण हुआ यह निश्चित है। इसीप्रकार महाभारतका कारण भी हँसी ही है। कहावत है कि 'भीमके कारण भारत' हुआ। इस कथनकी सत्यता निम्नलिखित वर्णनमें स्पष्ट है—

राजा दुर्योधन जब धर्मराजकी मयनिर्मित-सभामें पहुँचे, तो उन्हें मायावी मयासुरकी मायामयी रचनाके कारण ऐसा मोह हो गया कि उन्होंने स्थलको तो जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिये और जलको स्थल समझकर चलते समय उसमें गिर पड़े। दुर्योधनकी यह दशा देखकर भीम हँसे, तदनन्तर समस्त स्त्रियाँ और अन्यान्य राजागण भी जोरसे हँसने लगे। धर्मराजने यथासाध्य हँसीका निषेध किया, परन्तु श्रीकृष्ण भगवान्‌के प्रोत्साहनके कारण हँसी रुक न सकी। दुर्योधन लज्जासे आँखें नीची कर, क्रोधसे तमतमाते हुए सिर झुकाकर उसी समय सभासे एकदम निकल पड़े और सीधे हस्तिनापुर जा पहुँचे। उनके इस प्रकार चले जानेसे सब सज्जन हाहाकार करते हुए कहने लगे कि यह एक बड़े अनर्थका कारण हो गया है। धर्मराज श्रीयुधिष्ठिरजी भी उदास हो गये। परन्तु केवल दृष्टिमात्रसे ही संसार-चक्रको घुमानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भूमिका भार उतारना चाहते हैं, ऐसा सोचकर वे कुछ भी नहीं बोले।

(श्रीमद्भागवत १०।७५।३८-४०)

'यह कहा जा सकता है कि हँसीके द्वारा उत्पन्न होनेपर भी रामायण और महाभारतसे तो संसारकी अर्थसिद्धि ही हो रही है, अनर्थ तो नहीं हो रहा है।' यह सत्य है, हम भी इसमें सम्मत हैं। परन्तु हँसनेवालोंका उद्देश्य हँसीसे रामायण और भारतकी उत्पत्ति करना नहीं था। उनकी हँसीसे प्रत्यक्षमें तो अनर्थपात ही हुआ, उस अनर्थके अमरत्वरूपसे अर्थावह हो जानेमें तो केवल ईश्वरकी अगाध कृपा ही कारण है। उपर्युक्त उपोद्घातसे यही स्पष्ट दिखलाना है कि तीन प्रकारके विनोदोंमेंसे सात्त्विक (प्रेम-पर्यवसायी) विनोद ही सर्वोत्कृष्ट है।

अब मूल विषयपर ही आइये—

'मानस-विनोद' शब्दसे दो भाव सूचित होते हैं—(१) मानसका विनोद और (२) मानसमें विनोद। 'मानसका विनोद' कहनेसे तुलसी-रामायणके विनोदी अर्थ ऐसा भाव सूचित होता है, और 'मानसमें विनोद' कहनेसे तुलसी-रामायणमें विनोदी भाग ऐसा भाव सूचित होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन दोनों अर्थोंमें जमीन-आसमानका अन्तर है।

मानसके जो विनोदी-अर्थ किये जाते हैं, वे प्रायः औपहासिक तामस वा मध्यम (राजस) ही होते हैं। दुर्भाग्यवश उन विनोदोंका एक भी प्रेम-पर्यवसायी अर्थ आजतक मैंने नहीं सुना। मैंने जैसे विनोदी-अर्थ सुने हैं, उनमेंसे उदाहरणार्थ एक-दो यहाँ लिखे जाते हैं—

सब सुत मोहिं प्रानकी नाईं। राम देत नहिं बने गुसाईं॥

यह वचन महाराज दशरथजीके श्रीविश्वामित्रजीके प्रति हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है, यहाँ दुबारा अर्थ करनेकी आवश्यकता नहीं। अतः केवल विनोदी-अर्थ ही लिखा जाता है।

विनोद इस प्रकार किया गया था कि 'राम देत नहिं' 'बने गुसाईं' दशरथजी राम-लक्ष्मणजीको देनेसे साफ इन्कार कर गये, केवल इतना ही नहीं, किन्तु वे उलटासे विश्वामित्रजीको कहने लगे कि 'वाहवा! बड़े गुसाईं बनके आये हो!

अब पाठक ही विचार करें कि यह विनोद है या काव्यकी हत्या है अथवा अर्थका अनर्थ है। इस विनोदसे—'मंगन लहहिं न जिनके नाहीं' ऐसे दानवीर रघुकुलकी महत्ता कहाँ रह जाती है?

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

ऐसे महाप्रतापशाली विश्वामित्रजीकी क्या कदर होती है, तथा कवि और उनके काव्यकी भी कौनसी प्रतिष्ठा रह जाती है?

× × ×

कोटि कोटि मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

यह रामजीके प्रति बालिकी अन्तसमयकी उक्ति है। विनोदी, इस चौपाईका पदच्छेद इस प्रकार करते हैं—

को टिको। टिमुनि। जतन कराहीं। अन्तराम कहि। आवत नाहीं।

—और उसे मालिक नौकरके संवादके रूपमें इस तरह प्रकट करते हैं—

मालिक—को टिको (कौन बैठा है?)

नौकर—'टिमुनि' (टिमुनि नौकरका नाम है।)

(मालिक—वहाँ पर तेरा काम क्या था?)

नौकर—'जतन कराहीं' (मालपुएकी कड़ाईकी रखवाली कर रहा हूँ।)

(मालिक—अन्तरामको रखवाली करनेके लिये कहाँ गया था, फिर तू वहाँ कैसे?)

नौकर—'अन्तराम कहि' (अन्तरामको हमने भी कहा, पर उसने साफ कह दिया कि) 'आवत नाहीं' (हम नहीं आते।)

हम मानते हैं कि उपर्युक्त विनोद निर्दोष है। परन्तु इतनी माथापच्ची करके शब्दोंका तोड़-मरोड़ करनेसे लाभ ही क्या है?

ऐसे विनोदके अधिक उदाहरण देकर भावुक पाठकोंका और स्वयं अपना समय नष्ट करनेकी हमारी इच्छा नहीं। अब ऐसे कुत्सितपूर्ण परिश्रमका पारितोषिक देनेका कार्य पाठकोंपर छोड़कर हम अपने मुख्य विषयपर आते हैं।

मानस-विनोद यानी मानसगत विनोद देखनेका हमारा प्राकृत कार्य है। परन्तु मानस-गत सभी विनोदी-प्रसंगोंको यहाँ उद्धृत करना दुष्कर है। नमूनेके लिये कुछ ही प्रसङ्गोंका उल्लेख किया जाता है।

सात्त्विक विनोद

प्रथम सात्त्विक यानी प्रेमपोषक-विनोदके दो प्रसङ्ग दिखाये जाते हैं—

(१) चित्रकूटपर भरतजीका तीसरा भाषण हो चुकनेके बाद देवता नितान्त अकुला गये। भरतजीकी भक्तिके प्रभावको देख इन्द्रदेवको यह चिन्ता हुई कि कदाचित् रामजी भरतजीको सन्तुष्ट करनेके लिये वनसे घर न लौट आयँ। इस घबराहटमें इन्द्रदेवने 'किंकर्तव्यविमूढ' हो सारी मण्डलीपर अपनी माया फैलानेकी कुचेष्टा की। इस मूर्खताको देखकर कवि कहते हैं—

लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥

अर्थ-इन्द्रकी कुचालको देख कृपानिधान श्रीरामजीने मनमें सोचा कि कुत्ता, इन्द्र और नौजवान ये तीनों एक ही वृत्तिके हैं और मनमें यह विचार आते ही वे हँस पड़े। अब इस हँसीके कारणकी जिज्ञासा होती है।

हमारे मतसे श्रीरामजीकी इस हँसीका कारण विनोद है, और उस विनोदका कारण यह पाणिनीय सूत्र 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' है। सूत्रका अर्थ है तद्धित प्रक्रिया छोड़कर 'श्वन्' 'मघवन्' और 'युवन्' शब्दोंके रूप सब विभक्तियोंमें एकसे होते हैं। जैसे—

'श्वा, श्वानौ, श्वानः'
'मघवा, मघवानौ, मघवानः'
'युवा, युवानौ, युवानः'

कवि सूचित करते हैं कि इन्द्रकी कपट-क्रिया देख रामजीको उक्त सूत्र याद आ गया। उनके मनमें विचार उठा कि क्या पाणिनिजीको पहले ही स्वप्न हुआ था कि कुत्ता, इन्द्र और जवान ये तीनों एक ही मालाकी मणियाँ हैं। इस आशयसे महाराजजीको हँसी आयी, परन्तु देवराजको उदास करना अच्छा नहीं, इस दयापूर्ण विचारसे उन्होंने अपनी हँसीको प्रकट नहीं होने दिया। कविके मतसे श्रीरामजीके दयाका कारण यही प्रतीत होता है कि 'अतद्धित (अ+तत् (ब्रह्म, ईश्वर) + हित=ईश्वर-विमुख) पुरुष ऐसे ही हुआ करते हैं, परन्तु उन्हें घृणाके योग्य मानना ठीक नहीं क्योंकि उनकी प्रकृति ही वैसी होती है। शास्त्र कहता है कि 'पर-स्वभाव कर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्' इस शास्त्राज्ञाके अनुसार श्रीरामजीने इन्द्रदेवके सारे कुल हंसीपर छोड़ दिये। 'एतद्धि विज्ञानं पराणामदर्शनम्' इसके अनुसार भी श्रीरामजीका औचित्य उनकी दयामें ही था।

× × ×

(२) उपर्युक्त प्रसङ्गसे भी बढ़कर सात्त्विक-विनोदके लक्षण केवटके सत्याग्रहमें प्रतीत होते हैं। यह सत्याग्रह सभी रामायणोंमें अङ्कित है। प्रसङ्ग यों है—

'रामजी गंगाजीसे पार होना चाहते थे, इसके लिये उन्हें नावकी आवश्यकता थी। परन्तु नाव थी केवटके अधिकारमें, अतः उन्हें केवटको मनाना पड़ा। केवटने देखा कि अपना कार्य सफल करनेके लिये यही अत्यन्त सुअवसर है, क्योंकि व्यवहारकी परिपाटी ही ऐसी है। एकको जो दुविधा होती है, वही दूसरेके लिये सुविधा हुआ करती है (Ones difficulty is anothers opportunity) इसी विचारसे केवट सत्याग्रहके लिये तैयार हो गया।

गुसाईंजीने अपनी रामायणमें केवटकी दलीलें अन्य रामायणोंके समान तो दिखलायी ही हैं, परन्तु उतनी-सी दलीलें उनके मन पर्याप्त नहीं जँची, अतः उन्होंने ये दलीलें केवटके द्वारा विशेष उपस्थित कीं—

(पद-पद्म धोइ चढ़ाइ नाव) न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आनि दसरथ सपथ सब साँची कहौं ॥
बरु तीर मारहि लषनु (पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पार उतारिहौं) ॥

सुनि केवटके बयन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-अयन चितै जानकी-लषन-तन ॥

अब विचारिये, इस प्रपूरकके जोड़नेमें गुसाईंजीका क्या हेतु था ? यह पहले ही कह दिया जाता है कि प्रपूरकके अत्यन्त गम्भीर भाव-ग्राही होनेके कारण तथा पाठकोंकी प्रकृति-भिन्नताके कारण भावोंकी एकवाक्यताका प्राप्त होना सहज नहीं है। तथापि हमारी रुचिके साथ यदि पाठकोंका सामञ्जस्य हुआ तो एकवाक्यताका होना भी दुष्कर नहीं।

प्रपूरकके कारणोंमें हमें मुख्यरूपसे तीन बातें दिखलायी देती हैं—(१) कविका मार्मिक पात्र परिचय-यानी पात्रकी शिक्षा, संस्कार, संगति, व्यवसाय इत्यादिका निरीक्षण। (२) कविकी भावग्रहण-शीलता और (३) लोक शिक्षाका कविका उद्देश्य। इन तीनों बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि 'न नाथ उतराई चहौं' से 'सपथ सब

साँची कहौं' तक प्रपूरक भाग केवटकी पात्रताके सर्वथा अनुकूल है। 'बरु तीर मारहि लषनु' यह भाग लक्ष्मणजी-की पात्रताका द्योतक है, और 'बिहँसे करुना-अयन चितै जानकी-लषन-तन' यह भाग श्रीरामजीके❀ नामका पूर्णतया ज्ञापक है।

उपर्युक्त बातोंके सम्बन्धमें पाठक यदि हमसे सहमत हैं तो अब उनके ध्यानमें यह भी आगया होगा कि गुसाईंजीने अपने प्रपूरकद्वारा परम संकीर्ण भावोंका एक नितान्त रमणीय शब्द-चित्र खींचा है। अपनी परम प्रेमप्लुत विनोदी अवस्थामें केवट ऐसा मस्त हो उठा कि एक रामजी ही क्या, उनके परमपूज्य पिताजीतकसे भिड़नेमें भी उसने कसर नहीं रक्खी। उसका यह ग्रामीण-व्यवहार उचित नहीं—यह बात उसे लक्ष्मणजीके चेहरेसे मालूम हो चुकी थी, तिसपर भी उसने एक कदम और आगे बढ़कर एकदम ललकार कर कह दिया कि 'बरु तीर मारहि लषनु'—चाहे लक्ष्मणजी बाणसे बींध डालें! उसके इस निःसीम तथा निःस्वार्थ प्रेमको देखकर रामजी भी प्रेमसे विह्वल हो गये। परिणाममें उनके मनमें भी विनोद लहरा उठा, जिसके कारण वे यकायक हँसते हुए जानकीजी तथा लक्ष्मणजीकी ओर देखने लगे!

गुसाईंजी, 'रामजी हँसते हुए देखने लगे' इतना ही कह कर चुप हो गये हैं। इससे स्पष्ट है कि रामजीकी उस अवस्थाका निश्चय करना उन्होंने अपने पाठकोंपर ही छोड़ दिया है। अतः रामजीकी वह स्थिति पागलपनकी थी, मुक्त-दशाकी थी या भावुकताकी थी, इसकी मीमांसा करनेका अनिवार्य भार पाठकोंपर ही आ पड़ा है!

यह तो सहज ही कहा जा सकता है कि रामजीकी स्थिति न तो पागलकी-सी थी और न मुक्त (अर्थात् विदेह-मुक्त) की-सी थी, क्योंकि गुसाईंजी ही आगे चलकर कहते हैं—

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं नाव न जाई॥
बेगि आनि जल पाँय पखारू। होत बिलंब उतारहु पारू॥

क्या पागल या विदेह-मुक्तको ये कृपायुक्त विचार सूझ सकते हैं? अतः रामजीका हँसना भावयुक्त था यही सिद्ध होता है!

अब केवल रामजीके भावनिश्चयका कार्य बाकी रहा। इस विषयमें यह तो स्वयंसिद्ध है कि केवटका निःसीम और निःस्वार्थ प्रेम देखकर ही रामजी अपने परम प्रिय भाई और भार्याकी ओर देखने लगे थे अर्थात् इस स्थलपर उनकी दृष्टि तुलनात्मक थी, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु तुलनाके लिये सिवा केवट, जानकीजी और लक्ष्मणजी इन तीनोंके प्रेमके रामजीके सामने और कुछ था ही नहीं, अतः प्रमाणित हुआ कि रामजीका कटाक्ष (चितै) तीनोंके प्रेमपर ही था। साथ ही मूल प्रबन्ध भी कह रहा है कि श्रीरामजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर ही हँसे। इससे यही निश्चित होता है कि उन्हींके प्रेममें श्रीरामजीके हँसीका कारण केन्द्रित था, और उस केन्द्रस्थानका स्वरूप प्रेमगत तुलनात्मक भावके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। इस विचार-प्रणालीसे हमारे मतसे सीताजी और लक्ष्मणजी-की ओर हँसते हुए देखनेसे रामजीने उन्हें यह सूचित किया कि 'भाई और भार्या होनेसे मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम होना अत्यन्त स्वाभाविक है परन्तु इस जंगली केवटका प्रेम देखकर यदि मैं पूछूँ कि मेरे सम्मुख प्रेमके जो ये दो (एक केवटके प्रेमका और दूसरा सीता-लक्ष्मणजीके प्रेमका) दृश्य उपस्थित हैं, इनमेंसे अधिक उत्कट, निःसीम और निःस्वार्थ अतः अधिक सुहावना और प्रिय दृश्य तुम्हें कौन-सा जँचता है, तो तुम क्या उत्तर दोगे?'

हमारी बुद्धिसे तुलसीरामायणमें भी इस कोटिके विनोदी सात्त्विक प्रेमका अद्भुत उत्कृष्ट उदाहरण दूसरा कोई नहीं है। यदि इस कथनमें हमारी भूल हुई हो तो ऐसा सूक्ष्म भावभरित अन्य प्रसंग दिखाकर कोई महाशय हमारी भूल सुधारेंगे तो हम उनके बहुत ऋणी होंगे।

× × ×

चलते-चलते सात्त्विक विनोदी प्रेमका एक और नमूना पाठकोंकी सेवामें सादर उपस्थित किया जाता है, जिसके सम्बन्धमें विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं क्योंकि स्वयं तुलसीदासजी सारी बातें कह चुके हैं। विज्ञ पाठक इसपर ध्यान दें—

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरसहु पट-भूषन॥
नभपर जाइ बिभीषन तबहीं। बरसि दिए पट भूषन सबहीं॥
जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसत राम सिय अनुज समेता। परम कौतुकी कृपानिकेता॥

❀ 'रमणाद्राम इत्यपि' (अ० रा०) 'अखिल लोकदायक बिश्रामा'—(तु० रा०)

ध्यान न पावहिं जासु मुनि नेति नेति कह बेद ।
कृपासिन्धु सोइ कपिनसों करत अनेक बिनोद ॥
उमा जोग जप दान तप नाना व्रत मख नेम ।
राम-कृपा नहि करहिं तस जस निष्केवल प्रेम ॥

हमारी इच्छा लेख बढ़ानेकी नहीं है, परन्तु करें क्या ? प्रसङ्ग ही ऐसे निकल आये कि हमारे वशकी बात न रह गयी। पाठक क्षमा करें। अब लेखके संकोचपर विशेष ध्यान रखनेका प्रयत्न किया जायगा।

राजस-विनोद

राजस-विनोदके दो एक छोटे-छोटे नमूने दिखलाये जाते हैं।

(१) विभीषणका राज्याभिषेक हो जानेके पश्चात् अशोकवाटिकासे सीतामाताको लानेके लिये हनूमान्‌जी भेजे गये। विभीषण भी उनके साथ थे। उन्होंने माताजीको रथमें बैठाया और बड़ी ही धूमधामसे राज-वैभवमें उनकी सवारी चली, इसपर श्रीरामजी कहने लगे—

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादेहि आनहु ॥
देखहिं कपि जननीकी नाईं। बिहँसि कहा रघुबीर गुसाईं ॥

वास्तवमें देखा जाय तो अन्तिम चरण अनावश्यक है। प्रथम 'कह रघुबीर' कहकर फिर 'कहा रघुबीर' कहनेसे द्विरुक्ति-दोषकी आपत्ति उठती है। और 'देखहिं कपि जननीकी नाईं' इस उच्च और प्रगल्भ शिक्षाजनक वाक्यकी 'बिहँसि' से हँसी उड़ाना बहुत ही विलक्षण और अनुचित प्रतीत होता है। यह स्पष्ट है कि इन शङ्काओंकी जड़ चौपाइयोंके चारों चरण सङ्कलित और सम्बन्धित होनेमें ही है। हमारे मतसे पहले तीन चरण ही परस्परापेक्षित हैं। चतुर्थ चरण स्वतन्त्र है। पहले तीन चरण आज्ञार्थक हैं, और विभीषणको सम्बोधन करके कहे गये हैं। चौथा चरण किसीको भी सम्बोधित करके नहीं कहा। वह आज्ञा देते समय रामजीकी मनोवृत्तिका सूचक है। [अर्थात् काव्यदृष्ट्या वह कविका (गुसाईंजीका) प्रतिबिम्ब है]।

अब श्रीरामजीकी मनोवृत्तिका प्रश्न आता है। यदि ऐसा कहा जाय कि चिरकालतक बिना अन्न-जलके एक जगह बैठी रहनेके कारण सीताजीको अशक्त, पंगु और दुबली-सी दशामें देखनेकी भविष्य कल्पनासे रामजी हँसे, तो इसे हम कदापि नहीं मानेंगे। क्या सीताजीकी विपत्तिमें भी रामजी आनन्द मना सकते हैं ? हम तो ऐसे समाधानको पूर्वोक्त 'बने गुसाईं'की श्रेणीमें ही रखना चाहेंगे।

वास्तवमें गोसाईंजीको कथाभागके सम्बन्धमें जो कुछ कहना आवश्यक था, वह उन्होंने पहले तीन चरणोंमें कह दिया। इससे कहा जा सकता है कि चौथा चरण ('बिहँसि' इ०) उन्होंने हेतुपूर्वक जोड़ा है। अतः उसमें अपूर्वता या विचित्रता होनी ही चाहिये ! परन्तु सीताजीके जुलूसके समय जो परिस्थिति थी, उसकी आलोचना कथा-प्रबन्धद्वारा करनेपर यही दीखता है कि सिवा एक बातके दूसरी कोई भी बात ऐसी नहीं थी कि जिसमें अपूर्वता या विचित्रता समायी हुई हो। यदि ऐसी कोई दूसरी बात होती तो कथा-प्रबन्धमें वह अवश्यमेव अङ्कित की जाती। परन्तु प्रबन्धमें गुसाईंजी अपनी वर्णन-शैलीके अनुसार 'बिहँसि कहा' इ०के पश्चात् और उसीके लगभग केवल एक ही बात अङ्कित करते हैं और वह यह है—

सीतहि प्रथम अगिनिमहुँ राखी। (प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी) ॥

अतः सिद्ध हुआ कि सीताजीका अग्निदेवमें सन्निवेश ही वह अपूर्वताकी बात है।

इस रीतिसे अपूर्वता प्रकट होनेपर 'बिहँसि' का भाव प्रकट होनेमें कुछ भी क्लिष्टता नहीं दीखती। आज तो सभी जानते हैं कि जो सीताजी बड़े भारी जुलूससे लायी जा रही थीं वह केवल नकली सीताजी थीं। परन्तु उस समय जुलूसके अवसरपर एक रामजी और दूसरी असली सीताजी इन दो के सिवा शेष सभी लोग नकलीको ही असली समझते थे। इस दृश्यपर ध्यान जानेसे स्वभावतः ही श्रीरामजीके मनमें यह कल्पना हुई कि, 'वाह ! किस धूम धामसे यह रस्सीके साँपका खेल खेला जा रहा है ! यह सीताजीका जुलूस है, या उनकी छायाका ?' यही कल्पना-गर्भित विनोद श्रीमान् महाराजजीके चेहरेपर हँसीके रूपमें प्रकट हो गया !

(२) रामजी पुष्पक विमानपर चढ़कर लङ्कासे आते समय राहमें सीताजीको दृश्य दिखाने लगे। दण्डकारण्य पहुँचनेपर वे अगस्त्य मुनिजीके आश्रमपर पधारे। वहाँसे आगे बढ़नेपर जब उनका विमान उत्तरकी ओर चला तब उन्हें गङ्गा-यमुनाजीके दर्शन हुए। कवि कहते हैं—

बहुरि राम जानकी दिखाई। जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रणाम करु सीता ॥

अर्थ स्पष्ट ही है। आगे जो कुछ कहना है वह थोड़ेमें सुविधासे समझमें आनेके लिये पूर्वोत्तर-पक्षद्वारा इस-प्रकार है—

पूर्वपक्ष—उक्त चौपाइयोंमें यमुनाजीका तो केवल दर्शनमात्र, और गङ्गाजीके दर्शन और उनके प्रति वन्दन दोनों ही करनेको कहा गया है। ऐसा क्यों? क्या रामजीके कहे बिना सीताजी प्रणाम नहीं करतीं?

उत्तरपक्ष—वन्दन करनेको कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि सीताजी स्वयमेव प्रणामशीला थीं। अतः हमें विश्वास है कि सीताजी प्रणाम किये बिना रहती ही नहीं।

पूर्वपक्ष—सीताजीके प्रणामशीलताका क्या प्रमाण है?

उत्तरपक्ष—

सुन्दरि सेतु देखु यह थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपायतन संभुहि कीन्ह प्रणाम॥

पूर्वपक्ष—माना जाय कि उत्तरपक्ष ठीक है, फिर गङ्गाजीको प्रणामके लिये कहनेकी क्यों आवश्यकता हुई?

उत्तरपक्ष—इसका कारण पूर्वकथामें है। वह पूर्वकथा इसप्रकार है—

सिय सुरसरिहि कहा करजोरी। मातु मनोरथ पुरवहु मोरी॥
पति देवर सँग कुशल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥

पूर्वपक्ष—इससे और हमारे प्रश्नसे क्या सम्बन्ध?

उत्तरपक्ष—इनका सम्बन्ध विनोदमें है और वह इसप्रकार है।

यह स्पष्ट ही है कि रामजी और सीताजीके बीच आई लक्ष्मण और साथ ही अन्य मण्डली बैठी थी, वहाँ सबके सामने पति-पत्नीका विनोद उचित नहीं था। परन्तु सत्य और शुद्ध प्रेमकी लहर सदा ही अनिवार्य होती है। इसलिये उसकी चेष्टा विनोदद्वारा-मर्यादा बन्धनमें भी निकल पड़ी।

विनोदका सार यह है कि रावणको हम थोड़े ही मार सकते थे? यह जो हमारे हाथसे मरा सो केवल तुम्हारे द्वारा की हुई गङ्गाजीकी मनौतीके कारण ही! अतः उनको नमस्कार करनेमें देर न करो!

उपर्युक्त दो उदाहरण राजस-विनोदके दिये गये हैं। ध्यान रहे कि विनोदके इस प्रकारमें प्रत्यक्षतया दिल्लगी ही दिखायी देगी। साथ ही अप्रत्यक्षरूपसे शिक्षाका प्रतिबिम्बित होना भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि राजस-विनोदके आनन्दका स्थायीभाव नहीं होता!

तामस विनोद

अब तामस विनोदके दो नमूने दिखलाकर इस विषय-को समाप्त करनेकी इच्छा है।

(१) अधम निसाचरि कुटिल असि चली करन उपहास।
सुनु खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास॥

शूर्पणखा राक्षसीने रामजीसे हँसी की। यह प्रसङ्ग उपर्युक्त दोहेमें है। इससे प्रत्यक्ष ही जाता है कि तामस-विनोदमें मर्यादाका बन्धन कुछ भी नहीं रहता, और इसी कारण वह प्रायः दुःख-पर्यवसायी ही होता है।

(२) अङ्गद-शिष्टाईसे लिया हुआ यह उदाहरण इसप्रकार है:—

कपिबल देखि सकल हिय हारे। उठा आप कपिके परचारे॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहत न तोर उबारा॥
गहसि न राम-चरन शठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भये तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

ध्यानसे देखिये कि इस दिल्लगीका भी फल दुःखमें हुआ है।

यहाँ एक विचित्रता यह है कि किसी भी दूसरे रामायणमें यह प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता। अतः यह गोस्वामीजीकी कल्पना ही प्रतीत होती है।

ज्ञात होता है कि इस वर्णनकी कल्पना छोटे बच्चोंके कहोखसे की गयी है। एक बालक दूसरेसे झूठे ही पूछता है कि तेरे मस्तकपर दाग कैसा लगा है? वस्तुतः उसके मस्तकपर कोई दाग है ही नहीं। दूसरा चकित होकर मस्तकको हाथ लगाता है। इसपर पहला लड़का एकदम कह उठता है कि 'ओहो! तूने हमें सलाम किया।' इसी प्रकारकी दिल्लगी इस प्रसङ्गमें है।

समालोचना

लेख बहुत बढ़ जानेके कारण समालोचनाका स्वरूप छोटा रखना ही हमें युक्तिसंगत मालूम होता है—

संख्या	प्रसङ्ग	विनोदका वर्ग (लक्षण)
१	लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥	विदग्धविनोद ।
२	मोहि राम राउरि आनि दसरथ शपथ सब साँची कहौं । बरु तीर मारहिं लखण	ग्रामीण-विनोद ।
३	चितै जानकी लखण तन ।	प्रगल्भ-विनोद ।
४	चढ़ि बिमान बरसहु पट भूषण	सुहृद्-विनोद ।
५	बिहँसि कहा रघुबीर गुसाईं ।	स्वगत-विनोद ।
६	राम कहा प्रणाम करु सीता ।	गृह-विनोद ।
७	अङ्गदका पाँव उठानेके लिये रावणका आह्वान ।	बाल-विनोद ।

शूर्पणखाके विनोदके पृथक् वर्गीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं । स्वयं गोस्वामीजी ही उसे कुटिल और औपहासिक विनोद कह चुके हैं ।

निष्कर्ष

उल्लिखित समालोचनाका हमारे विचारसे यही तात्पर्य निकल सकता है कि श्रीतुलसीदास महाराजजीका स्वभाव सभी जगह-एकान्तमें और लोकान्तमें-सभी समाजोंमें आबालवृद्धोंको बहलानेवाला होनेके कारण वे सदा ही आनन्दमें रहनेवाले बड़े ही कारुणिक पुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं ।

शान्ति

अहंकारकी अगिनिमें, दहत सकल संसार ।
तुलसी बाँचैं संतजन, केवल सांति-अधार ॥
महा सांति जल परसिकै, सांत भए जन जोइ ।
अहं-अगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ ॥
तेज होत तन तरनिको, अचरज मानत लोइ ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ ॥

साम्प्रदायिक शंका

(लेखक—म० श्रीबालकरामजी विनायक, अयोध्या)

अपनेको स्वसम्प्रदायाङ्गीकृत रीति-रहस्य एवम् मतवादविशेषकी सीमाके बाहर न माननेवाले हमारे कतिपय वैष्णव बन्धु यह शङ्का किया करते हैं कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज अनन्य वैष्णव कैसे थे ? क्योंकि उन्होंने शिव-गणेशादि देवान्तरकी वन्दनाएँ और स्तुतियाँ की हैं । इसके अतिरिक्त अद्वैतवादका प्रतिपादन किया है । कोई साम्प्रदायिक वैष्णव ऐसा नहीं कर सकता । यदि वे वैष्णव (उनके मतानुसार) होते तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे शिवजीकी तथा श्रीजानकीजीसे पार्वतीजीकी पूजा क्यों कराते ? अतः यदि उन्हें किसी प्रकार वैष्णव मान भी लिया जाय तथापि साम्प्रदायिक रीति-रहस्यसे अभिज्ञ अनन्य वैष्णव तो उन्हें कदापि नहीं कहा जा सकता ।

समाधान

हमें दुःख है कि ऐसी कल्पना करनेवाले बन्धुओंने वैष्णवता और अनन्यताका रहस्य समझा ही नहीं । हम नहीं जानते कि दूसरेसे द्वेष करना, सो भी सत्पुरुषोंसे, वैष्णवताका कौन-सा लक्षण है ? ऐसे लोगोंने मानो वैष्णवता देवीको अपनी कल्पना विशेषके कारागारमें बन्दकर रक्खा है । अतः यह विशेष प्रकारकी उनकी अपनी मानी हुई वैष्णवता केवल उन्हींकी वैष्णवता है । यह भगवद्भक्तिका अर्थ रखनेवाली व्यापक वैष्णवता कदापि नहीं हो सकती ।

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म ही है अथवा ब्रह्मका ही रूप है । वह 'एकमेवाद्वितीय' ब्रह्म ही सृष्टि-विस्तारमें अनेक हो गया है, यही वैदिक सिद्धान्त है और समस्त आर्यशास्त्रोंका अभिप्राय है और यही विशुद्ध तथा उदार वैष्णव सिद्धान्त है । 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥' 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥' 'यस्य पृथिवी शरीरम् ।' 'ईशावास्यमिदं सर्वं' तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि श्रुतियोंका यही अभिप्राय है कि एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही जगदाकार हुआ है । वैष्णव-पुराणोंमें भी यही लिखा है । यथा—

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥
—विष्णुपुराण

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
—श्रीमद्भागवत

अपरञ्च—

'भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु,
भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं,
रामस्य वै भुवितले समुपासकाश्च॥'

भगवान् गीताचार्यका भी श्रीमुखवचन है—'वासुदेवः सर्वमिति'। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' सत्पुरुष-परिगृहीत वैदिक वैष्णवताका वही शुद्धस्वरूप और दिव्य आदर्श ग्रहण किया है जो एक सन्त और सद्वैष्णवके लिये स्वाभाविक है। 'निर्वैरः सर्वभूतेषु' होकर उस विराट् पुरुष जगद्ब्रह्मकी भावना ही वास्तविक अनन्यता और वैष्णवता है। वही श्रीरामचरितमानसमें और गोस्वामीजी-जैसे वैष्णवशिरोमणिके जीवनमें चरितार्थ है—

'सो अनन्य जाकी अस मति न टरै हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त॥'
'उमा, जे रामचरण-रत बिगत काम-मद-क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥'
'बिश्वरूप रघुबंशमनि करहु बचन बिश्वासु।
लोक-कल्पना बेदकर अङ्ग-अङ्ग प्रति जासु॥'
'सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुगपानी।'

श्रीरामचरितमानस ही वैदिकधर्मका और वैष्णवताका शुद्ध स्वरूप प्रकट करता है और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ही महर्षि व्यासके बाद ऐसे महाकवि हुए हैं जिन्होंने समास-रूपसे वैदिक काव्य-निर्माण किया है और उसमें श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सिद्धान्तोंका सारांश अत्यन्त युक्ति-पटुतापूर्वक सुचारुरूपसे संक्षिप्त किया है। उन्होंने रामायणजी-की आरतीमें इसे स्पष्ट कह दिया है, यथा—

चारिहु बेद, पुराण अष्टदस, छहौंशास्त्र, सदग्रंथनको रस।
तन-मन-धन सन्तनको सरबस, सार अंश सम्मत सबहीकी॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद, बाल्मीकि बिज्ञान-बिशारद।
शुक-सनकादि शेष अरु शारद, बरनि पवनसुत कीरति नीकी।

मानसकारने उन वाल्मीकि-व्यासादि महर्षियोंका ही अनुसरण किया है—

मुनिन प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

गोस्वामीजी श्रीरामानन्दीय वैदिक श्रीसम्प्रदायके श्रीवैष्णव थे। जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीकी शिष्य-परम्परामें वे चौथे थे—जगद्गुरु भगवत्पादाचार्यके, द्वादश महाभागवतावतारोंमें अग्रणी शिष्य स्वामी श्रीअनन्तानन्दजीके स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजी और उनके शिष्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज थे, जिन्होंने सर्वहित-कारक निर्विरोध और समुदार वैदिक वैष्णव सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए, अपने श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायका स्वरूप प्रदर्शित किया है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे सम्प्रदायी वैष्णव नहीं थे। वे अपने सत्सम्प्रदायके उदार संस्कार, सनातनधर्माविरुद्ध सिद्धान्त एवम् रीति-रहस्यके अनुसार आदर्श वैष्णव साधु थे।

श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके व्यास-शुकादि परम्परानुगत पूर्वाचार्य हैं। यह सभी जानते हैं कि विष्णु-शिवादि अनेक नामरूपोंमें समान भावसे उसी 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' का उन्होंने निरूपण किया है। वेदोंमें वर्णित देववादका उन्होंने पुराणोंमें विस्तारसहित ऐतिहासिक रूपसे वर्णन किया है और द्वैताद्वैतादि ब्रह्मवादकी श्रुतियोंकी ब्रह्मसूत्रोंमें सङ्गति लगायी है। गोस्वामीजीने भी यही काम किया है। जगद्ब्रह्मवादके सिद्धान्तपर अङ्गरूपसे देवान्तरोंको मानते हुए परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीरामका माहात्म्य और चरित वर्णन किया है तथा ब्रह्मवादविषयक अद्वैत-विशिष्टाद्वैतादि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका यथास्थान प्रतिपादन किया है। ईश्वरके निर्गुण-सगुण दोनों रूपोंका वर्णन किया है।

अस्तु, गोस्वामीजी अपने पूर्वाचार्योंका अनुसरण करनेवाले, उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके उदार तथा निर्विरोध संस्कारोंसे परिपूर्ण वैदिक वैष्णव थे। वे ऐसे सत्सम्प्रदायके वैष्णव थे, जिसके सनातन धर्मकी वैदिकी वेदिकापर प्रबल प्रमाण माने जानेवाले सम्पूर्ण भागवतधर्मके ग्रन्थ (प्रस्थानत्रय और पुराणादि), साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। अतः गोस्वामीजी अपने वैदिक श्रीसम्प्रदायके पूर्ववर्ती ऋषियोंकी शैलीके, प्रकृतिसे उत्पन्न किये गये हुए वैष्णव थे, सद्वैष्णवाचार्य थे। वे सम्प्रदायके पूर्ववर्ती आचार्य थे, अतः उनके वर्तमान अनुयायियोंको उन्हींके अनुसार चलना और अपना स्वरूप सँभालना होगा और उन्हींको प्रामाण्य मानना होगा। उन्हींकी वैष्णवता सच्ची वैष्णवता और उन्हींकी अनन्यता सच्ची

अनन्यता है। उस अनन्यतामें एक इष्टके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। कहा भी है—

उत्तमके अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।
नरक-स्वर्ग-अपवर्ग समाना। जहँतहँ-दीख धरे धनु-बाना॥

वेदोंके दो एक वाक्य तो स्वदेशी विदेशी अनेक मत-मतान्तरों और सम्प्रदायोंमें माने जाते हैं। अहिंसावाले अंशको बौद्ध भी मानते हैं। परन्तु वे वैदिक नहीं कहलाते। वैदिक वही है जो वेदोंके सम्पूर्ण अंशोंको पूर्वाचार्योंकी भावनाके अनुसार मानता है। गोस्वामीजी वैसे ही वैदिक वैष्णव महात्मा थे और उनका श्रीरामानन्दीय श्रीसम्प्रदाय वैसा ही सम्प्रदाय भी है।

'गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे श्रीमहादेवजी-की और श्रीजनकनन्दिनीसे श्रीपार्वतीजीकी पूजा और स्तुति क्यों करायी?' यद्यपि इस आक्षेपका उत्तर वैष्णवताके समाधानमें यथेष्ट रूपसे हो चुका है तथापि इसके सम्बन्धमें दो एक शब्द विशेषरूपसे कह देना आवश्यक जान पड़ता है। यह बात सर्वविदित है कि गोस्वामीजी व्यासादि महर्षियोंकी शैलीके महात्मा थे और महर्षि व्यासने भागवतादि पुराणोंमें इसका वर्णन किया है कि श्रीरुक्मिणीजी देवीकी पूजा करने जाती थीं और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरकी स्थापना की। तब गोस्वामीजी वैसा क्यों न करेंगे? वे उन्हींके सम्प्रदायके तो वैष्णव और उनके सच्चे अनुयायी हैं। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम थे, वे लोकशिक्षार्थ आदर्श नर-नाट्य करते थे। तब उस समय प्रचलित वैदिक धर्मकी मर्यादाकी वे क्यों न रक्षा करेंगे? और भगवान् शङ्कर तो उनके परम भक्त और भागवतोत्तम हैं। वे ऐसे महाभागवत हैं जो श्रीनाभा स्वामीके 'भक्ति-भक्त-भगवन्त-गुरु चतुर नाम वपु एक' वाले सिद्धान्तानुसार भगवत्से अभिन्न हो गये हैं, वे रामभक्ति-भागीरथी और राममन्त्रके आचार्य हैं†। श्रीमद्भागवतमें अक्रूरजीने भगवान्‌से स्तुतिमें कहा है—

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते॥

वही एक और अद्वितीय भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ही अनेक रूपोंमें रम रहे हैं और अनेक प्रकारसे रुचिभेदके अनुसार उन्हींकी पूजा हो रही है—'सर्वदेवनमस्कारं केशवं प्रतिगच्छति।'

†'त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्'—श्रीरामतापिनी उपनिषद्।

श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीश्रीवैष्णव पं० श्रीरामटहलदासजी)

सृष्टिके आदिसे सनातन-धर्मका मूल वेद है, वेद-सिद्धान्तसे ही सब धर्मोंका आविष्कार हुआ है। अतएव वेद-वर्णित सभी धर्म वैदिक धर्म कहे जाते हैं। वेदमें जिन-जिन देवताओंकी उपासना वर्णित हैं, वे सभी प्राचीन हैं। हमें यहाँ श्रीरामोपासनाकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करना है। वेदमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता बतायी गयी है, ऋग्वेद मण्डल ७ अनुवाक् ८६में 'मन्त्ररामायण' नामक एक प्रख्यात प्रकरण है, इसके १४१ वें मन्त्रमें श्रीराममन्त्रोद्धारका वर्णन आया है, इसपर श्रीनीलकण्ठ-सूरिने 'मन्त्र-रहस्य-प्रकाशिका' नामक व्याख्या भी की है। उक्त प्रकरणसे सिद्ध है कि सृष्टिके प्राचीनकालसे श्रीरामोपासना अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है। सत्ययुगमें अनेक ऋषि-मुनि एवं भक्तगण श्रीरामके उपासक थे, इसके उदाहरणस्वरूप लोमश, अगस्त्य प्रभृतिकी कथा प्रसिद्ध है। वेदके पश्चात् श्रीरामोपासनाका सबसे बड़ा ग्रन्थ श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण है, इसके अतिरिक्त ब्रह्म-रामायण, प्रमोदरामायण, भुसुण्डिरामायण, महारामायण, आनन्दरामायण, प्रेमरामायण, अध्यात्मरामायण आदि अनेक रामायण हैं, श्रीरामचरित्रका वर्णन शतकोटि-विस्तार चौदह लोकोंमें व्याप्त है।

श्रीरामतापिनी-उपनिषद्‌की चतुर्थ कण्डिकामें श्रीराम-मन्त्रका वर्णन आया है—'श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।' काशीमें श्रीराममन्त्रको शिवजीने जपा, तब श्रीरामचन्द्र भगवान् प्रकट होकर बोले, 'त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।' हे शिवजी! आपसे या ब्रह्मासे जो कोई श्रीरामषडक्षर मन्त्रको लेंगे, वे मेरे धामको प्राप्त होंगे। ब्रह्मासे वशिष्ठ-अगस्त्यादि ऋषियोंने मन्त्र लिया था और भी जिन-जिन ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके जिस-जिस पदको प्राप्त किया, उसका प्रमाण वृद्धहारीत-स्मृतिके षष्ठ अध्यायमें आया है—

एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात्।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम्॥

कार्तिकेयो मनुत्वं च इन्द्रार्कागिरि नारदौ ।
बालखिल्यादि मुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे ॥'

'अर्थात् इस श्रीरामोपासना करके अगस्त्यजी रुद्रशक्ति-सम्पन्न हुए, कश्यपजीने श्रीराम-मन्त्रको जपकर ब्रह्मत्व प्राप्त किया, कौशिक मुनि अमरत्वको प्राप्त हुए, कार्तिकेय मनु-पदपर नियुक्त हुए, और इन्द्र, सूर्य, नारद, बालखिल्यादि ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके दिव्य दैवत्व पदको प्राप्त किया।' इस प्रमाणसे सिद्ध है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापरादि तीनों युगोंमें समस्त ऋषिगण श्रीरामोपासक ही थे। यों तो अठारहों पुराण, महाभारत, पाञ्चरात्र आदि सभी ग्रन्थोंमें श्रीरामोपासनाका सविस्तर वर्णन है, किन्तु अगस्त्यसंहिताके ११ वें तथा २५ वें अध्याय और पञ्चरात्र बृहद्ब्रह्मसंहिता द्वितीय पाद ७ अध्याय एवं पद्मपुराण उत्तरखण्ड २३५ अ० तथा बृहन्नारदीय पुराण पूर्वभाग ३७ अ० इत्यादि ग्रन्थोंके स्पष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामोपासना तीनों युगोंमें होती आयी है। यह तो हुई, सत्ययुग त्रेता और द्वापरतककी श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता। परन्तु कलिकालमें श्रीरामोपासना किनके द्वारा और कैसे आयी ? इसका इतिहास इसप्रकार है—सदाशिवसंहिताके नवम अध्यायमें लिखा है—

कलिकालोद्भवानाञ्च जीवानामनुकम्पया ।
देव्यानुबोधितः साक्षाद्विष्णुः सर्वजनेश्वरः ॥ १ ॥
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्लब्ध्वा मन्त्रं षडक्षरम् ।
ददौ प्रीत्या तदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥ २ ॥
वेङ्कटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराङ्कुशः ।
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम् ॥ ३ ॥
तत्समीपे महापीठे वेङ्कटे रङ्गमण्डपे ।
जपिष्यन्ति चिरं मन्त्रं तारकं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥
इति ते कथितं मुने मुक्त्युपायं तु भार्गव ॥ ५ ॥

अर्थात् कलिकालके जीवोंको भवसागरसे तारनेकी इच्छासे भगवान् विष्णुजीने लक्ष्मीजीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश दिया। तारक-मन्त्रको प्राप्तकर लक्ष्मीजी कृतकृत्य हुईं और प्रीतिपूर्वक लक्ष्मीजीने श्रीविष्वक्सेनजीको तारक-मन्त्र दिया। तत्पश्चात् द्वापरके अन्तमें श्रीपरांकुश (श्रीशठकोपस्वामीजी) वेंकटाचल पर्वतपर सबसे प्रथम विष्वक्सेनजीका आराधन करके उनसे वेदाध्ययन पुरःसर पढ़कर तारक-मन्त्र लेंगे। वेंकटाद्रिके समीप रंगमण्डप सिद्धपीठपर बैठकर सर्वपाप-नाशक श्रीरामतारक-मन्त्रको उक्त आचार्य शिष्योंके सहित बहुत कालपर्यन्त जपेंगे। शिवजी कहते हैं, हे भार्गवमुने ! हमने कलिकालके जीवोंके लिये तुमसे मुक्तिका उपाय कहा है। उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट सिद्ध है कि, कलिकी आदिमें विष्वक्सेनद्वारा श्रीशठकोपदेशिकजीको ही सर्व प्रथम श्रीरामोपासना मिली। ऐसेही उदाहरण बृहद्ब्रह्म-संहिताके द्वितीय पाद सातवें अध्यायमें भी आये हैं—

'विष्वक्सेनादिभिर्भक्तः शठारिप्रमुखैर्द्विजैः ।
रामानुजेन मुनिना कलौ संस्थामुपैष्यति ॥
द्वापरान्ते कलेरादौ पाखण्डप्रचुरे जने ।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्त्तकः ॥

अर्थात् श्रीमन्नारायणने श्रीलक्ष्मीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश अर्थ-ध्यान-सहित देकर कहा है कि, 'हे प्रिये ! द्वापरके अन्तमें कलियुगके आदिमें पाखण्डी मनुष्योंके अधिक हो जानेपर सद्धर्मकी रक्षाके लिये श्रीविष्वक्सेन तथा श्री-शठकोपादि द्विजवरों एवं श्रीरामानुजप्रभृतिद्वारा कलिमें श्रीरामोपासनाकी पूर्ण अभिवृद्धि होगी।' इस प्रमाणसे भी सिद्ध है कि सर्वप्रथम कलिके आदिमें श्रीशठकोप-प्रभृतिद्वारा ही श्रीरामोपासनाका प्रचार हुआ।

श्रीरामोपासनाकी वृद्धिके लिये श्रीशठकोपस्वामीजीने वेंकटाद्रिके निकट तिरुपतिमें सर्वप्रथम श्रीसीतारामजीकी दिव्य मूर्त्ति स्थापन की थी। यह दिव्य स्थल श्रीशठकोप-स्वामीजीका मङ्गलानुशासित है। पाँच हजार वर्षोंसे यह स्थल प्रस्तुत है जो आज भी श्रीवैष्णवोंके हस्तगत है और तिरुपतिके श्रीमहन्त प्रयागदासजीके प्रबन्धमें सुरक्षित है। इसी दिव्य मन्दिरमें बैठकर श्रीशठकोपस्वामीजीने बहुत काल-पर्यन्त श्रीराममन्त्रका जप किया था। इसीलिये सदाशिव-संहितामें लिखा है कि, 'तत्समीपे महापीठे वेङ्कटे रंगमण्डपे।' कहा जाता है कि, हिन्दुस्थानमें सबसे प्रथम श्रीराम-मूर्तिकी पूजाका समारम्भ इस युगमें यहींसे हुआ और यह भी किंवदन्ती है कि, यह त्रेतायुगकी मूर्ति श्रीशठकोपस्वामीजी-को अत्यन्त उत्कट तपस्यासे प्राप्त हुई थी। श्रीशठकोप-स्वामीजीने अपने दिव्य प्रबन्ध सहस्रगीतीके ३ शतक ६ दशक ८ वीं गाथामें लिखा है—

'दशरथस्य सुतं तं विना नान्यशरणवानस्मि।'

अर्थात् श्रीमद्दशरथ-राजकुमारके अतिरिक्त दूसरेका शरणागत नहीं हूँ। ऐसे ही श्रीराम सर्वेश्वरके महत्व-

परक एक सहस्र गाथा आपने लिखी है। श्रीशठकोपदेशिकजीने श्रीरामोपासनाका समस्त भार शिष्योंमें सर्वप्रधान शिष्य श्रीनाथमुनिजीको सौंपा। श्रीनाथमुनिजीने भी श्रीरामोपासनाका प्रचार सर्वजगत्व्यापी किया, जिसका स्पष्ट उदाहरण आपने अपने संग्रहीत ग्रन्थोंमेंसे 'नाथमुनियोगपटल' नामक ग्रन्थमें दिया है। यह संहिता लगभग१० हजार है; इसमें श्रीरामजीके नित्योत्सव गजस्थ-तुरंग-पालकी नित्यविहारलीला एवं पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षण्मासिक-वार्षिक मंगलोत्सवोंका वर्णन है। आपकी एक 'मानसिक-ध्यानरामायण' अति विचित्र है आप मानसिक ध्यानसे एक महीनेमें उसको समाप्त किया करते थे, जिस रामायणका वृत्तान्त कभी फिर सविस्तृत लिखेंगे।

श्रीनाथमुनिजीके शिष्योंमेंसे प्रधान श्रीपुण्डरीकाक्षजी हुए, आपने श्रीरामोपासना-विषयक 'श्रीरामार्या' तथा 'श्रीराममंगलमनोहर' इत्यादि ग्रन्थ रचे हैं, जो कि दक्षिण दिव्य देशोंमें उपलब्ध है।

श्रीपुण्डरीकाक्षजीके शिष्य श्रीरामोपासक श्रीराममिश्रस्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके कई ग्रन्थ लिखे थे, जिनमेंसे 'श्रीरामषडक्षरप्रपत्तिस्तोत्र' जो कि, श्रीराममन्त्रके छः अक्षरोंपर छः श्लोक तथा 'श्रीसाकेतसोपान' में विद्यमान हैं, जिनको हम 'नित्यस्तुतिसंग्रह' नामक पुस्तकमें मुद्रित करा चुके हैं। श्रीमद्रामायणपर आपकी बनायी, हुई भावप्रकाश' नामक टीका भी सुनी जाती है।

श्रीराममिश्रजीके शिष्य श्रीयामुनमुनिजी हुए, आपने श्रीमद्रामायणका अर्थ २१ बार गुरु-मुखसे अध्ययन किया। आपका बनाया 'श्रीमद्रामायण रहस्यप्रकाश' बड़ा विलक्षण ग्रन्थ है। 'श्रीरामभावनाष्टक' नामक स्तोत्र भी आपका निर्मित है, जिसको हम अभी-अभी 'श्रीसुदामाजीकी वाराखड़ी' नामक संग्रहीत ग्रन्थमें मुद्रित करा चुके हैं। और स्तोत्ररत्न 'आलवन्दार' के अन्तमें आपने श्रीरामोपासनाका लोकोत्तर दृश्य दिखाया है। इसके लिये श्रीवेदान्तदेशिककृत 'आलवन्दारभाष्य' का अवलोकन कर लेना चाहिये। 'आगमप्रामाण्यसिद्धित्रयी' आदि आपके और भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

श्रीयामुनाचारीस्वामीजीके श्रीमहापूर्णाचार्यादि पाँच शिष्य हुए, श्रीमहापूर्णाचारी स्वामीजीके ही शिष्य श्रीभाष्यकार लक्ष्मणावतार 'श्रीरामानुजस्वामीजी' महाराज हुए। भूषणटीकाकार श्रीगोविन्दराजस्वामीजीने श्रीमद्रामायणके आरम्भमें लिखा है कि, श्रीरामानुजस्वामीजीने श्रीमद्रामायणका रहस्यार्थ १८ बार अध्ययन किया था। आपने श्रीरंग-मन्दिरके गोपुरपर चढ़कर श्रीराम-मन्त्रोच्चारण-द्वारा जगत्को उपदेश देकर श्रीरामोपासनाका अपूर्व प्रचार किया। आपने श्रीरामषडक्षरमन्त्रार्थपरक छः अक्षरोंपर छः श्लोक लिखे हैं, उनमेंसे दो श्लोक अद्यावधि मिलते हैं, जिनको हम 'श्रीरामसारसंग्रह' नामक ग्रन्थके रामरहस्यत्रयार्थ, प्रकरणमें मुद्रित करा चुके हैं। और 'गद्यत्रय' में भी आपने 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥' इस श्रीराम-चरम मन्त्रको श्रीरामशरणागतिपरक दिया है; जिसपर श्रीवेदान्तदेशिकस्वामीजीने 'अभयप्रदानसार' नामक ग्रन्थमें १२ हजार व्याख्या की है। आपके द्वारा स्थापित यादवाद्रिमें श्रीयतिराज मठ है, वहाँपर भी श्रीरामषडक्षरकी १२ हजार व्याख्या उपलब्ध है। यह व्याख्या आपके पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योंने लिखी है। श्रीमद्रामायणपर भी श्रीभाष्यकारकी टीका विस्तृतरूपमें है; दिव्य देशोंमें भगवद्विषयके नामसे जिसका कालक्षेप हुआ करता है। आपने कन्याकुमारीसे हिमालयपर्यन्त श्रीरामोपासनाका अटल प्रचारकर चराचर चेतनोंको परमपद जानेका मार्ग सुलभ कर दिया। श्रीभाष्यादि आपके और भी कई ग्रन्थ हैं।

श्रीरामानुजस्वामीजीके शिष्योंमेंसे श्रीकूरेशस्वामीजी अनन्य श्रीरामोपासक हुए, इसका पता आपके विरचित ग्रन्थोंमेंसे 'पञ्चस्तवी' ग्रन्थसे स्पष्ट लगता है कि आप एक बड़े ही उच्चकोटिके उपासक थे। आपने कृमिकण्ठ राजाकी राजसभामें श्रीराममन्त्रका महत्त्व प्रकट करके श्रीरामोपासनाकी विजय पायी—यह आपके 'कूरेशविजय' नामक ग्रन्थसे प्रमाणित होता है।

श्रीरामानुजस्वामीजीके श्रीगोविन्दाचार्य शिष्य हुए, उनके श्रीभट्टारकस्वामी बड़े ही प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् हुए हैं। जिन्होंने 'भगवद्गुण-दर्पण-सहस्रनामभाष्य' में श्रीरामोपासनाका वर्णन विलक्षणरूपसे किया है। आपके और भी श्रीरामोपासनाके दिव्य प्रबन्ध हैं। श्रीभट्टारकस्वामीजीके श्रीवेदान्ती स्वामी, उनके कलिजित् स्वामी, उनके श्रीकृष्णाचारी, उनके श्रीलोकाचारी स्वामी हुए। आपने उपासनारहस्यमय १८ ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें

'श्रीवचनभूषण' श्रीरामोपासनाका अपूर्व ग्रन्थ है। आपके श्रीशैलेशजी, उनके श्रीवरवरमुनिस्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके परत्वपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। भगवद्विषय-भाष्य श्रीरामपरत्वपर आपका लिखा हुआ भाव बड़ा ही विलक्षण है। श्रीरामोपासकोंको इसे अवश्य देख लेना चाहिये। आपने 'श्रीराममंगलाशासनस्तोत्र' में श्रीरामायणके सातों काण्डोंका सारांश ऐसा खींच लिया है मानो गागरमें सागर आ गया हो, जिसको हम 'श्रीरामदिव्यस्तवराज' में मुद्रित करा चुके हैं। आपके शिष्य-प्रशिष्योंमें श्रीविजयरामाचार्यजी हुए हैं, जिन्होंने 'श्रीराममहिम्नस्तोत्र' लिखकर श्रीराम-मन्त्रका महत्व प्रकट किया है। श्रीवरवरमुनिस्वामीजीके शिष्य श्रीदेवाचार्यजी हुए, उनके श्रीहरियाचार्यजी हुए, जिन्होंने 'श्रीरामस्तवराज' भाष्यादि अनेक ग्रन्थ श्रीरामोपासनाके लिखे हैं। आपके शिष्य श्रीराघवाचार्यस्वामीजी बड़े ही उत्कट विद्वान् हुए हैं। आपके श्रीरामानन्दस्वामीजी महाराज समस्त शिष्योंमें शिरोमणि हुए हैं, आपने श्रीरामोपासनाकी रक्षाके लिये 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' तथा 'श्रीरामार्चनपद्धति' ये दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिनको हम मूलमात्र मुद्रित करा चुके हैं। आपके प्रतापसे भारतके कोने-कोनेमें आपके शिष्यप्रशिष्योंद्वारा श्रीरामोपासनाका खूब ही प्रचार हुआ। आपकी कृपासे भारतमें श्रीरामोपासना प्रबल हो गयी। कबीर आदि आपके शिष्य श्रीरामोपासनासे ही सर्वलोकप्रसिद्ध हो गये। श्रीरामानन्दस्वामीजीके शिष्य श्रीनरहरियानन्दजी हुए; आपके ही शिष्य कविसार्वभौम, श्रीरामोपासक-चूड़ामणि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके श्रीरामायणादि १२ ग्रन्थ लिखकर श्रीरामोपासनाको प्रबल कर दिया। श्रीगोस्वामीजीकी कृपासे हिन्दुस्थानमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी श्रीरामोपासनाकी पताका फहरा रही है। इसप्रकार चारों युगोंमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीन गुरु-परम्परा चली आ रही है। परम्परया प्राचीनकालकी प्राचीन श्रीरामोपासनाका मूल-मार्ग यही है। श्रीरामोपासनाके ग्रन्थ पूर्वाचार्योंकृत असंख्य भरे पड़े हैं। विस्तार-भयसे दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है।*

* उपर्युक्त लेखमें भिन्न-भिन्न पुस्तकोंके नाम आये हैं, जिन्हें हम मुद्रित करा चुके हैं, वे बिना मूल्य, 'दारागञ्ज ब्रह्मस्थान—प्रयाग' के पतेसे ।=) के टिकट भेजनेवालोंको मिल सकेंगी।

रामायण-संख्या

पाठकोंकी जानकारीके लिये वाल्मीकिरामायण और अध्यात्मरामायणकी श्लोक-संख्या तथा गुसाईंजीकृत रामायणके दोहे-चौपाई आदिकी संख्या दी जाती है।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके सर्ग और श्लोक

काण्ड	सर्ग	श्लोक
बालकाण्ड	७७	२२६७
अयोध्याकाण्ड	११९	४२८६
अरण्यकाण्ड	७५	२४४४
किष्किन्धाकाण्ड	६७	२४५५
सुन्दरकाण्ड	६८	२८२९
युद्धकाण्ड	१२८	५७१०
उत्तरकाण्ड	१११	३३७९
	६४५	२३३७०

श्रीमदध्यात्मरामायणके सर्ग और श्लोक

काण्ड	सर्ग	श्लोक
बालकाण्ड	७	३९१
अयोध्याकाण्ड	९	७२८
अरण्यकाण्ड	१०	५१६
किष्किन्धाकाण्ड	९	५६०
सुन्दरकाण्ड	५	३२७
युद्धकाण्ड	१६	१११५
उत्तरकाण्ड	९	६११
	६५	४२४८

श्रीरामचरितमानसकी छन्द-संख्या

काण्ड	चौपाई	दोहा	सोरठा	अन्यछन्द	कुल-सं०
बाल	१४९४	३५९	३५	६८	१९५६
अयोध्या	१३०६	३१४	१३	१६	१६४९
अरण्य	२६३	५०	८	४५	३६६
किष्किन्धा	१५४	३१	३	५	१९३
सुन्दर	२७१	६२	१	९	३४३
लंका	५७४	१५०	९	७४	८०७
उत्तर	५९६	२०७	१६	५४	८७३
	४६५८	११७३	८५	२७१	६१८७

रामायणकालीन कला और उद्योगकी सूची

(लेखक—श्रीयुत बी० एच० वडेर एम०ए० एल-एल० बी०)

नाम = अर्थ	संदर्भ
कर्मान्तिक = मजदूर	वा०रा०१-१३-७
शिल्पकार = कारीगर	वा०रा०१-१३-७
वर्धकि = बढ़ई	वा०रा०१-१३-७
खनक = बेलदार (मिट्टी खोदनेवाले)	वा०रा०१-१३-७
गणक = ज्योतिषी	वा०रा०१-१३-७
नट = सूत्रधार	वा०रा०१-१३-७
शैलूष = अभिनेता	वा०रा०१-१३-७
नर्त्तक = नाचनेवाले	वा०रा०१-१३-७
गायक = गानेवाले	१-६५ २
सूत = रथ हाँकनेवाले	२—४—३
सूत = पौराणिक	२-६२ २
सूत = बढ़ई	,,
दैवज्ञ, दैव-चिन्तक = ज्योतिषी, भविष्यवक्ता	२-४-२१
मागध = वंशावली-गुणगान करनेवाले।	२—६—६
वन्दिन् = स्तुति पाठ करनेवाले।	,,
वादित्र = बाजा बजानेवाले।	२ १६-३८
स्नानशिक्षाज्ञः = स्नान करानेमें पटुलोग।	२ ६५ ८
स्नापक = ,,	२ ८३-१४
पाणिवादक = तालके साथ गानके समय ताली बजानेवाले	२-६५-४
भूमिप्रदेशज्ञ = पृथ्वीके स्थलोंको जाननेवाले	२-८०-१
व्यवहारिन् = व्यापार करनेवाले	२-७६ १६
यन्त्रक = छोटी छोटी मशीन बनानेवाले	२-८०-१
यन्त्रकोविद = बड़ी मशीनें बनानेवाले	२-८०-२
सूत्रकर्मविशारद = तम्बू छावनी आदि बनानेवाले	२-८० १
मार्गिन् = पथ-रक्षक	२ ८०-२
वृक्षतक्षक = वृक्ष काटनेवाले	२-८०-३
सूपकार, सूप = रसोई बनाने और परोसनेवाले	२ १२-६६
सुधाकार = चूना बनानेवाले	,,
वंशकृत् = बाँसका काम करनेवाले	२-८० ३
चर्मकृत = चमार	२-८७-३
कुम्भकार = कुम्हार	२-८३-१२
शस्त्रोपजीविन् = शस्त्र बनानेवाले	२-८३-१२
मणिकार = जौहरी	,,
मयूरक = मोर-पंखकी वस्तु बनानेवाले	२-८३-१३
काकचिक = लकड़ी चीरनेवाले	२ ८३ १३
वेधक = मोती और मणिआदिमें छेद करनेवाले	२ ८३ १३
रोचक = काँचकी शीशियाँ बनानेवाले	२ ८३ १३
दन्तकार = हाथी-दाँतकी दस्तकारी करनेवाले	२ ८३ १३
गन्धोपजीविन् = अतर सुगन्धवाले	२ ८३ १३
सुवर्णकार = सोनार	२ ८३-१४
कम्बलकारक = कम्बल बनानेवाले	,,
वैद्य = वैद्य	,,
धूपक = धूपका व्यापार करनेवाले	,,
रजक = धोबी	२-८३-१५
तन्तुवाय = जुलाहे	,,
कैवर्त्तक = केवट	,,
श्मश्रुवर्द्धन = नाई	४-१२८-१३

इनमेंसे कुछ उद्योग तो राज्यकी सहायतापर निर्भर थे और कुछ राज्यसे पूर्ण स्वतन्त्र रहते थे। इनमें कुछ वंशागत थे जिनके कारण आधुनिक वर्णव्यवस्था उत्पन्न हुई। श्रीरामके समयमें इन उद्योग-धन्धोंमें अत्यन्त हीन उद्योगोंके अतिरिक्त शेष सब शूद्रोंके द्वारा सञ्चालित होते थे और हीनतम उद्योग अनार्य लोगोंके थे।

कला और उद्योगधन्धे

व्यापार शिल्प नाटक गान ज्योतिष मागध स्नापक सूद

नट शैलूष (नाटक) — वन्दिन् (मागध) — मार्गरक्षक मार्गिन् (सूद)

गायक वादित्र नर्त्तक पाणिवादक (गान)

(क) बढ़ई
(ख) रथकार
(ग) यन्त्रनिर्माण करनेवाले
(घ) वृक्ष काटनेवाले
(ङ) चूना बनानेवाले
(च) बाँसका काम करनेवाले
(छ) हाथीदाँतकी दस्तकारी करनेवाले
(ज) काँचकी कारीगरी करनेवाले आदि आदि

रामायणमें जो कलाकौशल तथा उद्योग-धन्धेका विस्तृत उल्लेख है, उनमेंसे कुछके नाम ऊपर दिये गये हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज एक समुन्नत सभ्यताकी अवस्थामें था और अधिकतर मनुष्योंको ईमानदारीके साथ अपनी जीविका चलानेका पर्याप्त अवसर प्राप्त था।

रामावतारका कारण

संसार परिवर्तनशील है। चक्रकी तरह सदा गतिशील रहता है। यदि चक्रके किसी अंगको घुमा दिया जाय तो सारा चक्र ही घूम जाता है। इसीप्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तु एक अदृश्य डोरीमें इसप्रकार बँधी हुई है कि जिसका सम्बन्ध अनादि और अटल है एवं उसका घुमानेवाला परमात्मा परदेकी ओटमें बैठा उसे सतत घुमा रहा है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसारकी वस्तुओंमें गर्मी प्रदान करता है और जलके अंशको ऊपर खींच लेता है। काठको जलानेसे जो ज्वाला प्रकट होती है वह सूर्य-देवकी दी हुई पूँजी है, जिसे उस वृक्ष या काष्ठने दिन प्रतिदिन लेकर अपनी गाँठमें जमा कर रक्खा था। अब अपने अन्त समयका विचारकर वृक्ष अपने अस्तित्वको नष्ट करते समय एक उदारचित्त दानी-की तरह उस ज्वालाको वापस सूर्यदेवकी भेंट कर रहा है। जल,जिसे सूर्यने वाष्प-रूपमें ऊपर खींच लिया था, पृथ्वीको उष्णताकी तीव्र तिरछी और नुकीली छुरियोंद्वारा व्यथित होते देखकर काँप उठता है और अपने वाष्परूपी शरीरका त्याग कर पृथ्वीके तप्त हृदयको अपने शीतल अंगसे आलिङ्गन कर उसके घावोंको अपनी नम्रता, शीतलता, आर्द्रता और उदारताके कोमल स्पर्शसे भर देता है।

एक वस्तुका प्रकट होना किसी दूसरी अवस्था या वस्तुके आगमनकी सूचना देना है। किसी वस्तुका जन्म उसकी मृत्युकी सूचना है! और मृत्यु उसके जन्मकी पताका है जो फहराकर आनन्द और हर्षकी सूचना देती रहती है।

'मेरा होना था फकत मेरे न होनेके लिये।
मेरा मरना था फकत मेरे जीनेके लिये॥'

बड़ी तीव्र गर्मी इस बातकी सूचना देती है कि वर्षा या आँधीका आगमन समीप है। जब कोई मनुष्य दुःखसे खूब तड़फड़ा रहा हो तो यह जानरखना चाहिये कि उसके लिये एक दूसरी अवस्था 'बेहोशी' या ऐसी ही कुछ और दशा समीप ही लगी हुई है, जिसके प्राप्त होनेपर उसे पीड़ाका ज्ञान ही न रहेगा। पतझड़का मौसिम जहाँ वृक्षोंकी पत्तियाँ नोचनेमें ही लगा रहता है, वहाँ उसके बाद ही वसन्त भी पुष्पोंका तरकस लिये दौड़ा चला आता है।

जिस समय रावणके शासनसे प्रजा दुखी थी, ऋषि-मुनि जंगलोंमें बैठे हुए भी कष्ट और दुःखकी सीमासे अलग नहीं थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था, मानो यह सब इस बातकी सूचना दे रहे थे कि सूर्यकुलमें बहुत शीघ्र एक अनुपम सूर्य प्रकट होगा जो अन्धकारको नष्ट करके पृथ्वीको पुनः स्वच्छ, पवित्र और उज्ज्वल चादर पहनाकर पहलेसे कहीं अधिक सुन्दर बना देगा। भिलनीका प्रेम, निषाद-की मुहब्बत उमड़-उमड़कर हृदय-देशकी दीवारों-को ढहाकर किसीसे भेंट करनेके लिये चारोंओर फैल रही थीं। क्या उमड़ती हुई धाराके प्रबल वेग-को रोकनेके लिये कोई सामान न होगा? क्या बुलबुलकी चहक, फूलकी महक, कोयलकी कूक और पपीहेकी हूकमें कोई असर न होगा? क्या मधुरस्वर सुनसान वायुमण्डलमें मिलकर नष्ट हो जायगा, क्या पहाड़ी चट्टानोंसे टकराकर ध्वनि प्रतिध्वनिके वस्त्र पहनकर प्रकट न होगी? क्या पुष्पके पूरे खिलनेपर भी सुगन्ध न आयगी? क्या प्रेमसे भरे हृदयके लिये प्रेम-प्रतिमा प्रकट न होगी? क्या प्रेमीके लिये वह मनमोहनी मूर्ति 'राम-नाम' से प्रसिद्ध होकर प्रेमकी कोमल डोरियोंमें बँधकर न खिंचेगी, अवश्य, अवश्य खिंचेगी! *'हाँ हाँ बता रही है तेरी नहीं नहीं'* रामावतारका मुख्य भेद और कारण संक्षिप्तमें यही है! —बनारसीदास 'प्रेम'

पुत्र लव-कुशको जनकजा धनुर्वेद सिखा रहीं।

સ. સા. મુદ્રણાલય-અમદાવાદ.

वाल्मीकीय रामायणका आधार और काल

(लेखक—श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा दाधीच बी० ए०, एम० आर० ए० एस०)

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभवद्ध्वनिः ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

महर्षि आदिकवि वाल्मीकिके नामसे सभी साक्षर भलीभाँति परिचित हैं । संस्कृतमें वेदोंको छोड़कर सबसे प्राचीन ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण है । यह एक चमत्कारिक ग्रन्थ है । इसके पाठद्वारा कई प्रकारके अनुष्ठानोंकी सिद्धि इस कलिकालमें अब भी होती है । यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित और अनुभूत है । इसके कुल चौबीस सहस्र श्लोक हैं, जिनमेंसे प्रायः प्रतिसहस्र पद्यके आद्याक्षरोंसे गायत्रीमन्त्र निकलता है । जिसको गायत्रीमन्त्र रामायण कहते हैं । पाठकोंके परिज्ञानार्थ हम वह नीचे दिये देते हैं—

ओं तत् ओं तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

स — स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ २ ॥

वि — विश्वामित्रः स धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
वत्स ! राम ! धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ३ ॥

तुर् — तुष्टावास्य तदा वंशं सुमन्त्रः स विशांपतेः ।
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठतः ॥ ४ ॥

व — वनवासं हि सङ्ख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ ५ ॥

रे — राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥

णि — निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो मुनिम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥

यं — यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महाबलम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महायशः ॥ ८ ॥

भर् — भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
मृगरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥

गो — गच्छ शीघ्रमितो वीर ! सुग्रीवं तं महाबलम् ।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ! ॥ १० ॥

दे — देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ ११ ॥

व — वन्द्यास्ते च तपःसिद्धास्तपसा वीतकल्मषा ।
प्रष्टव्या चैव सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ १२ ॥

स्य — स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १३ ॥

धी — धन्या देवाः सगन्धर्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ १४ ॥

म — मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

हि — हितं महार्थं मृदुहेतुसंहितं व्यतीतकालायति संप्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥

धि — धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १७ ॥

यो — यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः

यो — यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ १९ ॥

नः — न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।
मोहिता परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २० ॥

प्र — प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २१ ॥

चो — चलनात्पर्वतेन्द्रस्य गणा देवस्य कम्पिताः ।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २२ ॥

द — दाराः पुत्राः प्रियं राष्ट्रं भोगाच्छादनभाजनम् ।
सर्वमेवाऽविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वरः ! ॥ २३ ॥

यात् — यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् ।
तामेव रात्रिं सीताऽपि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ २४ ॥

(यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।
तावत्त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमवधारय ॥)
इदं रामायणं काव्यं गायत्रीबीजसंयुतम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥

इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायणका सर्वोच्च और सर्वप्रथम स्थान है । प्रामाणिक इतिहासमें केवल रामायण और महाभारतकी गणना है, जिनमें भी रामायण प्रथम है । यह ग्रन्थ श्रीरामचन्द्रजीके समयमें ही बना था-जैसा कि इसके आन्तरिक प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है । मूल रामायणमें १ से लेकर १० श्लोकोंतक तो भूतकाल लिखा गया है और ११–१७ तक भविष्यत्काल लिखा है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जब रामचन्द्रजीने रावणको मार, विभीषणको लङ्काका राज्य दे, नन्दिग्राममें आ, जटा उतार, अयोध्याका राज्य पुनः प्राप्त कर लिया, उसके अनन्तर रामायणकी रचना हुई और तदनन्तर जो कृत्य किये उनका

भविष्यत्कालमें 'ऐसा करेंगे' इसप्रकार वर्णन है, जिससे उन कृत्योंके पूर्व रामायणकी रचना की गयी ऐसा सिद्ध होता है। यथा—

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥ ८५ ॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान्।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्व्रतः ॥ ८६ ॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः।
भरतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ८७ ॥
पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीवसहितस्तदा।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ८८ ॥
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥ ८९ ॥

यहाँतक सब भूतकालद्योतक क्रियाओंका प्रयोग हुआ है, इसके अनन्तर भविष्यत् क्रियाएँ लिखी गयी हैं। यथा-

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥ ९१ ॥
... ...
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा बहुवर्णसुवर्णकैः ॥ ९४ ॥
गवां कोटियुतं दत्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति।
असंख्येयं धनं दत्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥ ९५ ॥
राजवंशाञ्छतगुणान् स्थापयिष्यति राघवः।
चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति ॥ ९६ ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ ९७ ॥

अतः यह बात निर्विवादतया स्पष्ट है कि रामचन्द्रजीके राज्यप्राप्तिके अनन्तर और अश्वमेध-यज्ञ करनेके पूर्वके समयमें इस महाकाव्यकी रचना हुई थी।

सीताजीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

(लेखक—शुद्धाद्वैतभूषण पं० श्रीजेष्ठारामजी हरिजीवन शास्त्री)

जनकपुर जाते समय श्रीरामने विश्वामित्रसे पूछा कि महाराज! आप जिसके स्वयंवरमें जा रहे हैं वह सीता कौन है? विश्वामित्रने कहा—हे श्रीराम! पूर्वकालमें एक पद्माक्ष नामक राजा था, उसने तपश्चर्यासे लक्ष्मीजीको प्रसन्न करके यह वरदान माँगा कि आप मेरे यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट हों। यह सुनकर लक्ष्मीजीने कहा कि 'मैं तो श्रीविष्णुके अधीन हूँ, वह जहाँ आज्ञा देते हैं वहाँ प्रकट होती हूँ' यह सुनकर उस राजाने विष्णुकी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया तब विष्णुने एक फल देकर उसे भक्षण करानेको कहा। उस फलसे नव मासके पश्चात् एक कन्या उत्पन्न हुई। जब यह कन्या बड़ी हुई तो उसका सौन्दर्य देखकर बड़े बड़े राजा मोहित हो गये और उन्होंने पद्माक्ष राजापर चढ़ाई कर दी, पद्माक्ष मारा गया। पद्माक्षी एक समय अग्निकुण्डसे बाहर खड़ी थी, रावण उसे देखकर मोहित हो गया और उसे ग्रहण करनेको आगे बढ़ा, परन्तु पद्माक्षी अग्निकुण्डमें लुप्त हो गयी। तदनन्तर रावणने कुण्डमें शोधकर पञ्चरत्न प्राप्त किये और उन्हें एक सन्दूकमें बन्दकर अपने घर लाकर मन्दोदरीको दिया और कहा कि यह रत्न मैं तुम्हारे लिये लाया हूँ। मन्दोदरीने जब सन्दूक खोलकर देखा तो भीतर एक दिव्य कन्या दिखायी पड़ी। उसे देखकर मन्दोदरीने रावणसे कहा कि यह कन्या तुम्हारे कुलका नाश करेगी। सन्दूकमेंसे भी ऐसी ही आवाज आयी। तब रावण उस कन्याको मारनेको तैयार हुआ किन्तु मन्दोदरीके समझानेपर वह कन्याको सन्दूकमें बन्द करके बड़ी दूर उत्तरमें जनकपुरके पास नौकर-द्वारा एक खेतमें गड़वा दिया। पद्माक्षराजाने मृत्युके अनन्तर इसी जनकपुरमें एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया था. उसीके खेतमें वह सन्दूक गाड़ी गयी थी, वह ब्राह्मण हलसे जब खेतको जोतने लगा तब वह सन्दूक प्राप्त हुई। उस सन्दूकको द्रव्य होनेकी आशंकासे उसने राजा जनकको जाकर दिया, राजाने उसे खोला तो भीतर कन्या देखी। तब उसने ब्राह्मणको द्रव्यसे सन्तुष्ट करके विदा किया और कन्या-को अपनी पुत्री करके अपने घरमें रक्खा, क्योंकि उनको सन्तति नहीं थी। उसका नाम सीता रक्खा गया और जनक-की पुत्री होनेसे वह जानकी भी कही जाने लगी। इस जनक राजाके यहाँ एक समय परशुरामजी आये और अपना शिव-धनुष बाहर रखकर महलके भीतर भोजनको गये, तब सीताजी इस प्रचण्ड धनुषको उठाकर उसे अश्व बना उसके ऊपर बैठकर खेलने लगी। भोजनके बाद परशुरामजीने देखा कि सीताजी धनुषका घोड़ा बनाकर खेल रही हैं, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने राजा जनकसे कहा कि यह धनुष जो चढ़ावे, उसीके साथ तुम अपनी पुत्रीका विवाह करना। अतएव यह स्वयंवर हो रहा है, इस स्वयंवरमें जो धनुष चढ़ावेगा उसीको यह कन्या प्राप्त होगी, ऐसा कहते-कहते वे जनकपुर आ पहुँचे।

रामायणमें शिवानुशासन

सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥
उमा कहौं मैं अनुभव अपना । हरिको भजन सत्य जग सपना ॥
उमा दारु जोषितकी नाईं । सबहिं नचावत राम गुसाईं ॥
उमा राम सम हितु जग माहीं । गुरु पितु मातु बंधु कोउ नाहीं ॥
ऐसे प्रभुकहँ जो परिहरहीं । काहे न बिपति जाल नर परहीं ॥
उमा राम स्वभाव जिन जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ॥
उमा संतकी इहै बड़ाई । मन्द करत जो करै भलाई ॥
उमा रामकर भृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावहिं नासा ॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर । बैर भाव मोहि सुमिरत निसिचर ॥
देहिं परमगति सो जिय जानी । अस कृपालु को कहहु भवानी ? ॥
उमा अखण्ड राम रघुराई । नरगति भाव कृपालु दिखाई ॥
उमा करत रघुपति नर लीला । खेल गरुड़ जिमि अहिगण मीला ॥
जगपावन कीरति बिस्तरहीं । गाइ गाइ नर भवनिधि तरहीं ॥

उमा जे रामचरनरत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध ॥
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत ॥

× × ×

गिरिजा सुनहु रामकी लीला । सुरहित दनुज बिमोहन सीला ॥
रामकथा कलि-बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराज-कुमारी ॥
तासु कृपा अस भ्रम मिट जाई । गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ॥
गिरिजा रघुपतिकी यह रीती । संतत करहिं प्रनतपर प्रीती ॥
सुनु गिरिजा कालानल जासू । जारै भुवन चारिदस आसू ॥
जे अस प्रभु न भजहिं भ्रम त्यागी । ते मतिमंद सो परम अभागी ॥
रामकथा गिरिजा मैं बरनी । कलिमल-समन मनोमल हरनी ॥

गिरिजा संतसमागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि-कृपा होइ नहिं गावहिं बेद-पुरान ॥
गिरिजा जाकर नाम जपि नर काटहिं भव फाँस ।
सो प्रभु आव कि बंधतर ब्यापक बिश्व निवास ॥

निसिचर अधम मलायतन ताहि दीन्ह निजधाम ।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥

× × ×

राम सो परमातमा भवानी । तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी ॥
जेहि जागे जग जाइ हेराई । जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई ॥
बंदौं बालरूप सोइ रामू । सब बिधि सुलभ जपत जस नामू ॥
मंगलभवन अमंगलहारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
जिन हरि-भक्ति हृदय नहिं आनी । जीवत शव समान ते प्रानी ॥
जे नहिं करहिं रामगुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
सगुणहिं अगुणहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुराण बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भक्त-प्रेमबस सगुन सो होई ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतङ्गा । तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा । नहिं तहँ मोह-निसा लवलेसा ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायेउ माथ ॥

× × ×

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू । मायाधीस ज्ञान गुन धामू ॥
बिबसहु जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक सँचित अघ दहहीं ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुबर सब उर अन्तरजामी ॥
सादर सुमिरन जो नर करहीं । भवबारिधि गोपद इव तरहीं ॥
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहुँ माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अगजगमय सब रहित बिरागी । प्रेमतें प्रभु प्रकटहिं जिमि आगी ॥
रघुपति-बिमुख जतनकर कोरी । कवन सके भव-बन्धन छोरी ॥
जिनकर नाम लेत जगमाँही । सकल अमंगल मूल नसाहीं ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहु भवानी ॥
अस बिचारि जो परम बिरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धर्मरत ॥

रामचरितमानस और अध्यात्मरामायण

(लेखक—श्रीव्योहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)

अध्यात्मरामायणका रचनाकाल वाल्मीकि-रामायणके पीछे और तुलसीकृत रामायणके पूर्व माना जाता है। अध्यात्मरामायण वाल्मीकीय रामायणके बहुत पीछे तब बनी, जब कि श्रीरामजी आदर्श राजपुत्रके पदसे ऊपर उठकर साक्षात् परमात्माके पूर्ण अवतार माने जाने लगे थे। महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामका अवतारत्व स्पष्ट स्वीकार करते हुए भी उन्हें अवतार-रूपसे चित्रित नहीं किया है। अध्यात्मरामायणकी कथा वाल्मीकि-रामायणके ही आधारपर लिखी गयी है, पर रामचन्द्रजीको अवतार मानकर उसका रूप बिलकुल बदल दिया गया है।

इन बातोंसे ऐसा मालूम होता है कि अध्यात्मरामायणकी रचना सिर्फ इसी उद्देश्यसे हुई है कि श्रीरामका ईश्वरत्व सिद्ध किया जाय।

रामचरितमानसकी रचना किसी एक खास ग्रन्थके आधारपर नहीं की गयी। उसके भाव 'नानापुराणनिगमागम' से लिये गये हैं। इसका कथाभाग अधिकतर वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण और भुशुण्डिरामायण आदिसे लिया गया है। वा० रा० की अपेक्षा अध्यात्मरामायणका आधार ही इसमें अधिक है। आगे चलकर ज्ञात हो जायगा कि गोसाईंजीने किसीकी अन्धी नकल नहीं की है। मानस-अध्यात्मरामायणकी अन्धी नकल नहीं है वरन् इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत अन्तर है। मानसके पूर्ववर्ती होनेके कारण अध्यात्मरामायणका उसपर प्रभाव अवश्य पड़ा है। इस प्रभावके कारण दोनोंमें कहीं-कहीं भावसाम्य बहुत अधिक दीख पड़ता है। यही कारण है कि बहुतसे पण्डितोंको यह भ्रम हो गया है कि मानस-रामायण, अध्यात्मरामायणकी नकल है। पर दोनों ग्रन्थोंके ध्यानपूर्वक पढ़नेसे साफ मालूम हो जायगा कि इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। दोनों रामायणें उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। इससे भी कुछ लोग समझ बैठे हैं कि मानस अध्यात्मरामायणका अनुवाद है। अपने समर्थनमें लोग तीन बातें उपस्थित करते हैं—

(१) दोनों रामायणोंके कथाभाग और भावोंमें बहुत कुछ साम्य है।

(२) मानस अध्यात्मरामायणके पीछे बनी।

(३) दोनों, उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। गुसाईंजीने स्वयं कहा है कि—

'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्'

उत्तर इसप्रकार है—

(१) केवल कुछ भावों और कथाओंमें साम्य होनेके कारण कोई किसीकी नकल नहीं कही जा सकती। आगे यह भी बतलाया जायगा कि कुछ बातोंमें दोनोंमें साम्य रहते हुए भी कुछ ऐसे अन्तर हैं जो भुलाये नहीं जा सकते और जिनके कारण तुलसीदासजीकी मौलिकता प्रकट होती है।

(२) अध्यात्मरामायणके पीछे रचे जानेके कारण मानस-पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। जिस प्रकार गुसाईंजीने अध्यात्मरामायणसे अच्छी-अच्छी बातें लेकर अपने ग्रन्थमें सम्मिलित की है उसी प्रकार अन्य अनेक ग्रन्थोंसे भी सूक्तियाँ ली गयी हैं। अतः इसके कारण भी कोई ग्रन्थ नकल नहीं कहा जा सकता।

(३) अध्यात्मरामायणकी सारी कथा केवल उमा महेश्वरके संवादरूपमें है। पर मानसमें जो तीन संवाद प्रधान हैं—शंकर-पार्वतीसंवाद उनमेंसे एक है। एक महाशय कहते हैं कि उक्त श्लोकमें अन्य नामोंको छोड़कर केवल शम्भुके उल्लेख किये जानेके कारण उनकी प्रधानता है। यह बात ठीक मालूम होती है।

रामायण आरम्भ करते समय गुसाईंजीने इसके आधार-के विषयमें जो परम्परा लिखी है, वह यह है—

'संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥'
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। ... ...
तेहि सन जागबलिक मुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
मैं पुनि निज गुरु सन सुनी। ... ...
भाषाबद्ध करब मैं सोई। ... ...

इससे प्रकट होता है कि जो कथा शिवने काकभुशुण्डिसे कही, वही परम्परासे गुसाईंजीने पायी और उसीके आधारपर उन्होंने रामायण लिखी।

गुसाईंजीने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने 'नाना पुराणों' का आधार लिया। अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्ड-पुराणके अन्तर्गत है। इसलिये उसका भी आधार लेना सिद्ध ही है। अब हम यह बतलायेंगे कि गुसाईंजीने कहाँ-कहाँ अध्यात्मरामायणका आधार लिया। पहले काण्डोंके अनुसार कथाकी समता देखिये।

बालकाण्डमें देवताओंकी प्रार्थनापर ईश्वरका अवतार लेनेकी प्रतिज्ञा करना, दशरथका पुत्रेष्टि-यज्ञ, रामजन्म, बाल-लीलासे लेकर विश्वामित्र-आगमन, ताड़कावध, यज्ञरक्षा, अहल्योद्धार, धनुषभंग और विवाह ये कथाएँ मानस और अध्यात्मरामायणमें प्रायः एक-सी हैं। अयोध्याकाण्डमें राम-वनगमन, गुहमिलाप, लक्ष्मणका गुहको उपदेश और भरतसंवाद दोनोंमें बिलकुल एक-से हैं। आरण्यकाण्डके विराधवध, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसंवाद, लक्ष्मणको ज्ञानदान, शूर्पणखा-नासाकर्णहरण, सीताहरण, जटायुसंवाद, कबन्ध-वध, खरयुद्ध, शबरीदर्शन, दोनों रामायणोंमें एक-से हैं। किष्किन्धाकी सुग्रीव-मिताई और सीताखोज, सम्पाती और योगिनीभेंट, एक-से हैं। सुन्दरकाण्डकी कथा दोनोंकी मिलती है। लंकाकाण्डमें मन्दोदरीका उपदेश, शुकसंवाद, प्रहस्तवाद और युद्ध आदि एकसे हैं।

उपर्युक्त कथाओंके साम्यसे यह प्रकट होता है कि मूल कथामें कुछ अधिक भेद नहीं है।

अब वे कथाभाग दिये जाते हैं, जिनमें दोनों रामायणोंमें अन्तर है।

अध्यात्मरामायणमें	रामचरितमानसमें
(१) आरम्भमें हनूमान्, सीता और रामका संवाद।	(१) नहीं है।
(२) देवताओंका क्षीर-सागरपर जाकर स्तुति करना व प्रत्यक्ष वरदान पाना।	(२) देवोंका हरिको 'व्यापक सर्वत्र समाना' जानकर शिवलोकमें स्तुति करना और आकाश-वाणीसे आश्वासन मिलना।
(३) ऋष्यशृंगको मोहित करके अयोध्यामें लाना।	(३) नहीं है।
(४) नहीं है।	(४) पुष्पवाटिकामें राम-जानकी-भेंट।
(५) अकेलेमें धनुष-भङ्ग करना।	(५) सर्वदेशीय राजाओंकी सभामें रामका धनुष भंग करना।
(६) अयोध्याके रास्तेमें परशुरामका आगमन और संवाद।	(६) धनुष-भंगके बाद जनककी सभामें ही परशुराम-आगमन।
(७) अ० का०के आरम्भमें नारदका आना।	(७) नहीं है।
(८) अ०का० के अन्तमें अत्रि-मिलाप।	(८) आ०के आरम्भमें अत्रि मिलाप।
(९) नहीं है।	(९) अनसूयाका सीताको स्त्री-धर्मोपदेश।
(१०) जयन्तकी कथा लङ्का-काण्डमें है।	(१०) आरण्यकाण्डमें है।
(११) नहीं है।	(११) आ०अन्तमें नारदका आगमन।
(१२) नहीं है।	(१२) खरका दूत भेजना।
(१३) नहीं हुआ।	(१३) सुन्दरकाण्डमें हनूमान्‌जीका विभीषणसे मिलाप।
(१४) रावण-अङ्गद-संवाद नहीं हुआ।	(१४) रावण-अङ्गद-संवाद हुआ।
(१५) हनूमान्‌जीके आनेपर रावणको स्वप्न हुआ।	(१५) त्रिजटाको हुआ।
(१६) वानरोंके जिलानेके लिये हनूमान्‌जी सञ्जीवनी लेने गये, और रास्तेमें भरत और भरद्वाजसे मुलाकात की।	(१६) लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर गये। रास्तेमें किसीसे मिलाप नहीं हुआ।
(१७) शक्ति लगनेपर रामने विलाप नहीं किया।	(१७) विलाप किया।

(१८) रावणने सुग्रीवके पास शुकको सन्धि करनेके लिये भेजा।	(१८) नहीं।
(१९) रावणका सीताको मारनेकी इच्छा करना व सुपार्श्वका बचाना।	(१९) सीताको मारने दौड़ना व मन्दोदरीका बीच-बचाव।
(२०) रावणका होम करना।	(२०) मेघनादका होम करना।
(२१) अयोध्या लौटते समय रामका भरद्वाजसे मिलाप।	(२१) नहीं हुआ।
(२२) लङ्काकाण्डहीमें रामका अयोध्या लौटना और राजगद्दी।	(२२) उत्तरकाण्डमें लौटना व राजगद्दी।
(२३) उत्तरकाण्डमें शम्बूक-वधकी कथा।	(२३) नहीं है।
(२४) सीता-त्याग।	(२४) नहीं है।
(२५) लवणवध।	(२५) ,,
(२६) दुर्वासा आगमन।	(२६) ,,
(२७) अन्तमें लक्ष्मणत्याग और स्वर्गारोहण।	(२७) ,,
(२८) नहीं है।	(२८) बालकाण्डमें प्रतापभानुकी कथा।
(२९) ,,	(२९) नारदमोह।
(३०) ,,	(३०) सतीमोह।
(३१) ,,	(३१) शंकरकृत मदनदहन पार्वतीविवाह इत्यादि।
(३२) ये सब नहीं हैं।	(३२) उत्तरके अन्तमें रामराज्य वर्णन, कलि-वर्णन, कागभुशुण्डि-गरुड़ संवाद आदि हैं।❀

अध्यात्मरामायणकी कथा लङ्काकाण्डहीमें समाप्त कर दी गयी है। क्योंकि इससे अन्तमें ग्रन्थसमाप्तिसूचक पद्य हैं। इससे मालूम पड़ता है कि अन्तसर्गमें ही ग्रन्थकारने कथा समाप्त कर दी थी, पर किसीने पीछेसे उत्तरकाण्ड जोड़ दिया। इसीप्रकार तुलसीकृत रामायणके अन्तमें लवकुशकाण्ड जोड़ दिया गया है। इस लवकुशकाण्डकी कथा और अध्यात्मरामायणके उत्तरकी कथा एक-सी ही है। जितनी कथा इसमें लङ्काके अन्ततक है उतनी ही रामकथा मानसके उत्तरकाण्डतक गयी है।

अध्यात्मरामायणके उत्तरकाण्डको प्रक्षिप्त माननेका सिर्फ यह प्रमाण उपस्थित किया गया है कि लङ्काकाण्डके अन्तमें कुछ ऐसे श्लोक आ गये हैं जिनसे मालूम होता है कि ग्रन्थ यहीं समाप्त हो गया। पर उत्तरकाण्डमें फिर कथा आरम्भ हो जाती है और यदि लङ्काकाण्डके अन्तके कुछ श्लोक निकाल लिये जायँ तो कुछ अन्तर नहीं मालूम होता और कथाका सिलसिला बराबर चला जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि ये श्लोक उत्तरकाण्डके अन्तमें न रक्खे जाकर भूलसे इस स्थलपर रख दिये गये हों।

अ० रा०के लङ्का और उत्तरकाण्डोंकी भाषा आदिमें ऐसा भेद नहीं है जिससे दोनों काण्ड दो भिन्न कवियोंकी रचनाएँ समझ पड़ें। पर तुलसीकी रामायणके पीछे जोड़ा गया लवकुशकाण्ड, रेशममें टाटके समान तुरन्त ही खटकने लगता है।

कथाभाग इतना अधिक रहते हुए भी गुसाईंजी और अध्यात्मरामायणके भाव बहुत जगह एक-से दीख पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो गुसाईंजीने अपने ग्रन्थमें अ० रा०के श्लोकोंके बिलकुल अनुवाद करके रख दिये हैं, कई स्थलोंपर अ० रा०के छोटे-से भावको गुसाईंजीने अपनी प्रतिभासे

❀ इन बातोंके अलावा बहुत-सी छोटी-छोटी बातोंमें अन्तर पाया जाता है, जैसे अगस्त्यका रामको अस्त्र देना, भरतका हनुमान्‌को साथ देना। रामका भरतको विमानपर बिठा लेना आदि अ० रामायणकी बातें रा० च० मा० में नहीं हैं। गुसाईंजीने लिखा है कि शंकरका धनुष 'भूप सहसदस' से न उठा सके पर उसी धनुषको अ० रा० में ५ हजार नौकर सभामें ले आये। इसके सिवा थोड़ेसे स्थलोंपर और भी छोटे छोटे अन्तर हैं। जैसे-

अ० रामायणमें	रा० च० मा० में
(१) राजाका वशिष्ठको अपने घर बुलवाना।	(१) रामका, अभिषेकके लिये स्वयं गुरुगृह जाना।
(२) सीताको वन-गमनकी खबर रामने सुनाई।	(२) सीता खबर सुनकर खुद सासके सामने रामके पास आयीं।
(३) केवटके चरण धोनेकी कथा मिथिला जाते समय।	(३) वन जाते समय।
(४) रावणकी युद्ध-सभामें कुम्भकर्ण था।	(४) वह युद्धके बाद जगाया गया, इत्यादि।

परिवर्धित व परिमार्जित करके अपना लिया है । कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जायगा ।

१–गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं
वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ।
(अ० रा०)

गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
(रा० च० मा०)

२–'भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥
यस्मिन्रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे ।
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥
(अ० रा०)

बिस्व भरण पोषणकर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार ।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा, लछमन नाम उदार ॥

जो आनन्दसिन्धु सुख रासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥

केवट कहता है कि—

३–क्षालयामि तव पादपङ्कजम्,
नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ॥
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते,
पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥
(अ० रा०)

चरन-कमल-रज कहँ सब कहई । मानुष-करनि मूरि कछु अहई ॥
(मानस)

४–पौराहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्य जीवनम् ।
(अ० रा०)

उपरोहिती कर्म अति मंदा । बेद पुरान करहिं सब निन्दा ॥
(रा० च० मा०)

कैकेयी कहती है—

५–ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ।
(अ० रा०)

नैहर जन्म भरब बरु जाई । जियत न करब सवति सेवकाई ॥
(रा० च० मा०)

मंथरा कहती है—

६–लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ॥
भरतो राघवस्याग्रे किंकरो वा भविष्यति ॥
त्वं तु दासीव कौशल्यां नित्यं परिचरिष्यति ॥
(अ० रा०)

भरत बंदिगृह सेइहहिं, लखन रामके नेब ।
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥
(रा० च० मा०)

दशरथजीने कहा है—

७–ब्रूहि कं धनिकं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियंकरम् ।
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥
(अ० रा०)

कहु केहि रंकहिं करौं नरेसू । कहु केहि नृपति निकारौं देसू ॥
(रा० च० मा०)

कैकेयी कहती है—

८–तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ।
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ॥
(अ० रा०)

परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जान जगदीस ।
राम राम रटि भोर किय, कहेउ न मरमु महीस ॥
(रा० च० मा०)

९–स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या ॥ (अ० रा०)
सोहत सुरपुर इन्द्र जनु, सची जयंत समेत ।
(रा० च० मा०)

१०–असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क गतोसि भो ॥
(अ० रा०)

—भरत न रामहिं सौंपेउ मोहीं ॥
(रा० च० मा०)

भरत-प्रतिज्ञा—

११–पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ॥
हत्वा वशिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ।
भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् ॥

मानसमें भी भरतने इसी प्रकारकी प्रतिज्ञाएँ की हैं यथा—

'जे अघ मातु पिता गुरु मारे ।' इत्यादि

१२–अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥
(अ० रा०)

अहह धन्य लछमण बड़ भागी। राम पदारबिन्द अनुरागी ॥
(रा० च० मा०)

१३–शिक्षणार्थं भवादृशाम् ॥
(अ० रा०)

तुमसे शठन सिखावन दाता ॥
(रा० च० मा०)

१४ आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः ।
मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ॥
(अ० रा०)

कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आय गए प्रभु शठ रहु ठाढ़ा ॥
जिमि हरिबधुहिं क्षुद्र शश चाहा ॥
(रा० च० मा०)

१५–अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती ।
जगत्स्थितिलयोत्सर्गलीलया कर्तुमुद्यतौ ॥
स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ॥
नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥
(अ० रा०)

की तुम तीन देवमहँ कोई। नर नारायण की तुम दोई ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरणी भार ।
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ॥
(रा० च० मा०)

१६–वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् ।
(अ० रा०)

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहिं शर हतौं मूढ़कहँ काली ॥
(रा० च० मा०)

१७ उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ।
(अ० रा०)

तृण धरि ओट कहति बैदेही ।
(रा० च० मा०)

विचारों और सिद्धान्तोंमें भी इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत साम्य है, दोनोंमें यह सिद्धान्त माना गया है कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म थे और वे लोकोद्धारके लिये अवतार लेकर मनुष्य-लीला करते थे। वे अपनी लीलामें लिप्त नहीं थे। यद्यपि वे ऐसे कभी-कभी दीख पड़ते हैं—

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥
(अ० रा०)

× × ×

इन दोनों ग्रन्थोंमें हर जगह यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है। अगर कहीं रामने विलाप किया तो तुरन्त ग्रन्थकार कहते हैं—

पूरन काम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥

जिसमें किसीको यह सन्देह न होने पावे कि श्रीराम साधारण मनुष्य हैं, ये दोनों ग्रन्थ उनके ईश्वरत्वका हर जगह पाठकोंको ध्यान दिलाते हैं। यहाँतक कि राम और सीता कहीं-कहीं, स्वयं ही अपना ईश्वरत्व सिद्ध करनेके लिये प्रमाण देते हैं। सीताजी हनूमान्‌जीसे कहती हैं—

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥

गुसाईंजीने भी हर जगह सीतारामको प्रकृति और पुरुष सिद्ध किया है पर सीताजीके मुखसे अपनेको कभी 'परमशक्ति' मूल प्रकृति आदि नहीं कहलवाया।

(क्रमशः)

चित्र-परिचय

सीता-अन्वेषण—(*रंगीन*) पृष्ठ ४१३ सीता-हरणके बाद भगवान् श्रीराम व्याकुल हुए जहाँ तहाँ सीताको खोज रहे हैं, जहाँ कोई मिलता है, उसीसे गद्गद होकर सीताका पता पूछते हैं। इस चित्रमें दिखाया गया है कि श्रीराम मुनि-बालकोंसे सीताके सम्बन्धमें पूछ रहे हैं। चित्रकी सुन्दरता देखने योग्य है।

सुतीक्ष्णका प्रेमोन्माद—पृष्ठ ४२६ श्रीरामका आगमन सुनकर सुतीक्ष्णजी प्रेममें मतवाले हुए रामदर्शनार्थ जा रहे हैं। श्रीराम वृक्षकी ओटमें खड़े हैं और बाहरकी ओर झुककर भक्तकी प्रेमलीला देख रहे हैं। सीता और लक्ष्मणजी भी मुग्ध हैं।

लव-कुशको धनुर्वेद-शिक्षा—पृष्ठ ४८४ लव-कुश बाण चलाना सीख रहे हैं, सीताजी पास बैठी हैं।

Registered No. A. 1724.